तुलसी-शब्दसागर

संकलनकर्त्ता
स्वर्गीय पंडित हरगोविंद तिवारी

संपादक
श्री भोलानाथ तिवारी

हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

तुलसी-शब्दसागर

तुलसी-शब्दसागर

संकलनकर्त्ता
स्वर्गीय पंडित हरगोविंद तिवारी

संपादक
श्री भोलानाथ तिवारी

हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

'तुलसी-शब्दसागर' का संग्रहकार्य 'तुलसीग्रंथावली-कोष' नाम से आगरा के एक वयोवृद्ध सज्जन स्वर्गीय श्री हरगोविंद तिवारी ने किया था। आप आगरा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के एकाउंटेंट थे और यह कार्य आपने लगभग ५० वर्षों में धीरे-धीरे पूरा किया था। कार्य संपन्न होने पर आपने इसके प्रकाशन के संबंध में एकेडेमी से पत्र-व्यवहार किया जिसके फलस्वरूप कोष की सामग्री ३०००) रुपये में एकेडेमी द्वारा खरीद ली गई।

यद्यपि स्वर्गीय श्री हरगोविंद तिवारी ने सामग्री बहुत परिश्रम और विस्तार से तैयार की थी किंतु वस्तुतः वह व्यवस्थित कोष के रूप में न थी। नियमित कोष-सामग्री के अतिरिक्त उसमें पुरानी टीकाओं के ढंग की कुछ अन्य सामग्री भी मिश्रित थी। एकेडेमी ने इसके संपादन पर विचार करने के लिए डा० धीरेंद्र वर्मा, डा० बलदेवप्रसाद मिश्र और डा० माताप्रसाद गुप्त, इन तीन व्यक्तियों का एक संपादक-मंडल बनाया, जिसने संपादन के संबंध में कुछ सिद्धांत निर्धारित किए। संपादन का कार्य एकेडेमी के साहित्य-सहायक श्री भोलानाथ तिवारी को सौंपा गया। उन्होंने मई सन् १९४९ में निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर संपादन-कार्य आरंभ किया और लगभग चार वर्षों के अनवरत परिश्रम के बाद अत्यंत योग्यता से इसे पूर्ण किया।

प्रस्तुत कोष में लगभग २२,००० शब्द हैं। इनमें से लगभग १६,००० शब्द तो श्री हरगोविंद तिवारी की सामग्री से लिए गए हैं और शेष ६,००० श्री भोलानाथ तिवारी ने संगृहीत किए हैं। इन शेष शब्दों के संग्रह में जहाँ तक रामचरितमानस के शब्दों का संबंध है डा० सूर्यकांत की 'रामायण-शब्दसूची' से पूर्ण सहायता ली गई है। यदि गोस्वामी जी के अन्य ग्रंथों की भी इसी प्रकार पूर्ण शब्दसूचियाँ होतीं तो निस्संदेह यह शब्दसागर और भी समृद्ध हो सकता।

शब्दों का क्रम सामान्य कोषों की भाँति है किंतु एक शब्द के आधार पर काल, पुरुष, लिंग अथवा वचन आदि की दृष्टि से बने रूप अथवा यौगिक रूप पृथक्-पृथक् नहीं रक्खे गए हैं। कोष में आए हुए इस प्रकार के शब्दों में अक्षर-क्रम से प्रथम आनेवाले शब्द मुख्य शब्द के रूप में दे दिए गए हैं और शेष शब्द उनके पेटे में रक्खे गए हैं। उदाहरणार्थ 'अघाना' क्रिया से बने विभिन्न रूपों में 'अघाइ' अक्षर-क्रम की दृष्टि से प्रथम आता है, अतः उसे मुख्य शब्द के रूप में दिया गया है और 'अघाई', 'अघाउँगो', 'अघाति' तथा 'अघाहीं' आदि उसके पेटे में दिए गए हैं। इसी प्रकार 'अनुज' के पेटे में 'अनुजनि' तथा 'अनुजन्ह' आदि रखे गए हैं। छंद की आवश्यकता-पूर्ति के लिए प्रयुक्त शब्दों के विकृत रूप पृथक् रक्खे गए हैं, जैसे 'अभिराम' और 'अभिरामा', आदि।

यदि किसी शब्द का एक अर्थ है तो वह बिना संख्या के दे दिया गया है, किंतु यदि अनेक अर्थों में शब्द प्रयुक्त होता है तो वे क्रम से संख्या देकर लिखे गए हैं। अर्थ के बाद तुलसी की रचनाओं से उदाहरण दिए गए हैं। अनेक अर्थवाले शब्दों में उदाहरण देते समय अर्थ की क्रम-संख्या का उल्लेख कर दिया

गया है। इस संबंध में इतना और बतला देना आवश्यक है कि जिन अर्थों के उदाहरण नहीं दिए गए हैं उनमें कुछ ऐसे भी निकल सकते हैं जो प्रयुक्त न हुए हों। इसी प्रकार यह भी असंभव नहीं कि ऐसे अर्थों में भी कुछ शब्दों का प्रयोग तुलसी-ग्रंथावली में मिले जो इस कोष में नहीं दिये गए हैं। आशा है आगामी संस्करण में इन त्रुटियों को दूर किया जा सकेगा।

उदाहरणों के आगे कोष्ठक में संदर्भ दिया गया है। संदर्भ के आरंभिक अक्षर तो तुलसी की रचनाओं के संक्षिप्त नाम हैं, जिनका पूरा रूप संक्षेप-सूची में दिया गया है। उनके आगे दिए गए अंकों के संबंध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं। 'मानस', 'कवितावली' तथा 'गीतावली' के आगे दी गई पहली संख्या क्रम से कांडों की द्योतक है, अर्थात् बालकांड के लिए १, अयोध्या के लिए २, अरण्य के लिए ३, किष्किंधा के लिए ४, सुंदर के लिए ५, लंका के लिए ६, और उत्तर के लिए ७की संख्या प्रयुक्त हुई है। 'मानस' के संदर्भों की दूसरी संख्या दोहे की तथा तीसरी संख्या चौपाई की है। यदि तीसरी संख्या के साथ दो०, श्लो०, छं० अथवा सो० है तो वह क्रम से दोहा, श्लोक, छंद अथवा सोरठा की संख्या है। 'कवितावली' तथा 'गीतावली' की दूसरी संख्या छंद की है, अर्थात् यदि क० ७।४ लिखा है तो इसका आशय है कवितावली के उत्तरकांड का चौथा छंद और यदि मा० २।१५६।२ लिखा है तो इसका अर्थ है रामचरित-मानस के अयोध्याकांड के १५६ वें दोहे की दूसरी चौपाई। 'रामललानहछू', 'वैराग्यसंदीपनी', 'बरवै-रामायण', 'पार्वतीमंगल', 'जानकीमंगल', 'दोहावली', 'कृष्णगीतावली', 'विनयपत्रिका', तथा 'तुलसी-सतसई' में संक्षिप्त रूप के बाद केवल एक संख्या है और वह छंद की संख्या है। 'रामाज्ञा-प्रश्न' में संक्षिप्त रूप के बाद तीन संख्याएँ हैं। पहली संख्या वर्ग की, दूसरी सप्तक की और तीसरी दोहे की है।

प्रस्तुत कोष में यथासंभव व्युत्पत्ति भी दी गई है। किंतु यदि एक व्युत्पत्तिवाले एक से अधिक शब्द पास-पास ही हैं तो कुछ अपवादों को छोड़कर किसी एक के साथ व्युत्पत्ति दी गई है। व्युत्पत्ति अज्ञात होने पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया गया है। व्युत्पत्ति के साथ प्रश्नवाचक चिह्न अथवा तारा, क्रम से, अनिश्चित व्युत्पत्ति अथवा व्युत्पत्ति-संबंधी कल्पित शब्द का द्योतक है।

प्रस्तुत कोष के प्रणयन में 'मानस' का गीता प्रेस का संस्करण, 'सतसई' का एकेडेमी द्वारा प्रकाशित डा० श्यामसुंदरदास के 'सतसई-सप्तक' का संस्करण तथा अन्य ग्रंथों के लिए नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी की 'तुलसी-ग्रंथावली' के संस्करण काम में लाए गए हैं।

यह अत्यंत संतोष का विषय है कि अब गोस्वामी तुलसीदास के समस्त ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दों का यह महत्त्वपूर्ण कोष हिंदुस्तानी एकेडेमी की रजत-जयंती के अवसर पर विशेष प्रकाशन के रूप में हिंदी संसार के समक्ष जा रहा है।

धीरेंद्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष
हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश

इलाहाबाद :
जनवरी, १९५४

संक्षेप-सूची

?	=संदिग्ध	ध्व०	=ध्वन्यात्मक
❀	=कल्पित शब्द	पा०	=पार्वतीमंगल
अनु०	=अनुकरणात्मक	प्र०	=रामाज्ञा-प्रश्न
अप०	=अपभ्रंश	प्रा०	=प्राकृत
अर०	=अरबी	फ़ा०	=फ़ारसी
अ०मा०	=अर्धमागधी	ब०	=बरवै रामायण
उ०	=उदाहरण	मं०	=मंगोल
क०	=कवितावली	मा०	=रामचरितमानस
कृ०	=कृष्ण-गीतावली	मु०	=मुहावरा
गी०	=गीतावली	रा०	=रामललानहछू
ग्री०	=ग्रीक	वि०	=विनयपत्रिका
छं०	=छंद	वै०	=वैराग्यसंदीपनी
जा०	=जानकीमंगल	श्लो०	=श्लोक
तु०	=तुलना कीजिए	स०	=तुलसी-सतसई
तुर०	=तुर्की	सो०	=सोरठा
दे०	=देखिए	ह०	=हनुमानबाहुक
दो०	=दोहा, दोहावली	हिं०	=हिंदी

संक्षेप-सूची

?	=संदिग्ध	ध्व०	=ध्वन्यात्मक
ॐ	=कल्पित शब्द	पा०	=पार्वतीमंगल
अनु०	=अनुकरणात्मक	प्र०	=रामाज्ञा-प्रश्न
अप०	=अपभ्रंश	प्रा०	=प्राकृत
अर०	=अरबी	फ़ा०	=फ़ारसी
अ०मा०	=अर्धमागधी	ब०	=बरवै रामायण
उ०	=उदाहरण	मं०	=मंगोल
क०	=कवितावली	मा०	=रामचरितमानस
कृ०	=कृष्ण-गीतावली	मु०	=मुहावरा
गी०	=गीतावली	रा०	=रामललानहछू
ग्री०	=ग्रीक	वि०	=विनयपत्रिका
छं०	=छंद	वै०	=वैराग्यसंदीपनी
जा०	=जानकीमंगल	श्लो०	=श्लोक
तु०	=तुलना कीजिए	स०	=तुलसी-सतसई
तुर०	=तुर्की	सो०	=सोरठा
दे०	=देखिए	ह०	=हनुमानबाहुक
दो०	=दोहा, दोहावली	हिं०	=हिंदी

तुलसी-शब्दसागर

अ

अंक-(सं०)-१ चिह्न, २. गिनती के १, २, ३ इत्यादि अंक, ३. गोद, ४. नाटक का एक अंश, ५. शरीर, ६. दुःख, ७. पाप, ८. दाग़, टीका, ६. लेख, १०. भाग्य, ११. बार, १२. नौ की संख्या। उ० १. भौंहैं बंक मयंक-अंक रुचि। (गी० ७।१७) २. अंक अगुन आखर सगुन समुझिय उभय प्रकार। (दो० २५२) ३. तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। (मा० २।१६४।२) अंके-गोद में। उ० यस्यांके च विभाति। (मा० २। श्लो०१)

अंकमाल-(सं०)-आलिंगन, भेंट, गले लगाना। मु० अंकमाल देत-भेटते, गले लगाते। उ० आजु जाये जानि सब अंकमाल देत हैं। (क० ५।२६)

अंका-दे० 'अंक'। उ० ६. तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। (मा० १।१२१।४)

अंकित-(सं०)-१. चिह्नित, २. मुद्रित, ३. परखा हुआ, ४. लिखित, ५. वर्णित, ६. चित्रित। उ० १. भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित। (वि० २४) ४. राम नाम अंकित अतिसुंदर। (मा० ५।१३।१) ६ रामायुध अंकित गृह। (मा० ५।५)

अंकुर-(सं०)-१. अँखुआ, कोपल, २. डाभ, कल्ला, ३. आँख, ४. कली, ५. रुधिर, ६ रोआँ, ७. पानी, ८ मांस के छोटे लाल-लाल दाने जो घाव भरते समय उत्पन्न होते हैं। ६. अँखुआ निकले हुए जौ। उ० १. पाइ कपट जलु अंकुर जामा। (मा० २।२३।३) २. कंदमूल अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ। (गी० ७।३३) ६ अच्छत अंकुर लोचन लाजा। (मा० १।२४६।२)

अंकुरे-अंकुर की भाँति उपजे हुए, अंकुरित। उ० मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे। (मा० ६।६६।६०) अंकुरेउ-अंकुरित हुआ, उदय हुआ। उ० उर अंकुरेउ गरब तरु भारी। (मा० १।१२६।२)

अंकुस-(सं० अंकुश)-अंकुश, हाथी को काबू में करने का एक दोमुँहा हथियार। उ० महामत्त गजराज कहुँ बसकर अंकुस खर्व। (मा० १।२५६)

अँकोर-(सं० अङ्कपालि)-१. घूस, रिशवत, २. गोद, छाती। उ० १. जनु सभीत दै अँकोर। (गी० ७।३)

अँखियनु-(सं० अक्षि)-आंखें, आंखों के। उ० चितवनि बसति कनखियनु अँखियन, बीच। (ब० ३०) अँखियाँ-आँखें। उ० तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै। (क० २।११)

अँग-दे० 'अंग' उ० २. पालइ पोसइ सकल अँग, (मा० २।३१५)

अंग-(सं०)-१. शरीर, २. अवयव, ३. भाग, अंश, ४. मित्र का संबोधन, ५. शास्त्र-विशेष, ६. एक देश का नाम, ७. प्रकार, ८. उपाय, ६. सहायक, १०. ओर, तरफ़, ११. स्वभाव, १२. प्यारा, १३. वेद के ६ अंग, १४. राज्य के ७ अंग, १५. योग के ८ अंग, १६. जन्मलग्न, १७. ध्रुव के वंश का एक राजा, १८ अंग-प्रत्यंग। उ० १. अंग अनंग देखि सत लाजे। (मा० ७।११।४) ७. राखै सरनागत सब अंग बल-बिहीन को। (वि० २७४) ८. दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ। (वि० ४१) ६. रउरे अंग जोगु जग को है। (मा० २।२८५।३) १८. महिष-मद भंग करि अंग तोरे। (वि० १५) मु० अंग लगाय-लिपटा कर। उ० अंग लगाय लिए बारे तें, (गी०२।८६) अंगन-अंगों, 'अंग' का बहुवचन। अंगनि-अंगों में। उ० बाल-बिभूषन-बसन मनोहर अंगनि बिरचि बनैहों। (गी० १।८)

अँगइ-(सं० अंग)-स्वीकार करके, अंगीकार करके, सहकर, सहन करके। उ० सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान। (दो० ४६६)

अंगकरयो-(सं० अंगीकार)-हृदय से लगाया, अपनाया। उ० जाको हरि दृढ़ करि अंगकरयो। (वि० २३२)

अंगद-(सं०)-१ बाहु पर पहिनने का एक गहना, बिजायठ, २. बालि नामक बन्दर का पुत्र जो राम की सेना में था। ३. लक्ष्मण के दो पुत्रों में से एक। उ० २. अंगद नाम बालि कर बेटा। (मा० ६।२१।२) अंगदहिं-अंगद को। उ० इहाँ राम अंगदहिं बोलावा। (मा० ६।३८।२)

अंगन-(सं० अंगण)-१. आँगन, २. स्थान। उ० २. संग्राम अंगन सुभट सोवहिं। (मा ६।८८ छंद)

अँगना-(सं० अंगण)-आँगन। उ० छगन मगन अँगना खेलिहौ मिलि। (गी० १।८)

अंगना-(सं०)-स्त्री। उ० अर्द्ध अंग अंगना अनंग को महनु है। (क० ७।१६०)

अँगनाई-(सं० अंगण)-आँगन, घर के भीतर का सहन। उ० बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। (मा० ७।७६।२)

अँगनैया-(सं० अंगण)-दे० 'अँगनाई'। उ० छबि छलकिहै भरि अँगनैया। (गी० १।६)

अँगरी-(सं० अंग+रक्ष)-कवच, अंग की रक्षा करनेवाली। उ० अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। (मा० २।१६१।३)

अँगवनिहारे-सहन करनेवाले। उ० सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। (मा० २।२५।२)

अँगहीन-दे० 'अंगहीन'। उ० १. दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ। (वि० ४१)

अंगहीन-(सं०)-१. असहाय, २. लुंज, जिसका कोई अंग नष्ट हो गया हो। ३. कामदेव।
अंगा-(सं० अंग)-१. अंग, २ अंगरखा, अचकन। उ० १. कीन्हों गरलसील जो अंगा। (वै० ४७)
अँगार-दे० 'अंगार'।
अंगार-(सं०)-दहकता कोयला, चिनगारी। उ० जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ। (मा० ५।१२)
अँगारा-दे० 'अंगारा'।
अंगारा-दे० 'अंगार'। उ० देखियत प्रगट गगन अंगारा। (मा० ५।१२।४)
अँगारू-दे० 'अंगार'। उ० पाके छत जनु लाग अँगारू। (मा० २।१६१।३)
अंगारू-दे० 'अंगार'।
अंगीकार-(सं०)-स्वीकार, ग्रहण। उ० किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को। (क० ७।१३)
अंगीकारा-दे० 'अंगीकार'। उ० करहु तासु अब अंगीकारा। (मा० १।८६।२)
अँगुरिन-(सं० अंगुलि)-१. उँगलियों से, २ उँगलियाँ। उ० १. अंगुरिन खंडि अकास। (ब० २८)
अँगुरियाँ-उँगलियाँ। उ० सिखवति चलन अँगुरियाँ लाए। (गी० १।२६) मु० अँगुरियाँ लाए-उँगलियाँ पकड़कर।
अँगुरी-उंगली।
अँगुलि-(सं०)-उँगली। उ० चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। (मा० १।११७।२)
अंगुली-उँगली। उ० सुभग अँगुष्ठ अंगुली अबिरल। (गी० ७।१७)
अंगुलित्रान-(सं० अंगुलित्राण)-गोह के चमड़े का बना हुआ एक दस्ताना, जिसे बाण चलाते समय उँगलियों को रगड़ से बचाने के लिए पहिनते हैं। उ० अंगुलित्रान कमान बान छबि। (गी० ७।१७)
अँगुष्ठ-(सं० अंगुष्ठ)-अंगूठा। उ० सुभग अँगुष्ठ अंगुली अबिरल। (गी० ७।१७)
अंघ्रि-(सं०)-१. पैर, २. वृक्ष की जड़। उ० १. भवदंघ्रि निरादर के फल ए। (मा० ७।१४।५)
अँचइ-(सं० आचमन) १. आचमन करके, पीकर के, २. भोजन के बाद हाथ मुँह धोकर के। उ० २. अँचइ पान सब काहूँ पाए। (मा० १।३२५।१) अँचइअ-आचमन कीजिए, पीजिए। उ० अँचइअ नाथ कहहिं मृदुबानी। (मा० २।११५।१) अँचई-१. पी गया, २. पीकर। उ० १. लाज अँचई घोरि। (वि० १५८) अँचवत-आचमन करते ही, पीते ही। उ० जो अँचवत नृप मातहिं तेई। (मा० २।२३१।४) अँचवहिं-आचमन करते हैं, पीते हैं। अँचवै-पीता है। उ० जो अँचवै जल स्वाति को। (दो० ३०६)
अंचल-(सं०)-१. साड़ी का छोर, आँचल २. सीमा के समीप के देश का भाग. ३. किनारा, तट। उ० १. अंचल बात बुझावहिं दीपा। (मा० ७।११८।४) मु० अंचल पसारि-(किसी बड़े या देवता से कुछ माँगते समय स्त्रियाँ अंचल फैलाती हैं) दीनता दिखा, विनती कर। विनय से माँग। उ० पुरनारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं। (मा० १।३११। छं०)
अँचवाइ-(सं० आचमन) आचमन करवा कर, हाथ धुलाकर। उ० अँचवाइ दीन्हें पान गवने बास जहँ जाको रह्यो। (मा० १।९९। छं०) अँचवायउ-आचमन करवाया। उ० पूजि कीन्ह मधुपर्क अमी अँचवायउ। (पा० १२५)
अंजन-(सं०)-१. आँखों में लगाने का काजल या सुरमा, २. रात, ३. स्याही, ४ माया, ५. एक पर्वत का नाम, ६. छिपकली, ७ लेप, ८. एक सर्प का नाम। उ० १ तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन जातक से। (क० १।१)
अंजनकेस-(सं० अंजनकेश) दीप, चिराग़, जिसका केश अंजन हो। उ० अंजनकेस-सिखा जुवती तहँ लोचन-सलभ पठावौं। (वि० १४२)
अंजना-(सं०)-१. कुंजर नामक बंदर की पुत्री और केशरी नामक बंदर की भार्या जिसके गर्भ से हनुमान उत्पन्न हुए थे। कहीं-कहीं इन्हें गौतम की पुत्री भी कहा गया है। २. आँख की पलक पर होनेवाली लाल फुंसी। ३. दो रंगों की छिपकली, ४. एक मोटा धान। उ० १. जयति लसदंजनादितिज। (वि० २६) अंजनादितिज-(सं० अंजना + अदिति + ज)-अंजनारूपी देव माता (अदिति) से जन्मे हुए, हनुमान। उ० जयति लसदंजनादितिज। (वि० २६)
अंजनी-(सं०) अंजना, हनुमान की माता। उ० जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत-विधु। (वि० २५)
अंजनीकुमार-(सं०)-अंजनी के पुत्र, हनुमान। उ० बिगरी सँवार अंजनीकुमार कीजै मोहि। (ह० १५
अंजलि-(सं०)-हाथ का संपुट, अंजुलि। उ० सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिएँ। (मा० १। ३२६। छं० १) अंजलिगत-हस्तगत, अंजलि में रखे हुए या प्राप्त हुए। उ० अंजलिगत सुभसुमन जिमि। (मा० १।३क)
अंजली-दे०-'अंजलि'।
अँजि-(सं० अंजन)-अंजन लगाकर, आँजकर। उ० जथा सुअंजन अँजि दृग। (मा० १।१)
अँजुलि-(सं० अंजलि)-हाथ का संपुट, अंजलि, अँजुरी।
अँजोर-(सं० उज्जवल)-प्रकाश।
अँजोरि-(सं० अंजलि)-१ खोज, निकाल, २. छीन, छीनकर। उ० १. पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि। (वि० १५८)
अँजोरि-(सं० उज्ज्वल)-प्रकाश कर।
अंजोरी-प्रकाश, उजाला। उ० रबि संमुख खद्योत अँजोरी। (मा० ३।११।१)
अंड-(सं०)-१. ब्रह्माण्ड, २. अंडा, ३. अंडकोश, ४. वीर्य, ५. कस्तूरी का नाफा, ६. पंच आवरण, ७. कामदेव, ८. मकानों के ऊपर के कलश। उ० १. अंड अनेक अमल जसु छावा। (मा० २।१५६।१)। अंडन्हि-अंडों का। उ० अंडन्हि कमल हृदय जेहि भाँती। (मा० २।७।४)
अंडकटाह-(सं०)-१. ब्रह्मांड, विश्व २. ब्रह्मांड का अर्ध-भाग। उ० १. एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंडकटाह अनेक। (मा० ७।८०ख)
अंडकोस-(सं० अंडकोश)-१. ब्रह्मांड, २. फोता, ३. सीमा। उ० १. अंडकोस समेत गिरि कानन। (मा० ५।२१।३)
अंडज-(सं०)-अंडे से उत्पन्न होनेवाले जीव, १. पक्षी, २.

मछली, ३. सर्प । उ० १. उदर माझ सुनु अंडजराया। (मा० ७।८०।२)
अंडजराया—(सं० अंडज + राजन्)—पक्षियों के राजा। गरुड़। उ० उदर माझ सुनु अंडजराया। (मा० ७।८०।२)
अंत:—(सं०)—१. अंतःकरण, मन, २. भीतर। उ० १. स्वांतःसुखाय तुलसीरघुनाथगाथा। (मा० १।१।श्लो०७)
अंत:करण—(सं०)—भीतरी इंद्रिय, जो दुःख, सुख, निश्चय, विकल्प आदि का अनुभव करती है। मन, चित्त।
अंत:करन—दे० 'अंतःकरण'।
अंत—(सं०)—१. समाप्ति, अवसान, २. सीमा, ३. मृत्यु, ४. परिणाम, ५. शेष, बाकी। उ० १. जो पै अलि! अंत इहै करिबे हो। (कृ० ३६) २. अंत नहीं तव चरित्र, (वि० ५०) अंतहु—अंत में, अंत में भी। उ० अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी। (मा० २।१८२।२)
अंतअगार—(सं० अंत + आगार) अगार = धाम। धाम का अंतिम अक्षर 'म'। उ० दूसर अंतअगार। (स० २३७)
अंतक—(सं०) १. काल, २. यम, ३. नाशकर्ता, ४. सन्निपात का एक भेद, ५. ईश्वर, ६. शिव। उ० १. अनंत भगवंत जगदंत-अंतक-त्रास-समन। (वि० ४६)
अंतकारी—(सं०)—अंत करनेवाला, संहारकारी, नाशकारी। उ० कलातीत कल्याण कल्पांतकारी। (मा० ७।१०८।छं०६)
अंतकाल—(सं०) मृत्यु, अंतिम समय।
अंतकृत—(सं०)—अंत करनेवाला, यमराज, धर्मराज। उ० भूमिजा-दुःख-संजात-रोषांतकृत जातनाजंतु-कृत-जातुधानी। (वि० २६)
अंतर—(सं०)—१. अलगाव, २. भेद, फ़र्क़, ३. भीतर, ४. बीच, ५. बीच की दूरी, ६. मन, ७. मद, ८. लुप्त, ९. ओट, आड़, १० छेद। उ० १. संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं। (वि० ५७) २. ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। (मा० ७।११५।६) ३. बसइ गरुड़ जाके उर अंतर। (मा० ७।१२०।१) ४. उभय अंतर एक नारि सोही। (गी० २।१६)
अंतरअयन—(सं०)—१. काशी का मध्य भाग, २. अंतरगृही, ३. तीर्थों की एक परिक्रमा विशेष, ४. एक देश का नाम। उ० १. अंतरअयन अयन भल, थन फल बच्छ बेद-बिस्वासी। (वि० २२)
अंतरगत—(सं० अंतर्गत)—१. हृदयस्थ, हृदय के भीतर, २. भीतर आया हुआ, ३. गुप्त। उ० १. सगुन रूप लीला-बिलास-सुख सुमिरन करति रहति अंतरगत। (गी० ५।६)
अंतरगति—(सं० अंतर्गति)—१. मन या हृदय की गति, २. अंतर्वासना। उ० १. यह बिचारि अंतरगति हारति। (गी० ५।१६)
अंतरजामिहुँ—(सं० अंतर्यामी) १ अंतःकरण में स्थित होकर प्रेरणा करनेवाले भी, २ अंतःकरण की बात जाननेवाले भी। उ० १. अंतरजामिहुँ ते बड़ बाहरजामि हैं। (क० ७।१२६) अंतरजामी—हृदय की बात जाननेवाला। उ० मैं अपराध-सिंधु करुणाकर जानत अंतरजामी। (वि० ११७)
अंतरदीठि—(सं० अंतर्दृष्टि)—अंतर्दृष्टि, विवेक।
अंतरधान—(सं० अंतर्द्धान)—छिप जाना, गुप्त हो जाना। उ० बहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान। (मा० १।१३८)
अंतरधाना—दे० 'अंतरधान'। उ० तुरत भयउ खल अंतरधाना। (मा० ६।७६।६)
अंतरबल—(सं० अंतर्बल)—भीतरी बल, हिम्मत। उ० गर्जा अति अंतरबल थाका। (मा० ६।६२।१)
अंतरसाखी—(सं० अंतरसाक्षी)—मन या हृदय का साक्षी, भगवान। उ० प्रगट कीन्हि चह अंतरसाखी। (मा० ६।१०८।७)
अंतरसाल—रसाल = आम। आम का अंतिम अक्षर 'म'। उ० बरन त्रुतिय नासक निरय तुलसी अंतरसाल। (स० २८५)
अंतरहित—(सं० अंतर्हित) दृष्टि से ओझल, गुप्त। उ० कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ। (मा० १।१३३।१)
अंतरात्मा—(सं०)—जीवात्मा, जीव, आत्मा।
अंतरिक्ष—(सं०)—१. पृथ्वी और सूर्यादि लोकों के बीच का स्थान, दो ग्रहों या तारों के बीच का स्थान, २. आकाश, ३. स्वर्ग, ४. तीन प्रकार के केतुओं में से एक, ५. अंतर्द्धान, ग़ायब।
अंतरु—दे० 'अंतर'। उ० २. ईस अनीसहि अंतरु तैसें। (मा० १।७०।१)
अंतर्जामिहि—अंतर्यामी को, भगवान को। उ० तुलसी क्यों सुख पाइए अंतर्जामिहि धृति? (दो० ४११)
अंता—अंत, समाप्ति। उ० सतसंगति संसृति कर अंता। (मा० ७।४५।३)
अँतावरि—(सं० अंत्र + अवली) अँतड़ी। उ० धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं। (मा० ६।८१।छं० २)
अँतावरीं—आँतें, अंतड़ियाँ। उ० अंतावरीं गहि उड़त गीध, (मा० ३।२०। छं० २)
अंतिम—(सं०)—आख़ीरी, अंत का, अंतवाला।
अँथइहि—(सं० अस्त)—अस्त होगा, छिपेगा। उ० उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना। (मा० २।२०६।१) अँथयउ—१. अस्त हो चला, २ अस्त हो गया। उ० १. रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना। (मा० २।१५४।२) २. अँथयउ आजु भानुकुल भानू। (मा० २।१५६।३)
अँदेस—दे० 'अंदेसा'। उ० कमठपीठ धनु सजनी कठिन अँदेस। (ब० १४)
अँदेसा—दे० 'अंदेसा'। उ० असमंजस अस मोहि अँदेसा। (मा० १।१४।५)
अंदेसा—(फा० अंदेशः)—संदेह, खटका, सोच, डर।
अंध—(सं०)—१. अंधकार, २. अज्ञानी, ३. अंधा, नेत्रहीन, ४. जल, ५ उल्लू, ६. चमगादड़। उ० १. मोह अंध रबि बचन बहावै। (वै० २२) २. अंध मैं मंद ब्यालाद गामी। (वि० ५६) ३. अंध कहे दुख पाइहै, डिठियारो केहि डीठि? (दो०४८१) अंधउ—अंधा भी। उ० अंधउ बधिर न अस कहहिं। (मा० ६।२१) अंधहिं—अंधे को। उ० अंधहिं लोचन लाभु सुहावा। (मा०१।३५०।४)
अंधक—(सं०)—१. कश्यप और दिति का पुत्र, एक दैत्य जिसके सहस्र सिर थे। यह मद के कारण अंधों की भाँति चलने से अंधक कहलाता था। स्वर्ग से पारिजात लाते समय यह शिव द्वारा मारा गया। इसीकारण शिव

अंधकरिपु कहे जाते हैं। २. एक यादव, ३. अंधा, ४. महाताप नामक एक ऋषि। उ० १. त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्तगज-धर्म-धर, अंधकोरग-ग्रसन-पन्नगारी। (वि०४६)
अंधकार-(सं०)-१. अँधेरा, २. अज्ञान, ३. उदासी। उ० १. मोहनिसि-निबिड़ यमनांधकारं। (वि० ५२)
अंधकारि-(सं०)-अंधक का शत्रु, अंधक को मारनेवाला, शिव।
अंधकारु-दे० 'अंधकार'। उ० १. अंधकारु बरु रबिहि नसावै। (मा० ७।१२२।६)
अंधकूप-(सं०)-१. अंधा कूआँ, जिसका जल सूख गया हो। २. अँधेरा, ३. एक नरक।
अंधतापस-दे. 'अँधमुनि'।
अंधमुनि-श्रवण कुमार के पिता। एक दिन महाराज दशरथ सरयू के तट पर किसी जंगल में शिकार खेलने गये थे। समीप ही श्रवणकुमार अपने अंधे माता-पिता को रखकर पानी लाने गया था। घड़ा डुबोने की आवाज़ सुनकर दशरथ को किसी हिंस्र जन्तु के होने का संदेह हुआ और उन्होंने वाण चला दिया। श्रवणकुमार के कराहने पर दशरथ को तथ्य का पता चला और वे उसे वहीं मरा छोड़कर उसके माता-पिता को पानी पिलाने चले। उन लोगों से इन्हें पूरी कहानी बतलानी पड़ी, जिसके फल-स्वरूप पुत्र-वियोग में दोनों ने बिना जल ग्रहण किए शरीर छोड़ दिया। श्रवणकुमार के पिता ने मरते समय दशरथ को शाप दिया कि तुम भी पुत्र-वियोग में मरोगे। उ० बिधि-बस बन मृगया फिरत दीन्ह अंधमुनि साप। (प्र० १।२।३)
अँधिआर-दे 'अंधकार'। अँधिआरें-अंधेरे में, अँधेरा होने पर। उ० अवध प्रबेसु कीन्ह अंधिआरें। (मा० २।१४७।३)
अँधिआरी-(सं० अंधकार)-अँधकारमयी, अँधेरी। उ० मानहु कालराति अँधिआरी। (मा० २।८३।३)
अँधियार-(सं० अंधकार)-अंधकार, अंधेरा। उ० असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार। (ब० ३६)
अँधियारो-अंधेरा। उ० अँधियारो मेरी बार क्यों त्रिभुवन-उजियारे। (वि० ३३)
अंधेर-(सं० अंधकार)-१ अनीति, २. उपद्रव, ३. गड़बड़।
अंब-(सं०)-माता, अंबा। उ० कबहुक अंब अवसर पाइ। (वि० ४१) अंबनि-१. माताओं को, २. माताएँ। उ० १. देत परम सुख पितु अरु अंबनि। (गी० १।२८)
अंबक(१)-(सं०)-१ आँख, २. ताँबा, ३. पिता। उ० १. नव अंबुज अंबक छबि नीकी। (मा० १। १४७।२)
अंबक (२)-(सं० अंब + क)-माता का।
अंबर-(सं०)-१. कपड़ा, २ आकाश, ३. एक कपास, ४. अभ्रक, ५ बादल। उ० १. बरषि दिये मनि अंबर सबहीं। (मा० ६।११७।३)
अंबरीष-(सं०) १. एक सूर्यवंशी राजा। इक्ष्वाकु से २८ वीं पीढ़ी में नाभाग के पुत्र राजा अंबरीष बहुत बड़े भक्त थे। एक बार द्वादशी के दिन वे पारण करने जा ही रहे थे कि दुर्वासा अपनी शिष्यमंडली के साथ आ पहुँचे। राजा ने भोजन के लिए उन्हें निमंत्रित किया पर वे संध्या-बंदन के लिए चले गये और वहाँ जानकर अधिक देर कर दी। इधर द्वादशी केवल एक पल बाकी रह गई। द्वादशी में पारण न करने से दोष लगता है इस कारण राजा घबराए और अंत में विद्वान् ब्राह्मणों के परामर्श से भगवान् का चरणामृत ग्रहण किया। थोड़ी देर में दुर्वासा आये और उस अवज्ञा के लिए बहुत बिगड़े। उन्होंने अपनी जटा से एक बाल तोड़कर पृथ्वी पर पटक दिया जो राक्षसी बनकर राजा के विनाश के लिए दौड़ी। उसी समय विष्णु के सुदर्शन चक्र ने प्रकट होकर, उस कृत्या नाम की राक्षसी को मार राजा की रक्षा की और कुपित होकर ऋषि के पीछे दौड़ा। ऋषि दुर्वासा क्रम से भागते हुए ब्रह्मा, शिव और विष्णु के पास अपनी रक्षा के लिए गये, पर सभी ने अपनी असमर्थता प्रकट की। अंत में उन्हें अंबरीष की शरण में आना पड़ा और अंबरीष की प्रार्थना पर चक्र शांत होकर लौट गया। अंबरीष अब तक प्रतीक्षा कर रहे थे इस कारण दुर्वासा ने भोजन स्वीकार किया। और फिर उनकी प्रशंसा करते हुए अपने आश्रम पर लौट गये। २. भड़भूँजे का मिट्टी का बर्तन जिसमें वह अन्न भूनता है। ३. विष्णु, ४. शिव, ५. सूर्य, ६. ११ वर्ष से छोटा बालक, ७. पश्चाताप, ८. लड़ाई। उ० १ सुधि करि अंबरीष दुरबासा। (मा० २।२६५।२)
अंबा-(सं०)-१. माता, २. दुर्गा, ३ पार्वती, ४ आम्रफल, ५. काशिराज इंद्रद्युम्न की सबसे बड़ी लड़की जो विचित्र-वीर्य की विवाहिता बनाई गई। उ० १. जगदंबा जहँ अवतरी। (मा० १।६४)
अँबारी-(अर० अभारी)-१. हाथी की पीठ पर रखने का हौदा, २. छज्जा। अँबारीं-हौदे। उ० १. कलित करिबरन्हि परीं अबारीं। (मा० १।३००।१)
अंबिका-(सं०)-१. पार्वती, २ दुर्गा, ३. माता, ४. धृत-राष्ट्र की माता। उ० १. बासी नरनारि ईस अंबिका सरूप हैं। (क० ७।१७१) अंबिके-(सं०)-हे माता, हे पार्वती ! उ० १.छमुख-हेरंब अबासि जगदंबिके। (वि० १५)
अंबिकापति-(सं०) शिव, महादेव। उ० अंबिकापतिमभीष्ट-सिद्धिदम्। (मा० ७।१।श्लो०३)
अंबु-(सं०)-१. जल, २. सुगंधबाला, ३. जन्मकुंडली का चौथा घर, ४ चार की संख्या। उ० १. अंबु तू हौं अंबु-चर, अंब तू हौं डिंभ। (ह० ३४) अंबुचर-पानी का जीव, जलचर। उ० अंबु तू हौं अंबुचर। (ह० ३४)
अंबुज-(सं०)-१. कमल, २. बेंत, ३ ब्रह्मा। उ० १. नव अंबुज अंबक छबि नीकी। (मा० १।१४७।२)
अंबुद-(सं०)-१. बादल, २. नागरमोथा। उ० १. बिधि महेस मुनि सुर सिहात सब, देखत अंबुद ओट दिये। (गी० १।७)
अंबुधर-(सं०)-बादल, जो जल धारण करे। उ० नव अंबु-धर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई। (मा० ७।१२। छं० २)
अंबुधि-(सं०)-समुद्र, सागर। उ० नदी उमगि अंबुधि कहुँ धाई। (मा० १।८५।१)
अंबुनाथ-(सं०)-समुद्र। उ०भवाम्बुनाथ मंदरं। (मा० ३। ४। श्लो० २)
अंबुनिधि-(सं०)-समुद्र। उ० कृपा अंबुनिधि अंतरजामी। (मा० २।२६७।१)

अंबुपति-(सं०)-१. वरुण, २. समुद्र। उ० १. आनन अनल अंबुपति जीहा। (मा० ६।१५।३)
अंभोज-(सं०)-१. कमल, २. चंद्रमा, ३. सारस पक्षी, ४. शंख, ५. कपूर। उ० १. अरुन अंभोज लोचन बिसालं। (वि० ५१)
अंभोद-(सं०)-बादल, मेघ। उ० अचल अनिकेत अविरल अनामय अनारंभ अंभोदनादघ्न-बंधो। (वि० ५६) अंभोदनाद-(अभोद+नाद)-मेघनाद, रावण का पुत्र, बादल की भाँति गरजनेवाला। उ० अनारंभ अंभोदनादघ्न-बंधो। (वि० ५६) अंभोदनादघ्न-(सं० अभोद+नाद+घ्न)-लक्ष्मण, मेघ की तरह गरजनेवाले मेघनाद को मारनेवाले। उ० अनारंभ अंभोदनादघ्न बंधो। (वि० ५६)
अंभोधर-(सं०)-बादल, मेघ।
अंभोधि-(सं०)-समुद्र। उ० जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत-विधु, (वि० २५) अभोधेः-(सं०)-समुद्र का। उ० भवांभोधेस्तितीर्पावतां। (मा० १।१। श्लो०६)
अंभोरुह-(सं०) कमल, जल से उत्पन्न। उ० बदन इंदु अंभोरुह लोचन, (गी० १।५२)
अँवराई-(सं० आम्रराजि)-आम की बगीचियाँ। उ० संत सभा चहुँ दिसि अँवराई। (मा० १।३७।६)
अंस-(सं० अंश)-१. अंश, भाग, २. स्कंध, ३. कला, ४. चौथा भाग। उ० १. उपजहिं जासु अंस तें नाना। (मा० १।१४४।३) अंसनि-कंधों पर। उ० अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर, तून कटि, मुनि पट लूटक पटनि के। (क० २।१६) अंसन्ह-अंश का बहुबचन, अंशों, कलाओं, भागों। उ० अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। (मा०१।१८७।१)
अंसु-(सं० अंशु)-किरण, प्रभा। उ० लेत अवनि रवि अंसु कहँ देत अमिय अप-सार। (स० ४५३)
अँसुअन-(सं० अश्रु)-१. आँसुओं से, २. आँसुओं को। उ० १. अँसुवन पथिक निरास तें तट भुइँ सजल सरूप। (स० ६२४)
अंसुक-(सं० अंशुक)-१ रेशमी वस्त्र, २. महीन, कपड़ा ३. डुपट्टा। उ० १. किंसुक बरन सुअंसुक सुषमा सुखनि समेत। (गी० ७।२१)
अइहहिं-आएँगे। उ० कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा। (मा० ५।१६।२)
अउर-(सं० अपर)-और, अन्य। उ० नहिं जानउँ कछु अउर कबारू। (मा० २।१००।४) अउरउ-और भी। उ० अउरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन। (मा० ७।११६ ख)
अकंटक-(सं०)-निर्भय, निर्विघ्न, निष्कंटक। उ० जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई। (मा० १।८७। छं० १)
अकंपन-(स०) १. रावण का एक सेनापति। यह रावण का अनुचर था। खर-दूषण के मारे जाने का समाचार रावण को सर्वप्रथम इसी ने सुनाया था। लंका के युद्ध में यह और अतिकाय दो प्रधान सेनापति थे। उसी युद्ध में हनुमान के हाथ से यह मारा गया। २. दृढ़। उ० १. अनिप अकंपन अरु अतिकाया। (मा० ६।४६।५)
अक-(सं०) १. दुःख, २. पाप। उ० २. बरबस करत बिरोध हठि होन चहत अकहीन। (स० ५८८)
अकथ-(सं०)-जो कहा न जा सके, अवर्णनीय। उ० सब बिधि समर्थ महिमा अकथ तुलसिदास संसयसमन। (क० ७।१५१)
अकथनीय-(सं०)-जिसका वर्णन न हो सके। उ० अकथनीय दारुन दुखु भारी। (मा० १।६०।१)
अकनि-(सं० आकर्ण)-सुनकर। उ० पुरजन आवत अकनि बराता। (मा० १।३४४।२)
अकरुन-(सं० अकरुण)-दयारहित, निर्दय। उ० खर कुठार मैं अकरुन कोही। (मा०१।२७५।३)
अकरा-(सं० अक्रय्य)-महँगा, न लेने योग्य। अकरे-न मोल लेने योग्य, महँगे। उ० नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढ़े। (क० ७।१२७)
अकलंकता-(सं०)-निर्दोषता, निष्कलंकता। उ० अकलंकता कि कामी लहई। (मा०१।२६७।२)
अकलंका-(सं० अकलंक)-कलंकरहित, निर्दोष। उ० सबहि भाँति संकरु अकलंका। (मा० १।७२।२)
अकल-(सं०)-१. अवयव रहित, २. कलारहित, ३. संपूर्ण, ४. जिसका खंड न हो, ५. कल्पना में न आनेवाला। उ० १. व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुण नाम न रूप। (मा० १।२०५)
अकस-(अर०)-१. बैर, २. बुरी उत्तेजना। उ०१. एते मान अकस कीबे को आपु आहि को? (क० ७।१००) २. बंदि बोले बिरद अकस उपजाइ कै। (गी० १।८२)
अकसर-(सं० एक+सर)-अकेला, एकाकी। उ० कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात। (मा० ३।२४)
अकसर-(अर०)-बहुधा, अधिकतर, प्रायः।
अकाज-(सं० अकार्य)-१. बुराई, २. हर्ज, ३. विघ्न, ४. खोटा काम, ५. निष्प्रयोजन। उ० १. मनहूँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है। (क० ५।२२) मु०अकाल काज-बनाव-बिगाड़। उ० तुलसी अकाज काज रामही के रीझे खीझे। (वि० ७६)
अकाजा-दे० 'अकाज'। उ० २. जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा। (मा० १।४५।४)
अकाजू-दे० 'अकाज'। उ० २. जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। (मा० १।१६७।३)
अकाजेउ-१. मरे हैं, २. अकाज हुआ है, हर्ज हुआ है। उ० १. मानहुँ राजु अकाजेउ आजू। (मा० २।२४७।३)
अकाथ-(सं० अकार्यार्थ) अकारथ, व्यर्थ, वृथा। उ० भयो सुगम तो को अमर-अगम तनु समुझि धौं कत खोवत अकाथ। (वि० ८४)
अकाम-(सं०)-१. निष्काम, कामनारहित, २. व्यर्थ। उ० १. अवटै अनल अकाम बनाई। (मा० ७।११७।७)
अकामा-दे० 'अकाम'। उ० १. षट बिकार जित अनघ अकामा। (मा० ३।४५।४)
अकामिनां-(सं०) किसी बात की इच्छा न रखनेवालों को। उ० भजामि ते पदांबुजं अकामिनां स्वधामदं। (मा० ३। ४। छं० १)।
अकारन-(सं० अकारण) बिना कारण के। उ० काहि अनत

पर प्रीति अकारन ? (वि० २०६) अकारनहीं–बिना कारण के ही। उ० अभिमान बिरोध अकारनहीं। (मा० ७।१०२।२)

अकाल–(सं०)–१. बे समय, बे मौसिम, २. दुर्भिक्ष, ३. कमी। उ० १. जिमि अकाल के कुसुम भवानी। (मा० ३।२४।४) मु० अकाल के कुसुम–बिना ऋतु के फूल। ऐसे फूल अशुभ समझे जाते हैं।

अकास–(सं० आकाश)–आकाश, नभ, गगन, शून्य। उ० तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ, फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो। (वि० २४५)

अकासवानी–(सं० आकाशवाणी)–देव वाणी, जो वाणी आकाश से सुनाई पड़े। उ० भै अकासबानी तेहि काला। (मा० १।१७३।३)

अकासा–दे० 'अकास'। उ० मै बहोरि बर गिरा अकासा। (मा० १।१७४।२)

अकिंचन–(सं०) १. अहंकार, ममता और मान इत्यादि से रहित, २. सर्वत्यागी, ३. निर्धन, ४. आवश्यकता से अधिक धन न संग्रह करनेवाला। उ० १. परम अकिंचन प्रिय हरि केरें। (मा० १।१६१।२) २. अचल अकिंचन सुचि सुखधामा। (मा० ३।४५।४)

अकुंठ–(सं०) १. जो कुंठित न हो, तीव्र, तेज़, पैना, २. श्रेष्ठ, उत्तम। उ० १. मति अकुंठ हरि भगति अखंडा। (मा० ७।६३।१)

अकुंठा–दे० 'अकुंठ'। उ० २. लाभकि रघुपति भगति अकुंठा। (मा० ६।२६।४)

अकुल–(सं०)–परिवार रहित, कुलहीन। उ० अकुल अगेह दिगंबर ब्याली। (मा० १।७९।३)

अकुलाइ–(सं० आकुल)–व्याकुल होकर। उ० समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ। (मा० २।५७) अकुलाई–व्याकुल होकर, आकुल होकर। उ० मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई। (मा० २।२७६।३) अकुलाति–आकुल होती हैं, घबड़ाती हैं। अकुलाती–आकुल होती है, व्याकुल होती है। अकुलान–अकुलाया, व्याकुल हुआ। उ० सर पैठत कपिपद गहा, मकरी तब अकुलान। (मा० ६।५७) अकुलाना–१. व्याकुल हुआ, घबराया, २. ऊबा, ३. आवेग में आया। उ० १. कहि न सकइ कछु अति अकुलाना। (मा० २।१००।२) अकुलानी–व्याकुल हो उठीं, व्याकुल हुईं। उ० अति सुकुमारि देखि अकुलानी। (मा० २।५८।१) अकुलाने–१. मग्न हुए, २. व्याकुल हुए, ३. क्षुब्ध। उ० १. जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं। (गी० १।५६) अकुलाहीं–व्याकुल होते हैं। छटपटाते हैं। उ० पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। (मा० १।१३५।१)

अकुलीन–(सं०) नीच कुल का, बुरे कुल का। उ० कुल अकुलीन को सुन्यो है, बेद साखि है। (वि० ६६)

अकूपार–(सं०)–१. समुद्र, २. बड़ा कछुआ। वह कच्छप जो पृथ्वी के नीचे माना गया है। ३. पत्थर या चट्टान।

अकृपाल–दे० 'अकृपालु'।

अकृपालु–(सं०)–निर्दय, कृपा रहित। उ० प्रभु अकृपालु, कृपालु अलायक जहँ-तहँ चितहिं डोलावों। (वि० २३२)

अकेल–(सं० एक+हि० ला)–अकेला, एकाकी। उ० अति अकेल बन बिपुल कलेसू। (मा० १।१५७।३) अकेलि–अकेली, एकाकी, उ० बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू। (मा० १।५३।४) अकेले–एकाकी। अकेला। उ० को तुम्ह कस बन फिरहु अकेले। (मा० १।१५६।२)

अकोबिद–(सं० अकोविद)–मूर्ख, अज्ञानी। उ० अग्य अकोबिद अंध अभागी। (मा० १।११५।१)

अक्रूर–(सं०)–१. दयालु, सरल, २. एक यादव जो श्रीकृष्ण के चचा लगते थे।

अक्ष–(सं०)–१. रावण का पुत्र अक्षकुमार जिसे हनुमान ने लंका का प्रमोदबन उजाड़ते समय मारा था। २. आँख, ३. गाड़ी, ४. व्यवहार, ५. इंद्रिय, ६. आत्मा, ७. चौसर, पासों का खेल। उ० १. रूख निपातत्त, खात फल, रक्षक अक्ष निपाति। (प्र० ५।५।१)

अक्षत–(सं०)–१. चावल, २. अखण्डित, ३. जिसमें क्षत या घाव न किया गया हो।

अक्षय–(सं०)–जिसका क्षय या नाश न हो। कल्प के अंत तक रहनेवाला। उ० अक्षय अकलंक सरद-चंद-चंद्रिनी। (गी० २।४३)

अक्षर–(सं०)–१. नित्य, अविनाशी, ब्रह्म, २. अकारादि वर्ण।

अक्षि–(सं०)–आँख।

अखंड–(सं०)–१. संपूर्ण, २. लगातार, ३. बेरोक। उ० १. अगुन अखंड अनंत अनादी। (मा० १।१४४।२)

अखंडल–(सं० अखंड)–१. अखंड, पूरा, २. इंद्र। उ० १. पुर खरभर, उर हरषेउ अचलु अखंडल। (पा० ११४)

अखंडा–दे० 'अखंड'। उ० १. सोहमस्मि इतिवृत्ति अखंडा। (मा० ७।११८।१)

अखंडित–(सं०)–जिसके टुकड़े न हुए हों। उ० सोइ गुन-गृह बिग्यान अखंडित। (मा० ७।४९।४)

अखत–(सं० अक्षत)–चावल, पूजा के लिए उपयुक्त चावल जो टूटा नहीं रहता।

अखय–(सं० अक्षय) अक्षय, जिसका नाश न हो। उ० परसि अखय बटु हरषहिं गाता। (मा० १।४४।३) अखय-बटु–(सं० अक्षयवट)–वह बरगद का पेड़ जिसका नाश न हो। प्रयाग का प्रसिद्ध वट वृक्ष। उ० छुअ अखयबटु मुनि मनु मोहा। (मा० २।१०५।४)

अखारा–(सं० अक्षवाट)–१. नाचने-गानेवालों की मंडली, २. मल्लयुद्ध के लिए बना स्थान, ३. साधुओं का अड्डा, ४. रंगभूमि, ५. आँगन। उ० १. अति बिचित्र तह होइ अखारा। (मा० ६।१०।४) अखारेन्ह–अखाड़ों में, मल्लशालाओं में। उ० नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं। (मा० ५।३। छं०२) अखारो–दे० 'अखारा'।

अखिल–(सं०)–१. संपूर्ण, बिलकुल, पूरा, २. अखंड, सर्वांगपूर्ण। उ० १. अनरथ असगुन अघ असुभ अनभल अखिल अकाज। (प्र० ३।१।४) २. सुखद नर्मद वरद बिरज अनवद्य अखिल, बिपिन-आनंद-वीथिन-विहारी। (वि० ४६) अखिलविग्रह–(सं०)–समस्त ब्रह्मांड जिसका शरीर हो। उ० अखिलविग्रह, उग्ररूप शिव भूपसुर, (वि० १०) अखिलेस्वर–(सं० अखिलेश्वर)–समस्त संसार के ईश्वर। उ० पूजे रिपि अखिलेस्वर जानी। (मा० १।४८।१)

अखेटकी–(सं० आखेटक)–शिकारी। उ० अटत गहन गन अहन अखेटकी। (क० ७।६६)

अग–(सं०)–क. न चलनेवाला, १. पहाड़, २. पेड़। ख. टेढ़ा चलनेवाला, ३. सर्प, ४. सूर्य। उ० १. गये पूरि सरधूरि, भूरि भय अग थल जलधि समान। (गी० ५।२२) अगजग–जड़ और चेतन, चराचर। उ० अगजग जीव नाग नर देवा। (मा० ७।६४।४) अगजगनाथ–चराचर के स्वामी, भगवान। उ० अगजगनाथ अतुल बल जानहु। (मा० ६।३६।४) अगजगपालिके–हे स्थावर-जंगम को पालनेवाली देवी पार्वती, हे पार्वती। उ० रचत बिरंचि, हरि पालत, हरतहर, तेरे ही प्रसाद जग अगजगपालिके। (क० ७।१७३) अगजगरूप–जड़ चैतन्यमय, सर्वव्यापी परमात्मा। उ० नयन निरखि कृपासमुद्र हरि अगजगरूप भूप सीतावरु। (वि० २०५)

अगणित–(सं०) जिसकी गणना न हो सके, अपार। उ० कंदर्प-अगणित-अमित छबि, नवनील-नीरज-सुंदरं। (वि० ४५)

अगति–(सं०)–दुर्गति, बुरी दशा। उ० ऋधि, सिधि, बिधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति। (गी० २।८२)

अगनित–दे० 'अगणित'। उ० लावन्य-वपुष अगनित-अनंग। (वि० ६४)

अगनी–(सं० अग्नि)–आग।

अगनी–(सं० अगणित)–दे० 'अगणित'।

अगम–(सं०)–१. जहाँ कोई जा न सके, २. न जानने योग्य, दुर्बोध। ३. कठिन, विकट, ४. दुर्लभ, अलभ्य, ५. अपार, बहुत, ६. अथाह, गहरा। उ० १. एक अङ्ग मग अगम गवन कर, बिलमु न छिन-छिन छाहें। (वि० ६५) २. कबिकुल अगम भरतगुन गाथा। (मा० २।२३३।१) ३. तुलसी सहेस को प्रभाव भाव ही सुगम, निगम अगम हूँ को जानिबो गहनु है। (क० ७।१६०) ४. अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहिं दियो। (वि० १३५) अगमैं–दे० 'अगम'। उ० ५. ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमैं। (क० ७।७६)

अगमनो–(सं० अग्रवान्)–आगे करके। उ० रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं। (गी०५।५१)

अगमु–दे० 'अगम'। उ० ३. अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें। (मा० १।३४३।२)

अगम्य–(सं०)–दुर्गम, न जाने योग्य, अवघट।

अगर–(सं० अगरु)–१. एक प्रकार की सुगंधित लकड़ी। २. एक पेड़ का नाम जिसकी लकड़ी सुगंधित होती है। ३. उस लकड़ी का चूर्ण। उ० ३. कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर। (गी० १।२)

अगरज–(सं० अग्रज)–१. जो पहिले जन्मा हो, अग्रज, २. नायक, नेता, ३. ब्राह्मण। उ० १. ताहीं तें अगरज भएउ सब बिधि तेहि प्रचार। (स० ५३५)

अगरु–(सं०)–दे० 'अगर' उ० अगरु प्रसंग सुगंध बसाई। (मा० १।१०।५)

अगवान–(सं० अग्र + वान)–स्वागत के लिए नियुक्त व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह, अगवानी करनेवाला या करनेवाले। उ० सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान। (मा० १।३०४)

अगवाना–अगवानी करनेवाले। उ० चले लेन सादर अगवाना। (मा० १।६५।१)

अगवानी–स्वागत, अभ्यर्थना, आगे बढ़कर लेना। उ० नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए। (जा०१३५)

अगस्ति–(सं० अगस्त्य)–१. अगस्त्य ऋषि, २. एक तारा जो भादों में सिंह के सूर्य के १७ अंश पर उदय होता है। इसका रंग पीला होता है। ३. एक पेड़। उ० १. सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। (मा० ३।१२।५) २. उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। (मा० ४।१६।२)

अगस्त्य–(सं०) एक ऋषि। मित्रावरुण एक बार उर्वशी को देखकर काम-पीड़ित हो गए। उन्हें वीर्यपात हुआ जिसे घड़े में रखा गया। इसी घड़े से अगस्त्य ऋषि का जन्म हुआ इसी कारण कुंभज, घटयोनी आदि भी इनके नाम हैं। एक बार विंध्याचल को इस बात की ईर्ष्या हुई कि सुमेरु की प्रदक्षिणा सभी करते हैं और उसकी कोई नहीं। वह रुष्ट होकर इतना बढ़ा कि सूर्य का मार्ग बंद हो गया और अँधेरा फैल गया। देवताओं की प्रार्थना पर अगस्त्य ऋषि उसके पास गए। विंध्य शाप के डर से इनके चरणों में गिर गया और योग्य सेवा के लिए प्रार्थना की। अगस्त्य यह कहकर कि जब तक मैं न आऊँ इसी प्रकार रहो उज्जैन की ओर चले गए और फिर न लौटे। तब से विंध्य उसी प्रकार पड़ा है। एक बार अगस्त्य समुद्र के किनारे पूजा कर रहे थे। समुद्र इनकी कुछ सामग्री बहा ले गया। इस पर रुष्ट होकर ऋषि उसे पी गए। फिर जब देवताओं ने प्रार्थना की तो लघुशंका के द्वारा समुद्र को अपने उदर से बाहर किया। इसी कारण समुद्र का जल नमकीन है। कई बार इन्होंने ऋषियों की राक्षसों से रक्षा की। अगस्त्य अपने लोक-कल्याणकारी चरित्र के लिए प्रसिद्ध हैं।

अगह–(सं० अग्राह्य)–जो गहने योग्य न हो, जो पकड़ा न जा सके। उ० नृपगति अगह, गिरा न जाति गही है। (गी० १।८५)

अगहु–दे० 'अगह'। उ० सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ। (मा० २।४७।४)

अगहुँड़–(सं० अग्र + हिं० हुड़)–१. अगुआ, आगे चलनेवाला, २. आगे, आगे की ओर। उ० १. मन अगहुँड़ तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर। (गी० २।६६) २. भय बस अगहुँड़ परइ न पाऊ। (मा० २।२५।१)

अगाऊ–(सं० अग्र + हिं० आऊ)–आगे, आगे ही। उ० यह तो मोहिं खिझाइ कोटि बिधि, उलटि बिबादन आइ अगाऊ। (कृ० १२)

अगाध–(सं०)–१. अथाह, २. बहुत, ३. गंभीर। उ० १. ऐसेउ अगाध बोध रावरे सनेह-बस। (गी० १।८५)

अगाधनि–अगाध का बहुवचन। उ० २. व्याध को साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि मैं ही जनाई। (क०७।६३)

अगाधा–दे० 'अगाध'। उ० १. बरनब सोइ बर बारि अगाधा। (मा० १।३७।१)

अगाधु–दे० 'अगाध'। उ० १. तुलसी उतरि जाहु भव उदधि अगाधु। (ब० ६१)

अगाधू–दे० 'अगाध'। उ० २. बेद मध्य गुन बिदित अगाधू। (वै० २२)

अगार-(सं० आगार)-१. आगार, घर, धाम, २. ढेर, राशि, ३. अगाड़ी, ४. प्रथम। उ० १. नगर नारि भोजन सचिव सेवक सखा अगार। (दो० ४७५)
अगिन-(सं० अग्नि)-आग।
अगिनि-(सं० अग्नि)-आग। उ० अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ। (जा० १६१) अगिनिसमाऊ-[सं० अग्नि + सामग्री (सं०) या सामान (फा०)] अग्निहोत्र की सारी सामग्री। उ० अरुंधती अरु अगिनिसमाऊ। (मा० २।१८७।३)
अगिले-(सं० अग्र)-१. आगे आनेवाले, आगामी, २. प्राचीन, पुरखे। उ० १. न करु विलंब विचार चारुमति, बरष पाछिले सम अगिले पलु। (वि० २४)
अगुआई-(सं० अग्र) अग्रणी होने की क्रिया, मार्ग-प्रदर्शन। उ० कियउ निषादनाथु अगुआई। (मा० २।२०३।१)
अगुण-(सं०)-१. गुणरहित, मूर्ख, २. निर्गुण, ब्रह्म।
अगुन-(सं० अगुण)-१. निर्गुण, सत रज और तम गुणों से रहित, ब्रह्म, २. मूर्ख, ३. दोष। उ० १. पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय। (वि० २२०) २. अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो। (वि० २७२) अगुनहि-१. अगुन या निर्गुण में, २. अगुन या निर्गुण को। उ० सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। (मा० १।११६।१)
अगुनी-[सं० अ + गुण (वर्णन)]-जिस पर गुना न जा सके, जिसका वर्णन न हो सके, अथाह, गंभीर। उ० ऐसो अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन-गाहैं। (क० ७।११)
अगुह्य-(सं०)-जो गुह्य न हो, प्रकट।
अगेह-(सं०)-बिना घरबार का, जिसका ठिकाना कहीं न हो। उ० अकुल अगेह दिगंबर ब्याली। (मा० १।७९।३)
अगेहा-दे० 'अगेह'। उ० तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। (मा० १।१६१।२)
अगोचर-(सं०)-जो इंद्रियों से न जाना जा सके, अव्यक्त। उ० मन बुद्धि बर बानी अगोचर, प्रगट कवि कैसे करै। (मा० १।३२३।२)
अग्य-(सं० अज्ञ)-मूर्ख, बेसमझ। उ० कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य। (मा० १।५७ क)
अग्यता-(सं० अज्ञता)-अज्ञान, मूर्खता। उ० तग्य कृतज्ञ अग्यता भंजन। (मा० ७।३४।३)
अग्या-(सं० आज्ञा)-आदेश, आज्ञा, हुक्म। उ० अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी। (मा० १।७७।२)
अग्याता-(सं० अज्ञात)-अनजान में, न जानने से। उ० अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। (मा० १।२८५।३)
अग्र-(सं०)-१. आगे, २. मुख्य, ३. एक वैश्य राजा का नाम, ४. सिरा, ५. अन्न की भिक्षा का एक परिमाण जो मोर के ४८ अंडों के बराबर होता है। उ० १. चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। (मा० १।२२६।४) अग्रकृत-(सं०)-आगे का किया हुआ, पहले का बनाया हुआ। अग्रगण्य-(सं०)-जिसकी गणना पहले हो, श्रेष्ठ। उ० दनुज वनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्। (मा० ५।१श्लो०३)
अग्रणी-(सं०)-अगुआ, श्रेष्ठ। उ० जयति रुद्राग्रणी विश्व-विद्याग्रणी। (वि० २७)
अघ-(सं०) १. पाप, २. दुःख, ३. व्यसन, ४. कंस के सेनापति का नाम। उ० १. केहि अघ अवगुन आपनो करि डारि दिया रे। (वि० ३३) २. बरषि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास। (दो० ३७८) अघमोचनि-(सं० अघ + मोचन)-पापों का नाश करनेवाली। उ० कीरति बिमल बिस्व-अघमोचनि रहिहि सकल जग छाई। (गी० १।१३) अघरूप-जिसका स्वरूप ही पाप हो, बहुत बड़ा पापी। उ० तदपि महीसुर श्राप बस भये सकल अघरूप। (मा० १।१७६) अघहारी-(सं० अघ + हर)-पापों के नाश करनेवाले। उ० गुनगाहकु अवगुन अघहारी। (मा० २।२९८।२)
अघट-(सं० अ + घट)-१. जो घटित न हो सके, २. कठिन, ३. अयोग्य, ४. जो कम न हो, ५. एक रस। उ० १. अघट-घटना-सुघट, सुघट-विघटन-विकट। (वि० ५५)
अघटित-१. असंभव, २. जो हुआ न हो, ३. अवश्य होने-वाला, अनिवार्य, ४. अनुचित, ५. बहुत अधिक। उ० १. तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं। (मा० १।११५।३) ३. काल कर्म गति अघटित जानी। (मा० २।१६५।३) अघटितघटन-असंभव को संभव करनेवाले। उ० अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहीं आन की। (वि० ३०)
अघाइ-(सं० आघ्राण = नाक तक)-१. छककर, पेट भर-कर, तृप्त होकर, २. पूर्णतम, ३. ऊबकर। उ० १. सो तनु पाइ अघाइ किये अघ। (वि० १६४) २. दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ। (वि० ४१) अघाई-१. प्रसन्न होकर, तृप्त होकर, २. पूर्णतम। उ० १. गुरु साहिब अनु-कूल अघाई। (मा० २।२६०।१)। २. जनम लाभ कइ अवधि अघाई। (मा० २।५२।४) अघाउँगो-अघाऊँगा, तृप्त होऊँगा। उ० धरिहैं नाथ हाथ माथे एहि तें केहि लाभ अघाउँगो? (गी० ५।३०) अघाऊँ-तृप्त होऊँ, तृप्ति पाऊँ। उ० प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। (मा० ७।८८।१) अघात-अघाते, तृप्त होते। उ० देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के, भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं। (क० ७।१५१) अघाता-तृप्त होता या तृप्त होते। उ० परम प्रेम लोचन न अघाता। (मा० ३।२१।२) अघाति-तृप्ति होती है, तृप्ति होती। उ० चाहत मुनि-मन-अगम सुकृत-फल, मनसा अघ न अघाति। (वि० २३३) अघाती-तृप्त होती। उ० जासु कृपा नहिं कृपा अघाती। (मा० १।२८।२) अघाने-तृप्त हुए। उ० भाव भगति आनंद अघाने। (मा० २।१०८।१) अघानो-अघाया हुआ, तृप्त। उ० लखै अघानो भूख ज्यों, लखै जीति में हारि। (दो० ४४३) अघाय-अघाकर, पूर्णतः। अघाहिं-अघाती हैं, तृप्त होती हैं या तृप्त होते हैं। उ० नहिं अघाहिं अनु-राग भाग भरि भामिनि। (जा० १५०) अघाहीं-तृप्त होते हैं, भरते हैं या भरती हैं। उ० नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं। (मा० २।२५१।३) अघाहूँ-तृप्त हों। उ० रामभगत अब अमिअ अघाहूँ। (मा० २।२०४।३)
अघाउ-तृप्ति, सतुष्टि। उ० भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ। (वि० १००)
अघात-(सं० आघात)- चोट, आघात। उ० लात के अघात सहै जो में कहै 'कूर हैं'। (क० ५।३)

अघी–(सं०)–पापी, अधर्मी । उ० लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी । (वि० २५३)

अचंचल–(सं०)–चंचलता रहित, स्थिर, शांत । उ० भए बिलोचन चारु अचंचल । (मा० १।२३०।२)

अचंभव–(सं० असंभव)–अचंभा, आश्चर्य । उ० सुर मुनि सबहिं अचंभव माना । (मा० ६।७१।४)

अचंभा–आश्चर्य, अचरज ।

अचइ–(सं० आचमन)–आचमन करके, पी करके। उ० पैठि बिवर मिलि तापसिहि, अचइ पानि, फलु खाइ । (प्र० ३।७।३) अचवँत–आचमन करते ही पीते ही । उ० जो अचवँत नृप मातहिं तेई । (मा०२।२३१।४) अचवै–आचमन करे ।

अचगरि–(?)–१. चपलता, नटखटी, शरारत, अत्याचार । उ० १. जो लरिका कछु अचगरि करहीं । (मा० १।२७७।२)

अचर–(सं०)–जो चल न सके, स्थावर, जड़, अचल । उ० अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै । (वि० ४७)

अचरज–(स० आश्चर्य) अचंभा, तअज्जुब । उ० बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम। (मा० १।११०)

अचरजु–दे० 'अचरज' । उ० आजु हमहि बड़ अचरजु लागा । (मा० २।३८।१)

अचल–(सं०)–१. पहाड़, जो न चले, स्थिर, २. चिरस्थायी, सब दिन रहनेवाला, दृढ़, ३. आवागमन से मुक्त, ४. स्थिर-बुद्धि । उ० १. भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै । (क० ६।५५) २. रघुपति-पद परम प्रेम तुलसी यह अचल नेम। (वि० १६) ३. होइ अचल जिमि जिव हरि पाई । (मा० ४।१४।४) ४. अचल अकिंचन सुचि सुखधामा । (मा० ३।४५।४) अचलअहेरी–अचूक निशाना लगानेवाला शिकारी । उ० चित्रकूट जनु अचलअहेरी । (मा० २।१३३।२) अचलसुता–(सं०)–पर्वत की लड़की, पार्वती । उ० अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ ?(पा० ६५)

अचला–(सं०)–पृथ्वी ।

अचलु–दे० 'अचल' । उ० उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो । (क० ४।१)

अचानक–सहसा, अकस्मात्, बिना पूर्व सूचना के । उ० तुलसी कवि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछौहैं । (क० २।२५)

अचार–(सं० आचार)–१. आचार, आचरण, व्यवहार, २. धर्म-व्यवहार, ३. तरीका । उ० १. स्वारथ-सहित सनेह सब, रुचि-अनुहरत अचार । (दो० ५४८) २. जे मद-मार बिकार भरे ते अचार-बिचार समीप न जाहीं । (क० ७।६४) आचारविचार–(सं० आचार-विचार)–इन दो शब्दों का आज भी एक साथ प्रयोग मिलता है पर अर्थ वही होता है जो 'आचार' का । धार्मिक कृत्य, शौच, पूजा-पाठ इत्यादि ।

अचारा–दे० 'अचार' । उ० १. अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना । (मा० १।१८३। छं० १)

अचारू–दे० 'अचार' । उ० २. दुहुँ कुल गुर सब कीन्ह अचारू । (मा० १।३२३।४)

अचिंत (१)–(सं०)–निश्चिंत, चिंता रहित ।

अचिंत (२)–(सं० अचिंत्य)– दे० 'अचिंत्य' ।

अचिंत्य–(सं०)–१. जिसका चिंतन संभव न हो । २. अतुल, ३. चिंता रहित, ४. आशा से अधिक, ५. अकस्मात् ।

अचेत–(सं०) १. अज्ञात, २. बेसुध, संज्ञाहीन, ३. व्याकुल, ४. मूर्ख, अज्ञानी, बेसमझ, ५. अचेतन, जड़ । उ० १. रावन भाइ जगाइ तब, कहा प्रसंगु अचेत । (प्र० ५।७।१) ३. बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत । (मा० १।७६) ४. समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत । (मा० १।३० क) ५. छोटे बड़े जीव जेते चेतन अचेत हैं । (ह० ३२)

अचेता–दे० 'अचेत' । उ० २. चले जाहिं सब लोग अचेता । (मा० २।३२०।४)

अच्छ–(सं० अक्ष)–रावण का पुत्र, अक्षयकुमार । उ० अच्छ-बिमर्दन कानन-भान दसानन आनन भान निहारो । (ह० १६)

अच्छकुमारा–(सं० अक्षयकुमार)–रावण का पुत्र अक्षयकुमार । उ० पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा । (मा० ५।१८।४)

अच्छत–(सं० अक्षत)–अक्षत, चावल । जो क्षत न हो । उ० अच्छत अंकुर लोचन लाजा । (मा० १।३४६।३)

अच्छम–(सं० अक्षम)–असमर्थ, अयोग्य, शक्तिहीन । उ० सबहि समरथहि सुखद प्रिय, अच्छम प्रिय हितकारि । (दो० ७४)

अच्छर–(सं०अक्षर)–१. अक्षर, क, ख, ग आदि, २. जिसका नाश न हो । उ० १. द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग । (मा० १।१४३)

अच्युत–(सं०) १. जो गिरा न हो, २. दृढ़, अटल, ३. अविनाशी, ४. विष्णु और उनके अवतारों का नाम । उ० ३. तज्ञ सर्वज्ञ यज्ञेश अच्युत, विभो । (वि० १०)

अछत–(सं० अक्षत)–१. अक्षत, चावल, २. जो टूटा न हो, पूर्ण, ३. रहते हुए, उपस्थिति में । उ० ३. तुम्हहि अछत को बरनै पारा । (मा० १।२७४।३)

अछोभ–(सं० अक्षोभ)–गंभीर, शांत, क्षोभ-रहित, ग्लानि-शून्य ।

अछोभा–दे० 'अछोभ' । उ० बीर ब्रती तुम्ह धीर अछोभा । (मा० १।२७४।४)

अज–(सं०)–१. अजन्मा, जन्म-रहित, २. ब्रह्मा, ३. विष्णु, ४. शिव, ५. कामदेव, ६. दशरथ के पिता का नाम, ७. बकरा, ८. माया, ९. रोहिणी नक्षत्र, १०. मेघ । उ० १. अकल निरुपाधि निरगुन निरंजन ब्रह्म कर्म-पथमेकमज निर्विकारं । (वि० १०) २. करता को अज जगत को, भरता को हरि जान । (स० २७३) ४. चंद्रसेखर सूलपानि हर अनघ अज अमित अविच्छिन्न वृषभेषगामी । (वि० ४६) ७. तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे । (वि० ११७) अजधामा–(सं० अजधाम)–ब्रह्मलोक । उ० पद पाताल सीस अजधामा । (मा० ६।१५।१) अजहि–अज को, ब्रह्मा को । उ० मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन । (मा० ७।१२२ ख)

अजगर–(सं०)–१. एक प्रकार का बहुत मोटा सर्प, २. आलसी आदमी । उ० १. बैठ रहसि अजगर इव पापी । (मा० ७।१०७।४)

अजगव–(सं०)–शिव का धनुष, पिनाक।
अजय–(सं०) जिसे कोई न जीत सके। उ० खल अति अजय देव दुखदाई। (मा० १।१७०।३) अजयमख–(सं०)–ऐसा यज्ञ जिसे कर देने से करनेवाला अजय हो जाय। उ० करौं अजय मख अस मन धरा। (मा० ६। ७५।१)
अजर–(सं०) १. जो जीर्ण या बूढ़ा न हो, २. जो न पचे, अजीर्ण, ३. ईश्वर का एक विशेषण, ४. ब्रह्मा, ५. देवता। उ० १. काल कालं, कलातीतमजरं हरं। (वि० १२)
अजस–(सं० अयश)–अपयश, बदनामी, निंदा। उ० अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि। (मा० २।१२)
अजसी–(सं० अयशिन्)–अपयशी, यशरहित, निंदित। उ० अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा। (मा० ६।३१।१)
अजसु–दे० 'अजस'। उ० मोर मरन राउर अजसु नृप समुझिय मन माहिं। (मा० २।३३)
अजहुं–(सं० अद्य)–अब भी, आज भी, अब तक। उ० अजहुँ आपने राम के करतब समुझत हित होइ। (वि० १९३)
अजहूँ–आज भी, अब भी। उ० सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ। (वि० ८६)
अजाँची–(सं० अयाचिन्)–याचनारहित, पूर्णकाम, संपन्न। उ० कपि, सवरी, सुग्रीव, बिभीषन को नहिं कियो अजाँची। (वि० १६३)
अजा–(सं०)–१. अजन्मा, जिसका कभी जन्म न हो, २. बकरी। उ० १. अजा अनादि सक्ति अविनासिनि। (मा० १।९८।२) २. जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन, होत अजा-खुर बारिधि बाढ़े। (क०२।५) अजाखुर–(सं०)–बकरी के खुर का चिह्न।
अजाचक–(सं० अयाचक)–अयाचक, जिसे कुछ माँगने की आवश्यकता न हो। उ० जाचक सकल अजाचक कीन्हे। (मा० ७।१२।४)
अजाची–(सं० अयाचिन्)–जो न माँगे, जिसके यहाँ सब कुछ हो।
अजाति–(सं० अ + जाति)–बिना जाति का, जातिरहित। उ० अगुन अमान अजाति मातु-पितु-हीनहि। (पा० ५५)
अजान–(सं०अ + ज्ञान)–अनजान, अबोध, अनभिज्ञ, नासमझ। उ० पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर। (म० १।२६९)
अजानी–अज्ञानी, मूर्ख। उ० रानी मैं जानी अजानी महा, पबि पाहन हूँ ते कठोर हियो है। (क० २।२०)
अजान्यो–मूर्ख। उ० देखत बिपति बिषय न तजत हौं, तातें अधिक अजान्यो। (वि० ९२)
अजामिल–(सं०)–एक पापी ब्राह्मण। अजामिल कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इन्होंने समस्त वेद-वेदांगों का अध्ययन किया था। एक दिन समिधा लेने जंगल में गये और वहीं एक वेश्या से प्रभावित होकर उससे फँस गये। धीरे-धीरे सारा आचार-विचार जाता रहा और उसे रखनी बनाकर घर लाये। उनकी पतितावस्था यहाँ तक पहुँची कि शराब, जुआ, चोरी और हिंसा से भी प्रेम हो गया। एक दिन कुछ साधु उनकी अनुपस्थिति में आये। उनकी गर्भवती पत्नी ने साधुओं का स्वागत किया। साधु जाते समय भावी पुत्र का नाम नारायण रख गए। लड़का पैदा हुआ और धीरे-धीरे बड़ा हुआ। मरते समय अजामिल के चारों ओर यम के दूत आकर खड़े हो गए। डरकर उसने अपने पुत्र 'नारायण' को पुकारा। किंतु 'नारायण' नाम लेने का इतना प्रभाव हुआ कि स्वर्ग के दूत आकर उसे स्वर्ग में ले गए। इतना पापी होने पर भी नाम लेने के कारण वह मुक्ति का भागी हुआ। उ० जौ सुतहित लिए नाम अजामिल के अघ अमित न दहते। (वि० ९७)
अजित–(सं०) १. जो जीता न गया हो, २. विष्णु, ३. शिव, ४. बुद्ध। उ० १. दीन हित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रनत-पाल। (वि० २११) अजितं–दे० 'अजित'। अजित को। उ० योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्। (मा० ६। श्लो० १)
अजिन–(सं०)–१. वल्कल, छाल, २. मृगछाला, ३ चर्म, खाल। उ० १. अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात। (मा० २।२११) ३. गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै। (पा० ६३)
अजिर–(सं०)–१. आँगन, सहन, २. वायु, ३. शरीर, ४. मेंढक, ५. इंद्रियों का विषय। उ० १. कवि उर अजिर नचावहिं बानी। (मा० १।१०५।३)
अजीता–(सं० अजित)–जो जीता न जा सके। उ० सब-दरसी अनवद्य अजीता। (मा० ७।७२।३)
अजीरन–(सं० अजीर्ण)–१. अजीर्ण, अपच, बदहज़मी, २. अधिकता, ३. नया। उ० १. असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यौ। (गी० २।३३)
अजे–(सं० अजय)–अजेय, जो जीता न जा सके। उ० रघुबीर महा रनधीर अजे। (मा० ७।१४।६)
अजै–(सं० अजय)–१. अजय, न जीतने योग्य, २. हार, उ० १. हौं हार्यो करि जतन बिबिध बिधि, अतिसय प्रबल अजै। (वि० ८९)
अजोध्या–(सं० अयोध्या)–अयोध्या नगरी। उ० दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। (मा० ७।२७।१)
अजौं–(सं० अद्य) अजहूं, अब भी, अब तक।
अज्ञ–(सं०)–१. अज्ञानी, मूर्ख, २. अनजान, अपरिचित। उ० २. जेहि अपराध असाधु जानि मोहिं तजेहु अज्ञ की नाईं। (वि० ११२)
अज्ञता–(सं०)–मूढ़ता, मूर्खता, अज्ञान।
अज्ञा–(सं० आज्ञा)–आदेश, हुक्म।
अज्ञाता–अनजान में।
अज्ञान–(सं०) १. अविद्या, मोह, ज्ञान का अभाव, २. मूर्ख, नासमझ। उ० भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम-हारिनी। (वि० ४८)
अज्ञाना–दे० 'अज्ञान'।
अज्ञानी–(सं०)–जिसे ज्ञान न हो।
अज्ञानु–दे० 'अज्ञान'।
अज्ञानू–दे० 'अज्ञान'।
अट–(सं० अट्)–१. नाना योनियों में भ्रमण, २. घूमना, अटन। उ० १. अट घट लट नट नादि जहँ, तुलसी रहित न जान। (स० ५७६)
अटक–(?.) रोक, रुकावट, अड़चन। उ० को करै अटक कपि-कटक अमरषा? (क० ६।७)

अटकठ–(अनु०)–बेढंगा, टेढ़ा-मेढ़ा, अटखट।
अटकत–अटकते हैं, रुकते हैं, उलझ जाते हैं। उ० भटकत पद अद्वैतता अटकत ग्यान गुमान। (स० ३४७) अटकै–१.फँसे, २.अड़े, रुके। उ० १.तुलसिदास भवत्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै। (वि० ६३)
अटकल–(?.) अनुमान, कल्पना, अंदाज़।
अटखट–(अनु०)–अट्टसट्ट, अंड-बंड, टूटा-फूटा। उ० बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे। (वि० १८९)
अटत–घूमता फिरता है। उ० जोग, जाग, जप, विराग, तप, सुतीरथ, अटत। (वि० १२९) अटो–घूमो। उ० न मिटै भवसंकट दुर्घट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो। (क० ७।८६)
अटन–(सं०)–घूमना, यात्रा करना। उ० चले राम बन अटन पयादें। (मा० २।३११।२)
अटनि–(सं० अट्ट)अट्टालिकाओं पर, अटारियों पर। उ० निज-निज अटनि मनोहर गान करहिं पिकबैनि। (गी०७।२१) अटन्ह–अटारियाँ, अट्टालिकाएँ। उ० प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। (मा० १।३४७।२)
अटपटि–(?) १. अट-पटी, टेढ़ी, २. गूढ़, कठिन। उ० १. जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। (मा० १।१३४।३) अटपटे–अनोखा, विचित्र। उ० सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। (मा० २।१००)
अटल–(सं०)–जो न टले, दृढ़, स्थिर। उ० तुलसीस पवन नंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत। (क० ६।४७)
अटवी–(सं०)–बन, जंगल। उ० वृष्णि कुल कुमुद-राकेस राधारमन कंस-बंसाटवी-धूमकेतू। (वि० ५२)
अटारिन्ह–(सं० अट्टाली)–अटारियों पर। उ० बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान। (मा०७।३ख) अटारीं–कोठे पर, अटारियों पर। उ० निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। (मा० ५।२५।५) अटारी–कोठा, बुर्ज, घर के ऊपर की कोठरी या छत।
अट्टनि–(स० अट्ट)–अटारियों पर। उ० हाट, बाट, कोट, ओट, अट्टनि, अगार पौरि, खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्ही अति आगि है। (क० ५।१४)
अट्टहास–(सं०)–ज़ोर की हँसी, खिलखिलाकर हँसना। उ० अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास। (मा० ५।२५)
अठारह–(सं० अष्टादश)–एक संख्या, १८। उ० पदुम अठारह जूथप बंदर। (मा० ५।५५।२)
अडोल–(सं० अ+दोल)–नहीं डोलने वाला, स्थिर, अटल।
अढुक–(?) ठोकर, चोट। उ०फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढुक पहार। (दो० ५६०)
अढ़ुकि–लुढ़क कर, ठोकर खाकर। उ० अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। (मा० २।१४३।३)
अणिमा–(सं०)–अष्ट सिद्धियों में पहली सिद्धि जिससे योगी अणुवत् सूक्ष्मरूप धारण कर लेते हैं और किसी को दिखाई नहीं देते। अणिमादि–अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ–१. अणिमा–बहुत छोटा होने की शक्ति। २. महिमा–बहुत बड़ा हो जाने की शक्ति। ३. गरिमा–बहुत भारी बन जाने की शक्ति। ४. लघिमा–बहुत हलका बन जाने की शक्ति। ५. प्राप्ति–सब कुछ पा जाने की शक्ति। ६. प्राकाम्य–सभी मनोरथ पूरा कर लेने की शक्ति। ७. ईशित्व–सब पर शासन करने की शक्ति। ८. वशित्व–सब को वश में करने की शक्ति। उ० ज्ञान विज्ञान बैराग्य ऐश्वर्य-निधि, सिद्धि अणिमादि दे भूरि दानम्। (वि० ६१)
अणु–(सं०)–परमाणु से बड़ा कण, अतिसूक्ष्म, रजकण।
अतंक–(सं० आतंक)–आतंक, भय, डर।
अतनु–(सं०) १. तनरहित, बिना तन का, २. कामदेव। उ० १. रति अति दुखित अतनु पति जानी। (मा० १।२४७।३)
अतर्क–(सं० अतर्क्य)–जिसके विषय में तर्क न किया जा सके।
अतर्क्य–(सं०)–तर्करहित, जिसके विषय में तर्क न किया जा सके। उ० राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। (मा० १।१२१।२)
अति–(सं०)–बहुत, अधिक, ज़्यादा। उ० मैं अतिदीन, दयालु देव, सुनि मन अनुरागे। (वि० ११०) अतिनास–(सं० अति+नाश)–समूल नाश। उ० रामचरन-अनुराग-नीर बिनु मल अतिनास न पावै। (वि० ८२) अतिबल–(सं० अति+बल)–अत्यंत बलवान। उ० बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै। (मा० ५।३। छं०१) अतिबलो–अत्यन्त बलवान भी। उ० गनी-गरीब, बड़ो-छोटो, बुध मूढ़, हीनबल अतिबलो। (गी० ५।४२)। अतिबलौ–(सं०)–दोनों अत्यंत बलवान। उ० कुंदेन्दीवर सुन्दरवतिबलौ विज्ञान धामावुभौ। (मा० ४।१। श्लो०१) अतिहि–अत्यंत ही,बहुत ही। उ० ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि। (वि० १३५) अतिही–अत्यंत ही, बहुत ही। उ० अतिही अनूप काहू भूप के कुमार हैं। (क० २।१४)
अतिउकुति–(सं० अत्युक्ति)–बढ़ा-चढ़ाकर कही गई बात। उ० सुनि अतिउकुति पवन सुत केरी। (मा० ६।१।२)
अतिकल्प–(सं०)–महाकल्प, पुराणानुसार उतना काल जितने में एक ब्रह्मा की आयु पूरी होती है। ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्ष। उ० सत्य संकल्प, अतिकल्प, कल्पांत कृत, कल्पनातीत अहितल्पवासी। (वि० ५४)
अतिकाय–(सं०)–रावण का पुत्र, जो स्थूलकाय होने के कारण अतिकाय नाम से प्रसिद्ध था। ब्रह्मा की तपस्या करके इसने वरदान में कवच, अस्त्र दिव्य रथ और सुरों तथा असुरों से अवध्यत्व प्राप्त किया था। एक बार इसने इंद्र को परास्त किया था और वरुण पाश नामक अस्त्र उनसे छीन लिया था। कुंभकर्ण के मारे जाने पर इसने घोर युद्ध किया और अंत में लक्ष्मण के हाथ से मारा गया। उ० मेघनादु अतिकाय भट, परे महोदर खेत। (प्र० ५।७।१)
अतिकाया–दे० 'अतिकाय'। उ० अनिप अकंपन अरु अतिकाया। (मा० ६।४६।५)
अतिकाल–(सं०)–१. कालों के भी काल, महाकाल, २. कुसमय, ३. देर। उ० १. काल अतिकाल, कलिकाल, व्यालाद-खग त्रिपुर मर्दन, भीम-कर्म भारी। (वि० ११)
अतिक्रम–(सं०)–सीमा पार कर जाना, नियम या मर्यादा का उलंघन। उ० कालु सदा दुरतिक्रम भारी। (मा० ७।९४।४)
अतिथि–(सं०)–१. अभ्यागत, जिसके आने की कोई तिथि न हो, मेहमान, पाहुन, २. एक प्रकार के संन्यासी, ३.

अग्नि का एक नाम, ४. कुश के पुत्र का नाम। उ० १. सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासन ज्यों दई। (गी० ५।३८)

अतिबात-(सं०)-आँधी, तूफ़ान। उ० प्रतिमा रुदहि पविपात नभ अतिबात बह डोलति मही। (मा० ६।१०२। छं० १)

अतिमति-अत्यंत बुद्धिमान। उ० जौ अतिमति चाहसि सुगति तौ तुलसी कर प्रेम। (स० २४६)

अतिरिक्त-(सं०)-१. सिवाय, अलावा, २. अधिक, ज़्यादा, ३. न्यारा, अलग।

अतिसय-(सं० अतिशय)-१. अतिशय, बहुत अधिक, २. बड़ा। उ० १. सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। (मा० ५।१७।४) २. जेहि समान अतिसय नहिं कोई। (मा० ३।६।४)

अतिसै-दे० 'अतिसय'।

अतीत-(सं०) १. बीता हुआ, २ त्यागी, ३. परे, ४. अलग, ५. मृत, ६. निर्लेप, ७. अतिथि, ८. अतिरिक्त, ९. बाहर। उ० २. तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति सांति लयलीन। (वै० ४८) ३. तुलसिदास दुख सुखातीत हरि। (गी० ५।१७)

अतीता-दे० 'अतीत'। उ० ३. अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। (मा० ७।७२।३)

अतीति-बीती। उ० रोग-वियोग-सोक-स्रम-संकुल, बड़ि बय वृथहि अतीति। (वि० २३४)

अतीव-(सं०)-अधिक, अतिशय। उ० शंखेन्द्वाभमतीव सुदर तनुं शार्दूलचर्माम्बरं। (मा० ६।१। श्लो० २)

अतीवा-दे० 'अतीव'। उ० देखि भरत गति अकथ अतीवा। (मा० २।२३८।३)

अतुल-(सं०)-१. जो तोला या कूता न जा सके, अमित, अधिक, असीम, २. बेजोड़, अद्वितीय, ३. एक प्रकार का नायक। उ० १. देखत कोमल कल अतुल बिपुल बल। (गी० १।७२) २. अतुल मृगराज वपु धरित विद्दरित अरि। (वि० ५२) अतुलबल-(सं० अतुल + बल)-अत्यंत बलवान। उ० राजन रामु अतुलबल जैसें। (मा० १।२६३।२)।

अतुलनीय-(सं०)-१. जिसकी तुलना न हो सके, अद्वितीय, २. अपरिमित।

अतुलित-(सं०)-१. जिसकी तुलना न हो सके, २. अपार, ३. अनेक। उ० १. अतुलित अतिथि राम लघु भाई। (मा० २।२१४।१) २. अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं। (मा० ५।१। श्लो० ३)

अत्यंत-(सं०)-अतिशय, बहुत। उ० नियम यम सकल-सुरलोक-लोकेस, लंकेस बस नाथ! अत्यंत भीता। (वि० ५८)

अत्युक्ति-(सं०)-किसी बात को बहुत बढ़ाकर कहना।

अत्र-(सं०)-यहां, इसमें, इस स्थान पर। उ० व्रजंति नात्र संशयं। (मा० ३।४।१२)

अत्रि-(सं०)-१. सप्तर्षियों में से एक ऋषि जो ब्रह्मा की आँख से उत्पन्न हुए थे। ये विभिन्न मन्वंतरों में प्रजापति और सप्तर्षि के रूप में रहते हैं। भारत के दक्षिण प्रांत के रहनेवाले थे। अनसूया इनकी पत्नी थीं। ये इतने बड़े तपस्वी थे कि एक बार राहु के आक्रमण के कारण सूर्य पृथ्वी पर गिर रहे थे पर इन्होंने रोक दिया। कहा जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने इनके यहाँ पुत्र होकर दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम नाम से जन्म ग्रहण किया था। वैदिक मंत्रों में इनका नाम है। इनकी एक अत्रि-संहिता भी है। २. सप्तर्षि-मंडल का एक तारा। उ० १. अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं।(मा० २।१३२।४) अत्रितिय-(सं० अत्रि + स्त्री)-अत्रि मुनि की पत्नी अनसूया। कथा के लिए देखिए 'अनसूया'। उ० दिए अत्रितिय जानकिहि, बसन बिभूषन भूरि। (प्र० २।६।४) अत्रिप्रिया-(सं०)-अत्रि ऋषि की स्त्री, अनसूया। कथा के लिए 'अनसूया' देखिए। उ० अत्रिप्रिया निज तपबल आनी। (मा० २।१३२।४)

अथ-(सं०) १. आरंभ, अब, २. एक मंगल-सूचक शब्द जो पहले ग्रंथारंभ में लिखा जाता था।

अथइहि-(सं० अस्तमन)-अस्त होगा। अथयउ-डूब गया, अस्त हो गया। अथवत-अस्त होते ही, अस्त होने पर। उ० उदय बिकस, अथवत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ। (दो० ३१६)

अथर्वणी-(सं० अथर्वणि)-१. अथर्ववेद का जाननेवाला, कर्मकांडी, पुरोहित, यज्ञ करानेवाला, २. वशिष्ठ जी। उ० १. बाल बिलोकि अथर्वणी हँसि हरहि जनायो। (गी० १।६)

अथर्वन-(सं० अथर्वन्)-अथर्वण, ४ था वेद जिसमें यज्ञ आदि का विधान कम है। शांति, पौष्टिक अभिचार, तथा मंत्र-तंत्र इसमें अधिक हैं।

अथर्वनी-(सं० अथर्वणि)-अथर्वणी, पुरोहित।

अथवा-(सं०)-या, वा, किंवा। उ० सरस होउ अथवा अति फीका। (मा० १।८।६)

अथाई-(सं० स्थायि)-१. बैठक, चौपाल, घर के बाहर का कमरा जहाँ लोग बैठते हैं। २. सभा, ३. घर के सामने का चबूतरा। उ० १. हाट बाट घर गली अथाई। (मा० २।११५।२)

अथाह-(सं० अ + स्था)-जिसे थाहा न जा सके, गहिरा, गंभीर।

अदंड-(सं०)-१. जो दंड के योग्य न हो, २. जिस पर कर न लगे, ३. निर्भय। उ० केसरीकुमार सो अदंड ऐसो डाँड़िगो। (क० ६।२४)

अद-(सं० अद्)-भोजन, खाना, अदन।

अदन-(सं०)-भक्षण, भोजन, आहार। उ० भारती बदन, विष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावकनयन। (क० ७।१५२)

अदभुत-(सं० अद्भुत)-अनोखा, अपूर्व। उ० अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। (मा० १।४३।१)

अदभ्र-(सं०)-१. बहुत, अधिक, २. अपार अनंत, ३. समूह, ४. महान। उ० १. अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। (मा० ७।७२।३)

अदरस-(सं० अदृश्य) अदृश्य, न दिखाई देने योग्य। उ० भरत हरत दरसत सबहि, पुनि अदरस सब काहु। (स० ४२४)

अदर्प-(सं० अ + दर्प)-१. पाखंडरहित, २. अभिमान रहित।

अदाग-(सं० अ + अर० दाग़)-बिना दाग का, निर्मल।

उ० त्याग को भूषन शांति पद, तुलसी अमल अदाग। (वै० ४४)

अदाया-(सं०अ + दया)-निर्दयता, कठोरता, निष्ठुरता। उ० भय अबिबेक असौच अदाया। (मा० ६।१६।२)

अदिति-(सं०)-अदिति दक्ष प्रजापति की पुत्री और प्रजापति कश्यप की पत्नी थीं। पति-पत्नी ने तप के बल से भगवान को पुत्र रूप में पाने का वरदान भगवान से प्राप्त किया था। त्रेता में अदिति कौसल्या हुई और कश्यप दशरथ। वामन अवतार भी इसके पूर्व इन्हीं के गर्भ से हुआ था। सूर्य आदि ३३ देवताओं की माता भी यही कही जाती हैं। उ० सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। (मा० १।३१।७)

अदिनु-(सं० अ + दिन)-बुरा दिन, कुसमय, अभाग्य। उ० अदिनु मोर नहिं दूषन काहू। (मा० २।१८।४)

अदूषन-(सं० अदूषण)-दोष-रहित, शुद्ध। उ० मनहुँ मारि मनसिज पुरारि दिय, ससिहि चापसर मकर अदूषन। (गी० ७।१६)

अदस्य-(सं० अदृश्य)-अदृश्य, छिपा हुआ, लुप्त। उ० तब अदस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ। (मा० १।१८६)

अदेख-(सं० अ + हिं० देख)-बिना देखा हुआ। उ० देखेउ करइ अदेख इव अनदेखेउ बिसुआस। (स० ३४३)

अदेय-(सं०)-जो देने योग्य न हो। उ० मेरे कछु न अदेय राम बिनु। (गी० १।४७)

अदेह-(सं०)-बिना देह का, कामदेव।

अदोष-(सं०)-निर्दोष, दोषरहित।

अदोषा-दे० 'अदोष'। उ० राम प्रेम बिधु अचल अदोषा। (मा० २।३२४।३)

अद्भुत-(सं०)-अनोखा, अपूर्व। उ० पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई। (मा० १।१८६।छं०१)

अद्य-(सं०)-आज, अब।

अद्रस्य-(सं० अदृश्य)-अदृश्य, अलख, जो दिखाई न दे।

अद्रि-(सं०)-पहाड़, पर्वत। उ० तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। (मा० ७।१०८।३)। अद्रिचारी-(सं० अद्रिचारिन्)-पर्वतों पर विचरनेवाला। उ० जयति निरुपाधि भक्ति-भावयंत्रित-हृदय, बंधुहित-चित्रकूटाद्रिचारी। (वि० ३९)

अद्वितीय-(सं०)-जिसके जैसा कोई दूसरा न हो, बिलक्षण, अनुपम। उ० अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभुमेक मनवद्यमजमद्वितीयं। (वि० ५२)

अद्वैत-(सं०)-१. द्वितीय रहित, एकाकी, एक, २. अनुपम, बेजोड़। उ० २ अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नरभूपरूपं। (वि०५०) अद्वैतदरसी-(सं० अद्वैत-दर्शिन्)-सर्वत्र एक को ही देखनेवाले। ब्रह्मदर्शी, चराचर को ब्रह्म माननेवाला। उ० प्रबल भवजनित-त्रैव्याधि-भेषज भक्ति भैप्रज्यमद्वैतदरसी। (वि० ५७)

अधंग-(सं० अर्द्धांग)-आधा अंग, अर्द्धांग। उ० सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूषन भुजंगवर। (क० ७।१४९)

अध (१)-(सं० अधः)-नीचे, तले। उ० अध उर्द्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर है। (क० ५।१७) अधगो-(सं० अधः + गो)-नीचे की इंद्रियाँ, गुदा आदि। उ० उदर उदधि अधगो जातना। (मा० ६।१५।४) अधराधर-(सं० अधः + अधर)-नीचे का ओठ। उ० बर दंत की पंगति कुंद कली, अधराधर-पल्लव खोलन की। (क० १।५)

अध(२)-(सं० अर्द्ध)-आधा, दो बराबर भागों में से एक। अधजरति-(सं० अर्द्ध + ज्वल)-आधी जलती हुई। उ० निकसि चिता तें अधजरति, मानहुँ सती परानि। (दो० २५३) अधबिच-(सं० अर्द्ध + बीच)-बीच में। उ० तरु तमाल अधबिच जनु त्रिविध कीर पाँति रुचिर। (गी० ७।३)

अधगति-(सं० अधोगति)-अधोगति, नीची गति, बुरी गति, दुर्दशा। उ० रहु अधमाधम अधगति पाई। (मा० ७।१०७।४)

अधन-(सं० अ + धन)-निर्धन, गरीब। उ० तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। (मा० १।१६१।२)

अधम-(सं०)-नीच बुरा, खोटा, पापी। उ० अधम आरत दीन पतित पातक पीन, सकृत नत मात्र कहे पाहि पाता। (वि० ४४)। अधमउँ-१. अधम भी, २. अधम को भी। अधमाधम-अधम से भी अधम, नीच से भी नीच। उ० रहु अधमाधम अधगति पाई। (मा० ७।१०७।४)

अधमई-अधमता, खोटापन।

अधमाई-नीचता, अधमता, कमीनापन। उ० पर पीड़ा सम नहिं अधमाई। (मा० ७।४१।१)। अधमाईहू-अधमाई भी, नीचता भी। उ० तुलसी अधिक अधमाईहू अजामिल तें। (क० ७।८२)

अधमारे-(सं० अर्द्ध + मारण)-अधमरे, आधे मरे, बुरी तरह घायल, आधे मारे हुए। उ० गये पुकारत कछु अधमारे। (मा० ५।१८।३)

अधर-(सं०)-१. ओठ, २. नीचे का ओठ, ३. बीच, ४. नीच, ५. छोटा, ६. आकाश, ७. बिना आधार का, ८. पाताल, ९. द्विविधा में पड़ने की स्थिति। उ० १. अधर बिंबोपमा मधुर हासं। (वि० ५१) अधरबुधि-(सं० अधर + बुद्धि)-धारणा रहित या चंचल बुद्धि, जिसकी बुद्धि स्थिर न हो। उ० गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि। (मा० २।१६)

अधरम-(सं० अधर्म)-अधर्म, पाप, कुकर्म। उ० ऊंचे नीचे करम धरम अधरम करि। (क० ७।९६)

अधर्म-(सं०)-धर्मविरुद्ध कार्य, पाप। उ० नर विविध कर्म अधर्म बहुमत सोकप्रद सब त्यागहू। (मा० ३।३६।छं०१)

अधार-(सं० आधार)-आश्रय, सहारा। उ० बारि अधार मूल फल त्यागे। (मा० १।१४४।१)

अधारा-दे० 'अधार'। उ० रहेउ एक दिन अवधि अधारा। (मा० ७।१।१)

अधारी-१. आश्रय, सहारा, २. साधुओं का डंडा लगा हुआ काठ का पीढ़ा, ३. कंधे पर रखने का झोला।

अधिक-(सं०)-१. बहुत, ज़्यादा, २. अतिरिक्त, फालतू। उ० १. मंदोदरी अधिक अकुलानी। (मा० ५।३६।२)

अधिकई-अधिकाई, अधिकता। उ० हितनि के लाह की, उछाह की बिनोद मोद, सोभा की अवधि नहिं, अब अधिकई है। (गी० १।६४)

अधिका-दे० 'अधिक'।

अधिकाइ-१. अधिकता से, बढ़ती से, २. बढ़ती है। उ० १. निरस भूरुह सरस फूलत-फलत अति अधिकाइ। (गी० ७।३३)

२. बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ। (ब०३६) अधिकाने–बढ़ती जाती है। उ० उमगी अवध अनंद भरि अधिक-अधिक अधिकाति। (मा० १।३५६) अधिकान–बढ़ गया। उ० छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान। (मा० २।५१) अधिकानी–अधिक हो गई। उ० गावत नाचत सो मन भावत सुख सों अवध अधिकानी। (गी० १।४) अधिकाने–१. अधिक, बढ़े हुए। २. बढ़ गये। उ० १. सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने। (क० ७।४३)

अधिकाई–१. ज्यादती, अधिकता, २. बड़ाई, महिमा, महत्त्व, ३. अधिक। उ० १. जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई। (मा० ६।१०२।१) २. उमा न कछु कपि कै अधिकाई। (मा० ५।३।५) ३. तपइ अवाँ इव उर अधिकाई। (मा० १।५८।२)

अधिकार–(सं०)–१. कार्य-भार २. प्रभुत्व, ३. प्रकरण, ४. क्षमता, ५. हक। उ० १. यह अधिकार सौंपिए औरहिं। (वि० ५)

अधिकारी–(सं० अधिकारिन्)–१. उपयुक्त पात्र, २. स्वामी, ३. स्वत्वधारी। उ० १. रामभगत अधिकारी चीन्हा। (मा० १।३०।२)

अधिकु–दे० 'अधिक'। उ० अधिकु कहा जेहि सम जग-नाहीं। (मा० २।२०६।४)

अधिकृत–(सं०)–१. अधिकार में आया हुआ, उपलब्ध, २. अधिकारी।

अधिकौहैं–अधिक, जो अधिक हो। उ० धँसति लसति हंस सेनि सकुल अधिकौहैं। (गी० ७।४)

अधिप–(सं०)– स्वामी, राजा, मालिक। उ० परम सती असुराधिप नारी। (मा० १।१२३।४)

अधिपति–(सं०)–स्वामी, मालिक।

अधिभूत–(सं० अधि + भूत)–१. आधिभौतिक, शरीर धारियों द्वारा प्राप्त २. शरीरधारी। उ० १. अधिभूत बेदन विषम होत, भूतनाथ ! (क० ७।१६६)

अधिभौतिक–(सं० आधिभौतिक)–आधिभौतिक, शरीर-धारियों द्वारा प्राप्त, तीन व्याधियों में से एक। उ० अधि-भौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे। (वि० ८)

अधिवास–(सं०)–ठहरने का स्थान। उ० प्रसीद प्रभो सर्व भूताधिवासं। (मा०७।१०८।७)

अधिष्ठाता–(सं०)–अध्यक्ष, मुखिया, देख भाल करनेवाला।

अधीत–(सं०)–पढ़ा हुआ, बाँचा हुआ।

अधीन–(सं०)–आधीन, मातहत, आश्रित। उ० दम दुर्गम, दान दया मख कर्म सुधर्म अधीन सबै धन को। (क० ७।८७)

अधीनता–(सं०)–परवशता, आज्ञाकारिता, अधीनता, परतंत्रता। उ० परि पाँय सखिमुख कहि जनायो आप बाप-अधीनता। (पा० ८३)

अधीना–दे० 'आधीन'। उ० मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना। (मा० १।१५१।३)

अधीर–(सं०)–धैर्यरहित, व्यग्र, बेचैन। उ० बोले जनक बिलोकि सीय तन दुखित सरोष अधीर। (गी० १।८७)

अधीरता–(सं०)–व्याकुलता, बेचैनी, आतुरता।

अधीरा–दे० 'अधीर'। उ० अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा, मुख नहिं आवइ बचन कही। (मा० १।२४४। छं० १)

अधीश–(सं०)–स्वामी, मालिक। उ० मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं। (मा० ७।१०८। श्लो० ४)

अधीस–(सं० अधीश)–स्वामी, मालिक, राजा। उ० माया-धीस ग्यान गुन धामू। (मा० १।११७।४)

अधीसा–दे० 'अधीस'। उ० दरसन लागि कोसलाधीसा। (मा० ७।२७।१)

अधीस्वर–(सं० अधीश्वर)। प्रभु, मालिक, राजा।

अधोमुख–(सं०)–नीचे मुख किए हुए, औंधा, उलटा।

अध्यक्ष–(सं०)–स्वामी, मालिक। उ० सर्वरक्षक सर्वभक्ष-काध्यक्ष कूटस्थ गूढार्चि भक्तानुकूलं। (वि० ५३)

अध्ययन–(सं०) १. पठन-पाठन, विद्याभ्यास, २. गंभीरता के साथ विचार।

अध्यात्म–(सं०)–ब्रह्म-विचार, आत्मज्ञान।

अध्याहार–(सं०)–तर्क-वितर्क, उहापोह, बहस।

अनंग–(सं०)–कामदेव। उ० आछे मुनि वेष धरे लाजत अनंग हैं। (क० २।१५) अनंगअराती–(सं० अनंग + आराति)–कामदेव के शत्रु, शिव। उ० सादर जपहु अनंग अराती। (मा० १।१०८।४) अनंगअरि–(सं० अनंग + अरि)–शिव, कामदेव के शत्रु। उ० गंग-जनक, अनंगअरि-प्रिय, कपट्टु बटु बलि छरन। (वि० २१८)

अनंत–(सं०) १. जिसका अंत न हो, अपार, २. विष्णु, ३. शेषनाग, ४. लक्ष्मण, ५. बलराम, ६. अभ्रक, ७. बाहु का एक गहना, ८. सूत का १४ गाँठों का गंडा। उ० १. अनंत भगवंत जगदंत अंतक-त्रास-समन। (वि० ४६) ४. सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत। (मा० ६।१०७)

अनंतबंधु–(सं० अनंत + बंधु)–लक्ष्मण के भाई, राम। उ० सुनु हनुमंत ! अनंतबंधु करुना सुभाव सीतल कोमल अति। (गी० ५।६)

अनंता–दे० 'अनंत'। उ० १. कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विध करौं अनंता। (मा० १।१६२। छं० २)

अनंद–(सं० आनंद)–दे० 'आनंद'। उ० कहि न सकहिं सत सेष अनंद अनूपहि। (जा० १३७)

अनंदा–दे० 'अनंद'। उ० प्रति संबत अति होइ अनंदा। (मा० १।४५।१)

अनंदित–(सं० आनंदित)–प्रसन्न। उ० खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। (मा० ३।१४।२)

अनंदु–दे० 'अनंद'। उ० एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु। (मा० १।३५०क)

अनंदे–आनन्दित हुए। उ० तब मयना हिमवंतु अनंदे। (मा० १। ६६।१)

अन(१)–(सं० अन्य)–अन्य, और, दूसरा। उ० चातक बतियाँ ना रुचीं, अन जल सींचे रूख। (दो० ३११)

अन(२)–(सं०अन्)–बिना, बगैर। अनअहिबातु–(सं अन् + अभिवाद्य)–विधवापन, रँड़ापा। उ० अनअहिबातु सूच जनु भावी। (मा० २।२५।४) अनइच्छित–(सं० अन् + इच्छित)–बिना इच्छा के। उ० अनइच्छित आवइ बीरआईं। (मा० ७।११६।२) अनकुसल–(सं० अन् + कुशल)–अमंगल। उ० निडर अनय करि अनकुसल बीसबाहु सम होय। (स० ६५१)

अनइस–(सं० अनिष्ट)–बुरा। उ० काल नीक फल अनइस पावा। (मा० २।१६३।३)
अनक–(सं० आनक)–१. ढोल, मृदंग, २. गरजता बादल। उ० १. पनवानक निर्झर, अलि उपंग। (गी० २।४८)
अनख–(सं० अन्+अक्षि) १. क्रोध, २. ईर्ष्या, द्वेष, ३. अप्रसन्नता, ४. ग्लानि, ५. डिठौना। उ० १. काको नाम अनख आलस कहे अघ अवगुननि बिछोहे। (वि०२३०) २ किमि सहि जाहि अनख तोहि पाहीं। (मा० ३।३०।८)
अनखानि–क्रोध, नाराज़गी। उ० रोवनि, धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि-मुठि निठुर नसाइहौं। (गी० १।१८)
अनखैहैं–अनख मानेंगे, बिगड़ेंगे। उ० खल अनखैहैं तुम्हैं सज्जन न गमिहैं। (क० ७।७१)
अनखौहीं–क्रोध पैदा करनेवाली। उ० राम सदा सरनागत की अनखौहीं अनैसी सुभाय सही है। (क० ७।६)
अनगना–(सं० अन्+गणना) -अगणित, असंख्य, बहुत। उ० निज काज सजत सँवारि पुर-नर-नारि रचना अनगनी। (गी० १।५)
अनघ–(सं०)–निष्पाप, शुद्ध। उ० अनघ, अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज, अमित अविकार आनंदसिंधो। (वि० ५६)
अनचह्यो–बिना चाहा हुआ, आदर विहीन, अप्रिय। उ० नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं। (वि०२६०)
अनचाह–(सं०अन्+चाह)–१. अप्रिय, अनचाहा, २. घृणा।
अनछिन्न–(सं० अन्+छिन्न)–पूर्ण, अखंड।
अनजान–(सं० अन्+जान)–१. अज्ञ, नादान, २. बिना जाना, ३. भोला-भाला।
अनजानत–बिना जाने, अज्ञानतः। उ० श्रीमद नृप-अभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो। (गी०६।२)
अनट–(सं० अनृत)–उपद्रव, अत्याचार। उ० सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब। (मा०२।२६६)
अनत–(सं० अन्यत्र)–अन्यत्र, और कहीं। उ० उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं। (मा०१।११।२)
अनन्य–(सं०)–अन्य से संबंध न रखनेवाला, एकनिष्ठ। उ० सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत। (मा० ४।३) अनन्यगति–(सं०)–जिसको दूसरा सहारा या उपाय न हो। उ० भवहिं भगति मन, बचन करम अनन्यगति हरचरन की। (पा०२७)
अनपायनी–(सं० अनपायिनी)–सदा एक रस रहनेवाली। उ० प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्रीराम। (दो०१२५)
अनपावना–(सं० अन्+प्रापण)–अप्राप्य, जो दूसरे को न मिले।
अनबन–(सं० अन्+वर्णन)–१. भिन्न-भिन्न, नाना, अनेक, २. बिगाड़। उ० १. कंदमूल, जल-थलरुह अगनित अनबन भाँति। (गी०२।४७)
अनबोल–(सं० अन्+प्रा० बुल्लइ)–१. मौन, २. गूँगा, ३. बेहोश।
अनभएँ–(सं० अन्+भवन)–बिना हुए। उ० जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। (मा०१।१७२।१)
अनभल–(सं० अन्+भद्र)–अहित, अमंगल। उ० अनभल देखि न जाइ तुम्हारा। (मा०२।१६।४)
अनभले–बुरे, निंदित। उ० करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई। (वि०३५)
अनभलो–बुरा, जो अच्छा न हो। उ० तो तुलसी तेरो भलो, नतु अनभलो अघाइ। (दो०१५५)
अनभाई–(सं० अन्+?)–न भानेवाली, अप्रिय। उ० रुचि-भावती भभरि भागहिं, समुहाहिं अमित अनभाई। (वि० १८५)
अनभाए–असुहावने, बुरे। उ० अवध सकल नर नारि बिकल अति, अँकनि बचन अनभाए (गी०२।८८)
अनमनि–(सं०अन्यमनस्क)–उदास। उ० का अनमनि हसि कह हँसि रानी। (मा०२।१३।३)
अनमायो–(?)–जिसकी माप न हो सके, बहुत। उ० क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो। (गी०६।२१)
अनमिल–बेमेल, बेजोड़, अटपट। उ० अनमिल आखर अरथ न जापू। (मा०१।१५।३)
अनमोल–(सं० अन्+मूल्य)–जिसका मूल्य गणना से परे हो, अमूल्य। उ० बिकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ अनमोल कपोलनि की छबि है। (क०२।१३)
अनय–(सं०)–१. अनीति, अन्याय, २. विपत्ति, ३. दुर्भाग्य। उ० १. अनय-अंभोधि-कुंभज, निशाचर-निकर-तिमिर-घन-घोर-खर-किरण माली। (वि० ४४)
अनयन–(सं० अ+नयन) बिना नेत्र के, बिना आँख के। उ० गिरा अनयन नयन बिनु बानी। (मा० १।२२८।१)
अनयास–(सं० अनायास)–१. अनायास, बिना उद्योग, बिना परिश्रम, २. अकस्मात्। उ० १. करिहैं राम भावतो मन को, सुख-साधन अनयास महाफलु। (वि० २४)
अनयासा–दे० 'अनयास'। उ० नाम सप्रेम जपत अनयासा। (मा० १।२४।३)
अनरथ–(सं० अनर्थ)–अनर्थ, उत्पात। उ० लखन लखेउ भा अनरथ आजू। (मा० २।७४।४)
अनरथु–दे० 'अनरथ'। उ० अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। (मा० २।१५७।३)
अनरस–(सं० अन्+रस)–१. नीरस, शुष्क, २. रुखाई, कोप। उ० १. तौ नवरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे। (वि० १६६)
अनरसत–क्रोधित होते हैं। उ० हँसे हँसत अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई। (गी० १।१६)। अनरसे–१. क्रोधित होने पर, २ क्रोधित, क्रोधित हुए। उ० १. हँसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई। (गी० १।१६) २. आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके। (गी० १।१२)
अनरसनि–१. उदासीनता, २. शुष्कता ३. मनोमालिन्य। उ० १. रोवनि-धोवनि अनखानि अनरसनि, डिठि-मुठि निठुर नसाइहौं। (गी० १।१८)
अनर्थ–(सं०)–१. उत्पात, उपद्रव, २. उलटा अर्थ, अयुक्त अर्थ। उ० १. जानत अर्थ अनर्थ रूप, तमकूप परब यहि लागे। (वि० ११७) अनर्थकारी–(सं० अनर्थकारिन्) १. उपद्रवी, २. हानिकारी, ३. उलटा अर्थ निकालनेवाला।
अनल–(सं०)–१. आग, २. तीन की संख्या, ३. विभीषण का मंत्री, ४. चीता, ५. भिलावा। उ० १. अवटै अनल अकाम बनाई। (मा० ७।११७।७) अनलहि–आग को।

उ० तव प्रभाव बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल। (मा० ५।३३)। अनलहु-अनल भी, आग भी। उ० सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। (मा० ३।२।४)
अनवद्यं-दे० 'अनवद्य'। उ० अमलमखिलमनवद्यमपारं। (मा० ३।११।श्लो०६)
अनवद्य-(सं०)-निर्दोष, अनिन्द्य, स्वच्छ। उ० अज अनवद्य अकाम अभोगी। (मा०१।६०।२)
अनवरत-(सं०)-१. लगातार, अटूट, २. सदैव, अविराम। उ० १. देहि कामारि श्रीराम पद पंकजे भक्तिमनवरत गत भेद माया। (वि०१०)
अनबरषे-(सं० अन्+वर्षा)-पानी न बरसने पर, वर्षा न होने पर। उ० अति बरषे अनबरषे हूँ देहिं दैवहिं गारी। (वि०३४)
अनबिचार-(सं० अन्+विचार)-नासमझी से, बिना बिचारे। उ० अनबिचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी। (वि०१२१)
अनवसर-(सं०)-कुसमय, बुरे वक्त में। उ० सोइ लंका अतिथि अनवसर राम तृनासन ज्यों दई। (गी०५।३८)
अनवस्थित-(सं०)-अस्थिर, अशांत, चंचल।
अनसमुझे-(सं० अन्+?)-बिना समझे, न समझने पर। उ० अनसमुझे, अनुसोचनो, अवसि समुझिए आप। (दो० ४८६)
अनसूया-(सं०)-१. अत्रि मुनि की स्त्री, ये दक्ष की चौबीस कन्याओं में से एक थीं। इनकी आराधना से प्रसन्न होकर विष्णु दत्तात्रेय के रूप में, ब्रह्मा चन्द्रमा के रूप में, और शिव दुर्वासा के रुप में इनके पुत्र हुए और इनकी गोद में खेले। अपने पातिव्रत धर्म के लिए अनसूया बहुत प्रसिद्ध हैं। मानस में जानकी से इनकी भेंट हुई है। जानकी ने इनसे उत्तम शिक्षाएँ ग्रहण कीं और इनको नाना प्रकार के उपहार दिए। २. पराए गुण में दोष न देखना।
अनहित-(सं० अन्+हित)-१. अहित, उपकार, बुराई, २. अहितचिंतक, शत्रु। उ० १. अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। (मा०२।२६।१) २. बंदउँ संत समानचित हित अनहित नहिं कोय। (मा०१।३क) अनहितन-बैरियों, शत्रुगण। उ० याते बिपरीत अनहितन की जानि लीबी। (गी०१।६४) अनहितौ-बुराई भी, अहित भी, अनिष्ट भी उ० निज गुन अरिकृत अनहितौ दास-दोष सुरति चित रहित न दिए दान की। (वि०४२)
अनाचार-(सं०)-निन्दित आचरण,भ्रष्टता, दुराचार।
अनाज-(सं० अन्नाद)-अन्न, गल्ला।
अनाथ-(सं०)-१. जिसका कोई नाथ न हो, नाथहीन, २. असहाय, ३. दीन, दुखी, मुहताज। उ० १. जरइ नगर अनाथ कर जैसा। (मा० ५।२६।३) अनाथनाथ-(सं०-अनाथ+नाथ)-अनाथों के नाथ, भगवान, दीनानाथ। उ० हाथ उठाइ अनाथ नाथ सों, पाहि पाहि प्रभु पाहि पुकारी। (कृ० ६०) अनाथनि-अनाथों की। उ० हति नाथ अनाथनि पाहि हरे। (मा० ७।१४। छं० ४) अनाथपति-अनाथों के स्वामी, भगवान। उ० हौं सनाथ ह्वैहौं सही तुमहूँ अनाथपति, जो लघुतहि न भितैहो। (वि० २७०)
अनाथपाल-अनाथों की रक्षा करनेवाले। उ० आलसी-अभागी अघी-आरत-अनाथपाल, साहेब समर्थ एक नीके मन गुनी मैं। (क० ७।२१)
अनाथा-दे० 'अनाथ'। उ० तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। (मा० ५।७।१)
अनादर-(सं०)-असम्मान, बेइज़्ज़ती। उ० एते अनादर हूँ तोहि तें न होतो। (वि० १७६)
अनादि-(सं०)-जिसकी आदि न हो। जो सर्वदा से हो। उ० अकथ अगाध अनादि अनूपा। (मा० १।२३।१) विशेष-शास्त्रकार ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को अनादि मानते हैं।
अनादी-दे० 'अनादि। उ० कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी। (मा० १।१०८।३)
अनाम-(सं०) बिना नाम का। उ० नाम अनेक अनाम निरंजन। (मा० ७।३४।३)
अनामयं-दे० 'अनामय'। उ० रन जीति रिपुदल बंधुजुत पस्यामि राममनामयं। (मा० ६।१०७।छं० १)
अनामय-(सं०)-१. रोग रहित, स्वस्थ, २. विकार रहित, ३. स्वास्थ्य। उ० २. ब्रह्म अनामय अज भगवंता। (मा० ५।३६।१)
अनामा-दे० 'अनाम'। उ० एक अनीह अरूप अनामा। (मा० १।१३।२)
अनायास-(सं०)-बिना परिश्रम, बैठे-बिठाए। उ० अनायास उधरी तेहिं काला। (मा० २।२६७।२)
अनारंभ-(सं०)-१. कार्य आरंभ न करना, २. आसक्तिपूर्वक कार्य आरंभ न करना। उ० २. अनारंभ अनिकेत अमानी। (मा० ७।४६।३)
अनिन्दिता-(सं०)-निन्दा रहित, उत्तम। उ० जगदंबा संततमनिन्दिता। (मा० ७।२४।५)
अनिकेत-(सं०)-स्थानरहित, बिना घर बार का, सर्वत्र विचरनेवाला, विरक्त। उ० अनारंभ अनिकेत अमानी। (मा० ७।४६।३)
अनित्य-(सं०)-विनाशी, क्षणिक, नश्वर।
अनिप-(सं० अणिप)-सेनापति, सेनानी। उ० अनिप अकंपन अरु अतिकाया। (मा० ६।४६।५)
अनिमा-दे० 'अणिमा'। उ० तिय-बरबेष अली रमा सिधि अनिमादि कमाहिं। (गी० १।५)
अनियत-(सं० आनयन) लाते, धारण करते। उ० महिमा समुझि उर अनियत है। (वि० प० १८३) अनिहैं- ले आवेंगे। उ० जौ जमराज काज सब परिहरि यही ख्याल उर अनिहैं। (वि० ६५) अनिहै-ले आवेगा।
अनियारे-(सं० अणि+हि आर)-अनीदार, नोकीले, पैने तेज़। उ० कटितट पटपीत तून सायक अनियारे। (गी० १।३७)
अनिर्वाच्य-(सं०) अकथनीय, बहुत। उ० पावा अनिर्वाच्य विश्रामा। (मा० ५।८।१)
अनिल-(सं०)-वायु, पवन, हवा। उ० सोइ जल अनल अनिल संघाता। (मा० १।७।६)
अनिश्चय-(सं०)-जिसका निश्चय न हो।
अनिशं-(सं०)-सर्वदा, लगातार, रोज़। उ० ब्रह्मा शंभु पूर्णेन्द्र सेव्यमनिशं। (मा० ५।१। श्लो०१)

अनिष्ट–(सं०)–अहित, बुरा, हानि, अमंगल।

अनिस–(सं० अनिश)–निरंतर, लगातार, सर्वदा।

अनी–(सं० अनीक)–१. सेना, २. समूह, ३. नोक, सिरा। उ० १. सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी। (मा० २।१२६।छं० १)

अनीक–(सं०)–१. सेना, २. युद्ध, ३. समूह, ४. बुरा, ख़राब। उ० १. रहे निज निज अनीक रचि रूरी। (मा० १।१८८।३)

अनीत–(सं० अनीति)– अनीति, नीति के विरुद्ध।

अनीति–(सं०) १. नीति के विरुद्ध कार्य, २. अन्याय, अत्याचार। उ० १. कहि अनीति ते मूदहिं काना। (मा० १।२६३।४)

अनीती–(सं० अनीति)–अत्याचार, अन्याय। उ० अति नय निपुन न भाव अनीती। (मा० ५।४६।२)

अनीप–(हिं० अनी + सं० प)–सेनापति, सेनाध्यक्ष।

अनीस–(सं० अनीश)–१. अनीश, अनाथ, २. असमर्थ, ३. सबसे ऊपर, सर्वश्रेष्ठ, । ४. बुरे स्वामी, ५. जीव, जो ईश्वर न हो। उ० १. अति अनीस नहीं जाए गनाए। (वि० १३६) ४. सुर स्वारथी, अनीस, अलायक, निठुर दया चित नाहीं। (वि० १४५) अनीसहिं–जीव में। उ० ईस अनीसहिं अंतरु तैसें। (मा० १।७०।१)

अनीह–(सं०)–१. इच्छारहित, निस्पृह, २. बेपरवाह। उ० १. व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप। (मा० १।२०५)

अनीहा–१. निष्कामता, अनिच्छा, २. निश्चेष्टता।

अनु–(सं०)–१. हाँ, २. पीछे (अनुकरण), ३. सदृश (अनुकूल), ४. साथ (अनुकंपा), ५. प्रत्येक (अनुदिन), ६. बारंबार (अनुशीलन)। उ० १. देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। (मा० २।३०।२)

अनुकंपा–(सं०)–दया, अनुग्रह।

अनुकथन–(सं०)–क्रमबद्ध वचन, कथा, वार्तालाप। उ० सुनि अनुकथन परस्पर होई। (मा० १।४१।२)

अनुकरन–(सं० अनुकरण)–अनुकरण, नकल।

अनुकूल–(सं०)–१. मुआफिक, २. प्रसन्न, ३. हितकर। उ० १. है अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै। (वि० ८९)

अनुकूला–दे०–'अनुकूल'। उ० २. मिलइ जो संत होइँ अनुकूला। (मा० ३।१६।२)

अनुकूलेउ–अच्छे लगे, रुचिकर लगे। उ० मध्य बरात बिराजत अति अनुकूलेउ। (जा० १४०) अनुकूलो–१. अनुकूल हो, २. प्रसन्न हो। उ० १. राम गुलाम तुही हनुमान गुसाइँ गुसाइँ सदा अनुकूलो। (ह० ३६)

अनुक्रम–(सं०) क्रम, सिलसिला, तरतीब।

अनुगंता–(सं० अनु + गंत)–पीछे-पीछे चलनेवाला, आज्ञाकारी। उ० बचन चय-चातुरी परसुधर-गर्वहर, सर्वदा राम भद्रानुगंता। (वि० ३८)

अनुग–(सं०)–पीछे-पीछे चलनेवाला, आज्ञाकारी। उ० लै धावौं, भंजौं मृनाल ज्यौं तौ प्रभु अनुग कहावौं। (गी० १।८७) अनुगनि–सेवक गण। उ० उतरि अनुज अनुगनि समेत प्रभु, गुरु द्विजगन सिर नायो। (गी०६।२१)

अनुगत–(सं०)–पीछे-पीछे चलनेवाला। उ० अहि अनुगत सपने बिबिध जाइ पराय न जाहि। (स० ४१८)

अनुगामी–(सं० अनुगामिन्)–१. दास, सेवक, २. पीछे-पीछे चलनेवाला, ३. सहवास करनेवाला। उ० १. मोहि जानिअ आपन अनुगामी। (मा० १।२८१।४) २. सब सिधि तव दरसन अनुगामी। (मा० १।३४।३)

अनुगृहीत–(सं०)–उपकृत, जिस पर अनुग्रह किया गया हो।

अनुग्रह–(सं०)–१. दया, कृपा, २. अनिष्ट निवारण। उ० १. करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुन सदन। (मा० १।१। सो० १) २. साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल। (मा० ७।१०८ घ)

अनुचर–(सं०)–दास, सेवक। उ० मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। (मा० १।२७८।१) अनुचरन्ह–अनुचरों ने, सेवकों ने। उ० सम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। (मा० ७।५६।२)

अनुचरी–(सं०)–दासी, सेविका। उ० तव अनुचरी करउँ पन मोरा। (मा० ५।६।३)

अनुचित–(सं०) जो उचित न हो, अयोग्य। उ० यह अनुचित नहिं नेवत पठावा। (मा० १।६२।१)

अनुज–(सं०)–जिसका जन्म पीछे हो, छोटा भाई। उ० रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर, कौन भजत अधिकारी। (वि० १६६) अनुजनि–छोटे भाइयों को। उ० गिरि घुट्ठरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाए। (गी० १।२९) अनुजन्ह–छोटे भाइयों को। उ० आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई। (मा० १।२०५।३) अनुजबधू–(सं० अनुज + बधू) छोटे भाई की स्त्री। उ० अनुजबधू भगिनी सुतनारी। (मा० ४।६।४) अनुजहि–अनुज को। उ० राम देखावहिं अनुजहि रचना। (मा० १।२२५।२)

अनुजा–(सं०)–बहिन, छोटी बहिन। उ० नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा। (मा० ७।१०२।३)

अनुतप्त–(सं०)–१. उत्तप्त, गरम, २. खेदयुक्त।

अनुताप–(सं०)–१. पछतावा, २. तपन, दाह, ३. दुःख खेद।

अनुदिन–(सं०)–नित्य प्रति, प्रतिदिन। उ० हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़ौ अनुदिन अधिकाई। (वि० १०३)

अनुपम–(सं०) उपमारहित, बेजोड़। उ० कटितट रहति चारु किंकिनि रव अनुपम बरनि न जाई। (वि० ६२)

अनुपमेय–(सं०)–अनुपम, उपमा रहित, बेजोड़।

अनुपान–(सं०)–वह वस्तु जो औषधि के साथ या उसके बाद खाई जाय।

अनुबंध–(सं०)–१. संसर्ग, लगाव, २. आरंभ, ३. अनुसरण, ४. होनेवाला शुभ या अशुभ।

अनुबादा–(सं० अनुवाद)–पुनर्कथन, फिर से कहना। २. उल्था, ३. कीर्तन। उ० ३. सुनत फिरउँ हरि गुन अनुबादा। (मा० ७।११०।६)

अनुभए–(सं० अनुभव)–१. पीछे हो गए, २. प्राप्त हुए, ३. अनुभव किए, ४. उत्पन्न हुए। उ० ३. नए-नए नेह अनुभए देहगेह बसि, परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो। (वि० २६४) अनुभयउ–अनुभव किया। उ० मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। (मा० २।३।३) अनुभवत–अनुभव

करता है। उ० तुलसिदास अनुराग अवध आनँद, अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई। (गी० १।२७) अनुभवति—अनुभव कर रही है, अनुभव करती है। उ० उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। (मा० १।२४२।४) अनुभवहि—अनुभव करते हैं। उ० ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। (मा० १।२२।१) अनुभवहीं—अनुभव कर रहे हैं। उ० बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं। (मा० २।१०८।२) अनुभवे—अनुभव किए। उ० वंचक बिषय बिबिध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे। (बि०१६६) अनुभवै—अनुभव हो, जान पड़े, समझ में आवे। उ० सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत-बियोगी। (बि० १६७) अनुभो—अनुभव करो, अनुभव कीजिए। उ० ऋषिराज जाग भयो महाराज अनुभो। (गी० १।६४)

अनुभव—(सं०) साक्षात करने से प्राप्त ज्ञान, परीक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान। उ० जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव-बिपति सतावै। (बि० ११६) अनुभवगम्य—(सं०) अनुभव से जानने योग्य। उ० अनुभवगम्य भजहिं जेहिं संता। (मा० ३।१३।६)

अनुभाऊ—(सं० अनुभाव) प्रभाव, महिमा। उ० बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। (मा० २।२८३।२)

अनुभाव—(सं०)—१. प्रभाव, २. महिमा, बड़ाई।

अनुमत—(सं० अनुमति)—१. आज्ञा, अनुमति, २. सम्मति।

अनुमति—(सं०)—१. चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा जिसमें चंद्रमा की कला पूरी नहीं होती। २. आज्ञा, हुक्म।

अनुमान—(सं०) १. अटकल, अंदाज, २. अटकल लगालो, अनुमान करो। उ० २. सीतल बानी संत की, ससि हू ते अनुमान। (वै० २१) अनुमानि—अनुमान कर, विचार कर। उ० अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं। (बि० १४१) अनुमानी—१. अनुमान करके, विचार करके, २. अनुमान किया। उ० १. पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी। (मा० २।४५।२) अनुमाने—१. अनुमान किया, २. अनुमान से, ३. अनुमान या विचार करते हुए। उ० १. ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने।(मा० १।६३।२) ३. पूजा लेत देत पलटे सुख हानि लाभ अनुमाने। (बि० २३६।२)

अनुमाना—दे० 'अनुमान'। उ० १. करत कोटि बिधि उर अनुमाना। (मा० २।१२१।२)

अनुमोदन—(सं०)—१. प्रसन्नता का प्रकाशन, २. समर्थन, ताईद। उ० १. कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। (मा० ७।१२३।३)

अनुरक्त—(सं०)—आसक्त, लीन।

अनुराग—(सं०)—प्रीति, प्रेम, आसक्ति। उ० जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं। (गी० १।५६)

अनुरागइ—प्रेम करता है। उ० सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ। (पा० ६७) अनुरागऊँ—अनुरागी होऊँ, प्रेम करूँ। उ० जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ रामपद अनुरागऊँ। (मा० ४।१०। छं० २) अनुरागत—प्रेममय हो जाता है, प्रसन्न हो जाता है। उ० बरषा ऋतु प्रवेस बिसेष गिरि देखन मन अनुरागत। (गी० २।५०) अनुरागहीं—अनुराग करें, प्रेम करें। उ० मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं। (मा० ७।१३। छं० ६) अनुरागहू—अनुराग करो, प्रेम करो। उ० बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू। (मा० ३।३६। छं० १) अनुरागिहै—प्रेम करेगा। उ० सब रामनाम सों स्वभाव अनुरागिहै। (बि० ७०) अनुरागीं—प्रेममय हो गईं। उ० प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। (मा० २।८।१) अनुरागु—प्रेम कर। उ० अब लागहि अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें। (बि० १९८) अनुरागे—१. प्रेम के कारण, २. प्रेम किए। उ० १. सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे। (मा० ७।१७।१) अनुरागेउँ—अनुरक्त हो गया प्रेम में पड़ गया। अनुरागै—प्रेम होता है, प्रेम करता है। अनुरागौं—प्रेम करूँ। उ० परिहरि पाँय काहि अनुरागौं। (बि० १७७) अनुराग्यो—अनुरक्तित, अनुराग में डूबा। उ० ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत बिषय अनुराग्यो। (बि० १७०)

अनुरागा—दे० 'अनुराग'। उ० भयउ रमापति पद अनुरागा। (मा० १।१२५।२)

अनुरागी—प्रेम करनेवाले। उ० की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। (मा० ५।६।४)

अनुरूप—(सं०)—१. समान, सदृश, २. योग्य, अनुकूल, उपयुक्त। उ० २. मति अनुरूप कहउँ हित ताता। (मा० ५।३८।१)

अनुरोध—(सं०)—१. रुकावट, बाधा, २. प्रेरणा, ३. आग्रह, दबाव, ४. विनय।

अनुरोधु—दे० 'अनुरोध'। उ० १. सोधु बिनु अनुरोध ऋतु के, बोध बिहित उपाउ। (गी० ५।४)

अनुरोधू—दे० 'अनुरोध'। उ० १. राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। (मा० २।५५।२)

अनुलेपन—(सं०)—१. लेपन, २. सुगंधित द्रव्यों का शरीर में मर्दन। उ० १. भृगुपद-चिह्न पदिक उर सोभित, मुकुत-माल कुंकुम अनुलेपन। (गी० ७।१६)

अनुवर्ती—(सं० अनुवर्त्तिन्)—१. रक्षक, २. सेवक, ३. अनुयायी। उ० १. सामगाताग्रनी कामजेताग्रनी, रामहित रामभक्तानुवर्ती। (बि० २७)

अनुवाद—(सं०)—१. बार-बार कहना, २. तर्जुमा, उल्था, ३. निन्दा।

अनुशासन—(सं०)—१. आज्ञा, २. उपदेश, ३. व्याख्यान।

अनुष्ठान—(सं०)—१. आरंभ, २. प्रयोग।

अनुसंधाना—(सं० अनुसंधान)—१. अनुसंधान, खोज, २. इच्छा, कामना, ३. प्रयत्न। उ० २. हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना। (मा० १।१५६।१)

अनुसर—(सं० अनुसार)—अनुसार, समान, मुआफिक। उ० जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं। (मा० २।१४१।३)

अनुसरई—(सं० अनुसरण)—अनुसरण करता, पीछे-पीछे चलता। उ० जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई। (मा० २।१७२।४) अनुसरऊँ—१. अनुसरण करूँ, अनुसरण करता, २. जारी रखता। उ० २. तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ। (मा० ७।११०।१) अनुसरहीं—अनुसरण करते हैं, अनुसार काम करते हैं। उ० फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं। (मा० १।३।५) अनुसरहुगे—अनुसार करोगे, अनुसरण करोगे। उ० दीन हित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रनतपाल, चित-मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे। (बि० २११) अनु-

सरहू–अनुसरण करो, अनुसार कार्य करो। उ० सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। (मा० २।१७६।३) अनुसरिए–अनुसरण कीजिए। उ० कपि केवट कीन्हें सखा जेहि सील सरल चित तेहि सुभाव अनुसरिए। (वि० २७१) अनुसरी–१. अनुसरण करे, २. अनुसार बर्ताव करनेवाली। उ० १. धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी। (मा० ७।१२७।३) अनुसरु–अनुसरण कर, पीछे पीछे चल। उ० स्रवन कथा, मुखनाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरु। (वि० २०५) अनुसरे–अनुसार व्यवहार किया, अनुसरण किया। उ० अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे। (मा० ६।११०।६) अनुसरेहू–अनुसरण करना, अनुसार चलना। उ० मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू। (मा० ७।२०।१) अनुसरैं–अनुसार व्यवहार करते हैं, अनुकूल व्यवहार करें। उ० नीच ज्यों टहल करैं राखैं रुख अनुसरैं। (गी० १।६६)

अनुसार–(सं०)–अनुकूल, सदृश, समान, मुआफिक। उ० कहउँ नाम, बड़ राम तें निज बिचार अनुसार। (मा० १।२३)

अनुसारा–दे० 'अनुसार'। उ० सो सब कहिहउँ मति अनुसारा। (मा० १।१४१।३)

अनुसारी–(सं०)–१. आरंभ की, २. पीछे-पीछे चलनेवाला, ३. अनुकूल। उ० १. पुलकित तन अस्तुति अनुसारी। (मा० ७।३४।१) २. तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी। (मा० ७।८६।३) ३. देसकाल अवसर अनुसारी। (मा० २।४५।३)

अनुसासन–(सं० अनुशासन) १. अनुशासन, आज्ञा, २. उपदेश, ३. व्याख्यान। उ० १. बोला बचन पाइ अनुसासन। (मा० ५।३८।२)

अनुसासनु–दे० 'अनुसासन'। उ० १. बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु। (मा० २।२५७।३)

अनुसुइया–(सं० अनसूया)–दे० 'अनसूया'। उ० अनुसुइया के पद गहि सीता। (मा० ३।५।१)

अनुसृत्य–(सं०)–१. अनुसार, २. पीछे चलते हुए, ३. अनुसरण, ४. प्रतिच्छाया, ५. प्रतिलिपि।

अनुसोचनो–(सं० अनु + शोचन)–बार बार सोचना, मनन करना। उ० अनसमुझे अनुसोचनो, अवसि समुझिए आपु। (दो० ४८६)

अनुहर–(सं० अनुहार)–सदृश, समान, अनुहार।

अनुहरइ–बराबरी करता, समानता करता, समानता करता है। उ० सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। (मा० १।२७७।४) अनुहरत–१. जो अनुसार हो, समानता करते हुए, २. उपयुक्त, योग्य, अनुकूल। उ० १. स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार। (दो० ५४८) २. मोहि अनुहरत सिखावन देहू। (मा० २।१७७।४) अनुहरति–सदृश, समान, मिलती-जुलती, समानता रखती हुई। उ० बर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा। (मा० ११२) अनुहरि–अनुसार, समान, अनुसार काम करके। उ० अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा। (मा० २।२४१।२) अनुहरिया–समानता करनेवाला, बराबरी करनेवाला। उ० कुछ अनुहरिया केवल चंद समान। (ब० ६) अनुहारि–(सं० अनुहार)–१. समान, २. समानता करके, ३. अनुसार, योग्य, उपयुक्त। उ० १. चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि। (ब०१६) ३. मति अनुहारि सुबारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ। (मा० १।४३क)

अनुहार–(सं०)–१. सदृश, तुल्य, समान, २. आकृति।

अनुहारी (१)–(सं० अनुहार)–दे० 'अनुहार'। उ० १. सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। (मा० १।२८।४)

अनुहारी (२)–(सं० अनुहारिन्)–अनुकरण करनेवाला।

अनूठा–(सं० अनुत्थ)–१. अपूर्व, विचित्र, २. सुन्दर।

अनूप–(सं०)–१. उपमारहित, अपूर्व, विचित्र, अनुपम, २. सुन्दर, ३. जलप्रायदेश, ४. भैंस। उ० १. अरथ अनूप सुभाव सुभासा। (मा० १।३७।३) अनूपहिं–अनूप को, अनोखे को। उ० कहि न सकहिं सत सेष अनंद अनूपहिं। (जा० १३७)

अनूपम–(सं० अनुपम)–उपमारहित, सुन्दर। उ० अगुन अनूपम गुन निधान सो। (मा० १।१९।१)

अनूपा–दे० 'अनूप'। उ० पन्नगारि यह रीति अनूपा। (मा० ७।११६।१)

अनूपान–(सं० अनुपान)–अनुपान, दवा के साथ खाए जानेवाला पदार्थ। उ० अनूपान श्रद्धा मति पूरी। (मा० ७।१२२।४)

अनूमान–(सं० अनुमान)–अनुमान, अंदाज़। उ० अनूमान साछी रहित होत नहीं परमान। (स० ५०६)

अनृत–(सं०)–१. मिथ्या, असत्य, २. अन्यथा। उ० १. साहस अनृत चपलता माया। (मा० ६।१६।२)

अनेक–(सं०)–एक से अधिक, बहुत, असंख्य। उ० सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक। (मा० ७।४१)

अनेका–दे० 'अनेक'। उ० मनिगन मंगल बस्तु अनेका। (मा० २।६।२)

अनेरे–(सं० अनृत)–१. झूठ, व्यर्थ, २. झूठा। उ० २. निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर नारिऊ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं। (क० ७।१७४)

अनेरो–दे० 'अनेरे'। उ० २. अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो। (वि० २७२)

अनै–(सं० अनय)–अनीति। उ० नाम-प्रताप पतित-पावन किये जे न अघाने अघ अनै। (गी० ५।४०)

अनैसी–(सं० अनिष्ट)–अप्रिय, अनिष्ट, बुरी। उ० राम सदा सरनागत की अनखौहीं अनैसी सुभाय सही है। (क० ७।६)

अनैसें–टेढ़े, कुदृष्टि से, बुरी भाँति से। उ० अजहुँ अनुज तब चितव अनैसें। (मा० १।२७३।४)

अनैसो–बुरा, अप्रिय। उ० नाम लिए अपनाइ लियो, तुलसी सों कहौ जग कौन अनैसो। (क० ७।४)

अनोखा–(सं० अन् + ईक्ष्)–१. अनूठा, निराला, २. नूतन, नया, ३. सुंदर।

अन्न–(सं०)–१. अनाज, २. पकाया अनाज, ३. सर्वभक्षी, ४. सूर्य, ५. पृथ्वी, ६. विष्णु, ७. प्राण, ८. जल। उ० १. अन्न कनक भाजन भरि जाना। (मा० १।१०१।४)

अन्नपूरना–(सं० अन्नपूर्णा)–अन्नपूर्णा, अन्न की अधिष्ठात्री देवी। उ० जौलों देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना। (क० ७।१४८)

अन्नप्रासन–(सं० अन्नप्राशन)–बच्चों को सर्वप्रथम अन्न

चटाने का संस्कार । उ० नामकरन सुअन्नप्रासन बेद बाँधी नीति । (गी० ७।३९)

अन्ने-(सं० अन्य)-और, दूसरे।

अन्य-(सं०)-दूसरा, भिन्न, और कोई।

अन्यतः-(सं०)-१. किसी और जगह से, अन्यत्र से, २. किसी और से। उ० १. रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। (मा० १।१।श्लो० ७)

अन्यथा-(सं०)-१. विपरीत, उलटा, २. झूठ, असत्य । उ० १. किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्र श्राप अति घोर । (मा० १।१७४)

अन्याई-(सं० अन्यायिन्)-१. अन्याय करनेवाला, अधर्मी, २. नटखट। उ० २. या ब्रज में लारिका घने हौंही अन्याई । (कृ० ८)

अन्याउ-(सं० अन्याय)-१. अन्याय, २. शरारत । उ० २. जे अन्याउ करहिं काहू को, ते सिसु मोहिं न भावहिं। (कृ० ४)

अन्याय-(सं०)-न्याय के विरुद्ध, अधर्म, अनीति, अत्याचार।

अन्याव-(सं० अन्याय)-दे० 'अन्याय' । उ० अन्याव न तिनको हौं अपराधी सब केरो । (वि० २७२)

अन्ये-(सं० अन्य)-अन्य, और दूसरे। उ० असुर सुर नाग-नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये। (वि० ५७)

अन्वहं-(सं०)-नित्य, सर्वदा, निरंतर । उ० समं सुसेव्य-मन्वहं । (मा० ३।४।छं०१०)

अन्वित-(सं०)-युक्त, सहित, शामिल ।

अन्वेषण-(सं०)-खोज, ढूँढ़, तलाश । उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः । (मा० ४।१। श्लो०१)

अन्हवाइ-(सं० स्नान)-स्नान कराकर । उ० मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ। (मा० १।४३क) अन्हवाइय-स्नान करवाइए। उ० जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो । (रा० ३) अन्हवाई-१. स्नान कराकर, २. स्नान कराया । उ० २. बधु देखाइ सुरसरि अन्हवाई। (मा० २।६४।४) अन्हवाएँ-१. स्नान कराए, २. स्नान कराए हुए। उ० २. रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ। (मा० १।११।३) अन्हवाए-स्नान कराया। उ० एक बार जननी अन्हवाए । (मा० १।२०१।१) अन्हवावउँ-१. स्नान कराता हूँ, २. नहलाऊँ। उ० १. शंकर-चरित-सुसरित मनहिं अन्हवावउँ। (पा० ३) अन्हवावहु-स्नान कराओ। उ० प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई । (मा० ७।११।१) अन्हवावा-स्नान कराया । उ० नृपतनु बेद बिदित अन्हवावा । (मा० २।१७०।१)

अन्हवैया-नहानेवाले, स्नान करनेवाले । उ० भरत, राम, रिपुदवन, लखन के चरित-सरित अन्हवैया । (गी० १।६)

अपंडित-(सं०)- ज्ञानशून्य, मूर्ख ।

अप (१)-(सं० अप्)-जल, पानी। उ० रज अप अनल अनिल नभ जड़ जानत सब कोइ। (स० २०३)

अप (२)-(सं०)-एक उपसर्ग जिसके लगाने से उलटा, विरुद्ध, बुरा, अधिक आदि का भाव आ जाता है।

अपकर्ष-(सं०)-अवनति, घटाव, पतन ।

अपकार-(सं०)-१. अनुपकार, बुराई, अहित, २. अनादर, अपमान, ३. अत्याचार। उ० १. मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी । (मा० १।१३७।४)

अपकारा-दे० 'अपकार' । उ० १. तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा । (मा० ६।२४।३)

अपकारी-(सं० अपकारिन्)-हानि या अपकार करनेवाला, विरोधी। उ० जे अपकारी चार तिनकर गौरव मान्य तेइ । (दो० ५५१)

अपकीरति-(सं० अपकीर्ति)-अपकीर्ति, बदनामी, अपयश । उ० बधें पाप अपकीरति हारें । (मा० १।२७३।४)

अपगत-(सं०)-१. भागा हुआ, २. नष्ट, मृत । उ० १. अपगत खे सोई अवनि सों पुनि प्रगट पताल। (स० १६०)

अपगति-(सं०)-दुर्दशा, नीची गति ।

अपचारु-(सं० अपचार)-१. अपचार, अनुचित बर्ताव, २. अहित, अनिष्ट, ३. अनादर, निन्दा, ४. भूल, भ्रम, ५. कुपथ्य । उ० १. बिबुध बिमल बानि गगन, हेतु प्रजा अपचारु । (प्र० ६।५।३)

अपछरा-(सं० अप्सरा)-अप्सरा, रंडी । उ० नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना । (मा० ६।१०।५)

अपजस-(सं० अपयश)-अपयश, बदनामी । उ० अपजस नहिं होय तुम्हारा । (वि० १२५)

अपजसु-दे० 'अपजस' । उ० तजहु सत्य जग अपजसु लेहू । (मा० २।३०।३)

अपडर-(सं० अप+डर)-१. मिथ्या डर, २. डर, भय । उ० १. अपडर डरेउँ न सोच समूलें । (मा० २।२६७।२) अपडरनि-झूठे डरों से, मिथ्या डरों से । उ० अब अपडरनि डर्यो हौं। (वि० २६६) अपडरे-मिथ्या डर से डरे । डर गए । उ० बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे । (मा० ६।८४।छं० १)

अपत (१)-(सं० अपात्र)-अपवित्र, अधम, पातकी, नीच । उ० पावन किय रावन रिपु तुलसिहु से अपत । (वि० १३०)

अपत (२)-(सं० अ+पत्र)-नग्न, निर्लज्ज, बेशर्म ।

अपत (३)-(सं अपत्)-विपत्ति, आपत्ति ।

अपति (१)-(सं० अ+पति) पतिहीन, विधवा ।

अपति (२)-(सं० अ + पति)- दुर्दशा, दुर्गति ।

अपतु-दे० 'अपत' (१) । उ० अपतु अजामिलु गजु गनि-काऊ । (मा० १।२६।४)

अपथ-(सं०)-वह मार्ग जो चलने योग्य न हो, कुमार्ग ।

अपदेश-(सं०)-१. बहाना, ब्याज, २. छल, ३. लक्ष्य ।

अपन-(सं० आत्मनो)-अपना । उ० अपन करम बखानि कै आपु बँधेउ सब कोइ । (स० ६८२)

अपनपउ-आत्मीयता, अपनापन । उ० हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु । (मा० २।१६०)

अपनपा-१. अपनापन, २. आत्मसम्मान । अपनपो-अहं, अपनापन। उ० पितु मातु गुरु स्वामी।अपनपो तिय तनय, सेवक सखा । (वि० १३५) अपनपौ-१. अपनापन, आत्मीयता, २. आत्मभाव, ३. संज्ञा, सुधि, ज्ञान, ४. अहंकार, गर्व, ५. आत्मगौरव । उ० ४. सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ । (मा० १।१६१।१)

अपना-निज का । उ० सीतहि सेइ करहु हित अपना । (मा० ५।११।१)

अपनाइ—अपनाकर, निज का बनाकर। उ० राखे अपनाइ, सो सुभाव महाराज को। (क० ७।१३) अपनाइअ—अपना लीजिए। उ० सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। (मा० ६।११६।४) अपनाइए—अपना लीजिए, अपना कीजिए। उ० देव! दिनहूँ दिन बिगरिहै बलि जाउँ, बिलंब किए अपनाइए सबेरो। (वि० २७२) अपनाई—१. वश में कर लिया, २.अपना लिया। उ० १.रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। (मा० २।१८।३) अपनाए—अपना लिया। उ० आगे परे पाहन कृपा, किरात कोलनी, कपीस, निसचिर अपनाए नाए माथ जू। (क० ७।१६) अपनाय—अपना करके। अपनायहि—अपना बना लेने ही। उ० ज्यों त्यों तुलसिदास कोसलपति अपनायहि पर बनिहैं। (वि० ९५) अपनाया—अपना लिया, अपना बना लिया। उ० जब ते रघुनायक अपनाया। (मा० ७।८९।२) अपनायो—अपना बना लिया, अपना लिया। उ० अवनि, रवनि, धन, धाम, सुहृद, सुत, को न इंद्रहि अपनायो। (वि० २००) अपनाव—१. अपनाने का भाव, २.अपना लेना, अपनाओ। अपनावा—अपना लिया। उ० निज जन जानि ताहि अपनावा। (मा० ५।५०।१)

अपनायत—आत्मीयता। उ० देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी। (वि० १४७)

अपनियाँ—अपनी। उ० तुलसिदास प्रभु देखि मगन भईं प्रेम बिवस कछु सुधि न अपनियाँ। (गी० १।३१)

अपनी—निजी, निज की। उ० लागि अगम अपनी कदराई। (मा० २।७२।१)

अपने—निज के। उ० कहउँ न तोहि मोह बस अपने। (मा० २।२०।३) अपनेनि—अपने का बहुवचन, अपनों। उ० अपनेनि को अपनो बिलोकि बल सकल आस बिस्वास बिसारी। (कृ० ६०)

अपनो—अपना। उ० महरि तिहारे पाँय परौं अपनो ब्रज लीजै। (कृ० ७)

अपनौ—अपनी बात भी, अपना भी। उ० तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनौ कछुक जनावों। (वि० २३२)

अपबरग—(सं० अपवर्ग)—अपवर्ग, मोक्ष, मुक्ति (४ प्रकार की मुक्ति—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य)। उ० जनु अपबरग सकल तनुधारी। (मा० १।४१५।३)

अपबरगु—दे० 'अपबरग'। उ० सरगु नरकु अपबरगु समाना। (मा० २।१३१।४)

अपबर्ग—(सं० अपवर्ग)—मुक्ति, मोक्ष। उ० नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। (मा० ७।१२१।५)

अपबर्गा—दे० 'अपबर्ग'। उ० तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा। (मा० ७।४६।४)

अपबाद—(सं० अपवाद)—कलंक, निन्दा, बुराई। उ० पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद। (मा० ७।३९)

अपबादा—दे० 'अपबाद'। उ० संत संभु श्रीपति अपबादा। (मा० १।६४।२)

अपबादू—दे० 'अपबाद'। उ० जसु जग जाइ होइ अपबादू। (मा० २।७७।२)

अपभय—(सं०)—१. अकारण भय, व्यर्थ भय, २. निर्भयता, ३. भय, डर। उ० १. अपभय कुटिल महीप डेराने। (मा० १।२८५।४) अपभयहुँ—भय ही, डर ही। उ० विनय करौं अपभयहुँ ते तुम्ह परम हितै हौ। (वि० २७०)

अपमान—(सं०)—अनादर, तिरस्कार, बेइज्जती। उ० अति अपमान बिचारि आपनो, कोपि सुरेस पठाए। (कृ० १८) अपमानहि—१. अपमान को, २. अपमान से। उ० २. जौं न राम अपमानहि डरऊँ। (मा० ६।३०।४)

अपमानता—निरादर, अपमान। उ० अति अघ गुर अपमानता, सहि नहिं सके महेस। (मा० ७।१०६ ख)

अपमाना—दे० 'अपमान'। उ० सीता तैं मम कृत अपमाना। (मा० ५।१०।१)

अपमानु—दे० 'अपमान'।

अपमाने—अपमान करते हुए। उ० बोले पर सुधरहि अपमाने। (मा०१।२७१।३)

अपर—(सं०)—१. जो परे न हो, पहिला, २. पूर्व का, पिछला, ३. अन्य, दूसरा। उ० ३. अपर तिन्हहि पूँछहि मगु जाता। (मा० २।१३२।२)

अपरना—(सं० अपर्णा)—पार्वती का नाम। शिव जी को वर रूप में पाने के लिए पार्वती ने अन्न छोड़कर पत्ते खाना आरंभ किया फिर पत्ता भी छोड़ दिया। इस कारण उनका नाम 'अपरना' या 'अपर्णा' पड़ा। उ० उमहि नामु तब भयउ अपरना। (मा० १।७४।४)

अपरा—(सं०)—१. अध्यात्म विद्या के अतिरिक्त अन्य विद्या, २. पश्चिम दिशा, ३. ज्येष्ठ के कृष्ण पक्ष की एकादशी।

अपराध—(सं०)—१. दोष, पाप, २. भूल, चूक। उ० १. तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। (मा० २।४३।२)

अपराधा—दे० 'अपराध'। उ० कहेउ जान बन केहिं अपराधा। (मा० २।५४।४)

अपराधिनि—(सं० अपराधिनी)—अपराध करनेवाली। उ० जद्यपि हौं अति अधम कुटिल मति, अपराधिनि को जायो। (गी० २।७४)

अपराधिहिं—अपराधी को। उ० जडहिं बिबेक, सुसील खलहिं अपराधिहिं आदर दीन्हों। (वि० १७१) अपराधिहु—अपराधी भी। उ० अपराधिहु पर कोह न काऊ। (मा० २।२६०।३) अपराधी—(सं० अपराधिन्)—अपराध करनेवाला, दोषी। उ० जद्यपि मैं अनभल अपराधी। (मा० २।१८३।२)

अपराधु—दे० 'अपराध'। उ० १. समरथ कोउ न राम सों, तीय-हरन अपराधु। (दो० ४४८)

अपराधू—दे० 'अपराध'। उ० १.कछु तजि रोषु राम अपराधू। (मा० २।३२।३)

अपरिमित—(सं०)—असीम, बेहद, अगणित।

अपलोक—(सं०)—१. अयश, अपयश, बदनामी, २. मिथ्या दोष। उ० १. लहत सुजस अपलोक बिभूती। (मा० १।५।४)

अपलोकु—दे० 'अपलोक'। उ० अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। (मा० ६।६१।७)

अपवर्ग—(सं०)—मोक्ष, मुक्ति। उ० दे० 'अपवर्गद'।

अपवर्गद—(सं० अपवर्ग+द)—१. मोक्षदाता, २. ईश्वर, राम। उ० १. जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो! (वि० २९)

अपवाद—(सं०)—१. निन्दा, २. प्रतिवाद, विरोध, ३.

पाप, कलंक, ४. जो नियम के विरुद्ध हो। उ० १. निसि दिन पर-अपवाद बृथा कत रति-रति राग बढ़ावहि। (वि० २३७)

अपसार-(सं०)-पानी के छींटे, शीतलता। उ० लेत अवनि रबि अंसु कहँ देत अमिय अपसार। (स० ४५३)

अपहं-(सं०)-नाश करनेवाला। उ० मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमांबु पूरं शुभम्। (मा० ७।१३१।श्लो०२)

अपहन-(सं०)-दूर करनेवाला, नाशक। उ० दनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन दुर्दोष दुःपापहर्त्ता। (वि०५६)

अपहर-(सं०)-हरनेवाला, दूर करनेवाला। उ० जयति मंगलागार, संसार भारापहर बानराकार, बिग्रह-पुरारी। (वि० २७)

अपहरई-अपहरण कर लेती है, हर लेती है। उ० जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। (मा०७।५६।३) अपहरत-हरता, हरण करता। उ० दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को। (मा० २।३२६।छं०१) अपहरति-अपहरण करती है, छीनती है। उ० यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरति पापं। (वि० ५५) अपहरहीं-छीन लेते हैं, अपहरण कर लेते हैं। उ० भानु जान सोभा अपहरहीं। (मा० १।२६६।२)

अपहरन-(सं० अपहरण)-अपहरण, छीनना, ले लेना। उ० मार-करि-मत्त-मृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरन-संसार ज्वाला। (वि० ४०)

अपहर्त्ता-(सं०)-अपहरण करनेवाला, छीननेवाला। उ० उग्रभार्गवागर्व-गरिमापहर्त्ता। (वि०५०)

अपहारी-(सं० अपहारिन्)-अपहरण करनेवाला, लेनेवाला। उ० व्यापक व्योम बंद्यांघ्रि बामन बिभो ब्रह्मविद्-ब्रह्मचितापहारी। (वि० ५६)

अपहुँ-(सं० आत्मन्)-आपही, स्वयं ही। उ० तुलसिदास तब अपहुँ से भय जड़ जब पलकनि हठ दगा दई। (कृ० २४)

अपाउ-(सं० अपाव)-नटखटी, उपद्रव, अन्याय। उ० खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ। (वि० १००)

अपान (१)-(सं०)-१. दस या पाँच प्राणों में से एक जो गुदा में रहता है। गुदा से निकलनेवाला वायु, अपान वायु, २. ईश्वर का एक विशेषण।

अपान (२)-(सं० आत्मन्)-आत्मभाव, अपनत्व। उ० भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान। (मा० २।२४०)

अपाय (१)-(सं० अ + पाद)-१. बिना पैर का, व्यर्थ। उ० १. कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए। (वि० १८४)

अपाय (२)-(सं०)-१. विश्लेष, अलगाव, २. नाश, ३. उपद्रव, अत्याचार विघ्न। उ० ३. अकनि याके कपट करतब अमित अनय अपाय। (वि० २२०)

अपार-(सं०)-जिसका पार न हो, सीमारहित, बहुत। उ० सुख जन्मभूमि महिमा अपार। (वि० १३)

अपारा-दे० 'अपार'। उ० चिंता यह मोहिं अपारा। (वि० १२५)

अपारु-दे० 'अपार'। उ० राम बियोग पयोधि अपारू। (मा० २।१५४।३)

अपारो-दे० 'अपार'। उ० मद, मत्सर, अभिमान, ज्ञान-रिपु इनमें रहनि अपारो। (वि० ११७)

अपावन-(सं०)-अपवित्र, अशुद्ध। उ० तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें। (मा० १।९३।छं०१)

अपावनि-(सं० अपावनी)-अपवित्र, अशुद्ध। 'अपावन' का स्त्रीलिंग। उ० सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ। (मा० ३।५क)

अपावनी-(सं०)-दे० 'अपावनि'। उ० कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी। (मा० ६।८७।छं०१)

अपि-(सं०)-१. भी, ही, २. निश्चय, ठीक। उ० १. रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिय न ताहु। (मा० १।१७०)

अपी-दे० 'अपि'। उ० धनवंत कुलीन मलीन अपी। (मा० ७।१००।४)

अपीह-(सं० अपि + इह)-१. यह भी, २. यहाँ भी।

अपुनीत-(सं०)-अपावन, अपवित्र। उ० सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई। (मा० १।६९।४)

अपूर्व-(सं०)-१. अद्भुत, अलौकिक, २. श्रेष्ठ, उत्तम।

अपेक्षा-(सं०)-१. आकांक्षा, इच्छा, २. आवश्यकता, ३. आश्रय, भरोसा, ४. निस्बत्, तुलना।

अपेल-(सं० अ + पीड़)-अचल, अटल, अमिट। उ० बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल। (मा० ७।१२२क)

अप्रतिहत-(सं०)-१. अपराजित, २. बिना रोक टोक की। उ० २. अप्रतिहत गति होइहि तोरी। (मा० ७।१०६।८)

अप्रमेय-(सं०)-अत्यंत विशाल, जो नापा न जा सके। उ० प्रभोऽप्रमेय वैभवं। (मा० ३।४। छं० ३)

अप्रवीन-(सं० अप्रवीण)-मूर्ख, मूढ़। उ० सुनत समुझत कहत हम सब भईं अति अप्रवीन। (कृ० ५५)

अप्रिय-(सं०)-जो प्रिय न हो, कटु, बुरा। उ० सुनि राजा अति अप्रिय बानी। (मा० १।२०८।१)

अप्सरा-(सं०)-१. स्वर्ग की नर्तकी, २. वेश्या, नर्तकी।

अफल-(सं०)-निष्फल, व्यर्थ। उ० परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सकल, नहिं सिद्धि सई है। (वि० १३९)

अब-(?)-१. इस समय, इस क्षण, २. भविष्य में। उ० १. करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू। (मा० २।१३३।१)

अबध-(सं० अयोध्या)-अवध, अयोध्या, वह देश जिसकी राजधानी अयोध्या थी।

अबध्य-(सं०)-न मारने योग्य।

अबर्त-(सं० आवर्त)-आवर्त, पानी का भँवर। उ० दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी। (मा० ६।८७ छं० १)

अबल-(सं०)-निर्बल, कमज़ोर। उ० अबला अबल सहज जड़ जाती। (मा० ७।११५।८)

अबलनि-(सं० अबला)-अबला का बहुबचन, अबलाओं, स्त्रियाँ। उ० तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हियो हरिबे हो। (कृ० ३९) अबलन्ह-अबलाओं, स्त्रियों। उ० अबलन्ह उर भय भयउ विसेषा। (मा० १।९६।२) अबला-(सं०)-१. स्त्री, २. बलहीना। उ० १. अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं। (मा० २।१२१)

अवलोकत–१. देखते ही, २. देखते हैं।
अवलोकन–(सं० अवलोकन)–देखना।
अवलौं–(सं० अद्य+लग्न)–अब तक, इतने दिन तक। उ० अवलौं नसानी अब न नसैहौं। (वि० १०५)
अवसहि–(सं० अ+वश)–वश में न होनेवाले को। उ० निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बसकरी। (मा० ३।२६। छं० १)
अवहिं–दे० 'अबहीं'। उ० अबहिं मातु मैं जाउँ लेवाई। (मा० ५।१६।२)
अवहीं–अभी, तुरत। उ० अबहीं समुझि परा कछु मोहीं। (मा० ६।२४।५)
अवहुँ–अब भी। उ० का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। (मा० २।१६।१)
अबाधा–(सं० अबाध)–१. बाधारहित, निर्बाध, २. अपार। उ० २. रघुपति महिमा अगुन अबाधा। (मा० १।३७।१)
अबाधी–बिना बाधा के, बे रोक-टोक। उ० बसइ जासु उर सदा अबाधी। (मा० ७।११६।३)
अबासू–(सं० आवास)–आवास, घर। उ० बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू। (मा० २।१७६।३)
अबिकारी–(सं० अविकारिन्)–विकाररहित, शुद्ध। उ० अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। (मा० १।२३।४)
अबिगत–(सं० अविगत)–अविगत, जो जाना न जा सके। उ० अबिगत अलख अनादि अनूपा। (मा० २।९३।४)
अबिगति–न जाना जाने का भाव, अविगति। उ० तुलसी राम-प्रसाद बिन, अबिगति जानि न जात। (स० ५१५)
अबिचल–(सं० अविचल)–जो विचलित न हो, अचल, अटल। उ० जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी। (मा० ५।३५। छं० २)
अबिचारे–(सं० अ+विचार)–बिना विचार किये हुए, अज्ञान से। उ० खग महँ सर्प बिपुल भयदायक, प्रगट होइ अबिचारे। (वि० १२२)
अबिछीन–(सं० अविच्छिन्न)–एकतार, जो बीच से विच्छिन्न या टूटी न हो। उ० जो सुनि होइ रामपद प्रीति सदा अबिछीन। (मा० ७।११६ ख)
अबिद–(सं० – अ+विद्)–अविद्वान, मूर्ख। उ० कारन अबिरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान। (स० ३२२)
अबिद्या–(सं० अविद्या)–अज्ञान, एक प्रकार की माया जो बंधन में रखती है। उ० प्रथम अबिद्या निसा नसानी। (मा० ७।३१।२)
अबिध–(सं० अविधि)–विधि या नियम के विरुद्ध।
अबिनय–(सं० अविनय)–धृष्ठता, ढिठाई। उ० स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। (मा० २।११६।४)
अबिनासिनि–(सं० अविनाशिनि)–जिसका विनाश न हो, अबिनाशिनी। उ० अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। (मा० १।९८।२) अबिनासिहि–अबिनाशी को, ईश्वर को। उ० सदा एक रस अज अबिनासिहि। (मा० ७।३०।५) अबिनासी–(सं० अविनाशिन्)–अविनाशी, जिसका नाश न हो। उ० राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। (मा० १।१२०।३)
अबिबेक–(सं० अविवेक)–अज्ञान। उ० प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि। (मा० ७।९३ख) अबिबेकहि–अविवेक को, अज्ञान को। उ० बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई। (मा० १।२२२।२)
अबिबेका–दे० 'अबिबेक'। उ० कहत सुनत एक हर अबिबेका। (मा० १।११५।१)
अबिबेकी–(सं० अविवेकिन्)–अज्ञानी, मूर्ख। उ० जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि। (मा० २।१४२।१)
अबिरल–(सं० अविरल)–१. घना, २. अखंड। उ० २. कारन अबिरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान। (स० ३२२)
अबिरलि–दे० 'अबिरल'।
अबिरुद्ध–(सं० अविरुद्ध)–जिसका कोई विरोधी न हो। उ० नाम सुद्ध अबिरुद्ध अमर अनवद्य अदूषन। (क० ७।१५१)
अबिरोध–(सं० अविरोध)–१. अनुकूल, मुवाफ़िक, २. अनुकूलता, मेल।
अबिरोधा–दे० 'अबिरोध'। उ० १. समय समाज धरम अबिरोधा। (मा० २।२९६।२)
अबिहित–(सं० अविहित)–अनुचित, अयोग्य। उ० तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी। (मा० १।११९।३)
अबीर–(अर०)–लाल रंग की बुकनी जिसे होली में इष्ट मित्रों पर डालते हैं। उ० उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी। (मा० १।१९५।३)
अबुझ–(सं० अबुद्ध)–मूर्ख। उ० कहेउ न सो समुझत अबुझ। (स० ३४१)
अबुध–(सं०)–बुद्धिहीन, मूर्ख। उ० निपट निरंकुस अबुध असंकू। (मा० १।२७४।१)
अबूझ–दे० 'अबुझ'। उ० अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ। (मा० १।२७५)
अबेर–(सं० अवेला)–देर, विलंब।
अबै–अभी, इसी समय। उ० जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो। (क० ५।९)
अबोध–(सं०)–१. मूर्ख, अज्ञानी, २. अज्ञान, मूर्खता।
अबोल–(सं० अ+ब्रू)–१. अवाक, मौन, चुप, २. बेहोश।
अब्ज–(सं०) जल से उत्पन्न, १. कमल, २. शंख, ३. चंद्रमा, ४. धन्वंतरि। उ० १. पदाब्ज भक्ति देहि मे। (मा० ३।४। श्लो० ११)
अब्द–(सं०)–१. वर्ष, साल, २. मेघ, बादल, ३. एक पर्वत, ४. कपूर, ५. आकाश।
अब्धि–(सं०)–१. समुद्र, सागर, २. सात की संख्या। उ० १. यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति क्षीराब्धिवासी। (वि० ५७)
अब्यक्त–(सं० अव्यक्त)–जो प्रकट न हो, गुप्त। उ० अब्यक्त मूलमलनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने। (मा० ७।१३। छं० ५)
अब्याहत–(सं० अव्याहत)–न रोकने योग्य, अबाध। उ० अब्याहत गति संभु प्रसादा। (मा० ७।११०।६)
अभंगा–(सं० अभंग)–जो भंग न हो, अटूट अखंड। उ० धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा। (मा० ७।१२७।४)

अभंगू–दे० 'अभंगा'। उ० मिटइ न मलिन सुभाव अभंगू। (मा० १।७।२)

अभगत–(सं० अभक्त)–जो भक्त न हो, दुष्ट। उ० भगत अभगत हृदय अनुसारा। (मा० २।२१९।३)

अभच्छ–(सं० अभक्ष्य)–अखाद्य, न खाने योग्य। उ० असुभ बेष भूषन धरैं भच्छ अभच्छ जे खाहिं। (दो० ५५०)

अभय–(सं०)–निर्भय, बेडर, बेखौफ। उ० सदा अभय, जय-मुद-मंगल मय जो सेवक रनरोर को। (वि० ३१)–मु० अभय बाँह दीन्ही–भय से बचाने का बचन दिया। उ० लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही। (मा० ४।२०।१) अभयदाता–(सं०) अभय देनेवाला, भय को दूर भगानेवाला। उ० मांडवी-चित्तचातक-नवांबुदबरण, सरन तुलसीदास-अभयदाता। (वि० ३९) अभयदान–(सं०)–भय से बचाने का बचन देना। उ० जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभयदान देवन दीन्हों। (वि० १३८)

अभाग–(सं० अभाग्य) दुर्दशा, दुर्भाग्य। उ० राम-बिमुख बिधि बामगति, सगुन अघाय अभाग। (दो० ४२०) अभागहिं–अभागे को। उ० देइ अभागहिं भाग को, को राखै सरन सभीत। (वि० १९१)

अभागा–(सं० अभाग्य)–भाग्यहीन, बदकिस्मत। उ० एहि सर निकट न जाहिं अभागा। (मा० १।३८।२)

अभागिनि–(सं० अभागिनी)–बुरे भाग्यवाली। उ० परम अभागिनि आपुहि जानी। (मा० २।५७।३)

अभागी–(सं० अभागिन्)–बुरे भाग्यवाला, अभागा। उ० होइहि जब कर कीट अभागी। (मा० ५।५३।३)

अभागु–दे० 'अभाग'। उ० बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु। (मा० २।२५५)

अभागे–१. अभाग्यवान लोग, २. रे अभागा! ऐ अभागे! उ० २. करिआ मुहँ करि जाहि अभागे। (मा० ६।४९।१)

अभाग्य–(सं०)–दुर्भाग्य, बुरा भाग्य। उ० मोर अभाग्य जिआवत ओही। (मा० ६।६१।३)

अभारू–(सं० आभार)–आभार, ज़िम्मेवारी। उ० देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू। (मा० २।२६९।२)

अभाव–(सं०) १. अविद्यमानता, असत्ता २. कमी, टोटा, ३. कुभाव, दुर्भाव।

अभास–(सं० आभास)–झलक। उ० तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास। (मा० ६।१२ क)

अभि–(सं०)–एक उपसर्ग, १. सब ओर से, २. सामने, ३. बुरा, ४. इच्छा, ५. समीप, ६. बारंबार, ७. दूर, ८. ऊपर। उ० १. अभि अंतर मल कबहुँ न जाई। (मा० ७।४९।३)

अभिचार–(सं०) १. पुरश्चरण, मारने के लिए मंत्र का प्रयोग, २. छः प्रकार के तंत्र प्रयोग। उ० १. जयति पर-जंत्र मंत्राभिचार ग्रसन, कारमनि-कूट-कृत्यादि-हंता। (वि० २६)

अभिजित–(सं०)–१. एक नक्षत्र जिसमें तीन तारे मिलकर सिंघाड़े के आकार के होते हैं। २. दिन में पौने बारह से से लेकर साढ़े बारह तक का समय। ३. विजयी। उ० १. सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता। (मा० १।१९१।१)

अभिज्ञ–(सं०)–चतुर, होशियार, विज्ञ।

अभिनंदनु–(सं० अभिनंदन)–१. सेवा तथा गुणों की प्रशंसा, २. आनंद, ३. संतोष, ४. उत्तेजना, प्रोत्साहन, ५. विनीत प्रार्थना। उ० ४. गुरुद के बचन सचिव अभिनंदनु। (मा० २।१७६।४)

अभिप्राय–(सं०)–तात्पर्य, आशय, अर्थ।

अभिमत–(सं०)–१. मनोनीत, पसंद का, चाहा हुआ, २. मत, सम्मति, बिचार। उ० १. तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक। (पा० २५)

अभिमान–(सं०) घमंड, गर्व। उ० मोहमूल बहु सूलप्रद त्यागहु तम अभिमान। (मा० ५।२३)

अभिमाना–दे० 'अभिमान'। उ० फिरि आवइ समेत अभिमाना। (मा० १।३९।२)

अभिमानी–(सं० अभिमानिन्) घमंड करनेवाला, दर्पी, अहंकारी। उ० बोला बिहँसि महा अभिमानी। (मा० ५।२४।१)

अभिमानु–दे० 'अभिमान'। उ० अति अभिमानु हृदयँ तब आवा। (मा० १।६०।४)

अभिमानू–दे० 'अभिमान'। उ० कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू। (मा० १।२५३।२)

अभिरक्षय–(सं०)–रक्षा करो। उ० मामभिरक्षय रघुकुल नायक। (मा० ६।११५।१)

अभिराम–(सं०)–१. आनंददायक, सुंदर, २. सुख, आनंद, ३. मुक्ति। उ० २. सेए सोक समर्पई, बिमुख भए अभिराम। (दो० २५८) अभिरामकारी–(सं० अभिरामकारिन्) आनंददायी, प्रसन्न करनेवाले। उ० संत संतापहर विश्वविश्राम कर राम कामारि-अभिरामकारी। (वि० ५५) अभिरामहिं–आनंददायक को। उ० हरिमुख निरखि परुष बानी सुनि अधिक अधिक अभिरामहिं। (कृ० ५)

अभिरामा–आनंद देनेवाला, आनंददायी। उ० लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी। (मा० १।१९२। छं० १)

अभिरामिनी–(सं०)–आनंद देनेवाली, प्रसन्न करनेवाली। उ० हरित गंभीर बानीर दुहुँ तीरवर, मध्य धारा विशद विश्व अभिरामिनी। (वि० १८)

अभिलाष–(सं०) इच्छा, मनोरथ, कामना। उ० उर अभिलाष निरंतर होई। (मा० १।१४४।२)

अभिलाषा–(सं०)–इच्छा, कामना, आकांक्षा। उ० सब के हृदयँ मदन अभिलाषा। (मा० १।८५।१)

अभिलाषिहि–चाहेगा, इच्छा करेगा। उ० अस सुकृती नर चाहु जो मन अभिलाषिहि। (जा० ७६) अभिलाषें–लालायित हुए, चाहते हुए। उ० नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। (मा० २।२।२)

अभिलाषीं–(सं० अभिलाषिणी) इच्छा चाहनेवाली, इच्छुक। उ० रहीं रानि दरसन अभिलाषीं। (मा० २।१७०।१)

अभिलाषु–दे० 'अभिलाष'। उ० अब अभिलाषु एकु मन मोरें। (मा० २।३।४)

अभिषेक–(सं०) १. राजतिलक के समय का स्नान, २. जल से सींचना, ३. यज्ञ की समाप्ति का स्नान, ४. शिवलिंग के के ऊपर छेदवाले घड़े से पानी टपकाना। उ० १. बेद पुरान बिचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो। (गी० ७।३८) ४. सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना। (मा० २।१२७।४) अभिषेकतः–(सं०)–अभिषेक से, अभिषेक के

निश्चय से। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः। (मा० २।१। श्लो० २)
अभिषेका–दे० 'अभिषेक'। उ० १. जो जग जोगु भूप अभिषेका। (मा०२।६।२)
अभिषेकु–दे० 'अभिषेक'। उ० १. रामराज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नरनारि। (मा० २।८)
अभिषेकू–दे० 'अभिषेक'। उ० १. बंधु बिहाय बड़ेहि अभिषेकू। (मा०२।१०।४)
अभीष्ट–(सं०)–अभिलषित, चाहा हुआ, मनोनीत। उ० ब्रह्मभवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ। (मा०७।३२)
अभूत–(सं०)–१. जो न हुआ हो, २. अपूर्व, विलक्षण, ३. वर्तमान। अभूतरिपु–(सं०)–जिसका कोई संसार में बैरी न हो। उ० सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। (मा०७।३८।१)
अभेद–(सं०)–१. भेदरहित, ऐक्य, एकत्व, २. समानता। उ० १. ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद। (मा० १।५०) अभेदबादी–(सं० अभेदवादिन्)–अद्वैतबादी, जीव और ब्रह्म को एक मानने वाले। उ० तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। (मा० ७।१००।१)
अभेरा–(?) १. धक्का, टक्कर, २. मट्टी के सूखने पर फटी हुई दरार। उ० १. मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा। (वि० १८६)
अभै–(सं० अभय)–निर्भय, निडर।
अभोगी–(सं० अभोगिन्)– भोग न करनेवाला, विरक्त। उ० अज अनवद्य अकाम अभोगी। (मा० १।६०।२)
अभ्यंतर–(सं०)–१. मध्य, बीच २. बीच की, हृदय की। उ० २. बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै। (वि० ११६)
अभ्यास–(सं०)–१. बार बार करना, अनुशीलन, २. आदत, बान। उ० जनम जनम अभ्यास-निरत चित अधिक अधिक लपटाई। (वि० ८२)
अभ्र–(सं०)–१. मेघ, २. आकाश, ३. अभ्रक, ४. सोना, स्वर्ण।
अमंगल–(सं०)–अशुभ, अकल्याण, बुराई। उ० मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार। (मा० २।२६३)
अमर–(सं०)–१. जो मरे नहीं, चिरंजीवी, २. देवता, ३. उनचास पवनों में से एक। उ० १. मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे, अजर अमर हर अँचइ हलाहलु। (वि० २४) २. कहेन्हि बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब। (पा० १००) अमरउ–देवता भी। उ० सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। (मा०२।२६।२) अमरनि–१. देवताओं ने, २. देवताओं को। उ० १. बालमीकि व्याध हे अगाध अपराध-निधि मरा मरा जपे पूजे मुनि अमरनि। (वि०२४७) २. रूप-सुधा-सुख देत नयन अमरनि बरु। (जा० ४८) अमरपति–(सं०) देवताओं के राजा, इन्द्र। उ० ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन। (दो० ४४१) अमरपुर–(सं०)–अमरों की पुरी, स्वर्ग, इंद्रलोक। उ० वेद-बोधित करम धरम बिनु, अगम अति जदपि, जिय लालसा अमरपुर जानकी। (वि० २०६)
अमरताँ–दे० 'अमरता'। उ० सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु। (म०१।५)
अमरता–(सं०)–अमरत्व, अमर करने का धर्म, मरणहीनता। उ० मीच तें नीच लगी अमरता, छल को न बल को निरखि थल परुष-प्रेम पायो। (गी०५।१५)
अमरष–(सं० अमर्ष)–१. अमर्ष, क्रोध, २. असहिष्णुता। अक्षमा। उ० लोभामरष हरष भय त्यागी। (मा० ७।३८।१)
अमरषत–क्रोध करते हैं। उ० बारहिं बार अमरषत करषत करकैं परीं सरीर। (गी० ५।२२) अमरषा–क्रोधित हुआ या हुई। उ० को करै अटक कपि-कटक अमरषा। (क० ६।७)
अमराई–(सं० आम्रराजि)–आम की बगीची, आम का बाग।
अमरावति–(सं० अमरावती)–देवपुरी, इन्द्रपुरी। उ० जाइ कीन्ह अमरावति बासा।(मा०१।१५२।४) अमरावतिपालू–(सं०अमरावती+पाल)–अमरावती के पालन करनेवाले, इन्द्र। उ० जेहि सिहात अमरावतिपालू। (मा० २।१३६।४)
अमरेश–(सं०)–अमरपति, इन्द्र।
अमर्ष–(सं०)–१. क्रोध, २. एक प्रकार का द्वेष, ३. अक्षमा।
अमल–(सं०)–१. निर्मल, स्वच्छ, २. पाप शून्य, निर्दोष, ३. अभ्रक। उ० १. अतुल बल विपुल विस्तार, विग्रह गौर, अमल अति धवल धरणी धराभं। (वि० ११) २. अमल अविचल अकल सकल संतप्त कलि-विकलता-भंजनानंदरासी। (वि०५५)
अमाइ–(सं० आ+मान)–समाता है। उ० सुनि-सुनि मन हनुमान के, प्रेम उमँग न अमाइ। (प्र० ४।४।१) अमाई–१. समाता था, २. अँटता है। उ० २. हृदयँ न अति आनंदु अमाई। (मा० १।३०७।२) अमाए–समाए, अँटे। उ० बाल-केलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनँद न अमाए। (गी०१।२६) अमात–समाता। उ० जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात। (मा० १।२८४) अमाय–अँटे, समाय। अमाया–समाया, अँटा। अमायो–समाया। उ० लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो। (गी०१।१४)
अमान–(१) १. मानरहित, गर्वरहित, बिना अंहकार का, २. अपरिमित, बेहद, ३. अप्रतिष्ठित, तुच्छ। उ० १. गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान। (मा० ३।३५) २. अगुन अलेप अमान एकरस। (म० २।२१३।३) ३. अगुन अमान अजाति मातु-पितु हीनहिं। (पा० ५५)
अमान (२)–(अर०)–१. रक्षा, बचाव, २. शरण।
अमाना–दे० अमान (१)। उ० २. माया गुन ग्यानातीत अमाना, बेद पुरान भनंता। (मा० १।१९२।छं०२)
अमानी–दे० 'अमान' (१)। उ० १. अनारंभ अनिकेत अमानी। (मा० ७।४६।३)
अमानुष–(सं०)–जो मनुष्य से न हो सके। उ० सकल अमानुष करम तुम्हारे। (मा० १।३५७।८)
अमाय (१)–(सं० अमाया)–१. मायारहित, निर्लिप्त, २. निष्कपट, निःस्वार्थ। उ० १. पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय। (वि० २२०)
अमाय (२)–(सं०)–अपरिमित, बेहद, बहुत।
अमाया–(सं०)–१. मायारहित, निर्लिप्त, २. निष्कपट,

निःस्वार्थ। उ० २. प्रेमु नेमु ब्रत धरमु अमाया। (मा० २।२१६।३)
अमिअ–(सं० अमृत)–दे० 'अमृत'। उ० १. कोउ प्रगट कोउ हिय कहिहि, 'मिलवत अमिअ माहुर घोरि कै'। पा० ६३) अमिअमूरि–(सं० अमित + मूल)–अमृत की मूल, संजीवनी जड़ी। उ० अमियमूरिमय चूरन चारू। (मा०१।१।१)
अमिट–(?) जो न मिटे, स्थायी, अटल।
अमित–(सं०)–जिसका परिमाण न हो, असीम। उ० अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनंद सिंधो। (वि० ५६) अमितबोध–(सं० अमित + बोध) अनन्तज्ञान वाले। उ० अमितबोध अनीह मितभोगी। (मा० ३।४५।४)
अमिति–(सं० अमित)–असीम। उ० महिमा अमिति बेद नहिं जाना। (मा० ७।४८।३)
अमिय–(सं० अमृत)–१. अमृत, २. पवित्र, ३. रोगी, ४. जीवन। अमियहु–अमृत भी। उ० अनुपम अमियहु तें अंबक अवलोकत अनुकूल। (गी० ३।१७)
अमिसदन–(सं० अमृत + सदन)–अमर पद। उ० संतन को लै अमिसदन, समुझहिं सुगति प्रबीन। (स० ४३३)
अमी–(सं० अमृत)–दे० 'अमृत'। उ० २. पूजि कीन्ह मधुपर्क, अमी अँचवायउ। (पा० १३५)
अमुक–(सं०)–वह, फलाँ, ऐसा-ऐसा।
अमृत–(सं०)–१. जिसके पीने से पीनेवाला अमर हो जाय, सुधा। पुराणानुसार समुद्र-मंथन से निकले १४ रत्नों में यह माना जाता है। २. जल, ३. घी, ४. यज्ञ का बँचा अंश, ५. अन्न, ६. मुक्ति, ७. दूध, ८. औषध, ९. विष, १०. स्वर्ण, ११. मीठी वस्तु। उ० १. परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी। (मा० २।४२।२)
अमृषा–(सं०)–सत्य, जो झूठ न हो। उ० यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः। (मा० १।१। श्लो० ६)
अमेठत–(सं० उद्वेष्टन)–उमेठता है, ऐंठता है।
अमोघ–(सं०)–१. जो व्यर्थ न जाय, अचूक, २. अटल। उ० १. जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। (मा० ५।१।४)
अमोल–(सं० अमूल्य)–उत्तम, श्रेष्ठ। उ० सुचि अमोल सुंदर सब भाँती। (मा० २।१।२)
अमोलिक–अमूल्य, क़ीमती। उ० तुलसी सो जानै सोई जासु अमोलिक चोप। (स० ५३३)
अमोले–अमूल्य। उ० देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। (मा० १।१५०।१)
अम्ल–(सं०)–१. खट्टा, २. खटाई।
अयं–(सं०)–यह। उ० दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं। (मा० १।८५। छं० १)
अय–(सं० अयस्)–लोहा। उ० अय इव जरत धरत पग धरनी। (मा० १।२६८।३) अयमय–लोहे की बनी हुई। उ० अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ। (मा० १।२७५)
अयन–(सं०)–१. घर, २. गति, ३. सूर्य या चंद्र की उत्तर या दक्षिण की गति या प्रवृत्ति जिसे उत्तरायण तथा दक्षिणायण कहते हैं। ४. मार्ग, ५. एक यज्ञ, ६. गाय-भैंस के थन का ऊपरी भाग, ७. अंश, ८. काल। उ० १. कुंद इंदु सम देह, उमारमन, करुना अयन। (मा० १।१। सो० ४) ३. दिनमनि गवन कियो उत्तर अयन। (गी० १।४६) ६. अंतरअयन अयन भल, थन फल, बच्छ वेद-बिस्वासी। (वि० २२)
अयना–दे० 'अयन'। उ० १. सुनि सीतादुख प्रभु सुख अयना। (मा० ५।३२।१)
अयश–(सं०)–कलंक, निन्दा, अपयश।
अयशी–बदनाम, कलंकी।
अयस्–(सं०)–लोहा।
अयाची–(सं० अयाचिन्)–अयाचक, न माँगनेवाला, संपन्न।
अयान–(सं० अज्ञान)–अज्ञानी, मूर्ख, बेसमझ। उ० कहे सो अधम अयान असाधू। (मा० २।२०७।४) अयाने–मूर्ख, अज्ञानी। उ० अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग। (क० ७।१०७)
अयानप–१. अज्ञानता, मूर्खता, २. भोलापन। उ० १. यहाँ को सयानप अयानप सहस सम, सूधौ सत भाय कहे मिटति मलीनता। (वि० २६२)
अयाना–दे० 'अयान'। उ० तौ कि बराबरि करत अयाना। (मा० १।२७७।१)
अयानि–दे० 'अयानी'। उ० पापिनि चेरि अयानि रानि, नृप हित अनहित न बिचारो। (गी० २।६६)
अयानी–(सं० अज्ञानी)–मूर्ख। उ० सो भावी बस रानि अयानी। (मा० २।२०७।३)
अयान्यो–मूर्ख, अज्ञानी।
अयुत–(सं०)–दस हज़ार। उ० अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा। (मा० ७।१०७।३)
अयुध–(सं० आयुध)–हथियार, शस्त्र।
अयोग्य–(सं०)–जो योग्य न हो, अनुपयुक्त, अकुशल।
अयोध्या–(सं०)–अवधपुरी, सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी। पुराणानुसार यह हिन्दुओं की सप्तपुरियों में से है।
अरँडु–(सं० एरंड)–रेंड़ का पेड़। उ० सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। (मा० २।४२।२)
अरंभ–(सं० आरंभ)–शुरू, प्रारंभ। उ० कथा अरंभ करै सोइ चाहा। (मा० ७।६३।३)
अरंभा–दे० 'अरंभ'। उ० बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। (मा० १।३५।३)
अरंभेउ–आरंभ हुए। उ० अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। (मा० २।१५७।३)
अरगजाँ–अरगजा से। उ० गली सकल अरगजाँ सिंचाईं। (मा० १।३४४।३)
अरगजा–(सं० अगरु + जा)–केशर चंदन कपूर आदि को मिलाकर बनाया गया एक सुगंधित द्रव्य। उ० कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं, भरहिं गुलाल अबीर। (गी० १।२)
अरगाई–(सं० अलग्न)–१. अलग करके, २. चुप होकर। उ० १. तहँ राखइ जननी अरगाई। (मा० ३।४३।३) २. अस कहि राम रहे अरगाई। (मा० २।२५६।४) अरगाना–१. अगल हुआ, २. चुप हुआ। अरगानी–१. चुप हुई, चुप, २. अलग। उ० १. झुकी रानि अब रहु अरगानी। (मा० २।१४।४)
अरघु–(सं० अर्घ)–१. पूजा की सामग्री, २. सोलह उपचारों

में से एक, २. वह जल जिसे फूल अचत दूब आदि के साथ किसी देवता के सामने गिराते हैं। उ० २. करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। (मा० १।३११।२) अरघनि-अर्घों से, जल से, पूजा करने से। उ० बरषत करषत आयु-जल, हरषत अरघनि भानु। (दो० ४५५)

अरचना-(सं० अर्चन)-१. पूजा, २. सेवा।

अरज-(अर० अर्ज़)-विनय, विनती, निवेदन। उ० गरज आपनी सबन को, अरज करत उर आनि। (दो० ३००)

अरणि-(सं०)-एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत जलती है।

अरण्य-(सं०)-जंगल, बन। उ० सीताराम गुणग्राम पुण्या-रण्यविहारिणौ। (मा० १।१।श्लो० ४)

अरत-(सं० अल)-अड़ जाता है, मचल जाता है। उ० तदपि कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के। (गी० १।१२) अरनि-अड़ना, हठ करना। उ० मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौं सिसु-अरनि अरो। (वि० २२६) अरे-अड़ गए, अड़े। उ० विरुझे विरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के। (क० ६।३४) अरैं-अड़ते हैं, हठ करते हैं। उ० कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं। (क० १।४) अरो-अड़ता हूँ, हठ करता हूँ। उ० मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौं सिसु-अरनि अरो। (वि० २२६) अर्यो-अड़ गया, ठहर गया। उ० हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि अर्यो हौं। (वि० २६७)

अरति-(सं०)-१. विराग, २. जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार का कर्म जिसके उदय से चित्त किसी कार्य में नहीं लगता। उ० १. रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु। (मा० २।२९५)

अरथ-(सं० अर्थ)-१. अभिप्राय, भाव, आशय, २. काम ३. हेतु, लिए, निमित्त, ४. धन, संपत्ति। अर्थ धर्म काम मोक्ष, चार फलों में से एक। उ० १. अरथ अनूप सुभाव सुभासा। (मा० १।३७।३) ४ अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समयँ नरेसु। (मा० १।१५४)

अरधंग-(सं० अर्द्धांग)-अर्द्धांग, आधा शरीर। उ० सदा संभु अरधंग निवासिनि। (मा० १।९८।२)

अरध-(सं० अर्द्ध)-आधा। उ० अरध निमेष कलपसम बीता। (मा० १।२७०।४)

अरधजल-(सं० अर्द्धजल)-श्मशान में शव को नहलाकर आधा बाहर और आधा जल में डाल देने की क्रिया। उ० सुरसरिहु को बारि, मरत न माँगेउ अरधजल। (दो० ३०५)

अरनव-(सं० अर्णव)-समुद्र, सागर।

अरनी-(सं० अरणी)-वह लकड़ी जिसे रगड़कर आग पैदा की जाती है। उ० पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी। (मा० १।३१।३)

अरन्य-(सं० अरण्य)-बन, जंगल।

अरप-अर्पण, देना।

अरपि-(सं० अर्पण)-अर्पणकर, देकर। उ० जो संपति दस-सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही। (वि० १६२)

अरबिंद-(सं० अरविंद)-नील कमल को। उ० न यावद् उमा-नाथ पादारबिंदं। (मा० ७।१०८। श्लो० ७) अरबिंद-(सं० अरविंद)-नील कमल, कमल। उ० राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ। (मा० ७।२४)

अरबिंदु-दे० 'अरबिंद'। उ० राम पदारबिंदु अनुरागी। (मा० ७।१।२)

अरभक-(सं० अर्भक)-१. बालक, २. छोटा, ३. मूर्ख।

अरह-(?)-त्यौरी फेरना, क्रोध करना।

अराती-(सं० आराति)-शत्रु, मारनेवाला। उ० तदपि न कहेउ त्रिपुर अराती। (मा० १।५७।४)

अराधन-(सं० आराधना)-उपासना, पूजा, ध्यान।

अरि-(सं०)-१. शत्रु, बैरी, २. चक्र, ३. काम-क्रोध आदि विकार, ४. छः की संख्या। उ० १. बसन पूरि, अरि दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। (वि० ९३) अरिन्ह-बैरियों, दुश्मनों। उ० भगतनि को हित कोटि मातु-पितु, अरिन्ह को कोटि कृसानु हैं। (गी० ५।३५) अरिमर्दन-(सं०)-शत्रुनाशक। उ० दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन। (मा० ७।९१।४) अरिहि-१. शत्रु को, २. शत्रु के भी। उ० २. जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। (मा० २।३२।०) अरिहुक-शत्रु का भी। उ० अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। (मा० २।१८३।३)

अरिष्ट-(सं०)-१. दुःख, पीड़ा, २. विपत्ति, ३. दुर्भाग्य, ४. अशुभ, ५. नीम, ६. लंका के पास का एक पर्वत, ७. कौवा, ८. गिद्ध, ९. एक ऋषि। उ० ३. सूचत सगुन विषादु बड़ असुभ अरिष्ट अचेत। (प्र० ३।३।४)

अरी (१)-(सं० अरि)-बैरी, शत्रु, मारनेवाले। उ० बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। (वि० ९३)

अरी (२)-स्त्रियों के लिए संबोधन।

अरुंधती-(सं०)-१. वशिष्ठ मुनि की स्त्री, २. एक दक्ष-कन्या जो धर्म से ब्याही गई थी, ३. एकतारा। उ० १. अरुंधती मिलि मैनहिं बात चलाइहि। (पा० ८८)

अरु(सं० अपर)-और, फिर। उ० दानि कहाउब अरु कृपनाई। (मा० २।३५।३)

अरुचि-(सं०)-१. रुचि का अभाव, अनिच्छा, २. एक रोग, ३. घृणा, नफ़रत।

अरुझाई-(सं०अवरुंधन)-उलझ गई, उलझ जाती है। उ० छूट न अधिक अधिक अरुझाई। (मा० ७।११७।३) अरुझान्यो-उलझ गया, फँस गया। उ० जदपि विषय सँग सहे दुसह दुःख, विषम जाल अरुझान्यो। (वि० ८८) अरुझि-उलझ, फँस। उ० सखि! अरुझि परी यहि लेखे। (गी० २।५३) अरुझै-उलझे, फँसे, लिपटे, लिपट गए।

अरुण-(सं०)-१. लाल, रक्तवर्ण, २. सूर्य, ३. सिंदूर।

अरुन-(सं० अरुण)-१. सूर्य, २. लाल, ३. सूर्य का सारथी, ४. सिंदूर, ५. कश्यप के पुत्र। उ० १. मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों विधु-भय बिनय करत अति आरत। (गी० १।२०) २. अरुन-बन-धूमध्वज, पान-आजानु-भुजदंड-कोदंडवर-चंड-बानं। (वि० ४६)

अरुनचूड़-(सं० अरुणचूड़)-मुर्गा, एक पक्षी जो प्रातः बहुत सवेरे बोलता है। उ० अरुनचूड़ बर बोलन लागे। (मा० १।३५८।३)

अरुनता-(सं० अरुणता)-अरुणाई, लालिमा। उ० बसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि। (गी० १।२४)
अरुनमय-(सं० अरुणमय)-लालिमामयी, लालिमापूर्ण। उ० मानहु तिमिर अरुनमय रासी। (मा० २।२३७।३)
अरुनसिखा-(सं० अरुणशिखा)-मुर्गा, एक बहुत सवेरे जगजानेवाला पक्षी। उ० उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान। (मा० १।२२६)
अरुनाई-लालिमा, रक्तता। उ० अरुन चरन, अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत कछुक अरुनाई। (गी० १।१०६)
अरुनारी-अरुणाई, ललाई। उ० उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी। (मा० १।१९५।३)
अरुनारे-अरुण, लाल। उ० दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। (मा० १।१९९।४)
अरुनोदयँ-(सं० अरुणोदय)-अरुणोदय के समय, उषाकाल में, तड़के। उ० अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन। (मा० १।२३८)
अरूढ़ा-(सं० आरूढ़)-चढ़ा, आरूढ़, तैयार। उ० सो कि होइ अब समरारूढ़ा। (मा० ६।२३।२)
अरूप-(सं०) बिना रूप का, निराकार। उ० एक अनीह अरूप अनामा। (मा० १।१३।२)
अरूपा-(सं० अरूप)-१. रूपरहित, निराकार, २. कुरूप। उ० १. अकल अनीह अनाम अरूपा। (मा० ७।१११।२)
अरोष-(सं०)-क्रोधहीन, शांत। उ० अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी। (मा० ७।४६।३)
अर्क(१)-(सं०)-१. आक, मंदार, २. सूर्य, ३. इंद्र, ४. ताँबा, ५. विष्णु, ६. ज्येष्ठ भाई, ७. आदित्यवार, ८. बारह की संख्या। उ० १. अर्क जवास पात बिनु भयऊ। (मा० ४।१५।२) २. कोटि-मदनार्क अगणित प्रकाशम्। (वि० ६०)
अर्क (२)-(अ० अर्क़)-निचोड़ा हुआ रस।
अर्घ-(सं०)-१. देवता या बड़े को अर्पण करने का पदार्थ, २. जलदान, ३ हाथ धोने के लिए जल।
अर्घ्य-(सं०)-१. पूजनीय, २. बहुमूल्य, ३. अर्घ देने के योग्य।
अर्चा-(सं०)—१. पूजा, उपासना, २. प्रतिमा।
अर्चि (१)-पूजन करके। उ० अर्चि भवदंघ्रि सर्वाधिकारी। (वि० १०)
अर्चि (२)-(सं०)-१. अग्नि की शिखा, २. तेज, दीप्ति, ३. किरण।
अर्चित-(सं०) पूजित, सम्मानित।
अर्च्य-(सं०) पूज्य, पूजनीय।
अर्जुन-(सं०)-पांडु पुत्र जो प्रसिद्ध धनुर्धर थे। इनकी उत्पत्ति इंद्र के अंश से मानी जाती है। अभिमन्यु इन्हीं के पुत्र थे। २. एक पेड़, ३. उज्ज्वल, ४. हैहयवंशी एक राजा का नाम।
अर्णव-(सं०)-१. समुद्र, २. सूर्य, ३. इंद, ४. अंतरिक्ष। अर्णवे-समुद्र में। उ० पतंति नो भवार्णवे। (मा० ३।४।श्लो० ७)
अर्थ-(सं०) १. धन, २. अभिप्राय, मतलब, ३. हेतु, ४. इंद्रियों के विषय, ५. अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चार फलों में से एक। उ० अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गुसाईं। (वि० १२०) २. वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि (मा० १।१। श्लो० १)
अर्द्ध-(सं०) आधा। उ० तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयंद जाके अर्द्धनायँ। (वि० ८३)
अर्द्धांग-(सं०) आधा अंग। उ० भस्म सर्वांग, अर्द्धांग शैलात्मजा। (वि० १०)
अर्द्धाली-अर्धाली, २ छंदों से मिलकर एक चौपाई होती है। आधी चौपाई को अर्द्धाली कहते हैं। चौपाई-रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा। कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ। (मा० ७।१।२) अर्द्धाली-रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा।
अर्ध-(सं० अर्द्ध) आधी, अर्द्ध। उ० अर्धराति गइ कपि नहिं आयउ। (मा० ६।६१।१)
अर्नव-(सं० अर्णव) समुद्र।
अर्पन-(सं० अर्पण) उपहार, भेंट।
अर्पा-अर्पण कर दिया, दे दिया। उ० बिस्व असिहि जनु एहि बिधि अर्पा। (मा० ६।६७।३)
अर्पि-अर्पण कर, देकर। उ० भगति-बैराग-बिज्ञान-दीपावली, अर्पि नीराजनं जगनिवासं। (वि० ४७)
अर्पित-(सं०) दिया हुआ, अर्पण किया हुआ। उ० बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। (मा० १।१५६।१)
अर्बुद-(सं०) १. दश कोटि, दस करोड़, २. एक पर्वत, ३. बादल, ४. एक सर्प विशेष। अर्बुदै-करोड़ों, असंख्यों। दे० 'अर्बुद'। उ० सैन के कपिन को को गनै अर्बुदै, महाबलबीर हनुमान जानी। (क० ६।२०)
अर्भक-(सं०)-१. छोटा शिशु, २. अल्प, छोटा। उ० गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अतिघोर। (मा० १।२७२)
अर्वाक्-(सं०)-१. पूर्व, आदि, २. निकट, समीप, ३. पीछे। उ० १. वेदगर्भार्भकादर्भगुण-गर्व-अर्वागपर-गर्व-निर्वाप-कर्त्ता। (वि० ५४)
अलं-(सं०)-दे० 'अलम्'।
अलंकार-(सं०) १. अर्थ या ध्वनि की वह युक्ति जिससे काव्य की शोभा हो। २. आभूषण। उ० १. विसिष्टालंकार महँ संकेतादि सु-रीति। (स० ३०२)
अलंकृत-(सं०)-१. विभूषित, सजाया हुआ, २. काव्यालंकारयुक्त। उ० २. कोस अलंकृत संधि गति, मैत्री बरन बिचार। (स० ३०३)
अलंकृति-(सं०)-१. अलंकार, २. अलंकारयुक्त। उ० १. आखर अरथ अलंकृति नाना। (मा० १।९।५)
अलंपट-(सं०)-अव्यभिचारी, जो विषयों में लिप्त न हो। उ० विषय अलंपट सील गुनाकर। (मा० ७।३८।१)
अल-(सं० अल्) समर्थ, शक्तिसंपन्न। उ० कारन अबिरल अल अपितु, तुलसी अबिद भुलान। (स० ३२२)
अलक-(सं०)-मस्तक के इधर-उधर लटकते हुए घुँघराले बाल। उ० मुकुट कुंडल तिलक, अलक अलिव्रात इव। (वि० ६१) अलकैं-केशपाश, बालों का समूह। उ० अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू। (गी० १।२०)
अलख-(सं० अलक्ष्य)-जो दिखाई न पड़े, अप्रत्यक्ष, अगो-

चर। उ० की अज अगुन अलख गति कोई। (मा० १।१०८।४)

अलखित-(सं० अलक्षित)-जो देखा न गया हो, बेपता। उ० कबि अलखित गति बेषु बिरागी। (मा० २।११०।४)

अलखु-दे० 'अलख'। उ० व्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी। (मा० १।३४१।३)

अलग-(सं० अलग्न)-भिन्न, दूर, पृथक्, न्यारा। उ० सो स्वासा तजि रामपद तुलसी अलग न खोइ। (स० ४६)

अलच्छि-(सं० अ+लक्ष्मी)-दरिद्रता, ग़रीबी। उ० लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा। (मा० १।६।४)

अलप-(सं० अल्प)-थोड़ा, लघु। उ० अलप तड़ित जुगरेख इंदु महँ रहि तजि चंचलताई। (वि० ६२)

अलभ्य-(सं०)-न मिलने योग्य, अप्राप्य, दुर्लभ। उ० मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ। (गी० २।३२)

अलम्-(सं०)-यथेष्ट, पर्याप्त।

अलल-(?)-१. पक्षी-विशेष, २. अनुभवहीन व्यक्ति, ३. घोड़े का जवान बच्चा।

अलसात-(सं० आलस्य)-आलस्य करते हैं। उ० जानत रघुबर भजन तें तुलसी सठ अलसात। (स० १२६) अलसातो-आलस्य करते। उ० जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो। (वि० १५१)

अलसी-आलसी। उ० राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी, हमसे गलगाजे। (क० ७।१)

अलान-(सं० आलान)-हाथी बाँधने का खूँटा या सिक्कड़, जंज़ीर। उ० नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान। (मा० २।५१)

अलाप-(सं० आलाप)-१. आलाप, संगीत के सात स्वरों का साधन, २. बातचीत।

अलायक-(सं० अ+अ० लायक)-अयोग्य, निकम्मा। उ० सुर स्वारथी अनीस अलायक, निठुर दया चित नाहीं। (वि० १४५)

अलिंगिनी-भ्रमरी, भँवरी, भ्रमर की स्त्री। उ० मंद-मंद गुंजत हैं अलि अलिगिनी। (गी० २।४३)

अलि-(सं०) १. भौंरा, भ्रमर, २. कोयल, ३. सखी, आली, ४. मदिरा, ५. श्रेणी, समूह। उ० १. गुंजत अलि लै चलि मकरंदा। (मा० ७।२३।२) ३. कुँवर सो कुसल-छेम अलि! तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँचाई। (गी० २।८६) ५. भूत ग्रह बेताल खग मृगालि-जालिका। (वि० १६) अलिन-भौंरों का समूह। अलिनि-(सं० अलिनी)-भ्रमरी, भ्रमर की स्त्री। उ० गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। (मा० १।२५६।१)

अलीं-(सं० आली)-सखियाँ। उ० करहिं सुमंगल गान उमँगि आनँद अलीं। (जा० १५४) अली (१)-(सं० आली)-१. सखी, २. श्रेणी, पंक्ति, ३. सखी उदार या दानी (फारसी में)। उ० १. एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषीं अली। (मा० १।२३६। छं० १) ३. सुख-सागर नागर ललित बली अली पर-धाम। (स० २५३)

अली (२)-(सं० अलि)-भ्रमर, भँवरा।

अलीक-(सं०)-बिना सर पैर का, मिथ्या, झूठा। उ० सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी (मा० ६।२५।४)

अलीका-दे० 'अलीक'। उ० बचन तुम्हार न होइ अलीका। (मा० १।२१६।३)

अलीहा-(सं० अलीक)-मिथ्या, झूठ। उ० एक कहहिं यह बात अलीहा। (मा० २।४८।४)

अलुज्झि-(सं० अवरुन्धन)-उलझकर, एक में एक होकर। उ० खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं। (मा० ६।८८ छं० १)

अलेख (सं०) १. अधिक, बहुत, २. अज्ञेय, दुर्बोध। उ० १. भए अलेख सोच बस लेखा। (मा० २।२६४।४)

अलेखी-(सं० अलेख)-१. अन्यायी, गड़बड़ करनेवाला, २. अज्ञेय, दुर्बोध। उ० १. बड़े अलेखी लखि परै, परिहरे न जाहीं। (वि० १४७)

अलेप-(सं० अ+लेप) निर्लेप, विरक्त, संसार में जो लीन न हो। उ० अतुल अलेप अनाम एक रस। (मा० २।२१९।३)

अलोने-(सं० अ+लवण)-बिना नमक का, फीका, बेमज़ा, व्यर्थ। उ० तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने। (वि० १७५)

अलोल-(सं०)-स्थिर, अचंचल। उ० एकौ पल न कबहुँ अलोल-चित हित दै पद-सरोज सुमिरौं। (वि० १४१)

अलोला-दे० 'अलोल'। उ० नाथ कृपा मन भयउ अलोला। (मा० ४।७।८)

अलौकिक-(सं०)-जो इस लोक में न दिखाई दे, असाधारण, अद्भुत। उ० कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। (मा० १।३३।२)

अल्प-(सं०)-१. थोड़ा, कुछ, कम, न्यून। २. थोड़ी अवस्था, कच्ची अवस्था। उ० २. अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। (मा० ७।२१।२)

अव-(सं०)-एक उपसर्ग, इसके लगने से निश्चय, अनादर, न्यूनता, व्याप्ति आदि अर्थों की योजना होती है।

अवकलत-ज्ञात होता, सूझ पड़ता, विचार में आता। उ० मोहि अवकलत उपाय न एकू। (मा० २।२५३।१)

अवकलन-(सं०)-१. इकट्ठा करके मिला देना, २. ग्रहण, ३. जानना।

अवकलना-दे० 'अवकलन'।

अवकलित-१. देखा हुआ, २. ज्ञात, ३. निश्चित।

अवकास-(सं० अवकाश)-१. स्थान, जगह, २. आकाश, अंतरिक्ष, शून्य, ३. फ़ुर्सत, छुट्टी। उ० १. कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ। (मा० ७।९०।२)

अवकासा-दे० 'अवकास'। उ० नभ सत कोटि अमित अवकासा। (मा० ७।९१।४)

अवगत-(सं०) विदित, ज्ञात, मालूम।

अवगति-(सं०) १. ज्ञान, २. बुरी गति, दुर्गति।

अवगथ-(सं० अप+गाथा)-अपवाद, बुराई, निंदा।

अवगाहंति-(सं०) स्नान करते हैं। उ० श्री मद्रामचरित्र मानसमिदं भक्त्यावगाहंति ये। (मा० ७।१३१। श्लो० २) अवगाहत-डूबता हुआ। उ० अवगाहत बोहित नौका चढ़ि कबहूँ पार न पावै। (वि० १२२) अवगाहहिं-स्नान

करते हैं। उ० जे सर सरित राम अवगाहहिं। (मा० २।११३।३) अवगाहि–१. स्नानकर, २. डूबकर, ३. घुसकर, ३. मथकर। अवगाही–१. स्नानकर, गोता लगाकर, २. सोचकर, मनन करके। उ० १. भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही। (मा० १।३६।५)

अवगाह–(सं० अवगाध)–१. अथाह, गंभीर, २. अनहोनी, कठिन, ३. संकट का स्थान, उ० १. प्रेम बारि अवगाह सुहावन। (मा० १।२६२।१) अवगाहैं–दे० 'अवगाह'। उ० १. सुंदर-स्याम-सरीर-सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं। (गी० ७।१३)

अवगाहा–दे० 'अवगाह'। उ० १. उभय अपार उदधि अवगाहा। (मा० १।६।१)

अवगाहन–(सं०)–१. पानी में हल कर स्नान करना। २. प्रवेश, पैठ, ३. मथन, ४. खोज, ५. चित्त धँसाना।

अवगाहू–दे० 'अवगाह'। उ० १. नारि चरित जलनिधि अवगाहू। (मा० २।२७।४)

अवगुन–(सं० अवगुण)– १. दोष, ऐब, २. अपराध, ३. निर्गुण। उ० १. जो अपने अवगुन सब कहहूँ। (मा० १।१२।३) अवगुनन्हि–अवगुणों को, बुराइयों को। उ० गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा। (मा० ४।७।२)

अवघट–(सं० अव + घट्ट)–अटपट, दुर्घट, कठिन, अड़बड़। उ० सरिता बन गिरि अवघट घाटा। (मा० ३।७।२)

अवचट–१. अनजान में, अचानक, अचक्का। उ० अवचट चितए सकल भुआला। (मा० १।२४८।३)

अवच्छिन्न–(सं०)–१. अलग किया हुआ, पृथक्, २. विशेषणयुक्त।

अवछीन–(सं० अवच्छिन्न) दे० 'अवच्छिन्न'।

अवज्ञा–(सं०) १. अपमान, अनादर, २. आज्ञा का उल्लंघन, ३. पराजय, हार।

अवटत–(सं० आवर्त्तन)–१. मथन करते हैं, २. जलाते हैं, औटते हैं। अवटि–१. औटकर, पकाकर, २. मथकर, ३. जलकर। उ० ३. जो आचरन बिचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि मरौं। (वि० १४१) अवटै–आग पर रखकर गाढ़ा करे। उ० अवटै अनल अकाम बनाई। (मा० ७।११७।७

अवडेर–(सं० अव + राट) १. छल, धोखा, २. भाग्यहीन, ३. झंझट, बखेड़ा।

अवडेरि–धोखा देकर, चक्कर में डालकर। उ० पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही। (मा० १।७६।४) अवडेरिए–निकाल दीजिए। उ० पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिए। (ह० ३४)

अवडेरे–चक्करदार, बेढब। उ० जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे। (वि० २२७)

अवढर–(सं० अव + धार)–१. दया करनेवाला, उदार, २. मुँहमाँगा देनेवाला। ३. सीधा, भोला। उ० १. आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। (मा० २।४४।४)

अवतंस–(सं०)–१. भूषण, शिरोभूषण, शोभायमान करनेवाले, २. मुकुट, ३. माला, ४. कर्णपूर, कर्णफूल। उ० १. राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस। (मा० २।६)

अवतंसा–दे० 'अवतंस'। उ० १. भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा। (मा० १।८८।३)

अवतरइ–(सं० अवतार) अवतार लेते हैं, जन्म लेते हैं। उ० निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लाग। (मा० ४।२६) अवतरहीं–अवतार लेते हैं, पैदा होते हैं। उ० कलप-कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। (मा० १।१४०।१) अवतरिहउँ–अवतार लूँगा, जन्म धारण करूँगा। उ० परम सक्ति समेत अवतरिहउँ। (मा० १।१८७।३) अवतरिहि–अवतार लेगी, उतरेगी, अवतीर्ण होगी। उ० सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। (मा० १।१५२।२) अवतरी–अवतार लिया, जन्म लिया। उ० जगदंबा जहँ अवतरी। (मा० १।६४) अवतरे–अवतार लिया, अवतार लिया है। उ० जेहि मारे सोइ अवतरे, कृपा सिन्धु भगवान्। (दो० ११५) अवतरेउ–अवतार लिया है। उ० प्रभु अवतरेउ हरन महि-भारा। (मा० १।२०६।३) अवतरेहु–अवतार लिया है। उ० धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। (मा० ४।६।३)

अवतार–(सं०)–१. उतरना, नीचे आना, २. जन्म, ३. सृष्टि। उ० २. एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार। (मा० १।१३६) विशेष–पुराणों के अनुसार विष्णु के २४ अवतार हैं। उनमें से दस (मत्स्य, कच्छप, बाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम और कृष्ण आदि) प्रधान हैं।

अवतारा–दे० 'अवतार'। उ० २. पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। (मा० १।११०।३)

अवतारी–अवतार लेनेवाला, उतरनेवाला। उ० यद् ब्रह्म-बिग्रह-व्यक्त लीलावतारी। (वि० ४३)

अवदातं–(सं०)–१. पवित्र, २. सुंदर, ३. उज्वल। उ० २. वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्। (मा० ६।१।१)

अवद्य–(सं०)–१. अधम, पापी, २. निंद्य, गर्हित।

अवध (१)–(सं० अयोध्या)–१. अयोध्या, २. कोशल, एक देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी। उ० १. बंदउँ अवध पुरी अति पावनि। (मा० १।१६।१) अवधहि–अवध को, अयोध्या को। उ० चले हृदयँ अवधहि सिरु-नाई। (मा० २।८३।१)

अवध (२)–(सं० अवध्य)–न मारने योग्य।

अवधनाथु–(सं० अयोध्यानाथ)–१. राम, २. दशरथ। उ० १. अवधनाथु गवने अवध। (प्र० ६।१।५)

अवधपति–दे० 'अवधनाथु'। उ० १. राम अनादि अवधपति सोई। (मा० १।१२७।३)

अवधि–(सं०)–१. सीमा, २. समय, ३. अंत समय। उ० २. बीती अवधि काज कछु नाहीं। (मा० ४।२६।१)

अवधूत–(सं०)–१. संन्यासी, एक प्रकार के साधु, २. कंपित, ३. विनष्ट, नाश किया हुआ। उ० १. धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ। (क० ७।१०६)

अवधेस–(सं० अवधेश)–१. दशरथ, २. राम। उ० १. अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे। (क० १।१) अवधेसहि–राजा दशरथ को। उ० जाइ कहेउ 'पगु धारिय' मुनि अवधेसहि। (जा० १४३)

अवधेसा–दे० 'अवधेस'। उ० २. भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। (मा० ७।१११।६)

अवन–(सं०)–१. रक्षा, बचाव, २. प्रसन्न करना, ३. रक्षा

करनेवाले, खुश करनेवाले। उ० ३. सीय-सोच-समन, दुरित-दोष-दमन, सरन आए अवन, लखन प्रिय प्रान सो। (ह० ८)

अवनति-(सं०)-१. घटती, कमी, २. विनय, ३. दुर्दशा, तनज़्ज़ुली।

अवनि-(सं०)-पृथ्वी, ज़मीन। उ० सुचि अवनि सुहावनि आलबाल। (वि० २३) अवनिद्रोहा-(सं० अवनि+द्रोहिन्)-पृथ्वी से द्रोह करनेवाले, राक्षस। उ० धीर, सुर-सुखद, मर्दन अवनिद्रोही। (गी० २।१८)

अवनिप-(सं० अवनि+प)-राजा, नृप। उ० गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि, सुनि कुमार गति घोर। (मा० १।२७९)

अवनिकुमारी-(सं०)-पृथ्वी की पुत्री, जानकी, सीता। उ० धरि धीरजु उर अवनिकुमारी। (मा० २।६४।२)

अवनी-(सं० अवनि)-पृथ्वी, धरा, ज़मीन। उ० त्रसित परेउ अवनी अकुलाई। (मा० १।१७४।४)

अवनीस-(सं० अवनीश)-१. अवनीश, राजा, २. भगवान। उ० १. बिचरहि अवनि अवनीस-चरन-सरोज मन मधुकर किए। (वि० १३५)

अवमान-(सं०)-अपमान, अनादर। उ० गुर अवमान दोष नहिं दूषा। (मा० २।२०९।३)

अवमाना-दे० 'अवमान'। उ० सब तें कठिन जाति अवमाना। (मा० १।६३।४)

अवमानी-अपमान करनेवाला। उ० सोचिय सुद्र बिप्र अवमानी। (मा० २।१७२।३)

अवयव-(सं०)-१. अंश, भाग, हिस्सा, २. शरीर का एक देश, अंग, ३. वाक्य का एक अंश।

अवर (१)-(सं० अपर)-अन्य, दूसरा, और।

अवर (२)-(सं० अ+वर)-अधम, जो वर न हो।

अवराई-(सं० अंबराजि)-आमों का बगीचा। उ० गये जहाँ सीतल अवराई। (मा० ७।२०।३)

अवराधक-(सं० आराधक)-आराधना करनेवाला, सेवक। उ० कहहिं संत तव पद अवराधक। (मा० ४।७।६)

अवराधन-(सं० आराधन)-उपासना, पूजा, सेवा। उ० सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान। (मा० ७।११० घ)

अवराधना-(सं० आराधना)-सेवा, पूजा।

अवराधहिं-आराधना करें, प्रसन्न करें। उ० कहिय उमहि मनु लाइ जाइ अवराधहिं। (पा० २३) अवराधहु-उपासना करती हो। उ० केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। (मा० १।७८।२) अवराधिए-उपासना कीजिए। उ० बीर महा अवराधिए साधे सिधि होय। (वि० १०८) अवराधे-आराधना की, पूजा की। उ० इन्ह सम काहुँ न सिव अवराधे। (मा० १।३१०।१)

अवरेखी-(सं० अवलेख)-१. लिखी, चित्रित की, खींचा, २. अनुमान किया, ३. अनुभव किया, माना। उ० १. रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी। (मा० १।२६४।२) अवरेखु-चित्रित कर लो, लिख लो। उ० चित्त-भीति सुप्रीति-रंग सुरूपता अवरेखु। (गी० ७।६)

अवरेब-(सं० अव+रेव=गति)-१. तिरछा, वक्र, २. उलझन, पेच, ३. बिगाड़, ख़राबी, ४. झगड़ा, ५. वक्रोक्ति, काकूक्ति। उ० ५. धुनि अवरेब कबित गुन जाती। (मा० १।३७।५)

अवरोध-(सं०)-१. रुकावट, अड़चन, २. अनुरोध, दबाव, ३. अंतःपुर।

अवर्त्त-(सं० आवर्त्त)-भँवर, पानी का चक्कर।

अवलंब-(सं०) आश्रय, आधार, सहारा। उ० बूझिए बिलंब अवलंब मेरे तेरिए। (ह० ३४)

अवलंबन-(सं०)-आश्रय, आधार, सहारा। उ० रामनाम अवलंबन एकू। (मा० १।२७।४)

अवलंबा-दे० 'अवलंब'। उ० फिर इत होइ प्रान अवलंबा। (मा० २।८२।३)

अवलंबु-दे० 'अवलंब'।

अवलि-(सं० आवलि)- १. श्रेणी, पंक्ति, २. समूह। उ० १. कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं। (मा० १।२४३।३)

अवली-श्रेणी, समूह। उ० बचन नखत अवली न प्रकासी। (मा० १।२५५।१)

अवलोकत-देखते ही, दर्शन करते ही। उ० राम तुम्हहि अवलोकत आजू। (मा० २।१०७।३) अवलोकन-(सं०) देखना, देखने की क्रिया। उ० सो धनु कहि अवलोकन भूप किसोरहि। (जा० १०५) अवलोकनि-देखना, अवलोकन करना। उ० अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास। (मा० १।४२) अवलोकय-देखिए, देख। उ० मामवलोकय पंकज लोचन। (मा० ७।५१।१) अवलोकहिं-देखते हैं। उ० निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका। (मा० १।८५।३) अवलोकहु-देखो। उ० उयउ अरुन अवलोकहु ताता। (मा० १।२३८।४) अवलोकि-देखकर। उ० गावहिं छवि अवलोकि सहेली। (मा० १।२६४।४) अवलोकी-१. देखकर, २. देखा। उ० १. कासी मरत जंतु अवलोकी। (मा० १।११९।१) अवलोकु-दर्शन करो, देखो। उ० सब अँग सुभग बिंदु माधव छबि तजि सुभाउ अवलोकु एक पलु। (वि० ६३) अवलोके-देखा। उ० अवलोके रघुपति बहुतेरे। (मा० १।५५।२) अवलोक्य-देखकर। उ० येन श्रीराम-नामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यम् अवलोक्य कालं। (वि० ४६)

अवश-(सं०)-१. जो किसी के वश में न हो, २. लाचार, विवश।

अवशेष-(सं०)-बाकी, शेष।

अवश्य-(सं०)-निस्संदेह, ज़रूर।

अवसर-(सं०)-१. समय, काल, मौका, २. अवकाश, फ़ुरसत, ३. इत्तिफ़ाक। उ० १. कबहुँक अंब अवसर पाइ। (वि० ४१)

अवसरु-दे० 'अवसर'। उ० १. कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई। (मा० २।८२।२)

अवसान-(सं०)-१. विराम, ठहराव, २. समाप्ति, अंत, ३. सीमा, ४. मरण, ५. सायंकाल। उ० २. जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान। (ब० ६७)

अवसाना-दे० 'अवसान'। उ० २. नहिं तव आदि मध्य अवसाना। (मा० १।२३५।४)

अवसि-(सं० अवश्य)-ज़रूर। उ० अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। (मा० २।३१।४)

अवसेख–(सं० अवशेष)–बाकी, शेष ।
अवसेरा–(सं० अवसेरु)–१. अटकाव, उलझन, २. देर, विलंब, ३. चिंता, व्यग्रता, ४. उत्कंठा । उ० ४. भए बहुत दिन अति अवसेरी । (मा० २।७।३)
अवसेषा–(सं० अवशेष)–शेष, बाकी । उ० उहाँ राम रजनी अवसेषा । (मा० २।२२६।२)
अवसेषित–बचा हुआ, शेष । उ० अजहुँ देत दुख रबि ससिहि, सिर अवसेषित राहु । (मा० १।१७०)
अवस्था–(सं०)–१. दशा, स्थिति, २. समय, ३. आयु, उम्र, ४. मनुष्य की अवस्थाएँ । वेदांत दर्शन के अनुसार मनुष्य की चार अवस्थाएँ होती हैं–जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय । स्मृतिओं के अनुसार आठ तथा निरुक्त के अनुसार छः अवस्थाएँ होती हैं । प्रसिद्ध तीन अवस्थाएँ जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति हैं । उ० ४. तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि । (मा० ७।११७ग)
अवहेला–(सं०)–अनादर, निरादर ।
अवाँ–(सं० आपाक)–आवाँ, वह गड्ढा जिसमें कुम्हार मिट्टी का बर्तन पकाते हैं । उ० तपइ अवाँ इव उर अधिकाई । (मा० १।२८।२)
अवाई–(सं० आयन)–आगमन, आने की क्रिया ।
अवास–(सं०आवास)–घर, मकान । अवासहि–घर में, घर को । उ० दूलह दुलहिनि गे तब हास-अवासहि । (पा० १४८)
अवासू–दे० 'अवास' ।
अविकल–(सं०)–ज्यों का त्यों, पूर्ण, पूरा ।
अविकार–(सं०)–जिसमें विकार न हो, निर्दोष। उ० अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनंद सिन्धो । (वि० ५६)
अविकृत–(सं०)–जो विकृत या बिगड़ा न हो ।
अविगत–(सं०)–१. जो जाना न जाय, अज्ञात, २. जो नष्ट न हो ।
अविचल–(सं०)–अचल, स्थिर, अटल। उ० अमल अविचल अकल सकल, संतप्त-कलि-बिकलता-भंजनानंदरासी । (वि० ५५)
अविचार–(सं०)–१. विचार का अभाव, अज्ञान अविवेक, २. अन्याय ।
अविछिन्न–(सं० अविच्छिन्न)–१. पूर्ण, अखंड, लगातार । उ० १. चंद्रसेखर सूलपानि हर, अनघ अज अमित अविछिन्न वृषभेशगामी । (वि० ४६)
अविद्यमान–(सं०)–अनुपस्थित, जो न हो, असत् । उ० अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं । (वि० १२०)
अविद्या–(सं०)–१. अज्ञान, मिथ्या ज्ञान, २. माया, ३. माया का एक भेद, ४. प्रकृति, जड़ ।
अविनय–(सं०)–ढिठाई, गुस्ताखी ।
अविनासिनि–(सं० अविनाशिनी)–जिसका कभी नाश न हो। 'अविनासी' का स्त्रीलिंग । अविनासी–(सं० अविनाशिन्)–जिसका विनाश न हो, नित्य । उ० दनुज-वन-दहन, गुनगहन, गोविंद, नंदादिआनंददाताऽविनासी । (वि० ४६)
अविरल–(सं०)–मिला हुआ, जो विरल या अलग-अलग न हो, घना, प्रगाढ़ । उ० अचल अनिकेत अविरल अनामय, अनारंभ अंभोद नादघ्न बंधो । (वि० ५६)
अविरुद्ध–(सं०)–जिसके विरुद्ध कोई न हो ।
अविरोध–(सं०)–मेल, विरोध रहित, अनुकूलता ।
अविवेक–(सं०)–अज्ञान, मूर्खता ।
अविवेकी–(सं० अविवेकिन्)–अज्ञानी, मूर्ख ।
अविहित–(सं०)–जो विहित न हो, विरुद्ध, अनुचित ।
अव्यक्त–(सं०)–१. अस्पष्ट, जो साफ़ न हो, जो प्रत्यक्ष न हो, अज्ञात, २. विष्णु, ३. कामदेव, ४. ब्रह्म । उ० १. अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त । (वि० ५३) अव्यक्तगुण–(सं०)–निर्गुण, गुणों (सत् रज् तम्) से परे । उ० सकल-लोकांत-कल्पांतशूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्तगुण नृत्यकारी । (वि० ११)
अव्ययं–(सं०)–१. व्यय न होनेवाला, अक्षय, नित्य, २. ब्रह्म । उ० १. ब्रह्माम्भोधि समुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं । (मा० ४।१। श्लो० २)
अव्याहत–(सं०)–१. अप्रतिरुद्ध, बेरोक, २. सत्य ।
अशक्त–(सं०)–निर्बल, शक्तिहीन ।
अशुभ–(सं०)–१. अमंगल, २. पाप, अपराध । उ० १. अशुभ इव भाति कल्याणराशी । (वि० १०)
अशेष–(सं०)–शेषहीन, सब, समूचा, समग्र । उ० वंदेऽहं तमशेष कारण परं रामाख्यमीशं हरिम् । (मा० १।१। श्लो०६)
अश्वमेध–(सं०)–एक यज्ञ जिसमें घोड़े के मस्तक पर जयपत्र बाँधकर उसे विश्व भर में घूमने के लिए छोड़ देते थे । साथ में रक्षा के लिए सेना रहती थी । जो कोई रोकता उससे युद्ध होता था । अंत में घोड़ा जब घूमकर लौटता तो उसको मारकर उसकी चर्बी से हवन किया जाता था । प्रतापी और बड़े राजा इसे करते थे ।
अष्ट–(सं०)–आठ । उ० अष्ट सिद्धि नव निद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं । (गी० १।२)
अष्टक–(सं०)–आठ वस्तुओं का संग्रह, वह काव्य या स्तोत्र जिसमें आठ श्लोक हों । उ० रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये । (मा० ७।१०८। श्लो० ९)
अष्टदश–(सं० अष्टादश)–अठारह ।
अष्टांग–(सं०)–१. योग की क्रिया के आठ भेद–यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि । २. आयुर्वेद या शरीर के आठ अंग ।
अष्टादस–(सं० अष्टादश)–अठारह। उ० रोमराजि अष्टादस भारा । (मा० ६।१५।४)
अष्टोत्तरसत–(सं० अष्टोत्तरशत)–एक सौ आठ । उ० अष्टोत्तर सत कमलफल, मुष्टी तीनि प्रमान । (प्र० आरंभ का छंद)
असंक–(सं० अशंक)–निर्भय, निडर, निर्भीक। उ० अति असंक मन सदा उछाहू । (मा० १।१३७।२)
असंका–(सं० आशंका)–सन्देह । उ० अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका । (मा० १।७२।२)
असंकू–दे० 'असंक' । उ० निपट निरंकुस अबुध असंकू । (मा० १।२७४।१)

असंग–(सं०)–१. संगरहित, अकेला, एकाकी, २. निर्लिप्त माया रहित। उ० २. भस्म अंग मर्दन अनंग, संतत असंग हर। (क० ७।१४९)
असंगत–(सं०)–अनुचित, अयुक्त, बेठीक। उ० परम दुर्घट पंथ, खल असंगत साथ, नाथ नहिं हाथ बर बिरति-यष्टी। (वि० ६०)
असंत–(सं०)–असाधु, दुष्ट। उ० संत असंत मरम तुम्ह जानहु। (मा० ७।१२१।३) असंतन्ह–असंत लोगों, दुष्टों। उ० संत असंतन्ह के गुन भाषे। (मा० ७।४१।४)
असंभव–(सं०)–जो संभव न हो, नामुमकिन।
असंभावना–(सं०)–अनहोनापन, संभावना का अभाव। उ० दारुन असंभावना बीती। (मा० १।११९।४)
असंशय–(सं०)–निश्चय, निःसंदेह।
अस–(सं०एष)–१. इस प्रकार का, २. ऐसा, तुल्य, समान। उ० २. तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ। (मा० २।१२५)
असक्त–(सं० अशक्त)–निर्बल, शक्ति रहित।
असक्य–(सं० अशक्य)–असाध्य, न होने योग्य।
असगुन–(सं० अशकुन)–अपशकुन, अमंगलसूचक चिह्न। उ० असगुन भयउ भयंकर भारी। (मा० ६।१४।१)
असज्जन–(सं०)–दुष्ट, दुर्जन, कुपात्र। उ० बंदउ संत असज्जन चरना। (मा० १।५।२)
असत–(सं०असत्)–मिथ्या, झूठ।
असत्य–(सं०)–मिथ्या, झूठ। उ०. जदपि असत्य देत दुख अहई। (मा० १।११८।१)
असथिर (१)–(सं० स्थिर)–स्थिर, जड़। उ० रबि रजनीस धरा तथा, यह असथिर असथूल। (स० ४४०)
असथिर (२)–(सं० स्थिर)– जो चले, चल, स्थिर न रहनेवाला।
असथूल (१)–(सं० स्थूल)–स्थूल, जो सूक्ष्म न हो। उ० रबि रजनीस धरा तथा, यह असथिर असथूल। (स० ४४०)
असथूल (२)–(सं० अस्थूल)–जो स्थूल न हो, सूक्ष्म।
असन–(सं० अशन)–अशन, भोजन, आहार। उ० तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा। (मा० १।१७४।४) असनहीन–(सं० अशन हीन)–भूखा, जिसे भोजन न मिले। उ० जैसे कोउ इक दीन दुखी अति असनहीन दुख पावै। (वि०१२३)
असनि–(सं० अशनि)–बज्र, बिजली। उ० लूक न असनि केतु नहि राहू। (मा० ६।३२।५)
असबाब–(अर०)–सामान, वस्तु। उ० सब असबाब डाढो, मैं न काढो तैं न काढो। (क० ५।१२)
असमंजस–(सं०)–१. दुविधा, पसोपेश, २. अड़चन, कठिनाई, ३. राजा सगर का पुत्र जो केशी से उत्पन्न था। उ० १. करौं काह असमंजस जी कें। (मा० २।२६४।३) २. बना आइ असमंजस आजू। (मा० १।१६७।३)
असम–(सं०)–१. जो सम या तुल्य न हो, विषम, ऊँचा-नीचा, २. नष्ट। उ० १. जे अगम सुगम प्रभाव निर्मल असम सम सीतल सदा। (मा० ३।३२।४)
असमय–(सं०)–बुरा समय, विपत्ति का समय, कुअवसर, बेमौका, बेवक्त। उ० आपन अति असमय अनुमानी। (मा० १।१५८।२)
असमर्थ–(सं०)–अशक्त, सामर्थ्यहीन, अयोग्य।
असमसर–(सं० असमशर)– पंचबाण, कामदेव। उ० सकल असमसर कला प्रबीना। (मा० १।१२६।२)
असमाकं–(सं० अस्माकं)–हमको। उ० अनघ अविछिन्न सर्वज्ञ सर्वेस खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं। (वि० ५१)
असम्मत–(सं०)–विरुद्ध, जो स्वीकार्य न हो, प्रतिकूल। उ० कहहिं ते बेद असम्मत बानी। (मा० १।११५।२)
असयानी–(सं० अ+सज्ञान)–जो सयानी (छलवाली या चतुर) न हो, सरल, सीधी. भोली। उ० बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनी। (क० २।१०)
असरन–(सं० अशरण)–असहाय, अनाथ। उ० असरन सरन दीन जन गाहक। (मा० ७।५१।२)
असवारा–(फा० सवार)–सवार, चढ़ा हुआ। उ० बरु बौराह बसहँ असवारा। (मा० ७।६५।४)
असहाई–(सं० असहाय)–निरवलंब, जिसका कोई सहारा न हो। उ० निदरे रामु जान असहाई। (मा० २।२२९।२)
असहाय–(सं०)–जिसकी सहायता करनेवाला कोई न हो, निराश्रय, निःसहाय। उ० संबर निसंबर को, सखा असहाय को। (वि० ६६)
असही–(सं० असह) दूसरे की बढ़ती न सहनेवाला, ईर्ष्यालु। उ० असही दुसही, मरहु मन, बैरिन बढ़हु बिषाद। (गी०१।२)
असह्य–(सं०)– न सहा जाने योग्य, असहनीय।
असाँचा–(सं० असत्य)–झूठ, मिथ्या। उ० बिप्र श्राप किमि होइ असाँचा। (मा० १।१७५।४) असाँची–असाँचा का स्त्रीलिंग, दे० 'असाँचा'। उ० हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची। (मा० ६।२६१)
असा–(सं० एष)–ऐसा। उ० कलपांत न नास गुमानु असा। (मा० ७।१०२।२)
असाध–(सं० असाध्य)–दुष्कर, कठिन।
असाधक–(सं०)–१. अनभ्यासी, २. साधनहीन।
असाधि–(सं० असाध्य,) कठिन, जो साधा न जा सके। उ० देखी ब्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ। (मा० २।३४)
असाधी–(सं० असाध्य)–जिसके दूर होने की आशा न हो, जो साध्य न हो।
असाधु–(सं०)–दुष्ट, बुरा, खल। उ० साधु असाधु सदन सुक सारी। (मा० १।७।५)
असाधू–दे० 'असाधु'। उ० कहै सो अधम अयान असाधू। (मा०२।२०७।४)
असाध्य–(सं०)–कठिन, लाइलाज, दुष्कर।
असार–(सं०)–सारहीन, छूछा, पोला, निःसार।
असि (१)–(सं०)–१. तलवार, खंग, २. समान, ऐसी, ३. एक नदी जो काशी के समीप गंगा से मिली है। उ० १. त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असि धारा। (मा० १।६७।३) २. सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा। (मा० १।६४।२) असिन–तलवारें, असि का बहुबचन। असिन्ह–तलवारें।
असि (२)–(सं०)–हो। उ० विश्वमूलासि, जन-सानुकूलासि। (वि० १५)

असि (३)-(सं० एष)-ऐसी, समान । उ० सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा । (मा० १।६४।२)
असित-(सं०)-१. श्याम, काला, २. दुष्ट, बुरा, ३. शनि, ४. भरत का पुत्र, ५. एक ऋषि का नाम, ६. पिंगला नाम की नाड़ी । उ० १. सबिधि सितासित नीर नहाने । (मा०२।२०४।२)
असिद्ध-(सं०)-१. जो पका न हो, २. जो सिद्ध न हो, अप्रमाणित, ३. अधूरा, ४. व्यर्थ ।
असिव-(सं० अशिव)-अमंगल, अशुभ । उ० असिव बेष सिवधाम कृपाला । (मा० १।६२।२)
असीम-(सं०)-जिसकी सीमा न हो, बेहद, अधिक ।
असीस-(सं० आशिष)-आशीर्वाद, दुआ । उ० जननिहि बहुरि मिलि चलीं, उचित असीस सब काहुँ दईं । (मा० १।१०२। छं० १)
असीसत-१. आशीर्वाद देते हुए, २. आशीर्वाद देते हैं । उ० १. जोरी चारि निहारि असीसत निकसहिं । (जा० २१५) २. सकल असीसत ईस निहोरी । (गी० १।१०३)
असीसा-दे० 'असीस' । उ० पुर पगु धारिअ देइ असीसा । (मा० २।३१६।२)
असुझ-(?) १. अँधेरा, अंधकारमय, २. अधिक, अपार, ३. अदृश्य । उ० ३. तेरेहि सुझाए सूझै असुझ सुझाउ सो । (वि० १८२)
असुद्ध-(सं० अशुद्ध)-भ्रष्ट, ख़राब ।
असुभ-(सं० अशुभ)-अमंगल, जो शुभ न हो । उ० असुभ रूप श्रुति नासा हीनी । (मा० ३।१८।२)
असुर-(सं०)-१. सुर का विरोधी, राक्षस, २. रात्रि, ३. नीच वृत्ति का पुरुष, ४. पृथ्वी, ५. सूर्य, ६. बादल, ७. राहु, ८. एक प्रकार का उन्माद । उ० १. खग मृग सुर नर असुर समेते । (मा० १।१८।२) असुरन-राक्षसों, असुर-गण । उ० असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार । (बा० ३६)
असुरसेन-(सं०)-एक राक्षस का नाम जिसके ऊपर गया नगर बसा हुआ माना जाता है । इसने तप करके यह वर प्राप्त किया था कि इसके शरीर को जो छूवे उसके पूर्वज तर जायँ ।
असुरारि-(सं०)-राक्षसों के बैरी, विष्णु ।
असुरारी-दे० 'असुरारि' । उ० गो द्विज हितकारी, जय असुरारी । (मा० १।१८६। छं० १)
असुरु-दे० 'असुर' । उ० तारकु असुरु समर जेहिं मारा । (मा० १।१०३।४)
असूझ-(?)-जो न सूझे, अदृश्य, जो दिखाई न दे । उ० सरखप सूझत जाहि कहँ ताहि सुमेरु असूझ । (स० ३४१)
असृक-(सं० असृक्)-रक्त, रुधिर, लोहू ।
असेषा-(सं० अशेष)-सब, पूरा । उ० अहइ आन बिनु बास असेषा । (मा० १।११८।४)
असैली-(सं० अ + शैली)-शैली के विरुद्ध, रीति के प्रतिकूल, अनुचित । उ० मैं सुनी बातैं असैली जे कही निसिचर नीच । (गी० ५।६)
असैले-शैली छोड़कर चलनेवाले, कुमार्गी । उ० अबुध असैले मन-मैले महिपाल भए । (गी० १।७१)
असोक-(सं० अशोक)-१. अशोक वृक्ष, २. शोक रहित, दुःखशून्य । उ० १. तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ । (मा० ३।२९ क)
असोका-दे० 'असोक' । उ० १. सुनहि बिनय मम बिटप असोका । (मा० ५।१२।५)
असोकी-शोक रहित । उ० मागि अगम बर होउँ असोकी । (मा० १।१६४।४)
असोच-(सं० अ + शोच)-शोच रहित, चिन्ता रहित, निश्चित । उ० रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें । (मा० ४।३।२)
असौ-(सं०)-यह । उ० खलानां दण्डकृद्योऽसौ शंकरःशं तनोतु मे । (मा० ६।१। श्लो० ३)
असौच-(सं० अशौच)-अपवित्रता । उ० भय अबिबेक असौच अदाया । (मा० ६।१६।२)
अस्त-(सं०)-छिपा हुआ, तिरोहित, डूबा । उ० आसन दीन्ह अस्त रबि जानी । (मा० १।१२६।१)
अस्तु-(सं०)-१. अच्छा, भला, २. जो हो, चाहे जो हो, ३. इसलिए । उ० १. एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ । (मा० १।१५१।४)
अस्तुति (१)-(सं० स्तुति)-स्तुति, बड़ाई । उ० अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू । (मा० १।८३।४)
अस्तुति (२)-(सं०) निंदा, अपकीर्ति ।
अस्त्र-(सं०)-वह हथियार जिसे फेंककर शत्रु पर चलाया जाय । जैसे बाण, शक्ति । उ० ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा, कपि मन कीन्ह बिचार । (मा० ५।१९)
अस्त्रधर-(सं०)-अस्त्र धारण करनेवाला, अस्त्रधारी ।
अस्थान-(सं० स्थान)-स्थान, जगह । उ० अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के अस्थान । (वै० ३१)
अस्थाना-दे० 'अस्थान' । उ० गये रामु सबके अस्थाना । (मा० ६।१२०।१)
अस्थावर-(सं० स्थावर)-जो चले न, स्थिर, अटल । उ० अस्थावर गति अपर नहिं, तुलसी कहहिं प्रमान । (स० ३३८)
अस्थि-(सं०)-हड्डी । उ० अस्थि सैल सरिता नस जारा । (मा० ६।१५।४)
अस्थिर (१)-(सं०) चलनेवाला, चलायमान ।
अस्थिर (२)-(सं० स्थिर)-स्थायी, एक स्थान पर रहनेवाला ।
अस्थूल (१)-(सं०)-सूक्ष्म, जो स्थूल न हो ।
अस्थूल (२)-(सं० स्थूल)-जो सूक्ष्म न हो, मोटा ।
अस्नाना-(सं० स्नान)-नहाना, स्नान । उ० पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना । (मा० १।२०१।१)
अस्मदीये-(सं०)-मेरे, मेरे में, हमारे में । उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये । (मा० ५।१। श्लो० २)
अस्माकं-(सं०)-हमारा, हमको, हमें ।
अस्व-(सं० अश्व)-घोड़ा, तुरंग । उ० होइअ नाथ अस्व असवारा । (मा० २।२०३।३)
अस्विनि-(सं० अश्विनी)-१. २७ नक्षत्रों में प्रथम नक्षत्र, २. घोड़ी । उ० १. अस्विनि बिरचेउँ मंगल, सुनि सुख छिनु छिनु । (पा० ५)
अस्विनीकुमारा-(सं० अश्विनीकुमार)-अश्विनी के लड़के । त्वष्टा की पुत्री प्रभा (इसका नाम संज्ञा भी मिलता है)

एक बार अपने पति सूर्य के तेज को न सह सकने के कारण अपनी दो संतति (यम और यमुना) तथा अपनी छाया को सूर्य के पास छोड़कर चली गई और अश्विनी रूप-धारण करके तप करने लगी। उसकी छाया से भी सूर्य को दो संतति शनि और ताप्ती हुई। जब छाया प्रभा के पुत्रों का अनादर करने लगी तो प्रभा के भगने की बात खुली। सूर्य अश्व का रूप धारण करके उसके पास गये और वहीं अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई। ये दोनों बहुत सुंदर और देवताओं के वैद्य हैं। माद्री पुत्र नकुल और सहदेव इन्हीं लोगों के अंश से उत्पन्न कहे जाते हैं। इन लोगों ने राजा शर्याति की कन्या सुकन्या के पातिव्रत से प्रसन्न होकर च्यवन ऋषि को दृष्टि, यौवन और सौंदर्य प्रदान किया था। दध्यंग ऋषि के सिर को फिर से जोड़ने का श्रेय भी इन्हीं को प्राप्त है। उ० जासु घ्रान अस्विनी-कुमारा। (मा० ६।१५।२)

अहं-(सं०)-१. मैं, २. अहंकार, गर्व। उ० १. नतोऽहं रामवल्लभाम्। (मा० १।१। श्लो ५) २. अहं-अगिनि नहिं दाहै कोई। (वै० ५२)

अहकार-(सं० अहंकार)-गर्व, घमंड। उ० अहँकार-निहार-उदित-दिनेस। (वि० १३)

अहंकार-(सं०)-१. अभिमान, घमंड, २. वेदांत के अनुसार अंतःकरण की एक वृत्ति, मैं और मेरा का भाव, ३. संख्यानुसार महत्तत्त्व से उत्पन्न एक द्रव्य, ४. योग के अनुसार एक वृत्ति जिसे अस्मिता कहते हैं। उ० १. अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान। (मा० ६।१५ क)

अहँकारी-घमंडी, अहंकारी, अहंभाव रखनेवाला। उ० सुना दसानन अति अहँकारी। (मा० ६।४०।१)

अहंकारी-(सं० अहंकारिन्)-अहंकार करनेवाला, घमंडी।

अहंवाद-(सं०)-अहंकार, डींग मारना। उ० अहंवाद, 'मैं' 'तै' नहीं, दुष्ट संग नहिं कोइ। (वै० ३०)

अह-(सं० अहन्)-१. दिन, २. अहंकार, ३. खेद, ४. सूर्य, ५. विष्णु। उ० १. अह निसि बिधिहि मनावत रहहीं। (मा० ७।२५।३) २. कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२५)

अहइ-(सं० अस्ति) है। उ० जदपि अहइ असमंजस भारी। (मा० १।८३।२) अहई-दे० 'अहइ'। उ० जदपि असत्य देत दुख अहई। (मा० १।११८।१) अहउँ-हूँ। उ० तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। (मा० १।५२।१) अहऊँ-हूँ। उ० परम चतुर मैं जानत अहऊँ। (मा० ६।१७।४) अहसि-है। उ० को तू अहसि सत्य कहु मोही। (मा० २।१६२।४) अहहिं-हैं। उ० दुराराध्य पै अहहिं महेसू। (मा० १।७०।२) अहहीं-हैं। उ० भरत आगमनु सूचक अहहीं। (मा० २।७।३) अहहू-हो। उ० तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू। (मा० २।४३।२) अहै-है। उ० एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखा इहौं जू। (क० २।६)

अहन-(सं० अहन्)-दिन, दिवस। उ० अटत गहन-गन अहन अखेट की। (क० ७।६६)

अहनाथ-(सं० अहन्+नाथ)-सूर्य, दिन के नाथ। उ० महि मयंक अहनाथ को आदि ज्ञान भव भेद। (स० ४८२)

अहमिति-(सं० अहम्मति) १. गर्व, घमंड, २. अविद्या। उ० १. रोषरासि भृगुपति धनी अहमिति ममता को। (वि० १५२)

अहर्निश-(सं० अहः+निशि)-दिन रात, आठो प्रहर।

अहलाद-(सं० आह्लाद)-आनंद, प्रसन्नता, हर्ष। उ० अतुल मृगराजवपु धरित, विदरित अरि, भक्त-प्रहलाद-अहलाद कर्त्ता। (वि० ५०)

अहल्या-(सं०)-१. गौतम ऋषि की पत्नी। विश्व की सारी सुंदरता लेकर ब्रह्मा ने सर्वांग सुंदरी अहल्या की रचना की और गौतम के पास धरोहर रख दी। एक वर्ष तक गौतम के मन में कोई विकार न आया इससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने अहल्या का विवाह गौतम से कर दिया। एक दिन चंद्रमा की सहायता से इंद्र ने गौतम को धोखा देकर आश्रम के बाहर कर दिया और अहल्या के साथ संभोग किया। गौतम ने आकर इंद्र को सहस्रभग और अहल्या को पत्थर हो जाने का शाप दिया। अहल्या के बहुत अनुनय करने पर उन्होंने अनुग्रह किया और कहा कि त्रेता में जब भगवान् राम अवतार लेंगे और अहल्या को चरणों का स्पर्श प्राप्त होगा तो वह मुक्त हो जायगी। तभी से वह पत्थर हो गई थी। रामावतार में चरणस्पर्श से मुक्त होकर अहिल्या पतिलोक में गई। स्वयंवर के पश्चात् राम को दुलहे के रूप में देखकर इंद्र के भी सहस्र भग नेत्र हो गये। २. जो धरती जोती न जा सके। उ० १. चरन- कमल-रज-परस अहल्या, निज पति-लोक पठाई। (गी० १।५०)

अहह-(सं०)-अत्यंत दुःखसूचक शब्द, हाय, आह। उ० अहह मंद मनु अवसर चूका। (मा० २।१४४।३)

अहार-(सं० आहार)-भोजन, खाना। उ० करहिं अहार साक फल कंदा। (मा० १।१४४।१) अहारन-बहुत भोजन, खाने का समूह। उ० चाहत अहारन पहार दारि कूरना। (क० ७।१४८)

अहारा-दे० 'अहार'। उ० आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। (मा० ५।२।२)

अहारी-आहार करनेवाले, खानेवाले, भक्षक। उ० धावहिं सठ खग मांस अहारी। (मा० ६।४०।५)

अहारु-आहार, भोजन। उ० बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु। (मा० २।८८)

अहारू-आहार, भोजन। उ० जौं एहिं खल नित करब अहारू। (मा० १।१७७।४)

अहिंसा-(सं०)-किसी को दुःख न देना, किसी की हिंसा न करना। जैन और बौद्ध धर्म में इसका विशेष स्थान है। उ० परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। (मा० ७।१२१।११)

अहि-(सं०)-१. साँप, २. खल, वंचक, ३. राहु, ४. एक नक्षत्र, ५. वृत्रासुर, ६. पृथिवी। उ० १. अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी। (मा० १।११।१) अहितल्पवासी-(सं० अहि+तल्प+वासी) सर्प की सेज पर वास करनेवाला, विष्णु। उ० सत्य संकल्प अतिकल्प कल्पांतकृत कल्पनातीत अहि-तल्पवासी। (वि० ५४) अहिन-सर्पों, सर्प का

बहुवचन। उ० सुरसा नाम अहिन कै माता। (मा० ५।२।१) अहिनाथ-(सं०)-शेषनाग, सर्पों के राजा। उ० जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहसफनी। (गी० ७।२०) अहिनाह-(सं० अहिनाथ)-शेष नाग। अहिनाहा-दे० 'अहिनाह'। अहिनाहू-दे० 'अहिनाह'। उ० सकहि न बरनि गिरा अहिनाहू। (मा० १।३६१।३) अहिनी-अहि की स्त्री, सर्पिणी। उ० दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी। (मा० ३।१७।२) अहिप-(सं०)-सर्पों के राजा, शेषनाग। उ० अहिप महिप जहँ लग प्रभुताई। (मा० २।२२४।४) अहिपति (सं०)-शेष नाग। उ० सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई। (मा० ५।३५। छं०२) अहिभूषन-(सं० अहिभूषण)-जिसका भूषण सर्प हो, शिव, शंकर। उ० अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव-देव त्रिपुरारी। (वि०९) अहिरसना-(सं० अहि+रसना) १.साँप की जीभ, २. साँप को दो जीभें होती हैं इसलिए २ की संख्या, दो। उ० २. अहिरसना थनधेनु रस गनपति-द्विज गुरु बार। (स० २१) अहिराजा-(सं० अहि+राजन्)-सर्पराज, शेषनाग। उ० सो बन बरनि न सक अहिराजा। (मा० ३।१४।२) अहेः-(सं०)-अहि के, सर्प के। उ० रज्जौ यथाहेर्भ्रमः। (मा० १।१। श्लो०६)

अहित-(सं०)-१. शत्रु, बैरी, विरोधी, २. हानि, बुराई। उ० १. भे अति अहित रामु तेउ तोही। (मा० २।१६२।४)

अहिबात-(सं० अभिवाद्य)-सौभाग्य, सोहाग। उ० चिरु अहिबात असीस हमारी। (मा० १।३३४।२)

अहिबातु-दे० 'अहिबात'। उ० अन अहिबातु सूच जनु भावी। (मा० २।२५।४)

अहिबेलि-(सं० अहिवल्ली)-नाग बेल, पान की लता, पान। उ० कनक कलित अहिबेलि बनाई। (मा० १। २८८।१)

अहिरिनि-(सं० आभीर)-अहीर की स्त्री, ग्वालिन। दे० 'अहीर'। उ० अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो। (रा०५)

अहिल्या-दे० 'अहल्या'।

अहिवाता-दे० 'अहिबात'। उ० सदा अचल एहि कर अहिवाता। (मा० १।६७।२)

अहीर-(सं० आभीर)-एक जाति जिसका कार्य गाय आदि पालना और दूध, दही, घी का व्यापार करना है। गोप, ग्वाला। उ० निर्मल मन अहीर निज दासा। (मा० ७।११७।६)

अहीश-(सं० अहि+ईश)-सर्पराज, शेष।

अहीस-(सं० अहीश)-सर्पराज, शेष। उ० दानव देव अहीस महीस महा मुनि तापस सिद्ध समाजी। (क० ७।४५)

अहीसा-दे० 'अहीस'। उ० कहि न सकहिं सतकोटि अहीसा। (मा० १।१०५।२)

अहेर-(सं० आखेट)-शिकार, मृगया। उ० तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। (मा० २।१३६।४) अहेरें-अहेर में, शिकार में, शिकार को, शिकार के लिए। उ० फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। (मा० १।१५९।३) अहेरे-दे० 'अहेरें'। उ० राम अहेरे चलहिंगे। (गी० १।१६)

अहेरि-अहेरी, शिकारी। उ० चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानों। (क० ७।१४२)

अहेरी-शिकारी। उ० चित्रकूट जनु अचल अहेरी। (मा० २।१३३।२)

अहो-(सं०)-एक अव्यय जिसका प्रयोग कभी (१.) संबोधन की तरह और कभी (२.) आश्चर्य, (३.) खेद, (४) करुणा, (५.) प्रशंसा, (६.) हर्ष इत्यादि सूचित करने के लिए होता है। उ० ६. अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। (मा० १।१०४।२)

अहोरात्र-(सं०)-दिन और रात।

अह्नि-(सं० अहन्)-दिन।

आ

आँक-दे० 'अंक'। निश्चय, पक्की बात। उ० हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है। (गी० १।८३)

आँकरो-(सं० आकर)-१. बहुत, अधिक, २. गहरा। उ० १. बिसारि बेद लोक-लाज आँकरो अचेतु है। (क० ७।८२)

आँकु-दे० 'अंक'। उ० मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ। (पा० ७१)

आँकुरे-(सं० अंकुर)-१. अंकुरित हुए, २. अँखुए, अंकुर।

आँख-(सं० अक्षि)-१. देखने की इंद्रिय, नेत्र, नयन, २. अँखुवा, अंकुर।

आँखि-दे० 'आँख'। उ० अब न आँखि तर आवत कोऊ। (मा० १।२६३।३) मु० आँखि देखाए-क्रोध दिखाया, क्रोध से आँखें लाल करके देखा। उ० बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए। (मा० १।२६३।१) आँखिन-आँखें, आँख का बहुवचन। आँखिन्ह-१. आँखों से, २. आँखों ने, ३. आँखों में, ४. आँखों को। उ० १. बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा। (मा० १।२८०।४)

आँखी-आँखें।

आँगन-(सं० अंगण)-घर के भीतर का सहन, चौक, अजिर। उ० भौन में भाँग, धतूरोई आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े। (क० ७।१५४)

आँच-(सं० अर्चि)-१. ताप, गरमी, २. आग की लपट। उ० २. कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे। (क० ७।११८)

आँचर-(सं० अंचल)-१. धोती आदि बिना सिले वस्त्रों के दोनों छोरों पर का भाग, पल्ला, २. साधुओं के पहनने-ओढ़ने के छोटे वस्त्र। उ० १. सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो। (रा० ६) आँचरन्हि-अंचलों में,

छोरों में। उ० दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती। (मा० १।३२७।४)

आँचे-तपे, जले। उ० कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे। (क० ७।११८)

आँजन-(सं० अंजन)-सुरमा, काजल, आँखों में लगाने की एक काली वस्तु।

आँजहि-अंजन लगाती हैं। उ० लोचन आँजहि फगुआ मनाइ। (गी० ७।२२) आँजी-आँजने की क्रिया, अंजन लगाना। उ० लोक रीति फूटी सहैं आँजी सहै न कोइ। (दो० ४२३) आँजे-अंजन लगाया। उ० चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे। (गी० १।१०)

आँत-(सं० अंत्र)-पेट के भीतर की एक लंबी नली जो गुदा तक रहती है। अँतड़ी। उ० खैचहिं गीध आँत तट भये। (मा० ६।८८।३) आँतनि-आँतें, आँत का बहुवचन। उ० ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे। (क० ६।५०)

आँधर-(सं० अंध)-अंधा, जिसके आँख न हो। आँधरे-अंधे, बिना आँखवाले। उ० पाँगुरे को हाथ पाँय, आँधरे को आँखि है। (वि० ६६)

आँधरो-अंधा, नेत्रहीन। उ० ते नयना जनि देहु, राम करहु बरु आँधरो। (दो० ४४)

आँधी-(अंध)-वेगपूर्ण हवा जिसमें धूल भरी हो। अंधड़। उ० जनु कज्जल कै आँधी चली। (मा० ६।७८।४)

आँब-(सं० आम्र)-आम, रसाल, चूत। उ० आँब छाँह कर मानस पूजा। (मा० ७।५७।३)

आँवा-(सं० आपाक)-वह गड्ढा जिसमें कुम्हार बरतन पकाते हैं।

आ-(सं०)-१. आर्द्रा नक्षत्र, २. ब्रह्मा, ३. एक उपसर्ग जिसका अर्थ पूरा, चारों ओर, तक तथा अधिक होता है। उ० १. उगुन पूगुन वि अज कृ म आ भ अ मू गुनु साथ। (दो० ४५७)

आइ (१)-(सं० आयु)-उम्र, जीवन। उ० असगुन असुभ न गनहिं गत, आइ कालु नियरानु। (प्र० ५।६।६)

आइ (२)-१. आकर, आकर के, २. आया या आई। उ० १. कोमल बानी संत की स्रवै अमृतमय आइ। (वै० १६) आइअ-आवें। उ० जाइ जनकपुर आइअ देखी। (मा० १।२१८।१) आइन्ह-आईं। उ० लहेउ जनम फल आजु जनमि जग आइन्ह। (जा० ६२) आइयहु-आवो, आइए। उ० बालमीकि मुनीस-आस्रम आइयहु पहुँचाइ। (गी० ७।२७) आइहि-आएगा। उ० तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा। (मा० ३।२५।४) आइहैं-आवेंगे। उ० कै वै भाजे आइहैं, कै बाँधे परिनाम। (दो० ४२२) आइहै-आवेगा। उ० भरोसो और आइहै उर ताके। (वि० २२५) आइहौं-आऊँगा। उ० प्रतिपाल आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं। (मा० २।१५१। छं० १) आई-आ गई। उ० सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई। (मा० २।२१३।४) आई-आ पहुँची, आ गई। उ० बरषा बिगत सरद रितु आई। (मा० ४।१६।१) आउ (१)-आओ। उ० असुभ अमंगल सगुन सुनि, सरन राम के आउ। (प्र० ७।५।५) आउब-आवेंगे, आऊँगा। उ० पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। (मा० १।२३४।३) आए-आ गए। उ० मृग बधि बंधु सहित हरि आए। (मा० १।४६।३)

आतो-(ब्र०)-आता, पहुँचता। आयउँ-आया, आया हूँ। उ० आयउँ इहाँ समाजु सकेली। (मा० २।२६८।३) आयउ-आया। उ० सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयउ लेन। (मा० २।१२४) आयऊ-आए। उ० तब जनक आयसु पाय कुलकुरु जानकिहि लै आयऊ। (जा० ६०) आयक-आने का। उ० तुलसिदास सुरकाज न साध्यौ तौ तो दोष होय मोहि महि आयक। (गी० २।४) आयहु-आये, आये हो। उ० द्विज आयहु केहि काज। (मा० ७।११० ग) आया-'आना' का भूतकालिक रूप। पहुँचा। उ० कामरूप केहि कारन आया। (मा० ५।४३।३) आये-आ गये, 'आना' के भूतकालिक रूप 'आया' का बहुवचन या आदरसूचक रूप। आयो-(ब्र०)-आया, आए। उ० मंदोदरी सुन्यौ प्रभु आयो। (मा० ६।६।१) आव-आती है, आ रही है। उ० प्रेम बिबस मुख आव न बानी। (मा० १।१०४।२) आवइ-आती है। उ० पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीति न आवइ। (पा० ७८) आवई-आती है। उ० अति खेद-ब्याकुल अलप बल छिन एक बोलि न आवई। (वि० १३६) आवउँ-आता हूँ, आ जाता हूँ। उ० निज आश्रम आवउँ खग भूपा। (मा० ७।११४।७) आवत-१. आते हुए, आते, २. आते हैं। उ० १. रावन आवत सुनेउ सकोहा। (मा० १।१८२।३) आवति-आती है। उ० सुमिरत सारद आवति धाई। (मा० १।११।२) आवन-आना, पहुँचना। उ० नृप जोबन छबि पुरई चहत जनु आवन। (जा० ३६) आवनो-१. आनेवाला, आ जानेवाला, २. आना, उपस्थित होना। उ० १. जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो। (क० ५।६) २. एक औंजि पानी पी कै कहै बनत न आवनो। (क० ५।१८) आवहिं-आते हैं। उ० फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं। (मा० २।८३।२) आवहीं-आते हैं। उ० सब साजि साजि समाज राजा जनक-नगरहिं आवहीं। (जा० ६) आवहुँ-आवें। उ० आवहुँ बेगि नयनफलु पावहिं। (मा० २।११।१) आवा- आया। उ० तेहि अवसर एक तापसु आवा। (मा० २। ११०।४) आवौं-१. आ सकता हूँ, २. आता हूँ, ३. आऊँ। उ० १. जो करनी आपनी बिचारौं तौ कि सरन हौं आवौं। (वि० १४२) आवौ-आओ, आ जाओ।

आउ (२)-(सं० आयु)-उम्र, जीवन। उ० लिए बेर बदलि अमोल-मनि-आउ में। (वि० २६१)

आउज-(सं० वाद्य)-ताशा, एक बाजा जो कपड़े से ढँकी थाली सा होता है और बाँस की पतली तीली से बजाया जाता है। उ० घंटा-घंटि पखाउज-आउज झाँझ बेनु डफ-तार। (गी० १।२)

आउबाउ-(ध्व०)-व्यर्थ की बात, अंड-बंड। मु० आउ बाउ बक्यो-व्यर्थ की बात की। उ० जीह हू न जप्यो नाम, बक्यो आउ बाउ मैं। (वि० २६१)

आक-(सं० अर्क)-मंदार, अकवन, एक जंगली पौदा। उ० ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आक को। (ह० १२) आको-आक या मंदार के पेड़ को भी। उ०

राम नाम-महिमा करै काम-भूरुह आको । (वि० १५२)

आकरं-(सं०)-खान, घर। उ० सुखाकरं सतां गतिं। (मा० ३।४।श्लो० ६) आकर-(सं०)-१. खानि,उत्पत्ति-स्थान, २. भंडार, खजाना, ३. भेद, जाति, किस्म, ४. श्रेष्ठ, उत्तम, ५. कुशल, दक्ष। उ० ३. आकर चारि लाख चौरासी। (मा०१।८।१)

आकरषति-(सं० आकर्ष)-खींचती है। उ० अरुन अधर द्विज पाँति अनूपम ललित हँसनि जनु मन आकरषति। (गी० ७।१७) आकरषै-आकर्षित करे, खींचे। उ० आकरषै सुख संपदा संतोष विचार। (वि० १०८) आकरष्यो-आकर्षित किया, अपनी ओर खींचा। उ० आकरष्यो सिय-मन समेत हरि। (गी० १।८८)

आकरी-खान खोदने का काम। उ० चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख। (क० ७।६७)

आकर्ष-(सं०)-१. खिचाव, कशिश, २. पासे का खेल, ३. इंद्रिय, ४. कसौटी, ५. धनुष चलाने का अभ्यास, ६. चुंबक।

आकर्षन-(सं० आकर्षण)-खींचने की शक्ति।

आकसमात-(सं० अकस्मात्)-अचानक, एकाएक, सहसा, तत्क्षण। उ० जो पै आकसमात तें उपजै बुद्धि बिसाल। (स० ४८०)

आकांक्षा-(सं०)-१. इच्छा, अभिलाषा, चाह, २. खोज, अनुसंधान।

आकार-(सं०)-स्वरूप, आकृति, रूप। उ० कनक भूधराकार सरीरा। (मा० ५।१६।४)

आकाश-(सं०)-आसमान, गगन, अंतरिक्ष। पंचतत्त्वों में से एक जिसका गुण शब्द है। शून्य। उ० चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं। (मा० ७।१०८। श्लो० १)

आकास-दे० 'आकाश'।

आकासबानी-(सं० आकाशवाणी)-देववाणी, वह वाणी या शब्द जो आकाश से सुनाई दे।

आकिंचन-(सं०)-१. किसी वस्तु की इच्छा न रखना, २. दरिद्रता। उ० १. आकिंचन इंद्रियदमन, रमन राम इकतार। (वै० २६)

आकु-दे० 'आक'। उ० खोजत आकु फिरहिं पय लागी। (मा० ७।११५।१)

आकुलं-(सं०)-दे० 'आकुल'। उ० १. जरत सुर असुर नरलोक शोकाकुलं। (वि० ११) आकुल-(सं०)-१. व्यग्र, व्यस्त, व्याकुल, घबराया हुआ, २. विह्वल, कातर, ३. व्याप्त, भरा हुआ। उ० १. देखि परम बिरहाकुल सीता। (मा० ५।१४।४)

आकुलित-(सं०)-१. व्याकुल, घबराया हुआ, २. व्याप्त। उ० १. लूमलीला-अनल ज्वालमालाकुलित। (वि० २५)

आकृति-(सं०)-आकार, रूप, बनावट, सूरत। उ० कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। (मा० १।१३७।४)

आकृष्ट-(सं०)-आकर्षित, खिंचा हुआ।

आक्रांत-(सं०)-१. आवृत, घिरा हुआ, २. वशीभूत, विवश, पराजित, ३. जिस पर आक्रमण किया गया हो।

आक्षिप्त-(सं०)-फेंका हुआ, निन्दित, दूषित। उ० तत्र आक्षिप्त तव विषम माया, नाथ! अंध मैं मंद व्यालादगामी। (वि० ५६)

आक्षेप-(सं०)-१. फेंकना, गिराना, २. आरोप, दोष लगाना, ३. निन्दा, ताना, कटूक्ति।

आखत-(सं० अक्षत)-१. चावल, तण्डुल, २. चंदन या केसर में रँगा चावल जो विवाह या पूजा के अवसर पर काम में आता है। ३. शुभ अवसर पर नेगी या पवनी को दिया जानेवाला अन्न। उ० १. आखत आहुति किए जातुधान। (गी० ५।१६)

आखर-(सं० अक्षर)-वर्ण, क, ख, ग आदि अक्षर, हरफ। उ० अनमिल आखर अरथ न जापू। (मा० १।१५।३) आखरजुग-(सं० अक्षर+युग)-दो अक्षर, अर्थात् 'राम'।

आखु-(सं०)-१. चूहा, मूस, २. देवताल, ३. सूअर, ४. कंजूस।

आखेट-(सं०)-अहेर, शिकार, मृगया।

आख्यं-(सं०)-नामक, नाम के। उ० वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्। (मा० १।१। श्लो०६)

आगत-(सं०)-१. आया हुआ, प्राप्त २. अतिथि, मेहमान। उ० १. सरनागत आगत पाहि प्रभो। (मा० ७।१४।१)

आगम-(सं०)-१. अवाई, आगमन, २. भविष्य, ३. जन्म, ४. शब्द प्रमाण, ५. वेद, ६. तंत्रशास्त्र, ७. नीति। उ० ५. आगम निगम पुरान अनेका। (मा० ७।४६।२)

आगमन-(सं०)-१. आना, अवाई, २. प्राप्ति, लाभ। उ० १. मुनि आगमन सुना जब राजा। (मा० १।२०७।१)

आगमनु-दे० 'आगमन'। उ० १. भरत आगमनु सूचक अहहीं। (मा० २।७।३)

आगमनू-दे० 'आगमन'। उ० १. सेवक सदन स्वामि आगमनू। (मा० २।६।३)

आगमी-(सं० आगम=भविष्य)-ज्योतिषी, भविष्य का जाननेवाला, सामुद्रिक विचारनेवाला। उ० अवध आजु आगमी एकु आयो। (गी० १।१४)

आगर-(सं० आकर)-खान, भंडार, समूह, ढेर, घर। उ० करुना सुखसागर सब गुन आगर। (मा० १।१६२।छं०२) आगरि-दे० 'आगरी'। उ० लषन अनुज श्रुतिकीरति सब गुन आगरि। (जा० १७३)

आगरी-'आगर' का स्त्रीलिंग। उ० जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी। (मा० १।३२५।छं०३)

आगर्व-(सं०)-विशेष गर्व, बहुत बड़ा घमंड। उ० उग्रभार्गवागर्व-गरिमापहर्त्ता। (वि० ५०)

आगवन-(सं० आगमन)-दे० 'आगमन'।

आगवनु-दे० 'आगवन'।

आगवनू-दे० 'आगवन'। उ० १. कारन कवन भरत आगवनू। (मा० २।२२७।१)

आगार-(सं०) १. घर, मंदिर, मकान, २. स्थान, जगह, ३. खज़ाना, कोष, ४. ढेर, भंडार। उ० ४. सुनु व्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार। (मा० ७।१०२क)

आगि-(सं० अग्नि)-आग। उ० औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो। (क० ५।१८)

आगिल-(सं० अग्र) आगे का, अगला। उ० आगिल चरित सुनहु जस भयऊ। (मा० १।७१।१) आगिलि-'आगिल'

का स्त्रीलिंग, अगली । उ० आगिलि कथा सुनहु मन लाई । (मा० १।२०६।१)
आगिली–दे० 'आगिलि' ।
आगिलो–दे० 'आगिल' । उ० घरनि सिधारिए सुधारिए आगिलो काज । (गी० १।८२)
आगी–दे० 'आगि' । उ० जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी । (क० ५।१६)
आगू–दे० 'आगे' ।
आगें–दे० 'आगे' । उ० १. सैल बिसाल देखि एक आगें । (मा० ५।३।४)
आगे–(सं० अग्र)–१. सामने, सम्मुख, २. पहिले, ३. जीते जी, ४. अनंतर, बाद, ५. अतिरिक्त, अधिक, ६. गोद में ।
आग्रह–(सं०)–१. अनुरोध, हठ, ज़िद, २. तत्परता, परायणता, ३. बल, ज़ोर ।
आघात–(सं०)–१. चोट, प्रहार, २. धक्का, ठोकर, ४. बध-स्थान । उ० १. गर्जा बज्राघात समाना । (मा० ६।६४।१)
आचमन–(सं०)–१. जल पीना, २. शुद्धि के लिए मुँह में जल लेना, ३. धर्म संबंधी कर्म के लिए दाहिने हाथ में जल लेकर मंत्र पढ़कर पीना, ४. पीने या हाथ मुँह धोने के लिए दिया गया जल ।
आचमनु–दे० 'आचमन' । उ० ४. आदर सहित आचमनु दीन्हा । (मा० १।३२९।४)
आचरज–(सं० आश्चर्य)–१. अचंभा, विस्मय, तअज्जुब, २. आश्चर्य भरी बात । उ० २. कहेसि अमित आचरज बखानी । (मा० १।१६३।३)
आचरजु–दे० 'आचरज' । उ० १. जनि आचरजु करहु मन माहीं । (मा० १।१६३।१)
आचरत–१. आचरण करता, २. आचरण करता है । उ० १. खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो अंजनीकुमार, सोध्यो रामपानि पाक हौं । (ह० ४०) आचरनि–आचरण करना । उ० १. सकल सराहैं निज निज आचरनि । (वि० १८४) आचरनी–दे० 'आचरनि' । उ० जिमि कुठार चंदन आचरनी । (मा० ७।३७।४) आचरहिं–आचरण करते हैं, व्यवहार करते है । उ० जे आचरहिं ते नर न घनेरे । (मा० ६।७८।१) आचरहीं–दे० 'आचरहिं' । आचरिबे–करना, आचार करना । उ० जौ प्रपंच परिनाम प्रेम फिरि अनुचित आचरिबे हो । (कृ० ३६) आचरु–आचरण करो, करो । उ० हरि-तोषन यह सुभ ब्रत आचरु। (वि० २२५) आचरे–१. करने से, आचरण करने से, २. आचरण किया । उ० १. बिहालु भंज्यो भवजालु परम मंगलाचरे । (वि० ७४)
आचरन–(सं० आचरण)–१. चाल–चलन, व्यवहार, बर्ताव, २. शुद्धि, आचार संबंधी सफाई । उ० १. देखि देखि आचरन तुम्हारा । (मा० ७।४८।२)
आचरनु–दे० 'आचरन' । उ० १. सुभ आचरन कीन्ह नहिं काऊ । (मा० ५।४७।४)
आचरनू–दे० 'आचरन' । उ० भायप भगति भरत आचरनू । (मा० २।२२३।१)
आचार–(सं०)–१. व्यवहार, चलन, रहन-सहन । २. चरित्र, ३. शील, ४. शुद्धि, सफाई । उ० १. जयति वर्णाश्रमाचार-पर-नारिनर । (वि० ४४)
आचारहीं–करते हैं, आचार करते हैं ।
आचारा–दे० 'आचार' । उ० १. सुमति सुसील, सरल आचारा । (मा० ७।९४।१)
आचारी–आचारवान, शुद्धि से रहनेवाला, चरित्रवान । उ० जो कर दंभ सो बड़ आचारी । (मा० ७।९८।३)
आचारु–दे० 'आचार' । उ० १. बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुरु बेद बिदित आचारु । (मा० १।२८६)
आचारू–दे० 'आचार' । उ० १. बेद बिहित अरु कुल आचारू । (मा० १।३१९।१)
आचार्य–(सं०)–१. गुरु, उपदेशक, २. पुरोहित, ३. पूज्य, ४. ब्रह्मसूत्र के चार प्रधान भाष्यकार ।
आच्छन्न–(सं०)–१. ढका हुआ, आवृत, २. छिपा हुआ, तिरोहित ।
आच्छादन–(सं०)–१. जो ढके या आच्छादित करे, ढकना, वस्त्र, २. छप्पर, छाजन ।
आच्छादित–ढँका हुआ, छिपा, तिरोहित ।
आच्छित (सं० आक्षिप्त)–दे० 'आक्षिप्त' ।
आछन्न–(सं० आच्छन्न)-ढका, तिरोहित, छिपा । उ० मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुण ब्रह्म । (मा० ३।३९ क)
आछी–(सं० अच्छ)-अच्छी, उत्तम, सुघर, बढ़िया, भली । उ० मति अति नीचि उँचि रुचि आछी । (मा० १।८।४)
आछे–अच्छे, सुन्दर । उ० आछे मुनि बेष धरे लाजत अनंग हैं । (क० २।१५)
आज–(सं० अद्य)–वर्तमान दिन, जो दिन बीत रहा हो । उ० आज बिराजत राज है दसकंठ जहाँ को । (वि० १५२)
आजन्म–(सं०)–जीवन भर, आजीवन, जब तक जीवित रहे । उ० आजन्म ते परद्रोह रत । (मा० ६।१०४। छं०१)
आजानु–(सं०)–जाँघ तक लंबा, घुटने तक । उ० आजानु भुज सरचाप-धर । (वि० ४५)
आजु–दे० 'आज' । उ० यहि मारग आज किसोर बधू । (क० २।२४)
आजू–दे–'आज' । उ० मुनिपद बंदि करिअ सोइ आजू । (मा० २।२१४।२)
आज्ञा–(सं०)–१. आदेश, हुक्म, बड़ों का छोटों को किसी काम के लिए कहना । २. स्वीकृति, अनुमति । उ० १. हौं पितु-आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि । (गी०२।५)
आज्ञाकारी–(सं० आज्ञाकारिन्)–आज्ञा या आदेश मानने-वाला, दास, सेवक । उ० लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि, सब आज्ञाकारी । (वि० ९८)
आज्य–(सं०)–घी, घृत ।
आटोप–(सं०)–१. आच्छादन, फैलाव, २. गर्व, अहंकार । उ० १. घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी । (मा०६।३९।५)
आठ–(सं० अष्ट)–८ की संख्या, चार का दूना । उ० अवगुन आठ सदा उर रहहीं । (मा० ६।१६।१)
आठइँ–आठवीं, अष्टमी, दोनों पक्षों की आठवीं तिथि । उ० आठइँ आठ-प्रकृति-पर निर्बिकार श्रीराम । (वि० २०३)
आठव–आठवाँ ।

आडंबर–(सं०)–१. ऊपरी बनावट, टीमटाम, ढोंग, २. गंभीर शब्द, गर्जन, नाद ।
आड़ (सं० अल)–रोक, ओट, अड़ान, वारण ।
आड़ेहु–रोकना भी, आड़ना भी, वारण करना भी । उ० भागे भल आड़ेहु भलो, भलो न घाले घाउ । (दो०४२४)
आढ़–(सं० अल)–आसरा, अवलंब, शरण । उ० ज्यों-ज्यों जल मलीन त्यों-त्यों जमगन मुख मलीन लहैं आढ़ न । (वि० २१)
आढ्य–(सं०)–संपन्न, पूर्ण, युक्त । उ० शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिज नयनं । (मा०७।१।श्लो०१) आढ्यौ–(सं०)–आढ्य के द्विवचन का रूप, दोनों परिपूर्ण । उ० शोभाढ्यौ वर धन्विनौ । (मा०४।१।श्लो०१)
आतंक–(सं०)–१. रोब, दबदबा, प्रताप, २. डर, भय ।
आततायी–(सं० आततायिन्)–१. महापापी, अनिष्टकारी, २. आग लगानेवाला, २ बधके लिए उद्यत, ३. विष देनेवाला ।
आतनोति–(सं० आ+तनोति)–विस्तार करते हैं । उ० भाषा निबंध मति मंजुलमातनोति । (मा० १।१। श्लो० ७)
आतप–(सं०)–१ धूप, घाम, २. गर्मी, उष्णता, ३. सूर्य का प्रकाश, ४. ज्वर । उ० १. सहत दुसह बन आतप बाता । (मा० ४।१।५)
आतम–(सं० आत्म)– अपना, स्वकीय, निज का ।
आतमबादी–(सं० आत्मवादी)–आत्मा को ही संपूर्ण जगत रूप में माननेवाला, वेदांती । उ० जे मुनि नायक आतम-बादी । (मा० ७।७०।३)
आतमा–(सं० आत्मा)–१. जीव, २. ब्रह्म । उ० १. संसय-सिंधु नाम-बोहित भजि निज आतमा न तार्‌यो । (वि० २०२)
आतिथ्य–(सं०)–अतिथि का सत्कार, पहुनाई, मेहमान-दारी ।
आतुर–(सं०)–१. व्याकुल, व्यग्र, अधीर, २. उत्सुक, ३. दुखी, आर्त । उ० १. चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ । (मा० ३।२८)
आतुरता–(सं०)–घबराहट, बेचैनी, व्याकुलता । उ० तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै । (क० २।११)
आतुरताई–उतावलापन, जल्दबाज़ी । उ० मुदित महरि लखि आतुरताई । (कृ० १३)
आत्म–(सं०)–निज, अपना, स्वकीय ।
आत्मघात–(सं०)–आत्महनन, अपने को मारना ।
आत्मज–(सं०)–१. पुत्र, लड़का, २. कामदेव, काम, ३. रक्त । उ० २. भजहु तरनि-अरि-आदि कहँ तुलसी आत्मज अंत । (स० २२७)
आत्मजा–(सं०)–पुत्री, बेटी । उ० संग जनकात्मजा, मनुज-मनुसृत्य । (वि० ५०)
आत्मा–(सं०)–१. जीव, २. ब्रह्म, ३. मन । आत्माहन–(सं० आत्माहन्)–अपने को मारनेवाला, आत्म-घातक । उ० सो कृतनिंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ । (मा० ७।४४)
आदर–(सं०)–सम्मान, सत्कार, प्रतिष्ठा । उ० तात बचन मम सुनु अति आदर । (मा० ६।६।४) आदरेण–आदर-पूर्वक । उ० नरादरेण ते पदं । (मा० ३।४।१२)
आदरणीय–(सं०)–आदर के योग्य सम्मान्य ।
आदरत–आदर करते हैं । उ० इन्हहिं बहुत आदरत महा-मुनि । (गी० २।४२) आदरहिं–आदर करते हैं । उ० सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान । (मा० १।१४क) आदरहीं–आदर करते हैं । उ० जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं । (मा० १।१४।४) आदरिअ–आदर करना चाहिए । उ० सो आदरिअ करिय हित मानी । (मा० २।१७६।१) आदरिए–आदर कीजिए । उ० निज अभिमान मोह ईर्षा बस, तिनहि न आदरिए । (वि०१८६) आदरित–जिसका आदर किया गया हो, सम्मानित, आदृत । आदरियत–आदर करते हैं । उ० रावरे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत । (वि० १८३) आदरी–आदर किया । उ० जे ग्यान मान बिमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी । (मा० ७।१३ छं० ३) आदरे–आदर करने से । उ० रावरे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत । (वि० १८३) आदरेहु–आदर किया । उ० नहिं आदरेहु भगति की नाईं । (मा० ७।११५।५) आदरैं–आदर करते हैं । उ० जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरैं सुजान । (दो० १४२) आदरौ–आदर करो । उ० सोइ आदरौ आस जाके जिय बारि बिलोवत घी की । (कृ०४३) आदर्‌यो–आदर किया । उ० तुलसी राम जो आदर्‌यो खोटो खरो खरोइ । (दो०१०६)
आदरु–दे० 'आदर' । उ० जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा । (मा० १।१०७।२)
आदर्श–(सं०)–१. नमूना, अनुकरण करने योग्य, उच्च, २. शीशा, दर्पण ।
आदा–(सं० अद्)–खानेवाला, भक्षक । उ० दोउ हरि भगत काग उरगादा । (मा०७।५५।३)
आदान–(सं०)–ग्रहण, लेना, स्वीकार ।
आदि–(सं०)–१. प्रथम, पहला, आरंभ का, २. परमेश्वर, ३. आरंभ, शुरु, ४. इत्यादि, वग़ैरह, आदिक । उ० ४. व्यास आदि कवि पुंगव नाना । (मा० १।१४।१) आदिअंभोज–(सं०)–प्रथम कमल जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । उ० मनहुँ आदिअंभोज बिराजत । (गी० २।५०) आदिहु–आरंभ ही, शुरू ही । उ० आदिहु तें सब कथा सुनाई । (मा० ५।१३।३)
आदिकं–(सं०)–आदि, इत्यादि । उ० निरस्य इंद्रियादिकं । (मा० ३।४। श्लो० ८) आदिक–(सं०)–आदि, वग़ैरह । उ० होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ । (मा० १।२२।२)
आदिकबि–(सं० आदि+कवि)–प्रथम कवि, १. बाल्मीकि, २. शुक्राचार्य । उ० १. जान आदिकबि नाम प्रतापू । (मा० १।१९।३)
आदित–(सं० आदित्य)–दे० 'आदित्य' । उ० १. दंड द्वै रहे हैं रघु आदित उवन के । (क० ६।३)
आदित्य–(सं०)–अदिति से उत्पन्न, १. सूर्य, २. देवता ।
आदिबराह–(सं० आदि+बाराह)–बाराह रूपधारी विष्णु का अवतार, बाराह भगवान, शूकर भगवान । उ० आदि-बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी । (गी० २।५०)

आदी-(सं० आदि)-वगैरह, आदि। उ० अज महेस नारद सनकादी। (मा० ६।१०५।१)
आदेय-(सं० आदेय)-लेने के योग्य, स्वीकार्य।
आदेश-(सं०)-१. आज्ञा, हुक्म, २. उपदेश, ३. प्रणाम। उ० १. आयसु आदेश बाबा भलो भलो भाव सिद्ध। (क० ७।१४०)
आध-(सं० अर्द्ध)-आधा, किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक। उ० मोसे क्रूर कायर कुपूत कौड़ी आध के। (वि० १७६)
आधा-दे० 'आध'। उ० आधा कटकु कपिन्ह संघारा। (मा० ६।४८।२)
आधार-(सं०)-१. आश्रय, सहारा, अवलंब, २. नींव बुनियाद, ३. आश्रय देनेवाला, पालनकर्त्ता। उ० १. लच्छनधाम राम प्रिय सकल जगत आधार। (मा० १।१९७)
आधारा-दे० 'आधार'। उ० १. जय अनंत जय जगदाधारा। (मा० ६।७७।२)
आधि-(सं०)-मानसिक व्यथा, चिंता, शोच, फिक्र। उ० आधि-मगन मन, ब्याधि-विकल तन। (वि० १६५)
आधिदैविक-(सं०)-देवों द्वारा प्रेरित, देवताकृत।
आधिभौतिक-(सं०)-भूतों या शरीरधारियों द्वारा प्रेरित या किया गया। उ० आधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे। (वि० ८)
आधीन-(सं० अधीन)-आश्रित, जो किसी के अधिकार में हो, विवश, लाचार, मातहत। उ० नाम-आधीन साधन अनेकं। (वि० ४६)
आधीना-दे० 'आधीन'। उ० जानि नृपहि आपन आधीना। (मा० १।१६८।१)
आधीश-(सं० अधीश)-स्वामी, मालिक, राजा।
आधु-दे० 'आध'। उ० बिगरी जनम अनेक की, सुधरत पल लगै न आधु। (वि० १९३)
आधे-दे० 'आध'। उ० उभय भाग आधे कर कीन्हा। (मा० १।१९०।१)
आधेय-(सं०)-१. आधार पर स्थित वस्तु, किसी के सहारे रहनेवाला, २. स्थापनीय, ठहराने योग्य।
आनँद-(सं० आनंद)-दे० 'आनंद'। उ० तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनँद-रँग-मगे। (पा० ९६) आनँदकँद-दे० 'आनंदकंद'। आनँदहू-'आनँद' भी। उ० आनँदहू के आनँददाता। (मा० १।२१७।१)
आनँदु-दे० 'आनँद'। उ० आनँदु अंब अनुग्रह तोरें। (मा० २।५३।४)
आनंद-(सं०)-हर्ष, प्रसन्नता, आह्लाद, खुशी। उ० नयनानंद दान के दाता। (मा० ५।४५।१) आनंदकंद-सुख की जड़, जिससे आनंद हो, सुखमूल। आनंदकर-आनंद देनेवाला सुखकारी। आनंदकारी-सुखकारी, सुख देनेवाला। आनंददं-आनंद देनेवाला, सुखप्रद। उ० सदा शंकरं, शंप्रदं सज्जनानंददं। (वि० १२) आनंदनि-आनंद करना। उ० हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनंदनि भूपति-भवन बसाइहौं। (गी० १।१८) आनंदप्रद-आनंद प्रदान करनेवाला। उ० जय जनकनगर-आनंदप्रद, सुखसागर सुखमाभवन। (क० ७।११२)
आनंदबन-(सं०) काशी, बनारस, सप्तपुरियों में से एक। उ० शेष सर्वेश आसीन आनंदबन। (वि० ११)
आनंदा-दे० 'आनंद'। उ० जय जय अबिनासी सब घट बासी, ब्यापक परमानंदा। (मा० १।१८६। छं० २)
आन (१)-(सं० आखि)-१. मर्यादा, सीमा, २. प्रतिज्ञा, ३. क़सम, शपथ।
आन-(२)-(फ़ा०)-१. प्रतिष्ठा, शान, २. अदा, ३. अकड़, ४. विजय घोषणा। उ० ४. बिस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की। (क० ७।१६९)
आन (३)-(अ०)-१. समय, २. पल, क्षण।
आन (४)-(सं० अन्य)-दूसरा, और। उ० तौ घर रहहु न आन उपाई। (मा० २।१९।४) आनहिं (१)-दूसरे को। उ० बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। (मा० ६।३।४)
आनक-(सं०)-१. डंका, भेरी, दुंदुभी, नगाड़ा, २. गरजता हुआ बादल। उ० १. पनवानक निर्भर, अलि उपंग। (गी० २।४८)
आनत-१. ले आता है, २. लाते ही, ले आते ही। उ० २. उर अस आनत कोटि कुचाली। (मा० २।२६१।२) आनति (१)-१. ले आती हैं। २. ले आने से। आनब-लाऊँगा, ले आऊँगा। उ० हरि आनब मैं करि निज माया। (मा० १।१३९।२) आनबी-ले आओ, लाओ। आनसि-लाता है, ले आता है। उ० उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि। (मा० ७।११२।७) आनहिं (२)-१. लावे, ले आवे। २. ले आते हैं। उ० १. आनहिं नृप दसरथहि बोलाई। (मा० १।२८७।१) आनहुँ-ले आऊँ। आनहु-ले आओ, लाओ। उ० आनहु रामहि बेगि बोलाई। (मा० २।३४।१) आना (१)-लाया, ले आया। उ० कुल कलंकु तेहिं पावँर आना। (मा० १।२८४।२) आनि (१)-लाकर, ले आकर। उ० छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को। (क० २।१०) आनिअ-ले आइए। उ० बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुजबल खलदल जीति। (मा० ५।३१) आनिए-ले आइए, लाइए। उ० परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ। (मा० २।२०१। छं० १) आनिबी-लावेंगे, ले आवेंगे। उ० रिपुहिं जीति आनिबी जानकी। (मा० ५।३२।२) आनिय-लाइए, ले आइए। उ० देवि! सोच परिहरिय, हरप हिय आनिय। (जा० मं० ८५) आनियहि-ले आओ, लाओ। उ० ब्रज आनियहि मनाइ पाँय परि कान्ह कूबरी रानी। (कृ० ४८) आनिहि-लाया, ले आया। उ० सूनें हरि आनिहि परनारी। (मा० ६।३०।३) आनिहैं-लाएँगे, ले आएँगे। उ० कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं। (मा० ४।३०। छं० १) आनिहौं-लाऊँगा, ले आऊँगा। उ० जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं। (क० ७।६३) आनी-आनकर, लाकर, ले आकर। उ० अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी। (मा० १।८०।२) आनु-लाओ, ले आओ। उ० बेगि आनु जल पाय पखारू। (मा० २।१०१।१) आनू-ले आओ, लाओ। उ० लछिमन बान सरासन आनू। (मा० ५।५८।१) आने-लाये, ले आए। उ० सादर अरघ देइ घर आने। (मा० २।६।२) आनेउ-लाए, ले आए। उ० आनेउ भवन समेत तुरंता। (मा० ६।५५।४)

आनेसु–लाना, ले आना। उ० तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। (मा० १।१८२।२) आनेहि–लाया है, ले आया है। उ० सठ सूनें हरि आनेहि मोही। (मा० ५।९।४) आनेहु–लाए हो, ले आए हो। उ० आनेहु मोल बेसाहि कि मोही। (मा० २।३०।१) आनौं–लाऊँ, ले आऊँ। उ० बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि। (गी० ६।८) आनौं–ले आऊँ। उ० करि बिनती आनौं दोउ भाई। (मा० १।२०६।४) आन्यो–लाया, ले आया। उ० निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो। (वि० ८८)

आनति (२)–(सं०)–विनम्र, झुका हुआ, अति नम्र।

आननं–दे० 'आनन', आनन को। उ० प्रसन्नाननं नील-कंठं दयालं। (मा० ७।१०८। श्लो० ४) आनन–(सं०)–मुख, मुँह। उ० आनन अमित मदन छबि छाई। (मा० १।१९९।४)

आननु–दे० 'आनन'। उ० आननु सरद चंद छबि हारी। (मा० १।१०६।४)

आना (२)–दे० 'आन (४)'। उ० अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। (मा० १।५७।३)

आनाकानी–(सं० अनाकर्णन)–सुनी अनसुनी करने का कार्य, टालमटोल। उ० आनाकानी, कंठ, हँसी मुँहचाही होन लगी। (गी० १।८२)

आनि (२)–दे० आन (१), आन (२), आन (३), तथा आन (४)।

आप (१)–(सं० आत्मन्)–१. स्वयं, खुद, २. तुम और वे के स्थान पर आदरसूचक प्रयोग, ३. ईश्वर, परमात्मा।

आप (२)–(सं० आपः)–पानी, जल। उ० पिंगल जटा कलाप, माथे पै पुनीत आप। (क० ७।१४९)

आपगा–(सं०) नदी, सरिता। उ० घोर अवगाह भव-आपगा। (वि० ५९)

आपत्ति–(सं०)–दुःख, कलेश, विघ्न, संकट।

आपद–(सं० आपद्)–विपत्ति, कष्ट, दुःख। उ० आपद काल परिखिअहिं चारी। (मा० ३।५।४)

आपदा–(सं०)–दे० 'आपत्ति' या 'आपद'। उ० हरि सम आपदा हरन। (वि० २१३)

आपन–(सं० आत्मनो)–१. अपना, निज का, स्वकीय, २. अपनो ने। उ० १. आपन रूप देहु प्रभु मोही। (मा० १।१३२।३) २. आपन छोड़ो साथ जब। (दो० ५३४) आपनि–अपनी, 'आपन' का स्त्रीलिंग। उ० आदिहु तें सब आपनि करनी। (मा० २।१६०।४)

आपना–दे० 'आपन'। उ० १. भजि रघुपति करु हित आपना। (मा० ६।५६।३)

आपनी–दे० 'आपनि'। उ० अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर। (मा० २।२३३) आपने–अपने। उ० आपने निवाजे की तौ लाज महाराज को। (क० ७।१४)

आपनो–अपना। उ० केहि अघ अवगुन आपनो करि डारि दिया रे। (वि० ३३) आपनोई–अपना ही। उ० पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहिं आपनोई। (क० ७।६३)

आपन्न–(सं०)–आपद्ग्रस्त, दुःखी, विपत्तिग्रस्त। उ० दास तुलसी खेदखिन्न, आपन्न, इह सोक संपन्न अतिसय सभीतं। (वि० ५६)

आपान–स्वयं, खुद, आप। उ० भूप मोहिं सक्ति आपान की। (वि० २०६)

आपु–दे० 'आप (१)' उ० १. आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। (मा० ७।१००।२) आपुहिं–अपने, अपने को। उ० आपुहि परम धन्य करि मानहिं। (मा० २।१२०।४)

आपुन–स्वयं, खुद, अपने आप। उ० १. सोइ सोइ भाव देखावै आपुन होइ न सोइ। (मा० ७।७२ ख) आपुने–अपने। उ० जानि पहिचानि बिनु आपु ते आपुने हुते। (गी० २।३८)

आपुनु–आप भी, आप। उ० ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू। (मा० २।२९३।२)

आपुस–आपस, एक दूसरे के साथ, परस्पर। उ० सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस में कछु पै कहिहैं। (क० २।२३)

आपू–दे० 'आपु'। उ० जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू। (मा० १।२६।२)

आप्त–(सं०) १. प्राप्त, मिला हुआ, २. कुशल, दक्ष, ३. ऋषि, ४. शब्द प्रमाण।

आबरन–(सं० आवरण)–१. अच्छादन, ढकना, वस्त्र, परदा, २. जल, वायु, अग्नि, तेज, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति, ये आवरण कहे जाते हैं। उ० २. सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगे गति मोरि। (मा० ७।७९ ख)

आबाहन–(सं० आवाहन)–मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाना। उ० तीरथ आबाहन सुरसरि जस। (मा० २।२४८।२)

आभं–दे० 'आभ'। उ० शंखेन्द्वाभमतीवसुंदरतनुं। (मा० ६।१। श्लो० २) आभ–(सं० आभा)–कांति, शोभा, चमक, दीप्ति। उ० केकीकण्ठाभनीलं। (मा० ७।१। श्लो० १)

आभरण–(सं०)–गहना, भूषण, ज़ेवर, अलंकार।

आभरन–(सं० आभरण)–दे० 'आभरण'।

आभा–(सं०)–दे० 'आभ'। उ० कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही। (गी० ७।६)

आभार–(सं०)–१. बोझ, २. गृहस्थी का भार, ३. एहसान, उपकार।

आभास–(सं०)–१. प्रतिबिंब, छाया, २. पता, संकेत, ३. मिथ्या ज्ञान, अज्ञान।

आभीर–(सं०)–अहीर, ग्वाल, गोप। उ० आभीर जमन किरात खस, स्वपचादि अति अघरूप जे। (मा० ७।१३०। छं० १)

आभूषण–(सं०)–गहना, जेवर, अलंकार।

आभ्यान्तर–(सं० आभ्यंतर)–भीतरी, अंदरूनी।

आम (१)–(सं०)–कच्चा, जो पका न हो। उ० बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो। (वि० १७३)

आम (२)–(सं० आम्र)–एक पेड़ और उसके फल का नाम, रसाल।

आम (३)–(अर०)–१. साधारण, सामान्य, मामूली, २. प्रसिद्ध, विख्यात।

आमय–(सं०)–रोग, व्याधि, बीमारी। उ० संसारामयभेषजं सुखकरं श्री जानकीजीवनं। (मा० ४।१। श्लो० २)
आमरष–(सं० आमर्ष)–१. क्रोध, गुस्सा, कोप, २. असहनशीलता। उ० १. लोभामरष हरष भय त्यागी। (मा० ७।३८।१)
आमरषि–क्रोध करके, आमर्षित होकर, क्रोधित होकर। उ० उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पायउ। (जा० ६८)
आमलक–(सं०)–आमला, आँवला। उ० करतल गत आमलक समाना। (मा० १।३०।४)
आमिष–(सं०)–मांस, गोश्त। उ० बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। (मा० १।१७३।२)
आमुखर–(सं०)–बहुत शब्द करनेवाले, बोलनेवाले। उ० जुगल पद नूपुरामुखर कलहंसवत। (वि० ६१)
आमोद–(सं०)–१. आनंद, हर्ष, प्रसन्नता, २ दिल बहलाव, तफ़रीह, ३. सुगंधि। उ० ३. भ्रमत आमोदबस मत्त मधुकर-निकर। (वि० ५१)
आय (१)–(सं०)–१. आमदनी, लाभ, आमद, २. आगमन, आना।
आय (२)–(सं० आयुस्)–जीवन, उम्र, अवस्था, जीवन की अवधि। उ० धन्य ते जे मीन से अवधि-अंबु-आय हैं। (गी० २।२८)
आयत–(सं०)–विस्तृत, दीर्घ, विशाल, लंबा-चौड़ा। उ० उर आयत उर भूषण राजे। (मा० १।३२७।३)
आयतन–(सं०)–दे० 'आयतन'।
आयतन–(सं०)–१. मकान, घर २. विश्रामस्थल, ३. देवताओं की वंदना की जगह। उ० १. निर्मलं सांत सुबिसुद्ध बोधायतन, क्रोध-मद-हरन करुना-निकेतं। (वि० ५३)
आयतना–दे० 'आयतन'। उ० १. कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना। (मा० ५।३। छं० १)
आयसु–(सं० आदेश)–आज्ञा, हुक्म। उ० नाइ चरन सिरु आयसु पाई। (मा० १।१२७।१)
आयास–(सं०)–परिश्रम, मेहनत।
आयु–(सं०)–वय, उम्र, जीवनकाल। उ० जानियसु आयु भरि येई निरमए हैं। (गी० १।११)
आयुध–(सं०)–हथियार, शस्त्र। उ० लोचन अभिरामा तनु घन स्यामा निज आयुध भुज चारी। (मा० १।१९२। छं० १) आयुधधर–(सं०)–हथियार धारण करनेवाला।
आयुष–(सं० आयुष्य)–आयु, उम्र।
आयू–दे० 'आयु'। उ० आयू हीन भये सब तबहीं। (मा० ५।४२।१)
आरंभ–(सं०)–शुरू, प्रारंभ, आदि। उ० मिथ्यारंभ दंभरत जोई। (मा० ७।९८।२)
आर–(अर०)–१. घृणा, नफरत, २. लज्जा, शर्म, ३. बैर, अदावत।
आरज–(सं० आर्य)–१. श्रेष्ठ, बड़ा, पूज्य, उत्तम, २. ससुर। उ० २. आरज सुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात। (मा० २।६७)
आरत–(सं० आर्त्त)–१. दुःखपूर्ण, व्याकुल, २. अत्यंत दुःखी, ३. दुःख। उ० १. कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ। (मा० २।३४)
आरति (१)–(सं० आर्त) दुःख, व्याकुलता। उ० १. करहिं आरती आरतिहर कें। (मा० ७।९।४)
आरति (२)–दे० 'आरती (२)'। उ० करि आरति नेवछावरि करहीं। (मा० १।१९४।३)
आरति (३)–(सं०)–१. विशेष प्रेम, २. विरक्ति।
आरती (१)–दे० 'आरति (१)'। उ० हरति सब आरती आरती राम की। (वि० ४८)
आरती (२)–(सं० आरात्रिक)–मूर्ति, वर, राजा या किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के ऊपर दीपक घुमाना। नीराजना। उ० हरति सब आरती आरती राम की। (वि० ४८)
आरन्य–(सं० अरण्य)–जंगल, बन। उ० यातुधान-प्रचुर-मत्तकरि-केसरी, भक्त-मनपुन्य-आरन्यवासी। (वि० ५६)
आरव–(सं०)–शब्द, कोलाहल, रव, आवाज़।
आराति–(सं०)–शत्रु, बैरी, दुश्मन। उ० रातिचर-जाति आराति सब भाँति गत। (गी० ५।४३)
आराती–(सं० आराति)–दे० 'आराति'। उ० तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती। (मा० १।५७।४)
आराधक–(सं०)–उपासक, पुजारी।
आराधन–(सं०)–पूजा, उपासना, सेवा।
आराधना–(सं०)–पूजा, सेवा, उपासना।
आराध्य–(सं०)–पूज्य, पूजनीय, जिनकी आराधना हो। उ० दुराराध्य पै अहहिं महेसू। (मा० १।७०।२)
आराम (१)–(सं०)–बाग़, बगीचा, उपवन। उ० आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं। (मा० ७।२९। छं०१)
आराम (२)–(फ़ा०)–चैन, सुख,।
आरामु–(सं० आराम)–दे० 'आराम (१)'। उ० परम रम्य आरामु यह जो रामहिं सुख देत। (मा० १।२२७)
आरि–(सं० हठ>अड्ड>अड़>आरि) हठ, टेक, ज़िद। उ० कबहूँ ससि माँगत आरि करैं। (क० १।४)
आरूढ़–(सं०)–१. सवार, चढ़ा हुआ, २. दृढ़, स्थिर। उ० १. खर आरूढ़ नगन दससीसा। (मा० ५।११।२)
आरेसू–(?)–ईर्ष्या, डाह। उ० कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। (मा० २।४६।४)
आरो–(सं० आरव)–दे० 'आरव'।
आरोग्य–(सं०) निरोग, स्वस्थ, तन्दुरुस्त।
आरोप–(सं०)–१. स्थापित करना, लगाना, मढ़ना, २. वृक्ष आदि को एक स्थान से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना।
आरोपण–(सं०)–लगाना। लगाने, मढ़ने या स्थापित करने की क्रिया।
आरोपित–(सं०)–लगाया हुआ, स्थापित किया हुआ, बैठाया हुआ। उ० सीता समारोपित काम भागम्। (मा० २।१। श्लो०३)
आरोहण–(सं०)–१. चढ़ना, सवार होना, २. अंकुरित होना, ३. सीढ़ी।
आरोहैं–चढ़ते हैं, अरोहण करते हैं। उ० दरसन लागि लोग अटनि आरोहैं। (गी० १।६०)
आरौ–(सं० आरव)–दे० 'आरव'। उ० घुरघुरात हय आरौ पाएँ। (मा० १।१५६।४)

आर्त-(सं० आर्त्त)-दुखी, पीड़ित, कादर ।
आर्ति-(सं० आर्त्ति)-पीड़ा, दुःख । उ० चरित-निरुपाधि त्रिविधार्ति-हर्त्ति । (वि० ४३)
आर्द्र-(सं०)-गीला, भीगा हुआ ।
आर्य-(सं०)-श्रेष्ठ, उत्तम, भला, बड़ा ।
आलय-(सं०)-घर, मकान, गृह । उ० सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय । (मा० ७।३४।४)
आलबाल-(सं० आलवाल)-थाला, पेड़ में पानी देने के लिए मिट्टी की बनी मेंड़, थाँवला । उ० मनिमय आल-बाल कल करनी । (मा० १।३४४।४)
आलस (१)-(सं० आलस्य)-सुस्ती, काहिली, अक-र्मण्यता । उ० आलस, अनख, न आचरज, प्रेमपिहानी जानु । (दो० ३२७)
आलस (२)-(सं०)-आलसी, सुस्त, काहिल । आलसवंत-आलस्य से भरे हुए । उ० आलसवंत सुभग लोचन सखि, छिन मूँदत, छिन देत उघारी । (कृ० २२) आलसहूँ-आलस्य से भी, आलस्य में भी । उ० भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ । (मा० १।२८।१)
आलसि-आलसी, काहिल । उ० भागत अभाग, अनुरागत विराग, भाग जागत, आलसि तुलसी हू से निकास को । (क० ७।७५)
आलसी-सुस्त, काहिल, अकर्मण्य । उ० आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे । (वि० २५०) आलसिन्ह-आलसियों, आलसी का बहुवचन । उ० आलसिन्ह की देव सरि सिय सेइयहु मन मानि (गी० ७।३२)
आलसु-दे० 'आलस' । उ० तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं । (मा० १।८१।२)
आलान-(सं०)-१. हाथी बाँधने का खंभा या रस्सा, २. बंधन ।
आलि-१. सखी, संगिनी, सहेली, २. पंक्ति, अवलि । उ० धरि धीरजु एक आलि सयानी । (मा० १।२३४।१)
आली (१)-(सं०)-दे० 'आलि' । उ० १. ।।अस कहि मन बिहसी एक आली । (मा० १।२३४।३)
आली (२)-(सं० ओल)-नम, भींगा ।
आले-(सं० ओल)-गीला, नम, कच्चा, जो पका न हो । उ० आले ही बाँस के माँड़व मनिगन पूरन हो । (रा० ३)
आलोक-(सं०)-प्रकाश, रोशनी, चमक । उ० बक्त्र-आलोक त्रैलोक्य-सोकापहं । (वि० ५१)
आवरण-(सं०)-ढँकना, परदा, दीवाल ।
आवर्त्त-(सं०)-१. पानी का भँवर, भँवर, २. संसार । उ० १. फिरि गर्भगत-आवर्त्त संसृति-चक्र जेहि होइ सोइ कियो । (वि० १३६)
आवलि-(सं०)-पंक्ति, श्रेणी, क़तार । उ० नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी । (मा० १।१०४।१)
आवली-(सं०)-पंक्ति, श्रेणी । उ० रोमावली लता जनु नाना । (मा० ६।१६।३)
आवाँ-(सं० आपाक)-बर्तन पकाने का गड्ढा ।
आवागमन-(आवा+सं० गमन)-१. आना जाना, २. बार-बार मरना और जन्म लेना । उ० २. सोइ व्रत कर फल पावै आवागमन नसाइ । (वि० २०३)
आवाहन-(सं०) मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाना, आमंत्रित करना ।
आविर्भाव-(सं०)-आना, पैदा होना, प्रकट होना, जन्म ।
आवृत-(सं०)-छिपा हुआ, ढका हुआ, घिरा हुआ, अच्छादित ।
आवृत्ति-(सं०)-बार-बार किसी कार्य को करना, अभ्यास ।
आवेश-(सं०)-आतुरता, चित्त की प्रेरणा, वेग, जोश ।
आवै-आवे, आ जावे । उ० जौं आवै मर्कट कटकाई । (मा० ५।३७।२)
आशंका-(सं०)-१. डर, भय, २. शक, संदेह ।
आशय-(सं०)-१. अभिप्राय, मतलब, २. वासना, इच्छा ३. गड्ढा, ४. स्थान, जगह ।
आशा-(सं०)-१. आसरा, भरोसा, उम्मीद, अप्राप्त के पाने की इच्छा और थोड़ा बहुत निश्चय, २. दिशा ।
आशिष-(सं०)-आशीर्वाद, आसीस, दुआ ।
आशु-(सं०)-शीघ्र, जल्दी, तुरत ।
आशुतोष-(सं०)-शीघ्र संतुष्ट होनेवाला, तुरत प्रसन्न होने-वाला, शिव ।
आश्चर्य-(सं०)-विस्मय, अचंभा, तअज्जुब ।
आश्रम-(सं०)-१. ऋषियों का निवासस्थान, तपस्या की जगह, कुटीर, २. ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम । उ० १. पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं । (मा० १।४५।१) २. जयति वर्णाश्रमाचार-पर-नारिनर, सत्य-शम-दम-दया-दान-शीला । (वि० ४४) आश्रमनि-आश्रमों में । उ० भुवन कानन आश्रमनि रहि मोद मंगल छाइ । (गि० ७।३४) आश्रमन्ह-१. बहुत से आश्रम, आश्रम का बहुवचन, २. आश्रमों को । उ० २. सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए । (मा० १।४५।२) आश्रमन्हि-आश्रमों में । उ० करहिं जोग जप जाग तप निज आश्र-मन्हि सुछंद । (मा० २।१३४) आश्रमहिं-आश्रम में । उ० करि सनमानु आश्रमहिं आने । (मा० २।१२५।१)
आश्रमी-१. आश्रम में रहनेवाला, २. ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों में से किसी को धारण करनेवाला । उ० २. जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि । (मा० ४।१६)
आश्रमु-दे० 'आश्रम' । उ० १. आश्रमु देखि नयन जल छाए । (मा० १।४६।३)
आश्रय-(सं०)-आधार, सहारा, स्थान । उ० जप तप नेम जलाश्रय भारी । (मा० ३।४४।१)
आश्रित-(सं०)-सहारे पर टिका हुआ, भरोसे पर रहने-वाला, शरणागत । उ० एहि विधि जग हरि आश्रित रहई । (मा० १।११८।१) आश्रितः-(सं०)-संस्कृत में आश्रित का प्रथमा एकवचन का रूप, आश्रित । उ० यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रःसर्वत्र वन्द्यते । (मा० १।१।श्लो०३)
आस्वासन-(सं०)-दिलासा, तसल्ली, सांत्वना ।
आषे-(सं० आख्यान)-कहे । उ० सत्यसंध साँचे सदा जे आखर आषे । (गी० १।६)
आसंका-(सं० आशंका)-दे० 'आशंका' ।
आस (१)-(सं० आस्)-निवास, वास, रहने की जगह ।

उ० जासु आस सर देव को, अरु आसन हरिबाम। (स० २७८)

आस (२)–(सं० आशा)–१. उम्मीद, आसरा, आशा, २. लालच, ३. लालसा, कामना। उ० १. आस पियास मनोमलहारी। (मा० १।४३।१)

आसक्त–(सं०)–१. अनुरक्त, लीन, लिप्त, फँसा हुआ, २. मुग्ध, लुब्ध, मोहित। उ० १. काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप। (मा० ७।७३क)

आसन–(सं०)–१. वह वस्तु जिसपर बैठा जाय, २. बैठने या रति करने की विधि। योग में पाँच प्रकार के आसन हैं और कामशास्त्र में ८४ प्रकार के। उ० १. अति पुनीत आसन बैठारे। (मा० १।४५।३) आसनन्हि–आसनों पर। उ० सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए। (मा० १।३५६।२)

आसनु–दे० 'आसन'। उ० १. बाम भाग आसनु हर दीन्हा। (मा० १।१०७।२)

आसन्न–(सं०)–निकट आया हुआ, समीपस्थ, प्राप्य।

आसय–(सं० आशय)–दे० 'आशय'।

आसरा–(सं० आश्रय)–सहारा, आधार, अवलंब।

आसरो–(ब्र०)–दे० 'आसरा'। उ० झूठे साँचे आसरो साहिब रघुराउ मैं। (वि० २६१)

आसा–(सं० आशा)–दे० 'आशा'। उ० १. नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। (मा० १।२५५।१) २. देखु बिभीषन दच्छिन आसा। (मा० ६।१३।१)

आसिरबचन–(सं० आशीर्वचन)–आशीर्वाद, आसीस। उ० आसिरबचन लहे प्रिय जी के। (मा० २।२४६।२)

आसिरबाद–(सं० आशीर्वाद)–आशीर्वाद, आसीस, दुआ। उ० बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो सुरगुरु आसिरबाद। (गी० १।२)

आसिरबादु–दे० 'आसिरबाद'। उ० आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा। (मा० २।१२५।१)

आसिष–(सं० आशिष)–आशीर्वाद, आसीस, दुआ। उ० तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई। (मा० २।७५। छं० १)

आसिषा–दे० 'आसिष'। उ० औरउ एक आसिषा मोरी। (मा० ७।१०६।८)

आसीन–(सं०)–बैठा हुआ, विराजमान, स्थापित, स्थित। उ० सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई। (मा० ४।१३।३)

आसीना–दे० 'आसीन'। उ० जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। (मा० १।५४।३)

आसु–(सं० आशु)–शीघ्र, जल्दी, तुरत।

आसुतोष–(सं० आशुतोष)–शीघ्र प्रसन्न होनेवाले। उ० आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। (मा० २।४४।४)

आसू–दे० 'आसु'। उ० जारइ भुवन चारिदस आसू। (मा० ६।५५।१)

आस्पद–(सं०)–१. स्थान, मूल स्थान, २. कार्य, ३. पद, ४. कुल, जाति, गोत्र, वंश, ५. कुंडली में दसवाँ स्थान। उ० १. सर्व सुखधाम गुनग्राम विश्रामपद नाम सर्वास्पद मति पुनीतं। (वि० ५३)

आस्रम–दे० 'आश्रम'। उ० १. आस्रम आवत चले, सगुन न भए भले। (गी० ३।६) आस्रमनि–दे० 'आश्रमनि'। उ० रामसीय-आस्रमनि चलत त्यों भए न श्रमित अभागे। (वि० १७०)

आस्रमी–दे० 'आश्रमी'।

आस्वाद–(सं०)–रस, ज़ायका, स्वाद।

आह–(सं० अहह)–पीड़ा, खेद, दुःख, ग्लानिसूचक शब्द, कराहना, हाय। उ० आह दइअ मैं काह नसावा। (मा० २।१६३।३)

आहट–(हि० आ (आना)+हट (प्रत्यय))–१. आने का शब्द, पाँव की चाप, २. पता, टोह।

आहन–(फ़ा०)–लोहा। उ० चुंबक आहन रीति जिमि संतन हरि सुख-धाम। (स० ४२३)

आहहिं–हैं। उ० जद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं। (मा० ७।४२।४) आहिं–हैं। उ० कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता। (मा० १।३१२।४) आहि–(अव०)–१. है, २. हैं, ३. हो। उ० २. एते मान अकस कीबे को आप आहि को? (क० ७।१००) आही–था। उ० राजधनी जो जेठ सुत आही। (मा० १।१५३।३)

आहार–(सं०)–खाना, भोजन। उ० रुचिर रूप-आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो। (वि० ९२)

आहुति–(सं०)–हवन की सामग्री, हव्य, हवन, आग को बढ़ाने के लिए उसमें डाली जानेवाली सामग्री। उ० लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु। (मा० १।२७६)

आह्लाद–(सं०)–आनन्द, खुशी।

इ

इंगित–(सं०)–अभिप्राय को व्यक्त करने की तदनुरूप चेष्टा, संकेत, इशारा।

इँदारुन–(सं० इन्द्रवारुणी)–एक लता और उसका फल। फल देखने में बहुत ही सुन्दर नारंगी जैसा पर ज़हरीला होता है। इंद्रायन।

इंदिरा–(सं०)–१. लक्ष्मी, २. शोभा, कांति। उ० १. सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप। (मा० १।५४)

इंदीवर–(सं०)–१. नील कमल, २. कमल। उ० १. कुन्देन्दीवर सुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ। (मा० ४।१। श्लो० १)

इंदु–(सं०)–१. चन्द्रमा, २. कपूर। उ० २. कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन। (मा० १।१। सो० ४)

इंदुकर–(सं०)–चन्द्रमा की किरण, चाँदनी। उ० प्रनतजन-कुमुदबन-इंदुकर-जालिका। (वि० ४८)

इंद्र–(सं०)–१. एक पानी के देवता जो अन्य देवताओं के राजा हैं। मघवा। इंद्र का स्थान इंद्रलोक है। ये बहुत ही ऐश्वर्यशाली एवं कामुक हैं। विश्व-सुन्दरी अहल्या जब इनसे नहीं ब्याही गई तो ये उसके पीछे पड़े और अंत में छल से रतिदान (दे० 'अहल्या') प्राप्त किया, जिसके फलस्वरूप मुनि-श्राप से सहस्र भगवाले हो गए। राम-स्वयंवर में उनके दर्शन से इनके भग नेत्र हो गए और ये सहस्राक्ष कहलाए। एक बार गुरु बृहस्पति का सत्कार न करने के कारण देवताओं के साथ इन्हें असुरों से परास्त होना पड़ा था। फिर ब्रह्मा की शरण में जाने पर विश्व-रूप ऋषि इनके गुरु बने और ये विजयी हुए। इंद्र अर्जुन के पिता माने जाते हैं और बहुत ही वीर कहे जाते हैं। मेघनाद ने भी इनको परास्त किया था। २. ऐश्वर्य, ३. श्रेष्ठ, ४. स्वामी, मालिक। उ० ३. योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्। (मा० ६।१। श्लो० १)

इंद्रजाल–(सं०)–१. मायाकर्म, जादूगरी, तिलस्म, बाजीगरी, २. माया, मोह। उ० २. सोनर इंद्रजाल नहिं भूला। (मा० ३।३६।२)

इंद्रजालि–(सं० इन्द्रजालिन्)–इंद्रजाल करनेवाला, बाजीगर, जादूगर, मायावी। उ० इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। (मा० ६।२६।५)

इंद्रजित–(सं० इंद्रजित्)–इंद्र को जीतनेवाला, मेघनाद। उ० चला इंद्रजित अतुलित जोधा। (म० ५।१९।२)

इंद्रजीत–दे० 'इंद्रजित'। उ० इंद्रजीत आदिक बलवाना। (मा० ६।३४।६)

इँद्रजीता–दे० 'इंद्रजीत'। उ० लछिमन इहाँ हत्यो इँद्र-जीता। (मा० ६।११९।५)

इंद्रनील–(सं०)–नीलम, नील मणि। उ० इंद्रनील-मनि स्याम सुभग अँग, अंग मनोजनि बहु छबि छाई। (गी० १।१०६)

इंद्रानी–(सं० इंद्राणी)–१. इंद्र की पत्नी, शची, २. इंद्रायन।

इंद्रिन–'इंद्रियाँ'। उ० निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन-तान्यो। (वि० ८८) इंद्रिय–(सं०)–वह शक्ति या शरीरावयव जिससे बाहरी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। इंद्रियों के दो विभाग किए गए हैं। ज्ञानेंद्रिय (चक्षु, श्रोत्र, नासिका, त्वचा और रसना) तथा कर्मेन्द्रिय (वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिंग)। कुछ लोग मन को भी इंद्रिय मानते हैं। उ० बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा, काल परमानु चिच्छक्ति गुर्वी। (वि० ५४)

इंद्री–(सं० इंद्रिय)–दे० 'इंद्रिय'।

इंद्रीजीत–(सं० इंद्रियजित्)–जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो, सिद्ध।

इंद्रीजीता–दे० 'इंद्रीजीत'। उ० अति अनन्य गति इंद्री-जीता। (वै० १५)

इंधन–(सं०)–जलाने की लकड़ी। उ० दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड। (मा० १।३२ क)

इँनारुन–दे० 'इँदारुन'। उ० बिनु हरि भजन इँनारुन के फल, तजत नहीं करुआई। (वि० १७५)

इ (१)–(सं०)–१. कामदेव, २. क्रोध।

इ (२)–(अव०)–१. यह, २. ही।

इक–(सं० एक)–एक। उ० मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन। (ब० १६)

इकीस–(सं० एकविंशत्)–१. इक्कीस, बीस और एक की संख्या, २. अधिक। उ० १. तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि, इकीस सबै। (क० १।७)

इखु–(सं० इषु)–बाण, तीर। उ० तुलसी इखु-सह राग-धर तारन तरन अधार। (स० २३७)

इगारहों–(सं० एकादश)–ग्यारहवाँ। उ० तुलसी कियो इगारहों बसनबेष जदुनाथ। (दो० १६८)

इच्छत–चाहता हुआ, इच्छा करता हुआ। उ० जद्यपि मगन-मनोरथ बिधि-बस, सुख इच्छत दुख पावै। (वि० ११६)

इच्छा–(सं०)–अभिलाषा, कामना, चाह, ख्वाहिश। उ० हरि इच्छा भावी बलवाना। (मा० १।५६।३) इच्छाचारी–(सं० इच्छा + चारिन्)–इच्छानुसार चलनेवाला, मनमानी करनेवाला। उ० चले गगन महि इच्छाचारी। (मा० ५।३५।५) इच्छामय–(सं०)–इच्छायुक्त, इच्छानुरूप। उ० इच्छामय नरबेष सँवारें। (मा० १।१५२।१)

इच्छित–(सं०)–चाहा हुआ, मनोवांछित, अभिप्रेत। उ० इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। (मा० १।७०।४)

इच्छुक–(सं०)–अभिलाषी, चाहनेवाला।

इत–(सं० इतः)–इधर, इस ओर। उ० इत बिधि उत हिमवान सरिस सब लायक। (पा० १३०) इतहि–इधर, इस ओर। उ० आयसु इतहि स्वामि-संकट उत, परत न कछू कियो है। (गी० ६।१०)

इतना (१)–इस मात्रा का, इस कदर।

इतनो–इस मात्रा का, इस कदर, इतना। उ० सबकी न कहैं, तुलसी के मते, इतनो जग जीवन को फलु है। (क० ७।३७) इतनोइ–इतना ही। उ० जीवन-जनम-लाहु लोचन फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही री। (गी० १।१०४) इतनोई–केवल इतना, इतना ही। उ० मन इतनोई या तनु को परम फलु। (वि० ६३)

इतर–(सं०)–१. और, अन्य, दूसरा, २. नीच, पतित। उ० २. जनु देत इतर नृप कर-बिभाग। (गी० २।४६)

इतराई–(सं० इतर)–इतरा जाते हैं, ऐंठने लगते हैं, घमंडी हो जाते हैं। उ० जस थोरेहु धन खल इतराई। (मा० ४।१४।३)

इतराज–(अर० एतिराज़)–विरोध, बिगाड़, नाराज़ी। उ० देत कहा नृप काज पर, लेत कहा इतराज। (स० २६१)

इताति–(अर० इताअत)–आज्ञापालन, तावेदारी, दबाव, आज्ञा। उ० निसि बासर ताकहँ भलो मानै राम इताति। (दो० १४८)

इति–(सं०)–१. समाप्तिसूचक अव्यय, समाप्ति, पूर्णता, २. अतः, अतएव, ३. सीमा, हद, ४. ऐसा, ५. इस। उ०

४. इति बदत तुलसीदास संकट-सेष-मुनि-मनरंजनं। (वि० ४५) ५. अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै। (वि० ४७)
इतिहास–(सं०)–अतीत का काल-क्रम से वर्णन, तवारीख़। उ० कहहिं बेद इतिहास पुराना। (मा० १।६।२)
इतिहासा–दे० 'इतिहास'। उ० बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। (मा० १।५८।३)
इते–इतने। उ० इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि-नेह ? (दो० ५६३) इतौ–(सं० इयत)–इतना, इस मात्रा का। उ० छमि अपराध छमाइ पाँइ परि, इतौ न अनत समाउ। (वि० १००)
इत्थं–(सं)–इस प्रकार से, ऐसे, यों। उ० इदमित्थं कहि जाइ न सोई। (मा० १।१२१।१)
इदं–(सं०)–यह, यही। उ० इदमित्थ कहि जाइ न सोई। (मा० १।१२१।१)
इदानीं–(सं०)–इस समय, अधुना, संप्रति।
इन–'इस' का बहुबचन या आदरसूचक रूप। उ० निवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की। (क० १।५) इनहिं–इनको।
इनारुन–(सं० इंद्रवारुणी)–इंद्रायन, एक लता जिसका फल देखने में नारगी की भाँति सुंदर पर विषाक्त होता है।
इन्ह–इन। 'इस' का बहुवचन या आदरसूचक रूप। उ० इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। (मा० १।८५।४) इन्हहि–इनको। उ० इन्हहि हरषप्रद बरषा एका। (मा० ३।४४।२) इन्हैं–इनको। उ० आँखिन में सखि ! राखिबे जोग, इन्हैं किमि कै बनबास दियो है ? (क० २।२०)
इभ–(सं०)–हाथी। उ० रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं। (मा० ६।१।१)
इमि–(सं० एवम्)–इस प्रकार, इस तरह। उ० होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं। (मा० २।१२१)
इया–(सं० इदम्)–यह। उ० तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इया रे। (वि० ३३)
इयार–(फ़ा० यार)–दोस्त, मित्र, संगी।
इरषा–(सं० ईर्ष्या)–डाह, जलन, हसद, दूसरी की बढ़ती देखकर जलना।
इरषाई–ईर्ष्या, डाह। उ० ममता दादु कंडु इरषाई। (मा० ७।१२१।१७)
इरिषा–दे० 'इरषा'। उ० तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी। (मा० १।१३६।४)
इव–(सं०)–समान, सदृश, तुल्य। उ० तपइ अवाँ इव उर अधिकाई। (मा० १।५८।२)
इष्ट–(सं०)–१ चाहा हुआ, वांछित, २. अभिप्रेत, ३. पूजित। उ० ३. इष्ट देव इव सब सुखदाता। (मा० १। २४२।३)
इस–(सं० एषः)–'यह' शब्द में जब कोई विभक्ति लगानी होती है तो उसे 'इस' का रूप दे देते हैं।
इसान–(सं० ईशान)–शिव, शंकर, महादेव। उ० तुलसीस तोरिए सरासन इसान को। (गी० १।८६)
इसानु–दे० 'इसान'। उ० दोस निधानु, इसानु सत्य सबु भाषेउ। (पा० ७१)
इह–(सं०)–१. यहाँ, इस स्थान में, २. इस लोक और परलोक में। उ० १. भजंतीह लोके परे वा नराणां। (मा० ७।१०८।श्लो०७)
इहइ–(?) यह ही, यही। उ० इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं। (मा० २।७।४)
इहाँ–(सं० इह)–यहाँ, इस स्थान पर। उ० इहाँ न लागिहि राउर माया। (मा० २।३३।३)
इहि–१ इस, २. इसमें, ३. इसके। उ० १. इहि आँगन बिहरत मेरे बारे ! (गी० २।४) ३. कहा प्रीति इहि लेखे ? (गी० २।४)
इहै–यही। उ० धरनी धन धाम सरीर भलो, सुर लोकहु चाहि इहै सुख स्वै। (क०७।४१)

ई

ईंधन–(सं० इंधन–)–जलाने की लकड़ी।
ईंधनु–दे० 'इंधन'। उ० ईंधनु पात किरात मिताई। (मा० २।२५१।१)
ई (१)–(सं० हि)–१. निकट का संकेत, यह। २. ज़ोर देने का शब्द, ही। उ० १. रावरी ई गति बल-बिभव बिहीन की। (क० ७।१७७)
ई (२)–(सं०)–लक्ष्मी।
ईछा–(सं० इच्छा)–चाह, अभिलाषा। उ० बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा। (मा० ६।५०।४)
ईड़ा–(सं० ईडा)–स्तुति, प्रशंसा।
ईड्यं–(सं०)–पूजनीय, पूजा के योग्य। उ० नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कंदर्पहं शंकरम्। (मा० ६।१।श्लो०२)
ईति–(सं०)–१. खेती को हानि पहुँचानेवाले छः प्रकार के उपद्रव। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहा, पक्षी तथा अन्य राजा की चढ़ाई। २. बाधा। उ० १. ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। (मा० २।२३५।२)
ईदृश–(सं०–)ऐसे, इस प्रकार, इस भाँति।
ईरषा–(सं० ईर्ष्या)–डाह, हसद, जलन। उ० राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे। (क० ७।११६)
ईर्षणा–(सं० ईर्ष्यण)–ईर्षा, हसद, डाह।
ईर्षा–दे० 'ईरषा'।
ईर्ष्या–(सं०)–डाह, हसद, दूसरे की बढ़ती देखकर जलना।
ईश–(सं०)–१. स्वामी, मालिक, २. राजा, ३. परमेश्वर, ईश्वर, ४. शिव, महादेव।

ईशान-(सं०)-१. पूरब और उत्तर के बीच की दिशा, २. शिव, ३. ग्यारह की संख्या, ४. स्वामी। उ० १. नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। (मा० ७।१०८। श्लो० १)
ईश्वर-(सं०)-१. स्वामी, मालिक, २. भगवान्, ईश। उ० १. निरीहमीश्वरं विभुं। (मा० ३।४। श्लो० ६)
ईषण-(सं० एषण)-इच्छा, आकांक्षा, अभिलाषा।
ईषणा-दे० 'ईषण'।
ईषत्-(सं०)-थोड़ा, कम, कुछ, अल्प।
ईषना-(सं० एषण)-दे० 'ईषण'। उ० सुत वित लोक ईषना तीनी। (मा० ७।७१।३)
ईस-(सं० ईश)-दे० 'ईश'। उ० ३. अंबु ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु। (मा० २।२४४) ईसनि-ब्रह्मा और शिव। उ० ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनिहूँ। (वि० २४६) ईसहि-शिव जी को। उ० ईसहि चढ़ाय सीस बीसबाहु बीर तहाँ। (क० ५।३२)
ईसा-(ईश)-दे० 'ईश'। उ० ४. एहि बिधि भए सोचबस ईसा। (मा० १।४६।२)
ईसु-दे० 'ईस'। उ० ३. तहँ-तहँ ईसु देउ यह हमहीं। (मा० २।२४।३)
ईस्वर-(ईश्वर)-दे० 'ईश्वर'। उ० २. मुधा बचन नहि ईस्वर कहई। (मा० ७।६४।३) ईस्वरहि-ईश्वर पर, ईश्वर को। उ० कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ। (मा० ७।४३)
ईहा-(सं०)-इच्छा, लोभ, चाह, वांछा।

उ

उँजिआरा-(सं० उज्ज्वल)-उजाला, प्रकाश। उ० तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। (मा० ७।११८।२)
उ (१)-(सं०)-१ ब्रह्मा, २. नर।
उ (२)-(?)-भी। उ० औरउ एक कहउँ निज चोरी। (मा० १।१६६।२)
उअहिं-(सं० उदयन)-उदय हों, उगें। उ० राकापति षोड़स उअहि तारागन समुदाई। (मा०।७।७८।ख०) उएँ-उदय हुए, उदय होने पर। उ० राम बान रबि उएँ जानकी। (मा० ५।१६।१) उए-उगे, उदित हुए। उ० मनहुँ इन्द्रधनु उए सुहाए। (मा० ६।८७।३)
उकठा-(सं० अव+काष्ठ)-सूखा, शुष्क। उकठे-सूखे, शुष्क हुए। उ० मिलनि बिलोकि स्वामि सेवक की उकठे तरु फूले-फले। (गी० ५।४१) उकठेउ-उकठे हुए भी, सूखे भी। उ० उकठेउ हरित भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई। (गी० २।४६)
उकसहिं(-सं० उत्कर्षण)-उचकते हैं, उठते हैं। उ० पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। (मा १।१३५।१)
उकार-(सं० ओंकार)-ओ३म्। उ० गहु उकार बिबिचार पद मा फल हानि बिमूल। (स० ७११)
उकुति-(सं० उक्ति)-कथन, वचन। उ० सुनि अति उकुति पवन सुत केरी। (मा० ६।१।२)
उक्त-(सं०)-कहा हुआ, कथित।
उक्ति-(सं०)-१. कथन, वचन, २. अनोखा वचन।
उखरैया-(सं० उत्खिदन)-उखाड़नेवाले। उ० भूमि के हरैया उखरैया भूमि-धरनि के। (गी० १।८३)
उखल-(सं० उलूखल)- लकड़ी या पत्थर का एक पात्र जिसमें मूसल से अन्न आदि कूटते हैं। ओखल।
उखारे-(सं० उत्खिदन)-उखाड़ना, निकालना। उ० गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बहिबे ही। (कृ० ४०)
उखारी-उखाड़ना, निकालना। उ० जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। (मा० २।१७।४)
उगिलत-(सं० उद्गिलन)-उगलते हैं, मुँह में से निकालते हैं। उ० मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं। (मा० १।१५६।३) उगिल्यो-उगल दिए, बाहर निकाल दिए। उ० आछन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं, त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं। (क० ७।१०२)
उगो-(सं० उद्गमन)-उदय हुआ। उ० 'मैं तैं' मेट्यो मोहतम, उगो आतम-भानु। (वै० ३३)
उग्र-(सं०)-१. प्रचंड, उत्कट, तेज, २. महादेव, शिव, ३. वत्सनाग विष, ४. विष्णु, ५. सूर्य, ६. कठिन, विकट। उ० ६. परम उग्र नहिं बरनि सो जाई। (मा० १।१७७।१) उग्रकर्मा-निदय, उग्रकर्म का करनेवाला।
उग्रसेन-(सं०)-१. मथुरा का राजा, कंस का पिता, कृष्ण का नाना। उ० तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत-कर धारी। (वि० ६८)
उघटत-(सं० उद्घाटन)-कहते हैं, प्रकट करते हैं। उ० धीर बीर सुनि समुझि परसपर, बल उपाय उघटत निज हिय के। (गी० ४।१) उघटहिं-कहते हैं, बार-बार कहते हैं। उ० उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान। (गी० १।२)
उघरत-(सं० उद्घाटन)-प्रकट हो जाता है, स्पष्ट हो जाता है, प्रकाश में आ जाता है। उ० छीर-नीर-बिबरन समय बक उघरत तेहि काल। (दो० ३३३) उघरहिं-उघरने पर, प्रकट होने पर। उ० उघरहिं अंत न होइ निबाहू। (मा० १।७।३) उघरे-खुल गए, अनावृत्त हो गए। उ० उघरे पटल पर सुधर मति के। (मा० १।२८४।३)
उघार-नंगे बदन, नग्न, बिना वस्त्रादि के। उ० द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी। (मा० ७।१०१।४)
उघारा-खोला। उ० तब सिव तीसर नयन उघारा। (मा० १।८७।३) उघारि-उघारकर, खोलकर। उ० नयन उघारि सकल दिसि देखी। (मा० १।८७।२) उघारी-नग्न, अनावृत। उ० ते हठि देहिं कपाट उघारी। (मा० ७।११८।६)

उघारे–खोले । उ० धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ। (मा० २।३०)
उचकि–(सं० उच्च+करण)–उचक कर, ऊँचे होकर । उ० उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो । (क० ४।१) उचके–ऊँचे हुए, कूदे । उ० उचके उचकि चारि अंगुल अचलुगो । (क० ४।१)
उचाट–(सं० उच्चाट)–१. मन का न लगना, विरक्ति, उदासीनता, २. उच्चाटन मंत्र पढ़कर वश में करना ।
उचाटि–उच्चाटन करके, दूर करके, हटा करके । उ० अब उचाटि मन बस करै, मारै मद मार । (वि० १०८) उचाटे–उच्चाटन कर दिया, उदासीन कर दिया । उ० लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ । (मा० २।३१६)
उचाटु–दे० 'उचाट' । उ० १. सो उचाटु सबकें सिर मेला। (मा० २।३०२।२)
उचारहीं–(सं० उच्चार)–१. बोलने लगे, उच्चारण करने लगे, २.उच्चारण करते हैं, बोलते हैं । उ० १.कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं । (मा० १।२६१।छं०१) उचारा–उच्चारण किया, कहा । उचारी–उच्चारण किया, बोले । उ० हरषि सुधा सम गिरा उचारी । (मा० १।११२।३) उचारे–बोले, कहे । उ० मधुर मनोहर बचन उचारे । (मा० १।२६१।२)
उचित–(सं०)–योग्य, ठीक, मुनासिब । उ० कह सिव जदपि उचित अस नाहीं । (मा० १।७७।१) उचितानुचितहिं–उचित और अनुचित को । उ० उचितानुचितहिं हेरि हिय करतब करइ सँभार । (स० ६८६)
उच्च–(सं०)–ऊँचा, श्रेष्ठ, उत्तम । उ० सिंहासन अति उच्च मनोहर । (मा० ६।११६।२)
उच्चरत–बोलते हैं, उच्चारण करते हैं । उ० लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत । (क० ६।४७) उच्चरहीं–उच्चारण करते हैं, बोलते हैं । उ० बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं । (मा० १।२६४।२) उच्चरै–उच्चारण करता है, बोलता है । उ० यह दिन रैनि नाम उच्चरै । (वै० ४१)
उचाटन–(सं०)–१. लगी वस्तु को अलग करना, विश्लेषण, २. अनमनापन, विरक्ति ।
उच्छलित–(सं० उच्छलन)–उछलते हुए, उचकते हुए । उ० चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल । (क० ६।४४)
उछंग–(सं० उत्संग)–गोद, क्रोड़, अंक । उ० सखी उछंग बैठी पुनि जाई । (मा० १।६८।३)
उछंगा–दे० 'उछंग' । उ० प्रभुकृत सीस कपीस उछंगा । (मा० ६।११।३)
उछरत–उछलते हैं । उ० उछरत उतरात हहरात मरि जात. (क०७।१७६) उछरि–उछलकर, कूदकर । उ० ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो । (वि०१६१) उछरि–उछलकर, कूदकर । उ० तुलसि उछरि सिंधु मेरु मसकतु है । (क० ६।१६)
उछाह–(सं० उत्साह)–उत्साह, उमंग, प्रसन्नता, हर्ष । उ० ताकत सराध कै बिबाह कै उछाह कछू । (क० ७।१४८)
उछाहा (१)–दे० 'उछाह' ।
उछाहा (२)–(सं० उत्सव)–शुभ अवसर, पर्व । उ० संग-संग सब भए उछाहा । (मा० २।१०।३)
उछाहु–दे० 'उछाह' । उ० सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु । (मा० १।८८)
उछाहू–दे० 'उछाह' । उ० अति असंक मन सदा उछाहू । (मा० १।१३७।२)
उजयार–(सं० उज्वल)–उजाला, प्रकाश, रोशनी ।
उजरउ (?)–उजड़े, उजड़ जावे । उ० बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ । (मा० १।८०।४) उजरें–१. उजड़ने पर, उजड़ जाने पर, उजड़ने में, २ उजड़ गए । उ० १. उजरें हरष बिषाद बसेरें । (मा० १।४।१)
उजागर–(सं० जागर)–१. प्रकाशित, जाज्वल्यमान, जगमगाता हुआ, २. प्रसिद्ध, नामवर । उ० २. पंडित मूढ़ मलीन उजागर । (मा० १।२८।३)
उजागरि–उजागर का स्त्रीलिंग, १. प्रकाशित, उज्ज्वल, २. प्रसिद्ध । उ० २. सिय लघु भगिनि लखन कहँ रूप-उजागरि । (जा० १७३)
उजार–उजाड़ रहे हैं । उ० जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज । (मा० ५।२८) उजारा–उजाड़ दिया । उ० भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा । (मा० १।९७।१) उजारि–१. उजाड़, नष्ट-भ्रष्ट, जीर्ण-शीर्ण, २. उजाड़कर, नष्ट कर । उ० १. होइहि सब उजारि संसारू । (मा० १।१७७।४) २. बन उजारि, पुर जारि । (मा० ६।२६) उजारी–१. उजाड़ दिया, नष्ट कर दिया, २ उजाड़नेवाला । उ० १.तेहिं असोक बाटिका उजारी । (मा० ५।१८।२) उजारे–उजाड़ दिया, उजाड़ा । उजारो–उजाड़ा, नष्ट किया । उ० कुल गुरु सचिव साधु सोचतु बिधि को न बसाइ उजारो । (गी० २।६६) उजार्‌यो–उजाड़ा, उजाड़ दिया । उ० कानन उजार्‌यो तौ उजार्‌यो न बिगारेउ कछू । (क० ५।११)
उजियरिया–(सं० उज्वल)–उजियाली, प्रकाश पूर्ण, उजेली । उ० डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम । (ब० ३७)
उजियार–(सं० उज्वल)–प्रकाश, उजाला । उ० तुलसी भीतर बाहिरौ जौ चाहसि उजियार । (दो० ६)
उजियारे–१. प्रकाशमान, २. प्रसिद्ध, ३. प्रकाशित करनेवाले, प्रकाश फैलानेवाले । उ० ३. अँधियारे मेरी बार क्यों त्रिभुवन उजियारे ! (वि० ३३)
उजेनी–(सं० उज्जयिनी)–उज्जैन, मालवा की प्राचीन राजधानी । उ० गयउँ उजेनी सुनु उरगारी । (मा० ७।१०५।१)
उज्जारि–उजाड़कर । उ० गहन उज्जारि पुर जारि सुत मारि तव । (क० ६।२१)
उज्वल–(सं०)–१. प्रकाशमान, २. शुभ्र, स्वच्छ, निर्मल, ३. सफेद, श्वेत ।
उठई–(सं० उत्थान)–उठता । उ० उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं । (मा० १।२५०।४) उठत–उठते ही, खड़े होते ही । उ० अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि । (जा० ६८) उठति–उठती हुई, चढ़ती हुई, यौवन को प्राप्त होती हुई । उ० उठति बयस, मसि भींजति, सलोने सुठि । (गी० २।३७) उठन–उठना, खड़ा होना । उ० चाहत उठन करत मति धीरा । (मा० १।१६३।२) उठब–उठना, खड़ा होना । उ० प्रेम मगन तेहि उठब न भावा । (मा० ५।३३।१) उठहु–उठो, खड़े हो, उठिए, खड़े

होइए। उ० उठहु राम भंजहु भव चापा। (मा० १।२५४।३) उठा-खड़ा हुआ। उ० सुनत दसानन उठा रिसाई। (मा० ५।४१।१) उठि-उठकर, खड़ा होकर। उ० गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं। (मा० १।७२।३) उठीं-खड़ी हुईं। उ० सादर उठीं भाग्य बड़ जानी। (मा० १।३५२।१) उठी-खड़ी हुई। उ० पुनि सँभारि उठी सो लंका। (मा० ५।४।३) उठे-खड़े हुए। उ० तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा। (मा० ५।४६।१) उठेउ-खड़े हुए, उठे। उ० उठेउ गवहिं जेहिं जान न रानी। (मा० १।१७२।२) उठेसि-खड़ा हुआ। उठैं-उठते हैं। उ० सगन मनोरथ मोद नारिनर प्रेम-बिबस उठैं गाइकै। गी० १।६८) उठ्यो-उठा। उ० उठ्यो मेघनाद सविषाद कहै रावनो। (क० ५।६) उठ्यौ-दे० 'उठ्यो'।

उठाइ-उठाकर, उपर कर के। उ० कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। (मा० ५।३३।२) उठाई-उठाकर, ऊपर कर के। उ० सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई। (मा० १।१६५।३) उठाएँ-उठाकर, उपर कर के। उ० चकित बिलोकत कान उठाएँ। (मा० १।१५६।४) उठाए-उठाया, ऊपर कर लिया। उ० तुरत उठाए करुनापुंजा। (मा० १।१४८।४) उठाव-उठाने लगा। उ० पर्यो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही। (मा० ६।८३। छं० १) उठावन-उठाना, ऊपर करना। उ० तेहि चह उठावन मूढ़ रावन, जान नहिं त्रिभुअन धनी। (मा० ६।८३। छं० १) उठावा-उठाना, ऊपर करना। उ० बार-बार प्रभु चहइ उठावा। (मा० ५।३३।१) उठावौं-उठाऊँ, ऊपर करूँ। उ० कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। (मा० १।२५३।२)

उड़-(सं० उडु)-नक्षत्र, तारा।

उड़इ-(सं० उड्डयन)-उड़ता है, उड़ रहा है। उ० उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी। (मा० १।१९५।३) उड़त-१. उड़ता है, २. उड़ते हुए। उड़न-उड़ना। उ० चहै मेरु उड़न बड़ी बयारि बही है। (गी० ५।२४) उड़ि-उड़कर। उ० संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं। (मा० ६।८२। छं० १)

उड़ाइ-उड़कर। उ० रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ। (मा० ६।५३) उड़ाई-१. उड़कर, २. उड़ गई। उ० १. अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई। (मा० २।१५८।१) उड़ाउँ-उड़ता हूँ। उ० लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ जहँ संग उड़ाउँ। (मा० ७।७५ क) उड़ात-१. उड़ते हुए, उड़ने में, २. उड़ते हैं। उ० १. बोलत मधुर उड़ात सुहाए। (मा० ७।२८।२) उड़ानी-उड़ी है। उ० लिए अपनाइ लाइ चंदन तन, कछु कटु चाह उड़ानी। (कृ० ४७) उड़ाव-उड़ाता है। उ० मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। (मा० ७।१०६।६) उड़ावहीं-उड़ा रहे हों, उड़ाते हों। उ० संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं। (मा० ३।२०। छं० २) उड़ाहिं-१. उड़ने लगे, २. उड़ते हैं। उ० १. सेतुबंध भइ भीर अति, कपि नभ पंथ उड़ाहिं। (मा० ६।४) उड़ाहीं-उड़ जाते हैं। उ० जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। (मा० १।१२।६) उड़ावन-उड़ाना। उ० चहत उड़ावन फूँकि पहारू। (मा० १।२७३।१)

उड़ावनिहारी-उड़ा देनेवाली। उ० संसय बिहग उड़ावनिहारी। (मा० १।११४।१)

उडु-(सं०)-नक्षत्र, तारा। उ० जिमि उडुगन मंडल बारिद पर नवग्रह रची अथाई। (वि० ६२)

उडुपति-(सं०)-चन्द्रमा, राकेश। उ० प्रेमपियूषरूप उडुपति बिनु कैसे हो अलि पैयत रबि पाहीं। (कृ० ५८)

उड्डु-दे० 'उडु'।

उतग-(सं० उत्तुंग)-ऊँचा, बुलंद। उ० अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। (मा० ५।३।६)

उत-(?)-वहाँ उस ओर, उधर। उ० सुत सनेह इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु। (मा० २।४०)

उतकंठा-दे० 'उत्कंठा'। उ० सिय हियँ अति उतकंठा जानी। (मा० १।२२९।२)

उतकरष-दे० 'उत्कर्ष'। उ० रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। (मा० ५।४०।२)

उतपति-(सं० उत्पत्ति)-पैदाइश, जन्म, उद्गम। उ० आदि सृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि। (मा० १।१६२)

उतपात-दे० 'उत्पात'। उ० समन अमित उतपात सब भरत चरित जपजाग। (मा० १।४१)

उतपाती-(सं० उत्पातिन्)-उत्पात करनेवाला, उपद्रवी। उ० अब दुइ कपि आए उतपाती। (मा० ६।४४।२)

उतपातु-दे० 'उतपात'। उ० सब्रु उतपातु भयउ जेहि लागी। (मा० २।२०१।३)

उतर-दे० 'उत्तर'। उ० १. केवट कुसल उतर सबिबेका। (मा० १।४१।१)

उतरअयन-(सं० उत्तरायण)-सूर्य की मकर रेखा से उत्तर कर्क रेखा की ओर गति। उ० दिनमनि गवन कियो उतर अयन। (गी० १।४९)

उतरइ-(सं० अवतरण)-उतरे, नीचे आवे। उतरत-उतरने में, नीचे आने में। उ० उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार, (क० ६।२४) उतरहिं-(सं० उत्तरण)-पार उतरते हैं, पार करते हैं। उ० उतरहिं नर भवसिंधु आपारा। (मा० २।१०१।२) उतरि-१. उतर, पार हो, २. उतर कर। उ० १. तुलसी उतरि जाहु भव उदधि अगाधु। (ब० ६१) उतरिबो-उतरना, उतरना है। उ० सोखि कै खेत कै बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो। (गी० ५।१४) उतरिहि-उतर जायेगी, पार हो जावेगी। उ० उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई। (मा० ५।५९।४) उतरी-अवतरित हुई, उतर आयी। उ० मनहुँ करुनरस कटकई उतरी अवध बजाइ। (मा० २।४६) उतरे-उतर पड़े, नीचे आए। उ० उतरे राम देवसरि देखी। (मा० २।८७।१) उतरै-उतरे, नीचे आवे। उ० जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ। (मा० ५।५९)

उतराई-नदी के पार उतरने का महसूल। उ० पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं। (मा० २।१००। छं० १)

उतरात-(सं० उत्तरण)-पानी पर तैरते हैं। उ० उछरत उतरात हहरात मरि जात। (क० ७।१७६)

उतरु-दे० 'उतर'। उ० जाइ उतरु अब देहउँ काहा। (मा० १।५४।१)

उताइल–(सं० उत् + त्वरा)–उतावली से, जल्दी। उ० चला उताइल त्रास न थोरी। (मा० ३।२६।१२)
उताना–(सं० उत्तान)–उत्तान, चित, पीठ को भूमि पर लगाए हुए। उ० जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना। (मा० ६।४०।३)
उतार–१. ढाल, नीचा, २. नीच, पापी। उ० २. अपत, उतार, अपकार को अगार जग। (क० ७।६८)
उतारहिं–(सं० अवतरण)–उतारती हैं। उ० कनक थार आरती उतारहिं। (मा० ७।७।२) उतारहि–(सं० उत्तरण) उतार दो, उस पार कर दो। उ० होत बिलंबु उतारहि पारू। (मा० २।१०१।१) उतारि–उतारकर, निकालकर। उ० चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। (मा० ५।२७।१) उतारिहौं–उतारूँगा। उ० तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं। (मा० २।१०० छं० १) उतारी–उतारा, निकाला। उ० अनिमुदरी मन मुदित उतारी। (मा० २।१०२।२)
उतारा–१. नदी आदि पार करने की क्रिया, २. पड़ाव, टिकने का कार्य, ३. प्रेत-बाधा आदि की शांति।
उतारू–उद्यत, तत्पर संनद्ध।
उतायल–दे० 'उताइल'।
उतावल–दे० 'उताइल'।
उतुंग–दे० 'उत्तुंग'।
उत्कंठा–(सं०)–प्रबल इच्छा, लालसा।
उत्कंठित–उत्सुक, इच्छुक।
उत्कट–(सं०)–उग्र, विकट, प्रचंड, दुःसह।
उत्कर्ष–(सं०)–१. श्रेष्ठता, उत्तमता, २. बड़ाई, प्रशंसा, ३. परिपूर्णता, समृद्धि।
उत्कृष्ट–(सं०)–उत्तम, श्रेष्ठ।
उत्तम–(सं०)–१. श्रेष्ठ, अच्छा, भला, २. छोटी रानी सुरुचि से उत्पन्न राजा उत्तानपाद का पुत्र, ध्रुव का सौतेला भाई। उ० १. उत्तम मध्यम नीच गति, पाहन सिकता पानि। (दो० ३५२)
उत्तर–(सं०)–१. किसी प्रश्न का जवाब, २. दक्षिण के सामने की दिशा, ३. पिछला, बाद का। उ० २. कियो गमन जनु दिन नाथ उत्तर संग मधु माधव लिए। (जा० ३६)
उत्तरायण–(सं०)–सूर्य की मकर रेखा की ओर से कर्क रेखा की ओर गति।
उत्तान–(सं०)–ऊपर मुख किए, चित, सीधा।
उत्तानपाद–(सं०)–महात्मा ध्रुव के पिता। राजा उत्तानपाद स्वायंभुव मनु के पुत्र थे। इनके छोटे भाई का नाम प्रियव्रत था। उत्तानपाद की सुनीति और सुरुचि दो रानियाँ थीं। सुनीति से ध्रुव, कीर्तिमान् और आयुष्मान् तथा सुरुचि से उत्तम, ये चार इनके पुत्र थे। उ० नृप उत्तानपाद सुत तासू। (मा० १।१४२।२)
उत्तुंग–(सं०)–ऊँचा, बहुत ऊँचा।
उत्पति–दे० 'उत्पत्ति'। उ० अनुभव सुख-उत्पति करत, भवभ्रम धरै उठाइ। (वै० २०)
उत्पत्ति–(सं०)–पैदाइश, जन्म, उद्भव।
उत्पन्न–(सं०)–जन्मा हुआ, पैदा।
उत्पल–(सं०)–१. कमल, जलज, २. नील कमल। उ० १. नीलोत्पल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक। (मा० ४।३० ख)
उत्पात–(सं०)–उपद्रव, आफ़त, अशांति, हलचल। उ० जलधि-लंघन-सिंह, सिंहिका-मद-मथन, रजनिचर-नगर उत्पात केतू। (वि० २५)
उत्पाती–(सं०उत्पातिन्)–उत्पात करनेवाला, उपद्रवी।
उत्पादक–(सं०)–उत्पन्न करनेवाला।
उत्प्रेक्षा–(सं०)–उद्भावना, आरोप।
उत्फुल्ल–(सं०)–विकसित, फूला हुआ, प्रफुल्लित।
उत्सर्ग–(सं०)–१. त्याग, न्यौछावर, बलिदान, २. समाप्ति।
उत्सव–(सं०)–१. मंगल-कार्य, धूम-धाम, २. पर्व, त्यौहार। उ० १. पिताभवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होइ। (मा० १।६१)
उत्साह–(सं०)–१. उमंग, उछाह, जोश, हौसला, २. साहस, हिम्मत।
उथपन–(सं० उत्थापन)–उजड़े या उखड़े हुए, स्थानभ्रष्ट। उ० रघुकुल-तिलक सदा तुम्ह उथपनथापन। (जा० १६३) उथपनहार–उखाड़नेवाले, स्थानभ्रष्ट करनेवाले। उ० उथपे-थपन, थिरथपे-उथपनहार, केसरीकुमार बल आपनो सँभारिए। (ह० २२) उथपे–उखड़े, उजड़े, स्थानभ्रष्ट। उ० उथपे-थपन, थिरथपे उथपनहार। (ह० २२) उथपै–उखाड़े, हटावे। उ० उथपै तेहि को जेहि राम थपै? (क० ७।४७)
उदउ–(सं० उदय)–ऊपर आना, निकलना, प्रकट होना। उ० दिन दिन उदउ अनंद अब, सगुन सुमंगल देत। (प्र० ७।५।७)
उदक–(सं०)–जल, पानी। उ० पद पखारि पादोदक लीन्हा। (मा० ७।४८।१)
उदघाटी–(सं० उत्घाटन)–प्रकाशित किया, खोला, प्रकट किया। उ० तब भुजबल महिमा उदघाटी। (मा० १।२३६।३)
उदधि–(सं०)–१. समुद्र, २. मेघ, ३. घड़ा। उ० १. बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। (मा० ६।५)
उदपान–(सं०)–१. कुआँ, २. कुएँ के समीप का गड्ढा, खाता।
उदबस–(सं०उद्वासन)–उजाड़, सूना। उ० उदबस अवध नरेस बिनु, देस दुखी नर नारि। (प्र० ७।६।१)
उदबेग–(सं० उद्वेग)–१ चित्त की व्याकुलता, २. भय, डर।
उदबेगु–दे० 'उदबेग'। उ० मुनि उदबेग न पावै कोई। (मा० २।१२६।१)
उदभव–(सं० उद्भव)–उत्पत्ति, जन्म, सृष्टि। उ० उदभव पालन प्रलय कहानी। (मा० १।१६३।३)
उदभासित–(सं० उद्भासित)–१. उत्तेजित, उद्दीप्त, २. प्रकट, प्रकाशित।
उदयँ–उदय के समय। दे० 'उदय'। उ० १. अरुणोदयँ सकुचे कुमुद, उडगन जोति मलीन। (मा० १।२३८)
उदय–(सं०)–१. ऊपर आना, निकलना, २. प्रातः, सूर्यो-

दय, ३. उन्नति, बढ़ती। उ० १. रबि निज उदय ब्याज रघुराया। (मा० १।२३९।३)

उदयगिरि–(सं०)–पुराणानुसार उदयाचल नामक एक पर्वत जो पूरब दिशा में है और जिस पर सूर्य का उदय होता है। इसी प्रकार अस्ताचल पर सूर्यास्त होता है। उ० उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग। (मा० १।२५४)

उदयसैल–(सं० उदयशैल)–दे० 'उदयगिरि'। उ० उदय-सैल सोहैं सुंदर कुवँर, जोहैं। (गी० १।८२)

उदर–(सं०)–१. पेट, जठर, २. भीतरी भाग, अंदर। उ० १. त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर, जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी। (वि० ६३)

उदरगत–(सं०)–पेट में, उदर में।

उदररेख–(सं० उदररेखा)–पेट पर की तीन रेखाएँ, त्रिबली। उ० तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि। (मा० १।१४७)

उदवेग–दे० 'उद्वेग'।

उदार–(सं०)–१.दाता, दानशील, २.श्रेष्ठ,बड़ा, ३. दयालु, कृपालु, ४. सरल, सीधा। उ० २. सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब। (मा० १।१२० ग) उदारहिं–१ उदार को, २. उदार, दयालु। उदारहि–१. उदार को, २. उदार, दयालु। उ० २. तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि। (मा० ७।३०।५)

उदारा–दे० 'उदार'। उ० १. एहि महँ रघुपति नाम उदारा। (मा० १।१०।१)

उदारु–दे० 'उदार'।

उदास–(सं०)–१. जिसका चित्त किसी चीज़ से हट गया हो, विरक्त, २. झगड़े से अलग, तटस्थ, ३. दुखी, खिन्न। उ० १. एक उदास भायँ सुनि रहहीं। (मा० २।४८।३)

उदासा–दे० 'उदास'। उ० १. तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा। (मा० १।७९।३)

उदासी–१. विरक्त, त्यागी, संन्यासी, २. एक संप्रदाय विशेष तथा उसके माननेवाले, ३. खिन्नता, उत्साह व आनंद का अभाव। उ० १. तापस बेष बिसेषि उदासी। (मा० २।२९।२)

उदासीन–(सं०)–१. शत्रु-मित्र भाव से रहित, विरक्त, निष्पक्ष, २. रूखा, उपेक्षायुक्त। उ० १. उदासीन तापस बन रहहीं। (मा० २।२१०।२)

उदित–(सं०)–१. जो उदय हुआ हो, निकला हुआ, २. प्रकट, ज़ाहिर, ३. प्रसन्न, प्रफुल्लित। उ० १. द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि। (मा० २।३७)

उदिताचल–(सं०)–दे० 'उदय गिरि'।

उदै (सं० उदय)–दे० 'उदय'।

उदोत–(सं० उद्योत)–१. प्रकाश, रोशनी, २. प्रकाशित, दीप्त, ३. शुभ्र, उत्तम। उ० १. हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत। (ब० १)

उदौ–(सं० उदय)–दे० 'उदय'। उ० १. दुइज न चंदा देखिए, उदौ कहा भरि पाख। (दो० ३४४)

उद्गम–(सं०)–१. उत्पत्ति का स्थान, निकास, २. उदय, अविर्भाव।

उद्घाटन–(सं०)–उघाड़ना, खोलना, प्रकट करना।

उद्घाटी–१. खोला, प्रकट किया, २. खोलनेवाली, प्रकट करनेवाली।

उद्दंड–(सं०)–१. निडर, अक्खड़, २. उद्धत, उजड्ड।

उद्दित–(सं० उदित)–प्रकाशित, ज़ाहिर, प्रकट।

उद्देश्य–(सं०)–लक्ष्य, प्रयोजन, इष्ट।

उद्धत–(सं०)–उग्र, प्रचंड, उद्दंड। उ० यातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर, सिद्ध-सुर-सज्जनानंद सिंधो। (वि० २७)

उद्धरन–(सं० उद्धरण)–१. मुक्त होने की क्रिया, बुरी अवस्था से अच्छी अवस्था में आना। २. मुक्त करनेवाला, उद्धार करनेवाला। उ० २. भूमि-उद्धरन भूधरन-धारी। (वि० ५६)

उद्धरहुगे–उद्धार करोगे, मुक्ति दोगे। उ० तिन्हहिं सम मानि मोहिं नाथ उद्धरहुगे। (वि० २११)

उद्धव–(सं०)–१. उत्सव, २. यज्ञ की आग, ३. कृष्ण के एक यादव मित्र। रिश्ते में ये कृष्ण के साला लगते थे। इनका दूसरा नाम देवश्रवाः था। ये बृहस्पति के शिष्य कहे जाते हैं। इनके पिता का नाम सत्यक था। इनको कृष्ण ने गोपियों को समझाने के लिए भेजा था।

उद्धार–(सं०)–छुटकारा, मुक्ति, त्राण।

उद्धारन–उद्धार करनेवाला, मुक्तिदाता। उ० जय माया मृगमथन गीध-सबरी-उद्धारन। (क० ७।११४)

उद्धृत–(सं०)–१. उगला हुआ, २. अन्य स्थान से ज्यों का त्यों लिया हुआ।

उद्धृत्य–निकालकर। उ० सार-सतसंगमुद्धृत्य इति निश्चितं बदति श्रीकृष्ण वैदर्भिभर्त्ता। (वि० २७)

उद्भट–(सं०)–प्रबल, प्रचंड, श्रेष्ठ। उ० रिच्छ मर्कट बिकट सुभट उद्भट, समर सैल-संकासरिपु-त्रासकारी। (वि० ५०)

उद्भव–(सं०)–उत्पत्ति, जन्म। उ० उद्भवस्थिति संहार-कारिणीं क्लेशहारिणीम्। (मा० १।१। श्लो० ५)

उद्भिज–(सं० उद्भिज्ज)–वनस्पति, वृक्ष, लता गुल्म आदि जो भूमि फाड़कर निकलते हैं।

उद्यत–(सं०)–तैयार, तत्पर, मुस्तैद।

उद्यम–१. काम, धंधा, २. प्रयास, उद्योग। उ० १. जस सुराज खल उद्यम गयऊ। (मा० ४।१५।२)

उद्यान–(सं०)–बगीचा, उपवन।

उद्योग–(सं०)–१. प्रयत्न, कोशिश, २. काम, उद्यम।

उद्योत–(सं०)–१. प्रकाश, उजाला, २. चमक, आभा, झलक। उ० १. रत्नहाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसत-सहस-उद्योतकारी। (वि० ५१)

उद्वेग–(सं०)–१. व्याकुलता, घबराहट, २. आवेश, चित्त की आकुलता।

उधरी–(सं० उद्धार)–उद्धार कर दिया। उ० अनायास उधरी तेहि काला। (मा० २।२९७।२) उधरेउ–उद्धार किया, मुक्ति दी। उधर्यो–उबारा, उद्धार किया। उ० बिनु अवगुन कृकलास कूप-मज्जित कर गहि उधर्यो। (वि० २३९)

उधारन–१. उद्धार करनेवाले, २. उद्धार करने के लिए। उ० १. तुलसिदास तजि आस सकल भजु कोसलपति

मुनिबधू-उधारन। (वि० २०६) २. ज्यों धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि। (गी० ६।६)

उधारि–उद्धार करके, मुक्त करके। उ० ऋषिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही। (क० ७।१०) उधारिहैं–उद्धार करेंगे। उ० पुर पाँउ धारिहैं उधारिहैं तुलसी हूँ से जन। (गी० २।४१) उधारी–उद्धार किया, मुक्ति दी। उ० जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी। (वि० १६६) उधारे–बचाए, उद्धार किया। उ० कौने देव बराय बिरद-हित हठि-हठि अधम उधारे। (वि० १०१) उधार्‍यो–उबारा, बँचाया। उद्धार किया : उ० तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधार्‍यो। (वि० २०२)

उन–(१)–'उस'का बहुवचन या उसके स्थान पर प्रयुक्त होनेवाला आदरसूचक शब्द। उन्होंने। उ० रुचिर रूप-आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो। (वि० ६२) उनकी–अन्य पुरुष 'वह' के रूप 'उस' के बहुवचन या आदर सूचकरूप 'उन' का संबंध कारक की विभक्ति 'की' के साथ का संयुक्त रूप। उ० उनकी कहनि नीकी, रहनि लपन सी की। (गी०२।३१) उनहिं–उनको।

उनए–दे० 'उनये'।

उनचास–(सं० एकोनपंचाशत)–चालिस और नव की संख्या। एक कम पचास। उ० हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास। (मा० ५।२५) उनचास पवन–सिद्धांत शिरोमणि में आवह, प्रवह, उद्वह आदि ८ प्रकार के पवनों का उल्लेख है। कहीं कहीं पवन रुद्र के पुत्र माने गये हैं और इनकी संख्या १८० मानी गई है। पुराणों में पवन कश्यप और दिति के पुत्र माने गये हैं। इनके वैमात्रिक भाई इंद्र ने गर्भ काटकर एक से उनचास टुकड़े कर डाले थे। ये ही उनचास पवन हुए।

उनमाय–(सं० उन्मत्त)–बेसुध, मस्त। उ० ऋषिवर तहँ छंद बास, गावत कलकंठ हास, कीर्तन उन्माय काय क्रोधकंदिनी। (गी० २।४३)

उनमेखु–(सं० उन्मेष)-१. खुलना, आँखों का खुलना, २. खिलना, विकास, ३. थोड़ा प्रकाश। उ० भ्रमर ह्वै रबि किरनि ल्याए करन जनु उनमेखु। (गी० ७।६)

उनये–(सं० उन्नमन)–१. झुके, लटके, २. छाए, घिरे। उ० २. गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के। (क० ६।३४) उनयेउ–उमड़ा, घिरा।

उनरत–(सं० उन्नरण)–उठता हुआ, चढ़ता हुआ। उ० उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो। (रा० ५)

उनवनि–(सं० उन्नमन)–झुकती हुई, आती हुई, आरंभ होती हुई। उ० लाज गाज उनवनि कुचाल कलि परी बजाइ कहूँ कहुँ गाजी। (कृ० ६१)

उनहास–(सं० अनुसार)-समान, सदृश।

उनींदे–नींद भरे, ऊँघते हुए। उ० आजु उनींदे आए मुरारी। (कृ० २२)

उनीद–(सं० उन्निद्र)–अर्द्ध निद्रा, ऊँघ। उ० लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ। (मा० १।३५५)

उनीदे–नींद भरे, निद्रायुक्त। उ० सिय रघुबर के भए उनीदे नैन। (ब० १८)

उन्नत–(सं०)–१. ऊँचा, ऊपर उठा हुआ, २. बढ़ा हुआ, समृद्ध, ३. श्रेष्ठ, महत्। उ० १. अधर अरुन उन्नत नासा। (वि० ६३)

उन्नमित–(सं०)– ऊपर उठा हुआ, उत्तेजित।

उन्मत्त–(सं०)–१. मतवाला, मदांध, २. पागल, बावला।

उन्मना–(सं० उन्मनस्)–चिंतित, व्याकुल, चंचल।

उन्माद–(सं०)–पागलपन, बावलापन।

उन्मेष–(सं०)–१. खुलना, आँख का खुलना, २. खिलना, ३ प्रकाश, थोड़ी रोशनी।

उन्ह–उन, 'वह' का विभक्ति लगाने के लिए बना हुआ अवधी रूप। उ० साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। (मा० १।६७।२) उन्हहिं–उन्हें, उनको। उ० तस फलु उन्हहि देउँ करि साका। (मा० २।३३।४)

उपंग–(सं० उपांग)–एक बाजा, नसतरंग। उ० पनवानक निर्झर अलि उपंग। (गी० २।४६)

उप–(सं०)–एक उपसर्ग। जिन शब्दों के पूर्व लगता है, उनमें समीपता, सामर्थ्य, गौणता तथा न्यूनता आदि अर्थों की विशेषता कर देता है।

उपकार–(सं०)–भलाई, नेकी, हित। उ० पर उपकार बचन मन काया। (मा० ७।१२१।७)

उपकारा–दे० 'उपकार'। उ० श्रुति कह, परम धरम उपकारा। (मा० १।८४।१)

उपकारिनी–(सं० उपकारिणी)–उपकार करनेवाली, भलाई करनेवाली। उपकारी–(सं० उपकारिन्)–उपकार या भलाई करनेवाला। उ० उपकारी की संपति जैसी। (मा० ४।१५।३)

उपखान–(सं० उपाख्यान)–१. पुरानी कथा, पुराना वृत्तांत, २. कथा के अंतर्गत कोई कथा, ३. वृत्तांत, हाल। उ० १. साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान। (दो० ५५४) उपखानो–उपखान भी, कहानी भी। उ० अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग। (क०७।१०७)

उपखानु–दे०'उपखानु'। उ० १. संगति न जाइ पाछिले को उपखानु है। (क० ७।६४)

उपचार–(सं०)–१. व्यवहार, प्रयोग, २. दवा, इलाज, ३. सेवा, ४. धर्म के विविध अनुष्ठान, ५. पूजन के आवाहन, आचमन, स्नान आदि सोलह अंग, ६. उपाय, ७. घूस, रिशवत, ८. छेड़छाड़। उ० २. कियो बैदराज उपचार। (गी० ६।६) ६. तब लग सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार। (मा० २।१०७) ८. भरत हमहि उपचार न थोरा। (मा० २।२२६।४)

उपचारु–दे० 'उपचार'।

उपज–(सं०)–१. उत्पत्ति, पैदावार, २. मन में आई हुई नई बात, ३. मनगढ़त बात, ४. उत्पन्न होता था। उ० ४. तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा। (मा० १।१६२।३) उपजइ–पैदा हो, उत्पन्न हो। उपजत–उत्पन्न होते हैं, पैदा होते हैं। उ० निमिष निमिष उपजत सुख नए। (मा० ७।८।५) उपजहिं–उपजते हैं, पैदा होते हैं। उ० उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं। (मा० १।११।२) उपजा–उत्पन्न हुआ। उ० उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा। (मा०

१।४०।१) उपजि– उत्पन्न हो । उ० उपजि परी ममता मन मोरें ।(मा० १।१६४।२) उपजिहि–उत्पन्न होगी । उ० राम भगति उपजिहि उर तोरें। (मा० ७।१०१।५) उपजिहु–पैदा हुई हो । उ० तीयरतन तुम उपजिहु भव-रतनागर । (पा० ४१) उपजी–पैदा हुई । उ० प्रेम सरीर प्रपंच-रुज, उपजी अधिक उपाधि। (दो० २४२) उपजे–पैदा हुए। उ० उपजे जदपि पुलस्त्य कुल। (मा० १।१७६) उपजेउ–उत्पन्न हो गया, पैदा हो गया । उ० राम चरन उपजेउ नव नेहा। (मा० ७।१२१।४) उपजेहु–पैदा हुआ । उ० उपजेहु बंस अनल कुल घालक। (मा० ६।२१।३) उपजै–पैदा हो, उत्पन्न हो । उ० एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल। (मा० १।२४७)

उपजाए–पैदा किए, उत्पन्न किए। उ० भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। (मा० १।६।२) उपजाया–पैदा किया, उत्पन्न किया। उ० आदि सक्ति जेहिं जग उपजाया। (मा० १।१५२।२) उपजावसि–पैदा कर ।उ० अब जनि रिस उपजावसि मोही। (मा० ६।३१।३) उपजावहिं–उत्पन्न करते हैं। उ० जय जय धुनि करि भय उपजावहिं। (मा० ६।६३।४) उपजावा–पैदा कर रहा है। उ० प्रियाहीन मोहि भय उपजावा। (मा० ३।३७।५) उपजावै–१. पैदा करता है, २. पैदा करे। उ० १. निज भ्रम तें रबिकर-संभव सागर अति भय उपजावै। (वि० १२२)

उपजायक–पैदा करनेवाला । उ० यह दूसन बिधि तोहिं होत अब रामचरन-बियोग-उपजायक। (गी० २।३)

उपदेश–(सं०)–१. शिक्षा, सीख, नसीहत, २. गुरु-मंत्र, दीक्षा।

उपदेस–दे० 'उपदेश'। उ० १. पर उपदेस कुसल बहुतेरे। (मा० ६।७८।१)

उपदेसत–उपदेश करते हैं, शिक्षा देते हैं। उ० कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई। (क० ७।७४) उपदेसहिं–उपदेश देते थे, उपदेश देते हैं। उ० कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। (मा० १।७६।१) उपदेसहीं–उपदेश देते हैं, उपदेश करते हैं। उपदेसिअ–उपदेश करना चाहिए। उ० धरम नीति उपदेसिअ ताही। (मा० २।७२।४) उपदेसिन्ह–दे० 'उपदेसेन्हि'। उपदेसिन्हि–दे० 'उपदेसेन्हि'। उपदेसिबे–उपदेश देने, शिक्षा देने। उ० तजहिं तुलसी समुझि यह उपदेसिबे की बानि। (कृ० ५२) उपदेसिबो–उपदेश देना, शिक्षा देना। उ० उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ। (दो० ४८१) उपदेसे–उपदेश किया, समझाया। उ० मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। (मा० २।१६६।४) उपदेसेउ–उपदेश दिया है। उ० सुंदर गौर सुबिप्रवर अस उपदेसेउ मोहि। (मा० १।७२) उपदेसेन्हि–उपदेश किया था, शिक्षा दी। उ० दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। (मा० १।७६।१)

उपदेसा–दे० 'उपदेश'। उ० १. जौ तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा। (मा० १।१७१।२)

उपदेसु–१. दे० 'उपदेश', २. उपदेश दो, उपदेश करो। उ० १. उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरें राम सिय सुख पावहीं। (मा० २।७५। छं०१)

उपदेसू–दे० 'उपदेश'। उ० १. कासीं मुकुति हेतु उपदेसू। (मा० १।१६।२)

उपद्रव–(सं०)–१. उत्पात, उधम, गड़बड़, अत्याचार, २. आकस्मिक बाधा, हलचल। उ० १. करहिं उपद्रव असुर निकाया। (मा० १।१८३।२)

उपधान–(सं०)–१. तकिया, सर के नीचे रखने का गद्दा, २. सहारा, ३. प्रेम, ४. विशेषता। उ० १. बिबिध बसन उपधान तुराईं।(मा० २।११।१)

उपधि–(सं०)–१. समीप, निकट, २. जालसाज़ी, बेईमानी, ३. भय, धमकी, ४. कारण।

उपनयन–(सं०)–यज्ञोपवीत संस्कार, व्रतबंध, जनेऊ।

उपनिषद–(सं० उपनिषद्)–१. पास बैठना, २. ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए गुरु के पास बैठना, ३. वेद की शाखाओं के ब्राह्मणों के अंतिम भाग, जिनमें आत्मा परमात्मा आदि का निरूपण है। यों तो इनकी संख्या २०० से ऊपर कही जाती है पर प्रसिद्ध १०८ हैं, उनमें भी प्रधान १० हैं। उ० ३. संत पुरान उपनिषद गावा। (मा० १।४६।१)

उपपातक–(सं०)–छोटा पाप। मनु के अनुसार परस्त्री-गमन, गोबध आदि उपपातक हैं। उ० जे पातक उपपातक अहहीं। (मा० २।१६७।४)

उपबन–(सं० उपवन)–१. बाग, बगीचा, २. छोटे-छोटे जंगल। उ० १. बन बाग उपबन बाटिका सरकूप बापीं सोहहीं। (मा० ५।३। छं०२)

उपबरहन–(सं० उपबर्ह)–उपधानों, तकियों, 'उपबरह' का बहुबचन। उ० उपबरहन बर बरनि न जाहीं। (मा० १।३५६।२)

उपबासा–(सं० उपवास)–भोजन छोड़ देना, वह व्रत जिसमें भोजन नहीं किया जाता। उ० किए कठिन कछु दिन उपबासा। (मा० १।७४।३)

उपबीत–(सं० उपवीत)–१. यज्ञोपवीत या जनेऊ संस्कार, २. ऊनेऊ, यज्ञसूत्र। उ० १. करनबेध उपबीत बिआहा। (मा० २।१०।३)

उपमा–(सं०)–१. तुलना, मिलान, पटतर, सादृश्य, २. एक अर्थालंकार जिसमें दो वस्तुओं में भेद रहते हुए भी उनका समान धर्म बतलाया जाता है। उ० तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिए उपमा को समाउ न आयो। (क० ६।५४)

उपमाई–सादृश्यता, समानता, बराबरी। उ० मृदुलचरन सुभ चिह्न पदज नख अति अद्भुत उपमाई। (वि० ६२)

उपमान–(सं०)–१. वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय, २. उपमा, पटतर।

उपमेय–(सं०)–उपमा के योग्य, जिसकी उपमा दी जाय।

उपयो–(सं० उपज)–उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ। उ० सुनि हरि हिय गरब गूढ़ उपयो है। (गी० ६।११)

उपयोगी–(सं० उपयोगिन्)–काम देनेवाला, प्रयोजनीय, लाभकारी।

उपर–(सं० उपरि)–ऊँचाई पर, ऊपर, ऊँचे स्थान में, चोटी पर। उ० लंका सिखर उपर आगारा। (मा० ६।१०।४)

उपरना–ऊपर से ओढ़ने का दुपट्टा, चादर। उ० पिअर उपरना काखा सोती। (मा० १।३२७।४)

उपरांत–(सं०)–बाद, अनन्तर।

उपरागा–(सं० उपराग)–१. किसी वस्तु पर पास की वस्तु का आभास पड़ना, ग्रहण। २. व्यसन, ३. निन्दा। उ० भयऊ परब बिनु रबि उपरागा। (मा० ६।१०२।५)

उपराजा–(सं० उपार्जन)–पैदा किया, उत्पन्न किया। उ० अग जगमय जग मम उपराजा। (मा० ७।६०।३)

उपराम–(सं०)–१. त्याग, विराग, २. आराम, विश्राम।

उपरि–(सं०)–ऊपर। उ० सैलोपरि सर सुंदर सोहा। (मा० ७।५६।५)

उपरीउपरा–१. एक ही वस्तु के लिए कई आदमियों का उद्योग, चढ़ाउपरी, उपराचढ़ी, २. एक दूसरे से बढ़ जाने की इच्छा। उ० २. रन मारि मची उपरीउपरा, भले बीर रघुप्पति रावन के। (क० ६।३४)

उपरोहित–(सं० पुरोहित)–कर्मकांड करनेवाला, कृत्य करानेवाला ब्राह्मण। वह ब्राह्मण जिसके यजमान हों। उ० समय जानि उपरोहित आवा। (मा० १।१७२।४) उपरोहितहि–उपरोहित को, पुरोहित को। उ० उपरोहितहि देख जब राजा। (मा० १।१७२।३)

उपरोहित्य–पुरोहित का, पुरोहिती। उ० उपरोहित्य कर्म अति मंदा। (मा० ७।४८।३)

उपल–(सं०)–१. पत्थर, २. ओला, ३. रत्न, ४. मेघ, बादल, ५. बालू, ६. चीनी। उ० २. जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें। (मा० १।११६।२)

उपवन–(सं०)–बाग, बगीचा, कुंज, फुलवारी।

उपवास–(सं०)–१. भोजन का छूटना, फ़ाक़ा, २. वह व्रत जिसमें भोजन छोड़ दिया जाता है।

उपवियो–(सं० उप + यमन)–ऊपर आया, उदय हुआ। उ० देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है। (गी०१।१०)

उपवीत–(सं०)–१. जनेऊ, यज्ञसूत्र, २. उपनयन संस्कार। उ० २. उपवीत ब्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं। (जा० २१६)

उपसम–(सं० उपशम)–शान्ति, निग्रह, निवृत्ति। उ० चितवत भाजन करि लियो उपसम समता को। (वि० १५२)

उपस्थित–(सं०)–वर्तमान, हाज़िर, मौजूद। उ० सपने व्याधि बिबिध बाधा भइ, मृत्युउपस्थित आई। (वि० १२०)

उपहार–(सं०)–भेंट, नज़र, सौगात। उ० दधि चिउरा उपहार अपारा। (मा० १।३०५।३)

उपहास–(सं०)–१. हँसी, ठट्ठा, २. निंदा। उ० २. पैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास। (मा० १।८)

उपहासी–दे० 'उपहास'। उ० १. मम उर सो बासी यह उपहासी, सुनत धीर मति थिर न रहै। (मा० १।१९२।छं०३)

उपहासू–दे० 'उपहास'। उ० २. रहे प्रान सहि जग उपहासू। (मा० २।१७३।३)

उपही–(सं० उपरि)–अपरिचित व्यक्ति, अजनबी, परदेशी। उ० प्रानहुँ तें प्यारे प्रियतम उपही। (गी० २।३८)

उपाइ–(सं० उपाय)–युक्ति, साधन, तदबीर। उ० तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ। (मा० १।५६)

उपाई–दे० 'उपाइ'। उ० मोर कहा सुनि करहु उपाई। (मा० १।८३।१)

उपाउ–दे० 'उपाइ'। उ० रूँधहुँ करि उपाउ बर बारी। (मा० २।१७।४)

उपाऊ–दे० 'उपाइ'। उ० भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। (मा० २।२१।४)

उपाएँ–उपाय का बहुवचन, युक्तियाँ। उ० सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ। (मा० १।११।३) उपाए–दे० 'उपाया (२)' उ० जे बिरंचि निरलेप उपाए। (मा० २।३१७। ४)

उपाटी–(सं० उत्पाटन)–उखाड़ कर। उ० लीन्ह एक तेहिं सैल उपाटी। (मा० ६।७०।५)

उपाधि–(सं०)–१. और वस्तु को और बतलाने का छल, कपट, २. उपद्रव, उत्पात, ३. वह जिसके संयोग से कोई वस्तु और की और दिखाई दे। ४. प्रतिष्ठासूचक पद, ख़िताब, ५ कर्तव्य का विचार, धर्मचिंता।

उपाधी–दे० 'उपाधि'। उ० २. तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी। (मा० ७।११८।५)

उपाय–(सं०)–१. युक्ति, तरीक़ा, साधन, २. निकट आना, पास पहुँचना। उ० १. जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही। (मा० २।५०। छं०१) उपायन–उपायों, उपाय का बहुवचन।

उपाया (१)–दे० 'उपाय'।

उपाया (२)–(सं० उपज)–उपजाया, पैदा किया। उ० अखिल बिस्व यह मोर उपाया। (मा० ७।८७।४)

उपाये–दे० 'उपाए'।

उपारउँ–(सं० उत्पाटन)–उखाड़ूँ, उखाड़ फेंकूँ। उपारहिं–उपारते हैं, उखाड़ते हैं। उ० उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। (मा० ६।८१।३) उपारा–उखाड़ा। उ० महासैल एक तुरत उपारा। (म० ६।५१।१) उपारि–उखाड़ कर। उ० मारि कै पछारे कै उपारि भुजदंड चंड। (क० ६।४८) उपारिउँ–उखाड़ लूँ। उ० जौं न उपारिउँ तव दस जीहा। (मा० ६।३४।४) उपारी–उखाड़, उत्पाट, उपार। उ० मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी। (मा०६।३४।७) उपारू–उखाड़ लो। उ० सीस तोरि गहि भुजा उपारू। (मा० ६।५३।३) उपारे–उखाड़ा, उखाड़ डाला। उ० खाएसि फल अरु बिटप उपारे। (मा० ५।१८।२)

उपालंभ–(सं०)–१. उलाहना, २ निन्दा, शिकायत।

उपास–(सं० उपवास)–दे० 'उपवास'। उ० १. तीसरे उपास बनबास सिंधुपास सो समाज महाराज जू को एक दिन दान भो। (क० ५।३२)

उपासक–(सं०) पूजा करनेवाला, भक्त, सेवक। उ० रघुपति चरन उपासक जेते। (मा० १।१८।२)

उपासन–(सं०)–१.सेवा करना, २. पूजा करना, ३. उपस्थित रहना। उ० २.सगुन उपासन कहहु मुनीसा। (मा० ७।१११।४)

उपासना–(सं०) उपासन, सेव करना, पूजा करना, आराधना। उ० दूसरो भरोसो नाहिं बासना उपासना को। (वि० ७५)

उपासा–दे० 'उपास'। उ० २. सम दम संजम नियम उपासा। (मा० २।३२५।२)

उपेक्षणीय–(सं०)–१. त्यागने योग्य, २. घृणा के योग्य।

उपेच्छनीय–दे० 'उपेक्षणीय'। उ० त्यागब, गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं। (वि०१२४)

उप्पम–(सं० उपमा)–दे० 'उपमा'। उ० कीर के कागर ज्यौं नृपचीर बिभूषन उप्पम अंगनि पाई। (क०२।१)
उफनात–(सं०)–उबलता है, उठता है, उफनता है। उ० आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ। (गी०७)
उबटि–(सं० उद्वर्तन)–उबट कर, उबटन लगाकर। उ० भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। (मा० १।३३६।२)
उबटौं–उबटन करूँ। उ० उबटौं, न्हाहु, गुहौं चोटिया। (कृ० १३)
उबर–(सं० उद्वारण)–उद्धार पा जाय, बच जाय, मुक्त हो जाय। उ० तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी। (मा० ३।३८।६) उबरन–उबरने, उद्धार, मुक्ति। उ० इन्हके लिए खेलिबो छाँड्यौ तऊ न उबरन पावहिं। (कृ० ४) उबरसि–बचेगा, शेष रहेगा। उ० राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस। (मा० ५।५६ क) उबरा–बचा, शेष रहा। उ० उबरा सो जनवासेहिं आवा। (मा० १।३२६।४) उबरिहिं–बचेंगे। उ० ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान। (मा० ४।६) उबरी–बची, शेष। उ० उबरी जूठनि खाउँगो। (गी० ५।३०) उबरे–बचे रहे। उ० जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ। (स० १।८५) उबर्‌यो–दे० 'उबरा'। उ० देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबर्‌यो। (वि० ६१)
उबार–१. बचा, २. बचानेवाला, ३. बचाव। उ० १. स्त्री-कर तम-हर बरन बर तुलसी सरन उबार। (स० २४२) उबारा–बचाया, बचा लिया उद्धार किया। उ० भागेहु नहिं नाथ उबारा। (वि० १२५)
उबीठे–(सं० अव+इष्ट)–उबे, उकताए। उ० यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे। (वि० १६८)
उबैने–(सं० उ+उपानह)–नंगे पैर, बिना जूते का। उ० तब लौं उबैने पायँ फिरत पेटै खलाय। (क० ७।१२५)
उभय–(सं०)–दोनों। उ० दुखप्रद उभय बीच कछु बरना। (मा० १।५।२) उभौ–दोनों, दो। उ० कुंदेंदीवरसुंदरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ। (मा० ४। श्लो० १)
उभै–(सं० उभय)–दोनों। उ० सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे। (क० १।१)
उमँग–दे० 'उमंग'। उ० १. अधिक अधिक अनुराग उमँग उर। (वि० ६५)
उमंग–(सं० मंग्)–१. जोश, मौज, आनंद, उल्लास, २. उभाड़, बाढ़, ३. पूर्णता। उ० १.जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं। (क० २।१४)
उमग–दे० 'उमंग'। उ० २. सो सुभ उमग सुखद सब काहू। (मा० १।४१।३)
उमगत–१. उमड़ पड़ता है, बढ़ जाता है, २. आनंदित या उत्साहित होता है। उ० १. उमगत पेमु मनहुँ चहुँ पासा। (मा० २।२२०।३) उमगहिं–उमड़ रहे हैं। उ० पेखेउ जनमफल भा बियाह उछाह उमगहिं दस दिसा। (पा० १४७) उमगा–उमड़ पड़ा, उमड़ आया। उ० मुनि सनेहमय बचन गुर उर उमगा अनुरागु। (मा० २।२५५) उमगि–उमड़कर, उमड़-उमड़कर। उ० उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई। (मा० २।१।२) उमगी–उमड़ी, उमड़ पड़ी। उ० उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति। (मा० १।३५६) उमगे–उमड़ आए। उ० उमगे भरत बिलोचन बारी। (मा० २।२३८।१) उमगेउ–उमड़ा, उमड़ आया। उ० उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू। (मा० १।३६१।५)
उमरि–(अ० उम्र)–उम्र, अवस्था, वय, आयु। उ० उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए। (क० ७।७६)
उमहिं–दे० 'उमहि'। उमहिं–उमा को। उ० बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा। (मा० १।३०।२) उमहुँ–उमा भी। उ० उमहुँ रमा तें आछे अंग अंग नीके हैं। (गी० २।३०)
उमा–(सं०)–शिव की स्त्री, पार्वती, भवानी। उ० नाम उमा अंबिका भवानी। (मा० १।६७।१)
उमाकंत–(सं०)–शिव, महादेव। उ० देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत। (वि० १४)
उमाकांत–(सं०)–शिव, महादेव।
उमापति–(सं०)–महादेव, शिव।
उमारमन–(सं० उमारमण)–शिव, महादेव। उ० कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन। (मा० १।१। सो० ३)
उमारवन–(सं० उमारमण)–शिव, महादेव। उ० कंदर्पदर्प-दुर्गम-दवन, उमारवन गुनभवन हर। (क० ७।१५०)
उमावर–(सं०)–शिव, महादेव।
उमेस–(सं० उमेश)–शिव, महादेव। उ० सो उमेस मोहि पर अनुकूला। (मा० १।१५।४)
उयउ–(सं० उदय)–उदय हुआ है, उदय होता है। उ० सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा। (मा० ७।७३।२) उयेउ–उगा, उदय हुआ, निकला।
उर–(सं० उरस्)–१. वक्षस्थल, छाती, २. मन, चित्त, दिल, हृदय। उ० २. देखत गरब रहत उर नाहिन। (मा० २।१४।२) उरन्हि–छातियों पर, उरों पर। उ० कुंजरमनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिकामाल। (मा० १।२४३) उरसि–छाती पर, उर पर। उ० यज्ञोपवीत बिचित्र हेम-मय, मुक्तामाल उरसि मोहिं भाई। (गी० १।१०६)
उरग–(सं०)–साँप, जो उर (वक्ष) से गमन करे। उ० उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा। (मा० ५।१५।२) उरग-आराती–(सं० उरग+आराति)–गरुड़। उ० करत बिचार उरगआराती। (मा० ७।५८।३) उरगईस–लक्ष्मण, शेष के अवतार। उ० जनक-सुता दस-जान-सुत उरग-ईस अ-म जौर। (स० २१४) उरगरिपु–गरुड़। उरगरिपु-गामी–उरग के रिपु गरुड़ पर चढ़कर चलनेवाले, विष्णु। उ० तुलसिदास भव व्याल-ग्रसित तव सरन उरग-रिपु-गामी। (वि० ११७)
उरगा–दे० 'उरग'। उ० चले बान सपच्छ जनु उरगा। (मा० ६।६२।१)
उरगादः–(सं०)–उरग को खानेवाले, गरुड़। उ० संशय सर्प ग्रसन उरगादः। (मा० ३।११।५)
उरगादा–दे० 'उरगादः'। उ० दोउ हरि भगत काग उर-गादा। (मा० ७।५५।३)
उरगाय–(सं० उरुगाय)–१. विष्णु, २. सूर्य, ३. स्तुति, ४. जिसका गान किया जाय। उ० १. दसचारि-पुर-पाल आली उरगाय हैं। (गी० २।२८)
उरगारि–(सं०)–गरुड़ पक्षी, उरग (सर्प) के अरि।

उरगारियानम्—गरुड़ की सवारी पर चलनेवाले, विष्णु। उ० श्री राम उरगारियानम्। (वि० ६१)
उरगारी—दे० 'उरगारि'। उ० लोचन सुफल करउँ उरगारी। (मा० ७।७५।३)
उरमिला—दे० 'उर्मिला'।
उरबि—(सं० उर्वी)—पृथ्वी, ज़मीन।
उरबिज—(सं० उर्वी+ज)—पृथ्वी का जन्मा हुआ। मंगल तारा। मंगल अर्थात् कल्याण। उ० जौ उरबिज चाहसि झटिति तौ करि कटित उपाय। (स० २३८)
उरबी—(स० उर्वी)—पृथ्वी, जमीन। उ० उरबी परि कुलहीन होइ, ऊपर कला प्रधान। (दो० ४३५)
उरवि—(सं० उर्वी)—पृथ्वी, भूमि।
उरविजा—(सं० उर्वीजा)—भूमिसुता, सीता।
उरहनो—(सं० उपालंभ)—शिकायत, उलाहना। उ० भाजन फोरि बोरि कर गोरस देन उरहनो आवहिं। (कृ० ४)
उराउ—(सं० उरस्+आव)—उत्साह, उमंग, हौसला। उ० तुलसी उराउ होत राम को सुभाव सुनि। (क० ७।१५)
उराहनो—दे० 'उरहनो'।
उरिण—दे० 'उरिन'।
उरिन—(सं० उत्+ऋण)—ऋण रहित, ऋणमुक्त। उ० गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे। (मा० १।२७५।४)
उरु (१)—(सं०)—विस्तीर्ण, लंबा चौड़ा, बड़ा।
उरु (२)—(सं० ऊरु)—जंघा, जाँघ। उ० उरु करि-कर करभहि बिलखावति। (गी० ७।१७)
उरुगाय—(सं०)—१. विष्णु, २. सूर्य, ३. स्तुति।
उर्मिला—(सं० ऊर्मिला)—सीता की छोटी बहिन जिनका विवाह लक्ष्मण से हुआ था। उ० बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेहवस, धनी धनु तुलसी से निरधन के। (वि० ३७)
उर्मिलारमण—दे० 'उर्मिलारवन'। उ० उर्मिलारमण, कल्याण मंगल भवन। (वि० ३८)
उर्मिलारमन—दे० 'उर्मिलारवन'।
उर्मिलारवन—(सं० ऊर्मिलारमण)—लक्ष्मण, उर्मिला के पति।
उर्वि—(सं० उर्वी)—पृथ्वी, धरित्री, भूमि। उ० डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बे समुद्र सर। (क० १।११)
उर्विजा—दे० 'उरविजा'। उ० नतोऽहमुर्विजापतिं। (मा० ३।४। श्लो० ११) उर्विजापतिं—सीता पति को, राम को।
उर्विधर—(सं० उर्वीधर)—१. महीधर, शेषनाग, २. पर्वत। उ० १. निगम-आगम-अगम, गुर्वि तव गुणकथन उर्विधर करै सहस जीहा। (वि० १५)
उर्वी—(सं०)—पृथ्वी, भूमि। उ० वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्। (मा० ६। श्लो० १)
उलटउँ—(सं० उल्लोठन)—उलट दूँगा, पलट दूँगा। उ० उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू। (मा० १।२७०।२)
उलटा—औंधा, पलटा हुआ, फेरा हुआ, विपरीत। उ० भयउ सुद्ध करि उलटा जापू। (मा० १।१९।३) उलटी—'उलटा' का स्त्रीलिंग। उ० उलटी रीति प्रीति अपने की तजि प्रभुपद अनुरागिहै। (वि० २२४)
उलटि—१. उलटकर घूम-फिरकर, २. उलटा, औंधा, नीचे का ऊपर और ऊपर का नीचे। उ० २. करइ त उलटि परइ सुरराया। (मा० २।२१८।१)
उलटे—दे० 'उलटा'। उ० बिधि करतब उलटे सब अहहीं। (मा० २।११९।१)
उलटो—दे० 'उलटा'।
उलदैं—(सं० उल्लोठन)—उड़ेलते हैं। उ० बारिधारा उलदैं जलद ज्यों न सावनो। (क० ५।८)
उलीचा—(सं० उलुंचन)—थोड़ा थोड़ा करके जल निकाला, जल फेंका, जल फेंक डाला। उ० मीन जिअन निति बारि उलीचा। (मा० २।१६१।४)
उलूक—(सं०)—१. उल्लू नामक चिड़िया, २. इंद्र। उ० १. राग द्वेष उलूक सुखकारी। (मा० ५।४७।२) उलूकहि—उल्लू को, उल्लू का। उ० जथा उलूकहि तम पर नेहा। (मा० ५।४५।४)
उलूखल—(सं०)—१. ओखली, २. खल, खरल।
उल्का—(सं०)—१. प्रकाश, २. लूका, तारे जो आकाश में टूटते दिखाई देते हैं।
उल्लास—(सं०)—प्रसन्नता, हर्ष, हुलास।
उवन—(सं० उद्गमन)—उगना, उदय होना। उ० रघुकुल-रवि अब चाहत उवन। (गी० ५।४८)
उवहिं—उदय हो, निकलें। उ० राकापति षोड़स उवहिं। (दो० ३८६)
उषा—(सं०)—१. प्रभात, २. बाणासुर की कन्या जिसका विवाह अनिरुद्ध से हुआ था।
उष्ण—(सं०)—१. गर्म, तात, २. गर्मी की ऋतु।
उष्णकाल—(सं०)—ग्रीष्म ऋतु। उ० उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी तन ऊख। (दो० ३११)
उसन—(सं० उष्ण)—दे० 'उष्ण'। उ० कहु केहु कारन तें भएउ सूर उसन ससि सीत। (स० ५८४)
उसर—(सं० ऊषर)—ऊसर, ऐसी भूमि जहाँ रेह अधिक हो और कुछ न पैदा होता हो।
उसास—(सं० उत्+श्वास)—लंबी साँस, ऊपर को चढ़ती हुई साँस। उ० सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ। (मा० २।३०)
उसासा—दे० 'उसास'। उ० जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। (मा० २।३२०।३)
उसासू—दे० 'उसास'। उ० उतरु देइ न लेइ उसासू। (मा० २।१३।२)
उसीले—(अर० वसीला)—१. आश्रय, सहायता, २. संबंध, ३. ज़रीया, मार्ग, द्वार।
उहाँ—(सं० सः)—वहाँ, उस जगह। उ० इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। (मा० १।२०१।४)
उहार—(सं० अवधार)—ओहार, परदा। शिविका रथ या पालकी के ऊपर पड़ा परदा। उ० नारि उहार उघारि दुलहिनिन्ह देखहिं। (जा० २११)

ऊ

ऊँच–(सं० उच्च)-ऊँचा, ऊपर उठा हुआ, उन्नत। उ० दानव देव ऊँच अरु नीचू। (मा० १।६।३) ऊँचि–ऊँची, बड़ी, ऊपर उठी। उ० मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी। (मा० १।८।४) ऊँची–१. उन्नत, नीची का उलटा, २. भली। उ० १. सीलसिंधु! तोसों ऊँची नीचियौ कहत सोभा। (वि० २५७) मु० ऊँची नीचियौ–भली बुरी भी, ऊँची और नीची भी। उ० दे० 'ऊँची'। ऊँचैं–ऊपर, ऊर्ध्व। उ० तब केवट ऊँचैं चढ़ि धाई। (मा० २।२३७।१) ऊँचे–उपर, ऊर्ध्व। उ० ऊँचे नीचे कहुँ मिलै हरि-पद परम पियूख। (स० ५२)

ऊँट–(सं० उष्ट्र)-एक रेगिस्तानी जानवर जिसकी गर्दन लंबी होती है, करहा। उ० ढेक महोख ऊँट बिसराते। (मा० ३।३८।३)

ऊ–(?) १. भी, २. वह। उ० १. तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागरमनि नंदललाऊ। (कृ० १२)

ऊक–(सं० उल्का)–१. टूटता तारा, लुक, उल्का, २. जलन, ताप, तपन। उ० १. ऊकपात, दिकदाह दिन, फेकरहिं स्वान सियार। (प्र० ५।६।३)

ऊख (१)–(सं० उक्षु)–ईख, गन्ना। उ० अयमय खाँड़ न ऊखमय, अजहुँ न बूझ अबूझ। (मा० १।२७५)

ऊख (२)–(सं० उष्ण)-तपा हुआ, जला। उ० उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख। (दो० ३११)

ऊखल–(सं० उलूखल)-ओखली, पत्थर या काठ का बना एक गहरा बरतन जिसमें मूसल से अन्नादि कूटते हैं।

ऊगुन–उ से आरंभ होनेवाले तीन नक्षत्र, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, तथा उत्तरा भाद्रपद। उ० ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ सू गुनु साथ। (दो० ४५७)

ऊतर–(सं० उत्तर)–जवाब, उत्तर। उ० बूझिये कहा रजाइ पाइ नय धरम सहित ऊतर दए। (गी० ५।३२)

ऊतरु–दे० 'ऊतर'। उ० ऊतरु देइ न लेइ उसासू। (मा० २।१३।३)

ऊतरे–(सं० अवतरण)–उतरे हुए, जो पहनकर उतार दिए जायँ। उ० तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं। (गी० ५।३०)

ऊधो–(सं० उद्धव)– दे० 'उद्धव'। उ० ऊधो या ब्रज की दसा बिचारो। (कृ० ३३)

ऊना–(सं० ऊन)–१. कम, थोड़ा, छोटा, २. तुच्छ, नाचीज़। उ० १. जनि जननी मानहु जियँ ऊना। (मा० ५।१४।५)

ऊपजै–दे० 'उपजै'। उ० दुख ते दुख नहिं ऊपजै। (वै० ३०)

ऊपर–(सं० उपरि)–पर, ऊँचाई पर, ऊँचे स्थान में। उ० गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। (मा० ४।२८।६)

ऊपरि–दे० 'ऊपर'।

ऊब–(सं० उद्वेजन)–उद्वेग, घबराहट, कुछ काल तक निरंतर एक ही अवस्था में रहने से चित्त की व्याकुलता। उ० सबकी सहत उर अंतर न ऊब है। (क० ७।१०८)

ऊबरै–(सं० उद्वारण)–बचे, बच सके। उ० कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन। (क० ७।११७)

ऊमरि–(सं० उदुंबर)-गूलर, एक वृक्ष जो काफ़ी बड़ा होता है। उ० ऊमरि तरु बिसाल तव माया। (मा० ३।१३।३)

ऊरधरेख–(सं० ऊर्द्ध्वरेखा)–१. पुराणानुसार अवतारों के ४८ चरण-चिह्नों में से एक। २. शुभसूचक हस्त रेखा। उ० १. सकल सुचिन्ह सुजन सुखदायक ऊरधरेख बिसेष बिराजति। (गी० ७।१७)

ऊरू–(सं० उरु)–जंघा, जानु, रान। उ० चरन-सरोज, चारु जंघा जानु ऊरू कटि। (गी० १।७१)

ऊर्द्ध–(सं० ऊर्द्ध्व)–१. ऊपर, ऊपर की ओर, २. ऊँचा, खड़ा। उ० १. अध ऊर्द्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर है। (क० ५।१७)

ऊर्ध्वरेता–(सं० ऊर्द्ध्वरेता)–जो अपने वीर्य को गिरने न दे। ब्रह्मचारी। उ० जयति विहगेस-बल-बुद्धि-बेगाति-मद-मथन, ऊर्ध्वरेता। (वि० २६)

ऊर्मि–(सं०)–१. लहर, तरंग, २. दुःख, पीड़ा।

ऊषर–दे० 'ऊसर'। उ० ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। (मा० ४।१५।५)

ऊसर–(सं० ऊषर)–वह भूमि जिसमें रेह अधिक होती है और कुछ नहीं पैदा होता। उ० राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो। (वि० २६४) ऊसरो–ऊसर भी। उ० तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो। (वि० १८०)

ऋ

ऋक्ष–(सं०)–१. भालू, २. तारा, नक्षत्र, ३. रैवतक पर्वत का एक भाग।

ऋक्षपति–(सं०) १. भालुओं का सरदार जांबवान।

ऋगु–(सं० ऋक्)–प्रथमवेद, ऋग्वेद। उ० पढ़िबो पर्‍यो न छठी छ मत ऋगु, जजुर अथर्वन साम को। (वि० १५५)

ऋचा–(सं०)–१. वेद मंत्र जो पद्य में हो, २. स्तोत्र, स्तुति। उ० १. लगे पढ़न रच्छा ऋचा ऋषिराज बिराजे। (गी० १।६)

ऋच्छ–दे० 'ऋक्ष'। उ० हरषित सकल ऋच्छ अरु बनचर। (गी० ६।१६)

ऋच्छपति–दे० 'ऋक्षपति'।

ऋजु–(सं०)–सीधा, सरल।

ऋण–(सं०)–क़र्ज़, उधार।

ऋणिया–दे० 'ऋनिया'।

ऋणी–(सं० ऋणिन्)–कर्ज़दार, ऋण लेनेवाला।

ऋतु–(सं०)–१. प्राकृतिक अवस्थाओं के अनुसार वर्ष के दो-दो महीनों के छः विभाग। वसंत (चैत्र, वैशाख), ग्रीष्म (जेठ, आसाढ़), वर्षा (सावन, भादों), शरद (क्वार, कातिक), हेमंत (अगहन, पूस) और शिशिर (माघ, फागुन)। २. रजोदर्शन के बाद का समय जब स्त्रियाँ गर्भ-धारण के योग्य रहती हैं। उ० १. मनो देखन तुमहिं आई ऋतु बसंत। (वि० १४) ऋतुन्ह–ऋतुएँ, ऋतु का बहुवचन। उ० सकल ऋतुन्ह सुखदायक तामहँ अधिक बसंत। (गी० ७।२१)

ऋतुनाथ–(सं०)–वसंत ऋतु, ऋतुराज। उ० मानहुँ रति ऋतुनाथ सहित मुनि-बेष बनाए है मैन। (गी० २।२४)

ऋतुपति–(सं०)–वसंत ऋतु, ऋतुराज। उ० जनु रतिपति ऋतुपति कोसलपुर बिहरत सहित समाज। (गी० १।२)

ऋतुराज–बसंत ऋतु, सर्वोत्तम ऋतु।

ऋधि–(सं० ऋद्धि)–समृद्धि, बढ़ती। उ० ऋधि, सिधि, बिधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति। (गी० २।८२)

ऋन–दे० 'ऋण'। उ० पाही खेती, लगनवट ऋन कुब्याज, मग-खेत। (दो० ४७८)

ऋनियाँ–कर्ज़दार, रुपया या ऋण लेनेवाला। उ० ऋनियाँ कहाये हौं बिकाने ताके हाथ जू। (क० ७।१६)

ऋषय–ऋषि-समूह, मुनिगण, मुनि लोग। उ० ऋषय सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं। (वि० ६)

ऋषि–(सं०)–मुनि, तपस्वी, संसार से विरक्त पुरुष। उ० सुरुष ऋषि सुख सुतनि को, सिय सुखद सकल सहाइ। (गी० ७।३४) विशेष–ऋषि सात प्रकार के माने गए हैं–महर्षि, परमर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, श्रुतर्षि, राजर्षि और कांडर्षि। व्यास, भेल, नारद, वशिष्ट, सुश्रुत, ऋतपर्ण या जनक, तथा जैमिनि क्रमशः सातों के लिए उदाहरण लिए जा सकते हैं। सप्तर्षि–सात ऋषि। कुछ लोग कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, वशिष्ट, यमदग्नि को तथा कुछ लोग मरीचि, अत्रि, आंगिरस्, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ट को सप्तर्षि मानते हैं। ऋषिनारि–गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या। दे० 'अहल्या'। उ० ऋषिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही। (क० ७।१०)

ऋषि-रवनी–(सं० ऋषि-रमणी)–दे० 'ऋषिनारि'। उ० परत पद-पंकज ऋषि-रवनी। (गी० १।५६) ऋषिराज–१. बहुत बड़ा ऋषि, २. वशिष्ठ मुनि। उ० २. दे० 'ऋचा'।

ऋष्यमूक–(सं०)–मद्रास के अनागुंडी स्थान से आठ मील दूर तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित एक पर्वत।

ए

ए–(सं० एष)–१. यह, ये, २. इस। उ० १. जौं ए मुनि पटधर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार। (मा० २।११६) २. भूरि भाग हम धन्य, आलि ए दिन, एरवन। (गी० १।७३) एइ–ये ही। उ० बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं। (मा० १।३११। छं०१) एई–ये ही, यही। उ० एई बातैं कहत गवन कियो घर को। (गी० १।६७) एउ–ये भी, यह भी। उ० एउ देखि हैं पिनाकु नेकु जेहि नृपति लाज-ज्वर जारे। (गी० १।६६)

एकअंग–१. एकांगी, एकतरफ़ा, एक ओर का, २. अनन्य, पूर्ण योग। उ० एकअंग जो सनेहता, निसि दिन चातक-नेह। (दो० ३१३)

एकं–(सं०) एक। उ० अज व्यापकमेकमनादि सदा। (मा० ६।१११। छं०४) एक–(सं०)–१. सबसे छोटी पूर्ण संख्या, १, केवल एक, गिनती की पहली संख्या, २. अद्वितीय, बेजोड़, ३. अकेला, एकाकी, ४. कोई, अनिश्चित। उ० १. मिलत एक दुख दारुन देहीं। (मा० १।५।२) एकइ–एक ही, केवल एक। उ० एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। (मा० ३।५।५) एकउ–एक भी। उ० एकउ जुगुति न मनठ हरानी। (मा० २।२५३।४) एकन–एक ने, किसी ने। एकन्ह–एक को, किसी को। एकहिं–दे० 'एकहि'। उ० अति बल जल बरषत दोउ लोचन दिन अरु रैन रहत एकहिं तक। (गी० ५।१६) एकहि–एक ही। उ० भूप सहस दस एकहि बारा। (मा० १।२५१।१) एकहुँ–एक भी। उ० प्रभु के एकहुँ काज न आयउँ। (मा० ६।६०।२) एकै–१. एक ही, २. एक को, ३. एक है। उ० १. तुलसी तोहिं बिसेष बूझिए एक प्रतीति, प्रीति, एकै बलु। (वि० २४) एकौ–एक भी। उ० गये दुख दोष देखि पद-पंकज अब न साध एकौ रही। (गी० ५।३१)

एकंत–दे० 'एकंता'।

एकंता–(सं० एकांत)–अलग, एकांत में, एकाकी। उ० सदा रहैं एहि भाँति एकंता। (वै० ४७)

एकठाई–(सं० एकस्थ)–एकत्रित, इकट्ठा, एक जगह।

एकतीस–(सं० एकत्रिंशति)–तीस और एक, बत्तीस में एक कम

एकरस–१. समान, न सुखी न दुखी, एक ढंग का, परिवर्तित न होनेवाला, २. ईश्वर। उ० १. सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं। (मा० ३।३६ख)

एकला–(सं० एकल)–अकेला, एकाकी।

एकांत–(सं०)–१. अलग, पृथक्, अकेला, २. अत्यन्त, नितांत। उ० १. जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि। (मा० १।१६६)

एका–(सं० एक)–दे० 'एक'। उ० १. समिटे सुभट एक तें एका। (मा० १।२६२।२)

एकाकार-(सं०)-मिलकर एक होने की क्रिया, एकमय होना।
एकाकिन्ह-(सं० एकाकिन्)-अकेले रहने वालों, एकाकियों। उ० सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं। (मा० १।७६) एकाकी-(सं० एकाकिन्)-अकेला, तनहा। उ० जानि राम बनबास एकाकी। (मा० २।२२८।२)
एकाग्र-(सं०)-१.चंचलता रहित, स्थिर, चंचलता रहित।
एकादसी-(सं० एकादशी)-प्रत्येक चांद्रमास के शुक्ल और कृष्ण पक्ष की ग्यारहवीं तिथि, या उस दिन रखा जाने वाला व्रत जिसमें लोग फलाहार पर रहते हैं। कभी-कभी इसमें अन्न, फल, जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया जाता, जिसे निर्जला कहते हैं। वर्ष भर में चौबीस एकादशियाँ होती हैं, जिनके उत्पन्ना, प्रबोधिनी तथा भीमसेनी आदि अलग-अलग नाम हैं। उ० एकादसी एक मन बस कै सेवहु जाइ। (वि० २०३)
एकु-दे० 'एक'। उ० १. अब अभिलाषु एकु मन मोरें। (मा० २।३।४)
एकू-दे० 'एक'। उ० १. बिमल बंस यहु अनुचित एकू। (मा० २।१०।४)
एतत्-(सं०)-यह।
एत-(सं० आदित्य)-सूर्य, रवि। उ० एत-बंस बर बरन जुग सेतु जगत सब जान। (स० २६६)
एतनहि-इतना ही।
एतना-(सं० एतावत्)-इतना, इस मात्रा का। उ० एतना कहत नीति रस भूला। (मा० २।२२६।३) एतनिअ-इतनी ही, केवल इतनी। उ० जनु एतनिअ बिरंचि करतूती। (मा० २।१।३) एतनेइ-इतना ही। उ० एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। (मा०२।१५७।१) एतनेहि-इतने ही। उ० जासु प्रीति रसु एतनेहि माहीं। (मा० ५।१५।४)
एतनो-(सं० एतावत्)-इतना। उ० एतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु। (ह० २६) एतनोई-इतना ही। उ० राजधरम सरबसु एतनोई। (मा० २।३१६।१)
एतादस-(सं० एतादृश)-इसके समान, ऐसा। उ० ससुरु एतादस अवध निवासू। (मा० २।६८।३)
एती-(सं० इयत्)-इतनी, इस मात्रा की। उ० तुलसी अरि उर आनि एक अब एती गलानि न गलतो। (गी० ५।१३) एते-१. इतने, इस परिमाण के, २. इससे। उ० १. सहि न जात मोपै परिहास एते। (वि० २४१) एतेहु-इतने भी। उ० एतेहु पर करिहहि जे असंका। (मा० १।१२।४)
एतो-इतना। उ० एतो बड़ो अपराध, भो न मन बाँवों। (वि० ७२)
एन-(सं० अयन)-घर, स्थान।
एरंड-(सं०)-रेंड़, रेंड़ी, एक पेड़ जिसके बीज से तेल निकाला जाता है।
एवं-(सं०)-ऐसा ही, इसी प्रकार। उ०एवमस्तु करुनानिधि बोले। (मा० १।१५०।१) एवमस्तु-ऐसा ही हो, यही हो। उ० दे० 'एवं'। एव-(सं०)-१. एक निश्चयार्थक शब्द, ही, २. भी। उ०१. सुए मार सुविचार-हत स्वारथ-साधन एव। (दो० ३४६)
एह-(सं० एषः)-यह। उ० सुनु अजहुँ सिखावन एह। (वि० १६०) एहिं-इसने। उ० पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा। (मा० २।४७।३) एहि-(सं० एषः)-१. इसे, इसको, २. इसी, ३. इसे। उ० १. सदा रामु एहि प्रान समाना। (मा० २।४७।३) एहीं-इसी। उ० लोचन लाहु लेहु छन एहीं। (मा० २।११४।३) एही-इसी। उ० रीझि बूझी सबकी, प्रतीति प्रीति एही द्वार। (वि० २६०)
एहा-दे० 'एह'। उ० एक जनम कर कारन एहा। (मा० १।१२४।२)
एहु-यही। उ० अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु। (मा० २।२०७)
एहूँ-इसी। उ० एहूँ मिस देखौं पद जाई। (मा० १।२०६।४) एहू-यही, यह। उ० तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। (मा० २।२०८।४)

ऐ

ऐ-(सं०)-१. शिव, २. एक संबोधन।
ऐक-(सं० ऐक्य)-१. एक का भाव, २. समता। उ० २. कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। (मा० २।१२०।३)
ऐन (१)-(सं० अयन)-घर, भंडार। उ० बिहसे करुना-ऐन चितइ जानकी लखन तन। (मा० २।१००)
ऐन (२)-(अर०)-१. अरबी, फारसी तथा उर्दू का एक अक्षर (ع) २. ठीक-ठीक, पूरा। उ० १. दे० 'गैन'।
ऐना-दे० 'ऐन (१)'।
ऐनी-दे० 'ऐन (१)'। उ० बड़े भाग मख-भूमि प्रगट भइ सीय सुमंगल-ऐनी। (गी० १।७६)
ऐपन-(सं० लेपन)-एक मांगलिक द्रव्य जो चावल और हल्दी को एक साथ गीला पीसने पर बनता है। पूजादि में इससे थापा लगाते हैं। उ० अपनो ऐपन निजहथा तिय पूजहिं निज भीति। (दो० ४५४)
ऐरापति-(सं० ऐरावत)-इंद्र का हाथी जो पूर्व दिशा का दिग्गज है। समुद्र-मंथन करने पर यह निकला था।
ऐरावत-दे० 'ऐरापति'।
ऐश्वर्य-(सं०)-१. बिभूति, धन, संपत्ति, २. प्रभुत्व, आधिपत्य। उ० १. ज्ञानविज्ञान-बैराग्य ऐश्वर्य निधि। (वि० ६१)
ऐसइ-दे० 'ऐसेइ'।
ऐसा-(सं० ईदृश)-इस प्रकार का, इस ढंग का। उ० साधु अवग्या कर फलु ऐसा। (मा० ५।२६।३) ऐसि-इस प्रकार की, ऐसी। उ० ताहि कि सोहइ ऐसि लड़ाई। (मा०

६।६६।१) ऐसिअ-इसी प्रकार का, ऐसे ही। उ० ऐसिअ प्रश्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ। (मा० ७।५५) ऐसिउ-ऐसी भी, इस प्रकार की भी। उ० ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई। (मा० २।२७।३) ऐसिय-ऐसी ही। उ० ऐसिय हाल भई तोहिं धौं। (क० ६।१२) ऐसी-इस प्रकार की। उ० अघटित-घटन, सुघन-बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहिं आन की। (वि० ३०) ऐसे-इस प्रकार के। उ० ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिन बानर के चरवाहै। (क० ७।५६) ऐसेइ-ऐसा ही, इसी प्रकार। उ० ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी। (मा० १।८१।३) ऐसेउ-ऐसे भी। उ० ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कवि कोविद गावैं। (क० ७।२) ऐसेऊ-ऐसे भी, इस प्रकार के भी। उ० जानकी जीवन जाने बिना जग ऐसेऊ जीव न जीव कहाए। (क० ७।४५) ऐसेहि-इसी प्रकार, ऐसा ही। उ० ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा। (मा० ५।५१।३) ऐसेहिं-दे० 'ऐसेहिं'। ऐसेहु-ऐसे भी, इस प्रकार के भी। उ० जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। (मा० २।४२।१) ऐसेहूँ-ऐसे भी। उ० ऐसेहूँ थल बामता, बड़ि बाम बिधि की बानि। गी० ७।३२)

ऐसो-ऐसा, इस प्रकार का। उ० सोंउ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे। (वि० ७१) ऐसोइ-ऐसा ही, इस प्रकार का ही। उ० मानत नहिं परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बाम को। (वि० १५५)

ऐहउँ-आऊँगा, आ जाऊँगा। उ० ऐउउँ बेगिहिं होउ रजाई। (मा० २।४६।२) ऐहहिं-आवेंगे, आयेंगे। उ० ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता। (मा० २।३१।४) ऐहहु-आवोगे, आवोगी। उ० जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं। (मा० १।५२।१) ऐहै-आवेंगे। उ० काज के कुसल फिरि एहि मग ऐहैं? (गी० २।३७) ऐहै-आवेगा। उ० ऐहै कहा, नाथ आयो ह्याँ, क्यों कहि जाति बनाइ है। (गी० ५।३४) ऐहौ-आओगे। उ० तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ। (गी० २।७६)

ओ

ओंकार (सं०)-१. ओ३म्, एक पवित्र शब्द जो वेदाध्ययन के पूर्व और अंत में कहा जाता है। २. प्रणव, ब्रह्म। उ० १. निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। (मा० ७।१०८। श्लो० २)

ओ-(सं०)-१. ब्रह्मा, विधाता, २. संबोधनसूचक एक शब्द।

ओउ-वे भी, वह भी। ओऊ-वह भी, वे भी। उ० जद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहिं नहिं पूजहिं ओऊ। (वि० ९२)

ओक-(सं०)-१. घर, स्थान, निवास, २. आश्रय, ठिकाना, ३. समूह, ग्रहों या नक्षत्रों का समूह। उ० १. ओक की नींव परी हरिलोक, बिलोकत गंग तरंग तिहारे। (क० ७।१४५) २. ओक दै बिसोक किए लोकपति लोकनाथ। (वि० २४८)

ओघ-(सं०)-१. समूह, ढेर, २. किसी वस्तु का घनत्व, ३. धारा, बहाव। उ० १. जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं। (मा० २।२४१।२)

ओज-(सं०)-१. बल, प्रताप, २. दीप्ति, तेज।

ओझ (१)-(सं० उदर)-पेट की थैली, आँत।

ओझ (२)-(सं० उपाध्याय)-ब्राह्मण, पंडित। उ० तुलसी रामहि परिहरे निपट हानि सुनु ओझ। (दो० ६८)

ओझरी-पेट के भीतर की थैली, पचौनी। उ० ओझरी की झोरी काँधे, आँतानि की सेल्ही बाँधे। (क० ६।५०)

ओट-(सं० उट=तृण)-१. आड़, २. शरण, सहारा। उ० २. नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल। (क० ७।१७) मु० ओट लेत-बहना ढूढ़ते, सहारा लेते।

ओटा-दे० 'ओट'। उ० १. लखेउ न लखन सघन बन ओटा। (मा० २।२३६।१)

ओठ-(सं० ओष्ठ)-होंठ, अधर, लब। उ० दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं। (मा० ६।४१।३)

ओड़न-(सं० ओणन)-रोकने में, वारण करने में। उ० एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। (मा० २।१९१।३) ओड़िअहिं-१. रोंके जाते हैं, २. रोकेंगे। उ० १. ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए। (मा० २।३०६।४) ओड़िअत-ओड़ते हैं, रोकते हैं। उ० पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ। (दो० ३२५) ओड़िये-फैलाइए, पसारिए। उ० तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िये। (क० ७।२५)

ओढ़न-(सं० उपवेष्ठन)-ओढ़ने या शरीर ढकने के लिए कपड़ा। रजाई, दुपट्टा, चादर या ओढ़नी आदि। उ० लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। (मा० ७।४०।१)

ओढ़ाई-ढकी हुई, आच्छादित। उ० हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई। (वि० ६२)

ओढ़िहौं-ओढ़ूँगा, अपना शरीर ढकूँगा। उ० तुलसी पट उतरे ओढ़िहौं। (गी० ५।३०)

ओत (?)-१. आराम, चैन, सुख, २. आलस्य, ३. ताना बाना। उ० होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो। (क० ५।२५)

ओतो-(सं० तावान्)-उतना, उस मात्रा का। उ० क्यों कहि आवत ओतो। (वि० १६१)

ओदन-(सं०)-पका हुआ चावल, भात। उ० भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ। (मा० १।२०३)

ओधे-(सं० आबंधन)-बँध गए, लग गए। उ० निज-निज काज पाइ सिख ओधे। (मा० २।३२३।१)

ओप-(?)-१. दीप्ति, चमक, २. सुन्दरता, ३. यश, ४. प्रताप। उ० ४. खल नर गुन मानै नहीं मेटहिं दाता-ओप। (स० ६२७)

ओर-(सं० अवार)-१. तरफ, दिशा, २. अंत, छोर, ३.

आरम्भ। उ० २. होउ नात यह ओर निबाहू। (मा० २।२४।३)
ओरहने-(सं० उपालंभ)-उलाहना, शिकायत। उ० ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ बेकामहिं। (कृ० ५)
ओरा-दे० 'ओर'। उ० १. मृगी देखि दव जनु चहु ओरा। (मा० २।७३।३)
ओरी-दे० 'ओर'। उ० १. बंस-बखान करैं दोउ ओरी। (गी० १।१०३)
ओरे-(सं० उपल)-ओले, वर्षा में गिरे हुए मेह के जमें पत्थरवत् हिम के गोले। उ० गरहिं गात जिमि आतप ओरे। (मा० २।१४७।४)
ओल-(?)-किसी का अपने किसी प्रिय प्राणी को दूसरे के पास इसलिए रख छोड़ना कि यदि वह प्रतिज्ञा न पूरी करे तो दूसरा उस प्राणी के साथ जो चाहे करे। ज़मानत में किसी व्यक्ति या वस्तु को रखना। उ० बाजे-बाजे राजनि के बेटा-बेटी ओल हैं। (क० ५।२१)
ओषध-दे० 'ओषधि'।
ओषधि-(सं०)-वह बनस्पति या जड़ी-बूटी जो दवा के काम आवे।
ओषधी-(सं०)-दे० 'ओषधि'।
ओषधीश-(सं०)-१.चंद्रमा, २. कपूर।
ओस-(सं० अवश्याय)-शीत, शबनम, हवा में मिली भाप जो रात में सरदी के कारण जमकर जल-बिंदु बनकर जाड़े के दिनों में बाहर की चीजों पर लग जाती है। उ० पंकज कोस ओसकन जैसे। (मा० २।२०४।१)
ओसरिन्ह-(सं० अवसर)-बारी-बारी से। उ० झूलहिं झुलावहिं ओसरिन्ह गावैं सुहो गौंड मलार। (गी०७।१८)
ओहार-(सं०अवधार)-रथ या पालकी के ऊपर का कपड़ा या परदा। उ०सिबिका सुभग ओहार उघारी। (मा० १।३४८।४)
ओहि-(सं० सः)-उसको, उसे।
ओही-१. उससे, २. उसको, ३. उसका। उ० २. सादर पुनि-पुनि पूँछति ओही। (मा० २।१७।१)
ओहू-उस, वह भी। उ० पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू। (मा० ६।६१।३)

औ

औंजि-(सं० आवेजन)-ऊबकर, घबराकर। उ० एक औंजि पानी पीकै कहै 'बनत न आवनो'। (क० ५।१८)
औ (१)-(सं०)-१. शेष, २. पृथ्वी।
औ (२)-(सं० अपर)-और। उ० तुलसी मुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै। (क० २।१८)
औगुण-(सं० अवगुण)-दोष, बुराई।
औगुन-दे० 'औगुण'। उ० निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर। (क० ७।१७४)
औघट-(सं० अव + घट्ट)-कुघट, अटपट, विकट।
औचक-(सं० चक)-अचानक, एकाएक, सहसा।
औचट (१)-(उच्चाटन)-अंडस, संकट, कठिनाई।
औचट (२)-(?)-१. अचानक, अकस्मात, २. भूल से, अनचीते में।
औटत-(सं० आवर्त्तन)-१. औंटने पर, उबालने पर, २. औटता है। उ० १. इंधन अनल लगाइ कलप सत औटत नास न पावै। (वि० ११५) औटि-औटकर, उबालकर।
औढर-(सं० धार)-१. जल्द ढलनेवाला, मनमौजी, २. बिना ध्यान दिये, जल्द। उ० २. भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं। (क० ७।१५९)
औतार-दे० 'अवतार'।
औतेहु-आते, पधारते। उ० जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। (मा० १।२८२।२)
औध-दे० 'अवध'। उ० औध तजी मगबास के रूख ज्यौं। (क० २।१)
औनिप-(सं० अवनिप)-राजा, नृप। उ० औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै। (क० ७।१६४) औनिपन-राजाओं ने, राजा लोगों ने। उ० माति त्रास औनिपन मानौ मौनता गही। (क० १।१६)
और-(सं० अपर)-१. अन्य, भिन्न, दूसरा, २. एक संयोजक शब्द, तथा, ३. अधिक, ज़्यादा। उ० १. और आस बिस्वास भरोसो हरौ जीव जड़ताई। (वि० १०३) औरउ-और भी, इसके अतिरिक्त अन्य भी। उ० औरउ कथा अनेक प्रसंगा। (मा० १।३७।८) औरनि-औरों, दूसरों। उ० औरनि की कहा चली एकै बात भले-भली। (वि० २५१) औरहिं-दे० 'औरहि'। औरहि-दूसरे को, किसी अन्य को। उ० जानकी जीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि। (क० ७।२६) औरहु-और भी, अन्य भी। उ० सीता अरु लछिमन संग लीन्हें औरहु जिते दास आए। (गी० ७।३८) औरे-और से, अन्य से। उ० बनिहै बात उपाइ न औरे। (गी० २।११) औरै-१. और ही, दूसरी ही, २. दूसरे को, किसी अन्य को। उ० १. औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो। (क० ५।१८) औरो-और भी, और भी कुछ। उ० अवधि आजु किधौं औरो दिन ह्वै हैं। (गी० ६।१७)
औरस-(सं०)-अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र, स्मृत्यनुसार १२ प्रकार के पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ।
औरेबैं-(सं० अव + रेव)- टेढ़ी चालें, चाल की बातें। उ० हमहूँ कछुक लखी ही तब की औरेबैं नंदलला की। (कृ० ४३)
औषध-(सं०)-दवा, रोग नाशकद्रव्य। उ० बिनु औषध बिआधि बिधि खोई। (मा० १।१७१।२)

औषधी–दे० 'औषध'। उ० कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन। (मा० ६।५५)

औषधु–दे० 'औषध'। उ० एहि कुरोग कर औषधु नाहीं। (मा० २।२१२।१)

औसर–(सं० अवसर)–समय, मौका। उ० तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि नौ, तीनि, इकीस सबै। (क० १।७)

औसरा–दे० 'औसर'। उ० अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद। (दो० ४३६)

औसान–(सं० अवसान)–अंत, आखीर, समाप्ति।

औसि–(सं० अवश्य)–ज़रूर, निश्चित्।

औसेर–(सं० अवसेरु)–१. खटका, अटकाव, २. देर, विलंब, ३. चिंता।

क

कं–(सं०)–१. पानी, जल, २. मस्तक, ३. कामना, ४. अग्नि, ५. सुख, ६. सोना। उ० १. कारन को कं जीव को खं गुन कह सब कोय। (स० २७७)

कंक–(सं०)–१. एक मांसाहारी पक्षी, सफ़ेद चील, २. बगुला, ३. यमराज, ४. कंस का एक भाई, ५. क्षत्रिय। उ० १. काम कंक बालक कोलाहल करत हैं। (क०६।४६)

कंकण–दे० 'कंकन'।

कंकन–(सं० कंकण)–१. कलाई में पहनने का एक आभूषण, कड़ा, चूड़ा। २. विवाह के समय लोहे की अँगूठी आदि के साथ कलाई में बाँधे जानेवाला धागा। उ० १. कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। (मा० १।२३०।१)

कँगूरन्हि–कंगूरों पर, बुर्जों पर। उ० कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे। (मा० ६।४१।१) कँगूरा–(फा० कुंगरः)–१. शिखर, चोटी, २. कोट, किला या बड़े मकानों की दीवार में थोड़ी थोड़ी दूर पर बने कुछ ऊँचे बुर्ज। उ० २. रचे कँगूरा रंग रंग बर। (मा० ७।२७।२)

कँगाल–दे० 'कंगाल'।

कंगाल–(सं० कंकाल)–१. भुक्खड़, मंगन, २, गरीब, दीन। उ० १. टूकनि को घर-घर डोलत कंगाल बोलि। (ह० २६)

कंचन–(सं० कांचन) सोना, सुवर्ण। उ०। किंकर कंचन कोह काम के। (मा० १।१२।२) कंचनहिं–सोने को। उ० स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं। (वि०१०५)

कंचुक–(सं०)–१. जामा, अचकन, २. चोली, ३. वस्त्र, ४. केंचुल। उ० २. बहु बासना बिबिध कंचुक-भूषन-लोभादि भरयो। (वि० ६१)

कंचुकि–(सं० कंचुकी)–अँगिया, चोली। उ० श्रीफल, कुच, कंचुकि लताजाल। (वि० १४)

कंचुकी–(सं०) दे० 'कंचुकि'।

कंज–(सं०)–१. कमल, पंकज, २. ब्रह्मा, ३. अमृत, ४. सिर के बाल, ५. विष्णु के चरण में मानी जानेवाली एक रेखा। उ० १. बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि। (मा० १।१। सो० ५) कंजनि–कमलों में। उ० कर-कंजनि पहुँची मंजु। (गी० १।१६)

कंजनाभ–कमलनाभ, विष्णु, जिसकी नाभी से कमल उत्पन्न हो। उ० परमकारन, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुन निर्गुन, सकल-दृश्य-द्रष्टा। (वि० ५३)

कंजा–दे० 'कंज'। उ० १. सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। (मा० १।१४८।४)

कंजु–दे० 'कंज'। उ० बंदउँ मुनि पद कंजु, रामायन जेहिं निरमयउ। (मा० १।१४ घ)

कंट–(सं० कंटक)–काँटा।

कंटक–(सं०)–१. काँटा, २. कष्ट देनेवाला, ३. बाधा, विघ्न। उ० १. ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे। (मा० ७।१३। छं० ४)

कंटकित–(सं०)–काँटेदार, कंटकयुक्त। उ० कमल कंटकित सजनी कोमल पाइ। (ब० २६)

कंठ–(सं०)–१. गला, ग्रीवा, गर्दन, २. मुँह, गले के भीतर की भोजन नालिका जिससे होकर अन्न तथा जल आदि पेट में पहुँचता है। ३. स्वर, आवाज़। उ० १ तथा ३. नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर। (मा० २।१३७) कंठ-हँसी–भीतर ही भीतर हँसना, मुस्कराना। उ० आनाकानी कंठहँसी मुँहा-चाह होन लगी। (गी० १।८२) कंठे–(सं०)–कंठ में, गले में। उ० लसद्भाल बालेन्दु कंठे भुजंगा। (मा० ७।१०८। श्लो० ३)

कंठि–कंठवाली। [जैसे कलकंठि = मधुर कंठवाली = कोयल] उ० सुनि कलरव कलकंठि लजानी। (मा० १।२६७।२)

कंठु–दे० 'कंठ'। उ० २. कंठु सूख मुख आव न बानी। (मा० २।३५।१)

कंडु–(सं०)–खुजली, खाज। उ० ममता दाद कंडु इरषाई। (मा० ७।१२१।१७)

कंत–(सं० कांत)–पति, स्वामी, मालिक। उ० कंतराम बिरोध परिहरहू। (मा०६।१४।४) कंता–दे० 'कंत'। उ० जीव अनेक एक श्रीकंता। (मा० ७।७८।४)

कंतार–(सं० कांतार)–दे० 'कांतार'। उ० २. संसार कंतार अतिघोर गंभीर। (वि० ५६)

कंद (१)–(सं०)–१. जड़, मूल, खाने के काम आनेवाली जड़ें। २. बादल, ३. समूह। उ० १. सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ। (मा० २।८६)

कंद (२)–(फा०)–मिश्री, एक मिठाई।

कंदर–(सं०)–गुफा, गुहा, पर्वतों में रहने योग्य सुरक्षित स्थान। उ० कंदर खोह नदीं नद नारे। (मा० २।६२।४) कंदरन्हि–कंदराओं, गुफाओं। उ० सदग्रंथ पर्वत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे। (मा० १।८४। छं० १)

कंदराँ–कंदरा में। उ० गिरिकंदराँ सुनी संपाती। (मा०

४।२७।१) कंदरा–(सं०)–दे० 'कंदर'। उ० गिरि कंदरा खोह अनुमाना। (मा० ६।१६।३)

कंदर्प–(सं०)–१. कामदेव, मनोज। उ० कंदर्पदर्प-दुर्गम-दवन, उमारवन गुनभवन हर। (क० ७।१५०) कंदर्पहं–कामदेव को भस्म करनेवाले, शंकर। उ० नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कंदर्पहं शंकरम्। (मा० ६।१। श्लो० २)

कंदा–दे० 'कंद'। उ० १. करहिं अहार साक फल कंदा। (मा० १।१४०।१)

कंदाकर–(सं०) आकाश, मेघों का घर।

कंदिग–कं=सिर, दिग=दिशा=१०। अर्थात् दस सिरवाला, रावण। उ० कंदिग दून नछत्र हनि गुनी अनुज तेहिं कीन। (स० २२१)

कंदिनी–(सं० कंदन)–नाश करनेवाली।

कंदु–दे० 'कंदुक'।

कंदुक–(सं०) १. गेंद, २. गोल तकिया, ३. सुपारी, पुंगीफल। उ० १. कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। (मा० १।२५३।२)

कँदैलो–(सं० कर्दम)–कीचड़वाला, मलयुक्त, गंदा। उ० जनम कोटि को कँदैलो हृद-हृदय थिरातो। (वि० १५१)

कंध–(सं० स्कंध)–१. कंधा गला और भुजमूलों के बीच का स्थान, २. डाली, मोटी डाली। उ० १. बृषभकंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु बिसाल। (मा० १।२४३)

कंधर–(सं०)–१. गर्दन, गला, २. बादल। उ० १. केहरि कंधर चारु जनेऊ। (मा० १।१४७।४)

कंधरा–दे० 'कंधर'।

कंधा–(सं० स्कंध)–शरीर का वह भाग जो गले और मोढे के बीच में रहता है।

कंप–(सं०)–काँपना, थरथराहट, कँपकँपी। उ० हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। (मा० १।५५।३)

कंपत–काँपता है। उ० कंपत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय। (क० ६।४३) कंपति (१)–१. काँपता है, हिलता है, २. काँप उठा, काँप गया। उ० १. मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे। (मा० ६।९१। छं० १) कंपहिं–काँपते हैं, काँप उठते हैं। उ० कंपहिं भूप बिलोकत जाकें। (मा० १।२६३।२) कंपेउ–काँप उठे, काँप गए। उ० भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका। (मा० १।८७।३)

कंपति (२)–(सं०)–समुद्र, पानी का स्वामी। उ० सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस। (मा० ६।५)

कंपती–दे० 'कंपति (१)'।

कंपन–(सं०)–काँपना, कँपकँपी।

कंपित–(सं०)–१. काँपता हुआ, २. भयभीत, डरा। उ० १. कहहिं बचन भय कंपित गाता। (मा० १।६५।३)

कँपै–कँपाकर, कंपित कर। उ० कँपै कलाप बर बरहि फिरावत। (गी० ३।१)

कंबल–(सं०)–१. ऊन का बुना हुआ बहुत मोटा कपड़ा जो ओढ़ने के काम आता है। २. एक बरसाती कीड़ा। ३. गाय या बैल के गले के नीचे लटकती हुई झालर। उ० ३. गलकंबल बरुना बिभाति। (वि० २२)

कंबु–(सं०)–१.शंख, २.घोंघा, ३. हाथी। उ० १. कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। (मा० १।१६६।४)

कंस–(सं०)–१. मथुरा के राजा उग्रसेन का पुत्र जो कृष्ण का मामा था और जिसे कृष्ण ने मारा था। यह बहुत ही अत्याचारी था। यहाँ तक कि राज्य के लोभ से इसने पिता अपने को भी इसने बंदी बना दिया था। उ० विपुल कंसादि निर्वंसकारी। (वि० ४८)

क (१)–(सं०)–१. ब्रह्मा, २ कामदेव, ३. विष्णु, ४. प्रकाश।

क (२)–(सं० कृतः)–संबंधकारक का चिह्न, का, के।

क (३)–(?) के लिए, को। उ० जो यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक। (मा० १।२६ ख)

कइ (१)–(सं० क)–की। उ० सोभा दसरथ भवन कइ को कवि बरनै पार। (मा० १।२९७)

कइ (२)–(सं० कति)–कई, एक से अधिक, अनेक।

कइकइ–(सं० कैकेयी)–राजा दशरथ की रानी और भरत की माता कैकेयी।

कच–(सं०)–१. बाल, चिकुर, केश, २. बादल। उ० १. चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। (मा० १।१९९।५) कचनि–कचों ने, बालों ने। उ० कचनि अनुपम छबि पाई। (गी० १।१०६)

कचुमर–(?) कुचलकर बनाया हुआ अचार, कुचला।

कच्छ–(सं० कच्छप)–१. कछुआ, २. तुन का पेड़ जो बहुत जल्दी जलता है। उ० २. राम-प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीर दुलारो। (ह० १९)

कच्छप–(सं०)–कछुआ, कच्छू।

कच्छपु–दे० 'कच्छप'। उ० परम रूपमय कच्छपु सोई। (मा० १।२४७।४)

कछु–(सं० किंचित्)–कुछ, ज़रा, थोड़ा सा, थोड़ी मात्रा या संख्या का। उ० दुखप्रद उभय बीच कछु बरना। (मा० १।५।२) कछुअ–कुछ भी, तनिक भी। उ० तब तें कछुअ न पाए। (गी० १।९९) कछुएक–थोड़ी सी, थोड़ी। उ० एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछुएक है कही। (मा० ५।३। छं० ३) कछुवै–कुछ भी। उ० तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़तावस ते न कहैं कछुवै। (क० ७।४०)

कछुक–दे० 'कछु'। उ० कछुक बनाइ भूप सन भाषे। (मा० १।१३१।३)

कछू–दे० 'कछु'। उ० नाथ न कछू मोरि प्रभुताई। (मा० ५।३३।५)

कछौटी–(सं० कच्छ)–लँगोटी, कछनी, कछौटा। उ० छोटिऐ कछौटी कटि छोटिऐ तरकसी। (गी० १।४२)

कज्जल–(सं०)–१. काजल, अंजन, २. काला, श्याम, ३. स्याही, रोशनाई। उ० १. सहित प्रान कज्जलगिरि जैसे। (मा० ६।१६।२)

कटक–(सं०)–१. सेना, फौज़, २. समूह, ३. कंकण, कड़ा, ४. चक्र, पहिया, ५. चटाई। उ० १. सुभट-मर्कट भालु-कटक-संघट सजत। (वि० ४३) ३. यथा पट-तंतु घट-मृत्तिका, सर्प-स्रग, दारु-करि, कनक-कटकांगदादी। (वि० ५४) कटकहि–सेना में, फौज में। उ० गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास। (मा० ६।७२)

कटकई–सेना, फौज। उ० बिजय हेतु कटकई बनाई। (मा० १।१५४।३)

कटककारी–सेना का बनाने या सजानेवाला, सेनापति।

उ० बिबिध को सौध अति रुचिर मंदिर निकट सत्वगुन-प्रमुख त्रय-कटककारी। (वि० ५८)

कटकटहिं–(ध्व०)–कट कट शब्द करते हैं। उ० कटकटहिं कठिन कराल। (मा० ३।२०।७)

कटकटाइ–कट-कट शब्द कर, दाँत बजा कर। उ० कटकटाइ गर्जा अरु धावा। (मा०५।१६।२) कटकटाई–कट कट शब्द किया। कटकटात–कट-कट शब्द करते हैं। उ० कटकटात भट भालु बिकट मरकट करि केहरि-नाद। (गी० ५।२२) कटकटान–दाँतों से कट कट शब्द किया। उ० कटकटान कपि कुंजर भारी। (मा० ६।३२।२) कटकटाहिं–कट कट शब्द करते हैं। उ० कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। (मा० ६।४१।३)

कटकाई–सेना, फौज़। उ० जौं आवै मर्कट कटकाई। (मा० ५।३७।२)

कटकु–दे० 'कटक'।

कटक्कट–कट-कट का शब्द। उ० जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। (मा० ६।८८।५)

कटत–(सं० कर्त्तन)–१. कटता है, कट जाता है, २. कटेंगे। उ० १. कटत झटिति पुनि नूतन भये। (मा० ६।६२।६) कटन–कटने, टूक टूक होने। उ० लगे कटन बिकट पिसाच। (मा० ३।२०।४) कटहिं–कट रहे हैं, कटते हैं। उ० कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। (मा० ६।६८।३) कटेहुँ–कटने पर भी। उ० मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा। (मा० ६।६८।१) कटै–कट जाय, समाप्त हो जाय। उ० तुव हित होइ कटै भवबंधन। (वि० १६६)

कटाइको–काटनेवाला भी। उ० राम सो न साहिब, न कुमति-कटाइको। (क० ७।२२)

कटाच्छ–(सं०)–१. तिरछी चितवन, तिरछी नज़र, २. व्यंग्य, ताना, ३. दृष्टि, नज़र।

कटाच्छु–दे० 'कटाच्छ'। उ० ३. यह सब सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छु पसाउ। (मा० १।३३१)

कटाछु–दे० 'कटाच्छ'। उ० १. छियो न तरुनि-कटाछु सर। (दो० ४३८)

कटाह–(सं०)–१. कड़ाह, बड़ी कड़ाही, २. कछुए का खपड़ा। उ० १. अंड कटाह अमित लय कारी। (मा० ७।६४।४)

कटि (१)–(सं)–कमर, पीठ और पेट के नीचे का भाग, लंक। उ० कटि भाथी सर चाप चढ़ाई। (मा० २।६०।२) कटिन्ह–कमर में, कमरों (कमर का बहुवचन) में। उ० मुनि पट कटिन्ह कसें तूनीरा। (मा० २।११५।४)

कटि (२)–(सं० कंटक)–वक्र, कटीली। उ० बड़े नयन कटि भृकुटी भाल बिसाल। (ब० ४)

कटिहउँ–काट डालूँगा। उ० कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना। (मा० ५।१०।१)

कटिसूत्र–(सं०)–मेखला, करधनी। उ० कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। (मा० १।३२७।२)

कटु–(सं०)–१. छः रसों में से एक, चरपरा, कड़ुआ, २. बुरा लगनेवाला, अनिष्ट, ३. कठोर, अकोमल। उ० २. जागि करहिं कटु कोटि कलपना। (मा० २।१५७।३)

कटुक–(सं०)–दे० 'कटु'।

कटुबादी–कड़ुवा बोलनेवाला, अप्रियवक्ता। उ० कटुबादी बालकु बध जोगू। (मा० १।२७५।२)

कटैया–काटनेवाला। उ० दसरत्थ को नंदन बंदि कटैया। (क० ७।५१)

कट्टहिं–कटकटाते हैं, कट-कट शब्द करते हैं। उ० दे० 'कटक्कट'।

कठमलिया–(सं० काष्ठ+माला)–काठ की माला पहनने-वाले, झूठे संत। उ० करमठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान बिहीन। (दो० ६६)

कठवता–(सं० काष्ठ)–काठ का बना एक भारी बर्तन। उ० पानि कठवता भरि लेइ आवा। (मा० २।१०१।३) कठवात–काठ का बर्तन, कठौती। उ० मीठो अरु कठवति भरो रौताई अरु खेम। (दो० १५)

कठिन–(सं०)–१. कड़ा, कठोर, २. दुष्कर, मुश्किल, ३. कर्कश, प्रचंड, विकट। उ० ३. हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। (मा० २।३२६।३)

कठिनइ–कठिनाई, कठिनता, मुश्किलाहट। उ० जदपि मृषा छूटत कठिनई। (मा० ७।११७।२)

कठिनता–१. कठोरता, कड़ाई, २. निर्दयता। उ० २. सुनत कठिनता अति अकुलानी। (मा० २।४१।१)

कठिनाई–१. मुश्किल, २. आपत्ति, ३. कठोरता, ४. कठोर, कड़ा। उ० ४. पाहन तें न काठ कठिनाई। (मा० २।१००।३)

कठुला–(सं० कंठ)–गले की माला जो, बच्चों को पहनाई जाती है। माला। उ० कठुला कंठ बघनहा नीके। (गी० १।२८)

कठोर–(सं०)–१. कठिन, कड़ा, २. निर्दय, बेरहम, ३. दृढ़, ४. अमधुर, कटु। उ० २. कुटिल कठोर मुदित मन बरनी। (मा० २।१६०।४)

कठोरा–दे० 'कठोर'। उ० ४. काक कहहिं कलकंठ कठोरा। (मा० १।६।१)

कठोरि–'कठोर' का स्त्रीलिंग। उ० १. मति थोरि कठोरि न कोमलता। (मा० ७।१०२।१)

कठोरी–दे० 'कठोरि'। उ० १. सुनत बात मृदु अंत कठोरी। (मा० २।२२।२)

कठोरु–दे० 'कठोर'। उ० १. बिपुल बिहग बन परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोरु। (मा० २।१५३)

कठोरू–दे० 'कठोर'। उ० १. दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। (मा० २।२७।२)

कठोरें–दे० 'कठोर'। उ० १. न त एहि काटि कुठार कठोरें। (मा० १।२७५।४)

कठोरे–दे० 'कठोर'। कठोरतापूर्ण, कड़ाई से भरा हुआ। उ० ४. बचन परमहित सुनत कठोरे। (मा० ६।६।५)

कठौता–(सं० काष्ठ)–काठ का बर्तन। उ० छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को। (क० २।१०)

कड़खा–(ध्व० शब्द कड़कड़)–वीरों की प्रशंसा से भरे लड़ाई के गान जिनसे लड़ने के लिए वीरों को उत्तेजना मिलती है।

कड़खैत–भाट, बढ़ावा देनेवाला, चारण।

कड़हार–(सं० कर्णधार)–नाविक, मल्लाह, केवट।

कड़हारू–दे० 'कड़हारु'। उ० चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू। (मा० १।२६०।४)
कड़ाह–(सं० कटाह)–द्रव पदार्थ पकाने का एक लोहे का गोल और बड़ा बर्तन।
कड़िहार–दे० 'कड़हार'।
कड़ुआ–(सं० कटुक)–१. स्वाद में उग्र और अप्रिय, कटु, अमधुर, २. बुरा।
कढ़ाइ–(सं० कर्षण)–कढ़वाकर, खिंचवाकर। उ० खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई। (मा० ७।१२१।६) कढ़ावउँ–निकलवा लूँगा, कढ़वा लूँगी। उ० तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी। (मा० २।१४।४)
कढ़ैया–निकालनेवाला, खींचनेवाला। उ० खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उरसाल को। (क० ७।१३५)
कढ़ोरि–(सं० कर्षण)–घसीटकर, खींचकर। उ० तोरि जमकातरि मँदोदरी कढ़ोरि आनी। (ह० २७)
कण–(सं०)–रवा, ज़र्रा, किनका, अत्यन्त छोटा टुकड़ा।
कत–(सं० कुतः)–१. क्यों, किसलिए, २. कैसे, ३. किधर, कहाँ, किस ओर। उ०१. नाथ करिअ कत बादि बिषादू। (मा० २।२०१।४) कतहुँ–कहीं, कहीं भी, किसी स्थान पर। उ० कतहुँ न दीख संभु कर भागा। (मा० १।६३।२)
कति–(सं०)–१. कितनी, २. कौन। उ० १. यह लघु जलधि तरत कति बारा। (मा० ६।१।१)
कथं–(सं०)–१. कैसे, किस प्रकार, २. एक आश्चर्यसूचक शब्द।
कथइ–(सं० कथन) कहता था, कहता है। उ० जिमि-जिमि तापसु कथइ उदासा। (मा० १।१६२।३) कथत–(सं० कथन)–कहने में, कथन मात्र में। उ० भरम प्रतिष्ठा मानि मन तुलसी कथत भुलान। (स० ३५५) कथहिं–कहते हैं, वर्णन करते हैं।
कथक–(सं०)–१. एक जाति जिसका काम गाना, बजाना तथा नाचना है। २. कथा कहनेवाला।
कथन–(सं०)–कहना, वर्णन, बखान। उ० कलि अघ खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग। (मा० १।४१)
कथनीय–(सं०)–कहने योग्य, वर्णनीय।
कथनीया–दे० 'कथनीय'। उ० सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया। (मा० १।२४२।३)
कथरी–(सं० कथा)–गुदड़ी, फटे कपड़ों को सिलकर बनाया हुआ बिछावन या ओढ़ना। उ० पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है। (क० ७।५६)
कथा–(सं०)–बात या कहानी, जो कही जाय, वृत्तांत, इतिहास। उ० कहिसि कथा सत सवति कै। (मा० २।१८)
कथिक–दे० 'कथक'। उ० १. कियो कथिक को दंड हौं जड़ कर्म कुचालि। (वि० १४७)
कथित–वर्णित, भाषित, कहा हुआ।
कदंब–(सं०)–१. कदम का पेड़, २. समूह, झुंड। उ० २. खेती बनिज न, भीख भलि, अफल उपाय कदंब। (प्र० ७।५।३)
कदंबा–दे० 'कदंब'। उ० २. एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। (मा० २।८२।३)
कदन–(सं०)–१. मरण, विनाश, २. पाप, ३. दुःख, कष्ट, ४. युद्ध, ५. हिंसा, घात। उ० १.जयति दस-कंठ-घटकरन बारिदनाद-कदन-कारन, कालनेमि-हंता। (वि० २५)
कदन–दे० 'कदंब'।
कदरज–दे० 'कदर्य'।
कदराइ–(सं० कातर)–कायर बने, भीरुता दिखलावे। उ० सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ। (मा० २।१६१।१)
कदराईं–'कदराई' का बहुबचन। उ० १. लागि अगम अपनी कदराईं। (मा० २।७२।१) कदराई–१. कायरता, भीरुता, २. हिचकता है, भीरुता दिखलाता है। उ० १. सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई। (मा० १।२६०।३)
कदराहू–कायरता दिखलाओ, अधीर हो। उ० तात प्रेम बस जनि कदराहू। (मा० २।७०।४)
कदरी–(सं० कदली)–केला, एक पेड़ जिसका फल भी इसी नाम से पुकारा जाता है। उ० काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच। (मा० ५।५८)
कदर्थना–(सं० कदर्थन)–दुर्गति, दुर्दशा, बुरी दशा। उ० कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की। (क० ७।१८२)
कदर्य–(सं०)–१. एक प्रसिद्ध पापी. २. कंजूस, मक्खीचूस।
कदलि–(सं० कदली)–केला। उ० बिरचे कनक कदलि के खंभा। (मा० १।२८७।४)
कदली–(सं०)–केला। उ० तन पसेउ कदली जिमि काँपी। (मा० २।२०।१)
कदाचि–दे० 'कदाचित्'। उ० जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ। (मा० ४।७)
कदाचित–दे० 'कदाचित्'। उ० तबहुँ कदाचित सो निरुअरई। (मा० ७।११७।४)
कदाचित्–(सं०)–१. शायद, २. कभी, शायद कभी।
कदापि–(सं०)–कभी भी, हर्गिज़।
कद्रूँ–कद्रू ने। दे० 'कद्रू'। उ० कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिलाँ देब। (मा० २।१६)
कद्रू–(सं०)–महर्षि कश्यप की कई पत्नियों में से एक जिससे सर्पों की उत्पत्ति हुई थी। कश्यप की दूसरी स्त्री विनता से और कद्रू से एक बार सूर्य के घोड़ों के सफेद और काले होने के संबंध में बहस हो गई और अंत में शर्त यह लगी कि जिसकी हार होगी वह दूसरे की दासी बनेगी। बाद में कद्रू को पता चला कि सूर्य के घोड़े सफेद हैं तो उसने हार के भय से अपने काले पुत्रों (सर्पों) को ऊपर भेज दिया। वे जाकर सूर्य के घोड़ों से लिपट गये। फल यह हुआ कि कद्रू की जीत हो गई और विनता को दासी बनना पड़ा। बाद में विनता के पुत्र गरुड़ ने इस रहस्य का उद्घाटन कर अपनी माता को दासीपन से छुड़ाया।
कन–(सं० कण)–अत्यल्प टुकड़ा, किनका, कण। उ० सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा। (मा० १।२५८।३)
कनै–कण को, कन को। उ० हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदो-कनै। (गी० ५।४०) विशेष–चावल आदि को कूटने के बाद, साफ करने पर कुछ रद्दी धूल की तरह एक वस्तु निकलती है जिसे कन या कण कहते हैं। दीन लोग इसकी रोटी खाते हैं।
कनउड़–(?)–आभारी, यहसानमंद, कृतज्ञ। उ० हमहिं आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ। (पा० ८१)

कनक–(सं०)–१. सोना, स्वर्ण, २. धतूरा, ३. पलाश, ४. नागकेशर। उ० १. कनक सिंघासन सीय समेता। (मा० २।११।३) कनकउ–सोना भी। उ० कनकउ पुनि पषान तें होई। (मा० १।८०।३) कनकहिं–सोने पर, सोने में। उ० कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। (मा० २।२०५।३) कनकौ–दे० 'कनकउ'।

कनककाशिपु–(सं०)–हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद का पिता। दे० 'हिरण्यकशिपु'।

कनककसिपु–दे० 'कनककशिपु'। उ० रामनाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल। (मा० १।२७)

कनकपुरी–सोने का नगर, लंका। उ० कनकपुरी भयो भूप बिभीषन। (गी० ५।५०)

कनकफूल–सोने का फूल, एक सोने का बना हुआ फूल की तरह का आभूषण जिसे कान में पहनते हैं। उ० कानन्हि कनकफूल छबि देहीं। (मा० १।२१९।४)

कनकमय–सोने का बना हुआ। उ० तासु कनकमय सिखर सुहाए। (मा० ७।५६।४)

कनकलोचन–दे० 'हिरण्याक्ष'। हिरण्यकशिपु का भाई, एक दैत्य। उ० सोक कनकलोचन मति छोनी। (मा० २।२९७।२)

कनखियनु–(सं० कोण+अक्षि)–तिरछी आँखों से, आँख के कोनों से। उ० चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच। (ब० ३०)

कनगुरिया–(सं० कनीनी+अँगुली)–सबसे छोटी उँगली, छिगुनी, कनिष्ठिका उँगली। उ० कनगुरिया कै मुदरी कंकन होइ। (ब० ३८)

कनसुई (१)–(सं० कर्ण+श्रवण)–आहट, टोह, छिपकर बातें सुनना।

कनसुई (२)–(?)–स्त्रियाँ चलनी और गोबर की सहायता से एक सगुन निकालती हैं, जिसे कनसुई कहते हैं। इसमें गोबर की गौरी बनाकर उसे चलनी में रखकर उलाट दिया जाता है। यदि गौरी सीधी गिरती हैं तो शकुन माना जाता है और नहीं तो अपशकुन। मु० कनसुई लेत–सगुन बिचारते। उ० लेत फिरत कनसुई सगुन। (गी० १।६८)

कनहारु–दे० 'कड़हारू'।

कना–(सं० कण)–१. मकरा, मड़ुवा नाम का अन्न जो कण के समान छोटा होता है। २. कण, कन। उ० १. कना समुझि क बरन हरहु अंत-आदि-जत सार। (स० २४२)

कनावड़े (?)–१. काना, २. अपंग, जिसका कोई अंग खंडित हो, ३. कलंकित, निंदित, ४. तुच्छ, नीच, ५. लज्जित, संकुचित, ६. उपकृत, आभारी। उ० ६. बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं। (क० ७।१२२)

कनिगर–(?)–अपनी मर्यादा का ध्यान रखनेवाला। उ० देखिए न दास दुखी तो से कनिगर के। (कृ० ३३)

कनियाँ–(सं० स्कंध)–कोरा, गोद, उछंद, कंधा। उ० सादर सुमुखि बिलोकि राम-सिसुरूप, अनूप भूप लिए कनियाँ। (गी० १।३१)

कनिष्ठ–(सं०)–१. बहुत छोटा, सबसे छोटा, २. जो बाद में उत्पन्न हुआ हो, ३. नीच।

कनिहारू–दे० 'कढ़िहारू'।

कनी–(सं० कण)–छोटा टुकड़ा, अति सूक्ष्म भाग, कण बूँद। उ० श्रमबिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी। (मा० ६।७१। छं० १)

कनौड़ा–(?)–१. ऋणी, उपकृत, २. अपङ्ग, जिसका कोई अंग खंडित हो, ३. कलंकित, बदनाम। कनौड़े–दे० 'कनौड़ा'। उ० १. तुलसी प्रभु तरु तर बिलँब किये प्रेम कनौड़े कै न। (गी० २।२४) कनौड़ो–दे० 'कनौड़ा'। उ० १. भलो भले सों छल किये जनम कनौड़ौ होइ। (दो० ३९५) कनौड़ो–ऋणी को। उ०तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहिं कनौड़ो भरिहैं। (वि० १७१)

कन्या–(सं०)–१. अविवाहिता लड़की, २. पुत्री, बेटी, ३. एक राशि, ४. एक तीर्थ। उ० २. जह्नु-कन्या धन्य पुन्य-कृत सगरसुत। (वि० १८)

कन्यादान–(सं०)–विवाह में वर को कन्या देने की एक रीति। उ० कन्यादान संकलप कीन्ह लीन्ह जल कुस कर। (पा० १४४)

कन्हाई–दे० 'कन्हैया'।

कन्हैया–(सं० कृष्ण)–१. श्री कृष्ण, २. प्रिय व्यक्ति, ३. सुंदर लड़का। उ० १. 'लै कन्हैया' 'सो कब ?' 'अबहिं तात'। (कृ० २)

कपट–(सं०)–१. धोखा, दंभ, छल, स्वार्थ-साधन के लिए हृदय की बात छिपाने की वृत्ति, २. छिपाव, दुराव। उ० १. कपट चतुर नहिं होइ जनाई। (मा० २।१८।२)

कपटी–छली, दगाबाज, धूर्त्त। उ० मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। (मा० १।७९।२)

कपटु–दे० 'कपट'। उ० २. गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपटु बटु बलि-छरन। (वि० २१८)

कपर्द–(सं०)–१. कौड़ी, २. शिव की जटा।

कपाट–(सं०)–किवाड़, पट, द्वार। उ० ते हठि देहिं कपाट उघारी। (मा० ७।११८।६)

कपाटा–दे० 'कपाट'। उ० सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। (मा० १।२१४।१)

कपाटी–दे० 'कपाट'। उ० जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी। (मा० २।१४५।२)

कपार–(सं० कपाल)–दे० 'कपाल'। उ० १. मेरोई फोरिबे जोग कपाट, किधौं कछु काहू लखाइ दियो है। (क० ७।१५७)

कपारु–दे० 'कपाल'।

कपारू–दे० 'कपाल'। उ० १. कूबर टूटेउ फूट कपारू। (मा० २।१६३।३)

कपाल–(सं०)–१. सर, खोपड़ी, २. ललाट, मस्तक, ३. भाग्य, ४. एक बर्तन जिसमें यज्ञों के समय देवताओं के लिए पुरोडाश पकाया जाता था। उ० २. ब्याल कपाल बिभूषन छारा। (मा० १।९५।४)

कपाला–दे० 'कपाल'। उ० १. जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। (मा० ६।२९।१)

कपाली–(सं० कपालिन्)–नर-कपालों की माला पहनने-वाला, शिव, महादेव। उ० निर्गुन निलज कुबेष कपाली। (मा० १।७९।३)

कपास–(सं० कर्पास)–१. रुई का पेड़, २. रुई, तूल, ३. कपास

का फल जिसमें रुई होती है। उ० ३. तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास में काढ़ि। (मा० ७।११७ ग)
कपासू–दे० 'कपास'। उ० १. साधुचरित सुभ सरिस कपासू। (मा० १।२।३)
कपिंदा-(सं० कपीन्द्र)-बन्दरों में श्रेष्ठ, बंदरों के राजा, श्रेष्ठ बन्दर। उ० राम कृपा बल पाइ कपिंदा। (मा० ५।३५।२)
कपि–(सं०)-१. बंदर, २. सूर्य, ३. हनुमान, ४. सुग्रीव, ५. बालि। उ० १. चित्रलिखित कपि देखि डेराती। (मा० २।६०।२) ५. सठ संकट-भाजन भए हठि कुजाति कपि काक। (दो० ४१५) कपिन–कपि का बहुवचन, बंदरों। कपिन्ह–दे० 'कपिन'। उ० कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा। (मा० ५।१६।२) कपिहि–कपि के लिए, हनुमान के लिए। उ० सो छन कपिहि कलप सम बीता। (मा०५।१२।६)
कपिकच्छु–(सं०)-केवाँच, करेंच, मर्कटी, बन्दरों का एक प्रिय फल और उसका पेड़। उ० बात तरुमूल, बाहुसूल कपिकच्छु बेलि। (ह० २४)
कपिखेल–केवाँच। उ० कंदुक ज्यों कपिखेल बेल कैसो फल भो। (ह० ६)
कपिल–(सं०)-१. पीला, मटमैला, २. सांख्य शास्त्र के आदि प्रवर्तक कपिल मुनि, ३. चूहा, ४. शिव, ५. सूर्य। उ० २. जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला। (मा० २।१४२।३)
कपिलहि–कपिला या सीधी गाय को। उ० जिमि कपिलहि घालइ हरहाई। (मा० ७।३९।१) कपिला–(सं०)-१. कपिल या पीले रंग की, २. पीले रंग की सीधी और भोली गाय, ३. सफेद गाय, ४. जोंक, ५. चींटी। उ० २. जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई। (मा० ३।२९।४)
कपिश–(सं०)–काला और पीला मिश्रित रंग का, भूरा, मटमैला, बादामी।
कपिस–दे० 'कपिश'। उ० कपिस केस, करकस लँगूर, खल-दल-बल-भानन। (ह० २)
कपीश–(सं०)-बन्दरों का स्वामी, १. हनुमान, २. सुग्रीव, ३. बालि।
कपीश्वरौ–(सं०)–कपियों के राजा हनुमान को। उ० वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ। (मा०१।१। श्लो० ४) (कवीश्वर के साथ आने से यहाँ कपीश्वर के द्विवचन का रूप है।)
कपीस–दे० 'कपीश'। उ० १. ताहि राखि कपीस पहिं आये। (मा० ५।४३।२) कपीस-किसोर–बालि पुत्र अंगद।
कपीसा–दे० 'कपीश'। उ० २. मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा। (मा० ५।२९।२)
कपूत–(सं० कुपुत्र)–बुरा लड़का, नालायक लड़का, कुल के विरुद्ध जानेवाला। उ० कूर कपूत मूढ़ मन माखे। (मा० १।२६६।१)
कपूर–(सं० कर्पूर)–एक श्वेत जमा हुआ द्रव्य जो सुगंधित होता है और जलाने से जलता है। घनसार, सिताभ।
कपोत–(सं०)-१. कबूतर, एक चिड़िया, २. पक्षी, चिड़िया, ३. भूरे रंग का कच्चा सुरमा। उ० २. हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर। (गी० २।४७)
कपोल–(सं०)–गाल। उ० चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा। (मा० १।१४७।१) कपोलन–कपोल का बहुवचन, गालों। उ० बिकटी भ्रुकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है। (क० २।१३)
कपोला–दे० 'कपोल'। उ० सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। (मा० १।१९९।४)
कफ–(सं०)–बलगम, श्लेष्मा, खाँसी आदि बीमारियों में मुँह या नाक से निकलनेवाली गाढ़ी लसीली वस्तु। उ० काम बात कफ लोभ अपारा। (मा० ७।१२१।१५)
कबंध–(सं०)–१. बादल, २. वेद, ३. जल, ४. बिना सिर का धड़, रुंड, ५. एक दानव। यह दानव देवी का पुत्र था। इसके मुँह और पैर इसके पेट में थे। कहा जाता है कि एक बार देवराज इंद्र ने इसे वज्र से मारा जिसका फल यह हुआ कि सिर और पैर पेट में घुस गए। दंडक बन में इससे रामचन्द्र से युद्ध हुआ जिसमें यह मारा गया। राम के द्वारा इसका शरीर जलाया गया और अंत में यह गंधर्व के रूप में अग्नि से बाहर निकल आया। रावण के साथ युद्ध में राम ने इससे भी राय ली थी। उ० ५. बधि बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध। (मा० ६।३६)
कब–(?)–किस समय, किस वक्त। उ० सकल कहहिं कब होइहि काली। (मा० २।११।३) कबहिं–कभी,कभी भी। उ० कबहिं देखाइहौ हरि चरन? (वि० २१८) कबहुँ–कभी, किसी समय, कभी भी। उ० जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई। (मा० २।१२४।१) कबहुँक–कभी, किसी समय। उ० कबहुँक ए आवहिं एहि नातें। (मा० १।२२२।४)
कबहीं–कभी, किसी वक्त, किसी समय भी। उ० गनिका कबहीं मति पेम पगाई? (क० ७।९३)
कबहूँ–दे० 'कबहुँ'।
कबार–(१)–(फा० कारबार)–काम-काज, उद्यम, व्यवसाय।
कबार–(२)–(?)–यश-वर्णन, बड़ाई। उ० मागध सूत भाँट नट जाचक जहँ-तहँ करहिं कबार। (गी० १।२)
कबारु–दे० 'कबारू'। उ० दे० 'किसब'।
कबारू–दे० 'कबार' (१)। उ० नहिं जानउँ कछु अउर कबारू। (मा० २।१००।४)
कबि–(सं० कवि)–कविता करनेवाला, काव्यकार। उ० कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। (मा० १।९।४) कबिकोकिल–दे० 'कविकोकिल'। बाल्मीकि। उ० राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबिकोकिल हू की। (क० ७।८९) कबिन्ह–कवियों को। उ० कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। (मा० १।१४।२) कबिहि–कवि के लिए। उ० कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२५)
कबिता–(सं० कविता)–काव्य, कवित्त, मन पर प्रभाव डालनेवाला सुन्दर पद्यमय वर्णन। उ० गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की। (मा० १।१०। छं० १)
कबित्त–(सं० कवित्व)–१. कविता, काव्य, २. एक छंद जिसमें ४ चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में ८,८,८,७ के विराम से ३१ अक्षर होते हैं। उ० १. निज कबित्त केहि लाग न नीका। (मा० १।८।६)

कबी–दे० 'कबि'। उ० गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कबी। (मा० ६।१११। छं० २)
कबूतर–(फ़ा०)–एक पक्षी, परेवा। उ० हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर। (गी० २।४७)
कबुल–दे० 'कबूल'।
कबूल–(अर० क़बूल)–स्वीकार, मंज़ूर।
कबूलत–स्वीकार करता, कबूल करता, मानता। उ० हौं न कबूलत बाँधि कै मोल करत करेरो। (वि० १४६)
कबुली––१. बलि का पशु, बलिदान के लिए प्रस्तुत पशु। जो पशु किसी पर चढ़ाने के लिए पहले से कबूल किया जाय या माना जाय। २. राजी, स्वीकारावस्था में, ३. चने की दाल की खिचड़ी। उ० १. कुबरीं करि कबुली कैकेई। (मा० २।२२।१)
कबै–कब, किस समय, उ० गगन गिरह करिबो कबै तुलसी पढ़त कपोत। (स० १५६)
कमंडल–(सं० कमंडलु)–साधु-संन्यासियों का जलपात्र जो बहुधा पीतल, दरियाई नारियल या लौकियों का बनता है। उ० माँगा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। (मा० ६।६७।४)
कमंडलु–दे० 'कमंडल'।
कम–(फा०)–१. थोड़ा, न्यून, अल्प, २. बुरा।
कमठ–(सं०)–१. कछुआ, कच्छप, २. एक दैत्य का नाम, ३. साधुओं की तुमड़ी। उ० १. अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती। (मा० २।७।४) विशेष–कछुआ की स्त्री अपने अंडे को नहीं सेती। वह उसे जल से बाहर नदी या तालाब के किनारे रेत या पोली मिट्टी में ढक आती है। वहाँ स्वाभाविक गर्मी से अंडे अपने आप सेवित होते रहते हैं। अवधि पूरी होने पर स्वयं अंडे फूट जाते हैं बच्चे निकलकर स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण स्वयं पानी में चले जाते हैं। इस बीच में उनकी माँ उनको देखने भी कभी नहीं जाती, पर ऐसी प्रसिद्धि है कि दूर रहने पर भी उसका दिल अंडों पर ही सर्वदा लगा रहता है। कच्छप की इस प्रकृति की तुलना के लिए कवियों ने उचित उपयोग किया है। उपर्युक्त चौपाई में भी तुलसी ने इधर ही संकेत किया है। कमठ अवतार–सत्ययुग या प्रथम युग में विष्णु, कच्छप, कूर्म या कमठ के रूप में प्रलय के समय खोई हुई कुछ वस्तुओं का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए। क्षीरसागर में समुद्रमंथन के समय कमठ भगवान ही आधार बने थे जिस पर मंदराचल रखा गया और वासुकि नाग के सहारे सुरों और असुरों ने मंथन किये, जिसके फलस्वरूप खोई हुई १४ वस्तुएँ प्राप्त हुईं। कमठी–कमठ की स्त्री, कछुई। उ० सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों हहरी हृदय बिकल भइ भारी। (कृ० ६०)
कमनीय–(सं०)–१. कामना करने योग्य, चाहने योग्य, २. सुन्दर, मनोहर। उ० १. कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय। (मा० १।२५१) कमनीया–'कमनीय' का स्त्रीलिंग, सुंदरी। उ० २. जग असि जुबति कहाँ कमनीया। मा० १।२४७।२)
कमल–(सं०)–१. पानी में होनेवाला एक पौधा और उसका फूल। जलज, कंज, अरबिंद। २. जल, पानी, ३. ताँबा, ४. मृग की एक विशेष जाति, ५. सारस, ६. एक रोग, ७. आँख। उ० १. बंदउँ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि। (मा० १।१७ ग) विशेष–कमल के पुष्प लाल, सफ़ेद, नीले और पीले होते हैं। सुन्दर और सुकुमार होने के कारण कवि लोग आँख, कपोल, चरण तथा हाथ आदि की इससे उपमा देते हैं। कमल का फूल संध्या होते ही बंद हो जाता है, इसी कारण इसे सूर्य या दिन का प्रेमी माना जाता है और सूर्य को कमलपति आदि कहा जाता है। कमल की गंध भँवरे को बहुत पसंद है। कमल के डंठल में छोटे-छोटे काँटे होते हैं जिनके सहारे भी कवियों ने दूर तक उड़ने का प्रयास किया है। क्षीर सागर-शायी भगवान् विष्णु की नाभी से कमल निकला था जिससे ब्रह्मा का जन्म हुआ इसी विश्वास के आधार पर विष्णु को कमलनाभ या पद्मनाभ तथा ब्रह्मा को कमलसुत आदि कहते हैं। वह नाभी से निकलनेवाला कमल ही प्रथम कमल माना जाता है। कमलनि–१. कमलों में, २. कमलों से, कमलों के द्वारा, ३. कमलों को। उ० १. सोहहिं कर कमलनि धनुतीरा। (मा० २।११५।४) २. पंथ चलत मृदु पद कमलनि दोउ सील-रूप-आगार। (गी० २।२६) कमलन्ह–कमल का बहुवचन। कमलन्हि–कमल का बहुवचन, कमलों। उ० पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास। (मा०६।१२ख) कमलपति–सूर्य, रवि। कमलभव–(सं०)–कमल से होनेवाले, ब्रह्मा, कमलयोनि। कमलफल–कमल का बीज, कमलगट्टा। उ० अष्टोत्तर सत कमल फल, मुष्टी तीनि प्रमान। (प्र०१)
कमलनाभ–(सं०)–विष्णु। विष्णु का यह नाम इस कारण है कि उनकी नाभी से सृष्टि के आरंभ में कमल उत्पन्न हुआ था।
कमला–(सं०)–१. लक्ष्मी, रमा, २. धन, ऐश्वर्य। उ० १. सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि। (क० ७।२६)
कमलापति–(सं०)–विष्णु, लक्ष्मी के पति। उ० सपदि चले कमलापति पाहीं। (मा० १।१३६।१)
कमलारमन–(सं० कमलारमण)–कमला के पति, विष्णु।
कमलारवन–दे० 'कमलारमन'।
कमलासन–(सं०)–१. ब्रह्मा, २. योग का एक आसन, पद्मासन। उ० २. बैठे बट तर करि कमलासन। (मा०१।५८।४)
कमलिनी–(सं०)–१. कमल, २. छोटा कमल।
कमातो–(सं० कर्म)–१. कमाई करता, पैदा करता, संग्रह करता। २. सेवा संबंधी छोटे-छोटे कार्य करता ३. काम करता। उ० १. जौ तू मन मेरे कहे राम-नाम कमातो। (वि० १५१) कमाहिं–१. पैदा करते हैं, कमाते हैं, २. काम करते हैं, ३. सेवा करते हैं। उ० ३. तिय-बरबेष अली रमा सिधि अनिमादि कमाहिं। (गी० १।५)
कमान–(फा०)–धनुष, वह हथियार जिसके सहारे बाण छोड़ा जाता है। उ० जीभ कमान बचन सर नाना। (मा० २।४१।१)
करंत–करता। उ० काढ़त दंत, करंत हहा है। (क०७।३६)
कर (१)–(सं० कृ)–१. करो, २. कर के, ३. करता है,

करते हैं, ४. करेगा, ५. करनेवाला, कर्त्ता। उ० ३. कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा। (वि० २) करइ—१. करे, २.करता है, ३. करना, करने की युक्ति, ४. कर। करई—१. करती है, २. करे, ३. करने की युक्ति। उ० १. सुंदरता कहुँ सुंदर करई। (मा० १।२३०।४) २. बल अनुमान सदा हित करई। (मा० ४।७।३) करउँ—करूँ। उ० अब जो कहहु सो करउँ बिलंब न यहि घरि। (पा० ८२) करउ—करो, करिए, कीजिए। उ० करउ सो मम उर धाम सदाँ छीर सागर सयन। (मा०१।१। सो०३) करऊँ—करूँ। उ० कुआँरि कुआरि रहउ का करऊँ। (मा० १।२५२।३) करत—१. करते ही, करने पर, २. करता है, करते हैं, ३. करते हुए। उ० १. कौसल्या कल्यानमयि मूरति करत प्रनाम। (दो० २१२) करतहि—कर रखा है। उ० निज गुन सील रामबस करतहि। (मा० २। २६५।४) करति—करती है, कर रही है। उ० बिबिध बिलाप करति बैदेही। (मा० ३।२९।२) करते—किए होते। उ० करते नहिं बिलंबु रघुराई। (मा० ५।१४।२) करतेउँ—करता। उ० बूढ़ भयउँ न त करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार। (मा० ४।२८) करतेहु—करते। उ० करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू। (मा० २।२०७।४) करब—१. करूँगा, २. करोगे, ३. करना, कीजिएगा। उ० १. कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि। (मा० २।२१) २.समुझब कहब करब तुम्ह जोई। (मा० २।३२३।४) ३. करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। (मा० १।३६०।४) करबि—१. कीजिएगा, २ करूँगा। उ० १ करबि जनक जननी की नाईं। (मा०२।८०।३) करसि—१. करता है, २.करते हो, ३. करो। उ० तू छल बिनय करसि कर जोरें। (मा० १।२८१।१) करहिं—करते हैं, कर देते हैं। उ० करहिं अनभले को भलो आपनी भलाईं। (वि० ३५) करहिंगे—करेंगे। उ० राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ। (मा०४।१२) करहि—१. कर, २. करेगा, ३. करता है। उ० १. भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग। (मा०३।४६ख) करहीं—करते हैं। उ० राजकुमारि बिनय हम करहीं। (मा० २।११६।३) करही—करता, करता है। उ० सत्य बचन बिस्वास न करही। (मा० ७।११२।७) करहु—करो, कीजिए, करें। उ० तात कुतरक करहु जनि जाएँ। (मा० २।२६४।१) करहुगे—करोगे, अमल में लाओगे। करहू—दे० 'करहु'। उ० चलहु सफल श्रम सब कर करहू। (मा० २।१३२।४) करि—(सं० कृ)—१. करके, २. करनी, ३. करते। उ० १. महि पत्री करि सिंधु मसि। (बै० ३५) करिअ—करें, की जाय। उ० कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा। (मा० १।१८५।१) करिअहिं—१. कीजिए, २. करेंगे। उ० १. नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। (मा० २।४।१) करिए—१. कीजिए, २. करूँ, ३. करनी चाहिए, ४. बनाइए, उत्पन्न कीजिए। उ० ३. कौन जतन बिनती करिए। (वि० १८६) करित—करता। उ० तो बिनु जगदंब गंग! कलिजुग का करित? (वि० १९) करिबे—करने, करना। उ० करिबे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर नरम। (वि० १३१) करिबो—करूँगा। उ० कियो न कछू, करिबो न कछू। (क० ७।९२) करिय—१. कीजिए, करिए, २. करना, ३. करती हैं, करता हूँ। उ० १. करिय सँभार कोसलराय! (वि०२२०) करिहउ—करूँगा। उ० अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। (मा० १।१६८।२) करिहहिं—करेंगे। उ० करिहहिं बिप्र होम मख सेवा। (मा० १।१६९।१) करिहहुँ—करूँगा। करिहहु—१. करोगे, २. करना। उ० १. रामकाजु सबु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान। (मा० ५।२) करिहि—करेगा। उ० पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान। (मा० १।७१) करिहीं—करेंगी, करेंगे। करिही—करेंगें, करेगा। उ० मिलन कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। (मा० ५।५७।३) करिहैं—करेंगे। उ० करिहैं राम भावतो मन को। (वि० २४) करिहौं—दे०—'करिहउँ'। करिहौ—१. करोगे, २. करना। उ० १. फिरि बूझति हैं "चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै?" (क० २।११) करी (१)—१. की, किया, २. करें। करीजे—कर दीजिए, कीजिए। उ० दीन जानि तेहि अभय करीजे। (मा० ४।४।२) करु—कर, करो। उ० सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई। (मा० २।१०१।१) करेसि—किया। करेसु—करना। उ० कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग। (मा० ७।८५ ख) करेहु—१. कीजिए, २. कीजिएगा, करना, कर लेना। उ० १. सेवा करेहु सनेह सुहाएँ। (मा० २।१७५।४) करेहू—दे० 'करेहु'। उ० २. संबत भरि संकलप करेहू। (मा० १।१६८।४) करैं—१. करें, २. करते हैं। उ० २. आरत दीन अनाथन को, रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं। (क० ७।११) करै—१. करना, करने, २. करे, ३. करने के लिए। उ० १. मैं हरि साधन करै न जानी। (वि० १२२) करैगो—कर देंगे, करेंगे, करेगा। उ० आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि। (मा० ६।२०) करैहहु—कराओगे, करवाओगे। उ०हँसी करैहहु पर पुर जाई। (मा० १।९३।१) करो—'करना' का आज्ञासूचक रूप। कीजिए। उ० जेहि जो रुचै करो सो। (वि० १७३) करौं—करूँ। उ० करइ विचार करौं का भाई। (मा० ५।९।१) करयो—किया, किया था। उ० निज दास ज्यो रघुबंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो। (मा० ७।२। छं० १) करयौ—दे० 'करयो'। किएँ—१. करने पर, करने से, २. किया, किए किया है, ३. कर सकता है, उ० १.सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। (मा० १११।८) किए—दे० 'किएँ'। उ० २. नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन। (मा० १।२२) किएहुँ—करने पर भी। उ० किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। (मा० १।७।४) किय—किया था, निबटाया, कर दिया। उ० जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा। (मा० २।१०१।२) कियहुँ—किया। उ० कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। (मा० २।४९।४) किया—१. कर दिया, करना क्रिया का सामान्य भूत किया है, २. किया हुआ काम। उ० १. अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तप किया। (मा० १।९८। छं० १) किये—१. करना क्रिया का बहुवचन या आदरसूचक सामान्य भूत, कर दिए। २. किए हुए, ३. करने पर, करने से। उ० १. जथायोग सनमानि प्रभु बिदा किये मुनिबृंद। (मा० २।१३४) कियेउ—१. किया, २. करके, ३. किया हुआ। उ० १. कियउ निषाद नाथु अगुआई। (मा० २।२०३।१) कियो—१. किया, कर लिया, २. किया

हुआ। उ० १. सब कें उर अनंद कियो बासू। (मा० १।३५४।३) काज–१. कीजिए, २. कीजिएगा। काजहु–१. कीजिए, २. करते रहना। उ० २. कीजहु इहै बिचार निरंतर राम समीप सुकृत नहिं थोरे। (गी०२।११) कीजअ–(सं० कृ)–१. करें, हम करें, २. कीजिए, करो। उ० १. कीजिअ काजु रजायसु पाई। (मा० २।३८।१) कीजिए–दे० 'कीजिये'। उ० गहि बाँह सुरनर नाह आपन दास अंगद कीजिए। (मा० ४।१०। छं० २) कीजिय–दे० 'कीजिअ'। उ० २. तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिय मुनिवर बानी। (कृ० ४८) कीजिये–करिए, 'करना' क्रिया का आदरार्थ आज्ञासूचक रूप। कीजे–कीजिए। उ० गै निसि बहुत सयन अब कीजे। (मा० १।१६६।४) कीजै–१. कीजिए, किया करिए, २. कर रहे हैं। उ० २. हरष समय बिसमउ कत कीजै। (मा० २।७७।२) कीनि–किया। उ० जातिहीन अघ-जनम महि, मुकुत कीनि असि नारि। (दो० १५६) कीन्ह–किया, किया है। उ० जौं तुम्हरें मन छाड़ि छहु कीन्ह रामपद ठाउँ। (मा० २।७४) कीन्हा–किया, किया है। उ० केवट उतरि दंडवत कीन्हा। (मा० २।१०२।१) कान्हि–किया, किया है। उ० कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी। (मा० १।५०।१) कीन्हिउँ–की, की थी, की है। उ० आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा। (मा० १।२५७।४) कीन्हिसि–की। उ० उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। (मा० ५।१६।५) कीन्हिहु–किया, किया है। उ० कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा। (मा० १।४७।२) कीन्ही–की। उ० एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही। (मा० २।१७०।३) कीन्हे–१. किए, २. करने पर, करने से। उ० २. जे अब तिय बालक बध कीन्हें। (मा० २।१६७।३) कीन्हेउँ–दे० 'कीहिन्उँ'। कीन्हेउ–किया, किया था। उ० हमरे जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ। (जा० ७५) कीन्हेसि–किया। उ० कीन्हेसि अस जस करइ न कोई। (मा० २।५१।२) कान्हेहु–किया। उ० अब अति कीन्हेहु भरत भल, तुम्हहि उचित मत एहु। (मा० २।२०७) कीन्ह्यौ–किया। उ० कीन्ह्यौ गरलसील जो अंगा। (वै० ४७) कीबी–कीजिए, करें, कीजिएगा। उ० कीबी छमा नाथ आरति तें कहि कुजुगुति नई है। (गी० २।७८) कीबे–करना, कीजिएगा। उ० मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि० ३३) कीबो–किया जायगा, करेंगे, करूँगा। उ० ऊधोजू कह्यो तिहारोइ कीबो। (कृ० ३४) कीय–किया हुआ, किया, करनी। उ० परखी पराई गति, आपने हूँ कीय की। (वि० २६३) कुरु (१)–(सं०) करो। उ० भक्ति प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च। (मा० ५।१।श्लो०२) कुर्वंति–(सं०)–करते हैं, कर रहे हैं। उ० अरुण-पदकंज-मकरंद-मंदाकिनी मधुप-मुनिवृंद कुर्वंति पानम्। (वि०६०)

कर (२)–(सं०)–१. हाथ, २. हाथी की सूँड़, ३. किरण, ४. प्रजा से राजा द्वारा लिया जानेवाला अंश, महसूल, ५. पत्थर। उ० १. बिबुध बिप्र बुध गृह चरन बंदि कहउँ कर जोरि। (मा० १।१४६) ३. महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर। (मा० १।५) ४. जनु देत इतर नृप कर-बिभाग। (गी० २।४६) करकर (१)–हाथों हाथ, हर एक के पास। उ० तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर-कर न बिकतो। (वि० १५१) करगत–हाथ में, मुट्ठी में, अधिकार में। उ० करगत वेदतत्त्व सबु तोरें।(मा० १।४५।४) कर-गुन–हस्त (कर) से तीन नक्षत्र, अर्थात्, हस्त, चित्रा और स्वाती। उ० सुति-गुन कर-गुन,पु-जुग-मृग, हय, रेवती सखाउ। (दो०४५६) करतल–(सं०)-१. हाथ का तल, हथेली, २. हाथ में, अधिकार में। उ० २. तुलसी फल चारो करतल, जस गावन गई-बहोर को। (वि० ३१) करतलगत–प्राप्त प्राप्त, हाथ में, हथेली पर रखा हुआ। उ० करतलगत न परहिं पहिचानें। (मा० १।२१।३ करन्हि–हाथों में। उ० कनकथार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिएँ मात। (मा० १।३४६) करसम्पुट–१. जुड़ा हाथ, २. अंजलि, अँजुरी।

कर (३)–(सं० कृतः)–संबंध कारक का चिह्न, का। उ० जग विस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु। (मा० १।१२१)

करक (१)–(ध्व०)–पीड़ा, रुक-रुककर होनेवाली पीड़ा, कसक। उ० जानै सोई जाके उर कसकै करक सी। (गी० १।४२) करकैं–'करक' का बहुवचन। दे० 'करक'। उ० बारहिं बार अमरषत करषत करकैं परीं सरीर। (गी० ५।२२)

करक (२)–(सं०)–१. कमंडलु, २. अनार, ३. पलास, ४. करील, ५. मौलसिरी, ६. ठठरी।

करकर (२)–(ध्व०)–किर-किरा, दरदर।

करकस–(सं० कर्कश)–१. कठोर, कड़ा, २.टेढ़ा, ३. मुश्किल, कठिन। उ० २. कहौं न कबहूँ करकस भौंहँ कमान। (ब० १२)

करके–करकने लगे, करक या पीड़ा उत्पन्न कर दी। उ० सर सम लगे मातु उर करके। (मा० २।५४।१)

करखइ–(सं० कर्षण)–१. खिंच गया, २. खिंचता था। उ० १. बहुरि निरखि रघुबरहिं प्रेम मन करखइ। (जा० ८८)

करक्खत–खींचते हैं। उ० कतहुँ बाजि सों बाजि, मर्दि गजराज करक्खत। (क० ६।४७)

करछुली–(तु० सं० कर+रक्षा)–लोहे या पीतल आदि का द्रव पदार्थ निकालने के लिए चम्मच की तरह का एक पात्र, कलछुल, कलछी। उ० लकड़ी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि। (दो० ५२६)

करज–(सं०)–१. नख, नाखून, २. उँगली, अंगुलि, ३. करंज, कंजा। उ० २. अरुन पानि नख करज मनोहर। (मा० ७।७७।१)

करटा–(सं० करट)–कौआ, काग। उ० कटु कुठाय करटा रटहिं, फेकरहिं फेरु कुभाँति। (प्र० ३।१।५)

करणं–(सं०)–करनेवाले। उ० भुवन-पर्यंत पद-तीनिकरणं। (वि० ५२) करण (१)–(सं०)–१. कार्य सिद्धि का उपाय, साधन, २. हथियार, ३. इन्द्रिय, ४. देह, ५. स्थान, ६. हेतु, कारण, ७. पतवार, ८. कर्त्ता, करनेवाला, ९. क्रिया, कार्य। उ० ६. जयति संग्राम-सागर-भयंकर-तरण-रामहित -करण-बरबाहु-सेतू। (वि० ३८)

करण (२)-(सं० कर्ण) -१. कान, २. महाभारत का एक प्रसिद्ध योद्धा।
करणीय-(सं०)-करने योग्य, कर्तव्य।
करतब-(सं० कर्त्तव्य) -१. कार्य, करनी, करतूत, २. कला, हुनर, ३. करामात, जादू। उ० १. अब तौ कठिन कान्ह के करतब, तुम्ह हौ हँसति कहा कहि लीबो? (कृ० ६)
करतबु-दे० 'करतब'। उ० १. जौं अंतहुँ अस करतब रहेउ। (मा० २।३५।२)
करतब्य-(सं० कर्तव्य)-जिसका करना आवश्यक हो, कर्तव्य। उ० सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। (मा० २।६६।१)
करतव्य-दे० 'करतब्य'।
करता-दे० 'कर्ता'। उ० २. जो करता भरता हरता सुर साहिब, साहब दीन दुनी को। (क० ७।१४६)
करतार-(सं० कर्त्तार)-१. सृष्टि करने वाला, ब्रह्मा, २. ईश्वर, भगवान्। उ० २. बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार। (मा० २।११६)
करतारा-दे० 'करतार'। उ० १. अबधौं कहा करिहि करतारा। (मा० ६।१८।५)
करतारी-(सं० कर+ताल)-हाथ की ताली, थपड़ी। उ० रामकथा सुंदर करतारी। (मा० १।११४।१)
करताल-(सं०)-१. एक बाजा, २. हाथ की ताली, थपड़ी। उ० २. कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत। (क० १।४)
करतालिका-दे० 'करताल'। उ० २. उड़त अघ बिहग सुनि ताल करतालिका। (वि० ४८)
करताला-दे० 'करताल'।
करतूत-१. कर्म, करनी, २. कारीगरी, कला, हुनर।
करतूति-दे० 'करतूत'। उ० १. कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति-कला सी। (वि० २२)
करतूती-दे० 'करतूत'। उ० २. जनु एतनिअ बिरंचि करतूती। (मा० २।१।३)
करदा-(फा० गर्द)-धूल, कूड़ा। उ० राँकसिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है। (क० ७।१५५)
करन (१)-(सं० कर्ण)-दे० 'करण (२)'
करन (२)-(सं० कर)-१. हाथों को, २. हाथों से।
करन (३)-(सं० करण)-दे० 'करण (१)' तथा 'करण (२)' उ० २. (करण २)-निदहि बलि हरिचंद को का कियो करन दधीच? (दो० ३८२)
करनघंट-(सं० कर्ण+घंटा)-काशी में एक पवित्र स्थान जहाँ एक प्रसिद्ध शंकर-उपासक घंटाकर्ण रहता था। उ० लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी। (वि० २२) विशेष-घंटाकर्ण या करनघंट शिवजी के एक उपासक का नाम था। ये उपासक विष्णु आदि किसी दूसरे का नाम सुनना पसंद न करते थे इसीलिए अपने कानों में घंटा बाँधकर चला करते थे जिससे उसकी गंभीर ध्वनि के कारण अन्य ध्वनि इन्हें कर्णगोचर न हो। इसी कारण इनका नाम घंटाकर्ण था। घंटाकर्ण काशी में रहते थे। आज भी इनका स्थान इसी नाम से पुकारा जाता है और शिव-भक्तों के लिए एक पवित्र तीर्थस्थान है।
करनधार-(सं० कर्णधार)-नाविक, मल्लाह, माँझी। उ० करनधार बिनु जिमि जलजानू। (मा० २।२७७।३)
करनबेध-(सं० कर्णवेध)-बच्चों के कान छेदने का एक संस्कार या रीति। उ० करनबेध उपबीत बिआहा। (मा० २।१०।३)
करनलिपि-(सं० करण+लिपि) १. लिपि कर्ता, २. भाष्यकार, अर्थ करनेवाला। उ० १. तथा २.जयति निगमागम-ब्याकरन-करनलिपि काव्य-कौतुक-कला-कोटि-सिंधो। (वि० २८)
करनहार-करनेवाला, कर्ता। उ० करनहार करता सोई भोगै करम निदान। (स० ३७८)
करना (१)-(सं० कर्ण)-सुदर्शन, एक फूल।
करना (२)-(सं० करुण)-एक पहाड़ी नीबू, जो गोल न होकर लंबा होता है।
करना (३)-सं० करण)-किया हुआ काम।
करनि (१)-दे० 'करनी'। उ० १. सब विपरीत भए माधव बिनु, हित जो करत अनहित की करनि (कृ० ३०)
करनि (२)-(सं० कर)-१. हाथों से, २.हाथों में। उ० १. लेति भरि-भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहुँ करनि। (गी० १।२५)
करनिहार-करनेवाला, कर्ता, बनानेवाला। उ० बिधि से करनिहार। (गी० ५।२५)
करनी-१. कर्म, करतूत, करतब, २. मृतक संस्कार, अंत्येष्टि कर्म। ३. स्थिति। उ० २. पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। (मा० २।१७१।१)
करनीय-(सं० करणीय)-करने योग्य, कर्तव्य।
करनीया-करता है, करनेवाला है। उ० अब धौं बिधिहि काह करनीया। (मा० १।२६७।४)
करनू-करनेवाला। उ० मधुर मंजु मुद मंगल करनू। (मा० २।३२६।३)
करपल्लव-(सं०)-१. उँगली, २. हथेली।
करपुट-(सं० कर+पुट)-दोनों हाथ की हथेलियाँ, जोड़ा या मिला हुआ हाथ। उ० १. जोहि जानि जपि जोरि कै करपुट सिर राखे। (गी० १।६)
करबर-दे० 'करवर'।
करबाल-(सं०)-तलवार, कटारी। उ० जोगिनि गहें करबाल। (मा० ६।१०१। छं० २)
करभ-(सं०)-१. हाथी का बच्चा, २. ऊँट का बच्चा, ३. हथेली के पीछे का भाग, करपृष्ठ, ४. ऊँट, ५. कमर। करभहि-१. हाथी के बच्चे को, २.ऊँट या ऊँट के बच्चे को। उ० १. उरु करि-कर करभहि बिलखावति। (गी० ७।१७)
करम (१)-(सं० कर्म) १. कर्म, काम, करनी, २. कर्म का फल, भाग्य, किस्मत, ३. कर्मकांड, पूजा आदि, ४. पुण्य। उ० ३. करम उपासना कुबासना बिनास्यो, ज्ञान बचन, बिराग बेष जगत हरो सो है। (क० ७।८४) ४. चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी। (वि० २२) करमन-'करम' का बहुबचन। उ० १.करमन कूट की, कि जंत्र मंत्र बूट की। (ह० २६) करमबिपाकु-(सं० कर्म+विपाक)-कर्म का फल। उ० कुसमय जाय उपाय सब, केवल करमबिपाकु। (प्र० ७।६।५)

करम (२)–(अ०)–दया, कृपा।

करम (३)–(सं० क्रम)–एक-एक, तरतीब । उ० भजन बिबेक बिराग लोग भले करम-करम करि ल्यावौं। (वि० १४५)

करमचँद–कर्म, कर्म के लिए व्यंग्योक्ति। उ० हमहिं दिहल करि कुलिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे। (वि० १८७)

करमठ–(सं० कर्मठ)–दे० कर्मठ। उ० २. करमठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान बिहीन। (दो० ६६)

करमनास–(सं० कर्मनाशा)–एक नदी जो चौसा के पास गंगा से मिली है। उ० करमनास जलु सुरसरि परई। (मा० २।१६४।४) विशेष–लोगों का विश्वास है कि इसके जल के स्पर्श से पुण्य का नाश हो जाता है। इसके लिए कई कारण बतलाए जाते हैं। (१) यह नदी राजा त्रिशंकु के लार से उत्पन्न हुई है। (२) रावण के मूत्र से इसकी उत्पत्ति है। (३) किसी अंश तक यह मगध (मगह) की सीमा बनाती है। प्राचीन काल में ब्राह्मण आदि सनातनी इसे पार कर मगध में प्रवेश नहीं करते थे। इसी कारण यह अशुद्ध मान ली गई।

करमाली–(सं०)–सूर्य, किरणों की माला धारण करनेवाला।

करमी–कर्म करनेवाला। उ० करमी, धरमी, साधु, सेवक बिरत, रत। (वि० २५६)

करमु–दे० 'करम (१)'। उ० २. फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। (मा० २।२०।२)

कररत–(ध्व०)–कर्कश शब्द करता है। उ० कुहू कुहू कलकंठ रव, काका कररत काग। (दो० ४३६)

करवत–(सं० करवर्त)–हाथ के बल लेटने की मुद्रा। मु० करवट लीन्ह–एक करवट बदलकर दूसरी करवट ली। उ० गई मुरुछा रामहि सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह। (मा० २।४३)

करवर–(?)–विपत्ति, संकट, कठिनाई। उ० आजु परी कुसल कठिन करवर तें। (कृ० १७) करवरें–विघ्नों को, बाधाओं को। उ० ईस अनेक करवरें टारीं। (मा० १।३५७।१)

करवा–(सं० करक)–पानी रखने का टोंटीदार मिट्टी या धातु का बर्तन। उ० पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है। (क० ७।५६)

करवाई–कराई करवायी। उ० महामुनिन्ह सो सब करवाई। (मा० १।१०१।१) करवाउब–कराऊँगा, करवाऊँगा, करा दूँगा, करा देंगे। उ० करवाउब बिबाहु बरिआई। (मा० १।८३।३) करवाए–करा दिए। उ० मुनिन्ह सकल सादर करवाए। (मा० १।१४३।४) करवायउ–करवाया, कराया। उ० मारि निसाचर-निकर यज्ञ करवायउ। (गी० ४२) करवावहिं–१. करवाते थे, कराते थे, २. करवाते हैं। उ० १. साधुन्ह सन करवावहिं सेवा। (मा० १।१८४।१) करवावा–कराया, करवाया। उ० बिबिध भाँति भोजन करवावा। (मा० १।२०७।२)

करवाल–(सं०) तलवार।

करवालिका–(सं०)–छोटी तलवार, कटार।

करष–(सं० कर्ष)–१. खिचाव, मनमोटाव, २. विरोध, झगड़ा, ३. क्रोध, ४. ताव, जोश। उ० १. कंत करष हरि सन परिहरहू। (मा० ६।३६।३) २. बातहिं बात करष बढ़ि आई। (मा० ६।१८।२)

करषक–(सं० कृषिक)–किसान, हलवाहा।

करषत–(सं० कर्ष)–१. खींचता है, खीचते हैं, २. बढ़ता है, बढ़ता, ३. खींचते हुए, ४. खिचता है। उ० १. बारहिं बार अमरषत करषत करकैं परीं सरीर। (गी०५।२२) करषहिं–खीचते हों, खींचते हैं। उ० मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं। (मा० १।३४७।१) करषा–(१)–खींचा। करषि–खींचकर, खींच। उ० १. निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्ह। (मा१।१३७) करषी–१. खींची, २. खिच गई। उ०२. सुनि प्रबचन मोहँ मति करषी। (मा० २।१०१।३) करषैं–१. खींचें, अपनी ओर खींचें, २. बटोरें, ३. निमंत्रित करें, बुलावें, ४. सुखावें। करषै–खींचे, खींचता है। उ० बिप्रचरन चित कहँ करषै। (वि० ६३)

करषतु–दे० 'करषत'।

करषा (२)–दे० 'करष'। उ० ४. एकहि एक बढ़ावइ करषा। (मा० २।१६१।१)

करसइ–(सं० कर्षण)–१. खिचता है, २. खींचता है।

करसी–(सं० करीष)–१. कंडों की आग, २. उपले का चूर। उ० १. गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गए लै करसी प्रयाग कब सीभे? (वि० २४०) विशेष–लोगों का विश्वास है कि कंडी की आग में जल मरना भारी तप है। इसके अतिरिक्त पंचाग्नि भी कंडों या उपलों के पाँच ढेर के बीच में बैठ कर ली जाती है। इस प्रकार करसी से दोनों ही अर्थ लिए जा सकते हैं।

करह–(सं० कलिः)–कली, नई कोपल। उ० दसरथ सुकृत-मनोहर-बिरवनि रूप-करह जनु लाग। (गी० १।२६)

कराइ–कराकर, करवाकर। उ० तब असोक पादप पर राखिसि जतन कराइ। (मा० ३।२९क) कराई (१)–१. कराया, करवाया, २. करवाकर, कराकर। उ० २. नृपहि नारि पहिं सयन कराई। (मा० १।१७१।४) कराएहु–कराना, कराते रहना। उ० बार बार रघुनाथ कहि सुरति कराएहु मोरि। (मा० ७।१९क) करायहु–कराया, करवाया। उ० सुरन्ह प्रेरि बिषपान करायहु। (मा० १।१३६।४) कराव–१. करवाया, २, करवाओ। उ० १. गोद राखि कराव पयपाना। (मा० ७।८८।४) करावन–कराना। उ० चले जनकमंदिर मुदित बिदा करावन हेतु। (मा० १।३३४) करावहु–करवाओ, कराओ। उ० लरिका श्रमित उनीद बस, सयन करावहु जाइ। (मा० १।३५५) करावा–करवाया, कराया। उ० सीय बोलाइ प्रनामु करावा। (मा० १।२६६।२) करावौं–बनवाऊँ, तैयार करवाऊँ। उ० निज कर खाल खैंचि या तनु तें जौ पितु पग पानही करावौं। (गी० २।७२) कराहिं–१. करते हैं, बनाते हैं २. बनवाते हैं। उ० २. अति अपार जे सरितबर जौं नृप सेतु कराहिं। (मा० १।१३) कराहीं–करते हैं। उ० जे मनि लागि सुजतन कराहीं। (मा० ७।१२०।५)

कराई (२)-(सं० किरण=कण)-सूप में अन्न रखकर फटकने पर निकल हुई खुद्दी-भूसी आदि।
कराई (३)-(सं० काल)-कालापन, श्यामता।
करामाति-(अर० करामत)-आश्चर्यजनक कार्य, चमत्कार। उ० कासी करामाति जोगी जागत मरद की। (क० ७।१५८)
करारा (१)-(सं० कराल)-ऊँचा तथा दुर्गम किनारा, किनारा। उ० लखन दीख पय उतर करारा। (मा० २।१३३।१) करारे-किनारे, किनारे पर। उ० सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े। (क० २।५)
करारा (२)-(सं० करट)-कौआ। उ० रटहिं कुभाँति कुखेत करारा। (मा० २।१५८।२)
करारा (३)-(सं० कटक)-१.कड़ा, २.भयंकर, ३. दृढ़चित्त।
कराल-(सं०)-१. भयानक, डरावना, भयंकर, २. ऊँचा, लंबा, ३. कठिन, कठोर। उ० १. लखी महीप कराल कठोरा। (मा० २।३१।२)
कराला-दे० 'कराल'। उ० १. रामकथा कालिका कराला। (मा० १।४७।३)
करालिका-भयावनी, डरावनी, विकराल रूप धारण करने वाली। उ० धरनि, दलनि दानवदल रनकालिका। (वि० १६)
कराह (१)-(सं० कटाह)-बड़ी कड़ाही, कड़ाहा। उ० घृत पूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिंब दिखावै। (वि० ११५)
कराह (२) (?)-पीड़ा के आह, उह आदि शब्द, दुःख में निकले शब्द।
कराहत-(करना+सं० अहह) कराहते हैं, आह करते हैं, दुःख प्रकट करते हैं। उ० भूमि परे भट घूमि कराहत। (क० ६।३२)
कराही-(सं० कटाह)-छोटा कड़ाह, कड़ाही। उ० कनक-कराही लंक तलफति ताय सों। (क० ५।२४)
करि (१)-(सं० करिन्)-हाथी। उ० जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबरबदन। (मा० १।१)
करि (२)-(?)-रुचि।
करि (३)-(?)-को। उ० सत्रु न काहू करि गनै। (वै० १३)
करिआ-(सं० काल)-काला, श्याम। उ० करिआ मुह करि जाहि अभागे। (मा० ६।४६।१)
करिण-(सं० करिणी)-हाथी। करिणी-(सं०)-हथिनी, हस्तिनी।
करिणि-दे० 'करिणी'।
करिनि-दे० 'करिनी'। उ० फरत करिनि जिमि हतेउ समूला। (मा० २।२६।४)
करिनीं-(सं० करिणी)-हाथिनियाँ, हथिनियों को। उ० संग लाइ करिनीं करि लेहीं। (मा० ३।३७।४)
करिया (१)-दे० 'करिआ'।
करिया (२)-(सं० कर्ण)-१. पतवार, २. मल्लाह, पार लगाने वाला। उ० २. तुलसी करिया करम बस बूड़त तरत न बार। (सं० १२६)
करीं-करनेवाले को। उ० सर्व श्रेयस्करीं सीता न तोऽहं रामबल्लभाम्। (मा० १।१।श्लो०५) करी-(३)-करनेवाली, करनेवाले। उ० निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बसकरी। (मा० ३।२६।छं०१)
करी (२)-(सं० करिन्)-हाथी, गज।
करीर-(सं०)-१. बाँस का अँखुवा, २. करील का पेड़।
करील-(सं० करीर)-ऊसर और कंकरीली भूमि में होनेवाली एक झाड़ी जिसमें पत्ती नहीं होती। ब्रज में यह झाड़ी बहुत पाई जाती है।
करीला-दे० 'करील'। उ० सोह कि कोकिल बिपिन करीला। (मा० २।६३।४)
करीसहिं-(सं० करीश)-गजराज को। दे० 'गजराज'। उ० सोक-सरि बूड़त करीसहिं दई काहु न टेक। (वि०२१७)
करुआई-(सं० कटुक)-कडुआपन। उ० भूमउ तजइ सहज करुआई। (मा० १।१०।५)
करुइ-कडुई, अमधुर। उ० ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई। (मा० ३।१६।२)
करुई (१)-दे० 'करुइ'।
करुई(२)-(सं० करक)-टोंटीदार बर्तन, छोटा करवा।
करुण-(सं०)-१. करुणा उत्पन्न करनेवाला, करुणायुक्त, २. काव्य के नव रसों में से एक रस, जिसका स्थायी भाव शोक है।
करुणा-(सं०)-दूसरे का दुःख देखने पर पैदा हुआ मनोविकार, दया, रहम।
करुन-दे० 'करुण'। उ० २. मनहुँ करुनरस कटकई उतरी अवध बजाइ। (मा० २।४६)
करुना-दे० 'करुणा'।
करेजो-(तु० सं० यकृत, फा० जिगर)-कलेजा, हृदय। उ० पै करेजो कसकतु है। (क० ६।१६)
करेर-(सं० कठोर)-कड़ा, कठिन, दृढ़।
करेरी-कड़ी, कठोर, खरी। उ० वाहि न गनत बात कहत करेरी सी। (क० ६।१०)
करेरो-कड़ा। उ० हौं न कबूलत बाँधि कै मोल करत करेरो। (वि० १४६)
करैया-करनेवाला, कर्ता। उ० माया जीव काल के, करम के, सुभाव के, करैया राम, बेद कहैं, साँची मन गुनिए। (ह० ४४)
करोरि-(सं० कोटि)-करोड़, सौ लाख, अगणित। उ० नाथ की सपथ किए कहत करोरि हौं। (वि० २५८)
करोरी-दे० 'करोरि'। उ० जिअहु जगतपति बरिस करोरी। (मा० २।५।३)
कर्कश-(सं०)-१. तलवार, २. कड़ा, कठोर, ३. खुरखुरा, काँटेदार, ४. तेज, प्रचंड, ५. अधिक।
कर्कस-दे० 'कर्कश'। उ० ३. जयति बालार्क-बर-बदन, पिंगल नयन, कपिस-कर्कस-जटाजूटधारी। (वि० २८)
कर्ण-(सं०)-१. कान, २. कुंती का सबसे बड़ा पुत्र। कुंती के कन्याकाल में यह सूर्य के अंश से उत्पन्न हुआ था। महाभारत युद्ध में कर्ण कौरवों की ओर था।
कर्णधार-(सं०)-१. नाविक, मल्लाह, पतवार थामनेवाला, २. पतवार।
कर्णघंट-(सं०)-दे० 'करनघंट'।

कर्णलिपि—(सं०)—दे० 'करनलिपि'।
कर्णिका—(सं०)—१. कान का एक गहना, कर्णफूल, २. कमल का छत्ता, ३. कलम, लेखनी, ४. हाथ की बिचली अँगुली, ५. सफेद गुलाब, ६. हाथी के सूँड़ की नोक।
कर्तब—(सं० कर्त्तव्य)—करने योग्य, करणीय।
कर्तव्य—(सं० कर्त्तव्य)—करने योग्य, करणीय।
कर्ता—(सं०कर्त्ता)—१. करनेवाला, २. सृष्टि की रचना करनेवाला। उ० २. जो कर्ता पालक संहर्ता। (मा० ६।७।२)
कर्तार—(सं० कर्त्तार)—१. करनेवाला, बनानेवाला, २. विधाता, ब्रह्मा, ३. ईश्वर। कर्त्तारौ—(सं०)—दोनों कर्त्ताओं को। उ० मंगलानांच कर्त्तारौ वंदे वाणीविनायकौ। (मा० १।१। श्लो० ३)
कर्द—(सं०)—कर्दम, कीचड़।
कर्दम—(सं०)—१. कीचड़, २. पाप, ३. मांस, ४. छाया, ५. एक प्रजापति, जो सूर्य और छाया के पुत्र से पैदा हुए थे। इनकी पत्नी का नाम देवहूति और पुत्र का नाम कपिल था। उ० ५. जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी। (मा० १।१४२।३)
कर्निका—(सं० कर्णिका)—दे० 'कर्णिका'।
कर्पूर—(सं०)—कपूर। एक सफ़ेद रंग का सुगंधित द्रव्य जो दवा तथा पूजा आदि के काम में आता है। उ० कर्पूरगौर करुना उदार। (वि० १३)
कर्म—(सं०)—वह जो किया जाय, कार्य। दे० 'करम'। कर्मना—(सं० कर्मणा)—कर्म से। उ० मनसा वाचा कर्मना, तुलसी बंदत ताहि। (वै० २६) कर्महि-कर्म पर, कर्म को। कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ। (मा० ७।४३)
कर्मठ—(सं०)—१. कर्मनिष्ठ, जी तोड़कर काम करनेवाला, २. कर्मकांड करनेवाले।
कर्मनाश—दे० 'करमनास'।
कर्मनासा—दे० 'करमनास'।
कर्मा—१. दे० 'कर्म'। काम, कार्य, २. करनेवाला, कर्मी। जैसे क्रूरकर्मा। उ० १. सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। (मा० ७।१०४।२)
कर्मी—कर्म करनेवाला, किसी फल की इच्छा से यज्ञादि कर्म करनेवाला।
कर्ष—(सं०)—१. उमंग, जोश, ताव, २. खिंचाव, घसीटना, ३. झगड़ा, तनाव, बैर।
कर्षण—१. खींचना, २. जोतना, खेती करना, ३. खींचनेवाला।
कर्षन—दे० 'कर्षण'। उ० ३. जयति मंदोदरी-केसकर्षन विद्यमान-दसकंठ-भटमुकुट-मानी। (वि० २६)
कर्षा—दे० 'कर्ष'।
कलंक—(सं०)—दे० 'कलंका'।
कलंका—(सं० कलंक)—१. दाग, धब्बा, २. लांछन, बदनामी, दोष। उ०२. मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका। (मा० १।९७।४)
कलंकू—दे० 'कलंका'।
कल (१)—(सं०)—१. मधुर ध्वनि, मधुर, कोमल, २. सुंदर, मनहर, ३. बीज। उ० १. कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं, काम कोकिल लाजहीं। (मा० १।३२२। छं० १)
कल (२)—(सं० कल्य)—१. नैरोग्य, आरोग्यता, २. आराम, सुख, चैन, ३. आनेवाला दिन, ४. बीता हुआ दिन, ५. संतोष, तुष्टि।
कल (३)—(सं० कला)—१. कला, २. युक्ति, ढंग।
कल (४)—(?)—यात्रा।
कलई—(अर० क़लई)—१. राँगा, राँगे का पतला लेप जो बर्तन पर देते हैं। २. तड़क-भड़क के लिए कोई लेप, ३. बाहरी शोभा या चमक, ४. चूना। उ० ३. साँति सत्य सुभ रीति गई घटि-बढ़ी कुरीति कपट-कलई है। (वि० १३९)
कलकंठ—कोयल। उ० काक कहहि कलकंठ कठोरा। (मा० १।९।१) कलकंठि—मधुर कंठवाली, कोयल। उ०दे० 'कंठि'।
कलत्र—(सं०)—१. स्त्री, पत्नी, २. नितंब, चूतड़, ३. दुर्ग, गढ़। उ० १. देह, गेह, सुत, बित, कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किए जस। (वि० २०४)
कलधौत—(सं०)—१. सोना, स्वर्ण, २. चाँदी, ३. सुंदर ध्वनि। उ० १. जयति कलधौत-मनि मुकुट-कुंडल। (वि० ४४)
कलन—(सं०)—१. उत्पन्न करना, बनाना, २. धारण करना, ३. आचरण, ४. लगाव, संबंध, ५. गणित की क्रिया, ६. कौर, ग्रास, ७. ग्रहण, ८. बेंत, ९. गर्भ संबंधी एक क्रिया या विकार।
कलप—(सं० कल्प)—दे० 'कल्प'। उ० १. जदुपति मुखछबि कलप कोटि लगि, कहि न जाइ जाके मुख चारी। (कृ० २२)
कलपत—(सं० कल्पन)—१. विलाप करता, रोता, बिलखता, २. सोचता। उ०१. करम-हीन कलपत फिरत। (स०११६) कलपि—१. विचार कर, २. कल्पना कर, ३. दुःखी होकर, रोकर, ३. रचकर, झूठ-मूठ बनाकर। उ० १. फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कलपि कुटिलता मोरि। (गी० २।७०) ३. कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। (मा० २।२२८।३)
कलपतरु—दे० 'कल्पतरु'। उ० कोसलपाल कृपालु कलपतरु द्रवत सकृत सिर नाए। (वि० १६३)
कलपना—(सं० कल्पना)—दे० 'कल्पना'। उ० १. जागि करहिं कटु कोटि कलपना। (मा० २।१५७।३)
कलपबल्ली—दे० 'कल्पबल्ली'। उ० तेरि कुमति कायर कलप-बल्ली चहति बिषफल फली। (वि० १३५)
कलपबेलि—दे० 'कल्पबेलि'। उ० कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। (मा० २।५९।२)
कलपलता—दे० 'कल्पलता'। उ० सींची मनहुँ सुधारस कलपलता नई। (जा० १६)
कलपित—दे० 'कल्पित'। उ० १. मिटी मलिन मन कलपित सूला। (मा० २।२६७।१)
कलबल (१)—(सं० कला + बल)—दाँव-पेंच, अस्पष्ट उपाय, छल। उ० कलबल छल करि जाय समीपा। (मा० ७।११८।४)
कलबल (२)—(ध्व०)—१. शोर-गुल, २. बच्चों की अस्पष्ट बोली। उ० २. कलबल बचन तोतरे बोलत। (गी० १।२८)
कलभ—(सं०)—१. हाथी का बच्चा, २. हाथी, ३. ऊँट का बच्चा। उ० १. काम कलभ कर भुज बलसींवा। (मा० १।२३३।४)

कलमले–(ध्व० कलमलाना)–कलमलाए, छटपटाए, हिले डुले, छटपटा उठे। उ०चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले। (मा० १।२६१। छं० १) कलमल्यो–दे० 'कलमल्यौ'। कलमल्यौ–छटपटाए, हिले डुले। उ० कोल कमठ अहि कलमल्यौ। (क० १।११)

कलरव–(सं०)–१. मधुर शब्द, २. कोयल, ३. कबूतर। उ० १. नूपुर किंकिनि कलरव-बिहंग। (वि० १४)

कलवार–(सं० कल्यपाल)–शराब बनाने और बेचनेवाली एक जाति।

कलवारा–दे० 'कलवार'। उ० स्वपच किरात कोल कलवारा। (मा० ७।१००।३)

कलश–(सं०)–१. घड़ा, गागर, २. शुभ अवसरों पर पानी भर कर रखा जानेवाला घड़ा, ३.मन्दिर आदि के शिखर पर लगा हुआ पीतल आदि का कंगूरा, ४. चोटी, सिरा, प्रधान, ५. ८ सेर के बराबर की एक तौल।

कलस–दे० 'कलश'। उ० २. मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे। (मा० १।१९१।४) कलसजोनि–(सं० कलश+योनि)–घड़े से पैदा होनेवाले अगस्त्य ऋषि। दे० 'अगस्ति'। उ० कलसजोनि जिय जानेउ नामप्रतापु। (ब० ५५) कलसभव–कलस या घड़े से होनेवाले अगस्त्य ऋषि। दे० 'अगस्ति'। उ० सकुचि सम भयो ईस-आयसु-कलसभव जिय जोइ। (गी० ५।५)

कलहंस–(सं०)–१. हंस, २. राजहंस, ३. श्रेष्ठ राजा, ४. परमात्मा, ब्रह्म। उ० १. सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक। (गी० १।३४)

कलह–(सं०)–१. विवाद, झगड़ा, २. रास्ता, पथ, ३. तलवार की म्यान। उ०१. कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। (मा० २।१६८।१)

कलहीन–कलारहित, अकलात्मक।

कला–(सं०)–१. अंश, भाग। २. चंद्रमा का १६ वाँ भाग। चंद्रमा की अमृता, मानदा, पूषा आदि १६ कलाएँ मानी गई हैं। ३. सूर्य का १२ वाँ भाग, ४. किसी कार्य को करने का कौशल, हुनर। कामशास्त्र के अनुसार ६४ कलाएँ हैं। उपयोगी तथा ललित कला। ५. शोभा, ६. ऐश्वर्य, ७ बहाना, ८. कपट, ९. खेल। उ० ४. सकल कला सब विद्या हीनू। (मा० १।९।४) कलातीत–कलाओं से परे, ईश्वर।

कलाधर–(सं०)–१.कलाओं के धारण करनेवाले, चंद्रमा,२. शिव। उ० २. ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल, कलाधर, नौमि हर धनद-मित्रं। (वि० ११)

कलाप–(सं०)–१. झुंड, २ मोर की पूँछ, ३. बाण, ४. तरकश, ५. करधनी, ६. चंद्रमा, ७. व्यापार, ८ आभूषण। उ० २.कँधे कलाप बर बरहि फिरावत, गावत, कल कोकिल-किसोर। (गी० ३।१)

कलापा–दे० 'कलाप'। उ० १. बरनि न जाहिं बिलाप कलापा। (मा० २।५७।४)

कलापी–(सं० कलापिन्)–१. मोर, २. कोकिल, ३. बट।

कलिंद–(सं०)–१. सूर्य, २. एक पर्वत जिससे यमुना निकली हैं।

कलिंदजा–(सं० कलिंद+जा) सूर्य-पुत्री या कलिंद पर्वत से निकलने वाली जमुना नदी। उ० जनु कलिंदजा सुनील सैल तें धसी समीप। (गी० ७।७)

कलिंदजात–दे० 'कलिंदजा'।

कलिंदनंदिनि–कलिंद की पुत्री, यमुना, जमुना नदी।

कलि–(सं०)–१. चार युगों में से अंतिम युग जो ४३-२००० वर्षों का होता है। कलियुग। इसमें अधर्म का प्राधान्य होता है। २. युद्ध, कलह, ३ वीर, ४. पाप, ५. शिव, ६. दुःख, ७. तरकश, ८. काला, श्याम। उ० १. सकल कलुष कलि साउज नाना। (मा० २।१३३।२)

कलिकाल-(सं०)–कलियुग, पाप का समय या युग। उ० कठिन कलिकाल-कानन कृपानुं। (वि० १२) कलिमल–कलियुग का पाप। कलिमलसरि–कलियुग के पापों की नदी। कर्मनाशा नदी। उ० गरल अनल कलिमलसरि ब्याधू। (मा० १।५।४) कलिमलो–कलियुग के पाप भी। उ० नाम-प्रताप दिवाकरकर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो। (गी० ५।४२) कलिहि–१. कलियुग को, २. कलिका को। उ० १. कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं। (मा० ४।१५।५)

कलिका–(सं०)–१. कली, फूल की प्रथमावस्था, २. अंश, भाग, ३. कला, मुहूर्त्त।

कलिजुग–दे० 'कलियुग'।

कलित–(सं०)–१. सुन्दर, सजाया हुआ, २ विदित, ३. प्राप्त। उ० १.कुंजरमनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल। (मा० १।२४३)

कलितरु–बबूल का पेड़, बुरा पेड़, पाप का पेड़। उ० कलितरु कपि निसिचर कहत, हमहिं किए विधि बाम। (दो० २१५)

कलिन–कलियाँ,कली का बहुवचन। कलीं–कली का बहुवचन, कलियाँ। उ० जनु बिगसीं रवि-उदय कनक पंकज-कलीं। (जा० १४८) कली–(सं०)–१ बिना खिला फूल, कलिका, २. अक्षतयोनि कन्या, ३. चिड़ियों का नया पर, ४. वैष्णवों का एक तिलक। उ० १. गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के। (मा० १।२३३।१)

कलियुग–(सं०)–चार युगों में से चौथा जिसकी आयु देवताओं के वर्षों में १२०० वर्ष तथा मनुष्यों के वर्षों में ४३२००० है। कलिजुग।

कलिल–(सं०)–१. मिला-जुला, मिश्रित, २. गहन, दुर्गम, ३. ढेर, समूह। उ० २. मोह कलिल ब्यापित मति मोरी। (मा० ७।८२।४)

कलु–(सं० कल्य)–सुख, चैन।

कलुख–दे० 'कलुष'।

कलुष–(सं०)–१. मलिनता, २ पाप, दोष, ३. क्रोध, ४. भैंसा, ५. मैला, ६. पापी, ७. निंदित। उ० २. बरनउँ रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ। (मा० १।२९ ग)

कलुषाई–१. गदलापन, २. पाप, ३. कालिमा। उ० २. राम-दरस मिटि गइ कलुषाई। (गी० २।४६)

कलेऊ–दे० 'कलेवा'।

कलेवर–(सं०)–शरीर, देह। उ० मरकत मृदुल कलेवर

स्यामा। (मा० ७।७६।३) कलेवरनि–शरीरों से। उ० नीले पीले कमल से कोमल कलेवरनि। (गी० २।३०)

कलेवा–(सं० कल्यवर्त)–१. सवेरे खाया जानेवाला हलका खाना, ठंढा या बासी खाना, २. खाना। उ० २. नाथ सकल जगु काल कलेवा। (मा० ७।९४।४)

कलेश–(सं० क्लेश)–दुःख, पीड़ा, कष्ट।

कलेस–दे० 'कलेश'। उ० काय न कलेस लेस, लेत मानि मन की। (वि० ७१) कलेसन–क्लेशों, दुखों। उ० सकल कलेसन करत प्रहारा। (वै० ४५)

कलेसा–दे० 'कलेस'।

कलेसु–दे० 'कलेस'।

कलेसू–दे० 'कलेस'।

कलोरे–(सं० कल्या)–गाय के बच्चे। उ० मानों हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे। (क० ७।१४४)

कलोल–(सं० कल्लोल)–आमोद-प्रमोद, क्रीड़ा, केलि। उ० ज्यों सुखमा-सर करत कलोल। (गी० १।१६)

कल्कि–(सं०)–विष्णु का दसवाँ अवतार, जिसके संबंध में लोगों की यह धारणा है कि इसका जन्म कुमारी कन्या के गर्भ से होगा।

कल्की–दे० 'कल्कि'। उ० विष्णुयश-पुत्र कल्की दिवाकर उदित दास तुलसी हरन विपति-भारं। (वि० ५२)

कल्प (१)–(सं०)–१. ब्रह्मा का एक दिन जिसमें १४ मन्वंतर या ४३२०००००० वर्ष होते हैं। २. विधि, विधान, ३. वेद का एक अंग, ४. प्रातःकाल, ५. विभाग, ६. उपाय, ७. तुल्य, समान, ८. मनोरथ। उ० १. बहु कल्प उपाय करिय अनेक। (वि० १३) कल्पहिं–१. कल्प को, २. कल्पना करते हैं, गढ़ते हैं, ३. रोते हैं। उ० २. तेहि परिहरहिं बिमोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक। (दो० ५५५)

कल्प (२)–(सं० कल्पना)–१. विचार, कल्पना, २. रचना।

कल्पत–सोचते हैं, विचार करते हैं, कल्पना करते हैं। उ० राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है। (वि० १३९) कल्प–कल्पना कर, निराधार गढ़कर। उ० दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ। (मा० ७।९७ क)

कल्पतरु–(सं०)–कल्पना करते ही या सोचते ही सब वस्तुओं को प्रदान करनेवाला पेड़। कल्पवृक्ष, देववृक्ष। उ० कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस। (क० ७।११५) विशेष–पुराणानुसार कल्पतरु देवलोक का एक पेड़ है जो समुद्र-मंथन के समय निकले १४ रत्नों में से एक है। इसे इंद्र ने लिया था। यह वृक्ष सभी कुछ का दाता समझा जाता है। कल्पद्रुम, कल्पतरु, कल्पवृक्ष, कल्पबेलि, कल्पलता, देवतरु आदि इसके पर्याय हैं। कल्पना करते ही सब कुछ देनेवाला तथा कल्प (१४ मन्वंतर) तक जीवित रहनेवाला होने के कारण यह कल्पतरु या कल्पलता आदि नामों से पुकारा गया है।

कल्पद्रुमं–दे० 'कल्पद्रुम'। उ० काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं। (मा० ६।१।श्लो०२) कल्पद्रुम–(सं०)–दे० 'कल्पतरु'। उ० धर्म-कल्पद्रुमाराम, हरिधाम-पथि-संबलं, मूलमिदमेव एकं। (वि० ४६)

कल्पना–(सं०)–१. विचार, सोचना, २. रचना, बनावट, ३. वह शक्ति जो अनुमान के आधार पर अप्रत्यक्ष वस्तुओं के विषय में भी सोच सकती है। ४. बिना किसी आधार के बना लेना, अनुमान, ५. संकल्प, ६. आरोप, स्थापन, ७. नक़ल, ८. तर्क, ९.दुःख, कष्ट। उ० ६.लोक कल्पना बेदकर, अंग-अंग प्रति जासु। (मा० ६।१४)

कल्पपादप–दे० 'कल्पतरु'।

कल्पबल्ली–(सं० कल्प + वल्लरी)–दे० 'कल्पतरु'।

कल्पबेलि–(सं० कल्पबेलि)–दे० 'कल्पतरु'।

कल्पलता–दे० 'कल्पतरु'।

कल्पसाखी–(सं० कल्प + शाखा)–दे० 'कल्पतरु'। उ० राम विरहार्कसंतप्त-भरतादिनरनारि-सीतल करन-कल्पसाखी। (वि० २७)

कल्पसाषी–दे० 'कल्पसाखी'।

कल्पांत–कल्प का अंत, प्रलय। उ० सकल-लोकांत-कल्पांत शूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी। (वि० ११) कल्पांतकृत–१. प्रलय करनेवाला, २. रुद्र, शिव। उ० १. सत्य संकल्प अतिकल्प कल्पांतकृत, कल्पनातीत अहि-तल्पवासी। (वि० ५४)

कल्पित–(सं०)–१. जिसकी कल्पना की गई हो, २. मनगढ़ंत, मनमाना, ३. बनावटी, नक़ली। उ० २. सब नर कल्पित करहिं अचारा। (मा० ७।१००।५)

कल्मष–(सं०)–१. पाप, २. मैल, ३. एक नरक का नाम, ४. मवाद, पीब। उ० १. साधुपद-सलिल-निर्धूत-कल्मष सकल, स्वपच यवनादि कैवल्यभागी। (वि० ५७)

कल्याण–(सं०)–१. मंगल, शुभ, २. सोना, ३. एक राग का नाम।

कल्यान–दे० 'कल्याण'। उ० १. कर कल्यान अखिल कै हानी। (मा० ५।४२।१)

कल्याना–दे० 'कल्यान'। उ० १. जो आपन चाहै कल्याना। (मा० ५।३८।३)

कल्यानि–हे कल्याणी, हे कल्याणमयी। उ० कालिंदी कल्यान कौतुक कुसल तव कल्यानि। (गी० ७।३२)

कल्यानू–दे० 'कल्यान'। उ० १. जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। (मा० २।८।३)

कल्लोलिनी–(सं०)–कल्लोल करनेवाली नदी, नदी। उ० स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। (मा० ७।१०८।३)

कवँल–(सं० कमल)–कमल, सरोज। उ० नवल कवँल हू ते कोमल चरन हैं। (क० २।१७)

कवच–(सं०)–१. आवरण, छिलका, २. ज़िरहबख्तर, लड़ाई के समय पहने जानेवाला एक लोहे की कड़ियों का बना पहनावा। उ० २. कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। (मा० ६।८०।५)

कवन–(प्रा० कवण)–किस, कौन। उ० कहहु कवन बिधि भा संवादा। (मा० ७।५५।३) कवनि–'कवन' का स्त्रीलिंग। उ० होइ अकाजु कवनि बिधि राती। (मा० २।१३।२) कवनिउँ–दे० 'कवनिउ'। कवनिउ–१. किसी को, २. कोई। उ० १. अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। (मा० ७।२१।३) कवनिहुँ–किसी भी। उ० तुलसी काम मयूख तें लागै कवनिहुँ रूख। (स० ५२) कवनिहु–किसी भी, कोई भी। उ० चिता कवनिहु बात कै तात करिअ

जनि मोर। (मा० २।१६५) कवनी–कौन सी, किस। उ० कहहु तात कवनी बिधि पाए। (मा० ६।३८।४)
कवनु–दे० 'कवन'।
कवनें–किस, कौन से। उ० कवनें अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास। (मा० २।२६) कवने–दे० 'कवनें'। कवनेहुँ–किसी भी, किसी। उ० तोर नास नहिं कवनेहुँ काला। (मा० १।१६५।३)
कवल (१)–दे० 'कवँल'।
कवल (२)–(सं०)–ग्रास, कौर, लुक़्मा।
कवलित–(सं०)–कौर किया हुआ, ग्रसित। उ० सकुल सदल रावन सरिस, कवलित काल कराल। (प्र०६।३।६)
कवलु–दे० 'कवल (२)'। उ० कालकवलु होइहि छन माहीं। (मा० १।२७४।२)
कवि–(सं०)–१. काव्य करनेवाला, शायर, २. सूर्य, ३. पंडित, ४. शुक्राचार्य, ५. उल्लू, ६. ऋषि। कविकोकिल–कवियों में कोयल के समान, वाल्मीकि।
कवित–दे० 'कवित्त'।
कविता–(सं०)–रमणीय पद्यमय वर्णन, काव्य।
कवित्त–(सं० कवित्व)–१. कविता, काव्य, २. दंडक के अंतगत ३१ अक्षरों का एक छंद।
कवी–दे० 'कवि'।
कवीश्वर–कवियों के ईश्वर, वाल्मीकि। उ० वन्दे विशुद्ध-विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ। (मा० १।१। श्लो० ४)
कश्यप–(सं०)–१. एक ऋषि, २. एक प्रजापति, जो सृष्टि के और साथ ही गरुड़, नाग, भगवान (वामन, कृष्ण, राम) तथा ४९ वायु के पिता कहे गये हैं। ३. कछुआ, ४. सप्तर्षि मंडल का एक तारा, ५. एक मृग। विशेष–कश्यप ऋषि ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के पुत्र थे। इनसे वामन, राम और श्रीकृष्ण भगवान रूप में पैदा हुए थे। इनकी पत्नी अदिति थी। दे० 'अदिति'। कश्यपप्रभव–कश्यप ऋषि से उत्पन्न देव और दैत्य।
कषाय–(सं०)–१. कसैला, कसाव, २. सुगंधित, ३. गैरिक, गेरू के रंग का, जोगिया, लाल, रंजित, ५. बबूल का गोंद। उ० ३. अरुन मुख, भ्रू बिकट, पिंगल नयन रोष कषाय। (वि० २२०)
कष्ट–(सं०)–१. दुःख, क्लेश, २. संकट, आपत्ति। उ० १. करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। (मा० ७।४५।२)
कष्टी–दुखित, कष्टरत, दुखिया। उ० दरशनारत दास, त्रसित-माया-पास, त्राहि त्राहि! दास कष्टी। (वि० ६०)
कस (१)–(सं० कीदृश)–१. कैसा, कैसे, किस प्रकार, २. क्यों। उ० १. सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ। (मा० २।२५१।३)
कस (२)–(सं० कष)–परीक्षा, कसौटी। उ० द्वंद-रहित, गत-मान, ज्ञानरत विषय-बिरत खटाइ नाना कस। (वि० २०४)
कस (३)–(सं० कर्षण)–१. बल, ज़ोर, २. बश, काबू, ३. रोक, अवरोध।
कस (४)–(सं० कषाय)–कसैला, कसाव।
कस (५)–(सं० कांस्य)–ताँबे और जस्ते के संयोग से बनी एक धातु, कसकुट, काँसा।
कसक–(सं० कष्)–१. पीड़ा, टीस, मीठा-मीठा दर्द, २. पुराना बैर, ३. सहानुभूति, ४. अरमान, हौसला।
कसकतु–कसकता, दर्द करता। उ० आयो सोई काम पै करेजो कसकतु है। (क० ६।१६) कसकै–कसकता है, दर्द करता है। उ० जानै सोई जाके उर कसकै करक सी। (गी० १।४२)
कसम–(अर० क़सम)–शपथ, सौगंध। उ० भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी। (गी० ५।३६)
कसमसत–(ध्व०)–१. एक दूसरे से रगड़ खाते हैं, हिलते-डोलते हैं। २. हिचकते हैं, आगा-पीछा करते हैं। ३. विचलित होते हैं। उ० १. किल-किलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधितीर। (गी० ५।२२) कसमसात–१. आपस में रगड़ खाती हुई, २. हिलती हुई, ३. हिचकती हुई, ४. विचलित होती हुई। उ० कसमसात आई अति घनी। (मा० ६।८७।१) कसमसे–आतुर हुए, घबराने लगे। उ० भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति भौन सायक कसमसे। (मा० ६।६१। छं० १)
कसहीं–१. बाँधते हैं, २. परीक्षा करते हैं, ३. कष्ट देते हैं। उ० ३. करहिं जोग जप तप तन कसहीं। (मा० २।१३२।४)
कसाई–(अर० क़स्साब)–१. बधिक, बूचड़, गोश्त बेंचनेवाला, २. निर्दयी। उ० १. कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है। (क० ७।१८१)
कसि–दे० 'कस'। कसकर, ज़ोर देकर। कसें–१. कसने से, बाँधने से, २. परीक्षा करने से, परखने से, ३. कष्ट देने से, ४. बाँधे हुए हैं, ५. बाँधे, कसे हुए। उ० २. कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ। (मा० २।२८३।३) ४. मुनिपट कटिन्ह कसें तुनीरा। (मा० २।११५।४) कसे–१. कसने से, २. परीक्षा करने से, ३. कष्ट पहुँचाने से, ४. बाँधे हुए। उ० ४. हृदय आनु धनुबान-पानि प्रभु लसे मुनिपट कसे माथ। (वि० ८४) कसैहौं–१. कसवाऊँगा, बँधवाऊँगा, २. परीक्षा कराऊँगा। उ० २. स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं। (वि० १०५।२) कस्यो–कस लिया। उ० कटितट परिकर कस्यो निषंगा। (मा० ६।८६।५) कस्यौ–१. कसा, बाँधा, २. परीक्षा की, जाँचा।
कसौटी–(सं० कषपट्टी)–एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर सोने-चाँदी की परख की जाती है। उ० दे० 'कसैहौं'।
कस्यप–(सं० कश्यप)–एक ऋषि। दे० 'कश्यप'। उ० कस्यप अदिति महातप कीन्हा। (मा० १।१८७।२)
कहँ (१)–(सं० कुहः)–कहाँ, किस ठौर। उ० कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई। (मा० २।१६४।२)
कहँ (२)–(सं० कक्ष)–के लिए, वास्ते। अवधी में यह कर्म तथा सम्प्रदान कारकों का चिह्न है।
कहंत–१. कहते हैं, २. कहता हुआ। उ० १. 'झूठो है, झूठो है झूठो सदा जग' संत कहंत जे अंत लहा है। (क० ७।३९) कहंता–१. कहता है, २. कहते हुए, कहता हुआ। उ० २. सापत ताड़त परुष कहंता। (मा०३।३४।१)

कइ (१)–(सं० कथन)–१. कहो, बोलो, २. कहकर, ३. कहता है, ४. कहा । उ० ४. बरषि सुमन कह देवसमाजू। (मा० २।१३४।२) कहइ–१. कहने लगा, कहा, २. कहने में, वर्णन में। उ० १. धरि धीरजु तब कहइ निषादू। (मा० २।१४३।१) कहई–१. कहता, २. कहेगा । उ० १. सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई। (मा० १।६६।४) कहउँ–१. कहूँ, वर्णन करूँ, २. कहता हूँ, कह रहा हूँ । उ० २. कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। (मा० २।२६४।१) कहउ–१. कहो, कहिए, २. कहें। उ० २. लोग कहउ गुर साहिब द्रोही। (मा० २।२०५।१) कहऊँ–कहूँ। उ० तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। (मा० २।६५।४) कहत (१)–१. कहते हैं, कहता हूँ, २. कहते ही, ३. कहते हुए, ४. कहता, कहते, ५. कह देने से। उ० १. दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। (मा० २।२२६।२) कहति–'कहत' का स्त्रीलिंग रूप। उ० ४. कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु। (मा० २।३६) कहतु–दे० 'कहत'। उ० ४. तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौंहें किएँ। (मा० २।२०१। छं० १) कहते–वर्णन करते, बखानते। उ० जौ जहँ-तहँ पन राखि भगत को भजन-प्रभाव न कहते। (वि० ६७) कहतेउ–कहता, कहते। उ० कहतेउँ तोहि समय निरबहा। (मा० ६।६३।३) कहब–१. कहेंगे, कहा जायगा, २. कहा हुआ, ३. कहना। उ० ३.कहब मोर मुनि नाथ निबाहा। (मा० २।२६०।२) कहबि–१. कहेंगी, कहा करेंगी, २. कहियेगा, ३. कहना। उ० १. हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। (मा०२।१६।२) कहसि–१. कहा, २. कहती है, कहता है, कह रहा है, ३. कहेगा। उ० २. प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। (मा० २।३१।३) कहसी–दे० 'कहसि'। उ० २. छोटे बदन बात बड़ि कहसी। (मा० ६।३१।४) कहहिं–१. कहते हैं, २. कहे। उ०२. बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। (मा० २।१२८।१) कहहि–१. कहता है, २. कहेगा। कहहीं–कहते हैं, कह रहे हैं। उ० ते प्रभु समाचार सब कहहीं। (मा० २।२२४।३) कहहुँ–दे० 'कहउँ'। कहहु–कहो, बतलाओ, बोलो, कहिए, आज्ञा दीजिए। उ० करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा। (मा० ७।४६।२) कहहू–दे० 'कहहु'। उ० मोहि पद पदुम पखारन कहहू। (मा० २।१००।४) कहा (१)–१. बोला, सुनाया, २. कहा हुआ, कथन, ३. उपदेश, ४. आदेश। कहि–कहकर। उ० कुसलप्रस्न कहि बारहिं बारा। (मा० १।२१५।२) कहिअ–१. कहता, २. कहना चाहिए, ३. कहिए। उ० १. कहिअ न आपन जानि अकाजा। (मा० १।६४।१) कहिआयो–१. कहने में आया, कहना पड़ा, २. कहता आया। कहिउँ–कहा, कहे। उ० कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। (मा० ७।११४।८) कहिबीं–कह देना, बतला देना। उ० बूझिहैं 'सो है कौन ?' कहिबीं नाम दसा जनाइ। (वि० ४१) कहिबे–१. कहोगी, कहोगे, २. कहने। उ० १. कहिबे कछू, कछू कहि जैहै, रहौ, आलि अरगानी। (कृ० ४७) कहिबो–१. कहना, २. कहने के लिए, ३. कहूँगा। उ० ३. कहिबो न कछू मरिबोइ रहो है। (क० ७।६१) कहिय–१. कहना चाहिए, २. कहिए, बतलाइए। कहियत–१. कहते हैं, २. कहा जाता है। उ० २. घर घाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी। (पा०१२१) कहिसि–कहा, कह सुनाया। उ० कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु। (मा०२।१८) कहिहउँ–कहूँगा। उ० कहिहउँ कवनसँदेस सुखारी। (मा० २।१४६।१) कहिहिं–कहेंगे। कहिहि–कहेगा, कहेगी। उ० पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी। (मा०२।४५।२) कहिहु–कहा था। उ० स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं। (मा०२।२२।२) कहिहै–१. कहेगा, २.कह सकता है। कहिहौं–दे० 'कहिहउँ'। उ० और मोहिं को है काहि कहिहौं ? (वि० २३१) कही–१. वर्णित, कथित, कही हुई, २. कहा, कह सुनाई। उ० २. चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ। (मा० २।१३२) कहीजै–कहिए, कहनी चाहिए। उ० मेरे मरिबे समन चारि फल होहिं तौं क्यों न कहीजै ? (गी० ३।१५) कहु–१.कहकर, २. कहो, बोलो। उ० २. कहु केहि कहिए कृपानिधे ! भवजनित बिपति अति। (वि० ११०) कहे–१. कहने पर, २. कहा, वर्णन किया, ३. कहने। उ० ३. भरत कहे महुँ साधु सयाने। (मा०२।२२७।३) कहेउँ–मैंने कहा, वर्णन किया। उ० तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं, जद्यपि अंतरजामी। (वि० ११३) कहेउ–कहा। उ० राम सचिव सन कहेउ सप्रीती। (मा० २।८५।४) कहेऊँ–१. कहा, २. कह रहा हूँ। उ० २. अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ। (मा० १।१८५।२) कहेऊ–कहा था, कहा। उ० तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। (मा० १।६३।३) कहेन्हि–१.कहे, बोले, कहने लगे, २.कहा था। उ०२. देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। (मा०२।४०।४) कहेसि–कहा, बोला। उ० बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु। (मा० २।२२) कहेसु–१. कहा, २. कह देना, ३.कहो। उ० २.कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई। (मा०४।१।२) कहेहु–१. कहा, कहा था, २.कहिएगा, कहना। उ० १. देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु। (मा० २।२७) कहेहू–१. कहा, २. कहना, कहिएगा। उ० २. तात प्रनाम तात सन कहेहू। (मा० २।१५१।३) कहैं–कहते हैं, वर्णन करते हैं। उ० सारद, सेस, साधु महिमा कहैं। (वि० १५७) कहै–कहे, कथन करे, कहते। उ० कहै सो अधम अयान असाधू। (मा० २।२०७।४) कहैगो–कहेगा। उ० अपने अपने को तौ कहैगो घटाइ को ? (क० ७।२२) कहौ–वर्णन करूँ, कहूँ। उ० कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी। (वि० १६६) कह्यो–१. कहना, २. कहा, ३. कहा हुआ। उ० १. ऊधोजू कह्यो तिहारोइ कीबो। (कृ० ३५) २. इहै कह्यो सुत बेद चहूँ। (वि० ८६) कह्यौ–१. कहा हुआ, कथन, २. कहना, ३. कहा, कहा है।

कइ (२)–[तु० सं० कियति) कितना, किस मात्रा का।

कहत (२)–(अर० कहत)–अकाल, दुर्भिक्ष।

कहतब–कथन, कहना, उपदेश।

कहन–१. कहना, कहने, २. कहने में। उ० १. लगे कहन कछु कथा पुनीता। (मा० २।१४१।४) कहनि–१.कथन, कहना, उच्चारण करना,२.उक्ति, बात, कहावत, कविता। उ० १.सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुखराम। (वै०१७)

कहँरत-दे० 'कहरत'। उ० १. मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे। (मा० ३।२०। छं० २)
कहर (१)-(अर० कहर)-१. विपत्ति, आफ़त, २. बलपूर्वक किया गया अत्याचार।
कहर (२)-(अर० क़हहार)-अगम, अपार।
कहरत-(दे० कराहत)-१. कराहते हैं, कराहता है, कराह रहा है, २. कराहते हुए। कहरि-कराह कर, कराहते हुए। उ० ठहर-ठहर पर कहरि कहरि उठै। (क० ६।४२)
कहरी-(अर० कहर)-कहर या ग़ज़ब ढानेवाली, क्रोधी। उ० लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे को कहरी है। (क० ६।२६)
कहरु-दे० 'कहर'। उ० डरत हौं देखि कलिकाल को कहरु। (वि० प० २५०)
कहाँ-(सं० कुहः)-किस जगह, कुत्र, किस स्थान पर, कहँ। उ० कहु कहँ तात कहाँ सब माता। (मा० २।१५६।४)
कहा (२)-(सं० कः)-क्या, कैसा, कैसे। उ० पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं आयसु होत कहा है? (क०२।७)
कहाइ-१. कहलाए, २. कहलाकर, कहाकर। उ० २. कुकबि कहाइ अजसु को लेई। (मा० १।२४७।२) कहाई-१. कहलाकर, २. कहलायी, कहलाए। उ० १. बिरिद बाँधि बर वीरु कहाई। (मा० २।१४४।४) कहाउब-१. कहलाऊँगा, २. कहलाना। उ० २. दानि कहाउब अरु कृपनाई। (मा० २।३५।३) कहाए-कहलाए, कहे गए, प्रसिद्ध हुए। कहाओ-कहलाओ। कहाय-कहाकर, कहलाकर। उ० जीवौं जग जानकी जीवन को कहाय जन। (ह० ४२) कहायहु-कहलाया, कहलाए, कहे गए। उ० निज मुख तापस दूत कहायहु। (मा० ६।२१।३) कहाये-दे० 'कहाए'। कहायों-कहलाया, कहाया। उ० पेट भरिबे के काज महाराज को कहायों। (क० ७।१२१) कहावउँ-कहलाऊँ, कहाउँ। कहावत (१)-कहलाते हैं। उ० सबै कहावत राम के, सबहि राम की आस। (दो० १४१) कहावौं-कहलाता हूँ, २. प्रकट करता हूँ। कहावौं-कहलाऊँ। उ० कहौं कहावौं का अब स्वामी। (मा० २।२६७।१) कहावती-कहलाती, कहलाती हैं। उ० घरही सती कहवाती, जरती नाह-बियोग। (दो० २५४) कहावहिं-कहवाते हैं, कहलाते हैं, कहलवाते हैं। उ० बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं। (मा० ७।२६।३) कहावा-१. कहलाया, कहला भेजा, २. कहलाता है। उ० २. सिव द्रोही मम भगत कहावा। (मा० ६।२।४) कहाहीं-१. कहाते हैं, कहलाते हैं, २. कहते हैं, वर्णन करते हैं। उ० २. श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। (मा० ७।१२२।७) कहैहौं-कहलाऊँगा, कहाऊँगा।
कहार-(सं० क+हार)-एक जाति जो पानी भरने या बर्तन धोने का काम करती है। डोली या सामान और बँहगी आदि ढोना भी इनका काम है। उ० बिषय कहार मार मदमाते, चलहिं न पाउँ बटोरा रे। (वि० १८९)
कहारा-दे० 'कहार'। उ० भरि भरि काँवरि चले कहारा। (मा० १।३०५।३)
कहानी-१. कथा, किस्सा, बात, २. झूठी बात, गढ़ी बात। उ० १. लखन राम सिय पंथ कहानी। (मा० २।२१६।३)
कहावत (२)-(सं० कथन)-१. बोलचाल में बहुत प्रयुक्त होनेवाले अनुभव वाक्य, लोकोक्ति, मसल। २. कही हुई बात, उक्ति।
कहीं-(सं० कुहः)-१. किसी ठौर, किसी स्थान पर, अनिश्चित स्थान पर, २. शायद, कदाचित्, ३. अत्यंत, बहुत। उ० १. नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। (मा० ७।१०२।२)
कहुँ (१)-१. के लिए, २. को। उ० १. राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। (मा० २।५४।४) उ० २. तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। (मा० १।१६६।२)
कहु (२)-कहीं। कहुँ कहुँ-१ कहीं-कहीं, किसी स्थान पर, २. कभी-कभी, किसी-किसी समय।
कहूँ-१. कहीं, किसी जगह, २. किसी जगह से, कहीं से। उ० १. साहब कहूँ न राम से। (वि० ३२)
कहैया-कहनेवाला। उ० दूजो को कहैया औ सुनैया चष चारिखो। (क० १।१६)
काँकर-(सं० कर्कर)-कंकड़, रोड़ा। उ० कुस कंटक मग काँकर नाना। (मा० २।६२।३)
काँकरीं-छोटा कंकड़, कंकड़ी, छोटे रोड़े। उ० कुस कंटक काँकरी कुराई। (मा० २।३११।३)
काँकाँ-(ध्व०) कौए की बोली, काँव काँव।
काँकिनिभाग-जिसके भाग्य में कौड़ी का मिलना ही लिखा हो। अभागा।
काँकिनी-(सं० काकणी)-१. गुंजा, घुँवची, २. कौड़ी, ३. एक तौल, माशे का चौथा भाग, ४. पण का चौथा भाग। उ० १.सो पर कर काँकिनी लागि सठ बेंचि होत सठ चेरो। (वि० १४३)
काँख-(सं० कक्ष)-बगल, बाहुमूल के नीचे की ओर का गढ्ढा। उ० काँख दाबि कपिराज कहूँ चला अमित बल सींव। (मा० ६।६५)
काँखासोती-दे० 'काखासोती'।
काँच (१) (सं० काँच)-१. शीशा, बालू रेह आदि से मिलकर बनी एक पारदर्शक वस्तु, २. दर्पण। उ० २. ज्यों गज काँच बिलोकि। (वि० ९०) काँचहि-काँच के, शीशे के। उ० कंचन काँचहि सम गनै। (वै० २७) काँचै-काँच को, शीशे को। उ० सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम दोइ। (वै० ३१) काँचो-१. काँच भी, शीशा भी, २. कच्चा भी, दुर्बल भी। उ० १. किए बिचार सार कदली ज्यों मनि कनक संग लघु लसत बीच बिच काँचो। (वि० २७७)
काँच (२)-(?) कच्चा, जो पका न हो। अपक्व।
काँच(३)-(?)-गुदेन्द्रिय का भीतरी भाग।
कांचन-(सं०)-१. स्वर्ण, सोना, २. कचनार, ३. चंपा, ४. नागकेसर। उ० १. तप्तकांचन-वस्त्र शस्त्रविद्या-निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोजनाभं। (वि० ५०)
काँचा-१. काँच, कच्चा, कमज़ोर, २. शीशा, रत्न, मणि। उ० १. संगल महुँ भय मन अति काँचा। (मा० ५।३७।१) २. महि बहुरंग रचित गच काँचा। (मा० ७।२७।३) काँचे-कच्चा, अपरिपक्व। उ०काँचे घट जिमि डारौं फोरी। (मा० १।२५३।३)

काँजी–(सं० कांजिक)–एक प्रकार का खट्टा रस जो अँचार, बड़े या पाचन आदि के लिए कई प्रकार से बनाया जाता है। उ० कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ। (मा० २।२३१)

काँट–(सं० कंट)–कंटक, काँटा। उ० काँट कुरायँ लपेटन लोटन ठाँवहि ठाँउँ बझाऊ रे। (वि० १८९)

काँठा–(सं० कंठ)–१. गला, २. तोते आदि के गले की रंगीन रेखा, ३. किनारा, तट, ४. समीप, पास। काँठे–किनारे, तट पर। उ० भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनी सायर-काँठे। (क० ६।२८)

काँड़िगो–(सं० कंडन)–१. रौंदा, कुचला, २. लात मारा, पीटा। उ० १. भारी भारी रावरे के चाउर से काँड़िगो। (क० ६।२४)

कांतार–(सं०)–१. भयानक स्थान, २. वना और भयानक जंगल, ३. दुर्गम पथ, ४. छेद, दरार, ५. एक प्रकार की ईख, ६. बाँस।

कांति–(सं०)–१. दीप्ति, प्रकाश, २. शोभा, सौंदर्य, ३. चंद्रमा की एक कला। उ० २. तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरु सो ज्यों दरपन मुख कांति। (वि० २३३)

काँदलो–दे० 'कँदैलो'।

काँदो–(सं० कर्दम)–कीच, कीचड़, पंक।

काँध–(सं० स्कंध)–कंधा, कान्हि। उ० कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ। (पा० १३) काँधे–कंधे पर। उ० तून कसें कर सरु धनु काँधे। (मा० २।२३६।३)

काँधी–१. कंधे पर लो, शिरोधार्थ करो, स्वीकार करो, २. स्वीकार किया। उ० १. उठि सुत पितु अनुसासन काँधी। (मा० १।१८२।२) काँधे–स्वीकार किया। काँध्यो–[काँधना–(सं० स्कंध)–१. काँध लगाना, भार उठाना, कंधे पर रखना, २. स्वीकार करना, ३. ठानना]–ठाना है। उ० आनि पर बाम बिधिवाम तेहि राम सों सकत संग्राम दसकंध काँध्यो। (क० ६।४)

काँपहिं–(सं० कंपन)–काँपते हैं, काँप रहे हैं। उ० थर थर काँपहिं पुर नर नारी। (मा० १।२७८।३) काँपी–काँपने लगी, कंपित हुई। काँपना का सामान्यभूत। उ० तन पसेउ कदली जिमि काँपी। (मा० २।२०।१) काँपु–काँपा, कंपित हुआ, काँपने लगा। उ० बोली फिरि लखि सखिहिं काँपु तनु थरथर। (पा० ६९)

काँवर–(सं० स्कंध>काँध)–बाँस का एक छिला हुआ फट्टा जिसमें रस्सियाँ बँधी रहती हैं और जिस पर सामान रख कर कँहार लोग कंधे पर रखकर ले जाते हैं। बहँगी। यात्री लोग इसी प्रकार की काँवर पर जल आदि ले जाते हैं।

काँवरि–दे० 'काँवर'। उ० कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। (मा० १।३००।४)

का (१)–(सं० कः)–क्या, कौन वस्तु। उ० बातुल मातुल की न सुनी सिख, का तुलसी कपि लंक न जारी? (क० ६।५)

का (२)–(सं० कृतः)–संबंध कारक का चिह्न। उ० बेद बिदित संमत सबही का। (मा० २।१७५।२)

काइ–(सं० काय)–शरीर, काया। उ० प्रभुहि न प्रभुता परिहरै, कबहुँ बचन मन काइ। (दो० ५१७)

काई (१)–(सं० कावार) १. जल में जमनेवाली एक महीन घास, सेवार, २. मैल, मुर्चा। उ० १. काई कुमति केकई केरी। (मा० १।४१।१)

काई (२)–(सं० कः) किसी को, कोई को।

काउ (१)–दे० 'काऊ (२)' उ० १. कहत राम-बिधु-बदन रिसौहैं, सपनेहुँ लख्यो न काउ। (वि० १००)

काउ (२)–दे० 'काऊ (१)'।

काऊ(१)–(सं० कदा)–कभी, किसी समय। उ० सोउ देखा जो सुना न काऊ। (मा० १।२०२।१)

काऊ (२)–(सं० कः)–१. कोई, २. किसी को, किसी पर, ३. कैसा, किस प्रकार का, ४. कुछ। उ० २. निज अपराध रिसाहिं न काऊ। (मा० २।२१८।२)

काक–(सं०)–१. कौआ, काग, २. जयंत। उ० १. काक कंक बालक कोलाहल करत हैं। (क० ६।४६) २. सठ संकट-भाजन भए हठि कुजाति कपि काक। (दो० ४१५)

काकी (१)–(सं०) कौए की स्त्री, मादा काक।

काकपक्ष–(सं०)–१. बालों के पट्टे जो दोनो ओर कानों के ऊपर रहते हैं। २. कौवे के पर।

काकपच्छ–दे० 'काकपक्ष'। उ० १. काकपच्छ सिर, सुभग सरोरुह लोचन। (जा० ५९)

काकभुशुंडि–(सं०)–एक ब्राह्मण जो लोमश के शाप से कौआ हो गये थे और राम के बड़े भक्त थे। गरुड़ से राम की कथा इन्होंने ही कही थी।

काकसिखा–(सं० काकशिखा)–दे० 'काकपक्ष'। उ० १. काक-सिखा सिर, कर केलि-तून-धनु-सर। (गी० १।६४)

काकसुता–(सं०) कोकिल, कोयल। उ० काकसुता गृह ना करै यह अचरज बड़ बाय। (स० १६०) विशेष–ऐसा कहा जाता है कि कोयल अपना घर नहीं बनाती और न अपने बच्चों को पालती है। वह अपना बच्चा किसी कौए के घोंसले में रख आती है और कौए की स्त्री ही उसके बच्चे को पालती है। इसी कारण कोयल को काकसुता आदि नामों से पुकारा जाता है।

काका–(ध्व०)–काँव-काँव, कौए की बोली। उ० कुहू कुहू कलकंठ काका रव कररत काग। (दो० ४३६)

काकिणी–(सं०)–१. गुंजा, घुँघची, २. माशे का चौथाई भाग, ३. कौड़ी, ४. पण का चतुर्थ भाग।

काकिन–दे० 'काकिणी'।

काकिनिभाग–दे० 'काँकिनिभाग'। उ० काँक सिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है। (क० ७।१५२)

काकिनी–दे० 'काकिणी'।

काकी (२)–(सं० कः+कृतः)–किसकी।

काकी (३)–(?)–चाची, पिता के भाई की स्त्री।

काकु–(सं०)–छिपी हुई चुटीली बात, व्यंग्य, ताना, कठोर बचन। उ० कहियत काकु कूबरी हूँ को। (कृ० २७)

काकू–दे० 'काकु' उ० जागिउँ जायँ जननि कहि काकू। (मा० २।२६१।३)

काके–किसके, कौन के। उ० काके भए गए सँग काके। (वि० २००)

काको–१. किसका, २. किसको। उ० १. प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है ? (क०७।१३६)

काखासोतां–(सं० कक्ष+श्रोत्र)–दुपट्टा डालने का एक ढंग जिसमें दुपट्टे को बाएँ कंधे और पीठ पर से ले जाकर दाहिनी बगल के नीचे से निकालते हैं फिर बाएँ कंधे पर डाल लेते हैं। जनेऊ की तरह दुपट्टा डालने का एक ढंग। उ० पिअर उपरना काखासोती। (मा० १।३२७।४)

काग–दे० 'काक'। उ० १. तुरत भयउँ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिरु नाइ। (मा० ७।११२ क)

कागद–(अर० काग़ज़)–कागज, लिखने के काम आनेवाला पत्र। यह कई चीज़ों को मिलाकर बनाया जाता है। उ० सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे। (मा० १।१।६)

कागर (१)–(अर० काग़ज़)–१. पत्र, पर, पंख, पक्ष, २. कागज़, ३. सर्प की केंचुल। उ० १. कीर के कागर ज्यों नृपचीर बिभूषन, उप्पम अंगनि पाई। (क० २।१)

कागर (२)–(सं० क+अग्र)–१. पानी के सामने की उठी भूमि, किनारा, २. मेंड़, डाँड़, ३. ओठ, अधर,।

कागा–दे० 'काक'। उ० १. अति खल जे बिषई बग कागा। (मा० १।३८।२)

कागू–दे० 'काक'। उ० १. बैनतेअ बलि जिमि चह कागू। (मा० १।२६७।१)

काचो–१. कच्चा, अपक्व, कच्चे ही, २. बुद्धिहीन, ३. शीशा भी, काँच भी। उ० १. सहबासी काचो गिलहि, पुरजन पाक-प्रबीन। (दो० ४०४)

काछिअ–[काछना (सं० कक्ष)–कमर में लपेटे वस्त्र के लटकते भाग को जंघों पर से ले जाकर कसना या खोंसना। सँवारना] सँवारे, स्वाँग भरे। उ० जस काछिअ तस चाहिअ नाचा। (मा० २।१२७।४) काछें–दे० 'काछे'। उ० १. तापस बेष बिराजत काछें। (मा० २।१२३।१) काछे (१)–१. सँवार कर पहने हुए, बनाये हुए, २. सँवारे, बनाया। उ० १. चौतनी चोलना काछे, सखि ! सोहैं आगे पाछे। (गी० १।७२)

काछे (२)–(सं० कक्ष)–समीप, पास।

काज–(सं० कार्य)–१. कार, काम, कृत्य, कार्य, २. पेशा, रोज़गार, धंधा, ३. प्रयोजन, उद्देश्य, मतलब, ४. विवाह, ५. मृतक के लिए किया जानेवाला प्रेतकर्म। उ० ५. दसरथ ते दसगुन भगति, सहित तासु करि काज। (प्र० ३।३।६) काजहिं–काम के। उ० सिरधरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग। (मा० २।६)

काजा–दे० 'काज'। उ० १. करत रामहित मंगल काजा। (मा० २।७।१)

काजु दे० 'काज'। उ० १. जनमंगल भल काजु बिचारा। (मा० २।५।४)

काजू–दे० 'काज'। उ० १. जौं बिधि कुसल निबाहै काजू। (मा० २।१०।२)

काटइ–(सं० कर्तन)–१. काटे, अलग करे, २. काट डालता है, काटता है। उ० २. काटइ निज कर सकल सरीरा। (मा० ६।२८।५) काटत–१. काटता है, २. काटते समय, काटने के बाद तुरत। उ० २. काटत हीं पुनि भए नवीने। (मा० ६।९२।६) काटा–'काटना' का भूत काल, काट डाला। उ० पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा। (मा० २।४७।३) काटि–काटकर, नष्ट कर। उ० पेड़ काटि तैं पालव सींचा। (मा० २।१६१।४) काटिअ–१. काटकर, २. काटे, काट ले। उ० २. काटिअ तासु जीभ जो बसई। (मा० १।६४।२) काटियत–१. काटता, २. काटते। उ० १. रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत है। (क० ७।६६) काटिये–नष्ट कीजिए, कर्त्तन कीजिए, 'काटना' का आज्ञा-सूचन आदरार्थ रूप। उ० औ काटिये न, नाथ ! विषहू को रुख लाइकै। (क० ७।६१) काटु–१. काटो, २. काटना। उ० १. मारु काटु धुनि बोलहिं नाची। (मा० ६।५२।१) काटें–काटने से। उ० काटें सीस कि होइअ सूरा। (मा० ६।२९।५) काटे–१. काटा, काट डाला, २. नष्ट किया, ३. काटने पर, नष्ट करने पर। उ० १. छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच। (मा० ६।६८) काटेसि–काटा, काट लिया। उ० काटेसि दसन नासिका काना। (मा० ६।६६।२) काटेहिं–१. काटने, काटने पर, २. काटें, काट डालें। उ० १. काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच। (मा० ६।५८) काटैं–१. काटते हैं, २. काटने। उ० २. श्रवन नासिका काटैं लागे। (मा० ५।५४।२) काटै–दे० 'काटइ'। उ० १. जौं सपनें सिर काटै कोई। (मा० १।११८।१)

काठ–(सं० काष्ठ)–१. लकड़ी, पेड़ का कोई अंग, २. बंधन, लकड़ी की बेड़ी। उ० १. पाहन ते न काठ कठिनाई। (मा० २।१००।३)

काढ़इ–(सं० कर्षण>काढ़ना–१. निकालना, २. खींचना, ३. लकड़ी, पत्थर या कपड़े पर चित्रकारी करना, ४. ऋण लेना) १. निकालता है, खींचता है, २. निकालने, निकालने के लिए। काढ़त–१. निकाल रहा है, २. निकालते हुए। उ० १. प्रति उत्तर सड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस। (मा०६।२३ङ) मु० काढ़त दंत–दाँत निकालता है, विनय करता है, घिघियाता है। उ० ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है। (क०७।३६) काढ़न–१. काढ़ने, निकालने, लेने। उ० त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहिं निदरि लगे बहि काढ़न। (वि० २१) काढ़हिं–१. निकालते हैं, २. लेते हैं, ३. बनाते हैं। उ० १. कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं। (मा० ७।१२० क) काढ़ा–१. ऋण लिया था, ऋण लिया, २. निकाला था, निकाला। उ० १. सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। (मा० १।२७६।२) काढ़ि–१. निकालकर, २. लेकर, ३. बनाकर, चित्रकारी करके। उ० १. निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। (मा० २।४७।२) काढ़िय–१. निकाल डालिए, २. बनाइए, ३. लीजिए। उ० १. बिहँग-राज-बाहन तुरत काढ़िय मिटइ कलेस। (दो० २३५) काढ़ीं–१. निकाली, २. ली, ३. बनायी। उ० ३. सुर-प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। (मा० १।२८८।३) काढ़ी–'काढ़ीं' का एकवचन। काढ़े–१. निकाले, निकालने पर, २. बनाए, चित्रित किये। उ० १. मीनु दीन जनु जल तें काढ़े। (मा० २।७०।२) काढ़ेसि–१. निकाली, २. ली, ३. बनाई। उ० १. काढ़ेसि परम कराल कृपाना। (मा० ३।२९।११) काढ़ो–१. निकाला, २. निकालो, ३. लो,

४. ली, ५. बनाओ। उ० १. सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो। (क० ५।१२) काढ़्यो-१. निकाला, २. लिया, ३. बनाया। उ०१.रोषि बान काढ़्यो न दलैया दस सीस को। (क० ६।२२)

कातर-(सं०)-१. डरपोक, कादर, कायर, २. आर्त, कष्ट से भरा हुआ, दुःखित, ३. व्याकुल, अधीर। कातरि-'कातर' का स्त्रीलिंग। दे० 'कातर'। उ० ३. लखि सनेह कातरि महतारी। (मा० २।६६।१)

कातिबो-(सं० कर्त्तन)-कातना, रुई से सूत कातना। उ० तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह। (दो० ४६२)

काते-(सं० कः + तस्)-किससे, किस कारण से। उ० स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो काते, कौन बेद बखानई। (वि० १३५)

कादर-दे० 'कातर'। उ० १. कादर मन कहुँ एक अधारा। (मा० ५।५१।२)

कान (१)-(सं० कर्ण)-श्रवणेंद्रिय, वह इंद्रिय जिससे सुना जाय। उ० कान मूदिकर रद गहि जीहा। (मा० २।४८।४) मु० कान उठाएँ-आहट लेते, सुनने के लिए तैयार। उ० चकित बिलोकत कान उठाएँ। (मा० १।१५६।४) कान-दिए-कान लगाकर, ध्यान देकर। उ० सुनु कान दिए नित। (क० ७।२६) कान नहिं करिअ-ध्यान न देना, न सुनना। उ० बालक बचनु करिअ नहिं काना। कानन (१)-'कान' का बहुवचन, कानों। कानन्हि-कानों में। उ० कानन्हि कनकफूल छबि देहीं। (मा० १।२१६।४) काने (१)-कान में। उ० काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो। (रा० ११)

कान (२)-(सं० काण)-काना, जिसकी एक ही आँख ठीक हो। काने (२)-(सं० काण)-काने लोग, एक आँख-वाले। उ० काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। (मा० २।१४)

कान (३)-(?)-१. लोकलज्जा, मर्यादा का ध्यान, २. शपथ।

कानन (२)-(सं०)-बन, जंगल। उ० कानन बिचित्र, बारी बिसाल। (वि० २३) काननचारी-बन में बिचरने-वाले, जंगल में घूमनेवाले। उ० धन्य बिहग मृग कानन-चारी। (मा० २।१३६।१) काननहिं-बन में, बन को। उ० सहित समाज काननहिं आयउ। (मा० २।३११।१)

काना (१)-(सं० कर्ण)-कान, श्रवणेंद्रिय। उ० पर अब सुनहिं सहस दस काना। (मा० १।४।५)

काना (२)-(सं० काण)-कान, एक आँख का।

कानि (१)-(?)-१. लोक लज्जा, मर्यादा का ध्यान, २. संकोच, दबाव, लेहाज़। उ० २. सेवक सेवकाई जानि जानकीस मानै कानि। (ह० १२)

कानि (२)-(सं० काण)-एक आँखवाली, कानी।

कानि (३)-(सं० खानि)-उत्पत्ति स्थान, जहाँ ढेर हो, समूह।

कानि (४)-(?)-बहाना।

कानी-दे० कानि (१), कानि (२), कानि (३), कानि (४)।

कान्ह-(सं० कृष्ण)-कृष्ण। उ० मधुकर! कान्ह कहा ते न होंहीं। (कृ० ४१)

काम (१)-(सं०)-१. इच्छा, मनोरथ, २. कामदेव, प्रेम तथा वासना आदि के देवता जिन्हें शंकर ने भस्म कर दिया था। ३. भोग-विलास, वासना, ४. सुंदर, ५. वीर्य, ६. चतुर्वर्ग या चार पदार्थों में से एक। उ० १. करि कृपा हरिय भ्रमफंदकाम। (वि० १४) २. तेपि काम बस भए बियोगी। (मा० १।८५।४) विशेष-काम को शंकर ने भस्म किया था अतः शंकर को कामारि, काम-रिपु आदि नामों से भी पुकारा जाता है। कामः-दे० 'काम'। उ० ३. तर्जन क्रोध लोभ मद कामः। (मा० ३।११।७) काम अरि-काम के अरि, शिव। उ० नील ताम-रस स्याम काम अरि। (मा० ७।५१।१) कामप्रद-काम-नाओं को प्रदान करनेवाला, इच्छा पूरी करनेवाला। उ० सकल कामप्रद तीरथराऊ। (मा० २।२०४।३) कामभूरुह-(सं० काम + भू + वृक्ष)-कामनाओं को देनेवाला वृक्ष, कल्पवृक्ष। उ० राम नाम-महिमा करै काम-भूरुह आको। (वि० १५२) काममदमोचनं-कामदेव के मद का मोचन करनेवाले शिव, महादेव। उ० काममदमोचनं, तामरस-लोचनं वामदेवं भजे भाव गम्यं। (वि० १२) कामरिपु-काम के शत्रु, महादेव। उ० देहु कामरिपु रामचरन-रति तुलसीदास कहँ कृपानिधान। (वि० ३) कामरूप-(सं)-१. इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला, मायावी, २. काम-देव का स्वरूप। उ० १. कामरूप केहि कारन आया। (मा० ५।४३।३) कामसुरभि-दे० 'कामधेनु'। कामहि-कामदेव को। उ० कामहि बोलि कीन्ह सनमाना। (मा० १।१२५।३) कामारि-(सं० काम + अरि) महादेव, शिव। उ० सोइ राम कामारि-प्रिय अवधपति सर्वदा दास तुलसी-त्रासनिधि वहित्रं। (वि० ५०) कामो-काम भी। उ० सकुचत समुझि नाम-महिमा मद लोभ मोह कोह कामो। (वि० २२८)

काम (२)-(सं० कर्म)-कार्य, कर्म, कार, धंधा। मु० काम आयो-१. काम में आया, २. सहारा दिया, ३. लड़ाई में मारा गया। उ० २. आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है। (क०६।१६) काम-काज-(सं० कर्म + कार्य)-कार-बार, काम-धंधा। उ० पाल्यो नाथ सद्य सो सो भयो काम-काज को। (क० ७।१३)

कामतरु-(सं०)-दे० 'कल्पवृक्ष'। उ० सुरसरि निकट सोहा-वनी अवनि सोहै, रामरमनी को बट कलि कामतरु है। (क० ७।१३६)

कामता-(सं० कामद)-१. चित्रकूट के पास का एक गाँव, २. चित्रकूट पर्वत का एक भाग जिसे कामतानाथ पर्वत भी कहते हैं। उ० २. कामदमन कामता-कलपतरु सो जुग-जुग जागत जगतीतलु। (वि० २४) विशेष-कामतानाथ पर्वत सभी मनोरथों को पूरा करनेवाला समझा जाता है।

कामद-(सं०)-कामनाओं को पूरा करनेवाला। मनचाही वस्तु देनेवाला। उ० कामद भे गिरि रामप्रसादा। (मा० २।२७६।१) कामदगाई-(सं० कामद + गो)-दे० 'काम-धेनु'। उ० रामकथा कलि कामदगाई। (मा० १।३१।४) कामदगिरि-(सं०)-चित्रकूट पर्वत। इसे सभी कामनाओं

को पूरा करनेवाला समझा जाता है। कामदमणि-(सं०)-१. चिंतामणि, इच्छानुकूल फल देनेवाला रत्न। २. मनानुसार फल देनेवालों के मणि या शिरोभूषण, वांछित फल देनेवालों में श्रेष्ठ। कामदमन-दे० 'कामदमणि'। उ० दे० 'कामता'। कामदमनि-दे० 'कामदमणि'।

कामदव-कामाग्नि, काम की उष्णता।

कामदुहा-(सं० काम + दोहन)-दे० 'कामधेनु'। उ० धेनु अलंकृत कामदुहा सीं। (मा० १।३२६।२) कामदुहागो-दे० 'कामधेनु'।

कामदेव-१. अनंग, मदन। स्त्री-पुरुष संयोग की प्रेरणा करनेवाला एक पौराणिक देवता। २. वीर्य, ३. संभोग या स्त्री-प्रसंग की इच्छा। विशेष-कामदेव एक पौराणिक देवता हैं जिनकी स्त्री रति, साथी वसंत, वाहन कोकिल, अस्त्र फूलों का धनुष-बाण तथा ध्वजा मछली से अलंकृत है। सती के परलोकवास के बाद शिव ने विवाह न करने की सोच समाधि लगाई और उधर तारकासुर को वर मिला कि शिव के पुत्र से ही केवल उसकी मृत्यु होगी। अंत में देवताओं ने कामदेव से शिव की समाधि भंग करने के लिए प्रार्थना की। कामदेव ने प्रयास किया और अंत में शिव के तीसरे नेत्र के खुलने से वह भस्म हो गया। इस पर उनकी स्त्री रति रोने लगीं, जिसे देख शिव ने द्रवित होकर कहा कि कामदेव बिना शरीर के भी जीवित रहेंगे (इसी कारण उनका अनंग आदि नाम है) और द्वापर में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के घर उनका जन्म होगा। इसी कारण प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध कामदेव के अवतार कहे जाते हैं।

कामधुक-(सं० काम + दोहन + क)-इच्छानुसार फल देनेवाला। कामधुक-गो-इच्छानुसार कभी भी दूही जानेवाली गाय, कामधेनु। कामधुकधेनु-दे० 'कामधेनु'। उ० भक्ति प्रिय भक्तजन-कामधुकधेनु हरि हरन-विकट-बिपति भारी। (वि० ४६)

कामधेनु-(सं०) १. एक गाय जो पुराणानुसार समुद्र-मंथन के फलस्वरूप निकले १४ रत्न में से एक है। इसकी कई विशेषताएँ कही जाती हैं जैसे यह अत्यंत सुंदरी है, इसे जब इच्छा हो दूहा जा सकता है तथा यह जो कुछ भी माँगा जाय देती है। २. वशिष्ट की एक गाय, जिसके कारण उनसे विश्वामित्र से युद्ध हुआ था। ३. दानार्थ सोने की बनी हुई छोटी सी गाय। उ० १. कल्यान-अखिलप्रद कामधेनु। (वि० १३)

कामना-(सं०)-इच्छा, मनोरथ। उ० को करि कोटिक कामना पूजै बहुदेव? (वि० १०७)

कामरि-(सं० कंबल)-कमरी, एक ऊनी मोटा वस्त्र जो ओढ़ने के काम आता है। उ० तुलसी त्यों त्यों होइगी गरुई ज्यों ज्यों कामरि भीजै। (कृ० ४६)

कामरी-दे० 'कामरि'। उ० काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच। (दो० ५७२)

कामा-दे० 'काम'। उ० ३. जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा। (मा० ४।१५।५)

कामारी-दे० 'कामारि'।

कामिनि-दे० 'कामिनी'।

कामिनी-(सं०)-१. काम की इच्छा रखनेवाली स्त्री, २. स्त्री, सुंदरी। उ० २. यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृतपुंज जुत कामिनी। (वि० १८)

कामिन्ह-कामियों, कामी का बहुवचन। उ० कामिन्ह कै दीनता देखाई। (मा० ३।३६।१) कामिहि-१. कामी को, २. कामी से। उ० २. क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। (मा० ५।५८।२) कामी-(सं० कामिन्)-१. कामना रखनेवाला, इच्छुक, २. विषयी, कामुक, ३. चकवा, ४. कबूतर ५. सारस, ६. चंद्रमा, ७. विष्णु। उ० २. जे कामी लोलुप जग माहीं। (मा० १।१२५।४)

कामु-दे० काम (१), काम (२),। उ० काम (१) २. अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस। (मा० १।८६)

कामुक-(सं०)-कामी, विषयी।

काय-(सं०)-१. शरीर, देह, २. मूर्ति, ३. समुदाय, संघ, ४. स्वभाव, लक्षण, ५. मूलधन, असल, ६. लक्ष्य। उ० १. सठ सहि साँसति पति लहत, सुजन कलेस न काय। (दो० ३६२)

कायर-(सं० कातर)-डरपोक, कादर, भीरु, असाहसी। उ० ते कायर कलिकाल बिगोए। (मा० १।४३।४)

काया-दे० 'काय'। उ० जौं मोरें मन बच अरु काया। (मा० ६।५६।३)

कायिक-शरीर संबंधी, शरीर से किया हुआ, शरीर का।

कारक-(सं०)-१. कर्ता, करनेवाला, २. व्याकरण के कर्ता, कर्म तथा करण आदि कारक। उ० १. नृप हितकारक सचिव सयाना। (मा० १।१५४।१)

कारखी-(सं० कलुष)-१. कालिमा, स्याही, २. कलंक, धब्बा। मु० मुँह कारखी लागै-बदनाम हो, कलंक लगे। उ० जानि जिय जोवो जो न लागै मुँह कारखी। (क० १।१५)

कारज-(सं० कार्य)-१. कार्य, काम, जो कारण से उत्पन्न हो, २. फल, परिणाम, ३. पंच भूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, तथा आकाश)। उ० १. गृहकारज नाना जंजाला। (मा० १।३८।४)

कारजु-दे० 'कारज'। उ० १. कारन तें कारजु कठिन, होइ दोसु नहिं मोर। (मा० २।१७६)

कारण-(सं०)-१. जिसके बिना कार्य की सिद्धि न हो, हेतु, सबब, वजह। २. हेतु, अर्थ, लिए, वास्ते, ३. आदि, मूल, बीज, ४. साधन, उपाय, ५. शिव, ६. विष्णु। कारणपरं-कारणों से परे या कारणों के भी कारण। जिनके लिए स्वयं किसी कारण की अपेक्षा न हो। उ० वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्। (मा० १।१। श्लोक० ६)

कारन-(सं० कारण)-दे० 'कारण'। उ० १. दे० 'कारजु'। २. निज गिरा पावनि करन कारन रामजसु तुलसी कह्यो। (मा० १।३६१ छं० १)

कारनी-१. प्रेरक, करानेवाला, २. भेदक, भेद करानेवाला।

कारनु-दे 'कारन'। उ० १. कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन। (मा० १।२२८)

कारमन-दे 'कार्मण'।

कारमनि-दे० 'कार्मण'। उ० जयति पर-जंत्रमंत्राभिचार-ग्रसन, कारमनि-कूट-कृत्यादि-हंता। (वि० २६)

कारमुक-(सं० कार्मुक)-१. धनुष, चाप, २. इंद्रधनुष, ३. योग का एक आसन। उ० १. तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा। (मा० ६।६३।३)

कारा-(सं०)-१. बंधन, कैद, २. पीड़ा, क्लेश।

कारागृह-(सं०)-क़ैदखाना, जेल, बंदीगृह। उ० निःकाज राज बिहाय नृपइव स्वप्न-कारागृह परयो। (वि० १३६)

कारिख-(सं० कलुष)-कजली, कालिख, कालिमा, दोष, कलंक। उ० कहौंगो मुख की समरसरि कालि कारिख धोइ। (गी० ५।५)

कारिणि-(सं० कारिणी)-करनेवाली। कारिणीं-करनेवाली को। उ० उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्। (मा० १।१।श्लो०५)

कारिनि-दे० 'कारिणि'। उ० भव भव बिभव पराभव कारिनि। (मा० १।२३५।४)

कारी (१)-(सं० कारिन्)-करनेवाला। उ० मधुर मनोहर मंगलकारी। (मा० १।३६।२)

कारी (२)-(सं० काल)-काली, श्याम, काले रंगवाली।

कारी (३)-(फ़ा०)-१. गहरा, २. घातक, मर्मभेदी।

कारुणिक-(सं०)-करुणा करनेवाले, कृपालु, दयालु।

कारुणीक-दे० 'कारुणिक'।

कारुनिक-दे० 'कारुणिक'।

कारुनीक-दे० 'कारुणिक'। उ० कारुनीक दिनकर कुल केतू। (मा० ६।३७।१)

कारुण्य-(सं०)-करुणा का भाव, दया।

कारुन्य-दे० 'कारुण्य'। उ० नीलकंठ कारुन्य सिंधु हर दीन बंधु दिनदानि हैं। (गी० १।७८)

कारे-(सं० काल)-काले, काले रंग वाले। उ० महाबीर निसिचर सब कारे। (मा० ६।४६।४)

कार्तिकेय-(सं०)-महादेव के ज्येष्ठ पुत्र। चंद्रमा की स्त्री कृत्तिका के दूध से पाले जाने के कारण ये कार्तिकेय कहलाए। इन्होंने तारकासुर को मारा था। स्कंद, षडानन, महासेन, कुमार, गुह, गंगा-पुत्र आदि इनके बहुत से नाम हैं।

कार्मण-(सं०)-जंत्र-मंत्र द्वारा मार डालना, मंत्र-तंत्रआदि के प्रयोग। मूल कर्म जिनमें मंत्र और ओषधि आदि से मारण, मोहन, उच्चाटन आदि किया जाता है।

कार्मन-दे० 'कार्मण'।

कार्मुक-(सं०)-१. धनुष, २. इन्द्रधनुष, ३. बाँस, वेणु, ४. काम में दक्ष।

कार्य-(सं०)-१. काम, काज, २. प्रयोजन, हेतु, ३. आरोग्यता, ४. परिणाम, फल।

कालं-दे० 'काल'। उ० २, करालं महाकाल कालं कृपालं। (मा० ७।१०८।श्लो०२) काल (१)-(सं०)-१. वक्त, समय, अवसर, २. अंतिम काल, मृत्यु, ३. यमराज, ४. काले रंग का, काला, ५. अकाल, दुर्भिक्ष, ६. शिव का एक नाम। उ० १. काल सुभाउ करम बरिआईं। (मा० १।७।१) १. तथा २. काल न देखत कालबस, बीस-बिलोचन-अंधु। (प्र० ५।३।६) कालउ-१. काल भी, मृत्यु या यमराज भी, २. काल को भी। उ० १. कालउ तुअ पद नाइहि सीसा। (मा० १।१६५।१) कालऊ-दे० 'कालउ'। उ० २. कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो। (क० ५।६) कालकलि-कलिकाल, कलियुग। उ० काल-कलि-पाप-संताप-संकुल-सदा-प्रनत-तुलसीदास-तात-माता। (वि० २८) काल-जोग (सं० काल+योग)-संयोग से, समय के फेर से। उ० सु-हित सुखद गुन-जुत सदा काल-जोग दुख-होय। (स० ७०७) कालहि-१. समय को, २. काल को, मृत्यु को, यमराज को। मु० कालहि पाई-कुछ समय बीतने पर, कुछ दिन बाद। उ० १. भए निसाचर कालहि पाई। (मा० १।१२६।४) कालहुँ-दे० 'कालहु'। कालहु-१. काल भी (क. समय भी ख. मृत्यु भी), २. 'काल' का भी (क. समय का भी, ख. मृत्यु का भी)। उ० २. ख. भुवनेस्वर कालहु कर काला। (मा० ५।३९।१)कालहू-दे० 'कालहु'। उ० २. ख. कबहूँ कह्यो न 'कालहू को काल कालिह है।' (क० ७।१२०) कालौ-१. काल भी, समय भी, २. मृत्यु भी।

काल (२)-(सं० कल्य)-आनेवाला या बीता हुआ दिन, कल।

कालकार्मुक-(सं०)-खर-दूषण का एक सेनापति जिसे राम ने मारा था।

कालकूट-(सं०)-एक प्रकार का अत्यंत भयंकर विष। यह एक पर्वतीय पौदे का गोंद होता है। हलाहल। उ० कालकूट मुख पयमुख नाहीं। (मा० १।२७७।१)

कालकेतु-(सं०)-एक राक्षस का नाम। उ० कालकेतु निसिचर तहँ आवा। (मा० १।१७०।२)

कालछेप-(सं० कालक्षेप)-समय बिताना, दिन काटना। उ० कालछेप केहि मिलि करहिं, तुलसी खग मृग मीन। (दो० ४०४)

कालनाथ-(सं०)-१. महादेव, शिव, २. काल भैरव, काशी में स्थित भैरव विशेष। उ० २. कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि, सभासद गनप से अमित अनूप हैं। (क० ७।१७१)

कालनिसा-(सं० कालनिशा)-१, दीवाली की रात, २. भयावनी रात, काल रात्रि। उ० २. कालनिसा सम निसि ससि भानू। (मा० ५।१५।१)

कालनेमि-(सं०)-१. एक राक्षस जो रावण का मामा था। यह पूर्व जन्म का इंद्र-सभा में गानेवाला एक गंधर्व था। एक बार गाते समय दुर्वासा ऋषि की वाह-वाही न पाने पर इसने दुर्वासा को मूर्ख समझकर हँस दिया। इस पर क्रोधित होकर दुर्वासा ने इसे राक्षस होने का शाप दे दिया। गंधर्व बहुत दुखी होकर प्रार्थना करने लगा जिससे प्रभावित होकर दुर्वासा ने त्रेता में हनुमान द्वारा मारे जाने पर मुक्त होने का उसे वर दिया। लक्ष्मण की शक्ति लगने के बाद जब हनुमान संजीवनी लेने जा रहे थे तो इसने कपट वेष में उन्हें छलना चाहा था, पर हनुमान इस छल को जान गये और इसे मारकर अपना रास्ता लिया। २. एक दानव जिसने देवों को पराजित करके स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था और अपने शरीर को चार

भागों में बाँटकर सब काम करता था। अंत में यह विष्णु के हाथ से मारा गया और दूसरे जन्म में कंस हुआ। उ० १. कालनेमि जिमि रावन राहू। (मा० १।७।३)
कालराति-(सं० कालरात्रि)-दे० 'कालनिसा'।
काला-दे० 'काल'।
कालाग्नि-(सं०)-प्रलय की आग, प्रलयकाल की आग। उ० यातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर। (वि० २७)
कालि-(सं० कल्प)-१. बीता हुआ दिन, कल, २. आनेवाला दिन, कल, ३. शीघ्र ही। उ० १. सबको भावतो ह्वै है मैं जो कह्यो कालि री। (क० १।१२) ३. खरदूषन मारीच ज्यों, नीच जाहिंगे कालि। (दो० १४५) कालिहि-१. कल ही, कल के दिन ही, २. जल्दी ही। कालिहु-कल भी। उ० ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते दिये। (गी० ५)
कालिका-(सं०)-चंडी, काली, एक देवी विशेष। उ० राम कथा कालिका कराला। (मा० १।४७।३) विशेष-शुंभ और निशुंभ के अत्याचारों से पीड़ित इंद्रादिक देवों की प्रार्थना पर एक मातंगी प्रकट हुई जिसके शरीर से काली का आविर्भाव हुआ। पहले इनका वर्ण काला था अतः काली या कालिका कही गई तथा उग्र भयों से रक्षा करने के कारण उग्रतारा। सिर पर एक जटा होने के कारण एकजटा भी इनका नाम है। काली के साथ महाकाली, रुद्राणी, उग्रा आदि आठ योगिनियाँ भी हैं।
कालिमा-(सं० कालिमन्)-१. कालापन, २ कालिख, ३. अँधेरा, ४. कलंक, दोष, लांछन। उ० ४. तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई। (गी० ६।६)
काली (१)-(सं० कल्य)-दे० 'कालि'। उ० १. पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। (मा० १।२३४।३)
काली (२)-(सं०)-१. दे० 'कालिका', २. पार्वती, ३. दस महाविद्याओं में से प्रथम, ४. अग्नि की सात जिह्वाओं में प्रथम।
काली (३)-(सं०काल)-१.काले रंगवाली, २.मेघों की घटा।
कालीन (१)-(अर० क़ालीन)-ऊन या सूत के मोटे तागों का बुना हुआ मोटा और भारी बिछावन। गलीचा।
कालीन (२)-(सं)-१. काल संबंधी, समय का, दिन का। २. पुराना, अधिक दिन का, दिनी।
कालीना-दे० २. 'कालीन'। उ० १. देखत बालक बहु कालीना। (मा० ७।३२।२)
कालीय-(सं० कालिय)-एक सर्प, जिसे कृष्ण ने वश में किया था। कालिया नाग। उ० कृष्ण करुनाभवन, दवन-कालीय-खल। (वि० ४९)
कालु-दे० 'काल'।
कालू-दे० 'काल'।
काल्हि-(सं० कल्य)-दे० 'कालि'। उ० २. कबहूँ कह्यो न कालहू को काल काल्हि है। (क० ७।१२०)
काव्य-१. वह रचना जिसे सुन या पढ़कर चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो। कविता। २. कविता की कोई पुस्तक, ३. दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य। उ० १. जयति निगमागम-व्याकरन करनलिपि काव्य-कौतुक-कला-कोटि-सिंधो। (वि० २८)
काशी-(सं०)-वरुणा और अस्सी के बीच गंगा पर बसी हुई एक नगरी। बाराणसी, बनारस। इसे शिव का प्रधान स्थान तथा उनके त्रिशूल पर स्थित माना जाता है और ऐसा कहा जाता है कि काशी में मरनेवाले की अनायास मुक्ति हो जाती है। उ० काशीशं कलिकल्मषौघशमनं। (मा० ६।१। श्लो० २) काशीपति-काशी के नाथ, शंकर, शिव। काशीशं-काशी के ईश अर्थात् शंकर को, महादेव को। उ० दे० 'काशी'। काशीश-(सं०)-शिव, महादेव, काशी के ईश।
काष्ठ-(सं०)-काठ, लकड़ी। उ० कामिनि काष्ठ सिला पहचानत। (बै० २८)
कास-(सं० काश)-एक लंबी घास जो वर्षा ऋतु के अंत में फूलती है। इसके फूल सफेद होते हैं। उ० फूले कास सकल महि छाई। (मा० ४।१६।१) कासन-कास का, कासों का। उ० का कासन आसन किए, सास न लहे उपास। (स० २३१)
कासी-दे०'काशी'। उ० जाचिए गिरिजापति कासी। (वि०६)
कासीस-दे० 'काशीश'। उ० गिरिजा-मन-मानस-मराल, कासीस, मसान-निवासी। (वि० ६)
कासु-(सं० कस्य)-किसको, किसका। उ० तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु। (दो० ३५५)
कासों-(सं कः + सह)-किससे, कौन से। उ० बलि जाउँ, और कासों कहौं? (वि० २२२)
कासो-दे० 'कासों'।
काह-(सं० कः)-१. क्या, २. किसको। उ० १. भगतहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ। (वि० २१७) २. बूझत कहहु काह हनुमाना। (मा० ७।३६।२)
काहली-(अर० काहिल)-सुस्त, आलसी। उ० मोसे दीन दूबेर कुपूत कूर काहली। (क० ७।२३)
काहा-(सं० कः)-क्या, काह। उ० जाइ उतरु अब देहउँ काहा। (मा० १।५४।१)
काहि-(सं० कः)-१ किसको, किसे, २. किस, ३. किससे, ४. किसी से, ५. कौन। उ० २. ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू। (मा० २।१७२।१)
काहीं (१)-(सं० कक्षं)-को, के लिए। उ० सो माया न दुखद मोहि काहीं। (मा० ७।७८।१)
काहीं (२)-(सं० कुहः)-कहाँ।
काहीं (३)-दे० 'काहि'। उ० २ राज तजा सो दूषन काहीं। (मा० १।११०।३)
काही-दे० 'काहि'। उ० १. अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही। (मा० १।२००।३)
काहुँ-(सं० कः)-कोई भी, किसी ने भी। उ० सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। (मा० १।१३३।४)
काहु-१. कोई, कोई भी, किसी, किसी भी, २. किसी को, ३. किसी ने। उ० १. हरिपद-बिमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझि सबेरो। (वि० ८७) काहुक-किसी का। उ० अपने चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह। (मा० २।२०) काहुहिं-किसी को, किसी को भी। काहुहि-किसी को। उ० काहुहि बादि न देइअ दोसू। (मा० २।६३।१)

काहूँ–दे 'काहु'। काहू–दे० 'काहु'। उ० १. लोकहुँ बेद बिदित सब काहू। (मा० १।७।४)
काहे–(सं० कथं)–क्यों, किस लिए। उ० कृपासिंधु ! जन दीन दुवारे दादिन पावत काहे ? (वि० १४५)
किं–(सं० किम्)–१ क्या, २. कौन सा।
किंकर–(सं०) १. दास, सेवक, २. राक्षसों की एक जाति जिसे हनुमान ने प्रमदा बन को उजाड़ते समय मारा था। उ० १. जानि कृपाकर किंकर मोहू। (मा० १।८।२)
किंकरि–दे० किंकरी। उ० अब मोहि आपनि किंकरि जानी। (मा० १।१२०।२) किंकरी–(सं०)–दासी। उ० नाथ उमा मम प्रान सम गृह किंकरी करेहु। (मा० १।१०१)
किंकिणी–(सं०)–१. छोटी घंटी, २. घुँघुरूदार करधनी, करधनी, कमरबंद।
किंकिन–दे० 'किंकिणी'।
किंकिनि–दे० 'किंकिणी'। उ० कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। (मा० १।२३०।१)
किंकिनी–दे० 'किंकिणी'। उ० सुभग श्रीवत्स केयूर कंकन हार किंकिनी-रटनि कटितट रसालं। (वि० ५१)
किंचित–(सं० किंचित्)–थोड़ा, कुछ, अल्प।
किंजल्क–(सं०)–१. कमल की रज, पद्मकेशर, कमल के फूल का पराग, २. कमल के केसर की भाँति पीत वर्ण का, पीला। उ० २. किंजल्क बसन, किसोर मूरति, भूरि गुन करुनाकरं। (कृ० २३)
किंनर–दे० 'किन्नर'। उ० अमर नाग किंनर दिसिपाला। (म० २।१३४।१)
किंवा–(सं० किंवा)–या, वा, अथवा, या तो। उ० नृप अभिमान मोह बस किंवा। (मा० ६।२०।३)
किंशुक–(सं०)–पलास, ढाक, टेसू। इसके पेड़ बड़े होते हैं और इसमें फाल्गुन में लाल फूल लगते हैं।
किंसुक–दे० 'किंशुक'। उ० कुसुमित किंसुक के तरु जैसे। (मा० ६।५४।१)
कि (१)–(सं० किम्)–१. किस प्रकार, कैसे, २. क्या। उ० जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरु बरनि कि जाय। (मा० १।९४) २. भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है ? (क० २।४)
कि (२)–(सं० किंवा) अथवा, या। उ० कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं। (मा० १।१६७।१)
कि (३)–(फा०)–एक संयोजक जो कहना, देखना, सुनना, वर्णन करना आदि बहुत क्रियाओं के बाद उनके विषय वर्णन के पहिले आता है।
किआरीं–(सं० केदार)–क्यारियाँ, खेत आदि में पानी देने के लिए पतली मेड़ों द्वारा बनाये गए छोटे-छोटे हिस्से। उ० महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। (मा० ४।१५।४)
किछु–(किंचित्)–१. कुछ, थोड़ा, ज़रा, २. कुछ और, दूसरा, अन्य, कोई दूसरा। उ० १. जो किछु कहब थोर सखि सोई। (मा० २।२२३।१) २. लाभु कि किछु हरिभगति समाना।
कित–(सं० कुत्र)–१. कहाँ, २. किधर, किस ओर। उ० १. कुलिस कठोर कहाँ संकर-धनु, मृदु मूरति कित ए, री। (गी० १।७६) कितहूँ–किधर भी, किसी ओर भी। उ० हौं बलि जाउँ जाहु कितहूँ जनि मातु सिखावति स्यामहिं। (कृ० ५)
कितक–(सं० कियत)– कितना, किस कदर, किस परिमाण या मात्रा का।
कितना–(सं० कियत्)–१. किस परिमाण, मात्रा या संख्या का, २. अधिक, बहुत ज्यादा।
कितिक–दे० 'कितक'। उ० कोटि-कला-कुसल कृपालु नत-पाल, बलि, बातहू कितिक तिन तुलसी तनक की। (क० ७।२०)
कितौ–(सं० कियत्) कितना। उ० राजकुँवर-मूरति रचिबे को रुचि सुबिरंचि स्रम कियो है कितौ, री। (गी० १।७५)
किधौं–(१)–अथवा, या, या तो, न जाने। उ० जम कर धार किधौं बरिआता। (मा० १।९५।४)
किन (१)–(सं० कस्य) किस का बहुबचन। कौन लोग। किसने। उ० सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग। (दो० २५४)
किन (२)–(सं० किण)–किसी वस्तु के चुभने या लगने का चिह्न। उ० ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे। (मा० ७।१३। छं० ४)
किन (३)–(सं० किम्+न)–क्यों न, क्यों नहीं। उ० कहहु करहु किन कोटि उपाया। (मा० २।३३।३)
किन्नर (१)–(सं०)–एक प्रकार के देवता जिनका मुँह घोड़े की तरह माना गया है और जो संगीत शास्त्र में अत्यंत कुशल कहे गए हैं। इनके पूर्वज पुलस्त्य ऋषि थे। उ० यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग मनुज दनुज मज्जहिं सुकृत पुंज जुतकामिनी। (वि० १८)
किन्नर (२)–(?)–विवाद, दलील, तकरार।
किन्नरी–(सं०)–१ किन्नर जाति की स्त्री, २. किंगरी, सारंगी, वीणा। उ० २. नाउ, किन्नरी, तीर, असि लोह बिलोकहु लोइ। (दो० ३५८)
किमपि–(सं० किम्+अपि)–कुछ भी, ज़रा भी। उ० हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं। (मा० १।१६२।१)
किमि–(सं० किम्)–१. कैसे, किस प्रकार, २. क्यों। उ० १. बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। (मा० २।१४३।४)
किम्–(सं०)–१. क्या, २. कौन सा, ३. कुछ।
कियत–(सं० कियत्)–कितना। उ० जेहि सुख सुख मानि लेत सुख सो समुझ कियत। (वि० १३२)
कियारी–दे० 'किआरी'।
किरण–(सं०)–किरन, सूर्य या चन्द्रमा आदि से आता हुआ प्रकाश, रश्मि, मरीचि। किरणाः–(सं०)–किरणों से। उ० ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यंति नो मानवाः। (मा० ७।१३१। श्लो० २)
किरणमाली–(सं०)–सूर्य, रवि। उ० अनय-अंभोधि-कुंभज, निशाचर-निकर-तिमिर-घनघोर-खर-किरणमाली। (वि० ४४)
किरन–दे० 'किरण'। उ० रामकथा ससि किरन समाना। (मा० १।४७।४) किरनकेतु–(सं० किरण+केतु)–सूर्य, रवि। उ० जयति जय सत्रु-कीर-केसरी सत्रुहन सत्रु-तम-तुहिनहर-किरनकेतू। (वि० ४०) किरनमालिका–१. सूर्य, रवि, किरणों की माला धारण करनेवाला, २. किरणों का समूह। उ० १. ताप-तिमिर-तरुनतरनि-किरन-मालिका। (वि० १६) किरनमाली–दे० 'किरणमाली'।

किरात—(सं०)-एक प्राचीन जंगली जाति, भील, निषाद तथा कोल आदि से मिलती-जुलती एक जाति। उ० कोल किरात कुरंग बिहंगा। (मा० २।१८८।४) किरातन्ह—१. किरातों ने, २. किरातों को। उ० १. यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। (मा० २।१३५।१) किरातहि—किरात को। उ० लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। (७।३०।३) किरातिनि—किरातिनी, किरात की स्त्री। उ० भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद। (मा०२।२६) किराती—किरात की स्त्री, भीलनी। उ० देखि लागि मधु कुटिल किराती। (मा० १३।२) किरातो—१ किरात भी, २. किरात को भी। उ० २ महिमा उलट नाम की मुनि कियो किरातो। (वि० १५१)

किरिच—(सं० कृति)-१. टुकड़ा, कड़ी वस्तु का छोटा टुकड़ा, २. एक अस्त्र। उ० काँच किरिच बदले ते लेहीं। (मा० ७।१२१।६)

किरीट—(सं०)-एक प्रकार का प्राचीन मुकुट जो बाँधा जाता था। मुकुट। उ० नृप किरीट तरुनी तनु पाई। (मा० १।११।१)

किल—(सं०)-निश्चय, अवश्य। उ० कहत काल किल सकल बुध ताकर यह ब्यवहार। (स० ५७२)

किलकत—(सं० किलकिला)-१. किल-किल शब्द कर आनंद प्रकट करते हैं। २. किलकते हुए, आनंद के साथ शब्द करते हुए। उ० २. किलकत मोहि धरन जब धावहिं। (मा० ७।७७।५) किलकनि—किलकना, किलकारी मारना, प्रसन्नता से किलकिल शब्द करना। उ० किलकनि चितवनि भावति मोही। (मा० ७।७७।४) किलकानियाँ—दे० 'किलकनि'। उ० मनमोहनी तोतरी बोलनि, मुनिमन हरनि हँसनि किलकनियाँ। (गी० १।३१) किलकहीं—किलकारी मारते हैं, प्रसन्नतासूचक शब्द करते हैं। उ० देखि खेलौना किलकहीं। (गी० १।१६) किलाकि—किलककर, सानंद शब्द कर। उ० कूदि-कूदि किलकि किलकि ठाढ़े-ठाढ़े खात। (कृ० २)

किलकिला—(सं०)-दे० 'किलिकिला'।

किलकारी—१ प्रसन्नतासूचक शब्द, २. बंदर की आवाज़। उ० २. गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि, हनुमान पहिचानि भये सानंद सचेत हैं। (क० ५।२६)

किलकिलाइ—किलकिलाकर, आनंद या क्रोधसूचक ध्वनि कर। उ० किलकिलाइ धाए बलवाना। (मा० ६।६५।२) किलकिलात—प्रसन्नता या क्रोधसूचक ध्वनि करते हैं, गरजते हैं। उ० किलकिलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधि तीर। (गी० ५।२२)

किलविषी—(सं० किल्विष)-१. पापी, २. रोगी, ३. अनगुणी। उ० १. मन-मलीन, कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज। (वि० १६१)

किलिकिला—१. हर्षध्वनि, २. बंदरों की आनंद या क्रोधसूचक ध्वनि। उ० २. सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा। (मा० ५।२८।१)

किल्विष—(सं०)-१. पाप, दोष, २. रोग।

किशलय—(सं०)-नया निकला पत्ता, कोमल छोटा पत्ता, अंकुर, कल्ला।

किशोर—(सं०)-१. लड़का, ११ से १५ वर्ष की अवस्था का लड़का, २. पुत्र, बेटा, लड़का, ३. नवयुवक। किशोरी—१. बालिका, किशोर का स्त्रीलिंग, २. कुमारी, अविवाहिता। दे० 'किशोर'।

किस—(सं० कस्य)-'कौन' का एक रूप जो उसे विभक्ति लगाने के पूर्व प्राप्त होता है। जैसे किसने, किसको आदि। कौन।

किसब—(अर० कस्ब)-कारीगरी, परिश्रम से कुछ करना। उ० जानत न क्रूर कछु किसब कबारु है। (क० ७।६७)

किसबी—कारीगर, परिश्रमी, मज़दूर। उ० किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाँट, चाकर, चपल, नट चोर चार चेटकी। (क० ७।९६)

किसलय—दे० 'किशलय'। उ० नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। (मा० ५।१५।१)

किसाना—(सं० कृषाण)-किसान, कृषक। उ० कृषी निरावहिं चतुर किसाना। (मा० ४।१५।४)

किसु—(सं० कस्य)-१. किसका, कौन व्यक्ति का, २.किसको, ३. किसी। उ० १. नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह। (मा० १।७८)

किसू—दे० 'किसु'।

किसोर—दे० 'किशोर'। उ० १. स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन। (मा० २।११६) किसोरहि—किशोर को, बच्चे को। उ० मनहुँ मत्त गजगन निरखि, सिंघ-किसोरहि चोप। (मा० १।२६७) किसोरी—दे० 'किशोरी'। उ० जय-जय गिरिराज किसोरी। (मा० १।२३५।३)

किसोरकु—(सं० किशोरक)-बच्चा, छोटा बालक, शिशु। उ० ससिहि चकोर किसोरकु जैसें। (मा० १।२६३।४)

किसोरा—दे० 'किशोर'। उ० १. कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा। (मा० १।२५८।२)

किहनी—(सं० कथन>प्रा० कहन)-किस्सा, कहानी, कहावत। उ० साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान। (दो० ५५४)

की (१)—(सं० कृतः)-१. सम्बन्ध कारक का चिह्न, 'का' का स्त्रीलिंग रूप, २. से। उ० १. कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की। (क० ७।१८२) २. दे० 'कौ'।

की (२)—(सं० किम्)-क्या।

की (३)—(सं० किंवा)-अथवा, या।

की (४)—(फा० कि)-दे० 'कि (२)'।

कीच—(सं० कच्छ)-कीचड़, पंक, कर्दम। उ० नीच-कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच। (मा० २।२५२) कीचहि—१. कीच से, कीच में, २. कीच को। उ० १. कीचहि मिलइ नीच जल संगा। (मा० १।७।५)

कीचा—दे० 'कीच'। उ० मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। (मा० १६४।४)

कीट (१)—(सं०)-१. कीड़ा-मकोड़ा, कृमि, बहुत छोटे-छोटे जीव, २. तुच्छ। उ० १. काह कीट बपुरे नर नारी। (मा० २।२६।२)

कीट (२)—(सं० किट्ट)-मैल, मल।

कीती—(सं० कीर्त्ति)-यश, ख्याति, नेकनामी। उ० जासु सकल मंगलमय कीती। (मा० ५।३५।३)

कीदहुँ-(?)-किधौं, या, या तो। उ० कीदहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो। (रा० १२)

कीधौं-(?)-या तो, या। उ० काल की करालता, करम-कठिनाई कीधौं, पाप के प्रभाव, की सुभाय बाय बावरे। (ह० ३७)

कीर-(सं०)-शुक, तोता। उ० कीर के कागर ज्यौं नृप-चीर बिभूषन, उप्पम अंगनि पाई। (क० २।१) कीरै-तोते को, तोते के लिए। उ० मोहि कहा बूझत पुनि-पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै। (गी० ६।१५)

कीरत-दे० 'कीरति'।

कीरति-(सं० कीर्त्ति)-१. कीर्त्ति, यश, बड़ाई, ख्याति, २. पुराय, ३. राधिका की माता का नाम। उ० १. करहिं राम कल कीरति गाना। (मा० १।३४।४)

कीरा-(सं० कीट)-कीड़ा, सड़ी चीजों में पैदा हो जानेवाले सूत की तरह पतले और छोटे छोटे कीड़े। उ० गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा। (मा० २।१६२।१)

कीर्तन-(सं० कीर्त्तन)-१. गुणकथन, यशवर्णन, २. हरि कीर्तन, भजन आदि।

कीर्त्ति-(सं०)-१. यश, ख्याति, नामवरी, २. पुराय, ३. विस्तार, फैलाव। उ० १. कीर्त्ति बड़ो, करतूति बड़ो जन, बात बड़ो, सों बड़ोई बजारी। (क० ६।५)

कील (१)-(सं०)-१. लोहे या काठ की खूँटी, काँटा, २. चाक के बीच की लकड़ी, जिस पर वह घूमता है, ३. तृण, तिनका।

कील (२)-(सं० कीलक)-१. किसी मंत्र का मध्य भाग, २. वह मंत्र जिससे किसी अन्य मंत्र का प्रभाव नष्ट किया जाय। ३. ज्योतिष में प्रभव आदि ६० वर्षों में से ४२ वाँ जिसमें मंगल और सुख का प्राधान्य होता है।

कीले-(सं० कीलन>कीलना-१. कील लगाना, जड़ना, २. मंत्र आदि के प्रभाव को नष्ट करना, ३. साँप को ऐसा मोहित करना कि किसी को काट न सके, ४. अधीन करना, बश में करना, ५. बंद करना, रुकावट डालना, बाँध देना) बाँध दिया है, रोक दिया है। उ० जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले। (वि० ३२)

कीश-(सं०)-बंदर, लंगूर।

कीस-(सं० कीश)-१. बानर, २. हनूमान, ३. सुग्रीव। उ० १ कीस कुंल-अंकुर बनहि उपजत करत निदान। (स० १६६) कीसन्ह-१. बन्दरों ने, २. बन्दरों को। उ० १. बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो। (मा० ६।१००। छं १)

कीसनाथ-१. बानरराज, हनुमान, २. सुग्रीव। उ० १. तुलसी के माथे पर हाथ फेरौ कीसनाथ। (ह० ३३)

कीसपति-दे० 'कीसनाथ'।

कीसा-दे० 'कीस'। उ० १. जहँ-तहँ भजे भालु अरु कीसा। (मा० ६।६६।२)

कुँअर-(सं० कुमार)-लड़का, पुत्र, राजकुमार।

कुंकुम-(सं०)-१. केसर, ज़ाफ़रान, २. रोरी, रोली, लाल रंग की अबीर जिसे घोलकर होली में एक दूसरे पर डालते हैं या योंही मुँह पर मलते हैं। ३. कुंकुमा, झिल्ली या लाख का बना हुआ पोला गोला जिसके भीतर रंग या गुलाल भरकर होली के दिनों में मारते हैं। उ० १. कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुख चंद सों चंद सों होड़ परी है। (क० ७।१८०)

कुंकुमा-दे० 'कुंकुम'।

कुंचित-(सं०)-घूमा हुआ, घुँघराला, वक्र। उ० कुंचित कच मेचक छबि छाए। (मा०७।७७।३)

कुंज-(सं०)-१. लताओं का मंडप, पेड़ तथा लता आदि से घिरा स्थान, २. हाथी का दाँत। उ० १. मंजु कुंज, सिलातल, दल फूल पूर हैं। (गी० २।४५)

कुंजर-(सं०)-१. हाथी, गज, २. श्रेष्ठ, उत्तम, ३. बाल, केश। उ० १. मत्त मंजु बर कुंजर गामी। (मा० १।२४५।३) उ० २. सुनत कोपि कपि कुंजर धाए। (मा० ६।४७।१) कुंजरहि-१. कुंजर को, २. श्रेष्ठ को। उ० २. कपि कुंजरहि बोलि लै आए। (मा० ६।१६।२) कुंजरहु-ऐ हाथियो। उ० दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। (मा० १।२६०।१) कुंजरारि-(सं०)-हाथी का शत्रु, सिंह। उ० महाबल-पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट जहाँ-तहाँ पटके लंगूर फेरि-फेरि कै। (क० ६।४२) कुंजरारी-दे० 'कुंजरारि'। उ० बिकट भृकुटि, बज्र दसन नख, बैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी। (वि० २८) कुंजरोनरो-दुबिधा, संदेह। उ० स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरोनरो। (वि० २२६) विशेष-महाभारत में जब द्रोणाचार्य कौरवों के पक्ष से पांडवों का संहार करने लगे तो कृष्ण ने अर्जुन से आचार्य के बध के लिए कहा। अर्जुन को इसमें हिचक मालूम हुई। द्रोणाचार्य को वरदान था कि पुत्र-शोक में ही उनका प्राण निकलेगा। कृष्ण ने यह सलाह दी कि सत्यवादी युधिष्ठिर यदि आचार्य से कह दें कि उनका पुत्र मर गया तो उनकी मृत्यु हो जाय, पर इस पर युधिष्ठिर भी तैयार न हुए। तब अश्वत्थामा नाम के हाथी को भीम ने मार डाला और युधिष्ठिर ने द्रोण के समीप 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा' कहा। बीच में कृष्ण के शंखध्वनि के कारण द्रोण को केवल 'अश्वत्थामा हतो' सुनाई पड़ा। उनके पुत्र का नाम अश्वत्थामा था अतः वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े और धृष्टद्युम्न ने उनका सर काट लिया। 'नरो वा कुंजरो वा' इसी आधार पर दुबिधा के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

कुंजरमनि-(सं० कुंजरमणि)-गजमुक्ता, हाथी के सर में पाया जानेवाला एक बहुमूल्य रत्न। उ० कुंजरमनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल। (मा० १।२४३)

कुंठ-(सं०)-१. जो चोखा न हो, भोथर, २. मूर्ख।

कुंठित-(सं०)-१. जिसकी धार तेज़ न हो, कुंद, २. मंद, सुस्त, ४. लज्जित, ५. नाराज। उ० १. भा कुठारु कुंठित नृपघाती। (मा० १।२८०।१)

कुंड-(सं०)-१. चौड़े मुँह के गहरे और बड़े बर्तन, २. हौज, ३. हवन आदि के लिए बना गड्ढा। उ० १. रावन आगे परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुंड। (मा० ६।४४)

कुंडलं-दे० 'कुंडल'। उ० १. चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। (मा० ७।१०८।श्लो० ४) कुंडल-(सं०)- १. सोने चाँदी आदि का बना एक मंडलाकार कानों का आभूषण, मुरकी, बाली, २. योगियों द्वारा कान में धारण किया

जानेवाला सींग, लकड़ी, या काँच आदि का बना एक आभूषण। ३. कोई भी कड़ा, चूड़ा आदि गोल आभूषण, ४. किसी लचीली वस्तु की कई गोल फेरों में सिमटकर बैठने की स्थिति, मंडली, ५. बदली में चंद्रमा-सूर्य आदि के चारों ओर दिखाई देनेवाला मंडल, ६. मेखला, मेड़री। उ० १. कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। (मा० १।२४३।२)

कुंडि-(सं० कुंडिन्)-१.कमंडलु, २.घड़ा, ३.लड़ाई में पहनने की लोहे की टोपी।

कुंत-(सं०)-१. भाला, बरछा, २. एक काँटेदार वृक्ष। उ० १. कुबलय बिपिन कुंतबन सरिसा। (मा० ५।१५।२)

कुंदं-दे०'कुंद (१)'। उ० १.रुचिर सुकपोल, दर ग्रीव सुखसीव, हीर इंदुकर-कुंदमिव मधुरहासा। (वि० ६१)

कुंद (१)-(सं०)-१. जूही की तरह का एक पौधा जिसमें सफेद फूल लगते हैं। कवि लोग दाँतों की उपमा कुंद के फूल या कली से देते हैं। २. खराद का यंत्र, खराद। उ० १. कुलिस-कुंद कुडमल-दामिनि-दुति दसननि देखि लजाई। (वि० ६२) २. गाढ़ि गुढ़ि छोलि छालि कुंद कीसी भाई बातैं। (क० ७।६३)

कुंद (२)-(फा०)-कुंठित, गुठला, मंद।

कुंदन-(?)-स्वच्छ सुवर्ण, बढ़िया सोना।

कुंभ (१)-(सं०)-१. घड़ा, कलश, घट, २. हाथी के सिर के दोनों ओर ऊपर उभड़े हुए भाग, ३. एक राशि जो क्रम में दसवीं है। ४. एक पर्व जो प्रति बारहवें वर्ष हरिद्वार, प्रयाग, नासिक तथा उज्जैन में होता है। ५. एक दैत्य जो प्रहलाद का पुत्र था। ६. कुंभकर्ण का पुत्र एक राक्षस। उ० २. मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। (मा० ७।१२।१)

कुंभ (२)-(सं० कुंभक)-प्राणायाम का एक भाग जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं। यह क्रिया पूरक के बाद और रेचक के पूर्व की जाती है।

कुंभऊकरन-कुंभकरन भी। दे० 'कुंभकरन'। उ० कंत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय, कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह सी। (क० ६।४३) कुंभकरन-दे० 'कुंभकर्ण'। उ० अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। (मा० १।१८०।२)

कुंभकरन्न-दे० 'कुंभकर्ण'। उ० बारिदनाद अकंपन कुंभकरन्न से कुंजर केहरि-बारो। (ह० १६)

कुंभकर्ण-(सं०)-रावण का भाई एक राक्षस जिसे घटकर्ण भी कहते हैं। यह छः महीने सोता और एक दिन जागता था। यह उसे ब्रह्मा का वरदान था। इसने सुग्रीव को बंदी बनाया था। राम-रावण युद्ध में राम द्वारा यह मारा गया।

कुंभकर्न-दे० 'कुंभकर्ण'। उ० को कुंभकर्न कीट जब राम रन रोषिहैं। (क० ६।२)

कुंभज-(सं०)-१. घड़े से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि जिन्होंने समुद्र सोख लिया था। दे० 'अगस्त्य'। २. वशिष्ट, ३. द्रोणाचार्य। उ० १. कुंभज लोभ उदधि अपार के। (मा० १।३२।३)

कुंभजातं-दे० 'कुंभजात'। उ० १. बचन मन कर्मगत सरन तुलसीदास, त्रास-पाथोधि-इव कुंभजातं। (वि०५३)

कुंभजात-दे० 'कुंभज'।

कुंभसंभव-(सं०)-दे० 'कुंभज'। उ० १. मिले कुंभसंभव मुनिहि, लखन सीय रघुराज। (प्र० २।६।७)

कुँभिलाइ-(सं० कु+म्लान)-मुरझाता है, कुम्हलाता है। उ० जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ। (ब० ५)

कुंभीश-(सं० कुंभी+ईश)-हाथियों के राजा, गजराज। उ० शुंभ निःशुंभ कुंभीश रणकेशरिणि, क्रोधवारिधि बैरिवृंद बोरे। (वि० १५)

कुँवर-(सं० कुमार)-१. पुत्र, कुमार, २. राजकुमार। उ० २. ये उपही कोउ कुँवर अहेरी। (गी० २।४२) कुँवरि-(सं० कुमारी)-अविवाहिता कन्या, राजा की अविवाहिता कन्या, राजकुमारी। उ० कुँवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं। (पा० १०)

कु-(सं०)-१. एक उपसर्ग जो संज्ञा के पहले लगता है। इसका अर्थ बुरा, नीच, कठिन, कड़ा तथा कुत्सित आदि होता है। कुभाव, कुचाह, कुचाल, कुचरचा आदि, २. पृथ्वी, धरती। उ० १. मेटत कठिन कुअंक भाल के। (मा० १।३२।५) २. मनु दोउ गुरु सुनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए। (गी० १।२३) कुअंक-बुरे अक्षर, बुरी रेखा। दे० 'कु'। कुघरी-(सं० कु+घटी) बुरी घड़ी, बेमौका, कुसमय। उ० घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। (मा० २।२६।४) कुचाह-(सं० कु+उत्साह)-१. अमंगल, अशुभ बात, २. बुरी इच्छा, ३. अनिच्छित। उ० १. कठिन कुचाह सुनाइहि कोई। (मा० २।२२६।४) कुचाहैं-बुरी खबरें, अमंगल। उ० जातुधानतिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं। (गी० ७।१३) कुजंतु-(सं० कु+जंतु)-बुरे जीव। उ० त्रिजगजोनि-गत गीध जनम भरि खाइ कुजंतु जियो हौं। (गी० ३।१४) कुजंत्र-(सं० कुयंत्र)-बुरा यंत्र, अभिचार, टोटका, टोना। उ० कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। (मा० २।२१२।२) कुजन-(सं० कु+जन)-बुरे लोग, दुष्ट जन, बन्दर। उ० कुजन-पाल, गुन-वर्जित, अकुल, अनाथ। (ब० ३५) कुजाति-(सं० कु+जाति)-नीच, भ्रष्ट, दुराचारी। उ० सब जाति कुजाति भए मगता। (मा० ७।१०२।३) कुजाती-दे० 'कुजाति'। उ० करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। (मा० २।१३।२) कुजोग-(सं० कुयोग)-१. कुसंग, कुमेल, २. बुरा अवसर, प्रतिकूल अवस्था। उ० २. ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग। (मा० १।७ क) कुजोगनि-कुयोगों ने, बुरे संयोगों ने। उ० बेरि लियो रोगनि कुलोगनि कुजोगनि ज्यौं। (ह० ३५) कुजोगी-(सं० कुयोगी)-असंयमी, विषयी। उ० पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। (मा०६।३४।७) कुठाट-(सं० कु+स्थात्)-१. बुरा साज, बुरा प्रबंध, २ उपद्रव, षड्यंत्र। उ० १. काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को। (क० ७।६६) कुठाटु-दे० 'कुठाट'। उ० २. सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु। (मा० २।२९५) कुठायँ-(सं० कु+स्थान)-१. कुठौर में, बुरे स्थान में, २. कुअवसर, बेसमय। उ० १. सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ। (मा० २।३०) कुठाय-१. बुरा स्थान, २. बुरा अवसर।

उ० २. कटु कुठाय करटा रटहिं। (प्र० ३।१।९) कुतरु–(सं० कु+तरु)–बुरा वृक्ष, बबूल आदि। उ० तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु-कोटर गहौं। (वि० २२२) कुदाँउ–दे० 'कुदाव'। कुदाँव–दे० 'कुदाव'। कुदाउ–दे० 'कुदाव'। उ० १. नृप सनेह लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ। (मा० २।७३) कुदान (१)–(सं०)–बुरा दान, कुपात्र या अयोग्य को दिया गया दान। कुदाम–(सं०कु+दाम (ग्रीक शब्द)–खोटा सिक्का, खोटा रुपया। उ० तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर-कर न बिकातो। (वि० १५१) कुदाय–दे० 'कुदाव'। मु० कुदायदेत–चोट करते। उ० १. त्योंहि रामगुलाम जानि निकाम देत कुदाय। (वि० २२०) कुदाव–(सं० कु+दा (दाच् प्रत्यय)–१. बुरा दाव, कुघात, विश्वासघात, धोखा, दगा, २. बुरा स्थान, विकट स्थान, ३. संकट की स्थिति, ४. दुःख, चोट। कुदिन–(सं०)–आपत्ति का समय, कष्ट के दिन। उ० कुदिन हितू सो हित सुदिन, हित अनहित किन होइ। (दो० ३२२) कुदिष्टि–दे० 'कुदृष्टि'। कुदृष्टि–(सं०)– बुरी दृष्टि, पाप-दृष्टि। उ० इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। (मा० ४।६।४) कुदेव–(सं० कु+देव)–बुरे देवता, दानव। उ० ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेए वपु बचन हिये हूँ। (वि० १७०) कुदेस–(सं० कु+देश)–बुरे देश, जंगली प्रांत। उ० बसहिं कुदेस कुगावँ कुबामा। (मा० २।२२३।४) कुधरम–दे० 'कुधर्म'। उ० तुलसी बिकल बलि कलि कुधरम। (वि० २४६) कुधर्म–(सं० कु+धर्म)–बुरा धर्म, पाप, बुरा आचरण। कुधातु–(सं०)–१. बुरी धातु, २. लोहा। उ० २. पारस परस कुधातु सुहाई। (मा०१।३।५) कुनारी–कुलटा, वेश्या, दुष्टा स्त्री। उ० सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। (मा० ४।७।५) कुनीति–(सं० कु+नीति)–बुरी नीति, अत्याचार। कुपंथ–(सं० कुपथ)–बुरा रास्ता। उ० चलत कुपंथ बेदमग छाँड़े। (मा० १।१२।१) कुपथ (१)–(सं०)–बुरा रास्ता, बुरा आचरण, कुचाल। कुपथ (२)–(सं० कुपथ्य)–अयोग्य भोजन, उस दशा में न खाने योग्य भोजन। उ० कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। (मा० १।१३३।१) कुपथ्य–(सं०)–बुरा खाद्य, अयोग्य या अस्वास्थ्यकर भोजन। उ० बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। (मा० ७।१२२।२) कुपूत–(सं० कुपुत्र)–कपूत, नालायक बेटा, अयोग्य पुत्र। उ० क्रूर कुजाति, कुपूत अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजो। (क० ७।५) कुफल–(सं०)–बुरा फल, कुपरिणाम। कुफेर–(सं० कु+प्रेरणा)–अनवसर, बुरा समय, पेचीदा चक्कर। उ० सुमति बिचारे बोलिये समुझि कुफेर सुफेर। (दो० ४३७) कुफेरै–बुरे फेर से, पेचीदा चक्कर से, कुचक्र से। उ० भाई को सो करौं डरौं कठिन कुफेरै। (गी० ५।२७) कुबरन–(सं० कुवर्ण)–बुरे रंग का, बुरा। उ० हौं सुबरन कुबरन कियो। (वि० २६६) कुबल–(सं० कु+बल)–तुच्छ बल, बुरा बल, अनुचित दबाव। उ० मन फेरियत कुतर्क कोटि करि कुबल भरोसे भारि। (कृ० २७) कुबलि–(सं० कु+बलि)–तामसी देवों के समक्ष की जानेवाली निकृष्ट बलि, बुरा बलिदान। कुबानि–(सं० कु+?)–बुरी आदत, कुटेव, बुरा अभ्यास, स्वभाव की दुर्बलता।

उ० दे० 'कूबरी'। कुबामा–दे० 'कुनारी'। उ० बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। (मा० २।२२३।४) कुबासना–(सं० कु० + वासना)–बुरी इच्छा। उ० करम उपासना कुबासना बिनास्यो, ज्ञान बचन, बिराग बेष जगत हरो सो है। (क० ७।८४) कुबिचारी–बुरे विचारवाले, जिनकी भावना खोटी हो। उ० हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। (मा० १।८।५) कुबिहग–(सं० कु+विहग)–बुरा पक्षी, बाज। उ० कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली। (मा० २।२८।४) कुबुद्धि–(सं०)–१. मूर्ख, भ्रष्टबुद्धि, २. कुमंत्रणा, बुरी सलाह, ३. मूर्खता। उ० १. करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। (मा० २।१३।२) कुबुद्धे–(सं०)–हे कुबुद्धि वाले, हे मूर्ख। उ० रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। (मा० ६।६४।३) कुबेख–दे० 'कुबेष'। कुबेष–(सं० कु+वेष)–बुरा वेष, गंदे या फटे कपड़े, बुरा हाल। उ० सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ। (मा० १।१६१।१) कुबेषता–बुरे वेष में होने का भाव, बुरे वेष में होना। उ० कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। (मा० २।२५।४) कुबेषू–(सं० कु+वेष)–बुरे वेष, गंदे या रद्दी कपड़े। उ० बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू। (मा० २।२६।४) कुबोल–(सं० कु+ब्रू)–कठोर बचन, बुरा बचन। उ० सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान। (दो० ४६६) कुभाँति–(कु+भेद)–बुरी तरह, बुरी दशा। उ० देखि कुभाँति कुमति मन माखा। (मा० २।३०।१) कुभाँती–दे० 'कुभाँति'। उ० प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। (मा० २।३१।३) कुभाउ–दे० 'कुभाव'। उ० सबके उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। (मा० २।२५७) कुभाग्य–(सं० कु+भाग्य)–१. अभाग्य, बुरा भाग्य, २. बुरे भाग्य वाला, अभागा। उ०२.रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। (मा० ६।६४।३) कुभामिनि–(सं० कु+भामिनि)–दुष्टा, कुलटा स्त्री। उ० बचन कुभामिनि के भूपहि क्यों भाए। (गी० २।३६) कुभायँ–बुरे भाव से। उ० भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। (मा० १।२८।१) कुभाय–दे० 'कुभाव'। कुभाव–(सं० कु+भाव)–बुरे भाव, बुरा बिचार। कुभोग–(सं० कु+भोग)–दुर्व्यसन, बुरे भोग। दे० 'भोग'। उ० मृग लोग कुभोग सरेन हिए। (मा० ७।१४।४) कुमंत–दे० 'कुमंत्र'। उ० १. कत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत-फल। (क० ६।२७) कुमंत्र–(सं० कु+मंत्र)–१. कुमंत्रणा, बुरी सलाह, बुरा विचार, २. बुरा या खोटा मंत्र, बुराई के लिए प्रयुक्त मंत्र। दे० 'मंत्र'। कुमंत्रु–दे० 'कुमंत्र'। उ० १. करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। (मा० २।२२८।३) कुमंत्रू–दे० 'कुमंत्र'। उ० २. गाढ़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू। (मा० २।२१२।२) कुमग–(सं० कु+मार्ग)–कुपथ, बुरा रास्ता, निषिद्ध मार्ग। उ० चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें। (मा० २।३१५।३) कुमत–(सं० कु+मत)–बुरा बिचार, बुरी राय। उ० जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। (मा० २।२१।३) कुमति–(सं० कु+मति)–१. बुरी मति, भ्रष्ट बुद्धि, २. बुरी राय। उ० १. भुइँ भइ कुमति कैकई केरी। (मा० २।२३।३) कुमतिहि–१. दुर्बुद्धि को,मूर्ख को, २. मूर्खता को। उ० १. कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। (मा० २।२५।४) कुमतिही–दे० 'कुम-

तिहि'। उ० १. कत ससुझि मन तजहु कुमतिही। (मा० ६।३६।१) कुमया-(सं० कु+माया)-अकृपा, क्रोध, अप्रसन्नता। उ० कुमया कछु हानि न औरन की जोपै जानकी नाथ मया करिहै। (क० ७।४७) कुमातौँ-दे० 'कुमाता'। उ० साइँ दोह मोहि कीन्ह कुमातौँ। (मा० २।२०१।३) कुमाता-(सं०)-खोटी माता, अधम जननी। कुमातु-दे० कुमाता'। उ० ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुघाउ। (वि० १००) कुमारग-दे० 'कुमार्ग'। उ० मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो। (क० ७।१७६) कुमार्ग-(सं० कु+मार्ग)-बुरा रास्ता, अनुचित मार्ग, निषिद्ध पथ। कुमित्र-(सं० कु+मित्र)-बुरा दोस्त, खोटा साथी। उ० अस कुमित्र परिहरेहि भलाई। (मा० ४।७।४) कुमुख (१)-(सं० कु+मुख)-बुरा मुख, अशुभ मुँह। उ० लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। (मा० २।४३।४) कुयाचक-(सं० कु+याचक)-नीच मंगन, अपात्र भिक्षुक। कुयोग-(सं० कु+योग)-१. दुष्ट योग, बुरा अवसर, दुखदायक ग्रह, २. बुरी संगत। कुयोगिनां-कुयोगियों के लिए। दे० 'कुयोगी'। उ० कुयोगिनां सुदुर्लभं। (मा० ३।४। श्लो १०) कुयोगी-(सं० कु+योगी)-जो योगी या संयमी न हो, भोगी, नियमित व्यवहार न रखनेवाला। कुराइँ-दे० 'कुराह'। उ० कुस कंटक काँकरी कुराइँ। (मा० २।३११।३) कुराज-(सं० कु+राज्य)-बुरा राज्य, जिस राज्य में व्यवस्था न हो। उ० करम, धरम, सुख संपदा त्यों जानिबे कुराज। (दो० ५१३) कुरायँ-दे० 'कुराह'। उ० काँट कुरायँ लपेटन ठाँवहिं ठाँउँ बझाउ रे। (वि० १८९) कुराह-(सं० कु+फा० राह)-१. बुरा रास्ता, तंग रास्ता, २. रद्दी स्थान, ऊँचा-नीचा स्थान। कुरीति-(सं० कु+रीति)-कुप्रथा, अनीति, कुचाल। उ० सांति सत्य सुखरीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है। (वि० १३९) कुरुचि-(सं० कु+रुचि)-बुरी प्रवृत्ति, नीच अभिलाषा, बुरी इच्छा। उ० जौं पै कुरुचि रही अति तोही। (मा० २।१६१।४) कुरोग-(सं० कु+रोग)-बुरा रोग, बुरी बीमारी। उ० राम बियोग कुरोग बिगोए। (मा० २।१५८।४) करोगाँ-दे० कुरोगों में, कुरोग से। उ० हहरि मरत सब लोग कुरोगाँ। (मा० २।३१७।१) कुलच्छण-(सं०)-१. बुरा लक्षण, बुरा चिह्न, २. कुचाल, बदचलनी। कुलच्छन-दे० 'कुलक्षण'। कुलषन-दे० 'कुलक्षण'। उ० १. मिटे कलुष कलेस कुलषन कपट कुपथ कुचाल। (गी० ७।१) कुलिपि-१. बुरी लिपि, अस्पष्ट लिपि, २. अशुभ लिपि, खोटी लिपि। उ० २. लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की। (क० ७।१८२) कुलोग-(सं० कु+लोक)-दुष्ट लोग, बुरे लोग। उ० रोगनिकर तनु, जरठपनु, तुलसी संग कुलोग। (दो० १७८) कलोगनि-बुरे लोगों ने, बुरे लोग। उ० बैरि लियो रोगनि कुलोगनि कुजोगनि ज्यौं। (ह० ३५) कुवरन-(सं० कु+वर्ण)-बुरा, नीच जाति का। कवामा-(सं० कु+वामा) खोटी स्त्री। कुवेष-(सं० कु+वेष)-बुरा वेष, रद्दी पोशाक। कुवेषता-वेश का बुरा होना, वेष के बुरेपन का भाव। कुसंकट-(सं० कु+संकट)-बुरे-बुरे संकट, महान् दुःख। उ० मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी। (मा० १।२२।३) कुसंघट-(सं० कु+संघट्ट)-बुरा योग, अशुभ संयोग, अनुचित मेल। कुसमय-(सं० कु+समय)-बुरे दिन, आपत्ति काल, बुरा समय। उ० कुसमय दसरथ के दानि, तैं गरीब निवाजै। (वि० ८०) कुसरु-(सं० कु+सर)-बुरा तालाब। कुसाज-(सं० कु+फा० साज)-१. बुरे सामान, बुरी सजावट, २. बुरी तैयारी, ३. बुरी बात, बुरा काम, ४. बुरी हालत, बुरा बेष, ५. बुराई। उ० ३. राज करत बिनु काजही, करैं कुचालि कुसाज। (दो० ४१६) कुसाजु-दे० 'कुसाज'। उ० ४. जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु। (मा० २।३९) कुसाहब-(सं० कु+अर० साहब)-बुरे स्वामी, अयोग्य मालिक। उ० व्योम रसातल भूमि भरे नृप क्रूर कुसाहिब सेंतिहुँ खारे। (क० ७।१२) कुसूत-(सं० कु+सूत्र)-कुप्रबंध, कुब्योंत, असुबिधा, उलझन। उ० रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो तुलसी को। (क० ७।१६७)

कुअँर-(सं० कुमार)-१. लड़का, पुत्र, बालक, २. राजकुमार, राजपुत्र। उ० २. आयउँ कुसल कुअँर पहुँचाई। (मा० २।१४६।४) कुअँरि-कुँअर का स्त्रीलिंग, पुत्री, राजकुमारी। उ० सादर सकल कुअँरि समुझाई। (मा० १।३३४।४) कुअँरोटा-(सं० कुमार)-बेटा, लड़का, राजपुत्र। उ० कोसलराय के कुअँरोटा। (गी० १।६०)

कुआँरि-दे० 'कुआरि'।

कुआरि-(सं० कुमारी)-अविवाहिता, जिसका विवाह न हुआ हो। उ० कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ। (मा० १।२५२।३)

कुआरी-(सं० कुमारी)- कुमारी, पुत्री, राजपुत्री। उ० बरउँ संभु नत रहउँ कुआरी। (मा० १।८१।३)

कुकरम-(सं०) कु+कर्म)-बुरा काम।

कुकरमू-दे० 'कुकरम'। उ० आरत काह न करइ कुकरमू। (मा० २।२०४।४)

कुक्कुट-(सं०)-मुर्गा, एक चिड़िया। उ० बोलत जल कुक्कुट कल हंसा। (मा०३।४०।१)

कुघाइ-दे० 'कुघाव'। उ० पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ। (दो० ३२५)

कुघाउ-दे० 'कुघाव'। उ० ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुघाउ। (वि० १००)

कुघात-(सं० कु+घात)-१. बुरा दाँव, बुरी चाल, छलकपट, २. बेमौका, कुअवसर, ३. बुरी चोट।

कुघातु-दे० 'कुघात'। उ० बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोप गृह जाहु। (मा० २।२२)

कुघाय-दे० 'कुघाव'।

कुघाव-(सं० कु+घाव)-बुरा घाव, बुरे जगह का घाव, भयानक घाव, गहरा जख्म, गहरी चोट।

कुच-(सं०)-स्तन, छाती। उ० श्रीफल कुच, कंचुकि लताजाल। (वि० १४)

कुचाल-(सं० कु+चलत)-बुरा आचरण, दुष्टता, पाजीपन। उ० कलि सकोप लोभी सुचाल, निज कठिन कुचाल चलाई। (वि० १६५)

कुचालि-दे० 'कुचाली'। कुचालिहि-१. कुचाली को, दुष्ट

को, २. कुचाली ने । उ० देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं। (मा० २।५१।२) कुचाली–१. उपद्रवी, कुकर्मी, २. उपद्रव, कुकर्म। उ० २. फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। (मा० २।२०।२)
कुजा–(सं० कु+जा)–पृथ्वी से उत्पन्न सीता, अवनिजा।
कुटिल–(सं०)–१. वक्र, टेढ़ा, लच्छेदार, २. कपटी, छली, खल। उ० २. हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। (मा० १।८।५)
कटिलई–दे० 'कुटिलाई'।
कुटिलपन–दे० 'कुटिलाई'।
कुटिलपनु–दे० 'कुटिलपन'। उ० कैकयनंदिनि मदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह। (मा० २।६१)
कुटिलाई–कुटिलता, वक्रता, कपट, छल। उ० हरउ भगत मन कै कुटिलाई। (मा० २।१०।४)
कुटी–(सं०)–घास आदि का बना हुआ छोटा घर, कुटिया।
कुटीर–(सं०)–छोटी कुटी, कुटिया। उ० सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर। (मा० २।३२१)
कुटीरा–दे० 'कुटीर'। उ० नंदिगाँव करि परन कुटीरा। (मा० २।३२४।१)
कुटुंब–(सं० कुटुम्ब)– परिवार, कुल, खानदान। उ० चले तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत। (मा० १।१७२)
कुटुंबी–(सं० कुटुम्बिन्)–१. परिवारवाला, कुटुंबवाला, २. सम्बन्धी, रिश्तेदार। उ० १. अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना। (मा० ४।१६।४)
कुटुम–दे० 'कुटुंब'।
कुटेव–(सं०कु+?)–बुरी आदत, खराब बान। उ०हौं जगनायक लायक आजु, पै मेरियौ टेव कुटेव महा है। (क० ७।१०१)
कुठार–(सं०)-१. कुल्हाड़ी, २. परशु, फरसा, ३. नाशक, समाप्त करनेवाला। कुठारी–कुठार का स्त्रीलिंग। दे० 'कुठार'। उ० १ जनि दिनकरकुल होसि कुठारी। (मा० २।३४।३)
कुठारधर–कुठार या परशु को धारण करनेवाले परशुराम। उ० जय कुठारधर दर्पदलन, दिनकर कुल-मंडन। (क० ७।११२)
कुठारपानि–(सं० कुठार+पाणि)-परशुराम, हाथ में कुठार लेनेवाले। उ० बीर करि-केसरी कुठारपानि मानी हारि। (क० ६।११)
कुठारा–दे० 'कुठार'। उ० २. व्यर्थ धरहु धनुबान कुठारा। (मा० १।२७३।४)
कुठारु–दे० 'कुठार'। उ० २. धनु सर कर कुठारु कल काँधें। (मा० १।२६८।४)
कुठारू–दे० 'कुठार'। उ०२. पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। (मा० १।२७३।१)
कुठाहर–(सं० कु+स्थल)-१. कुठौर, बुरा स्थान, २. मर्मस्थल, नाजुक जगह, ३. बेमौका, बुरा अवसर। उ० ३. भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू। (मा० २।३६।१)
कुड्मल–(सं० कुड्मल)-१. कली, अधखिला फूल, मुकुल, २. इक्कीस नरकों में से एक। उ० १. कुलिस कुंदकुडमल-दामिनि-दुति दसननि देखि लजाई। (वि० ६२)
कुणप (१)–(सं०) १. शव, मृतक, २. भाला, बरछा।
कुणप (२)–(सं० कौणप)–राक्षस, निशाचर।
कुतरक–(सं० कु+तर्क)–बेढंगा तर्क, बकवाद, व्यर्थ की दलील। उ० कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड। मा० १।३२ क)
कुतरकी–कुतर्क करनेवाला, बकवादी, वितंडावादी। उ० हरिहर पदरति मलिन कुतरकी। (मा० १।६।३)
कुतर्क–(सं०)–बुरा तर्क, वितंडा, बकवाद। उ० नहीं कुतर्क भयंकर नाना। (मा० १।३८।५)
कुतस–(सं० कुतः)–कहाँ से।
कुतसित–दे० 'कुत्सित'। उ० उदित सदा अथवत न सो कुतसित तमकर हान। (स० १२)
कुत्र–(सं०)–कहाँ, कहीं। उ० यत्रकुत्रापि ममजन्म निज कर्मबश भ्रमत जगयोनि संकट अनेकम्। (वि० ५७)
कुत्सित–(सं०)–नीच, गर्हित, खराब।
कुथि–(सं० कथ्)–कहता हुआ, कहकर। उ० कुथि रटि अटत बिमूढ़ लट घट उदघटत न ग्यान। (स० ३७२)
कुदान (२)–(सं० स्कुंदन)–१. कूदने की क्रिया, कूदने का भाव, २. कूदने का स्थान।
कुदाना–बुरे दान। उ० मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना। (मा० ७।६६।१)
कुदारी–(सं०कुद्दाल)–कुदाली, मिट्टी खोदने का एक औज़ार। उ० मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। (मा० ७।१२०।७)
कुधर–(सं० कुध्र) पर्वत, पहाड़। उ० पूरहिं न त मरि कुधर बिसाला। (मा० ५।५५।३) कुधर-कुमारिका–पर्वत की कुमारी, हिमालय की पुत्री, पार्वती, उमा। उ० चाहति काहि कुधर-कुमारिका। (पा० ५५) कुधरधारी–पर्वत को धारण करनेवाले, १. हनुमान, २. कृष्ण।
कुनप (१)–(सं० कुणप)–१. मृतशरीर, शव, २. शरीर, देह, ३. भाला। उ० १. कुनप-अभिमान-सागर भयंकर घोर बिपुल अवगाह दुस्तर अपारम्। (वि० ५८)
कुनप (२)–(सं० कौणप)–राक्षस।
कुनय–(सं० कु+नय)–बुरी नीति, अनीति। उ० मरहिं कुनृप करि करि कुनय सों कुचालि भव भूरि। (दो०५१४)
कुपित–(सं०)–क्रुद्ध, क्रोधित, अप्रसन्न, रुष्ट।
कुबरिहि–१. कुबरी को, २. कुबरी ने, कुबरी से। दे० 'कुबरी'। उ० १. कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। (मा० २।२३।१) कुबरीं–कुबरी ने, मंथरा ने। उ० कुबरीं करि कबुली कैकेई। (मा० २।२२।१) कुबरी–(सं० कुब्ज)–१. कंस की एक कुब्जा नामकी नाई जाति की दासी जिसकी पीठ टेढ़ी थी। २. मंथरा, कैकेयी की दासी। उ० १. पंडुसुत, गोपिका, बिदुर, कुबरी सबहिं सोध किए सुद्धता लेस कैसो। (वि० १०६)
कुबलय–(सं० कुवलय)–१. नील कमल, २. एक प्रकार के असुर। उ० १. कुबलय बिपिन कुंतबन सरिसा। (मा० ५।१५।२)
कुबेर–(सं०)–एक देवता जो इंद्र की नौ निधियों के भंडार तथा शंकर के मित्र समझे जाते हैं। इनके पिता विश्रवस् ऋषि तथा माता इलविला थीं। ये रावण के सौतेले भाई थे। कुबेर संसार के समस्त धन के स्वामी समझे

जाते हैं। उ० एक बार कुबेर पर धावा। (मा० १।१७९।४) कुबेरै–१. कुबेर से, २. कुबेर को। उ० १. कृपानिधि को मिलौं पै मिलि कै कुबेरै। (गी० ५।२७)

कुमाच–(अर० कुमाश)–एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ० काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच। (दो० ५७२)

कुमार–(सं०)–१. पाँच वर्ष की आयु का बालक, २.छोटा या अविवाहित लड़का, ३. पुत्र, बेटा, लड़का, ४. राजकुमार, युवराज, ५. सनक, सनंदन, सनत् और सुजात आदि कई ऋषि जो सदा बालक ही रहते हैं। उ० १. भए कुमार जबहिं सब भ्राता। (मा० १।२०४।१) कुमारिका–(सं०)–कुमारी, लड़की, कन्या। कुमारी–(सं०) १. बारह वर्ष की अवस्था तक की कन्या, लड़की, २. पुत्री, बेटी, ३. घीकुआँर, ४. नवमल्लिका, ५. बड़ी इलायची, ६. सीता, ७. पार्वती, ८. भारत के दक्षिण में एक प्रसिद्ध अंतरीप, ९. चमेली, १०. बिना ब्याही लड़की। उ० १. सब लच्छन संपन्न कुमारी। (मा० १।६७।२)

कुमारा–दे० 'कुमार'। उ० ४. एक राम अवधेस कुमारा। (मा० १।४६।४)

कुमारि–दे० 'कुमारी'। उ० सैलकुमारि निहारि मनोहर मूरति। (पा० ७६)

कुमुख (२)–(सं०)–रावण का एक योद्धा, जिसका नाम दुर्मुख भी था। उ० कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय। (मा० १।१८०)

कुमुद–(सं०)–१. कुमुदनी, कोईं, नलिनी। एक फूल जो कमल के उलटे रात में खिलनेवाला माना गया है। इसे चन्द्रमा का स्नेही माना जाता है। २. एक बंदर का नाम जो राम-रावण युद्ध में लड़ा था। ३. दक्षिण पश्चिम कोण में रहनेवाला दिग्गज, ४. कृपण, कंजूस, ५. लोभी, लालची। उ० १. रघुबर किंकर कुमुद चकोरा। (मा० २।२०६।१) कुमुदबंधु–(सं०)–चंद्रमा। उ० कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। (मा० १।२४३।३) कुमुदिनीं–कुमुदिनी ने। उ० जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं। (मा० २।११८।२) कुमुदिनी–(सं०)–कुमुद, कुईं, कमलिनी, नलिनी। उ० नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति बिरह दिनेस। (मा० ७।६ क)

कुमुदिनि–दे० 'कुमुदिनी'। उ० बिलखित कुमुदिनि चकोर चक्रवाक हरष भोर। (गी० १।३७)

कुमुलानी–दे० 'कुम्हिलानी'। उ० हृदय कंप मुखदुति कुमुलानी। (मा० १।२०८।१)

कुम्हड़–(सं० कूष्माण्ड) कुम्हड़ा, सीताफल, काशीफल, एक बेल और उसमें लगनेवाला भारी गोल फल। कुम्हड़बतिआ–(सं० कूष्माण्ड+वर्त्तिक)–कुम्हड़े के फल का शिशु रूप। कुम्हड़े का नया फल जो बहुत कमज़ोर माना जाता है और लोगों का विश्वास है कि अँगुली दिखा देने से भी सूख जाता है। इसी आधार पर निर्बल या अशक्त आदमी के लिए भी इसका प्रयोग होता है। उ० इहाँ कुम्हड़ बतिआ कोउ नाहीं। (मा० १।२७३।२) कुम्हड़े–दे० 'कुम्हड़'। उ० सरुष बरजि तीजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३६)

कुम्हारा–(सं० कुंभकार)–मिट्टी का बरतन बनानेवाली एक जाति, कुम्हार। उ० जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। (मा० ७।१००।३)

कुम्हिलानी–(सं० कु+म्लान)–म्लान हो गई, कुम्हला गई, सूख गई। कुम्हिलाहीं–कुम्हलाती है, सूखती हैं, सूख रही हैं। उ० बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। (मा० २।८३।४) कुम्हिलैहै–मुरझा जायगा, सूख जायगा। उ० दे० 'कुम्हड़े'।

कुरंग–(सं०)–हिरण, मृग। उ०कोल किरात कुरंग बिहंगा। (मा० २।१९८।४) कुरंगिनि–हरिणी, मृग की स्त्री। उ० चितवत चकित कुरंग कुरंगिनि सब भए मगन मदन के भोरे। (गी० ३।२)

कुरंगा–दे० कुरंग'। उ० १. करि केहरि कपि कोल कुरंगा। (मा० २।१३८।१)

कुररी–(सं०)–१. एक जलपक्षी, टिटिहरी, २. क्रौंच पक्षी, कराँकुल। उ० १. बिलपति अति कुररी की नाईं। (मा० ३।३१।२)

कुरव–(सं० कुरवक)–कटसरैया नामक पेड़, जिसके फूल सुन्दर होते हैं। उ० कुसुमित तरु-निकर कुरव तमाल। (गी० २।४८)

कुरी–(सं० कुल)–वर्ग, बंश, घराना, खान्दान। उ० हरषित रहहिं लोग सब कुरी। (मा० ७।१५।४)

कुरु (१)–(सं०)–१. कौरवों के बंश का नाम, या उस बंश में उत्पन्न पुरुष। २. कर्त्ता, करनेवाला, ३. पका चावल, भात।

कुरुखेत–(सं० कुरुक्षेत्र)–सरस्वती नदी के बाएँ किनारे पर अंबाला और दिल्ली के बीच में स्थित एक प्राचीन तीर्थ। अब भी ग्रहण आदि के अवसर पर यहाँ बड़े बड़े मेले लगते हैं। उ० धनही के हेतु दान देत कुरुखेत रे। (क० ७।१६२)

कुरुपति–कौरवों का स्वामी, दुर्योधन। उ० बायों दियो विभव कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर घर कीन्हो। (वि० २४०)

कुरुराज–दुर्योधन, कुरुपति। उ० भारत में पारथ के रथ केतु कपिराज, गाज्यो सुनि कुरुराज दल हलबल भो। (ह० ५) कुरुराजबंधु–दुर्योधन का भाई, दुःशासन। उ० लोभ ग्राह दनुजेह क्रोध, कुरुराज-बंधु खल मार। (वि० ६३)

कुरूप–(सं० कु+रूप)–भद्दा रूप, असुन्दर, बदसूरत। उ० दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना। (मा० १।१३३।४)

कुरूपता–(सं०)–कुरुप का भाव, बदसूरती। उ० तनु-तड़ाग बलबारि सूखन लाग्यो परी कुरुपता-काई। (कृ० २६)

कुरूपा–'कुरूप' का स्त्रीलिंग, भद्दी। उ० सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा। (मा० ७।६६।२)

कुल (१)–(सं०)–१. बंश, खान्दान, २. समूह, ढेर, ३. जाति, ४. मकान, घर। उ० २. सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा। (मा० १।३७।३) कुलघाती–कुल का हनन या नाश करनेवाला। कुलघालक–दे० 'कुलघाती'। उ० हम कुलघालक सत्य तुम्ह कुलपालक दससीस। (मा० ७।२१) कुलपालक-कुल या कुटुंब का पालन या रक्षा करनेवाला। उ० दे० 'कुलघालक'। कुलरीति–(सं० कुल+रीति)–

वंश-परंपरा, कुल में बहुत दिनों से होते आए आचार-विचार, कुल के व्यवहार, कुलधर्म। उ० बेदबिहित कुलरीति, कीन्हि दुहुँ कुलगुर। (जा० १४२) कुलहि—१. कुल को, खांदान को, २. खान्दान के लिए, ३. कुल की। उ० १. देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। (मा० ५।२२।४) ३.कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। (मा० १।२८४।२) कुलहीन—१. अकुलीन, नीच कुल का, नीच, २. जिसके कुल में कोई न हो, बिना जाति तथा खान्दान का। उ० १. कूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन। (वि० २१२)

कुल (२)—(अर०)—समस्त, तमाम, पूरा।

कुलटा—(सं)—बहुत पुरुषों से प्रेम रखनेवाली स्त्री।

कुलपति—(सं०) १ घर का मालिक, खांदान का मुखिया, सरदार, २. वह ऋषि जो दस हज़ार मुनियों तथा ब्रह्मचारियों का भरण-पोषण करे और शिक्षा दे। ३. महंत।

कुलवंत—(सं०)—कुलीन, श्रेष्ठ, अच्छे कुल का, अच्छे आचार विचार का।

कुलवंति—'कुलवंत' का स्त्रीलिंग। दे० 'कुलवंत'। उ० कुलवंति निकारहिं नारि सती। (मा० ७।१०१।२)

कुलह—(फा० कुलाह)—टोपी, आँखों पर की टोपी। उ० कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली। (मा० २।२८।४)

कुलही—(फा० कुलाह)—लड़कों की टोपी। उ० कुलही चित्र-बिचित्र झँगूलीं। (गी० १।२८)

कुलाल—(सं०)—मिट्टी का बरतन बनानेवाला, कुम्हार। उ० मृन-मय घट जानत जगत बिन कुलाल नहिं होइ। (स० ४०४)

कुलाहल—दे० 'कोलाहल'।

कुलि—(अर० कुल)—समस्त, सब, पूरा। उ० हरि-बिरंचि हरपुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी। (गी० १।४)

कुलिश—(सं०)—१. हीरा, हीरा की भाँति कठोर, २. वज्र, बिजली, ३. इंद्र का एक हथियार।

कुलिस—दे० 'कुलिश'। उ० १. ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की। (वि० ३०) कुलिसहु—वज्र से भी। उ० कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। (मा० ७।१९ ग)

कुलीन—(सं०)—१. उत्तम कुल में उत्पन्न, खानदानी, २. पवित्र, शुद्ध। उ० १. जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। (मा० २।१४२।१)

कुलीना—दे० 'कुलीन'। उ० १. कहहु कवन मैं परम कुलीना। (मा० ५।७।४)

कुलु—(सं० कुल)—कुल, खानदान। उ० जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। (मा० १।७१।२)

कुवलय—(सं०)—१ नील कमल, कमल, २. कुमुद, कोई।

कुवेर—(सं०)—दे० 'कुबेर'।

कुश—(सं०)—१. कास की तरह की एक घास जो यज्ञादि के समय काम में आती थी। कुश बहुत पवित्र घास मानी जाती है और कर्मकांड की लगभग सभी क्रियाओं में इसकी आवश्यकता पड़ती है। कुशा। २. जल, पानी ३. तीक्ष्ण, तेज़, ४. रामचन्द्र का एक पुत्र।

कुशकेतु—(सं०)—कुशध्वज, राजा जनक के छोटे भाई, जिनकी कन्याएँ मांडवी और श्रुतिकीर्ति भरत और शत्रुघ्न को ब्याही गई थीं।

कुशल—(सं०)—१. भलाई, कल्याण, मंगल, २. चतुर, दक्ष, ३. श्रेष्ट, भला अच्छा, ४. शिव का एक नाम।

कुशा—(सं०)—१. कुश, २. रस्सी।

कुष्ठी—(सं० कुष्ठिन्)—कोढ़ी, कुष्ट रोग से पीड़ित। उ० जैसे कुष्ठी की दसा गलित रहत दोउ देह। (स० १७५)

कुसंग—(सं० कु + संग)—बुरा साथ, निन्दित संग, बुरों का साथ। उ०कठिन कुसंग कुपंथ कराला। (मा० १।३८।४)

कुसंगति—दे० 'कुसंग'। उ० यह बिचारि तजि कुपथ कुसंगति। (वि० ८४)

कुस—दे० 'कुश'। उ० १. कुस किसलय साथरी सुहाई। (मा० २।६६।१)

कुसकेतु—दे० 'कुशकेतु'। उ० कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई। (मा० १।३२५। छं०२)

कुसलं—दे०'कुशल'। उ० २. खल बृंद निकंद महा कुसलं। (मा० ६।१११। छं० ५)

कुसल—दे० 'कुशल'। उ० २. करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी। (मा० २।१२।४)

कुसलाई—कुशल-मंगल, शुभ समाचार। उ० करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। (मा० ५।६।३)

कुसलात—कुशल, शुभ-समाचार। उ० गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात। (मा० १।५५)

कुसलाता—दे० 'कुसलात'। उ० दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। (मा० १।६३।२)

कुसली—(सं० कुशल)—सुखी, सानंद। उ० तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी। (मा० २।१५१। छं० १)

कुसुंभि—(सं० कुसुंभ)—बर्रे के फूल या केसर के रंग का, लाल और पीला मिला हुआ रंग, ज़र्द। उ० कुसुँभि चीर तनु सोहहिं भूषन बिबिध सँवारि। (गी० ७।१९)

कुसुम—(सं०)—१. फूल, पुष्प, २. एक प्रकार का ज़र्द रंग का पुष्प विशेष, जिससे रंग बनाया जाता है। कुसंभ। उ० १. बार-बार कुसुमांजलि छूटीं। (मा० १।२६५।२) कुसुमहु—फूल से भी। उ० कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। (मा० ७।१९ ग)

कुसुमित—(सं०)—खिला हुआ, फूला हुआ। उ० कुसुमित नव तरुराज बिराजा। (मा० १।८६।३)

कुहड़—दे० 'कुम्हड़'।

कुहत—(सं० कु + हनन। कुहना = मारना)—मारता, पीटता। उ० कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है। (क० ७।१८१)

कुहर—(सं०)—छेद, बिल, गड्ढा, गुहा, गुफा। कुहरनि—कुहर में, छेद में। उ० रहे कुहरनि, सलिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि। (गी० १।२४)

कुहबर—दे० 'कोहबर'।

कुहु—(सं०)—दे० 'कुहू'।

कुहू—(सं०)—१. अमावस्या की रात, जिसमें चन्द्रमा बिल्कुल न दिखाई दे। २. मोर या कोयल की कूक। उ० १.

मोहमय कुहू-निसा बिसाल काल बिपुल सोयो। (वि० ७४)

कुहो–१. मारो, मार डालो, २. मारे, मार डाले। उ० २. आपु ब्याघ्र को रूप धरि, कुहो कुरंगहि राग। (दो० ३१४)

कूँच–(तुर० कूच)–प्रस्थान, रवानगी, सफर।

कूँड़ि–(सं० कुंड)–सिर पर रखने का एक टोपी की भाँति का लोहा, टोप। उ० अँगरीं पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। (मा० २।१९१।३)

कूक–(सं० कू)–ध्वनि, दुःखपूर्ण ध्वनि, मोर या कोयल की ध्वनि।

कूकर–(सं० कुक्कुर)–कुत्ता, श्वान। उ० जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों, तुलसी भजु कोसल राजहि रे। (क० ७।३०)

कूकुर–दे० 'कूकर'। उ० ताको कहाय, कहै तुलसी, तू लजाहि न माँगत कूकुर कौरहि। (क० ७।२६)

कूच–(तुर०)–प्रस्थान, यात्रा, चला जाना, पयान करना। उ० तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को। (वि० १५६)

कूजत–(सं० कूजन)–१. कोमल और मधुर शब्द करते हैं, २. कूजते हुए, कोमल और मधुर शब्द करते हुए। उ० १. कूजत कल बहुबरन बिहंगा। (मा० १।२१२।४) विशेष–भ्रमर कोकिल तथा कुछ अन्य पक्षियों की मधुर और कोमल ध्वनि को कूजना कहरते हैं। कूजहिं–कूजते हैं, बोलते हैं। उ० कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा। (मा० १।१२६।१)

कूट (१)–(सं०)–१. पहाड़ की चोटी, २. ढेर, समूह, राशि, ३. हलकी लकड़ी, जिसमें फल लगता है, ४. लोहे का हथौड़ा, ५. हिरन आदि फँसाने का एक जाल, ६. लकड़ी के म्यान में छिपा हथियार, ७. छल, धोखा, ८. मिथ्या, असत्य, ९. अगस्त्य मुनि का एक नाम, १०. बड़ा, ११. गुप्त बैर, १२. रहस्य, गुप्त भेद, गूढ़, १३. वह हास या व्यंग्य जिसका अर्थ आसानी से समझ में न आवे। १४. निहाई, १५. भँड़ैती, १६. नकली, कृत्रिम, १७. निश्चल, १८. विष, १९. धर्मभ्रष्ट, २०. गुप्त मारण प्रयोग आदि। २१. श्रेष्ठ, २२. कूट नाम की ओषधि। उ० १. कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। (मा० १।३५७।२) २०. जयति पर-जंत्रमंत्राभिचार-ग्रसन, कारमनि-कूट-कृत्यादि हंता। (वि० २६)

कूट (२)–(सं० कुट्टन)–कूटकर, टुकड़े-टुकड़े करके, मारकर।

कूटस्थ–(सं०)–१. सर्वोपरि स्थित, सबसे ऊँचा, २. अचल, अटल, ३. अविनाशी, ४. अंत र्व्याप्त, छिपा हुआ। उ० १. सर्वरक्षक सर्वभक्षकाध्यक्ष कूटस्थ गूढ़ार्चि भक्तानुकूलं। (वि० ५३)

कूटि (१)–दे० 'कूट (१)'। उ० १३. करहिं कूटि नारदहि सुनाई। (मा० १।१३४।२)

कूटि (२)–(सं० कुट्टन)–कूटकर, पीटकर।

कूटी (१)–(सं० कूट)–व्यंग्य वचन।

कूटी (२)–(सं० कुट्टन)–कूटी हुई, कुचली या पीसी हुई।

कूटी (३)–(सं० कुटी)–कुटिया, झोंपड़ी।

कूट्यो–नष्ट किया, मारा, संहार किया, कूटा। उ० हाँकि हनुमान कुलि कटक कूट्यो। (क० ६।४६)

कूदि–(सं० स्कुंदन)–कूदकर, उछलकर, उल्लंघनकर, लाँघकर। उ० कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर। (मा० ५।१।३) कूदिए–उछलिए, छलाँग मारिए। उ० कूदिए कृपाल तुलसी सुप्रेम पब्बइ तें। (ह० २३) कूदे–कूद पड़े, उछले, प्रवेश किया। उ० कूदे जुगल बिगत श्रम आए जहँ भगवंत। (मा० ६।४५)

कूप–(सं०)–१. कुआँ, इनारा, २. छिद्र, छेद, सूराख, ३. कुंड, गहरा गड्ढा। उ० १. परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि। (मा० २।२१) कूपहि–कूप या कूएँ के, कूएँ को। उ० सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहि। (पा० १४०)

कूपक–(सं०)–छोटा कुआँ, कूप। कूपकहिं–छोटे कूप में, कुएँ में। उ० नरक अधिकार मम घोर संसार-तम-कूपकहिं। (वि० २०९)

कूबर–(सं०)–१. पीठ का टेढ़ापन, २. किसी चीज़ का टेढ़ापन, वक्रता। उ० १. कूबर टूटेउ फूट कपारू। (मा० २।१६३।३) कूबर की लात–कुछ ऐसा जिससे बिगड़ा काम भी बन जाय। उ० भइ कूबर की लात, बिधाता राखी बात बनाइकै। (गी० ५।२८) कूबरे–जिनकी पीठ टेढ़ी हो, वक्र। उ० काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। (मा० २।१४)

कूबरीं–दे० 'कूबरी'। उ० १. वरी कूबरीं सान बनाई। (मा० २।३१।१) कूबरी–दे० 'कुबरी'। १. कैकेयी की दासी मंथरा, २. कंस की दासी कुब्जा। कूबरीरवन–कुबरी के साथ रमण करनेवाले, कृष्ण। उ० कूबरीरवन कान्ह कही जो मधुप सों। (कृ० ३७)

कूबहा–(सं० कुब्ज)–टेढ़ा।

कूर (१)–(सं० क्रूर)–१. निर्दय, भयंकर, २. मूर्ख, अकर्मण्य, निकम्मा, ३. नीच, दुष्ट, बुरा, ४. टेढ़ा, वक्र। उ० ४. गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की। (मा० १।१०। छं० १)

कूर (२) (सं० कूट)–कूड़ा, कतवार, मैल, गंदगी।

कूरम–दे० 'कूर्म'।

कूरो–दे० 'कूर(२)'।

कूर्म–(सं०)–कच्छप, कछुआ। उ० कुलिस कठोर कूर्म पीठ तें कठिन अति। (क० १।१०)

कूल–(सं०)–१. किनारा, तीर, २. समीप, नज़दीक, ३. नहर, नाला, ४. तालाब। उ० १. दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। (मा० २।३४।२)

कूला–दे० 'कूल'। उ० १. लोक बेद मत मंजुल कूला। (मा० १।३९।६)

कूवरी–दे० 'कुबरी'।

कृ–कृत्तिका नक्षत्र। उ० ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ मू गुनु साथ। (दो० ४५७)

कृकलास–(सं०)–गिरगिट, गिरगिटान। उ० बिनु अवगुन कृकलास कूप-मज्जित कर गहि उधरयो। (वि० २३९)

कृकाटिका–(सं०)–कंधे और गले का जोड़। उ० सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका कंबु कंठ सोभा मन मानति। (गी० ७।१७)

कृज्जातना-(सं० कृत+यातना)-दुर्दशा किया हुआ, दुःखग्रस्त।
कृत-(सं०)-किए हुए, कर लिए। उ० तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं। (वि० ४६) कृत-(सं०)-१. किया हुआ, रचित, संपादित, २. तत्संबंधी, संबंध रखनेवाला, ३. चार युगों में से प्रथम युग, सतयुग, ४. एक प्रकार का दास, ५. चार की संख्या, ६. कर्ता, करनेवाला, ७. उपकार, एहसान, ८. किया। उ० ८. जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई। (मा० ४।१६।१)
कृतकाज-(सं० कृतकार्य)-जिसका मनोरथ सिद्ध हो चुका हो, कामयाब। उ० मन-मलीन, कलि किलविषी होत सुनत जासु कृतकाज। (वि० १६१)
कृतकृत्य-(सं०)-सफलमनोरथ, निहाल, धन्य। उ० मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं। (मा० १।२८६।२)
कृतग्य-दे० 'कृतज्ञ'। उ० तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। (मा० ७।३४।३)
कृतघ्न-(सं०)-किए उपकार को न माननेवाला, अकृतज्ञ, नमक-हराम।
कृतजुग-(सं० कृतयुग)-सतयुग, प्रथम युग। उ० कृतयुग सब जोगी बिज्ञानी। (मा० ७।१०३।१)
कृतज्ञ-(सं०)-एहसान माननेवाला, उपकार को स्वीकार करनेवाला, कृतविज्ञ।
कृतयुग-(सं०)-सत्ययुग, पहला युग। इसकी आयु सत्रह लाख अट्ठाइस हज़ार वर्ष है।
कृतांत-(सं०)-१. अंतकर्ता, समाप्त करनेवाला, २. यम, धर्मराज, ३. पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्मों का फल, ४. सिद्धान्त, ५. मृत्यु, ६. पाप, ७. देवता, ८. दो की संख्या। उ० २. आवत देखि कृतांत समाना। (मा० ३।२६।६)
कृतारथ-दे० 'कृतार्थ'। उ० १. भए कृतारथ जनम जानि सुख पावहिं। (पा० १४१)
कृतार्थ-(सं०)-१. कृतकृत्य, सफल, संतुष्ट, २. कुशल, निपुण, ३. मुक्त, मोक्ष-प्राप्त।
कृति-(सं०)-१. करतूत, करनी, काम, २. आघात, क्षति, ३. जादू, इंद्रजाल, ४. कटारी, ५. चुड़ैल, डाकिनी, ६. विष्णु।
कृतिनः-(सं०)-पुण्यवान, योग्य, पंडित। उ० धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्। (मा० ४।१। श्लो० २)
कृतु-दे० 'क्रतु'। कृत, बनाया हुआ। दे० 'कृत'।
कृत्य-(सं०)-१. कर्म, वेदविहित कर्म, २. भूत, प्रेत जिनका पूजन अभिचार के लिए होता है। ३. बौद्धों के मतानुसार प्रतिसंधि, भवांग आदि १४ प्रकार के कृत्य होते हैं।
कृत्या-(सं०)-१. तंत्रानुसार एक राक्षसी जिसे तांत्रिक लोग अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके किसी शत्रु को विनष्ट करने के लिए भेजते हैं। यह बहुत भयंकर मानी जाती है। इसका वर्णन वेदों तक में आया है। कहीं-कहीं इसकी उत्पत्ति बाल से होने का भी वर्णन मिलता है। २. अभिचार, ३. दुष्टा तथा कर्कशा स्त्री। उ० १. जयति पर- जंत्रमंत्राभिचार-ग्रसन, कारमनि-कूट-कृत्यादि हंता। (वि० २६)
कृत्रिम-(सं०)-१. जो असली न हो, नकली, बनावटी, २. रसौत, रसांजन, ३. कचियानमक, एक प्रकार का नमक।
कृपण-(सं०)-१. कंजूस, सूम, २. नीच, क्षुद्र।
कृपन-दे० 'कृपण'। उ० १.तै उदार, मैं कृपन, पतित मैं, तैं पुनीत स्रुति गावै। (वि० ११३)
कृपनाई-'कृपनाई' का बहुबचन। उ० अगम लाग मोहि निज कृपनाई। (मा० १।१४६।२) कृपनाई-कृपणता, कंजूसी। उ० दानि कहाउब अरु कृपनाई। (मा० २।३५।३)
कृपनु-दे० 'कृपण'। उ० कृपनु देइ, पाइय परो, बिन साधन सिधि होइ। (प्र० ७।४।३)
कृपा-(सं०)-१. अनुग्रह, दया, मेहरबानी, २. क्षमा, माफी। उ० १. तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी। (वि०३४) कृपानिधे-हे कृपा के घर, हे कृपा-निधान। उ० कहु केहि कहिए कृपानिधे भवजनित बिपति अति। (वि० ११०) कृपापात्र-(सं०)-जिस पर कृपा की जाय, कृपा का अधिकारी। उ० जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै। (वि० ११६) कृपाभाजन-दे० 'कृपापात्र'। उ० राम कृपाभाजन तुम्ह ताता। (मा० ७।७४।२) कृपायतन-(सं० कृपा + आयतन)-कृपा के घर, अत्यन्त कृपावाले, कृपा के धाम। उ० तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ। (मा० १।६१) कृपाहिं-१. कृपा से ही, २. कृपा के लिए ही। उ० १.रामसीय-रहस्य तुलसी कहत राम कृपाहिं। (गी० ७।२६) कृपाहीं-दे० 'कृपाहिं'। उ० १. तात बात फुरि राम कृपाहीं। (मा० २।२६६।१)
कृपाण-(सं०) तलवार, कटार, छुरा, एक शस्त्र विशेष।
कृपान-दे० 'कृपाण'। उ० सूल कृपान परिघ गिरि खंडा। (मा० ६।४०।४)
कृपाना-दे० 'कृपाण'। उ० कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना। (मा० ५।१०।१)
कृपानि-दे० 'कृपाण'।
कृपाल-दे० 'कृपालु'। उ०तिनकी गति कासी पति कृपाल। (वि० १३)
कृपाला-दे० 'कृपालु'। उ० ईस अंस भव परम कृपाला। (मा० १।२८।४)
कृपालु-(सं०)-कृपा करनेवाला, दयालु। उ० सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु। (मा० १।२८ क) कृपालुहि-कृपा करनेवाले को। उ० दे० 'केवट पालहिं'।
कृपालू-दे० 'कुपालु'। उ० कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू। (मा० २।१५५।१)
कृपिण-दे० 'कृपण'।
कृपिन-दे० 'कृपण'। उ० प्रेमहू के प्रेम, रंक कृपिन के धन हैं। (गी० २।२६) कृपिनतर-अधिक कृपिण, अपेक्षाकृत ज़्यादा कंजूस। उ०हमरि बेर कस भयो कृपिनतर। (वि०७)
कृमि-(सं०)-छोटा कीड़ा, कीड़ा। उ० तुम्ह सों कपट करि कलप कलप कृमि ह्वैहौं नरक घोर को हौं। (वि० २२६)
कृश-(सं०) १. दुबला-पतला, क्षीण, २. अल्प, छोटा।

कृशानु–(सं०)–आग, पावक, अग्नि। कृशानुः–दे० 'कृशानु'। उ० मोहविपिन घन दहन कृशानुः। (मा० ३।११।३)
कृषक–(सं०)–१. किसान, खेतिहर, २. हल का फाल।
कृषानु–दे० 'कृशानु'।
कृषि–(सं०)–खेती, काश्त, किसानी।
कृषी–दे० 'कृषि'। उ० कृषी सफल भल सगुन सुभ, समउ कहब कमनीय। (प्र० ७।६।७)
कृष्ण–(सं०)–१. श्याम, काला, २. नीला, ३. वसुदेव के पुत्र, कन्हैया, विष्णु का पूर्णावतार, ४. हर महीने का पहिला पक्ष, कृष्ण पक्ष, ५. वेदव्यास, ६. अर्जुन, ७. कोयल, ८. कौवा, ९. सुरमा, १०.लोहा, ११. एक राक्षस का नाम, १२. कलियुग, १३. चन्द्रमा का धब्बा, १४. सबको आकर्षित करनेवाला। उ० ३. तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्ण कृपालु-भगतिपथ राजी। (कृ० ६१) विशेष–यदुवंशी वसुदेव के पुत्र के रूप में कृष्ण नाम से विष्णु का पूर्ण अवतार हुआ था। इनकी माँ का नाम देवकी था जो भोजवंशी कन्या थीं। कृष्ण के मामा कंस ने वसुदेव और देवकी को मृत्यु-भय से बंदी बना रखा था। वहीं कारागार में कृष्ण का जन्म हुआ। गोकुल में नंद के घर इनका पालन-पोषण हुआ। बाद में कंस ने कृष्ण को मरवा डालने के बहुत से उपाय किए पर अंत में स्वयं वही मारा गया। रुक्मिणी से कृष्ण का विवाह हुआ। महाभारत के युद्ध में कृष्ण पांडवों के पक्ष में थे। एक बहेलिए के तीर लगने से इनकी मृत्यु हुई। ये विष्णु के दस अवतारों में से आठवें माने जाते हैं। इनके पुत्र का नाम प्रद्युम्न था जो कामदेव का अवतार था। इनका युग द्वापर है। कृष्णतनय–कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न जो कामदेव का अवतार था।
कृष्णा–(सं०)–१.काले रंग की स्त्री, २.द्रौपदी जो जन्म के समय काली थी अतः इस नाम से पुकारी गई।
कृष्न–दे० 'कृष्ण'। उ० ३. जब जदुबंस कृष्न अवतारा। (मा० १।८८।१) कृष्नतनय–दे० 'कृष्णतनय'। उ० कृष्नतनय होइहि पति तोरा। (मा० १।८८।१)
कृस–दे० 'कृश'। उ० १. कृस तनु सीस जटा एक बेनी। (मा० ५।८।४)
कृसानु–दे० 'कृशानु'। उ० हेतु कृसानु भानु हिमकर को। (मा० १।१९।१) कृसानुहि–अग्नि को, पावक को। उ० दनुज गहन घन दहन कृसानुहि। (मा० ७।२०।४)
कृसानू–दे० 'कृशानु'। उ० को दिनकर कुल भयउ कृसानू। (मा० २।५४।४)
केंचुरि–(सं० कंचुक)–सर्प आदि के शरीर पर की खोल जो प्रति वर्ष आप से आप अलग हो जाती है। उ० तुलसी केंचुरि परिहरे होत साँपहूँ डीठि। (दो० ८२)
केंचुरी–दे०'केंचुरि'। उ० तजे केंचुरी उरग कहँ होत अधिक अति दीठि। (स० १३०)
के (१)–(सं० कृतः)–संबंध कारक का चिह्न, का।
के (२) (सं० कः)–१. कौन, किसने, २. क्या। उ० १. कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई। (मा० २।१८१।३)
केइँ–(सं०कः) किसने, कौन। उ० अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। (मा० २।२६।१)
केइ–दे० 'केइँ'।
केउ–कोई, कोई भी। उ० मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा। (मा० २।९८।३)
केकइ–दे० 'कैकेयी'।
केकई–दे० 'कैकेयी'। उ० काई कुमति केकई केरी। (मा० १।४१।४)
केकय–(सं०)–काश्मीर या उसके आस-पास के देश का प्राचीन जनपद। केकयी इसी देश के राजा की राजकुमारी थी।
केकि–(सं० केकिन्)–मोर, मयूर। उ० केकिकंठ दुति स्यामल अंगा। (मा० १।३१६।१) केकिहि–मोर को। उ० सुंदर केकिहि पेखु, बचन सुधासम असन अहि। (मा० १।१६१ ख) केकी–दे० 'केकि'। उ० तुलसी कामी कुटिल कलि, केकी काक अनंत। (वै० ३२)
केत–(सं०)–१. घर, भवन, २. केतु, ध्वजा, ३. बुद्धि।
केतकि–दे० 'केतकी'। उ० सीय बरन सम केतकि अति हिय हारि। (ब० ३२)
केतकी–(सं०)–एक प्रकार का छोटा सा पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी नुकीली और काँटेदार होती हैं। बरसात में इसमें फूल लगते हैं, जो लंबे सफेद रंग के बहुत सुगंधित होते हैं। प्रसिद्धि के अनुसार इस पर भौंरा नहीं बैठता। इसका पुष्प शिवजी को नहीं चढ़ाया जाता।
केतन–(सं०)–१. निमंत्रण, आह्वान, २. ध्वजा, झंडा, ३. चिह्न, ४. घर, ५. क्रीड़ा, ६. काम।
केता–(सं० कियत्)–कितना, किस मात्रा का। उ० ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। (मा० ७।११५।६) केते–(सं० कियत्)–कितने, किस संख्या में, बहुत। उ० देखे जिते हते हम केते। (मा० ३।१९।२)
केतिक–(सं० कति+एक)–कितना, कितने, किस कदर। उ० कालि लगन भलि केतिक बारा। (मा० २।११।२)
केतु–(सं०)–१. ज्ञान, २. दीप्ति, प्रकाश, ३. ध्वजा, पताका, विष्णु के पैर का पताका, ४. निशान, चिह्न, ५. पुराणानुसार एक राक्षस कबंध। यह राक्षस समुद्र मंथन के समय देवताओं के साथ बैठकर अमृतपान कर गया था, इसलिए विष्णु ने इसका सर काट डाला। अमृत-पान के कारण राक्षस अमर हो गया था अतः सिर और कबंध दोनो जीवित रहे। सिर का नाम राहु हुआ और कबंध का केतु। पान करते समय सूर्य और चंद्रमा ने पहचनवाया था अतः अब तक ये उनके ग्रहण का कारण बनते हैं। ६. एक पुच्छल तारा, जिसका उदय अशुभ माना जाता है। ७. नवग्रहों में एक ग्रह, ८. श्रेष्ठ, शिरोमणि। उ० ३. कुलिस-केतु-जव-जलज रेख वर। (वि० ६३) ६. उदय केतु सम हित सबही के। (मा० १।४।३)
केतुमती–(सं०)–रावण की नानी अर्थात् सुमाली राक्षस की पत्नी का नाम।
केतुजा–(सं० सुकेतु+जा)–सुकेतु यक्ष की पुत्री ताड़का राक्षसी। उ० बाहुक-सुबाहु नीच, लीचर-मरीच मिलि, मुँहपीर-केतुजा, कुरोग-जातुधान हैं। (ह० ३९)
केतू–दे० 'केतु'। उ० ६. प्रगट भये नभ जहँ तहँ केतू। (मा० ६।१०२।४) ८. कहि जय जय जय रघुकुल केतू। (मा० १।२८५।४)

केतो–कितना। उ० काहू कान कियो न मैं कह्यो केतों कालि है। (क० ५।१०)
केदली–(सं० कदली)–केले का पेड़।
केदार–(सं०)–१. खेत के छोटे छोटे भाग, कियारी, २. आलवाल, थाला, थाँवला, ३. हिमालय का एक शिखर जहाँ केदारनाथ नाम का शिवलिंग है। उ० २. कनक कुधर-केदार, बीज सुंदर सुरमनिवर। (क० ७।११५)
केन–(सं०)–१. किससे, किसी से, २. एक प्रसिद्ध उपनिषद्। उ० १. जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान। (मा०७।१०३ ख)
केयूर–(सं०)–बाँह में पहनने का एक आभूषण, बिजावट, अंगद। उ० सुभग श्रीवत्स केयूर कंकन हार किंकिनी-रटनि कटितट रसालं। (वि० ५१)
केर–(सं० कृतः, प्रा० केरो)–संबंध कारक का चिह्न, का, की, के। विशेष–केर केरे, या केरो आदि संबंध सूचक चिह्न केवल अवधी में प्रयुक्त होते हैं। उ० निसि सुंदरी केर सिंगारा। (मा० ६।१२।२)
केरा (१)–दे० 'केर'। उ० परम मित्र तापस नृप केरा। (मा०१।१७०।२) केरी–दे० 'केर', की। उ० सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। (मा० २।७।३) केरे–दे० 'केर', के। उ० समय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। (मा० ५।५६।१)
केरा (२)–(सं० कदल)–केला। उ० सफल रसाल पूगफल केरा। (मा० २।६।३)
केरि–दे० 'केर'। उ० नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि। (मा० २।१२)
केरो–दे० 'केर'। उ० ठौर ठौर साहिबी होति है ख्याल कालकलि केरो। (वि० १४६)
केलि–(सं०)–१. खेल, क्रीड़ा, २. रति, मैथुन, स्त्री प्रसंग, ३. हँसी, मज़ाक, ४. पृथ्वी, धरित्री। उ० १. भोजन सयन केलि लरिकाई। (मा० २।१०।३)
केलिगृह–(सं०)–१. नाटक का घर, रंगशाला, २. कोहबर, ३. स्त्री-प्रसंग करने का सुसज्जित भवन। उ० २. सोभा सील सनेह सोहावनो, समउ केलिगृह गौने। (गी० १।१०५)
केवट–(सं०कैवर्त्त)–१.क्षत्रिय पिता और वैश्य माता से उत्पन्न जाति-विशेष, मल्लाह, निषाद। २.राम का भक्त गुहराज या निषाद, जिसने अपनी नाव पर उन्हें गंगा पार किया था। उ० २.सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। (मा०२।१००) केवटपालहि–केवट के पालनेवाले राम को, भगवान को। उ० सोकि कृपालुहि देइगो केवटपालहि पीठि? (दो० ४६) केवटहि–केवट का, मल्लाह का। उ० सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। (मा० २।१०१।२)
केवटु–दे० 'केवट'। उ० मागी नाव न केवटु आना। (मा० २।१००।२)
केवलं–दे० 'केवल'। उ० १. तुरीयमेव केवलं। (मा० ३।४। छं० ६) केवल–(सं०)–१. एकमात्र, अकेला, सिर्फ़, २. शुद्ध, पवित्र, ३. असहाय, ४. एक प्रकार का ज्ञान, ५. निश्चित। उ० १. जौ जप-जाप-जोग-ब्रत-बरजित केवल प्रेम न चहते। (वि० ६७)
केश (१)–(सं०)–१. रश्मि, किरण, २. बाल, कच, ३. ब्रह्म की एक शक्ति, ४. वरुण, ५. विश्व, संसार, ६. विष्णु, ७. सूर्य, ८. संपूर्ण।
केश (२)–(सं० क + ईश)–१. ब्रह्म और महादेव। क= ब्रह्मा, ईश=महादेव। २. पृथ्वी के ईश, भगवान। उ० १. केशवं क्लेशहं केश वंदित पदद्वंद्व-मंदाकिनी-मूलभूतं। (वि० ४६)
केशरिणि–सिंह की स्त्री, शेरनी। उ० शुंभ निःशुंभ कुंभीश रणकेशरिणि, क्रोध बारिधि बैरिवृंद बोरे। (वि० १५)
केशरी–दे० 'केसरी'।
केशरीकुमार–दे० 'केसरीकुमार'।
केशवं–दे० 'केशव'। उ० १. दे० 'केश (२)'। केशव (सं०)–१. विष्णु का एक नाम, कृष्ण, २. सुंदर बालवाला।
केस (१)–दे० 'केश'। उ० १. जयति मंदोदरी केस कर्षन विद्यमान-दसकंठ-भटमुकुट-मानी। (वि० २६)
केस (२)–दे० 'केश (२)'।
केसरि–दे० 'केसरी'। केसरिहि–केसरी को, सिंह को। उ० हरष विषाद न केसरिहि, कुंजर-गंज निहार। (दो० ३८१)
केसरिकिसोर–दे० 'केसरीकिसोर'। उ० नाम कलिकामतरु केसरिकिसोर को। (ह० ६)
केसरी–(सं० केसरिन्)–१. सिंह, शेर, २. घोड़ा, ३. हनुमान के पिता का नाम। उ० १. दे० 'केसरीसुवन'।
केसरीकिसोर–(सं० केसरीकिशोर)–हनुमान।
केसरीकुमार–(सं०)–हनुमान। उ० सकैं ना बिलोकि बेष केसरीकुमार को। (क० ५।१२)
केसरीसुवन–(सं०-(केसरी+सुत)-केसरी के पुत्र हनुमान। उ० जयति निर्भरानंद-संदोह, कपिकेसरी केसरी-सुवन भुवनैकभर्त्ता। (वि० २६)
केसव–दे० 'केशव'। उ० १. केसव कहि न जाय का कहिए? (वि० १११)
केसा–दे० 'केश'। उ० २. श्रवन समीप भए सित केसा। (मा० २.२।४)
केहरि–(सं० केसरी)–१. सिंह, शेर, २. घोड़ा, हनुमान के पिता केसरी। उ० १. मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू। (मा० २।५४।२)
केहरी–दे० 'केहरि'। उ० १. आयउ कपि केहरी असंका। (मा० ६।३६।२)
केहिं–दे० 'केहि'। उ० ३. असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई। (मा० ६।१०।१)
केहि(१)–(सं० कः)–१. किस, कौन, २. किसे, कौन को, ३. किसी ने, किसने, ४. कोई भी। उ० १. जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती। (मा० २।१३।२)
केहि (२)–(सं० कक्ष)–'के' का कर्म, संप्रदान तथा अधिकरण कारक में अवधी रूप।
केहीं–दे० 'केहि'। उ० १. सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। (मा० २।१३६।४)
केही–दे० 'केहि'। उ० २. उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। (मा० २।१८१।२)
केहूँ–(सं० कथम्) १. किसी प्रकार, २. कहीं भी।

केहू—१. किसी को, २. कोई, ३. किसी भी, किसी। उ० १. काहुहि लात चपेटन्हि केहू। (मा० ६।४४।४)
कैं—दे० 'कै (१)'। उ० १. नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मन भावत पायो न कैं। (क० ७।३८)
कैं (१)—(सं० कः)—१. कौन, किसने, २. किसके। उ० कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा। (मा० १।२७०।२) २. तुलसी प्रभु तरु तर बिलँब किए प्रेम कनौड़े कै न। (गी० २।२४)
कै (२)—(सं० कति<प्रा० कइ)—कितना, कितनी संख्या में।
कै (३)—(सं० किं)—या, अथवा, या तो। उ० बल कैधौं बीररस, धीरज कै, साहस, कै तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो। (ह० ४)
कै (४)—(सं० कृतः)—का, की, के, संबंध कारक का चिह्न। उ० धोबी कै सो कूकर न घर को न घाट को। (क० ७।६६) रामकथा कै मिति जग नाहीं। (मा० १।३३।३)
कै (५)—(फ़ा० कि)—कि। उ० तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी, काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है। (क० २।३)
कै (६)—(सं० कृते)—के लिए, को।
कै (७)—(सं० कृ)—करके, काम करके, काम कर। उ० गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै। (क० २।६)
कैकइ—दे० 'कैकेई'। उ० भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। (मा० २।३७।२) कैकइहि—कैकेई को, रानी केकयी को। उ० जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी। (मा० २।४७।१)
कैकई—दे० 'कैकेई'। उ० साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ। (मा० २।२४)
कैकय (१)—(सं० केकय)—आज के काश्मीर के पास का प्राचीन देश या जनपद। कैकेयी यहीं की राजकुमारी थीं। उ० बिस्वबिदित एक कैकय देसू। (मा० १।१५३।१)
कैकय (२)—(सं० कैकेय)—केकय देश का राजा। कैकेयी के पिता। कैकयनंदिनि—कैकय की पुत्री, कैकेयी। उ० आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। (मा० २।१५६।१) कैकयसुता—कैकेयी। उ० कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। (मा० १।१६५।१)
कैकेइ—दे० 'कैकेई'।
कैकेई—(सं० कैकेयी)—राजा दशरथ की सबसे छोटी रानी और भरत की माता जिसने अपनी दासी मंथरा के बहकाने से रामचंद्र को बनवास दिलवाया था। यह केकयराज की पुत्री और अनिन्द्य सुन्दरी थी। उ० गए जेहिं भवन भूप कैकेई। (मा० २।३८।३)
कैकेय—(सं०)—कैकय गोत्र उत्पन्न पुरुष, केकय देश का राजा।
कैकेयी—(सं०)—दे० 'कैकेई'।
कैटभ—(सं०)—मधु नामक दैत्य का छोटा भाई जिसे विष्णु ने मारा था। उ० अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। (मा० ६।६।४) कैटभारे—(सं० कैटभ+अरि)—कैटभ को मारनेवाले भगवान्, हे भगवान! उ० बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे'। (गी० १।३६)
कैतव—(सं०)—१. धोखा, छल, २. जुआ, द्यूत, क्रीड़ा, ३. एक मणि, ४. धतूरा।
कैधौं—(सं० किं+?)—अथवा, या, वा, किधौं। उ० सुखमा को ढेरु कैधौं, सुकृत सुमेरु कैधौं। (क० ७।१३६)
कैर—(?)—कोई।
कैरव (१)—(सं०)—१. कुमुदिनी, कमलिनी, कोईं, २. सफ़ेद कमल, ३. शत्रु, ४. जुआरी, ५. धूर्त। उ० १. सखी मनहुँ बिधु-उदय मुदित कैरव-कली। (जा० १२४)
कैरव (२)—(सं० कैरवी)—चाँदनी रात।
कैलास—(सं०)—१. हिमालय की एक चोटी का नाम। पुराणों के अनुसार यह शिवजी का स्थान है। शिवलोक। एक पर्वत जिस पर शिवजी निवास करते हैं। २. कुबेर का निवास। उ० १. कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ। (मा० १।१७६) कैलासहिं—कैलास पर, कैलास पर्वत के ऊपर। उ० जबहिं संभु कैलासहिं आए। (मा० १।१०३।२)
कैलासा—दे० 'कैलास'। उ० १. गनन्ह समेत बसहिं कैलासा। (मा० १।१०३।३)
कैलासू—दे० 'कैलास'। उ० १ परम रम्य गिरिबरु कैलासू। (मा० १।१०५।४)
कैवल्य—(सं०)—१. शुद्धता, निर्लिप्तता, २. मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति, अपवर्ग। उ० २. सो कैवल्य परमपद लहई। (मा० ७।११६।१) कैवल्यपति—मोक्ष के स्वामी, भगवान्। उ० कैवल्यपति, जगपति, रमापति, प्रानपति गति कारनं। (वि० १३६) कैवल्यम्—दे० 'कैवल्य'। उ० २. यो ददाति सतां शंभुः कैवल्यमपि दुर्लभम्। (मा० ६।१। श्लो० ३)
कैसउ—कैसा भी, किसी प्रकार का भी। कैसहु—दे० 'कैसउ'। कैसा—(सं० कीदृश)—१. किस प्रकार का, किस ढङ्ग का। २. की भाँति। उ० १. तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। (मा० ६।६।३) कैसी—'कैसा' का स्त्रीलिंग। दे० 'कैसा'। किस प्रकार की। उ० भरतदसा तेहि अवसर कैसी। (मा० २।२३४।४) कैसें—दे० 'कैसे'। उ० १. उभय बीच सिय सोहति कैसें। (मा० २।१२३।१) कैसे—१. किस प्रकार, किस प्रकार से, २. क्यों, किस लिए। उ० १. कैसे कहै तुलसी, बृषासुर के बरदानि! (क० ७।१७०) कैसेउ—कैसे भी, किसी प्रकार भी। उ० कैसेउ पाँवर पातकी जेहि लई नाम की ओट! (वि० १६१) कैसेहुँ—१. किसी भी प्रकार से, कैसे भी। २. कैसा भी, किसी भी प्रकार का। उ० १. कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर सुनि सादर आगे है लेते। (वि० २४१) कैसेहु—दे० 'कैसेहुँ'। उ० २. ज्ञान परसु दै मधुप पठायो बिरह बेलि कैसेहु कठिनाई। (कृ० ५१)
कैसो—१. का सा, की भाँति, की तरह, के समान, २. कैसा, किस प्रकार का, किस प्रकार से। उ० १. बीच निसाचर बैरी को बंधु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो। (क० ७।४)
कैहूँ (१)—(सं० कुहः)—किसी जगह, किसी स्थान पर।
कैहूँ (२)—(?)—१. किसी तरह, किसी प्रकार, २. किसी भी। उ० १. पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ। (क० ७।१३५)
कोंछें—दे० 'कोछ'। गोद में। उ० गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली। (मा० ७।१८।१)
को (१)—(सं० कः)—१. कौन, किसने, २. क्या, ३. किससे, ४. किसे। उ० १. उपमा को को है? (गी० १।८०)

को (२)-(सं० कृते)-के लिए, को, कर्म तथा संप्रदान कारक का चिन्ह । उ० उपमा को को है ? (गी० १।८०)

को (३)-(सं० कृतः)-का, के, संबंध कारक का चिह्न । उ० मनहुँ को मन मोहै । (गी० १।८०)

कोइ-दे० 'कोई' । उ० ५. गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ । (मा० १।४८ क) कोइ कोई-बिरले, कम लोग, शायद ही कोई । उ० कहै कौन रसन मौन जाने कोइ कोई । (कृ० १) कोई-(सं० कोपि)-१. ऐसा एक जो अज्ञात हो, न जाने कौन एक, २. बहुत में से चाहे जो एक, ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो । ३. एक भी, एक भी आदमी, ४. बिरले ही, बहुत कम, ५. लोग । उ० ३. यह कुचालि कछु जान न कोई । (मा० २।२३।४)

कोउ-दे० 'कोई' । उ० ५. सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू । (मा० २।३२।३) कोउ कोऊ-दे० 'कोइ कोई' । उ० यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ । (मा० ७।७१।२) कोऊ-दे० 'कोई' । उ० ६. मिलत धरें तन कह सबु कोऊ । (मा० २।१११।१)

कोए-(सं० कोण)-आँख के ढेले, आँख के कोने । उ० रुचिर पङ्कज-लोचन जुगतारक स्याम, अरुन सित कोए । (गी० ७।१२)

कोक-(सं०)-१. चकवा पक्षी, चक्रवाक, सुरख़ाब, २. विष्णु, ३. भेड़िया, ४. रतिशास्त्र के एक प्रसिद्ध आचार्य, ५. मेढक । उ० १. मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि । (मा० २।८६) कोकी-कोक या चकवा की स्त्री । उ० दे० 'कोक' ।

कोकनद-(सं०)-१. लाल कमल, कमल, २. लाल कुमुद । उ० १. लोक-लोकप-कोक-कोकनद-सोकहर-हंस हनुमान कल्यानकर्ता । (वि० २६)

कोका-१. चकवा-चकई, २. दे० 'कोक' । उ० १. निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका । (मा० १।८४।३)

कोकिल-(सं०)-कोयल पक्षी, कोकिला । इसकी वाणी बड़ी मधुर होती है । उ० गावहिं मंगल कोकिल बयनीं । (मा० २।८।४) कोकिलन-कोकिल का बहुवचन, कोयलें । उ० तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन । (दो० ५६४)

कोकिला-(सं०)-कोयल, पिक । उ० मधुप निकर कोकिला प्रबीना । (मा० ३।३०।५)

कोकू-दे० 'कोक' । उ० ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू । (मा० २।२९।२)

कोखि-(सं० कुक्षि)-१. उदर, पेट, जठर, २. गर्भ, गर्भाशय । उ० २. कौसिला की कोखि पर तोषि तन वारिये री । (का० १।१२) मु० कोखि जुड़ानी-पुत्रवती हुई । उ० आनँद अवनि, राजरानी सब माँगहु कोखि जुड़ानी । (गी० १।४)

कोछ-(सं० कक्ष)-१. गोद, २. स्त्रियों के अंचल का एक कोना ।

कोट (१)-(सं०)-१. दुर्ग, गढ़, किला, २. शहर-पनाह, प्राचीर, परकोटा, ३. राजमहल । उ० २. कनक कोट कर परम प्रकासा । (मा० ५।३। छं० १)

कोट (२)-(सं० कोटि)-समूह, झुंड ।

कोटर-(सं०) पेड़ का खोखला भाग, खोखली जगह, पेड़ का तने आदि का वह खोखला भाग जिसमें पक्षी रहते हैं । उ० महा बिटप कोटर महुँ जाई । (मा० ७।१०७।४)

कोटि-(सं०)-१. सौ लाख की संख्या, करोड़, २. अमित, झुंड, बहुत अधिक, ३. धनुष का अगला भाग, ४. त्रिभुज की एक भुजा, ५. किसी अस्त्र की नोक या धार, ६. उत्तमता, उत्कृष्टता, ७. किसी वादविवाद का पूर्वपक्ष, ८. वर्ग, श्रेणी, दर्जा । उ० २. कहइ करहु किन कोटि उपाया । (मा० २।३३।३) कोटिक-(सं० कोटि)-करोड़ों, अमित, बहुत । उ० गिरिसम होहिं कि कोटिक गुंजा । (मा० २।२८।३) कोटिन-करोड़ों, अनेक । कोटिन्ह-करोड़ों, कोटि का बहुवचन । उ० हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुर पसु चातक मोर । (मा० २।८३) कोटिहुँ-करोड़ों भी, असंख्य भी । उ० जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी । (मा० १।१००।४) कोटिहु-करोड़ों भी । उ० मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि, कोटिहु जतन न जाई । (वि० ८२) कोटिहूँ-करोड़ों भी, अनेक भी । उ० जेवँत जो बढ्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो । (मा० १।९९। छं० १) कोटिहू-दे० 'कोटिहु' ।

कोटी-दे० 'कोटि' ।

कोठरी-(सं० कोष्ठक)-छोटा कमरा, छोटा घर । उ० अघ अवगुनन्हि की कोठरी करि कृपा मुदमंगल भरी । (गी० ३।१७)

कोठि-(सं० कोष्ठ)-१. अनाज रखने का कोठिला, बखार, गंज, २. ढेर, समूह । उ० २. सोक कलंक कोठि जनि होहू । (मा० २।५०।१)

कोठिला-(सं० कोष्ठ) अनाज भरने का बड़ा सा कच्ची मट्टी का बना बर्तन । कच्ची बखार । उ० चुपकि न रहत, कह्यो कछु चाहत, ह्वैहै कीच कोठिला धोए । (कृ० ११)

कोढ़-(सं० कुष्ठ)-एक प्रकार का रक्त और त्वचा संबंधी रोग जो प्रायः संक्रामक और पुरुषानुक्रमिक होता है । वैद्यक शास्त्रानुसार यह १८ प्रकार का होता है । गलित कोढ़ में अंग सड़-गलकर गिरने लगता है । कुष्ट रोग । कोढ़ की खाजु-[कोढ़ तो स्वयं अत्यंत दुखदायी रोग है, उसमें भी खुजली हो जाय तो परिस्थिति और भी दुखदायी हो जाती है] दुःख पर दुःख, विपत्ति पर विपत्ति । उ० एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें, कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की । (क० ७।१७७)

कोतल-(फा०)-१. सजा-सजाया घोड़ा, जिस पर कोई सवार न हो, जलूसी घोड़ा, २. राजा की सवारी का घोड़ा । उ० २. कोतल संग जाहिं डोरिआए । (मा० २।२०३।२)

कोतवाल-(फा० कुतवाल, तु० सं० कोट्टपाल) नगर में पुलिस का एक बड़ा अफ़सर । उ० कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि, सभासद गनप से अमित अनूप हैं । (क० ७।१७१)

कोदंड-(सं०)-धनुष, कमान । उ० कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं । (मा० १।२६१। छं० १)

कोदंडा-दे० 'कोदंड' । उ० कटि निषंग कर सर कोदंडा । (मा० १।१४७।४)

कोदव-(सं० कोद्रव)-कोदो, एक प्रकार का धान जिसका

खाना बुरा समझा जाता है। वैद्यक के अनुसार भी इसका खाना वर्जित है। उ० फरइ कि कोदव बालि सुसाली। (मा० २।२६१।२)
कोदो–दे० 'कोदव'। उ० हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदो-कनै। (गी० ५।४०)
कोन (१)–(सं० कोण)–कोना।
कोन (२)–(प्रा० कवण)–कौन।
कोना–किनारा, छोर, गोशा, कोण। उ० लोचन जलु रह लोचन कोना। (मा० १।२५९।१)
कोने (१) कोना, किनारा, एक छोर। उ० तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन-कोने। (गी० १।१०५)
कोने (२)–(प्रा० कवण)–किसको, किसे।
कोप–(सं०)–क्रोध, गुस्सा। उ० जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह। (मा० १।१२३)
कोपर (१)–(सं० कपाल)–किसी धातु का बड़ा थाल, जिसमें एक ओर उसे सरलता से उठाने के लिए कुंडा लगा रहता है। उ० कनक कलस भरि कोपर थारा। (मा० १।३०५।१)
कोपर (२)–१. कोपल, अंकुर, कल्ला।
कोपहिं–क्रोध करें, क्रोध करते हैं। उ० जौं हरि हर कोपहिं मनमाहीं। (मा० १।१६६।२) कोपि (१)–क्रोधित होकर। उ० सुनत कोपि कपि कुंजर धाए। (मा० ६।४७।१) कोपिहिं–१. क्रोधित होंगे, २. कोधित हुए। उ० १. जबहिं समर कोपिहिं रघुनायक। (मा० ६।२७।३) कोपे–१. क्रोधित हुए, २. कुपित, क्रोधित। उ० १. रिपु परम कोपे जानि। (मा० ३।२०। छं० ४) कोपेउ–क्रुद्ध हुए, कुपित हुए। उ० कोपेउ समर श्रीराम। (मा० ३।२०। छं० १)
कोपा–दे० 'कोप'। उ० सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा। (मा० ७।६।२)
कोपि (२)–१. कोई, कोई भी, २. कौन। उ० १. गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी। (मा० ७।१०१।५)
कोपी–(सं० कोपिन्)–कोप करनेवाला, क्रोधी। उ० रन दुर्मद रावन अति कोपी। (मा० ६।८२।२)
कोपु–दे० 'कोप'। उ० बीरभद्र करि कोपु पठाए। (मा० १।६५।१)
कोबिद–(सं० कोविद)–पंडित, विद्वान्। उ० सत्यसार कबि कोबिद जोगी। (मा० ३।४५।४)
कोमलं–दे० 'कोमल'। उ० १. कृपालु शील कोमलं। (मा० ३।४। छं० १) कोमल–(सं०)–१. नरम, मुलायम, नाजुक, २. अपरिपक्व, कच्चा, ३. सुंदर, ४. स्वर का एक भेद, ५. नम्र। उ० १. सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं। (मा० १।९७। छं० १) कोमलौ–दोनों कोमल। उ० कोसलेन्द्र पदकंजमंजुलौ कोमलावज महेश-वन्दितौ। (मा० ७।१। श्लो० २)
कोमलता–(सं०)–१. मृदुलता, नरमी, २. मधुरता, नम्रता। उ० १. मति थोरि कठोरि न कोमलता। (मा० ७।१०२।१)
कोमलताई–दे० 'कोमलता'। उ० १. भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। (मा० ७।११।३)
कोय–(सं० कोपि)–१. कोई, २. कोई ही, शायद ही कोई। उ० १. सकल काम पूरन करै जानै सब कोय। (वि० १०८) २. तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय। (ब० ६३)
कोये–(सं० कोण)–आँख का कोना। उ० तुलसी नेवछावरि करति मातु अति प्रेम-मगन मन, सजल सुलोचन कोये। (गी० १।१२)
कोर (१)–(सं० कोण)–१. किनारा, छोर, २. कोना, अंतराल, ३. बैर, द्वेष, ४. दोष, ऐब, ५. पंक्ति, क़तार। उ० २. लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन-कोर को। (वि० ३१)
कोर (२)–(सं० कवल)–कलेवा, छाक, मजदूरों या कुलियों को दिए जानेवाला जलपान।
कोरि (१)–(सं० कोण)–किनारा।
कोरि (२)–(सं० कुंड>कोड़ना=खोदना, कुरेदना)–कुरेदकर, खोदकर, खुरचकर, छीलकर। उ० चीरि कोरि पचि रचे सरोजा। (मा० १।२८८।२)
कोरी (१)–(सं० कोटि)–करोड़, अनेक। उ० रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। (मा० १।२००।२)
कोरी (२)–(मुं० कोड़ी)–बीस।
कोरी (३)–(?)–हिन्दू जुलाहा, कपड़े बुननेवाली एक जाति।
कोरी (४)–(?)–जो काम में न लाई गई हो। अछूती।
कोरें–(?)–कोरा, सादा, जिस पर कुछ न किया गया हो, अछूता। उ० सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें। (मा० १।९।६)
कोरे–दे० 'कोरें'।
कोल–(सं०)–१. एक जंगली जाति, भील, २. सूअर, शूकर, ३. गोद, उत्संग, ४. शनैश्चर ग्रह, ५. बेर। उ० १. उलटा जपत कोल ते भए ऋषिराउ। (ब० ५४) २. कोल कराल दसन छबि गाई। (मा० १।१५६।४) कोलनी–भीलनी, शबरी। उ० आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलनी, कपीस निसिचर अपनाए नाए माथजू। (क० ७।१९) कोलन्हि–कोलों ने, भीलों ने। उ० सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे। (मा० २।२२६। छं० १) कोलिनि–कोल जाति की स्त्री। उ० कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिलखात। (गी० ३।२)
कोला–दे० 'कोल'। उ० २. दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। (मा० १।२६०।१)
कोलाहल–(सं)–बहुत से लोगों की अस्पष्ट चिल्लाहट, शोर, हल्ला। उ० काक कंक बालक कोलाहल करत हैं। (क० ६।४९)
कोलाहलु–दे० 'कोलाहल'। उ० राउर नगर कोलाहलु होई। (मा० २।२३।४)
कोल्ह–दे० 'कोल'।
कोल्हुन–कोल्हू का बहुवचन। उ० भूल्यो सूल कर्म-कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो। (वि० १४३) कोल्हू–(?)–तेल या ऊख पेरने का यंत्र जो डमरु के आकार का, पत्थर या काठ का होता है। कष्ट देने के लिए कोल्हू में पेलना या पेरना आदि का प्रयोग होता है। उ० पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि। (दो० ४०३)

कोविद-(सं०)-१. पंडित, विद्वान्, २. काव्यकार। उ० १. सिद्ध कवि-कोविदानंददायक पदद्वंद, मंदात्ममनुजैर्दुरापं। (वि० ५५)

कोश-(सं०)-१. भंडार, ख़ज़ाना, समूह, २. फूलों की बँधी कली, ३. तलवार या कटार आदि का म्यान, ४. अभिधान, वह ग्रंथ जिसमें अर्थ तथा पर्याय आदि दिए गये हों। ५. अंडकोश, ६. रेशम का कोया, रेशम, ७. खोल, थैली।

कोशल-(सं०)-१. सरयू के दोनों किनारों पर बसा एक प्राचीन जनपद, जिसकी राजधानी अयोध्या थी। २. अयोध्या नगर, ३. कोशल देश में बसनेवाली क्षत्रिय जाति। उ० १. रघुनंद आनँदकंद कोशल चंद दशरथ-नंदनं। (वि० ४५)

कोशलपुर-अयोध्या।

कोशलसुता-कौशल्या, राम की माता। उ० जयति कोशलाधीश-कल्याण, कोशलसुता-कुशल, कैवल्य-फल चारु चारी। (वि० ४३)

कोशला-(सं०)-कोशल की राजधानी, अयोध्या।

कोशलाधीश-१. दशरथ, २ राम।

कोष-दे० 'कोश'।

कोषला-दे० 'कोशला'।

कोस (१)-दे० 'कोश'। उ० ६. हठि सठ परबस परत जिमि कीर, कोस-कृमि, कीस। (दो० २४३)

कोस (२)-(सं० क्रोश)-दूरी की एक नाप जो लगभग २. मील के बराबर होती है।

कोसल-दे० 'कोशल'।

कोसलधनी-कोशल के राजा, दशरथ। उ० १. तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी। (मा० २।१२१। छं० १)

कोसलपुर-दे० 'कोशलपुर'। उ० ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा। (मा० १।१४१।१)

कोसलसुता-दे० 'कोशलसुता'।

कोसला-दे० 'कोशला'। उ० प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ। (मा० २।१०३)

कोसा-(सं० कोश-खज़ाना)-दे० 'कोश'। उ० १. मागहु भूमि धेनु धन कोसा। (मा० १।२०८।२)

कोसिला-दे० 'कौशल्या'।

कोसु-(सं० कोश)- ख़ज़ाना। दे० 'कोश'। उ० १. देसु कोसु परिजन परिवारू। (मा० २।३१५।४)

कोह-(सं० क्रोध)-गुस्सा, क्रोध। उ० किंकर कंचन कोह काम के। (मा० १।१२।२)

कोहबर-(सं० कोष्ठवर)-ब्याह का घर जहाँ कुल देवता स्थापित किए रहते हैं। उ० बर दुलहिनिहि लेवाइ सखी कोहबर गईं। (जा० १६४) कोहबरहि-कोहबर में। उ० कोहबरहि आने कुँअर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै। (मा० १।३२७। छं० २)

कोहा-दे० 'कोह'। उ० ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा। (मा० ४।१८।३)

कोहातो-क्रोध करते, क्रोधित होता। उ० काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो। (वि० १५१) कोहानी-क्रोधित हो गईं। क्रुद्ध हो गईं। उ० कीरति, कुसल, भूति, जय ऋधि सिधि तिन्ह पर सबै कोहानी। (गी० १।४) कोहाब-(सं० क्रोध)-कोहाना, मान करना, रूठना, क्रोधित होना। उ० तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई (मा० २।२८।१)

कोही-क्रोधी, क्रोध करनेवाला। उ० खर कुठार मैं अकरुन कोही। (मा० १।२७५।३)

कौं-(सं० कच्छ)-को। कर्म तथा संप्रदान का चिह्न। उ० धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान। (मा० १।२०७)

कौ-(दे० 'कब')-कब। उ० क्यों कहि जात महा सुखमा, उपमा तकि ताकत है कवि कौ की। (क० ७।१४३)

कौड़िहू-कौड़ी भी। उ० लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै, केहि काज? (दो० १०८) कौड़ी-(सं० कपर्दिका)-१. समुद्र का एक कीड़ा जो घोंघे की तरह एक अस्थिकोश के अंदर रहता है। वराटिका। २. धन, द्रव्य, ३. तुच्छ, व्यर्थ, ४. कम मूल्य, थोड़ा लाभ। उ० ४. कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात। (मा० ७।९९क) मु० दू कौड़ी को-तुच्छ, निरर्थक। उ० कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए। (ह० ३४)

कौतुक-(सं०)-१ कुतूहल, २. अचंभा, आश्चर्य, ३. विनोद, दिल्लगी, ४. आनंद, खुशी, ५. तमाशा, खेल, दृश्य, बिना परिश्रम किया गया काम। उ० २. कहहु मोहि अति कौतुक भारी। (मा० ७।५५।१) ५. कौतुक सागर सेतु करि आये कृपानिधानु। (प्र० ५।३।५) कौतुकहिं-दे० 'कौतुकहि'। कौतुकहि-खेल ही में, हँसी में ही। उ० गहि करतल, मुनि पुलक सहित, कौतुकहि उठाइ लियो। (गी० १।८८) कौतुकहीं-खेल ही में, आसानी से। उ० कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे। (मा० ६।५१।३) कौतुकहीं-दे० 'कौतुकहीं'।

कौतुकिअन्ह-खिलवाड़ करनेवालों को, कौतुकियों को। उ० तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। (मा० १।८१।२) कौतुकिअन्हि-दे० 'कौतुकिअन्ह'।

कौतुकी-(सं०)-कौतुक-प्रिय, खिलवाड़ी, विनोदप्रिय। उ० मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। (मा० १।१३०।४)

कौतुकु-दे० 'कौतुक'। उ० सती दीख कौतुक मग जाता। (मा० १।५४।२)

कौतूहल-१. तमाशा, लीला, खेलवाड़, २. आश्चर्य, ३. उत्सुकता। उ० १. यह कौतूहल जानइ सोई। (मा० ६।५५।२)

कौन-(सं० कः पुनः, प्रा० कवण)-एकप्रश्न वाचक सर्वनाम जो अभिप्रेत व्यक्ति या वस्तु की जिज्ञासा करता है। उस मनुष्य या वस्तु को सूचित करने का शब्द जिसको पूछना होता है। उ० तहँ तुलसी के कौन कों काको तकिया रे? (वि० ३३)

कौनप-(सं० कौणप)-१. राक्षस, निशाचर, २.पापी। उ० १. केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई। (वि० १६५)

कौनि-'कौन' का स्त्रीलिंग। उ० तुलसिदास मोको बड़ो सोच है तू जनम कौनि बिधि भरिहै। (गी० २।६०)

कौनें-किसने, कौन ने। दे० 'कौने'। उ० रघुबीर चरित

अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो। (मा० १।३६१। छं० १) कौने—१. किसने, २. कौन, किस, ३. किससे। उ० १. कासों कहौं, कौने गति पाहनहिं दई है ? (वि० १८१) कौनेउ—किसी भी। कौनो—१. कौन, २. कोई भी, किसी भी। उ० १. कौन जानै कौनो तप, कौने जोग जाग जप, कान्ह सो सुवन तो को महादेव दियो है। (कृ० १६)

कौमार—(सं०) कुमार अवस्था, जन्म से पाँच वर्ष तक की अवस्था। उ० कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै। (वि० १३६)

कौमुदीं—दे० 'कौमुदी'। उ० १. जनु कुमुदिनी कौमुदीं पोषीं। (मा० २।११८।२) कौमुदी—(सं०)—१. चाँदनी, चन्द्रप्रभा, २. कार्तिकी पुर्णिमा, ३. कुमुद, कुमुदिनी।

कौमोदकी—(सं०)—विष्णु की गदा। उ० बसन-किंजल्क-धर चक्र सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति बिसाला। (वि० ४६)

कौर—(सं० कवल)—ग्रास, निवाल, उतना भोजन जितना एक बार मुँह में डाला जाय। उ० तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे। (वि० ६७)

कौरव—(सं०)—कुरु राजा की संतान, कुरु-वंशज, दुर्योधन आदि।

कौल—(सं०)—१. वाममार्गी, शराबी, २. अच्छे कुल में उत्पन्न, कुलीन। उ० १. कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। (मा० ६।३१।१)

कौशल—(सं०)—१. कुशलता, चतुराई, निपुणता, २. मंगल, ३. अयोध्या का निवासी।

कौशलेश—(सं०)—अयोध्या के राजा। १. राम, २. दशरथ।

कौशल्या—(सं०)—कोशल के राजा दशरथ की प्रधान स्त्री और रामचंद्र की माता।

कौशिक—(सं०)—१. विश्वामित्र (कुशिक राजा के वंशज), २. कुशिक राजा के पुत्र गाधि, जो इंद्र के अंश से उत्पन्न हुए थे। ३. इंद्र, ४. उल्लू पक्षी, ५. गूगुल, ६. मदारी, साँप पकड़नेवाला।

कौशेय—(सं०)—रेशमी वस्त्र। उ० नीलनव-वारिधर सुभग सुभ कांतिकर पीत कौशेय-बर बसन-धारी। (वि० ५१)

कौसल—दे० 'कौशल'।

कौसलेस—दे० 'कौशलेश'। उ० १. को है रन रारि को जौं कौसलेस कोपिहैं ? (क० ६।१)

कौसल्यहि—१. कौशल्या को, २. कौशल्या ने। उ० १. कौसल्यहि सब कथा सुनाई। (मा० २।१५५।२) कौसल्याँ—कौशल्या ने। उ० कौसल्याँ अब काह बिगारा। (मा० २।४६।४) कौसल्या—दे० 'कौशल्या'।

कौसिक—दे० 'कौशिक'। उ० १. कौसिक, मुनि तीय, जनक सोच-अनल जरत। (वि० १३४) कौसिकहि—कौशिक को, विश्वामित्र को। उ० जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। (मा० १।२८६।३)

कौसिकी—(सं० कौशिकी)—१. चंडिका, २. राजा कुशिक की पोती और ऋचीक मुनि की स्त्री, जो अपने पति के साथ सदेह स्वर्ग गई थी। ३. काव्य में चार प्रकार की वृत्तियों में से पहली वृत्ति। इसमें करुण, हास्य या शृंगार रस का वर्णन रहता है। वर्णों में केवल कोमल वर्णों का प्रयोग होता है।

कौसिलाँ—कौशल्या ने। उ० जस कौसिलाँ मोर भल ताका। (मा० २।३३।४) कौसिला—दे० 'कौशल्या'। कौसिलाहु—कौशल्या भी। उ० कौसिलाहु ललकि लषन लाल लए हैं। (गी० १।११)

कौसेय—दे० 'कौशेय'।

कौस्तुभ—(सं०)—पुराणानुसार एक रत्न जो समुद्र-मंथन से निकला था। इसे विष्णु अपने वक्षस्थल पर पहने रहते हैं।

क्या—(?)—एक प्रश्न वाचक शब्द जो उपस्थित या अभिप्रेत वस्तु की जिज्ञासा करता है।

क्यों—(*सं० केव>अप० कँव)—किस कारण, किस कारण से, किस लिए। उ० तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इया रे। (वि० ३३) क्यौंकर—१. किसलिए, २. कैसे, किस तरह। क्योंकरि—दे० 'क्योंकर'। उ० २. सकुचत हौं अति, राम कृपानिधि ! क्योंकरि बिनय सुनावौं ? (वि० १४२) क्योंहूँ—कैसे भी, किसी प्रकार भी। उ० खीभि रीभि बिहँसि अनख क्योंहूँ एक बार, 'तुलसी तू मेरो' बलि, कहियत किन ? (वि० २५३)

क्यौं—दे० 'क्यों'।

क्रतु—(सं०)—१. यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, २. निश्चय, ३. इच्छा, ४. विवेक, ५. इंद्रिय, ६. विष्णु, ७. जीव, आत्मा, ८. कृष्ण के एक पुत्र का नाम, ९. ब्रह्मा के एक मानस पुत्र का नाम जो सप्तर्षियों में से एक है। उ० १. सुमिरिए छाँड़ि छल भलो क्रतु है। (वि० २५४)

क्रम (१)—(सं०)—१. पैर रखने की क्रिया, २. तरतीब, सिलसिला शैली, ३. बामन अवतार का एक नाम। क्रमक्रम—शनैः शनैः, धीरे-धीरे, एक-एक करके।

क्रम (२)—(सं० कर्म)—कर्म, काम। उ० मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू। (मा० १।५६।४)

क्रमनासा—दे० 'करमनासा'। उ० कासी मग सुरसरि क्रमनासा। (मा० १।६।४)

क्रय—(सं०)—मोल लेने की क्रिया, खरीदने का काम।

क्रव्याद—(सं०)—१. मांसभक्षी, राक्षस, सिंह, गिद्ध, २. चिता की आग।

क्रांति—१. एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्तन, उलट-फेर। २. एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन।

क्रियन—'क्रिया' का बहुवचन। क्रियन्ह—दे० 'क्रियन'। क्रिया—(सं०)—१. किसी प्रकार का व्यापार, किसी काम का होना या किया जाना, कर्म, २. प्रयत्न, ३. अनुष्ठान, आरम्भ, ४. व्याकरण का एक अंग, जिसमें किसी व्यापार का होना या करना पाया जाय, जैसे आना, जाना आदि। ५. शौच, स्नान आदि नित्य के कर्म, ६. श्राद्ध आदि प्रेतकर्म, ७. प्रायश्चित आदि कर्म, ८. उपचार, उपाय, ९. मुकदमे की कार्रवाई। उ० ५. नित्य क्रिया करि गुरु पहिं आए। (मा० १।२३९।४)

क्रीड़त—१. खेलते हैं, खेल रहे हैं, २. खेलते हुए, खेल में। उ० १. प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस। (मा० ६।१०१ ख) क्रीड़हिं—खेलते हैं, क्रीड़ा करते हैं। उ० बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा। (मा० १।१२६।३)

क्रीड़ा–(सं०)–१. कल्लोल, तमाशा, खेल-कूद, २. हँसी, ३. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक, ४. केलि, संभोग। उ० १. मोहि सन करहिं बिबिध बिधि क्रीड़ा। (मा० ७।७७।५)

क्रुद्ध–(सं०)– कोपयुक्त, क्रोध में भरा हुआ। उ० भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। (मा० ३।२०। छं० २)

क्रुद्धा–दे० 'क्रुद्ध'। उ० सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा। (मा० ६।६७।१)

क्रुद्धे–क्रोधित हुए। उ० क्रुद्धे कृतांत समान कपि, तन स्रवत सोनित राजहीं। (मा० ६।८१। छं० १)

क्रूर–(सं०)–१ निष्ठुर, निर्दय, कठोर, पर-पीड़क, तीखा, तेज़, २. भात, पका चावल, ३. बाज़ पक्षी। उ० १. द्वेष मत्सर-राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय, क्रूर कर्म-कर्त्ता। (वि० ६०)

क्रोड़–(सं०)–१. आलिंगन में दोनों बाहों के बीच का भाग, अंक, गोद, २. वक्षस्थल, ३. शूकर, सूअर। उ० ३. सकल यज्ञासमय उग्र-विग्रह क्रोड़, मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी। (वि० ५२)

क्रोध–(सं०)–१. कोप, रोष, गुस्सा, २. साठ संवत्सरों में से ५९ वाँ संवत्सर। इस संवत्सर में आकुलता और क्रोध की वृद्धि होती है। उ० १. शुंभ निःशुंभ कुंभीश रण-केशरिणि, क्रोध बारिधि बैरिवृंद बोरे। (वि० १५)

क्रोधवंत–(सं० क्रोध + मत्)–क्रोधवाला, क्रोधी, क्रोधपूर्ण। उ० क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा। (मा० ६।३२।१)

क्रोधा–दे० 'क्रोध'। उ० सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। (मा० १।१३६।३)

क्रोधिहिं–क्रोधी के लिए, क्रोधी को, क्रोधी से। क्रोधिहि–क्रोधी के लिए, क्रोधी से। उ० क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। (मा० ५।५८।२) क्रोधी–(सं०)–गुस्सावर, क्रोध करनेवाला। उ० कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। (मा० २।१६८।१)

क्रोधु–दे० 'क्रोध'।

क्लेश–(सं०)–१. दुःख कष्ट, व्यथा, २. झगड़ा, लड़ाई, टंटा। क्लेशहं–क्लेश हरनेवाले, दुखों को दूर करनेवाले। उ० केशवं क्लेशहं केश-वंदित-पदद्वंद्व-मंदाकिनी-मूलभूतं। (वि० ४६)

क्लेशित–व्यथित, दुखित, जिसे कष्ट हो, पीड़ित।

क्लेस–दे० 'क्लेश'। उ० १ तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृति क्लेस। (मा० ७।११८ क)

क्वचित्–कुछ, बहुत कम, कोई। उ० नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। (मा० १।१। श्लो० ७)

क्वारा–(सं० कुमार)–बिना ब्याहा, कुँआरा, जिसकी शादी न हुई हो।

क्वै (१)–(सं० कोपि)–कोई। उ० धन-धाम-निकर, करनि हू न पूजै क्वै। (क० ७।१६३)

क्वै (२)–(सं० कः)–कौन, क्या, कहाँ।

क्वौ–(सं० कः) कोऊ, कोई। उ० नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा। (मा० ७।१०२।३)

क्षई–(सं० क्षय)-राजयक्ष्मा, तपेदिक।

क्षण–(सं०)–काल का एक छोटा भाग, छन. थोड़ी देर।

क्षणिक–(सं०)–क्षणभंगुर, अनित्य, अस्थायी।

क्षत–(सं०)–घाव, जख्म, आघात, चोट।

क्षति–(सं०)–हानि, नुकसान, क्षय।

क्षत्र–(सं०)–१. बल, ज़ोर, २. राष्ट्र, ३. धन, ४. शरीर, ५. पानी।

क्षत्रिय–(सं०)-हिंदुओं के चार वर्णों में से दूसरा वर्ण। इन लोगों का काम देश का शासन तथा रक्षा करना है।

क्षम–(सं०)–१. समर्थ, योग्य, उपयुक्त, २ पराक्रम, शक्ति।

क्षमता–(सं०)–योग्यता, सामर्थ्य।

क्षमा–(सं०)–१. चित्त की एक वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरे द्वारा पहुँचाए गए कष्ट को चुपचाप सह लेता है, और बदला या दंड की भावना नहीं होती। २. सहनशीलता, ३. पृथिवी, ४. दक्ष की एक कन्या का नाम, ५. दुर्गा।

क्षय–(सं०)–१ नाश, ह्रास, २ प्रलय, कल्पांत, ३. राजयक्ष्मा, तपेदिक, ४. अन्त, ५. मकान।

क्षरण–(सं०)–१. धीरे धीरे चूना, स्राव होना, २. छलना, धोखा देना, ३. नाश होना।

क्षाम–(सं०)–१. क्षीण, कृश, पतला, २. कमज़ोर, निर्बल, ३. थोड़ा।

क्षार–(सं०)–१.छार, खार, नमक, २ भस्म, राख, ३.सज्जी।

क्षालित–(सं०)–धुला हुआ, साफ किया हुआ, शुद्ध।

क्षिति–(सं०)–१. पृथिवी, २. नाश, ३. रहने की जगह।

क्षितिपति–राजा, भूपाल।

क्षितिपाल–दे० 'क्षितिपति'।

क्षीण–(सं०)–१. दुर्बल, पतला, घटा हुआ, २. सूक्ष्म।

क्षीणता–(सं०)–१. दुर्बलता, कमज़ोरी, २. सूक्ष्मता।

क्षीर–(सं०)–१. दूध, दुग्ध, २. पानी, जल, ३. वृक्ष का दूध, ४. दूध में पका चावल।

क्षीरसागर–(सं०)–दे० 'क्षीरसिंधु'। उ० उरग-नायक-सयन, तरुन-पंकज-नयन, क्षीर सागर-अयन, सर्ववासी। (वि० ५५)

क्षीरसिंधु–(सं०) पुराणों के अनुसार सात समुद्रों में से एक जो दूध से भरा माना जाता है। विष्णु इसी समुद्र में शेष-शय्या पर सोते हैं।

क्षीराब्धि–(सं०)–दे० 'क्षीरसिंधु'। क्षीराब्धिवासी–क्षीर के समुद्र में वास करनेवाले, विष्णु। उ० यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति क्षीराब्धिवासी। (वि० ५७)

क्षुण–(सं० क्षुण्ण)-पिसा हुआ, चूर-चूर, टूटा।

क्षुद्र–(सं०)–१. छोटा, २. नीच, ३. कृपण, ४. निर्दय, क्रूर, ५. दरिद्र, कंगाल।

क्षुधा–(सं०)–भूख, भोजन करने की इच्छा।

क्षुधित–भूखा, जिसे भूख लगी हो।

क्षुर–(सं०)–१. छुरा, उस्तरा, चाकू, २. तेज़ बाण, ३ गोखुरु। उ० १. बिकटतर बक्र क्षुरधार प्रमदा, तीव्र दर्प कंदर्प खर खंगधारा। (वि० ६०) क्षुरधार–तेज़, छुरे की तरह धारवाला। उ० दे० 'क्षुर'।

क्षेत्र–(सं०)–१. खेत, अन्न बोने की जगह, २. स्थान, प्रदेश, ३. तीर्थ, ४. शरीर, ५. पत्नी।

क्षेम–(सं०)–१. कल्याण, कुशल, मंगल, २. आनंद, ३. मोक्ष, ४. उन्नति, ५. हिफ़ाज़त, सुरक्षा।
क्षेमकरी–(सं० क्षेमंकरी)–एक प्रकार की चील जिसका गला सफ़ेद होता है। सगुन का पक्षी। कुशल करनेवाला पक्षी।
क्षोभ–(सं०)१. घबराहट, व्याकुलता, रंज, २. शोक, ३. क्रोध, ४. भय।
क्षोभित–१. व्याकुल, घबराया, २. भयभीत, ३. क्रुद्ध, ४. शोकाकुल।
क्ष्मा–(सं०)–पृथ्वी, धरती।

ख

खं–(सं० खम्)–शून्य, आकाश। उ० कारन को कंजीव को खंगुन कह सब कोय। (स० २७७)
खंग–(सं०)–१.तलवार, कटार, २. गैंडा। उ० १. खंग कर. चर्मवर वर्मधर, रुचिर कटितूण. सर-सक्ति-सारंगधारी। (वि० ५५)
खँचाइ–खींचकर, खिंचवाकर। उ० रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। (मा० २।१६।४)
खंजन–(सं०)–एक प्रसिद्ध पक्षी जिसके ऊपर काली तथा सफ़ेद धारियाँ होती हैं। चंचलता के कारण इसकी उपमा नेत्रों से दी जाती है। खँडरिच, ममोला। उ० बालमृग मंजु-खंजन-बिलोचनि, चंद्रबदनि, लखि कोटि रतिमार लाजै। (वि० १५)
खंजरीट–(सं०)–खंजन, खँडरिच, ममोला। दे० 'खंजन'। उ० मनहुँ इंदु पर खंजरीट दोउ कछुक अरुन बिधि रचे सँवारी। (कृ० २२)
खंड–(सं०)–१. भाग, टुकड़ा, हिस्सा, २. अपूर्ण, छोटा, ३. शक्कर, चीनी, ४. दिशा, ५. देश, प्रांत, ६. नौ की संख्या, ७. काला नमक। उ० १. प्रभु दोउ चाप खंड महि डारे। (मा० १।२६२।१)
खंडन–दे० 'खंडन'। खंडन–(सं०)–१. तोड़ना, तोड़ने फोड़ने की क्रिया, भंजन, २. किसी बात को काटने या अप्रमाणित करने की क्रिया, निराकरण, प्रतिवाद, ३. खंडन करनेवाला, नाशकर्त्ता। उ०३.कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। (मा० ७।५१।४) खंडनि–खंडन करनेवाली, नाश करनेवाली। उ० चंड-भुजदंड-खंडनि बिहंडनि, महिष मद-भंग करि अंग तोरे। (वि० १५)
खंडहिं–तोड़ते हैं, टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं। उ० रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा। (मा०३।२०। छं०१) खंडि–तोड़ करके, खंडित करके। खंडेउ- खंडन किया, तोड़ा। उ० कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं। (मा० १।२६१।छं० १) खंड्यौ–खंडित किया, तोड़ा। उ० भूपमंडली प्रचंड चंडीस-कोदंड खंड्यौ। (क० १।१८)
खंडा–दे० 'खंड'। उ० १. सूल कृपान परिघ गिरिखंडा। (मा० ६।४०।४)
खंडित–(सं०) १. टूटा हुआ, भग्न, २. जो पूरा न हो, अपूर्ण, ३. अशुद्ध, जिसका निराकरण किया जा चुका हो। ४. खंडन करनेवाला, नाश करनेवाला। उ० ४. भुजबल बिपुल भार महि खंडित। (मा० ७। ५१।३)
खंभ–(सं० स्कंभ)–१. स्तंभ, खंभा, २. सहारा, आसरा। उ० १.कनक खंभ, चहुँ ओर मध्य सिंहासन हो। (रा०४)
खंभा–दे० 'खंभ'। उ० १. बिरचे कनक कदलि के खंभा। (मा० १।२८७।४)
खभार–(सं० क्षोभ, प्रा० खोभ)–१. चिंता, २. घबराहट, खलबली, व्याकुलता, ३. डर, भय, ४. शोक। उ० १. कौतुक बिलोकि सुरपाल हरिहर बिधि, लोचननि चका-चौंधी चित्तनि खँभार सो। (ह० ४)
ख–(सं०)–१. गड्ढा, गर्त, २. शून्य, खाली जगह, ३. आकाश, ४. इंद्रिय, ५. शरीर, ६. मुख।
खई–(सं० क्षयी)–१. क्षयी रोग, २. लड़ाई, झगड़ा। उ० १. याते बिपरीत अनहितन की जानि लीबी, गति, कहे प्रगट खुनिस खासी खई है। (गी० १।८४) २. काहू सों न खुनिस खई। (गी० ५।२७)
खग–(सं०)–आकाश में चलनेवाला, १. ग्रह, २. हवा, ३. तीर, ४. पक्षी, ५. बादल, ६. देवता, ७. सूर्य, ८. जटायु। उ० ४. खग मृग चरनसरोरुह सेवी। (मा० २। ८६।२) ८. निज लोक दियो सबरी खग को। (क० ७।१०)
खगी–(सं०खग)–पक्षी की स्त्री, चिड़िया। उ० 'हा धुनि'-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिए बड़े बधिक हठि मौन। (गी० ५।२०)
खगकेतु–(सं०)–पक्षियों में श्रेष्ठ, गुरुड़।
खगकेतू–दे० 'खगकेतु'। उ० बरनि न जाइ समर खगकेतू। (मा० ६।७२।६)
खगनाथ–(सं०)–गरुड़। उ० खगनाथ जथा करि कोप गहा। (मा० ७।११।२)
खगनायक–गरुड़।
खगनायकु–दे० 'खगनायक'। उ० गति बिलोकि खगनायकु लाजे। (मा० १।३१६।४)
खगनाहा–(सं० खगनाथ)–गरुड़। उ० सुनि सब रामकथा खगनाहा। (मा० ७।६८।४)
खगपति–गरुड़। उ० आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलंब न कीन। (वि० ६३) खगपतिनाथ–गरुड़ के नाथ अर्थात् विष्णु। उ० चाहत अभय भेक सरनागत खगपति-नाथ बिसारी। (वि० ६२)
खगराऊ–(सं० खग + राजा, प्रा० राव)–पक्षियों के राजा,

गरुड़। उ० पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। (मा० ७।१२१।१)

खगराज–गरुड़। उ० सुनि मम बचन बिनीत मृदु, मुनि कृपालु खगराज। (मा० ७।११० ग)

खगराया–दे० 'खगराऊ'। उ० नट कृत बिकट कपट खगराया। (मा० ७।१०४।४)

खगसाईं–(सं० खग + स्वामी)-गरुड़। उ० तुम्ह निज मोह कही खगसाईं। (मा० ७।७०।३)

खगहा–(सं० खंग)–खाँगवाला, गैंडा। उ० खगहा करि हरि बाघ बराहा। (मा० २।२३६।२)

खगे-(सं० खंग)–धँसे, धँसने से, घुसने से। उ० तुलसी करि केहरि-नाद भिरे, भट खग्ग खगे खपुवा खरके। (क० ६।३५)

खगेश–(सं० खग + ईश) -गरुड़।

खगेस–दे० 'खगेश'। उ० सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। (मा० ७।११३।१)

खगेसा–दे० 'खगेश'। उ० चतुरानन पहिं जाहु खगेसा। (मा० ७।५६।४)

खग्ग (१)–(सं० खड्ग, प्रा० खग्ग)–तलवार, कटार। उ० दे० 'खगे'।

खग्ग (२)–(सं० खग)–पक्षी, चिड़िया। उ० खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं। (मा० ६।८८।छं० १)

खचा–(सं० खच्)–१. खचित, जड़ित, २. खींचा हुआ।

खचाई–जड़वाई, सुन्दर रूप से बनवाई, खिंचवाई।

खचित–जड़ा हुआ, खींचा हुआ। उ० कनककोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव। (मा० १।१७८ क)

खचीं–जड़ी, मढ़ी, लगी, खिंचीं। उ० मनिखंभ भीति बिरंचि बिरचीं कनक मनि मरकत खचीं (मा० ७।२७।छं० १) खचे–जड़े, मढ़े, लगाए, खींचे हुए। उ० प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे। (मा० ७।२७।छं० १)

खच्चर–(?)–गदहे और घोड़े के संयोग से उत्पन्न एक पशु जो घोड़े से मिलता जुलता होता है। उ० गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै। (मा० ५।३।छं० १)

खटाइ–(सं० कटु)–परीक्षा में पूर्ण उतरे, ठीक उतरे, स्थिर रहे, टिके रहे, निभा लिया। उ० द्वंद-रहित, गत-मान, ज्ञानरत, बिषय-बिरत खटाइ नाना कस। (वि० २०४) खटाहिं–टिक सकती हैं, परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकती है, रुक सकती हैं, स्थिर रह सकती हैं, स्थिर रहते हैं। उ० सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं। (मा० १।७६)

खटाई–(सं० कटु)–वह वस्तु जिसका स्वाद खट्टा हो, जैसे दही, नीबू, तथा इमली आदि। उ० बिलग होइ रसु जाइ, कपट खटाई परत पुनि। (मा० १।५७ ख)

खटोला–(सं० खट्वा)–छोटी चारपाई, छोटा खाट। उ० बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे। (वि० १८९)

खता–(अर० ख़ता)–१. धोखा, २. अपराध। उ० १. राम-राम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय। (स० ११६)

खद्योत–(सं०)–१. जुगनू, रात को चमकनेवाला एक कीड़ा, २. सूर्य। उ० १. सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। (मा० ५।६।४)

खनत–(सं० खनन)–१. खनते हैं, २. खोदते हैं, ३. खोदते समय, खोदते ही। उ० १. कूप खनत मंदिर जरत आए धारि बबूर। (दो० ४८७) खनतहिं–खोदते ही, खोदते समय, खोदने में ही। उ० तुलसिदास कब तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो। (वि० ८८) खनि (१)–खोदकर, खनकर। उ० जयति पाकारिसुत-काक-करतूति-फलदानि, खनि गर्त्त गोपित बिराधा। (वि० ४३) खने–खोदे, गर्त्त बनाये। उ० जासु प्रसाद जनमि जग पुरषनि सागर सृजे, खने अरु सोखे। (गी० ५।१२) खनै–खोद डाले, समूल नष्ट कर दे। उ० मंगल मूल प्रनाम जासु जग मूल अमंगल के खनै। (गी० ५।४०) खनैगो–खनेगा, खोदेगा। उ० जो-जो कूप खनैगो पर कहँ सो सठ फिरि तेहि कूप परै। (वि० १३७) खन्यो–खोदा। उ० यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है। (गी० ६।११)

खनावत–खुदवाते, खनवाते। उ० नतरु सुधासागर परिहरि कत कूप खनावत खरे। (गी० १।६६) खनावौं–खुदवाता हूँ, खनवाता हूँ, खुदवाऊँ। उ० हाटक घट भरि धर्यौ सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौं। (वि० १४२)

खानि (२)–(सं०)–खान, रत्नादि निकलने का स्थान, कान।

खप–(सं० क्षपण>खपना = व्यय होना)–खपकर, लगकर, पचकर। उ० जापकी न, तप खप कियो न तमाइ जोग, जाग न, बिराग त्याग तीरथ न तन को। (क० ७।७७) खपत–खप जाता है, समा जाता है, समाप्त हो जाता है। उ० कलिजुग बर बनिज बिपुल नाम नगर खपत। (वि० १३०)

खपर–दे० 'खप्पर'। उ० २. कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं। (पा० १११)

खपुआ–दे० 'खपुवा'।

खपुवा–(सं० क्षेपण)– भगनेवाला, कायर, डरपोक। उ० दे० 'खगे'।

खप्पर–(सं० खर्पर)–१. तसले के आकार का मिट्टी का पात्र, भिक्षापात्र, २. खोपड़ी। उ० २. जोगिनि भरि-भरि खप्पर संचहिं। (मा० ६।८८।४) खप्परिन्ह–खोपड़ियों में, खप्परों में। उ० दे० 'खग्ग (२)'।

खबर–(अर० ख़बर)–समाचार, हाल, वृत्तांत।

खबरि–दे० 'खबर'। उ० भूपद्वार तिन्ह खबरि जनाई। (मा० १।२६०।१)

खभार–दे० 'खँभार'। उ० २. देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ खभार। (मा० ६।४६)

खभारू–दे० 'खँभार'। उ० १. फिरहु त सब कर मिटै खभारू। (मा० २।६७।२)

खयकारी–(सं० क्षयकारिन्)– नाश करनेवाला, क्षय करनेवाला। उ० दुसह-रोष-मूरति भृगुपति अति नृपति-निकर-खयकारी। (गी० १।१०७)

खये–(सं० स्कंध)–बाहुमूल, भुजा। मु० खये ठोकि–ताल ठोककर। उ० कंदुक-केलि-कुसल हय चढ़ि-चढ़ि, मन कसि-कसि, ठोकि-ठोकि खये। (गी० १।४३)

खर (१)–(सं०)–एक राक्षस। यह सुमाली मुनि की कन्या

राखा, तथा विश्वबस् मुनि का पुत्र था। दूषण, रावण एवं सूर्पणखा का भाई लगता था। लक्ष्मण द्वारा सूर्पणखा की नाक काटे जाने पर यह पंचवटी में युद्धार्थ आया और राम द्वारा मारा गया। उ० सखर सुकोमल मंजु दोष-रहित दूषन सहित। (मा० ३।१४ ख)
खर (२)-(सं०)-१. कड़ा, सख्त, २. तेज़, तीक्ष्ण, ३. अशुभ, अमांगलिक, ४. गदहा, ५. खच्चर, ६. बगला, ७. कौवा, ८. तृण, घास, ९. सफेद चील, १०. कुरर पक्षी, ११. उत्तम, श्रेष्ठ। उ० १. अनय-अंभोधि-कुंभज, निशाचर-निकर तिमिर-घनघोर-खर-किरणमाली। (वि० ४४) ४. तदपि न तजत, स्वान, खर ज्यों फिरत बिषय-अनुरागे। (वि० ११७) खरखौकी-(सं० खर = तृण + खद्)-तृण खाने वाली, आग, अग्नि। उ० लागि दवारि पहार ढही लहकी कपि लंक जथा खरखौकी। (क० ७।१४३) खरतर-अपेक्षाकृत अधिक खर, बहुत तेज़, अधिक तीक्ष्ण। उ० अवलोकि खरतर तीर। (मा० ३।२०। छं० २) खरनि-खरों पर, गदहों पर। उ० चढ़े खरनि बिदूषक स्वाँग साजि। (गी० ७।२२) खरो (१)-१. तृण भी, २. गदहा भी।
खरके-(ध्व०)-१. भगे, चल दिए, सरके, २. खर-खर ध्वनि किए। उ० १. दे० 'खपुवा'।
खरखोट-(सं० खर + खोट)-खरा-खोटा, भला-बुरा। उ० गाँठी बाँध्यो दाम सो परयो न फिरि खरखोट। (वि० १९१)
खरगोसु-(फा० ख़रगोश)-खरगोश, खरहा। उ० चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु। (वि० १५९)
खरब-(सं० खर्व)-नाश, अंगभंग। उ० खरब आतमा बोध बर खर बिनु कबहुँ न होइ। (स० ५७१)
खरबर-दे० 'खरभर'।
खरभर-(ध्व०)-१. हलचल, खलबली, उथल-पुथल, गड़बड़, २. क्षोभ।
खरभरु-दे० 'खरभर'। उ० १. होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा। (मा० १।८४। छं० १)
खरभरे-खलबला उठे। उ० चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे। (मा० ५।३५। छं० १)
खरारि-(सं० खर + अरि)-खर नामक राक्षस के शत्रु, राम, २. विष्णु, ३. कृष्ण, ४. बलराम।
खरारी-दे० 'खरारि'। उ० १. भए बहुरि सिसुरूप खरारी। (मा० १।२०२।३)
खरि (१)-(सं० खलि)-तेल निकाल लेने पर तेलहन की बची हुई सीठी, खली। उ० दै-दै सुमन तिल बासि कै अरु खरि परिहरि रस लेत। (वि० १९०)
खरि (२)-(सं० खर)-१. तेज़, कठोर, अधिक कड़ु, २. गदही। उ० १. पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि, झकोर, खरि खीझि। (दो० २८४)
खरि (३)-(सं० खटी)-खरिया मिट्टी।
खरिया-(सं० खटिका)-खड़िया मिट्टी। उ० खरिया, खरी, कपूर सब, उचित न पिय! तिय त्याग। (दो० २५५)
खरी (१)-(सं० खर)-१. पकी हुई, २. तेज़, चोखी, ३. उत्तम, ४. गर्दभी, गदही। उ० ४. खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी। (मा० ७।११०।४)
खरी (२)-(?)-एक प्रकार का चंदन जिसे गोपी चंदन कहते हैं। उ० दे० 'खरिया'।
खरी (३)-(सं० खलि)-खली, तेल निकालने के बाद बची हुई सीठी।
खरी (४)-(प्रा०*खड)-खड़ी, खड़ी हुई। उ० मंदिरनि पर खरी नारि आनँद-भरी। (गी० ७।५) खरे (१)-(प्रा०*खड)-खड़े। उ० जनु चित्रलिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे। (मा० ६।८९।छं०१) खरो-(२)-खड़ा।
खरु-दे० 'खर'।
खरे (२)-(सं० खर)-उत्तम, अच्छे, चोखे।
खरो (३)-अच्छा, चोखा, श्रेष्ठ, निष्कपट। उ० राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोटो? (वि० ७२)
खर्पर-(सं०)-१. खोपड़ी, सिर, पीठ, २. खप्पर, ३. एक धातु विशेष, उ० १. कटकटहिं जंबुक भूतप्रेत पिसाच खर्पर संचहीं। (मा० ३।२०। छं० १) १. जनु कमठ खर्पर सर्प-राज सो लिखत अबिचल पावनी। (मा० ५।३५।२)
खर्ब-(सं० खर्व)-१. लघु, तुच्छ, २. सौ अरब, खरब, ३. वामन, बौना। उ० १. रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान। (मा० ६।२५)
खरयो-१. खड़ा, २. खड़ा होकर। उ० २. तुलसिदास रघुनाथ कृपा को जोवत पंथ खरयो। (वि० २३९)
खरयौ-दे० 'खरयो'।
खर्वीकरन-तुच्छ करनेवाला, तोड़नेवाला। उ० राहु-रवि-सक्र-पवि-गर्व-खर्वीकरन। (वि० २५)
खल-(सं०)-१. क्रूर, कठोर, २. नीच, अधम, दुष्ट, ३. धोखेबाज़, ठग, ४. खरल, खरल में घोटने की क्रिया। उ० १. श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरिलोक-गत नाम बल बिपुल मति मलिन-परसी। (वि० ४६) खलउ-खल भी, दुष्ट भी। उ० खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। (मा० (१।७।२) खलनि-खलों के लिए, दुष्टों को। उ० रघुबर की रति सज्जननि सीतल, खलनि सुताति। (दो० १८४) खलन्ह-दुष्टों के, खलों के। उ० खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। (मा० ७।३९।२) खलहु-१. ऐ खलो, दुष्टो, २. खल भी। उ० १. खलहु जाहु कहँ मोरें आगे। (मा० ६।६७।४) खलानां-(सं०)-दुष्टों के। उ० खलानां दंड-कृद्योऽसौ शंकरःशं तनोतु मे। (मा० ६।१। श्लो० ३) खलो-खल भी, दुष्ट भी।
खलई-दुष्टता, पाजीपन। उ० सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है। (वि० १३९)
खलक-(अर० ख़लक़)-संसार, सृष्टि। उ० कियो कलि-काल कुलि खलल खलक ही। (क० ७।९८)
खलतो-खल या खरल में डालकर घोंट डालता। कूटता। उ० रावन सो रसराज सुभट-रस सहित लंक खल खलतो। (गी० ५।१३)
खलल-(अर० ख़लल)-गड़बड़, बाधा, विघ्न, अस्त-व्यस्तता। उ० दे० 'खलक'।
खलाई (१)-दुष्टता, खलता। उ० कान्ह कृपालु बड़े नत-पालु, गए खल खेचर खीस खलाई। (क० ७।१३१)
खलाई (२)-(अर० ख़ाली)-१. खाली करके, रिक्त करके,

२. खलाकर, गड्ढा बनाकर, पचका कर। खलाय–खलाकर, धँसाकर, गहराकर। उ० तब लौं उबैने पायँ फिरत पेटै खलाय। (क० ७।१२५) खलाये–१. पचकाए, नीचे की ओर धँसाए, २. पचकाकर, नीचे की ओर धँसाकर। खलायो–गहरा किया, नीचे की ओर धँसाया, पचकाया। मु० पेट खलायो–अपने को भूखा प्रकट किया। उ० महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु-खिनु पेट खलायो। (वि० २७६)

खलु–(सं०)–१. एक निश्चयसूचक अव्यय, निश्चय, २. प्रार्थना, ३. नियम, ४. प्रश्न, ५. निषेध। उ० १. आजु करउँ खलु काल हवाले। (मा० ६।६०।४)

खलेल–(सं० खलि + तैल)–तेल की मैल, खली आदि का तेल में मिला भाग। उ० सुख सनेह सब दियो दसरथहि खरि खलेल थिरथानी। (गी० १।४)

खवास–(अर० ख़वास)–नौकर, राजाओं आदि के यहाँ कपड़ा पहनाने, पान आदि लगाने के लिए रक्खे हुए नौकर। उ० पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को। (क० ७।१३५)

खस (१)–(सं०)–गढ़वाल के आस-पास प्राचीन काल में रहनेवाली व्रात्य क्षत्रियों से उत्पन्न एक जाति। उ० कोल, खस, भिल्ल जमनादि खल राम कहि नीच ह्वै ऊँच पद को न पायो। (वि० १०६)

खस (२)–(फा० ख़स)–एक घास जिसकी जड़ सुगंधित होती है।

खस (३)–(प्रा० खस)–गिर पड़ा, सरक पड़ा। खसत–खसकता है, गिर पड़ता है, सरक जाता है। उ० पट उड़त भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं। (गी० ७।१६) खसि–खसक, सरक, गिर। उ० मोर कठोर सुभाय, हृदय खसि आयउ। (पा० ४६) खसी (१)–सरकी, खसकी, नीचे आई। उ० खसी माल मूरति मुसुकानी। (मा० १।२३६।३) खसे–गिर पड़े, गिरे। उ० डोलत धरनि सभासद खसे। (मा० ६।३२।२) खसेउ–दे० 'खसेऊ'। खसेऊ–खसका, गिर पड़ा। उ० जब ते श्रवनपूर कहि खसेऊ। (मा० ६।१४।३) खसै–गिरे, खसके। उ० न्हात खसै जनि बार, गहरु जनि लावहु। (जा०३२) मु० बाल खसै–थोड़ी हानि हो। उ० दे० 'खसै'।

खसम–(अर० ख़स्म)–१. स्वामी, मालिक, २. आकाश, सूक्ष्म। उ० लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के। (क० ७।२४)

खसाई–(प्रा० खस)–फेंकना, नष्ट करना, बर्बाद करना। उ० मीचु बस नीच सोऊ चहत खसाई है। (क० ७।१८१) खसैहौं–फेंकूँगा, गिरने दूँगा, जाने दूँगा। उ० पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-कर तें न खसैहौं। (वि० १०५)

खसी (२)–(अर० ख़ासा)–अच्छी, सुंदर, बढ़िया।

खाँगि–कमी, घाटा। खाँगे–कमी के लिए, न्यूनता के लिए। उ० राखौं देह नाथ केहि खाँगें। (मा० ३।३१।४)

खाँगिहै–(सं० खंज)–कम होगा, घटेगा। उ० तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै। (वि० ७०) खाँगो–कमी हो गई है, कमी है। उ० माँगो फिरै कहै माँगतो देखि "न खाँगो कछू जनि माँगिए थोरो"। (क० ७।१५३)

खाँचि–(सं० खच्)–खींचकर। खाँची–१. खींचा, बनाया, २ खींचकर। उ० २. पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। (मा० २।२१।४) खाँचो–खींचो। उ० स्वामि सहित सबसों कहौं सुनि गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो। (वि० २७७)

खाँड़ (१)–(सं० खंड)–कच्ची चीनी, शक्कर। उ० अथमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ। (मा० १।२७५)

खाँड़ (२)–(सं० खड्ग)–एक प्रकार की तलवार। उ० दे० 'खाँड़ (१)'। खाँड़े–तलवार के। उ० एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। (मा० २।१६१।३)

खाइ–(सं० खादन)–१. खाकर, भोजन करके, २. भोजन किया, ३. खा जायगा। उ० ३. धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। (मा० २।३८।२) खाई (१)–१. खाई हुई, २. खाया, भोजन किया, ३. खाकर। उ० २. तहँ बसि कंद मूलफल खाई। (मा० २।१२४।२) खाउँ–१. खाता हूँ, २. खाऊँ। उ० १. जूठनि परइ अजिर महँ, सो उठाइ करि खाउँ। (मा० ७।७५ क) खाउ–१. खाये, खा जाय, २. खाओ, भक्षण करो। उ० मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ। (वि० १००) खाएसि–खाया, भोजन किया। उ० फल खाएसि तरु तोरैं लागा। (मा० ५।१८।१) खात (१)–१. खाता है, भोजन करता है, २. खाते हुए। उ० २. चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु। (मा० २।२२२) खाती–खा जाती, भक्षण करती, खाती है। उ० खाती दीप मालिका ठठाइयत सूप हैं। (क० ७।१७१) खातेउँ–खाता, खा डालता। उ० पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। (मा० ६।२४।५) खातो–१. खाता, २. खाना पड़ता। उ० २. बाजीगर के सूमज्यों, खल खेह न खातो। (वि० १५१) खाब–खा लेंगे, खायेंगे। उ० सो भनु मनुज खाब हम भाई। (मा० ६।६।३) खायउँ–खाया, खाये। उ० खायउँ फल प्रभु लागी भूखा। (मा० ५।२२।२) खायगो–खा जायगा, भक्षण करेगा। उ० ह्वैहै बिष भोजन जो सुधा सानि खायगो। (वि० ६८) खाया–भक्षण किया, खा लिया। उ० चिंता साँपिनि को नहिं खाया। (मा०७।७१।२) खाये–खाया, भोजन किया। खायो–खाया, खा लिया। उ० खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि। (ह० ३५) खायौ–दे० 'खायो'। खावा–खाना, भोजन करना, भक्षण करना। उ० पुरोडास चह रासभ खावा। (मा० ३।२८।३) खाहिं–खाते हैं, खा लेते हैं। उ० अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं। (मा० १।७६) खाहिगो–खायगा, भोजन करेगा। उ० आए नाथ! भागे तें खिरिरि खेह खाहिगो। (क० ६।२३) खाहीं–खाते हैं, भोजन करते हैं। उ० जौं ए कंद मूल फल खाहीं। (मा०२।१२०।१) खाहु–खाओ, भोजन करो। उ० रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु। (मा० ५।१७) खाहू–दे० 'खाहु'। उ० जो मन भाव मधुर कछु खाहू। (मा० २।५३।१)

खाई–खाइँयाँ। उ० खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव। (मा० १।१७८ क) खाई (२)–(सं०

खानि)-नगर या किले के चारों ओर रक्षा के लिए खोदी गई नहर ।

खाको-(फा० ख़ाक)-ख़ाक भी, धूल भी, राख भी । उ० बालिस बासी अवध को बूझिए न खाको । (वि० १५२)

खाज-(सं० खर्जु)-खुजली, एक रोग जिसमें शरीर खुजलाती है । उ० नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़ में की खाज । (वि० २१८) मु० कोढ़ की खाज-दुःख में दुःख बढ़ानेवाली वस्तु ।

खाजी-(सं० खाद्य)-भोजन, खाद्य पदार्थ । मु० खाजी खाइ-मुँहकी खाकर । उ० सानुज सगन ससचिव सुजोधन भए मुख मलिन खाइ खल खाजी । (कृ० ६१)

खाटी-(सं० कटु) खट्टा, अम्ल के स्वाद का । खाटी मीठी-खट्टा-मीठा, भला-बुरा । उ० रहि गए कहत न खाटी मीठी । (मा० १।२६०।३)

खात (१)-(सं०)-१. खोदना, खोदाई, २. तालाब, ३. कुँआ, ४. गर्त्त, गड्ढा ।

खान (१)-(सं० खद्)-१. खाना, भोजन करना, खाने की क्रिया, २. खाने की सामग्री । उ० १. मुखिआ मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक । (मा० २।३१५)

खान (२)-(सं० खानि)-वह स्थान जहाँ से धातु, पत्थर आदि खोदकर निकाले जायँ । खदान ।

खान (३)-(सं० काङ)-सरदार, उमराव ।

खानि-(सं०)-१. उत्पत्ति स्थान, खान, २. खज़ाना, भंडार, ३. ओर, तरफ़, ४. प्रकार, ढंग । उ० १. तुलसी कपि की कृपा-बिलोकनि खानि सकल कल्यान की । (वि० ३०)

खानिक-खानि का, खदान का, खानि । उ०गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक । (मा० १।१।४) खानि चारि-चार प्रकार के जीव । स्वेदज, अंडज, पिंडज तथा उद्भिज । उ० खानि चारि संतत अवगाही । (वि० १३६)

खानी-१. खान, खदान, १. भंडार, घर । उ० २. रुचिर हरिसंकरी-नाम मंत्रावली द्वंद्वदुख हरनि आनंद खानी । (वि० ४६)

खारा-(सं० क्षार) १. क्षार या नमक के स्वाद का, २. कड़ुआ, कटु, अरुचिकर, बुरा । उ० १. रूख कलपतरु सागरु खारा । (मा० २।११९।२) खारे-दे० 'खारा' । उ० २. व्योम रसातल भूमि भरे नृप क्रूर कुसाहिब सें तिहुँ खारे । (क० ७।१२)

खारो-दे० 'खारा' । उ० १. हारथो हिय, खारो भयो भूसुर-डरनि । (वि० २४७)

खाल-(सं० क्षाल) मानव-शरीर या वृक्ष आदि का ऊपरी आवरण, चमड़ा, छाल । उ० खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई । (मा० ७।१२१।६)

खालें-(अ० ख़ाली) गड्ढे में, नीचे गहराई में । उ० चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें । (मा० २।३१५।३)

खास-(अर० ख़ास)-१. विशेष, मुख्य, प्रधान, २. आत्मीय, प्रिय, ३. स्वयं, खुद । उ० १. खास दास रावरो, निवास तेरो तासु उर । (ह० २४)

खासो-(अर० ख़ासा) अच्छा, भला, उमदा । उ० खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बालको । (क० ७।१३५)

खिझाइ-(सं० खिद्यते, प्रा० खिज्जइत) चिढ़ाकर, दिक़ करके, परेशान कर । उ० यह तो मोहिं खिझाइ कोटि बिधि उलटि बिबादन आइ अगाऊ । (कृ० १२) खिझावतो-चिढ़ाता, खिझाता, अप्रसन्न करता । उ० तो हौं बार-बार प्रभुहिं पुकारि कै खिझावतो न । (वि० २५०) खिझावै-चिढ़ावें, अप्रसन्न करें । उ० जरै बरै अरु खीझि खिझावै । (वै० ५७)

खिझे-१. क्रोधित हुए, २. क्रोध करने, खीझने । उ० १. किए निहारो हँसत, खिझे तें डाटत नयन ऩरेरे । (कृ०३)

खिन (१)-(सं० क्षीण)-दुर्बल, पतला, बलहीन, क्षीण । उ० उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख । (दो० ३११)

खिन (२)-(सं० क्षण)-समय का एक छोटा भाग, क्षण, लमहा ।

खिनु-दे०'खिन(२)' । मु०खिनु खिनु-प्रत्येक क्षण, हरदम, सर्वदा । उ० महिमा मान प्रियप्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो । (वि० २७६)

खिन्न-(सं०)-१. उदास, चिंतित, २. थकित, ३. दीन, असहाय । उ० ३. बंदउँ सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न । (मा० १।१८)

खिरिरि-(ध्व०) खरोचकर, खुरचकर, खोदकर । उ० दे० 'खाहिगो' ।

खिलवार-(सं० केलि)-क्रीड़ा, खेल, तमाशा, दिल्लगी । उ० संपति चकई, भरत चक, मुनि आयसु खिलवार । (दो० २०६)

खिलाये (१)-(सं० केलि) खेलाया, खेल में नियोजित किया । उ० जियत खिलाये राम, रामबिरह तनु परिहरेउ । (दो० २२१)

खिलाये (२) भोजन कराए, खाना खिलाए ।

खिलोना-दे० 'खेलोना' ।

खिसिआइ-(सं० क्लिष्ट)-रुष्ट होकर, क्रुद्ध होकर । उ० जगदाधार शेष किमि उठै चलै खिसिआइ । (मा० ६।५४) खिसिआई-दे० 'खिसिआइ' । उ० छाड़िसि तीव्र सक्ति खिसिआई । (मा० ६।९१।२) खिसिआन-खिसिआया हुआ, गुस्से में । उ० परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन । (मा० ५।९) खिसिआना-खिसिआया हुआ, रुष्ट होकर । उ० तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना । (मा० ६।९२।२) खिसिआनि-नाराज़, खिसियायी हुई । उ० तब खिसिआनि राम पहिं गई । (मा० ३।१७।१०) खिसियाना-दे० 'खिसिआना' ।

खीजन-दे० 'खीझन' ।

खीझ-खीझना, रुष्ट होना । उ० खीझहु में रीझबे की बानि । (क० ७।१३६)

खीझत-१. क्रोधित होता, क्रोधित होता है, खीजता, २. खीझते हुए, रुष्ट होते हुए । उ० १. ढारो बिगारो मैं काको कहा ? केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो । (ह० १६) खीझति-खीझती है, रुष्ट होती है । उ० खीझति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनाद । (क० ५।१२) खीझन-खीझने, रुष्ट होने । उ० निज सारथि सन खीझन लागा । (मा० ६।१००।४) खीझि-१. खीझना, रुष्ट होना, रोष, २. रुष्ट होकर । उ० १. रीझि आपनी बूझि पर, खीझि

बिचार-बिहीन। (दो० ४८४) खीझिबे-खीझने, अप्रसन्न होने। उ० खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु। (वि० २५२) खीझिय-खीझिये, अप्रसन्न होइए। उ० काहे को खीझिय रीझिय पै, तुलसीहु सोहै बलि सोइ सगाई। (क० ७।६३) खींझे-१. चिढ़े, रुष्ट हुए, २. नाराज़ होने पर। उ० २. रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम रे! (वि० ७१)

खीन-(सं० क्षीण)-पतला, दुर्बल, क्षीण, कमज़ोर, असहाय। उ० निज निज अवसर सुधि किए बलि जाउँ, दास आस पूजि है खासखीन की। (वि० २७८)

खीर-(सं० क्षीर)-१. दूध, २. दूध में पकाया हुआ चावल। उ० १. खीर नीर बिबरन गति हंसी। (मा० २।३१४।४) खीरै-खीर को, दूध को। उ० उपमा राम-लखन की प्रीति को क्यों दीजै खीरै-नीरै। (गी० ६।१५)

खीरु-दे० 'खीर'। उ० १. सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। (मा० २।२३२।३)

खीस (१)-(सं० किष्क) नष्ट, बरबाद। उ० बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत। (क० ६।१०)

खीस (२)-(सं० कीश)-ओठ से बाहर के दाँत।

खीस (३)-(फा० खिसारा)-घाटा, हानि, कमी, न्यूनता।

खीस (४)-(फा० कीसा)-थैला, थैली, जेब।

खीसा-दे० 'खीस'।

खुआर-(फ़ा० ख्वार)-बर्बाद, दुर्दशा-ग्रस्त, खराब, बुरा। उ० बचन बिकार, करतबउ खुआर, मन, बिगत-बिचार कलि मल को निधानु है। (क० ७।६४)

खुआरी-(फा० ख्वारी)-१. बरबादी, ख़राबी, नाश, २. अनादर, अप्रतिष्ठा।

खुआरू-दे० 'खुआर'। उ० हमहि सहित सबु होत खुआरू। (मा० २।३०५।३)

खुटानी-(सं० खुड्)-समाप्त हो गई, खतम हो गई। उ० सो जानइ जनु आइ खुटानी। (मा० १।२६६।२)

खुन -(सं० खिन्नमनस्)-क्रोध, गुस्सा, रिस।

खुनसात-क्रोधित होते हैं, गुस्सा करते हैं। उ० खात खुनसात सौंधे दूध की मलाई है। (क० ७।७४)

खुनिस-दे० 'खुनस'। उ० खेलत खुनिस न कबहूँ देखी। (मा० २।२६०।३)

खुनुस-दे० 'खुनस'।

खुर-(सं०)-१. चौपायों के पैर का कड़ा नाखून, सुम, २. खुर का भूमि पर चलने से बना हुआ चिह्न। खुरनि-१. खुरों में, २. खुर के बने निशानों में। उ० २. कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि। (ह० ३८)

खुलहिं-(सं० खुल्)-१. खुल जाते हैं। २. निकल आते हैं। स्पष्ट हो जाते हैं। ३. खुल जायगा। उ० ३. जो कछु करिय सो होइ सुभ, खुलहिं सुमंगल खानि। (प्र० १।१।५) खुलहि-१. खुलती है, २. खुल जायेगी, खुले, ३. सुन्दर लगती है, सुन्दर लगे। उ० २ महरि महर जीवहिं सुख-जीवन खुलहि मोद मनि खानी। (कृ० ४८) खुलि-खुलकर, स्वतंत्रता के साथ बिना डर-भय के। उ० जो दससीस महीधर-ईस को, बीस भुजा खुलि खेलन हारो। (क० ६।३८) खुली-१. खुल गई, उन्मुक्त हुई, २. सुशोभित हुई, फबी। उ० २. पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली। (गी० १।३०) खुलेउ-१. खुले, खुल गए, २. सुन्दर लगे, फबे। उ० १. भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु। (मा० २।२२३) खुलैगो-खुलेगा, उन्मुक्त होगा। उ० तुलसी को खुलैगो खजानो खोटे दाम को। (क० ७।७०)

खुलावौं-खुलवाऊँ। उ० बाल-बिनोद-मोद-मंजुलमनि किलकनि खानि खुलावौं। (गी० १।१५)

खुवार-दे० 'खुआर'।

खूट (१)-(सं० खंड)-छोर, कोना, खंड, टुकड़ा।

खूँट (२)-(सं० क्षोड)-१. लकड़ी का छोटा टुकड़ा जो कपड़ा टाँगने या पशु बाँधने के लिए गाड़ा जाता है। २. फसल काट लेने के बाद खेत में लगा हुआ डंठल का निम्न भाग, खूँटी। उ० २. देखि अति लागत अनंद खेत खूँट सो। (क० ७।१४१)

खूँद-(?)-घोड़े की उछल-कूद की चाल, थोड़ी जगह में इधर-उधर घोड़े का चलते रहना। उ० तुलसी जौं मन खूँद सम कानन बसहु कि गेह। (दो० ६२)

खूब-(फा० खूब)-अच्छा, भला, उमदा, पूर्ण। उ० कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है। (क० ७।१०८)

खूसर-(सं० कौशिक)- उल्लू, घुग्घू। उ० राजमराल के बालक पेलि कै, पालत लालत खूसर को। (क० ७।१०३) खूसरो-खूसर भी, उल्लू भी। उ० सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो। (क० ७।१६)

खे-(सं० ख)-१. आकाश में, २. आकाश के। उ० १. अपगत खे सोई अवनि सो पुनि प्रगट पताल। (स० १६०) २. गोखग, खेखग, बारिखग तीनों माहिं बिसेक। (दो० ५३८)

खेखग-आकाश के पक्षी। उ० दे० 'खे'।

खेचरं-दे० 'खेचर'। उ० १. डाकिनी-शाकिनी-खेचरं-भूचरं यंत्रमंत्र-भंजन, प्रबल कल्मषारी। (वि० ११) २. बानरबाज बढ़े खलखेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से। (ह० १८) खेचर-(सं०)-१. वह जो आसमान में चले, २. पक्षी, ३. राक्षस, ४. विमान, ५. पवन, ६. देवता, ७. तारा, ८. शिव, ९. पारा।

खेत-(सं० क्षेत्र)-१. रणक्षेत्र, लड़ाई का मैदान, २. पुण्य भूमि, ३. खेती करने की भूमि, ४. योनि, ५. चौरस, बराबर, समतल। उ० १ हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। (मा० ६।३५।६) मु० खेत के धोषे-फसल को हानि पहुँचानेवाले जानवरों को डराने के लिए आदमी के स्वरूप के बने पुतले जो खेतों में खड़े किए रहते हैं। इनका प्रयोग ऐसे लोगों के लिए किया जाता है जो देखने भर के लिए हों और कुछ कर न सकें। उ० परसुराम से सूर-सिरोमनि फल में भए खेत के धोषे। (गी० ५।१२)

खेता-दे० 'खेत'। उ० १. सानुज निदरि निपातउँ खेता। (मा० २।२३०।४)

खेद-(सं०)-१. अप्रसन्नता, दुःख, रंज, कष्ट, २. थकावट। उ० १. भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे। (मा० ७।१३। छं० २) २. जिन्हहिं न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु। (मा० १।१४ क)

खेदा–दे० 'खेद'। उ० १. मम प्रसाद नहिं साधन खेदा। (मा० ७।८४।४)
खेम–(सं० क्षेम)–कुसल, क्षेम, रक्षा। उ० खेम कुसल जय जानकी, जय जय जय रघुराय। (प्र० ४।४।३)
खेरे–(सं० खेट)–छोटा गाँव, दो चार गाँवों का पुरा। उ० बैरष बाँह बसाइए पै, तुलसी-घरु ब्याध अजामिल खेरे। (क० ७।६२)
खेरो–दे० 'खेरे'। उ० आप आप को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो। (वि० १४३)
खेल–(सं० केलि)–१. कौतुक, तमाशा, २. अत्यंत तुच्छ, हलका या बिना श्रम का काम, ३. काम-क्रीड़ा, ४. कोई अद्भुत कार्य, ५. लड़कों का खेल, तमाशा, ६. शिकार। उ० ५. हारेहुँ खेल जितावहिं मोही। (मा० २।२६०।४) खेलही–खेल ही में, बिना श्रम के। उ० उपजी, सकेलि, कपि, खेलही उरबारिए। (ह० २४)
खेलउँ–१. खेलूँ, २. खेलता, खेलता था। उ० २. खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। (मा० ७।११०।२) खेलत–१. खेलते हैं, २. खेलता हुआ, ३. खेल में, खेलने में। उ० ३. खेलत खुनिस न कबहूँ देखी। (मा० २।२६०।३) खेलनि–१. खेलना, खेलने का भाव २. खेलों में। उ० १. परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि। (गी० १।२५) खेलहिं–१. खेल में, खेल ही में, बिना श्रम के, २. खेलते हैं। उ० २. खेलहिं खेल सकल नृप लीला। (मा० १।२०४।३) मु० खेलहिं खेल–खेल ही खेल में, बिना परिश्रम के, हँसी-हँसी में। खेलहीं–१.खेलते हों, क्रीड़ा करते हों, २. खेल में ही, बिना परिश्रम के ही। उ० १. प्रह्लाद पति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं। (मा० ६।८१। छं० २) खेलि–१. खेल करके, २. खेल, तमाशा। उ० १. खेलि बसंत कियो प्रभु मज्जन सरजू नीर। (गी० ७।२१) खेलिबे–खेलने, विनोद करने। उ० खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं। (वि० २३१) खेलिहहिं–खेलेंगे। उ० खेलिहहिं भालु कीस चौगाना। (मा० ६।२७।३) खेलिहौ–खेलोगे। उ० छगन-मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुक ठुमुक कब धैहौ। (गी० १।८) खेलु–१. खेल, तमाशा, २. खेलो, खेल करो। उ० २. तुलसी दुइ महँ एक ही खेल, छाँड़ि छल, खेलु। (दो० ७६)
खेलक–खेल करनेवाले, खिलाड़ी। उ० ब्योम बिमाननि बिबुध बिलोकत खेलक पेखक छाँह छये। (गी० १।४३)
खेलन–१. खेलने के लिए, शिकार करने के लिए, २. खेल की वस्तु। उ० १. पुरुष सिंघ बन खेलन आए। (मा० ३।२२।२)
खेलवार–१. खेल करनेवाला, खिलाड़ी, २. शिकारी, ३. खेल, तमाशा, मन-बहलाव, ४. शिकार। उ० २. संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार। (मा० २।२१५)
खेला–दे० 'खेल'। उ० ४. जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। (मा० ६।५१।४)
खेलाइ–दे० 'खेलाई'। खेलाइ खेलाई–खेला खेलाकर, तमाशा कर करके। उ० हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। (मा० ६।३५।६) खेलाई–१. खेलाकर, खेल करवाकर, २. खेल करवाते। खेलाउब–१. खेलाना, खेल कराना, खेलाऊँगा। उ० २. तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। (मा २।१३६।४) खेलावत–१. खेलाते समय, खेलाने में, खेलाते हैं। उ० १. जुआ खेलावत कौतुक कीन्ह सय निन्ह। (जा० १६८) खेलावहु–खेलाइए, खेल करवाइए उ० अब जनि राम खेलावहु एही। (मा० ६।८६।३ खेलावा–खेल खेलाया। उ० एहि पापिहि मैं बहु खेलावा। (मा० ६।७६।७)
खेलारू–खेलाड़ी, खेलनेवाला। उ० चढ़ी चंग जनु खैं खेलारू। (मा० २।२४०।३)
खेलोना–दे० 'खेलौना'।
खेलौना–(सं० केलि)–लड़कों को खेलने के लिए मिट्टी आ की बनी छोटी-छोटी सुन्दर चीज़ें। खेलवाड़। खेलने लिए बनी मूर्ति। उ० देखि खेलौना किलकहीं। (गी १।१६)
खेवाँ–खेवे में, बार में (२)'। उ० २. प्रात पार भए एक (मा० २।२२१।२)
खेवा (१)–(सं० क्षेपण, प्रा० खेवण, हिन्दी खेना)– नाव का किराया, उतराई।
खेवा (२)–(सं० क्षेप)–१. एक बार में जितना, माल जाया जा सके, २. दफ़ा, बार, समय।
खेवैया–नाव खेनेवाला, मल्लाह। उ० जहँ धार भयंक वार न पार न बोहित नाव, न नीक खेवैया। (क ७।५२)
खेसंभवं–आकाश से उत्पन्न।
खेस–(?)–पुरानी रुई का बना खुरदुरा कपड़ा, मो कपड़ा। उ० साथरी को सोइबो, ओढ़िबो झूने खेस को (क० ७।१२५)
खेह–(?)–धूल, मिट्टी, राख। उ० दे० 'खाहिगो' मु० खेह-खाहिगो–दुर्दशा-ग्रस्त होंगे, बुरी दशा में होंगे उ० दे० 'खाहिगो'।
खेहर–(?)–राख, धूल, भस्म। उ० मोद न मन, त पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ। (वि० १००)
खैंचत–१. खींचते हैं, २. खींचते हुए। उ० २. लेत चढ़ वत खैंचत गाढ़े। (मा० १।२६१।४) खैंचहिं–खींचते खींच रहे हैं। उ० खैंचहिं गीध आँत तट भए। (मा ६।८८।३) खैंचहु–खींचो, खींचिए। उ० खैचहु मिटै मं संदेहू। (मा० १।२८४।४) खैंचि–खींचकर। उ० खैं धनुष सर सत संधाने। (मा० ६।७०।४)
खैबो–१. खा लेना, २. खाओगे। उ० १. माँगि कै खै मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ। (क ७।१०६) खैहौं–खाऊँगा। उ० सिगरियै हौं हीं खैहौं, ब दाऊ को न देहौं। (कृ० २)
खोंच–(सं० खर्ज)–किसी नुकीली चीज़ से छिलने आघात, काँटे आदि से लगकर वस्त्र का तिकोना जाना। उ० तुलसी चातक प्रेमपट भरतहु लगी न खोंच (दो० ३०२)
खोंची–(?)–वह थोड़ा अन्न, फल आदि जो भिखमंगों देते हैं। उ० खायो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया (वि० ३३)

खोइ-(सं० क्षेपण)-खोकर, गँवाकर, दूरकर, नष्ट कर, फेंककर। उ० पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि। (मा० ५।२६) खोई-१. खोकर, गँवाकर, २. खोया, गँवाया। उ० २. रथ सारथी तुरग सब खोई। (मा० ६।५१।२) खोए-खोने, त्यागने, गँवाने। उ० खोए राखे आपु भल, तुलसी चारु बिचार। (दो० २५२)

खोज-(प्रा०क्षखोज्ज=पदचिह्न)-१. तलाश, खोजने की क्रिया, अनुसंधान, २. पता, निशान, चिह्न, गाड़ी या पैर आदि का चिह्न। उ० २. सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ। (मा०२।८५) मु०खोज मारि-चिह्न मिटा कर। उ० खोज मारि रथु हाँकहु ताता। (मा० २।८५।४)

खोजइ-१. खोजते हैं, ढूढ़ते हैं, २. खोजेंगे, तलाश करेंगे। उ० १. खोजइ सो कि अग्य इव नारी। (मा० १।५१।१) खोजत-१. खोजते हैं, ढूढ़ रहे हैं, २. खोजते-खोजते, खोजते हुए, ३. खोज करने पर। उ० २. खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत। (मा० १।१५७) खोजन-१. खोजना, २. खोजने, तलाश करने। उ० २. सुग्रीवहि तब खोजन लागा। (मा० ६।६६।२) खोजहु-खोजो, तलाश करो। उ० जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। (मा० ४।२२।४) खोजि-खोजकर। उ० तौ जमभट साँसति-हर हम से बृषभ खोजि-खोजि नहते। (वि० ९७) खोजौं-खोजूँ, ढूढ़ूँ। उ० आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। (मा० १।१५०।१)

खोट-(सं०)-१. दुर्गुण, दोष, बुराई, २. बुरा, कपटी, दोषयुक्त, खोटा। उ० २. छोट कुमार खोट अति भारी। (मा० १।२७८।३)

खोटा-दुर्गुणी, बुरा, दुराचारी। खोटी-दुष्टा, बुरी, ऐबी। उ० सुनि रिपु हन लखि नख सिख खोटी। (मा० २।१६३।४) खोटे-बुरे, खरे के उलटे, दुष्ट, कलुषित। उ० तुलसी से खोटे खरे होत ओट नाम ही की। (क० ७।१३) खोटेउ-खोटे भी, खराब भी, दुष्ट भी। उ० नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े। (क० ७।१२७)

खोटाई-नीचता, दुष्टता, बुराई, बुरा। उ० अहह बंधु तें कीन्हि खोटाई। (मा० ६।३६।२)

खोटो-बुरा, दुष्ट। उ० राम सों खरो है कौन ? मो सों कौन खोटो ? (वि० ७२) खोटोखरो-भला बुरा, जैसा कुछ भी। उ० तुम से सुसाहिब की ओट जन खोटो खरो, काल की करम की कुसाँसति सहत। (वि० २२६)

खोड़स-(सं० षोडश)-सोलह, १६।

खोय (१)-(सं० क्षेपण)-१. खोकर, गँवाकर, २. खोया, गँवाया, खो दिया। खोयो-खो दिया, गँवा दिया। उ० खोयो सो अनूप रूप स्वप्नहू परे। (वि० ७४) खोवत-खोता है, गँवाता है। उ० भयो सुगम तो को अमर-अगम तनु समुझि धौं कत खोवत अकाथ। (वि० ८४) खोवै-१. खो दे, गँवा दे, २. खोना, गँवाना। उ० २. सो खोवै चह कृपानिधाना। (मा० ७।६२।४) ख्वैहौं-खोऊँगा, गँवाऊँगा। उ० ख्वैहौं न पठावनी के ह्वैहौं न हँसाइ कै ? (क० २।६)

खोय (२)-(फ़ा० ख़ू)-आदत, बान।

खोरि (१)-(सं० क्षालन)-नहाकर, स्नान करके। उ० तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै। (क० ६।५०)

खोरि (२)-(सं० खोर)-१. ऐब, दोष, नुक्स, बुराई, २. कोर-कसर, कमी, न्यूनता। उ० १. कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं। (मा० १।२७४।२)

खोरि (३)-(?)-गली, पतली सड़क, रास्ता। उ० खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चक डोरि। (गी० १।४१)

खोरि (४)-(सं० क्षौर)-मस्तक पर लगा चंदन का त्रिपुंड, टीका।

खोरि (५)-सं० खुड)-खोलकर। खोरौं-१. खोलूँ, २. स्नान करूँ, नहाऊँ, ३. तोड़ूँ, खंडित करूँ। उ० २. आयसु भंग तें जौ न डरौं सब भींजि सभासद सोनित खोरौं। (क० ६।१४)

खोरी-दे० 'खोरि (४)'। उ० तन अनुहरत सुचंदन खोरी। (मा० १।२१६।२)

खोरे-१. दुर्गुणी, दोषी, ऐबी, २. लँगड़े, ३. नहाए, स्नान किए। दे० 'खोरि'। उ० ३. स्यामल तनु स्रम-कन राजत ज्यों नव घन सुधा-सरोवर खोरे। (गी० ३।२)

खोलि-(सं० खुड)-खोलकर, आवरण हटाकर, मुक्तकर। उ० कालि की बात बालि की सुधि करि समुझिहि ता हित खोलि झरोखे। (गी० ५।१२) खोलिए-उन्मुक्त कीजिए, स्वतंत्र कीजिए। मु० रसना खोलिए-बुरा भला कहिए, क्रोध में गाली दीजिए। उ०रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिय तरवारि। (दो० ४३५) खोलिय-खोलिए, अनावरण कीजिए। खोली-१. उन्मुक्त की, खोल दी, २. खोलकर। उ० १.कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली। (मा० २।२८।४) खोलैं-खोलते हैं, निकालते हैं। उ० बोलैं खोलैं सेल असि चमकत चोखे हैं। (गी० १।६३)

खोह-(सं० गुहा)-गुफा, कंदरा। उ० लै राखेसि गिरि-खोह महुँ मायाँ करि मति भोरि। (मा० १।१७१)

खोहा-दे० 'खोह'। उ० देवन्ह तके मेरुगिरि खोहा। (मा० १।१८२।३)

खोही-(सं० खोलक)-पत्तों का बना हुआ छाता। उ० लैखिये लसति नव पल्लव खोही। (गी० २।२०)

खौंदि-(सं० खुदद)-खोदकर, नष्ट-भ्रष्ट कर, उथल-पुथल कर। उ० भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं। (क० ५।१५)

खौरि-(सं० क्षौर)-मस्तक पर लगा चंदन का टीका, त्रिपुंड। उ० कलित कंठ मनि-माल, कलेवर चंदन खौरि सुहाई। (गी० १।५०।३)

खौरी-दे० 'खौरि'।

ख्यात-(सं०)-प्रसिद्ध, विदित, मशहूर। उ० ख्यात सुअन तिहुँ लोक महँ महा-प्रबल अति सोइ। (स० ५३४)

ख्याल (१)-(अर० ख़्याल)-१. ध्यान, २. अनुमान, अंदाज़, ३. विचार, भाव, सम्मति, ४. लिहाज़ आदर, ५. एक विशेष प्रकार का गान जिसमें अनेक राग और रागिनियाँ होती हैं। उ० ३. जौ जमराज काज सब परिहरि यही ख़्याल उर अनिहैं। (वि० ९५)

ख्याल (२)-(सं० केलि)-खेल, क्रीड़ा, हँसी, दिल्लगी।

उ० कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत-फल, ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी। (क० ६।२७)

ख्याली-खिलाड़ी, कौतुकी, तमाशा करनेवाला। उ० ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा है। (क० ७।१५५)

ग

गंग-दे० 'गंगा'। उ० तो बिनु जगदंब गंग ! कलिजुग का करित ? (वि० १९) गंगजनक-विष्णु, विष्णु के राम, कृष्ण आदि अवतार। उ० गंगजनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपट्ट बटु बलि-छरन। (वि० २१८) विशेष-गंगा विष्णु के चरणों से उत्पन्न मानी जाती है।

गंगा-(सं०)-गंगा नदी जो हिमालय से निकलकर १५६० मील बहकर हिमालय की खाड़ी में गिरती है। हिन्दू इसे अत्यन्त पवित्र मानते हैं, और इसमें स्नान का फल मुक्ति मानते हैं। उ० ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। (मा० १। ९२।२) विशेष-पुराणों के अनुसार गंगा हिमालय और मनोरमा की पुत्री हैं। ये पहले स्वर्ग में थीं। सगर के साठ सहस्र पुत्रों को कपिल मुनि ने भस्म कर डाला तो उन्हें मुक्ति प्रदान करने के लिए दिलीप-पुत्र भगीरथ तप करने लगे। तप के फलस्वरूप गंगा स्वर्ग से चलीं। बीच में शिव ने उन्हें अपनी जटा में धारण कर लिया। गंगा वहाँ से फिर गिरीं तो जह्नु ऋषि ने पी लिया और भगीरथ की प्रार्थना से प्रभावित हो ऋषि ने उन्हें अपने जानु से निकाला। भगीरथ इन्हें ले जाकर सगर-पुत्रों को मुक्ति दिलाने में सफल हुए। गंगा स्वर्ग से नीचे आते समय विष्णु के चरण से निकली थीं अतः विष्णु इनके जनक माने जाते हैं। इन्ही सब आधारों पर विष्णुपदी, विष्णुपुत्री, भागीरथी, जह्नुसुता तथा जाह्नवी आदि इनके नाम हैं। पुराणों के अनुसार गंगा की तीन धाराएँ-आकाश, पृथ्वी और पाताल में हैं। इसी कारण इन्हें त्रिपथगा भी कहते हैं। भीष्म की माता और शांतनु की बड़ी रानी का नाम भी गंगा था। इनसे उत्पन्न होने से कारण ही भीष्म गंगासुत तथा गांगेय आदि कहे जाते हैं।

गंगाधरं-(सं०)-गंगा को धारण करनेवाले, शिव, महादेव। उ० नौमि करुणाकरं, गरल गंगाधरं, निर्मलं, निर्गुणं निर्विकारं। (वि० १२)

गंगेउ-(?) गंगाजल, गंगोदक।

गंगोझ-(सं० गंगोदक)-गंगाजल, गंगा का पानी। उ० सुरसरिगत सोई सलिल, सुरा सरिस गंगोझ। (दो० ६८)

गंगोद-(सं० गंगोदक)-गंगाजल, गंगा का पानी। उ० जिमि सुरसरि गत सलिल बर सुरा सरिस गंगोद। (स० ६१)

गंज (१)-(फ़ा०)-१. खज़ाना, कोष, २. ढेर, समूह, झुंड।

गंज (२)-(सं० गंजन)-नाश करनेवाला।

गजनं-दे० 'गंजन'। उ० १. नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं। (मा० ३।३२।छं० २) गंजन-(सं०)-१.नाश करनेवाला, विजयी, २.अवज्ञा, तिरस्कार, अनादर, ३. नाश करना, चूर-चूर करना। उ० १. जो भव भय भंजन, मुनिमन रंजन, गंजन बिपति बरूथा। (मा० १।१८६।छं० ३)

गंजना-पीड़ा, यातना, कष्ट।

गंजय-गंजन कीजिए, नष्ट कीजिए, नाश करो। उ० हृदि बसि राम काम मद गंजय। (मा० ७।३४।४) गंजा-तोड़ा, नाश किया, चूर-चूर किया। उ० तेहि समेत नृपदलमद गंजा। (मा०५।२१।४) गंजेउ-१.मारा, तोड़ा, नष्ट किया, २. मारा हो, नष्ट किया हो। उ० २. जनु मृग-राज किसोर महा गज गंजेउ। (जा०११६)

गंजनिहार-मारनेवाला, नष्ट करनेवाला। उ० हरष बिषाद न केसरिहि कुंजर-गंजनिहार। (दो० ३८१)

गंजु-दे० 'गंज (१)'। उ० २. हिय हरिनख अद्भुत बन्यों मानों मनसिज मनि-गन-गंजु। (गी० १।१९)

गंड-(सं०)-१. कपोल, गाल, २. कनपटी, ३. गले में पहनने का गंडा, ४. फोड़ा, ५. चिह्न, निशान, लकीर, ६. गाँठ। उ० १. स्रवन कुंडल, बिमल गंड मंडित चपल। (गी० ७।५) गंडमंडल-(सं०)-कनपटी, कान, गाल और आँख के बीच का भाग। उ० ललित गंड मंडल, सुबिसाल भाल तिलक झलक। (गी० ७।४)

गंडकि-(सं० गंडकी)-एक नदी जो नेपाल में है। इसी नदी में पाये जानेवाले काले पत्थर विष्णु के प्रतीक मान कर शालग्राम नाम से पूजे जाते हैं। उ० गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडकि-सिला सुभाय। (दो० ३६२)

गंता-(सं० गंत)-जानेवाला गमन करनेवाला। उ० अघट-घटना-सुघट-विघटन-विकट भूमि-पाताल-जल-गगन-गंता। (वि० २५)

गंध-(सं०)-१. महँक, वास, २. सुगंध, खुशबू, ३. दुर्गंध, बदबू, ४. लेश, अणुमात्र, ५.संस्कार, ६.संबंध। उ० १. बिनु महि गंध कि पावइ कोई। (मा० ७।९०।२) विशेष-न्याय शास्त्र में गंध को पृथ्वी का गुण कहा गया है।

गंधन-(सं० कंदल)-सोना, स्वर्ण। उ० गंधन मूल उपाधि बहु भूखन तन गन जान। (स० ४६०)

गँधरब-दे० 'गंधर्व'।

गंधर्ब-दे० 'गंधर्व'। उ० १. देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब। (मा० १।७ घ)

गंधर्बा-दे० 'गंधर्व'। उ० १. किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। (मा० १।६१।१)

गंधर्व–(सं०)–१. देवताओं का एक भेद। पुराणों के अनुसार ये लोग स्वर्ग में रहते हैं और वहाँ गाने का काम करते हैं। एक बार गंधर्वों ने भरत के ननिहाल केकय देश पर आक्रमण किया। भरत अपने ननिहाल वालों की सहायता के लिए गए और उन्होंने गंधर्वों को मार भगाया। इसी कारण उन्हें गंधर्वों को जीतनेवाला कहा जाता है। २. मृग, ३. घोड़ा, ४. प्रेत, ६. एक जाति जिसकी कन्याएँ गाती और वेश्यावृत्ति करती हैं। ७.विधवा स्त्री का दूसरा पति।
गँभीर–दे० 'गंभीर'।
गंभीर–(सं०)–१. जिसकी थाह जल्दी न मिले, गहरा, अथाह, बहुत, अर्थवाला, २. भारी, घोर, ३. शांत सौम्य, अचंचल, ४. गहन, घना, अगम्य, ५. शिव, महादेव, ६. एक राग। उ० १. गंभीर गर्वघ्न गूढ़ार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता। (वि० ५४)
गँभीरा–दे० 'गंभीर'। उ० ब्रह्मगिरा भै गगन गँभीरा। (मा० १।७४।४)
गँवाइ–(सं० गमन)–गँवाकर, खोकर। उ० गए गँवाइ गरूर पति, धनु मिस हये महेस। (प्र० १।५।५) गँवाई–१.गँवाया, २.गँवाकर, खोकर। उ० १.मध्य बयस धनहेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय। (वि० ८३) गँवायो–गँवाया, बिताया। उ० जनम गँवायो तेरेहि द्वार, मैं किंकर तेरो। (वि० १४६) गँवावै–खोवे, व्यतीत करे। उ० राग द्वेष महँ जनम गँवावै। (वै० २७) गँवावौं–१. खोऊँ, व्यर्थ जाने दूँ, गँवाऊँ, २. गँवाता हूँ। उ० १. जो तनु धनु धरि हरिपद साधहिं जन सो बिनु काज गँवावौं। (वि० १४२)
गँवार–(सं० ग्राम)– गाँव का रहनेवाला, असंस्कृत, मूर्ख, बेसमझ। उ० गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल। (दो० ५५६)
गँवारि–गँवार का स्त्रीलिंग। दे० 'गँवार'। गाँव की रहनेवाली, बे समझ। उ० जुगुति धूमबघारिबे की समुझिहैं न गँवारि। (कृ० ५३)
गँवारी–दे० 'गँवारि'।
गँस–(सं० ग्रंथि)–१. गाँठ, २. द्वेष, बैर, गाँस, ३. लगनेवाली बात, ताना। उ० २. मानी राम अधिक जननी तें जननिहु गँस न गही। (गी० ७।३७)
ग–(सं०)–१. स्वर्ग, २. सुमेरु, ३. गणेश, ४. गंधर्व, ५. गीत, ७. गवैया, ८. नभ, आकाश, ६. गमन करनेवाला, १० गुरुमात्रा।
गईं–(सं० गतः)–१. गई, जाना क्रिया का सामान्य भूत में अन्य पुरुष का आदरसूचक रूप। २. नष्ट हो गईं। उ० १. कपट नारि-बर-बेष बिरचि मंडप गईं। (जा० १४७) गइ–१. गई। जाना क्रिया का सामान्य भूत अन्य पुरुष एक बचन का रूप, २. नष्ट हो गई। उ० १. भए सब साधु किरात किरातिनि, राम-दरस मिटि गइ कलुषाई। (गी० २।४६) गइउँ–१. गई, २. नष्ट हुई। उ० १. गइउँ न संग न प्रान पठाए। (मा०२।१६६।३) गईं–गई का बहुवचन। उ० सखीं लवाइ गईं जह रानी। (मा० १।२६७।३) गई–(सं० गतः)–१. गुज़री, हाथ से निकली, दे० 'गइ'। २. नष्ट हो गई। उ० १. गई बहोर गरीब नेवाजू। (मा० १।१३।४) गएँ–१. जाने पर, बीतने पर, २. गए, समाप्त हो गए। उ० १. कछु दिन गएँ भरत जुबराजू। (मा० २।३२।२) गए–१. चले गए, समाप्त हो गए। २. जाने पर, समाप्त हो जाने पर। उ० २. निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह। (मा० ७।११४ क) गएहु–गया हुआ भी, नष्ट हुआ भी, समाप्त हुआ भी। उ० देहि लेहिं धन धरनि धरु, गएहु न जाइहि काउ। (दो० ४५६)
गगन–(सं०)–आकाश, शून्य स्थान। उ०जगु भय मगन गगन भइ बानी। (मा० २।२३१।१) गगनगिरा–आकाशवाणी, देववाणी, वह शब्द जो आकाश से देवता लोग बोलें। उ० गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह। (मा० १।१८६)
गच–(फ़ा०)–१. चूने सुरखी आदि के मेल से बना मसाला जिससे ज़मीन पक्की की जाती है। २. पक्का फर्श, सुरखी आदि देकर पिटी हुई चिकनी ज़मीन। पक्की छत। उ० १. नाना रंग रुचिर गच ढारीं। (मा० ७।२७।२)
गच्छंति–(सं०)– जाते हैं, चलते हैं। उ० यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति क्षीराब्धिवासी। (वि० ५७)
गज–(१)–(सं०)–१. हाथी, करी, २. एक बंदर का नाम जो राम की सेना में था। ३. एक राक्षस का नाम जो महिषासुर का पुत्र था। ४. आठ की संख्या, ५. वह हाथी जिसको भगवान् ने ग्राह से छुड़ाया था। उ० १. गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै। (मा० ५।३। छं० १) ५. वृत्र बलि बाण प्रहलाद मय व्याध गज गृद्ध द्विज बंधु निजधर्म-त्यागी। (वि० ५७) कथा–राजा इन्द्रद्युम्न किसी अपराध के कारण ऋषि-शापवश गज हो गए थे। एक दिन वे त्रिकूट पर्वत के सरोवर में हथिनियों के के साथ विहार कर रहे थे। उसी सरोवर में ऋषियों के शापवश हू हू नामक गधर्व ग्राह होकर रहता था उसने गज (इंद्रद्युम्न) को पकड़ लिया। युद्ध के बाद थकित गज ने एक कमल तोड़कर आर्तस्वर से भगवान् की प्रर्थना की और विष्णु गरुड़ को छोड़ स्वयं दौड़ आए और दोनों का उद्धार किया। गंधर्व (ग्राह) अपने लोक में गया और गज भगवान् का पार्षद हो गया। गजगवनि–(सं० गजगामिनी)–हाथियों की भाँति मस्त होकर धीरे-धीरे चलनेवाली (गमन करनेवाली) स्त्री या स्त्रियों का समूह। सुंदरी। उ० मदनमत्त गजगवनि चलीं बर परिछन। (पा० १३२) गजगामिनि–दे० 'गजगवनि'। उ० चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि। (मा० १।२१७) गजगाह–हाथी की झूल, पाखर। उ० साजि कै सनाह गजगाह सउछाह दल, महाबली धाये बीर जातुधान धीर के। (क० ६।३१) गजदसन–(सं० गज + दशन)–हाथी का दाँत, १. खाने के दाँत और होते हैं और दिखाने के और अतः 'गजदसन' का अर्थ दोहरी नीतिवाला या बाहर से और, भीतर से और लिया जाता है। २. हाथी के बाहर निकले दाँत फिर भीतर नहीं जा सकते अतः गजदसन का अर्थ दृढ़ अक्खड़ लिया जाता

हैं। उ० १. जिमि गज-दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु। (वि ११८) २. बज्ररेख गजदसन जनक-पन बेद बिदित, जग जान। (गी० १।८७)

गज-(२)-(फ़ा गज़)-लम्बाई नापने की एक नाप जो सोलह गिरह या तीन फुट की होती है।

गजबदन-दे० 'गजवदन'। उ० जय गजबदन षडानन माता। (मा० १। २३५।३)

गजमणि-(सं०)-दे० 'गजमुक्ता'।

गजमनि-दे० 'गजमणि'। उ० गजमनि-माल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई। (वि० ६२) गजमनियाँ-गज मणियों का समूह। दे० 'गजमणि'। उ० पहुँची करनि, पदिक हरिनख उर, कठुला कंठ, मंजु गजमनियाँ। (गी० १।३१)

गजमनी-दे० 'गजमणि'। उ० माल सुबिसाल चहुँ पास बनी गजमनी। (गी० ७।५)

गजमुकुता-दे० 'गजमुक्ता'। उ० गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो। (रा० ४)

गजमुक्ता-(सं०)-एक प्रकार की मोती या मणि जिसका हाथी के मस्तक से निकलना प्रसिद्ध है।

मजमोति-(सं० गजमौक्तिक)-दे० 'गजमुक्ता'। उ० अरुन कंज महँ जुग-जुग पाँति रुचिर गजमोति। (गी० ७।२१)

गजराज-(सं०)-१. बड़ा हाथी, २. हाथियों का मालिक, ऐरावत, ३. वह हाथी जिसे ग्राह ने पकड़ लिया था। दे० 'गज'। उ० ३. कौन धौं सोम जागी अजामिल अधम? कौन गजराज धौं बाजपेई? (वि० १०६)

गजवदन-(सं०)-हाथी की भाँति मुँहवाले। दे० 'गणेश'।

गजानन-(सं०)-हाथी के से मुँहवाले। दे० 'गणेश'।

गजाननु-दे० 'गजानन'। उ० सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। (मा० १।३३९।४)

गजारि-(सं०)-सिंह, हाथी का बैरी। उ० नहिं गजारि जसु बधें सृगाला। (मा० ६।३०।२)

गजारी-(सं० गज+अरि)-सिंह। उ० अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी। (क० ६।५)

गजेन्द्र-(सं०)-१ बड़ा हाथी, गजराज, २. इन्द्र का हाथी। ऐरावत, ३. वह हाथी जिसे विष्णु ने तारा था।

गज्जत-(सं० गर्जन)-गजरते हैं, गर्जन करते हैं। उ० बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत। (क० ६।४७)

गठिबँध-दे० 'गठिबंध'। उ० गठिबँध तें परतीति बड़ि, जेहि सबको सब काज। (दो० ४५३)

गठिबंध-(सं० ग्रंथिबंधन)-गठजोड़ा। ब्याह के समय बर के दुपट्टे और बधू के अंचल में गाँठ दी जाती है। उ० बड़ि प्रतीति गठिबंध तें, बड़ो जोग तें छेम। (दो० ४७३)

गड़त-(सं० गर्त)-धँस जाते हैं, गड़ जाते हैं, भीतर चला जाता है। उ० गड़त गोड़ मानो सकुच-पंक महँ, कढ़त प्रेम-बल धीर। (गी० २।६६) गड़ी-धँसी, घुसी। उ० कुंडल-तिलक-छवि गड़ी कवि जियरे। (गी० १।४१) गड़े-धँसे, लज्जित हो। उ० तापर तिनकी सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े। (वि० १३५)

गड़-(सं० गड)-१. खाँई, २. जिसके पास या चारों ओर खाँई हो, किला, कोट, दुर्ग। उ० २. सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई। (मा० १।१७६।२)

गढ़ाइहौं-गढ़वाऊँगा, बनवाऊँगा। उ० सब परिवार मेरो याही लागि, राजाजू! हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं? (क० २।८) गढ़ायो-१. गढ़ाया, बनवाया, २. गढ़ाया हुआ, बनाया हुआ। उ० २. आपु हौं आपुको नीके कै जानत, रावरो राम! भरायो गढ़ायो। (क० ७।६०) गढ़ि-गढ़कर, काट-छाँटकर। उ० सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। (मा० १।२८८।३) मु० गढ़ि गुढ़ि-काट-छाँटकर, भली भाँति बनाकर। उ० गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडकि सिला सुभाय। (दो०३६२) मु०गढ़ि छोलि-सँवारकर, अच्छी तरह बनाकर। उ० हृदय कपट, बर बेष धरि, बचन कहैं गढ़ि छोलि। (दो० ३३२) गढ़ीबै-गढ़ने में, बनाने में। उ० हौ भले नग-फँग परे गढ़ीबै, अब ए गढ़त महरि-मुख जोए। (कृ० ११) गढ़े-(सं० घटन, हिन्दी गढ़ना=१. किसी वस्तु को काट-छाँट या ठोक-पीटकर ठीक करना, रचना, २. छीलना, काटना, ३. बातें बनाना, कपोल कल्पना करना)-१. गढ़कर, २. गढ़ा, बनाया, ३. गढ़ेंगे, काट-छाँट करेंगे। उ० ३. चतुरंग चमू पल में दलि कै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े। (क० ६।६)

गढ़ु-दे० 'गढ़'। उ० २. छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। (मा० २।१०५।३)

गढ़ैया-गढ़नेवाला, बनानेवाला। उ० ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार, खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उरसाल को। (क० ७।१३५)

गण-(सं०)-१. समूह, झुंड, २. श्रेणी, जाति, ३. किसी भी प्रकार की समानता रखनेवाले मनुष्यों का समुदाय, ४. सेना का वह भाग जिसमें तीन गुल्म हों, ५. छंदशास्त्र के ८ गण, ६. शिव के पारिषद, ७. दूत, सेवक, सेवकों का दल। उ० १. यस्यगुणगण गनति बिमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११)

गणक-(सं०)-गणना करनेवाला, ज्योतिषी।

गणति-दे० 'गनति'।

गणनायक-(सं०)-दे० 'गणेश'।

गणपति-(सं०)-दे० 'गणेश'।

गणराऊ-(सं० गण+राजा)-दे० 'गणेश'।

गणराज-(सं० गण+राजन्)-दे० 'गणेश'।

गणिका-(सं०)-१. वेश्या, रंडी, २. जीवंती नाम की वेश्या जो राम नाम के कारण ही मोक्ष-गामिनी हुई। कथा-प्राचीनकाल में एक जीवंती नाम की वेश्या हो गई है। उसने एक तोता पाल रक्खा था। वह उसे बहुत प्यार करती थी। एक दिन एक महात्मा उधर से निकले और वेश्या के घर भिक्षा माँगने गए। महात्मा के कहने से उसी दिन से वह गणिका फ़ुरसत के समय तोते को राम नाम पढ़ाने लगी। उसे राम नाम का प्रभाव ज्ञात नहीं था पर अनजान में ही सही, नाम तो लेती थी। इसका फल यह हुआ कि मरते समय भी उसके मुँह

से राम-नाम निकलता रहा और वह भवसागर पार हो गई।

गणेश-(सं०)-एक देवता जिनका सारा शरीर तो मनुष्य का है पर सिर हाथी का है। इनके चार हाथ और एक दाँत है। ये महादेव के पुत्र कहे जाते हैं। इनकी सवारी चूहा है। पुराणों के अनुसार पहले इनका सिर मनुष्य का था पर शनैश्चर की दृष्टि से वह कट गया और विष्णु ने एक हाथी का सिर काटकर उसके स्थान पर जोड़ दिया। कुछ पुराणों के अनुसार परशुराम, कुछ के अनुसार रावण, तथा कुछ के अनुसार कार्त्तिकेय ने इनका एक दाँत तोड़ दिया था इसीलिए ये एकरदन भी कहे जाते हैं। ये महादेव के गणों के अधिपति होने के कारण गणेश नाम से प्रसिद्ध हैं। सभी मंगल कामों में सबसे पहले इनकी पूजा की जाती है। हिन्दुओं के पाँच प्रधान देवों में इनकी गणना होती है। गणेश लेखक भी बड़े भारी हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास के महाभारत को पहले पहल इन्होंने ही लिखा था।

गतं-गए हुए को, चलते हुए को। उ० सीता लक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे। (मा० ३।१। श्लो० २) गत (१)-(सं०)-१. समाप्त, नष्ट, बीता हुआ, २. में, गया हुआ, पड़ा हुआ, ३ रहित, हीन, खाली, बिना, ४. क्षीण, दुर्बल, गया-गुजरा। उ० ३. शक्र-प्रेरित-घोर-मारमद-भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी। (वि० ६०) गता-गई, प्राप्त हुई। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकत स्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः। (मा० २। श्लो०२) गतौ-गए हुए, जाते हुए। विचरते हुए। यह द्विवचन का रूप है। उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः। (मा० ४।१। श्लो०१)

गत (२)-(सं० गति)-१. अवस्था, दशा, २. रूप, रङ्ग, वेष, ३. सुगति, उपयोग, ४. दुर्गति, दुर्दशा, नाश, ५. अप्रिय, बुरा। उ० ५. सूपनखा सब भाँति गत, असुभ अमंगल-मूल। (प्र० ३।२।५)

गतिं-दे० 'गति'। उ० ४. प्रयांति ते गतिं स्वकं। (मा० ३।४। श्लो० ८) गति-(सं०)-१. चाल, गमन, २. हिलने-डोलने की क्रिया, हरकत, ३. अवस्था, दशा, हालत, ४. रूप, रंग, वेष, ५. पहुँच, प्रवेश, दखल, ६. प्रयत्न की सीमा, अंतिम उपाय, ७. सहारा, अवलंब, ८. चाल, करनी, चेष्टा, ९. लीला, विधान, माया, १०. ढङ्ग, रीति, ११. जीव का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन, १२. मृत्यु के उपरांत जीवात्मा की दशा, १३. मोक्ष, मुक्ति, १४. ताल और स्वरानुसार नृत्य आदि में अङ्ग-चालन। उ० १. सूचति कटि केहरि, गति मराल। (वि० १४) १३. जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति सोइ निसि बासर कीजै। (वि० ११७)

गती-दे० 'गति'। उ० १०. गृह आनहिं चेरि निबेरि गती। (मा० ७।१०१।२)

गथ-(सं० ग्रन्थ)-१. गाँठ में बँधा दाम, रुपया पैसा, २. माल, ३. झुंड, समूह, गरोह। उ० १. बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए। (मा० ७।२८। छं०१)

गद-(सं०)-१. रोग, २. राम की सेना में एक बंदर जो सेनापति था। ३. एक राक्षस का नाम। उ० २. संगनील नल कुमुद गद, जामवंतु जुवराज। (प्र० ३।७।२)

गदगद-(सं० गद्गद)-१. एक अवस्था जिसमें मनुष्य अधिक हर्ष, प्रेम, श्रद्धा आदि के आवेग से इतना पूर्ण हो कि शब्दोच्चारण न कर सके। २. पुलकित, प्रसन्न, ३. प्रेमपूर्ण। उ० १. गदगद कंठ नयन जल, उर धरि धीरहिं। (जा० १९६) २. गदगद बचन कहति महतारी। (मा० २।५४।३)

गदा-(सं०)-एक प्राचीन अस्त्र जिसमें एक डंडा और उसके सर पर बड़ा सा लट्टू रहता है। हनुमान का प्रधान अस्त्र यही था। उ० गदा-कंज-दर-चारु-चक्रधर, नाग सुंड समभुज चारी। (वि० ६३)

गन-दे० 'गण'। उ० १. मनिगन पुर नर नारि सुजाती। (मा० २।१।२) गनन्ह-गणों, 'गन' का बहुवचन। उ० गनन्ह समेत बसहिं कैलासा। (मा० १।१०३।३)

गनइ-(सं० गणन)गिनता है। उ० सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ। (पा० ६७) गनई-गिनता, गिनता है। गिनती करता है। गनत-१ गिनते ही, २. गिनते हैं, ३ गिनते हुए। उ० २.ज्ञान-बैराग्य-बिज्ञान भाजन बिभो! बिमल गुन गनत सुक नारदादी। (वि० २६) गनति-१. गिनती, शुमार, हिसाब, २. गिनती है, वर्णन करती है, बखानती है। उ० २. यस्यगुणगण गनति बिमलगति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११) गनहिं-गिनते हैं, गणना करते हैं। उ० घोर निसाचर बिकट भट समर गनहिं नहिं काहु। (मा०१।३५९) गनहि-(सं० गण)-समूह को, झुंड को। उ० दे० 'गन-नाथहि'। गनहीं-गिनते हैं। उ० तृन समान त्रैलोकहि गनहीं। (मा० ४।२५।१) गनि-गिनकर, गणना कर।। उ० कहे नाम गनि मङ्गल नाना। (मा०२।६।१) गनिअ-गिनना चाहिए। उ० रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु। (मा०१।१७०) गनिगनि-गिन गिनकर। उ० नेम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गनिगनि गारि। (वि० २१४) गनिबो-गिनेंगे, गणना करेंगे। उ० न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम। (वि० ७७) गनिय-१. गिनिए, २. गिनना चाहिए। गनियत-१. गिनता है, २. गिना जाता है। उ० २. सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरु आई। (वि० १७५) गनिहिं (१)-गिनते हैं, गणना करते हैं। गनिहैं-१. गिनेंगे, २. गिन सकेंगे। उ० २. तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं। (वि० ९५) गनी (१)-(सं० गणन)-गिना, हिसाब लगाया, जोड़ा। उ० गनी जनक के गनकन्ह जोई। (मा० १।३१२।४) गने-१. गिने, गिने हुए, २. गिने हैं, गिने गए हैं, ३. गिने-चुने, थोड़े, कम संख्या में, ४. गिना, गणना की। उ० ३. महिसुर मंत्री मातुगुर गने लोग लिए साथ। (मा० २।२४५) गनै-गिनता है, २. गिने, गणना करे। उ० गनै को पार निसाचर जाती। (मा० १।१८१।२) गनौ-गिनो, गणना करो। उ० तदपि सांति-जल जनि गनौ, पावकतेज प्रमान। (वै० ५६)

गनक-दे० 'गणक'। उ० सुनि खिस पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि। (मा०२।३२३) गनकन्ह-गणक लोग,

ज्योतिषियों। उ० गनी जनक के गनकन्ह जोई। (मा० १।३१२।४)
गनती-गणना, गिनती, शुमार। उ० साधु गनती मैं पहिलेहिं गनावौं। (वि० २०८)
गनन-(सं० गणन)-गिनना, गिनती।
गननाथ-(सं० गणनाथ)-गणेश। गननाथहि-गणेश को। उ० बिनइ गुरुहि, गुनिगनहि, गिरिहि गननाथहि। (पा० १)
गननायक-दे० 'गणनायक'। उ० जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन। (मा० १।१। सो० १)
गनप-(सं० गणप)-गणेश। उ० समासद गनप से अमित अनूप हैं। (क० ७।१७१)
गनपु-दे० 'गनप'।
गनपति-दे० 'गणपति'। उ० गाइए गनपति जगबंदन। (वि० १) गनपति-द्विज-गणेश जी का दाँत अर्थात् एक। एक की संख्या। उ० अहिरसना थनधेनु रस गनपति-द्विज गुरु बार। (स० २१) गनपतिहि-गणेश को। उ० मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि। (मा० १।१००)
गनराउ-दे० 'गनराऊ'। उ० रामनाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ। (वि० २४७)
गनराऊ-दे० 'गणराऊ'। उ०महिमा जासु जान गनराऊ। (मा० १।१९।२)
गनराज-दे० 'गणराज'। गनराजहि-गणराज अर्थात् गणेश को। उ० चलेउ बरात बनाइ पूजि गनराजहि। (जा०१३३)
गनराजा-दे० 'गनराज'। उ० सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा। (मा० १।३४७।४)
गना-दे० 'गण'। उ० १. सुखभवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना। (मा० ५।६०।छं०१)
गनाए-१. गिनवाया, गणना कराया। उ० अति अनीस नहिं जाए गनाए। (वि० १३६) गनावौं-गिनवाऊँ, गिनवाता हूँ। उ० ताहू पर निज मति-बिलास सब संतन माँझ गनावौं। (वि० १४२)
गनिका-दे० 'गणिका'। उ० २. गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना। (मा० ७।१३०। छं० १) गनिकाऊ-गणिका भी। दे० 'गणिका'। उ० अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। (मा० १।२६।४)
गनिहिं (२)-(अर० ग़नी)-धनी को, धनवान् को। उ० गनिहिं गुनिहिं साहिब लहै सेवा समीचीन को। (वि० २७४) गनी (१)-धनिक, धनवान। उ० गनी गरीब ग्राम नर नागर। (मा० १।२८।३)
गनेस-दे० 'गणेश'। उ० सेस गनेस गिरा गमु नाहीं। (मा० २।३२४।४)
गनेसु-दे० 'गणेश'। गणेश शुभ के प्रतीक हैं अतः इनका अर्थ शुभ भी लिया जाता है। उ० राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समय गनेसु। (मा० २।२०८)
गनेसू-दे० 'गणेश'। उ० बेद बिरंचि महेस गनेसू। (मा० १।३५५।३)
गपकना-(ध्व० गप+हिन्दी करना)-झट से खा लेना, निगल जाना।
गपत-(सं० कल्प)-१. गप मारते हुए, झूठी बात कहते हुए, २. गप मारता है, अनाप-शनाप बकता है। उ० १. हारहि जनि जनम जाय गालगूल गपत। (वि० १३०)
गभीरं-(सं० गंभीर) शांत, सौम्य। दे० 'गंभीर'। उ० तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। (मा० ७।१०८। छं० ३)
गभुआरी-(सं० गर्भ)- गर्भ की, पेट की, जन्म से न काटी गई, धुँघराली, कुंचित। उ० गभुआरी अलकावली लसै। (गी० १।१६) गभुआरे-गर्भ के, जन्म के समय से रक्खे, धुँघराले। उ० चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। (मा० १।१९९।५)
गम (१)-(सं०)-१. रास्ता, पथ, २. मैथुन, सहवास, ३. गमन, जाना, प्रस्थान। उ० १. सिव उदास तजि बास अनत गम कीन्हेउ। (पा० ३१)
गम (२)-(सं० गम्य)-किसी वस्तु या बिषय में प्रवेश, पहुँच, पैठ, गुज़र।
गम (३)-(अर० ग़म)-दुःख, शोक, रंज।
गमन-(सं०)-१. जाना, चलना, यात्रा करना, प्रस्थान, २. पथ, रास्ता, ३. संभोग, मैथुन। उ० १. कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिए। (जा० ३६)
गमु-दे० 'गम'। उ० (गम (२) सेस गनेस गिरा गमु नाहीं। (मा० २।३२४।४) (गम (१) ३. जिमि जलहीन मीन गमु धरनी। (मा० २।२८६।१)
गमिहै-(अर० ग़म)-ग़म न करेंगे, परवा न करेंगे, ध्यान देंगे। उ० खल अनखैहैं, तुम्हें सज्जन न गमिहै। (क० ७।७१)
गम्यं-दे० 'गम्य'। उ० ३. योगीन्द्र ज्ञान गम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्। (मा० ६।१ श्लो० १) गम्य-(सं०)-१. जाने योग्य, २. पाने योग्य, ३. जानने योग्य, समझने योग्य, ४. संभोग करने योग्य, ५.साध्य, सहल। उ० ३. अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई। (मा० १।२११। छं० २)
गयंद-(सं०गजेन्द्र)-१. बड़ा हाथी, गजेन्द्र, २.वह हाथी जिसे भगवान ने ग्राह से छुड़ाया था। उ० २. तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयंद जाके अर्द्ध नायँ। (वि० ८३)
गयंदु-दे० 'गयंद'। उ० १. नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान। (मा० २।५१)
गय (१)-(सं० गज)-हाथी। उ० अगनित हय गय सेन समाजा। (मा० १।१३०।१)
गय (२) (सं० गम)-गये, गया, नष्ट हो गया। गयउँ-१. गया, २. मैं गया, ३. मैं नष्ट हो गया। उ० १.कवने अवसर का भयउ गयउँ नारिबिस्वास। (मा० २।२९) गयउ-१.गया, २. नष्ट हो गया। उ० २. नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा। (मा० १।१२०।२) गयऊ-१. गए, २. नष्ट हो गए। उ० १. एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। (मा० १।१०६।२) गयऊँ-१. गया, मैं गया, २. मैं नष्ट हो गया। उ० १. काहू के गृह ग्राम न गयऊँ। (मा० १।१६७।२) गयहु-१. गया, २. नष्ट हो गया, समाप्त हो गया। उ० २. गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु। (मा० ६।२१।३) गया (१)-(सं० गम्)-१. चला गया, २.बीता, ३.नष्ट, समाप्त। गये-१. जाना क्रिया का भूतकालिक रूप, प्रस्थान किया, २.नष्ट हो गए, ३ बीतने पर,

चले जाने पर, नष्ट हो जाने पर, ४. नष्ट, गया-बीता। गयो–दे० 'गये'। उ० १. तुलसी इहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि। (दो० १२)

गया (२)–(सं०)–बिहार का एक तीर्थस्थान जहाँ श्राद्ध तथा पिंडदान आदि के लिए हिंदू जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि बिना वहाँ जाकर पिंडदान आदि किए पितरों को मोक्ष नहीं होता। उ० मगहँ गयादिक तीरथ जैसे। (मा० २।४३।४)

गर (१)–(सं० गल)–गला, गर्दन। उ० मरु गर काटि निलज कुलघाती। (मा० ६।३३।२)

गर (२)–(सं०)–१. ज़हर, विष, २. रोग, बीमारी।

गर (३)–(फ़ा०)–किसी काम को बनाने या करनेवाला। जैसे बाज़ीगर, सौदागर आदि।

गरई–(सं० गरण)–१.गल जाता है, २. लज्जित होता है, ३. नष्ट होता है, ४. नम्र हो जाता है।

गरज (१)–(अर० ग़रज़)–१. आशय, प्रयोजन, मतलब, २. स्वार्थ साधने की चिंता। उ० २. गरज आपनी सबन को। (दो० ३००)

गरज (२)–(सं० गर्जन)–१. भयानक शब्द, घोरनाद, २. गर्जन कर, गरजकर, ३. गर्जन करो। गरजइ–गरजता है, गर्जन कर रहा है। उ० मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। (मा०६।१३।१) गरजत–गरजता है, गर्जन करता है। उ० उपल बरषि गरजित तरजि, डारत कुलिस कठोर। (दो० २८३) गरजनि–बादल या सिंह आदि का शब्द, गड़गड़ाना, गर्जन। उ० मानत मनहुँ सतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर। (गी०३।१) गरजहिं–दे० 'गर्जहिं'। गरजि–गर्जन कर, गरज कर। उ० गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना। (मा० ६।६६।३) गरजि तरजि–(सं० गर्जन, सं० तर्जन)–डाँट डपट कर, घुड़की आदि देकर। उ० गरजि तरजि पाषान बरषि पबि प्रीति परखि जिय जानै। (वि० ६५)

गरजी (१)–(अर० ग़रज़ी)–१. चाहनेवाला, इच्छा करनेवाला, २. मतलबी। उ० १. ब्रजराज कुमार बिना सुनु भृंग! अलंग भयो जिय को गरजी। (क० ७।१३३)

गरजी (२)–(सं० गर्जन)–गरजनेवाला, केवल बकने या कहनेवाला, कुछ काम न करनेवाला।

गरत–(सं०गरण)–१.गलता है, पिघलता है, २.पिघते हुए, ३.क्षीण होता है, गल जाता है, कृश होता है ४.क्षीण होते हुए, ५. बहुत सरदी आदि स ठिठुरता है, ठिठुरते हुए। उ०३.बंधुबैर कपि बिभीषन गुरु गलानि गरत। (वि०१३४) गरहिं–गलते हैं, गले जा रहे हैं। उ० गरहिं गात जिमि आतप ओरे। (मा० २।१४७।४) गरहीं–गलते हैं, गल रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं, नाश होते हैं, समाप्त हो जाते हैं। उ० जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं। (मा० १।४।४) गरि–१. द्रवीभूत होकर, गल गलकर, पिघलकर, दुर्बल होकर, नष्ट होकर, २. गली, गल गई। उ० २.गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा। (मा० २।१६२।१) गरै (१)–गले, पिघले, पिघल गए, नष्ट हुए। उ० अंबरीष की साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै। (वि० १३७) गरैगी–गल जायगी, नष्ट हो जायगी। उ० गरैगी जीह जो कहौं और को हौं। (वि० २२६) गरो–१. गल जाय, गले, २. गल गई। उ० १. संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो। (वि० २२६) गर्‍यो–गला, गल गया, पिघल गया। उ० तुम दयालु बनिहै दिए बलि, बिलंब न कीजिए जात गलानि गर्‍यो हौं। (वि० २६७)

गरद (१)–(फ़ा० गर्द)–धूलि, गर्द, रज। उ० खायो कालकूट भयो अजर अमर तनु, भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की। (क० ७।१५८)

गरद (२)–सं०)–विष देनेवाला।

गरदन–(फ़ा०)–गला, ग्रीवा, धड़ और सिर को जोड़नेवाला अंग। गरदनि–दे० 'गरदन'। उ० सो जानइ जनु गरदन मारी। (मा० २।१८५।३)

गरन–१. गलनेवाला, पिघलनेवाला, २. गलना, पानी पानी होना। उ० २. तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन। (वि० २४८)

गरब–दे० 'गर्व'। उ० देखत गरब रहत उर नाहिन। (मा० २।१४।२)

गरबित–दे० 'गर्वित'। उ० गरबित भरत मातु बल पी कें। (मा० २।१८।२)

गरबु–दे० 'गरब'।

गरभ–दे० 'गर्भ'। उ० बाँधौ हौं करम जड़ गरभ गूढ़ निगड़। (वि० ७६)

गरम–(फ़ा० गर्म)–१. उष्ण, तप्त, जलता हुआ, २. प्रचंड, तेज, ३. उग्र, ४. आवेशपूर्ण, ५. क्रोधित। उ० १. जूड़े होत थोरे ही थोरे ही गरम। (वि० २४९)

गरल–(सं०)–ज़हर, विष, माहुर। उ० गरल अनल कलि मल सरि ब्याधू। (मा० १।५।४) विशेष–गरल या विष समुद्र-मंथन में निकला था। इसे शंकर ने पान किया अतः गरकंठ आदि कितने ही शंकर के नाम गरल पर आधारित हैं।

गरलकंठ–जिसके कंठ में विष हो। शंकर। विशेष–शिव के चित्रों में विष के कारण ही उनका गला गरल का रंग श्याम होने के कारण कुछ श्यामता लिए दिखाया जाता है।

गरलसील–ज़हर का सहनेवाला, ज़हरमोहरा। उ० कीन्ह्यौं गरलसील जो अंगा। (वै० ४७)

गरह (१)–(सं० ग्रह)–१. ग्रह, २. अरिष्ट, बाधा।

गरह (२)–(सं० गल)–गले का रोग, कंठमाला। उ० हरष विषाद गरह बहुताई। (मा० ७।१२१।१७) विशेष–इस में प्रयुक्त 'गरह' के अर्थ के विषय में लोगों के कई मत हैं। हिंदी शब्द सागर इसका अर्थ बाधा या अरिष्ट मानता है। डा० श्यामसुंदर दास ने इसका अर्थ घेघा आदि गले का रोग माना है। डॉ सूर्यकांत इसका अर्थ वायुविकार या गठिया मानते हैं। 'तुलसी शब्द सागर' के संग्रहकर्ता श्री हरगोविन्द तिवारी ने भी इसका अर्थ गठिया माना है पर गले के रोगवाला अर्थ अधिक ठीक जान पड़ता है अतः यहाँ वही दिया जा रहा है।

गरिमा–(सं० गरिमन्)–१. गुरुत्व, भारीपन, बोझ, २.गौरव, महत्व, महिमा, ३. गर्व, अहंकार, ४. शेखी, अपनी डींग

हाँकना, ५. आठ सिद्धियों में से एक जिससे साधक अपना बोझ चाहे जितना भारी कर सकता है। उ० २. जनकनृप-सदसि-सिवचाप-भंजन, उग्र-भार्गवागर्व-गरिमा पहर्त्ता। (वि० ५०)

गरीब-(अर० ग़रीब)-१.नम्र, दीन, हीन, २. दरिद्र, निर्धन, कंगाल। उ० १. गई बहोर गरीब नेवाजू। (मा० १।१३।४) गरीब निवाज-(अर० ग़रीब + फा० नवाज़)-दीनों पर कृपा करनेवाला, दीनदयाल। उ० सो तुलसी महँगो कियो राम गरीब निवाज। (दो० १०८) गरीब नेवाज-दे० 'गरीब निवाज'। उ० कायर कूर कपूतन की हद तेउ गरीब नेवाज नेवाजे। (क० ७।१)

गरीबी-१. दीनता, अधीनता, २. नम्रता, ३. दरिद्रता कंगाली। उ० १. लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता। (वि० २६२)

गरीसा-(सं० गरीयस्)-१. भारी, गुरु, २.महान, प्रबल। उ० १.पर निंदा सम अघ न गरीसा। (मा०७।१२१।११)

गरु-(सं० गुरु)-भारी, वज़नी। उ० न टरै पग मेरुहु तें गरु भो, सो मनों महि संग बिरंचि रचा। (क० ६।१५)

गरुअ-(सं० गुरु)-१. भारी, वज़नी, बोझवाला, २. श्रेष्ठ, उत्तम, भला, ३. गंभीर, शांत, सहनसील। उ० १. गरुअ कठोर बिदित सब काहू। (मा० १।२५०।१)

गरुआइ-भारी होता जाता है, वज़नी होता है, भारी हो जाय। उ० मनहुँ पाइ भट बहु बलु अधिकु अधिकु गरुआइ। (मा० १।२५०)

गरुआई-भार, बोझ, भारीपन, गुरुता। उ० भृगुपति केरि गरब गरुआई। (मा० १।२६०।३)

गरुइ-(सं०गुरु) भारी, गंभीर, महत्वपूर्ण। उ० जानि गरुइ गुरगिरा बहोरी। (मा० २।२१३।१)

गरुई-दे० 'गरुइ'।

गरुड़-(सं० गरुड)-एक पक्षी। विष्णु के वाहन जो पक्षियों के राजा माने जाते हैं। गरुड़ विनता के गर्भ से उत्पन्न कश्यप के पुत्र हैं। एक बार कश्यप ने पुत्रप्राप्ति की इच्छा से यज्ञ किया। इंद्र, वालखिल्य तथा अन्य देवता सामग्री इकट्ठा करने लगे। इंद्र ने शीघ्र ही लकड़ियों की ढेर लगादी और बालखिल्यों को चिढ़ाने लगे। इस पर बालखिल्य क्रोधित हुए और कश्यप के पुत्र रूप में दूसरा इंद्र उत्पन्न करने के प्रयत्न में लगे। अंत में कश्यप ने उन्हें शांत किया और कहा कि तुम लोग जिस इंद्र को उत्पन्न करना चाहते हो वह पक्षियों का इंद्र होगा। तदनुसार विनता के गर्भ से कश्यप ने अग्नि और सूर्य के समान गरुड़ और अरुण दो पुत्र उत्पन्न किए। गरुड़ विष्णु के वाहन हुए और अरुण सूर्य के सारथी। गरुड़ सर्पों के शत्रु हैं, इसीलिए उन्हें पन्नगारि आदि नाम दिए गए हैं। उ० कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहगनायक गरुड़। (मा० १।१२०ख) गरुड़गामी-गरुड़ पर गमन करनेवाले, विष्णु। गरुड़हि-गरुड़ को। उ० प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल। (मा० ५।१६)

गरुता-१. भारीपन, बोझ, २. गौरव, बड़ाई, ३. गांभीर्य।

गरू-भारी, गंभीर, उत्तम। उ० जोग ज्ञानहु तें गरू गनियत है। (वि० १८३)

गरूर-(अर० ग़ुरूर)-गर्व, घमंड, अभिमान। उ० गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको? (क० १।२०)

गरे (१)-(सं० गल)-१. गले में, गर्दन में, २. गले। उ० १. साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों। (क० ५।११)

गरे (२)-(सं० गरण)-गले, पिघले, द्रवित हुए। उ० इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात। (क० ५।२०)

गरै-(२) (सं० गल)-गले में।

गर्जहिं-गरजते हैं, गरज रहे हैं। उ० गर्जहिं मर्कट भट समुदाई। (मा० ६।४१।१) गर्जा-गरजा, गर्जन किया, ज़ोर का शब्द किया। उ० मुठिका मारि महाधुनि गर्जा। (मा० ४।८।१) गर्जि-गर्जकर, गंभीर शब्द करके। गर्जहीं-गरज रहे हैं, गरजते हैं। उ० कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं। (मा० ५।३।छं० २) गर्जेउ-गर्जना की, गर्जे। उ० तिनहि देखि गर्जेउ हनुमाना। (मा० ५।१८।३) गर्जेसि-गर्जन किया, गर्जे। उ० चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। (मा० ५।२८।१)

गर्त्त-(सं०)-१. गड्ढा, २. दरार ३. घर, ४. रथ, ५. जलाशय, ६. एक नरक। उ० १. खनि गर्त्त गोपित बिराधा। (वि० ४३)

गर्द-(फा० गर्द)-धूल, गर्दा, रज। उ० मर्दि गर्द मिलवहिं दस सीसा। (मा० ५।५५।४)

गर्दा-दे० 'गर्द'। उ० कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा। (मा० ६।६७।२)

गर्ब-दे० 'गर्व'। उ० तासु गर्ब जेहि देखत भागा। (मा० ६।२६।२)

गर्बित-दे० 'गरबित'।

गर्भ-(सं०)-१. पेट, हमल की दशा, पेट में बच्चे का होना, २. पेट के भीतर का वह स्थान जहाँ गर्भ रहता है, ३. गर्भ का बच्चा, ४. काँटा, ५. कटहल। उ० २. जयति अंजनी-गर्भ-अंबोधि-संभूत-बिधु विबुध कुल-कैरवानंदकारी। (वि० २५) गर्भन्ह-गर्भ का बहुवचन, गर्भों। उ० गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर। (मा० १।२७२) गर्भहिं-१. गर्भ में, २. गर्भ को। उ० १. जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। (मा० १।१९०।३)

गर्व-(सं०)-घमंड, अहंकार, अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझने का भाव। गर्वघ्न-गर्व का नाश करनेवाला। उ० गंभीर गर्वघ्न गूढ़ार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता। (वि० ५४)

गर्वित-गर्वयुक्त, घमंड से भरा हुआ।

गल-(सं०)-गला, कंठ, गरदन। उ० गलकंबल बरुना बिभाति, जनु लूम लसति सरिता सी। (वि०२२) गले-(सं० गल)-गले में, कंठ में। उ० भाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्। (मा० २।१। श्लो० १)

गलकंबल-(सं०)-झालर, गाय के गले के नीचे लटकनेवाला भाग। उ० दे० 'गल'।

गलगाजे-(सं० गंड, गल्ल + गर्जन)-१.प्रसन्न हो, प्रसन्न हुए, २. डींग मारें, डींग मारने लगे, ३. डींग मारनेवाले,

बकवादी। उ० ३. राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी, हमसे गलगाजे। (क० ७।१)
गलतो-गलता, पिघलता, पानी पानी होता। उ० तुलसी अरि उर आनि एक अब एती गलानि न गलतो। (गी० ५।१३)
गलबल-(ध्व०)-कोलाहल, खलबली, हो-हल्ला, शोरगुल। उ० निपट निसंक परपुर गलबल भो। (ह० ६)
गलानि-दे० 'ग्लानि'। उ० २. ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि-नाऊँ। (मा० १।२६।३)
गलानी-दे० 'ग्लानि'। उ० २. हरत सकल कलि कलुष गलानी। (मा० १।४३।२)
गलित-(सं०)-१. गला हुआ, बिगड़ा हुआ, २. नष्ट, समाप्त, जीर्ण-शीर्ण, खंडित, रहित, शून्य, ३. परिपक्व, परिपुष्ट। उ० २. तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना। (मा० १।१६१।१)
गलिन्ह-१. गली का बहुवचन, गलियों, २. गलियों में। उ० २. राम-कृपा तें सोइ सुख अवध गलिन्ह रह्यो पूरि। (गी० ७।२१) गलीं-गलियाँ। दे० 'गली'। उ० चौहट सुंदर गलीं सुहाई। (मा० १।२१३।२) गली-(सं० गल)-घरों की पंक्तियों के बीच से होकर जानेवाला पतला रास्ता, खोरी, कूँचा। उ० सींचि सुगंध रचैं चौके गृह आँगन गली बजार। (गी० १।१)
गवँ-(सं० गम्य)-१. घात, दाँव, मौका, अवसर, २. मतलब, प्रयोजन, ३. ढब, चाल, ४. धीरे, चुपके। उ० १. जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती। (मा० २।१३।२) मु० गवँ तकइ-घात खोजते रहता। उ० दे० 'गवँ'। गवँहिं (१)-(सं० गम्य)-१. धीरे से, चुपके से, २. मौका देखकर, गौं देखकर। उ० १. देखि सरासनु गवँहिं सिधारे। (मा० १।२५०।१)
गवहिं (२)-(सं० गम्)-जाते हैं।
गवन-(सं० गमन)-जाना, कूच करना, प्रस्थान। उ० राम लखन मुनि साथ गवन तब कीन्हेउ। (जा० ३४)
गवनत-१. जाते हैं, २ जाते समय, जाते वक्त। उ० २. बरबस गवनत रावनहिं, असगुन भए अपार। (प्र० ३।२।५) गवनब-१. जाइए, २. जाइएगा। उ० २. कहहिं गवाँइअ छिनकु श्रमु गवमब अबहिं कि प्रात। (मा० २।११४) गवनहिं-जाते हैं। उ० मकर मज्जि गवनहिं मुनि बृंदा। (मा० १।४५।१) गवनहु-गमन करो, जाओ। उ० तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। (मा० २।२५६।२) गवनि-१. चलनेवाली, २. चली गई, ३. चली, ४. चल-कर। उ० ४. गृह तें गवनि परसिपद पावन घोर स्राप तें तारी। (वि० १६६) गवने-गए, चले गए। उ० हरषि सप्तरिषि गवने गेहा। (मा० १।८२।२) गवनेउ-चला गया, गया। उ० निज भवन गवनेउ सिंधु श्री रघुपतिहि यह मत भायऊ। (मा० ५।६०। छं० १) गवनिहि-चला जायगा। उ० गवनिहि राज समाज नाक असि फूटिहि। (जा० ६८) गवनी-दे० 'गवनि'।
गवनु-(सं० गमन)-जाना, प्रस्थान, गमन। उ० सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ। (मा० २।१०४)
गवनू-दे० 'गवन'।
गवाँइअ-गँवा लीजिए, मिटा लीजिए। उ० कहहिं गवाँइअ छिनकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात। (मा० २।११४)
गवाँई-१. गँवाया, २. गँवाकर। उ० २. जसु प्रतापु बलु तेजु गवाँई। (मा० १।२४५।२) गवाँए-खोए, खो दिए, बिताये, हाथ से निकल जाने दिए। उ० सागु खाइ सत बरष गवाँए। (मा० १।७४।२) गवाँयउँ-गँवाया, बिताया। उ० तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ। (मा० ७।८२।१) गवाँवा-खोया, बिताया, खतम किया। उ० बैठि बिटप तर दिवसु गवाँवा। (मा० २।१४७।२)
गवारी-दे० 'गँवारि'। उ० बिलगु न मानब जानि गवाँरी। (मा० २।११६।४)
गवाँरु-(सं० ग्राम)-गाँव का रहनेवाला, मूर्ख, गँवार। उ० बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु। (मा० १।१०३)
गवासा-(सं० गवाशन)-गाय खानेवाला, कसाई। उ० मरु मारव महिदेव गवासा। (मा० १।६।४)
गव्य-(सं०)-गो से उत्पन्न, दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र आदि। उ० पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपंचनदा सी। (वि० २२)
गह-(सं० ग्रहण)-१. गहने, पकड़ने, २. पकड़कर। उ० १. गह सिसुबच्छ अनल अहि धाई। (मा० ३।४३।३) गहइ-१. पकड़ लेती थी, स्वीकार कर लेती थी, २. पक-ड़ता है, ग्रहण करता है, धारण करता है। ३. पकड़कर, ४. पकड़ने के लिए। उ० १ गहइ छाहँ सक सोन उड़ाई। (मा० ५।३।२) गहई-दे० 'गहइ'। उ० २. भगत हेतु लीलातनु गहई। (मा० १।१४४।४) गहत-(सं० ग्रहण)-पकड़ता है, ग्रहण करता है, अपनाता है। उ० सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत। (वि० १३३) गहति-पकड़ती है। 'गहत' का स्त्रीलिंग। उ० छोड़ति छोड़ाये तें, गहाए तें गहति। (वि० २४६) गहते-पकड़ते, अपनाते, ग्रहण करते। उ० जो पै हरि जन के अवगुन गहते। (वि० ९७) गहनि (१)-(सं० ग्रहण)-१. पकड़ने या ग्रहण करने का भाव, अपनाना, २. हठ, टेक, ज़िद। उ० १. सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम। (वै० १७) गहब-पकड़ूँगा, ग्रहण करूँगा, अपनाऊँगा। उ० त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं। (वि० १२४) गहसि-१. पकड़ता, २. पकड़ ली, पकड़ी। उ० १. गहसि न राम चरन सठ जाई। (मा० ६।३५।२) गहहिं-ग्रहण करते हैं, पकड़ते हैं। उ० गहहिं न पाप पुनू गुन दोषू। (मा० २।२१९।२) गहहीं-ग्रहण करते हैं, अपनाते हैं, पकड़ते हैं। उ० अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। (मा० २।१३१।१) गहहु-ग्रहण करो, पकड़ो। उ० दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। (मा० ६।२०।४) गहहू-दे० 'गहहु'। उ० सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू। (मा० ७।४५।१) गहा-१. पकड़ा, ग्रहण किया, २. जकड़ा हुआ, ग्रस्त, पकड़ में आया हुआ। उ० १. खगनाथ जथा करि कोप गहा। (मा० ६।१११।२) गहि-पकड़कर, थाम-कर, ग्रसकर। उ० गहि पद भरत मातु सब राखीं। (मा० २।१७०।१) गहिबे-१. पकड़ना होगा, धारण करना

होगा, २. पकड़ने, ग्रहण करने। उ० १. ज्ञान गिरा कूबरीरवन की सुनि विचारि गहिबे ही। (कृ० ४०) गहिबो–१. पकड़ना, पकड़ लेना, २. पकड़ोगे। उ० १. प्रबल दनुज दल दलि पल आध में, जीवत दुरित-दसानन गहिबो। (गी० ५।१४) गहियतु–पकड़ता, पकड़ लेता। उ० ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है। (क० २।४) गहिसि–१. पकड़ ली, पकड़ी, २. पकड़ता। उ० १. गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। (मा० ६।६५।३) गहिहौं–पकड़ूँगा। उ० इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं। (वि० २३१) गही–ग्रहण की, पकड़ी। उ० गये बिसारि रीति गोकुल की, अब निर्गुन गति गही है। (कृ० ४२) गहु–पकड़, पकड़ो, ग्रहण करो। उ० सखीं कहहिं प्रभुपद गहु सीता। (मा० १।२६५।४) गहे–१. पकड़े हुए, २. पकड़े, ग्रहण किए। उ० २. पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो। (मा० १।१०१। छं० १) गहेउ–पकड़ा। गहेसि–पकड़ लिए, ग्रहण कर लिए। उ० आतुर सभय गहेसि पद जाई। (मा० ३।२।६) गहेहू–पकड़ना, पकड़िएगा। उ० बार बार पद पंकज गहेहू। (मा० २।१५१।३) गहौंगो–ग्रहण करूँगा, पकड़ूँगा। उ० श्री रघुनाथ-कृपाल-कृपा ते संत सुभाव गहौंगो। (वि० १७२) गह्यौ–ग्रहण किया, पकड़ा। उ० तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो कारन इहै गह्यौ गिरिजा-वर। (कृ० ३१)

गहगह–(सं० गद्गद)–प्रसन्नतापूर्वक, आनंद से भरा, घमाघम। उ० गहगह गगन दुंदुभी बाजी। (कृ० ६१)

गहगहि–दे० 'गहगह'। उ० गहगहि गगन दुंदुभी बाजी। (मा० १।१६१।४)

गहगही–दे० 'गहगह'। उ० सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही। (मा० ६।१०३। छं० २)

गहगहे–दे० 'गहगह'। उ० अति गहगहे बाजने बाजे। (मा० १।२८६।१)

गहडोरिहौं–(?)–मथकर गदला कर दूँगा। उ० सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं। (वि० २५८)

गहन (१)–(सं० ग्रहण)–१. ग्रहण, पकड़ना, २. सूर्य तथा चंद्र आदि का ग्रहण, ३. कलंक, ४. दुःख, कष्ट, ५. बंधक, रेहन।

गहन (२)–(सं०)–१. गम्भीर, गहरा, २. दुर्गम, घना, ३. कठिन, भयंकर, दुरूह, ४. कुंज, निकुंज, ५. जल। उ० ३. सकल संघट पोच, सोचबस सर्बदा दास तुलसी विषय-गहन-ग्रस्तम्। (वि० ५६)

गहनि (२)–(सं० गहन)–घोर, विकराल, भयंकर। उ० ग्राह अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हौं। (वि० २६०)

गहनु (१)–(सं० ग्रहण)–ग्रहण, पकड़ना। दे० 'गहन(१)'। उ० समउ राहु रवि-गहनु-मत, राजहिं पुजहिं कलेस। (प्र० ७।२।४)

गहनु (२)–(सं० गहन)–गंभीर, कठिन। दे० 'गहन(२)'।

गहवर–(सं० गह्वर)–१. दुर्गम, विषम, २. व्याकुल, उद्विग्न, दुखी, ३. बेसुध, ४. किसी ध्यान में मग्न, ५. गुफा, ६. कुंज, वृक्षों से ढका स्थान। उ० १. नगरु सफल बनु गहबर भारी। (मा० २।८४।१)

गहबरि–दुःख से भरकर, व्याकुल होकर। उ० गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु। (मा० २।२८२) मु० गहबरि आयो–गला भर आया, करुणा से पूर्ण हो गए। उ० कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो। (गी० ५।१५)

गहर–(?)–देर, बिलंब।

गहरु–दे० 'गहर'। उ० बूझिए बिलंब कहा कहूँ न गहरु। (वि० २५०)

गहाए–पकड़ाए, धराए। उ० छोड़ति छोड़ाए तें, गहाए तें गहति। (वि० २४६)

गहागह–(सं० गद्गद)–बड़ी धूमधाम से। उ० बाज गहागह अवध बधावा। (मा० २।७।२)

गहागहे–धूमधाम से बजने लगे, धूमधाम होने लगी। उ० नभ पुर मंगल गान निसान गहागहे। (जा० ११८)

गहिराए (सं० गंभीर)–गहरे हो गए। अथाह हो गए। उ० गए सोक-सर सूखि, मोद-सरिता-समुद्र गहिराए। (गी० ६।२२)

गहीले–(सं० ग्रहण)–१. गहनेवाले, पकड़नेवाले, अपनानेवाले, २. ज़िद्दी, ३. घमंडी। उ० २. सो बल गयो, किधौं भए अब गर्ब-गहीले। (वि० ३२)

गह्वर–(सं०)–१. अंधकारमय या गूढ़ स्थान, गुप्त स्थान, २. बिल, माँद, ३. गुफा, कंदरा, ४. लतागृह, कुंज, ५. झाड़ी, ६. जंगल, ७. पाखंड, ८. जल, ९. कठिन, दुर्गम, १०. गुप्त, छिपा।

गाँठ–(सं० ग्रंथि)–१. रस्सी डोरी या तागे आदि में पड़ी उलझन जो खिंचने पर कड़ी और दृढ़ हो जाती है, गिरह, २. कपड़े आदि में दी गई गाँठ जिसमें पैसा या कोई अन्य चीज़ बँधी हो। ३. मनमोटाव, बैर-भाव, ४. अंग का जोड़, ५. गठरी, गट्ठर।

गाँठरी–(सं० ग्रंथि)–गठरी, गट्ठर। उ० भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की। (क० ७।१५८)

गाँठि–दे० 'गाँठ'। उ० १. गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की। (गी० १।८६)

गाँठी–दे० 'गाँठ'। उ० २. मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी। (मा० १।१३५।३)

गाँडर–(सं० गंडाली)–मूँज की तरह की एक घास जिसकी पत्ती पतली और लम्बी होती है। इसी की जड़ को खस कहते हैं। उ० बाज सुराग कि गाँडर ताँती। (मा० २।२४१।३)

गाँथे–(सं० ग्रंथन)–गूथे, गूँथे।

गाँव–(सं० ग्राम)–देहात में वह स्थान जहाँ बहुत से किसानों-मजदूरों आदि का घर हो, छोटी बस्ती। उ० गाँव बसत, वामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे। (वि० ८)

गाँसी–(सं० ग्रंथन)–हथियारों के आगे का तेज भाग, धार, नोक।

गाँहक–दे० 'गाहक'। उ० १. गाँहक गरीब को दयालु दानि दीन को। (वि० ६६)

गा–(सं० गम्)–१. गया, जाना क्रिया का भूतकालिक रूप, २. जाना, ३. गामिनी, जानेवाली। उ० १. नाम लेत कलिकाल हूँ हरि पुरहिं न गा को? (वि० १५२)

२. जो प्रभु पार अवसि गा चहहू। (मा० २।१००।४) ३. त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पापछालिका। (वि० १७)
गाइ (१)-(सं० गान)-गाकर, गुणगान कर, प्रशंसा कर। उ० तरै तुलसीदास भव तन-नाथ-गुन गन गाइ। (वि० ४१) गाइए-दे० 'गाइय'। उ० १. जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए। (मा० ७।२८। छं० १) गाइबी-गाऊँगा, यश का वर्णन करूँगा। उ० तुलसी सो तिहुँ भुवन गाइबी नंद सुवन सनमानी। (कृ० ४८) गाइय-१. गाइए, बखानिए, वर्णन कीजिए, २. गाता हूँ, वर्णन करता हूँ। गाइयत-गाता है, गाते हैं। उ० बाँकी बिरुदावलि बिदित बेद गाइयत। (ह० ३१) गाइये-दे० 'गाइए'। गाइहैं-गान करेंगे, वर्णन करेंगे। उ० भूरि भाग तुलसी तेउ जे सुनिहैं, गाइहैं, बखानिहैं। (गी० १।७८) गाइहौं-गाऊँगा। उ० चारु चरित रघुबंस-तिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं। (गी० १।१८)
गाई (१)-(सं० गान)-१. गीत गाया, वर्णन किया, २. गाई हुई, बखानी हुई, ३. गा करके, बखान कर। उ० १. मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। (मा० १।१३।५)
गाउ-गाओ, वर्णन करो। उ० परम पावन प्रेम-परमिति समुझि तुलसी गाउ। (गी० ७।२५) गाउब-गावेंगे, गाऊँगा। उ० ब्याह उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउब। (जा० ७६) गाऊँ (१)-गान करूँ। गाए-१. गाया, गाया है, २. गाने से। उ० १. भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए। (मा० १।३३।४) गायंति-गाते हैं, गान करते हैं। उ० गायंति तव चरित सुपवित्र श्रुति सेस सुक संभु सनकादि मुनि मननसीला। (वि० ५२) गायऊ-गाया है, गाते हैं। उ० यह चरित कलिमलहर जथा मति दास तुलसी गायऊ। (मा० ५।६०। छं०१) गाया-गान किया, गान किया है। उ० सिव विश्राम बिटप श्रुति गाया। (मा०१।१०६।२) गाये-१. गान किया, बखाना, २. गाने से, वर्णन करने से। गायो-गान किया, बखाना, प्रशंसा की। उ० बाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कब साम को? (वि० ६६) गाव-(सं० गान)-गाते हैं, कहते हैं, प्रशंसा करते हैं। उ० संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव। (मा० १।४५) गावई-गाता है, बखानता है, कहता है। उ० रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई। (मा० ४।३०। छं० १) गावउँ-१. गाता हूँ, बतलाता हूँ, २. गाऊँ, बतलाऊँ। उ० १. परम रहस्य मनोहर गावउँ। (मा०७।७४।२) गावत-१. गाता है, बखानता है, २. गाते हुए, वर्णन करते हुए, ३. गाने पर। उ० १. अलिगन गावत नाचत मोरा। (मा० २।२३६।४) गावति-१. गाती है, २. गाते हुए, बखानते हुए, ३. गाने पर, वर्णन करने पर। गावतीं-१. गाती हैं, २. गाती हुई। उ० २. आरती सँवारि बर नारि चलीं गावतीं। (क० १।१३) गावहिं-गाते हैं, वर्णन करते हैं। उ० रामकथा गावहिं श्रुति सूरी। (मा० ७।१२६।१) गावहि-१. गाता है, २. गा। उ० २. तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना। (मा० ५।६०। छं० १) गावहीं-गाते हैं, वर्णन करते हैं। उ० उपवीत ब्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं। (जा० २१६) गावा-गाते हैं, गान किया है, कहा है। उ० संत पुरान उपनिषद गावा। (मा० १।४६।१) गावै-१. गाता है, २. गाये। गावौं-१. गान करता हूँ, वर्णन करता हूँ, २. गाऊँ, बखानूँ। उ० २. तौन सिराहिं कल्प सत लगि, प्रभु, कहा एक मुख गावौं? (वि० १४२)
गाइ (२)-(सं० गो)-गाय, धेनु। गाइगोठ-दे० 'गाय-गोठ'। उ० गाइगोठ महिसुर पुर जारें। (मा० २।१६७।३) गाइन्ह-गाय का बहुवचन, गायों। उ० अंबर अमर हरषत बरषत फूल, सनेह-सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं। (कृ० २०)
गाई (२)-(सं० गो)-गाय, धेनु। उ० राम कथा कलि कामद गाई। (मा० १।३१।४)
गाउँ-(सं० ग्राम)-गाँव, छोटी बस्ती। उ० नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं। (मा० १।१८३।३)
गाऊँ (२)-गाँव, छोटी बस्ती। उ० करि अनाथ जन परि-जन गाऊँ। (मा० २।४७।२)
गाज (१)-(?)-पानी आदि का फेन, झाग।
गाज (२)-(सं० गर्ज)-१. गर्जन, शोर, २. बिजली। उ० २. गाज्यो कपि गाज ज्यों। (क० ५।८)
गाजत-(सं० गर्ज)-१. गरजते हैं, प्रसन्न होते हैं, २. गर्जन करते हुए, हुंकारते हुए, खुश होते हुए। उ० २. तुलसी ते गाजत फिरहिं राम-छत्र की छाँह। (स० ७२) गाजहिं-प्रसन्न होते हैं, गरजते हैं। उ० हय गय गाजहिं हने निसाना। (मा० १।३०४।२) गाजी-गरजी, तड़तड़ा कर गिरी, प्रसन्न हुई। उ० लाज गाज उनवनि कुचाल कलि परी बजाइ कहूँ कहुँ गाजी। (कृ० ६१) गाजे-१. गर्जे, २. प्रसन्न हुए, ३. गर्जने पर, प्रसन्न होने पर। गाज्यो-गर्जना की, हुंकारा, प्रसन्न हुए। उ० गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि। (क० ६।६) गाज्यौ-१. गर्जन किया, प्रसन्न हुआ, २. गरजता हुआ, प्रसन्न होता हुआ। उ० २. गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं। (क० १।१८)
गाजन-(सं० गर्जन)-१. प्रसन्न होना, गर्जना, २. गर्जने-वाला, ३. नाश करनेवाला।
गाडर (१)-(सं० गड्डरी)-भेंड़। उ० गाडर लाए ऊन कों लाग्यो चरन कपास। (स० ५३) मु० गाडर के ढरन-भेंड़ियाधसान। बिना सोचे समझे किसी एक को एक ओर जाते देख सभी का उधर ही चल देना। उ० तुलसी गाडर के ढरन जानो जगत बिचार। (स० ३५८)
गाडर (२)-(सं० गंडाली)-मूँज की तरह की एक घास।
गाड़-(सं० गर्त)-गड्ढा, खत्ता। उ० रुधिर गाड़ भरि-भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ। (मा० ६।५३)
गाड़हि-(सं० गर्त)-गाड़ देते हैं, गाड़ते हैं। उ० निसिचर भट महि गाड़हि भालू। (मा० ६।८१।४) गाड़ि-१. गाड़ कर, २. गाड़ दिया। उ० २. गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू। (मा० २।२१२।२) गाड़े-१. गाड़ दिया, ढक दिया, १. गाड़ना, ढकना, तोपना। उ० २. गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बहिबे ही। (कृ० ४०)
गाड़ी-(सं० शकट)-पहियों के ऊपर ठहरा हुआ ढाँचा जिसे

आदमी, बैल, घोड़े, या मशीन आदि से खींचा जाता है। यान, शकट। उ० गाड़ी के स्वान की नाईं माया मोह की, बड़ाई छिनहिं तजत, छिन भजत बहोरिहौं। (वि० २५८)

गाड़ैं–गड्ढे। उ० कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ैं मानौ। (ह० ७)

गाढ़–(सं०)–१. अतिशय, बहुत, २. दृढ़, मज़बूत, ३. घना गाढ़ा, ४. गहरा, अथाह, ५. कठिन, विकट, ६. आपत्ति, संकट, ७. जुलाहों का करघा। गाढ़ी (१)–'गाढ़' का स्त्रीलिंग। उ० २. देखी माया सब बिधि गाढ़ी। (मा० १।२०२।२)

गाढ़ा–दे० 'गाढ़'। उ० २. कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। (मा० ३।२८।७)

गाढ़ी (२)–(सं० घटन)–गढ़ी हुई।

गाढ़े–दे० 'गाढ़'। ज़ोर से, दृढ़ता से। उ० लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। (मा० १।२६१।४)

गात–(सं० गात्र)–शरीर, अंग। उ० गरहिं गात जिमि आपतप ओरे। (मा० २।१४७।४) गातहि–शरीर को। उ० जलज बिलोचन स्यामल गातहि। (मा० ७।३०।२)

गाता (१)–(सं० गान)–गवैया, गानेवाला। उ० जयति रानअजिर-गंधर्वगनगर्वहर फेरि किये राम-गुन गाथ-गाता। (वि० ३६)

गाता (२)–दे० 'गात'। उ० सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। (मा० १।६३।२)

गातु–दे० 'गात'। उ० नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि-पुनि हरषत गातु। (मा० १।८१)

गात्र–(सं०)–शरीर, गात।

गाथ–(सं०)–१. गान, गीत, २. स्तोत्र, प्रशंसा, स्तुति, ३. गाथा कथा। उ० ३. देहिं असीस जो हारि सब गावहिं गुन गन गाथ। (मा० १।३२१)

गाथा–(सं०)–१. स्तुति, प्रशंसात्मक गीत, स्तोत्र, २. गीत, गाना, ३. कथा, ४. कथनी, वार्ता। उ० ३. बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा। (मा० १।१०५।४)

गाथैं–(सं० ग्रंथन) १. गुँथे हुए, लगाए हुए, २. गूँथे। उ० १. मंगलमय मुकुता मनि गाथैं। (मा० १।३२७।५) गाथे–दे० 'गाथैं'। उ० १. गाथे महामनि मौरमंजुल अंग सब चित चोरहीं। (मा० १।३२७। छं० १)

गादुर–(?)–चमगादड़। उ० ते नर गादुर जानि जिय करिय न हरष बिषाद। (दो० ३८७)

गाधि–(सं०)–विश्वामित्र के पिता का नाम। ये कुशिक राजा के पुत्र थे। उ० जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुल चंदु। (मा० १।३६०)

गाधी–दे० 'गाधि'।

गाधेय–(सं०)–विश्वामित्र, गाधि-पुत्र। उ० जयति गाधेय-गौतम-जनक सुखजनक विस्वकंटक-कुटिल कोटिहंता। (वि० ३८)

गानं–(सं०)–१. गाने की क्रिया, गाना, २. गाने की चीज़, गीत। उ० १. भ्रमत आमोद बस मत्त मधुकर-निकर मधुरतर मुखर कुर्वंति गानं। (वि० ५१) गानहिं–१. गान को, २. गान। उ० २. पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं। (मा० ७।४२।३)

गाना–(सं० गान)–१. ताल-स्वर के नियम के साथ शब्दोच्चारण करना, २. मधुर ध्वनि करना, ३. वर्णन करना, ४. प्रशंसा करना, ५. गीत, ६. गाने की क्रिया। उ० ३. कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। (मा० १।११।४)

गापत–(सं० कल्प)–१. गप मारता है, बकता है, २. गप मारते हुए।

गामिनि–दे० 'गामिनी'। उ० १. चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि। (मा० १।३१७)

गामिनी–(सं०)–१. चलनेवाली, चालवाली, २. जानेवाली। उ० २. अमित महिमा अमितरूप भूपावली मुकुटमनि-वंदिते लोकत्रयगामिनी। (वि० १८)

गामी–(सं० गामिन्)–१. चलनेवाले, चालवाला, २. गमन करनेवाला, संभोग करनेवाला। उ० २.सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी। (मा० ७।११२।२)

गाय–(सं० गो)– एक मादा चौपाया जिसके नर को साँड़ या बैल कहते हैं। उ० रोगसिंधु क्यों न डारियत गाय-खुर कै। (ह० ४३)

गायक–(सं०)–गवैया, गानेवाला। उ० पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। (मा० २।३७।३)

गायगोठ–(गो+गोष्ठी)–गोशाला, गायों के रहने की जगह।

गारा–(सं० गालन)–१. मिट्टी या चूने आदि को पानी में सानकर बनाई गई गीली चीज़, जिससे ईंट की जुड़ाई होती है। २. निचोड़ा, ३. गलाया।

गारि (१)–(सं० गालन)–१. गारकर, निचोड़कर, २. गलाकर, घोलकर। उ० १. अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार। (दो० ३२८)

गारि (२)–(सं० गालि)–गाली। निंदा या व्यंग्य भरे शब्द। उ० दे० 'गारि (१)'।

गारी–दे० 'गारि (२)'। उ० दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी। (मा० २।१३०।२)

गारुड़–(सं० गारुड)–वह मंत्र जिसका देवता गरुड़ हो। साँप का विष उतारनेवाला मंत्र।

गारुड़ि–(सं० गरुडिन्)–सर्प का विष उतारनेवाला, साँप झाड़नेवाला। उ० तवस्वरूप गारुड़ि रघुनायक। (मा० ७।६३।४)

गारुड़ी–दे० 'गारुड़ि'।

गारो (१)–(सं० गर्व)–१. घमंड, अहंकार, २. मान, गौरव, ३. गुरु, बड़ा। उ० १. तौ हरि रोस भरोस दोस गुन तेहिं भजते तजि गारो। (वि० ६४)

गारो (२)–(सं० गालन)–१. गलाया, २. गार दिया, निचोड़ा।

गारो (३)–(सं० गालि)–निन्दा, बुराई, गाली देना। उ० गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो। (गी० २।६६)

गारो (४)–(अर० ग़ार)–गड्ढा, कन्दरा, गुफा।

गाल–(सं० गल्ल) १. कपोल, चेहरे के दोनों ओर का कोमल भाग, २. बड़बड़ाने का स्वभाव, बकवाद करने की आदत,

३. मध्य, बीच, ४. मुँह, ५. ग्रास, कौर, वह अन्न जो एक बार मुँह में डाला जा सके। मु० गाल करब–मुँहजोरी करूँगा, बढ़ बढ़ कर बातें करूँगा। उ० गालु करब केहि कर बलु पाई। (मा० २।१४।१) मु० गाल फुलाउब–१. अभिमान प्रकट करूँगा, २. नाराज हूँगा। उ० २. हँसब ठठाइ फुलाउब गाला। (मा० २।३५।३) गाल बजाई–डींग मार कर, बढ़ बढ़ कर बातें कर। उ० व्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। (मा० १।२४६।१) गाल बड़–बढ़ बढ़ कर बात करनेवाला। उ० हँसि कह रानि गाल बड़ तोरें। (मा० २।१३।४) गाल मारै–डींग मारे, सीटे, बढ़ बढ़कर बातें करे। उ० क्यों न मारै गाल बैठो काल-डाढ़नि बीच। (गी० ५।६)

गालगूल–(सं० गल्ल)–व्यर्थ की बात, गपशप, अनाब शनाब। उ० हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत। (वि० १३०)

गालव–(सं०)–पुराणों में गालव नाम के कई व्यक्तियों का उल्लेख है। जो गालव अधिक प्रसिद्ध हैं, विश्वामित्र के अंतेवासी थे। विद्या समाप्त करने पर इन्होंने अपने गुरु विश्वामित्र से दक्षिणा माँगने का आग्रह किया। इनके हठ से चिढ़ कर विश्वामित्र ने ८०० स्यामकर्ण घोड़े माँगे। गालव ने अपने मित्र गरुड़ के साथ जाकर राजा ययाति से इसके लिए प्रार्थना की। ययाति ने अपनी पुत्री माधवी को उन्हें सौंप दिया। गालव ने क्रमशः हर्य्यश्व, दिवोदास और उशीनर को माधवी को देकर उनसे दो दो सौ घोड़े लिए। इस प्रकार ६०० घोड़े तो इकट्ठे हो गए पर २०० का प्रबंध वे न कर सके। अंत में ६०० घोड़े और माधवी उन्होंने गुरु विश्वामित्र को दिए। इस प्रकार वे गुरुदक्षिणा से मुक्त हुए। अपने इस हठ के कारण उन्हें इतनी परेशानी उठानी पड़ी अतः उनका यह हठ प्रसिद्ध है। उ० हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस। (मा० २।६१)

गाला–दे० 'गाल'। उ० दे० 'गाल फुलाउब'।

गालु–दे० 'गाल'।

गालू–दे० 'गाल'।

गावन– गान करना, गाना, बखानना। उ० हरषित लगीं सुवासिनि मंगल गावन। (पा० ६६) गावनि–गान करना, गाना। उ० सो निसि सोहावनि, मधुर गावनि, बाजने, बाजहिं भले। (जा० १८०)

गाह (१)–(सं० ग्रहण)–१. पकड़, २. घात, ३. ग्राहक, चाहनेवाला।

गाह (२)–(सं० ग्राह)–मगर, पानी का एक जानवर।

गाहक–(सं० ग्राहक)–१. खरीदार, मोल लेनेवाला, अभिलाषी, प्रेमी, २. अवगाहन करनेवाला। उ० १. जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन। (मा०१।३३६)

गाहकताई–ग्राहकता, क़दरदानी। उ० कह कपि तव गुन गाहकताई। (मा० ६।२४।३)

गाहा (१)–(सं० गाथा)–कथा, वर्णन, वृत्तांत। उ० करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। (मा० १।८।३)

गाहा (२)–(सं० ग्रहण)–खरीददार, ग्रहण करनेवाला। उ० खल अघ अगुन साधु गुन गाहा (मा० १।६।१)

गिद्ध–(सं० गृध्र)–१. एक प्रकार का बड़ा पक्षी जो मांसाहारी होता है। २. जटायु। रामायण का प्रसिद्ध गिद्ध। दे० 'जटायु'। उ० २. सदगति सबरी गिद्ध की सादर करता को?

गिनत–(सं० गणन)–१. गिनता है, २. समझता है, ३. प्रतिष्ठा करता है, ४. गिनते हुए, ५. समझते हुए, ६. प्रतिष्ठा करते हुए। उ० २. सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम दोइ। (वै० ३१) गिन्यौ–१. गणना की, गिना, २. प्रतिष्ठा की।

गिनती–गणना, शुमार, संख्या, तादाद। उ० केहि गिनती महँ गिनती जस बनघास। (ब० ५६)

गिर (१)–(सं० गिरि)–१. पहाड़, पर्वत, २. एक प्रकार के गोसाईं।

गिर (२)–(सं० गिरा)–वाणी, ज़बान। गिरहु (१)–(सं० गिरा)–वाणी में, जबान में, भाषा में। उ० हरि-हर-जस सुर-नर-गिरहु, बरनहिं सुकबि-समाज। (दो० १६७)

गिरजा–दे० 'गिरिजा'।

गिरन–गिरने, नीचे आने। उ० रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं। (मा० ६।६२) गिरहिं–१. गिरते हैं, २. गिर पड़तीं। उ० २. गिरहिं न तव रसना अभिमानी। (मा० ६।३३।४) गिरहु (२)–(सं० गलन)–गिरो। गिरि (१)–१. गिरकर, नीचे आकर, २. अवनति-कर। उ० १. गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि, तोतरि बोलत पूप देखाए। (गी० १।२६) गिरिगो–गिर गया। उ० गिरिगो गिरिराज ज्यों गाज को मारो। (क० ६।३८) गिरि परनि–गिर पड़ना, लुढ़क जाना। उ० परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि। (गी० १।२५) गिरिहहिं–गिरेंगी, गिरेंगे। उ० गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। (मा० ६।३३।५) गिरी (१)–(सं० गलन)–१. गिर पड़ी, २. गिरी हुई। गिरे–१. गिरने में, गिरने से, २. गिरे हुए, ३. गिर पड़े, असफल हुए। उ० १. सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। (मा० ६।१४।२) गिरौं–(सं० गलन)–गिरूँ, गिर पड़ूँ, गिर पड़ूँगी। उ० दे० 'गिरि'।

गिरवान–(सं० गीर्वाण)–देवता, देव, सुर।

गिरह–(फ़ा०)–१. गाँठ, ग्रन्थि, २. कलैया, उलटी। उ० २. गगन गिरह करिबो कबै तुलसी पढ़त कपोत। (स० १५६)

गिरा–(सं०)–१. बोलने की शक्ति, २. जीभ, ज़बान, ३. वाणी, भाषा, बोली, बोल, बचन, ४.सरस्वती देवी। उ० ४. गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। (मा० १।१८) ५. सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू। (मा० १।३६१।३) गिरापति–(सं०)–सरस्वती के पति, ब्रह्मा, विधाता। उ० गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति। (जा० १)

गिरिंद–(सं० गिरि+इन्द्र)–१. बड़ा पहाड़, २. सुमेर पर्वत, ३. हिमालय।

गिरिंदा–दे० 'गिरिंद'। उ० २. भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा। (मा० ५।३५।२)

गिरि (२)–(सं०)–१. पर्वत, पहाड़, २. एक प्रकार के संन्यासियों का संप्रदाय, ३. पार्वती के पिता, ४. हिमाचल,

४. चित्रकूट पर्वत। उ० १. तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं। (मा० १।६३। छं० १) ३. कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए। (मा० १।६६।३) गिरिन–१. गिरि का बहुवचन, २. पहाड़ों से। उ० २. मानहुँ गिरिन गेरु-झरना झरत हैं। (क० ६।४६) गिरिनाथा–(सं० गिरिनाथ)–१. शिव, महादेव, २. हिमाचल पर्वत। उ० १. कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा। (मा० १।४८।३) गिरिनारि–(सं०)–हिमाचल की स्त्री तथा पार्वती की माता। मैना। उ० भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि। (मा० १।६६) गिरिनारिहि–मैना (पार्वती की माता) को। उ० जुआ खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहि। (पा० १५०) गिरिन्ह–पर्वतों, गिरि का बहुवचन। उ० मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा। (मा० ४।३०।४) गिरिपतिहि–गिरिपति को, हिमाचल को। उ० सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। (मा० १।६१।१) गिरिभव–पर्वत से उत्पन्न। उ० सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा। (मा० १।८०।३) गिरिसुता–पार्वती। उ० बिज्ञान-भवन, गिरिसुता-रमन। (वि० १३) गिरिहिं–दे० 'गिरिहि'। गिरिहि–गिरि को, हिमाचल को। उ० सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी। (मा० १।७३।३)

गिरिजहि–गिरिजा को, पार्वती को। उ० अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस। (मा० १।७०) गिरिजा–(सं०)–१. हिमालय की कन्या, पार्वती. गौरी, २. गंगा। उ० १. गिरिजा-मन-मानस-मराल, कासीस, मसान-निवासी। (वि० ६)

गिरिजापति–(सं०) पार्वती के पति, शंकर, शिव। उ० गिरिजा-पति कल आदि इक नक्खत हरि जुध जान। (स० २४८)

गिरिजारमन–(सं० गिरिजारमण)–महादेव। उ० चरित सिंधु गिरिजारमन बेदन पावहिं पारु। (मा० १।१०३)

गिरिजावर–पार्वती के वर या पति, महादेव। उ० तुलसिदास त्रैलोक्य माम्य भयो कारन इहै गह्यौ गिरिजावर। (कृ० ३१)

गिरिधारी–(सं० गिरिधारिन्)–पहाड़ को धारण करनेवाले, श्री कृष्ण। विशेष–ब्रज पर जब इन्द्र रुष्ट हो गए, और मुसलाधार वर्षा करने लगे तो कृष्ण ने अपनी उँगली पर पर्वत उठाकर ब्रजवालों की रक्षा की थी। तभी से इनका नाम गिरिधर तथा गिरिधारी आदि पड़ा।

गरिबर–(सं० गिरिवर)–१. हिमालय, हिमाचल, २. चित्रकूट, ३. सुमेरु, ४. कैलाश, ५. गोवर्द्धन पर्वत, ६. कामदनाथ पर्वत, ७. कोई बड़ा पहाड़। उ० १. चले मुदित मुनिराज गए गिरिवर पहँ। (पा० ६१) २. रामदेहु गौरव गिरिबरहू। (मा० २।१३२।४) गिरिबरहू–गिरिबर को भी। उ० दे० 'गिरिबर'।

गिरिबरु–दे० 'गिरिबर'। उ० ६. गिरिबरु दीख जनक पति जबहीं। (मा० २।२७५।१)

गिरिराज–(सं०)–१. बड़ा पर्वत, २. हिमालय, पार्वती के पिता, ३. सुमेरु, ४. गोवर्द्धन। गिरिराजकुमारि–दे० 'गिरिराजकुमारी'। उ० सुनु गिरिराजकुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम। (मा० १।११५) गिरिराजकुमारी–हिमाचल की बेटी, पार्वती। उ० धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। (मा० १।११२।३)

गिरी (२)–(सं० गिरि)–१. पहाड़, पर्वत, २. एक प्रकार के संन्यासी। उ० १. जो करत गिरी तें तरु तृन तें तनक को। (क० ७।७३)

गिरीशं–दे० 'गिरीश'। उ० ५. गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं। (मा० ७।१०८। श्लो० २) गिरीश–(सं०)–१. बड़ा पर्वत, २. सुमेरु, ३. हिमालय, हिमाचल, ४. कैलाश, ५. शिव, महादेव।

गिरीस–दे० 'गिरीश'। उ० ३. होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस। (मा० १।७०)

गिरीसा–दे० 'गिरीश'। उ० ५. चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा। (मा० १।५५।४)

गिलई–(सं० गिरण)–किसी चीज को बिना दाँतों से तोड़े निगल जाय, लील जाय, भीतर कर ले, छिपा ले। उ० तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। (मा० २।२३२।१) गिलहिं–निगल जाय, निगल जाते हैं। उ० सहबासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक-प्रवीन। (दो० ४०४) गिल्यो–निगल लिया, खा लिया। उ० नाम सों प्रीति-प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको। (क० ७।६०)

गीत–(सं०)–१. गाने की चीज, गाना, २. यश, कीर्ति, बड़ाई, ३. जिसका यश गाया जाय। उ० १. नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब। (मा० १।६३)

गीता–दे० 'गीत'। उ० १. गावहिं सुंदरि मङ्गल गीता। (मा० १।२६७।४)

गीध–(सं० गृध्र)–१. पक्षी विशेष, गिद्ध, २. जटायु। उ० २. कीस, केवट, उपल, भालु, निसिचर, सबरि, गीधसम-दम-दया-दान-हीनै। (वि० १०६) गीधपति–गिद्धों के राजा जटायु। उ० तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीच। (दो० २२२) गीधराज–दे० 'गीधपति'। उ० गीधराज सुनि आरत बानी। (मा० ३।२६।४) गीधहि–गिद्ध की, गीध पक्षी की। उ० मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार। (मा० ४।२८)

गीरवान–दे० 'गीर्वाण'। उ० तेरे गुनगान सुनि गीरवान पुलकित। (ह० ३३)

गीर्वाण–(सं०)–देवता, सुर।

गीवाँ–ग्रीवा पर, ग्रीवा या गर्दन में। उ० रेखें रुचिर कंबुकल गीवाँ। (मा० १।२४३।४) गीवा–दे० 'ग्रीवा'। गर्दन। उ० उर मनिमाल कंबुकल गीवा। (मा० १।२३३।४)

गुंज (१)–(सं०)–१. भौंरों के भनभनाने का शब्द, गुंजार, आनंद, ध्वनि, २. गुंजार करते हैं। उ० २. गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। (मा० २।१३७।४)

गुंज (२)–(सं० गुंजा)–घुँघची। गुंजनि–गुंजा का बहुवचन, घुँघुचियों का समूह। उ० उलटे-पलटे-नाम-महातम गुंजनि जितो ललामो। (वि० २२८)

गुंजत–गुंजार करते हैं, गूँजते हैं, हर्षध्वनि करते हैं। उ० बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा। (मा० १।८६। छं० १) गुंजहिं–गुंजार करते हैं। उ० कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा। (मा० १।१२६।१)

गुंजन–(सं०)–भँवरों के गूँजने की क्रिया, भनभनाहट।

गुंजा–(सं०)–घुँघुची, एक लता जो झाड़ियों पर चढ़ती है। इसके फल का कुछ भाग लाल और कुछ काला होता है। उ० गुंजा ग्रहइ परम मनि खोई। (मा० ७।४४।२)

गुंजारहीं–गुंजार करते हैं, गुंजन कर रहे हैं। उ० बहुरंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं। (मा० ७।२६। छं० १) गुंजारे–गुंजार किए, गुंजन किए। उ० मंजुतर मधुर मधुकर गुंजारे। (गी०१।३५)

गुंड–(?)–मलार राग का एक भेद। उ० राम-सुजस सब गावहीं सुसुर सुसारँग गुंड। (गी० ७।१६)

गुंइयाँ–दे० 'गोइयाँ'।

गुच्छ–(सं०)–एक में लगे या बँधे कई फूलों, फलों या पत्तों का समूह, गुच्छा। उ० गुच्छ बीच बिच कुसुमकली के। (मा० १।२३३।१)

गुड़ी–(?)–गुड्डी, पतंग, चंग, काग़ज़ की बनी एक चौकोर चीज़ जिसे लोग सूत में बाँधकर उड़ाते हैं। उ० संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं। (मा० ३।२०। छं० २)

गुड्डी–दे० 'गुड़ी'।

गुढ़ि–(सं० घटन)–गढ़कर, काट-छाँटकर। उ० गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडकि-सिला सुभाय। (दो० ३६२)

गुण–(सं०) १. किसी चीज़ में पाई जानेवाली वह बात जिसके द्वारा वह चीज़ दूसरी चीज़ से पहिचानी जाय। धर्म, स्वभाव, सिफ़त, २. निपुणता, ३. कला, हुनर, ४. तासीर, प्रभाव, फल, ५. अच्छा स्वभाव, शील, सद्वृत्ति, ६. रस्सी, सूत, डोरा, ७. प्रकृति के तीन गुण, सत्व, रज और तम, ८. वह रस्सी जिससे मल्लाह नाव खींचते हैं। ९. कविता के गुण (ओज, प्रसाद, माधुर्य) विशेष, १०. वासना, ११. धनुष की रस्सी, १२. तीन की संख्या, १३. गुना (जैसे दुगुना)। उ० ५. यस्य गुण गण गनति बिमल मति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११)

गुणज्ञ–(सं०)–गुणों को जाननेवाला, गुणों को पहचानने वाला, गुणों का आदर करनेवाला।

गुणद–(सं०)–गुण देनेवाला, गुणकारी, लाभकर।

गुणातीत–(सं०) सत्व, रज और तम गुणों से परे, निर्गुण। यह शब्द भगवान के लिए प्रयुक्त होता है।

गुथये–(सं० गुत्सन)–पिरोये, गुँथे हुए। उ० कहत सशोक बिलोकि बंधु-मुख बचन प्रीति गुथये हैं। (गी० ६।५)

गुदरत–(फा० गुज़र)–१. अलग करना, छोड़ना, अलग करता है, २. निवेदन करना, हाल कहना, निवेदन करता है। उ० १. मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। (मा० २।२४०।३) गुदरि–१. निवेदन कर, कहकर, २. अलग कर, टालकर। उ० १. चीन्हों चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि, प्रभु सों गुदरि निबर्यो हौं। (वि०२६६)

गुदारा–(फा० गुज़ारा)–नाव पर नदी पार करने की क्रिया, उतारा। उ० २. भा भिनुसार गुदारा लागा। (मा० २।२०२।४)

गुन–दे० 'गुण'। उ० ६. धुनि अवरेब कबित गुन जाती। (मा०१।३७।४) १३. देत एक गुन लेत कोटिगुन भरिसो। (वि० २६४) गुनउ (१)–गुण भी। उ० गुनउ बहुत कलि-जुग कर बिनु प्रयास निस्तार। (मा०७।१०२ क) गुनद–दे० 'गुणद'। उ० स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान। (मा० १।१० ख०) गुनानि–गुन का बहुवचन, गुणों। उ० भवपंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे। (मा० ७।१३। छं०२) गुन-वर्जित–निर्गुण, गुणरहित। उ० कुजन-पाल गुन-वर्जित, अकुल, अनाथ। (ब० ३५) गुनहिं (१)–१. गुण को, २. गुण में। उ० २. तब तजि दोष गुनहिं मनु राता। (मा० १।७।१) गुनानी–(सं० गुण+अणी)–गुणों के समूह। उ० राम अनंत अनंत गुनानी। (मा० ७।५२।२)

गुनइ–(सं० गुणन) विचार करता है, सोच रहा है। उ० अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। (मा०२।४५।२) गुनउँ–विचारता, विचारता हूँ। सोचता था। उ० समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा। (मा० ७।११०।३) गुनऊँ–विचारता, सोचता था। उ० एहि बिधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ। (मा०७।११२।६) गुनत–१.सोचते हुए, सोचते, २.विचार करता है। उ० १.असमन गुनत चले मग जाता। (मा० २।२३४।२) गुनहिं (२)–सोचते हैं। गुनहु (१)–(सं० गुण) विचारो, समझो, समझ लेना, सोच लेना। गुनहू (१)–दे० 'गुनहु (१)'। उ० आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू। (मा० २।६११।१) गुनि–विचार कर, समझकर, सोचकर। उ० धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा। (मा० १।१६७।२) गुनिअ–१. गुनो, विचारो, २. विचारने में। उ० १. देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। (मा०२।६२।४) गुनिए–सोचिए, विचारिए। उ० मेरे जान और कछु न मन गुनिए। (कृ० ३७) गुनिय–१. विचारिए, २. विचारना चाहिए, ३. विचारता हूँ, बिचारा। उ० ३. सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै। (वि० ११६) गुनु–समझ लो, विचार लो। उ० उगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ भू गुनु साथ। (दो० ४५७)

गुनग्य–दे० 'गुणज्ञ'। उ० सोइ गुनग्य सोई बड़ भागी। (मा० ४।२३।४)

गुननिधि–(सं० गुणनिधि)–१. गुणों का घर, २. एक ब्राह्मण का नाम, जिसने शिवरात्रि के दिन दर्शन के बहाने शिव मंदिर में जाकर शृंगार के आभूषण चुराए और भाग निकला। पुजारियों ने उसका पीछा किया और पकड़कर इतना मारा कि वह मर गया। शंकर ने दया करके यह समझकर कि उसने अपने प्राण मुझको अर्पित कर दिए, उसे यम-यातना से मुक्त करके कैलाश पर स्थान दिया। उ० २. कवनि भगति कीन्हीं गुननिधि द्विज। (वि० ७)

गुनवंत–गुणवाला, गुणी। उ० कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना। (मा० ७।६८।३)

गुनवंता–दे० 'गुनवंत'। उ० धरमसील ग्यानी गुनवंता। मा० १।२१२।३)

गुनह–(फ़ा० गुनाह)–अपराध, पाप, क़ुसूर, दोष। उ० गुनह लखन कर हम पर रोषू। (मा० १।२८१।३) गुनहु (२)–गुनाह भी, दोष भी। गुनहू (२)–दे० 'गुनहु (२)'।

गुनातीत-दे० 'गुणातीत'। उ० गुनातीत सचराचर स्वामी। (मा० ३।३६।१)
गुनानि-दे० 'गुनानी'।
गुनित-गुना, गुणित। उ० गृह तें कोटि-गुनित सुख मारग चलत, साथ सचु पावोंगी। (गी० २।६)
गुनिन्ह-गुणियों से। उ० पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। (मा० २।२१।४) गुनिहिं-गुणी को, गुणवान को। उ० गनिहिं गुनिहिं साहिब लहै सेवा समीचीन को। (वि० २७४) गुनी-गुणी, गुणवाला, कारीगर। उ० पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। (मा० १।२८७।४)
गुपुत-दे० 'गुप्त'। उ० १. तातें गुपुत रहउ जग माहीं। (मा० १।१६२।१)
गुप्त-(सं०)-१. छिपा हुआ, पोशीदा, २. रक्षित, ३. गूढ़। उ० १. गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ। (मा० १।४८ क)
गुमान-(फा०)-१. अनुमान, अंदाज़, कयास, विचार, २. गर्व, घमंड, अहंकार, ३. संदेह। उ० २. ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान। (मा० ७।६२ क)
गुमानी-(फा० गुमान)-घमंडी, गर्व करनेवाला। उ० मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी। (मा० २।१७२।३)
गुमानु-दे० 'गुमान'। उ० २. कलपांत न पास गुमानु असा। (मा० ७।१०२।२)
गुर-(सं० गुरु)-१. गुरु, आचार्य, २. मूल मंत्र, वह साधन जिससे कार्य शीघ्र सिद्ध हो जाय। उ० १. धाइ धरे गुर चरन सरोरुह। (मा० ७।५।२) गुरहि-गुरु को। उ० तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। (मा० २।१२६।४)
गुरुं-(सं०)-गुरु को। उ० वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्। (मा० १।१। श्लो० ३) गुरु-(सं०)-१. गुरू, आचार्य, विद्या सिखानेवाला, उस्ताद, २. देवताओं के गुरु बृहस्पति, ३. अपने से बड़े, पिता आदि, ४. बड़ा, भारी, वज़नी, ५. गरिष्ट, जो खाने पर शीघ्र न पचे, ६. ब्रह्मा, ७. विष्णु, ८. महेश। उ० १. बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि। (मा० १।१। सो० ५) ३. हरगिरिं तें गुरु सेवक धरमू। (मा० २।२५३।३) गुरुहिं-गुरु को। गुरुहि-गुरु को। गुरुआ-(सं० गुरु) गुरु का हीनता द्योतक रूप, बुरे गुरु, अयोग्य और ढोंगी आचार्य। उ० ते तुलसी गुरुआ बनहिं कहि इतिहास पुरान। (स० ३६४)
गुरुता-१. भारीपन, गुरुत्व, २. बड़प्पन। उ० १. करहु चाप गुरुता अति थोरी। (मा० १।२५७।४)
गुरुमुख-दीक्षित, जिसने गुरु से मंत्र लिया हो।
गुरुविनी-(सं० गुर्विणी)-गर्भवती, सगर्भा। उ० गुरुविनी सुकुमारि सिय तियमनि समुझि सकुचाहिं। (गी० ७।२६)
गुरू-दे० 'गुरु'। उ० १. कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई। (मा० २।२७।३)
गुर्वि-(सं० गुर्वी)-१. गर्भवती, २. बड़ी, महान, भारी, उत्तम, ३. श्रेष्ठ स्त्री। उ० ३. निगम-आगम-अगम, गुर्वि तव गुण कथन उर्विधर करै सहस जीहा। (वि० १५)
गुर्विणी-(सं०)-गर्भवती, सगर्भा।
गुर्वी-दे० 'गुर्वि'। उ० २. वारिचर-वपुषधर, भक्त-निस्तार-पर, धरनि कृत नाव महिमाति गुर्वी। (वि० ५२)

गुल (१)-(फा०)-१. गुलाब का फूल, २. फूल, पुष्प।
गुल (२)-(फा० गुल)-शोर, हल्ला।
गुलाम-(अर०)-मोल लिया हुआ दास, नौकर, दास, सेवक। उ० सुभाव समुझत मन मुदित गुलाम को। (क० ७।१४) गुलामनि-गुलाम का बहुवचन, गुलामों, सेवकों। उ० कामरिपु राम के गुलामनि को कामतरु। (क० ७।१६७)
गुलुफ-(सं० गुल्फ)-एड़ी के ऊपर की गाँठ। उ० चरन पीठ उन्नत नत-पालक, गूढ़ गुलुफ, जंघा कदली जति। (गी० ७।१७)
गुल्म-(सं०)-१. ऐसा पौधा जो जड़ से कई होकर निकले, २. सेना का एक समुदाय जिसमें ६ हाथी, ६ रथ, २७ घोड़े और ४५ पैदल होते हैं। ३. पेड़ का एक रोग।
गुसाँई-(सं० गोस्वामी)-१. जितेन्द्रिय, संन्यासी, बहुत बड़ा साधु, २. स्वामी, मालिक, ३. प्रभु, ईश्वर, ४. श्रेष्ठ, बड़ा, ५. गौओं का स्वामी।
गुहँ-गुह ने, निषाद ने। उ० यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। (मा० २।८८।१) गुह-(सं०)-१. कार्तिकेय, २. घोड़ा, ३. निषाद जाति का एक नायक जो श्रृंगवेरपुर में रहता था और राम का भक्त था। ४. भील, ५. मल्लाह, माँझी। गुहहि-गुह को, निषाद को। उ० ग्राम वासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु। (मा० २।८८)
गुहा (१)-(सं०)-गुफा, कंदरा। उ० हिम गिरि गुहा एक अति पावनि। (मा० १।१२५।१)
गुहा (२)-(सं० गुह)-निषाद, मल्लाह, केवट। उ० सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल। (मा० ६।१२१।५)
गुहारी-दे० 'गोहारी'।
गुहिबे-(सं० गुंफन)-गूथने, एक में पिरोने। उ० तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृगनयनि बुलावौं। (गी० १।१५) गुहौं-गूथूँ, बनाऊँ, पिरोऊँ। उ० उबटौं न्हाहु, गुहौं चोटिया, बलि, देखि भलो वर करिहिं बड़ाई। (कृ० १३)
गूँगेहि-(फा० गुंग)-गूँगे पर, न बोलनेवाले पर। उ० भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू। (मा० २।३०७।२)
गूँजहिं-(सं० गुंजन)-गुंजार करते हैं, मधुर ध्वनि करते हैं।
गूढ़-(सं० गूढ)-गुप्त, छिपा हुआ, रहस्ययुक्त, जटिल, अबोधगम्य। उ० गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधर बुधि रानि। (मा० २।१६) गूढ़उ-गूढ़ भी, रहस्यमय भी। उ० गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। (मा० १।११०।१)
गूढ़ा-दे० 'गूढ़'। उ० चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। (मा० १।४७।२)
गूदा-(सं० गुप्त)-१. किसी चीज़ का सार भाग जो छिलके या ऊपरी आवरण के भीतर रहता है। २. भेजा, मग्ज़, खोंपड़ी का सार भाग। उ० २. सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से। (क० ६।५०)
गून-(सं० गुण)-१. गुण, हुनर, २. गुना, गुणा, जैसे दुगुना, चौगुना आदि। उ० २. अंक रहित कछु हाथ नहिं, अंक सहित दस गून। (स० १३४)
गूलर-(उदुंबर)-बट-पीपल वर्ग का एक पेड़ जिसमें गोल गोल फल लगते हैं। पकने पर फल लाल और सुंदर होते

हैं, पर भीतर फोड़ने पर बहुत से कीड़े निकलते हैं। इन कीड़ों का संसार वह गूलर का फल ही होता है। इसी लिए बाहरी बातों को न जाननेवाले को 'गूलर का कीट' कहा जाता है।

गूलरि–दे० 'गूलर'। उ० गूलरि फल समान तव लंका। (मा० ६।३४।२)

गृध्र–(सं०)–१. गिद्ध, गीध, चील से बड़ा एक पक्षी, २. जटायु। उ० २. गृध्र-शबरी-भक्ति-विवश करुणासिंधु। (वि० ४३) गृध्रराज–गिद्धों में श्रेष्ठ अर्थात् जटायु।

गृह–(सं०)–१. घर, मंदिर, मकान, २. वंश, कुटुंब। उ० १. गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै। (क० २।६)

गृहप–(सं०)–१. घर का मालिक, २. चौकीदार, घर का रक्षक। गृहपशु–दे० 'गृहपसु'। गृहपसु–(सं० गृहपशु)–घर का जानवर, कुत्ता। उ० लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै। (वि० ८६)

गृहपाल–(सं०)–१. घर का रक्षक, चौकीदार, २. कुत्ता। उ० १. या २. गृहपाल हू तें अति निरादर, खान पान न पावई। (वि० १३६)

गृहस्थ–(सं०)–१. ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर, विवाह करके घर में रहनेवाला व्यक्ति, घरवाला, बाल-बच्चोंवाला आदमी, २. वह जिसके यहाँ खेती आदि होती हो।

गृहस्वामिनि–(सं० गृहस्वामिनी)–घर की मालकिन, स्त्री, घरनी। उ० सादर सासु चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृहस्वामिनि। (गी० २।५)

गृही–(सं० गृहिन्)–गृहस्थ, गृहस्वामी, घरवाला, बाल-बच्चों वाला। उ० गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगत कहुँ देखि। (मा० ४।१३)

गेंडुआ–(सं० गंडुक)–तकिया, सिरहाना। उ० करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास। (दो० ४६१)

गे–(सं० गम्)–१. गए, गमन किए, २. नष्ट हुए। उ० १. सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका। (मा० १।१८४।छं० १) गेते–गए थे, गए रहे। उ० तिन्ह के काज साधु-समाज तजि कृपासिंधु तब तब उठि गेते। (वि० २४२) गै–गई, जाती रही, नष्ट हो गई। उ० गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। (मा० १।१५६।१) गो (१)–(सं० गम्)–१. गया, चला गया, २. नष्ट हो गया। उ० १. उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो। (क० ४।१)

गेरु–(सं० गवेरुक)–एक प्रकार की लाल मिट्टी। उ० मानहुँ गिरिन गेरु-झरना झरत हैं। (क० ६।४६)

गेरू–दे० 'गेरु'।

गेहँ–गेह को, गेह में। दे० 'गेह'। उ० साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ। (मा० २।२४) गेह–(सं० गृह)–घर, मकान, धाम, महल। उ० देह गेह सब सन तृनु तोरें। (मा० २।७०।३)

गेहनी–दे० 'गेहिनी'।

गेहा–दे० 'गेह'। उ० जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। (मा० १।६२।३)

गेहिनी–गृहिणी, घरनी, स्त्री। उ० ज्ञान अवधेस, गृह-गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार हर्त्ता। (वि० ५८)

गेहु–दे० 'गेह'। उ० बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु। (मा० २।१३१)

गेहू–दे० 'गेह'। उ० भयउ पुनीत आजु यहु गेहू। (मा० २।६।४)

गैन–(अर० गैन)–अरबी, फारसी तथा उर्दू का एक अक्षर (ग़)। उ० बिन्दु गए जिमि गैन तें रहत ऐन को ऐन। (स० ३६२)

गैहहिं–(सं० गान)–गावेंगे। उ० तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं। (मा० ५।१६।३) गैहैं–गावेंगे। उ० प्रेम पुलकि आनंद मुदित मन तुलसिदास कल कीरति गैहैं। (गी० ५।५१) गैहै–गावेगा। उ० तुलसिदास पावन जस गैहै। (गी० ५।५०) गैहौं–गाऊँगा, बखान करूँगा। उ० स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं। (वि० १०४)

गोंड़–(सं० गोण्ड)–१. एक जंगली जाति, २. एक राग। उ० १. गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल। (दो० ५५६)

गो (२)–(सं०)–१. गाय, २. किरण, ३. वृषराशि, ४. इंद्रिय, ५. बोलने की शक्ति, वाणी, ६. सरस्वती, ७. आँख, दृष्टि, ८. बिजली, ९. पृथ्वी, १०. दिशा, ११. माता, जननी, १२ दूध देनेवाले पशु। बकरी, भैंस आदि, १३. जीभ, १४. बैल, १५. घोड़ा, १६. सूर्य, १७. चंद्रमा, १८. बाण, १९. गवैया, २०. प्रशंसक, २१. आकाश, २२. स्वर्ग, २३. जल, २४. वज्र, २५. शब्द, २६. नौ का अंक, २७. शरीर के रोम। उ० १. सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका। (मा० १।१८४। छं० १) ९. गोखग, खेखग, बारिखग तीनों माहिं बिसेक। (दो० ५३८)

गो (३)–(फा०)–१. यद्यपि, २. कहनेवाला।

गोइ–(सं० गोपन)–१. छिपाकर, २. छिपा हुआ, गुप्त, ३. छिपा लिया, छिपाया। उ० २. नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ। (मा० ७।१२३ ख) गोइहहिं–छिपावेंगे। उ० निरखि नगर नर नारि बिहँसि मुख गोइ-हहिं। (पा० ६४) गोई–दे० 'गोइ'। उ० ३. ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई। (मा० २।२७।३) गोऊ–छिपाओ, छिपाइए। उ० कृपन ज्यों सनेह सो हिए-सुगेह गोऊ। (गी० २।१६) गोए–१. छिपाए, छिपाए हुए, २. छिपे रहते हैं, ३. छिपाने से। उ० २. जे हर हृदय कमल महुँ गोए। (मा० १।३२८।३) गोवति–(सं० गोपन)–छिपाती है। उ० सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों हहरी हृदय, बिकल भइ भारी। (कृ० ६०) गोये–(सं०गोपना) छिपाए। गोयो–छिपाया, दुराया। उ० तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो। (वि० २४५)

गोइयाँ–(सं० गोधन)–साथ गाय चरानेवाले, साथ खेलने-वाले, साथी, सहचर। उ० सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये। (गी० १।४३)

गोकुल–(सं०)–१. गौओं का झुंड, २. गौशाला, गौओं के रहने की जगह, ३. मथुरा के पूर्व-दक्षिण एक प्राचीन गाँव

हैं, पर भीतर फोड़ने पर बहुत से कीड़े निकलते हैं। इन कीड़ों का संसार वह गूलर का फल ही होता है। इसी लिए बाहरी बातों को न जाननेवाले को 'गूलर का कीट' कहा जाता है।

गूलरि–दे० 'गूलर'। उ० गूलरि फल समान तव लंका। (मा० ६।३४।२)

गृध्र–(सं०)–१. गिद्ध, गीध, चील से बड़ा एक पक्षी, २. जटायु। उ० २. गृध्र-शबरी-भक्ति-विवश करुणासिंधु। (वि० ४३) गृध्रराज–गिद्धों में श्रेष्ठ अर्थात् जटायु।

गृह–(सं०)–१. घर, मंदिर, मकान, २. वंश, कुटुंब। उ० १. गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै। (क० २।६)

गृहप–(सं०)–१. घर का मालिक, २. चौकीदार, घर का रक्षक। गृहपशु–दे० 'गृहपसु'। गृहपसु–(सं० गृहपशु)–घर का जानवर, कुत्ता। उ० लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै। (वि० ८६)

गृहपाल–(सं०)–१. घर का रक्षक, चौकीदार, २. कुत्ता। उ० १. या २. गृहपाल हू तें अति निरादर, खान पान न पावई। (वि० १३६)

गृहस्थ–(सं०)–१. ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर, विवाह करके घर में रहनेवाला व्यक्ति, घरवाला, बाल-बच्चोंवाला आदमी, २. वह जिसके यहाँ खेती आदि होती हो।

गृहस्वामिनि–(सं० गृहस्वामिनी)–घर की मालकिन, स्त्री, घरनी। उ० सादर सासु चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृहस्वामिनि। (गी० २।५)

गृही–(सं० गृहिन्)–गृहस्थ, गृहस्वामी, घरवाला, बाल-बच्चों वाला। उ० गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगत कहुँ देखि। (मा० ४।१३)

गेंडुआ–(सं० गंडुक)–तकिया, सिरहाना। उ० करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास। (दो० ४६१)

गे–(सं० गम्)–१. गए, गमन किए, २. नष्ट हुए। उ० १. सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका। (मा० १।१८४।छं० १) गेते–गए थे, गए रहे। उ० तिन्ह के काज साधु-समाज तजि कृपासिंधु तब तब उठि गेते। (वि० २४२) गै–गई, जाती रही, नष्ट हो गई। उ० गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। (मा० १।१५६।१) गो (१)–(सं० गम्)–१. गया, चला गया, २. नष्ट हो गया। उ० १. उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो। (क० ५।१)

गेरु–(सं० गवेरुक)–एक प्रकार की लाल मिट्टी। उ० मानहुँ गिरिन गेरु-झरना झरत हैं। (क० ६।४६)

गेरू–दे० 'गेरु'।

गेहँ–गेह को, गेह में। दे० 'गेह'। उ० साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ। (मा० २।२४) गेह–(सं० गृह)–घर, मकान, धाम, महल। उ० देह गेह सब सन तृनु तोरें। (मा० २।७०।३)

गेहनी–दे० 'गेहिनी'।

गेहा–दे० 'गेह'। उ० जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। (मा० १।६२।३)

गेहिनी–गृहिणी, घरनी, स्त्री। उ० ज्ञान अवधेस, गृह-गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार हर्त्ता। (वि० ५८)

गेहु–दे० 'गेह'। उ० बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु। (मा० २।१३१)

गेहू–दे० 'गेह'। उ० भयउ पुनीत आजु यहु गेहू। (मा० २।६।४)

गैन–(अर० गैन)–अरबी, फारसी तथा उर्दू का एक अक्षर (ग़)। उ० बिन्दु गए जिमि गैन तें रहत ऐन को ऐन। (स० ३६२)

गैहहिं–(सं० गान)–गावेंगे। उ० तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं। (मा० ५।१६।३) गैहैं–गावेंगे। उ० प्रेम पुलकि आनंद मुदित मन तुलसिदास कल कीरति गैहैं। (गी० ५।५१) गैहै–गावेगा। उ० तुलसिदास पावन जस गैहै। (गी० ५।५०) गैहौं–गाऊँगा, बखान करूँगा। उ० स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं। (वि० १०४)

गोंड़–(सं० गोण्ड)–१. एक जंगली जाति, २. एक राग। उ० १. गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल। (दो० ५५६)

गो (२)–(सं०)–१. गाय, २. किरण, ३. वृषराशि, ४. इंद्रिय, ५. बोलने की शक्ति, वाणी, ६. सरस्वती, ७. आँख, दृष्टि, ८. बिजली, ९. पृथ्वी, १०. दिशा, ११. माता, जननी, १२ दूध देनेवाले पशु। बकरी, भैंस आदि, १३. जीभ, १४. बैल, १५. घोड़ा, १६. सूर्य, १७. चंद्रमा, १८. बाण, १९. गवैया, २०. प्रशंसक, २१. आकाश, २२. स्वर्ग, २३. जल, २४. बज्र, २५. शब्द, २६. नौ का अंक, २७. शरीर के रोम। उ० १. सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका। (मा० १।१८४। छं० १) ९. गोखग, खेखग, बारिखग तीनों माहिं बिसेक। (दो० ५३८)

गो (३)–(फा०)–१. यद्यपि, २. कहनेवाला।

गोइ–(सं० गोपन)–१. छिपाकर, २. छिपा हुआ, गुप्त, ३. छिपा लिया, छिपाया। उ० २. नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ। (मा० ७।१२३ ख) गोइहहिं–छिपावेंगे। उ० निरखि नगर नर नारि बिहँसि सुख गोइ-हहिं। (पा० ६४) गोई–दे० 'गोइ'। उ० ३. ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई। (मा० २।२७।३) गोऊ–छिपाओ, छिपाइए। उ० कृपन ज्यों सनेह सो हिए-सुगेह गोऊ। (गी० २।१६) गोए–१. छिपाए, छिपाए हुए, २. छिपे रहते हैं, ३. छिपाने से। उ० २. जे हर हृदय कमल महुँ गोए। (मा० १।३२८। ३) गोवति–(सं० गोपन)–छिपाती है। उ० सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों हहरी हृदय, बिकल भइ भारी। (कृ० ६०) गोये–(सं० गोपना) छिपाए। गोयो–छिपाया, दुराया। उ० तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछु नहिं गोयो। (वि० २४५)

गोइयाँ–(सं० गोधन)–साथ गाय चरानेवाले, साथ खेलने-वाले, साथी, सहचर। उ० सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये। (गी० १।४३)

गोकुल–(सं०)–१. गौओं का झुंड, २. गोशाला, गौओं के रहने की जगह, ३. मथुरा के पूर्व-दक्षिण एक प्राचीन गाँव

जहाँ कृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था बिताई थी। उ० ३. गोकुल प्रीति नित नई जानि। (कृ० ५२)
गोखुर-(सं०)-१. गाय के पैर का नाखून, २. गाय के खुर का ज़मीन पर बना हुआ निशान। गोखुरनि-गायों के खुर के चिह्नों में, खुर के बने चिह्नों में भरे हुए जल में। उ० कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि। (ह० ३८)
गोघात-गोहत्या, गाय मारना। उ० होइ पाप गोघात समाना। (मा० ६।३२।१)
गोचर-(सं०)-१. गौओं के चरने का स्थान, चरागाह, २. वह विषय जिसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा हो सके, इन्द्रियों का विषय। उ० २. गो गोचर जहँ लगि मन जाई। (मा० ३।१५।२)
गोठ-(सं० गोष्ठ)-गायों के रहने का स्थान, गोशाला। उ० गाइ गोठ महिसुर पुर जारें। (मा० २।१६७।३)
गोड़-(सं० गम्)-पैर, पाँव, टाँग। उ० माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि। (दो० ४६४) गोड़नि-पैरों। चरणों। उ० कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ैं मानौ। (ह० ७) मु० गोड़ पसारि-निश्चिंत होकर। उ० दे० 'गोड़'। गोड़ की किए-दूध दूहते समय गाय के पैर बाँधने से। उ० हाथ कछू नहिं लागिहै किए गोड़ की गाइ। (दो० ५१२)
गोड़ियाँ-गोड़ का छोटा रूप, छोटे पैर, छोटी टाँगें। उ० छोटी-छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीलीं छोटी। (गी० १।३०)
गोड़िये-कोड़िए, मिट्टी को उलटिए, पेड़ की सेवा कीजिए। उ० तुलसी बिहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िये। (क० ७।२५)
गोत-दे० 'गोत्र'। उ० साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को। (क० ७।१०७)
गोतीतं-दे 'गोतीत'। उ० अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुंदा। (मा० १।१८६।छं० ३) गोतीत-(सं०)-इंद्रियों से परे, अगोचर, जो इंद्रियों से न जाना जा सके। उ० सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत। (मा० १।१६६)
गोतो-(अर० ग़ोतः)-पानी में डूबने की क्रिया, डुबकी। उ० ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो। (वि० १६१)
गोत्र-(सं०)-कुल, वंश, खान्दान, एक प्रकार का जाति विभाग।
गोद-(सं० क्रोड़)-वह स्थान जो वक्षस्थल के पास एक या दोनों हाथों का घेरा बनाने से बनता है। उत्संग, कोरा, ओली। उ० गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। (मा० २।५२।२)
गोदहिं-गोदावरी नदी को। उ० पंचबटी गोदहिं प्रनाम करि कुटी दाहिनी लाई। (गी० ३।११)
गोदावरि-दे० 'गोदावरी'। उ० मेकल सुता गोदावरि धन्या। (मा० २।१३८।२)
गोदावरी-(सं०)-दक्षिण भारत की एक नदी विशेष। यह पवित्र मानी जाती है।
गोप-(सं०)-गायों की रक्षा करनेवाला, ग्वाला, अहीर, ब्रज के अहीर। उ० तौ कत सुर मुनिबर बिहाय ब्रज गोप गेह बसि रहते? (वि० ६७) गोपहिं (१)-गोप को, ग्वाले को।
गोपद-(सं० गोष्पद)-१. गौओं के रहने का स्थान, २. पृथ्वी पर बना गाय के खुर का चिह्न जिसमें पानी भर जाता है। उ० २. भवबारिधि गोपद इव तरहीं। (मा० १।११९।२)
गोपनीय-(सं०)-छिपाने योग्य, गोप्य।
गोपर-इन्द्रियों से परे। उ० गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं। (मा० ३।३२।छं० १)
गोपहिं (२)-(सं० गोपन)-छिपाते हैं, छिपाते थे। उ० प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं। (जा० ६५) गोपि (१)-छिपाकर, दुरा कर, ओट करके।
गोपार-इन्द्रियों से परे, गोपर। उ० ज्ञान-गिरा-गोतीत, अज, माया-गुन-गोपार। (दो० ११४)
गोपाल-(सं०)-१. गो का पालन करनेवाला, अहीर, २. कृष्ण, ३. इन्द्रियों का पालनेवाला, मन।
गोपि (२)-(सं० गोपी)-ग्वालिन, ब्रज के अहीरों की स्त्रियाँ, गोपिका।
गोपिका-(सं०)-गोप की स्त्री, गोपी। उ० पंडुसुत, गोपिका, बिदुर, कुबरी सबहिं सोध किए सुद्धता लेस कैसो। (वि० १०६)
गोपित-(सं०)-छिपा हुआ, गुप्त। उ० जयति पाकारि सुत-काक-करतूति-फलदानि, खनि गर्त्त गोपित बिराधा। (वि० ४३)
गोपी-(सं०)-गोप की स्त्री, गोपिका, अहिरिन, ग्वालिन। उ० सीत-सभीत पुकारत आरत गो गोसुत गोपी ग्वाल। (कृ० १८)
गोप्य-(सं०)-छिपाने योग्य, गोपनीय, रक्षणीय। गोप्यम्-दे० 'गोप्य'। उ० पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास। (मा० ७।६६ ख)
गोबिंद-(सं० गोपेन्द्र)-१. कृष्ण, २. परब्रह्म, परमेश्वर, ३. वेदान्तवेत्ता, ४. इन्द्रियों का नियंत्रण करनेवाला, इन्द्रियों का ज्ञाता, ५. वेदों द्वारा जानने योग्य। उ० ५. गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं। (मा० ३।३२। छं० १)
गोमतीं-गोमती नदी में। उ० सई उतरि गोमतीं नहाए। (मा० २।३२२।३) गोमती-(सं०)-एक नदी, जो पीलीभीत के निकट एक पहाड़ी झील से निकलकर गाज़ीपूर जिले में गंगा से मिलती है।
गोमर-गाय को मारनेवाला, कसाई। उ० गोमर-कर सुरधेनु, नाथ! ज्यौं-त्यौं पर-हाथ परी हौं। (गी० ३।७)
गोमाय-दे० 'गोमायु'। उ० गोमाय गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने। (मा० ६।७८।छं० १)
गोमायु-(सं०)-गीदड़, सियार, शृगाल।
गोमुख-(सं०)-१. गाय का मुख, २. सीधा, दीन मुखवाला। गोमुख नाहर न्याय-ऊपर से गाय की तरह सीधा, पर असल में व्याघ्र की तरह क्रूर। उ० देखिहैं हनुमान गोमुख-नाहरनि के न्याय। (वि० २२०)
गोर-(सं० गौर)-गोरा, उज्ज्वल वर्ण का, साफ़। उ० काहे रामजिउ साँवर, लछिमन गोर हो। (रा० १२)
गोरख-(सं० गोरक्ष)-गोरखनाथ, एक प्रसिद्ध सिद्ध जो १५ वीं शताब्दी में हुए थे। इनका चलाया संप्रदाय

अब तक जारी है। उ० गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग। (क० ७।८४)

गोरस-((सं०)-१. दूध, २. इन्द्रियों का रस या सुख। उ० १. गोरस-हानि सहौं न कहौं कछु यहि ब्रजबास बसेरे। (कृ० ३)

गोरी-(सं० गौरी)-गोरे वर्ण की सुन्दर स्त्री, सुन्दरी। उ० साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृण तोरि। (क० १।१४)

गोरे-दे० 'गोर'। उ० सहज सुभाय सुभग तन गोरे। (मा० २।११७।३)

गोरो-दे० 'गोर'। उ० गोरो गरुर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको। (क० १।२०)

गोरोचन-(सं०)-पीले रङ्ग का एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो गौ के हृदय के पास उसके पित्त से निकलता है। यह बहुत पवित्र माना जाता है, और इसका तिलक आदि दिया जाता है। उ० भ्राजत भाल तिलक गोरोचन। (मा० ७।७७।३)

गोलक-(सं०)-आँख का ढेला, पलक से ढकनेवाले आँख के सफेद और काले भाग। उ० पलक बिलोचन गोलक जैसें। (मा० २।१४२।२)

गोला-(सं० गोल)-१. जिसका घेरा या परिधि वृत्ताकार हो, २. तोप आदि में भरा जानेवाला गोला जिससे शत्रुओं को मारते हैं। उ० २. ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले। (मा० ६।४६। छं० १)

गोली-१. किसी चीज़ का छोटा गोलाकार पिंड, २. दवा की बटी, ३. मिट्टी, काँच आदि के छोटे गोले जिसे लड़के खेलते हैं, ४. सीसे आदि का गोल या लंबा पिंड जो बंदूक में भरकर मारा जाता है। उ० ३. खेलत अवध-खोरि, गोली भौंरा चक डोरि। (गी० १।४१)

गोष्ठ-(सं०)-गोशाला, गाय का बाड़ा।

गोसाँइहि-गोस्वामी के, प्रभु के। उ० स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाँई। (मा० २।२९८।२) गोसाँई-दे० 'गुसाँई'। उ० २. बिहसि कहा रघुनाथ गोसाँई। (मा० ६।१०८।६)

गोस्वामी-(सं०)-१. इंद्रियों को वश में करनेवाला, जितेन्द्रिय, २. वैष्णव संप्रदाय में आचार्यों के वंशधर या उनकी गद्दी के अधिकारी, ३. गुरु, ४. ईश्वर, ५. राजा।

गोहार-(सं० गो+हरण)-१. पुकार, दुहाई, २. हल्ला-गुल्ला, शोर, ३. वह भीड़ जो रक्षा के लिए पुकार सुनकर इकट्ठी हुई हो।

गोहारी-१. सहायक, रक्षक, २. पुकार, ३. पुकारा, ४. शोर। उ० १. बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी। (मा० २।३१७।२)

गौं-दे० 'गवँ'। उ० ३. कल कुंडल, चौतनी चारु अति, चलत मत्त-गज-गौं हैं। (गी० १।६१) ४. स्याम सो गाहक पाइ सयानी खोलि देखाई है गौं हीं। (कृ० ४१)

गौंड-दे० 'गोंड़'। उ० २. झूलहिं झुलावहिं ओसरिन्ह गावैं सुहो गौंड-मलार। (गी० ७।१८)

गौ-(सं० गो)-गऊ, गाय।

गौतम-(सं०)-एक ऋषि जिन्होंने अपनी स्त्री अहल्या को इंद्र के साथ अनुचित संबंध करने के कारण शाप देकर पत्थर बना दिया था। दे० 'अहल्या'। गौतमतिय-गौतम की स्त्री अहल्या। उ० गौतमतिय गति सूरति करि नहिं परसति पग पानि। (मा० १।२६५) गौतमनारि-गौतम की स्त्री अहल्या। उ० गौतमनारि श्राप बस उपलदेह धरि धीर। (मा० १।२१०) गौतमनारी-दे० 'गौतम-नारि'।

गौन (१)-(सं० गौण)-१. अप्रधान, जो प्रमुख न हो, २. अधीन, ३. कम, घटी हुई। उ० ३. तुलसिदास प्रभु! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन। (गी० ५।२०)

गौन (२)-(सं० गमन)-१. गमन करना, जाना, २. गौना, पत्नी का विवाह के बाद प्रथम बार पति के घर जाना, ३. गति।

गौनु-दे० 'गौन (२)'। उ० १. भरतहि बिसरेउ पितुमरन सुनत राम बन गौनु। (मा० २।१६०)

गौने-(सं० गमन)-१. गए, चले, चले गए, २. गौना, ब्याह के बाद स्त्री का पति के घर जाना। उ० १. गौने मौन ही बारहि बार परि-परि पाय। (गी० ७।३१)

गौरं-गोरा, गौर वर्ण। उ० तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। (मा० ७।१०८। छं० ३) गौर (१)-(सं०)-१. गोरा, साफ चमड़े का, २. श्वेत, उज्ज्वल, ३. लाल रङ्ग, ४. पीला, ५. चंद्रमा, ६. कैलास के उत्तर में स्थित एक पर्वत। उ० १. कर्पूर गौर, करुना उदार। (वि० १३)

गौर (२)-(अर० ग़ौर)-सोच-बिचार, चिंतन, ख्याल।

गौरव-(सं०)-१. बड़प्पन, महत्त्व, २. गुरुता, भारीपन, ३. सम्मान, आदर, ४. उन्नति, बढ़ती, उ० १. राम देहु गौरव गिरिबरहू। (मा० २।१३२।४)

गौरा-(सं० गौर)-१. पार्वती, गौरी, २. गोरे रङ्ग की स्त्री।

गौरानाथ-पार्वती के पति, शंकर।

गौरि-(सं० गौरी)-पार्वती, शंकर की स्त्री। उ० सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ। (मा० १।१५)

गौरी-(सं०)-१. पार्वती, २. गोरे रङ्ग की स्त्री। उ० १. सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी। (वि० २५०)

गौरीनाथ-शिव, शंकर।

गौरीश-(सं०)-पार्वती के पति, महादेव, शंकर।

गौरीस-दे० 'गौरीश'। उ० सिंधुसुत-गर्व-गिरि-बज्र, गौरीस, भव, दक्षमख-अखिल-विध्वंसकर्त्ता। (वि० ४९)

गौरीसा-दे० 'गौरीश'। उ० तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा। (मा० १।१०४।२)

गौरोचन-दे० 'गोरोचन'।

ग्याता-(सं० ज्ञातृ)-जाननेवाला, ज्ञानी। उ० तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। (मा० २।१४३।१)

ग्याति-(सं० जाति)-भाई-बंधु। सगोत्रीय, जाति या कुटुंब के लोग। उ० अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु। (मा० १।१८९)

ग्यान-(सं० ज्ञान)-१. बोध, जानकारी, प्रतीति, २. आत्म-ज्ञान, तत्वज्ञान, ३. पहिचान। उ० २. प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन। (मा० १।१७) ग्यानहि-ज्ञान में, तत्वज्ञान में। उ० ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। (मा० ७।११५।६)

ग्यानवंत-ज्ञानवान, ज्ञानवाला। उ० ग्यानवंत अपि सो नर पशु बिनु पूँछ बिषान। (मा० ७।७८ क)

ग्याना–दे० 'ज्ञान'। उ० १. कवनेउ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना। (मा० ७।१०६।४)
ग्यानातीत–(सं० ज्ञानातीत)–ज्ञान से परे, जो ज्ञान द्वारा न जाना जा सके। उ० माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता। (मा० १।१६२। छं० २)
ग्यानिन्ह–ज्ञानियों, ज्ञानी का बहुवचन। उ० जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। (मा० ७।५९।३) ग्यानिहु–ग्यानी भी। उ० ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी। (मा० ७।८६।३)
ग्यानी–(सं० ज्ञानी)–ज्ञानवाले, बुद्धिमान। उ० कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। (मा० १।३३।२)
ग्यानु–दे० 'ग्यान'। उ० अबला बिबस ग्यानु गुन गा जनु। (मा० २।४८।२)
ग्रंथ–(सं०)–पुस्तक, किताब। उ० सद्ग्रंथ पर्वत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे। (मा० १।८४। छं० १)
ग्रंथन्हि–ग्रंथ का बहुवचन, ग्रंथों, पुस्तकों। उ० सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाए। (मा० ५।२९।२)
ग्रंथि–(सं०)–१. गाँठ, दो रस्सी या किसी चीज का आपस में उलझ जाना। २. बंधन, माया, जाल, ३. विवाह की एक रीति, गठबंधन, जिसमें पति का डुपट्टा और पत्नी का अंचल बाँध दिया जाता है। उ० १. जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। (मा० ७।११७।२) ३. बंदन बंदि ग्रंथिबिधि करि धुव देखेउ। (पा० १४६)
ग्रंथित–(सं० ग्रथन)–१. गूँथा हुआ, पिरोया हुआ, २. गाँठ दिया हुआ, जिसमें गाँठ लगी हो।
ग्रथित–दे० 'ग्रंथित'। उ० २. मंगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी। (गी० १।१०३)
ग्रसइ–(सं० ग्रसन)–१. ग्रसता है, पकड़ता है, २. पकड़े, ग्रसे। उ० १. बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू। (मा० १।२८१।३) ग्रसत–पकड़ता है, ग्रसता है, निगलता है। उ० जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक। (मा० ५।३६) ग्रससि–१. पकड़े, पकड़ ले, २. खाले। उ० २. ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना। (मा० ५।२।३) ग्रसि–१. पकड़कर, २. खाकर, भक्षणकर। उ० १. जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू। (मा० १।१२६।३) ग्रसे–१. पकड़े, पकड़ लिए, दबा लिए, २. जकड़े हुए, पकड़े हुए। उ० १. कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच। (मा० १।११४) ग्रसेउ–ग्रस लिया, भक्षण कर लिया, जकड़ लिया था। उ० संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। (मा० ७।९३।३) ग्रसै–पकड़े, जकड़े, पकड़ लेता है। उ० बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं। (वि० १११) ग्रसौ–पकड़ लिया। ग्रस्यो–पकड़ लिया, पकड़ा। उ० पसु पाँवर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह। (वि० १४४)
ग्रसन–(सं०)–१. ग्रहण, पकड़, २. भक्षण, निगलना, ३. इतनी दृढ़ता से पकड़ना की छूट न सके। ४. एक असुर का नाम। उ० १. संशय सर्प ग्रसन उरगादः। (मा० ३।११।५)
ग्रसित–पकड़ा हुआ, ग्रस्त, फँसा हुआ। उ० किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़। (मा० १।३० ख)
ग्रस्त–(सं०)–१. पकड़ा हुआ, २. पीड़ित, ३. खाया हुआ।
ग्रस्तम्–दे० 'ग्रस्त'। उ० १. सकल संघट पोच, सोच बस सर्बदा दास तुलसी विषय-गहन-ग्रस्तम्। (वि० ५६)
ग्रह–(सं०)–१. सूर्यादि नवग्रह। ये कभी कभी विपरीत स्थान पर आकर आदमियों को कष्ट देते हैं, २. नक्षत्र, तारे, ३. बुरी तरह सतानेवाला, ४. ग्रहण, पकड़, थाम, ५. बालकों के एक प्रकार के रोग, ६. ९ की संख्या। उ० १. पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत, भूत ग्रह बेताल खग मृगालि-जालिका। (वि० १६) विशेष–सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु, ये नवग्रह हैं।
ग्रहइ–पकड़ता है, ग्रहण करता है। उ० गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई। (मा० ७।४४।२) ग्रहत–पकड़ता है, ग्रहण करता है, खाता है। ग्रहै–१. पकड़े, स्वीकार करे, ले, २. पकड़े हुए, लिए हुए, ३. पकड़ता है, ग्रहण करता है।
ग्रहण–(सं०)–दे० 'ग्रहन'।
ग्रहदसा–(सं० ग्रह + दशा)–१. नवग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी मनुष्य की भली या बुरी अवस्था, २. अभाग्य, ३. ग्रहों का बुरा होना। उ० ३. जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई। (मा० २।१२।४)
ग्रहन–(सं० ग्रहण)–१. सूर्य तथा चंद्र का ग्रहण, उनका या उनके किसी भाग का छाया पड़ने से दृष्टि से ओझल होना। २. पकड़ना, पकड़ने की क्रिया, ३. स्वीकार, मंजूर। उ० २. पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। (मा० १।१०१।२)
ग्रहीत–(सं० गृहीत)–ग्रस्त, पकड़ा हुआ, ग्रहण किया हुआ। उ० ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार। (मा० २।१८०)
ग्राम–(सं०)–१. छोटी बस्ती, गाँव, २. समूह, झुंड। उ० १. गनी गरीब ग्राम नर नागर। (मा० १।२८।३) ग्रामहिं–१ ग्रामों को, २. समूहों को। ग्रामहि–१ ग्राम को, गाँव को, २. समूह को। उ० २. प्रेम समेत गाव गुन-ग्रामहि। (मा० ७।१०३।३) ग्रामै–१. गाँव को, २. समूह को। उ० २. जाको जस सुनत, गावत गुन ग्रामै। (गी० ५।२५)
ग्रामा–दे० 'ग्राम'। उ० २. सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। (मा० ७।११५।४)
ग्रामु–दे० 'ग्राम'।
ग्राम्य–(सं०)–१. ग्रामीण, ग्राम का, २. गँवार, मूर्ख, ३. असली, छल-कपट रहित, ४. एक काव्य दोष, ५. अश्लील वाक्य या शब्द, ६. मैथुन। उ० १. गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान। (मा० १।१० ख)
ग्रास–(सं०)–१. उतना भोजन जो एक बार मुँह में डाला जा सके, कौर, २. पकड़, गिरफ़्त, पकड़ने की क्रिया, ३. सूर्य या चंद्रमा का ग्रहण लगना। उ० २. जयति जय बाल कपि-केलि-कौतुक-उदित-चंडकर मंडल-ग्रासकर्त्ता। (वि० २५)
ग्रासन–१. ग्रसनेवाले, २. ग्रसने के लिए। उ० १., २. अज्ञान-राकेस-ग्रासन बिधुंतुद, गर्ब-काम-करिमत्त-हरि दूषनारी। (वि० ५८)
ग्राह–(सं०)–१. मगर, घड़ियाल, २. ग्रहण करना, पक-

ड़ना, ३. वह ग्राह जिसने गज को पकड़ा था और जिसे विष्णु ने मारकर गज को मुक्त किया था। दे० 'गज'। उ० १. लोभ ग्राह दनुजेस क्रोध, करुराज-बंधु खल मार। (वि० ६३)

ग्राहक-(सं०)-ग्रहण करनेवाला, खरीददार।

ग्राही-(सं०)-१. वह जो ग्रहण करे, संग्रही, २. प्रशंसा करनेवाला, पहचाननेवाला, चाहनेवाला, ३. कब्ज करनेवाली चीज़, ४. कपित्थ, कैंत।

ग्रीव-दे० 'ग्रीवा'। उ० सोभा सींवँ ग्रीव चिबुकाधर बदन अमित छबि छाई। (वि० ६२)

ग्रीवाँ-दे० 'ग्रीवा'। ग्रीवा-(सं०)-सिर और धड़ को जोड़नेवाला अंग, गर्दन, गला। उ० चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा। (मा० १।१४७।१)

ग्रीषम-दे० 'ग्रीष्म'। उ० ग्रीषम दुसह राम बन गवनू। (मा० १।४२।२)

ग्रीष्म-(सं०)-१.गर्मी की ऋतु, गर्मी। यह ऋतु कुछ लोगों के अनुसार बैसाख और जेठ तथा कुछ लोगों के अनुसार जेठ और अषाढ़ में मानी गयी है। २. उष्ण, गरम।

ग्लानि-(सं०)-१. शारीरिक या मानसिक शिथिलता, अनुत्साह, २. खेद, दुःख, ३. मन की एक वृत्ति जिसमें अपने किसी कार्य की बुराई या दोष आदि को देखकर अनुत्साह, अरुचि और खिन्नता उत्पन्न होती है। अरुचि, अनास्था। ४. लज्जा। उ० २. अंबरीष को साप सुरति करि।अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै। (वि० १३७)

ग्लानी-दे० 'ग्लानि'। उ० ३. अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। (मा० १।१८४।२)

ग्वाल-(सं० गोपाल)-अहीर, गोप, ब्रज के अहीर। उ० करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुबतिन तेहि नाच नचायो। (वि० ९८) ग्वालिनि-ग्वाल की स्त्री, अहिरिन, गोपिका। उ० बिनु आपर को गीत गाइ गाइ चाहत ग्वालिनि ग्वाल रिझाए। (कृ० ५०) ग्वालिनी-दे० 'ग्वालिनि'। उ० जोग-जोग ग्वालिनी बियोगिनि जान-सिरोमनि जानी। (कृ० ४७)

ग्वालि-ग्वालिनी, गोपी। उ० ग्वालि बचन सुनि कहति जसोमति भलो न भूमि पर बादर छीबो। (कृ० ६)

घ

घंट-(सं० घट)-१. घड़ा, मिट्टी या लोहे का बड़ा बर्तन, गगरा, २. मृतक-क्रिया में प्रयुक्त होनेवाला वह जल-पात्र जो पीपल के पेड़ में टाँगा जाता है। ३. धातु का बना औंधे बर्तन के आकार का घंट या घंटी जिसमें एक ललरी लटकती रहती है और जो हिलने से घंट की दीवाल से टकराकर आवाज़ उत्पन्न करती है। ऐसे घंट शिवमंदिरों में टँगे रहते हैं तथा हाथियों पर लटकाए जाते हैं। घंटियाँ घंटी गाय-बैल आदि जानवरों के गले में बाँधी जाती है। घंट से टन्-टन् और घंटी से टुन-टुन की आवाज निकलती है। ४. समय की सूचना या पूजा आदि के लिए बजाया जानेवाला चपटा एवं वृत्ताकार धातुखंड, घड़ियाल। यह मुँगरी या लकड़ी से बजाया जाता है। उ० ३. चले मत्त गज घंट बिराजी। (मा० १।३००।१)

घंटा-दे० 'घंट'। उ० ३. लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी। (वि० २२)

घंटि-दे० 'घंट'।

घ-१. घंटा, २. घुँघुरू, ३. तीर, ४. बादल।

घई (१)-(गंभीर)-१. गंभीर भँवर, पानी का चक्कर, २. जिसकी थाह न लग सके, अत्यंत गहरा, अथाह। उ० २. प्रीति-प्रतीति-रीति-सोभासरि थाहत जहँ जहँ तहँ घई। (गी० ५।३८)

घई (२)-(?)-थूनी, टेक।

घट (१)-(सं०)-१. कुंभ, कलश, घड़ा, २. शरीर, पिंड, ३. उर, हृदय, मन, ४. कुंभ राशि। उ० १. यथा पट-तंतु, घट-मृत्तिका, सर्प-स्रग, दारु-करि, कनक-कटकांगदादी। (वि०५४)

घट (२)-(सं० कर्त्तन)-घटा हुआ, कम, थोड़ा, छोटा। उ० अट घट लट नट नादि जहँ तुलसी रहित न जान। (स० ५७६)

घट (३)-(सं० घट्ट)-नदी का घाट, नदी का किनारा। उ० तौ घर घट बन बाट महँ कतहुँ रहे किन देह। (स० ११२)

घट (४)-(सं० घटन)-सटीक, सुन्दर, शोभायमान।

घटइ (१)-(सं० कर्तन)-१. कम होता है, कटता है, २. कम होगा, ३. कम हो जाय। उ० १. घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। (मा० १।२३८।१) घटत (१)-(सं० कर्तन)-कम होता है। उ० साँवरे बिलोके गर्ब घटत घटनि के। (क० २।१६) घटति (१)-(सं० कर्त्तन)-घटती है, कम होती है। उ० राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह। (दो० ६६) घटहु-(सं० कर्त्तन)-कम हो, घट जाय। उ० स्रवन घटहु, पुनि दृग घटहु, घटहु सकल बल देह। (दो० ५६३) घटा (१)-कम हुआ, क्षीण हुआ। घटि-१. घटकर, कम होकर, कम, २. नीच, क्षुद्र, ३. हानि, नुकसान। उ० १. चातकु रटनि घटें घटि जाई। (मा० २।२०५।२) २. तौ सहि निपट निरादर निसि दिन रटि लट ऐसो घटि को तो। (वि० १६१) घटिहै-घटेगा, कम होगा। उ० दे० 'घटे'। घटें-घटने से, घटने पर। उ० दे० 'घटि'। घटे (१)-१. घटने से, कम होने से, क्षीण होने पर, २. घट गए, कम हो गए। उ०

१. इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि-नेह ? (दो० ५६३) घटे–(१)–घटे, कम हो। उ० दे० 'घटे'। घटो (१)–कम हुआ, क्षीण हुआ, घट गया। घट्यो (१)–घटा, कम हुआ।

घटइ (२)–(सं० घटन)–१. उपस्थित होता है, लगता है, २. आ जायगा, लगेगा, ३. लगे, हो जाय। उ० २. दारुन दोष घटइ अति मोही। (मा० १।१६२।२) घटत (२)–१. काम आता है, २. होता है, घटित होता है। उ० १. काय, बचन, मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराए। (वि० २०१) घटति (२)–होती है, घटित होती है। घटब–लगूँगा, उपस्थित हूँगा। उ० सब बिधि घटब काज मैं तोरें। (मा० ४।७।५) घटा (२)–१. उपस्थित हुआ, हुआ, २. सटीक बैठा, मेल मिल गया। घटिहि–लग जायगा, करेगा। उ० सो सब भाँति घटिहि सेवकाई। (मा० २।२५८।३) घटे (२)–घटित हुए, हुए। घटै (२)–घटित हो, हो। उ० सपने नृप कहँ घटै बिप्रबध, बिकल फिरै अघ लागे। (वि० १२२) घटो (२)–हुआ, घटित हुआ, घटा। घट्यो (२)–१. लगा, उपस्थित हुआ, २. हुआ। उ० २. समौ पाइ कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय। (गी० ६।१४)

घटकरन–(सं० घटकर्ण)–कुंभकर्ण। रावण का भाई। उ० जयति दसकंठ-घटकरन-बरिदनाद-कदन-कारन, कालनेमि-हंता। (वि० २५)

घटज–(सं०)–घड़े से उत्पन्न होनेवाले अगस्त्य मुनि। दे० 'अगस्त्य'। उ० बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा। (मा० २।२६७।१)

घटजोनी–(सं० घट+योनि)–घड़े से पैदा होनेवाले अगस्त्य ऋषि। दे० 'अगस्ति'। उ० बालमीक नारद घटजोनी। (मा० १।३।२)

घटन (१)–(सं०)–१. होना, उपस्थित होना, २. उपस्थित करनेवाला, ३. गढ़ा जाना, ४. गढ़नेवाला। उ० २. अघटित-घटन, सुघट-बिघटन ऐसी बिरुदावलि नहिं आन की। (वि० ३०)

घटन (२)–(सं० कर्त्तन)–घटना, कम होना।

घटना (१)–(सं०)–कोई बात जो हो जाय, वाक़या, वारदात। उ० अघट-घटना-सुघट, सुघट-बिघटन-बिकट। (वि० २५)

घटनि–(सं० घटा)–घटाओं। उ० दे० 'घटत (२)'। घटा (३)–(सं०)–१. बादल, मेघमाला, २. समूह, झुंड, ३. अँधेरा। उ० २. रजनीचर मत्तगयंद-घटा बिघटै मृगराज के साज लरै। (क० ६।३६)

घटयोनि–दे० 'घटजोनी'।

घटसंभवं–(सं०)–दे० 'घटसंभव'। उ० तज्ञमज्ञानपाथोधि-घटसंभवं, सर्वगं, सर्वसौभाग्य-मूलं। (वि०१२) घटसंभव–(सं०)–अगस्त्य ऋषि। उ० जहँ घट संभव मुनिबर ग्यानी। (मा० ७।३२।४)

घटाइ–घटा करके, कम करके। उ० अपने-अपने को तौ कहैगो घटाइ को ? (क० ७।२२)

घटाटोप–(सं०)–१. बादलों की घटा जो चारों ओर से घेरे हो, २. गाड़ी या पालकी आदि ढकने के लिए एक प्रकार का कपड़ा, ओहार, ३. बादलों की भाँति चारों ओर से ढक लेनेवाला दल या समूह। उ० ३. घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। (मा० ६।३९।५)

घटित–(सं०)–रचित, निर्मित, बना हुआ। उ० हाटक-घटित जटित मनि कटितट रट मंजीर। (गी० ७।२१)

घट्टा–(सं० घटा)–१. बादलों का समूह, २. समूह, झुंड। उ० २. प्रलयकाल के जनु घन घट्टा। (मा० ६।८७।१)

घठा–(सं० घट्ट)–शरीर पर वह उभरा हुआ चिह्न, जो किसी वस्तु की रगड़ लगते-लगते पड़ जाता है। उ० कमठ कठिन पीठि, घठा परो मंदर को। (क० ६।१६)

घन–(सं०)–१. मेघ, बादल, २. लोहा, ३. बड़ा भारी हथौड़ा, ४. मुख, ५. समूह, ६. कपूर, ७. घंटा, घड़ियाल, ८. लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई, तीनों का विस्तार, ९. घना, गहन, १०. ठोस, ११. दृढ़, १२. निरंतर, १३. पिंड, शरीर, १४. अद्भुत, १५. बड़ा हथौड़ा, १६. गहरा। उ० १. बेद पुरान उदधि घन साधू। (मा० १।३६।२) ९. नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञान घन सच्चिदानंद मूलं। (वि० ५३) घनहिं–१. घन से, हथौड़े से, २. घन को। उ० १. अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड। (मा० ७।३७) घनै–घन को, बादल को। उ० सो तुलसी चातक भयौ जाँचत राम स्याम सुंदर घनै। (गी० ५।४०)

घनघोर–(सं० घन+घोर)–१. भीषण ध्वनि, २. विकट, विकराल, भयावना, ३. बादल की गरज, ४. अत्यन्त घना। उ० २. पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११)

घननाद–(सं०)–१. बादलों की गरज, २. रावण का पुत्र मेघनाद। उ० २. कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार। (मा० ६।६७ ख) घननादहि–१. मेघनाद को, २. मेघ की गर्जना को। उ० १. कुंभकरन घननादहि मारेहु। (मा० ६।९०।३)

घननादा–दे० 'घननाद'। उ० २. रघुपति निकट गयउ घननादा। (मा० ६।५१।३)

घनपदवी–(सं० घन+पदवी)–आकाश, अंतरिक्ष, नभ।

घनश्याम–(सं०)–दे० 'घनस्याम'। उ० ४. राम घनश्याम तुलसी पपीहा। (वि० १५)

घनस्याम–(सं० घनश्याम)–१. बादल की तरह काला, २. कृष्ण, ३. राम, ४. काला बादल। उ० १. लोचनाभिराम घनस्याम रामरूप सिसु। (क० १।१२) घनस्यामहि–१. बादल की तरह काले का, २. कृष्ण का, ३. राम का, ४. काले बादल का, ५. बादल की तरह काले को, ६. कृष्ण को, ७. राम को, ८. काले बादल को। उ० १. सीता लखन सहित घनस्यामहि। (मा० २।११३।३)

घना–(सं० घन)–१. सघन, गझिन, २. घनिष्ठ, नज़दीकी, निकट का, ३. अधिक, ज्यादा, अनेक। उ० ३. गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना। (मा० ७।१३०।छं० १)

घनी–(सं० घन)–१. सघन, अविरल, २. ज़ोर से, ३. बहुत,

अधिक। उ० २. अति हरषु राजसमाज दुहुँ दिस दुंदुभी बाजहिं घनी। (मा० १।३१७। छं० १)

घनु (१)-(सं० घन)-१. बादल, २. घना, अधिक।

घनु (२)-(सं० शत्रुघ्न) लक्ष्मण के छोटे भाई। उ० रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि घनु दुसरे हैं। (गी० ६।१३)

घने-(सं० घन)-१. बहुत, अधिक, २. सघन, अविरल, ३. अनेक, अगणित। उ० ३. कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहिं आनन घने। (मा० ६।७१। छं० १)

घनेरा-(सं० घन)-बहुत, अधिक, अत्यन्त, अगणित (संख्या में)। उ० जानइ सो अति कपट घनेरा। (मा०१।१७०।२) घनेरी-घनेरा का स्त्रीलिंग, बहुत, अधिक। उ० सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी। (मा० १।१२४।२) घनेरे-दे० 'घनेरा'। उ० सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे। (मा०१।१४०।१)

घनेरो-दे० 'घनेरा'। उ० जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँपुर सुजस घनेरो। (वि० ८७)

घबरि-दे० 'घवरि'।

घमंड-(?)-१. अभिमान, गर्व, २. उमड़कर, घुमड़-घुमड़ कर, उमंग से भरकर। उ० २. घन घमंड नभ गरजत घोरा। (मा० ४।१४।१)

घमंडु-दे० 'घमंड'। उ० २. सावनघन घमंडु जनु ठयऊ। (मा० १।३४७।१)

घमोइ-(?)-१. एक काँटेदार जंगली पौधा, भड़भाँड, सत्यानाशी। यह पौधा खंडहरों में उगता है। २. बाँस का एक रोग, ३. घमोइ रोग से पीड़ित बाँस। उ० १. कहत मन तुलसीस लंका करहु सघन घमोइ। (गी०५।२५)

घमोई-दे० 'घमोइ'। उ० ३. बेनुमूल सुत भयहु घमोई। (मा० ६।१०।२)

घर-(सं० गृह)-१. दीवाल आदि से घेरकर बनाया हुआ रहने का स्थान, मकान, आवास, २. निवासस्थान, जहाँ घर के लोग रहते हों, ३. स्वदेश, जन्मस्थान, ४. वंश, कुल, खान्दान, ५. कार्यालय, तफ्तर, ६. कोष, खज़ाना, भंडार, ७. गृहस्थी, घरबार, ८. उत्पत्ति स्थान, मूल कारण, जड़। उ० २. हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं। (मा०१।७५।२) मु०घर को न घाट को-कहीं का भी नहीं, जिसके लिए कहीं जगह न हो। उ० धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को। (क०७।६६) घरतर-श्रेष्ठ घर, अच्छा घर। उ० ते तुलसी तजि जात किमि निज बरतर पर-देस। (स० ७) घरनि (१)-१. घरों में, २. घरों को। उ० १. जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं। (वि० १७९) २. घरनि सिधारिए सुधारिए आगिलो काज। (गी० १।८२) घर बन बीच-गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ के बीच। तपस्वीवत् गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए। उ० तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेमपुर छाइ। (दो० २५६) घर बसी-(सं० गृह + वास)-१. घर बसानेवाली, २. व्यंग्य अर्थ में घर उजाड़नेवाली। उ० २. डारि दे घर-बसी लकुटी बेगि कर तें। (कृ० १७) घरबात-घर की सामग्री, घर की सम्पत्ति। उ० घरबात घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी। (पा० ६२) घरवात-घर का सामान, घर की संपत्ति। उ०कृसगात ललात जो रोटिन को, घरवात घरे खुरपा खरिया। (क० ७।४६) घरहि-घर ही। उ० द्विजदेवता घरहि के बाढ़े। (मा० १।२७६।४) घरे-१. घर में, २. घर को। उ० १. दे० 'घरवात'। घरै-दे० 'घरे'। घरो (१)-(सं० गृह)-१. घर, २. घर भी।

घरणी-दे० 'घरनि'।

घरनि (२)-(सं० गृहिणी)-घरनी, स्त्री, गृहस्थिनी। उ० मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि। (पा० ६) घरनिहिं-स्त्री को। उ० प्रभु रुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहि। (क० २।१०) घरनी-दे० 'घरनि'। उ० स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी। (मा० ५।३६।४) घरन्यौ-घरनी भी, स्त्री भी। उ० सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़यो बरदा, घरन्यौ बरदा है। (क० ७।१५५)

घरफोरी-(सं० गृह + स्फोटन) घर में फूट डालनेवाली, घर में झगड़ा डालनेवाली। उ० पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। (मा०२।१४।४)

घरा-(सं० घट)-घड़ा, कलश।

घरि-दे० 'घरी (१)'।

घरिक-दे० 'घरीक'। उ० घरिक बिलंबु कीन्ह बटछाहीं। (मा० २।११५।२)

घरी (१)-(सं० घटी)-१. समय का एक मान, २. अवसर, समय, ३. अच्छा अवसर, ठीक समय। उ० २. सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत, लगत सुहाइ। (गी० ७।३४) ३. घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। (मा० २।२६।४) घरी कुघरी-मौक़ा बे मौक़ा, समय कुसमय। उ० दे० 'घरी (१)'।

घरी (२)-(?)-तह, परत, लपेट। उ० है निर्गुणसारी बारिक, बलि, घरी करौ, हम जोही। (कृ० ४१)

घरीक-(सं० घटी + एक)-एक घड़ी, थोड़ी देर। उ० जल को गए लक्खन हैं लरिका परिखौ, पिय ! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े। (क० २। १२)

घरु-दे० 'घर'। उ० २. घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा। (मा० २।७८।३)

घरो (२)-दे० 'घरा'। उ० बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो। (वि० १७३)

घरौंधा-(सं० गृह)-१. छोटा घर, साधारण घर, २. कागज़, मिट्टी, धूल या ऐसी ही चीज़ों का घर जिसे लड़के बनाकर खेलते हैं। उ० २. बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बालु को। (क० ७।१७)

घर्मांसु-(सं०घर्मांशु) सूर्य, रवि। उ० जयति घर्मांसु-संदग्ध संपाति-नवपच्छ-लोचन-दिव्य-देह दाता। (वि० २८)

घर्म-(सं०)-घाम, धूप।

घलतो-(?)-बर्बाद करता, मटियामेट करता। उ० करि पुटपाक नाक-नायक हित घने-घने घर घलतो। (गी० ५।१३)

घवरि-(?)-१. फलों का गुच्छा, २. पत्तियों का गुच्छा। उ० १. हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि। (मा० १।२८८)

घसीटन-(सं० घृष्ट) घसीटने, बुरी तरह खींचने। उ० लगे घसीटन धरि-धरि झोंटी। (मा० २।१६३।४)

घहरात-(ध्व०)-१. चिग्घाड़ते हैं, गरजते हैं, शब्द करते हैं।

२. गरजते हुए, भयंकर शब्द करते हुए, ३. गरजते ही, चिग्घाड़ते ही। उ० १. घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले। (मा० ६।४४।छं० १)

घाउ–दे० 'घाव'। उ० हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा। (मा० ६।७६।४)

घाऊ–दे० 'घाव'। उ० यह सुनि परा निसानहिं घाऊ। (मा० १।३१३)

घाए–दे० 'घाव'। उ० ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए। (मा० २।३०६।४)

घाट (१)–(सं० वट्ट)–१. नदी, तालाब या पोखरे आदि के किनारे जहाँ लोग स्नान आदि करते हैं, या धोबी कपड़े धोते हैं। कहीं कहीं घाट पक्के होते हैं, और सीढ़ियाँ बनी होती हैं। २. नदी का वह किनारे का स्थान जहाँ लोग पार करते हैं या नाव पर चढ़ते, उतरते हैं। ३. ओर, दिशा, तरफ, ४. रंग-ढंग, तौर-तरीका, ५. भेद, मर्म, ६. तलवार की धार, ७. तंग पहाड़ी रास्ता, उ० १. तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि। (मा० १।३६) घाटारोह–नदी आदि के घाट को रोक देना, घाट बंद कर देना। घाटारोहु–दे० 'घाटारोह'। उ० हथवाँसहु बोरहु तरनि, कीजिअ घाटारोहु। (मा० २।१८९)

घाट (२)–(सं० घात)–१. धोखा, छल, कपट, २. बुरा काम, कुकर्म, नीचता।

घाट (३)–(सं० कर्त्तन)–१. कम, थोड़ा, २. न्यूनता, कमी।

घाटा–दे० 'घाट (१), घाट (२), घाट (३)'। उ० १. का७. धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। (मा० ६।४१।३)

घाटि (१)–दे० 'घाट (३)'। उ० १.स्वारथ को परमारथ को, परिपूरन भो फिरि घाटि न हो सो। (क० ७।१३७)

घात–(सं०)–१. प्रहार, चोट, मार, २. बध, हत्या, ३. अहित, बुराई, ४ अभिप्राय सिद्ध करने का उपयुक्त स्थान और अवसर या, ताक, ५. दाँव-पेंच, चाल, छल, धोखा। उ० २. कौड़ी लागि ते मोहबस करहिं बिप्र-गुरु-घात। (दो० ५५२) ४. चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्योघात मानों। (क० ७।१४२)

घातक–(सं०)–१. मार डालनेवाला, हत्यारा, हिंसक, बधिक। २. शत्रु, वैरी।

घाता–दे० 'घात'। उ० २. देखि भालुपति निज दल घाता। (मा० ६।९८।८)

घातिनी–(सं०)–मारनेवाली, बध करनेवाली। उ० बीर घातिनी छाड़िसि साँगी। (मा० ६।५४।४)

घाती–मारनेवाला, बधिक। उ० हम जड़ जीव जीवगन घाती। (मा० २।२५१।२)

घान–(सं० घन)–१. उतनी वस्तु जितनी कोल्हू में एक बार डालकर पेरी जाय या चक्की में पीसी जाय, २. उतनी वस्तु जितनी एक बार में भूनी या पकाई जाय।

घानी–दे० 'घान'। उ० १. मारि दहपट कियो जम की घानी। (क० ६।२०)

घाम–(सं० घर्म)–१. धूप, सूर्यातप, २. गर्मी, उष्णता, ३. संकट, दुःख। उ० ३. सुमिरे त्रिबिध घाम हरत, पूरत काम। (वि० २५५) घामो–घाम भी। उ० १. राम नाम-जप-निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो। (वि० २२८)

घामा–दे० 'घाम'। उ० मध्य दिवस अति सीत न घामा। (मा० १।१९१।१)

घाय–दे० 'घाव'। उ० नाम लै राम दिखावत बंधु को, घूमत घायल घाम घने हैं। (क० ६।३९)

घायल–जिसको घाव लगा हो,आहत,जख्मी। उ०दे०'घाय'।

घाल (१)–(?)–घलुआ, सौदे की उतनी वस्तु जो ग्राहक को तौल, नाप या गिनती के ऊपर दी जाय। मु० घाल न–गिन्यो–कुछ न समझा।

घाल (२)–(सं० घटन)–१. नष्ट करके, घाल कर, २. बुराई, बिगाड़, अपकार। उ० २. घरघाल चालक कलह-प्रिय कहियत परम परमारथी। (पा० १२१)

घालइ–(सं० घटन)–१. नष्ट करता, नष्ट करता था, २. बिगाड़ता है, बिध्वंस करता है। उ० १. आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा। (मा० १। १८३। छं० १) घालत–१. बिगाड़ता है, नष्ट करता है, २. नष्ट करते हुए, ३. कर डालता है, । उ० ३. कोप तेहिं कलिकाल कायर मुएहि घालत घाय। (वि० २२०) घालति–१. नष्ट करती, २. रखती, ३. फेंकती, डालती। उ० १. तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई, घने घर घालति है घने घर घालिहै। (क० ७।१२०) घालसि–१. नष्ट-भ्रष्ट कर, २. नष्ट करता है। उ० १. बातन मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस। (मा० ५।५६ क) घालहिं–१. नष्ट करते हैं, २. करते हैं, ३. डालते हैं, रखते हैं। उ० १. आपु गए अरु घालहिं आनहिं। (मा० ७।४०।३) घाला–१. नष्ट किया, २.रखा। उ० १. चित्रकेतु कर घरु उन घाला। (मा० १।७९।१) घालि (२)–१. नष्ट कर, २. डालकर, धरकर, रखकर। उ० १. दे० 'घालति'। २. कबहुँ पालने घालि झुलावै। (मा० १।२००।४) घालिहै–१. नष्ट करेगी, २. धरेगी, रक्खेगी। उ० १. दे० 'घालति'। घाली–१ डाली, फेंकी, २. उजाड़ा, नष्ट किया, ३. की, कर ली। उ० ३. राम सेन निज पाछें घाली। (मा० ६।७०।३) घाले–१. नष्ट किए, नष्ट करने से, २. रक्खे, धरे। उ० १. तेरे घाले जातुधान भए घर घर के। (ह० ३३) घालेसि–१. नष्ट-भ्रष्ट किया, उजाड़ा, २. रखा, डाला, ३, किया, कर दिया। उ० ३. घालेसि सब जगु बारह बाटा। (मा० २।२१२।३) घालै–दे० 'घाले'।

घालक–नष्ट करनेवाला, नाशकर्त्ता, बिगाड़नेवाला। उ० परघर घालक लाज न भीरा। (मा० १।९७।२)

घालि (२)–(?)–दे० 'घाल (१)'। मु० घालि नहिं गनै–कुछ न समझे। उ० रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ताकहुँ गनै। (मा० ६।९४। छं० १)

घाव–(सं० घात)–चोट, व्रण, जख्म।

घासी–(सं० घास)–घास, चारा, तृण। उ० चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी। (वि० २२)

घाहैं–(सं० गभस्ति)–उँगलियों के बीच की संधि, गहुआ, गावा, घाई। उ० धारैं बान, कुल धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं। (गी० ७।१३)

घिन-(सं० घृणा)-नफरत, घृणा । उ० काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन । (वि० २५३)
घिनात-घृणा करते हैं, नफरत करते हैं। उ० आप से कहुँ सौंपिए मोहिं जौ पै अतिहि घिनात । (वि० २१७)
घिय-दे० 'घी' । उ० स्वामिदसा लखि लषन सखा कपि, पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के। (गी० ४।१)
घी-(सं० घृत)-घृत, दूध का सार जो मक्खन या नवनीत से तपाकर पानी का अंश निकालकर बनाया जाता है। सरपि । उ० जानि अंध अंजन कहै बन-बाघिनि-घी को। (वि० २६५)
घीय-दे० 'घी' । उ० १. ह्वैहौं माखी घीय की। (वि० २६३)
मु० घीय की माखी-१. शीघ्र नष्ट हो जानेवाली चीज़ । घी में मक्खी गिरकर तुरत मर जाती है। २. व्यर्थ या फेंक देने लायक वस्तु । उ० १. दे० 'घीय' ।
घुँघुरारि-दे० 'घुँघुरारी' ।
घुँघुरारी-(?)-घुँघराले, कुंचित, घूमे हुए। उ० घुँघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की। (क० १।५)
घुटुरुवनि-(सं० घुट)-घुटनों के बल, घुटनों से। उ० गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाए। (गी० १।२६)
घुणाक्षर न्याय-(सं०)-ऐसी कृति या रचना जो अनजान में उसी प्रकार हो जाय जैसे घुनों के खाते-खाते लकड़ी में अक्षर की तरह कुछ लकीरें पड़ जाती हैं। अकस्मात सिद्ध कार्य । बिना परिश्रम के प्राप्त कोई वस्तु ।
घुन-(सं० घुण)-एक प्रकार का लाल-लाल छोटा कीड़ा जो अनाज, पौधे और लकड़ी आदि में लगता है और उसे अंदर ही अंदर खोखला कर देता है। भीतर ही भीतर खोखला करके नाश कर देनेवाला। उ० जेहि न लाग घुन को अस धीरा। (मा० ७।७१।३) घुनाक्षर न्याय-दे० 'घुणाक्षर न्याय' । उ० होइ घुनाक्षर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक। (दो० २७३)
घुनिए-भीतर ही भीतर खोखला होते रहिए, नष्ट होते रहिए। उ० सुमिरि-सुमिरि बासर निसि घुनिए। (कृ० ३७)
घुम्मरहिं-(?)घोर आवाज़ कर रहे हैं, गरज रहे हैं।
घुर-(सं० कूट)-१. कूड़ा करकट, रद्दी चीजें, २. वह जगह जहाँ कूड़ा फेंका जाय। उ० २. तुलसी मन परिहरत नहिं घुर बिनिआ की बानि । (दो० १३) घुरबिनिआ-कूड़ेखाने या घूरे पर से दाना चुनना, गंदी जगह से अन्नादि बिनना या लेना । उ० दे० 'घुर' ।
घुरघुरात-(ध्व०)-१. घुर-घुर का शब्द करता हुआ, २. घुरघुराता है। उ० १. घुरघुरात हय आरौ पाएँ। (मा० १।१५६।४)
घुर्मि-(सं० घूर्णन)- घूमकर, चक्कर खाकर । उ० घुर्मि-घुर्मि घायल महि परहीं। (मा० ६।६८।३)
घुर्मित-चक्कर खाया हुआ, घूमा हुआ। उ० परा भूमि घुर्मित सुरघाती। (मा० ६।७४।४)
घुर्म्मरहिं-घोर शब्द कर रहे हैं, गरज रहे हैं। उ० निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना। (मा० १।३०१।१)

घूँघट-(सं० गुंठ)-स्त्रियों की साड़ी या चादर के किनारे का वह भाग जिसे वे लज्जावश सिर से आगे मुँह ढकने के लिए खींच लेती हैं। उ० का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि? (ब० १६)
घूँट-(ध्व०) पानी या किसी अन्य द्रव का उतना अंश जितना एक बार में गले से नीचे उतारा जा सके।
घूँटक-एक घूँट । दे० 'घूँट' । उ० देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि । (दो० २८७)
घूघरवारे-घुँघराले, कुंचित । उ० बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। (मा० १।२३३।२)
घूटी-(दे० घूँट)-बालकों की एक ओषधि जो उनके स्वास्थ्य को ठीक रखती है। उ० लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी। (गी० २। २१)
घूमत-(सं० घूर्णन)-१. घूमता है, चक्कर लगाता है, २. लौटता है, वापस आता है, ३. सैर करता है, टहलता है। उ० १. नाम लै राम दिखावत बंधु को, घूमत घायल घाय घने हैं। (क० ६।३६) घूमि-१. घूमकर, चक्कर लगाकर २. लौटकर, ३. टहलकर । उ० १. भूमि परे भट घूमि कराहत । (क० ६।३२)
घूर्मि-(सं० घूर्णन)-घूमकर, चक्कर लगाकर ।
घूर्मित-दे० 'घुर्मित' ।
घृत-(सं०)-घी, दे० 'घी' । उ० घृतपूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिंब दिखावै। (वि० ११५)
घृतु-दे० 'घृत' । उ० सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि लियो काढ़ि बामदेव नाम-घृतु है। (वि० २५४)
घेरइ-घेरता है, रोकता है, छेंकता है। उ० सावन सरित सिंधुरुख सूप सों घेरइ । (पा० ६६) घेरत-(?)-घेरते हैं, रोकते हैं, चारो ओर से छेंकते हैं। घेरहिं-घेर लेते हैं, चारो ओर से छेंक लेते हैं। उ० कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं । (मा० ४।२४।१) घेरा-१. घिरा हुआ, वश में, २. घेर लिया, चारो ओर से छेंक लिया, ३. चारो ओर की सीमा, परिधि, वह वस्तु जो किसी के चारो ओर हो। उ० १. काल कर्म सुभाव गुन घेरा। (मा०७।४४।३) घेरि-घेरकर, चारो ओर से छेंककर । उ० घेरि सकल बहु नाच नचावहिं। (मा० ६।५।४) घेरी-घेर लिया, घेरा, छेंक लिया। उ० घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। (मा० ६।३६।५) घेरे-१. घेर लिए, २. घेरे हुए, चारो ओर से रोके हुए। घेरेन्हि-घेर लिया, छेंक लिया। उ० घेरेन्हि नगर निसान बजाई। (मा० १।१७५।३) घेरेसि-घेरा, चारो ओर से घेर लिया। उ० सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई। (मा० १।१७८।२) घेरो-१. घेरा, छेंका, वश में कर लिया, चारो ओर से रोक लिया, २. घिराव, वह वस्तु जो किसी के चारो ओर हो, परिधि। उ० १. अगति हीन, बेद-बाहिरो लखि कलिमल-घेरो। (वि० २७२) घेरोइ-घिरा हुआ ही। उ० घेरोइ पै देखिबो लंक गढ़ बिकल जातुधानी पछितैहैं। (गी० ५।५१)
घैया (१)-(?)-कोख, पेट, उदर। उ० मथि मथि पियो बारि चारिक में भूख न जाति अघाति न घैया। (कृ० १६)
घैया (२)-(?)-थन से निकली हुई दूध की धार। उ०

तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया। (गी० १।१७)

घैया (३)-(?)-ओर, तरफ़, दिशा।

घैरु-(?)-१. निन्दामय चर्चा, बदनामी, २. चुगुली, गुप्त शिकायत, ३. कहर, हाहाकार। उ० ३. समुझि तुलसीस कपिकर्म घर घर घैरु। (क० ६।४)

घोर (१)-(सं०)-१. भयंकर, डरावना, २. सघन, दुर्गम, ३. कठिन, कड़ा, ४. गहरा, गाढ़ा, ५. बुरा, ६. अधिक, ज्यादा। उ० १. पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११) घोरतर-अधिक घोर। दे० 'घोर (१)'।

घोर (२)-(सं० घुर)-गर्जन, ध्वनि, शब्द।

घोर (३)-(सं० घोटक)-घोड़ा, अश्व।

घोरत (१)-(सं० घोर)-१. गरजते हैं, शब्द करते हैं, २. शब्द करते हुए। उ० २. सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि। (गी० २।५०) घोरि (१)-(सं० घोर)-१. गरज, भीषण शब्द करना, २. ध्वनि करना। उ०१. बरषैं मुसलाधार बार बार घोरि कै। (क० ५।१६) घोरि घोरी (१)-(सं० घोर)-१. गरज गरजकर, घोर शब्द करके, २. ध्वनि करके। उ० १. कंद-बृंद बरषत छबि मधुर घोरि घोरी। (गी० ७।७)

घोरत (२)-(सं० घूर्णन)-१. घोलते हैं, मिलाते हैं, २. घोलते हुए। घोरि (२)-(सं० घूर्णन)-घोलकर, किसी द्रव पदार्थ में मिलाकर। उ०देउ आपने हाथ जल मीनहिं माहुर घोरि। (दो० ३१७) घोरि घोरी (२)-(सं० घूर्णन)-घोल घोल कर, द्रव में मिला-मिला कर। घोरी (२)-(सं० घूर्णन)-१. घोला, किसी द्रव में मिलाया, २. घोलकर, मिलाकर। उ० २. देति मनहुँ मधु माहुर घोरी। (मा० २।२२।२) घोरे (२)-(सं० घूर्णन)-घोला, मिलाया।

घोरमारी-महामारी; ताउन, हैज़ा आदि रोग। उ० ईति अति भीति-ग्रह-प्रेत-चौरानल-व्याधि बाधा समन घोर-मारी। (वि० २८)

घोरसारही-(सं० घोटक+शाला)-घोड़सार में ही, घोड़ा बाँधने के स्थान में ही। उ० हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसारहीं। (क० ५।२३)

घोरा (१)-(सं० घोर)-दे० 'घोर (१)' तथा, 'घोर (२)'।

घोरा (२)-(सं० घोटक)-घोड़ा। उ० हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो। (क० ५।६) घोरी (१)-घोड़ी, घोड़ा की स्त्री। घोरे (१)-घोड़े, अश्व। उ० चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। (मा० २।१४३।३)

घोरी (३)-(सं० घोर)-१. भयंकर, २. घना, सघन, ३. कठिन, कड़ा, ४. गहरा, ५. बुरा।

घोष-(सं०)-१. ग्वाला, गोप, अहीर, २. अहीरों की बस्ती, ३. गोशाला, गौओं के रहने का स्थान, ४. तट, किनारा, ५. शब्द, आवाज़, ६. उच्च स्वर से किसी बात की घोषणा, ज़ोर-ज़ोर से कहना।

घोषु-दे० 'घोष'।

घोस-दे० 'घोष'।

घोसु-दे० 'घोष'। उ० ६. संभु-सिखवन रसन हुँ नित राम नामहिं घोसु। (वि० १५९)

घौरि-(?)-फूल या फलों का गुच्छा। उ० तोरन बितान पताक चामर धुज सुमन फल-घौरि। (गी० ७।१८)

घ्न-(सं०)-मारनेवाला, हत्या करनेवाला, नाशक। जैसे शत्रुघ्न, कृतघ्न।

घ्राण-(सं०)-१. नाक, नासिका, २. सूँघने की शक्ति, ३. गंध, सुगंध, ४. सूँघना।

घ्रान-दे० 'घ्राण'। उ० १. अहइ घ्रान बिनु बास असेषा। (मा० १।११८।४)

च

चंग (१)-(फ़ा०)-१. डफ के आकार का एक छोटा सा बाजा, मुरचंग, २. सितार का चढ़ा हुआ सुर, ३. ज़िद, हठ।

चंग (२)-(?)-पतंग, गुड्डी, कागज और बाँस की पतली सींकियों से बनी एक चीज़ जिसे डोरे में बाँधकर उड़ाते हैं। उ० चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू। (मा० २।२४०।३)

चंगु-(सं० चतुर्+अंगुल)-१. चार अँगुलियाँ, चंगुल, पंजा, २. पकड़, वश, अधिकार। उ० १. चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर। (दो० ३०१)

चंगुल-(सं० चतुर्+अंगुल)-१. चार अँगुलियाँ, पंजा, २. अधिकार, पकड़, वश। उ० १. गहि चंगुल चातक चतुर डार्यो बाहिर बारि। (दो० ३०३)

चंचरीकं-दे० 'चंचरीक'। उ० कोशलेंद्र नव-नील कंजाभ तनु मदनरिपु-कंजहृद-चंचरीकं। (वि० ४६) चंचरीक-(सं०)-भ्रमर, भौंरा। उ० चंचरीक जिमि चंपक बागा। (मा० २।३२४।४)

चंचल-(सं०)-१. चलायमान, हिलता-डोलता, अस्थिर, २. अधीर, जो एकाग्र न हो, ३. घबराया, उद्विग्न, ४. नटखट, चुलबुला, ५. वायु, हवा, ६. पारा, ७. खेलाड़ी, ८. लोल। उ० १. कपि चंचल सबहीं बिधि हीना। (मा० ५।७।४) ६. चंचल तिय भजु प्रथम हरि जो चाहसि परधाम। (स० २८०) ८. रबि चंचल अरु ब्रह्म-द्रव बीच सु-बास बिचारि। (स० २६४)

चंचला-(सं०)-१. लक्ष्मी, २. बिजली, ३. स्त्री, वामा। उ० ३. चंचल सहितऽरु चंचला अंत अंत-जुत जान। (स० २५४)

चंचु–(सं०)–१. चोंच, चिड़ियों का मुँह, ठोर, २. मृग, हिरन, ३. रेंड़ का पेड़। उ० १. चरग चंचु-गत जातकहिं नेम प्रेम की पीर। (स० १०३)

चंड–(सं०)–१. तेज, प्रखर, घोर, २. बलवान, शक्तिशाली, ३. कठोर, कठिन, विकट, ४. क्रोधी, उद्धत, ५. गर्मी, ६. एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था। उ० १. चंड बेग-सायक नौमि राम-भूपं। (वि० ५२) ६. चंड-भुजदंड-खंडनि विहंडनि, महिषमद-भंग करि अंग तोरे। (वि० १५)

चंडकर–(सं०)–तीक्ष्ण किरणवाला, सूर्य। उ० चंदिनि कर कि चंडकर चोरी। (मा० २।२६५।३)

चंडाल–(सं०)–१. चांडाल, स्वपच, डोम। मनु के अनुसार शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न हुई संतान जो अत्यन्त नीच मानी जाती है। २. कुकर्मी, पतित, दुरात्मा।

चंडाला–दे० 'चंडाल'। उ० सपदि होहि पच्छी चंडाला। (मा० ७।११२।८)

चंडिका–(सं०)–१. दुर्गा, काली, देवी, २. लड़ाकी या क्रोध करनेवाली स्त्री, कर्कशा।

चंडी–(सं०)–दे० 'चंडिका'।

चंडीपति–महादेव, शिव।

चंडीश–(सं०)–शिव, महादेव।

चंडीस–दे० 'चंडीश'। उ० चंड बाहुदंड बल चंडीस-कोदंड खंड्यौ। (क० १।२१)

चंडोल–(?)–एक प्रकार की पालकी जो हाथी के हौदे की तरह खुली और डंडे के ऊपर छाई रहती है। चौपहला।

चंद (१)–(सं०)–चंद्रमा, चाँद, शशि। उ० आननु सरद चंद छबि हारी। (मा० १।१०६।४) चंदनिसि–(सं० चंन+निशि)–चाँदनी रात। उ० चकइहि सरद चंदनिसि जैसें। (मा० २।६४।१) चंदबदन–चंद्रमा के समान सुन्दर मुख। चंदबदनि–चंद्रमा की तरह सुन्दर मुखवाली स्त्री, चंद्रमुखी। उ० चंदबदनि दुखु कानन भारी। (मा० २।६३।४) चंदबदनियाँ–चन्द्रमा की तरह सुन्दर मुखवाली स्त्रियाँ। उ० सुनि कुलबधू झरोखनि झाँकति रामचंद्र-छबि चंदबदनियाँ। (गी० १।३१)

चंद (२)–(फ़ा०)–थोड़े से, कुछ।

चंदन–(सं०)–एक पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बड़ी सुगंधित होती है। इस पेड़ की लकड़ी या उसके हीर या पानी मिलाकर घिसे लेप को भी चंदन कहते हैं। पूजा आदि में उसका उपयोग होता है। लोग इसके लेप का शीश, बाहु, कंठ तथा उर आदि में तिलक भी लगाते हैं। उ० मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। (मा० १।१९४।४)

चंदिनि–दे० 'चंदिनी'। उ० जय जय भगीरथ नंदिनि, मुनिचय-चकोर चंदिनि। (वि० १७)

चंदिनी–चाँदनी रात, उजेली रात। उ० अच्छय अकलंक सरद-चंद-चंदिनी। (गी० २।४३)

चंदु–दे० 'चंद (१)'। उ० रामचंद्र मुख चंदु निहारी। (मा० २।१।३)

चंदू–दे० 'चंद(१)'। उ० देखि भानुकुल कैरव चंदू। (मा० २।१२२।१)

चँदोवा–(सं० चंद्रा)–एक प्रकार का छोटा मंडप जो राजाओं या वर के आसन के ऊपर तना रहता है। चँदवा, वितान। उ० रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। (मा० १।३२६।२)

चंद्र–(सं०)–१. चंद्रमा, शशि, २. सोना, स्वर्ण, ३. मोर की पूँछ की चंद्रिका, ४. कपूर, ५. सुंदर, ६. एक द्वीप, उ० १. रामचंद्र चंद्र तू! चकोर मोहिं कीजै। (वि०८०)

चंद्रअवतंस–चंद्रमा जिसके भूषण हों, महादेव, शिव।

चंद्रअवतंसा–दे० 'चंद्रअवतंस'। उ० भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा। (मा० १।८८।३)

चंद्रभूषण–(सं०)–महादेव, शिव।

चंद्रभूषन–दे० 'चंद्रभूषण'। उ० सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषण भालहीं। (पा० ६)

चंद्रमहि–चंद्रमा को, चाँद को। उ० बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू। (मा० १।२८१।३) चंद्रमा–(सं० चंद्रमस्)–१. चन्द्र, शशि, २. एक मुनि। उ० २. मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। (मा० ४।२८।३) कथा–पुराणानुसार चंद्रमा समुद्र-मंथन के समय निकले चौदह रत्नों में से एक हैं। मंथन के बाद एक असुर देवों की पंक्ति में बैठकर अमृत पी रहा था। चंद्रमा और सूर्य ने इसका पता विष्णु को दिया तो विष्णु ने उसके दो खंड कर दिए, पर वह अमृत पी चुका था अतः दोनों खंड जीवित रहे और राहु-केतु कहलाए। उसी पुराने बैर से राहु चंद्रमा को ग्रसता है जिसे ग्रहण कहा जाता है। चंद्रमा के बीच के धब्बे के संबंध में कई तरह की बातें प्रचलित हैं। १. चंद्रमा ने अपनी गुरुपत्नी के साथ भोग किया था, अतः शापवश काला दाग पड़ गया। २. अहल्या का सतीत्व भंग करने में चंद्रमा ने मुर्गा बनकर इंद्र की सहायता की थी, अतः गंगा से लौटने पर क्रोधित होकर गौतम ने त्रिशूल या कमंडल और मृगचर्म से उन्हें मारा और दाग पड़ गया। कवि लोग कुमुदिनी को चंद्रमा की प्रेमिका मानते हैं। इसी प्रकार चकोर का भी चंद्रमा से प्रेम प्रसिद्ध है।

चंद्रमललाम–शिव, महादेव। उ० चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमाललाम को। (क० १।६)

चंद्रमौलि–शिव, महादेव, मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाला। उ० उरधरि चंद्रमौलि बृषकेतू। (मा० १।६४।४)

चंद्रहास–(सं०)–१. तलवार, खंग, २. रावण की तलवार का नाम, ३. चमेली, ४. कुमुदिनी। उ० २. चंद्रहास हरु मम परितापं। (मा० ५।१०।३)

चंद्रिका–(सं०)–चाँदनी, चंद्रमा का प्रकाश, ज्योत्स्ना। उ० कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई। (मा० २।९७।३)

चंपक–(सं०)–मझोले क़द का एक पेड़ या उसका फूल। फूल हलके पीले रंग के होते हैं, जिनमें बड़ी तेज़ गंध होती है। ऐसा प्रसिद्ध है कि चंपक के पुष्प पर भ्रमर नहीं बैठते। उ० जनु तनु दुति चंपक-कुसुममाल। (वि० १४)

चँवर–दे० 'चवँर'।

च–(सं०)–१. कच्छप, कछुआ, २. चंद्रमा, ३. चोर, ४. दुर्जन, ५. और, तथा। उ० ५ मंगलानां चकर्त्तारौ वंदे व वाणी-विनायकौ। (मा० १।१। श्लो० १)

चउहट्ट–(सं० चतुर+हट्ट)–चौराहा, चौहट्ट। उ० चउहट्ट

हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहुबिधि बना। (मा० ५।३। छं० १)

चए-(सं० चयन)-समूह, राशि, ढेर। उ० नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन पुनि-पुनि बरषहिं सुमन चए। (गी० १।२)

चक (१)-(सं० चक्र)-१. चकई नाम का खिलौना, २. चक्रवाक पक्षी, चकवा, ३. चक्र नाम का अस्त्र, चक्का, पहिया, ५. भूमि का एक भाग, ६. छोटा गाँव, ७. अधिकार, दखल, ८. भरपूर, अधिक, ज्यादा। उ० १. खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चकडोरि। (गी० १।४१) २. संपति चकई भरतु चक, मुनि आयस खेलवार। (मा० २।२१५)

चक (२)-(सं०)-चकपकाया हुआ, भौचक्का, भ्रांत।

चकइहि-चकई को। उ० चकइहि सरद चंद निसि जैसें। (मा० २।६४।१) चकई (१)-(दे० 'चकवा') चकवा की स्त्री। उ० सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि। (मा० २।७८)

चकई (२)-(सं० चक्र)-घिरनी या गड़ारी के आकार का एक खिलौना जिसके घेरे में डोरी लपेटकर लड़के नचाते हैं।

चकचौंधी-(सं० चक् (=चमकना)+चतुः, प्रा० चउ+अंध)-चकाचौंध, अधिक चमक के कारण पूरी आँख से न देख सकना, प्रकाशाधिक्य के कारण नज़र का न ठहरना। उ० चाहे चकचौंधी लागै, कहौं का तोही? (गी० २।२०)

चकडोरि-(सं० चक्र+डोर)-चकई नामक खिलौने में लपेटा हुआ सूत। चकई और उसे नचाने का सूत या डोरा। उ० खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चकडोरि। (गी० १।४१)

चकवा-(सं० चक्रवाक) नदियों या जलाशयों के किनारे रहनेवाले एक प्रकार के पक्षी। इस पक्षी के जोड़ों में बड़ा प्रेम रहता है, पर ऐसा प्रसिद्ध है कि रात्रि के समय ये अलग-अलग हो जाते हैं। इसी कारण चाँदनी रात इन्हें बहुत सताती है। चकवा-चकई को लेकर कवियों ने बहुत कुछ कहा है।

चकार-(सं०)-किया, बनाया। उ० भाषा बद्धमिदं चकार तुलसी दासस्तथा मानसम्। (मा० ७।१३१। श्लो० १)

चकि-चकित होकर, विस्मित होकर। उ० तुलसी प्रभुमुख निरखि रही चकि, रह्यो न सयानप तन मन ती के। (कृ० १०)

चकित-(सं०)-१. चकपकाया हुआ, विस्मित, भौचक्का, हैरान, घबराया हुआ, २. चौकन्ना, सावधान, सशंकित, ३. डरपोक, कायर, ४. आशंका, व्यर्थ भय, ५. कायरता। उ० १. चकित बिप्र सब सुनि नभबानी। (मा० १।१७४।३)

चकैं-१. चकित होते हैं, २. चकित होकर। उ० १. अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै। (क० २।२७)

चकोट-(?)-चुटकी काटना, चिकोटी काटना, छिउकी काटना। उ० चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं। (क० ६।४०)

चकोर-(सं०)-एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर। इसके ऊपर का रंग कुछ कालिमा लिए होता है, जिस पर सफ़ेद सफेद चित्तियाँ होती हैं। भारत में यह प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। इसे चन्द्रमा का प्रेमी कहा जाता है। रात को यह चन्द्रमा की ओर उड़ता है। इसका चंद्रमा के प्रति प्रेम इतना विचित्र है कि लोक-प्रसिद्धि के अनुसार यह आग की चिनगारी को चंद्रमा की किरण समझकर खा जाता है। यह चंद्रमा के प्रति अपने प्रेम के लिए प्रसिद्ध है। उ० पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर। (मा० २।८३) चकोरी-चकोर की स्त्री। दे० 'चकोर'। उ० चंदकिरन रस रसिक चकोरी। (मा० २।५६।४)

चकोरक-दे० 'चकोर'। उ० केसरी-चारु-लोचन-चकोरक-सुखद, लोकगन-सोक संतापहारी। (वि० २५)

चकोरा-दे० 'चकोर'। उ० रामचंद्र मुख चंद चकोरा। (मा० २।११५।३)

चकोरू-दे० 'चकोर'। उ० मनु तव आनन चंद चकोरू। (मा० २।२६।२)

चक्क (१)-(सं० चक्र)-१. चक्र, पहिया, २. चाक का बर्तन बनाने के लिए कुम्हारों का चपटा गोला पत्थर का टुकड़ा, ३. चक्कर, ४. सुदर्शन चक्र, विष्णु का एक हथियार।

चक्क (२)-(सं० चक्रवाक)-चकवा पक्षी। उ० चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। (मा० २।१८६।१)

चक्कवइ-दे० 'चक्कवै'। उ० ससुर चक्कवइ कोसल राऊ। (मा० २।९८।२)

चक्कवनि-चकवों को, चक्रवाक पक्षियों को। उ० ज्यों चकोर-चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति। (दो० ११४)

चक्कवै-(चक्रवर्त्तिन्)-चक्रवर्ती राजा, आसमुद्रांत पृथ्वी का राजा। उ० चक्कवै-लोचन राम रूप-सुराज-सुख भोगी भए। (जा० १५३)

चक्कि-चकई, चकवा की स्त्री। उ० दे० 'चक्क'।

चक्र-(सं०)-१. सुदर्शन चक्र, विष्णु का अस्त्र विशेष, २. पहिए के आकार का एक लौह अस्त्र, ३. पहिया, चक्का, ४. कुम्हार का चाक, ५. चकवा पक्षी, ६. सेना, दल, झुंड, ७. एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैला हुआ प्रदेश, ८. धोखा, भुलावा, ९. आवर्त, घुमाव, १०. गाँवों का समूह, ११. वृत्त, घेरा, १२. दिशा, प्रांत, १३. कछुआ, १४. कोल्हू, १५. राजचक्र, राजपुरुषों के साथ राजा। उ० १. कालदंड, हरिचक्र कराला। (मा० ७।१०६।७) १५. कलि-कुचालि सुभ मति हरनि, सरलै दंडै चक्र। (दो० ५३७)

चक्रधर-(सं०)-१. जो चक्र धारण करे, २. विष्णु, ३. राजा, ४. सर्प, साँप, ५. कृष्ण, ६. बाज़ीगर, इन्द्रजाल करनेवाला। उ० २. देहि अवलंब न बिलंब अंभोजकर-चक्रधर तेज-बलशर्म-राशी। (वि० ६०)

चक्रपाणि-(सं०)-जिसके हाथ में चक्र हो। विष्णु।

चक्रपानि-दे० 'चक्रपाणि'। उ० बारी बरानसी बिनु कहे चक्र चक्रपानि। (क० ७।१७२)

चक्रपानी-दे० 'चक्रपाणि'। उ० दत्त, समदृक स्वदृक विगत-अति-स्वपरमति तव बिरति चक्रपानी। (वि० ५७)

चक्रबर्ति–दे० 'चक्रवर्त्ती'। उ० चक्रबर्ति के लच्छन तोरें। (मा० १।१२६।२)
चक्रबाक–दे० 'चक्रवाक'। उ० चक्रबाक बक खग समुदाई। (मा० ३।४०।२)
चक्रवर्ति–दे० 'चक्रवर्त्ती'।
चक्रवर्त्ती–(सं० चक्रवर्त्तिन्)–बहुत बड़ा राजा, आसमुद्रांत पृथ्वी पर राज्य करनेवाला। उ० जयति रुद्राग्रणी, विश्व विद्याग्रणी, बिश्वबिख्यात भट चक्रवर्त्ती। (वि० २७)
चक्रवाक–(सं०)–चकवा पक्षी। उ० देखिअत चक्रवाक खग नाहीं। (मा० ४।१५।५)
चक्राकुल–(सं०)–१. भँवर से भरा हुआ, २. जहाँ बहुत कछुये हों। चक्राकुला–(सं०)–१. भँवरवाली, २. कछुओं से भरी हुई। उ० १. मकर षड्वर्ग, गो नक्र चक्राकुला, कूल सुभ-असुभ दुखतीव्र धारा। (वि० ५६)
चक्रित–चकित, अचंभित।
चक्षु–(सं०)–आँख, नेत्र।
चख–(सं० चक्षु)–आँख; नेत्र। उ० लेहि दससीस अब बीस चख चाहिरे। (क० ५।१६) चखकोर–कटाक्ष, कृपादृष्टि। उ० कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर। (क० ७।१२३) चख चारिको–दे० 'चख चारिखो'। चख चारिखो–दो भीतर और दो बाहर चार आँखवाला। बुद्धिमान्। चखपूतरि–दे० 'चषपूतरि'।
चट (१)–(सं० चटुल)–तुरत, जल्दी से, झट, शीघ्र।
चट (२)–(सं० चित्र)–१. दाग, धब्बा, २. ऐब, दोष।
चटक–(सं०)–गौरैया, गौरा पक्षी। उ० ते नृप-अजिर जानुकर धावत धरन चटक चल काग। (गी० १।२६)
चटकन–(ध्व०)१. तमाचा, थप्पड़, २. चट-चट की ध्वनि, चटकना। उ० १. विकट चटकन चपट, चरन गहि पटक महि। (क० ६।४६)
चटाक–(ध्व०)–तोड़ने का शब्द, लकड़ी आदि टूटने का शब्द। चटाक दै–चट से, तोड़ने का शब्द करके। उ० महाभुज-दंड द्वै अंड कटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं। (क० ६।१४)
चढ़–१. चढ़कर, ऊपर जाकर, उन्नति कर, २. असर कर, ३. देवता की भेंट चढ़कर, ४. आक्रमण कर। उ० १. मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई। (मा० ५।२६।१) चढ़इ–(सं० उच्चलन)–१. चढ़ता है, ऊपर जाता है, बढ़ता है, उन्नति करता है, २. असर करता है, ३. देवता आदि की भेंट चढ़ता है, ४. आक्रमण करता है। उ० १. कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। (मा० २।२०५।३) चढ़त–१. चढ़ता है, उन्नति करता है, ऊपर जाता है, २. असर करता है, प्रभावित करता है, ३. देवता की भेंट चढ़ता है, ४. आक्रमण करता है। उ० २. चढ़त न चातक-चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख। (दो० २८१) चढ़ा–१. चढ़ गया, ऊपर चला गया, २. उन्नति की। दे० 'चढ़त'। उ० १. मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। (मा० ५।१६।४) चढ़ि–१. चढ़कर, २. चढ़ गए। उ० १. चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। (मा० २।८३।१) चढ़िहहिं–चढ़ेंगे, चढ़ेंगी। उ० प्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा। (मा० १।६७।३) चढ़ी–१. चढ़ गईं, २. चढ़ीं हुईं। उ० १. बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान। (मा ७।३ ख) चढ़ी–१. चढ़ गई, २. चढ़कर, चढ़ी हुई। उ० २. चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद। (मा० ७।८ ख) चढ़ु–चढ़ो, चढ़ जाओ। उ० चढ़ु मम सायक सैल समेता। (मा० ६।६०।३) चढ़े–ऊपर गए, बढ़े। उ० चढ़े दुर्ग पुनि जहँ-तहँ बानर। (मा० ६।४२।१) मु० चढ़े न हाथ–हाथ नहीं आता, हाथ नहीं लगता। उ० हरो धरो गाड़ो दियो धन फिर चढ़ै न हाथ। (दो० ४५७) चढ़ेउ–चढ़े, चढ़ गए। उ० रन बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल। (मा० ६।४३) चढ़्यो–१. चढ़ा, २. चढ़ा हुआ। उ० २. सीस बसै बरदा, बरदानि; चढ़्यो बरदा, धरन्यौ बरदा है। (क० ७।१५५)
चढ़ाइ–१. चढ़ाकर, २. उन्नति कराकर। दे० 'चढ़त'। उ० १. रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि। (मा० २।८१) चढ़ाइन्हि–चढ़ायी। उ० भार्थी बाँधि चढ़ाइन्हि घनहीं। (मा० २।१६१।२) चढ़ाइहि–१. चढ़ाया. २. चढ़ावेगा। उ० २. जो गंगाचलु आनि चढ़ाइहि। (मा० ६।३।१) चढ़ाइहौं–चढ़ाऊँगा। उ० बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू। (क० २।६) चढ़ाई–चढ़ाया। उ० कुअँरि चढ़ाई पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस। (मा० १।३३८) चढ़ाई–१. चढ़ने की क्रिया या भाव, २. ऊँचाई की ओर ले जानेवाली धरती, ३. आक्रमण, धावा, ४. किसी देवता को अर्पण की हुई वस्तु, ५. चढ़ाकर, ६. चढ़ाया। उ० ५. कटि भाथी सर चाप चढ़ाई। (मा० २।६०।२) चढ़ाउब–१. चढ़ाउँगा, २. चढ़ाना। उ० २. रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। (मा० १।२५२।१) चढ़ाए–चढ़ाया। उ० करि बिनती रथ रामु चढ़ाए। (मा० २।८३।१) चढ़ावत–चढ़ाते, चढ़ाते हुए। उ० लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। (मा० १।२६१।४) चढ़ावा–चढ़ाया। उ० काहुँ न संकर चाप चढ़ावा। (मा० १।२५२।१) चढ़ावौं–चढ़ाऊँ। उ० कमल-नाल जिमि चाप चढ़ावौं। (मा० १।२५३।४)
चतुरंग–(सं०)–१. घोड़, हाथी, रथ और पैदल चार अंगों में बटी हुई सेना। चतुरंगिनी, २. सेना के घोड़ा, हाथी, रथ और पैदल चार अंग। उ० २. सेन संग चतुरंग न थोरी। (मा० २।२२७।१)
चतुरंगिणी–(सं०)–हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चार अंगोंवाली सेना।
चतुरंगिनि–दे० 'चतुरंगिणी'।
चतुरंगिनी–दे० 'चतुरंगिणी'। उ० चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। (मा० ३।३८।५)
चतुर–(सं०)१. टेढ़ी चाल चलनेवाला, २. फुरतीला, तेज़, ३. प्रवीण, होशियार, निपुण, ४. धूर्त, चालाक। उ० ३. चतुर गँभीर राम महतारी। (मा० २।१८।१)
चतुरता–चतुराई, चतुर होने का भाव, होशियारी। उ० मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव। (मा० १।१६३)
चतुराई–चतुरता, होशियारी, चतुर होने का भाव। उ० लखहिं न भूप कपट चतुराई। (मा० २।२७।३)

चतुरानन–(सं०)–चार मुखवाला, ब्रह्मा। उ० अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। (मा० १।२०२।१)
चतुर्दश–(सं०)–चौदह।
चतुर्दस–दे० 'चतुर्दश'। उ० सुभट चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा खर दूषन। (क० ७।१३३)
चतुभुर्ज–(सं०)–चार भुजावाला, विष्णु।
चनक–(सं० चणक)–चना, रहिला, एक अन्न। उ० जानत हो चारि फल चारि ही चनक को। (क० ७।७३)
चना–(सं० चणक)–एक अन्न, रहिला, बूट। चना चबाय हाथ चाटियत–अत्यधिक कंजूसी करते। उ० गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचि हू को, आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है। (क० ७।९९)
चनार–(सं० कांचनार)–एक पेड़, कचनार। उ० बर बिहार चरन चारु पाँड़र चंपक चनार करनहार बार पार पुर पुरंगिनी। (गी० २।४३)
चप–अष्टाध्यायी का चप प्रत्याहार जिसमें क्रमशः च, ट, त, क अक्षर आती हैं। उ० तुलसी बरन बिकल्प तें और चप-तृतिय समेत। (स० २७९)
चपट–(सं०)–१. चपत, थप्पड़, २. धक्कम-धक्का। उ० २. बिकट चटकन चपट, चरन गहि पटक महि। (क० ६।४६)
चपत (१)–(सं० चपट)–१. थप्पड़, तमाचा, २. धक्का, ३. हानि, नुकसान।
चपत (२)–(सं० चपन)–१. दबता है, दबता हुआ, २. झेंपता है, शरमाता है, शरमाता हुआ। उ० २. निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ। (वि०१००)
चपरि–(सं० चंचल)–१. शीघ्र, तुरत, तेज़ी से, सहसा, २. साहस के साथ। उ० १. चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु। (मा० १।१५६)
चपल–(सं०)–१. चंचल, अस्थिर, बहुत हिलने डोलनेवाला, २. क्षणिक, बहुत काल तक न रहनेवाला, ३. उतावला, जल्दबाज़, ४. धृष्ट, चालाक, ५. पारा, ६. पपीहा। उ० १. जद्यपि परम चपल श्री संतत, थिर न रहति कतहूँ। (वि० ८६)
चपलता–(सं०)–१.चंचलता, उतावली,२. धृष्टता, ढिठाई। उ० २. चूक चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई। (वि० ३५)
चपला–(सं०)–१. लक्ष्मी, २. बिजली। उ० २. चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की। (क० १।५)
चपेट–(सं० चपन)–१. चपत, तमाचा, थप्पड़ २. झोंका, रगड़ा, धक्का, आघात, घिस्सा, ३. दबाव, संकट, ४. डाँट, फटकार। उ० १. महाभुज-दंड द्वै अंडकटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं। (क० ६।१४) चपेटन्हि–चपत, धक्के। उ० बानर भालु चपेटन्हि लागे। (मा० ६।३३।४) चपेटे–चपेट का बहुवचन। दे० 'चपेट'। उ० १. चपरि चपेटे देत नित केस गहे कर मीचु। (दो० २४८)
चपेटा–दे० 'चपेट'। उ० १. प्रान लेहिं एक एक चपेटा। (मा० ४।२४।१)
चबेना–(सं० चर्वण)–चबाकर खाने के लिए सूखा या भुना हुआ अन्न। भूँजा, दाना। उ०जानेहु लेइहि मागि चबेना। (मा० २।३०।३)
चमंकहिं–(अनु० चमचम, चमकन)–चमकती हैं, चमक रही है। उ० बहु कृपान तरवार चमंकहिं। (मा० ६।८७।२)
चमकहिं–चमकते हैं।
चमगादर–दे० 'चमगादुर'।
चमगादुर–(सं० चर्मचटका)–एक उड़नेवाला जन्तु, चमगादड़। उ० ते चमगादुर होइ अवतरहीं। (मा० ७।१२१।१४)
चमगीदड़–दे० 'चमगादुर'।
चमर–दे० 'चवँर'। उ० १. ध्वज पताक पट चमर सुहाए। (मा० १।२८९।१)
चमुत–दे० 'मुचत'। उ० अति चमुत स्रमकन मुखनि बिथुरे चिकुर बिलुलित हार। (गी० ७।१८)
चमुरु–(सं० चमूरु)–एक प्रकार का मृग।
चमू–(सं०)–१. सेना, फौज़, २. नियत संख्या की फौज़ जिसमें ७२९ हाथी, ७२९ रथ, २१८७ सवार, तथा ३६४५ पैदल होते हैं। उ० १. भीषम-द्रोन-करनादि-पालित, कालदृक, सुयोधन-चमू-निधन हेतू। (वि० २८)
चय–(सं०)–१. समूह, ढेर, राशि, २. टीला, ढूह, ३. गढ़, किला, ४. चहार-दीवारी, कोट, ५. चबूतरा, ६. यज्ञ के लिए अग्नि आदि का एक विशेष संस्कार। उ० १. जय जय भगीरथ नंदिनि, मुनि चय चकोरिचंदिनि। (वि०१७)
चयन (१)–(सं०)–१. इकट्ठा करने का कार्य, संग्रह, २. चुनने का कार्य, चुनाई, ३.यज्ञ के लिए अग्नि का संस्कार।
चयन (२) (सं० शयन (?)–१. चैन, सुख, आराम, २. आनंद के लिए, आनंद मनाने के लिए। उ० २. मानहुँ चयन मयन-पुर आयउ प्रिय ऋतुराज। (गी० २/४७)
चये–दे० 'चय'।
चर–(सं०)–१. राजा की ओर से नियुक्त आदमी जो गुप्त रूप से बातों का पता लगावे, २. दूत, किसी विशेष कार्य के लिए भेजा गया आदमी, ३. वह जो चले, चलनेवाला, जंगम, ४. कौड़ी, ५. खानेवाला, आहार करनेवाला। उ० ३. रामु चराचर नायक अहहीं। (मा० २।७७।३) चरनि (१)–(सं० चर)–चरों, दूतों। उ० चरचा चरनि सों चरची जानमनि रघुराइ। (गी० ७।२७)
चरइ–(सं० चर्, फा० चरीदन)–चरता है, चर रहा है। उ० चरइ हरित तृन बलि पसु जैसें। (मा० २।२२।१) चरत–(सं० चर्,)–चरता है, खाता है। उ० बकत बिनहिं पास सेमर-सुमन-आस, करत चरत तेइ फल बिनु हीर। (वि० १९७) चरति–चरती है, खाती है। उ० चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी। (वि०२२) चरहिं–१ चरते हैं, खाते हैं, २. चलते हैं, विचरते हैं, ३. खावें, चरें, ४. विचरे, घूमें। उ० २. जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल। (मा० १।२७७)
चरग–(फा०)–एक प्रकार का बाज़ पक्षी। उ० चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर। (दो० ३०१)
चरचा–दे० 'चर्चा'। उ० २. दे० 'चरनि'। चरचाउ–चर्चा भी। उ० निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ। (वि० १००) चरचौ–चरचा भी, ज़िक्र भी। उ० मिलि मुनिबृंद फिरत दंडकबन, सो चरचौ न चलाई। (वि० १६५)

चरची–१. बातें की, चर्चा की, २. पोता, लगाया, ३. भाँपा, अनुमान किया। उ० दे० 'चरनि'।
चरण–(सं०)–१. पग, पैर, पाँव, २. बड़ों की समीपता, ३. किसी छंद का एक पद, ४. मूल, जड़, ५. किसी चीज़ का चौथाई भाग, ६. गोत्र, ७. क्रम, ८. आचार, ९. घूमने की जगह, १०. किरण, ११. गमन, जाना, १२. भक्षण, चरने का काम। उ० १. सिद्ध-सनकादि-योगींद्र-वृंदारका-विष्णु-विधि-वंद्य चरणारविंद। (वि० १२)। ६. मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी। (वि०२२)
चरणपीठ–(सं०)–१. चरणपादुका, खड़ाऊँ, २. पैर का ऊपरी भाग।
चरणोदक–(सं०)–चरणामृत, पैर धोया पानी।
चरन–दे० 'चरण'। उ० १. तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह। (मा० ३।४५) चरनन्हि–चरणों, चरणों पर। उ० बार बार सिसुचरनन्हि परहीं। (मा० १।१६४।३)
चरनपीठ दे० 'चरणपीठ'। उ० १. चरनपीठ करुना-निधान के। (मा० २।३१६।३)
चरना–दे० 'चरण'। उ० १. बंदउँ संत असज्जन चरना। (मा० १।५।२)
चरनि (२)–(सं० चल)–चलना, चलने का भाव। उ० लसत कर प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि। (गी० १।२४)
चरनोदक–दे० 'चरणोदक'।
चरफराहिं–(?)–तड़फड़ाते हैं। उ० चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। (मा० २।१४३।३)
चरम (१)–(सं०) १. अंतिम, आखिरी, चोटी का, २. अंत, ३. पश्चिम। उ० १. चरम देह द्विज कै मैं पाई। (मा० ७।११०।२)
चरम (२)–(सं० चर्म)–१. चाम, त्वचा, खाल, २. ढाल, तलवार के घाव से बचने की वस्तु विशेष, ३. मृगचर्म, मृगछाला। उ० ३. चामर चरम बसन बहुभाँती। (मा० २।६।२)
चरवाहै–चरवाहे को। उ० ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिन बानर के चरवाहै। (क० ७।५६)
चरवाहो–(सं० चर, फा० चरीदन)–चरवाहा, चरानेवाला। उ० कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को। (क० ७।१७)
चरहिं–१. भ्रमण करे, विचरे, घूमे, २. खाय, भोजन करे। उ० १. दुइज द्वैत-मति छाँड़ि चरहि महि-मंडल धीर। (वि० २०३) चरहीं–१. विचरते हैं, घूमते हैं, २. चरते हैं, खाते हैं। उ० १. बिरहित बैर मुदित मन चरहीं। (मा० २।१२४।४)
चरि–१. चलकर, भ्रमण कर, २. खाकर, चरकर। उ० २. धरनि-धेनु चरि धरम-तिनु प्रजा-सु-बत्स पिन्हाइ। (स० ६६२) चरिए–१, चरने की क्रिया कीजिए, २. चलिए, भ्रमण कीजिए, ३.विचरता हूँ, भ्रमण करता हूँ। उ० ३. दुख सो सुख मानि सुखी चरिए। (मा०६।१११।१०)
चरै–१. भ्रमण करै, विचरण करै, २. खाय, भक्षण करे।
चराचर–(सं०)–१. चर और अचर, जड़ और चेतन, स्थावर और जंगम, २.जगत, संसार। उ० १. जीव चराचर जाचत तेही। (मा० ७।१२९।५) चराचरराया–चर और अचर का स्वामी, ईश्वर, भगवान्। उ० बोले बिहसि चराचरराया। (मा० १।१२८।३)
चरित–(सं०)–१. रहन-सहन, आचरण, २. काम, करनी, कृत्य, ३. किसी के जीवन की विशेष घटनाओं या कार्यों आदि का वर्णन, जीवनी, जीवन-चरित, ४. कथा, वृत्तांत। उ० ४. चरित-सुर सरित कवि-मुख्य-गिरि निःसरित पिवत मज्जत मुदित सत समाजा। (वि० ४४)
चरिता–दे० 'चरित'। उ० ४. जुगल पुनीत मनोहर चरिता। (मा० १।१५।१)
चरित्र–(सं०)–१. स्वभाव, व्यवहार, २. वह जो किया जाय, कार्य, ३. करनी, करतूत, ४. कथा, वृत्तांत, ५. भेद। उ० ५. सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। (मा० १।१३३।४)
चरु (१)–(सं०)–१. यज्ञ या हवनादि के लिए पकाया अन्न, हविष्यान्न, २.वह पात्र जिसमें उक्त अन्न पकाया जाता है, ३. पशुओं के चरने की ज़मीन, ४. यज्ञ, ५. यज्ञ का भाग।
चरु (२)–दे० 'चर'।
चरुआ–दे० 'चरु (१)'।
चरू–दे० 'चरु (१)'। उ० १. प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें। (मा० १।१८९।३)
चरेरीऐ–(अनु० चरचर)–१. कड़ा ही, कठोर ही, २. कर्ण-कटु ही, कर्कश ही। उ० २. यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरीऐ रही है। (कृ० ४२)
चर्चा–(सं०)–१. ज़िक्र, वर्णन, बयान, २. बात, वार्तालाप, ३. अफ़वाह, शोर, ४. लेपना, पोतना।
चर्चित–(सं०)–१. पोता हुआ, लगाया हुआ, लेपित, २. जिसकी चर्चा की गई हो। उ० १. स्याम सरीर सुचंदन-चर्चित, पीत दुकूल अधिक छबि छाजति। (गी० ७।१७)
चर्म–(सं०)–१.चमड़ा, चाम, खाल, २.ढाल। उ० २.चर्म-असिशूलधर, डमरु शर चाप कर, यान वृषभेश, करुणा निधानं। (वि० ११)
चल (१)–(सं०)–१. चंचल, अस्थिर, २. कंपन, कँपकपी, ३. कपट, छल, ४. दोष, बुराई, ५. विष्णु, ६. शिव, ७. पारा।
चल (२)–(सं० चलन)–१. चलने का भाव, चलना, चल सकना, २. चलो। उ० १. चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। (मा० १।१६५।३)
चलइ–(सं० चल)–चलता है, जाता है। उ० चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान। (मा० २।४२) चलई–चलता है, जाता है। चलउँ–१. चलूँ, २. चलता, जाता। उ० २. चलउँ भागि तब पूप देखावहिं। (मा० ७।७७।५)
चलत–१. चलते हुए, जाते हुए, डोलते हुए, २. बश भर, ३. चलता है, जाता है, ४. मरते हुए, महाप्रयाण करते हुए, ५. मरता है। उ० ४. चलत न देखन पायउँ तोही। (मा० २।१६०।३) चलति–चलती हैं, चल रही हैं। उ० धरति चरन मग चलति सभीता। (मा० २।१२३।३)

चलतो–चलता, चला होता। उ० जो हौं प्रभु-आयसु लै चलतो। (गी० ५।१३) चलत्–हिलते हुए, डोलते हुए, चलते हुए। उ० चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। (मा० ७।१०८।४) चलब–१. चलूँगा, चलेंगे, २. चलना होगा। उ० १. जौं न चलब हम कहें तुम्हारें। (मा० १।१६६।४) चलहिं–१. चलते हैं, जाते हैं, २. चलें। उ० २. हम सँग चलहिं जो आयसु होई। (मा० २।१११२।४) चलहीं–१. चलें, २. चलते हैं, जाते हैं। उ० २. तजि श्रुति पंथु बाम पथ चलहीं। (मा० २।१६८।४) चलहु–चलो, चलिए। उ० चलहु सफल श्रम सब कर करहू। (मा० २।१३२।४) चला–चल पड़ा, निकला, आगे बढ़ा। उ० चला बिलोचन बारि प्रबाहू। (मा० २।४४।२) चलि (१)–(सं० चल्)–१. चलकर, गमनकर, २. चलो, चलिए। उ० १. चरन राम तीरथ चलि जाहीं। (मा० २।१२६।३) चलिअ–चलिए। उ० बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति। (मा० ५।३१) चलिय–चलिए, गमन कीजिए। उ० प्रीति राम सों, नीति पथ चलिय राग रिस जीति। (दो० ८६) चलिहउँ–चलूँगा। उ० चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी। (मा० २।४६।२) चलिहहिं–चलेंगे। उ० किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर। (मा० २। १२०) चलिहि–चलेगी, जायगी। उ० पुरबासी सुनि चलिहि बराता। (मा० १।३३३।१) चलिहैं–चलेंगे। उ० जबै जमराज रजायसु तें मोहिं लै चलिहैं भट बाँधि नटैया। (क० ७।५१) चलिहै–चलेगा। उ० जातें तब हित होइ कुसल कुल अचल राज चलिहै न चलायो। (गी० ६।२) चलिहौ–चलोगे। उ० पगनि कब चलिहौ चारौ भैया? (गी० १।६) चलीं–'चली' का बहुवचन। चलु–चलो। उ० अब चित चेति चित्रकूटहि चलु। (वि० २४) चले–चल पड़े, निकले, छूटे, प्रचलित हुए। उ० राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी। (क० ६।५१) चलेउँ–चला, मैं चला। उ० सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ। (मा० ७।११२ क) चलेउ–चला, चला गया, चल पड़ा। उ० चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई। (मा० ७।६२।३) चलेऊ–चले। उ० कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ। (मा० ५।२६।३) चलेसि–१. चल रहा है, चला जा रहा है, २. चला। उ० १. सो कह चलेसि मोहि निंदरी। (मा० ५।४।१) चलेहुँ–चलने से भी, चलने पर भी। उ० चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें। (मा० २।३१५।३) चलैं–चलते हैं। चलै–चलता है। उ० तेरी महिमा तें चलै चिंचिनी-चियाँ रे। (वि० ३३) चलौ–१. चलने लगे, चले, २. चलो, चलिए। उ० १. चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल। (दो० ३३३) २. दे० 'चलिहौ'।

चलदल–(सं०)–पीपल का वृक्ष। उ० चलदल को सो प्रात करै चित चर को। (गी० १।६७)

चलन–१. चलने का भाव, गति, चलना, जाना, २. रिवाज़, रस्म, व्यवहार, ३. प्रचार। उ० १. सकल चलन के साज जनक साजत भए। (जा० १८४)

चलनि–दे० 'चलन'। उ० १. परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि। (गी० १।२५)

चलनी–चलना, चलने की रीति। उ० राम बिलोकनि बोलनि चलनी। (मा० ७।१६।२)

चलाइ–१. चलाकर, बढ़ाकर, प्रचलित कर, २. चला, बढ़ा। उ० २. आगें किए निषादगन दीन्हेउ कटकु चलाइ। (मा० २।२०२) चलाइहि–१. चलावेगी, आरंभ करेगी, बढ़ावेगी, २. चलाया। उ० १. अरुंधती मिलि मैनहि बात चलाइहि। (पा० ८८)

चलाई–१. चलाया, चला दिया, बढ़ाया, शुरू किया, २. चलने का भाव, चलना। उ० १. केवट पारहि नाव चलाई। (मा० २।१५३।१) चलाए–१. चलाया, बढ़ाया, प्रचलित किया, २. चलाने से, हिलाने से, बढ़ाने से। उ० २. परमधीर नहिं चलहिं चलाए। (मा० १।१४५।२) चलायहु–१. चलाना, आरंभ करना, २. चलाया। उ० जाहु-हिमाचल-गेह प्रसंग चलायहु। (पा० ८७) चलाये–दे० 'चलाए'। चलायो–१. चलाया, २. चलाने से। उ० दे० 'चलिहै'। चलावहिं–चलाते हैं, चला रहे हैं, फेंक रहे हैं, प्रचलित कर रहे हैं। उ० लंका सन्मुख सिखर चलावहिं। (मा० ६।५।३) चलावा–चलाया, फेंका, बढ़ाया, प्रचलित किया। उ० तकि तकि तीर महीस चलावा। (मा० १।१५७।२)

चलाकी–(फ़ा० चालाकी)–होशियारी, चतुराई, चालाकी। उ० जोग कथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी। (क० ७।१३४)

चलि (२)–(सं०)–१. चादर, ओढ़नी, २. ढका हुआ, छुपड़ा हुआ।

चलित–(सं०)–अस्थिर, चलायमान, चलता हुआ। उ० चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल, बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी। (क० ६।४४)

चवँर–(सं० चामर)–१. सुरा गाय की पूँछ के बालों का या अन्य बालों का डंडे में लगा हुआ गुच्छा जिसे पीछे या बग़ल से राजाओं या मूर्तियों के सिर पर डुलाया जाता है। २. घोड़ों और हाथियों के सिर पर लगाने की कलगीं। उ० १. चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। (मा० २।१०५।४)

चवइ–दे० 'चवै'। चवहीं–चुवा देते हैं, नीचे गिरा देते हैं, टपका देते हैं। उ० लता बिटप मागें मधु चवहीं। (मा० ७।२३।३) चवै–(सं० च्यवन)–१. चुवे, बरसे, गिरे, २. चूता है, गिरता है, २. बरसावे, गिरावे, चुवावे। उ० ३. चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ बिषतूल। (मा० २।४८)

चष–(सं० चक्षु)–आँख, नेत्र, नयन। चषचारिखो–दे० 'चखचारिखो'। उ० दूजो को कहैया और सुनैया चषचारिखो। (क० १।१६) चषपूतरि–(सं० चक्षु + पुत्तली)–आँखों की पुतली, बहुत प्यारा।

चषु–दे० 'चष'।

चहँ–दे० 'चहुँ'।

चह–(सं० इच्छा का विपर्यय)–चाहता है, चाहे। उ० गा चहपार जतनु हिएँ हेरा। (मा० २।२५७।२) चहइ–चाहे, चाहता है। चहई–चाहे, चाहता है। उ० लोभि लोलुप कल कीरति चहई। (मा० १।२६७।२) चहउँ–चाहा,

चाहता हूँ। उ० अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा। (मा० २।२६४।४) चहत–१. चाहता, चाहता है, चाहते हैं, २. जिसे चाहा जाय, जिसके साथ प्रेम किया जाय, ३. चाहिए। उ० १. मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत। (मा० २।३०१) चहति–१. चाहती है, चाहती, २ देखती है। उ० १. बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि। (मा० २।२१७) चहते–चाहते। उ० जौ जप-जाप-जोग-व्रत-बरजित केवल प्रेम न चहते। (वि० ६७) चहनि–चाहना, प्रेम करने का भाव। उ० तुलसी तजि उभय लोक राम चरन-चहनि। (गी०२।८१) चहसि–चाहता है, चाहती है। उ० महा मंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि? (दो० १५६) चहसी–चाहता है, चाहती है। उ० छोटे बदन बात बड़ि चहसी। (मा० ६।३१।४) चहहिं–चाहते हैं। उ० रामु चहहिं संकरधनु तोरा। (मा० १।२४८।१) चहहीं–चाहते हैं। उ० नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। (मा० १।२१८।३) चहहुँ–चाहता हूँ। चहहु–चाहो, चाहते हो। उ० पठवहु कंत जो चहहु भलाई। (मा० ५।३६।४) चहहू–चाहते हो, चाहती हो। उ० जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। (मा० २।१००।४) चहिबो–१. चाहना, २. चाहता है, ३. चाहना है, ४. चाहिए, चाहना होगा। उ० ४. सोखि कै खेत कै, बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो। (गी० ५।१४) चहिय–चाहिए, आवश्यकता है। उ० तुलसी जो राम-पद चहिय प्रेम। (वि० २३) चहिहौं–चाहूँगा। उ० मोको अगम, सुगम तुम्ह को प्रभु! तउ फल चारि न चहिहौं। (वि० २३१) चहैं–चाहें, चाहते हैं। चहै–चाहे, चाहते हैं। उ० उपजा जब ज्ञाना, प्रभु मुसकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै। (मा० १।१९२।छं० ३) चहैगो–चाहेगा। उ० तोहिं बिनु मोहिं कबहूँ न कोऊ चहैगो। (वि० २५६) चहौं–चाहूँ, चाहता हूँ। चहौंगो–चाहूँगा। चहौं–चाहूँ, चाहता हूँ। उ० जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं। (वि० २६०) चहौंगो–चाहूँगा, इच्छा करूँगा। उ० यथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो। (वि० १७२) चह्यो–१. चाहना, २. प्रेमी, ३. जिसको चाहा जाय या चाहा गया हो, ४. चाहता हूँ। उ० १. अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चल्यो। (वि० २६०)

चहुँ–(सं० चतुर)–चार, चारों। उ० मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी। (वि० २२)

चहूँ–दे० 'चहुँ'। उ० चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। (मा० १।२३२।१)

चाँउर–(सं० तंदुल)–चावल। छिलका उतारा हुआ धान।

चाँकी–[चाँकना–(सं० चतुर+अंक)–खलिहान में अनाज की राशि पर मिट्टी, राख या टप्पे से निशान लगाना जिससे यदि कोई निकाले तो ज्ञात हो जाय। सीमा बाँधने के लिए किसी वस्तु को रेखा या चिह्न खींचकर चारो ओर से घेरना, हद बाँधना] हद बना दी गई है, सीमा बाँध दी गई है। उ० तिलक रेख सोभा जनु चाँकी। (मा० १।२१९।४)

चाँचर–दे० 'चाँचरि'। चाँचरि–(सं० चर्चरी)–बसंत ऋतु में गाया जानेवाला एक राग। होली, फाग आदि इसी के अंतर्गत हैं। उ० चाँचरि झूमक कहैं सरस राग। (गी० ७।२२)

चाँड़–दे० 'चाड़'। उ० १. हित पुनीत सब स्वारथहि, अरि असुद्ध बिनु चाँड़। (दो० ३३०)

चाँद–(सं० चंद्र)– चंद्रमा, शशि। उ० चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि। (ब० १६)

चाँदिनि–१. चाँदनी, २. चंद्रमायुक्त।

चाँपत–(सं० चंपन)–दबाते हैं, चाँपते हैं। चाँपन–चाँपना, दबाना। चाँपि–१. चाँपकर, दबाकर, २. दबा, कमकर। उ० २. सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। (मा० १।१२६।४) चाँपी–१. दबाया, २. दबाकर। उ० १. कुबरी दसन जीभ तब चाँपी। (मा० २।२०।१) चाँपे–१. दबाए, २. दबाने से। उ० २. चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गो। (क० ४।१)

चाउ–दे० 'चाऊ'। उ० ३. रोप्यो पाउँ चपरि चमू को चाउ चाहिगो। (क० ६।२३)

चाउर–दे० 'चाँउर'। उ० भारी-भारी रावरे के चाउर से काँड़िगो। (क० ६।२४)

चाऊ–(सं० इच्छा>चाह>चाव)–१. प्रबल इच्छा, अभिलाषा, अरमान, २. प्रेम, अनुराग, चाह, ३. उमंग, उत्साह, ४. आनंद। उ० ३. राम चरन आश्रित चित चाऊ। (मा० २।२३५।४)

चाकरी–(फा०)–१. नौकरी, पैसे के लिए कहीं काम करना, २. सेवा, ख़िदमत। उ० १. चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख। (क० ७।६७)

चाका–(सं० चक्र)–१. पहिया, २. चाक। उ० १. सौरज धीरज तेहि रथ चाका। (मा० ६।८०।३)

चाकि–(सं० चतुर+अंक=चाँक)–घेरकर, अपने लिए सुरक्षित कर। उ०सकेलि चाकि राखी रासी, जाँगर जहान भयो। (क० ५।३२)

चाकी–दे० 'चाँकी'।

चाख (१)–(सं० चष्)–चख, चखकर, स्वाद लेकर। चाखा (१)–(सं० चष्)–१. चखता है, २. चखा, भोगा। उ० १. जो जस करइ सो तस फलु चाखा। (मा० २। २१९।२)

चाख (२)–(सं० चाष)–नीलकंठ पक्षी।

चाखा (२)–(सं० चाष)–नीलकंठ पक्षी।

चाटत–(अनु० चटचट=जीभ चलाने का शब्द)–चाटता, चाटता है। उ० चाटत रह्यों स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो। (वि० २२६)

चाड़–(सं० चंड)–१. प्रबल इच्छा, गहरी चाह, २. उग्र, उद्धत, ३. बढ़ा-चढ़ा, श्रेष्ठ, ४. तुष्ट, संतुष्ट, ५. स्वार्थ। उ० १. तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई। (मा० १।२६६।२)

चातक–(सं०)–पपीहा, वर्षाकाल का एक प्रसिद्ध पक्षी, इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह केवल स्वाती का बरसता जल पीता है। चाहे मर जाय पर और कोई पानी नहीं पी सकता। उ० धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति धन की। (वि० ९०) चातकही–चातक को। उ० हँसहि बक दादुर चातकही। (मा० १।६।१) चातकी–

चातक की स्त्री। उ० जनु चातकी पाइ जलु स्वाती। (मा० १।२६३।३)
चातकि–चातक की स्त्री। उ० जिमि चातक चातकि तृषित वृष्टि सरद रितु स्वाति। (मा० २।५२)
चातकु–दे० 'चातक'। उ० दे० 'घटि'।
चातुरी–(सं०)–१. चतुरता, चतुराई, २. छल, ३. चालाकी, धूर्तता, ४. शठता। उ० ३. सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि। (मा० ४।६)
चाप (१)–(सं०)–१. धनुष, कमान, २. दबाव, ३. आहट, पैर की आहट, ४. संकोच। उ० १. चर्म-असिशूलधर, डमरु शर चाप कर। (वि० ११)
चाप (२)–(?)–अनुमान, अन्दाज़।
चापत–(सं० चपन)–१. चाँपते है, मीड़ते हैं, दबाते हैं, २. दबाते ही। उ० १. चापत चरन लखनु उर लाएँ। (मा० १।२२६।४) चापन–(सं० चपन)–१. दबाना, मीड़ना, पैर दबाना, २. कम करना। उ० १. लगे चरन चापन दोउ भाई। (मा० १।२२६।२) चापि(१)–(सं० चपन)–१. दबाकर, मीड़कर, २. दबा, छू। उ० १.पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांडु। (मा० १।२५६) २. तिनकी न काम सकै चापि छाँह। (वि० ४६) चापी–दाबी, दबायी। चापौंगी–चाँपूँगी, दबाऊँगी। उ० थाके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलावौंगी। (गी० २।६)
चापधर–धनुर्धारी, धनुष धारण करनेवाला।
चापमख–धनुषयज्ञ। उ० आए देखन चापमख सुनि हरषीं- सब नारि। (मा० १।२२१)
चापलता–चंचलता, ढिठाई। उ० लघुमति चापलता कबि छमहूँ। (मा० २।३०४।१)
चापा–दे० 'चाप (१)'। उ० १. राम बरी सिय भंजेउ चापा। (मा० १।२६५।३)
चापि (२)–(सं० च + अपि)–और भी, फिर भी। उ० असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग, रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये। (वि० ५७)
चापू–चाप, धनुष। उ० भंजेउ राम आपु भव चापू। (मा० १।२४।३)
चाम–(सं० चर्म)–खाल, चमड़ा। उ० ताके पग की पगतरी, मेरे तनु को चाम। (वै० ३७)
चामर (१)–(सं०)–दे० 'चवँर'। उ० चामर चरम बसन बहु भाँती। (मा० २।६।३)
चामर (२)–(सं० चामरी)–सुरा गाय, वह पहाड़ी गाय जिसकी पूँछ का चँवर बनता है।
चामर (३)–(सं० तंडुल ?)–चावल।
चामीकर–(सं०)–१. सोना, स्वर्ण, २. धतूरा। उ० १. मनि चामीकर चारु थार सजि आरति। (पा० १३१)
चामुंडा–(सं०)–एक देवी का नाम जिन्होंने शुंभ और निशुंभ नामक दो दैत्यों का वध किया था। उ० चामुंडा नाना बिधि गावहिं। (मा० ६।८८।४)
चाय (१)–(सं० चय)–संचय, समूह।
चाय (२)–(सं० इच्छा>चाह)–१. उत्साह, उमंग, आनंद, प्रेम, २. उत्कंठा, इच्छा, ३. शौक, रुचि। उ० १. हनुमान सनमानि कै जेंवाये चित चाय सों। (क० ५।२४)
चाय (३)–(सं० चतुर्)–१. चार, २. चार अंगुल।
चार (१)–(सं० चतुर्)–चार की संख्या, तीन और एक।
चार (२)–(सं०)–१. गति, चाल, २ .बंधन, कारागार, ३. गुप्त दूत, चर, जासूस, ४. दूत, हलकारा, ५. सेवक, दास, ६. आचार, रीति, ७. प्यार। उ० ३. चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति। (मा०२।२७१) ४. लोभी जसु चह चार गुमानी। (मा० ३।१७।८)
चार (३)–(?)–चुगुली खानेवाला, चुगला। उ० जे अपकारी चार, तिनकर गौरव, मान्य तेइ। (दो० ५५१)
चारण–(सं०)–भाट, बंदीजन, बंश की कीर्ति गानेवाली राजपूताने की एक जाति।
चारन–दे० 'चारण'।
चारा (१)–(सं० चर)–पक्षियों और पशुओं का खाना, घास आदि। उ० चारा चाषु बाम दिसि लेई। (मा० १। ३०३।१)
चारा (२)–(फा०)–१. उपाय, इलाज, २. वश।
चारा (३)–(?)–चालाक।
चारि–(सं० चतुर्)–१. चार, दो और दो, २. अर्थ धर्म काम तथा मोक्ष आदि चर फल, ३. जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था, ४. अंडज, पिंडज, स्वेदज तथा उद्भिज आदि चार प्रकार के जीव, ५. दो भीतर तथा दो बाहर के चार नेत्र। उ० १. जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। (मा० ३।५।६) चारिउ–चारों। उ० करत फिरत चारिउ सुकुमारा। (मा० १।२०३।२) चारिहुँ–चारो। उ० लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा। (मा० ६।७८।२) चारिहु–चारो। उ० चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारै। (क० ७।१०४) चारिहूँ–चारो। उ० चारिहूँ बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ। (वि० २६४) चारों– चारो। चारो (१)–सब के सब चार। उ० पतित पुनीत दीनहित असरन-सरन देखिबो कहत श्रुति चारो। (वि० ६४) चारयो–चारो ही। उ० राम लखन भावते भरत रिपुदवन चारु चारयो भैया। (गी० १।८) चार्यौ–चारों ही। उ० गयो छाँड़ि छल सरन राम की जो फल चारि चारयौं जनै। (गी० ५।४०) चारयौ–चारो ही।
चारिक–कोई चार, थोड़े से।
चारित–(सं०)–१. जो चलाया गया हो, २. स्वभाव, व्यवहार, ३. कुलाचार, ४. भबके द्वारा उतारा हुआ अर्क।
चारितु–चारा, घास आदि। उ० घरनि-धेनु चारितु चरत, प्रजा सुबच्छ पेन्हाई। (दो० ५१२)
चारिदस–चार और दस, चौदह। उ० बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान। (मा० २।५३)
चारिपद–चार पदवाला, चौपाया।
चारी (१)–(सं० चारिन्)–१. चलनेवाला, २. आचरण करनेवाला, ३. पैदल सिपाही।
चारी (२)–(सं० चारु)–सुन्दर, चारु।
चारी (३)–(सं० चतुर्)–चार, चारो। उ० त्रिभुवन तिहुँ काल बिदित, बदत बेद चारी। (वि० ७८)
चारु (१)–(सं० चतुर्)–चार, दो और दो।
चारु (२)–(सं०)–सुन्दर, मनोहर। उ० चौकें चारु सुमित्राँ पूरीं। (मा० २।८।२) चारुतर–अधिक सुन्दर। उ० महि-

मंडल मंडन चारुतरं। (मा० ७।१४।३) चारुतर–अधिक अच्छा, अधिक सुन्दर। उ० हास चारुतर, कपोल नासिका सुहाई। (गी० ७।३)
चारु (३)–(सं० चरु)–बर्तन, हाँड़ी, चेरुआ।
चारू–दे० 'चारु (२)', 'चारु (३)'। उ० [चारु (२)] होहिं कबित मुकुतामनि चारू। (मा० १।११।५)
चारो (२)–दे० 'चारा (२)'। उ० २. तौ सुनिबो बहुत अब, कहा करम सों चारो ? (कृ० ३४)
चाल–(सं० चार)–१. गति, गमन, चलने की क्रिया, २. चलने का ढङ्ग, ३. आचरण, चलन, बर्त्ताव, व्यवहार, ४. चलन, रीति, रवाज, ५. आकृति, बनावट, ६. धूर्तता, चालाकी, ७. प्रकार, विधि, तरह, ढङ्ग, ८. आन्दोलन, धूम, ९. आहट, खटका। उ० ६. जोगकथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी। (क० ७।१३४) चाल चलाकी–चालाकी की चाल। उ० जोगकथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी। (क० ७।१३४) चालि–१. चाल, रीति, नियम, २. चालाकी, धूर्ततापूर्ण चाल या षड्यंत्र, ३. चलन। उ० १. नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल चालि प्रभु मान। (क० ७।१२२)
चालक–(सं०)–१. चलानेवाला, संचालक, २. नटखट हाथी, ३. चालाक, धूर्त्त, ४. डिगानेवाला, खींचनेवाला, चलानेवाला। उ० ३. घरघाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी। (पा० १२१)
चालत–(सं० चालन)–१. चलाते हैं, चलाता है, आगे बढ़ाता है, २. प्रचलित, व्यवहार में आनेवाला। उ० १. चालत सब राज-काज, आयसु अनुसरत। (गी० २।८०) चालति–चलाती है, हिलाती डुलाती हैं। उ० चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी। (मा० १।२३७। छं० ३) चालहीं–चलाते हैं। उ० निज लोक बिसरे लोकपति, घर की न चरचा चालहीं। (गी० १।५) चालही–१. चलाते हैं, २.चलाओ, ३. चला, चली। उ० २. हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही। (मा० २।५०।छं० २)
चाली–१. गति, चाल, २. चालाकी, धूर्तता, ३. धूर्त, चालबाज़। उ० सीलु सनेहु सरिस सम चाली। (मा० २।२२२।१)
चालु–१. चालू, चलता आदमी, २. चाल, गति, ३. चालाकी, ४. चलाओ, चलावे, गमन करावे, ५. व्यवहार करे। उ० ४. जपहिं नाम रघुनाथ को चरचा दुसरी न चालु। (वि० १९३)
चाव–(सं० इच्छा, हिन्दी चाह)–१. प्रबल इच्छा, अभिलाषा, २. प्रेम, अनुराग, ३. शौक, चाव, ४. प्रेम, दुलार, ५. उमंग, उत्साह, आनंद।
चावल–(सं० तंडुल)–धान के भीतर का दाना जिसका भात बनता है। अक्षत।
चाष (१)–(सं०)–नीलकंठ पक्षी।
चाष (१)– ?)–उत्साह।
चाषु–दे० '(चाष (१)'। उ० चारा चाषु बाम दिसि लेई। (मा० १।३०३।१)
चाह (१)–(सं० इच्छा)–१. इच्छा, २. प्रीति, ३. आदर, ४. चाहो, देखो, इच्छा करो।
चाह (२)–(सं० चार)–खबर। उ० पुर घर-घर आनंद महासुहिन चाह सुहाई। (गी० १।१०१।५)
चाहइ–१. चाहे, २. चाहता है। चाहउँ–चाहता हूँ। उ० चाहउँ तुम्हहि समानसुत प्रभुसन कवन दुराउ। (मा० १।१४९) चाहत–१. चाहता है, प्यार करता है, २. चाह से देखता है। उ० २. मिले भरत जननी गुरु परिजन चाहत परम अनंद भरे। (गी० ७।३८) चाहति–चाहती है। उ० चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर। (मा० १।२१०) चाहन–१. चाहना, प्यार करना, चाहने; २. देखना, देखने। चाहनि–१. चाहना, प्यार करना, २. देखना, ३. चाह से, प्रेम से, ४. चाह का बहुवचन, चाहें, इच्छाएँ। उ० ४. जहँ-जहँ लोभ लोल लालच बस, निज-हित चित चाहनि चै हौं। (वि० २२२) चाहसि–चाहता है, इच्छा करता है। उ० तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर। (मा० १।२१) चाहहिं–१. चाहते हैं, प्रेम करते हैं, २. देखते हैं, ३. चाहना, प्रेम करना। उ० १. मधुर मनोहर मूरति सादर चाहहिं। (जा० २२) चाहहु–१. चाहो, २. चाहते हो। उ० २. चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा। (मा० १।४७।२) चाहा–१. इच्छा किया, प्रेम किया, २. देखा, ३. चाहे। उ० ३. हरिपद बिमुख परमगति चाहा। (मा० १।२६७।२) चाहि–१. चाहकर, प्रेम कर, २. चाहो, ३. देखकर, देख ले, ४. अपेक्षाकृत अधिक, उससे बढ़कर, ५. चाह, इच्छा, ६. दृष्टि। उ० ४. कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। (मा० १।२५८।२) चाहिअ–चाहिए, उचित है। उ० चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। (मा० २।२१३।३) चाहिए–उचित है, उपयुक्त है। उ० मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान कहुँ एक। (मा० २।३१५) चाहिगो–१. देख गया, २. चाह गया, प्रेम कर गया। उ० १. रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो। (क० ६।२३) चाहिय–चाहिए, उचित है। चाही–१. देखी, २. देखने की इच्छा थी, ३. चाहा, इच्छा की, ४. देखकर, ५. चाहिए, ६. चाही हुई, जिसकी इच्छा की जाय, ७.चाह, ८. देखना, निरीक्षण करना, ९. अपेक्षाकृत अधिक। उ० ४. सखीं सीयसुख पुनि-पुनि चाही। (मा० १।३४९।३) ९. मरनु नीक तेहि जीवन चाही। (मा० २।२१।१) चाहु–१. चाह, इच्छा, २. चाहो, ३. देख, देखो। उ० ३. चारि परिहरे चारिको दानि चारि चख चाहु। (दो० १५१) चाहे–१. देखे, २. इच्छा करे, चाहा, इच्छा की, ३. होनहार, होनेवाला, ४. देखते ही, देखने पर। उ० २. दिए उचित जिन्ह-जिन्ह तेइ चाहे। (मा० ७।५०।२) चाहै–. चाहे, इच्छा करे, २. चाहता है। उ० १. जो आपन चाहै कल्याना। (मा० ५।३८।३)
चिंचिनी–(सं० तिंतिडी)–१. इमली का पेड़, २. इमली का फल। उ० २. तेरी महिमा तें चलै चिंचिनी-चियाँ रे। (वि० ३३)
चिंत–(सं० चिन्ता)–चिंता, चिंतना, ध्यान। उ० सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा। (मा० १।१८६। छं० ३)

चिंतक–१ चिंतन करनेवाला, २. ध्यान रखनेवाला। उ० २. जे रघुबीर चरन चिंतक तिन्हकी गति प्रगट दिखाई। (गी० १।१)
चिंतत–चिंता करते हैं, विचारते हैं, चिंतन करते हैं। उ० सारद सेस संभु निसि बासर, चिंतत रूप न हृदय समाई। (गी० १।१०६) चिंतहिं–चिंतन करते हैं, ध्यान करते हैं। उ० जेहि चिंतहिं परमारथवादी। (मा० १।१४४।२)
चिंतन–(सं०)–१. बार-बार स्मरण, ध्यान, २. गौर, विचार, विवेचना। उ० १. श्री रघुबीर-चरन-चिंतन तजि नाहिंन ठौर कहूँ। (वि० ८६)
चिंता–(सं०)–१. ध्यान, भावना, २. सोच, फिक्र, खटका।
चिंतापहारी–(सं० चिंता+अपहारिन्)–चिंता का नाश करनेवाला, निश्चिंत बना देनेवाला।
चिंतामणि–(सं०)–१. एक कल्पित मणि जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय वह पूर्ण कर देती है। २. सरस्वती का एक मंत्र जिसे विद्या आने के लिए लोग बालक की जीभ पर लिखते हैं।
चिंतामनि–दे० 'चिंतामणि'। उ० १. रामचरित चिंतामनि चारू। (मा० १।३२।१)
चिंतित–(सं०)–चितायुक्त, जिसे चिंता हो।
चिउरा–(सं० चिपिट)–चिउड़ा, चूरा। धान से बनाया हुआ एक प्रकार का चर्वण। उ० दधि चिउरा उपहार अपारा। (मा० १।३०५।३)
चिकना–१. खुशामदी, चिकनी बातें बनानेवाला। २. दे० 'चिकनी'। चिकनी का पुलिंग। चिकनी–(सं० चिक्कण)–१. साफ और बराबर, जो खुरदरा न हो, स्निग्ध, सँवारा हुआ, रुखाई रहित, २. घी या तेल लगी, चिकनाई युक्त। उ० २. छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू दे री मैया। (कृ० १) चिकने–दे० 'चिकनी'। उ० १. जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह। (दो० ६१)
चिकनाई–१. चिकना होने का भाव, चिकनाहट, चिकनापन, २. स्निग्धता, सरसता, ३. घी, तेल, चर्बी आदि चिकने पदार्थ। उ० १. जिमि खगपति जल कै चिकनाई। (मा० ७।८१।४)
चिकार–(सं० चीत्कार)–चिल्लाहट, चिंघाड़। उ० गज रथ तुरग चिकार कठोरा। (मा० ६।८७।२)
चिकारा–दे० 'चिकार'। उ० तब धावा करि घोर चिकारा। (मा० ६।७६।५)
चिकुर–(सं०)–सिर के बाल, बाल। उ० सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल। (गी० ७।५)
चिक्कण–(सं०)–दे० 'चिक्कन'।
चिक्कन–(सं० चिक्कण)–१. चिकना, मुलायम, २. सुपारी, ३. हड़। उ० १. दे० 'चिकुर'।
चिक्करत–(सं० चीत्कार)–चिंघाड़ते हैं, चीखते हैं। उ० चिक्करत लागत बान। (मा० ३।२०।५) चिक्करहिं–दे० 'चिक्करत'। उ० चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि काल कूरुम कलमले। (मा० १।२६१। छं० १) चिक्करहीं–चिग्घाड़ रहे हैं, गरज रहे हैं, चीख रहे हैं। उ० डगमगाहि दिग्गज चिक्करहीं। (मा० ५।३५।५)
चित (१)–(सं० चित्त)–१. चित्त, मन, अन्तःकरण, २. भीतर। उ० १. अब चित चेति चित्रकूटहि चलु। (वि० २४)
चित (२)–(सं० चित=ढेर किया हुआ)–पीठ के बल लेटा हुआ।
चित (३)–(सं० चित्)–ज्ञान, चैतन्यता। मु० चित करत–ध्यान देता। उ० गुनगन सीतानाथ के चित करत न हौं हौं। (वि० १४८) चितहि–चित्त को, मन को। उ० चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं। (मा० १।२११।४)
चितइ–(सं० चेतन)–१. देखकर, २. देखा, ध्यान दिया। उ० १. चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन। (मा० १।२२८।१) चितइये–देखिए, अवलोकिए। उ० जौं चितवनि सौंधी लगै चितइए सबेरे। (वि० २७३) चितइहौ–देखोगे। उ० तुम अति हित चितइहौ नाथ-तनु, बार-बार प्रभु तुमहिं चितैहैं। (गी० ५।५१) चितई–देखा, अवलोका, ध्यान से देखा। उ० साधना अनेक चितई न चितलाई है। (क० ७।७४) चितए–१. देखा, २. देखने पर। उ० २. तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए। (गी० १।३) चितयउँ–देखा, अवलोका। उ० ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात। (मा० ७।७६ क) चितयउ–देखा। उ० प्रियाबचन मृदु सुनत नृप चितयउ आँखि उघारि। (मा० २।१५४) चितये–१. देखा, २. देखने पर। चितव–देखे, देखता हो, देख रहा हो। उ० सरद ससिहि जनु चितव चकोरी। (मा० १।२३२।३) चितवत–१. देखता है, २. देखते ही। उ० २. चितवत कामु भयउ जरि छारा। (मा० १।८७।३) चितवति–१. देखते, देखते ही, २. देखती है। उ० २. चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। (मा० १।२३२।१) चितवहिं–देख रहे हैं, देखते हैं। उ० चितवहिं सादर रूप अनूपा। (मा० १।१४८।३) चितवहि–देखता है, देख रहा है। चितवा–देखा। उ० फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। (मा० १।५४।३) चितै–१. देखकर, २. देखा। उ० १. संकर निजपुर राखिए चितै सुलोचन कोर। (दो० २३६) चितैहैं–१. देखेंगे, २. ध्यान रक्खेंगे। उ० १. तुम अति हित चितइहौ नाथ-तनु, बार बार प्रभु तुमहिं चितैहैं। (गी ५।५१) चितैहौं–१. देखूँगा, २. ध्यान रक्खूँगा। उ० १. मोको न लेनो न देनो कछू, कलि! भूलि न रावरी ओर चितैहौं। (क० ७।१०२) चितैहौ–देखोगे। उ० भलो बुरो जन आपनो जिय जानि दयानिधि! अवगुन अमित चितैहौ। (वि० २७०) चितौ–देखो, चितओ। उ० नेकु! सुमुखि, चित लाइ चितौ री। (गी० १।७५)
चितचही–चित्त द्वारा चाही हुई, मनोनुकूल। उ० होइगी पै सोई जो बिधाता चितचही है। (गी० २।४१)
चितचाय–१. मन को अच्छा लगनेवाला, २. प्रसन्न मन। उ० २. सखी भूखे प्यासे पै चलत चितचाय हैं। (गी० २।२८)
चितचेता–१. चित्त या मन को जो अच्छा लगे, २. सावधान। उ० २. बैठहिं रामु होइ चितचेता। (मा० २।११।३)
चितचोर–चित को चुरानेवाला, अच्छा। उ० भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चितचोर। (मा० २।१३७)

चितभंग (१)–(सं० चित्त+भंग)–चित्त का न लगना। उ० दे० चितभंग (२)।

चितभंग (२)–(?)–बद्रिकाश्रम का एक पर्वत। उ० मान मनभंग, चितभंग मद, क्रोध लोभादि पर्वत दुर्ग भुवन भर्त्ता। (वि० ६०)

चितवन–ताकने का भाव, देखने का ढंग, नज़र, दृष्टि। चितवनि–दे० 'चितवन'। 'चितवन' का स्त्रीलिंग। उ० चितवनि ललित भावँती जी की। (मा० १।१४७।२) चितवनियाँ–दे० 'चितवन'। उ० बाल सुभाय बिलोल बिलोचन, चोरति चितहि चारु चितवनियाँ। (गी० १।३१)

चिता–(सं०)–चुनकर रखी लकड़ियों का ढेर जिस पर शव जलाया जाता है। उ० सरजु तीर रचि चिता बनाई। (मा० २।१७०।२)

चितु–दे० 'चित'। उ० १. रघुपति पद सरोज चितु राचा। (मा० १।२५६।२)

चितेरा–(सं० चित्रकार)–चित्र बनानेवाला, चित्रकार। चितेरी–'चितेरा' का स्त्रीलिंग। चितेरे–चितेरा ने, चितेरे ने। उ० सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे। (वि० १११)

चितेरो–दे० चितेरा'। उ० पिय-चरित सिय-चित चितेरो लिखत नित हित भीति। (गी० ७।३५)

चित्–(सं०)–चैतन्य ज्ञानयुक्त। उ० बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा, काल-परमानु चिच्छक्ति गुर्वी। (वि० ५४)

चित्त–(सं०)–१. अंतःकरण का एक भेद, अंतःकरण की एक वृत्ति, २. वह मानसिक शक्ति जिससे धारणा, भावना आदि करते हैं। अंतःकरण, जी, मन, दिल। उ० २. चारु चित्त भीति लिखि लीन्ही। (मा० १।२३५।२) चित्तनि–१. मनों, चित्त का बहुवचन, २. मनों में, चित्तों में। उ० २. लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खँभार सो। (ह० ४)

चित्तवृत्ति–(सं०)–चित्त या मन की गति, मन की अवस्था। योग शास्त्र में प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच प्रकार की चित्तवृत्तियाँ मानी गई हैं। उ० दीप निज-बोध, गत क्रोध मदमोह तम, प्रौढ़ अभिमान-चित्त-वृत्ति छीजै। (वि० ४७)

चित्र–(सं०)–१. चंदन आदि से माथे पर बनाया चिह्न, तिलक, २. रंगों आदि से बनाई आकृति, तसवीर, ३. अद्भुत, विचित्र, आश्चर्यजनक, ४. रङ्ग विरंगा, ५. छवि, सौंदर्य। उ० २. राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि। (मा० १।२६०)

चित्रकार–(सं०)–चित्र बनानेवाला, चितेरा। उ० चित्रकार करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै। (वि० ११६)

चित्रकूट–(सं०)–एक प्रसिद्ध पर्वत जहाँ बन के समय राम, लक्ष्मण और सीता ने बहुत दिनों तक निवास किया था। यह स्थान बाँदा ज़िले में प्रयाग से ५४ मील दूर है। इस पहाड़ के नीचे पयोष्णी और मंदाकिनी नदियाँ बहती हैं। इसी स्थान पर जयंत ने कौवे के वेश में सीता के पैर पर प्रहार किया था। उ० चित्रकूट चर अचर मलीना। (मा० २।३२१।३) चित्रकूटहि–चित्रकूट को, चित्रकूट में। उ० चले चित्रकूटहि चितु दीन्हें। (मा० २।२१६।२)

चित्रकेतु–(सं०)–१. भागवतानुसार शूरसेन देश का एक राजा जिसे नारद ने उपदेश दिया था। २. लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम। १. चित्रकेतु कर घर उन घाला। (मा० १।७६।१)

चित्रसार–(सं० चित्रशाला)–सजाया हुआ कमरा, विलास-भवन, रङ्ग-महल। उ० सो समाज चित-चित्रसार लागी लेखन। (गी० १।७३)

चित्रित–(सं०)–१. खिंचा हुआ, बना हुआ, चित्र द्वारा दिखलाया हुआ, २. जिस पर चित्र बने हों। उ० १. चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें। (मा० १।२१३।३)

चिद–(सं० चित्)–चेतना, ज्ञान। चिद-विलास–दे० 'चिद्विलास'। उ० १. तुलसिदास कह चिद-विलास जग बूझत बूझत बूझै। (वि० १२४)

चिदाकाश–(सं०)–आकाश के समान निर्लिप्त और सब का आधारभूत ब्रह्म। परब्रह्म। उ० चिदाकाशमाकाश वासं भजेऽहं। (मा० ७।१०८। श्लो० १)

चिदानंद–(सं०–चित्+आनंद) १.चैतन्य और आनंदस्वरूप ईश्वर,२. ज्ञान और आनंद से भरा, ३. ज्ञान और आनंद। उ० २. चिदानंद सुखधाम सिव, बिगत मोह मद काम। (मा० १।७५)

चिदाभास–(सं०)–१. चैतन्यस्वरूप परब्रह्म का आभास या प्रतिबिंब जो महतत्त्व या अंतःकरण पर पड़ता है। २. जीवात्मा, ३.ज्ञान का प्रकाश।

चिद्विलास–(सं० चित्+विलास)–१. चैतन्यस्वरूप ईश्वर की माया, २. मन का खेल, चित्त का खिलवाड़, ३. मन की प्रसन्नता।

चिनमय–दे० 'चिन्मय'। उ० १. राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी। (मा० १।१२०।३)

चिन्मय–(सं०)–१. ज्ञानमय, २. परमेश्वर, ३. भगवान् रामचंद्र।

चिन्ह–(सं० चिह्न)–१. वह लक्षण जिससे किसी चीज़ की पहिचान हो, निशान, २. पताका, झंडी, ३. किसी प्रकार का दाग या धब्बा। उ० १. द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी। (मा० ७।१०१। छं० ४)

चिन्हारी–(सं० चिह्न)–जान-पहिचान, परिचय। उ० कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी। (मा० १।५०।१)

चिपिटि–(सं० चिपिट)–चिपटा, चिपटा होने की अवस्था। उ० वारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गो। (क० ४।१)

चिबुक–(सं०)–ठुड्डी, ठोड़ी। उ० कंठ दर, चिबुक बर, बचन गंभीरतर, सत्य संकल्प सुर त्रासनासं। (वि० ५१)

चियाँ–(सं० चिंचा)–इमली का बीज, चियाँ। उ० तेरी महिमा तें चलै चिंचिनी-चियाँ रे। (वि० ३३)

चिरंजीवि–(सं चिरंजीव)–१. दीर्घायु हो। इस शब्द से दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया जाता है। २. बहुत दिन तक जीनेवाला। अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, और परशुराम ये सात चिरंजीवि कहे जाते हैं। कुछ मतों से मार्कंडेय भी चिरंजीवि हैं।

चिर–(सं०)–१. बहुत दिनों का, दीर्घकालवर्त्ती, २. बहुत दिन, अधिक काल, ३. बिलंब, देर। उ० २. सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस। (मा० १।१९६)

चिरजीव–दीर्घायु हों, बहुत दिन तक जीवित रहें।
चिरजीवी–सर्वदा जीनेवाला। चिरजीवी मुनि–मारकण्डेय मुनि। दे० 'चिरंजीवि'। उ० चिरजीवी मुनि ग्यान विकल जनु। (मा० २।२८६।४)
चिराना–(सं० चिर)–पुराना, प्राचीन, बहुत दिनों का। उ० सुखद सीत रुचि चारु चिराना। (मा० १।३६।५)
चिराव–(सं० चीर्ण)–चिरा डालती है। फड़वा डालती है। उ० मातु चिराव कठिन की नाईं। (मा० ७।७४।४)
चिलात–(सं० चित्कार) चिल्लाते हैं। उ० नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति। (क० ५।१५)
चिवरा–(सं० चिपिट)–चिउड़ा, धान का भून कर बनाया जानेवाला एक खाद्य पदार्थ।
चीखा–(सं० चषण) १. स्वाद लिया, चखा, २. चखना, स्वाद लेना। उ० २. डारि सुधा बिषु चाहत चीखा। (मा० २।४७।२)
चीठी–(सं० चीर्ण)–पत्री, पत्र, चिट्ठी। उ० रामु लखनु उर कर बर चीठी। (मा० १।२९०।३)
चीठे–(सं० चीर्ण)–१. चिट्ठा, लेखा, खाता की किताब, २. आज्ञापत्र, परवानगी, इजाज़त, ३. सूची, फ़िहरिस्त, ४. विवरण, ब्यौरा, तफ़सील, ५. चिट्ठी, पत्री। उ० २. नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिए करि चीठे। (वि० १६९)
चीता (१)–(सं० चित्रक)–बिल्ली की जाति का एक प्रकार का बहुत बड़ा हिंसक पशु।
चीता (२)–(सं० चेतन)–१. होश, संज्ञा, २. सोचा हुआ, विचारा हुआ, ३. चित, हृदय, दिल। उ० ३. जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता। (वै० १४)
चीन्ह–(सं० चिह्न)–१. लक्षण, चिह्न, २. परिचय, पहिचान।
चीन्हा–१. चिह्न, निशानी, २. पहचाना, जाना। उ० २. राम भगत अधिकारी चीन्हा। (मा० १।३०।२) चीन्हि–परिचित होकर, पहचान कर। चीन्ही–१. पहिचानी, जानी हुई, २. जाना, पहिचाना, ३. चीन्हते हुए, जानते हुए। उ० २. तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही। (मा० १।२०१।४) चीन्हे–१. पहचाने, जाने परिचित हुए, २. पहचाने हुए, जाने हुए। उ० १. तिन्ह कहँ करिअ नाथ किमि चीन्हे। (मा० १।२९१।२) चीन्हो–पहचाना हुआ, जो जाना गया हो। उ० चीन्हो चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा। (वि० २६६) चीन्ह्यो–पहिचाना, जाना। उ० सहस-दस चारि खल सहित-खरदूषनहिं, पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो। (वि० ९८)
चीर (१)–(सं०)–१. वस्त्र, कपड़ा, २. वृक्ष की छाल, ३. कपड़े का फटा-पुराना टुकड़ा, ४. गौ का थन, ५. मुनियों द्वारा पहने जाने वाला एक वस्त्र। उ० १. बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल-चीर। (मा० २।१६५)
चीर (२)–(सं० चीर्ण)–चीरकर, फाड़ कर।
चीरा (१)–दे० 'चीर (१)'। उ० १. पहिरें बरन-बरन बर चीरा। (मा० १।३१८।१)
चीरा (२)–फाड़ा, दो टुकड़े किया। चीरि–चीरकर, फाड़कर। उ० चीरि कोरि पचि रचे सरोजा। (मा० १।२८८।२)
चीरी (१)–(सं० चीरिका)–१. झींगुर, झिल्ली, २. चींटी, चिउटी।
चीरी (२)–(सं० चटक)–चिड़िया, पक्षी। उ० चीरी को मरन खेल बालकनि को सो है। (ह० २९)
चुंबत–(सं० चुंबन)–१. चूम रहे हैं, चूमते हैं, २. चूमते हुए। उ० १. धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। (मा० ७।२७।४) चुंबति–चूमती है, चूम रही है। उ० बार बार मुख चुंबति माता। (मा० २।५२।२)
चुकइ–(सं० च्युत+कृ)–१. चूकते हैं, चूक जाते हैं, चूक जाता है। २. चूक जाता, चूकता। उ० १. भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई। (मा० १।७।१) चुके–चूक जाने से, बीत जाने पर। ऊ० चुके अवसर मनहुँ सुजनहिं सुजन सनमुख होइ। (गी०५।५) चुकै–१. चूक जाय, २. चूके, गलती करे, ३. बेबाक हो जाय, रुपया दे दिया जाय। उ० १. अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिए का लाख। (दो० ३४४)
चुकाहीं–चूकेंगे, हाथ से जाने देंगे। उ० तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। (मा० २।४२।२)
चुचाते–(सं० च्यवन)–१. चूते, टपकते, पसीजते, २. रसाते हुए, टपकाते हुए, चुवाते हुए। उ० २. झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मदअंबु चुचाते। (क० ७।४४)
चुचुकारि–(ध्व०)–चुचकार कर, प्यार दिखलाकर, दुलार कर, पुचकार कर। उ० जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ। (वि० १००)
चुनइ–चुनती है, चुगती हैं। उ० मुकताहल गुनगन चुनइ राम बसहु हियँ तासु। (मा० २।१२८) चुनि–(सं० चयन)–चुनकर, छाँटकर, चुन चुनकर, एकत्र कर। उ० एक बार चुनि कुसुम सुहाए। (मा० ३।१।२)
चुनिन–(सं० चूर्ण)–छोटे-छोटे टुकड़े। उ० कनक-चुनिन सों लसित नहरनी लिए कर हो। (रा० १०)
चुनौति–दे० 'चुनौती'।
चुनौती (?)–ललकार, उत्तेजना देनेवाली बात, युद्ध के लिए आह्वान। उ० ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि। (मा० ३।१७)
चुन्नी–(सं० चूर्ण)–१. मानिक, याकूत या किसी अन्य रत्न का छोटा टुकड़ा, २. किसी चीज (अन्न, लकड़ी आदि) का छोटा टुकड़ा, ३. सितारा।
चुप–(सं० चुप्)–मौन, ख़ामोश, अवाक्। उ० का चुप साधि रहेहु बलवाना। (मा० ४।३०।२)
चुपकि–१. चुपकी, मौन, ख़मोशी, २. चुप, मौन, ख़ामोश, चुप होकर। उ० २. चुपकि न रहत, कह्यो कछु चाहत, ह्वैहै कीच कोठिला धोए। (कृ० ११)
चुपचाप–दे० 'चुप'। उ० सब चुपचाप चले मग जाहीं। (मा० २।३२२।१)
चुवन–(सं० च्यवन)–चूने, टपकने, रिसने। उ० चित चढ़िगो बियोग दसानन कहिबे जोग, पुलकगात, लागे लोचन चुवन। (गी० ५।४८)
चुवा (१)–(?)–हड्डी के अंदर की वस्तु, मज्जा।
चुवा (२)–(सं–च्यवन)–टपका, झरा, रसा। चुवै–चूता है,

टपकता है। उ० बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच बिषाद हरी है। (क० ७।१८०)

चुवा (३)–(सं० चतुष्पद)–चौपाया, मृग आदि। उ० चारु चुवा चहुँ ओर चलैं, लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी। (क० ७।१४३)

चुवाइ–१. टपकाकर, २. निथार कर, ३. मीठा और मधुर करके। उ० ३. भेष सुबनाइ सुचि बचन कहैं चुवाइ। (क० ७।११६)

चुहल–(?)–हँसी, विनोद, ठठोली।

चूक–(सं० च्युत कृ)–भूल, ग़लती, अपराध। उ० रहति न प्रभु चित चूक किए की। (मा० १।२६।३)

चूका (१)–१. चूक गया, भूला, गिरा, खोया, २. लक्ष्यभ्रष्ट, गिरा हुआ, ३. ग़लती। उ० १. अहह मंद मनु अवसर चूका। (मा० २।१४४।३) चूकी–१. चूक गई, भूल गई, २. चूक, भूल, अपराध। उ० २. नामहि ते गज की, गनिका की, अजामिल की चलिगै चल-चूकी। (क० ७।८६)

चूका (२)–(सं० चुक)–एक प्रकार का खट्टा शाक।

चूड़–(सं चूड)–चोटी, कलगी। उ० अरुन चूड़ बर बोलन लागे। (मा० १।३५८।३)

चूड़ा–(सं०)–१. चोटी, शिखा, २. कड़ा, कंकण, ३. मस्तक, माथा, ४. मोर की चोटी, ५. प्रधान नायक, सरदार।

चूड़ाकरन–(सं० चूड़ाकरण)–हिन्दुओं के १६ संस्कारों में से एक। मुंडन संस्कार। किसी बच्चे का पहले-पहल सिर मुड़वाकर चोटी रखवाना। उ० चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। (मा० १।२०३।२)

चूड़ामणि–(सं०)–१. सिर पर पहनने का शीशफूल नामक एक गहना, २. मुकुटमणि, चोटी की मणि, ३. सरदार मुखिया, शिरोमणि, प्रधान। चूड़ामणिम्–चूणामणि को। उ० ३. वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपाल चूड़ामणिम्। (मा० ५।श्लो० १)

चूड़ामनि–दे० 'चूड़ामणि' उ० १. चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। (मा० ५।३१।१)

चूनरी–(सं० चयन)–कई रंगों की या लाल रंग की एक प्रकार की विशेष साड़ी। रँगने के पहले चुनकर बाँधने के कारण इसका यह नाम है। उ० मंगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पछोरी। (गी० १।१०३)

चूमत–(सं० चुंबन)–चूमता है, चूमते हैं। उ० लेत पग-धूरि एक चूमत लँगूल हैं। (क० ५।३०)

चूर–(सं० चूर्ण)–१. किसी चीज़ की बुकनी, २. पाचक, ३. ओषधि।

चूरण–दे० 'चूरन'।

चूरन–(सं० चूर्ण)–१. चूर्ण, बुकनी, २. पाचक, ३. चूर्णरूप में कोई ओषधि। उ० २. अमिअ मूरिमय चूरन चारू। (मा० १।१।१)

चूर्ण–(सं०)–दे० 'चूरन'।

चेटक–(सं०)–१. दास, नौकर, २. दूत, ३. चटक-मटक, टीम-टाम, ४. जादू, इन्द्रजाल, ५. फुर्ती, जल्दी, ६. मंत्र, टोटका, ७. तमाशा, खेल। उ० ७. नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो। (क० ७।८६)

चेटकी–१. नौकरानी, दासी, २. तमाशा दिखानेवाला, जादूगर, बाज़ीगर, इन्द्रजाली। उ० २. किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाँट, चाकर, चपल, नट चोर चार चेटकी। (क० ७।६६।)

चेटुवा–(सं० चटक)–चिड़िये के का बच्चा। उ० अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्‌यो नीर निहारि। (दो० ३०३)

चेत–(सं०चेतस्)१. चित्त की वृत्ति, चेतना, संज्ञा, २. ज्ञान, बोध, ३. सुध, स्मरण, ४. चेतो, चेत करो, समझो। उ० २. मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम। (मा० ६।१६ ख)

चेतन–(सं०)–१. आत्मा, जीव, २. मनुष्य, आदमी, ३. प्राणी, जीवधारी, ४. परमेश्वर। उ० ३. जे जड़ चेतन जीव जहाना। (मा० १।३।२) चेतनहिं–चेतन में। उ० जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। (मा० ७।११७।२)

चेतना–(सं०)–१. बुद्धि, २. मनोवृत्ति, ३. ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, ४. स्मृति, सुधि, ५. चेतनता, संज्ञा, होश।

चेता–१. चित्त, २. चैतन्य हुआ, ३. उपदेशक, ४. होश, याद, ५. चेता हुआ, सोचा हुआ, चाहा हुआ। उ० ५. बैठहिं रामु होइ चित चेता। (मा० २।११।३) चेतु–चेतो, सावधान हो, चेत करो। उ० चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करिसो। (वि० २६४) चेते–१. चैतन्य हुए, २. ख्याल आया, ३. सावधान होकर। उ०३. सेवहिं तजे अपनपौ, चेते। (वि० १२६)

चेतू–चेत, ज्ञान, होश। उ० रहत न आरत कें चित चेतू। (मा० २।२६६।२)

चेरा–(सं० चेटक)–१. नौकर, सेवक, दास, २. चेला, शिष्य। उ० १. करम बचन मन राउर चेरा। (मा० २।१३१।४) चेरि–दासी, नौकरानी। उ० राम राज बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि। (दो० ३६६) चेरिहिं–चेरी को, दासी को। उ० बहुबिधि चेरिहि आदरु देई। (मा० २।२३।२) चेरी–दासी, सेविका। उ० नामु मंथरा मंद मति चेरी कैकइ केरि। (मा० २।१२) चेरे–दे० 'चेरा'। दास। उ० जे बिनु काम राम के चेरे। (मा० १।१८।२)

चेराई–गुलामी, चाकरी, सेवा। उ० जो पै चेराई राम की करतो न लजातो। (वि० १५१)

चेरो–दे० 'चेरा'। उ० १. ब्रह्म तू, हौं जीव, तुही ठाकुर, हौं चेरो। (वि० ७६)

चैतन्य–(सं०)–१. चित्स्वरूप आत्मा, चेतन आत्मा, २. ज्ञानवान, चेतन, ३. परमेश्वर, परब्रह्म, ४. प्रकृति, ५. होशियार, सावधान। उ० २. जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य। (मा० ७।११६ख)

चैन–[सं० शयन (?)]–आराम, सुख, आनन्द, कल। उ० कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चैन। (मा० ६।८७)

चैल–(सं०)–१. कपड़ा, वस्त्र, २. सिला कपड़ा, पोशाक। उ० २. चैल चारु भूषन पहिराईं। (मा० १।३५३।२)

चोंच–(सं० चंचु)–१. पक्षियों से मुख का अगला भाग जो कठोर होता है। ठोर, २. मुहँ। उ० १. सीता चरन चोंच हति भागा। (मा० ३।१।४)

चोंथे–(?)–फाड़े, खींचे, खसोटे, नोचे। उ० आयो सरन सुखद पदपंकज चोंथे रावन बाज के। (गी० ५।२६)
चोआ–(?)–एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य, जो कई सुगंधित पदार्थों के मिश्रण से बनाया जाता है।
चोखा–(सं० चोक्ष)–१. जिसमें किसी प्रकार की गन्दगी या मैल न हो, खरा, उत्तम, अच्छा, २. सच्चा, ईमानदार, ३. तेज, धारदार, ४. जल्दी। उ० १. सहित समाज सोह नित चोखा। (मा० २।३२५।३) चोखी–'चोखा' का स्त्रीलिंग। उ० १. ये अब लही चतुर चेरी पै चोखी चालि चलाकी। (कृ० ४३) चोखे–अच्छे। दे० 'चोखा' उ० लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथ हित। (क० ७।२४)
चोट (सं० चुट)–१. आघात, प्रहार, आक्रमण, २. घाव, जख्म, ३. बार, दफ़ा, मरतबा। उ० १. जाकी चिबुक चोट चूरन किय रद-मद कुलिस कठोर को। (वि० ३१)
चोटिया–[सं० चूड़ा (?)]–१. चोटी, शिखा, सिर के मध्य के थोड़े से बाल। २. लड़कों के पूरे बाल की गुथी हुई लड़ी, चोटी। उ० २. उबटौं न्हाहु गुहौं चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहिं बड़ाई। (कृ० १३)
चोटी–(सं० चूड़ा)–१. शिखा, चोटिया, २. शिखर, पहाड़ का ऊचा भाग, ३. औरतों के सिर का जूरा। उ० १. हाथ कपिनाथ ही के चोटी चोर साहु की। (ह० २८)
चोप–(?)–१. चाह, इच्छा, ख्वाहिश, २. चाव, शौक, ३. उमंग, जोश। उ० ३. मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघ किसोरहि चोप। (मा० १।२६७)
चोर–(सं०)–जो छिपकर पराई वस्तु का अपहरण करे, तस्कर। उ० चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई। (मा० २।२७।३) चोरऊ–चोर भी। उ० नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु। (वि० २५०) चोरहि–चोर को। उ० चोरहि चंदिनि राति न भावा। (मा० २।११।४)
चोरत–चुराते हैं, चुरा लेते हैं। उ० फेरत पानि-सरोजनि सायक, चोरत चितहि सहज मुसुकात। (गी० २।१५) चोरि–चुराकर, छिपाकर। उ० किए सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि। (वि० १५८) चोरे–१. चुराए, २. चुराकर। उ० १. प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु दै, चले लै चित चोरे। (क० २।२६) चोर्‌यो–चुराया, चुरा लिया। उ० सुखसनेह तेहि समय को तुलसी जानै जाको चोर्‌यो है चित चहुँ भाई। (गी० १।१२)
चोरा–चोर, चुराने वाला। उ० लोचन सुखद बिस्व चितचोरा। (मा० १।२१५।३)
चोरी–१. अपहरण, चुराना, २. छिपाव की बात। उ० २. औरउ एक कहउँ निज चोरी। (मा० १।१६६।२)
चोलना–(सं० चोल)–चोला, एक प्रकार का लंबा कुर्ता जिसे साधू लोग पहिनते हैं। उ० चौतनी चौतना काछे, सखि ! सोहैं आगे पाछे। (गी० १।७२)
चोराइ–१. चुराकर, २. चोरावे। चोराई–१. चुरा, चोरी कर, २. चुराया। उ० १. हेरनि हँसनि हिय लिये हैं चोराई। (गी० २।४०)
चौंक–(सं० चमत्कृत)–चौंक पड़े, चौंककर। उ० कौन की हाँक पर चौंक चन्डीस निधि। (क० ६।४५) चौंकि–चौंककर। उ० अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै। (क० २।२७) चौंके–चकित हुए, आश्चर्यचकित हुए। उ० चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल, कमठ अहि कलमल्यौ। (क० १।११)
चौंतिस–(सं० चतुस्त्रिंशत्)–१. तीस और चार, ३४, २. क से क्ष तक ३४ अक्षर। उ० २. चौंतिस के प्रस्तार में अरथ भेद परमान। (स० ३१०)
चौंध–(सं० चक् + अंध)–चमक के कारण आँख का न ठहर सकना, चकाचौंध। चौंधी–'चौंध' का स्त्रीलिंग। दे० 'चौंध'। उ० चितवत मोहिं लगी चौंधी सी जानौं न कौन कहाँ तें धौं आए। (गी० २।३५)
चौक–(चतुष्क)–१. बाजार का मध्य, चौराहा, २. आँगन, प्रांगण, ३. चौकोर भूमि, ४. मंगल के अवसर पर भूमि पर आटे आदि के द्वारा की गई रचना, जिस पर देव-पूजन आदि होता है। उ० ४ गजमनि रचि बहु चौक पुराईं। (मा० ७।९।२) चौकें–चौक का बहुबचन। दे० 'चौक'। उ० ४. रचहु मंजु मनि चौकें चारू। (मा० २।६।४) चौके–दे० 'चौकें'। चौकैं–चौक का बहुबचन। दे० 'चौक'। उ० ४. चौकैं पूरैं चारु कलस ध्वज साजहिं। (जा० २०५)
चौकी–(सं० चतुष्की) १. चार पैरोंवाला चारपाई की शक्ल का तख्त, २. स्त्रियों के हार आदि में बीच में लगा चौकोर टुकड़ा जो छाती पर लटकता रहता है। संभवतः ऐसी कोई चीज़ आज के तमगे आदि की तरह पहले जीतनेवाले को दी जाती थी। उ० २. मानों लसी तुलसी हनुमान हिए जगजीति जराय की चौकी। (क० ७।१४३)
चौगान–(फा०)–१. एक खेल जिसमें लकड़ी के बल्ले से घोड़े पर चढ़कर खेलते हैं। २. चौगान खेलने का डंडा, ३. नगाड़ा बजाने का डंडा, ४. उद्यान, बाग़, मैदान, ५. निर्जन स्थान। चौगानैं–चौगान, चौगान को, दे० 'चौगान'। उ० १. कर-कमलनि विचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये। (गी० १।४३)
चौगाना–दे० 'चौगान'। उ० १. खेलिहहिं भालु कीस चौगाना। (मा० ६।२७।३)
चौगुन–(सं० चतुर्गुण)–चौगुना, चारगुना। उ० मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। (मा० २।५१।४) चौगुनी–चारगुनी, चतुर्गुणी। उ० लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुनी चाय। (वि० ८३)
चौगुनो–चारगुना, चौगुना। उ० तिलक को बोल्यो, दियो बन, चौगुनो चित चाउ। (गी० २।५७)
चौतनियाँ–दे० 'चौतनीं'। उ० भाल तिलक मासिबिंदु बिराजत, सोहति सीस लाल चौतनियाँ। (गी० १।३१) चौतनीं–(सं० चतुर + तनिका)–बच्चों की टोपियाँ या कुलहियाँ जिनमें चार बंद लगे रहते हैं। चौकोर टोपियाँ। उ० पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। (मा० १।२४३।४)
चौथ–(सं० चतुर्थी) १. पखवारे की चौथी तिथि, २. चौथा अंश। उ० १. चौथ चारु उनचास पुर, घर घर मंगल चार। (प्र० ४।७।७)
चौथपन–(सं० चतुर्थ + पर्वन्)–चौथापन, वृद्धावस्था।
चौथपनु–दे० 'चौथपन'। उ० होइ न विषय बिराग भवन बसत भा चौथपनु। (मा० १।१४२)

चौथि–दे० 'चौथ'। उ० १. चौथि चारि परिहरहु बुद्धिमन, चित अहँकार। (वि० २०३)

चौथें–चौथे। उ० चौथें दिवस अवधपुर आए। (मा० २।३२२।३)

चौथेंपन–दे० 'चौथेपन'। उ० चौथेंपन जाइहि नृप कानन। (मा० ६।७।२)

चौथै–(सं० चतुर्थ)–चौथा, तीन के बाद का।

चौथेपन–दे० 'चौथपन'।

चौदसि–(सं० चतुर्दशी)–पक्ष के १४वें दिन पड़नेवाली तिथि। चौदस। उ० चौदसि चौदह भुवन अचर चर रूप गोपाल। (वि० २०३)

चौदह–(सं० चतुर्दश)–दस और चार, १४। उ० दे० 'चौदसि'।

चौपट–(सं० चतुर् + पट–) बर्बाद, नष्ट, जिसके चारो पट बराबर हों, अर्थात् जो अरक्षित या छिन्न-भिन्न हो। उ० बिस्व बेगि सब चौपट होई। (मा० १।१८०।३)

चौपाईं–चौपाइयाँ। उ० १. सत पंच चौपाईं मनोहर, जानि जो नर उर धरै। (मा० ७।१३०। छं०२) चौपाई–(सं० चतुष्पदी)–१. एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। चौपाई के कई भेद होते हैं। तुलसी ने मानस में दोहे और चौपाइयों का प्रयोग किया है। २. चारपाई। उ० १. पुरइनि सघन चारु चौपाई। (मा० १।३७।२)

चौबारा–(सं० चतुर + द्वार)–कोठे के ऊपर का ऐसा कमरा जिसमें चार दरवाज़े हों, हवादार घर, बँगला। चौबारे–'चौबारा' का बहुवचन। दे० 'चौबारा'। उ० मनिमय रचित चारु चौबारे। (मा० २।६०।४)

चौरानल–चारो ओर अग्नि। उ० ईति अति भीति-ग्रह-प्रेत-चौरानल-व्याधिबाधा समन घोर मारी। (वि० २८)

चौरासी–(सं० चतुराशीति)–अस्सी से चार अधिक, ८४। उ० आकर चारि लाख चौरासी। (मा० १।८।१)

चौहट–(सं० चतुर + हट्ट)–जिसमें चारो ओर दूकानें हों, सदर बाज़ार, चौक, चौराहा। उ० चौहट सुंदर गलीं सुहाई। (मा० १।२१३।४)

चौहट्ट–दे० 'चौहट'।

चौहट्टा–दे० 'चौहट'।

च्युत–(सं०)–१. गिरा हुआ, पतित, भ्रष्ट, २. पराङ्मुख, विमुख।

च्वै–(सं० च्यू)–१. गिरना, चूना, २. गर्भ गिरना। उ० १. तुलसी सुनि ग्राम बधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै। (क० २।१८) २. जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै। (क० ७।४०)

छ

छँगन–(?)–प्रिय बालक, छोटा और प्यारा बच्चा। उ० छँगन-मँगन अँगना खेलत चारु चार्यो भाई। (गी०१।२७)

छँटि–(?)–छाँटकर, चुनकर। उ०तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले। (क० ६।३२)

छंड–(सं० छोरण)–छोड़े, त्यागे। उ० जाय सो जती कहाय विषय-बासना न छंडै। (क० ७।११६)

छंद–(सं० छंदस्)–१. वेदों के वाक्यों का वह भेद जो अक्षरों की गणना के अनुसार किया गया है, २. वेद, ३. वह वाक्य या पंक्ति जिसमें वर्ण या मात्रा की गणना के अनुसार विराम आदि का नियम हो। पद्य के लिए प्रयुक्त छंद। इसके मात्रिक और वर्णिक दो भेद होते हैं, फिर दोनों के दोहा-चौपाई आदि कितने ही भेद-विभेद होते हैं। ४. इच्छा, ५. बंधन, गाँठ, ६. कपट, छल, ७. समूह, जाल, ८. स्वच्छंद, स्वतंत्र, उन्मुक्त। उ० ३. छंद सोरठा सुन्दर दोहा। (मा० १।३७।३) ८. ऋषिबर तहँ छंद बास, गावतक लकंठहास। (गी० २।४३) छंदसाम्–(सं०)–छंदों का। उ० वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि। (मा० १।१ श्लो० १)

छ (१)–(सं० षट्)–गिनती में पाँच से एक अधिक, छः। उ० छ रस चारि बिधि जसि श्रुति गाई। (मा० १।१७३।१)

छ (२)–(सं०)–१. निर्मल, साफ, २. तरल, चंचल, ३. खंड, टुकड़ा, ४. काटना, ५. ढाँकना, ६. घर।

छई (१)–(सं० क्षय)–१. एक रोग का नाम, राजयक्ष्मा, क्षयी, २. नष्ट हुई, समाप्त हुईं। उ० १. पर सुख देखि जरनि सोइ छई। (मा० ७।१२१।१७)

छई (२) (सं० छादन)–छाई, छा गई, ढक लिया।

छगन–(?)–१. छोटा बालक, प्यारा और भोला-भाला शिशु, २. बच्चों को बुलाने के लिए एक प्यार का शब्द। उ० २. कहति मल्हाइ लाइ उर छिन-छिन छगन छबीले छोटे छैया। (गी० १।१७)

छछूँदरि–दे० 'छछूँदर'।

छछूँदर–(सं० छुछुदरी या छुछुन्दर)–चूहे की जाति का एक जंतु। कहा जाता है कि साँप यदि छछूँदर को पकड़ लेता है तो दोनों प्रकार से उसकी हानि होती है। यदि वह छोड़ दे तो अंधा हो जाता है और यदि खाले तो मर जाता है।

छटनि–छटा का बहुवचन। सौन्दर्यों। उ० बिधि बिरचे बरूथ विद्युत छटनि के। (क० २।१६)

छटा–(सं०)–१. दीप्ति, प्रकाश, २. शोभा, सौंदर्य, छवि, ३. बिजली। उ० २. शिरसि संकुलित कलकूट पिंगल जटापटल शतकोटि विद्युच्छटाभं। (वि० ११)

छठ-(सं० षष्टी)-१. पखवारे का छठा दिन, प्रति पक्ष की छठीं तिथि, २. छठवाँ, पाँचवें के बादवाला। उ० २. छठ दम सील बिरति बहु करमा। (मा० ३।३६।१)
छठि-दे० 'छठ'। उ० १. छठि षड्वर्ग करिय जय जनक-सुता पति लागि। (वि० २०३)
छठी-(सं० षष्ठी)-१. छठ, पखवारे का छठाँ दिन, २. छट्ठी, बालक के जन्म से छठाँ दिन या उस दिन किया जाने-वाला संस्कार, ३. भाग्य, तकदीर। उ० ३. पढ़िबो परयो न छठी छमत, ऋगु, जजुर, अथर्वन, साम को। (वि० १५५)
छठें-छठवें, छठवाँ। उ० छठें श्रवन यह परत कहानी। (मा० १।१६६।१)
छठे-दे० 'छठें'।
छड़ाइ-(सं० छोरण)-छुड़ा, छीन। उ० लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। (मा० १।२६६।२) छड़ाइसि-छुड़ाया, अलग कर दिया। उ० सठ रन भूमि छड़ाइसि मोही। (मा० ६।१००।४) छड़ावा-छुड़ा दिया। उ० देह जनित अभिमान छड़ावा। (मा० ४।२८।२)
छड़ीला-(?)-अकेला।
छत (१)-(सं० क्षत)-घाव, जख्म। उ० पाकें छत जनु लाग अँगारू। (मा० २।१६१।३)
छत (२)-(सं० छत्र)-दीवालों पर कड़ी आदि रखकर बनाया गया, फर्श, कोठा, पाटन।
छत (३)-(सं० सत्)-होते हुए, रहते हुए, आछत।
छतज-१. क्षत या घाव से निकला हुआ खून, २. लाल, अरुण। उ० २. छतज नयन उर बाहु बिसाला। (मा० ६।५३।१)
छति-((सं० क्षति)-हानि, घाटा, टोटा। उ० नारि हानि बिसेष छति नाहीं। (मा० ६।६१।६)
छत्तीस-(सं० षट्त्रिंशति)-१. तीस और छः, ३६, २. ३६ में ३ और ६ एक दूसरे से विमुख हैं अतः ३६ का अर्थ विमुख या पराङ्मुख भी लिया जाता है। उ० २. जग तें रहु छत्तीस ह्वै राम-चरन छव तीन। (स० २२०)
छत्र (१)-(सं०)-१. छाता, छतरी, धूप या पानी से बँचने का एक साधन, २. राजाओं का छाता जो राजचिह्नों में से है। ३. देश, राष्ट्र, ४. शरीर, ५. धन, दौलत, ६. पानी, जल, ७. मुकुट। उ० २. छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान। (मा० ६।१३ क) छत्रछाया-छत्र का आश्रय, छत्र के नीचे। उ० छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हैं छत्र-छाया, छोनी-छोनी छाए छिति आए निमिराज के। (क० १।८)
छत्र (२)-(सं० क्षत्रिय)-वर्ण विशेष, क्षत्रिय, राजपुत्र।
छत्रक-(सं०)-भूफोड़, खुभी, कुकुरमुत्ता। उ० तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बलनाथ। (मा० १।२५३)
छत्रबंधु-(सं०)-१. नीच कुल का क्षत्रिय, क्षत्रियाधम, २. क्षत्रिय के समान, ३. क्षत्रिय का भाई या सहायक। उ० १. छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई। (मा० १।१७४।१)
छत्रि-दे० 'छत्रिय'। उ० १. छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान। (मा० २।२२९)
छत्रिय-(सं० क्षत्रिय)-१. चार वर्णों में से दूसरा वर्ण, क्षत्रिय। प्राचीन काल में देश का शासन तथा रक्षा आदि इन लोगों का प्रधान कार्य समझा जाता था। २. राजा। उ० १. बिस्वबिदित छत्रिय कुलद्रोही। (मा० १।२७२।३)
छत्री-दे० 'छत्रिय'। उ० १. बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। (मा० १।१६०।३)
छत्रु-दे० 'छत्र (१)'। उ० २. छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा। (मा० २।१०५।४)
छद-(सं०)-१. ढकनेवाली वस्तु, आवरण, ढक्कन, २. पक्ष, पंखा, चिड़ियों का पर, ३. तमाल वृक्ष, ४. तेजपात।
छन-(सं० क्षण)-१. काल या समय का एक बहुत छोटा भाग, थोड़ी देर, २. काल, समय, ३. अवसर, मौका, ४. उत्सव। उ० २. लोचन लाहु लेहु छन एहीं। (मा० २।११४।३) छनहिं छन-प्रतिक्षण, क्षण-क्षण पर। उ० बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा। (मा० १।३४९।३)
छनछन-१. थोड़ी-थोड़ी देर, २. घड़ी-घड़ी, जल्दी-जल्दी।
छनभंग-(सं० क्षणभंगुर)-एक क्षण या थोड़ी देर में ही नाश होनेवाला, अनित्य, नाशवान।
छनभंगु-दे० 'छनभंग'।
छनभंगू-दे० 'छनभंग'। उ० राम बिरहँ तजि जनु छनभंगू। (मा० २।२११।४)
छनिक-(सं-क्षणिक)-क्षणभंगुर, एक क्षण रहनेवाला, अनित्य, जिसका जीवन बहुत थोड़ा हो।
छन्न-(सं०)-१. ढका हुआ, आच्छादित, २. लुप्त, गायब, ३. नष्ट, ४. निर्जन स्थान, एकांत।
छपत-(सं० क्षिप)-छिपता है, गुप्त होता है। उ० मंगल मुद उदित होत, कलिमल छल छपत। (वि० १३०)
छपद-(सं० षटपद)-भ्रमर, भौंरा। उ० पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ। (क० ७।१३५)
छपन-(सं० क्षपण)-विनाश, नाश, संहार। उ० छोनी में न छाँड्यौ छप्यौ छोनिप को छोना छोटो, छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहुत हौं। (क० १।१८) छपनहार-विनाशक, नाश करनेवाला। उ० कीन्हीं छोनी छत्री बिनु छोनिप छपनहार। (क० ६।२६)
छपा-(सं० क्षपा)-१. रात्रि, रात, २. हल्दी। उ० १. नखत सुमन, नभ बिटप बौंडि मानो छपा छिटकि छबि छाई। (गी० १।१६)
छपाई-छिप, छिपने का भाव। उ० उठी रेनु रबि गयउ छपाई। (मा० ६।७९।४)
छपाकर-(सं० क्षपाकर)-१.चंद्रमा, चाँद, २.कपूर। उ० १. निकट भए बिलसत सकल एक छपाकर छाड़। (स० ६२५)
छपाये-१. छिपाकर, गुप्त कर, २. छिपाए, छिपा दिये, छिपा लिया। उ० २. नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनों तड़ित छपाए। (गी० १।२३)
छप्यो-(सं० क्षिप)-छिपे हुए, छिपे थे। उ० छोनी में न डाँड्यो छप्यो छोनिप को छौना छोटो। (क० ११८)
छबि-दे० 'छवि'। उ० १. निज छबि रति मनोज मृदु हरहीं। (मा० २।९११) छबिमय-शोभायुक्त, सुन्दर। उ० ऋषि तिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी।

(गी० १।५५) छबिहि–छवि को, शोभा को। उ० प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही। (मा० २।२०१।२)
छबी–दे० 'छबि'। उ० १. तन काम अनेक अनूप छबी। (मा० ६।१११। छं० २)
छबीला–[सं० छवि+ईला (प्रत्यय)]–शोभा युक्त, बाँका, सुहावना, सुंदर। छबीलीं–छबीली का बहुवचन। दे० 'छबीली'। उ० छोटी छोटी गोड़ियाँ अगुरियाँ छबीलीं छोटी। (गी० १।३०) छबीली–सुन्दरी, छबीला का स्त्रीलिंग रूप। दे० 'छबीला'। छबीले–दे० 'छबीला'। उ० पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ। (क० ७।१३५)
छम–(सं० क्षम)–१. शक्त, समर्थ, उपयुक्त, २. शक्ति, बल। उ० १. ब्रह्म-बिसिख ब्रह्मांड दहन-छम गर्भ न नृपति जरयो। (वि० २३६)
छमत (१)–(सं० क्षमा)–क्षमा करता है।
छ-मत (२)–(सं० षट् + मत)–छः दर्शनों के मत। कणाद के परमाणु-प्रधान वैशेषिक, गौतम के द्रव्य प्रधान न्याय, कपिल के पुरुष-प्रकृति-प्रधान सांख्य, पतंजलि के ईश्वर प्रधान योग, जैमिनि के कर्म-प्रधान पूर्वमीमांसा, तथा व्यास के ब्रह्म-प्रधान उत्तर मीमासा–इन छः दर्शनों या शास्त्रों के मत। उ० छ-मत बिमत, न पुरातन मत, एक मत नेति नेति नेति नित निगम करत। (वि० २५१)
छमता–(सं० क्षमता)–सामर्थ्य, योग्यता, शक्ति।
छमब–क्षमा कीजिएगा। उ० छमब आजु अति अनुचित मोरा। (मा० २।२६७।३) छमबि–क्षमा करना, क्षमा कीजिएगा। उ० छमबि देवि बड़ि अबिनय मोरी। (मा० २।६४।३) छमहु–क्षमा करो, क्षमा कीजिए। उ० छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता। (मा० १।२८५।३) छमहूँ–क्षमा करें, क्षमा कीजिए। उ० लघु मति चापलता कबि छमहूँ। (मा० २।३०४।१)
छमा (१)–(सं० क्षमा)–चित्त की एक प्रकार की वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरे के द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट या दूसरे द्वारा किये गये अपराध को चुपचाप सह लेता है और उसके हृदय में प्रतिकार की भावना भी नहीं उठती। क्षांति, सहन करने की वृत्ति, सहन-शक्ति। उ० छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता। (मा० १।२८५।३)
छमा (२)–(सं० क्ष्मा)–पृथ्वी, धरती। उ० बिस्व भार भर अचल क्षमा सी। (मा० १।३१।५)
छमाइ–क्षमा मँगवाकर, माफी मँगवाकर। उ० छमि अपराध, छमाइ पाँइ परि, इतौ न अनत समाउ। (वि० १००)
छमाय–दे० 'छमाइ'। छमि–क्षमा कर, सहकर। उ० छमि अपराध, छमाइ पाँइ परि, इतौ न अनत समाउ। (वि० १००) छमिअ–क्षमा कीजिए, माफी दीजिए। उ० कौसिक कहा छमिअ अपराधू। (मा० १।२७५।३) छमिए–क्षमा कीजिए। उ० चित्रकूट चलिए सब मिलि, बलि, छमिए मोहिं हहा है। (गी० २।६४) छमिहहिं–क्षमा करेंगे। उ० छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। (मा० १।८।४) छमिहि–क्षमा करेंगे। उ० छमिहि देउ अति आरति जानी। (मा० २।३००।४) छमिहै–क्षमा करेंगे, माफी देंगे। उ० सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै। (क० ७।७१)
छमेहु–क्षमा कीजिएगा। उ० छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु। (मा० १।१०१)
छमासील–(क्षमाशील)–क्षमा करनेवाला, सहनशील, शांत। उ० छमासील जे पर उपकारी। (मा० ७।१०६।३)
छमुख–(सं० षट् + मुख)–षडानन, कार्तिकेय। उ० छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग। (क० ७।१६६)
छमैया–क्षमा करनेवाला, क्षमाशील! उ० काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाँड़ि छमैया। (क० ७।५३)
छय–(सं० क्षय)–१. नाश, हानि, २. क्षय रोग, ३. प्रलय कल्पांत। उ० १. जेहिं रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ। (मा० १।१७०।४)
छयल–[सं० छवि+इल्ल (प्रा० प्रत्यय)]–सुंदर और बनाठना आदमी। सुंदर वेश विन्यास युक्त पुरुष। उ० छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नवीन। (मा० १।२६८)
छर (१)–(सं० छल)–कपट, फरेब। छरनि–छलों से, छलों द्वारा। उ० बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो हौं। (वि० २६६)
छर (२)–(सं० क्षर)–१. नाशवान, नाश होनेवाला, २. जल।
छरन(१)–(सं० क्षरण)–१. चूना, बहना, २. नाश होना, क्षय होना।
छरन (२)–(सं० छल)–छलनेवाला, छलिया। उ० गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपटु बटु बलि-छरन। (वि० २१८)
छरभार–(सं० सार + भार)–पूरा भार, उत्तरदायित्व, जिम्मेवारी। उ० यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं। (वि० १०४)
छरिगे–छले गए। उ० तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरिगे। (गी० २।३२)
छरी (१)–(सं० शर)–छड़ी, सीधी, पतली और छोटी लाठी। उ० लिए छरी-बेंत सोधैं बिभाग। (गी० ७।२२)
छरी (२)–(सं० छल)–छली, छलनेवाला।
छरीला–(?)–एकाकी, अकेला।
छरुभार–दे० 'छरभार'।
छरुभारू–दे० 'छरभार'। उ० लखि अपनें सिर सबु छरुभारू। (मा० २।२६०।१)
छरे–(सं०छटा)–अच्छे, सुन्दर, अद्वितीय। उ० छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नवीन। (मा० १।२६८)
छरै–छले, धोखा दे। छरैगी–छलेगी, धोखा देगी। उ० बाहुबल बालक छबीले छोटे छरैगी। (ह० २५) छरो–छला, धोखा दिया। उ० गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग, निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है। (क० ७।८४) छरयौ–छला, छल किया, धोखा दिया। उ० बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो हौं। (वि० २६६)
छल–(सं०)–१. कपट, वंचना, धूर्तता, धोखा, २. बहाना, व्याज, मिस। उ० १. सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू। (मा० १।८।२) छलछाहँ–१. टोना-टोटका आदि, २. धोखेबाजी। उ० १. बेदन बिषम पाप ताप छलछाहँ की। (ह० २६) छल-छाउ–दे० 'छलछाय'। उ० अप-

नाए सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ। (वि० १००) छलछाय-छल की छाया, धोखेबाजी। छलछिद्र-(सं०)-कपट व्यवहार, धूर्तता। उ० मोहि कपट छलछिद्र न भावा। (मा० ५।४४।३) छलबल-१. माया, २. छल और बल, ३. धोखा, धूर्तता। उ० १. निसिचर छल-बल करइ अनीती। (मा० ६।५४।२)

छलक-(ध्व०)-हिलोर, छलकने का भाव। उ० बूड़ि गयो जाके बल बारिधि छलक में। (क० ६।२५)

छलकारी-छल करने वाली, धोखेबाज उ० होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी। (मा० ३।२४।१)

छलकिहै-छलकेगी, हिलोर लेगी, बह चलेगी। उ० मनि-खंभनि प्रतिबिंब-झलक, छबि छलकिहै भरि अँगनैया। (गी० १।६) छलकैं-छलकते हैं, छलकती हैं। उ० मनहु उमँगि अँग अँग छबि छलकैं। (गी० १।२८)

छलन-१. छल कार्य, धूर्तता का कार्य, २. छलने के लिए, ३. छलनेवाले। उ० ३. छलन बलि कपट बटु रूप वामन ब्रह्म, भुवन-पर्यंत पद-तीनि करणं। (वि० ५२)

छलहीं-छलते हैं, ठगते हैं। उ० बंचक बिरंचि बेष जगु छलहीं। (मा० २।१६८।४) छलि-छलकर, धोखा देकर।

छलाई-छल में, धोखे में, छल करने में। उ० पांडु के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई। (क० ७।१३१)

छलिन-छली का बहुवचन, छलियों। उ० छलिन की छोंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति। (क० ७।१८) छली-छलनेवाला, कपटी, धोखेबाज़। उ० छली मलीन हीन सबही अँग, तुलसी सो छीन छाम को? (वि० ६६)

छलु-दे० 'छल'। उ० १. जहँ जनमें जग जनक जगतपति बिधि हरिहर परिहरि प्रपंच छलु। (वि० २४)

छव-(सं० षट्)-छः, पाँच और एक, ६। उ० जग तें रहु छत्तीस ह्वै राम चरन छव तीन। (स० २२०) छवतीन-६ और ३। छः तीन दोनों आसपास रखने पर सम्मुख रहते हैं अतः इसका अर्थ सम्मुखता, समीपता आदि लिया जाता है। दे० 'छव'। छहु-(सं० षट्)-१. सभी छः, २. सभी छः शास्त्र। उ० २. चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ, ज्यों फारै। (क० ७।१०४) छहूँ-छओ, छहों। उ० कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। (मा० १। ४२।१)

छवनी (१)-(सं० शावक, या सं० सुत, प्रा० सुम्र, हिं० सुम्रन, सुवन)-पुत्री, बच्ची, छोटी लड़की। उ० भई है प्रगट अति दिव्य देहधरि मानो त्रिभुवन-छवि-छवनी। (गी० १।५६)

छवनी (२)-(सं० छादन)-छानेवाली, ढकनेवाली।

छवा-(सं० शावक या वत्स, हिन्दी बछवा)-१ किसी पशु का बच्चा, २. गाय का बच्चा, बाछा। उ० १. तैं रन केहरि केहरि के बिदले अरि-कुंजर छैल छवा से। (ह० १८)

छवि-(सं०)-१. शोभा, सौन्दर्य, २. कांति, प्रभा, चमक।

छाँड़त-(सं० छर्दन)-छोड़ता है। उ० भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग। (मा० ६।३४ ख) छाँड़हिं-छोड़ते हैं, त्यागते हैं। उ० छाँड़हिं नचाइ हाहा कराइ। (गी० ७।२२) छाँड़ा-१. छोड़ दिया, त्यागा, २. छोड़ा हुआ, राख। छाँड़ि-छोड़कर, त्यागकर। उ० रामनाम छाँड़ि जो भरोसो करै और रे! (वि० ६६) छाँड़िए-त्यागिए, छोड़िए। उ० तहँ तहँ जिनि छिन छोह छाँड़िए कमठ-अंड की नाईं। (वि० १०३) छाँड़िगो-छोड़ गए, छोड़ गया। उ० कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँड़िगो। (क० ६।२४) छाँड़िहौं-छोड़ूँगा। उ० हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि अर्यो हौं। (वि० २६७) छाँड़ी-छोड़ा। उ० सेवक-छोहतें छाँड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो। (क० ७।३) छाँड़ू-छोड़ो, त्यागो। उ० कह तुलसिदास तेहि छाँड़ु मैन। (गी० २।४८) छाँड़े-१. छोड़ा, २. छोड़कर, त्यागकर, ३. छोड़ने से। उ० २. चलत कुपंथ बेदमग छाँड़े। (मा० १।१२।१) छाँड़ेउँ-छोड़ दिया, छोड़ दिया था। उ० बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउँ तोही। (मा० ६।७४।३) छाँड्यौ-(सं० छर्दन) छोड़ा, त्यागा। उ० छोनी में न छाँड्यौ छप्यौ छोनिप को छोना छोटो। (क० १।१८)

छाँह-(सं० छाया)-परछाहीं, छाया, साया। उ० जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखो, पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े। (क० २।१२)

छाँहीं-दे० 'छाँह'।

छाइ-(सं० छादन)-१. छाकर, ढककर, २. छाओ, बनाओ, ३. फैला, ४. शोभित। उ० २. तुलसी बर बन बीच ही राम-प्रेम पुर छाइ। (दो० २५६) ३. सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ। (ब० ३३) छाई (१)-(सं० छादन)-१. आच्छादित, छाई हुई, २. ढँकी हुई, ३. फैली। उ० ३. सोभा सीवँ ग्रीव चिबुकाधर बदन अमित छबि छाई। (वि० ६२) छाउ (१)-(सं० छादन)-छाओ, ढको। छाए-फैले, फैल गए, बिछ गए। उ० सकल लोक सुख संपति छाए। (मा० १।१६०।३) छाओं-१. छाता हूँ, ढकता हूँ, तोपता हूँ, छाऊँ, ढकूँ।

छाई (२)-(सं० छाया)-दे० 'छाँह'।

छाई (३)-(सं० क्षार)-राख, धूल, भस्म।

छाउ (२)-(सं० छाया)-प्रतिबिंब, छाँह, परछाहीं। उ० अपनाए सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ। (वि० १००)

छाक (१)-(?)-कलेवा, जलपान,। उ० बलदाऊ देखियत दूरि ते आवति छाक पठाई मेरी मैया। (कृ० १६)

छाक (२)-(सं० चकन)-मतवाला, उन्मत्त।

छाके-(सं० चकन)-मतवाले, उन्मत्त, पिए हुए, अघाए हुए। उ० कै कलिकाल कराल न सूझत मोह-मार-मद छाके। (वि० २२५)

छाग-(सं०)-बकरा, अज।

छाछी-(सं० छच्छिका)-मट्ठा, मही, वह पानी मिला दही या दूध जिसका घी या मक्खन निकाल लिया गया हो। उ० छाछी को ललात जेते राम-नाम के प्रसाद। (क० ७।७४)

छाजति-(सं० छादन)-शोभा देती है, फबती है। उ० स्याम सरीर सुचंदन-चर्चित, पीत दुकूल अधिक छबि छाजति। (गी० ७।१७) छाजा (२)-(सं० छादन)-१. शोभा देता है, फबता है, २. शोभित हुआ, सुन्दर लगा। उ० १. जो कछु

करहिं उनहिं सब छाजा। (मा० ३।१७।७) छाजै-शोभा देती है, फबती है। उ० छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हैं छत्रछाया। (क० १।८)
छाजा (२)-(सं० छाद)-छज्जा, छप्पर।
छाजा (३)-(?)-१ डगर, रास्ता, २. सूप।
छाड़-छोड़, छोड़ो, छोड़ दो। उ० नाहिं त छाड़ कहाउब रामा। (मा० १।२८१।१) छाड़इ-(सं० छर्दन)-छोड़ता है, छोड़ रहा है। उ० छोड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि। (मा० २।१३।४) छाड़न-छोड़ना, त्यागना। उ० भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु। (मा० २।२८) छाड़ब-छोड़ना, छोड़ियेगा। उ० देबि न हम पर छाड़ब छोहू। (मा० २।११८।१) छाड़हु-छोड़ो, छोड़ दो, छोड़ दीजिए। उ० छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। (मा० २।३५।४) छाड़ा-छोड़ा, छोड़ता था, फेंकता था। उ० बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा। (मा० ६।५२।२) छाड़ि-छोड़कर। उ० रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। (मा० २।१४।१) छाड़िअ-छोड़िए, त्यागिए। उ० छाड़िअ सोच सकल हितकारी। (मा० २।१५०।४) छाड़िसि-छोड़ा, चलाया। उ० बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। (मा० ६।५४।४) छाड़िहउँ-छोड़ूँगा, छोड़ दूँगा। उ० तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भलीभाँति अपनाइ। (मा० १।१८१) छाड़िहिं-छोड़ेंगे, त्यागेंगे। उ० सील सनेह न छाड़िहि भीरा। (मा० २।७३।२) छाड़े-१. छोड़े, २. छोड़ने से। उ० १. छाड़े विषम बिसिख उर लागे। (मा० १।८७।२) छाड़ेउ-छोड़ दिया, छोड़ा। उ० प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम। (मा० ३।२)
छाता-(सं० छत्र)-पानी तथा धूप से बँचाने के लिए व्यवहृत एक प्रसिद्ध वस्तु, छतरी। उ० कटि कै छिन बरिनिआँ छाता पानिहि हो। (रा० ८)
छाती-(सं० छादिन्)-१. सीना, वँक्षस्थल, कुच, २. हृदय, उर, कलेजा, ३. दृढ़ता, हिम्मत। उ० २. कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। (मा० १।११३।४)
छानि-(सं० चालन)-छानकर। उ० तुलसी भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि सो। (क० ७।१६१)
छाम-(सं० क्षाम)-१. क्षीण, पतला, कृश, २. थोड़ा, अल्प, ३. ध्वंश, नाश, क्षय। उ० १. राम छाम, लरिका लषन, बालि-बालकहि घाल को गनत रीछ जल ज्यों न घन मैं। (गी० ५।२३)
छाय (१)-(सं० छाया)-छाँह, छाया, परछाहीं।
छाय-(२)-(सं० छादन)-आच्छादित करो, छाओ। छायउ-छा गया, फैल गया। उ० एहि बिधि ब्याहि सकल सुत जग जस छायउ। (जा० २०२) छाये-१. छाए, फैले, २. शरण लीं, ठहरे। उ० २. छोनी-छोनी छाये छिति आए निमिराज के। (क० १।८) छायो-छाया, छाया हुआ है। उ० काके भए गए सँग काके, सब सनेह छल-छायो। (वि० २००)
छाया-(सं०)-१. छाँह, परछाहीं, साया, २. प्रतिकृति, अक्स, परछाहीं, ३. शरण, रक्षा पनाह, ४. अनुकरण, नकल, ५. छाया हुआ, ढँका, ६. सूर्य की एक पत्नी का नाम। उ० १. त्रिबिध समीर सुसीतल छाया। (मा० १।१०६।२)
छार-(सं० क्षार)-१. राख, खाक, भस्म, २. धूल, ३. नमक, एक खारा पदार्थ। उ० १. तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा। (मा० १।९५) २. दे० 'छारै'। छारै-छार को, धूल को। उ० पब्बइ तें छार, छारै पब्बइ पलक ही। (क० ७।९८)
छारा-दे० 'छार'। उ० २. चितवत कामु भयउ जरि छारा। (मा० १।८७।३)
छाल (१)-(सं० छल्ल)-१. बल्कल, वृक्ष का छिलका, २. चर्म, चमड़ा।
छाल (२)-(सं० क्षालन)-नहाना, धोना, सफाई करना।
छाला-दे० 'छाल (१)'। उ० २. तन बिभूति पट केहरि छाला। (मा० १।९२।१)
छालिका-धोनेवाली, स्वच्छ करनेवाली। उ० त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पापछालिका। (वि० १७)
छालित-साफ किया हुआ, नहलाया हुआ। उ० रघुपति-भगति-बारि-छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै। (वि० १२४)
छावत-छाये हों, फैले हों, फैलता है। उ० जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत। (गी० २।५०।२) छावन-छाने के लिए। उ० गुनि गन बोलि कहेउ नृप माँडव छावन। (जा० १२७) छावा (१)-(सं० छादन)-१. छाया, छाया गया, ढँका गया, २. छा गया, फैल गया। उ० २. सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छावा। (मा० १।३६१।२)
छावा (२)-(सं० शावक)-बच्चा, पुत्र, बेटा।
छाहीं-१. दे० 'छाँह', २. छाया में, छाँह में। उ० २. ते मिलये धरि-धूरि सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाहीं। (क० ७।१३२)
छाहूँ-छाया भी, परछाहीं भी। उ० काहे को रोस-दोस काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ। (वि० २७५) छाहैं-१. छाँह का बहुवचन, २. छाँह में। उ० २. आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं। (क० ७।११)
छिति (१)-(सं० क्षिति)-पृथ्वी, धरती, जमीन। उ० कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े। (मा० २।१९१।३)
छिति (२)-(सं० क्षय)-क्षय, नाश, विनाश।
छितिज-(सं० क्षितिज)-१. मंगल ग्रह, २. नरकासुर, ३. केंचुआ, ४. पेड़, ५. वह स्थान जहाँ दृष्टि पहुँचकर रुक जाती है और ज़मीन तथा आसमान मिले ज्ञात होते हैं।
छितिपाल-(सं० क्षितिपाल)-राजा, भूपाल। उ० छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु। (क० ७।१८१)
छिद्र-(सं०)-१. छेद, सूराख़, २. दोष, ३. कमज़ोरी। उ० २. जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। (मा० १।२।३)
छिन-(सं० क्षण)-छन, थोड़ा समय, क्षण। उ० ज्ञान कृपान समान लगत उर, बिहरत छिन-छिन होत निनारे। (कृ० ५६)
छिनि-(सं० छिन्न)-छीन, छीन कर। उ० देखि बधिक-बस

राजमरालिनि लषन लाल छिनि लीजै। (गी० ३।७)
छिनु–दे० 'छिन'। उ० छिनु-छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु। (मा० २।१३६)
छिनुकु–क्षणभर, एक क्षण, थोड़ी देर। उ० कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात। (मा० २।११४)
छिप्र–(सं० क्षिप्र)–शीघ्र, जल्दी।
छिया–(सं० क्षिम)–१. घिनौनी वस्तु, गन्दी चीज, २. पाखाना, विष्टा। उ० २. हौं समुझत साँई-द्रोहि की गति छार-छिया रे। (वि० ३३)
छिरकैं–(सं० क्षिप्त)–छिड़कते हैं। उ० छिरकैं सुगंध-भरे मलय-रेनु। (गी० ७।२२)
छींटि–(सं० क्षिप्त)–छींटें। उ० सोनित छींटि छटानि-जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी। (क० ६।५१)
छींके–(सं० शिक्य)–१. सीका, सिकहर, डोरी से जाल की भाँति बनी चीज़ जो छत से लटकती रहती है और जिसमें दूध-दही आदि चीजें कुत्ते-बिल्ली से बँचने के लिए रखते हैं, २. छींके पर, सिकहर पर। उ० २. अब कहि देउँ कहति किन यों कहि माँगत दहिउ धरयो जो है छींके। (कृ० १०)
छीजहिं–(सं० क्षयण)–क्षीण होते हैं, घटते हैं। उ० जाने ते छीजहिं कछु पापी। (मा० ७।१२२।२) छीजहीं–नष्ट होते हैं, घटते हैं, क्षीण होते हैं। उ० चिक्करहिं मर्कट भालु छल-बल करहिं जेहिं खल छीजहीं। (मा० ६।८१। छं० १) छीजै–हानि उठावे, क्षीण हो। उ० सहि देख्यो, तुम्हसों कह्यो, अब नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छीजै? (कृ० ७)
छीण–(सं० क्षीण)–१. दुर्बल, कमजोर, पतला, २. शिथिल, मंद।
छीन–दे० 'छीण'। उ० १. छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ। (मा० १।१८१)
छीनता–(क्षीणता)–१. क्षय, नाश, अंत, २. निर्बलता, कमज़ोरी, ३. कृशता, दुबलापन, ४. सूक्ष्मता। उ० १. सुमिरत होत कलिमल-छल-छीनता। (वि० २६२)
छीना (१)–(सं० क्षीण)–क्षीण, हीन, रहित। दे० 'छीण'। उ० उदासीन सब संसय छीना। (मा० १।६७।४)
छीना (२)–(सं० छिन्न)–छीन लिया, ले लिया। छीनि–छीन, ले, हड़प। उ० छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज। (मा० १।१२५) छीने (१)–(सं० छिन्न)–१. छीन लिया, ले लिया, २. छीनने पर ले लेने पर, ३. छीने हुए। उ० २. बिकल मनहुँ माखी मधु छीने। (मा० २।७६।२)
छीने (२)–(सं० क्षीण)–१. क्षीण, कमज़ोर, दुर्बल, २. कमज़ोर होने पर।
छीबो–(सं० छुप)–छूना, स्पर्श करना। उ० ग्वालि बचन सुनि कहति जसोमति, भलो न भूमि पर बादर छीबो। (कृ० ६)
छीर–(सं० क्षीर)–१. दूध, २. पानी, ३. खीर, दूध में पके चावल आदि, ४. वृक्षों से निकलने वाली लसदार वस्तु जो सूखने पर गोंद कहलाती है। उ० १. मिलै न मथत वारि घृत बिनु छीर। (वि० ११६) छीरै–दूध को।
छीरनिधि–(सं० क्षीरनिधि)–क्षीर सागर। पुराणों के अनुसार सात समुद्रों में से एक जो दूध से भरा माना जाता है। विष्णु इसी में शयन करते हैं। उ० सगुन छीरनिधि-तीर बसत ब्रज तिहुँ पर बिदित बड़ाई। (कृ० ५१)
छीरसिंधु–(सं० क्षीरसिंधु)–दे० 'छीर सागर'। उ० छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। (मा० १।१२८।२)
छीरु–दे० 'छीर'। उ० १. होत प्रात बट छीरु मगावा। (मा० २।१५१।१)
छुअत–(सं० छुप)–१. छूने, स्पर्श से, २. छूता है। उ० १. ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू। (मा० २।२६।२) छुआ–छूआ, स्पर्श किया। उ० रावन बान छुआ नहिं चापा। (मा० १।२५६।२) छुइ–१. छूकर, छूने से, २. छू जाता। उ० १. जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा। (मा० २।१६४।२) छुए–छूआ, स्पर्श किया। उ० दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए पछिताउ। (वि० १००) छुयो–१. छूआ, स्पर्श किया, २. स्पर्श कीजिए। छुवै–छूकर, स्पर्श कर। उ० सुर तीरथ, तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तन छुवै। (क० ७।३४)
छुछुँदरि–दे० 'छछूँदर'। उ० भइ गति साँप छुछुँदरि केरी। (मा० २।५५।२)
छुटकाए–(सं० छुट)–छोड़ने पर, छूटने पर। उ० किलकि-किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाए। (गी० १।२६)
छुटि–छूटकर, अलग होकर, छूट। उ० काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान। (मा० ६।६६) छुटिहहिं–छूटेंगे, अलग होंगे। उ० छुटिहहिं अति कराल बहु सायक। (मा० ६।२७।३) छुटिहि–छूटती है, छूटेगी। उ० तुलसिदास प्रभु मोह-श्रृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे। (वि० ११४) छुटै–१. छूटता, २. छूटने पर। उ० १. छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति स्रुति संदेह निबेरो। (वि० ८७)
छुड़ाइ–(सं० छोरण)–१. छुड़ाकर, २. छुड़ा। उ० २. दीन्हों ना छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों। (क० ५।११)
छुड़ाई–१. छुड़ाने की क्रिया, छुड़ा, २. छुड़ाया, ३. छीनने की क्रिया, छीन। उ० ३. जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। (मा० १।१५८।१) छुड़ाये–छुड़वाया, मुक्त किया।
छुद्धित–(सं० क्षुधित)–भूखा। उ० खेदखिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत। (मा० १।१५७)
छुद्र–(सं० क्षुद्र)–१. छोटा, अल्प, हलका, तुच्छ, २. दरिद्र, कंगाल, ३. नीच, ४. क्रूर, निर्दय, दुष्ट। उ० १. जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। (मा० ३।२८।८)
छुधा–(सं० क्षुधा)–भूख, खाने की इच्छा। उ० छुधाछीन बलहीन सुर सहजेहि मिलिहहिं आइ। (मा० १।१८१)
छुधावंत–भूखा, क्षुधित। उ० छुधावंत सब निसिचर मेरे। (मा० ६।४०।१)
छुधित–(सं० क्षुधित)–भूखा, क्षुधावंत। उ० मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू। (मा० २।२३५।१)
छुभित–(सं० क्षुभित) १. विचलित, चंचलचित्त, २. घबराया हुआ। उ० १. छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं। (मा० ६।७९।३)

छुर-(सं० छुर) छुरा, अस्तूरा, छूरी ।
छुरा-दे० 'छुर' । उ० साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों । (क० ५।११)
छुरी-छोटा छुरा । उ० कपट छुरी उर पाहन टेई । (मा० २।२२।१)
छुहे-(?)-रँगे हुए, नाना रंगों से चित्रित किए हुए । उ० छुहे पुरट घट सहज सुहाए । (मा० १।३४४।३)
छूँछा-(सं० तुच्छ)-खाली, रिक्त, जिसमें कुछ न हो । उ० प्रेम भरा मन निज गति छूँछा । (मा० २।२४२।४) छूँछी-छूँछा का स्त्रीलिंग ।
छूछी-दे० 'छूँछी' । उ० बोली असुभ भरी सुभ छूछी । (मा० २।३८।४) छूछें-दे० 'छूँछा' । उ० तेहि तें परेउ मनोरथु छूछें । (मा० २।३२।१)
छूट-(सं० छुट)-१. छूटा, मुक्त, २. छूटेगा । उ० १. छूट जानि वन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान । (मा० २।५१) २. हठ न छूट छूटै बरु देहा । (मा० १।८०।३) छूटउ-छूटे, छूट जाय । उ० छूटउ बेगि देह यह मोरी । (मा० १।५६।४) छूटत-१. छूटता है, मुक्त होता है, २. छूटने में । उ० २. जदपि मृषा छूटत कठिनई । (मा० ७।११७।२) छूटहिं-छूटते हैं, छूट जाते हैं । उ० सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना । (मा० १।६१।२) छूटि-छूटकर, अलग होकर । उ० मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी । (मा० १।१३५।३) छूटिबे-छूटने, मुक्त होने । उ० छूटिबे की जतन बिसेष बाँध्यो जायगो । (वि० ६८) छूटा-१. छूट गई, मुक्त हुई, २. फैली, फैलती है, ३. बच गई । उ० २. सोनित छींटि-छटानि-जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महा छबि छूटी । (क० ६।५१) छूटे-छूट जाती है, जाती रहती है । उ० जैसें दिवस दीप छबि छूटे । (मा० १।२६३।३) छूटै-१. छूटता, २. छूटने पर, ३. छूटे, छूट जाय । उ० १.बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै । (वि० ११५) २. हठ न छूट छूटै बरु देहा । (मा० १।८०।३)
छूति-(सं० छुप्)-छुतका, छूत, स्पर्श । उ० बचन बिचार अचार तन, मन, करतब छल छूति । (दो० ४११)
छेंका-(?)-घेरा, रोका । उ० मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ । (मा० ६।४६) छेंकी-१. छेंका, रोका, २. छेंकी हुई, अलग की हुई । उ० २. तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी । (मा० २।९७।३)
छेत्र-(सं० क्षेत्र)-१. जहाँ कुछ बोया जाता है, अन्न, २. २. योनि, उत्पत्ति स्थान, ३. पुण्यस्थान, प्रयाग, तीर्थ-स्थान, ४. पत्नी, भार्या, ५. स्थान ।
छेत्रु-दे० 'क्षेत्र' । उ० ३. छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा । (मा० २।१०५।३)
छेदन-(सं०)-१. छेदना, काटना, २. काटने में, नष्ट करने में । उ० २. भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे । (मा० ७।१३। छं० १) छेदनि-छेदने या नष्ट करने की क्रिया । उ० सहस बाहु भुज छेदनिहारा । (मा० १।२७२।४) छेदे-१. छेदा, २. छेदे हुए, छिदे हुए । उ० २. एक एकसर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं । (मा० ६।९२। छं० १)
छेम-(सं० क्षेम)-१. कल्याण, कुशल, मंगल, २. प्राप्त वस्तु की रक्षा, ३. सुख, आनंद । उ० १. जाय जोग जग छेम बिनु, तुलसी के हित राखि । (दो० ४७२)
छेमकरी-(सं०)-१. एक प्रकार की चील जिसका गला सफ़ेद होता है । यह शुभ मानी जाती है । २. मंगल करनेवाली । उ० १. नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाष । (दो० ४६०)
छेमा-दे० 'क्षेम' । उ० १. तेहि बिनु कोइ न पावइ छेमा । (मा० ७।६५।३)
छेरी-(सं० छेलिका)-बकरी, अजा । उ० छेरी छोरो, सोवै सो जगावो जागि जागि रे । (क० ५।६)
छैया-(सं० शावक)-बच्चे के लिए प्यार का शब्द, शिशु । उ० कहति मल्हाइ लाइ उर छिन-छिन छगन छबीले छोटे छैया । (गी० १।१७)
छैल-(सं० छवि+इल्ल (प्रत्यय), प्रा० छइल्ल)-१. छवियुक्त, सुन्दर, रँगीला, बाँका, शौकीन, २. गुंडा, ३. सजा हुआ युवक । उ० १. तैं रनकेहरि केहरि के बिदले अरि-कुंजर छैल छवा से । (ह० १८)
छैहैं-छा जायँगे । उ० दिव्य दुंदुभी, प्रसंसिहैं मुनिगन, नभतल बिमल बिमाननि छैहैं । (गी० ५।५०)
छोंड़ी-(सं० शावक)-लड़की, बालिका । उ० छलिन की छोंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति । (क० ७।१८)
छोट-(सं० क्षुद्र)-१. क्षुद्र, नीच, खोटा, २. लघु, छोटा, ३. सामान्य, साधारण, ४. ओछा, महत्त्वहीन । उ० १. भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक बिस्वास । (मा० १।८)
छोटाई-१. क्षुद्रता, नीचता, २. लघुता, छोटापन । उ० २. बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई दूरि करै । (वि० १८३)
छोटि-दे० 'छोटी' ।
छोटिऐ-छोटी ही, छोटी सी ही । उ० छोटिऐ कछौटी कटि, छोटिऐ तरकसी । (गी० १।४२) छोटी-लघु, जो बड़ी न हो । उ० प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी । (वि० २६२) छोटे-दे० 'छोट' । उ० २. छोटे-छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे । (क० ५।४) छोटेउ-छोटे भी । उ० नाम प्रताप महामहिमा, अकरे किए खोटेउ, छोटेउ बाढ़े । (क० ७।१२७)
छोड़उँ-छोड़ूँ, छोड़ता हूँ, छोड़ रहा हूँ । उ० उतर देत छोड़उँ बिनु मारें । (मा० १।२७५।४) छोड़ति-छोड़ देती, छोड़ देती है । उ० छोड़ति छोड़ाये तें, गहाए तें गहति । (वि० २४६)
छोड़ाए-(सं० छोरण) छुड़ाए, छुड़ा दिये । उ० दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए । (मा० ५।५२।४) छोड़ावा-छुड़ाया, मुक्त करवाया । उ० सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा । (मा० ६।२४।८)
छोना-(सं० शावक)-बच्चा, लड़का । उ० छोनी में न छाँड्यौ छप्यौ छोनिप को छोना छोटो । (क० १।१८)
छोनिप-(सं० क्षोणिप)-१. भूप, राजा, २. क्षत्रिय, राज-पुत्र । उ० १. छोनी में न छाँड्यौ छप्यौ छोनिप को छोना छोटो । (क० १।१८)
छोनी-(सं० क्षोणी)-पृथ्वी, धरती, भूमि । उ० सहज छमा बरु छाड़ै छोनी । (मा० २।२३२।१)

छोनीपति-(सं० क्षोणीपति)-राजा, भूप, नृप। उ० छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हैं छत्रछाया। (क० १।८)
छोभ-(सं० क्षोभ)-चित्त का विचलित होना। करुणा, दुःख, शंका, मोह, लोभ आदि के कारण चित्त का चंचल होना, घबराहट, खलबली। उ० लोभ न छोभ न राग न द्रोहा। (मा० २।१३०।१)
छोभा-दे० 'छोभ'। १. क्षोभ, २. क्षुब्ध हुआ। उ० २.पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा। (मा० १।२२८।१)
छोभित-(सं० क्षोभित)-चंचल, भयभीत, विचलित, घबराया हुआ।
छोभु-दे० 'छोभ'। उ० संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ। (मा० १।४८ ख)
छोर-(सं० छोरण)-१. मुक्त करनेवाला, छोड़ने या छुड़ानेवाला, २. किनारा, अंत, सीमा, ३. नोक अनी। उ० १. बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो। (वि० १४६)
छोरइ-१. छोड़े, खोले, २. खोलता है, छुड़ा देता है। उ० २. देखी भगति जो छोरइ ताही। (मा० १।२०२।२) छोरत-१. छोड़ता है, मुक्त करता है, २. छीनता है, अपहरण करता है, ३. खोलते हुए। उ० ३. छोरत ग्रंथि जानि खगराया। (मा० ७।११८।३) छोरन-छोड़ने, खोलने। उ० छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। (मा० ७। ११८।३) छोरी (१)-(सं० छोरण)-१. छोड़ा, खोला, २. छीना, लिया, ३. छोड़, खोल, मुक्तकर। उ० ३. सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति बाँध्यो हठि सकत न छोरी। (वि० ६८) छोरे-१. छोड़े, खोले, २. छीन। उ० २. अवलोकत मुख देत परम सुख लेत सरद-ससि की छबि छोरे। (गी० ३।२) छोरो-छोड़ो, खोलो। उ० हाथी छोरों, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो। (क० ५।६)

छोरी (२)-(सं० शावक)-लड़की।
छोलत-(सं० छल्ल)-१. छीलते हुए, २.छीलते हैं, ३. छीलने में। उ० ३.रच्यो रची बिधि जो छोलत छबि-छूटी। (गी० २।२१)छोलिछालि-छील छालकर, साफ कर, ठीक कर, काटपीट कर। उ० गढ़ि-गुढ़ि छोलि छालि कुंद की सी भाई बातैं। (क० ७।६३) छोली-१. छीला, २. छीलकर, काट कर। उ० २. सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। (मा० २।१७।२)
छोह-(सं० क्षोभ)-१. ममता, प्रेम, स्नेह, २. दया, अनुग्रह, ३. दुःख। उ० १. भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस। (क० ६।५२)
छोहरा-(सं० शावक)-छोकड़ा, बालकों के लिए अनादर या प्यार का शब्द। उ० छोटे-छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे। (क० ५।६)
छोहा-दे० 'छोह'। उ० २. नाथ कीन्हि मोपर अति छोहा। (मा० ७।१२३।२)
छोहाइ-कृपाकर, स्नेह कर। उ० कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँड़िगो। (क० ६।२४)
छोहु-दे० 'छोह'।उ०२. करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं। (मा० २।३।२)
छोहू-दे० 'छोह'। उ० १. आरति मोर नाथ कर छोहू। (मा० २।३१४।३)
छौंड़ी (१)-(सं० शावक)-छोरी, लड़की।
छौंड़ी (२)-(सं० चुंडा)-अनाज आदि रखने के लिए मिट्टी का एक बहुत बड़ा बर्तन।
छौंड़ी (३)-(?)-दही मथने की मथानी।
छौना-(दे० छवनी)-बच्चा, छोटा लड़का, बालक। उ० मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना। (गी० १।२१)

ज

जंगम-(सं०)-१. चलने फिरनेवाला, चर, चलता फिरता, २. एक विशिष्ट प्रकार के साधु। उ० १. जो जग जंगम तीरथराजू। (मा० १।२।४)
जंघा-दे० 'जंघा'।
जंघ-दे० 'जंघा'। उ० कल कदलि जंघ, पद कमल लाल। (वि० १४)
जंघा-(सं०)-घुटने से ऊपर का भाग, रान, उरु। उ० जंघा जानु आनु केदलि उर, कटि किंकिनि, पटपीत सुहावन। (गी० ७।१६)
जंजाल-(सं० जग+जाल)-१. प्रपंच, झंझट, बखेड़ा, २. बंधन, फँसाव, ३. बड़ा जाल जिसमें जीव-जंतु फँसाए जाते हैं। उ० २. तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल। (मा० १।२११)
जंजाला-दे० 'जंजाल'। उ० १. तथा २. गृह कारज नाना जंजाला। (मा० १।३८।४)

जंता (१)-(सं० यंत्र)-यंत्रणा देनेवाला, शासन करनेवाला। उ० साकिनी डाकिनी-पूतना-प्रेत-बैताल-भूत-प्रमथ-जूथ-जंता। (वि० २६)
जंता (२)-(सं० यंत्र)-१. यंत्र, मशीन, २. कला, हुनर।
जंता (३)-(?)-सारथी, सूत।
जंतु-(सं०)-जीव, प्राणी, जानवर, जन्म लेनेवाला, देहधारी, कीट-पतंग, क्षुद्र जीव। उ० कासीं मरत जंतु अवलोकी। (मा० १।११९।१)
जंत्र-(सं० यंत्र)-१. कल, औज़ार, २. तांत्रिक यंत्र, ३. ताला, ४. बाजा। उ० १. सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि बिधि जतन-जंत्र भरि धानी। (गी० १।४) २. जयति पर-जंत्र-मंत्राभिचार-ग्रसन, कारमनि- कूट-कृत्यादि-हंता। (वि० २६)
जंत्रित-(सं० यंत्रित)-१. बंद, ताला दिया हुआ, २. बँधा

हुआ, वशीभूत, ३. पीड़ित। उ० १. लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट। (मा० ५।३०)

जंत्री-(सं० यंत्रिन्)-१. वश में किया हुआ, २. कील किया हुआ, ताला दिया हुआ, ३. ताला, शिकंजा, ४. तार खींचने का यंत्र। उ० २. भरत भगति सब कै मति जंत्री। (मा० २।३०३।१)

जंबु-(सं०)-जामुन का पेड़ या जामुन का फल। उ० पाकरि जंबु रसाल तमाला। (मा० २।२३७।१)

जंबुक-(सं०)-गीदड़, शृगाल, सियार। उ० कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं। (मा० ३।२०। छं० १)

जंबुकनि-जंबुक का बहुवचन, बहुत से गीदड़। उ० हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो। (क० ६।४६)

जँभात-(सं० जंभन)-१. जँभाई लेते हैं, उनींदें होते हैं, २. जँभाते हुए। उ० २. हौ जँभात अलसात, तात! तेरी बानि जानि मैं पाई। (गी० १।१६)

ज-१. उत्पन्न, जात, पैदा, २. वेग, गति, ३. विष, ज़हर, ४. जन्म, उत्पत्ति, ५. पिता, ६. जीतनेवाला, ७. प्रेत, पिशाच, ८. तेज, प्रकाश, ९. वेगवान, १०. विष्णु, ११. जगण। इसके आदि और अंत में लघु और मध्य में गुरु-वर्ण होता है। जा ='ज' का स्त्रीलिंग। जैसे 'गिरिजा'= गिरि से उत्पन्न बालिका अर्थात् पार्वती। दे० 'गिरिजा'।

जइहैं-१. जायँगे, २. नष्ट हो जायँगे। उ० २. तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज। (दो० ४१६)

जई (१)-(सं० यव)-१. अंकुर, अँखुआ, २. उन फलों की बतिया जिनमें बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है। जैसे खीरे या कुम्हड़े आदि की जई। ३. जौ का छोटा अंकुर, ४. एक प्रकार का अन्न जो जौ से पतला होता है। उ० २. सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३९)

जई (२)-(सं० जयिन्)-विजयी, जीतनेवाला। उ० तुलसी मुदित जाको राजा राम जई है। (गी० १।८४)

जउ (१)-(सं० यः)-जो, यदि, अगर।

जउ (२)-(सं० यव)-जौ, एक प्रसिद्ध अन्न।

जए-(सं० जय)-१. जीत लिए, २. विजय की कामना का शब्द, जय। उ० १. नहिं तनु सम्हारहिं, छबि निहारहिं निमिष रिपु जनु रन जए। (जा० १५३) २. उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए। (मा० ६। १०२। छं० १)

जक्षपति-(सं० यक्षपति)-कुबेर, यक्षों के पति।

जग (१)-(सं० जगत्)-१. संसार, दुनिया, २. जंगम, ३. वायु, ४. संसार के लोग। उ० १. तव प्रभाउ जग बिदित न केही। (मा० २।१०३।३) जगजोनी-(सं० जगत्+योनि)-१. ब्रह्मा, विधाता, २. शिव, ३. विष्णु, ४. पृथ्वी, ५. संसार की ८४ लाख योनियाँ। उ० २. हरी बिमल गुनगन जगजोनी। (मा० २।२९७।२) जगयोनि-(सं०)-१. ब्रह्मा, २. संसार की ८४ लाख योनियाँ। उ० २. पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११) जगयोनी-दे० 'जगयोनि'। जगहि-जग को, संसार को। उ० जो माया सब जगहि नचावा। (मा० ७।७२।१)

जग (२)-(जगमग)-जगमगाना।

जगत (१)-(सं० जगत्)-१. विश्व, संसार, दुनिया, २. पृथ्वी, ३. वायु, ४. महादेव, ५. जंगम। उ० १. संकरु जगतबंद्य जगदीसा। (मा० १।५०।३) जगतमातु-(सं० जगत+मातृ)-१. संसार की माता, २. पार्वती, ३. सीता।

जगत (२)-(सं० जगति)-कूएँ के ऊपर का चबूतरा।

जगती-(सं०)-१. संसार, भुवन, २. पृथ्वी, ३. लोग। उ० २. धन्य जनमु जगतीतल तासू। (मा० २।४६।१)

जगतु-दे० 'जगत (१)'। उ० १. जननी कुमति जगतु सबु साखी। (मा० २।२६२।१)

जगत्-दे० 'जगत'।

जगत्र-(सं० जगत्)-संसार, विश्व। उ० करता सकल जगत्र को भरता सब मन-काम। (स० १५०)

जगदंत-(सं० जगत्+अंत)-संसार का अंत करनेवाला, शिव।

जगदंब-दे० 'जगदंबा'।

जगदंबा-(सं० जगत्+अंबा)-१. जगत की माता, २. दुर्गा, भवानी, ३. पार्वती, ४. आदि शक्ति। उ० ३. मैं पाँ परउँ कहइ जगदंबा। (मा० १।८१।४)

जगदंबिका-(सं० जगत्+अंबिका)-दे० 'जगदंबा'। उ० १. जगदंबिका जानि भवभामा। (मा० १।१००।४) जगदंबिके-हे जगदंबिका। दे० 'जगदंबिका'। उ० ३. छमुख-हेरंब-अंबासि जगदंबिके! (वि० १५)

जगदाधार-(सं० जगत्+आधार)-१. जगत के आधार, २. शेष, ३. वायु, ४. धर्म, ५. ईश्वर। उ० १. जगदाधार शेष किमि उठै चले खिसिआइ। (मा० ६।५४)

जगदीश-(सं०)-ईश्वर, भगवान।

जगदीस-(सं० जगत्+ईश)-१. जगत के ईश, भगवान्, २. राजा, पृथ्वीनाथ। उ० १. कोसलाधीस जगदीस जगदेकहित अमित गुन, बिपुल बिस्तार लीला। (वि०५२)

जगनिवास-दे० 'जगन्निवास'। उ० जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम। (मा० १।१९१)

जगन्निवास-(सं०)-१. जिसमें सब संसार बसता है, संसार के निवास, २. भगवान, ईश्वर। उ० १. भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की। (क० ६।५२)

जगमगत-(अनु०)-जगमगाता है, चमकता है, प्रकाशित होता है। उ० जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे। (मा० १।३१६। छं० १)

जगमगात-जगमगा रहा है, चमक रहा है। उ० जगमगात मनिखंभन माहीं। (मा० १।३२५।२)

जगाई-(सं० जागरण)-१. जगाया, उठाया, २. जगाकर, चैतन्य कर। उ० १. तेहि समाज रघुराज के मृगराज जगाई। (गी० १।१०१) जगाएहि-जगाया, उठाया। उ० अब मोहि आइ जगाएहि काहा। (मा० ६।६३।१) जगावहु-जगाओ, उठाओ। उ० जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। (मा० २।३८।१) जगावती-जगाती हैं, सचेत करती हैं। उ० जानकीस की कृपा जगावती, सुजान जीव! (वि० ७४) जगावा-जगाया, उठाया। उ० जागत नहिं बहुभाँति जगावा। (मा० ६।५९।२)

हुआ, बशीभूत, ३. पीड़ित। उ० १. लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट। (मा० ५।३०)

जंत्री–(सं० यंत्रिन्)–१. वश में किया हुआ, २. कील किया हुआ, ताला दिया हुआ, ३. ताला, शिकंजा, ४. तार खींचने का यंत्र। उ० २. भरत भगति सब कै मति जंत्री। (मा० २।३०३।१)

जंबु–(सं०)–जामुन का पेड़ या जामुन का फल। उ० पाकरि जंबु रसाल तमाला। (मा० २।२३७।१)

जंबुक–(सं०)–गीदड़, शृगाल, सियार। उ० कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं। (मा० ३।२०। छं० १)

जंबुकनि–जंबुक का बहुवचन, बहुत से गीदड़। उ० हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो। (क० ६।४६)

जँभात–(सं० जंभन)–१. जँभाई लेते हैं, उनीदें होते हैं, २. जँभाते हुए। उ० २. हौ जँभात अलसात, तात! तेरी बानि जानि मैं पाई। (गी० १।१६)

ज–१. उत्पन्न, जात, पैदा, २. वेग, गति, ३. विष, ज़हर, ४. जन्म, उत्पत्ति, ५. पिता, ६. जीतनेवाला, ७. प्रेत, पिशाच, ८. तेज, प्रकाश, ९. वेगवान, १०. विष्णु, ११. जगण। इसके आदि और अंत में लघु और मध्य में गुरु-वर्ण होता है। जा = 'ज' का स्त्रीलिंग। जैसे 'गिरिजा' = गिरि से उत्पन्न बालिका अर्थात् पार्वती। दे० 'गिरिजा'।

जइहैं–१. जायँगे, २. नष्ट हो जायँगे। उ० २. तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज। (दो० ४१६)

जई (१)–(सं० यव)–१. अंकुर, अँखुआ, २. उन फलों की बतिया जिनमें बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है। जैसे खीरे या कुम्हड़े आदि की जई। ३. जौ का छोटा अंकुर, ४. एक प्रकार का अन्न जो जौ से पतला होता है। उ० २. सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३९)

जई (२)–(सं० जयिन्)–विजयी, जीतनेवाला। उ० तुलसी मुदित जाको राजा राम जई है। (गी० १।८४)

जउ (१)–(सं० यः)–जो, यदि, अगर।

जउ (२)–(सं० यव)–जौ, एक प्रसिद्ध अन्न।

जए–(सं० जय)–१. जीत लिए, २. विजय की कामना का शब्द, जय। उ० १. नहिं तनु सम्हारहिं, छबि निहारहिं निमिष रिपु जनु रन जए। (जा० १५३) २. उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए। (मा० ६। १०२। छं० १)

जक्षपति–(सं० यक्षपति)–कुबेर, यक्षों के पति।

जग (१)–(सं० जगत्)–१. संसार, दुनिया, २. जंगम, ३. वायु, ४. संसार के लोग। उ० १. तव प्रभाउ जग बिदित न केही। (मा० २।१०३।३) जगजोनी–(सं० जगत् + योनि)–१. ब्रह्मा, विधाता, २. शिव, ३. विष्णु, ४. पृथ्वी, ५. संसार की ८४ लाख योनियाँ। उ० २. हरी बिमल गुनगन जगजोनी। (मा० २।२९७।२) जगयोनि–(सं०)–१. ब्रह्मा, २. संसार की ८४ लाख योनियाँ। उ० २. पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११) जगयोनी–दे० 'जगयोनि'। जगहि–जग को, संसार को। उ० जो माया सब जगहि नचावा। (मा० ७।७२।१)

जग (२)–(जगमग)–जगमगाना।

जगत (१)–(सं० जगत्)–१. विश्व, संसार, दुनिया, २. पृथ्वी, ३. वायु, ४. महादेव, ५. जंगम। उ० १. संकरु जगतबंद्य जगदीसा। (मा० १।५०।३) जगतमातु–(सं० जगत + मातृ)–१. संसार की माता, २. पार्वती, ३. सीता।

जगत (२)–(सं० जगति)–कूएँ के ऊपर का चबूतरा।

जगती–(सं०)–१. संसार, भुवन, २. पृथ्वी, ३. लोग। उ० २. धन्य जनमु जगतीतल तासू। (मा० २।४६।१)

जगतु–दे० 'जगत (१)'। उ० १. जननी कुमति जगतु सबु साखी। (मा० २।२६२।१)

जगत्–दे० 'जगत'।

जगत्र–(सं० जगत्)–संसार, विश्व। उ० करता सकल जगत्र को भरता सब मन-काम। (स० १५०)

जगदंत–(सं० जगत् + अंत)–संसार का अंत करनेवाला, शिव।

जगदंब–दे० 'जगदंबा'।

जगदंबा–(सं० जगत् + अंबा)–१. जगत की माता, २. दुर्गा, भवानी, ३. पार्वती, ४. आदि शक्ति। उ० ३. मैं पाँ परउँ कहइ जगदंबा। (मा० १।८१।४)

जगदंबिका–(सं० जगत् + अंबिका)–दे० 'जगदंबा'। उ० १. जगदंबिका जानि भवभामा। (मा० १।१००।४) जगदंबिके–हे जगदंबिका। दे० 'जगदंबिका'। उ० ३. छमुख-हेरंब-अंबासि जगदंबिके! (वि० १५)

जगदाधार–(सं० जगत् + आधार)–१. जगत के आधार, २. शेष, ३. वायु, ४. धर्म, ५. ईश्वर। उ० १. जगदाधार शेष किमि उठै चले खिसिआइ। (मा० ६।५४)

जगदीश–(सं०)–ईश्वर, भगवान।

जगदीस–(सं० जगत् + ईश)–१. जगत के ईश, भगवान्, २. राजा, पृथ्वीनाथ। उ० १. कोसलाधीस जगदीस जगदेकहित अमित गुन, बिपुल बिस्तार लीला। (वि०५२)

जगनिवास–दे० 'जगन्निवास'। उ० जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम। (मा० १।१९१)

जगन्निवास–(सं०)–१. जिसमें सब संसार बसता है, संसार के निवास, २. भगवान, ईश्वर। उ० १. भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की। (क० ६।५२)

जगमगत–(अनु०)–जगमगाता है, चमकता है, प्रकाशित होता है। उ० जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे। (मा० १।३१६। छं० १)

जगमगात–जगमगा रहा है, चमक रहा है। उ० जगमगात मनिखंभन माहीं। (मा० १।३२५।२)

जगाई–(सं० जागरण)–१. जगाया, उठाया, २. जगाकर, चैतन्य कर। उ० १. तेहि समाज रघुराज के मृगराज जगाई। (गी० १।१०१) जगाएहि- जगाया, उठाया। उ० अब मोहि आइ जगाएहि काहा। (मा० ६।६३।१) जगावहु–जगाओ, उठाओ। उ० जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। (मा० २।३८।१) जगावती–जगाती हैं, सचेत करती हैं। उ० जानकीस की कृपा जगावती, सुजान जीव! (वि० ७४) जगावा–जगाया, उठाया। उ० जागत नहिं बहुभाँति जगावा। (मा० ६।५९।२)

जगु–जग, संसार, विश्व। उ० जगु पेखन तुम्ह देखनि हारे। (मा० २।१२७।१)

जगै–१. जगती है, २. चमकती है, ३. प्रकट होती है। उ० २. तथा ३. चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन मोल अमोलन की। (क० १।५)

जग्य–(सं० यज्ञ)–दे० 'यज्ञ'। उ० पिता जग्य सुनि कछु हरषानी। (मा० १।६१।३)

जग्यउपनीत–(सं० यज्ञोपवीत)–जनेऊ। उ० पीत जग्य-उपबीत सुहाए। (मा० १।२४४।१)

जच्छ–दे० 'यक्ष'। उ० जच्छ जीव लै गए पराई। (मा० १।१७६।२)

जच्छपति–दे० 'यक्षपति'। कुबेर। उ० रच्छक कोटि जच्छ-पति केरे। (मा० १।१७६।१)

जच्छेस–(सं० यक्षेश)–कुबेर, धन के देवता। उ० तीरथ पति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि। (क० ७।११५)

जजाति–दे० 'ययाति'। जजातिहि–राजा ययाति को। दे० 'ययाति'। उ० तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। (मा० २। १७४।४)

जजाती–दे० 'जजाति'। उ० सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती। (मा० २।१४८।३)

जजुर–दे० 'यजुर्वेद'। उ० पढ़िबो परयो न छठी छमत, ऋगु जजुर, अथर्वन, साम को। (वि० १५५)

जज्ञ–दे० 'यज्ञ'। उ० जज्ञ, बिबाह-उछाह, ब्रत सुभ तुलसी सब साज। (प्र० ७।१।७)

जज्ञेस–(सं० यज्ञेश)–यज्ञों के स्वामी, १. बिष्णु, २. महादेव।

जट–(सं० जटन)–आसक्त होना, लगना।

जटजूट–दे० 'जटाजूट'। उ० १. कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यो। (मा० ३।१८। छं० १)

जटनि–(सं० जटा)–जटा का बहुवचन, जटाएँ, बालों का समूह। उ० मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के। (क० २।१६) जटा–(सं०)–१. एक में उलझे हुए सिर के बड़े-बड़े बाल। ऐसे बाल प्रायः साधू लोग रखते हैं। २. जड़ के पतले-पतले सूत, ३. नारियल बरगद आदि की जटाएँ, ४. शाखा, ५. जटामाँसी, ६. पाटजूट, ७. केवाँच, ८. रुद्र की जटा, ९. वेदपाठ का एक भेद। उ० १. अनुज सहित सिर जटा बनाए। (मा० २।९४।२) जटाजूट–(सं०)–१. जटा का समूह, बड़े-बड़े बाल, २. शिव की जटा। उ० १. जटाजूट दृढ़ बाँधे माथे। (मा० ६।८६।४)

जटाय–दे० 'जटायु'। उ० तज्यो तनु संग्राम जेहि लगि गीध जसी जटाय। (गी० ७।३१)

जटायु–(सं०)–रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध। यह सूर्य के सारथी अरुण का पुत्र था और उसकी श्येनी नाम की स्त्री से उत्पन्न था। यह रामभक्त था। सीता को जब रावण हरकर ले जा रहा था तो जटायु उससे लड़ा था और बुरी तरह घायल हुआ था। राम के आने पर इसने सीताहरण का समाचार उनको सुनाया और मर गया। राम ने अपने हाथ से इसकी अंत्येष्टि क्रिया की। संपाती जटायु का भाई था।

जटायू–दे० 'जटायु'। उ० जाना जरठ जटायू एहा। (मा० ३।२९।७)

जटित–(सं०)-जड़ा हुआ, युक्त। उ० रत्नहाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसुत-सदृस उद्योतकारी। (वि०५१)

जटिल–(सं०)–१. जटावाला, जटाधारी, २. कठिन, दुरूह, दुर्बोध, ३. क्रूर, दुष्ट, हिंसक, ४. सिंह, ५. ब्रह्मचारी, ६. बरगद का पेड़। उ० १. जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल बेष। (मा० १।६७)

जटे–जड़े हुए, युक्त। उ० सोनित छींटि-छटानि-जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महा छबि छूटी। (क० ६।५१) जटो–जड़ा हुआ, जटित, युक्त। उ० कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूँठ-जटो। (क० ७।८६)

जठर–(सं०)–१. पेट, कुक्षि, २. कठिन, कड़ा, मज़बूत, ३. शरीर, देह, ४. बृद्ध, बूढ़ा। उ० १. कैकइ जठर जनमि जग माहीं। (मा० २।१८०।४)

जठरागी–(सं० जठराग्नि)–पेट की वह अग्नि या गर्मी जिससे अन्न पचता है। पित्त की कमी बेशी से यह चार प्रकार की मानी गई है। उ० जिमि सो असन पचवै जठरागी। (मा० ७।११९।५)

जठेरिन्ह–बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ। उ० जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद दए हैं। (गी० १।११) जठेरी–(सं० ज्येष्ठ)–बड़ी, बूढ़ी। उ० बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। (मा० २।४९।२)

जड़–(सं० जड)–१. जिसमें चेतनता न हो, अचेतन, २. चेष्टाहीन, स्तब्ध, ३. मंदबुद्धि, मूर्ख, ४. शीतल, ठंढा, ५. गूँगा, ६. बहरा, ७. अनजान, अनभिज्ञ, ८. जिसके मन में मोह हो, ९. जो वेद पढ़ने में असमर्थ हों, १०. जल, पानी, ११. सीसा नाम की धातु, १२. नींव, बुनियाद, १३. कारण, हेतु, १४. आधार, सहारा, १५. वृक्षों या पौदों का वह भाग जो ज़मीन में रहता है, मूल, १६. अहिल्या, १७. नीच, बुरा, १८. पाँच जड़ पदार्थ (पृथ्वी, जल, पावक, गगन, समीर) जिनसे शरीर की रचना मानी जाती है। उ० ३. ज्यों गज-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की। (वि० ९०) १७. पैरि पार चाहहिं जड़ करनी। (मा० ७।११५।२) १८. जड़ पंच मिलै जेहि देह करी। (क० ७।२७) जड़न्ह–जड़ों, वृक्ष नदी आदि बेजान चीज़ों। उ० जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। (मा० १।८५।२)जड़हिं–जड़ को, मूर्ख को। उ० जड़हिं बिबेक, सुसील खलहिं अपराधिहिं आदर दीन्हों। (वि० १७१)

जड़ता–१. अचेतनता, २. मूर्खता, ३. नीचता, ४. मोह। उ० २. जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। (मा० १।३९।१)

जड़ताई–१. जड़ता, मूर्खता, २. मोह। उ० १. हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई। (मा० १।७८।२)

जड़ाव–(सं० जटन)–जड़ने का काम, पच्चीकारी।

जत (१)–(सं० यत्)–जितना, जिस मात्रा का, जितने। उ० जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि। (मा० १।७ ग)

जत (२)–(सं० यत्न)–प्रयत्न, जतन।

जत (३)–(सं० यति)–ताल विशेष, होली का ठेका या ताल।

जतन–(सं० यत्न)–१. प्रयत्न, उपाय, २. श्रम, उद्योग, ३. रक्षा। उ० १. जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई। (मा०१।३।३)
जतनु–दे० 'जतन'। उ० १. करि सब जतनु राखि रखवारे। (मा० २।१८६।४)
जति (१)–(सं० जिति)–जीतनेवाला। उ० चरन पीठ उन्नत नत-प लक, गूढ़ गुलुफ, जंघा कदली जति। (गी० ७।१७)
जति (२)–(सं० यति)–जिसने इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो, विरक्त, योगी, संन्यासी। उ० स्वान खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रबीन। (गी० ७।२४) जतिहि–जती को, योगी को, संन्यासी को। उ० जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्या नास। (मा० २।२६)
जती–(सं० यति)–संन्यासी, योगी। उ० जागैं जोगी जंगम-जती जमाती ध्यान धरैं। (क० ७।१०६)
जत्र–(सं० यत्र)–जहाँ।
जत्रु–(सं०)–गले से पास की हड्डी, हँसली। उ० यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंसतति। (गी० ७।१७)
जथा (१)–(सं० यथा)–१. जिस प्रकार, जैसे, ज्यों, २. सदृश, अनुकूल, ३. जिस। उ० १. जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग। (दो० ४०४) ३. लागि देव माया सबहि जथा जोगु जनु पाइ। (मा० २।३०२) जथाथित–(सं० यथा + स्थित)–जैसा का तैसा, ज्यों का त्यों, पूर्ववत। उ० भयउ जथाथिति सबु संसारू। (मा० १।८६।१) जथाबिधि–(सं० यथाविधि)–विधिवत, विधि के अनुसार। उ० मिले जथाबिधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत। (मा० १।३०८) जथारुचि–(सं० यथारुचि)–इच्छानुसार, मनमानी। उ० बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ। (पा० ६५) जथालाभ–(सं० यथालाभ)–लो कुछ मिले, जो भी थोड़ा-बहुत लाभ हो। उ० आठवँ जथालाभ संतोषा। (मा० ३।३६।२) जथोचित–(सं० यथोचित)–जैसा चाहिए, मुनासिब, ठीक। उ० सबहि जथोचित आसन दीन्हे। (मा० १।१००।१)
जथा (२)–(सं० यूथ)–गिरोह, झुंड, समूह।
जथा (३)–(सं० गथ)–पूँजी, धन, संपत्ति।
जथारथ–(सं० यथार्थ)–ठीक, वाजिब, यथार्थ, तत्त्व। उ० बोध जथारथ बेद पुराना। (मा० ३।४६।३)
जथारथु–दे० 'जथारथ'। उ० कोउ न राम सम जान जथारथु। (मा० २।२५४।३)
जद–(सं० यदा)–जब, जब कभी।
जदपि–(सं० यद्यपि)–अगरचे, यद्यपि। उ० जदपि कवित रस एकउ नाहीं। (मा० १।१०।४)
जदुनाथ–(सं० यदुनाथ)–श्रीकृष्ण। उ० मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए। (कृ० ५०)
जदुपति–(सं० यदुपति)–१. श्रीकृष्ण, यदुनाथ, २. ययाति। उ० १. जदुपति मुख छबि कलप कोटि लगि, कहि न जाइ जाके मुख चारी। (कृ० २२)
जदुराई–(सं० यदुराज)–श्रीकृष्ण। उ० पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई। (कृ० १)
जद्यपि–(सं० यद्यपि)–जदपि, यद्यपि, अगरचे। उ० जद्यपि ताको सोइ मारग प्रिय जाहि जहाँ बनि आई। (कृ० ५१)

जन (१)–(सं०)–१. आदमी, लोग, मनुष्य, २. गँवार, देहाती, ३. प्रजा, रिआया, ४. अनुयायी, ५. सेवक, दास, ६. घर, मकान, ७. सात लोकों में से पाँचवाँ लोक, जिसमें ब्रह्मा के मानस पुत्र और बड़े-बड़े योगीन्द्र रहते हैं। उ० १. प्रचुर-भव-भंजन, प्रणत-जन-रंजन, दास-तुलसी शरण सानुकूलं। (वि० १२) जनहि–जन को, दास को, सेवक को। उ० जनहि मोर बल निज बल ताही। (मा० ३।४३।५) जनहीं–जन का, दास का। उ० राम सुस्वामि दोसु सब जनहीं। (मा० २।२३४।१) जनेषु–आदमियों में, मनुष्यों में। उ० कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२५)
जन (२)–(सं० जन्य)–जनित, उत्पन्न। उ० तुरित अविद्या जन दुरित बर तुल सम करि लेत। (स० ३१४)
जनक–(सं०)–१. पिता, बाप, २. सीता के पिता, मिथिलेश, ये संसार में रहते हुए भी, संसार से विरक्त और बहुत बड़े ज्ञानी थे। ३. उत्पादक, जन्मदाता, ४. मिथिला के एक राजवंश की उपाधि। उ० १. पाहि भैरवरूप राम-रूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी विधाता। (वि० ११) जनक-अनुज–राजा जनक के भाई कुशध्वज। इनकी दो पुत्रियाँ माण्डवी और श्रुतकीर्ति थीं, जिनका विवाह भरत और शत्रुघ्न से हुआ था। उ० जनक-अनुज-तन या दुइ परम मनोरम। (जा० १७२) जनकजा–(सं०)–१. सीता, जानकी, २. उर्मिला। उ० १. बाम दिसि जनकजासीन, सिंहासनं कनक-मृदु पल्लवित तरु तमालं। (वि० ५१) जनकनगर–दे० 'जनकपुर'। उ० जनकनगर सर कुमुदगन, तुलसी प्रमुदित लोग। (प्र० १।४।७) जनकहि–पिता की, पिता से। उ० मम जनकहि तोहि रही मिताई। (मा० ६।२०।१) जनकौ–पिता भी। उ० बल अपनो न, हितू जननी न जनकौ। (क०७।७७) जनकौर–जनक का स्थान, जनकनगर। उ० सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि। (जा० १३४) जनकौरा–जनकपुर, जनकपुर के लोग। उ० कोसलपति गति सुनि जनकौरा। (मा० २।२७१।१)
जनकपुर–(सं०)–मिथिला की प्राचीन राजधानी। राजा जनक की नगरी। उ० जनकनंदिनी जनकपुर, जब तें प्रगटीं आइ। (प्र० ४।५।१)
जनकु–दे० 'जनक'। उ० २. जनकु रहे पुर बासर चारी। (मा० २।३२२।३)
जनतेउँ–(सं० ज्ञान)–जानता, मैं जानता। उ० जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। (मा० ६।६१।३)जनिअहिं–जान ही पड़ेंगे, जान पड़ेंगे। उ० पल सम होहिं न जनिअहिं जाता। (मा० २।२८०।४) जनिबे–जानने, जानना। उ० कहिबे को सारद सरस, जनिबे को रघुराउ। (दो० २०२)जनियत–१. जान पड़ता है, जाना जाता है, २. जानता हूँ। उ० १. तुलसि राम-जनमहि तें जनियत सकल सुकृत को साज। (गी० १।४७) जनिहैं (१)–(सं० ज्ञान)–जानेंगे, समझेंगे। उ० चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं। (वि० ६५)
जनत्राता–भक्तों की रक्षा करनेवाला, भगवान। उ० मैं बन गयउँ भजन जनत्राता। (मा० ७।११०।५)

जननि–दे० 'जननी'। उ० १. प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध, न गँवार। (दो० ३२८)

जननिउ–जननी भी, माता भी। उ० जो सुत तात-बचन पालन रत जननिउ तात! मानिबे लायक। (गी० २।३) जननिन्ह–माताएँ, माताओं ने। उ० जननिन्ह सादर बदन निहारे। (मा० १।३५८।४) जननिहि–माता को। उ० चले जनक जननिहि सिरु नाई। (मा० २।७६।४) जननी–(सं०)–१. उत्पन्न करनेवाली, २. माता, मा, ३. कुटकी, ४. आलता, महावर, ५. दया, कृपा। उ० २. पाहि भैरव रूप रामरूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी बिधाता। (वि० ११)

जनपद–(सं०)–देश। आजकल के प्रांतों की भाँति पहले देश कई जनपदों में विभक्त होता था। कभी-कभी अलग अलग जनपदों के अलग अलग राजा भी होते थे। उ० ज्यों हुलास रनिवास नरेसहि त्यौं जनपद रजधानी। (गी० १।४)

जनम–दे० 'जन्म'। उ० १. जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। (मा० १।३४।३) जनम-जनम–अनेक जन्म, कई जन्म। उ० जनम-जनम अभ्यास-निरत चित अधिक अधिक लपटाई। (वि० ८२)

जनमइ–जन्मता है, जन्म लेता है। उ० जग जनमइ बायस सरीर धरि। (मा० ७।१२१।१२) जनमत–१. पैदा होते ही, जनमते ही, २. पैदा होता, उत्पन्न होता, जनमता, ३. जन्म लेते हैं, ४. जन्म लेता हूँ। उ० २. सुंदर सुत जनमत भइँ ओऊ। (मा० १।१९५।१) जनमा–जन्म लिया, पैदा हुआ। उ० नहिं कोउ अस जनमा जगमाहीं। (मा० १।६०।४) जनमि–जन्म लेकर, पैदा होकर। उ० अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया। (मा० १।९८। छं० १) जनमीं–पैदा हुईं, उत्पन्न हुईं। उ० जनमी जाइ हिमाचल गेहा। (मा० १।८३।१) जनमे–जनमे, पैदा हुए। उ० जनमे एक संग सब भाई। (मा० २।१०।३) जनमेउ–जन्म लिया, पैदा हुए। उ० तब जनमेउ षट बदन कुमारा। (मा० १।१०३।४)जनम्यो–पैदा हुआ, जन्म लिया। उ० मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग। (क० ७।७०)

जनमु–दे० 'जन्म'। उ० १. जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। (मा० २।१५।४)

जनयत्री–(सं० जनयित्री)–जन्म देनेवाली, माता। उ० द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री। (मा० ७।३८।३)

जनवास–(सं० जन+वास)–१. बारात के ठहरने का स्थान, २. नगर, ग्राम। उ० १. दिए सबहि जनवास सुहाए। (मा० १।३६।१) जनवासे–जनवासे की ओर, बारात के ठहरने के स्थान की ओर। उ० चले जहाँ दसरथु जनवासे। (मा० १।३०७।४)

जनवासा–दे० 'जनवास'। उ० १. अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। (मा० १।३०६।३)

जनाइ–(सं० ज्ञान)–१. सूचना, जनाव, इत्तला, २. जनाकर, प्रकट कर। उ० २. बूझिहैं 'सो है कौन'? कहिबीं नाम दसा जनाइ। (वि० ४१) जनाई–१. जताया, सूचित किया, २. जताकर, बतला कर, ३. समझ पड़ना, मालूम होना। उ० १. असुर तापसहि खबरि जनाई। (मा० १।१७५।२) जनाउ–१. सूचना, खबर, २. जनाओ, बतलाओ। उ० १. अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ। (मा० १।३३२) जनाएँ–जनाए, बतलाए। उ० प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ। (मा० १।१६२।१) जनाए–बतलाया, प्रकट किया। उ० राम सीय तन सगुन जनाए। (मा० २।७।२) जनायउ–जनाया, प्रकट किया। उ० दुरी दुरा करि नेगु सुनात जनायउ। (जा० १६६) जनायऊ–जनाया, बतलाया। उ० कहि गाधि सुत तप तेज कछु रघुपति प्रभाउ जनायऊ। (जा० २७) जनायो–जनाया, जताया, सूचित किया। उ० आस-बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो। (वि० २७६) जनाव–जनाया, बतलाया, प्रकट किया। उ० मन अति हरष जनाव न तेही। (मा० ३।२६।४) जनावउँ–जनाता हूँ, प्रकट करता हूँ। उ० अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउँ काहु। (मा० १।१६१ क) जनावत–१. ज्ञात होता है, जान पड़ता है, २. जनाते हैं, बतलाते हैं। उ० १. हरि निर्मल, मल-ग्रसित हृदय, असमंजस मोहिं जनावत। (वि० १८५) जनावहिं–जनाते हैं, प्रकट करते हैं। उ० बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा। (मा० १।२५५।२) जनावहु–जना दो, जनाओ। उ० तौ कहि प्रगट जनावहु सोई। (मा० २।५०।३) जनावा–जताया, सूचित किया, प्रकट किया। उ० काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा। (मा० २।४५।४) जनावै–जतावे, सूचित करे। उ० तुलसी राम सुजान को, राम जनावै सोइ। (स० १८१) जनावौं–जनाऊँ, बतलाऊँ। उ० पर-प्रेरित इरषा-बस कबहुँक, कियो कछु सुभ, सो जनावौं। (वि० १४२)

जनार्दन–(सं०)–भगवान्, विष्णु।

जनि (१)–(सं०)–१. उत्पत्ति, जन्म, २. जिससे कोई उत्पन्न हो, नारी, स्त्री। ३. माता, जननी, ४. पत्नी, भार्या, ५. पुत्रबधू, पतोहू, ६. जन्मभूमि, पैदा होने की जगह।

जनि (२)–(?)–मत, नहीं, न। उ० जनि तेहि लागि बिदूषहि केही। (वि० १२६)

जनित–(सं०)–१. उत्पन्न, जन्मा हुआ, जन्य, २. बच्चा, ३. जो पैदा हुए हैं, संसार के प्राणी। उ० १. कहु केहि कहिए कृपानिधे! भवजनित बिपति अति। (वि० ११०) ३. सुपथ कुपथ लीन्हे जनित स्व-स्वभाव अनुसार। (स० १६१)

जनिहैं (२)–(सं० जनन)–उत्पन्न करेंगी, पैदा करेंगी।

जनी (१)–(सं० जनन)–१. पैदा की, उत्पन्न किया, २. माता, पैदा करनेवाली। उ० १. करनि बिवरत चतुर सरस सुषमा जनी। (गी० ७।५) जने–(सं० जनन)–उत्पन्न किए, जन्माए। जनै–उत्पन्न करे, जन्मावे, पैदा करे। उ० गयो छाँड़ि छल सरन राम की जो फल चारि चारयौं जनै। (गी० ५।४०) जनैगी–उत्पन्न करेंगी, पैदा करेंगी। उ० प्रभु की बिलंब-अंब दोष दुख जनैगी। (वि० १७९)

जनी (२)–(सं० जन)–१. दासी, सेविका, २. स्त्री।

जनु (१)–(सं० ज्ञान)–मानो, जैसे। उ० हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई। (वि० ६२)

जनु (२)-(सं०)-उत्पत्ति, जन्म।
जनु (३)-(सं० जन)-१. जन, आदमी, २. भक्त, ३.सेवक, दास। उ० ३. भाग तुलसी के, भले साहेब करें जनु भो। (गी० १।६४)
जनेत-(सं० जन)-१. बरात, २. बराती, ३. जनता। उ० १. अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत। (मा० १।३४३) २. पछिताब भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै। (पा० ६३)
जनेउ-दे० 'जनेऊ'। उ० चारु जनेउ माल मृगछाला। (मा० २।२६८।४)
जनेऊ-(सं० यज्ञ)-यज्ञोपवीत, ब्रह्मसूत्र। उ० केहरि कंधर चारु जनेऊ। (मा० १।१४७।४)
जनेषु-(सं०)-आदमियों में, मनुष्यों में। उ० कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२५)
जनेस-(सं० जनेश)-१. राजा, नरेश, भूपति, २. मुखिया, ३. मन। उ० १. लोचन अतिथि भए जनक जनेस के। (क० १।२१)
जनेसु-दे० 'जनेस'। उ० १. जेहि जनेसु देइ जुबराजू। (मा० २।१२।१)
जन्म (सं०)-१. उत्पत्ति, पैदाइश, २. जीवन, ज़िन्दगी। उ० १. मुक्ति जन्ममहि जानि ज्ञान खानि अघ हानिकर। (मा० ४।१।सो० १)
जन्मभूमि-(सं०)-जन्म स्थान, जिस स्थान पर जन्म हुआ हो। उ० जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। (मा० ७।४।३)
जन्मांतर-(सं०)-दूसरा जन्म।
जन्मु-दे० 'जन्म'। उ० १. जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा। (मा० १।१०३।छं० १)
जन्मौं-जन्म धारण करूँ, जन्म लूँ। उ० जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ। (मा० ४।१०।छं० २)
जन्य-(सं०)-१. साधारण मनुष्य, जनसाधारण, २. अफ़वाह, किंवदंती, ३ किसी एक देश का वासी, ४. लड़ाई, ५. पुत्र, ६. पिता, ७. जन्म, ८. जन संबंधी, ९. राष्ट्रीय, जातीय, १०. जो उत्पन्न हुआ हो, उद्भूत।
जपंत-जपते हैं, स्मरण करते हैं। उ० जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं। (मा० ३।३२।छं० २) जपउँ-१. जपू, भजूँ, २. जपता, स्मरण करता। उ० २. जपउँ मंत्र सिवमंदिर जाई। (मा० ७।१०५।४) जपत-१. जापी, जप करनेवाला, २. जपने से, ३. जपते हैं, भजते हैं। उ० २. राम, राम, राम, राम, राम, राम, जपत। (वि० १३०) ३. बीज-मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस। (वि० १०८) जपति-जपती है। उ० जपति सारद संभु सहित घरनि। (वि० २४७) जपते-१. जप करते हुए, २. जप करने से। उ० राम बिहाय 'मरा' जपते, बिगरी सुधरी कबि-कोकिल हू की। (क० ७।८९) जपन-जपने, भजने। उ० अस कहि लगे जपन हरिनामा। (मा० १।५२।४) जपने-जपना है, जप करना है। उ० सुरेस सुर गौरि गिरापति नहिं जपने। (क० ७।७७) जपहि-१. जपो, जपाकर, २. जपकर। उ० १. जपहि नाम रघुनाथ को चरचा दूसरी न चालु। (वि० १९३) जपहु-जपो, जप करो, भजो। उ० सादर जपहु अनंग आराती। (मा० १।१०८।४) जपामि-मैं जपता हूँ, मैं भजता हूँ। उ० तव नाम जपामि नमामि हरी। (मा० ७।१४।६) जपि-१. जप करो, जपो, २. जप कर, भजकर। उ० २. जपि नाम तब बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो सम राम हे। (मा० ७।१३।छं० ३) जपिए-जप कीजिए, भजिए, जप करना चाहिए। उ० बीज-मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस। (वि० १०८) जपिहै-जपेगा, जप करेगा। उ० राम राम राम जीव जौ लों तू न जपिहै। (वि० ६८) जपु-जाप करो, जपो। उ० तुलसी बसि हरपुरी रामजपु जो भयो चहै सुपासी। (वि० २२) जपे-१. जपा, जप किया, २. जपने से, भजने से। उ० २. राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि। (वि० १८४) जपेउ-जपा, जप किया। उ० ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। (मा० १।२६।३) जपैं-१. जपें, २. जपते हैं। उ० २. राम नाम को प्रताप हर कहैं जपैं आपु। (वि० १८४) जप्यों-जपा, जप किया। उ० जीहहू न जप्यों नाम, बक्यो आउ बाउ मैं। (वि० २६१)
जप (सं०)-किसी मंत्रादि या नाम का बार-बार पाठ। पूजा या संध्या आदि में मंत्र का माले के आधार पर गिनकर पाठ करना भी जप कहलाता है। पुराणानुसार तीन प्रकार के जप हैं-मानस, उपांशु और वाचिक। कुछ लोग मानस और उपांशु के बीच में जिह्वा नामक एक और जप मानते हैं। मानस जप में जप मन में करते हैं। जिह्वा में पाठ के समय केवल जिह्वा हिलती है। उपांशु में जिह्वा और अधर हिलते हैं पर शब्द नहीं होता, और स्पष्ट उच्चारण के साथ किया जानेवाला जप वाचिक कहलाता है। उ० करहिं जोग जप तप तन कसहीं। (मा० २।१३२।४) जप जाग-दे० 'जप याग'। जपयाग-(सं० जपयज्ञ)-जप का यज्ञ। जप भी एक प्रकार का यज्ञ माना गया है। इसके तीन या चार भेद होते हैं। दे० 'जप'।
जब-(सं० यः+वेला)-जिस समय, जिस वक्त। उ० तुलसिदास भवत्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै। (वि० ६३) जबकब-(कब<सं० कः+वेला)-जब कभी, जिस समय भी। उ० जब कब रामकृपा दुख जाई। (वि० १२७) जबहिं-१. जब, २. जब ही, जभी। उ० १. जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। (मा० २।८५।४) जबहूँ-जब भी। उ० सुरुचि कह्यो सोइ सत्य, तात! अति परुष बचन जब हूँ। (वि० ८६) जबै-जभी, जिस समय ही। उ० जबै जमराज रजायसु तें मोहिं लै चलिहैं भट बाँधि नटैया। (क० ७।५१)
जम-(सं० यम)-१. यमराज, मृत्यु तथा नरक के देवता। इनका निवास नरक माना जाता है। २.योग का एक अंग। मन तथा इंद्रिय आदि को वश में कर रखना। उ० २. जप तप ब्रत जम नियम अपारा। (मा० ७।११७।५) जमहि-यम से, यमराज से। उ० अवनि जमहि जाचति कैकेई। (मा० २।२५२।३)
जमत-(सं० जन्म)-उपज आते हैं, उत्पन्न होते हैं। जमिहहिं-जमेंगे, उगेंगे, निकलेंगे। उ० जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। (मा० ४।२८।५)
जमदूत-(सं० यमदूत)-यमराज के दूत, मृत्यु के दूत।

जमदूता–दे० 'जमदूत'। उ० सुत हित मीत मनहुँ जमदूता। (मा० २।८३।४)

जमधाम–(सं० यमधाम)–यमराज का लोक, मृत्यु लोक, नरक। उ० पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो। (क०६।१८)

जमधार–(सं० यमधार)–१. यम की सेना, २. यमलोक में ले जानेवाली विपत्तियों की धारा।

जमधारि–दे०'जमधार'। उ०२.करि बिचार भव तरिय, परिय न कबहुँ जमधारि। (वि० २०३)

जमन–(सं० यवन)–म्लेच्छ, मुसलमान। यथार्थतः यवन (जवन) मुसलमानों को न कहा जाकर यूनानियों के लिए प्रयुक्त होता था, पर सामान्यतः लोग इसका प्रयोग मुसलमानों के लिए ही करते हैं। उ० स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात। (म० २।१६४)

जमनगर–(सं० यमनगर)–नरक। उ० अगम अपवर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम-बल क्यों बसौं जमनगर नेरे? (वि० २१०)

जमनिका–(सं० यवनिका)–१. कनात, पर्दा, २. माया, ३. काई। उ० ३. हृदय जमनिका बहुबिधि लागी। (मा० ७।७३।४)

जमपुर–(सं० यमपुर)–नरक, यमराज का नगर। उ० को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को। (वि० १५५)

जमराज–(सं० यमराज)–धर्मराज, जो मरने के बाद प्राणी के कर्मों का विचार कर उसे दंड या उत्तम फल देते हैं। उ० सकुल सदल जमराजपुर, चलन चहत दसकंधु। (प्र० ५।३।६) जमराजपुर–नरक। दे० 'जमराज'।

जमात–(अर० जमाअत)–आदमियों का जत्था, समूह, गरोह। उ० बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै। (मा० १।६३। छं० १)

जमाति–दे० 'जमात'। उ० जोगिनी जमाति कालिका कलाप तोषिहैं। (क० ६।१)

जमाती–जमात में रहनेवाले, साधु लोग, संन्यासी। उ० जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं। (क० ७।१०६)

जमानो–(फा० ज़माना)–समय, काल। उ० जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो। (क० ७।७६)

जमी (१)–(सं० यम)–१. संयमी, संयम करनेवाला, २. यम की पत्नी। उ० १. देखि लोग सकुचात जमी से। (मा० २।२१५।३)

जमी (२)–(फा० ज़मीन)–पृथ्वी, भूमि।

जमुन–(सं० यमुना)–यमुना नदी। उ० उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम। (मा० २।१०६)

जमुहात–(सं०जृम्भण)–जमुहाई लेते समय, जँभाते समय। उ० सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात। (मा० २।३११) जमुहान–जँभाया, जँभाई ली। उ० उठि बिसाल बिकराल बड़, कुंभकरनु जमुहान। (प्र० ५।७।२)

जमोग– (अ० जमा + सं० योग)–सामने का निश्चय, तसदीक़।

जमोगिए–तसदीक कराइए, समर्थन कराइए।

जयंत–(सं०)–देवराज इंद्र के शची से उत्पन्न तीन पुत्रों में से एक का नाम। मेघनाद से जयंत का एक बार बड़ा भयंकर युद्ध हुआ था। जयंत के मामा पुलोमा उस युद्ध से भयभीत होकर भग गए थे। जयंत की स्त्री का नाम कीर्ति था। एक बार भगवान राम की परीक्षा करने के लिए इन्होंने कौवे का वेश धारण कर जानकी पर चोंच-प्रहार किया था। राम ने पहले तो इनको समाप्त कर देने के लिए धनुष उठाया पर बाद में दया कर केवल एक आँख फोड़कर छोड़ दिया। उ० जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। (मा० २।१४१)

जयंता–दे० 'जयंत'। उ० नारद देखा बिकल जयंता। (मा० ३।२।५)

जय(सं०)–१. विजय, जीत, २. अग्निमंथ या अरणी का वृक्ष, ३. विष्णु का एक पार्षद या द्वारपाल। जय और विजय दो भाई थे। एक बार सनकादि भगवान के दरबार में जा रहे थे, तो इन दोनों ने उनको रोका। सनकादि इस पर बहुत रुष्ट हुए और उन्होंने दोनों को शाप दिया। शाप के ही कारण संसार में इनको तीन बार जन्म लेना पड़ा। जय अपने तीनों जन्मों में क्रम से हिरण्याक्ष, रावण और शिशुपाल था तथा विजय हिरण्यकशिपु, कुंभकर्ण और कंस। हर बार भगवान ने स्वयं अवतार लेकर इनका उद्धार किया। ४. एक संवत। दे० 'जय संवत'। उ० ३. जय अरु विजय जान सब कोऊ। (मा० १।१२२।२)

जयजय–विजय की कामना करनेवाला शब्द। उ० शंभु-जायासि जय-जय भवानी। (वि० १५)

जयउ–दे० 'जयऊ'। जयऊ–जीत लिया है, विजय कर लिया है। उ० भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ। (मा० २।२१०।३) जये (१)–(सं० जयन्)–जीत गए, जीत लिया। उ० एक कहत भइया भरत जये। (गी० १।४३)

जयेउ–दे० 'जये (१)'। जयो (१)–१. जीत लिया, विजयी हुआ, २. जीत भी, जय भी। उ० १. तीर तें उतरि जस कह्यो चहै, गुनगननि जयो है। (गी० ६।११)

जयौ–दे० 'जयो (१)'।

जयकर–जय करनेवाले, जीतनेवाले। उ० जय जयंत-जयकर अनंत, सज्जन जन रंजन। (क० ७।११३)

जयति–जय हो, जै-जैकार। उ० निसि बासर ध्यावहिं, गुन-गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा। (मा० १।१८६। छं०२)

जयमाल–(सं० जयमाला)–१. वह माला जो विजयी को पहिनाई जाती है, २. स्वयंवर में वर के गले में कन्या द्वारा पहिनाई जानेवाली माला। उ० २. जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल। (मा० १।१३१)

जयमाला–दे० 'जयमाल'। उ० २. कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला। (मा० १।१३५।२)

जयसंवत–एक सम्वत् का नाम। पण्डित सुधाकर द्विवेदी की गणनानुसार यह सम्वत् सं० १६४३ विक्रमीय में पड़ा था। उ० जय संवत फागुन, सुदि पाँचै, गुरु दिनु। (पा० ५)

जयसील–(सं० जयशील)–जीतनेवाला, जयशाली। उ० कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं। (मा० ६।५३।३)

जये (२)–(सं० जाया, जनन)–उत्पन्न करते थे। उ० प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये। (गी०

३।१७) जयो (२)–उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ।
जयो (३)–(सं० यजन)–यजन किया, यज्ञ किया। उ० चहत महामुनि जाग जयो। (गी० १।४५)
जर (१)–(सं० ज्वर)–ज्वर, ताप, बुखार। उ० जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा। (मा० २।५१।३)
जर (२)–(सं० जरा)–बुढ़ापा, वृद्धावस्था।
जर (३)–(सं० जटा)–जड़, मूल।
जर (४)–(सं०)–नाश या जीर्ण होने की क्रिया।
जरइ–(सं० ज्वलन)–जलता है। उ० रिस तन जरइ होइ बल हानी। (मा० १।२७८।३) जरई–जलता है, जल रहा है। उ० सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। (मा० २।३३।२) जरउ–जले, जल जाय। उ० हिय फाटहु, फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम। (दो० ४१) जरत–१. जलता है, जल रहा है, २. जलते हुए। उ० १. अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। (मा० २।३२।३) जरति–जलती हुई। जरती–जलती, भस्म होती। उ० घरही सती कहावती, जरती नाह-वियोग। (दो० २५४) जरहिं–जलते–हैं, तप्त होते हैं, जल रहे हैं। उ० दे० 'जर (१)'। जरा-(१)–(सं० ज्वलन्)–१. जला, जल गया, जल उठा, २. जलाकर, ३. जलाया। उ० १. सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी। (मा० ३।२६।१) जरि (२)–(सं० ज्वलन)–जलकर, भस्म होकर। उ० तुलसी कान्हबिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो। (कृ० ३६) जरिए–जलिए, जला कीजिए। उ० सो विपरीत देखि पर सुख बिनु कारन ही जरिए। (वि० १८६) जरिहि–जलेगी, जलती रहेगी। उ० नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती। (मा० २।३४।४) जरी (१)–(सं० ज्वलन)–१. जली, जली-भुनी, २. एक गाली। जरे (१)–(सं० ज्वलन)–१. जले, भस्म हुए, २. जले हुए। उ० २. मानहुँ लोन जरे पर देई। (मा० २।३०।४) जरौं–जलूँ, जल मरूँ। उ० तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं, पावक जरौं, जलनिधि महुँ परौं। (मा० १।६६। छं० १)
जरकसी–(फा० जरकश)–जिस पर सोने या चाँदी के तार आदि लगे हों। उ० सुन्दर बदन, सिर पगिया जरकसी। (गी० १।४२)
जरजर–(सं० जर्जर)–१. जीर्ण, पुराना हो जाने के कारण जो बेकाम हो, २. टूटा-फूटा, खंडित, ३. वृद्ध। उ० १. जरजर सकल सरीर पीर मई है। (ह० ३८)
जरठ–(सं०)–१. कर्कश, कठिन, २. वृद्ध, बुड्ढा, ३. जीर्ण, पुराना। उ० २. मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहिं दिखाउ निरगुन-खानि। (कृ० ५२)
जरठपनु–बुढ़ापा, वृद्धावस्था। उ० मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा। (मा० २।२।४)
जरठाइ–वृद्धावस्था, बुढ़ापा। उ० जरठाइ दिसा, रविकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीवन जागहि रे। (क० ७।३१)
जरनि–जलन, दाह, ताप, जलना। उ० राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि। (वि० १८४)
जरनी–दे० 'जरनि'। उ० जननी जनकादि हितू भये भूरि, बहोरि भई उर की जरनी। (क० ७।३२)
जरा (२)–(सं०)–१. बुढ़ापा, वृद्धावस्था, २. एक राक्षस का नाम जिसने जरासंध की संधि को जोड़ा था। जरासंध अपनी मा के पेट से दो फाँक पैदा हुआ था। उ० १. जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ। (मा० १।१६४) २. अवधि-जरा जोरति हठि पुनि-पुनि, याते तनु रहत सहत दुख भारे। (कृ० ५६)
जरा (३)–(अर० ज़र्रा)–थोड़ा, कम, तनिक।
जराए (१)–(सं० जटन)–जड़े हुए, लगाए हुए। उ० पहुँची करनि, कंठ कठुला बन्यो केहरि नख-मनि-जरित जराए। (गी० १।२६)
जराए (२)–(सं० ज्वलन)–जलाया, जला दिया। जराय (१)–(सं० ज्वलन)– जला कर, भस्म कर।
जराय (२)–(सं० जटन)–१. जड़ाव, रत्न आदि जड़ने की क्रिया, २. जड़ाकर, जड़वाकर। उ० १. अंग-अंग भूषन जराय के जगमगत, हरत जन के जी को तिमिर जालु। (गी० १।४०)
जरायज–(सं०)–वे प्राणी जो आँवल या खेड़ी आदि में लिपटे मा के गर्भ से उत्पन्न होते हैं।
जरि (१) –(सं० जड़)–१. जड़, मूल, २. जड़ी,जड़ी-बूटी, औषधि। उ० १. जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। (मा० २।१७।४)
जरित–(सं० जटित)– जड़ित, जड़ा हुआ, अलंकृत। उ० जरित कनकमनि पलँग डसाए। (मा० १।३५६।१)
जरी (२)–दे० 'जरि (१)'। उ० २.देखी दिव्य ओषधी जहँ तहँ जरी न परि पहिचानि। (गी० ६।६)
जरी (३)–(अर० ज़रा)–थोड़ी, अत्यंत कम।
जरी (४)–(सं० जटन)–जटित, जड़ी हुई। उ० महाब्याल बिकल बिलोकि जनु जरी है। (गी० १।६०)
जरे (२)–(सं० जटन)–१. बँधे हुए, जकड़े हुए, २. जटित, जड़े, अलंकृत। उ० २. झूमत द्वार अनेक मतंग, जँजीर जरे मद अंबु चुचाते। (क० ७।४४)
जर्जर–दे० 'जज्जर'। उ० १. सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन। (मा० ७।७३।५)
जज्जर–(सं०)–१.जीर्ण शीर्ण, टूटा-फूटा, खंडित, २. वृद्ध। उ० १.सो प्रगट तनु जज्जर जरा बस ब्याधि सूल सतावई। (वि० १३६)
जलंधर–(सं०)–१. एक राक्षस, जो शिव की कोपाग्नि से समुद्र में उत्पन्न हुआ था। पैदा होते ही यह इतने ज़ोर से रोने लगा कि देवता लोग बहुत घबराए। ब्रह्मा ने इसे अपनी गोद में बिठलाया तो जलंधर ने उनकी दाढ़ी इतनी जोर से खींची कि उन्हें आँसू निकल पड़े। इसी कारण ब्रह्मा ने इसका नाम जलंधर रक्खा। बड़े होने पर इसने इंद्रपुरी पर अधिकार कर लिया। शिव इंद्र की ओर से इससे लड़ने लगे पर इधर इसकी स्त्री वृन्दा ब्रह्मा की पूजा करने लगी। इस प्रकार इसका मरना असंभव हो गया। अंत में विष्णु ने इसकी स्त्री के साथ छल किया और यह मारा गया। वृन्दा इसके साथ सती हो गई। २. पेट का एक रोग। उ० १. समर जलंधर सन सब हारे। (मा० १।१२३।३)
जल–(सं०)–१. पानी, नीर, २. खस, उशीर, ३. सुगंधबाला, नेत्रबाला। उ० १. भरी क्रोध जल जाइ न जाई।

(मा० २।३४।१) जलअलि–(सं०)–१. पानी का भँवर, २. पानी का भौंरा, भौंतुआ। यह जलप्रवाह के विरुद्ध भी तेज़ी से तैर सकता है। उ० २. जल प्रवाहँ जलअलि गति जैसी। (मा० २।२३४।४) जलो (१)–(सं० जल)–जल भी, पानी भी। उ० पंगु अंध निरगुनी निसंबल जो न लहै जाँचे जलो। (गी० ५।४२)

जलकुक्कुट–(सं०)–मुर्गाबी, पानी के मुर्गे। उ० बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। (मा० ३।४०।१)

जलचर–(सं०)–पानी में रहनेवाले जंतु। मछली, कछुआ, मगर आदि। उ० जलचर थलचर नभचर नाना। (मा० १।३।२) जलचरन्हि–जलचरों, जलचरों पर। उ० अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं। (मा० ६।४) जलचरकेतू–(सं० जलचर+केतु)–जिसकी ध्वजा में मछली का चिह्न हो। कामदेव। उ० चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू। (मा० १।१२५।३)

जलज–(सं०)–१. कमल, पंकज, २. जल से उत्पन्न सभी चीजें। उ० १. जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं। (मा० १।५।३)

जलजाए–(सं० जल+जनन)–कमल। उ० भ्रू सुंदर करुना रस-पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए। (गी० १।२३)

जलजात–(सं०)–जो जल में पैदा हो, कमल।

जलजाता–दे० 'जलजात'। उ० पूजहिं माधव पद जलजाता। (मा० १।४४।३)

जलजान–(सं० जलयान)–नाव, जहाज़। उ० सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिन्धु बिना जलजान। (मा० ५।६०)

जलजाना–दे० 'जलजान'। उ० भयहु तात मो कहँ जलजाना। (मा० ५।१४।१)

जलद–(सं०)–१. जल देनेवाला, बादल, २. कपूर, ३. मोथा। उ० १. किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात। (मा० २।२१६)

जलदनाद–मेघनाद, रावण का पुत्र इंद्रजीत। उ० बिपुलबलमूल, शार्दूल विक्रम, जलदनादमर्दन, महाबीर भारी। (वि० ३८)

जलदाता–तर्पण आदि क्रिया तथा पिंडदान का करनेवाला। उ० जलदाता न रहिहि कुल कोऊ। (मा० १।१७४।२)

जलदातार–जल देनेवाला, मेघ, बादल। उ० जग-सरबर तर मरन-कर जानहु जलदातार। (स० १४३)

जलदानि–१. मेघ, बादल, २. जल देनेवाला।

जलदु–दे० 'जलद'। उ० १. जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। (मा० २।२०५।२)

जलधर–(सं०)–बादल, मेघ। उ० सेवक सालि पाल जलधर से। (मा० १।३२।५) जलधरनि–बादलों को। उ० चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि। (गी० १।२५)

जलधि–(सं०)–समुद्र, सिन्धु, सागर। उ० जलधि अगाध मौलि बह फेनू। (मा० १।१६७।४) जलधेः–(सं०)–समुद्र के। उ० मूलं धर्मतरोर्विवेक जलधेः पूर्णेंदुमानन्ददं। (मा० ३।१। श्लो० १)

जलनिधि–(सं०)–दे० 'जलधि'। उ० तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं। (मा० १।६६। छं० १)

जलपति–(सं० जल्प)–इधर-उधर की बातें करती हुई, बकती हुई। उ० उर लाइ उमहिं अनेक बिधि, जलपति जननि दुख मानई। (पा० १२१)

जलपाना–(सं० जलपान)–वह थोड़ा और हलका भोजन जो प्रातःकाल या सायं किया जाता है। नाश्ता, कलेवा। उ० करि तड़ाग मज्जन जलपाना। (मा० ७।६३।२)

जलमल–जल का मैल, फेन इत्यादि। उ० कलि अघ खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग। (मा० १।४१)

जलयान–(सं०)–जल में काम आनेवाली सवारी। नाव, जहाज़ आदि।

जलरथं–(सं०)–नाव, जहाज़। उ० भवसिंधु दुस्तर जलरथं, भजु चक्रधर सुरनायकं। (वि० १३६)

जलरुह–(सं०)–कमल, जलज। उ० हरषि रबिकुल जलरुह चंदिनि (मा० २।१५६।१)

जलाशय–(सं०)–दे० 'जलासय'।

जलाश्रय–(सं०)–दे० 'जलासय'।

जलासय–(सं० जलाशय)–तालाब, सर, झील आदि। उ० बिमल जलासय बिबिध बिधाना। (मा० २।२१५।२)

जलु–जल, पानी। उ० सुंदर गिरि काननु जलु पावन। (मा० २।१२४।३)

जलो (२)–(सं० ज्वलन)–जल गया।

जल्प–(सं०)–१. कथन, वर्णन, कहना, २. प्रलाप, व्यर्थ की बात, बकवाद।

जल्पक–(सं०)–बकवादी, वाचाल, बातूनी। उ० तजउँ तोहि तेहि त्रास कटुजल्पक निसिचर अधम। (मा० ६। ३३ ख)

जल्पत–(सं० जल्प)–१. डींग मारते हुए, बकवाद करते हुए, प्रलाप करते हुए, २. बकवाद करता है। उ० १. एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना। (मा० ६।७२।५) जल्पसि–१. बकवाद करो, प्रलाप करो, २. तू बकवाद करता है। उ० १. जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई। (मा० ६।६।५) जल्पहिं–बकते हैं, बका करते हैं। उ० जल्पहिं कल्पित बचन अनेका। (मा० १।११५।३)

जल्पना–१. बकवाद, प्रलाप, गपशप, ३. अपनी बड़ाई करना। उ० १. छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना। (मा० ६। ५६।३)

जव–(सं० यव)–जौ, एक अन्न। उ० होइहिं जव कर कीट अभागी। (मा० ५।५३।३)

जवन (१)–(सं० यवन)–म्लेच्छ, मुसलमान। दे० 'जमन'। उ० क्रूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन। (वि० २१२)

जवन (२)–(सं० यः)–जौन, जो, जौन सा। जवनि–जो, जौन सी। 'जवन' का स्त्री लिंग रूप। उ० हरि-दरसनफल पायो है ज्ञान बिमल, जाँचत भगति मुनि चाहत जवनि। (गी० ३।५)

जवनिका–दे० 'जमनिका'।

जवारु (१)–(अर० ज़वाल)–१. अवनति, बुरे दिन, २. जंजाल, झंझट। उ० २. स्वारथ अगम, परमारथ की

कहा चली, पेट की कठिन, जग जीव को जवारु है। (क० ७।६७)
जवारु (२)–(?)–ज्वार, समुद्र का ऊफ़ान।
जवास–(सं० यवासक)–एक प्रकार का छोटा पौदा जो नदियों के किनारे होता है। यह ग्रीष्म ऋतु में हरा-भरा रहता है और बरसात में पानी पड़ते ही सूख जाता है। उ० जिमि जवास परे पावस पानी। (मा० २।५४।१)
जवासा–दे० 'जवास'।
जस (१)–(सं० यश)–यश, तारीफ़, नाम। उ० प्रभु प्रसाद जस जाति सकल सुख पावउँ। (जा० १६४)
जस (२)–(सं० यथा)–१. जैसा, जिस प्रकार का, २. जिस प्रकार से। उ० १. जस आमय भेषज न कीन्ह तस। (वि० १२२) जसि–(सं० यथा)–जैसी, जिस प्रकार की, 'जस' का स्त्रीलिंग। उ० राम बिरोध कुसल जसि होई। (मा० ६।२१।५)
जसी–(सं० यश)–यशवाला, यशस्वी, कीर्तिवान। उ० तज्यो तनु संग्राम जेहि लगि गीध जसी जटाय। (गी० ७।३१)
जसु (१)–दे० 'जस (१)'। उ० निज गिरा पावनि करन कारन रामजसु तुलसीं कह्यो। (मा० १।३६१। छं० १)
जसु (२)–दे० 'जस (२)'।
जसुमति–दे० 'जसोमति'। उ० सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई। (कृ० ८)
जसोमति–(सं० यशोमति)–यशोदा, नन्द की स्त्री जिन्होंने कृष्ण को पाला था। उ० तुलसिदास प्रभु सों कहै उर लाइ जसोमति ऐसी बलि कबहूँ नहिं कीजै। (कृ० ७)
जहँ–(सं० यत्र)–जहाँ, जिस जगह। उ० त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी। (वि० ६३)
जहरु–(फा० ज़ह्र)–१. विष, माहुर, प्राणघातक पदार्थ, २. अप्रिय बात या काम, ३. घातक, मार डालनेवाला, ४. बहुत अधिक हानि पहुँचानेवाला। उ० १. सुधा सो भरोसो एहु, दूसरो जहरु। (वि० २५०)
जहवाँ–(सं० यत्र)–जहाँ, जहाँ पर। उ० बन असोक सीता रह जहवाँ। (मा० ५।८।३)
जहाँ (१)–(सं० यत्र)–जिस स्थान पर, जिस जगह। उ० लै दियो तहँ जनवास सकल सुपास नित नूतन जहाँ। (जा० १२५)
जहाँ (२)–(फा०)–जहान, संसार।
जहाज–(अर० जहाज़)–बहुत बड़ी नाव, एक प्रकार की बड़ी नाव जो लोहे की होती है और मशीन से चलती है। उ० सहित समाज महाराज सो जहाजराज। (क०६।२५)
जहाजू–दे० 'जहाज'। उ० मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। (मा० २।८६।२)
जहान–(फा० जहाँ)–संसार, विश्व। उ० साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान। (क०७।१६) जहानहि–संसार को, विश्व को। उ० जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे। (क० ७।२८)
जहाना–दे० 'जहान'। उ० जे जड़ चेतन जीव जहाना। (मा० १।३।२)
जहि (१)–(सं० जहन)–१. त्यागो, छोड़ो, २. त्यागकर, छोड़कर, ३. नाश करनेवाले। उ० ३. नमत राम अकाम ममता जहि। (मा० ७।३०।३)
जहि (२)–(सं० यस्)–जेहि, जिसे, जिसको।
जहिआ–(सं०यद्)–जिस समय, जब। उ० भुजबल बिस्व जितब तुम जहिआ। (मा० १।१३६।३)
जह्नु–(सं०)–१. विष्णु, २. एक राजर्षि। जब भगीरथ गंगा को लेकर आ रहे थे तो रास्ते में जन्हु यज्ञ कर रहे थे। गंगा को इन्होंने पी लिया। भगीरथ के बहुत प्रार्थना करने पर पुनः इन्होंने कान के रास्ते गंगा को निकाला। तब से गंगा का नाम जाह्नवी पड़ा। इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया आदि पुत्री वाचक शब्द लगा देने से गंगा के पर्याय बन जाते हैं। उ० २. नर-नाग विबुध बंदिनि, जय जह्नु बालिका। (वि०१७) जन्हु-कन्या–गंगा नदी। दे० 'जह्नु'। उ० जह्नु-कन्या धन्य, पुन्यकृत सगर सुत, भूधर-द्रोनि-बिद्दरनि बहुनामिनी। (वि० १८)
जाँगर (१)–(सं० जांगल)–उजाड़, सूना, समृद्धिहीन। उ० सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो। (क० ५।२३)
जाँगर (२)–(?)–शरीर, हाथ-पैर देह।
जाँघ–(सं० जंघ)–घुटना और कमर के बीच का अंग, उरु। उ० महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे। (वि० १४७)
जाँचत–(सं० याचन)–१. मांगते हुए, जाँचते हुए, २. जाँचते हैं, माँगते हैं। उ० १. देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबरयो। (वि० ६१) २. हरि-दरसन-फल पायो है ज्ञान बिमल, जाँचत भगति मुनि चाहत जवनि। (गी० ३।५) जाँचति–याचना करती है, माँगती है। उ० अवनि जमहि जाँचति कैकेई। (मा० २।२५२।३) जाँचहीं–माँगती हैं, याचना करती हैं, प्रार्थना करती हैं। उ० जोरी जियौ जुग जुग, सखी जन जाँचहीं। (क०१।१४) जाँचा–माँगा, माँगा था, याचना की थी। उ० रावन मरन मनुज कर जाँचा। (मा० १।४६।१) जाँचिए–माँगिए, प्रार्थना कीजिए। उ० को जाँचिए संभु तजि आन ? (वि० ३) जाँचिये–माँगिए, याचना कीजिए। उ० जग जाँचिये कोऊ न, जाँचिये जौ जिय जाँचिये जानकी-जानहि रे। (क० ७।२८) जाँचै–जाँचता है, माँगता है। उ० जाँचै बारह मास, पियै पपीहा स्वातिजल। (दो० ३०७) जाँचों–माँगता हूँ, माँगूँ। उ० जाँचों जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो। (वि० १८२)
जा (१)–(सं०)–१. माता, माँ, २. देवरानी, देवर की स्त्री, ३. उत्पन्न, संभूत। जैसे गिरिजा, जनकजा, अवनिजा आदि। उ० ३. विष्णु पद सरोज जासि, ईस-सीस पर बिभासि। (वि० १७)
जा (२)–(सं० यः)–१. जो, २. जिस। उ० २. जा करि तैं दासी सो अविनासी हमरेउ तोर सहाई। (मा० १। १८४। छं० १) २. राउर जापर अस अनुरागू। (मा० २। २५६।३)
जा (३)–(फा०)–१. मुनासिब, वाजिब, २. जगह, स्थान।
जा (४)–(सं० यान)–१. चला जा, जाओ, २. जाइ, गमन (जैसे जाकर=गमनकर या गमन करके)। जाइ (१)–(सं० यान)–१. चलकर, गमन कर, जाकर, २. समास

होता, दूर होता, ३. दूर होती है, ४. जाती है, ५. व्यर्थ, वृथा। उ० १. मंत्र सो जाइ जपहिं जो जपत भे अजर अमर हर अँचइ हलाहलु। (वि० २४) २. सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ। (मा० १।११।३) ३. राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि। (वि० १८४) जाइअ-जाना चाहिए, जाया जाय। उ० जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा। (मा० १।६२।३) जाइय-जाना चाहिए, जाय। उ० पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइय? (पा० ५१) जाइहि-जायगा, जावेगा। उ० मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ। (मा० २।३६।३) जाई (१)-(सं० यान)-१. जाइ, जाकर, २. जाता, जाता है, ३. जाइयेगा, ४. जावें। उ० १. निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई। (मा० १।१३५।३) २. मोह जनित मल लाग बिबिध बिधि, कोटिहु जतन न जाई। (वि० ८२) जाउँ-जाता हूँ, जाऊँ। उ० जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा (मा० १।४४।१) जाउ-१. जाओ, २. जाय, उजड़ जाय, ३. जाय, जावे। उ० २. घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं। (मा० १।९६। छं०१) जाऊँ-दे० 'जाऊ'। उ० ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। (मा० २।५६।४) जाऊ-जाऊँ, चला जाऊँ। उ० नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ। (मा० २।४५।१) जाएँ-१. व्यर्थ, बेमतलब, २. जावें। उ० १.भरतहि दोसु देइ को जाएँ। (मा २।२२८।४) जाए (१)-(सं० यान)-दे० 'जाएँ'। जाएहु-जाना, चले जाना। उ० बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान। (मा० १।१५९ क) जात-(१)-(सं० यान)-१. जाता है, २. जाते हुए। उ० १. सो क्यों भट्ठू तेरो कहा कहि इत उत जात। (कृ० २) २. घोर जमालय जात निवारयो सुत-हित सुमिरत नाम। (वि०१४४) जातहि-जाते ही, पहुँचते ही। उ०मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए। (कृ०५०) जाता-(१)-(सं० यान)-१. यात्रा, जाना, २. जाते हुए, ३. गया होता। उ० १. जेहिं मुद मंगल कानन जाता। (मा० २।५३।४) २. पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। (मा० २।११२।२) जाति (१)-(सं० यान)-१. जाती है, गमन करती है, २. जाते हुए, ३.जाती, जा सकती। उ० ३. होइ धौं केहि काल दीनदयालु जानि न जाति। (वि० २२१) जाती (१)-दे० 'जाति (१)'। उ० ३. मनुजदसा कैसें कहि जाती। (मा० १।३३८।२) जाब-१. जाना, २. जाऊँगा, ३. जाएँगे, जाओगे। उ० १. मोर जाब तव नगर न होई। (मा० १।१६७।२) ३. जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। (मा० २।११२।४) जातेउँ-जाता। उ० लै जातेउँ सीतहि बरजोरा। (मा० ६।३०।३) जातै-जाता, जाता है। उ० नगर सोहावन लागत बरनि न जातै हो। (रा० २) जाय (१)-(सं० यान)-१. चला जाय, २. जा, जाओ, ३. व्यर्थ, वृथा। उ० ३. कछु ह्वै न आइ गयो जनम जाय। (वि० ८३) जायगो-जायगा, हटेगा, दूर होगा। जाहिं (१)-(सं० यान)-१. जाते हैं, जाती हैं, २. दूर होते हैं। उ० १. चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं। (मा० १।१३) जाहिंगे-नष्ट हो जायँगे। उ० खर दूषन मारीच ज्यों, नीच जाहिंगे कालि। (दो० १४५) जाहि (१)-(सं० यान)-१. जाओ, २.जाकर। उ० १. राम की सरन जाहि सुदिनु न हेरै। (गी० ५।२७) जाहिगो-जायगा, नष्ट हो जायगा। उ० देहि सीय नतौ, पिय! पाइमाल जाहिगो। (क० ६।२३) जाहीं-१. जायँ, जावें, २. जाते हैं, ३. बीत जाँय, व्यतीत हो जावें। उ० २. पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं। (मा०१।४५।१) जाही (१)-(सं० यान)-१. जाकर, २. जा। उ० २. अब जनि नाथ कहहु गृह जाही। (मा० ७।१८।४) जाहु-जाओ, जाइए। उ० चतुरानन पहिं जाहु खगेसा। (मा० ७।५९।४) जाहू-दे० 'जाहु'। उ० बैनतेय संकर पहिं जाहू। (मा० ७।६०।४) जैबे-(सं० यान)-१.जाने, २. नष्ट होने। उ० २. जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की जो। (क० ७।८२) जैहउँ-जाऊँगा, जा पाऊँगा। उ० कब जैहउँ दुख सागर पारा। (मा० १।५९।१) जैहसि-जायगा, नष्ट होगा। उ० जैहसि तैं समेत परिवारा। (मा० १।१७४।१) जैहहिं-१. जायँगे, २. गमन करेंगे। उ० १. नत मारे जैहहिं सब राजा। (मा०१।२७१।३) जैहैं-दे० 'जैहहिं'। उ० २.गिरि कानन जैहैं शाखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती। (गी०६।७) जैहै-१. जायगा, २. दूर होगा, नष्ट होगा। उ० २. हम सों कहत बिरह-स्रम जैहै गगन कूप खनि खोरे। (कृ०४४) जैहौं-जाऊँगा। उ० राम-लषन-सिय-चरन बिलोकन कालिह काननहिं जैहौं। (गी० २।६५) जैहौ-जाओगे, गमन करोगे।

जाइ (२)-(सं० जनन)-उत्पन्न कर, पैदाकर।

जाई (२)-(सं० जा)-१. पैदा हुई, उत्पन्न हुई, २. कन्या, बेटी।

जाई (३)-(सं० जाती)-चमेली।

जाए (२)-(सं० जा)-पैदा हो, जन्म लिया हो। उ० बोले बचन प्रेम जनु जाए। (मा० १।३४१।२)

जाकर-(सं० यः+कृतः)-जिसका। उ० जाकर चित अहिगति सम भाई। (मा० १।७।४)

जाका-(सं० यः+कृतः)-जिसका, जिस व्यक्ति का। जाकी-१. जिस किसी की, २. जिसकी। उ० २. जाकी कहनि रहनि अनमिल, अलि, सुनत समुझियत थोरे। (कृ०४४) जाकें-जिसके, जिसके पास। उ० तेहि कि दरिद्र परस-मनि जाकें। (मा० ७।११२।१) जाके-१. जिसके, २. जिस किसी के। उ० १. तुलसी जाके चित भई, राग द्वेष की हानि। (वै० ५९)

जाको-१. जिसको, २. जिसका। उ० २. जाको बाल बिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को। (वि० ४१)

जाग (१)-(सं० यज्ञ)-यज्ञ, मख। उ० समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग। (मा० १।४१)

जाग (२)-(सं० जागरण)-१. जागरण, जागने की क्रिया, २. जागो, उठो, निद्रा खोलो। जागत-(सं० जागरण)-१. जागता है, २. जागते हुए, ३. प्रकट होता है, प्रकाशित होता है, ४. फैला हुआ है, विदित है, प्रसिद्ध है। उ० १. जागत सोवत सरन तुम्हारी। (मा० २।१३०।२) ४. बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो। (क० ६।३८) जागति (१)-(सं० जागरण)-१. जागती है, २. जगाती है, जगाती हो, ३.

जगमगाती है, प्रकट होती है, ४. प्रफुल्लित करता है। उ० २. कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसान। (मा० २।३६) ४. केस सुदेस गँभीर बचन बर, स्रुति कुंडल-डोलनि जिय जागति। (गी० ७।१७) जागन–जागना, जागरण, रात भर जागना। उ० ज्यों आजु-कालिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते दिये। (गी० १।५) जागहिं–१. जागते हैं, २. जग जाते हैं। उ० १. नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। (मा० १।२२।१) जागा (१)–१. निद्रा त्यागा, उठा, जग उठा, २. ज़ाहिर हुए, प्रसिद्ध हुए। उ० १. देखि सुएहुँ मन मनसिज जागा। (मा० १।८६।४) जागि–१. जगकर, उठकर, २. प्रसिद्ध होकर, ३. जग जा। उ० १. जागि करहिं कटु कोटि कलपना। (मा० २।१५७।३) ३. जागि त्यागु मूढ़तानुरागु श्री हरे। (वि० ७४) जागिए–जगिए, उठिए, निद्रा त्यागिए। उ० जागिए न सोइए बिगोइए जनम जाय। (क० ७।८३) जागिबो–जागना, उठना, भ्रम से बाहर निकलना। उ० जागिबो जो जीह जपै नीके राम नाम को। (क० ७।८३) जागिहै–जगेगा, जग उठेगा। उ० राग राम नाम सों, बिराग जोग जगिहै। (वि० ७०) जागी (१)–१. उठी, जगी, २. जगकर, उठकर, ३. प्रकट हुई, प्रसिद्ध हुई, ४. चमक उठी। उ० ३. धर्मसीलता तव जग जागी। (मा० ६।२२।४) जागु (१)–(सं० जागरण)–जाग, जग जा। उ० अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें। (वि० १९८) जागू–जाग, जग उठ। उ० महा मोह निसि सूतत जागू। (मा० ६।५६।४) जागे–१. जाग उठे, २. खड़े हो गए। उ० १. जानेउ सतीं जगतपति जागे। (मा० १।६०।२) २. रोम-रोम जागे। (गी० १।१२) जागेउ–जगा, उठा। उ० जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। (मा० १।१७२।१) जागैं–१. जागते हैं, जागते रहते हैं, २. चिंतित रहते हैं, ३. जागें, ४. जगाते हैं, मंत्र से जगाते हैं, जगावे। उ० ४. काहे को अनेक देव सेवत जागैं मसान। (क० ७।१६२) जागै–१. जागे, २. जागता है, ३. जगमगाता है, ४. बढ़ता है, ५. फैलेगा, बढ़ेगा, ६. चमकेगा। उ० ५. बिधि गति जानि न जाइ, अजसु जग-जागै। (जा० ७८)

जाग (२)–(फा० जायगाह)–जगह, स्थान।

जागति (२)–(सं० जागर्त्ति)–योगी, चैतन्य लोग। उ० मंजुल मुकतावलि जुत जागति जिय जोहैं। (गी० ७।४)

जागबलिक–दे० 'याज्ञवल्क्य'। उ० जागबलिक मुनि परम बिबेकी। (मा० १।४५।२)

जागरन–(सं० जागरण)–जागना, निद्रा का अभाव। उ० घर-घर करहिं जागरन नारीं। (मा० १।३५८।१)

जागरुक–(सं०)–चैतन्य, सचेत।

जागा (२)–(सं० यज्ञ)–यज्ञ, मख। उ० सतीं जाइ देखेउ तब जागा। (मा० १।६३।२)

जागी (२)–(सं० यज्ञ)–यज्ञ करनेवाला। उ० कौन धौं सोम जागी अजामिल अधम? कौन गजराज धौं बाजपेई? (वि० १०६)

जागु (२)–(सं० यज्ञ)–यज्ञ, मख।

जाचक–(सं० याचक)–माँगनेवाला, भिक्षुक, मँगता। उ० जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले। (मा० १।१०२। छं० १) जाचकनि–याचकों को, मँगतों को। उ० देत संपदा समेत श्री निकेत जाचकनि। (क० ७।१६०)

जाचकता–(सं० याचकत्व)–माँगने का भाव, भिखमंगी, मँगतापन। उ० जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ। (क० ७।२८)

जाचत–१. माँगता है, २. माँगते हैं, ३. माँगने पर। उ० १. नहिं जाचत, नहिं संग्रहीं, सीस नाइ नहिं लेइ। (दो० २९०) २. जाचत सुर निमेष, सुरनायक नयन-भार अकुलान। (गी० ५।२२) जाचन–१. माँगना, याचना, २. माँगने के लिए। उ० २. ईस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाँचन जाहीं। (वि० ४) जाचहिं–माँगते हैं, याचना करते हैं। उ० जाचहिं भगति सकल सुख खानी। (मा० ७।११६।४) जाचा–१. माँगा, याचना की, २. जाँचना, माँगना, ३. चाहा हुआ, प्रार्थित। जाचिए–माँगिए, माँगना चाहिए, याचना करनी चाहिए। उ० जाचिए गिरिजापति कासी। (वि० ६)

जाजरो–(सं० जर्जर)–जीर्ण-शीर्ण, दुर्बल। उ० आँधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा भवन। (क० ७।७६)

जाड़–(सं० जाड्य)–जाड़ा, ठंढक। उ० जड़ता जाड़ विषम उर लागा। (मा० १।३९।१)

जात (१)–(सं०)–१. जन्म, उत्पत्ति, २. पुत्र, बेटा, ३. उत्पन्न, जन्मा हुआ, ४. प्राणी, जीव।

जात (२)–(सं० जाति)–जाति, वर्ण। हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, लोहार, सोनार आदि जातियाँ।

जातक–(सं०)–बच्चा, बालक, शिशु। उ० तुलसी मन-रंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन-जातक से। (क० १।१)

जातकरम–दे० 'जातकर्म'। उ० नंदीमुख सराध करि जात-करम सब कीन्ह। (मा० १।१९३)

जातकर्म–(सं०)–हिन्दुओं के दस संस्कारों में से चौथा संस्कार जो बालक के जन्म के समय होता है। इसमें बालक के जन्म के बाद कुछ विशेष पूजन, वृद्ध-श्राद्ध आदि-कर बालक के जीभ पर चावल एवं जव का चूर्ण और घी आदि मला जाता है। उ० जातकर्म करि, पूजि पितर सुर दिए महिदेवन दान। (गी० १।२)

जातना–(सं० यातना)–१. पीड़ा, कष्ट, व्यथा, तीव्र वेदना, २. दंड की वह पीड़ा जो यमलोक में भोगनी पड़ती है। ३. नरक। उ० ३. उदर उदधि अधगो जातना। (मा० ६।१५।४)

जातरूप–(सं०)–१. सोना, सुवर्ण, २. चाँदी। उ० १. जातरूप मनि रचित अटारीं। (मा० ७।२७।२)

जातरूपाचल–(सं०)–सुमेरु पर्वत, सोने का पहाड़। उ० जातरूपाचलाकार-बिग्रह लसत-लोम बिद्युल्लता-ज्वाल-माला। (वि० २८)

जाता (२)–(सं० जा)–उत्पन्न हुआ, जन्मा। उ० जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता। (मा० १।१८०।२)

जाति (२)–(सं०)–१. हिन्दुओं में समाज का वह विभाग जो पहले कर्म पर आधारित था पर बाद में जन्मानुसार हो गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सोनार, अहीर आदि।

२. गोत्र, ३. कुल, वंश, ४. चमेली, ५. जावित्री, ६. जायफल, ७. एक प्रकार का काव्य जिसमें अर्थ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। कैशिकी, भारती, आरभटी तथा सात्वकी, जाति के ये चार भेद कहे गए हैं। ८. वह पद्य जिसके चरणों में मात्राओं का नियम हो। मात्रिक छंद। ६. वर्ग, खंड। उ० १. मेरे ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं। (वि० ७६) जाति-पाँति-(सं० जाति+पंक्ति)-जाति वर्ण आदि, बिरादरी। उ० रटत रटत लव्यो, जाति-पाँति भाँति घव्यो। (वि० २६०)

जाती (२)-दे० 'जाति (२)'। उ० ७. धुनि अवरेब कवित गुन जाती। (मा० १।३७।४) ६. बिष्नु बिरंचि देव सब जाती। (मा० १।६६।३)

जातुधान-(सं०)-१. राक्षस, असुर, २. विभीषण। उ० १. जीते जातुधान जे जितैया बिबुधेस के। (गी० ३।४३) २. जातुधान भालु कपि केवट बिहंग जो जो। (क० ७।१३) जातुधानपति-(सं०)-रावण. राक्षसों का राजा। उ० हरिप्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ। (मा० १।१७८ ख) जातुधानी-राक्षसी, मंदोदरी आदि। उ० सुनत जातुधानी सब लागीं करै बिषाद। (मा० ६।१०८) जातुधानेस-(सं० जातुधानेश)-रावण। उ० जातुधानेस भ्राता बिभीषन नाम। (गी० ५।४३)

जाते-(सं० यः+तः)-१. जिससे, २. जिस कारण से। उ० १. जाते छूटै भव भेद ज्ञान। (वि० ६४)

जादवराइ-(सं० यादव+राजा)-कृष्ण, यादवों का राजा। उ० मातु की गति दई गहि कृपालु जादव राइ। (वि० २१४)

जादौ-(सं० यादव)-यदुवंशी। कहा जाता है कि ये आपस में लड़कर मर गए। उ० सकुल गए, तनु बिनु भए, साखी जादौ काम। (दो० ४२५)

जान (१)-(सं० ज्ञान)-१. अवगत होना, जानना, २. जाना, ३. जानते हैं, ४. जानो, ५. जानेगा, ६. ज्ञान, जानकारी, ७. समझ, अनुमान, ८. ज्ञानवान, बुद्धिमान। उ० १. गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ। (मा० १।४८ क) ६. व ८. जानकी जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है। (क० ७।३६) जानई-जानता है, जानते हैं। उ० हिमवान कहेउ 'इसान महिमा अगम, निगम न जानई'। (पा० १२१) जानउँ-१. जानूँ, २. जानता हूँ। उ० २. कह तापस नृप जानउँ तोही। (मा० १।१६३।४) जानत-१. जानता, जानता है, जानकार है, २. जानते हुए, ३. जानते ही। उ० १. जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु। (मा० २।१४६) ३. जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई। (मा० २।१२७।२) जानतहूँ-१. जानते हुए भी, २. जानता हूँ। उ० १. जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। (मा० ५।८।१) जानति-जानती, जानती है, जानती थी। उ० जानति हहु बस नाहु हमारें। (मा० २।१४।३) जानब-१. जानना, समझना, जानो, जानिएगा, २. जानेगा। उ० १. सो जानब सतसंग प्रभाऊ। (मा० १।३।३) जानबि-जानिएगा। उ० गौरि-सजीवनि मूरि मोरि जिय जानबि। (पा० १५७) जानसि-जानती है, जानती हो। उ० जानसि मोर सुभाउ बरोरू। (मा० २।२६।२) जानहिं-जानते हैं, जान लेते हैं। उ० नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ। (मा० १।२२।२) जानहि-जानता है। उ० केवल मुनि जड़ जानहि मोही। (मा० १।२७२।३) जानहीं-जानते हैं। उ० महिपाल मुनि को मिलन सुख महिपाल मुनि मन जानहीं। (जा० १८) जानहु-१. जानो, २. जानते हो, जानते ही हो। उ० २. सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। (मा० १।१४६।४)

जाना (१)-(सं० ज्ञान)-१. जानना, मालूम करना, २. जान लिया, मालूम किया। उ० १. जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। (मा० १।२२।२) २. जाना राम सतीं दुखु पावा। (मा० १।५४।२) जानामि-मैं जानता हूँ। उ० न जानामि योगं जपं नैव पूजां। (मा० ७।१०८। श्लो० ८)

जानि-१. जानकर, समझकर, २. समझलो, जान लो, ३. ज्ञानी, ४. जाना, मालूम हुआ। उ० १. जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि। (मा० १।७ ग) ४. नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि कुधर-कुमारिका। (पा० ४५) जानिअ-१. जाना चाहिए, २. जानी जाती है। उ० १. जानिअ तबहिं जीव जग जागा। (मा० २। ६३।२) २. गुरप्रसाद सब जानिअ राजा। (मा० १। १६४।१) जानिबी-जानिए, जानिएगा। उ० परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी। (मा० १। ३३६। छं० १) जानिबे-१. समझनी चाहिए, २. मालूम होना, जान पड़ना, ३. जानिएगा, जान पड़ेंगे। उ० १. करम, धरम सुख संपदा त्यों जानिबे कुराज। (दो० ५१३) ३. तात! जात जानिबे नए दिन। (गी० २।७५) जानिबो-१. जाना चाहिए, २. जानना। उ० १. मेरे जान जानिबो सोइ नर खरु है। (वि० २५५) जानिय-१. जान लेने से, २. जान लीजिए, ३. जानना चाहिए, ४. जानता हूँ। उ० १. अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं। (वि०१२०) जानियत-१.जानता है, समझता है, २. जान पड़ता है, जाना जाता है, ३.जानते हैं, समझते हैं, ४. ज्ञान, समझ। उ० १.तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौड़ो भरिहैं। (वि० १७१) २. सीयराम-संजोग जानियत रच्यो बिरंचि बनाइकै। (गी०१।६८)

जानी (१)-(सं० ज्ञान)१. जानी हुई, प्रसिद्ध, २. जान ली, मालूम कर लिया, ३. जान लीजिए, जानो, ४. जानकर, ५. ज्ञानी, विद्वान्। उ० २.जानी राम, न कहि सके, भरत लषन सिय प्रीति। (दो० २०३) ३. महाबल बीर हनुमान जानी। (क० ६।२०) ४. राम भगति भूषित जियँ जानी। (मा० १।६।४) जानु (१)-(सं० ज्ञान)-१. जानो, समझो, विचारो। उ० १. राम नाम दुइ आखर हिय हितु जानु। (ब० ४६) जानू-जानो, समझो, मानो। उ० चाप स्रुवा सर आहुति जानू। (मा० १।२८३।१) जाने-१. पहिचाने, परिचित, २. जाना, पहिचाना, जान लिया, ३. जानते हुए, ४. जानकर। उ० १. जो पै जिय जानकीनाथ न जाने। (वि० २३६) ४. जननी जनक जरठ जाने जन परिजन लोगु न छीजै। (कृ० ४६) जानेउँ-जाना, समझा, समझा है। उ० जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। (मा० २।२८।१) जानेउ-जाना, जाना है। उ० नारद जानेउ नाम प्रतापू। (मा० १।२६।२)

जानेसु–जानना, जान लेना। उ० नहिं आवौं तब जानेसु मारा। (मा० ४।४।३) जानेहि–जाना, जान सका। उ० जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। (मा० ४।४।२) जानेहु–जाना, समझा था। उ० जानेहु लेइहि मागि चबेना। (मा० २।३०।३) जानै–१. जाने, २. जान लेता है, जानता है। उ० २. गरजि तरजि पाषान बरषि पबि प्रीति परखि जिय जानै। (बि० ६५) जानो–समझो, जान लो। उ० स्याम वियोगी ब्रज के लोगनि जोग जोग जो जानो। (कृ० ३५) जानौं–१. जानूँ, २. जानता। उ० २. जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को। (क० ७।१७८) जान्यो–जाना, पहिचाना, समझ में आया। उ० जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही मेह-मन। (दो० ३०७)

जान (२)–(सं० यान)–१. गाड़ी, रथ, वाहन, २. जाना है, ३. जाने के लिए। उ० १. कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान। (मा० २।१८६) ३. कहेउ जान बन केहिं अपराधा। (मा० २।४४।४)

जान (३)–(फ़ा०)–१. प्राण, जीव, दम, २. शक्ति, समर्थ्य, ३. तत्व, सार।

जानकि–दे० 'जानकी'। उ० बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। (मा० १।२४७।३) जानकिरमन–जानकीरमण, राम। उ० दससीस बिभीषन अभयप्रद जय जय जय जानकिरमन। (क०७।११४) जानकिरवन–जानकीरमण, जानकी के पति, राम। उ० कह तुलसिदास सुर-मुकुटमनि जय जय जय जानकिरवन। (क० ७।११२)

जानकिहिं–जानकी को। उ० राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई। (मा० २।५६।१) जानकिहि–जानकी को। उ० देखि जानकिहि भए दुखारी। (मा० १।२५२।४) जानकी–(सं०)–जनक की पुत्री और राम की धर्मपत्नी, सीता, जानकी में कंत, शरण, रमण, रमन, रवन, ईश, ईस, नाथ, नाह आदि शब्द जोड़कर राम का अर्थ लिया जाता है। जैसे, जानकीरमण, जानकीकंत आदि। उ०जनकसुता जगजननि जानकी। (मा० १।१८।४) जानकीजीवन–जानकी के जीवन, राम। उ० जानकीजीवन जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि। (क० ७।२६)

जाननिहार–जाननेवाला, ज्ञाता, जानकार। उ० माया मायानाथ की जो जग जाननहार। (दो० २४५)

जाननिहारा–दे० 'जाननिहार'। उ० और तुम्हहि को जाननिहारा। (मा० २।१२७।१)

जानपनी–बुद्धिमानी, जानकारी, चतुराई। उ० दम दान दया नहिं जानपनी। (मा० ७।१०२।५)

जाना (२)–(सं० यान)–गाड़ी, रथ। उ० कनक बसन मनि भरि भरि जाना। (मा० १।३३३।४)

जानी (२)–(फ़ा० जान)–प्राणप्यारी, स्त्री।

जानु (२)–(सं०)–जाँघ और पिंडली के मध्य का भाग, घुटना। उ० काम-तून-तल सरिस जानु जुग, उरु करि-कर करमहि बिलखावति। (गी० ७।१७)

जाप–(सं०)–किसी मंत्र आदि की आवृत्ति। दे० 'जप'। उ० जाप जग्य पाकरि तर करई। (मा० ७।५७।३)

जापक–(सं०)-जपकर्ता, जप करनेवाला। उ० जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल। (मा० १।२७) जापकहि–जप करनेवाले को। उ० राम नाम-जप जापकहि, तुलसी अभिमत देत। (प्र० २।५।७)

जापकी–दे० 'जापक'। उ० जापकी न, तप खप कियो न तमाइ जोग। (क० ७।७७)

जापू–दे० 'जाप'। उ० अनमिल आखर अरथ न जापू। (मा० १।१५।३)

जाप्य (१)–(सं० जाप)–जाप करने योग्य, इष्टदेव। उ० सिद्धिसाधक साध्य, वाच्य वाचक रूप, मंत्र-जापक जाप्य, सृष्टि स्रष्टा। (वि० ५३)

जाप्य (२)–(सं० याप्य)–अधम, निकृष्ट, निन्दनीय।

जाबालि–(सं०)–कश्यपवंशीय एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुरु और मंत्रियों में से थे। ये भी रामचंद्र को लौटाने के लिए चित्रकूट गए थे, और राम को बहुत समझाया था। उ० बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि। (मा० १।३३०)

जाबाली–दे० 'जाबालि'। उ० कौसिक बामदेव जाबाली। (मा० २।३१९।३)

जाम (१)–(सं० याम)–प्रहर, याम, ७½ घड़ी या तीन घंटे का समय। उ० गएँ जाम जुग भूपति आवा। (मा० १।१७२।३)

जाम (२)–(फ़ा०)–प्याला, प्याले के आकार का कटोरा।

जामति–जमती है, उपजती है। उ० कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल, जामति न बई है। (वि० १३६) जामहिं–१. जमता है, उगता है, २. उगता। उ० २. देव न बरषहिं धरनी बए न जामहिं धान। (मा० ७।१०१ ख) जामा (१)–(सं० जन्म)–जमा, अंकुरित हुआ, पैदा हुआ। उ० पाइ कपट जलु अंकुर जामा। (मा० २।२३।३) जामी (१)–(सं० जन्म)–१. पनपी, अंकुरित हुई, जन्मी, उत्पन्न हुई, २. उपजा है, ३. जड़ पकड़ी। उ० १. राम भगति एहिं तनउर जामी। (मा० ७।६६।२) जामो–१. जमा है, उपजा है, २. जन्मा, उत्पन्न हुआ। उ० १. नाम प्रभाउ सही जो कहै, कोउ सिला सरोरुह जामो। (वि० २२८) जामौ–जमे, उत्पन्न हो, उगे, अंकुरित हो।

जामन–(सं० यमन)–थोड़ा सा दही या कोई और खट्टी चीज़ जिसे दूध में डालकर दही जमाते हैं। जावन।

जामनु–दे० 'जामन'।

जामवंत–(सं० जांबवंत)–सुग्रीव के मंत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है। प्रसिद्ध है कि जामवंत रीछ था। त्रेता युग में रावण के विरुद्ध राम की सहायता करनेवालों तथा लड़ने वालों में यह प्रमुख था। भागवत के अनुसार द्वापर में इसी की कन्या जीववती से कृष्ण ने विवाह किया था। सतयुग में जामवंत ने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी। इस प्रकार यह तीनों युगों में जीवित था। जांबवान। उ० जिमि जग जामवंत हनुमानू। (मा० १।७।४)

जामा (२)–(फ़ा०)-पहनावा, वस्त्र।

जामाता–(सं० जामातृ)–बेटी का पति, दामाद। उ० सादर पुनि भेटे जामाता। (मा० १।३४१।१)

जामिक-(सं० यामिक)-पहरेदार, रक्षक । उ० जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के। (मा० २।३१६।३)
जामिन-दे० 'जामिनी'।
जामिनि-दे० 'जामिनी' । उ० भूख न बासर नीद न जामिनि । (मा० २।२१।३)
जामिनी-(सं० यामिनी)-रात, निशा । उ० जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी। (मा० २।५०।छं०१)
जामी (२)-सं० यामी)-जाननेवाला।
जामु-याम। दे० 'जाम' (१) । उ० बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु । (मा० १।२१७)
जाय-(सं० जा)-१. पैदा कर, जन्म देकर, २. जन्मा है, ३. पैदा किया, जन्म दिया । उ० १. मातु पिता जग जाय तज्यो, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई। (क० ७। ५७) जाया (१)-(सं० जा)-१. उत्पन्न, २. उत्पन्न किया, ३. उत्पन्न हुआ, ४. पुत्र, बेटा । उ० ३. जेहि न मोह अस को जग जाया । (मा० १।१२८।४) जाये (१)-(सं० जा)-पैदा हुआ, पुनर्जन्म पाया हुआ। उ० आजु जाये जान सब अंकमाल देत हैं। (क०५।२६) जायो-१. पैदा किया, जन्माया, २. उत्पन्न हुआ, ३. पैदा होता । उ० १. मोसे दोस-कोस पोसे, तोसे माय जायो को। (वि० १७६) जायौ-पैदा किया, उत्पन्न किया।
जाया (२)-(सं०)-१. पत्नी, स्त्री । उ० उदासीन धन धामु न जाया । (मा० १।६७।२)
जाये (२)-(सं० यान)-वृथा, गया बीता।
जार-(सं०)-किसी स्त्री का अवैधानिक पति, उपपति, यार।
जरित-१. जलाता है, भस्म करता है, २. जलाते समय। उ० २. जारत नगरु कस न धरि खाहू । (मा० ६।६।२) जारा (१)-(सं० ज्वलन)-जलाया, भस्मीभूत किया, जला डाला। उ० अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। (मा० १।६४।४) जारि-जलाकर। उ० बिनु जल जारि करइ सोइ छारा। (मा० २।१७।४) जारिउँ-जलाया। उ० जारिउँ जायँ जननि कहि काकू। (मा० २।२६१।३) जारिए-१. जलाइए, २. जलते हैं। उ० २. बरषत बारि पीर जारिए जवासे जस। (ह० ३५) जारी- १.जलाकर, २. जलाया, जला दिया। उ० २. सपनें बानर लंका जारी। (मा० ५।११।२) जारें-जलाने पर, जलाने से। उ० गाइ-गोठ महिसुर पुर जारें। (मा० २।१६७।३) जारै-१. जलावे, २. जलाने ही, फूँकने ही। उ० २. जारै जोगु सुभाउ हमारा। (मा० २।१६।४) जारो-भस्म किया, जलाया। उ० यह बड़ि त्रास दास तुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो। (वि० ६४)
जारनिहारे-जलानेवाले, भस्म करनेवाले । उ० पावक-बिरह समीर-स्वास तनु-तूल मिले तुम्ह जारनिहारे। (कृ० ५६)
जारा (२)-(सं० जार)-दे० 'जार'।
जारा (३)-(सं० जाल)-झुंड, समूह । उ० अस्थि सैल सरिता नस जारा। (मा० ६।१५।४)
जाल-(सं०)-१. तार या सूत आदि का बुना पट जिसमें छोटे-छोटे या कुछ बड़े-बड़े छेद होते हैं। मछली या चिड़ियों आदि को पकड़ने के लिए इसको काम में लाया जाता है। पाश, २. समूह, ३. वह युक्ति जो दूसरे के फँसाने के लिए काम में लाई जाय। धोखा, ४. इन्द्र-जाल, ५. खिड़की, झरोखा, ६. गर्व, घमंड, ७. जंजाल। उ० १ .जलचर-बृंद जाल-अंतरगत होत सिमिट इक पासा। (वि० ६२) २. श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल। (वि० १४)
जाला-(सं० जाल)-१. मकड़ी का जाला। इसमें मक्खिओं या कीड़ों को फँसाकर मकड़ियाँ खाती हैं। इसे मकड़ियाँ अपने मुँह के लार से बनाती हैं और फिर इसे खा जाती हैं। २. आँख का एक रोग, ३. मूसा आदि बाँधने का जाल, ४. पानी रखने का एक प्रकार का बरतन। ५. जाल, पाश, बंधन, ६. समूह, ७. जंजाल । उ० ७. सुमिरत समन सकल जगजाला। (मा० १। २७।३)
जालिका-(सं०)-१. पाश, फंदा, २. जल्दी, ३. समूह, झुंड, ४. माला। उ० ४. प्रनतजन-कुमुदबन-इंदुकर-जालिका। (वि० ४८)
जालु--१. जाल, फंदा, २. समूह । उ० २. अमिय बचन सुनाइ मेटहि बिरह-ज्वाला-जालु। (गी० ५।३)
जालू-१. जाल, पाश, २. जंजाल। उ० २. जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू। (मा० २।६२।३)
जावनु-दे० 'जामन'। उ० घृत सम जावनु देइ जमावै। (मा० ७।११७।७)
जासु-(सं० यस्य)-जिसका, जिसकी । उ० गावहिं बेद जासु जस लीला। (मा० १।८०।१)
जासू-दे० 'जासु'। उ० ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू। (मा० १।६६।२)
जासों-१. जिससे, २. जिस प्रकार से। उ० १. जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो। (वि० १७४)
जाहि (२)-(सं० यः)-जिसमें। उ० कथा सुधा मथि काढ़हिं, भगति मधुरता जाहिं। (मा० ७।१२०क)
जाहि (२)-(सं० यः)-१. जिसे, जिसको, २. जिससे, ३. जिसमें, ४. जिस, जो। उ० १. जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन। (मा० १।१। सो० ४)
जाही (२)-(सं० यः)-१. जिसको, जिसे, २. जिससे। उ० १. बरइ सीलनिधि कन्या जाही। (मा० १।१३१।२)
जिअउँ-(सं० जीवन)-१. जीऊँ, जीवन बिताऊँ, २. जीवित हूँ, जीता हूँ। उ० १. प्रनतपाल प्रनतोर, मोर प्रन जिअउँ कमल पद देखे। (वि० ११३) जिअत-१. जीते जी, २. जीते हैं, जीता है । उ० १. सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई। (मा० २।५७।२) जिअन-जीने, जीवित रहने। उ० जिअन मरन फलु दसरथ पावा। (मा० २।१५६।१) जिअब-जीना, जीवित रहना। उ० भूपति जिअन मरन उर आनी। (मा० २।२८२।४) जिअसि-जीता है, जीवित रहता है। उ० जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। (मा०-५।४१।२) जिअहुँ-दे० 'जिअउँ'। जिइहहिं-जीएँगे, जीते रहेंगे। उ० प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें। (मा० २।१००। १) जिइहि-जीते रहेंगे, जीवित रहेंगे। उ० राजु कि भूँजब भरतपुर नृपु कि जिइहि बिनु राम। (मा० २।४९)

जिए–१. जीती रहे, जीवे, २. जीवित हो गए, ३. जीवित रहने से, ४. जीने पर। उ० ४. जाके जिए सुए सोच करिहैं न लरिको। (ह० ४२) जिऐ–दे० 'जिए'। उ० १. जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। (मा० २।३३।१) जिऔं–जीता रहूँ, जीऊँ। उ० जब लगि जिऔं कहउँ कर जोरी। (मा० २।३६।४) जियत–१. जीता, जीवित, २. जीता हूँ, ३. जीते जी, ४. जीता है। उ० ३. जियत खिलाये राम। (दो० २२१) ४. राम से प्रीतम की प्रीति रहित जीव जाय जियत। (वि० १३२) जियबे–जीने, जीवित रहने। उ० बहुरि मोहँ जियबे मरिबे की चित चिंता कछु नाहीं। (गी०२।१) जिया–१. जीवित हो गया, २. जीवित। उ० १. बालकु जिया बिलोकि सब, कहत उठा जनु सोइ। (प्र० ६।५।५) जिये–१. जीने से, २. जीवित रहें। उ० १. नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिये। (क० ११६) जियैं–१. जीवित रहें, जीएँ, २.जीने से। उ०१. जेहिं देह सनेह न रावरे सों, असि देह धराइ कै जाय जियैं। (क० ७।३८) जियै–१. जीता है, २. जीवित रहे। उ० १. मनि बिना फनि जियै ब्याकुल बिहाल रे! (वि० ६७) जियो–१. जीवित हो उठा, सचेत हो उठा, २. बढ़ा, अधिक जीवित हुआ। उ० २. इन्हहीं के आए ते बधाए ब्रज नित नए, नादत बाढ़त सब सब सुख जियो है। (कृ० १६) जीजै–१. जीना, जीवित होना, जीवित होइए, २. जीवित रहे, ३. जीवित हैं, जिन्दा हैं, ४. जीवित रहें तो। उ० १. मारें मरिअ जिआएँ जीजै। (मा० ३।२५।२) जीबो–जीना, ज़िन्दा रहना। उ० लीजै गाउँ, नाउँ लै रावरो है जग ठाउँ कहूँ है जीबो। (कृ० ६) जीयत–जीते जी, जब तक जीवित हैं। उ० जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही। (क०७।३६) जीवत–१. जीता है, जीवित है, २.जीते जी, ३. जीवित, ज़िन्दा। उ०१. घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं। (मा० १।९६। छं० १) जीवहुँ–जीवें, जीवित रहें। उ० सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस। (मा० १।१९६)

जिअनमूरि–(सं० जीवन + मूल)–१. जीवन प्रदान करने वाली जड़ी, संजीवनी बूटी, २. अत्यन्त प्रिय वस्तु। उ० १. जिअनमूरि जिमि जुगवत रहऊँ। (मा० २।५९।३)

जिआइ–जिलाकर, जीवित कर। उ० कोसलपाल कृपालु चित, बालक दीन्ह जिआइ। (प्र० ६।५।४) जिआइहौं–जिलाऊँगा। उ० तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू? (क० २।६) जिआउ–जिलाओ, जीवित करो। उ० सुनि सुमंत! कि आनि सुंदर सुवन सहित जिआउ। (गी० २।५७) जिआए–१. जिलाए, जीवित किया, २.पाला है। उ० १.सुधा सींचि कपि, कृपा नगर-नर- नारि निहारि जिआए। (गी० ६।२२) उ० २. नाना खग बाल कन्हि जिआए। (मा० ७।२८।२) जिआयउ–जिलाया, जिला लिया। उ० मोहि जिआयउ जन-सुखदायक। (मा० ७।९३।४) जिआयो–१. जिलाया, २. जिला रक्खा है, जीवित कर रक्खा है। उ० २.साँचेहुँ सुत-बियोग सुनिबे कहँ धिग बिधि मोहिं जिआयो। गी० २।५६) जिआव–जिलाता है, जिला रहा है। उ० सोइ बिधि ताहि जिआव न आना। (मा० ६।९९।५) जिआवत–जिला रहा है। उ० मोर अभाग्य जिआवत ओही। (मा० ६।९९।३) जिआवनि–जिलानेवाली। उ० मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। (मा० १।१४५।४) जिआवसि–जिलाते हो, जिला रहे हो। उ० संकर बिमुख जिआवसि मोही। (मा०१।५०।२) जिआवा–१.जिलाया, २.जिलाया हुआ। उ० २. जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। (मा० ५।४१।२)

जिउ–(सं० जीव)–प्राण, दम, जान। उ० जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी। (मा० २।१४५।२)

जित (१)–(सं० यत्र)–जिधर, जिस ओर, जहाँ। उ० कै ए नयन जाहु जित ए री। (गी० १।७६)

जित (२)–(सं०)–१. जीता हुआ, पराजित, २. जीत, विजय, ३. जीतनेवाला, जेता। उ० ३. आजानु भुज सरचाप-धर संग्राम जित खर दूषणं। (वि० ४५)

जित (३)–(सं० जिति)–जीत लिया। जितई (१)–(सं० जिति)–१. जिताया, जिता दिया, २. जीता। उ० १. समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब सुकृत-सेन हारत जितई है। (वि० १३९) जितन–जीतने के लिए। उ० बलिहि जितन एक गयउ पताला। (मा० ६।२४।७) जितब–जीतेंगे, जीत पायँगे। उ० पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। (मा० ६।३६।२) जितहिं–जीते, जीत सके। उ० तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी। (मा० १।१२३।४) जिता–१. जेता, जीतनेवाला, २. जीत लिया। उ० १. धरम-धुरंधर धीरधुर गुन-सील जिता को? (वि०१५२) २. जिता काम अहमिति मन माहीं। (मा० १।१२७।३) जिति–जीतकर, विजय कर। उ० रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। (मा० १।१७५।४) जितिहहिं–जीतेंगे। उ० जितिहहिं राम न संसय यामहिं। (मा० ६।५७।३) जिते-(१)–१. जीत लिया, जीता है, २. जीतने पर। उ० १. देखे जिते हते हम केते। (मा० ३।१९।२) जितेउँ–जीत लिया। उ० भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला। (मा० ६।८।२) जितेहु–जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि। (मा० ५।२१) जितै (१)–(सं० जिति)–जीते, जीत सके। उ० जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ। (मा० १।१६४) जितो (१)–(सं० जिति)–विजय किया, जीत लिया है। उ० कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सों चंद सों होड़ परी है। (क० ७।१८०) जितौ (१)–दे० 'जितो (१)'। जित्यो–जीता, जीत लिया, जीतता चला आया। उ० जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहिं जितैहो। (वि० २७०)

जितई (२)–(सं० यत्र)–जिधर ही।

जिताए–जिताया, जिता दिया। उ० तेरे बल बानर जिताए रन रावन से। (ह० ३३) जितावहिं–जिताते हैं, जिता देते हैं। उ० हारेहुँ खेल जितावहिं मोहीं! (मा० २।२६०।४) जितैहो–जिताओगे, जीत कराओगे। उ० जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहिं जितैहो। (वि० २७०)

जितेंद्रिय–(सं०)–१. जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया हो, इंद्रियों को वश में करनेवाला। २. सम वृत्ति वाला, शान्त।

जिते (२)–(सं० यः)–जितने, जितने भी। उ० कबहुँ न डग्यो निगम-मग तें पग नृग जग जान जिते दुख पाए। (वि० २४०)
जितै (२)–(सं० यत्र)–जिधर, जिस ओर।
जितैया–जीतनेवाला, विजय करनेवाला, विजयी। उ० रूप के निधान, धनुष बान पानि, तून कटि, महाबीर-बिदित, जितैया बड़े रन के। (वि० ३७)
जितो (२)–(सं०यः)–जितना, जिसमात्रा का, जितना ही। उ० जितो दुराउ दास तुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो। (वि० १६१)
जितौ (२)–जितना, जितना अधिक। उ० नख सिख सुंदरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ री। (गी० १।७५)
जितौहैं–जीत की ओर झुका हुआ, जीत चाहने वाला। उ० इन्हके जितौहैं मन, सोब अधिकानी तन। (गी० १।८४)
जिन (१)–(सं० ❀ यानां। तु० सं० यानि, येषां)–'जिस' का बहुवचन, जिन्ह, जो लोग, जिन्होंने। उ० जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही है। (गी० २।४१) जिनके–जिन लोगों के। उ० जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी। (वि० ५) जिनहिं–जिनको, जिन लोगों को। उ० कौन सुभग सुसील बानर जिनहिं सुमिरत हानि। (वि० २१५)
जिन (२)–(अर०)–भूत-प्रेत, मुसलमानी भूत।
जिनस–दे०–'जिनिस'। उ० १. बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै। (मा० १।६३।छं०१)
जिनिस–(फ़ा० जिंस)–१. जाति, प्रकार, तरह, २. वस्तु, चीज़, सामान।
जिन्ह–(सं० ❀यानां)–जिन, जो लोग। उ० परहित हानि लाभ जिन्ह केरें। (मा० १।४।१) जिन्हहि–जिनको, जिन लोगों को। उ० तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ। (मा० १।३८) जिन्हही–जिनको, जिन लोगों को। उ० रामचरन पंकज प्रिय जिन्हही। (मा० २।८४।४)
जिमि–(सं० यः+एवम्)–जिस प्रकार, जैसे, ज्यों। उ० अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ। (मा० १।३क)
जियँ–जी में, मन में। उ० देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा। (मा० ४।६।५) जिय–(सं० जीव)–१. मन, चित्त, जी, २. प्राण, जीव, ३. प्राणी, शरीरधारी, ४. सार, ५. आत्मा। उ० १. राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि। (वि० १८४)
जियरे–जी में, चित्त में। उ० कुंडल-तिलक-छबि गड़ी कवि जियरे। (गी० १।४१)
जियाये–१. जीवित कर दिए, २. पालन-पोषण किया, ३. रक्षा की।
जिव–(सं० जीव)–१. जीव, जीवात्मा, २. प्राण, दम। उ० १. तबहीं ते न भयो हरि! थिर जबँते जिव नाम धरयो। (वि० ८१)
जिवन–दे० 'जीवन'। उ० गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति। (पा० २०)
जिवनमूरि–दे० 'जिअनमूरि'।
जिवनु–दे० 'जीवन'। उ० जिवनु जासु रघुनाथ अधीना। (मा० २।१४६।३)
जिष्णु–(सं०)–जीतनेवाला, विजयी। जिष्णो–हे जयशील, हे विजयी। उ० भुवन भवदंस कामारि वंदित-पदद्वंद-मंदाकिनी-जनक जिष्णो। (वि० ५४)
जिसु–(सं० यस्य)–जिसका। उ० सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू। (मा० १।११२।२)
जिह्वा–(सं०)–जीभ, रसना।
जी (१)–(सं० जीव)–१. मन, दिल, चित्त, २. हिम्मत, साहस, ३. संकल्प, विचार, ४. जीवन। उ० १. रीझत राम जानि जन जी की। (मा० १।२९।२) ४. अवधि आस सम जीवनि जी की। (मा० २।३१७।१)
जी (२)–(सं० श्रीयुत, प्रा० जुक, हि० जू)–१. नाम के पीछे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द, २. किसी बड़े के कथन, प्रश्न या संबोधन के उत्तर रूप में प्रतिसंबोधन, हाँ।
जीजी–[सं० देवी (?)]–बड़ी बहन। उ० "कीजै कहा, जीजी जू!" सुमित्र परि पायँ कहै। (क० २।४)
जीत–(सं० जिति)–१. विजय, फ़तह, सफलता, २. लाभ, फ़ायदा, ३. जीतना, जीत सकना, ४. जीतेगा। उ० ४. समरभूमि तेहि जीत न कोई। (मा० १।१३१।२)
जीतन–जीतना, जीतने। उ० जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें। (मा० ६।८०।६) जीतहु–जीतो, जीत लो। उ० जीतहु समर सहित दोउ भाई। (मा० १।२६६।३) जीति–१. जीतकर, २. जीत, विजय, ३. जीता। उ० १. पुष्पक जान जीति लै आवा। (मा० १।१७९।४) ३. अजर अमर सो जीति न जाई। (मा० १।८२।४) जीतिअ–जीता जा सकता है। उ० सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई। (मा० ६।२६।४) जीतिहहिं–जीतेंगे। उ० जद्यपि उमा जीतिहहि आगे। (मा० ६।४३।१) जीती–विजय कर, जीत। उ० एकहि एक सकइ नहिं जीती। (मा० ६।५४।२) जीते–जीत लिए, जीता। उ० तेहिं सब लोक लोकपति जीते। (मा० १।८२।३) जीतेहु–१. जीता है, २. जीतने पर भी। उ० १. जीतेहु जे भट संजुग माहीं। (मा० ६।९०।२) जीतेहू–दे० 'जीतेहु'। उ० २. तुलसी तहाँ न जीतिये जहँ जीतेहू हारि। (दो० ४३०) जीतै–१. जीते, २. जीतेगा। उ० २. संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतै रन सोइ। (मा० १।८२) जीत्यों–दे० 'जीत्यो'। उ० १. जीत्यों अजय निसाचर राऊ। (मा० ६।११२।२) जीत्यो–१. जीत लिया, जीत लिया है, २. जीता, ३. जीतना। उ० १. मातु समर जीत्यो दससीसा। (मा० ६।१०७।४) ३. मोसे बीर सों चहत जीत्यो रारि रन मैं। (गी० ५।२३)
जीन (१)–(सं० जीर्ण)–१. जर्जर, टूट-फूटा, २. पुराना, वृद्ध।
जीन (२)–(फ़ा० ज़ीन)–घोड़े की पीठ पर रखने की गद्दी, काठी, चारजामा। उ० रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। (मा० १।२९८।२)
जीभ–(सं० जिह्वा)–१. रसना, ज़बान, २. वाणी, गिरा। उ० १. काटिअ तासु जीभ जो बसाई। (मा० १।६४।२)

जीय-(सं० जीव)-१. प्राण, जीव, २. मन, चित्त, दिल। उ० २. नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन-जीय की। (वि० २६३)

जीर्ण-(सं०)-१. पुराना, वृद्ध, जर्जर, २. टूटा-फूटा, जीर्ण-शीर्ण, ३. परिपक्व, जठराग्नि में जिसका परिपाक हुआ हो।

जीव (१)-(सं०)-१. आत्मा, जीवात्मा, २. प्राण, जान, ३. जीवधारी, प्राणी, ४. जीवन, ५. विष्णु, ६. बृहस्पति। उ० १. ब्रह्म जीव बिच माया जैसें। (मा० २।१२३।१) ३. जीव भवदंघ्रि-सेवक-बिभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता। (वि० ५८) जीवन्ह-१. जीवों ने, सारे जीवों ने, २. जीवों को, ३. जीव का बहुवचन। उ० १. सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। (मा० १।६६।१) २. फलु जग जीवन अभिमत दीन्हे। (मा० २।२५६।४) जीवहि-१. जीव से, जीव पर, २. जीव में। उ० १. जनु जीवहि माया लपटानी। (मा० ४।१४।३) २. ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस। (मा० ७।७८।३)

जीव (२)-(सं० जिति)-जीओ, जीते रहो।

जीवन-(सं०)-१. जीवित रहने की अवस्था, ज़िन्दगी, २. प्राणाधार, परम प्रिय, ३. पानी, जल, वर्षा, ४. हवा, वायु, ५. जीविका, रोज़ी, ६. 'जीवक' नाम की औषधि। उ० १. तुलसिदास अपनाइए, कीजै न ढील अब जीवन-अवधि अति नेरे। (वि० २७३) ३. जीवन को दानी धन कहा ताहि चाहिए। (वि० १७८)

जीवनमुक्त-(सं० जीवन्मुक्त)-जो जीवित दशा में ही आत्म-ज्ञान द्वारा सांसारिक माया-बंधन से छूट गया हो। उ० जीवनमुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान। (मा० ७।४२)

जीवनि-(सं०)-संजीवनी बूटी। उ० अवधि आस सम जीवनि जी की। (मा० २।३१७।१)

जीवनु-दे० 'जीवन'। उ० १. सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा। (मा० २।३१।२)

जीवा-दे० 'जीव'। उ० ३. प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा। (मा० २।२३८।३)

जीविका-(सं०)-वह व्यापार जिससे जीवन का निर्वाह हो। भरण-पोषण का साधन। वृत्ति। उ० जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान सोच-बस। (क० ७।९७)

जीहँ-जीह से, जीभ से। उ० नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। (मा० १।२२।१) जीह-(सं० जिह्वा)-जीभ, ज़बान। उ० जीह जसोमति हरि हलधर से। (मा० १।२०।४)

जीहा-(१)-१.दे० 'जीह', २. हे जीभ। उ० १. कान मूदिकर रद गहि जीहा। (मा० २।४८।४) २. राम राम रमु, राम राम रटु, राम-राम जपु जीहा। (वि० ६५)

जु-दे० 'जूग'। उ० २. रावरेऊ जानि जिय कीजिये जु अपने। (क० ७।७८)

जुआ (१)-(सं० द्यूत)-एक खेल जिसमें जीतनेवाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है। यह बड़ी बुरी खेल मानी जाती है और कहा जाता है कि इस खेल का प्रेमी इसके पीछे अपना सब कुछ खो बैठता है। उ० जुआ खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन्ह। (जा० १६८)

जुआ (२)-(सं० युत)-गाड़ी या हल में वह भाग जो बैल के कंधे पर होता है।

जुआ (३)-(सं० यूका)-एक छोटा स्वेदज कीड़ा जो दूसरे जीवों के शरीर का खून पीकर जीता है। जूँ।

जुआरा-जुआरी, जुआ खेलनेवाला। उ० बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। (मा० १।१८४।१)

जुआरिहि-जुआरी को, जुआ खेलनेवाले को। उ० सूझ जुआरिहि आपन दाऊ। (मा० २।२५८।१)

जुग-(सं० युग)-१. युग, एक संख्या बद्ध समय, सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग, ये चार युग माने गए हैं। २. युग्म, जोड़ा, दोनों, ३. जत्था, समूह, ४. पीढ़ी, पुश्त, ५. जुग चार हैं अतः 'जुग' शब्द का प्रयोग ४ के लिए भी होता है। उ० १. चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। (मा० १।२७।१) २. बंदउँ सबके पदकमल सदा जोरि जुग पानि। (मा० १।७ ग) जुगजुग-चिरकाल, बहुत दिन, अनेक युग। उ० काम दमन कामता-कलपतरु सो जुगजुग जागत जगतीतलु। (वि० २४) जुग-षट-छः का दूना, बारह। उ० जुग-षट भानु देखे, प्रलय-कृसानु देखे। (क० ५।२०)

जुगति-दे० 'जुगुति'।

जुगम-(सं० युग्म)-दो, दोनों। उ० समुझि तजहि भ्रम भजहि पद जुगम, सेवत सुगम गुन गहन गँभीर। (वि० १९६)

जुगल-(सं० युगल)-दो, दोनों, जोड़ा। उ० कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै। (वि० १११)

जुगवत-(सं० योग)-१. एकत्र करता है, संचित करता है, २. सुरक्षित करता है, हिफ़ाज़त करता है।

जुगुति-(सं० युक्ति)-१. उपाय, युक्ति, तदबीर, ढंग, २. चतुराई, व्यवहार-कुशलता, ३. तर्क-वितर्क। उ० १. जात रूप मति जुगुति रुचिर मनि रचि-रचि हार बनावहि। (वि० २३७)

जुज्झहिं-(सं० युद्ध)-जूझते हैं, लड़ते हैं। उ० खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं। (मा० ६।-८८। छं० १)

जुझाऊ-जुझानेवाला, लड़ाई के लिए उत्तेजित करनेवाला, लड़ाई का। उ० कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू। (मा० २।-१९२।२)

जुझार-जूझनेवाला, शूर, बहादुर।

जुझारा-दे० 'जुझार'। उ० अमित सुभट सब समर जुझारा। (मा० १।१५४।२)

जुटत-(सं० युक्त)-१. जुटते हैं, भिड़ते हैं, २. जुटते हुए, भिड़ते हुए। उ० १. मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए। (मा० ६।४१। छं० १)

जुठारी-(सं० जुष्ठ)-जुठारा, जुठार रक्खा, चखकर या प्रयोग कर छोड़ रक्खा। उ० सब उपमा कबि रहे जुठारी। (मा० १।२३०।४)

जुड़ाई (१)-(सं० युक्त)-१. वस्तुओं के जोड़ने की क्रिया। २. जोड़ने की मज़दूरी।

जुड़ाई (२)-(सं० जाड्य)-जूड़ी, एक प्रकार का ज्वर जो

जाड़ा देकर आता है। उ० जातहिं नीद जुड़ाई होई। (मा० १।३६।१)

जुड़ाऊ-(सं० जाड्य)-शान्त करो, ठंढक पहुँचाओ। उ० नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ। (मा० २।११८।३)

जुड़ान-शीतल हुए, ठंढे हुए, शांत हुए। जुड़ाना-दे० 'जुड़ान'। उ० तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना। (मा० १।१८७।४) जुड़ानी-शांत हुई, ठंढी हुई, तृप्त हो गई। उ० देखि रामु सब सभा जुड़ानी। (मा० १।२५६।१) जुड़ाने-दे० 'जुड़ान'। उ० रामबचन सुनि कछुक जुड़ाने। (मा० १।२७७।३) जुड़ाये-१. शीतल हुए, ठंढे हुए, २. शांत किए, ठंढा किए। जुड़ायो-शीतल किया, तृप्त किया, संतुष्ट किया। उ० जरत फिरत त्रयताप-पाप बस काहु न हरि! करि कृपा जुड़ायो। (वि० २४३) जुड़ावइ-ठंढा करे, शांत करे, तृप्त करे। जुड़ावई-दे० 'जुड़ावइ'। जुड़ावउँ-जुड़ाऊँ, जुड़ाऊँगा, ठंढी करूँगा। उ० आजु निपाति जुड़ावउँ छाती। (मा० ६।८३।१) जुड़ावहिं-जुड़ाती हैं, शीतल करती हैं। उ० हृदयँ लगाइ जुड़ावहिं छाती। (मा०१।२६५।३) जुड़ावहु-शांत करो, ठंढा करो, तृप्त करो। उ० मागहु आजु जुड़ावहु छाती। (मा० २।२२।३) जुड़ावा-शीतल किया, ठंढा किया। उ० निज शीतल जल सींचि जुड़ावा। (मा० ४।३।३) जुड़ावै-दे० 'जुड़ावइ'। उ० तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। (मा० ७।११७।७)

जुत-(सं० युक्त)-सहित, समेत, युक्त, पूर्वक। उ० सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। (मा० १।११६०।४)

जुत्थ-(सं० यूथ)-समूह, गोल, मंडली। उ० जुवति जुत्थ महँ सीय सुभाइ बिराजइ। (जा० १५८)

जुद्ध-(सं० युद्ध)-लड़ाई, संग्राम। उ० जुद्ध विरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। (मा० ६।४४।१)

जुन्हैया-(सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा)-चाँदनी, कौमुदी।

जुपै-(सं० यः+पर) यदि जो, परंतु जो। उ० तुलसी जुपै गुमान को होतो कछू उपाउ। (दो० ४६३)

जुबति-दे० 'जुवति'। उ० जग असि जुबति कहाँ कमनीया। (मा० १।२४७।२)

जुबतिन्ह-'जुवतिन्ह'। उ० जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए। (मा० १।२६३।१) जुबतीं-युवतियाँ, स्त्रियाँ। उ० जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। (मा० १।२२०।२) जुबती-दे० 'जुवती'। उ० पुत्रवती जुबती जग सोई। (मा०२।७५।१)

जुबराज-दे० 'जुवराज'। उ० १. आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु। (मा० २।१)

जुबराजा-दे० 'जुवराज'। उ० २. पुनि सकोप बोलेउ जुब-राजा। (मा० ६।३३।२)

जुबराजु-दे० 'जुवराज'। उ० ३. नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। (मा० २।२।४)

जुबराजू-दे० 'जुवराज'। उ० १. नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। (मा० २।४।१)

जुबा-दे० 'जुवा'। उ० नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। (मा० १।६६।१)

जुबान-दे० 'जुवान'। उ० १. बाल जुबान जरठ नर-नारी। (मा० १।२४०।३)

जुबानू-दे० 'जुवान'। उ० १. सरिस स्वान मघवान जुबानू। (मा० २।३०२।४)

जुर-(सं० ज्वर)-ज्वर, बुख़ार, ताप। उ० जोबन जरत जुर परै न कल कहीं। (क० ७।६८)

जुरइ-(सं० युक्त, हि० जुटना)-जुड़ती, मिलती, प्राप्त होती। उ० चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी। (मा० १।८।४) जुरन-(सं० युक्त)-जुटने, इकट्ठा होने। उ० चढ़ि-चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। (मा० १।२६६) जुरि-एकत्र होकर, इकट्ठा होकर। उ० गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं। (क० १।१७) जुरिहि-१. जुड़ जायगा, एक होगा, २. प्राप्त होगा, मिल जायगा। उ० १. टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। (मा० १।२७७) २. गिरिजा-जोग जुरिहि बर अनुदिन लोचहिं। (पा० १०) जुरी-१. जुड़ी, जुटी, संबद्ध हुई, २. मिली, प्राप्त हुई। उ० १. तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं। (वि० २५८) जुरे-इकट्ठे हुए, एकत्र हुए हैं। उ० परब जोग जनु जुरे समाजा। (मा० १।४१।४)

जुराना-दे० 'जुड़ान'।

जुवति-(सं० युवति) जवान स्त्री, नवयुवती। उ० जोबन-जर जुवती-कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन-बाय। (वि० ८३)

जुवतिन्ह-युवतियाँ, जवान स्त्रियाँ। उ० जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो। (रा० ३) जुवती-(सं० युवती) युवती, स्त्री। उ० उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक-सोभा सार सो। (पा० १६४)

जुवराज-(सं० युवराज)-१.राजकुमार, राजा का वह लड़का जो राज्य का अधिकारी होता है। गद्दी का अधिकारी, २. अंगद, ३. युवराज-पद।

जुवा (१)-(सं० युवा)-जवान, नवयुवक। उ० गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं। (क० १।१७)

जुवा (२)-(सं० द्यूत)-दे० 'जुआ (२)'।

जुवान-(सं० युवन्)-१. जवान और कामी युवक, २. सिपाही।

जुवारि-(सं० यवाकार)-ज्वार, एक अन्न। उ० बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि जव धान। (गी० १।२)

जुवारी (१)-(सं० द्यूत, हि० जुआ)-जुआ खेलनेवाला।

जुवारी (२)-(हि० ज्वार)-बढ़ना, समुद्र या नदी की बाढ़ या साँस।

जुहार-(सं० अवहार)-दंडवत, सलाम, बंदगी।

जुहारत-जुहार करते हैं, अभिवादन करते हैं। उ० भाँति-भाँति उपहार लेइ, मिलत जुहारत भूप। (प्र० ६।२।७)

जुहारी-(सं० अवहार)-सहायता, मदद। उ० ज्यों हरि रूप सुतहिं तें कीन जुहारी आनि। (दो० ५३६)

जू-[दे० जी (२)]-१. जी, एक आदर सूचक शब्द जो नाम के पीछे लगाया जाता है, २. आदरसूचक संबोधन का शब्द। कभी कभी कविता में पादपूर्ति के लिए भी इसका प्रयोग होता है। उ० २. एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू। (क० २।६)

जूआ (१)-(सं० द्यूत)-दे० 'जुआ (१)'।

जूआा (२)–(सं० युत)–दे० 'जुआ (२)'।
जूझ–(सं० युद्ध)–लड़ाई, युद्ध। उ० परपुर बाद-बिबाद-जय, जूझ जुआजय जानि। (प्र० २।४।२)
जूझा–१. युद्ध, लड़ाई, २. लड़ गया, ३. मारा गया। उ० १. करब कवन बिधि-रिपु सैं जूझा। (मा०६।८।४) जूझिबे–युद्ध करने, लड़ने, लड़ाई करने। उ० आपनि सूझि कहौं, पिया बूझिए, जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे। (क० ६।२८) जूझिबो–जूझना, युद्ध करना। उ० कै जूझिबो कै बूझिबो, दान कि काय-कलेस। (दो० ४२१) जूझे–१. जूझ मरे, लड़ मरे, २. लड़ने, लड़ाई करने। उ० २. जूझे सकल सुभट करि करनी। (मा० १।१७५।३) २. जूझे ते भल बूझिबो, भली जीति तें हारि। (दो० ४३१) जूझै–१. जूझने, लड़ने, २. युद्ध करे, लड़े, ३. लड़ मरे। उ० १. पुनि रघुपति सैं। जूझै लागा। (मा० ६।७३।५) जूझ्यो–युद्ध किया। उ० इन्हमें न एकौ भयो, बूझि न जूझ्यो न जयो।(वि० २५२)
जूट–(सं०)–१. लट, जटा, २. जटा की गाँठ, ३. समूह, ४. पटसन, ५. पटसन का कपड़ा। उ० ३. शिरसि संकुलित कल जूट पिंगल जटा-पटल शत कोटि विद्युच्छटाभं। (वि० ११) जूटेन–समूह से। उ० राजीवायत लोचनं धृत जटाजूटेन संशोभितं। (मा० ३।१। श्लो० २)
जूठनि–(सं० जुष्ठ)–जूठा, भोजनादि करने के बाद बचा भाग, गुरु तथा पिता आदि मान्यों का जूठा। उ० तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो। (गी० ५।३०)
जूठा–जूठ, उच्छिष्ट। दे० 'जूठनि'।
जूड़ी–(सं० जाड्य)–एक प्रकार ज्वर जिसमें पहले रोगी को जाड़ा लगता है, और वह काँपने लगता है। उ० स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई। (मा० ७।४०।१)
जूड़े–१. शीतल, ठंढा, २. प्रसन्न। उ० २. जूड़े होत थोरे हीं थोरे गरम। (वि० २४६)
जूथ–(सं० यूथ) १. दल, समूह, झुंड, २. सेना। उ० २. लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। (मा० ७।३०।३)
जूथप–(सं० यूथप)–सेनापति, समूह के स्वामी। उ० कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ। (मा० ५।३४)
जूथा–दे० 'जूथ'। उ० १. राम बचन सुनि बानरजूथा। (मा० ५।४६।१)
जून (१)–(सं० द्युवन्=सूर्य)–समय, काल।
जून (२)–(सं० जूर्ण)–तृण, तिनका। उ० का छति लाभु जून धनु तोरें। (मा० १।२७२।१)
जून (३)–(सं० जीर्ण)–पुराना।
जूरा–दे० 'जूरी (१)'।
जूरी (१)–(सं० युक्त)–१. इकट्ठा कर, जोड़कर, २. समूह, ३. गुच्छा, मुट्ठा। उ० १. कंद मूल फल अंकुर जूरी। (मा० २।२५०।१)
जूरी (२)–दे० 'जूड़ी'।
जूह–(सं० यूथ)–समूह, झुंड। उ० एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह। (मा० ६।६६)
जूहा–दे० 'जूह'। उ० पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा। (मा० ४।१६।२)
जेंइय–(सं० जेमन)–भोजन कीजिए।
जेंवरी–(सं० जीवां)–रस्सी, डोरी। उ० बूड़ो मृगबारि, खायो जेंवरी को साँप रे! (वि० ७३)
जेंवाइ–भोजन कराकर, खिलाकर। उ० बिप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना। (मा० २।१२६।४) जेंवाइय–भोजन कराइए, जिमाइए। उ० पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भगति-सुधा सुनाज। (वि० २१६)
जे–(सं० ये)–'जो' का बहुवचन, जो लोग, जिन्होंने। उ० जे कछु समाचार सुनि पावहिं। (मा० २।१२२।१)
जेइँ–(सं० जेमन)–भोजन कर, खाकर। उ० जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह। (पा० १५४) जेई (१)–(सं० जेमन)–खाया, भोजन किया। जेवँइ–जीमेगा, भोजन करेगा, भोजन करे। उ० पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ। (मा० १।१६८।४) जेवँत–जीमते, भोजन करते। उ० नारि बृंद सुर जेवँत जानी। (मा० १।६६।४)
जेइ–जिसने भी, जिस किसी ने भी।
जेई (२)–(सं० ये)–जो, जो ही। उ० बूड़हिं आनहिं बोरहिं जेई। (मा० ६।३।४)
जेउ–दे० 'जेऊ'। उ० जेउ कहावत हितू हमारे। (मा० १। २५६।१)
जेऊ–(सं० ये)–जो भी, जो। उ० जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। (मा० १।२२।२)
जेठ–(सं० ज्येष्ठ)–बड़ा, जेठा। उ० राजधनी जो जेठ सुत आही। (मा० १।१५३।३) जेठि–अवस्था में बड़ी स्त्रियाँ, वृद्धाएँ। उ० कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो। (रा० ६) जेठे–१. बड़े, उम्र में बड़े, २. अग्रज, ३. सबसे अच्छा। उ० १. जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। (मा० १। १५३।४)
जेतनेहि–(सं० यः)–१. जितने की, २. जितना ही। उ० १. बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज। (मा० ७।२३)
जेता (१)–(सं० जेतृ)–जीतनेवाला, विजयी। उ० महानाटक-निपुन, कोटि-कबिकुल-तिलक, गान गुन-गर्ब-गंधर्व-जेता। (वि० २६)
जेता (२)–(सं०यः)–जितना। उ० कहि न जाइ उर आनँदु जेता। (मा० १।३२३।२) जेते–(सं० यः)–जितने, जो जो। उ० रघुपति चरन उपासक जेते। (मा० १।१८।२)
जेन–(सं० येन)–जिससे। उ० जेन केन बिधि दीन्हें, दान करइ कल्यान। (मा० ७।१०३)
जेर–(फ़ा० ज़ेर)–१. परास्त, पराजित, २. जो बहुत परेशान किया गया हो।
जेरो–(फ़ा० ज़ेर)–ज़ेर किया है, वशीभूत किया है, जीत लिया है। उ० नाम-ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो। (वि० १४६)
जेवनार–(सं० जेमन)–१. भोज, बहुत से आदमी का साथ खाना, दावत, २. भोजन, रसोई। उ० २. मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेवनार। (मा० १।१६८)
जेवनारा–दे० 'जेवनार'। उ० २. भाँति अनेक भई जेवनारा। (मा० १।६६।२)
जेवाँए–खिलाया, भोजन कराया। उ० पूजि भली बिधि भूप जेवाँए। (मा० १।३५२।२)

जेहिं-(सं० यस्)-१. जिनको, २. जिन्होंने, ३. जिनके, ४. जिनसे, ५. जिनके कारण, ६. जिनमें, ७. जिन, ८. जिन्हें। उ० २. पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान। (मा० १।७१) जेहि-(सं० यस्)-१. जिसको, २. जिसने, ३. जिसके, ४. जिससे, ५. जिसके कारण, ६. जिसमें, ७. जिस, ८. जिसे। उ० १. लहत परमपद पय पावन जेहि, चहत प्रपंच-उदासी। (वि० २२) जेहि-तेहि-१. जिसको तिसको, २. जिस किसी, जिस किसी भी। उ० २. राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती। (मा० २। ३४।४)

जेहीं-दे० 'जेहिं'। उ० २. बिरचत हंस काग किय जेहीं। (मा० १।१७५।१)

जेही-दे० 'जेहि'। उ० ८. राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही। (मा० १।३६।३)

जै (१)-(सं० जय)-१. जीत, विजय, २. किसी की जय जताने या जय की शुभ कामना करने का शब्द। जय-जय। ३. देवताओं या बड़ों के लिए स्तुतिसूचक शब्द। उ० २. बारहिं बार सुमन बरषत, हिय हरषत कहि जै जै जई। (गी० ५।३७)

जै (२)-(सं० यः)-जितने, जिस संख्या में।

जैति-(सं० जयति)-१. विजय, जीत, २. विजयी, जय-प्राप्त।

जैसा-(सं० यादृश, प्रा० जारिस, पैशाची प्रा० जइस्सो)-जिस प्रकार का, जिस तरह का, जैसे। उ० निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा। (मा० ४।१५।१) जैसी-जिस प्रकार की। 'जैसा' का स्त्रीलिंग। उ० मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। (मा० १।११।१) जैसें-दे० 'जैसे'। उ० साक बनिक मनि गुन गन जैसें। (मा० १।३।६) जैसे-जिस प्रकार से, जिस ढंग से। उ० जैसे हो तैसे सुखदायक ब्रजनायक बलिहारी। (कृ० ६) मु० जैसे-तैसे-किसी भी तरह, जिस किसी प्रकार। जैसेउ-जिस प्रकार से भी। जैसेहिं-जैसे भी। उ० जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। (मा० ७।३।४) जैसेहु-दे० 'जैसेउ'। उ० तुलसी जो रामहिं भजै, जैसेहु कैसेहु होइ। (वै० ३६) मु० जैसेहु-कैसेहु-जिस किसी भी तरह से। जैसे भी। उ० दे० 'जैसेहु'।

जैसो-जैसा, जिस तरह का। उ० प्रेम लखि कृष्ण किए आपने तिनहूँ को, सुजस संसार हरि हर को जैसो। (वि० १०६) मु० जैसो-तैसो-भला बुरा, जैसे भी या जैसा भी। उ० स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो तैसो। (वि० २५३)

जौं (१)-(सं० यदि, हि० ज्यों)-१. जैसे, जिस प्रकार, २. यदि जो, ३. जिससे कि।

जौं (२)-(सं० यः)-१. जिस, २. जिसको, ३. जिसमें।

जोंक-(सं० जलौका)-पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो चिपककर खून चूसता है। इसमें हड्डी नहीं होती। जलूका। उ० चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान। (मा० २।४२)

जो (१)-(सं० यदि)-अगर, यदि। उ० जो तोसों होतौ फिरौं मेरो हेतु हिया रे। (वि० ३३)

जो (२)-(सं० यः)-१. जो कुछ, जौन, २. जो व्यक्ति, ३. जिस, ४. जिससे। उ० १. मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि० ३३)

जोइ (१)-(सं० जाया)-जोरू, स्त्री, पत्नी।

जोइ (२)-(सं० जुषण, हि० जोवना)-१. देखकर, ताककर, २. देख, देखो। उ० २. जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपञ्च जिय जोइ। (दो० २४७) जोइये-(सं० जुषण)-देखिए, भली भाँति समझिए। उ० जाने जानन जोइये, बिनु जाने को जान? (दो० ६८) जोइहि-१. देखेगी, २. प्रतीक्षा करेगी। उ० १. जननी जिअत बदन बिधु जोइहि। (मा० २।६८।४) जोई (१)-१. देखा, निहारा, २. खोजा, ढूँढ़ा। उ० १. भरी क्रोध-जल जाइ न जोई। (मा० २।३४।१) जोऊ (१)-१. देखो, २. खोजो, ३. देखनेवाले। जोए-१. देखे, २. देखने पर, देखकर। उ० १. खग मृग हय गय जाहिं न जोए। (मा० २।१५८।४)

जोइ (३)-(सं० यदि)-ज्यों, जैसे।

जोइ (४)-(सं० यः)-१. जो भी, जो कुछ भी, २. जिसने, जो, जिस। उ० २. तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै। (वि० १०२)

जोई (२)-(सं० यः)-१. जो, जो भी, २. वही।

जोउ (१)-दे० 'जोऊ (२)'। उ० १. एकु छत्रु एकु मुकुट मनि सब बरननि पर जोउ। (मा० १।२०)

जोउ (२)-दे० 'जोऊ (१)'।

जोऊ (२)-(सं० यः)-जो, जो भी। उ० भनिति बिचित्र सुकबिकृत जोऊ। (मा० १।१०।२)

जोख-(सं० जुष)-तौल, जोखने या तौलने का भाव। उ० तुलसी प्रेमपयोधि की ताते नाप न जोख। (दो० २८१)

जोखे-जोखा, तौला, जाँचा। उ० बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं। (गी० १।६३)

जोग (१)-(सं० योग)-१. योग, संयोग, अवसर, २. चित्तकी वृत्तियों को चंचल होने से रोकना और उसे एक ही वस्तु (ईश्वर) पर स्थिर करना। पतंजलि के अनुसार योग के ८ अंग हैं। दे० 'योग'। ३. मिलन, संयोग, ४. तप, तपस्या, ५. धन कमाना, ६. उपाय, युक्ति, ७. प्राप्त धन, शक्ति या अधिकार। ८. फलित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट काल या अवसर। उ० २. सदगुर ग्यान बिराग जोग के। (मा० १।३२।२) ४. जोग भोग महँ राखेउ गोई। (मा० १।१७।१) ७. जाय जोग जगछेम बिनु, तुलसी के हित राखि। (दो० ४७२) ८. मास पाख तिथि जोग सुभ, नखत लगन ग्रह बार। (प्र० ४। १।६) जोगछेम-(सं० योगक्षेम)-१. जो वस्तु अपने पास न हो उसे प्राप्त करना और जो हो उसकी रक्षा करना। २. कुशल-मंगल, ख़ैरियत। उ० २. निज निज बेद की सप्रेम जोग-छेम-मई, मुदित असीस बिप्र बिदुषनि दई है। (गी० १।६४) जोगपति-(सं० योगपति)-योग के स्वामी। शिव। उ० अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस, जोगपति। (क० ७।१५१) जोगविद-(सं० योगविद) योग के ज्ञाता, योग का जाननेवाला। उ० जे सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगबिद बेदपुरान बखाने। (वि० २३६)

जोग (२)–(सं० योग्य)–लायक, योग्य, उचित। उ० जथा जोग जेहि भाग बनाई। (मा० १।१८६।४)
जोगवइ–(सं० योग)–देख-भाल करते हैं, रखवाली करते हैं। उ० जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ। (मा० २।२०-१।१) जोगवत–१. रखवाली करता, रखवाली करते हुए, २. रखवाली करता है, ३. संचित करता है, ४. आदर करता है, ५. जाने देता है, दर गुज़र करता है, ६. पूरा करता है, ७. देखता रहता है। उ० १. जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। (मा० २।५९।३) ७. मन जोगवत रह नृपु रनिवासू। (मा० १।३५२।४) जोगवति–आज्ञा की प्रतीक्षा किया करती, रुख देखती। उ० सिद्ध सची सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा सी। (वि० २२) जोगवहिं–सार-सँभार करते हैं, देख-रेख करते हैं। उ० जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाई। (मा० २।६१।३) जोगवैं–रक्षा करते हैं। उ० नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित रिपु परि जन महतारी। (गी० १।६७)
जोगि–दे० 'जोगिनि'। उ० ३. बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै। (मा० १।९३।छं० १)
जोगिनि–(सं० योगिनी)–१. जोगी की स्त्री, २. विरक्त स्त्री, साधुनी, ३. पिशाचिनी, शिव के गणों की स्त्रियाँ, ४. एक प्रकार की रण-देवी। उ० ३. सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा। (मा० १।९५।छं०१)
जोगी (१)–(सं० योगी)–१. जो यौगिक क्रियाएँ करता हो, योगी, २. एक प्रकार के भिक्षुक जो सारंगी लेकर गाते-बजाते और भीख माँगते हैं। इनके कपड़े गेरुए रंग के होते हैं। ३. शिव, महादेव। उ० २. नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। (मा० १।२२।१)
जोगी (२)–(सं० योग्य)–कुशल, योग्य, लायक। उ० बिनु बानी बकता बड़ जोगी। (मा० १।११८।३)
जोगीस–(सं० योगीश)–१. योगीश्वर, शिव, महादेव, २. महान योगी। उ० १. अर्ध-अंग-अंगना, नाम जोगीस जोगपति। (क० ७।१५१) जोगीसनि–योगीश्वरों को, महान योगियों को। उ० ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनि हूँ। (वि० २४६)
जोगु (१)–दे० 'जोग (१)'।
जोगु (२)–दे० 'जोग (२)'। उ० जोगु जानकिहि यह बरु अहई। (मा० १।२२२।१)
जोगू (१)–दे० 'जोग (१)'।
जोगू (२)–दे० 'जोग (२)'। उ० जौं न मिलिहि बरु गिरि-जहि जोगू। (मा० १।७१।३)
जोजन–(सं० योजन)–दूरी की एक नाप जो कुछ लोगों के मत से दो कोस, कुछ के मत से चार कोस और कुछ लोगों के मत से आठ कोस की होती है। उ० ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत। (मा० ७।११३ ख)
जोट–दे० 'जोटा'।
जोटा–(सं० योटक)–१. जोड़ा, युग, २ बराबरी के, बराबर। उ० १. बाल मरालन्हि के कल जोटा। (मा० १।२२१।२)
जोड़ा–(सं० योटक)–दे० 'जोटा'।
जोत–दे० 'जोति'।
जोति–(सं० ज्योति)–१. प्रकाश, ज्योति, किरण, २. दीपक की लौ, ३. सूर्य। उ० १. अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन। (मा० १।२३८)
जोतिर्लिंग–(ज्योतिर्लिंग)–महादेव, शिव। शिव पुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, तब वे घबराकर कमलनाभ पर इधर उधर घूमने लगे। विष्णु ने उन्हें बतलाया कि तुम सृष्टि बनाने के लिए उत्पन्न किए गए हो। इसे पर ब्रह्मा बिगड़े और दोनों में युद्ध हुआ। झगड़ा निपटाने के लिए शिव का ज्योति लिंग रूप उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा और विष्णु उसके चारो ओर घूमते रहे पर उसके अंत का पता न चला।
जोतिलिंग–दे० 'जोतिर्लिंग'। उ० जोतिलिंग कथा सुनि जाको अंत पाए बिनु। (गी० १।८४)
जोतिष–दे० 'ज्योतिष'।
जोती (१)–दे० 'जोति'। उ० १. श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। (मा० १।१।३)
जोती (२)–(?)–जोती हुई ज़मीन।
जोती (३)–(?)–घोड़े की रास, लगाम।
जोते–भूमि पर हल चलाए, खोदकर बोने के लिए भूमि तैयार किए। उ० जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए बिनु। (गी० २।३२) जोतो–१. जोता हुआ, २. जोते, हल चलाए। उ० २. तेरे राज राय दसरथ के लयो बयो बिनु जोतो। (वि० १६१)
जोधा–(सं० योद्धृ)–वह जो युद्ध करता हो, लड़ाका, वीर। उ० कहु जग मोहि समान को जोधा। (३।२६।१)
जोनि–(सं० योनि)–१. आकर, खानि, उत्पत्तिस्थान, २. स्त्रियों की जननेंद्रिय, भग, ३. प्राणियों के विभाग या जातियाँ जो पुराणों के अनुसार कुल ८४ लाख हैं। इनमें ४ लाख मनुष्य, ३० लाख पशु, १० लाख पक्षी, ११ लाख कृमि, २० लाख स्थावर और ९ लाख जलजंतु हैं। ४. कारण, ५. उत्पन्न। उ० ३. जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। (मा० २।२४।३)
जोनी–दे० 'जोनि'। उ० ५. गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। (मा० २।२३२।१)
जोपि–दे० 'जोपै'।
जोपै–(सं० यः+परम्)–यदि, अगर, यदि जो। उ० जोपै अलि अंत इहै करिबे हो। (कृ० ३६)
जोबन–(सं० यौवन)–जवानी, युवावस्था, यौवन। उ० जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। (मा० ७।७१।१)
जोबनु–दे० 'जोबन'। उ० १. उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो। (रा० ५)
जोय–(सं० जाया)–स्त्री, जोरू, पत्नी। उ० तुलसी बिना उपासना बिनु दुलहे की जोय। (स० ३६)
जोर (१)–(फा० ज़ोर)–१. बल, शक्ति, २. प्रबलता, तेज़ी, ३. वश, अधिकार, ४. आवेश, वेग, झोंक, ५. भरोसा, आसरा, सहारा, ६. परिश्रम, मेहनत, ७. कसरत, व्यायाम, ८. तेज़, ऊँचा, ९. ज़ुल्म, ज़बरदस्ती, १०. ज़ोरों से। उ० ८. कुलिस कठोर तनु, जोर परै रोर रन। (ह० १०)
जोर (२)–(सं० योटक) जोड़, बराबरी, समानता। उ० तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहद रावरे जोर को हौं। (वि० २२६)

जोरत-१. जोड़ते हैं, १. जोड़ते हुए। जोरि-(सं० युक्त) १. सम्मिलित कर, २. मिलाकर, जोड़कर। उ० २. जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति। (मा० १।४) जोरिअ-जुड़वा दिया जाय। उ० जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई। (मा० १।२७८।२) जोरी (१)-(सं० युक्त) १. जोड़ दी, २ जोड़ कर। उ० २. पुनि सबही बिनवउँ कर जोरी। (मा०१।३४।१) जोरें-१. जोड़कर २. जोड़ दिए, जोड़ा। उ० १. करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें।। (मा० १।१०६।३) जोरे (१)-(सं० युक्त) १. जोड़ा, एकत्र किया, २. जूता। उ० १. जोरे नए नाते नेह फोकट फीके। (वि० १७६)

जोरा (१)-दे० 'जोर (१)'।

जोरा (२)-(सं० युक्त) जोड़ा, पहिनने के सब वस्त्र। उ० दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो। (रा० ६)

जोरिहि-जोड़ी से, अपने बराबर से। उ० भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। (मा० ६।५३।२) जोरी (२)-(सं० योटक)-१. जोड़ी, बराबर बल उम्र या ज्ञान का व्यक्ति, २. दो बराबर के आदमी, ३. बर-बधू, पति-पत्नी। उ० १. भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। (मा० ६।५३।२) ३. जोरी चारि निहारि असीसत निकसहिं। (जा० २१५)

जोरे (२)-(सं० योटक)-जोड़े, युग्म, दो-दो के जोड़े। उ० तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि, राज हंस से जोरे। (गी० २।८६)

जोलहा-(फ़ा० जौलाह)-जुलाहा, कपड़ा बुननेवाली एक जाति जो मुसलमान होती है। तंतुवाय। उ० धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ। (क० ७।१०६)

जोवत-(सं० जुषण)-देखते, प्रतीक्षा करते, ताकते। उ० तुलसिदास रघुनाथ-कृपा को जोवत पंथ खरयो। (वि० २३१) जोवन-देखने, ढूढ़ने। उ० यहि भाँति ब्याहु समाजु सजि गिरिराजु मगु जोवन लगे। (पा० ११) जोवहिं-देखती हैं, देखा करती हैं। उ० नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं। (पा० ५६) जोवहू-देखते हो। उ० मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवहू। (जा० ७२) जोवा-१. देखा हुआ, २. देखा, ३. खोजा, ढूँढा। उ० २. कहत न बनइ जान जेहिं जोवा। (मा० १।३५६।२) जोवो-देखो।

जोषित-दे० 'जोषिता'। उ० अधम जाति सबरी जोषित जड़ लोक बेद तें न्यारी। (वि० १६६)

जोषिता-(सं०)-स्त्री, नारी। उ० जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। (मा० १।११०।१)

जोषे-(सं० जुष)-तौला, जाँचा। उ० तुला पिनाक साहु नृप, त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोषे। (गी० ५।१२)

जोसि-(सं०) जो हैं, जो हों। उ० जोसि सोसि तव चरन नमामी। (मा० १।१६१।३)

जोहइ-(सं० जुषण)-१. देखते हैं, देखा करते हैं। २. देखता था, ३. देखा है। उ० १. तिरछी चितवनि आनँद मुनि मुख जोहइ हो। (रा० १४) जोहन-देखने के लिए, देखने। उ० सुनत चले हिय हरषि नारि नर जोहन। (पा० १२६) जोहा-१. देखा, २. देखा हुआ। उ० २. सब हमार प्रभु पग पग जोहा। (मा० २।१३६।३) जोहि-दे० 'जोही'। उ० २. और प्रकार उबार नहीं कहुँ मैं देख्यों जगु जोहि। (गी० ६।१) ४. जोहि जातुधान-सेना चले लेत थाह सी। (क० ६।४३) जोही-(सं० जुषण)-१. पहिचानी, खोजी, २. खोजकर, ३. देखी, ४. देखकर, ५. देखिए, ६. देखा है। उ० २. उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही। (मा० २।१२३।२) जोहे-देखने पर। उ० लंक जरी जोहे जिय सोच सो बिभीषन को। (क० ७।२२) जोहेउ-देखा। उ० रामहिं भाइन्ह सहित जबहिं मुनि जोहेउ। (जा० २०) जोहैं-१. देखते हैं, २. देखने से। उ० १. मंजुल मुकतावलि जुत जागति जिय जोहैं। (गी० ७।४) जोहै-१. देखने पर, २. देखो, देख, ३. देखे, ४. खोजने पर, ५. खोजो। उ० २. जागु जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी। (वि० ७३) ३. बिरद गरीब-निवाज कौन की भौंह जासु जन जोहै? (वि० २३०)

जोहार-(सं० जुषण)-अभिवादन, प्रणाम, नमस्कार।

जोहारत-प्रणाम करते हैं। उ० सीय सहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरष हिए। (गी० ६।२३) जोहारन-प्रणाम करने, नमस्कार करने। उ० पुरजन द्वार जोहारन आए। (मा० १।३५८।३) जोहारहिं-जोहार करके, वंदना करके। उ० पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गँवहिं जोहारहिं जाहिं। (मा० २।११८) जोहारि-१. प्रणाम करते हुए, वंदना करते हुए, २. प्रणाम करके। उ० १. प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। (मा० २।१३५।४) २. फेरे फिरे जोहारि जोहारी। (मा० २।३२१।१) जोहारी-प्रणाम करके, वंदना करके। उ० फेरे फिरे जोहारि जोहारी। (मा० २।३२१।१) जोहारे-प्रणाम किया। उ० पुरबासिन्ह तब राय जोहारे। (मा० १।३४८।३)

जोहारु-दे० 'जोहार'। उ० पुरजन करि जोहारु घर आए। (मा० २।८६।३)

जौं (१)-दे० 'जों (१)'। उ० १. जौं बालक कह तोतरि बाता। (मा० १।८।४) ३. जौं बिधि कुसल निबाहै काजू। (मा० २।१०।२)

जौं (२)-दे० 'जों (२)'।

जौ (१)-दे० 'जो (१)'। उ० १. जौ कोइ कोप भरै मुख बैना। (वै० ४६)

जौ (२)-दे० 'जो (२)'।

जौ (३)-(सं० यव)-एक अन्न, जव।

जौन (१)-(सं० यः)-जो, जो कोई, २. जिस। उ० १. तुम्हरे बिरह भई गति जौन। (गी० ५।२०)

जौन (२)-(सं० यवन)-म्लेच्छ, मुसलमान।

जौनार-(सं० जेमन)-१. भोजन, रसोई, २. भोज, दावत।

जौपै-(सं० यः + परम्)-अगर, यदि।

जौबन-(सं० यौवन)-१. जवानी, युवावस्था, २. जवानी में। उ० २. जौबन जुवति-सँग रंग रात्यो। (वि० १३६)

ज्ञ-(सं०)-१. ज्ञान, बोध, २. ज्ञानी, जाननेवाला, पंडित, ३. ब्रह्मा, ४. बुध ग्रह।

ज्ञात-(सं०)-१. विदित, जाना हुआ, २. ज्ञान।

ज्ञाता-(सं० ज्ञातृ)-जाननेवाला, जानकार। उ० गंभीर

गर्वघ्न गूढ़ार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता। (वि० ५४)

ज्ञाति–(सं०)–१. एक ही गोत्र या वंश के मनुष्य, बिरादरी, भाई-बंधु, २. वर्ण, कौम।

ज्ञान–(सं०)–१. ज्ञात होने का भाव, बोध, जानकारी, प्रतीति, २. आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, विवेक, चैतन्यता, ३. पहचान। उ० २. लियो रूप दै ज्ञान-गाँठरी भलो ठग्यो ठगु ओही। (कृ० ४१) ३. ज्ञान अनभले को सबहि, भले भले हू काउ। (दो० ३४५) ज्ञानदा–(सं०)–ज्ञान देनेवाली, सरस्वती। ज्ञानप्रद–(सं०)–ज्ञानदाता। ज्ञानप्रदे–हे ज्ञान देनेवाली। उ० स्वर्ग सोपान, विज्ञान-ज्ञानप्रदे! (वि० १८) ज्ञानव्रत–ज्ञान ही जिसका व्रत हो, ज्ञान की खोज में व्यस्त। उ० जयति काल-गुन-कर्म-माया-मथन निश्चल ज्ञानव्रत, सत्यरत धर्मचारी। (वि० २६) ज्ञानहूँ–ज्ञान भी, तत्त्व ज्ञान भी। उ० ज्ञानहूँ गिरा के स्वामी बाहर-भीतर-जामी। (वि० २६३) ज्ञानातीत–(सं०)–ज्ञान से परे, जहाँ तक ज्ञान न पहुँच सके। ब्रह्म।

ज्ञानवंत–ज्ञानी, ज्ञानवान। उ० ज्ञानवंत अपि सोइ नर पसु बिनु पूँछ बिखान। (दो० १३८)

ज्ञानवान–(सं०)–ज्ञानी, जिसे ज्ञान प्राप्त हो।

ज्ञानशाली–ज्ञानी, ज्ञानवाला।

ज्ञानी–(सं० ज्ञानिन्)–ज्ञानवान, जिसे ज्ञान हो। उ० त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी। (वि० ६३)

ज्ञापक–(सं०)–जनानेवाला, ज्ञान करानेवाला, सूचक।

ज्ञेय–(सं०)–१. जानने योग्य, २. जिसका जानना संभव हो। उ० १. ज्ञेय ज्ञानप्रिय प्रचुर गरिमागार घोर-संसार-परपार-दाता। (वि० ५४)

ज्याइए–जीवित रखिए। उ० ज्याइए तौ जानकी-रमन जन जानि जिय। (क० ७।१६७) ज्याए–दे० 'ज्याये'। उ० १. सुक सारिका जानकीं ज्याए। (मा० १।३३८।१) ज्यायबे–जिलाने, जीवित करने। उ० मीच मारिबे को, ज्यायबे को सुधापान भो। (ह० ११) ज्याये–जिलाए थे, पाल रक्खे थे, २. जिलाने से, पालने से, ३. पाल-पोसकर बड़ा किया। ज्यायो–जिलाया, रक्षा की। उ० को को न ज्यायो जगत में जीवन-दायक दानि। (दो० २६१)

ज्यों–(सं० यः+इव)–१. जिस प्रकार, जिस तरह, २. जैसे, तरह, ३. जिससे। उ० १. रहे नर नारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं। (क० २।१४) ज्यों त्यों–जैसे तैसे, जिस किसी भी प्रकार से। उ० ज्यों त्यों मन-मंदिर बसहिं राम धरे धनु बान। (दो० ६०) ज्योंहीं–१. जैसे ही, २. जैसे भी। उ० १. बूझ्यो ज्योंहीं, कह्यो मैं हूँ चेरो ह्वै हौं रावरो जू। (वि० ७६)

ज्योति–(सं० ज्योतिस्)–१. प्रकाश, उजाला, २. आग की लपट, लौ, ३. सूर्य, ४. नक्षत्र, ५. आँख का मध्यबिंदु, ६. दृष्टि, ७. ज्ञान, ८. विष्णु, ९. परमात्मा। उ० १. सुभग अँगुष्ठ अंगुली अबिरल, कछुक अरुन नख-ज्योति जगमगति। (गी० ७।१७)

ज्योतिष–(सं०)–वह शास्त्र या विद्या जिससे आकाश में स्थित ग्रहों तथा नक्षत्रों आदि की दूरी गति तथा परिणाम आदि का निश्चय किया जाता है। ज्योतिष के गणित और फलित दो भेद होते हैं।

ज्योतिषु–दे० 'ज्योतिष'। उ० ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ। (मा० २।११२।३)

ज्वर–(सं०)–१. बुख़ार, जर, एक रोग जिसमें शरीर गर्म रहता है। २. गर्मी, उष्णता, जलन। उ० २. जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। (मा० ७।७१।१)

ज्वाल–(सं०)–लपट, अग्निशिखा, आँच। उ० बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं। (क० ५।५)

ज्वाला–(सं०)–१. लपट, लौ, ज्वाल, अग्नि, २. गर्मी, जलन, ३. तक्षक की पुत्री ज्वाला जिससे ऋक्ष ने विवाह किया था। उ० १. रबि-रुख लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वाला जाल। (दो० ३७५)

ज्वै–(सं० यः)–१. जो कुछ, २. जिसे। उ० २. विनय बिवेक विद्या सुभग सरीर ज्वै। (क० ७।१६३)

झ

झँई–दे० 'झइँ'।

झँगा–(?) छोटे बच्चों को पहिनने का ढीला कुरता। उ० नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये। (क० १।२)

झँगुलिया–दे० 'झँगा'। उ० पीत पुनीत बिचित्र झँगुलिया सोहति स्याम सरीर सोहाए। (गी० १।२६)

झँगूलीं–झँगाओं का समूह, झँगुलियाँ। दे० 'झँगा'। उ० कुलही चित्र-बिचित्र झँगूलीं। (गी० १।२८)

झँगुली–दे० 'झँगा'। उ० उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै। (कृ० १३)

झँझट–(?) व्यर्थ का झगड़ा, बखेड़ा, प्रपंच।

झँडूला–(सं० जट)–गर्भ का घना बाल जो अभी काटा न गया हो, मुंडन संस्कार के पहले का। झँडूले–दे० 'झँडूला'। उ० उर बघनहा कंठ कठुला, झँडूले केस। (गी० १।३०)

झँपेउ–(?) छिप गया, ढँक गया।

झँहिं–दे० 'झइँ'।

झइँ–(सं० क्षर, अ० मा० झर=गिरना) चक्कर, आँख के

आगे अँधेरा । उ० मुरछित अवनि परी झइँ आई । (मा० २।१६४।१)

झकझोरा–(अनु०) १. झटका, धक्का, २. झकझोर दिया, धक्का दिया । उ० १. मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे । (वि० १८६)

झकोर–(अनु०) १. आँधी, अंधड़, तेज़ हवा, २. झटका, झोंका । उ० १.पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि, झकोर खरि खीझि । (दो० २८४)

झख–दे० 'झष' । उ० सज्जन-चख-झख-निकेत, भूषन मनि-गन समेत । (गी० ७।४)

झखकेतू–(सं० झषकेतन) कामदेव । उ० प्रगटेउ बिषम बान झषकेतू । (मा० १।८३।४)

झखराज–दे० 'झषराज' । उ० झखराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलंब कियो न तहाँ । (क० ७।८)

झगर–(अनु० झकझक)–विवाद, लड़ाई, टंटा, बखेड़ा, कलह । उ० नीक सगुन, बिबरिहि झगर, होइहि धरम निआउ । (प्र० ६।६।२)

झगरत–१. झगड़ा करता है, २.झगड़ा करते हुए । उ० २. बग उलूक झगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ । (प्र०६।६।२)

झगरो–दे० 'झगर' । उ० बहुमत सुनि बहुपंथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो । (वि० १७३)

झगराऊ–झगड़ालू, बात बात पर झगड़ा करनेवाला । उ० याहि कहा मैया मुँह लावति, गनति कि लँगरि झगराऊ । (कृ० १२)

झगुलिआ–दे० 'झँगा' । उ० पीत झगुलिआ तनु पहिराई । (मा० १।१९९।६)

झगुली–दे० 'झँगा' । उ० पीत झीनि झगुली तन सोही । (मा० ७।७७।४)

झट–(सं० झटिति) शीघ्र, तुरंत, उसी समय ।

झटित–दे० 'झटिति' ।

झटिति–(सं०)–दे० 'झट' । उ० कटत झटिति पुनि नूतन भए । (मा० ६।९२।६)

झनकार (सं० झंकार)–झन-झन का शब्द, झंकार । उ० नूपुर धुनि, मंजीर मनोहर, कर कंपन-झनकार । (गी० १।२)

झपट–(सं० झंप) झपटने की क्रिया, खींचाखींची, लूट-खसोट । उ० झपट लपट भरै भवन भँडारही । (क० ५।२३)

झपटहिं–झपटते हैं, लपकते हैं, टूट पड़ते हैं । उ० झपटहिं करि बल बिपुल उपाई । (मा० ६।३४।६) झपटि–झपटकर, जल्दी से आगे बढ़कर । उ० इत उत झपटि दपटि कपि जोधा । (मा० ६।८२।३) झपटेउ–झपटा, झपटा हो, टूट पड़ा हो । उ० जनु सचान बन झपटेउ लावा । (मा० २।२९।३)

झयँ–दे० 'झइँ' ।

झपेटे–झपटने पर, धावा करने पर, चपेटने पर । उ० लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के । (क० ६।६)

झब–दे० 'झइँ' ।

झर (१)–(सं०)–१. झड़ी, २. आँच, ताप, लूका, ३. झरना ।

झर (२)–(सं० क्षरण) १. झरते हैं, बहते हैं, २. झड़कर, टूटकर । उ० १. मधुकर पिक बरहि मुखर, सुंदर गिरि निर्झर झर । (गी० २।४४) २. नख दंतन सों भुजदंड बिहंडत, मुंड सो मुंड परे झर के । (क० ६।३५)

झरकत–(सं० झल्लिका)–झलकते हैं, चमकते हैं । उ० चारु पाटि पटी पुरटकी झरकत मरकत भौंर । (गी० ७।१९)

झरत–झड़ रहा है, गिर रहा है । उ० बोलत बचन झरत जनु फूला । (मा० १।२८०।२) झरहिं–झर रहे हैं, बह रहे हैं । उ० झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं । (मा० २।२३६।३) झरि–१. झर झर कर, झड़कर, गिरकर, २. पानी की झड़ी लगाकर, खूब पानी बरसकर । उ० २. पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि झकोर खरि खीझि । (दो० २८४) झरैं–१. झरते हैं, गिरते हैं, २. गिराते हैं, चूते हैं । उ० २. हेरैं न हुँकरि, झरैं फल न रसाल । (गी० ३।६)

झरना–(सं० क्षरण)–सोता, चश्मा, पहाड़ में बहनेवाली पानी की पतली धारें । उ० झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं । (मा० २।२३६।४)

झरावति–(सं० क्षरण)–झरवाती है, मंत्रोपचार करवाती हैं । उ० ताहि झरावति कौसिला, यह रीति प्रीति की हिय हुलसति तुलसी के । (गी० १।१२)

झरोखन्ह–[अनु० झरझर (=वायु बहने का शब्द)+ गौखा (सं० गवाक्ष)] खिड़कियों से, झरोखों से. । उ० लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपति भामिनि । (जा० ८०) झरोखन्हि–झरोखों से । दे० 'झरोखन्ह' । उ० जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं । (मा० १।२२०।२) झरोखा–खिड़की, गवाक्ष, वातायन । उ० इंद्री द्वार झरोखा नाना । (मा० ७।११८।६)

झरोखे–१. खिड़की, २ हृदय का झरोखा, दिल की आँख । उ० २. कालि की बात बालि की सुधि करि समुझिहि ता हित खोलि झरोखे । (गी० ५।१२)

झलक–(सं० झल्लिका)–१. चमक, प्रकाश, आभा, २. चमकती है । उ० १. मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजस-सिसु हाथ । (दो० १६०)

झलकत–चमकता है, झलकता है । उ० झलका झलकत पायन्ह कैसें । (मा० २।२०४।१) झलकनि–झलकना, चमकना । उ० मदन, मोर कै चंद की झलकनि निदरति तनु-जोति । (गी०१।१९) झलकि–झलककर, चमककर । उ० बाल केलि बात बस झलकि झलमलत । (गी० १।१०) झलकैं–१. चमकते हैं, झलकते हैं, २. फबते हैं, सुंदर लगते हैं । उ० १. तनदुति मोरचंद जिमि झलकैं । (गी० १।२८) २. नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये । (क० १।२)

झलका–(सं० ज्वल) छाला, फफोला । उ० झलका झलकत पायन्ह कैसें । (मा० २।२०४।१)

झलकाहीं–झलक रहे हैं, चमक रहे हैं । उ० भाल बिसाल तिलक झलकाहीं । (मा० १।२४३।३)

झलमलत–(अनु० झलमल)–झिलमिला रहे हैं, हिलते

हुए चीण प्रकाश कर रहे हैं। उ० बालकेलि बातबस झलकि झलमलत। (गी० १।१०)

झष-(सं०)-मछली, मत्स्य, मीन। उ० मकर नक्र नाना झष ब्याला। (मा० ६।४।३)

झषकेतु-(सं०झषकेतन) कामदेव। जिसके झंडे पर मछली हो।

झषकेतू-दे० 'झषकेतु'। उ० प्रगटेउ बिषम बान झषकेतू। (मा० १।८३।४)

झषनिकेत-(सं०)-१. जल, २. झील, ३. समुद्र।

झषराज-(सं०)-मगर, ग्राह, घड़ियाल।

झहराने-(अनु० झहराना) शिथिल होकर या लड़खड़ा कर गिरे। झहरावैं-हिलावें, हिलाते हैं, झकझोरते हैं। उ० बालधी फिरावै बार-बार झहरावै, झरैं बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै। (क० ५।१४)

झाईं-(सं० छाया)-१. परछाईं, प्रतिबिंब, २. झलक, छाया, ३. अंधकार, ४. धोखा, छल, ५. प्रतिशब्द, प्रतिध्वनि, ६. रक्तविकार के कारण मुँह पर पड़े धब्बे। उ० १. ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाईं। (मा० ६।१२।३)

झाँकनि-झाँकना, ओट में छिपकर या ऊपर से देखना। उ० झुकनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि नटनि, हठि लरनि। (गी० १।२५) झाँकहिं-(?)-नीचे देखती हैं, ओट में होकर देखती हैं। उ० लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपनि भामिनि। (जा० ८०) झाँकी-झाँका, देखा, निहारा। उ० बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी। (क० ६।४४)

झाँखा-(सं० खिद्यते, प्रा० खिज्जइ, हि० खीजना का विपर्यय)-खीझे, क्रुद्ध और दुखी हुए। उ० एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। (मा० २।३०।१)

झाँझ-(सं० झल्लक) १. एक बाजा, मजीरा, झाल, २. क्रोध, चिड़चिड़ाहट। उ० १. घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार। (गी० १।२)

झाँझि-दे० 'झाँझ'। उ० १. झाँझि मृदंग संख सहनाई। (मा० १।२६३।१)

झाँपेउ-(सं० उत्थापन, हि० ढाँपना)-ढँक लिया, छिपा लिया। उ० झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी। (मा० १।११७।१)

झार (१)-(सं० सर्व, प्रा० सारो, हिं० सारा)-१. सब, कुल, बिल्कुल, २. समूह, झुंड।

झार (२)-(सं०ज्वाला)-१. आग की लौ, लपट, आँच, २. जलन, दाह, ३. चरपरापन, ४. तेज़ी।

झारहीं-(सं० ज्वाला)-झार में, ताप में, ज्वाला में। उ० तात तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं। (क० ५।१५)

झारि (१)-(सं० सर्व)-१. सब, २. समूह।

झारि (२)-(सं० क्षरण)-१. झाड़कर, २. बहता हुआ। उ० २. झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि। (क० ७।१४१) झारौं-झाड़, झाड़ दूँ, साफ करूँ। उ० करौं बयारि बिलंबिय बिटपतर, झारौं हौं चरन-सरोरुह-धूरि। (गी० २।१३)

झारी (१)-(सं० सर्व)-समूह, सब। उ० गईं तहाँ जहँ सुर मुनि झारी। (मा० १।१८४।४)

झारी (२)-(सं० झाट)झाड़ी, छोटे-छोटे पेड़ों का समूह।

झारी (३)-(सं० क्षरण)-१. टोंटीदार लोटा, गड़ुआ, २. कमंडल, ३. सुराही।

झालरि-(सं० झल्लरी)-झालर, किसी चीज़ के किनारे शोभा के लिए टाँका हुआ, या बनाया गया हाशिया। उ० मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजस-सिसु हाथ। (दो० १६०)

झिग-(अनु०)-नदियों के प्रवाह का शब्द। उ० बर बिधान करत गान, वारत धन मान प्रान, झरना झर झिग-झिग-झिग जल तरंगिनी। (गी० २।४३)

झिल्लि (१)-दे० 'झिल्ली (१)'। उ० झिल्लि, झाँझ, झरना डफ, नव मृदंग निसान। (गी०२।४७)

झिल्लि (२)-दे० 'झिल्ली (२)'।

झिल्ली (१)-(सं०) झींगुर, एक छोटा कीड़ा।

झिल्ली (२)-(सं० चैल)-किसी चीज़ की बहुत पतली तह, चमड़े आदि की झिल्ली।

झींगुल-दे० 'झँगुली'।

झीनि-दे० 'झीनी'। उ० पीत झीनि झगुली तन सोही। (मा० ७।७७।४)

झीनी-(सं० क्षीण)-बारीक, पतली, महीन। उ० लसत झँगुली झीनी, दामिनि की छबि छीनी। (गी० १।४२)

झुँकरे-दे० 'झुकरे'।

झुँझुन-(ध्व०)-पैंजनी या घुँघरू का शब्द, झुनझुना। उ० झुँझुन झुँझुन पाँय पैंजनी मृदु मुखर। (गी० १।३०)

झुंडनि-(सं० यूथ)-झुंडों में। उ० गुन-रूप-जोबन सींव सुंदरि चलीं झुंडनि झारि। (गी० ७।१८)

झुकत-(सं० युज्, युक्, प्रा० जुक)-झुक जाते हैं। उ० दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत, हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो। (क० ६।४६) झुकनि-झुकना, नीचे आना। उ० झुकनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि। (गी० १।२५) झुकि-झुककर, नीचे मुँहकर। उ० किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि। (गी०।२८)

झुकी-(सं० युज्, युक्)-१. झुक गई, २. झुककर, ३. नाराज़ होकर, रुष्ट होकर, ४. नाराज़ हुई। उ० १. नहिं जान्यों बियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं, तेहिं सों तरजी। (क० ७।१३३) झुके-१.काम की ओर झुक गए, प्रवृत्त हुए, २. क्रुद्ध हुए। उ० १. तुलसी उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुरदावन के। (क० ६।३४)

झुकरे-(?)-झुँझलाए, खीझे। उ० रुंडन के झुंड झूमि-झूमि झुकरे से नाचैं। (क० ६।३१)

झुटुंग-(सं० जूट)-खड़े बालोंवाला, जटाधारी। उ० जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी। (क० ६।५०)

झुठाई-(सं० अयुक्त, प्रा० अजुत्त, हि० झूठ)-असत्यता, झूठ। उ० आधि-मगन-मन, ब्याधि-बिकल तन, बचन मलीन झुठाई। (वि० १६५)

झुलावहीं-झुलाती है, झूले पर झुलाती हैं। उ० पट उड़त भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं। (गी० ७।१६) झुलावै-(सं० दोलन)-झुलाती हैं। उ० कबहुँ पालनें घालि झुलावै। (मा० १।२००।४)

झूँठ–दे० 'झूठ'। उ० ३. स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूँठ। (दो० ७६)

झूठ–(सं० अयुक्त)–१. असत्य, मिथ्या, २. व्यर्थ, ३. असफल। उ० १. यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ। (मा० २।४६) झूठइ–झूठ ही, असत्य ही। उ० झूठइ भोजन झूठ चबेना। (मा० ७।३९।४) झूठेउ–झूठ भी, असत्य भी। उ० झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। (मा० १।११२।१) झूठेहुँ–झूठे ही, झूठ-मूठ। उ० झूठेहुँ हमहिं दोषु जनि देहू। (मा० २।२८।२)

झूठा–झूठ, बनावटी, असत्य। उ० जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। (मा० ६।९९।४) झूठी–बनावटी, झूठी। उ० नाथहू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै प्रभुहू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को। (क० ७।७०)

झूठि–झूठी, असत्य। उ० झूठि न होइ देव रिषि बानी। (मा० १।६८।४)

झूमक–(सं० झंप)–एक गीत जिसे होली के दिनों में देहात की स्त्रियाँ झूम-झूमकर नाचती हुई गाती हैं। उ० चाँचरि झूमक कहैं सरस राग। (गी० ७।२२)

झूने–(सं० क्षीण)–झीने, झाँझरे, खाँखर। उ० साथरी को सोइबो, ओढ़िबो झूने खेस को। (क० ७।१२५)

झूमत–(सं० झंप) झूमते हैं, इधर-उधर लहराते हैं। उ० झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मदअंबु चुचाते। (क० ७।४४) झूमि–झूमकर, झूमते हुए, लहराते हुए। उ० रुंडन के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं। (क० ६।३१)

झूर (१)–(सं० धूलि)– सूख, शुष्क, खुश्क।

झूर (२)–(सं० अयुक्त, हि० झूठ)–१. खाली, रिक्त, २. व्यर्थ; झूठे।

झूर (३)–(?)–१. जलन, दाह, २. दुःख, परिताप।

झूरो (१)–दे० 'झूर (१)'।

झूरो (२)–दे० 'झूर (२)'। उ० १. बिपुल-जल-भरित जग जलधि झूरो। (ह० ३)

झूरो (३)–दे० 'झूर (३)'।

झूलत–(सं० दोलन)–१. झूलते हैं, झूल रहे हैं, २. झूलते हुए। उ० २. झूलत राम पालने सोहैं। (गी० १।२१) झूलन–झूलने के लिए, लटकने के लिए। उ० मोतिन्ह झालरि लागि चहूँ दिसि झूलन हो। (रा० ३)

झोंटा–(सं० जूट)–चोटी, बड़े बड़े बालों का समूह।

झोटिंग–(सं० जूट, हि० झोंटा)–झोंटेवाला, लंबे अस्त-व्यस्त और कड़े बालोंवाला। उ० प्रमथ महा झोटिंग कराला। (मा० ६।८८।१)

झोंटी–चोटी, लट, झोंटा, बाल। उ० लगे घसीटन धरि धरि झोंटी। (मा० २।१६३।४)

झोपरी–(सं० क्षेप) घास-फूस या मिट्टी की बनी कुटिया, छोटा झोंपड़ा, पर्णशाला। उ० कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत-फल, ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी। (क० ६।२७)

झोरी–(सं० चोल)–झोली, छोटा झोला, थैली। उ० ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे। (क० ६।५०)

झोलिन्ह–झोलियों में। उ० झोलिन्ह अबीर, पिचकारी हाथ। (गी० ७।२२)

झौंसियत–(सं० ज्वल + अंश)–झुलसे जाते हैं, जले जाते हैं। उ० तात तात! तौसियत, झौंसियत झारहीं। (क० ५।१५)

ट

टंकिका–(सं०)–पत्थर काटने का औज़ार, छेनी, टाँकी। उ० सुजन, सुतरु, बन, ऊख सम; खल, टंकिका, रुखान। (दो० ३४२)

टँकोरा–दे० 'टंकोर'। उ० २. प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टँकोरा। (मा० ६।६८।१)

टंकोर–(सं० टंकार)–१. टन-टन का शब्द जो किसी कसे हुए तार आदि पर उँगली मारने से होता है, २. धनुष की कसी डोरी पर बाण रखकर खींचने से होनेवाला शब्द, ३. धातु खंड पर प्रहार करने से होनेवाला शब्द, झनकार। उ० २. मानत मनहुँ सतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर। (गी० ३।१)

टई–(सं० घात, हि० टही)–मतलब निकालने का घात, ताक, युक्ति। उ० कलि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल टई है। (वि० १३९)

टक–(सं० त्राटक)–ऐसा ताकना जिसमें देर तक पलक न गिरे, स्थिर दृष्टि। उ० एक टक रहे नयन पट रोकी। (मा० १।१४८।३)

टकटोरि–(सं० त्वक् + तोलन = अंदाज़ लगाना)–हाथ के स्पर्श द्वारा पता लगाकर, टटोलकर, अंदाज़ लगाकर। उ० टकटोरि कपि ज्यौं नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए। (जा० ६६)

टकोर–दे० 'टंकोर'। उ० २. प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। (मा० ३।१९। छं० १)

टरइ–१. टलता, टलता है, सरकता है, हटता है, २. चंपत होता है, ३. अस्त-व्यस्त होता है। उ० १. पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई। (मा० ६।३४।६) टरई–१. टलता है, टल सकता है, हिलता है, २. चला जाता है, नष्ट हो जाता है, ३. लौट-पौट हो जाता है। उ० १. तासु दूत पन कहु किमि टरई। (मा० ६।३४।४) २. संत दरस जिमि पातक टरई। (मा० ४।१७।३) टरत–टलता है, दूर होता

है, हटता है। उ० साहिब-सेवक-रीति प्रीति-परमिति नीति, नेम को निबाह एक टेक न टरत। (वि० २५१) टरति–टलती है, हटती है। उ० लागियै रहति, नयननि आगे तें न टरति मोहन मूरति। (कृ० २८) टरहिं–टलते हैं, हटते हैं। उ० प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। (मा० ६।४।४) टरिहै–टालेगा, हटावेगा, उखाड़ेगा। उ० उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै ? (क० ७।४७) टरे–टले, टल गए, हट गए। उ० मन हरष सम गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे। (मा० ५।३५। छं० १) टरयो–टला, टल गया, हटा। उ० मुरयो न मनु तनु टरयो न टारयो। (मा० ६।६५।३)

टसकतु–(सं० तस + करण)–टसकता, हटता, खसकता। उ० रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर बल, लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है। (क० ६।१६)

टहल–(सं० तत् + चलन)–१. सेवा, खिदमत, २. काम। उ० १. नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। (मा० ७।१८।४) २. कलि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल टई है।।(वि० १३९)

टही–दे० 'टई'

टाँकी–(सं० टंक)–पत्थर तोड़ने का औज़ार, छेनी। उ० जो पयफेनु फोर पबि टाँकी। (मा० २।२८१।४)

टाँच (१)–(सं० टंकन, हिं० टाँकना)–१. टाँका, सिलाई, २. टँकी हुई चकती, थिगली, पैबंद। टाँचन–टाँचों से, टाकों से। उ० देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो। (वि० २७७)

टाँच (२)–(सं० टंक)–दूसरे का काम बिगाड़नेवाली बात।

टाँचो–टँके हुए, सिले हुए, सिले हुए हैं। उ० देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो। (वि० २७७)

टाँठा–(सं० स्थाणु)–१. कड़ा, कठोर, २. दृढ़, पुष्ट। टाँठे–कठोरता से, कड़ेपन से। उ० राम सो साम किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे। (क० ६।२८)

टाट–(सं० तंतु)–सन का बना मोटा कपड़ा, बोरा। उ० सिअनि सुहावनि टाट पटोरे। (मा० १।१४।६)

टाटिका–(सं० स्थात्री या तटी)– टट्टर, टट्टी। उ० बिरचि हरि-भगति को बेष बर टाटिका। (वि० २०८)

टाटिन–(सं० स्थात्री या तटी)–टाटियाँ, कई टट्टर। उ० ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा है। (क० ७।१५५) टाटी–टट्टी, छोटा टट्टर।

टाप–(सं० स्थापन, हिं० थापन, थाप)–१. घोड़े के पैर का निचला भाग, सुम। २. घोड़े के पैरों का शब्द, ३. लाँघ, उल्लंघन, ४. मुरगी बंद करने का झाबा, ५. मछली पकड़ने का झाबा। उ० १. टाप न बूड़ बेग अधिकाई। (मा० १।२९९।४)

टारति–टालती हैं, बिताती है, व्यतीत करती हैं। उ० राम-बियोग असोक-बिटप तर सीय निमेष कलप सम टारति। (गी० ५।१९।१) टारन–१ हटानेवाले, २. हटाने को, ३. टालना। उ० २. दीप बाति नहिं टारन कहउँ। (मा० २।५९।३) टारि–१. टाल, हटा, २. टालकर, हटाकर। उ० १.जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि। (मा० १।११७) टारा–टाला, हटाया। उ० संभु सरासनु काहुँ न टारा। (मा० १।२९२।३) टारि–१. टालकर, २. टाल, हटा। उ० २. जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि। (मा० १।११७) टारीं–टाल दिया, टाला। उ० ईस अनेक करवरें टारीं। (मा० १।३५७।१) टारी–१. टाल, हटा, खसका, २. हटाया, दूर किया, ३. निवारण किया, ४. बिताया, ५. बचाया। उ० १. जौं मम चरन सकसि सठ टारी। (मा० ६।३४।५) टारे–१. टाला, हटाया, २. टालने से, हटाने से। उ० २. प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। (मा० ६।४।४) टारो–१. टाला, हटाया, २. हटाओ, टालो। उ० १. अब केहि लाज कृपा-निधान परसत पनवारो टारो। (वि० ९४) टार्‌यो–टाले, टालने से, हटाने से। उ० मुरयो न मनु तनु टरयो न टारयो। (मा० ६।६५।३)

टाहली–सेवक, टहलुवा। उ० सबनि सोहात कै सेवा-सुजानि टाहली। (क० ७।२३)

टिट्टिभ–(सं०)–टिटिहरी, कुररी। कहा जाता है कि टिटिहरी पैर ऊपर करके सोती है ताकि आकाश गिरे तो रोक ले। उ० जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना। (मा० ६।४०।३)

टिपारे–(सं० त्रि+फ़ा० पारः=टुकड़ा)–एक टोपी जिसमें कलगी की तरह तीन शाखाएँ निकली होती हैं। उ० सीसनि टिपारे, उपबीत, पीत पट कटि। (गी० १।६९)

टिपारो–दे० 'टिपारे'। उ० सिरसि टिपारो लाल, नीरज-नयन बिसाल। (गी० १।४१)

टीका (१)–(सं० तिलक)–१. ललाट पर मिट्टी, राख, चंदन या रोरी आदि विभिन्न चीज़ों का लगाया जानेवाला तिलक, २. एक सर का गहना, ३. शिरोमणि, श्रेष्ठ, ४. राजतिलक। उ० ३. गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका। (मा० २।३९।३) ४. करहु हरषि हियँ रामहि टीका। (मा० २।५।२)

टीका (२)–(सं०)–व्याख्या, अर्थ, विवरण।

टीड़ी–(सं० टिट्टिभ)–एक प्रकार के कीड़े जो झुंड के झुंड उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं और खेती को हानि पहुँचाते हैं। टिड्डी। उ० जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई। (मा० ६।६७।१)

टुक–(सं० स्तोक)–१. थोड़ा, ज़रा, किंचित, २. टुकड़ा। मु० टुक-टूक–टुकड़े-टुकड़े। उ० बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक-टूक। (दो० २८२)

टूक–(सं० स्तोक)–टुकड़ा, खंड। उ० घर-घर माँगे टूक, पुनि भूपनि पूजे पाय। (दो० १०९) मु० टूक टाक–टुकड़े इत्यादि। उ० बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो, राम नाम लेत, माँगि खात टूक टाक हौं। (ह० ४०) टूकनि–टुकड़ों, भीख। उ० टूकनि को घर-घर डोलत कंगाल बोलि, बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है। (ह० २९)

टूट-(सं० त्रुट)–१. टूटा हुआ, २. टूटेगा, ३. टूटता था। उ० ३. टूट न द्वार परम कठिनाई। (मा० ६।४३।२) टूटत–१. टूटता है, २. टूटने पर, ३. टूटते ही, टूटते। उ० ३. जनक मुदित मन टूटत पिनाक के। (गी० १।९२) टूटतहीं–टूटते ही। उ० टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू। (मा० १।२८६।४) टूटियो–टूटी हुई भी। उ० टूटियो बाँह गरे

परै, फूटेहूँ बिलोचन पीर होति हित करिए। (वि० २७१) टूटिहि–टूटेगा, टूट जायगा। उ० अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि। (जा० ६८) टूटें–टूटने पर। उ० होइ-हहिं टूटें धनुष सुखारे। (मा० १।२३९।२) टूटे–१. टूट गए, खंडित हुए, २. टूटने पर। उ० २. श्रीहत भए भूप धनु टूटे। (मा० १।२६३।३) टूटेउ–टूटा, टूट गया। उ० कूबर टूटेउ फूट कपारू। (मा० २।१६३।३) टूट्यो–टूट पड़ा, एक साथ कूद पड़ा। उ० निरखि मृगराज जनु गिरि तें टूट्यो। (क० ६।४६)

टूठनि–(सं० तुष्ट)–मान जाना, संतुष्ट हो जाना। उ० भजनि मिलनि रूठनि टूठनि किलकनि, अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई। (गी० १।२७)

टेई–(?)–तेज़ की, रगड़कर पैना किया। उ० कपट छुरी उर पाहन टेई। (मा० २।२२।१)

टेक–(सं० स्थित+कृ, हि० टिकना)–१. हठ, ज़िद, प्रण, संकल्प, २. सहारा, आश्रय, आधार, ३. थूनी, स्तंभ, ४. आदत, ५. गीत की वह पंक्ति जो बार-बार गाई जाती है। उ० १. सकइ को टारि टेक जो टेकी। (मा० २।२५५।४)

टेका–दे० 'टेक'। उ० २. साधन कठिन न मन कहुँ टेका। (मा० ७।४५।२)

टेकि–टेककर। उ० जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। (मा० ६।८४।१) टेकी–प्रतिज्ञा की, टेक की, निश्चय कर लिया। उ० सकइ को टारि टेक जो टेकी। (मा० २।२५५।४)

टेढ़–(सं० तिरस्)–१. टेढ़ा, बक्र, २. उजड्डु, शरारती, बदमाश। उ० १. टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। (मा० १।२८१।३) २. सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। (मा० १।२७७।४)

टेपारो–दे० 'टिपारे'। उ० तनियाँ ललित कटि, बिचित्र टेपारो सीस। (कृ० २)

टेर (१)–(सं० तार=संगीत में ऊँचा स्वर)–१. ज़ोर से बुलाना, पुकार, हाँक, २. स्वर, तान।

टेर (२)–(सं० तार=तै करना)–निर्वाह, गुज़र।

टेरि–१. पुकार कर, २. पुकारते हैं। उ० १. बरषैं सुमन जय-जय कहैं टेरि-टेरि। (क० २।१०) टेरी–पुकारा, बुलाया। उ० पल्लव-सालन हेरी, प्रान-बल्लभा न टेरी। (गी० ३।१०) टेरें–दे० 'टेरे'। उ० २. तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। (मा० १।१६१।२) टेरे–१. पुकारे, बुलाए, २. पुकार कर, ३. पुकारने पर। उ० १. भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे। (मा० १।९३।२)

टेव–(सं० स्थित+कृ, हि० टिकना)–अभ्यास, आदत, स्वभाव, बान। उ० सहज टेव बिसारि तुहीं धौं देखु बिचारि। (वि० १९६)

टेवैया–तेज़ करनेवाला, पैना करनेवाला। उ० जहाँ जमजातना, घोर नदी, भट कोटि जलच्चर दंत टेवैया। (क० ७।५२)

टोटक–दे० 'टोटका'। उ० स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा कोसो टोटक, औचट उलटिन हेरों। (वि० २७२)

टोटका–(सं० त्रोटक)–कोई बाधा या बीमारी दूर करने के लिए या मनोरथ सिद्ध करने के लिए तांत्रिक प्रयोग, यंत्र-मंत्र, टोना। उ० औषध अनेक जंत्र-मंत्र टोटकादि किए। (ह० ३०)

टोटुक–दे० 'टोटका'।

टोना–(सं० तंत्र)–दे० 'टोटका'। टोने–टोटका, जादू। उ० तुलसी-प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने। (गी० २।२३)

टोल–(सं० तोलिका)–झुंड, दल, समूह, जत्था।

टोलू–दे० 'टोल'। उ० दीख निषादनाथ भल टोलू। (मा० २।१९२।२)

टोह–(?)–पता, तलाश, खोज।

ठ

ठई–(सं० अनुष्ठान, हि० ठान) १. निश्चित की, रक्खा, इरादा किया, २. निश्चित किया है, ठाना है, ३. लगाई, लगाई है, ४. ठीक रहा, स्थिर या निश्चित रहा। उ० ४. तुलसिदास कौन आस मिलन की, कहि गए सो तौ कछु एकौ न चित ठई। (कृ० ३६) ठए–(सं० अनुष्ठान) रचे, बनाए, ठाने। उ०सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि जान समय सम गान ठए। (गी० १।३)

ठकुर–(सं० ठक्कुर)–१. देवता, २. भगवान विष्णु, विष्णु की मूर्ति, ३. मालिक, स्वामी।

ठकुरसुहाती–दे० 'ठकुरसोहाती'।

ठकुरसोहाती–(सं० ठक्कुर) खुशामद, मुँहदेखी। उ० कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती। (मा० ६।९।१)

ठकुराइन–स्वामिनी, मालकिन।

ठकुराइनि–दे० 'ठकुराइन'। उ० ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ। (क० ७।१७०)

ठकुराई–१. प्रभुत्व, आधिपत्य, सरदारी, २. ठाकुर का अधिकार, स्वामी होने के अधिकार का उपयोग, मलिकाई, ३. उच्चता, बड़प्पन। उ० २. अब तुलसी गिरिधर बिनु गोकुल कौन करिहि ठकुराई? (कृ० ३२)

ठग–(सं० स्थग)–धोखा देकर धन आदि हरण करनेवाला, धूर्त, धोखेबाज़। उ० भल भूलिहु ठग के बौराएँ। (मा० १।७९।४) ठगिनि–ठगनेवाली, ठगिनी। उ० तुलसी तेहि सनमुख बिनु विषय-ठगिनि ठगति। (गी० २।८२)

ठगति–ठगती है, धोखा देती है। उ० तुलसी तेहि सनमुख बिनु बिषय-ठगिनि ठगति। (गी० २।८२) ठगि–१. ठगे से, स्तब्ध, मोहित से, २. ठगकर। उ० १. तेउ यह चरित

देखि ठगि रहहीं। (मा० ७।६।५) ठगी–१. ठगा, ठग लिया, २. ठग गई, मोहित हो गई। उ० २. तुलसिदास ग्वालिनी ठगी, आयो न उतर कछु, कान्ह ठगौरी लाई। (कृ० ८) ठगे–१. ठगे, ठगे से, स्तब्ध, मोहे से, २. छले गए, ठगे गए। उ० १. अवलोकिहौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से। (क० १।१) २. किंकिनि ललाम लगासु ललित बिलोकि सुरनर मुनि ठगे। (मा० १।३१६। छं० १) ठग्यो–१. ठगा, ठग लिया, २. मोहित कर लिया। उ० १. लियो रूप दै ज्ञान-गाँठरी भलो ठग्यो ठगु ओही। (कृ० ४१)

ठगहारी–ठगपना, ठगी, बटमारी।

ठगु–दे० 'ठग'। उ० लियो रूप दै ज्ञान-गाँठरी भलो ठग्यो ठगु ओही। (कृ० ४१)

ठगौती–दे० 'ठगौरी'।

ठगौरी–(सं० स्थग) १. ठगों की विद्या, २. मोह लेने की विद्या, मोहिनी, टोना, जादू। उ० २. तुलसिदास ग्वालिनी ठगी, आयो न उतर कछु, कान्ह ठगौरी लाई। (कृ० ८)

ठट–दे० 'ठट्ट'। उ० अंबर अमर हरषत बरषत फूल, सनेह-सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं। (कृ० २०)

ठटु–(सं० स्थातृ) ठाट, बनाव, सजावट। उ० परखत प्रीति प्रतीति पयज पनु रहे काज ठटु ठानिहैं। (गी० १।७८)

ठटुकि–(सं० स्थाता)–ठिठककर, रुककर, स्तब्ध होकर। आश्चर्य में पड़कर। उ० रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी। (मा० ५।४५।२)

ठटो–(सं० स्थाता) रचो, सजो, बनाओ, तैयार करो। उ० नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो। (क० ७।८६)

ठट्ट–(सं० स्थाता)–समूह, जमाव, झुंड।

ठट्टा–दे० 'ठट्ट'। उ० मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा। (मा० ६।७६।६)

ठठ–दे० 'ठट्ट'।

ठठई–(सं० अट्टहास)–ठट्टा, दिल्लगी, हँसी। उ० हुतो न साँचो सनेह, मिट्यो मन को संदेह, हरि परे उघरि, संदेसहु ठठई। (कृ० ३६)

ठठकि–(सं० स्थेष्ट+करण, हि० ठिठकना)–ठिठककर, रुककर।

ठठाइ–(सं० अट्टहास)–खिलखिलाकर, कहकहा लगाकर। उ० हँसब ठठाइ फुलाउब गाला। (मा० २।३५।३) ठठाइयत–(अनु० ठक ठक)–बजाए जाते हैं, ठोके जाते हैं। उ० फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल, खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं। (क० ७।१७१) ठठाई–दे० 'ठठाइ'।

ठनि–(सं० अनुष्ठान, हि० ठानना, ठनना)–ठनकर, तत्परता से। ठनियत–ठानते, ठाने, ठाने हुए, उद्यत, अड़ा। उ० तुलसी पराये बस भये रस अनरस, दीनबंधु-द्वारे हठ ठनियत है। (वि० १८३) ठनी–ठना, ठन गया, बानक बन गया, हो गया। उ० हिय ही और कीन्हीं बिधि, राम-कृपा औरै ठनी। (गी० ५।३६)

ठमक–(सं० स्तंभ)–रुककर, ठहरकर।

ठयऊ–(सं० अनुष्ठान)–१. छाए, छाए हों. २. निश्चय कर लिया है, विचार किया है। उ० १. सावन घन घमंडु जनु ठयऊ। (मा० १।३४७।१) २. मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। (मा० ६।१६।४) ठयेऊ–दे० 'ठयऊ'। ठयो–बनाया, रचा। उ० राम लखन रनजीति अवध आए, कैधौं काहू कपट ठयो है। (गी० ६।११)

ठवनि–(सं० स्थापन)–१. स्थिति, हाल, २. बैठने, चलने या खड़े होने का ढंग, मुद्रा, अंदाज़, चाल। उ० २. ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ। (मा० १।२४१।४)

ठहर (१)–(सं० स्थल)–स्थान, जगह। उ० ठाकुर महेस, ठकुराइनि उमा सी जहाँ, लोक वेद हू बिदित महिमा ठहर की। (क० ७।१७०) मु० ठहर ठहर–स्थान स्थान पर। उ० ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं। (क० ६।४२)

ठहर (२)–(सं० स्थैर्य)–रुककर, रहकर। ठहरानी–(सं० स्थैर्य)–ठहरी, टिकी, जमी। उ० एकउ जुगुति न मन ठहरानी। (मा० २।२५३।४)

ठहरु–दे० 'ठहर (१)'।

ठही–(सं० स्थैर्य)–१. ठहरकर, जमकर, अच्छी तरह, २. ठहर गई, छा गई। उ० १. लागि दवारि पहार ठही लहकी कपि लंक जथा खर-खौकी। (क० ७।१४३)

ठाँउ–दे० 'ठाउँ'।

ठाँवहिं–(स्थान)–जगह ही, जगह पर ही। उ० काँट कुराएँ लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँउँ बझाऊ रे। (वि० १८६)

ठाईं–(सं० स्थान)–१. ठौर, जगह, स्थान, २. पास, समीप, ३. तईं, प्रति। उ० ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहु सिमिटि एक ठाईं। (वि० १०३)

ठाउँ–(सं० स्थान, प्रा० ठान)–ठौर, स्थान। उ० निलज, नीच, निरधन निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ। (वि० १५३)

ठाऊँ–दे० 'ठाउँ'। उ० पायउ अचल अनूपम ठाऊँ। (मा० १।२६।२)

ठाकुर–(सं० ठक्कुर)–१. स्वामी, मालिक, २. आराध्य देव, पूज्य देवता, इष्ट देव, ३. नायक, सरदार, ४. ज़मींदार, ५. क्षत्रियों की उपाधि, ६. नाइयों की उपाधि। उ० १. राम गरीबनिवाज निवाजिहैं, जानिहैं, ठाकुर ठाउँगो। (गी० ५।३०)

ठाट–(सं० स्थातृ)–१. तैयारी, साज, रचना, तड़क-भड़क, २. भीड़-भाड़, धूम-धाम, ३. दृश्य, ४. रूप, ५. व्यवस्था, प्रबंध। उ० १. मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री। (गी० १।७५)

ठाटा–१. रचा, ठाट किया, रचना की, २. दे० 'ठाट'। उ० १. मोहि लगि यहु कुठाटु तेहिं ठाटा। (मा० २।२१२।३) ठाटिबो–रचना, बनाना। उ० काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को। (क० ७।६६)

ठाटु–दे० 'ठाट'। उ० ४. सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा। (मा० २।४७।३)

ठाटू–दे० 'ठाट'। उ० ५. करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू। (मा० २।१३३।१)

ठाढ़–(सं० स्थातृ=जो खड़ा हो)–खड़ा। उ० ठाढ़ भए उठि सहस सुभाएँ। (मा० १।२५४।४)

ठाढ़ा–खड़ा, दंडायमान। उ० अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा। (मा० १।२८३।३) ठाढ़ि–खड़ी, खड़ी-खड़ी। उ० सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। (मा० २।१२।१) ठाढ़ी–खड़ी, खड़ी हो गई। उ० नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी। (मा० १।१०४।१) ठाढ़े–खड़े, खड़े-खड़े,। उ० ठाढ़े रहे एक पद दोउ। (मा० १।१४४।१) ठाढ़ो–ढाढ़, खड़ा। उ० ठाढ़ो द्वार न दै सकैं तुलसी जे नर नीच। (दो० ३८२)

ठान–(सं० अनुष्ठान)–१. अनुष्ठान, किसी काम को ठानना या शुरू करना, २. शुरू किया गया कार्य, ३. दृढ़ निश्चय, संकल्प, ४. शरीर की मुद्रा, अंदाज़। ठाना–१. निश्चय किया, दृढ़ विचार किया, २. ठान लिया, शुरू किया। उ० २. सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा। (मा० १।१९२।छं०१) ठानि–ठान कर, निश्चय कर के। उ० मरनु ठानि मन रचेसि उपाई। (मा० १।८६।३) ठानी–१. निश्चित की, २. रक्खी, ३. स्थान वाले। उ० ३. मास पाख तिथि बार नखत ग्रह जोग लगन सुभ ठानी। (गी० १।४)

ठायँ–(सं० स्थान)–स्थान, ठौर, जगह। उ० जिन्ह लगि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ। (वि० ८३)

ठालीं–(?)–निठल्ला, बेकाम। उ० ठालीं ग्वालि जानि पठए, अलि, कह्यो है पछोरन छूछो। (कृ० ४३)

ठावँ–(सं० स्थान)–जगह, स्थान। उ० ठावँ ठाव राखे अति प्रीती। (मा० २।९०।२)

ठाव–दे० 'ठाँवँ'। उ० दे० 'ठावँ'।

ठाहर–(सं० स्थल)–१. ठहर, स्थान, जगह, स्थल, २. ठहरने का। उ० २. करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू। (मा० २।१३३।१)

ठाहरु–दे० 'ठाहर'। उ० १. दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई। (मा० २।२५।छं०१)

ठिकाना–(सं० स्थित+कृ०, हि० टिकना)–१. ठहरने का स्थान, निवास, २. जगह, स्थान, ३. जीविका का सहारा, आश्रय, ४. स्थिरता, ठहराव, ५. प्रबंध, आयोजन, ६. पारावार, अंत।

ठीक–(?)–१. उचित, यथार्थ, सच, शुद्ध, २. अच्छा, ३. निश्चित, पक्का, ४. ठीक-ठीक, जो है, ज्यों का त्यों। उ० ४. नाथ नीके कै जानिबी ठीक-जन-जीय की। (वि० २६३)

ठीका–१. निश्चित, ठीक, दृढ़, २. उचित, वाजिब। उ. १. करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। (मा० २।२६६।४)

ठुमुकु–(अनु०)–ठुमक कर, जल्दी-जल्दी थोड़ी-थोड़ी दूर पर पैर पटक कर। उ० ठुमुक-ठुमुक प्रभु चलहिं पराई। (मा० १।२०३।४)

ठेकाने–ठिकाना, आश्रय। उ० तुलसिदास सीतल नित यहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हौं। (वि० २२९)

ठेलि–(?)–ठेलकर, धक्का देकर, ढकेलकर। उ० ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि। (क० ५।८)

ठोंकि–(अनु० ठक ठक)–ठोंककर, थपथपाकर, पीटकर, परीक्षा करके। उ० ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़े। (क० ७।५४) ठोंकि बजाय–ठोंक बजाकर, अच्छी तरह परीक्षा कर। उ० दे० 'ठोंकि'।

ठोरी–(सं० स्थान, प्रा० ठान, हिं ठाँव+र)–ठौर, स्थान, जगह। उ० छबि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी। (मा० १। २६५।४)

ठोसु–(सं० स्थास्नु)–ठोस, जो भीतर से पोला या खाली न हो। उ० राम-प्रीति-प्रतीति पोली, कपट करतब ठोसु। (वि० १५९)

ठौर–(सं० स्थान, प्रा०ठान, हि० ठाँव)–जगह, स्थान। उ० तुलसिदास सीतल नित यहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हौं। (वि० २२९) मु० ठौर ठौर–जगह-जगह, स्थान-स्थान पर। उ० नखसिख अंगनि ठगौरी ठौर ठौर हैं। (गी० १।७१)

ड

डँटैया–दे० 'डटैया'।

डंबर–(सं०)–१. आडंबर, ढकोसला, धूमधाम, २. विस्तार, फैलाव, ३. एक प्रकार का चँदवा। उ० २. छत्र मेघडंबर सिर-धारी। (मा० ६।१३।३)

डग–(सं० तक = चलना)–१. फाल, क़दम, २. पद, चरण। उ० १. पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै। (क० २।११) मु० डग दये–चले।

डगइ–डिगता है, हटता है। उ० डगइ न संभु सरासनु कैसें। (मा० १।२५१।१) डगति–डगती है, हटती है, चलायमान होती है। उ० राम-प्रेम-पथ तें कबहुँ डोलति नहिं डगति। (गी० २।८२) डगहीं–१. डिगते हैं, २. विचलित हो गए, डिग गए। उ० १. चलत कटक दिग-सिंधुर डगहीं। (मा० ६।७१।३) डगि–१. डगमगा कर, हिलकर, २. डग, पैर। उ० १. सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। (मा० २।२२५।२) डगे–डग गए, विचलित हुए। उ० डगे दिग कुंजर, कमठ कोल कलमले। (क० ६।७) डगैं–१. हिलें, कंपित हों, २. हिलते हैं, काँपते हैं। उ० २. न डगैं, न भगैं जिय जानि सिली मुख पंच धरे रतिनायक है। (क० २।२७) डगै–डगे, हिले, काँपे। डग्यो–डिगा, हटा, विचलित हुआ, हिला। उ० कबहुँ न डग्यो निगम-मग तें, पग नृग जग जान जिते दुख पाए। (वि० २४०)

डगमग–(सं० तक + मग)–अस्थिर, डगमगाता हुआ।

डगमगत–हिलते हैं, काँपते हैं। उ० छुभित सिंधु डगमगत महीधर सजि सारँग कर लीन्हों। (गी० ५।२२) डगमगहीं–१. डगमगाते हैं, २. डगमगाने लगे। उ० २. छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं। (मा० ६।७९।३) डगमगानि–डगमगा उठी, हिल उठी। उ० डगमगानि महि दिग्गज डोले। (मा० १।२५४।१) डगमगाहिं–१. डगमगाते हैं, विचलित होते हैं। २. कंपित होकर। उ० २. डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं। (मा० ५।३५।५) डगमगे–डगमगा उठे, हिलने लगे। उ० ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे। (मा० ६।८६। छं० १)

डगर–(सं० तक, हिं० डग)–रास्ता, मार्ग, पथ। डगरि–डगर में, रास्ते में। उ० हरष न रचत, विषाद न बिगरत, डगरि चले हँसि खेलि। (कृ० २६)

डगरा–दे० 'डगर'।

डगरो–दे० 'डगर'। उ० गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो। (वि० १७३)

डटैया–(सं० दांति =वश, वश में करना)–डाँटनेवाले, धमकानेवाले। उ० साँसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुनै चहुँ ओर डटैया। (क० ७।५१)

डफ़–(अर० दफ़)–चमड़ा मढ़ा एक बाजा, डफला। उ० बाजहिं मृदंग डफ ताल बेनु। (गी० ७।२२)

डफोरि–(अनु०)–चिल्लाकर, हाँक देकर। उ० तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै। (क० ५।२७)

डमरु–(सं०)–एक बाजा जो बीच में पतला होता है और हाथ से हिलाकर बजाया जाता है। यह शिव का प्रिय बाजा है। उ० कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। (मा० १।९२।३)

डमरुआ–(सं० डमरु)–जोड़ों में दर्द तथा सूजन होने का एक रोग, गठिया। उ० अहंकार अति दुखद डमरुआ। (मा० ७।१२१।१८)

डमरू–दे० 'डमरु'। उ० डमरू कपाल कर, भूषन कराल ब्याल। (क० ७।१५८)

डर–(सं० दर)–भय, त्रास, खौफ़। उ० एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं। (मा० ६।४।३)

डरऊँ–डरता हूँ, डरता। उ० बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ। (मा० १।८०।४) डरत–१. डरता है, डरता, २. डरते हुए। उ० १. जाको बाल बिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को। (वि० ३१) डरहिं–डरते हैं। उ० कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चैन। (मा० ६।८७) डरहीं–डरती हैं, भयभीत होती हैं। उ० तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं। (मा० २।११६।३) डरही–डरता है। उ० बायस इव सबही ते डरही। (मा० ७।११२।७) डरहु–१. डरो, २. डरते हो, डर रहे हो। उ० २. डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ। (मा० २।२१०।१) डरात–१. डरता है, २. डरते हुए। उ० १. तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै। (क० ५।३) डराती–डरती है। डरिए–डरा कीजिए, डरना चाहिए, डरते रहो। उ० निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिए। (वि० १८६) डरिहै–डरेगा, भयभीत होगा। उ० तुलसी यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहै। (क० ७।४७) डरीं–भयभीत हुईं, डर गईं। उ० तासु बचन सुनि ते सब डरीं। (मा० ५।११।४) डरु–१. डरो, २. डर, भय। उ० २. नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। (मा० २।२११।३) डरे–भयभीत हुए, डर गए। उ० डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। (मा० १।२४१।३) डरेउँ–मैं डरा, मैं डर गया था। उ० अपडर डरेउँ न सोच समूलें। (मा० २।२६७।३) डरेउ–डरा, डर गया। उ० निज भयँ डरेउ मनोभव पापी। (मा० १।१२६।४) डरौं–१. डरूँ, २. डरता हूँ। उ० २. तेहि ते बूझत काजु डरौं मुनि नायक। (जा० २४) डरयो–१. डर गया, २. डरा हुआ, भयभीत। उ० २. अब रघुनाथ सरन आयो जन, भवभय-बिकल डरयो। (वि० ९१)

डरपत–डरता है, डर रहा है। उ० एकहिं डर डरपत मन मोरा। (मा० १।१६६।४) डरपति–डरती है। उ० ताते तेहि डरपति अति माया। (मा० ७।११६।३) डरपसि–डरिए, भयभीत होइए। उ० जनि सनेह बस डरपसि भोरें। (मा० २।५३।४) डरपहिं–डरते हैं, डर रहे हैं। उ० डरपहिं एकहि एक निहारी। (मा० २।८३।३) डरपहु–डरो, भयभीत हो। उ० भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल। (मा० २।२१९) डरपे–डरे, भयभीत हुए। उ० देखि अजय रिपु डरपे कीसा। (मा० ६। ७६।७)

डरपावै–डरावे, भय दिखलावे। उ० डरपावै गहि स्वल्प सपेला। (मा० ६।५१।४)

डवँरुआ–दे० 'डमरुआ'।

डसत–(सं० दंशन)–१. डसते ही, काटते ही, डंक मारते ही, २. डसते हुए, काटते हुए। उ० १. भव भुवंग तुलसी नकुल, डसत ज्ञान हरि लेत। (दो० १८०) डसि–डसकर, काटकर।

डसाई–(सं० दर्भ+आसन, हिं० डासन)–१. बिछाया, बिछा दिया, २. बिछाकर। उ० १. गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। (मा० २।८९।४) डसाए–बिछाए, बिछवाए। उ० जरित कनकमनि पलँग डसाए। (मा० १।२५६।१) डसैहौं–बिछाऊँगा, बिछौना बिछाऊँगा। उ० रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं। (वि० १०५)

डहँकत–दे० 'डहकत (१)'। उ० २. भक्ति, बिराग, ज्ञान साधन कहि बहु बिधि डहँकत लोग फिरौं। (वि० १४१)

डहकायो–छला, धोखा दिया, ठगा। उ० अजहुँ विषय कहँ जतन करत जद्यपि बहुबिधि डहँकायो।(वि० १९९)

डहक–(?)–गुफा, कंदरा, खोह, छिपने की जगह।

डहकत (१)–१. ठगता है, धोखा देता है, बहकाता है, २. धोखा देते हुए, ठगते हुए। डहकि–(सं० तक=चलना, हिं० डाँकना, डाँका=लूट, ठगी)–ठगकर। मु० डहकि-डहकि–ठग ठगकर। उ० डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। (मा० १।१३७।२) डहकु–(सं० तक)–बहक, भुलावा में आ, ठगा, भ्रम में पड़। उ०डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम। (ब० ३७) डहके–१. ठगे गए, धोखा खाए,

२. ठगना, धोखा देना। उ० १. तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न ? (दो० ५४६) २. डहके ते डहकाइबो भलो, जो करिय बिचारि। (दो० ४३१)
डहकत (२)-(अनु० दहाड़)-रोता है, बिलखता है।
डहकत (३)-(?)-छितराता है, फैलाता है, फेंकता है। उ० खेलत खात परसपर डहकत, छीनत कहत करत रोग दैया। (कृ० १६)
डहकाइबो-ठगाना, ठगा जाना, धोखा खाना। उ० डहके ते डहकाइबो भलो, जो करिय बिचारि। (दो० ४३१)
डहरूआ-दे० 'डमरुआ'।
डहार-(सं० दहन)-१. जलनेवाले, ईर्ष्या करनेवाले, २. तंग करनेवाले, डाहनेवाले। उ० २. कायर क्रूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार। (दो० ५६०)
डाँग-(सं० टंक=पहाड़ का किनारा)-१. घना जंगल, गहन वन, २. पहाड़ की चोटी। उ० १. चित्र विचित्र बिबिध मृग डोलत डोंगर डाँग। (गी० २।४७)
डाँट-(सं० दांति=दमन, वश)-घुड़की, फटकार, झिड़की, धमकी।
डाँड़िगो-(सं० दंड)-दंडित कर गया, जुरमाना लगा गया। उ० केसरीकुमार सो अदंड कैसो डाँड़िगो। (क० ६।२४) डाँड़ियत-दंड दिया जाता है, जुरमाना दिया जाता है। उ० डाँड़ियत सिद्ध साधक प्रचारि। (गी० २।४६)
डाँड़ो-(सं० दंड)-१. डाँड़ी, रेखा, २. डंडा, दंड, पतली लकड़ी, ३. खंभ, ४. नाव खेने का डाँड़, ५. सीमा, ६. दंड दिया। उ० २. डाँड़ों कनक कुंकुम-तिलक रेखैं सी मनसिज-भाल। (गी० ७।१८)
डाँवरे-(सं० डिंब)-लड़के, बेटे, पुत्र।
डाँवाडोल-(सं० दोल)-कंपित, चंचल, अस्थिर। उ० पावक, पवन, पानी, भानु, हिमवान, जम, काल, लोक-पाल मेरे डर डाँवाडोल हैं। (क० ५।२१)
डाकिन-दे० 'डाकिनी'।
डाकिनि-दे० 'डाकिनी'। उ० २. जो सब पातक पोतक डाकिनी। (मा० २।१३२।३)
डाकिनी-(सं०)-१. एक पिशाची या देवी जो काली के गणों में समझी जाती है। २. चुड़ैल, डाइन। उ० २. डाकिनी-शाकिनी-खेचरं-भूचरं यंत्रमंत्र-भंजन, प्रबल कल्मषारी। (वि० ११)
डाटत-१. डाँटते हैं, घुड़कते हैं, २. डाँटने पर। उ० १. किए निहारो हँसत, खिझे तें डाटत नयन तरेरे। (कृ० ३) डाटन-डाँटने, फटकारने। उ० रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर, मोहिं दास ज्यों डाटन आयो। (गी० ६।३) डाटहिं-डाँटे, फटकारे, डाँटते हैं, धमकाते हैं। उ० डाटहिं आँखि देखाइ कोप दारुन किए। (जा० १६६) डाटि-डाँटकर, फटकार कर। उ० मारहिं चपेटन्हि डाटि दाँतन्ह काटि लातन्ह मीजहीं। (मा० ६।८१।छं०१) डाटियत-डाँटता, धमकाता, घुड़कता। उ० आपु है अभागी भूरिभागी डाटियत है। (क० ७।६६) डाटे-१. डाँटने पर, घुड़कने पर, २. टाँटा। उ० १. बिनय न मानहिं जीव जड़, डाटे नवहिं अचेत। (प्र० ५।५।६) डाटेहिं-१. डाँटने पर, फटकारने से, २. डाँटते हैं। उ० १. बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच। (मा० ५।५८)
डाढ़त-(सं० दग्ध)-१. जलती हुई, जलती, २. जलाते हुए। उ० १. रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं। (क० ५।१२) डाढ़न-१. जलाने, दग्ध करने, २. डाढ़ा का बहुबचन, आग, ३. दावानल, ४. दाह, ताप, जलन। उ० १. तुलसिदास जग दव जवास ज्यों अनघ-मेघ लागे डाढ़न। (वि० २१) डाढ़ा-१. आग, ज्वाला, २. जलन, ३. जलाया, ४. मुँह काला किया। उ०१. जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा। (मा० ६।७२।१) डाढ़े-१. जलाए, भस्म किए, २. जले, जले हुए, ३. लपकें, शोले। उ० २. पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े। (क०२।१२) डाढ़ै-जलावे, जला देती है। उ० प्रबल अनल बाढ़े, जहाँ काढ़े तहाँ डाढ़ै। (क० ५।२३) डाढ़ो-जला, जल गया। उ० सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो। (क० ५।१२)
डाबर-(सं० दभ्र=समुद्र या झील) १. बहुत छोटा तालाब, डबरा, गड़ही, छोटा गढ्ढा, २. गँदला, मैला। उ० १. डाबर कमठ कि मंदर लेहीं।।(मा० २।१३६।४) २. भूमि परत भा डाबर पानी। (मा० ४।१४।३)
डार-(सं० दारु=लकड़ी)-शाखा, टहनी, डाल। उ० प्रभु तरु पर कपि डार पर ते किए आपु समान। (मा०१।२६क) डारन-डालों पर, डालियों पर। उ० अवनि कुरङ्ग, विहँग द्रुम-डारन रूप निहारत पलक न प्रेरत। (गी० २।१४)
डारइ-गिरावे, फेंके गिराता हो। उ० नील-कमल-सर-श्रेनि मयन जनु डारइ। (जा० ६२) डारई-१. डालता है, २. पटकता है, पटकने लगा। उ० २. तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई। (मा०६।८५।छं०१) डारउ-डाले, गिरावे। उ० जाचत जलु पवि पाहन डारउ। (मा० २।२०५।२) डारहिं-डालते हैं, डाल देते हैं, गिराते हैं। उ० गहि पद डारहिं सागर माहीं। (मा० ६।४७।४) डारहीं-डालते हैं, गिराते हैं। उ० धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं। (मा० ६।४१।छं०१) डारा-१. डाला, डाल दिया, २. गिराया। उ० १. अति रिस मेघनाद पर डारा। (मा० ६।५१।१) डारि-१ फेंक, उगल, डाल, २. डालकर, छोड़कर, बहाकर। उ० १. मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं। (मा० ६।११७।४) डारिबी-डालना, डालियेगा। उ० लषन लाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि। (गी० ७।२६) डारियत-डालते हो। उ० रोगसिंधु क्यों न डारियत गायखुर कै ? (ह० ४३) डारिहउँ-डालूँगा, फेंकूँगा। उ० बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। (मा० १।१२६।३) डारिहौं-डालूँगा, फेंकूँगा। उ० तुलसी असि मूरति आनि हिये, जड़ डारिहौं प्रान निछावरि कै। (क० २।१३) डारी-१. डाला, डाल दिया, गिरा दिया, फेंक दिया, २. फेंक कर, ३. फेंकी हुई। उ०१. हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी। (मा०४।५।४) डारु-डाल दे, डालो। उ० निपटहिं डाँटति निठुर ज्यों, लकुट कर तें डारु। (कृ० १४) डारे-१. डाला, २. गिराया। उ० १. सरन्हि काटि रज सम करि डारे। (मा० ६।६६।२) डारेसि-डाला, डाल दिया। उ० जहँ तहँ

पटकि पटकि भट डारेसि। (मा० ६।६५।५) डारेन्हि–डाले, गिराये। उ० डारेन्हि तापर एकहिं बारा। (मा० ६।८२।१) डारौं–१. डालूँ, २. गिराऊँ। उ० १. काँचे घट जिमि डारौं फोरी। (मा० १।२५३) डारयो–डाला, डाल दिया। उ० गहि चंगुल चातक चतुर डार्यो बाहिर बारि। (दो० ३०३)

डावरे–दे० 'डाँवरे'। उ० सोई बाँह गही जो गही समीर डावरे। (ह० ३७)

डासत–(सं० दर्भ+आसन) १. बिछाता है, फैलाता है, २. बिछाते हुए, डसाते हुए, बिस्तर लगाते हुए। उ०२. डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो। (वि० २४५) डासि–१. बिछाकर, डालकर, फैलाकर, २. डाली, फेंकी, बिछायी। उ० १. अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात। (मा० २।२११) डासी–दे० 'डासि'। उ० १. सम महि तृन तरु पल्लव डासी। (मा० २।६७।३)

डासन–१. बिछौना, २. आसन। उ० १. लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। (मा० ७।४०।१)

डिंडिम–(सं०) १. डमरू, २. डफली, ३. मुनादी, घोषणा, ४. करौंदा, एक पेड़ का नाम, ५. डमरू का शब्द।

डिंडिमी–१. डमरू, २. डफली, डुगडुगी, ३. करौंदा। उ० २. झाँझि बिरव डिंडिमी सुहाई। (मा० १।३४४।१)

डिंभ (१)–(सं०) १. बच्चा, छोटा बालक, २. मूर्ख, ३. पशुओं के शिशु, बछड़ा आदि। उ० आपने तौ एक अवलंब अंब डिंभ ज्यों। (क० ७।८१)

डिंभ (२)–(सं० दंभ)–१. आडंबर, पाखंड, २. गर्व, अभिमान, ३. अज्ञान।

डिगति–१. हिलती है, काँपती है, २. काँपने लगी। उ० १. डिगति उर्वि अति गुर्वि, बिकल दिगपाल चराचर। (क० १।११)

डिठि–(सं० दृष्टि प्रा० दिट्ठि, डिट्ठि) १. दृष्टि, नज़र, निगाह, २ नज़र, टोना। उ० २. रोवनि, धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि-मुठि निठुर नसाइहौं। (गी० १।१८)

डिठियारा–दृष्टिवाला, आँखवाला आदमी। उ० अंध कहे दुख पाइहै, डिठियारो केहि डीठि? (दो० ४८१)

डिमडिम–डमरु की डिमडिम आवाज़। उ० तांडवित-नृत्य-पर, डमरू-डिमडिम-प्रवर। (वि०१०)

डिमडिमी–१. डुग्गी, डफली, २. मुनादी, ढिंढोरा।

डीठ–(सं० दृष्टि प्रा० दिट्ठि, डिट्ठि)–नज़र, दृष्टि। उ० दई पीठ बिनु डीठ मैं, तुम बिस्व-बिलोचन। (वि० १४६)

डीठा–१. देखा, दीखा, २. दृष्टि। उ० १. पितु बैभव बिलास मैं डीठा। (मा०२।९८।१) डीठे–देखे, अवलोकन किया। उ० वंचक विषय बिबिध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे। (वि० १६६)

डीठि–दृष्टि, नज़र, आँख। उ० अंध कहे दुख पाइहै, डिठियारो केहि डीठि। (दो० ४८१)

डीठी–दृष्टि, नज़र, आँख। उ० नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी। (मा० १।२३१।४)

डुलावौं–(सं० दोल) १. डुलाऊँ, हिलाऊँ, २. डुलाता हूँ, डिगाता हूँ।

डेरा–[सं० स्थैर्य+ना (प्रत्य०)–हि० ठहरना, ठैरना] १. थोड़े समय का निवास, पड़ाव, २. निवास, स्थान, घर आश्रम, ३. तंबू, खेमा, ४. नाचने-गानेवालों का दल। उ० २. राम करहु तेहि कें उर डेरा। (मा० २।१३१।४)

डेराई–(सं० दर)–१.डरकर, डर से, २.डरें, ३. डरा। उ० २.जब सिय कानन देखि डेराई। (मा०२।८२।२) डेराऊँ–डरूँ, डरता हूँ। उ० तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ। (मा० २।१७।२) डेराती–डरती, डरती है, डर जाती है। उ० चित्रलिखित कपि देखि डेराती। (मा०२।६०।२) डेराना–डरा, डर गया। उ० मुनिगति देखि सुरेस डेराना। (मा० १।१२५।३) डेराने–डरे, डर गए। उ० सकल लोग सब भूप डेराने। (मा० १।२५४।१) डेरावहिं–डराते हैं, भयभीत करते हैं। उ० कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं। (मा० ६।४४।३) डेराहीं–१. डरते हैं, डर रहे हैं, २. डर रहे थे। उ० १.एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं। (मा०६।४।३) डेराहू–डरो, भयभीत हो। उ० कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहू। (मा० ६।३२।५)

डेरे–दे० 'डेरा'। उ० २. दीन बितहीन हौं बिकल बिनु डेरे। (वि० २१०)

डेरो–दे० 'डेरा'। उ० २. तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो। (वि० १४३)

डेल–(सं० दल, हि० डला)–ढेला, पत्थर, ईंट या मिट्टी आदि का टुकड़ा। उ० नाहिंन रास रसिक रस चाख्यो, तातें डेल सो डारो। (कृ० ३४)

डेवढ़–(सं० द्व्यर्द्ध, प्रा० दिअड्ढ)–डेढ़ा, आधा अधिक, डेढ़गुना।

डोंगर–(सं० तुंग=पहाड़ी) टीला, ऊँची ज़मीन, छोटी पहाड़ी। उ० चित्र बिचित्र बिबिध मृग डोलत डोंगर डाँग। (गी० २।४७)

डोरि–(सं० डोर)–डोरी, रस्सी, तागा। उ० तैं निज कर्म डोरि दृढ़ कीन्ही। (वि० १३६)

डोरिआए–डोर या रस्सी से बँधे हुए। उ० कोतल संग जाहिं डोरिआए। (मा० २।२०३।२)

डोरी–दे० 'डोरि'। उ० जिन बाँधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी। (वि० ९८)

डोल–(सं० दोल)–१. लोहे का एक गोल बर्तन जिससे कूएँ से पानी खींचते हैं, २. हिंडोला, झूला, ३. पालकी, डोली, ४. काँपा, डोला, ५. काँपना, हिलना। उ० २. खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल। (मा० १।२५८)

डोलइ–(सं० दोल) डोल सकता है, हिल सकता है। उ० अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ? (पा० ६५) डोलत–डोलती है, डोलने लगी। डोलत धरनि सभासद खसे। (मा० ६।३२।२) डोलति–१. डोलती है, हिलती है, हटती है, २. डोलती हुई। उ० १. जासु चलत डोलति इमि धरनी। (मा० ६।२५।४) डोलनि–डोलना, हिलना। उ० केस सुदेस गँभीर बचन बर, स्रुति कुंडल-डोलनि जिय जागति।

(गी० ७।१७) डोलहिं-डोलते हैं, डगमग करते हैं, चलायमान होते हैं। उ० सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। (मा० २।२२५।२) डोला-(सं० दोल)-१. डोली, शिविका, पालकी, २. हिला, चला, कंपित हुआ। उ० २. हरि प्रेरित लछिमन मन डोला। (मा० ३।२८।३) डोली-१. हिली, कंपित हुई, २. बदली, परिवर्तित हुई। उ० २. माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा। (मा०१।१९२। छं०४) डोले-हिले, डगे, कंपित हुए। उ० डोले धराधर-धारि, धराधर धरषा। (क०६।७) डोलै-डोलता है, भटकता है। उ० डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना। (क० ७।१४८) डोल्यौ-डिगा, विचलित हुआ। उ० बहुबिधि राम कह्यौ तनु राखन परम धीर नहिं डोल्यौ। (गी० ३।१३)
डोलावा-डुलाया, हिलाया, कंपित किया। उ० काहि न सोक समीर डोलावा। (मा० ७।७१।२) डोलावों-१. डुलाऊँ, हिलाऊँ, २. चलाता हूँ, फिराता हूँ, घुमाता हूँ। उ० २. प्रभु अकृपालु कृपालु अलायक जहँ जहँ चितहिं ढोलावों। (वि० २३२) डोलावौंगी-डुलाऊँगी, चलाऊँगी। उ०थाके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलावौंगी। (गी० २।६)
डोल्लहिं-डोलते है, घूमते हैं। उ० कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। (मा० ६।८८। छं०१)
डौआ-(?)-काठ का चमचा या करछुल। उ० लकड़ी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि। (दो०४२६)

ढ

ढंग-(सं० तंग=जाना, चाल)-१. शैली, पद्धति, तरीका, २. प्रकार, भाँति, ३. रचना, बनावट, गढ़न, ४. युक्ति, उपाय, ५. आचरण, व्यवहार, चाल-ढाल, ६. लक्षण, आभास, ७. बहाना, हीला, पाखंड, ८. अवस्था, दशा।
ढँढोरीं-(सं० ढुंढन)-खोजीं, ढूँढ़ी, तलाश की। उ० सारद उपमा सकल ढँढोरीं। (मा० १।२४१।४)
ढकनि-(अनु० ढका, धक्का)-धक्कों से। उ० ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि। (क० ५।८) ढका-१.धक्का, २. धक्के से। उ० २. सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं। (क० ७।७६)
ढकेलि-(अनु० धक्का, ढका)-ढकेल कर, धक्का देकर। उ० ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि। (क० ५।८) ढकेल्यो-ढकेला, गिराया, धक्का दिया। उ० सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं। (क० ७।७६)
ढनमनी-(अनु० ढनमनाना)-लुढ़क पड़ी, ढुलक पड़ी। उ० रुधिर बमत धरनीं ढनमनी। (मा० ५।४।२)
ढरकें-गिरे, झुके। उ० गए कोस दुइ दिनकर ढरकें। (मा० २।२२६।१) ढरके-(सं० धार)-१. गिरकर बहे, ढले, ढुलके, २. अस्ताचल की ओर चले, ३. डूबने तक, अस्त होने तक। ढरत-(सं० धार, हिं० ढाल)-१. ढरता है, द्रवित होता है, बहता है, २. प्रसन्न होता है, रीझता है, अनुकूल होता है। उ० २.ताको लिए नाम राम सबको सुढर ढरत। (वि० १३४) ढरनि-१. कृपालुता, दया, २. चित्त की प्रवृत्ति, झुकाव, ३. गति, हरकत, हिलना, ४. पतन, गिरना। उ० १. कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिए। (वि० २६७) ढरहीं-(सं० धार)-ढल रहे हैं, हिल रहे हैं। उ० ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं। (मा० १।३५०।२) ढरिए-पसीजिए, दया कीजिए, प्रसन्न हूजिए। उ० कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिए। (वि० २७१) ढरिये-दे० 'ढरिए'। ढरिहै-ढरेगा, बहने लगेगा। उ० प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै। (वि० २६८) ढरी-१. ढली, बही, २. द्रवित हुई, पिघली। ढरैंगे-दया करेंगे, नम्र होंगे। उ० तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि। (वि० १८४)
ढहा-(सं० ध्वंसन, हिं० ढहना)-गिरा, ध्वस्त हुआ, नष्ट हुआ। उ० धन्य मातु, हौं धन्य लागि जेहि राज-समाज ढहा है। (गी० २।६४) ढहे-ढह गए, गिरे, नष्ट हुए। उ० ढहे समूल बिसाल तरु, काल नदी के तीर। (प्र० ६।३।५)
ढहाए-गिरवाए, नष्ट-भ्रष्ट करवाए। उ० बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए। (मा० ४।७।६) ढहावहिं-ढहाते हैं, गिराते हैं, फेंकते हैं। उ० निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। (मा० ६।४१।४) ढहावहीं-गिरा रहे हैं, पछाड़ रहे हैं। उ० खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं। (मा० ६।८८। छं० १) ढहावा-ढहा दिया, गिराया। उ० कलस सहित गहि भवनु ढहावा। (मा० ६।४४।२)
ढाँकी-(सं० ढक=छिपाना)-ढककर, छिपाकर। उ० बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। (मा० २।११७।३)
ढाबर-(सं० दभ्र=झील)-१. गँदला, मटमैला, २. गहरा, ३. छोटा गड्ढा, डबरा, ४. जलमय। उ० १. भूमि परत भा ढाबर पानी। (मा० ४।१४।३)
ढारइ-(सं० धार)-ढरकाती है, गिराती है। उ० नारिचरित करि ढारइ आँसू। (मा० २।१३।३) ढारत-फैलाता, गिराता। उ० दूध दह्योउ माखन ढारत हैं हुतो पोसात दान दिन दीबो। (कृ० ९) ढारति-ढालती हैं, डालती हैं। उ० बार-बार बर बारिज लोचन भरि-भरि बरत बारि उर ढारति। (गी० ५।१९) ढारि-गिरा दे, ढाल दे, उँडेल दे। उ० जोगिजन मुनि मंडली मों जाइ रीती ढारि। (कृ० ५३) ढारी-१. ढाला हुआ, २. गिराया, ढरका दिया, ३. ढालू। उ० १. अति बिस्तार चारु गच ढारी। (मा० १।३२४।१) ढारो-गिराया, ढारा, लुढ़काया। उ०

ढारो बिगारो मैं काको कह केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो। (ह० १६) ढार्यौ–१. गिराया, उँड़ेला, २. व्यंग्य किया। उ० १. खायो, कै खवायो, कै बिगार्यौ, ढार्यौ लरिका री। (कृ० १६)

ढास–(सं० दस्यु)–ठग, लुटेरा, डाकू। ढासनि–ठगों, चोरों, लुटेरों। उ० बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर। (दो० २३६)

ढाहत–(सं० ध्वंसन)–१. गिराता है, २. गिराते हुए, ढाहते हुए। उ० २. ढाहत भूप रूप तरु मूला। (मा० २। ३४।२) ढाहति–१. गिराती है, नष्ट करती है, २. ढाहती हुई, गिराती हुई। ढाहिगो–गिरा गया, नष्ट कर गया। उ० बंक गढ़ लंक सो ढका ढकेलि ढाहिगो। (क० ६।२३) ढाहिबे–गिराने, नष्ट करने। उ० लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे को कहरी है। (क० ६।२६) ढाहे–गिराए, ढहाए। उ० ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले। (मा० ६।४१। छं० १) ढैहैं–ढाहेंगे, गिराएँगे। उ० दे० 'ढेरी'।

ढिंग–(सं० दिक्=ओर)–१. पास, समीप, निकट, २. तट किनारा, तीर, ३. दिशा।

ढिग–दे० 'ढिंग'। उ० १. अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। (मा० ५।४६।२)

ढिठाई–(सं० धृष्ट)–१. धृष्टता, गुस्ताखी, चपलता, २. निर्लज्जता। उ० १. जद्यपि नाथ उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाई। (वि० ११२)

ढिमढिमी–(सं० डिंडिम)–१. डमरू, २. खँजड़ी।

ढीट्यो–ढिठाई, धृष्टता। उ० अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई। (मा० १।३२६। छं० ३)

ढीठ–(सं० धृष्ट)–१. बड़ों का ख्याल न करनेवाला, बे-अदब, शोख, २. साहसी, हिम्मतवाला। ढीठे–धृष्टता-पूर्ण, ढिठाई से भरे हुए। उ० तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति ढीठे। (वि० १६६)

ढीठी–धृष्टता, ढिठाई।

ढीठु–दे० 'ढीठ'। उ० १. दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू। (मा० २।३१४।३)

ढीठो–ढिठाई, धृष्टता, गुस्ताखी। उ० प्रभु सों मैं ढीठो बहुत दई है। (गी० २।७८)

ढील–(सं० शिथिल, प्रा० सिढिल)–१. मंद, शिथिल, सुस्त, २. ढिलाई, सुस्ती, ३. देर, ४. बालों का कीड़ा, जूँ, ५. छोड़ना, क्षमा करना। उ० २. ढील तेरी, बीर, मोहि पीर तें पिराति है। (ह० ३०) ५. त्यों-त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों-ज्यों सील बस ढील दई है। (वि० १३६)

ढीला–१. जो कसा न हो, २. सुस्त, धीमा, मंद, ३. गीला, ४. जो अटल न रहे, ५. खुला हुआ। ढीले–ढील, शिथिल, सुस्त। उ० भारी गुमान जिन्हें मन में, कबहूँ न भये रन में तनु ढीले। (क० ६।३२)

ढीलो–शिथिल, ढीला। उ० तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै। (क० ५।३)

ढेक–(सं०)–एक चिड़िया जिसकी चोंच और गर्दन लंबी होती है। उ० ढेक महोख ऊँट बिसराते। (मा० ३। ३८।३)

ढेरी–(सं० धरण)–राशि, समूह, ढेर। उ० नेकु धका दैहैं ढैहैं ढेलन की ढेरी सी। (क० ६।१०)

ढेरु–ढेर, राशि। दे० 'ढेरी'। उ० सुखमा को ढेरु कैधौं सुकृत सुमेरु कैधौं। (क० ७।१३६)

ढेरै–ढेर को, समूह को। उ० रंक लूटिबे को मानों मनि गन-ढेरै। (गी० ५।२७)

ढेलन–(सं० दल, हि० डला)–मट्टी या ईंट के टुकड़े। ढेला का बहुवचन। उ० दे० 'ढेरी'। ढेला–(सं० दल)–ईंट, मिट्टी या पत्थर का टुकड़ा।

ढोट–दे० 'ढोटा'।

ढोटनिहूँ–बालकों का भी, लड़कों का भी। उ० जस रावरो, लाभ ढोटनिहूँ, मुनि सनाथ सब कीजै। (गी० १।४८)

ढोटा–(सं० दुहितृ, हि० ढोटी)–लड़का, बालक, बेटा। उ० रामु लखनु दसरथ के ढोटा। (मा० १।२६६।४) ढोटे–लड़के, बच्चे। उ० ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे। (क० ५।६)

ढोटो–ढोटा, लड़का। उ० गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको? (क० १।२०)

ढोर (१)–(सं० धार, हि० ढार, ढुरना=इधर-उधर जाना)–१. गाय-बैल आदि चौपाए, पशु, मवेशी, २. सिलसिला।

ढोर (२)–(सं० ढोल)–१. एक बाजा, ढोल, २. ध्वनि।

ढोल–(सं०)–एक बाजा, जिसके दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है। बड़ी ढोलकी। उ० भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई। (मा० १।२६३।१)

ढोलू–दे० 'ढोल'। उ० १. कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू। (मा० २।१९२।२)

ढोव–(सं० वोट=वहन करना)–भेंट की वस्तु जो मंगल के अवसर पर भार आदि में भरकर भेजते हैं। उ० लै-लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति-भाँति भरि भार। (गी० १।२)

त

तंडुल–(सं०)–चावल, अक्षत, चाउर।

तंतु–(सं०)–१. सूत, डोरा, तागा, २. ताँत, चमड़े, या नसों की बनी डोरी, ३. मगर, ग्राह, ४. विस्तार, फैलाव, ५. संतान, बच्चे, ६. बंश की परंपरा, ७. यज्ञ की परंपरा।

तंत्र- (सं०)–१. अधिकार, हक़, २. उपाय, तदबीर, ३.

अधीनता, ४. काम, ५. पक्का मत, सिद्धांत, ६. सूत, डोरा, ७. ताँत, तंतु, ८. कपड़ा, ९. प्रमाण, सबूत, १०. औषधि, दवा, ११. कारण, १२. राज्य, शासन काल, १३. राज-कर्मचारी, राजा के नौकर, १४. राज्य-प्रबंध, १५. पद, ओहदा, १६. श्रेणी, वर्ग, १७. समूह, झुंड, १८. शपथ, कसम, १९. घर, मकान, २०. दल, फौज़ २१. आनंद, प्रसन्नता, २२. कुल, खानदान, २३. लक्ष्य, २४. झाड़ने फूँकने का मंत्र, २५. हिंदुओं का उपासना-संबंधी एक शास्त्र जो शिव का बनाया कहा जाता है। २६. माया। उ० २६. अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघु-कुल मनी। (मा० १।५१।छं०१) तंत्रशास्त्र-शिव-प्रणीत एक शास्त्र जो आगम, यामल तथा मुख्यतंत्र-इन तीन भागों में विभक्त है। इस शास्त्र के सिद्धांत गुप्त रक्खे जाते हैं, और इसकी शिक्षा लेने के लिए मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता है। तंत्र शास्त्र अब केवल मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि मंत्रों के लिए प्रसिद्ध है। यह शास्त्र प्रधानतः शाक्तों का है। इसके मंत्र प्रायः अर्थहीन तथा एक या डेढ़ अक्षरों के होते हैं। तंत्रशास्त्र के पाँच मकार (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन) प्रसिद्ध हैं। तांत्रिकों की उपासना भी भिन्न तरह की होती है। ये अपनी 'चक्रपूजा' में मद्य और मांस का प्रयोग करते हैं तथा नीच जाति की स्त्रियों को नंगी करके उनका पूजन आदि करते हैं। बाद में हिंदुओं की देखादेखी बौद्धों में भी तंत्र का प्रचार हुआ और अनेक ग्रंथ लिखे गए।

तंत्री-(सं०)-१. सितार, बीन आदि बाजे या उनमें लगे तार, २. गुरुच, ३. देह की नसें, ४. निद्रा, नींद, ५. संपादक, ६. रस्सी।

तँबोलिन-(सं० तांबूल)-पान बेचनेवाली स्त्री, पनेरिन, बरइन। उ० रूप सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो। (रा० ६)

त-(सं० तद्)-तो। उ० नाहिं त मौन रहब दिनु राती। (मा० २।१६।२)

तइ-(सं० तापन, हि० तावना—गर्म करना)-तपाकर, आँच देकर, जलाकर, पिघलाकर। तई-१. जल रही है, तप रही है, २. जली हुई, तप्त, जली, ३. एक प्रकार की कड़ाही। उ० २. दीनदयालु दुरित दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है। (वि० १३९) तये-तपाया, गर्म किया, जलाया, कष्ट दिया। उ० पाप-खानि जिय जानि अजा-मिल जमगन तमकि तये ताको भेते। (वि० २४१) तयो-जला, जलता रहा। उ० राम बिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसि बासर तयो तिहुँ ताय। (वि० ८३)

तउ-(सं० ततः)-१. तो भी, तिस पर भी, २. त्यों, तैसे। उ० १. तउ न तजा तनु जीव अभागें। (मा० २।१६६।३)

तऊ-दे० 'तउ'। उ० १. है अभिमान तऊ मन में, जन भाषिहै दूसरे दीनन पाहीं। (क०७।६४)

तक-(सं० अंत + क)-पर्यंत, तलक, लौं।

तकइ-(सं० तर्क, प्रा० तक्क, हि० ताकना)-ताकता है, देखता है। उ० जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती। (मा० २।१३।२) तकत-ताकते हैं, देखते हैं, प्रतीक्षा करते हैं। उ० जटा मुकुट सिर सारस-नयननि गौं हैं तकत सुभौंह सकोरे। (गी० ३।२) तकहीं-ताकते हैं, देखते हैं। उ० भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। (मा० १।२६७।४) तकि-१. ताककर, देखकर, २. लक्ष्य कर, ३. निशाना साधकर। उ० ३. हुमगि लात तकि कूबर मारा। (मा० २।१६३।२) मु० तकि तकि-देख-देखकर, लक्ष्य कर, निशान साध-कर। उ० दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक। (जा० ९४) तकु-१. देख, निहार, ताक, २. आश्रय ले, पनाह ले। उ० २. तुलसी तकु तासु सरन जाते सब लहत। (वि० १३३) तके-१. देखे, खोजे, २. शरण ली। उ० २. देवन्ह तके मेरुगिरि खोहा। (मा० १।१८२।३) तकेउ-१. लक्ष्य किए, २. लक्ष्य करके चले, देखकर उधर ही चले, ३. ताका, देखा। उ० २. मनहुँ सरोवर तकेउ पिआसे। (मा० १।३०७।४) तकैं-देखते हैं, देखा करते हैं। उ० ताहि तकैं सब ज्यों नदी बारिधिन बुलाई। (वि० ३५) तक्यो-देखा, देख लिया। उ० चले जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज घोर घाम के लागे। (गी० २। ६८)

तकिया-(फ़ा०)-१. आश्रय, सहारा, शरण, २. कपड़े का एक थैला जिसमें रुई आदि भरी होती है और जिसे सोते समय सर के नीचे या यों हाथ या पीठ के सहारा के लिए बिस्तर पर रखते हैं। उ० १. तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे? (वि० ३३)

तगण-(सं०)-छंद शास्त्र में तीन वर्णों का वह समूह जिसमें पहले दो गुरु और फिर एक लघु वर्ण होता है। इसका चिह्न ऽऽ। है। संतोष में भी गुरु, गुरु तथा लघु है इसी आधार पर तगण का संतोष की जगह तुलसी ने प्रयोग किया है। उ० तुलसी तगन बिहीन नर सदा नगन के बीच। (स० २८९)

तग्य-दे० 'तज्ञ'। उ० तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। (मा० ७।३४।३)

तज (१)-(सं० त्यजन, हि० तजना)-१. त्यागो, छोड़ दो, २. छोड़कर, ३. त्याग। तजइ-छोड़ता, छोड़ता है, त्याग देता है। उ० लुबुध मधुप इव तजइ न पासू। (मा० १। १७।२) तजई-छोड़ता है, छोड़ता, त्यागता। उ० सखि परंतु पनु राउ न तजई। (मा० १।२२२।२) तजउँ-१. छोड़ता, २. छोड़ूँ। उ० १. तजउँ न तन निज इच्छा मरना। (मा० ७।९६।३) तजत-१. छोड़ता, छोड़ता है, २. छोड़ते हुए। उ० १. बिनु हरिभजन इँनारुन के फल, तजत नहीं करुआई। (वि० १७५) तजन-तजना, छोड़ना। उ० तजन चहत सुचि स्वामि सनेही। (मा० २। ६४।२) तजहिं-छोड़ देते हैं, त्याग देते हैं। उ० सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम विषय बिलासु। (मा० २। १४०) तजहि-छोड़ो, छोड़ दो। उ० अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा। (मा० ६।९९ छं०१) तजहीं-छोड़ते, छोड़ते हैं। उ० पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं। (मा० ३।४३।५) तजहु-छोड़ो, त्यागो, त्यागोगे। उ० जौं तुम तजहु भजौं न आन प्रभु, यह प्रमान पन मोरे। (वि० ११२) तजहू-छोड़ो, छोड़ दो। तजा-छोड़ा, त्यागा। उ० तउ न तजा तनु जीव

अभागें। (मा० २।१६६।३) तजि-छोड़कर, त्यागकर। उ० तौ तजि विषय बिकार सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु। (वि० २०५) मु० तजि तजि-छोड़ छोड़कर। उ० जेहि बाटिका बसति तहँ खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन। (गी० ५।२०) तजिअ-छोड़ना, छोड़ देना। उ० नीति न तजिअ राजपदु पाएँ। (मा० २।१५२-२) तजिय-छोड़ो, छोड़ दो, छोड़ देना। उ० तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन। (जा० १८८) तजिहउँ-त्याग दूँगा, छोड़ूँगा। उ० तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। (मा० १।६४।४) तजी-त्यागा, छोड़ा। उ० बिनु अघ तजी सती असि नारी। (मा० १।१०४।४) तजु-छोड़, छोड़ दे, त्याग। उ० करु बिचार, तजु बिकार,भजु उदार रामचंद्र। (वि० ७४) तजे-छोड़ा, छोड़ दिया, छोड़ दिया है। उ० तजे राम हम जानि कलेसू। (मा० २।८६।२) तजेउँ-त्याग दिया, छोड़ दिया। उ० पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल। (मा० ७।१०६ख) तजेउ-१. त्यागा, त्याग दिया, २. त्यागकर। उ०२. तनु धनु तजेउ बचन पन राखा। (मा० २।३०।४) तजेहि-त्यागने में ही। उ० हरि-वियोग तनु तजेहि परम सुख ए राखहि सोइ है बरियाई। (कृ० ५६) तजेहु-तजा, छोड़ा, छोड़ दिया। उ० मम हित लागि तजेहु पितु माता। (मा० ६।६१।२) तजौं-तजूँ, त्यागूँ, छोड़ूँ। उ० भागौं तुरत तजौं यह सैला। (मा० ४।१।३) तज्यो-छोड़ा, त्याग दिया। उ० ताहू तें परम कठिन जान्यो ससि तज्यो पिता तब भयो ब्योमचर। (कृ० ३१)

तज (२)-(सं० त्वच्)-तमल का वृक्ष।

तज्ञ-(सं०)-तत्वज्ञानी, पंडित, ज्ञानी। उ० तज्ञ, सर्वज्ञ, यज्ञेश, अच्युत, विभो। (वि० १०)

तट-(सं०)-१. किनारा, कूल २. नज़दीक, समीप, ३. खेत, क्षेत्र, ४. प्रदेश। उ० १. बस मारीच सिंधुतट जहवाँ। (मा० ३।२३।४) तटन्हि-किनारों पर। उ० डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं। (मा० ७।२३।५)

तटिनि-दे० 'तटिनी'। उ० मंदाकिनि तटिनि तीर, मंजुल मृग बिहग भीर। (गी० २।४४)

तटिनी-(सं०)-नदी, सरिता। उ० चलि री आली देखन लोयन-लाहु पेखन ठाढ़े सुरतरु-तर-तटिनी के तट हैं। (कृ० २०)

तटी-(सं०)- १. तीर, किनारा, २. नदी, सरिता, ३. घाटी, तराई।

तड़ाग-(सं० तडाग)-तालाब, सरोवर, पोखरा। उ० बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही। (मा० १।३४।छं० १)

तड़ागा-दे० 'तड़ाग'। उ० ते सब जलचर चारु तड़ागा। (मा० १।३७।५)

तड़ागु-दे० 'तड़ाग'। उ० बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत। (मा० १।२२७)

तड़ित-(सं० तडित्)-बिजली, विद्युत। उ० तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि। (मा० १।१४७)

तत (१)-(सं० तत्)-१. उतने, २. उस, वह। उ० १. जत समान तत जान लघु अपर बेद गुरु मान। (स० २५)

तत (२)-(सं०)-१. वायु, २. विस्तार, ३. पिता, ४. पुत्र, ५. सारंगी, सितार आदि तारवाले बाजे।

ततकाल-दे० 'तत्काल'। उ० ततकाल तुलसिदास जीवन जनम को फल पाइहै। (वि० १३५)

ततकाला-दे० 'ततकाल'। उ० मज्जनफल पेखिअ ततकाला। (मा० १।३।१)

तति-(सं०)-१. श्रेणी, पंक्ति, २. समूह, झुंड, ३. विस्तार, ४. विस्तीर्ण, चौड़ा। उ० ४. यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति। (गी० ७।१७)

तत्-(सं०)-१. उस, २. ब्रह्म का एक नाम, ३. हवा, वायु। उ० १. मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं स्वान्तस्तमः शान्तये। (मा० ७।१३।श्लो० १)

तत्काल-(सं०)-तुरंत, उसी समय।

तत्त्व-(सं०)-१. वास्तविक स्थिति, यथार्थता, असलियत, २. जगत का मूल कारण, ३. पंचभूत, ४. ब्रह्म, परमात्मा, ५. सार, सार वस्तु, ६. सारांश, ७. उद्देश्य। उ० ३. ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व विभाग। (मा० १।४४)

तत्पर-(सं०)-१. सन्नद्ध, मुस्तैद, उद्यत, तैयार, २. निपुण, चतुर, होशियार, ३. लीन, निरत। तत्परौ-दोनों तत्पर, दोनों लीन। उ० सीतान्वेषण तत्परौ पथिगतौ भक्ति प्रदौ तौहिनः। (मा० ४।श्लो० १)

तत्र-(सं०)-वहाँ, उस जगह, उस स्थान पर। उ० तत्र त्वद्भक्ति सज्जन-समागम सदा भवतु मे राम विश्राममेकम्। (वि० ५७) तत्रैव-वहीं पर, उसी जगह। उ० यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति क्षीराब्धिवासी। (वि० ५७)

तत्व-दे० 'तत्त्व'।

तत्वज्ञ-(सं० तत्त्वज्ञ)-दे० 'तत्वदर्शी'।

तत्वदरसी-दे० 'तत्वदर्शी'। उ० एहि आरती निरत सनकादि श्रुति सेष सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्वदरसी। (वि० ४७)

तत्वदर्शी-(सं० तत्वदर्शिन्)-तत्वज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी, जो ब्रह्म, सृष्टि तथा आत्मा आदि के संबंध में यथार्थ ज्ञान रखता हो।

तथा-(सं०)-१. और, व, २.इसी तरह, ऐसे ही, इस प्रकार, ३. सत्य, ४. सीमा, हद, ५ .निश्चय, ६. समानता। उ० १. जिमि गज-दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु। (वि० ११८)

तथापि-(सं०)-तो भी, तिस पर भी, तब भी। उ० प्रभुहिं तथापि प्रसन्न बिलोकी। (मा० १।१६४।४)

तथास्तु-१. एवमस्तु, ऐसाही हो, इसी प्रकार हो, २.वैसा ही, उसी प्रकार।

तथ्य-(सं०)-सत्यता, सच्चाई, यथार्थता।

तदनंतर-(सं०)-उसके पीछे, उसके बाद, उसके उपरांत।

तदपि-(सं०)-तो भी, तिस पर भी, तथापि। उ० जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो। (वि० ६४)

तदा-(सं०)-उस समय, तब, उस काल।

तदि-तो,त ब।

तद्-(सं०)-१. वह, २. उसका, ३. तब, उस समय। उ०

२. मोह दसमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाक पारिजित्-काम विश्रामहारी। (वि० ५८)

तन-(फ़ा०, तु० सं० तनु)-१. शरीर, देह, जिस्म, २. तरफ़, ओर। उ० १.दुसह सांसति कीजै आगे दैया तन की। (वि० ७५) २. हँसे राघौ जानकी लषन तन हेरि-हेरि। (क० २।१०) तनहि-तनको, शरीर को। उ० अब नंद-लाल-गवन सुनि मधुबन तनहि तजत नहि बार लगाई। (कृ० २५)

तनक-(सं० तनु, हि० तनिक)-थोड़ा, छोटा, तुच्छ। उ० तो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को। (क० ७।७३) तनकाऊ-थोड़ा भी, ज़रा भी, कुछ भी। तनकौ-तनिक भी। उ० तप तीरथ साधन जोग बिराग सों होइ नहीं दृढ़ता तनकौ। (क० ७।८७)

तनत्रान-(सं० तनत्राण)-कवच, ज़िरहबख्तर।

तनय-(सं०)-पुत्र, बेटा, लड़का। उ० पवन तनय संतन हितकारी। (वि०३६) तनया-(सं०)-लड़की, पुत्री। उ० तात जनक तनया यह सोई। (मा० १।२३१।१)

तनरुह-(सं० तनूरुह)-बाल, रोम, रोआँ। उ० हरषवंत चर अचर भूमि सुर तनरुह पुलक जनाई। (गी० १।१)

तनाए-(सं० तान=विस्तार)-तनवाए। उ० कलस चँवर तोरन धुजा सुबितान तनाए। (गी० १।६)

तनिक-(सं० तनु=अल्प)-थोड़ा, अल्प, कम।

तनियाँ-(सं० तनिका)-१. लँगोट, कौपीन, २. कछनी, जाँघिया। उ० २. तनियाँ ललित कटि, बिचित्र टेपारो सीस। (कृ० २)

तनी (१)-(सं० तान, हि० तानना)-तानी, फैलाई। उ० कलित कला कांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी। (गी० १।५)

तनी (२)-(सं० तनिका)-अंगरखा आदि बाँधने की डोरी, बंद।

तनुं-शरीर को। उ० शंखें द्राभमतीव सुंदर तनुं शार्दूल चर्माम्बरं। (मा० ६।१।श्लो०२) तनु-(सं०)-१. शरीर, देह, २. दुबला, कृश, ३. चमड़ा, खाल, ४. केंचुली, ५. कोमल, ६. सुंदर, ७. थोड़ा, अल्प, ८. विस्तार, ९. दिशा, ओर, १०. सूक्ष्म, ११. स्त्री, १२. ज्योतिष में अग्र-स्थान। उ० १. अवध तजें तनु नहिं संसारा। (मा० १।३५।२) ६. धोए मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय यहि तनु हेरे। (वि० १११)

तनुजा-(सं०)-कन्या, बेटी। उ० नहिं मानत कौ अनुजा तनु जा। (मा० ७।१०२।३)

तनुरुह-(सं० तनूरुह)-बाल, रोम, रोआँ।

तनू (१)-(सं०)-शरीर, देह।

तनू (२)-(सं० तनु)-थोड़ा, कम।

तनूजो-(सं० तनूज)-बेटा, लड़का। उ० मीत पुनीत कियो कपि भालु को, पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो। (क० ७।५)

तनै-(सं० तनय)-पुत्र, बेटा। उ० कोउ उलटो कोउ सूधो जपि भए राजहंस बायस-तनै। (६।४०)

तनोति-विस्तृत करता है, विस्तार करता है। उ० स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथाभाषानिबंधमति मंजुल मा तनोति। (मा० १।१।श्लो०७) तनोतु-विस्तार करें, फैलावे। उ० संतत शंतनोतु मन रामः। (मा० ३।११।८)

तनोरुह-(सं० तनूरुह)-बाल, केश, रोम, रोआँ। उ० अनुज सहित अति पुलक तनोरुह। (मा० ७।५।२)

तन्मय-(सं०)-लीन, मग्न, निरत, लगा हुआ।

तप (१)-(सं० तपस्)-१. शरीर को कष्ट देनेवाले वे व्रत-नियम आदि जो चित्त की शुद्धि तत्त्वज्ञान तथा ब्रह्म की प्राप्ति आदि के लिए किए जाते हैं। तपस्या। २. शरीर या इंद्रिय को वश में रखने का धर्म, ३. नियम, ४. अग्नि, ५. एक लोक का नाम, ६. एक कल्प का नाम। उ० १. कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग, रे! (वि० ६७) तपहिं-तप में, तपस्या में। उ० बिसरी देह तपहिं मनु लागा। (मा० १।७४।२)

तप (२)-(सं०)-१. ताप, गरमी, २. ग्रीष्म ऋतु, ३. बुख़ार, ज्वर।

तपइ-(सं० तप)-तपता है, जलता है, जलने लगा। उ० तपइ अवाँ इव उर अधिकाई। (मा० १।५८।२) तपत-१. तपता है, जलता है, २. कष्ट सहता है, मुसीबत झेलता है, ३. प्रभुत्व दिखलाता है, आतंक फैलाता है, ४, गर्म, तपा हुआ। उ० १. तुलसी तपत तिहूँ ताप जग, जनु प्रभु छठी छाया लही। (गी० १।५) तपिहै-तपेगा, जलेगा। उ० तौ लौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै। (वि० ६८)

तपन-(सं०)-१. ताप, दाह, जलन, आँच, २. तेज, ३. सूर्य, ४. गरमी, ग्रीष्म, ५. घाम धूप, ६. सूर्यकांत मणि, सूरजमुखी, ७. एक नरक का नाम, ८. मंदार, आक। उ० २. तपन तीछन तरुन, तीव्रतापघ्न तपरूप तनुभूप तमपर तपस्वी। (वि० ५५) तपनि-दाह, गर्मी, जलन। उ० तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान। (वै० २१)

तपसालि-(सं० तपःशालिन्)-तपशाली, तपस्वी। उ० आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि। (मा० १।३३०)

तपसिन्ह-तपस्वियों, मुनियों। उ० मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। (मा० ५।४१।३) तपसी-(सं० तपस्वी)-तप करनेवाला, तपस्वी। उ० तपसी धनवंत दरिद्र गृही। (मा० ७।१०१।१)

तपस्या-(सं०)-तप, व्रतचर्या, तपश्चर्या। उ० मूरतिमंत तपस्या जैसी। (मा० १।७८।१)

तपस्वी-(सं० तपस्विन्)-जो तप करता हो, तपस्या करने-वाला। उ० तपन तीछन तरुन, तीव्र तापघ्न तपरूप तनु-भूप तमपर तपस्वी। (वि० ५५)

तपित-१. गर्म, तप्त, जला हुआ, २. आग।

तपी-तप करनेवाला, तपस्वी, योगी। उ० द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी। (मा० ७।१०१।४)

तपु-तप, तपस्या। उ० आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। (मा० २।१०७।३)

तपोधन-जिनका धन तप है, तपस्वी, तपी। उ० सिद्ध तपो-धन जोगिजन सुर किंनर मुनि बृंद। (मा० १।१०५)

तप्त-१. तपाया, जलाया, २. तपस्या में तपाया। उ० २.

तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं। (वि० ४६) तप्त-(सं०)-१. तपाया या तपा हुआ, जलता हुआ, गर्म, २. दुखी, पीड़ित। उ० १. तप्त कांचन-वस्त्र शस्त्रविद्या-निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोज नाभं। (वि० ५०)

तब-(?) १. उस समय, उस वक्त, २. इस कारण, इस वजह से। उ० १.तुलसिदास भव त्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै। (वि० ६३) तबहिं-उसी समय, तब ही। उ० तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। (मा० १। ७७।४) तबहीं-तभी, उसी समय। उ० हठ परि हरि वर जाएहु तबहीं। (मा० १।७५।२) तबहुँ-तब भी, उस समय भी। उ० तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। (मा० २। १३।४) तबहूँ-तब भी, तभी, उसी समय। उ० चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ। (मा० १।१२७।४) तबैहीं-तभी, तब ही। उ० तुम अपनायो हौं तबैहीं परि जानिहौं। (क० ७।६३)

तमः-अंधकार। उ० मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं स्वान्त स्तमः शांतये। (मा० ७।१३१। श्लो० १) तम (१)-(सं० तमस्)-१. अंधकार, अँधेरा, २. अज्ञान, अविवेक, ३. क्रोध, गुस्सा, ४. राहु, ५. पाप, ६. सुअर, वाराह, ७, कालिमा, श्यामता, ८. नरक, ९. तमाल वृक्ष, १०. तीनों गुणों में से एक, तमोगुण, ११. शोक, शोच, १२. अशांति। उ० १. कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग। (मा० ४।१५ ख) २. नखदुति भगत हृदय तम हरना। (मा० १।१०६।४)

तम (२)-(सं०)-एक प्रत्यय जो 'अत्यंत' अर्थ में विशेषण शब्दों के अंत में लगता है। जैसे सुन्दरतम=अत्यंत सुन्दर, सबसे सुन्दर।

तम (३)-(सं०)-उसको। उ० तमेकमद्भुतं प्रभुं। (मा० ३। ४। छं० ६)

तमकि-(अनु० तमकना)-क्रोध का आवेश दिखलाकर, त्योरियाँ चढ़ाकर, तमककर, तमतमाकर। उ० सो सुनि तमकि उठी कैकेई। (मा० २।७६।१) तमके-१. गर्म हुए, २. गर्जे, ३. वेग से झपटे। उ० १. तमके घननाद से बीर पचारि कै, हारि निसाचर सैन पचा। (क० ६।१५) तमक्यो-क्रोधित हुआ। उ० यों मन गुनति दुसासन दुर-जन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी। (कृ० ६०)

तमकूप-बिना पानी का कूआँ, अंधा कूआँ। उ० जानत अर्थ अनर्थ-रूप, तमकूप परब यहि लागे। (वि० ११७)

तमचुर-(सं० ताम्रचूड)-मुरगा, कुक्कुट। उ० तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे! (गी० १।३३)

तमसा-(सं०)-टौंस नाम की नदी विशेष। उ० तमसा तीर तुरत रथु आवा। (मा० २।१४७।१)

तमा (१)-(सं० तमस्)-१. राहु, २. लोभ, लालच। तमाइ (१)-लोभ, लालच। उ० जापकी न, तप खप कियो न तमाइ जोग। (क० ७।७७) तमाहि-तम ही, लालच ही। उ० तुलसी तमाहि ताहि काहु बीर आन की। (ह० १३)

तमा (२)-(सं०)-रात, रजनी।

तमाइ (२)-(?)-तैयार होकर, सन्नद्ध होकर।

तमारि-(सं०)-सूर्य, अँधेरे का शत्रु।

तमारी-दे० 'तमारि'। उ० गनप गौरि तिपुरारि तमारी। (मा० २।२७३।२)

तमाल-(सं०)-१. एक वृक्ष विशेष, जो आबनूस की तरह काला होता है। २. एक प्रकार की तलवार, ३. काले कत्थे का पेड़, ४. मोरपंखी, ५. वरुण वृक्ष, ६. चंदन का टीका। उ० १. तरुन तमाल बरन तनु सोहा। (मा० २।११५।३)

तमाला-दे० 'तमाल'। उ० १. पाकरि जंबु रसाल तमाला। (मा० २।२३७।१)

तमि-(सं० तमी)-रात, निशा, यामिनी। उ० भानु गोत्र तमि तासु पति कारन अति हित जाहि। (स० २५६)

तमी-(सं०)-अँधेरी रात, रात। उ० तहँ न मोह भय-तम तमी, कलि कज्जली बिलास। (दो० ५७१)

तमीचर-(सं०)-रात में घूमनेवाले, राक्षस, निशाचर। उ० मिटे घटे तमीचर तिमिर भुवन के। (क० ६।३)

तमोगुण-१. ३ गुणों में से एक, सांख्य शास्त्रानुसार प्रकृति का तीसरा गुण जो भारी और रोकनेवाला माना गया है। जिस व्यक्ति या जीव में इस गुण की अधिकता होगी वह बुराइयों की ओर झुकेगा। २. अँधेरा, अज्ञान, तमस्।

तरंग-(सं०)-१. लहर, हिलोर, मौज, २. चित्त की मौज, आनंद, मस्ती, ३. उत्साह, ४. संगीत के स्वरों का उतार-चढ़ाव, ५. वस्त्र, कपड़ा। उ० १. पावन गंग तरंग माल से। (मा० १।३२।७) २. नाचहिं नाना रंग, तरंग बढ़ा-वहिं। (पा० १०४)

तरंगा-दे० 'तरंग'। उ० १. रामु बिलोकहिं गंग तरंगा। (मा० २।८७।३)

तरंगिण-दे० 'तरंगिनि'।

तरंगिनि-(सं० तरंगिणी)-तरंगवाली, नदी, सरिता। उ० सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। (मा० १।३१।४)

तरंगी-मौजी, मनमौजी, जो जी में आवे, वही करनेवाला, मस्त। उ० नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब। (मा० १।९३)

तरंति-(सं०)-तर जाते हैं, पार कर जाते हैं। उ० १. हरिं नराभजंति येऽतिदुस्तरं तरंति ते। (मा० ७।१२२ ग) तर (१)-(सं०)-१.(क) तरना, पार करना, पार करने की क्रिया, (ख) पारकर, तरकर, (ग) तरता है, २. अग्नि, ३. वृक्ष, ४. रास्ता, मार्ग, ५. गति, ६. पीछे, ७. कठिन, ८. महान्। उ० १. (ग) गाइ राम गुन-गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास। (दो० ५६२) तरत-१. तर जाता है, पार होता है, मुक्त हो जाता है, २. तर रहे हैं, ३. तर गए, ४. तरते हुए, ५. तरने में, पार करने में। उ० ५. यह लघु जलधि तरत कति बारा। (मा० ६।१।१) तरन-१. तरनेवाला, मुक्त होनेवाला, पार करनेवाला, २. पार करना, तरना, ३. उद्धार, निस्तार, ४. बेड़ा, पानी का बेड़ा, ५. स्वर्ग, ६. तारनेवाला। उ० १. होत तरन तारन नर तेऊ। (मा० २।२१७।२) तरहिं-तरते हैं, तर जायँगे। उ० सादर सुनहिं ते तरहिं भव-सिंधु बिना जल जान। (मा० ५।६०) तरहि-तर जायगा,

मुक्त हो जायगा। उ० तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि। (वि०२३७) तरहीं–तर जाते हैं। उ०सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। (मा०१।१२२।१) तरिए–तर जाऊँ, तरूँगा। उ० जानत हूँ मन बचन कर्म पर हित कीन्हें तरिए। (वि० १८६) तरिगे–तर गए, मुक्त हो गए। उ० अनायास भवनिधि नीच नीके तरिगे। (गी० २।३२) तरित–तरता, पार जाता। उ० घोर भव अपार-सिंधु तुलसी कैसे तरित? (वि० १६) तरिबे–तरना, पार उतरना। उ० हमहुँ निठुर-निरुपाधि-नेह निधि निज भुज-बल तरिबे हो। (कृ०३६) तरिय १. तरिए, पार उतरिए, २. पार होता हूँ, उतरता हूँ, ३. तरेगा, पार होगा। उ० ३. करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया। (वि० ११६) तरिहउँ–तर जाऊँगा। उ० पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ। (मा० ७।१८।४) तरिहहिं–तरेंगे, तर जायँगे। उ० गाइ-गाइ भवनिधि नर तरिहहिं। (मा० ६।६६।२) तरिही–तर जायगा। उ० सो बिनु श्रम भवसागर तरिही। (मा० ६।३।२) तरी (१)–तर गईं, मुक्त हो गईं। उ० जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी। (मा० ७।१३। छं० ४) तरे (१)–पार उतरे, पार हुए, तैरे। उ० श्री रघुबीर-प्रताप तें सिंधु तरे पाषान। (दो० १२६) तरै–तरे, पार करे, तर जाय। उ० जो न तरै भव-सागर। (मा० ७।४४) तरो–तर जाय, पार हो जाय। उ० राम-नाम बोहित भवसागर, चाहै तरन तरो सो। (वि० १७३) तरौं–तर जाऊँ, पार हो जाऊँ। उ० तुलसि-दास प्रभु-कृपा-बिलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं। (वि० १४१) तर्‌यो–तर गया, तर गया था।

तर (२)–(फ़ा०)–१. भीगा, गीला, २. शीतल, ठंढा, ३. हरा।

तर (३)–(सं० तल)–तले, नीचे। उ० एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। (मा० १।१०६।२)

तर (४)–(सं०) एक प्रत्यय जो विशेषणों में दूसरे की अपेक्षा आधिक्य सूचित करने के लिए लगाया जाता है, जैसे श्रेष्ठतर। उ० भ्रमत आमोद बस मत्त मधुकर-निकर मधुरतर मुखर कुर्वन्ति-गानं। (वि०५१)

तरक–दे० 'तर्क'। उ० ३. तासु तरक तिनगन मन मानी। (मा० २।२२२।३)

तरकस–(फ़ा० तरकश)–तीर रखने का चोंगा, तुणीर। उ० तन तरकस से जात हैं, स्वास सरीखे तीर। (स० १२०)

तरकसी–छोटा तरकश। उ० धरे धनु सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढ़े चले चारु चालु। (गी० १।४०)

तरका–तर्क करके, हुज्जत करके। उ० परहिं जे दूषहिं स्नुति करि तरका। (मा० ७।१००।२) तरकि (१)–(सं०तर्क)–१. तर्क कर, हुज्जत कर। उ० १. तरकि न सकहिं सकल अनुमानी। (मा० १।३४१।४) तरकी–तर्क की, विचार की। उ० प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी। (मा० २। २८६।३)

तरकि (२)–(अनु० तरकना)–उछलकर, कूदकर। उ० सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आयो। (गी० ५।१) तरकेउ (१)–(अनु० तरकना)–कूदा, उछला। उ० तरकेउ पवन तनय बल भारी (मा० ५। १।३)

तरकि (३)–(अर० तर्क=छोड़ना, त्याग)–छोड़कर, त्याग-कर। उ० मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं। (ह० ४०)

तरकेउ (२)–(ध्व० तड़कना)–तड़का, टूटा, चटक गया।

तरज–(सं० तर्जन)–१. तड़प, डाँट, डपट, २. डाँटकर, डपट कर।

तरजत–१. तड़पता है, गरजता है, २. तरजना, तड़पना। तरजति–डाँटती है, धमकाती है। उ० गरजति कहा तर-जनिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए। (कृ० ११) तरजि–तरजकर, तड़पकर, डराकर। उ० उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर। (दो० २८३) तरजि–डाँट दीजिए, डाँटिए। उ० सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३६) तरजी–१. डाँटा, तर्जन किया, निरादर किया, २. तड़प-कर उत्तर दिया, ३. मना किया। उ० २. नहिं जान्यों बियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं, तेहि सों तरजी। (क० ७।१३३)

तरजन–तर्जन, डाँट, झिड़की।

तरजनी–(सं० तर्जनी)–अँगूठे के पास की उँगली। उ० सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३६)

तरजनिन्ह–तर्जनियों से, अँगूठे के पास की उँगली से। उ० गरजति कहा तरजनिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए। (कृ० ११)

तरण–(सं०)–१. नदी के पार जाना, पार होना, २. उद्धार, निस्तार, ३. पानी पर तैरनेवाला तख्ता, बेड़ा, ४. स्वर्ग, ५. मुक्ति पानेवाला, मुक्त, तैर जानेवाला, पार करनेवाला। उ० ५. जयति संग्राम-सागर-भयंकर-तरण-रामहित-करण बरबाहु-सेतू। (वि० ३८)

तरणि–(सं०) १. सूर्य, भानु, २. नाव, नौका, तारनेवाली, पार करनेवाली, ३. उद्धार, ४. तरना, पार करना।

तरणी–दे० 'तरणि'।

तरनि दे० 'तरणि'। उ० १. भजहु तरनि-अरि-आदि कहँ तुलसी आत्मज अंत। (स० २२७) २. स्रवन-सुख करनि भवसरिता तरनि, गावत तुलसिदास कीरति पवनि। (गी० ३।५) तरनिउ–नाव भी, नौका भी। उ० तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। (मा० २।१००।३) तरनिहि–सूर्य को, तरणि को। उ० तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई। (मा० २।२३२।१)

तरनिसुता–(सं० तरणिसुता)–यमुना, रविनंदिनी। उ० बिधि उलटी गति राम की तरनिसुता अनुमान। (स० ४०२)

तरनी–(सं० तरणि)–१. नौका, २. सूर्य, ३. तरने की वस्तु। उ० १. चढ़त मत्तगज जिमि लघु तरनी। (मा० ६।२५।४) २. भे पुनीत पातक तम तरनी। (मा० २।२४८।१)

तरपन–दे० 'तर्पण'। उ० तरपन होम करहिं बिधि नाना। (मा० २।१२६।४)

तरपहिं–तड़पते हैं, गर्जते हैं।
तरल–(सं०)–१. हिलता-डोलता, चंचल, २. क्षणभंगुर, अस्थिर, ३. द्रव, पानी की तरह पतला, ४. चमकीला, ५. पोला, खोखला, ६. हार के बीच की मणि, ७. हार, ८. हीरा, ९. लोला, १०. घोड़ा, ११. तल, पेंदा। उ० १. तरल-तृष्णा-तमी-तरणि धरनीधरन सरन-भय-हरन करुनानिधानं। (वि०५४)
तरवारि–(सं०) तलवार, खंग। उ० मनहुँ रोष तरवारि उघारी। (मा० २।३१।१)
तरसखा अत्यंत मित्र, अच्छा मित्र, सच्चा मित्र। उ० सो स्वामी सो तरसखा सो बर-सुखदातार। (स०६०९)
तरसत–तरस रहे हैं, ललच रहे हैं। उ० हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो। (गी० २।६६) तरस्यो–तरसा, ललचा। उ० त्यों रघुपति-पद-पदुम परम को तनु पातकी न तरस्यो। (वि० १७०)
तराक–(ध्व० तड़ाक)–चट से, तड़ाक से। उ० मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं। (ह० ४०)
तरि–(सं० तरी) नाव, नौका। उ० बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे। (वि० २७३)
तरी (२)–(सं०) नौका, नाव।
तरीवन–(सं० ताड, हि० ताड़, तरिवन)–कान का एक गहना, कर्णफूल। उ० काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो।.(रा० ११)
तरु–(सं०)–१. पेड़, वृक्ष, २. यमलार्जुन का पेड़, ३. कल्प-वृक्ष। उ० १.हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई। (वि० ६२) ३. महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ। (वै० ३५) तरुजीवी–वृक्ष से जीविका प्राप्त करनेवाले। तरुहिं–पेड़ में, वृक्ष में। उ० जो फलु चाहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई। (मा० १।६६। छं०१) तरुहि–पेड़ से, वृक्ष से। उ० कनक तरुहि जनु भेंट तमाला। (मा० ३।१०।१२) तरोः–वृक्ष का, पेड़ का। उ० मूलं धर्मतरोर्विवेक जलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं। (मा० ३।१। श्लो० १)
तरुण–(सं०)–१. जवान, युवा, २. नवीन, नूतन, ३. प्रफुल्लित, ४. बड़ा ज़ीरा, ५. रेंड़, ६. मोतिया। उ० २. तरुण रमणीय राजीव लोचन बदन राकेश, करनिकर हासम्। (वि० ६०)
तरुणी–(सं०) युवती, जवान स्त्री।
तरुन–दे० 'तरुण'। उ० ३. उरग-नायक-सयन, तरुन-पंकज-नयन, क्षीर सागर-अयन सर्ववासी। (वि० ५५) तरुनतमी-पूर्ण अँधेरी रात। उ० ममता तरुनतमी अँधि-आरी। (मा०५।४७।२) तरुनतर–अधिक तरुण, बिलकुल ताज़ा। उ० सरदभव सुंदर तरुनतर अरुन बारिज-बरन। (वि० २१८)
तरुनता–तरुणाई, तरुनाई, जवानी, यौवन। उ० तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गँवाई। (वि० १६४)
तरुनाई–जवानी, यौवन, तरुणाई। उ० बिधवा होइ पाइ तरुनाई। (मा० ३।५।१०)

तरुनी–दे० 'तरुणी'। उ० नृप किरीट तरुनी तनु पाई। (मा० १।११।१)
तरे (२)–(सं० तल) नीचे, तले।
तरेरी–तरेर कर, आँखें दिखाकर। उ० कहत दसानन नयन तरेरी। (मा०६।२२।२) तरेरे–(सं० तर्ज=डाटा+हिं० हेरना=देखना) त्यौरी चढ़ाकर देखे, घूरे, आँख दिखाए, कुपित दृष्टि से देखा। उ० सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम। (मा० १।२७८)
तर्क–(सं०)–१. विचार, २. वादविवाद, दलील, ३. युक्ति, ४. चमत्कारपूर्ण उक्ति, चतुराई भरी बात, सुन्दर उक्ति, ५. व्यंग्य, ताना। उ० २. रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी। (मा० ६।७४।१)
तर्कि–तर्ककर, विचार कर। उ० तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी। (मा० ६।७४।१)
तर्क्य–जिस पर कुछ सोच-विचार किया जा सके, विचार्य।
तर्जत–(सं० तर्जन)-ललकारता हुआ, तर्जन करता हुआ। उ० गर्जत तर्जत सन्मुख धावा। (मा० ६।९०।१) तर्जहिं–ललकारते हैं। उ० गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। (मा० ३।१८।४) तर्जहीं–ललकारते हैं। उ० नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं। (मा० ५।३। छं०२) तर्जा–गरजा, गर्जन किया, धमकाया, ललकारा। उ० भिरे उभौ बाली अति तर्जा। (मा० ४।८।१)
तर्जन–(सं०)–१. धमकाने का कार्य, भय-दर्शन, २. क्रोध, गुस्सा, ३. तिरस्कार, फटकार, डाँट-डपट। उ० ३. तर्जन क्रोध लोभ मद कामः। (मा० ३।११।८)
तर्जनी–(सं०)–अँगूठे के पास की अँगुली।
तर्पण–(सं०)–कर्मकांड की एक क्रिया जिसमें देव, ऋषि, और पितरों को संतुष्ट करने के लिए हाथ या अरघे से पानी देते हैं।
तर्पन–दे० 'तर्पण'। उ० तात न तर्पन कीजिए बिना बारि-धर-धार। (दो० ३०४)
तर्ष–(सं०)१. असंतोष, तृष्णा, २. अभिलाषा, ३. बेड़ा, ४. समुद्र, ५. सूर्य। उ० १. सोक संदेह भय हर्षतम तर्ष-गण साधु-सद्युक्ति विच्छेदकारी। (वि० ५७)
तर्षण–(सं०)–१. प्यास, पिपासा, २. इच्छा, अभिलाषा।
तल–(सं०)–१. पेंदा, तला, नीचे का भाग, २. गड्ढा, ३. पृष्ठदेश, सतह, ४. आधार, सहारा, ५. सात पातालों में से पहला, ६. स्वभाव, ७. स्वरूप, ८. हथेली, करतल, ९. पैर का तलुआ। उ० ३. परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि। (मा० २।११०)
तलफत–१. कष्ट में तड़पती हुई, २. तड़पती है। उ० १. तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि। (मा० २।१५४) तलफति–(अर० तलफ़) कष्ट देता है, पीड़ित करता है, नष्ट करता है, बर्बाद करता है। उ० कनक-कराही लंक तलफति ताय सों। (क० ५।२४) तलफि–तड़पकर, कष्ट पाकर। उ० मीन जल बिनु तलफि तनु तजै, सलिल सहज असंग। (कृ० ५४)
तलाईं–(सं० तल्ल, हिं० ताल)–छोटे तालाब, बावलियाँ। उ० संगम करहिं तलाब तलाईं। (मा० १।८५।१)

तलाब–(सं० तल्ल)–तालाब, बड़े ताल। उ० संगम करहिं तलाब तलाईं। (मा० १।८५।१)
तलावा–दे० 'तलाब'। उ० देखि राम अति रुचिर तलावा। (मा० ३।४१।१)
तलु–दे० 'तल'। उ० ३. काम दमन कामता-कलपतरु सो जुगजुग जागत जगतीतलु। (वि० २४)
तल्प–(सं०)–१ शय्या, पलंग, सेज, २. अट्टालिका, अटारी। उ० १. सत्य संकल्प अतिकल्प कल्पांत कृत कल्पनातीत अहि तल्पवासी। (वि० ५४)
तव–(सं०)–तुम्हारा, आपका। उ० तरै तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ। (वि० ४१)
तवा–(सं० ताप, हिं० तवना) लोहे का गोल छिछला बर्तन जिस पर रोटी सेंकते हैं। उ० तुलसी यह तनु तवा है, तपत सदा त्रय ताप। (वै० ६)
तस–(सं० तादृश)–तैसा, वैसा। उ० तस फलु उन्हहि देउँ करि साका। (मा०२।३३।४) तसि–तैसी, वैसी। उ० तसि मति फिरी अहइ जस भावी। (मा० २।१७।१)
तसकर–(सं० तस्कर) चोर, डाकू।
तस्कर–(सं०)–चोर, चुरानेवाला। उ० लूटहिं तस्कर तव धामा। (वि० १२५)
तहँ–दे० 'तहाँ'। उ० तहँ तहँ तू बिषय-सुखहिं चहत, लहत नियत। (वि० १३२) तहँई–वहीं, उसी जगह। उ० तहँई मिले महेस, दियो हित-उपदेस। (गी० ५।२७) तहँउँ–वहाँ भी। उ० तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू। (मा० २।२०७।४) तहँहुँ–वहाँ भी, उस जगह भी। उ० तहँहु सती संकरहि बिबाहीं। (मा० १।६८।३)
तहँवाँ–वहाँ, उस स्थान पर। उ० करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। (मा० ५।८।३)
तहस-नहस-(?) बर्बाद, नाश, चौपट। उ० तहस-नहस कियो साहसी समीर को। (क० ५।२)
तहाँ–(सं० तत्स्थाने)–वहाँ, उस स्थान पर। उ० यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो। (वि० ६४) तहाँऊ–वहाँ भी, उस जगह भी। उ० तहाँऊँ कुचालि कलिकाल की कुरीति कैधौं। (क० ७।१७१) तहीं (२)–(सं० तत्स्थाने)–वहीं, उसी जगह। उ० दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं। (मा० १।६७ छं०१) तहूँ (२)–वहाँ भी, उस जगह भी। उ० तहूँ गए मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटति न सावत। (वि० १८५)
तहिआ–उस दिन, तब। उ० धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ। (मा० १।१३९।३)
तहीं (१)–(सं० तव + हिं० ही)–तूहीं, तुम्हीं। उ० अंगद तहीं बालि कर बालक। (मा०६।२१।३) तहूँ (१)–तू भी, तुम भी। उ० बोले भृगुपति सरुष हँसि तहूँ बंधु सम बाम। (मा० १।२८२)
तांडव–(सं०)–शिव का नृत्य, इसे लास्य के विरुद्ध पुरुषों का नृत्य माना जाता है। तांडव में उछल-कूद अधिक रहती है।
तांडवित–तांडव करते हुए, तांडव नृत्य में मग्न। उ० तांडवित-नृत्य पर, डमरु-डिमडिम प्रवर। (वि० १०)
ताँति–(सं० तंतु)–१. पशुओं की अँतड़ी आदि को बटकर बनाया गया सूत, ताँत, २. धनुष की प्रत्यंचा, कमान की डोरी।
ताँती–दे० 'ताँति'। उ० १. बाज सुराग कि गाँडर ताँती। (मा० २।२४१।३)
ताँबा–(सं० ताम्र) एक लाल रङ्ग की धातु। ताँबे–ताँबा धातु। उ० ताँबे सों पीठि मनहुँ तनु पायो। (वि०२००)
तांबूल–(सं०)–१. पान, पान का बीड़ा, २. सुपारी। उ० १. प्रेम तांबूल, गतसूल संसय सकल, बिपुल-भव बासना-बीज हारी। (वि० ४७)
ता (१)–(सं० तद्)–वह, उस, तिस। उ० प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें। (मा० २।४६।१) तापर–१. तिस पर, उस पर, २. उस पर भी। उ० १. तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम अरु जानकी। (वि० ३०) २. तापर मोकों प्रभु करि चाहत, सब बिनु दहन दहा है। (गी० २।६४)
ता (२)–(फ़ा०)–पर्यंत, तक।
ता (३)–(सं०)–एक भाववाचक प्रत्यय जो संज्ञा तथा विशेषण शब्दों के अंत में लगाया जाता है। जैसे शत्रुता, उत्तमता।
ताइ (१)–(सं० ताप)–तपाकर, गर्म करके। उ० और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत। (क० ७।२४) ताए (१)–(सं० ताप)–१. तपाया, गर्म किया, २. दुःख दिया, सताया। उ० १. नाथ बियोग ताप तन ताए। (मा० २।२२६।२) २. प्रभु, प्रताप-रवि अहित अमंगल-अघ-उलूक-तम ताए। (गी० ६।२२) ताय (१)–(सं० ताप)–१. जलाकर, गर्मकर, २. ताप, गर्मी, घाम, धूप, ३. क्रोध, ४. गर्व, घमंड, ५. कष्ट, ६. दैहिक, दैविक तथा भौतिक तीन दुःख। उ० ६. राम बिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसि बासर तयो तिहुँ ताय। (वि० ८३) ६. तुलसी जागे तें जाइ ताप तिहुँ ताय रे। (वि० ७३) तायो (१)–(सं० ताप)–१. जाँचा, २. तपाया, ताव दिया, ३. तपाए हुए। उ० १. स्रवन नयन मन मन लगे सब थलपति तायो। (वि० २७६)
ताइ (२)–(?)–तोपकर, छिपाकर। ताई (१)–तोपी हुई, ढकी हुई। ताए (२)–छिप गए, आँखों से ओझल हो गए। उ० प्रभु प्रताप-रवि अहित-अमंगल-अघ-उलूक तम ताए। (गी० ६।२२) ताऔं–तोपता हूँ, ढकता हूँ, छिपाता हूँ। ताय (२)–१. तोपने या छिपाने की क्रिया, २. ढककर। तायो (२)–छिपाया।
ताई (२)–(सं० ताप)–१. हलका बुखार, मंद ज्वर, २. तपाया, गरमाया।
ताउ–(सं० ताप)–१. आँच, गर्मी, २. घमंड लिए हुए गुस्से की झोंक, ताव। मु० खाइ गए ताव–क्रोधित हो गए। उ० भवधनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गए ताउ। (वि० १००)
ताकत (१)–(अर० ताक़त)–बल, ज़ोर, शक्ति।
ताकत (२)–(सं० तर्कण)–देखता है, देखता फिरता है। उ० ताकत सराध कै बिबाह कै उछाह कछू। (क० ७।

१४८) ताकहिं–१.देखते हैं, २.ताक में रहते हैं। उ० २.जे ताकहिं पर धनु पर दारा। (मा० २।१६८।२) ताका–१. देखा, अवलोकन किया, २.विचारा, सोचा, ३.चाहा, इच्छा की। उ० ३. जेहिं राउर अति अनभल ताका। (मा० २।२१।३) ताकि–१. देखकर, निहारकर, २. निशाना लगाकर। उ० १. तुलसी तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध। (क० ६।३१) ताकिसि–देखा, सोचा। उ० तब ताकिसि रघुनायक सरना। (मा० ३।२६।३) ताकिहै–ताकेगा, देखेगा, देख सकेगा। उ० ताकिहै तमकि ताकी ओर को। (वि० ३१) ताकी (१)–(सं० तर्कण)–१. देखी, निहारी, २. देखकर, विचारकर। उ० २. कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। (मा० २।२२८।२) ताकें–१. देखने से, २.चाहने से, ३.देखते। उ० २.कबहुँ कि दुख सब कर हित ताकें। (मा० ७।११२।१) ३. नरपति सकल रहहिं रुख ताकें। (मा० २।२५।१) ताके (१)–(सं० तर्कण)–देखे, विचारे। उ० जो सुनि सरन राम ताके मैं निज वामता बिहाइ कै। (गी० ५।२८) ताकेउ–देखा, देखा है, ताका है। उ० लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर कोदंडु। (मा० १।२५६) ताकैं (१)–(सं० तर्कण)–१. देखने से, २. देखे, देखते हैं। ताको (१)–१. देखो, विचारो, २. विचारा है। उ० १. साखी बेद पुरान है तुलसी तन ताको। (वि० १५२)

ताकी (२)–उसकी। उ० ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की। (वि० ३०) ताके (२)–उसके, उस व्यक्ति के। ताकैं (२)–उसके यहाँ, उसके पास। ताको (२)–१. उसको, २. उसका। उ० २. ताको कहाय, कहै तुलसी, तूल जाहि न माँगत कूकुर कौरहि। (क० ७।२६)

ताग–(सं० तार्कव, प्रा० तग्गो, हि० तागा)–डोरा, सूत, तार। उ० जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर-ताग। (मा० १।११)

ताज–(अर०)–१. बादशाह की टोपी, राजमुकुट, २. कलगी, तुर्रा।

ताजी–(फ़ा० ताज़ी)–१. नवीन, जो कुम्हलाया या पुराना न हो, २. अरब में पाये जानेवाले घोड़ों की एक नस्ल, एक प्रकार के घोड़े। उ० २. पारावत मराल सब ताजी। (मा० ३।३८।३)

ताटंक–(सं०)–कान में पहनने का एक गहना, कर्णफूल। उ० छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान। (मा० ६। १३ क)

ताटंका–दे० 'ताटंक'। उ० मंदोदरी श्रवन ताटंका। (मा० ६।१३।३)

ताड़का–(सं० ताडका)–एक राक्षसी। यह सुकेतु नामक एक वीर यक्ष की कन्या थी। सुकेतु ने तप द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्नकर यह बलवती कन्या प्राप्त की, जिसे हज़ार हाथियों का बल था। इसका विवाह सुंद से हुआ था। अगस्त्य ने एक बार क्रुद्ध होकर सुंद को मार डाला तो ताड़का अपने पुत्र मारीच के साथ उन्हें खाने दौड़ी। अगस्त्य ने उसे राक्षसी होने का श्राप दे दिया। तब से यह ताड़का वन में रहने लगी और मुनियों को तंग करने लगी। अंत में विश्वामित्र ने राम को लाकर इसका वध करवाया। उ० सुनि ताड़का क्रोध करि धाई। (मा० १।२०६।३)

ताड़त–(सं० ताडन)–१. मारता है, डाँटता है, २. मारते हुए, ताड़ना करते हुए। उ० २. सापत ताड़त परुष कहंता। (मा० ३।३४।१)

ताड़न–(सं० ताडन)–१. मार, प्रहार, आघात, २. घुड़की, धमकी।

ताड़ना–(सं० ताडन)–मार, दंड, घुड़की। उ० सकल ताड़ना के अधिकारी। (मा० ५।५६।३)

ताड़िका–दे० 'ताड़का'।

ताड़ुका–दे० 'ताड़का'। उ० ब्याल दली ताड़ुका, देखि ऋषि देत असीस अघाई। (गी० १।५३)

तात (१)–(सं०)–१. पिता, बाप, २. पूज्य व्यक्ति, ३. प्यार का एक संबोधन, ४. मित्र। उ० १. काल कलि-पाप-संताप - संकुल-सदा-प्रनत - तुलसीदास तात-माता। (वि० २८)

तात (२)–(सं० तप्त)–गर्म, तपा हुआ। उ० लागिहि तात बयारि न मोही। (मा०२।६७।३) ताती–तात का स्त्रीलिंग। ताते (१)–गरम, संतप्त। उ० पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते। (मा० २।६५।२)

तातप्यमान–जलता हुआ, क्लेषित। उ० जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं। (मा० ७।१०८।श्लो० ८)

ताता (१)–दे० 'तात (१)'। उ० ३. मागहु बर प्रसन्न मैं ताता। (मा० १।१७७।१)

ताता (२)–दे० 'तात (२)'।

ताति (१)–(सं०)–पुत्र, लड़का।

ताति (२)–(सं० तप्त)–तप्त, तात, गरम। उ० अति अनीति कुरीति भइ भुइँ तरनि हूँ तें ताति। (वि० २२१)

तातें (१)–उससे, इसलिए, इसी कारण से। उ० तातें कछुक बात अनुसारी। (मा० २।१६।४) ताते (२)–उस कारण से, उसी से, इसीलिए। उ० नहिं एकौ आचरन भजन को बिनय करत हौं ताते। (वि० १६८)

तातें (२)–'त' अक्षर से। उ० बनतें गुन कहि जानिए तातें दिग दिग तीन। (स० ३१२)

तातो–तप्त, जलता हुआ। उ० तुलसी रामप्रसाद सों तिहुँ ताप न तातो। (वि० १५१)

तान–(सं०)–१. तानने का भाव या क्रिया, खींच, फैलाव, विस्तार, २. संगीत का एक अंग, लय का विस्तार, आलाप। उ० २. करहिं गान बहु तान तरंगा। (मा० १।१२६।३)

तानत–(सं०)–१. तानते हुए, खींचते हुए, २. तानता है। उ० १. लख्यौ न चढ़ावत, न तानत, न तोरत हू। (गी० १।९०) तानि–तानकर, खींचकर। उ० तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर। (मा० ३।१९ ख) तानिहैं–तानेंगे, तानेनेवाले हैं, तानने में समर्थ हैं। उ० बय किसोर बरजोर बाहुबल मेरु मेलि गुन तानिहैं। (गी० १।७८) तानी–१. ताना, फैलाया, २. तानकर, ३. तानेंगे। उ० ३. कोपि रघुनाथ जब बान तानी। (क० ६।२०) ताने–खींचे, फैलाए, विस्तृत किए। उ० अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने। (मा० १।८७।१) तानेउ–१. ताना,

खींचा, २. तानकर, खींचकर। उ० २. तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल। (मा० ६।९१) तान्यो–विस्तृत किया, फैलाया। उ० निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन-तान्यो। (वि० ८८)

ताना–(सं० तान=विस्तार)–१. कपड़े की बुनाई में वे सूत जो लंबाई में होते हैं। २. दरी आदि बुनने का करघा।

ताप–(सं०)–१. आँच, दाह, गरमी, तेज, २. ज्वर, बुखार, ३. कष्ट, पीड़ा, ४. प्राकृतिक गर्मी, ५. दैहिक, दैविक और भौतिक नामक तीन प्रकार के दुःख। उ० ३. जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे नमत नर्मद पाप-ताप-हर्त्ता। (वि० ४४) ५. तौलौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै। (वि० ६८) तापघ्न–कष्टनाशक, दुःख का नाश करनेवाला। उ० तपन तीछन तरुन, तीव्रतापघ्न तपरूप तनुभूप तम पर तपस्वी। (वि० ५५) तापहम्–तापों को हरनेवाले की। उ० वैराग्यांबुज भास्करं ह्यघ घन ध्वान्तापहं तापहम्। (मा० ३।१। श्लो० १) तापहर–दुःख या जलन आदि को दूर करनेवाला। उ० त्रिविध तापहर त्रिविध बयारी। (मा० २।२४६।३) तापही–ताप को हरनेवाला। उ० बदन सुषमा सदन, हास त्रय-तापही। (गी० ७।६)

तापस–(सं०)–तप करनेवाला, तपस्वी, मुनि। उ० तापस बेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ। (क० २।१७) तापस अंध–श्रवणकुमार के पिता। कथा के लिए दे० 'श्रवणकुमार'। उ० तापस अंध साप सुधि आई। (मा० २।१५५।२) तापसहि–तपस्वी को, ऋषि को। उ० असुर तापसहि खबरि जनाई। (मा० १।१७५।२) तापसी–(सं०)–तपस्या करनेवाली स्त्री, तपस्विनी। उ० जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी। (क० ६।५०)

तापसु–दे० 'तापस'। उ० तेहिं अवसर एक तापसु आवा। (मा० २।११०।४)

तापा–दे० 'ताप'। उ० ५. दैहकि दैविक भौतिक तापा। (मा० ७।२१।१)

तापे–१. तपे, जले, २. आग के सामने बैठकर गर्मी ली।

ताम–(सं० ताम्र)–ताँबा धातु।

तामरस–(सं०) १. कमल, २. ताँबा, ३. सोना, स्वर्ण, ४. धतूरा, ५. सारस पक्षी। उ० १. चारु चाप तुनीर तामरस करनि सुधारत बान हैं। (गी० ५।३५)

तामरसु–दे० 'तामरस'। उ० १. परसत तुहिन तामरसु जैसें। (मा० २।७१।४)

तामस–(सं०)–१. जिसमें तमोगुण अधिक हो, असात्विक, २. क्रोध, गुस्सा, ३. अज्ञान, मोह, ४. अंधकार, ५. दुष्ट, ६. सर्प, ७. उल्लू, ८. अहंकार। उ० १ तामस असुर देह तिन्ह पाई। (मा०१।१२२।३) तामसो–तमोगुणी भी, तमोगुणयुक्त भी। उ० जाके भजे तिलोक-तिलक भए त्रिजग-जोनि तनु तामसो। (वि० १२७)

तामसी–(सं०)–१. तमोगुणवाला, अज्ञानी, दुष्ट, २. महाकाली, कालिका, ३. अँधेरी रात, ४. जटामासी।

ताय (२)–ताहि, उसे उसको।

तार–(सं० ताल)–१. ताल, मजीर, झाल, २. करताल, खटतार। उ० २. घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार। (गी० १।२)

तारक–(सं०)–१. नक्षत्र, तारा, २. मल्लाह, कर्णधार, ३. एक असुर का नाम, ४. राम का षडाक्षर मंत्र (ॐ रामाय-नमः) जो तारनेवाला कहा जाता है। ५. तारनेवाला, पार उतारनेवाला, मुक्ति देनेवाला, ६. आँख, नेत्र, ७. आँखों की पुतली। उ० १. स्रम-सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारक मैं। (क० २।१३) ७. रुचिर पलक-लोचन जुग तारक स्याम, अरुन सित कोए। (गी० ७।१२) कथा–तारकासुर बज्रांग दैत्य का पुत्र था। उग्र तपस्या के कारण इसे ब्रह्मा ने वर दिया था कि सात दिन से अधिक आयुवाला इसका वध नहीं कर सकेगा। वर पाकर तारकासुर बहुत अत्याचार करने लगा। सभी देवता इसके कारण बहुत आशंकित रहने लगे। अंत में शिव के पुत्र कार्तिकेय ने इसका वध किया। वध करने के समय कार्तिकेय की अवस्था ७ दिन की थी। तारकासुर के सेनापतियों में शुंभ, कुंजर, जंभ, कालनेमि, कुंभज आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

तारकु–दे० 'तारक'। उ० ३. तारकु असुरु समर जेहिं मारा। (मा० १।१०३।४)

तारण–(सं०)–१. तारना, दूसरों को पार उतारने का काम, २. उद्धार, निस्तार, ३. उद्धार करनेवाला, पार उतारनेवाला, मुक्तिदाता, ४. वेग, ५. विष्णु। उ० ३. मोहमूषक-मार्जार, संसार-भय हरण, तारण तरण, करण, कर्त्ता। (वि० ११)

तारति–१. तरेरा या पानी की धारा देती है, २. पार लगाती है। उ० १. मनहुँ विरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति। (गी० ५।१६) तारय–पार कीजिए, तारिए। उ० बारय तारय संसृति दुस्तर। (मा० ६।११५।३) तारि–तार कर, मुक्त कर उबार कर। तारिबो–तारना, मुक्त करना। उ० तुलसी औ तारिबो बिसारिबो न अंत, मोहिं। (क० ७। १८) तारिहौ–तारोगे, तार दोगे। उ० तौ तुलसिहिं तारिहौ बिप्र ज्यों दसन तोरि जम गन के। (वि० ९६) तारी (१)–(सं० तारण)–१. उतार दिया, पार कर दिया, २. मुक्त कर दिया, मुक्ति दे दी। उ० २.राम एक तापस तिय तारी। (मा०१।२४।२) तारे-(१) तारा है, उद्धार किया है।

तारन–दे० 'तारण'। उ० ३. होत तरन तारन नर तेऊ। (मा० २।२१७।२)

तारा–(सं०)–१. नक्षत्र, सितारा, २. आँख की पुतली, ३. बालि की स्त्री का नाम, ४. एक राक्षस का नाम, ५. ताली बजाने का शब्द, ६. तालाब, ७. मजीरा। उ० १. मंदिर मनि समूह जनु तारा। (मा० १।१९५।३) २. तारा सिय कहँ लछिमन मोहिं बताउ। (ब० ३१) ३. नाना विधि बिलाप कर तारा। (मा० ४।११।१) कथा–तारा बालि की स्त्री तथा सुसेन की कन्या थी। इसके पुत्र का नाम अंगद था। तारा ने अपने पति बालि के वध के बाद रामचंद्र की आज्ञा से सुग्रीव से विवाह कर लिया। यह पंच देवकन्याओं में गिनी जाती है और प्रातःकाल इसका नाम लेना शुभ माना गया है। तारे

(१)-आँख की पुतलियाँ। उ० एकटक लोचन चलत न तारे। (मा०१।२४४।२)
तारी (२)-(?)-समाधि, ध्यान।
तारु-(सं० तुला)-तौल, तौलो। उ० पन औ कुँवर दोउ प्रेम की तुला धौं तारु। (गी० १।८०)
तारुण्य-(सं०)-तरुणाई, जवानी। उ० जानकीनाथ रघुनाथ रागादितम-तरणि, तारुण्यतनु तेज धामं। (वि०५१)
ताल (१)-(सं०)-१. ताली या थपड़ी बजाने का शब्द, २. ताड़ का पेड़ या उसका फल, ३. करताल, ४. हरताल, ५. जाँघ या बाँह पर मारने या ठोंकने का शब्द, ६. झाँझ, मँजीरा, ७. नाचने गाने में उसके मध्यवर्ती काल और क्रिया का परिमाण, ८. चश्मे के पत्थर या काँच का एक पल्ला, ९. ताला, १०. तलवार की मूँठ। उ० १. उड़त अघ विहग सुनि ताल करतालिका। (वि०४२) ३. करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो। (वि०९८) तालऊ-ताड़ के पेड़ भी। उ० तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालि को। (क० ६।११)
ताल (२)-(सं० तल्ल)-तालाब, जलाशय, पोखरा।
ताला (१)-(सं० तल्ल) तालाब। उ० बसहिं निरंतर जे तेहिं ताला। (मा० ७।५७।५)
ताला (२)-(सं० तलक)-लोहे पीतल आदि की बनी वह कल जिसे दरवाज़ा, संदूक आदि में लगाते हैं। कुल्फ़।
तालु (१)-(सं०)-तालू, मुँह के भीतर की ऊपरी छत।
तालु (२)-(सं० ताल)-१. ताड़ का पेड़, २. ताली बजाना।
तालु (३)-(सं० तल्ला)-तालाब।
तालुक (१)-दे० 'तालु (१)'।
तालुक (२)- दे० 'तालु (२)'।
तालुक (३)-दे 'तालु (३)'।
तालू (१)-दे० 'तालु (१)'। उ० निज तालूगत रुधिर पान करि मन संतोष धरयो। (वि० ९२)
तालू (२)-दे० 'तालु (२)'। उ० १. दामिनी हनेउ मनहुँ तरु तालू। (मा० २।२९।३)
तालू (३)-दे० 'तालु (३)'।
ताव-(सं० ताप) १. ताप, जलन, ज्वर, २. दैविक, दैहिक और भौतिक तीन प्रकार के दुःख। उ० सींचिए मलीन भो, तयो है तिहुँ तावरे। (ह० ३७)
तावत-(सं० ताप)-तपाता है, जलाता है, कष्ट देता है।
तावों (१)-(सं०ताप)-१. ताव देता हूँ, २. मूछों पर ताव देता हूँ, ३. गर्म कर दूँ, पिघला दूँ, ४. उकसा दूँ, ५. उत्तेजित कर दूँ, ६. परखता हूँ, जाँचता हूँ।
तावत्-(सं०)-उतने काल तक, तब तक। उ० न तावत्सुखं शांति सन्तापनाशं। (मा० ७।१।७)
तावों (२)-(?)-१. मिट्टी लगाकर मूँदूँ, बन्द करूँ, २. छिपाता हूँ, बंद करके यत्न से रखता हूँ। उ० १. भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावों। (गी० ६।८) तावौं-दे० 'तावों (२)'। उ० २. तिन्ह स्रवनन पर दोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावौं। (वि० १४२)
तास-(?)-सोने या ज़री का काम किया हुआ वस्त्र।
तासु-[सं० तद्, हि० ता + सु (प्रत्यय)] उसका, उसकी, उसे। उ० करहु तासु अब अंगीकारा। (मा० १।८९।२)
तासू-दे० 'तासु'। उ० नित नूतन मंगल गृह तासू। (मा० १।६६।२)
तासों-उससे। उ० तासों क्यों हुजुरी, सो अभागो बैठो तोरिहौं। (वि० २५८)
ताहि-१. उसको, उसे, २. उसकी। उ० १. सर निंदा करि ताहि बुझावा। (मा० १।३९।२)
ताही-दे० 'ताहि'। उ० १. पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही। (मा० १।७९।४)
ताहु-१. वह, उस, २. उसको भी, ३. उसका, उसका भी, ४. उसने। उ० १. ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है। (क० २१४)
ताहू-दे० 'ताहु'। उ० १. तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो। (वि० ८७)
तितिड़ी-(सं० तिंतिडी)-इमली।
तिकाल-(सं० त्रिकाल)-भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों काल। उ० भयो न तिकाल तिहूँ लोक तुलसी सो मंद। (क० ७।१२१)
तिकोन-दे० 'त्रिकोण'। उ० १. बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे। (वि० १८९)
तिक्खन-(सं० तीक्ष्ण)-तेज़, तीक्ष्ण, प्रचंड, उग्र। उ० लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं। (क० ६।३९)
तिक्त-(सं०)-१. तीत, तीता, कड़ुआ, २. छः रसों में से एक, ३. पित्तपापड़ा, ४. वरुण वृक्ष। विशेष-तिक्त रस अरुचिकर और कटुरस रुचिकर होता है। दोनों में केवल इतना अंतर है।
तिच्छन-(सं० तीक्ष्ण)-तेज, प्रखर, प्रचंड, तीक्ष्ण।
तिजरा-(सं०त्रि + ज्वर)-तीन दिन पर आनेवाला एक विशेष ज्वर। उ० स्वारथ के साथिन तज्यौ, तिजरा कौसो टोटकु औचट उलटि न हेरो। (वि०) विशेष-सोरों के आस पास पँसली चलने के रोग को तिजरा कहते हैं। इस रोग में आँटे का एक पुतला चौराहे पर रखकर चले जाते हैं, फिर घूमकर उसे नहीं देखते। ऐसा विश्वास है कि इससे रोग ठीक हो जाता है।
तित-(सं० तत्र)-वहाँ, उधर, उस ओर।
तितीर्षावतां-(सं०)-तरने के इच्छुकों के लिए, मुक्त होने की इच्छा रखनेवालों के लिए। उ० यत्पाद प्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां। (मा० १।१। श्लो० ६)
तित्तिर-(सं०)-तीतर पक्षी।
तिथि-(सं०)-१. चांद्र मास के अलग अलग दिन जिनके नाम संख्यानुसार होते हैं। प्रत्येक पक्ष में प्रायः १५ तिथियाँ होती हैं। २. पन्द्रह की संख्या। उ० १. तिथि सब-काज-नसावनी। (दो०४५८)
तिन (१)-(सं० तेन)- 'तिस' शब्द का बहुवचन, जैसे तिनने, तिनको आदि। १. उन, २. उन्होंने। उ० १. कहा भवभीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिनसों तिन तोरे। (क० ७।४९) २. तिन कही जग में जगमगति जोरी एक। (क०१।१६) तिनहिं-१. उनको, उन्हीं को, २. उनमें। उ० १. परम पुनीत

संत कोमल चित तिनहिं तुम्हहिं बनि आई। (वि०११२)
तिनहीं–१. उन्हें, उनमें, २. उन्हीं। उ० १. राम कृपा अतुलित बल तिनहीं। (मा० ५।५५।१) २. मत तिनहीं की सेवा, तिनहीं सों भाव नीको। (क० ७।७०) तिन्ह–उन, उन्होंने। उ० तामस असुर देह तिन्ह पाई। (मा० १।१२२।३) तिन्हहिं–इन सबको, इनको। उ० तिन्हहिं निदरि अपने हित कारन राखत नयन निपुन रखवारे। (कृ० ५६) तिन्हहुँ–वे भी, वह भी। उ० फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी। (मा० ७।२२।२) तिन्हहू–उन्हें भी, उनको भी। उ० देहिं राम तिन्हहू निज धामा। (मा० ६।४५।१) तिन्हैं–उनको, उन्हें। उ० तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली। (क० २।२२)
तिन (२)–(सं० तृण)–तिनका, घास। मु० तिन तोड़े–नाता तोड़े हुए। उ० कहा भव-भीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिन सों तिन तोरे। (क० ७।४६)
तिभुवन–(सं० त्रिभुवन)–दे० 'त्रिभुवन'। उ० तुम तिभुवन तिहुँकाल बिचार बिसारद। (पा० १५)
तिमि (१)–(सं० तद्+इव)–उस प्रकार, उस भाँति, तैसे, वैसे ही। उ० तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जियँ भामिनी। (मा० २।५०। छं० १)
तिमि (२)–(सं०)–समुद्र में रहनेवाला मछली के आकार का एक बहुत बड़ा जंतु, ह्वेल मछली। उ० महामीन बास तिमि-तो मनि को थल भो। (ह० ७)
तिमिर–(सं०)–अंधकार, अँधेरा। उ० अंग अंग भूषन जराय के जगमगत, हरत जन के जी को तिमिर जालु। (गी० १।४०)
तिमुहानी–(सं० त्रीणि+फा० मुहानी)–वह स्थान जहाँ तीन ओर से तीन नदियाँ आकर मिलती हैं। उ० त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। (मा० १।४०।२)
तिय–(सं० स्त्री)–१. स्त्री, औरत, २. पत्नी, जोरू। उ० १. किय भूषन तिय भूषन तीको। (मा० १।११।४) २. तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। (मा० २।३५।४)
तिया–(सं० स्त्री)–१. स्त्री, औरत, २. भार्या, पत्नी, ३. ताड़का। उ० ३. कौसिक गरत तुषार ज्यों तकि तेज तिया को। (वि० १५२)
तिरछे–(सं० तिर्यक या तिरस्)–टेढ़े, आड़े, वक्र। उ० तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली। (क० २।२२) तिरछेहुँ–तिरछी दृष्टि से ही, तिरछे भी। उ० कृपा, कोप, सतिभाय हूँ धोखहुँ, तिरछेहुँ राम तिहारेहि हेरे। (वि० २७३)
तिरछौहैं–तिरछी, टेढ़ी। उ० तुलसी कटि तून धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछौहैं। (क० २।२५)
तिरहुत–दे० 'तिरहुति'। उ० भूमितिलक सम तिरहुत त्रिभुवन जानिय। (जा० ४)
तिरहुति–(सं० तीरभुक्ति)–मिथिला प्रदेश। आजकल इसके स्थान पर बिहार के मुजफ़्फ़रपुर ,और दरभंगा ज़िले हैं।
तिरहुतिनाथ–राजा जनक। उ० साँचे तिरहुतिनाथ साखि देति मही है। (गी० १।८५)
तिरहूति–दे० 'तिरहुति'।
तिरा–(सं० तरण)–तैर गया। उ० तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा। (मा० २।२५१। छं० १)
तिरीछे–तिरछे, टेढ़े, वक्र। उ० खंजन-मंजु तिरीछे नयननि। (मा० २।११७।४)
तिर्य्यक–(सं०)–१. टेढ़ा, तिरछा, आड़ा, २. पशु-पक्षी या कृमि आदि।
तिर्हुत–दे० 'तिरहुति'।
तिल–(सं०)–१. एक अन्न जो प्रधानतः तेल निकालने के काम आता है। गुड़ आदि में मिलाकर इसे लोग खाते भी हैं। यह बहुत छोटा-छोटा होता है, २.काले रंग का तिल की तरह छोटा दाग जो शरीर पर होता है, ३. थोड़ा, ज़रा। उ० १. तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर। (मा० ३।१६ ख) २. सरद प्रकास अकास छबि चारु चिबुक तिल जासु। (स० ३२) तिल-तिल–१. थोड़ी थोड़ी, २. निःशेष, बिल्कुल। उ० २.जाके मन ते उठ गई तिल-तिल तृष्ना चाहि। (वै० २६) तिलौ–तिल भी, तिल भर भी। उ० तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को। (क० ५।१२)
तिलक–पु०–(सं०)–१. टीका, चंदन, मस्तक का त्रिपुंड, २. शिरोमणि, श्रेष्ठ, ३. पुष्प विशेष, ४. शरीर पर का तिल, ५. घोड़े का एक भेद, ६. एक पेट का रोग, ७. राज्याभिषेक, गद्दी, ८. सगाई का रस्म जो विवाह के पूर्व होता है, ९. पुस्तकों की व्याख्या, १०. सिर का एक गहना। उ० १. लक्ष्मणानुज, भरत-राम-सीता-चरनरेनु-भूषित-भाल तिलक धारी। (वि० ४०) २. रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई। (मा० १।१८७।३) ७. राम तिलक हित मंगल साजा। (मा० १।४१।४)
तिलकु–दे० 'तिलक'। उ० ७. राम तिलकु सुनि भा उर दाहू। (मा० २।१३।१)
तिलांजलि–(सं० तिलांजली)–हिन्दुओं के यहाँ मृतक-संस्कार का एक अंग, जिसमें मुरदे के जल चुकने के बाद लोग स्नान करके हाथ में पानी और तिल लेकर मृतक के नाम पर छोड़ते हैं। उ० मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि। (मा० ४।२७)
तिलांजुलि–दे० 'तिलांजलि'। उ० विधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही। (मा० २।१७०।३)
तिली–दे 'तिल'। उ० १. पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि। (दो० ४०३)
तिलु–दे० 'तिल'। उ० ३. तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई। (मा० १।२५२।१)
तिलोक–(सं० त्रिलोक)–तीनों लोक, आकाश, पाताल और मृत लोक। उ० चारिहूँ बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ। (वि२ २६४) तिलोकिए–तीनों लोकों में ही। उ० मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए। (क० ५।१७)
तिलोकनाथ–(सं० त्रिलोकनाथ)–तीनों लोकों के मालिक, भगवान् रामचंद्र। उ० लोक एक भाँति को, तिलोकनाथ लोक बस। (क० ७।१२३)
तिलोचन–(सं० त्रिलोचन)–तीन नेत्रवाले, महादेव। उ० सुमुखि सुलोचनि, हर मुखपंच, तिलोचन। (पा० ५८)
तिष्ठंति–(सं०)–बैठते हैं, ठहरते हैं। उ० यत्र तिष्ठंति तत्रैव

अज शर्व हरि सहित गच्छंति चीराब्धिवासी। (वि० ५७)

तिष्ठ-(सं०)-बैठो, शांत हो, ठहरो। तिष्ठइ-ठहरना, ठहर सकना। उ० भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई। (मा० ५। ३८।४)

तिसिर-(सं० त्रिशिर)-तीन सिरोंवाला एक राक्षस जो रावण का भाई था और खरदूषण के साथ दंडक वन में रहता था। अन्य मत से इस नाम का एक रावण का पुत्र भी था जो लंका के युद्ध में हनुमान के हाथ से मारा गया था। उ० अवलोकि निजदल बिकल भट तिसिरादि खरदूषन फिरे। (मा० ३।२०। छं० २)

तिहारिए-(प्रा० तुम्हकरको, हि० तुम्हारा)-आपकी ही, आपकी ही है, तुम्हारी ही है। उ० मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिए। (ह० २२) तिहारिय-आप ही की। उ० हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेते। (वि० २४१) तिहारी-तुम्हारी, आपकी। उ० आदि अंत मध्य राम साहिबी तिहारी। (वि० ७८) तिहारे-तुम्हारे, आपके। उ० महरि तिहारे पाँय परौं अपनो ब्रज-लीजै। (कृ० ७) तिहारेहिं-तुम्हारे ही, आपके ही। उ० तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत फिरै तिहारेहि फेरे। (वि० १८७) तिहारो-तुम्हारा, आपका। उ० सुजान सिरोमनि हौ हनुमान! सदा जन के मन बास तिहारो। (ह० १६) तिहारोइ-तुम्हारा ही, आपका ही। उ० उधोजू कह्यो तिहारोइ कीबो। (कृ० ३५)

तिहि-(सं० ते)-उसे, उसको।

तिहुँ-दे० 'तिहूँ'। उ० होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई। (मा० २।३६।२)

तिहूँ-(सं० त्रीणि + हूँ)-तीनों, तीनों हीं, तीनों में ही। उ० तौ लौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै। (वि० ६८)

ती-(सं० स्त्री)-स्त्री, औरत। उ० किय भूषन तिय भूषन ती को। (मा० १।१६।४)

तीच्ण-(सं०)-१. तेज़ नोक या धारवाला, पैना, २. तीव्र, प्रखर, ३. प्रचंड, उग्र, ४. तीते स्वाद का, ५. कर्णकटु, ६. असह्य, ७.गरमी, उत्ताप, ८. विष, ज़हर, ६. युद्ध, लड़ाई, १०. मृत्यु, ११. परोपकारी, दूसरों के लिए अपना स्वार्थ छोड़नेवाला, १२. महामारी, १३. लोहा।

तीखा-(सं० तीच्ण)-तेज़, पैना, तीच्ण। तीखे-१. तेज़, तेज़ दौड़नेवाले, २. पैने। उ० १. तीखे तुरंग कुरंग सुरं-गनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले। (क० ६।३२) तीखी-१. तेज, पैनी, तीच्ण। उ० तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो। (क० ६।५४)

तीछन-तेज़, तीच्ण। उ० तपन तीछन तरुन, तीव्रतापघ्न तपरूप तमपर तपस्वी। (वि० ५५)

तीछीं-तेज़, भयानक। उ० तर्जाहि बिषम बिषु तामस तीछीं। (मा० २।२६२।४)

तीछी-१. तीच्ण, अप्रिय, तीखी, २. पैनी, जोखी, ३. रूखी, खरी। उ० १. नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। (मा० २। ४६।३) तीछें-१. तीच्ण, तेज़, पैने, २. रूखे, ३. क्रोधी। उ० १. राम बियोगि बिकल दुख तीछें। (मा० २। १४३।३)

तीज-(सं० तृतीया)-प्रत्येक पच्च की तीसरी तिथि। उ० तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्री रमन मुकुंद। (वि० २०३)

तीजे-दे० 'तीजै'। उ० मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे। (मा० १।१६६)

तीजै-(सं० तृतीय)-तीसरे, तीसरा।

तीत-(सं० तिक्त)-तीता, अमधुर, कड़आ।

तीतर-(सं० तित्तिर)-एक प्रसिद्ध पच्ची जिसे लोग लड़ाने के लिए पालते हैं। इसे लोग खाते भी हैं। उ० तीतर तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ी बहरी है। (क० ७।२६)

तीतिर-दे० 'तीतर'। उ० तीतिर लावक पदचर जूथा। (मा० ३।३८।४)

तीन-(सं० त्रीणि)-दो और एक, गिनती में चार से एक कम। उ० तीन लोक महँ जो भजै। (स० २६७) तीन-लोक-(सं० त्रिलोक)-आकाश, पाताल और मृतलोक। उ० तीनलोक महँ जो भजै, लहै तासु फल ताहि। (स० २६७)

तीनि-तीन। उ० तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै। (वि० १११) तीनि अवस्था-जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ। उ० तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि। (मा० ७।११७ ग) तीनिउ-तीनों, तीनों ही। उ० राम बिवाह समान ब्याह तीनिउ भए। (जा० १७४) तीनिकाल-(सं० त्रिकाल)-भूत, भविष्यत् और वर्तमान, ये तीन काल। उ० तीनिकाल कर ज्ञान कौसिकहि करतल। (जा० ८६) तीनि-गवनी-(सं० त्रीणि + गमन)-त्रिपथगा, गंगा। उ० परसि जो पाँय पुनीत सुरसरी सोहै तीनि-गवनी। (गी० १।५६) तीनि-गुन-(सं० त्रिगुण)-सत्व, रज और तम ये तीन गुण। उ० दे० 'तीनि अवस्था'। तीनिहुँ-तीनों ही, तीनों। उ० कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। (मा० १।१७७।१)

तीनी-तीन। उ० जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। (मा० १।१७२।४)

तीब्र-(सं० तीव्र)-दे० 'तीव्र'। उ० २. तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। (मा० ७।७१।२) ७. मकर षड्वर्ग, गोनक्र, चक्राकुला, कूल सुभ-असुभ, दुख तीब्र धारा। (वि० ५६)

तीय-(सं० स्त्री)-स्त्री, अबला, नारी। उ० तीय, तनय, सेवक, सखा, मन के कंटक चारि। (दो० ४७६)

तीर (१)-(सं०)-१. नदी का किनारा, तट। तीर और तट में अंतर है। तीर आस-पास की भूमि को कहते हैं, पर तट पानी के अत्यंत समीप की भूमि कहलाती है। २. समीप, पास। उ० १. सुरसरि-तीर बिनु नीर दुख पाइहै। (वि० ६८) तीरहु-किनारे पर भी। उ० तुलसी तीरहु के चले समय पाइबी थाह। (दो० ४४६)

तीर (२)-(फ़ा०)-बाण, शर। उ० तीर तें उतरि जस कह्यो चहै, गुन गननि जयो है। (गी० ६।११)

तीरथ-दे० 'तीर्थ'। उ० १. पूजि जथाबिधि तीरथ देवा। (मा० २।१०६।३) १. जोग, जाग, जप, बिराग, तप सुतीरथ अटत। (वि०१२६) तीरथन्ह-तीर्थों में। उ० सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए। (मा० १।१५५।४)

तीरथपति-(सं० तीर्थपति)-प्रयाग। उ० अस तीरथपति

देखि सुहावा। (मा० २।१०६।१) तीरथपतिहिं–तीर्थराज प्रयाग को, प्रयाग में। उ० तीरथपतिहिं आव सब कोई। (मा० १।४४।२)
तीरथराऊ–दे० 'तीरथराजू'। उ० अकथ अलौकिक तीरथ-राऊ। (मा० १।२।७)
तीरथराज–दे० 'तीर्थराज'। उ० तीरथराज समाज सुक-रमा। (मा० १।२।६)
तीरथराजा–दे० 'तीरथराजू'। उ० कीन्ह निमज्जनु तीरथ-राजा। (मा० २।२१६।१)
तीरथराजू–(सं०तीर्थराज)–तीर्थों का राजा प्रयाग, इलाहाबाद। उ० जो जग जंगम तीरथराजू। (मा० १।२।४)
तीरा (१)–दे० 'तीर (१)'। उ० १. पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा। (मा० ३।३६।३)
तीरा (२)–दे० 'तीर (२)'। उ० सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा। (मा० २।११५।४)
तीर्थ–(सं०)–१. वह पवित्र स्थान जहाँ धर्मभाव से लोग यात्रा, पूजा, स्नान आदि के लिए जाते हैं। हिन्दुओं के काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थ हैं। शास्त्रों में तीर्थ ३ प्रकार के माने गए हैं। क. जंगम–ब्राह्मण, साधु आदि। ख. स्थावर–काशी प्रयागादि। ग. मानस–सत्य, क्षमा, दया दान आदि। २. शास्त्र, आगम, ३. यज्ञ, ४. ईश्वर, ५. माता-पिता, ६. अतिथि, ७. गुरु, आचार्य, ८. ब्राह्मण, ९. आग, १०. एक उपाधि, ११. पवित्र। ब्राह्मण का दायाँ हाथ भी तीर्थ कहा गया है। अँगूठे का ऊपरी भाग ब्रह्मतीर्थ, अँगूठे और तर्जनी का मध्य भाग पितृतीर्थ, तथा कनिष्ठा का बिचला भाग प्रजापत्यतीर्थ एवं उँगलियों का अग्रभाग देवतीर्थ कहलाता है। तीर्थनि–तीर्थों में। उ० ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं। (क० ६।३३)
तीर्थपति–(सं०)–प्रयाग।
तीर्थराज–(सं०)–प्रयाग।
तीर्थाटन–(सं०)–तीर्थयात्रा। उ० तीर्थाटन साधन समुदाई। (मा० ७।१२६।२)
तीव्र–(सं०)–१. अतिशय, अत्यंत, २. तीक्ष्ण, तेज़, नोकीला, ३. बहुत गरम, ४. बेहद, ५. कटु, कड़ुआ, ६. न सहने योग्य, ७. प्रचंड, प्रखर, डरावना, ८. तीखा, ९. वेगयुक्त, १०. लोहा, ११. शिव।
तीस–(सं० त्रिंशति)–जो गिनती में २९ के बाद और ३१ के पहले हो। ३०। उ० तीस तीर रघुवीर पबारे। (मा० ६।९२।५)
तीसर–[सं० त्रीणि+सरा (प्रत्यय)]–तीसरा, तृतीय। उ० तब सिव तीसर नयन उघारा। (मा० १।८७।३) तीसरि–तीसरी। उ० गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान। (मा० ३।३५) तीसरे–दूसरे के बादवाला, तीसरा। उ० तीसरे उपास बनबास सिंधु पास सो। (क० ५।३२)
तुँ–दे० 'तू'।
तुंग–(सं०)–१. उन्नत, ऊँचा, २. उग्र, प्रचंड, ३. प्रधान, मुख्य, ४. पुन्नाग वृक्ष, ५. कमल का केसर, ७. शिव, महादेव। उ० १. विपुल बिकराल भट भालु कपि काल संग तरु तुंग गिरि सृंग लीन्हें। (क० ६।१६)
तुंड–(सं०)–१. मुख, वदन, २. चोंच, ३. नोक, ४. राक्षस, ५. शिव, ६. निकला हुआ मुँह, थूथुन, ७. तलवार का अगला हिस्सा। उ० १. पिक बयनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड। (गी० ७।१६) २. चारु चिबुक, सुक तुंड-बिनिंदक सुभग सुउन्नत नासा। (गी० ७।१२)
तुंबरि–दे० 'तुबरी'। उ० ते सिर कटु तुंबरि समतूला। (मा० १।११३।२)
तुंबरी–(सं० तुंबी)–छोटा कड़ुआ कद्दू, तितलौकी।
तु–दे० 'तू'।
तुअ–(सं० तव)–तुम्हारा। उ० तौ तुअ बस बिधि बिष्नु महेसा। (मा० १।१६५।२)
तुच्छ–(सं०)–१. क्षुद्र, हीन, नाचीज़, २. थोड़ा, कम, ३. ओछा, खोटा, ४. खोखला, भीतर से खाली, ५. सारहीन, छिलका।
तुपक–(तु० तोप)–१. छोटी तोप, २. बंदूक। उ० १. काल तोपची, तुपक महि, दारू-अनय कराल। (दो० ५१५)
तुभ्यं–(सं०)–तुझे, तेरे लिए। उ० नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं। (मा० ७।१०८)
तुम–(सं० त्वम्)–तू शब्द का बहुवचन पर प्रायः 'तू' के स्थान पर ही प्रयुक्त। वह सर्वनाम जिसका व्यवहार उस पुरुष के लिए होता है जिससे कुछ कहा जाता है। 'आप' के स्थान पर भी तुम का प्रयोग होता है। उ० तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै। (वि० २६८) तुमहिं–तुमको। उ० देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत। मनो देखन तुमहिं आई ऋतु बसंत। (वि० १४) तुमहि–तुम्हीं, आप ही। उ० तुलसिदास यह बिपति-बाँगुरो तुम्हहि सों बनै निबेरे। (वि० १८७) तुमहीं–तुमहीं, आप ही। उ० तुलसी तिहारो, तुमहीं तें तुलको हित। (वि० २६३) तुम्ह–तुम, आप। दे० 'तुम'। उ० तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा। (मा० १।७६।२) तुम्हइ–तुम्हीं, आपही। उ० जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई। (मा० २।१२७।२) तुम्हउ–तुमको भी, तुम्हें भी। उ० हमरें बयर तुम्हउ बिसराई। (मा० १।६२।१) तुम्हहिं–तुम्हें, तुम्हें ही, आपको ही। उ० सुमिरिहिं सुकृत तुम्हहिं जन तेइ सुकृती बर। (पा० ८५) तुम्हहि–तुम्हें, तुमको, आपको। उ० अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। (मा० १।७२।१) तुम्हही–तुम्हीं, आपही। उ० तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा। (मा० २।१७६।२) तुम्हहू–तुम भी, आप भी। उ० तुम्हहू तात कहत अब जाना। (मा० ५।२७।४)
तुम्हरिहि–तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। (मा० २।१२७।२) तुम्हरी–तुम्हारी, आपकी। उ० मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही। (मा० ५।५९।३) तुम्हरे–(प्रा० तुम्हकरको)–तुम्हारे, आपके। उ० तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं। (पा० २३) तुम्हरेहि–तुम्हारे ही, आपके ही। उ० जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे। (वि० १८७)
तुम्हरो–तुम्हारा। उ० तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुम्हहीं, बलि, हौ मोको ठाहरु हेरे। (क० ७।६२)

तुम्हार–(प्र० तुम्हकरको)–तुम्हारा, आपका। उ० नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। (मा० ५।३०) तुम्हारा–आपका, तेरा। उ० देखि तात बिधुबदन तुम्हारा। (मा० १।३५७।४) तुम्हारि–तुम्हारी, आपकी। उ० त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारि। (मा० १। ६६) तुम्हारिय–तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुम्हही, बलि, हौ मोकों ठाहरु हेरे। (क० ७।६२) तुम्हारिहि–तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं। (मा० १।५६।१) तुम्हारिही–तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० केवल कृपाँ तुम्हारिही कृपानंद संदोह। (मा० ७।३६) तुम्हारी–तेरी, आपकी। उ० कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। (मा० १। ११४।८) तुम्हारें–तुम्हारे, आपके, तेरे। उ० किए सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारें रिपु हयो। (मा० ६।१०६। छं० १) तुम्हारे–दे० 'तुम्हारें'। उ० नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। (मा० १।१४६।१) तुम्हारेहि–तुम्हारी ही, आप की ही। उ० गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली। (मा० ७। १८।१)

तुम्हारो–तुम्हारा, आपका। उ० पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो। (मा० ६।१०६। छं० १)

तुम्है–तुमही। उ० जानिकै जोर करौ परिनाम, तुम्है पछितैहो पै मैं न हितैहौं। (क० ७।१०२)

तुरंग–(सं०)–१. जल्दी चलनेवाला, २. घोड़ा, अश्व। उ० २. तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते। (क० ७।४४)

तुरंगा–दे० 'तुरंग'। उ० २. जात नचावत चपल तुरंगा। (मा० १।३१६।३)

तुरंत–(सं० तुर)–शीघ्र, फौरन, तत्क्षण। उ० बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत। (मा० ४।२२)

तुरंता–दे० 'तुरंत'। उ० चलेउ सो गा पाताल तुरंता। (मा० ५।१।४)

तुरग–दे० 'तुरंग'। उ० २. बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा। (मा० १।१६०।१)

तुरगा–दे० 'तुरंग'। उ० २. प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा। (मा० ६।९२।१)

तुरत–दे० 'तुरंत'। उ० भए तुरत सब जीव सुखारे। (मा० १।८६।२) तुरतहिं–तुरंत ही, शीघ्र ही। उ० तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। (मा० ३।७।४)

तुरा–(सं० त्वरा)–जल्दी, शीघ्रता, उतावली। उ० तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो। (क० ६।५४)

तुराइ (१)–दे० 'तुराई (१)'।

तुराइ (२)–दे० 'तुराई (२)'।

तुराई (१)–(सं० तूलिका = गद्दा)–१. मोटा और गुदगुदा गद्दा, तोशक, २. तकिया। उ० १. नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। (मा० २।१४।३)

तुराई (२)–(सं० त्वरा)–१. जल्द, २. वेग।

तुरावति–(सं० त्वरा)–बेगवती, शीघ्रगामिनी।

तुरित–तुरंत, शीघ्र। उ० गंगाजल कर कलस तौ तुरित मँगाइय हो। (रा० ३)

तुरीयं–दे० 'तुरीय (१)'। उ० २. निराकारमोंकार मूलं तुरीयं। (मा० ७।१०८। श्लो० २) ५. प्राकृतं प्रकट परमात्मापरमहित प्रेरकानंत बंदे तुरीयं। (वि०५३) तुरीय (१)–(सं०)–१. चौथा, चतुर्थ, २. निर्गुण ब्रह्म, ३. वेदांतियों ने प्राणियों की चार अवस्थाएँ मानी हैं–जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। तुरीयावस्था मोक्षावस्था है जिसमें समस्त भेद-ज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा अनुपहित चैतन्य या ब्रह्मचैतन्य हो जाती है। ४. त्रिगुणात्मक विषयों से परे, ५. मोक्षरूप। उ० ३. तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि। (मा० ७।११७ग)

तुरीय (२)–(सं० त्वरा)–शीघ्र ही।

तुल–(सं० तुल्य)–१. सदृश, बराबर, २. समदर्शी, ३. शुद्ध। उ० २. तुलसी पति-पहिचान बिनु कोउ तुल कबहुँ न होय। (स० २८८)

तुलना–(सं०)–मिलान, बराबरी, समता।

तुलसि–दे० 'तुलसी'। उ० १. मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा। (मा० १।३४६।३) २. तुलसि अभिमान-महिषेस बहुकालिका। (वि० ४८)

तुलसिका–१. तुलसी का वृक्ष, २. जालंधर की पतिव्रता पत्नी वृंदा, ३. जिसके समान सृष्टि में कोई न हो। उ० १. सुमन-सुविचित्र-नवतुलसिका-दलजुतं मृदुल वनमाल उर भ्राजमानं। (वि० ५१) २. जस गावत स्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय। (दो० ५४२)

तुलसिदास–दे० 'तुलसीदास'। उ० तुलसिदास इन्ह पर जो द्रवहि, हरि तौ पुनि मिलौं बैरु बिसराई। (कृ० ४६)

तुलसी–१. तुलसी वृक्ष, २. तुलसीदास। दे० 'तुलसीदास', ३. जालंधर की पतिव्रता स्त्री वृंदा, ४. जिसके समान कोई न हो। उ० १. जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु। (मा० १।२६) २. तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच। (दो० ३०२) कथा–एक छोटा सा पौधा जिसे वैष्णव बहुत पवित्र मानते हैं, और जिसकी पूजा करते हैं। तुलसी की पत्तियाँ भगवान् को भोग लगाने के भोजन तथा पानी में डाली जाती हैं। पुराणों के अनुसार तुलसी नामक एक गोपिका गोलोक में राधा की सखी थी। एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ बिहार करते देख लिया और मनुष्य योनि में जाने का शाप दिया। तुलसी राजा धर्मध्वज की कन्या हुई और रूप में अतुलनीय होने के कारण इसका नाम तुलसी पड़ा। शंखचूड़ राक्षस से इसकी शादी हुई। शंखचूड़ को वर था कि बिना उसकी स्त्री के सतीत्व के नष्ट हुए उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। उसके अत्याचारों से तंग आकर देवताओं के कहने से विष्णु ने शंखचूड़ का रूप धारणकर तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। इस पर तुलसी ने विष्णु को पत्थर हो जाने का शाप दिया। बाद में तुलसी विष्णु के पैर पर गिरकर रोने लगी तो विष्णु ने कहा कि तुम यह शरीर छोड़कर लक्ष्मी के समान मेरी प्रिया होगी। तुम्हारे शरीर से गंडकी नदी और केश से तुलसी वृक्ष होगा। तभी से शालग्राम की पूजा होने लगी और तुलसी की पत्ती उन पर चढ़ाई जाने लगी तथा तुलसी अत्यंत पवित्र मानी जाने लगी। तुलसीक–तुलसीदास को भी।

उ० जो यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक। (दो० १०५) तुलसीहु-तुलसी से भी। उ० काहे को खीझिय रीझिय पै, तुलसीहु सो है बलि सोइ सगाई। (क० ७। ६३)

तुलसीदास-हिंदी के सर्व प्रधान भक्त कवि। इनका जन्म संवत् १६३१ में तथा इनकी मृत्यु संवत् १६८० में हुई थी। इनके जीवन के विषय में बहुत सी किंवदंतियाँ हैं। तुलसीदास के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं-रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, कवितावली, हनुमान बाहुक, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका, तुलसी सतसई तथा रामचरितमानस। तुलसीदास ने अपनी कविताओं में, तुलसि, तुलसी, तुलसिदास, तुलसीदास तुलसीदासु आदि नामों को अपने लिए प्रयुक्त किया है। उ० साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास। (मा० १। २८ ख)

तुलसीदासु-दे० 'तुलसीदास'। उ० जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु। (मा० १।२६)

तुला-(सं०)-१. तराजू, काँटा, २. मान, तौल, ३. सादृश्य, तुलना, मिलान, ४. ज्योतिष की ७वीं राशि, ५. प्राचीनकाल की एक तौल। उ० १. तुला पिनाक, साहु नृप, त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोखे। (गी० ५।१२)

तुल्य-(सं०)-समान, बराबर, सदृश।

तुव-(सं० तव)-तुम्हारा, आपका। उ० जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस तें न्यारो। (वि० ६४)

तुष-(सं०)-१. छिलका, भूसी, चोकर, २. अंडे के ऊपर का छिलका। उ० २. अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्यो नीर निहारि। (दो० ३०३)

तुषार-(सं०)-१. ओस, कुहरा, २. पाला, शीत, ३. बरफ, हिम। उ० ३. तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। (मा० ७।१०८। छं० ३)

तुषारु-दे० 'तुषार'। उ० १. मनहुँ मरकत-मृदु-सिखर पर लसत बिसद तुषारु। (कृ० १४)

तुसार-दे० 'तुषार'। उ० २. कनक कलप बरबेलि बन मानहुँ हनी तुसार। (मा० २।१६३)

तुसारू-दे० 'तुषार'। उ० २. मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू। (मा० २।२६३।१)

तुहिन-(सं०)-१. पाला, २. हिम, बरफ, ३. कुहरा, ओस, ४. चाँदनी। उ० २. गए सकल तुहिनाचल गेहा। (मा० १।९४।३) ३. जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन सत्रुतम तुहिनहर-किरनकेतू। (वि० ४०)

तुहीं-तुम्हीं, तुमहीं, आपहीं। उ० रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है। (क० ७।१७६) तुही-तुम्ही, आप ही। उ० साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले। (वि० ३२) तुहूँ-तू भी, तुम भी। उ० तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। (मा० २।३२।४)

तूँ-दे० 'तू'। उ० जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ। (मा० २।१६१)

तूँबरी-(सं० तुम्बक)-१. तूँबी, कड़ई लौकी जो खोखली की गई रहती है और जिसे साधु लोग अपना कमंडलु बनाकर रखते हैं। २. साँपवालों का तुंबी का बना बाजा। ३. लौकी।

तू-(सं० त्वम्)-तुम, आप। उ० सेवक को परदा फटै, तू समरथ सीले। (वि० ३२)

तूठहिं-(सं० तुष्ट)-तुष्ट होते हैं, प्रसन्न होते हैं। उ० तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि। (दो० ४७६)

तूण-(सं०)-तरकश, तीर रखने का चोंगा।

तूणीरं-दे० 'तूण'। उ० पाणि चाप शर कटि तूणीरं। (मा० ३।११।२) तूणीर-(सं०)-दे० 'तुणीरं'।

तून-दे० 'तूण'। उ० प्रबल-भुजदंड-परचंड कोदंड धर, तूनवर बिसिष, बलमप्रमेयं। (वि० ५०)

तूनीर-दे० 'तूण'। उ० कटि तुनीर पीतपट बाँधें। (मा० १।२४४।१) तूनीरहि-तूणीर को, तरकश को। उ० धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। (मा० ७।३०।२)

तूनीरा-दे० 'तूण'। उ० मुनिपट कटिन्ह कसें तूनीरा। (मा० २।११२।४)

तूमरि-(सं० तुम्बक)-एक तरकारी, लौकी।

तूर-(सं० तूर्य)-१. तुरही, सिंघा, २. नगाड़ा। उ० १. पाछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं। (क० ५।३)

तूरना-दे० 'तूर'। उ० डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना। (क० ७।१४८)

तूरि (१)-दे० 'तूरी (१)'।

तूरि (२)-दे० 'तूरी (२)'।

तूरि (३)-दे० 'तूरी (३)'।

तूरि (४)-दे० 'तूरी (४)'।

तूरी (१)-(सं० तूर्य)-तुरही बाजा।

तूरी (२)-(सं० त्वरा)-जल्दी, तुरत।

तूरी (३)-(सं० तुल्य)-समान। उ० मन तन बचन तजे तिन तूरी। (मा० २।३२४।३)

तूरी (४)-(सं० त्रुट)-१. तोड़ा, खंड-खंड किया, २. तोड़ कर।

तूर्ण-(सं०)-शीघ्र, जल्दी।

तूल (१)-(सं०)-१. आकाश, २. रुई, ३. तूत का पेड़, उ० २. तूल अघ-नाम पावक-समानं। (वि० ५४)

तूल (२)-(सं० तुल्य)-समान, बराबर। उ० चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ बिषतूल। (मा० २।४८)

तूल (३)-(सं० तुल्लक)-एक चटकीला लाल रंग का कपड़ा विशेष।

तूल (४)-(फ़ा०)-विस्तार, लंबाई।

तूला-दे० 'तूल (२)'। उ० जासु नाम पावक अघ तूला। (मा० २।२४८।१)

तृतीय-(सं०)-तीसरा, दूसरे के बाद का।

तृजग-(सं० तिर्यक)-पशु पक्षी आदि।

तृण-(सं०)-तिनका, घास।

तृन-दे० 'तृण'। उ० जो करत गिरीतें गरु तृन तें तनक को। (क० ७।७३) मु० तृन तोरी=तिनका तोड़ती हैं। दे० 'तृन तोरे'। उ० निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी। (मा० १।१६८।३) मु० तृन तोरे-अनिष्ट हटाने के लिए तृण तोड़ा। [टोना-टोटका, या अनिष्ट आदि से बचाने के लिए तिनका तोड़ने की कहीं-कहीं प्रथा है।] उ० लोचन

लोल चलैं भ्रुकुटी, कल काम-कमानहु सो तृन तोरे। (क० २।२६)

तृनु–दे० 'तृण'। उ० देह गेह सब सन तृनु तोरें। (मा० २।७०।३) मु० तृनु तोरें–नाता तोड़े हुए। उ०देह गेह सब सन तृनु तोरें। (मा० २।७०।३)

तृपत–(सं० तृप्ति)–संतोष, तृप्ति।

तृपित–तृप्त, भरा, संतुष्ट। उ० दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पिआसे नैन। (मा० २।२६०)

तृप्त–(सं०)–१. अघाया हुआ, तुष्ट, २. प्रसन्न, खुश।

तृप्ति (सं०)–१. संतोष, अघाना, २ खुशी, प्रसन्नता। उ० १. तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा। (मा० १।१४८।३)

तृमुहानी–दे० 'त्रिमुहानी'।

तृषा–(सं०)–१. प्यास, २. इच्छा, अभिलाषा, ३. लोभ, लालच। उ० १. तुलसिदास कब तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो। (वि० ८८)

तृषावंत–प्यासा। उ० तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो। (वि० २४५)

तृषित–१. प्यासा, २. इच्छुक, ३. लालची। उ० १. धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की। (वि० ९०)

तृष्णा–(सं०)–१. इच्छा, लोभ, लालच, २. प्यास। उ० १. तरल-तृष्णा-तमी तरणि धरनी धरन सरन-भय-हरन करुनानिधानं। (वि० ५४)

तृष्ना–दे० 'तृष्णा'। उ० १. जाके मन ते उठ गई, तिल तिल तृष्ना चाहि। (वै० २६)

तृस्ना–दे० 'तृष्णा'। उ० १. तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा। (मा० ७।७०।४)

तें (१)–[सं० तस् (प्रत्यय)]–से, द्वारा। उ० नीलकंज बारिद तमाल मनु इन तनु तें दुति पाई। (वि० ६२) ते (१)–दे० 'तें (१)'। तेइ (१)–दे० 'तें (१)'।

तें (२)–(सं० ते)–१. वे सब, वे ही, वे भी, २. उनका, उसका, ३. वह, सो। ते (२)–दे० 'तें (२)'। उ० १. जिन्ह लगि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ। (वि० ८३) तेइ (२)–दे० 'तें (२)'। उ० १. ह्वै गए, हैं, जे होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़भागी। (वि० ६५) तेई–१. वे ही, २. उन्हीं को। उ० १. तेइ पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु। (क० २।६) तेउ–१. वे भी, २. उसका। उ० १. सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ। (वि० ८६) तेऊ–वे भी, वह भी। उ० नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ। (मा० १।२२।२) तेपि–(ते+अपि)–वे भी। उ० तेपि कामबस भए बियोगी। (मा० १।८५।४) तेहिं–दे० 'तेहि'। तेहि–(सं० ते)–१. उसे, उसको, २. वह, उस, ३. उसी में, ४. इसी, यही, उसी। उ० १. तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति। (वि० १२०) २. गाधि सुवन तेंहि अवसर अवध सिधायउ। (जा० १६) ४. तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। (मा० १।१६१।२) तेही–१. उसको, उसी को, २. वह, उस, तेहू–उस, उसी। उ० तेहू तुलसी को लोग भलो भलो कहै ताको। (क० ७। ६४)

तें (३)–(सं० त्वम्)–१. तुमको, २. तुम्हारा, तेरा, आपका, ३. तेरे लिए। ते (३)–दे० 'तें (३)'। उ० २. भजामि ते पदांबुजं। (मा० ३।४। छं० १) तेइ (३)–दे० 'तें (३)'।

तें (४)–(?)–थे। उ० कीबे को बिसोक लोक लोक पालहू तें सब। (क० ७।१०) ते (४)–दे० 'तें (४)'। उ० माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि। (दो० ४६४)

तेज (१)–(सं० तेजस्)–१. कांति, चमक, आभा प्रकाश, २. पराक्रम, बल, ३. ताप, उष्णता, ४. तत्व, हीर, ५. बीर्य, ६. प्रताप, दबदबा, ७. उग्रता, तेज़ी, ८. मक्खन, ९. सोना, स्वर्ण, १०. सत्वगुण से उत्पन्न लिंग शरीर, ११. मेद, चर्बी, १२ पंच महाभूतों में से तीसरा भूत जिसमें ताप और प्रकाश होता है। अग्नि। उ०१. विमल-विज्ञानमय, तेज-विस्तारिनी। (वि० ४८) तेजपुंज–(सं०)–१. तेजयुक्त, बड़ा प्रतापी, २. सूर्य, भानु। उ० १. दूसर तेजपुंज अति भ्राजा। (मा० १।३०।४) तेज-राशि–(सं०)–दे० 'तेजपुंज'। तेजरासी–दे० 'तेजराशि'। उ० २. कीस-कौतुक-केलि-लूम-लंका-दहन दलन-कानन-तरुन तेजरासी। (वि० २६) तेजवंत–तेजस्वी, तेजवाला, प्रतापी। उ० तेजवंत लघु गनिअ न रानी। (मा० १. २५६।३) तेजहत–तेजहीन, बिना कांति या प्रताप का। उ० भयउ तेजहत श्री सब गई। (मा० ६।३५।२)

तेज (२)–(फ़ा० तेज़)–१. तीक्ष्ण, जिसकी धार तेज़ हो, २. शीघ्रगामी, ३. फुरतीला, ४. अधिक, ज्यादा, ५. चंचल, चपल, ६. महँगा, गिराँ।

तेजु (१)–दे० 'तेज (१)'। उ० ११. घटइ तेजु बलु मुख-छबि सोई। (मा० २।३२५।१)

तेजु (२)–दे०'तेज (२)'।

तेजसी–(सं० तेजस्विन्)–तेजवाला, तेजस्वी, प्रतापी। उ० रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिअ न ताहु। (मा० १।१७०)

तेजी–(फ़ा० तेज़)– महँगी, गिरानी। उ० तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू। (क० ७।११)

तेते–(सं० तावत्)–उतने, उस कदर, तितने। उ० सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते। (मा० १।५४)

तेन–(सं०)–१. उसके द्वारा, उससे, २. वे, वे सब, उन सब ने। उ० २. तेन तद्वं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं। (वि० ४६)

तेरसि–(सं० त्रयोदशी)–किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। उ० तेरसि तीन अवस्था तजहुँ भजहु भगवंत। (वि० २०३)

तेरहुति–दे० 'तिरहुति'। उ० जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी। (मा० १।२८६।४)

तेरहूति–दे० 'तिरहुति'। उ० चले चित्रकूटहि भरत चार चले तेरहूति। (मा० २।२७१)

तेरि–दे० 'तेरी'। उ० नीको तुलसीदास को तेरि ही निकाई। (वि० ३५)

तेरिए–तेरा ही, तेरा ही है। उ० बूझिए बिलंब अवलंब मेरे तेरिए। (ह० ३४) तेरी–(प्रा० तुम्हकरको, हि० तेरा)–तुम्हारी, आपकी। उ० तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी। (वि० ३४) तेरे–तुम्हारे, आपके। उ० तेरे देखत सिंह को सिसु-मेढक लीले। (वि० ३२) तेरेऊ–

तेरे ही, आपके ही। उ० जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुन-गन कीले। (वि० ३२)
तेरो-तुम्हारा, तेरा, आपका। उ० खायो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। (वि० ३३)
तेल-(सं० तैल)-१. तैल, रोगन, २. स्नेह, ३. चिकनाई। उ० १. तेल नाव भरि नृप तनु राखा। (मा० २।१५७।१) मु० तेल चढ़ावहिं-विवाह के नियमानुसार हल्दी मिला तेल अंग पर मलते हैं। उ० करि कुल रीति, कलस थपि तेलु चढ़ावहिं। (जा० १२६)
तेला-तेल, रोगन। उ० रहा न नगर बसन घृत तेला। (मा० ५।२५।३)
तेलि-(सं० तैल)-तेली, तेल पेरकर बेंचनेवाली एक जाति। उ० ते बरनाधम तेलि कुम्हारा। (मा० ७।१००।३)
तेषां-(सं०)-उनपर, उनसे। उ० ये पठंति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति। (मा० ७।१०८। श्लो० ६)
तैं (१)-(सं० त्वं)-१. तू, तुम, २. आप, ३. तैंने, तूने। उ० १. अहंवाद 'मैं तैं' नहीं दुष्ट संग नहिं कोइ। (वै० ३०)
तैं (२)-(सं० तस)-से।
तैलिकयंत्र-(सं०)-कोल्हू। उ० समर-तैलिकयंत्र तिल-तमीचर-निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी। (वि० २५)
तैसइ-(सं० तादृश, प्रा० ताइस, हिं० तैसा)-वैसे ही, उसी प्रकार। उ० तैसइ सील रूप सुबिनीता। (मा० ३।२४।२) तैसिये-वैसी ही, उसी तरह, उसी तरह है। उ० तैसिये लसति नव पल्लव खोही। (गी० २।२०) तैसी-वैसी, वैसी ही। उ० तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ सारथी। (पा० २२१) तैसें-दे० 'तैसे'। उ० ईस अनीसहि अंतरु तैसें। (मा० १।७०।१) तैसे-वैसे, उसी प्रकार से। उ० तैसे ही गुन-दोख-गत प्रगटत समय सुभाय। (स० १६४) तैसेहिं-वैसे ही, उसी प्रकार। उ० तैसेहिं भरतहि सेन समेता। (मा० २।२३०।४)
तैसो-वैसा ही, वैसा, उसी प्रकार का। उ० स्वामी सीय सखिन्ह लखन तुलसी को तैसो। (गी० १।६६)
तैहै-(सं० ताप)-संतप्त करेगी, जलावेगी।
तो (१)-(सं० तव)-तेरा, तुम्हारा। उ० तो बिनु जगदंब गंग ! कलिजुग का करित ? (वि० १६) तोकहँ-तुझे, तुझको। तोको-तुझको, तुम्हें। उ० भयो सुगम तोको अमर-अगम तनु समुझि धौं कत खोवत अकाथ। (वि० ८४) तोहिं-१. तुम्हें, २. तुझमें, तुझसे। उ० २. तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै। (वि० ७६) तोहि-तुमको, तुम्हे, तुझको। उ० मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि०३३) तोहीं-१. तुझको, आपको, २. आपसे। तोही-१. तुमसे, आपसे, २. तुझको, आपको। उ० १. रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही (मा० १।४६।३) तोहूँ-तुम्हें भी, आपको भी। उ० ताते हौं देत न दूषन तोहूँ। (गी० २।६१) तोहू-तुझको भी, तुम्हें भी। उ० तोहू है बिदित बल महाबली बालि को। (क० ६।११)
तो (२)-(सं० तद्)-तब, उस दशा में, तब फिर।
तो (३)-(हिं० हतो)-था, रहा। उ० देखी मैं दसकंठ-सभा सब, मोंते को उन सबल तो। (गी० ५।१३)
तोखपोख-(सं० तोष+पोषण)-भरण-पोषण। उ० रसना मंत्री दसन जन तोखपोख सब काज। (स० ७००)
तोतर-(अनु० तुतुलाना)-तुतला या अस्पष्ट बोलनेवाला। तोतरी-तुतली, तोतली, तुतलाती हुई। उ० तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहनी मन हरनि। (गी० १।२५) तोतरे-तुतले, तोतले। उ० अति प्रिय मधुर तोतरे बोला। (मा० १।१६६।५)
तोतरात-तुतलाते हुए। उ० पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई। (कृ० १)
तोतरि-तोतली, अस्पष्ट। उ० जौं बालक कहँ तोतरि बाता। (मा० १।८।५)
तोपची-[तु० तोप+ची (प्रत्यय)]-तोप चलानेवाला, गोलंदाज। उ० काल तोपची तुपक महि, दारू-अनय कराल। (दो० ५१५)
तोपिहैं-(सं० छोपन)-तोपेंगे, ढक लेंगे, पाट देंगे। उ० तुलसी बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं। (क० ६।१) तोपैं-तोपते हैं, पाट रहे हैं, ढक रहे हैं। उ० तोपैं तोय-निधि, सुर को समाज हरषा। (क० ६।७) तोप्यो-तोपा, ढक दिया, घेर लिया। उ०बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो। (मा० ६।६३।२)
तोम-(सं० स्तोम)-समूह, ढेर। उ० तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है। (क०६।२६) तोमनि-समूहों, तोम का बहुवचन। उ० महामीन बास तिमि-तोमनि को थल भो। (ह० ७)
तोमर-(सं०)-१. भाले की तरह का एक पुराना हथियार २. एक छंद, ३. बरछा, साँग। उ० १. सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा। (मा०३।१६। छं० १)
तोय-(सं०)-पानी, जल।
तोयनिधि-(सं०)-समुद्र। उ० सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस। (मा० ६।५)
तोर-(प्रा० तुम्हकरको)-तुम्हारा, आपका। उ० प्रनतपाल प्रन तोर मोर प्रन जिअउँ कमलपद देखे। (वि० ११३)
तोरइ-(सं० त्रुट)-तोड़ता है, दो खंड करता है। तोरन (१)-तोड़ने के लिए, २. तोड़नेवाला, ३. तोड़ना। तोरब-१. तोड़ेंगे, २. तोड़ूँगा ३. तोड़ना। उ० १. राम चाप तोरब सक नाहीं। (मा० १।२४५।१) ३. रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। (मा०१।२५२।१) तोरहुँ-तोड़ें, तोड़ डालें। उ०तोरहुँ राम गनेस गुसाईं। (मा०१।२५५।४) तोरा (१)-तोड़ा, टूक टूक किया, भंग किया। तोरि (१)-तोड़कर। उ० तोरि जमकातरि मँदोदरी कढ़ोरि आनी, रावन की रानी मेघनाद महतारी है। (ह० २७) तोरिबे-तोड़ने, खंड-खंड करने। उ० मैं तव दसन तोरिबे लायक। (मा० ६।३४।१) तोरी (१) १. तोड़कर, २. तोड़ दी। तोरें (१)-तोड़े, खंडन किए। उ० बिनु तोरें को कुअँरि बिआहा। (मा० १।२४५।३) तोरे (१)-१. तोड़े, तोड़ा, २. तोड़ने पर, ३. तोड़ने से। तोरेउँ-तोड़े, तोड़ डाले। उ० कपि सुभाव ते तोरेउँ रूखा। (मा० ५।२२।२) तोरेहुँ-तोड़ने पर। उ० तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा। (मा०१।२४५।३) तोरैं-तोड़ने, टूक टूक करने। उ० फल खाएसि तरु तोरैं लागा। (मा० ५।१८।१) तोरौं-तोड़ूँ, तोड़ डालूँ। उ०

असि रिस होति दसउ मुख तोरौं। (मा० ६।३४।१) तोरयो–तोड़ा, तोड़ डाला। उ० राज सभा रघुबर मृनाल ज्यों संभु-सरासन तोरयो। (गी० १।१००)

तोरण–(सं०)–१. एक काठ का टुकड़ा जो विवाहादि के अवसर पर द्वार पर बाँधते हैं, २. फूल माला या पत्ती आदि से युक्त रस्सी जो शुभ अवसरों पर दरवाज़े पर बाँधते हैं, वंदनवार, ३. बाहरी फाटक।

तोरन (२)–दे० 'तोरण'। उ० २. तोरन बितान पताक चामर धुज सुमन फल-घौरि। (गी० ७।१८)

तोरा (२)–(प्रा० तुम्हकरको)–तुम्हारा, आपका। उ० कृष्न तनय होइहि पति तोरा। (मा० १।८८।१) तोरी (२)–तेरी, तुम्हारी, आपकी। उ० तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी। (मा० २।१४।४) तोरें (२)–तुम्हारी, आपकी। उ० देबि मागु बरु जो रुचि तोरें। (मा० १।१५०।२) तोरे (२)–तेरे, तुम्हारे। उ० मम समान पुन्य पुंज बालक नहिं तोरे। (कृ० १)

तोरा (३)–(सं० त्वरा) शीघ्रता, वेग, जल्दी।

तोराई–१. तोड़ा कर, तोड़कर, तुड़ाती हुई, २. तोड़ाया। उ० १. छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। (मा० ४।१४।३) तोरावति–(सं० त्रुट)–१. तोड़ाती है, २. तोड़ करनेवाली, ज़ोरदार। उ० २. विषम बिषाद तोरावति धारा। (मा० २।२७६।२)

तोरि (२)–(प्रा० तुम्हकरको) तुम्हारी, आपकी, तेरी। उ० काम-लोलुप भ्रमत मन हरि-भगति परिहरि तोरि। (वि० १५८)

तोष–(सं०)–१. अघाने या भरने का भाव, तुष्टि, संतोष, २. आनंद, खुशी, ३. अल्प, थोड़ा, ४. श्रीकृष्ण के एक सखा का नाम। उ० १. बीर बर बिराग तोष सकल संत आदरे। (वि० ७४) तोष-पोष–भरण पोषण। उ० रसना मंत्री, दसनजन, तोष-पोष निज काज। (दो० ५२५)

तोषक–(सं०)–प्रसन्न या संतुष्ट करनेवाला, तृप्त करनेवाला। उ० भव श्रम सोषक तोषक तोषा। (मा० १।४३।२)

तोषन–१. तोषना, तृप्त करना, संतुष्ट करना, २. प्रसन्न करनेवाला, संतुष्ट करनेवाला, ३. तृप्ति, संतोष। उ० २. हरि तोषन ब्रत द्विज सेवकाई। (मा० ७।१०४।६)

तोषनिहारा–संतुष्ट करनेवाला, प्रसन्न करनेवाला। उ० तनय मातु पितु तोषनिहारा। (मा० २।४१।४)

तोषये–(सं०)–तुष्टि के लिए, प्रसन्नता के लिए। उ० रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये। (मा० ७।१०८। श्लो० ६) तोषा-क. दे० 'तोष', ख. तुष्ट किया, प्रसन्न किया। उ० क १. भव श्रम सोषक तोषक तोषा। (मा० १।४३।२) तोषि–संतुष्ट कर, प्रसन्न होकर। उ० माँग कोषि तोषि पोषि फैलि फूलि फरिकै। (गी० १।७०) तोषिए–१. संतुष्ट कीजिए, २. प्रसन्नता के लिए, ३. जिसके द्वारा संतुष्ट तुरें। उ० १. तुलसिदास हरि तोषिए सो साधन नाहीं। (वि० १०६) तोषि पोषि–प्रसन्न होकर। उ० दे० 'तोषि'। तोषिहैं–संतुष्ट करेंगे। उ० जोगिनी जमाति कालिका कलाप तोषिहैं। (क० ६।२) तोषे–१. तृप्त हुए, प्रसन्न हुए, २. संतुष्ट किया, ३. तुष्ट करने से। उ० २. लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी। (वि० २५३) तोषेउ–प्रसन्न हुए। उ० प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। (मा० १।७७।३)

तोहारा–तुम्हारा, आपका। उ० परसु सहित बड़ नाम तोहारा। (मा० १।२८२।१)

तौंकी–(सं० ताप) तौंक कर, गर्म होकर। उ० चारु चुवा चहूँ ओर चलैं, लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी। (क० ७।१४३)

तौंसियत–(?)–तपे जाते हैं, जले जाते हैं। उ० तात तात, तौंसियत, झौंसियत झारहीं। (क० ५।१५)

तौ (१)–तो, तो फिर। उ० तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू। (मा० १।१४६।२)

तौ (२)–(सं०) वे दोनों। उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः। (मा० ४। श्लो० १)

तौ (३)–तब। तौलगि–(सं० तद्+लग्ने) तौलों, तब तक, उस समय तक।

तौलि–(सं० तौल) तौलकर, जोखकर। उ० मैं मति-तुला तौलि देखी भइ, मेरिहि दिसि गरुआई। (वि० १७१) तौलिए–१. तौला करती हैं, २. तोलिए, वज़न कीजिए। उ० १. देव, पितर, ग्रह पूजिये तुला तौलिए घी के। (गी० १।१२)

त्यक्त–(सं०)–त्यागा हुआ। उ० गुरु गिरा-गौरवामर सुदुस्त्यज-राज त्यक्त श्री सहित, सौमित्रि भ्राता। (वि० ५०)

त्याग–(सं०)–१. छोड़ना, तजना, उत्सर्ग, २. दान, ३. विरक्ति, वैराग्य। उ० १. संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने। (मा० १।६।१)

त्यागइ–त्याग देता है, छोड़ता है। उ० मनि बिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ। (पा० ६७) त्यागत–त्यागते हैं, छोड़ देते हैं। उ० मुनि त्यागत जोग भरोस सदा। (मा० ७।१४।७) त्यागब–१. त्यागना, छोड़ना, २. त्यागूँगा, ३. त्यागना चाहिए। उ० ३. त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं। (वि० १२४) त्यागहिं–त्यागते, त्यागते हैं। उ० सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। (मा० ३।४६।१) त्यागहु–१. त्यागो, छोड़ो, छोड़ दो, २. छोड़ रहे हो। उ० १. सखा सोच त्यागहु बल मोरें। (मा० ४।७।५) त्यागहू–त्यागो, छोड़ दो। उ० नर बिबिध कर्म अधर्म बहुमत सोकप्रद सब त्यागहू। (मा० ३।३६।छं० १) त्यागा–छोड़ा, छोड़ दिया। उ० जबतें सतीं जाइ तनु त्यागा। (मा० १।७५।४) त्यागि–१. त्यागकर, छोड़कर, २. छोड़, छोड़ो। १. त्यागि सब आस संत्रास भव पास-असि-निसित हरिनाम जपु दास तुलसी। (वि० ४६) त्यागिहै–त्यागेगा, छोड़ेगा। उ० कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागिहै। (वि० २२४) त्यागी–१. छोड़कर, त्यागकर, २. त्यागनेवाला, ३. साधु, विरक्त, संन्यासी। उ० १. बृत्र बलि बाण प्रहलाद मय व्याध गज गृद्ध द्विज-बंधु निज धर्म-त्यागी। (वि० ५७) त्यागू–१. त्याग, उत्सर्ग, छोड़ना, २. त्यागो। उ० १. आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। (मा० २।१०७।३) त्यागे–१. छोड़े, छोड़ दिए, २. २. छोड़ दिया है, ३. छोड़ने पर। उ० १. तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे। (वि० १२८) त्यागेउ–छोड़ा, छोड़ दिया। उ० बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। (मा०

१।१४५।१) त्यागै–छोड़े, छोड़ता। उ० देखत सुनत बिचारत यह मन निज सुभाव नहिं त्यागै। (वि० ११६) त्यागों–त्यागूँगा, छोड़ूँगा। उ० जौ तुम त्यागो राम हौं तो नहिं त्यागों। (वि० १७७) त्यागो–छोड़ो, छोड़ोगे, छोड़ भी दोगे। उ० दे० 'त्यागों'।

त्यों–(सं० तत् + एवम्)–१. उस प्रकार, उसी तरह, २. उसी समय, तत्काल। उ० १. सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं। (क० २।२१) मु० त्यों-त्यों–वैसे ही वैसे, उसी प्रकार। उ० त्यों-त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहिं निदरि लगे बहि काढ़न। (वि० २१)

त्रपा–(सं०)–लज्जा, शर्म। उ० भव धनु दलि जानकी बिवाही भए बिहाल नृपाल त्रपा है। (गी० ७।१३)

त्रयः–तीन। उ० त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिम्। (मा० ७।१। श्लो० ५) त्रय–(सं०)–तीन। उ० त्र्यनयन मयन-मर्दन महेस। (वि० १३) त्रयकाल–भूत, भविष्यत और वर्तमान काल। उ० तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ। (वि० १३६) त्रयताप–दैहिक, दैविक, भौतिक नामक तीन दुःख या ताप। उ० विमल विपुल बहसि बारि, सीतल त्रयताप हारि। (वि० १७) त्रयनयन–(सं०)–तीन आँखवाले। शिव। उ० त्र्यनयन, मयन-मर्दन महेस। (वि० १३) त्रयरेखा–पेट पर पड़ जानेवाली तीन रेखाएँ, त्रिबली। उ० कटि किंकिनी उदर त्रयरेखा। (मा० १।१६६।२) त्रयलोक–दे० 'त्रैलोक'। त्रयवर्ग–१. अर्थ, धर्म और काम, २. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ३. वृद्धि स्थिति और नाश, ४. त्रिफला, ५. त्रिकुटा। उ० १. संत संसर्ग त्रयवर्ग पर परमपद प्राप, निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने। (वि० ५७) त्रयव्याधि–आधिदैहिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक नाम की तीन व्याधियाँ या रोग।

त्रयी–(सं०)–तीन का समूह। उ० अद्भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग-लोगन्हि सुख दैन। (गी० २।२४)

त्रसित–(सं० त्रस्त)–१. डरा हुआ, भयभीत, २. दुखित, ३. सताया हुआ। उ० १. त्रसित परेउ अवनी अकुलाई। (मा० १।१७४।४)

त्रसे–डरे, डर गए। उ० मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे। (मा०६।६१। छं०१) त्रस्यो–१.त्रस्त, भयभीत, डरा हुआ, २.डरा। उ०१. करम-कपीस बालि बली त्रास त्रस्यो हौं। (वि० १८१)

त्रस्तं–दे० 'त्रसित'। उ० १. त्राहि रघुबंस भूषन कृपाकर कठिन काल-बिकराल-कलि-त्रास त्रस्तं। (वि० ५६) त्रस्त–(सं०)–दे० 'त्रसित'।

त्राण–(सं०)–१. रक्षा, बचाव, २. कवच, ३. रक्षित।

त्रात–दे० 'त्राता'।

त्रातहि–रक्षा करनेवाले को। उ० पलक नयन इव सेवक त्रातहि। (मा० ७।३०।२) त्राता–(सं० त्रातृ)–रक्षक, रक्षा करनेवाला। उ० पाप संताप घनघोर संसृति, दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११)

त्रातु–रक्षा करे, बचावे। उ० त्रातु सदा नोभव खग बाजः। (मा० ३।११।३)

त्रान–दे० 'त्राण'। उ० १. नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया। (मा० २।२१६।३)

त्राना–दे० 'त्राण'। उ० १. नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। (मा० ६।८०।२)

त्रास–(सं०)–१. भय, डर, २. कष्ट, तकलीफ। उ० १. त्राहि रघुबंस भूषन कृपाकर कठिन काल-बिकराल-कलि-त्रास त्रस्तम्। (वि० ५६)

त्रासइ–डराता, त्रास देता। उ० तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना। (मा० १।१८३। छं० १) त्रासहु–डराओ, भय दिखलाओ। उ० सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई। (मा० ५।१०।४)

त्रासक–डरानेवाला, भयंकर, डराकर भगानेवाला। उ० त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। (मा० १।४०।२)

त्रासकारी–दे० 'त्रासक'। उ० रिच्छ मर्कट बिकट सुभट उद्भट, समर सैल-संकासरिपु-त्रासकारी। (वि० ५०)

त्रासन–१. भयभीत, २. त्रास का बहुवचन, ३. त्रास देनेवाला, डरानेवाला। उ० १. को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हों। (क० ७।११७)

त्रासा–त्रास, डर, भय। उ० भागि भवन पैठीं अति त्रासा। (मा० १।६६।३)

त्रासित–भयभीत, डरा हुआ। उ० एक एक रिपु ते त्रासित जन तुम राखे रघुबीर। (वि० ६३)

त्राहि–रक्षा करो, बचाओ। उ० त्राहि रघुबंस भूषन कृपाकर कठिन काल बिकराल-कलि-त्रास त्रस्तम्। (वि० ५६)

त्रि–(सं०)–तीन।

त्रिकाल–(सं०)–१. तीनों काल, भूत, वर्तमान और भविष्य, २. प्रातः मध्याह्न और सायं। त्रिकालग्य–(सं० त्रिकालज्ञ)–भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों को जानने वाला। उ० त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि। (मा० १।६६) त्रिकालदरसी–(सं० त्रिकालदर्शिन्)–दे० 'त्रिकालग्य'। उ० तुम्ह त्रिकालदरसी मुनिनाथा। (मा० २।१२५।४)

त्रिकूट–(सं०)–१. तीन चोटियोंवाला पर्वत, २. वह पर्वत जिस पर लंका बसी हुई मानी जाती है। ३. एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता है। ४. योग शास्त्रानुसार शरीर के छः चक्रों में से प्रथम। उ० २. कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं। (क० ६।१४)

त्रिकोण–(सं०)–१. जिसमें तीन कोण हों, २. योनि, भग।

त्रिगुण–(सं०)–१. सत्व, रज और तम इन तीन गुणों का समूह, २. तीन गुना।

त्रिगुणा–(सं०)–१. दुर्गा, भगवती, २. तन्त्र में एक प्रसिद्ध बीज।

त्रिगुन–दे० 'त्रिगुण'। उ० १. तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद। (वि० २०३)

त्रिजग (१)–(सं० त्रिजगत्)–आकाश, पाताल और पृथ्वी नामक तीनों लोक।

त्रिजग (२)–(सं० तिर्यक्)–टेढ़ा चलनेवाला जीव, पशु तथा कीड़े मकोड़े। उ० त्रिजग देव नर असुर समेते। (मा० ७।८७।३)

त्रिजटा-(सं०)-सीता की अशोकवाटिका में सेवा करनेवाली एक राक्षसी। उ० त्रिजटा नाम राक्षसी एका। (मा० ५।११।१) कथा-त्रिजटा विभीषण की बहन थी। यह बड़े अच्छे स्वभाव की थी। सीता जब अशोकवाटिका में थीं तो यह उनकी सेवा किया करती थी तथा उनसे तरह-तरह की बातें कर उनका दुःख दूर किया करती थी। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि यह प्रायः एक बार में तीन बातें कहा करती थी।

त्रिताप-दैहिक, दैविक और भौतिक तीन ताप या दुःख। उ० नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए। (क० ७।७६)

त्रिदश-(सं०)-देवता सुर।

त्रिदस-दे० 'त्रिदश'। उ० तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर मथन जय त्रिदस वर। (क० ७।१५०)

त्रिदोष-(सं०)-१. बात, पित्त और कफ ये तीन दोष, २. बात, पित्त और कफ जनित रोग, सन्निपात। इसमें रोगी अकबक करता है। उ० २. भाल की, कि काल की,कि रोष की, त्रिदोष की है। (ह० २६) त्रिदोषे-त्रिदोषयुक्त, सन्निपात से पीड़ित। उ० कैधौं कूर काल बस तमकि त्रिदोषे हैं। (गी० १।६३)

त्रिधा-(सं०)-तीन तरह से, तीन प्रकार से। उ० त्रिधा देहगति एक बिधि कबहूँ ना गति आन। (स० १७६)

त्रिपथ-(सं०)-१. तीन पथ, आकाश, पाताल, पृथ्वी, २. कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गों का समूह। उ० १. ईस सीस बससि, त्रिपथ लससि नभ-पाताल-धरनि। (वि० २०) २. तुलसी त्रिपथ बिहाय गो राम दुआरे दीन। (दो० ६६)

त्रिपथगा-(सं०)-स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों से बहनेवाली, गंगा। उ० त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-छालिका। (वि० १७)

त्रिपथगामिनि-दे० 'त्रिपथगा'। उ० त्रिपथगामिनि-जसु बेद कहै गाइ कै। (क० २।६)

त्रिपथगामिनी-(सं०)-दे० 'त्रिपथगा'।

त्रिपुंड-(सं० त्रिपुंड्र)-तीन आड़ी रेखाओं का तिलक जो शैव या शाक्त लोग ललाट पर लगाते हैं। उ० भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा। (मा० १।२६८।२

त्रिपुर-महाभारत के अनुसार वे तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माला नामक तीनों पुत्रों ने मय दानव से अपने लिए बनवाये थे। इनमें एक नगर सोने का और स्वर्ग में था। दूसरा चाँदी का और अंतरिक्ष में था और तीसरा लोहे का मर्त्यलोक में था। जब इन तीनों राक्षसों का अत्याचार बहुत बढ़ गया तो शिव ने एक ही बाण से तीनो लोकों को नष्ट कर डाला और फिर उन राक्षसों को मार डाला। इसीलिए शिव का नाम त्रिपुरारि है। उ० दारुन दनुज जगत-दुखदायक जारयो त्रिपुर एक ही बान। (वि० ३) त्रिपुरआराती-शिव, महादेव। उ० तदपि न कहेउ त्रिपुरआराती। (मा० १।५७।४)

त्रिपुरमथन-शिव, महादेव। उ० तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर त्रिपुरमथन जय त्रिदसवर। (क० ७।१५०)

त्रिपुरारि-(सं०)-महादेव। दे० 'त्रिपुर'।

त्रिपुरारी-दे० 'त्रिपुरारि'।

त्रिबली-(सं०)-पेट पर पड़नेवाली तीन रेखाएँ। ये रेखाएँ सुन्दर मानी गई हैं। उ० त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी। (वि० ६३)

त्रिबिक्रम-(सं० त्रिविक्रम)-वामन भगवान, विष्णु के एक अवतार। उ० जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। (मा० ४।२६।४)

त्रिबिध-(सं० त्रिविध)-दे० 'त्रिविध'। उ० १. सुनहु नाथ! मन जरत त्रिबिध ज्वर करत फिरत बौराई। (वि०८१) ४. चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। (मा० १।१२६।२)

त्रिबिधि-तीन गुना, तिगुना। उ० त्रिबिधि एक-बिधि प्रभु-अगुन प्रजहि सवाँरहिं राउ। (स० ६८६)

त्रिबेनिहि-(सं० त्रिवेणी)-त्रिवेणी पर, गंगा, जमुना और सरस्वती के संगम पर। उ० कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहि आए। (मा० २।२०४।२) त्रिबेनीं-त्रिवेणी में। दे० 'त्रिवेणी'। उ० २. सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं। (मा० १।४४।२)

त्रिबेनी-दे० 'त्रिवेणी'। उ० २. भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। (मा० २।२०५।३)

त्रिभंग-(सं०)-१. तीन जगह से टेढ़ी, २. खड़े होने की एक मुद्रा जिसमें पेट, कमर और गरदन में कुछ टेढ़ापन रहता है। उ० २. मुरली तान-तरंग मोहे कुरंग बिहंग, जोहैं मूरत त्रिभंग निपट निकट हैं। (कृ० २०)

त्रिभुवन-(सं०)-तीनों लोक अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल। उ० अँधियारे मेरी बार क्यों त्रिभुवन उजियारे! (वि० ३३)

त्रिभुवनपति-(सं०)-विष्णु, त्रिलोकीनाथ, तीनों लोकों के स्वामी। उ० विश्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति बेद-बिदित यह लीख। (वि० ६८)

त्रिमुहानी-(सं० त्रि + फ़ा० मुहाना)-१. वह स्थान जहाँ तीन ओर से नदियाँ आकर मिलें। तिमुहानी। २. वह स्थान जहाँ तीन रास्ते मिलें।

त्रिय-(सं० स्त्री)-स्त्री, औरत। उ० रे त्रिय चोर कुमारगगामी। (मा० ६।३३।३)

त्रिया-(सं० स्त्री)-स्त्री, औरत, वामा।

त्रिरेख-(सं०)-उदर पर पड़नेवाली तीन रेखाएँ, त्रिबली। उ० उदर त्रिरेख मनोहर सुंदर नाभि गँभीर। (गी० ७।२१)

त्रिलोक-(सं०)-स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीन लोक, त्रिभुवन। उ० एतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु, कपिनाथ साँची कहौ को त्रिलोक तोसो है? (ह० २६)

त्रिलोकपति-(सं०)-विष्णु, तीनो लोकों के स्वामी। उ० तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोकपति-लोक गयो। (क० ७।७६)

त्रिलोचन-(सं०)-१. शिव, महादेव, २. काशी में एक तीर्थस्थान। उ० १. तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर मथन जय त्रिदसवर। (क० ७।१५०)

त्रिवलि-दे० 'त्रिबली।

त्रिवली-दे० 'त्रिबली'।

त्रिविध-(सं०)-१. तीन प्रकार की, तीन तरह की, २. सात्विक, राजसिक और तामसिक, ३. मन कर्म और बचन, ४. शीतल, मंद और सुगंध, ५. दैहिक, दैविक, और

भौतिक, ६. तन, जन और धन, ७. जन्म, जरा, और मरण, ८. व्यापक, ध्वन्यात्मक, और वर्णात्मक।

त्रिवेणी-(सं०)-१. तीन नदियों का संगम, २. गंगा, जमुना और सरस्वती का संगम जो प्रयाग में है। ३. हठयोग में इड़ा, सुषुम्ना और पिंगला, इन तीन नाड़ियों का संगम।

त्रिशिर-(सं०)-१. त्रिशिरा। तीन मस्तकवाला एक राक्षस जो रावण का भाई था। खर-दूषण के साथ दंडकवन में राम के हाथ से यह मारा गया। २. ज्वर पुरुष जिसे बाणासुर की सहायता के लिए शिव ने उत्पन्न किया था और जिसके तीन सिर, तीन पैर, छः हाथ और नौ आँखें थीं। उ० १. जयतिखर-त्रिशिर-दूषण-चतुर्दश सहस-सुभट मारीच-संहारकर्त्ता। (वि० ४३)

त्रिसिरा-दे० 'त्रिशिर'। उ० १. खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। (मा० ५।२१।५)

त्रिशंकु-(सं०)-एक राजा। राजमद से इनकी सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा हुई। इन्होंने वशिष्ठ से यह कहा, पर उन्होंने इसे असंभव बतलाया। फिर इन्होंने वशिष्ठ के पुत्र से कहा पर उन्होंने भी इसे अशक्य कहा। वशिष्ठ के पुत्र ने इन्हें चांडाल होने का श्राप भी दिया क्योंकि ये पिता-पुत्र में विरोध खड़ा करना चाहते थे। त्रिशंकु चांडाल होकर विश्वामित्र के यहाँ पहुँचे। विश्वामित्र ने इनका कहना मान लिया और इसके लिए सभी ऋषियों को बुलाकर यज्ञ आरंभ करवाया। यज्ञ भाग लेने देवता लोग न आए, इस पर रुष्ट हो विश्वामित्र अपने तप के बल से उन्हें सदेह स्वर्ग भेजने लगे। पर उधर से इन्द्र ने त्रिशंकु को नीचे ढकेला। पर विश्वामित्र की शक्ति के कारण वे नीचे पृथ्वी पर न आ सके और तभी से उसी प्रकार बीच में लटके हैं। इनका मुख नीचे तथा पैर ऊपर है। ये प्रसिद्ध सूर्यवंशी हरिश्चंद्र के पिता थे।

त्रिशूल-(सं०)-१. शिव का अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। २. दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख।

त्रिसंकू-दे० 'त्रिशंकु'। उ० सहस बाहु सुरनाथु त्रिसंकू। (मा० २।२२६।१)

त्रिसिरारि-(सं० त्रिशिरारि)-राम। उ० तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि। (मा० ४।३०क)

त्रिसूल-दे० 'त्रिशूल'। उ० कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। (मा० १।६२।३) त्रिसूलन्हि-त्रिशूलों से। उ० ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि। (मा० ६।४२)

त्रुटि-(सं०)-१. कमी, न्यूनता, २. ग़लती, अशुद्धि, ३. शंका, संशय, ४. छोटी इलायची।

त्रेता-(सं०)-चार युगों में से दूसरा युग जो १२९६००० वर्षों का होता है। इस युग में पुराणानुसार आदमियों की उम्र १०,००० वर्ष तथा मनु के अनुसार ३०० वर्ष की होती थी। उ० एक बार त्रेता जुग माहीं। (मा० १।४८।१)

त्रै-(सं० त्रय)-तीन।

त्रैलोक-(सं० त्रैलोक्य)-तीन लोक, आकाश, पाताल और मर्त्यलोक। उ० तासु सुजसु त्रैलोक उजागर। (मा० ५।३०।२)

त्रैलोका-दे० 'त्रैलोक'। उ० भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका। (मा० १।८७।३)

त्रैलोक्य-१. तीनों लोक की, २. तीनों लोक में। उ० १. संग जनकात्मजा, मनुज मनु सृत्य, अज, दुष्ट वधनिरत, त्रैलोक्य-माता। (वि० ५०)

त्रोण-(सं०)-तरकश, तुणीर।

त्रोन-दे० 'त्रोण'। उ० काल त्रोन सजीव जनु आवा। (मा० ६।७१।२)

त्र्यंबक-(सं०)-तीन आँखवाले, शिव।

त्वं-तू। उ० आदिमध्यांत भगवंत त्वं सर्वगतमीस पश्यंति ये ब्रह्मवादी। (वि० ५४)

त्व (१)-तुम, तू, आप।

त्व (२)-(?)-१. काल, समय, २. अन्य, भिन्न।

त्वक्-(सं०)-चमड़ा, खाल।

त्वच-(सं० त्वचा)-चमड़ा, छाल, खाल। उ० अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने। (मा० ७।१३।छं०५)

त्वत्-(सं०)-तुम्हारा, आपका। उ० त्वदंघ्रि मूल ये नराः। (मा० ३।४।छं०७)

त्वदीय-(सं०)-तुम्हारा, आपका। उ० त्वदीय भक्ति संयुक्ताः। (मा० ३।४।छं०१२)

त्वम्-(सं०)-तुम, आप।

त्वयि-१. तुम्हारी, आपकी, २. तुम्हारे, आपके। ३. तुममें। उ० २. संत संसर्ग त्रयवर्ग पर परमपद प्राप, निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने। (वि० ५७)

त्वरा-(सं०)-शीघ्रता, जल्दी।

त्वरित-(सं०)-शीघ्र, तुरंत।

थ

थ-(सं०)-१. रक्षण, २. मंगल, ३. भय, ४. भक्षण, ५. एक रोग।

थकान-(सं० स्था+कृ०, प्रा० थक्कन)-थकावट, शिथिलता।

थकि-थककर, हार कर, लाचार होकर, निरुपाय होकर। उ० जहँ-तहँ रहे पथिक थकि नाना। (मा० ४।१५।६)

थकित-१. थका हुआ, श्रांत, २. मुग्ध, मोहित, ३. आश्चर्य-चकित, अचंभित, ४. थके हुए हैं। उ० २. थकित होत जिमि चंद्र-चकोरा। (मा० १।२१६।२) ३. थकित होहिं सब लोग लुगाई। (मा० १।२०४।४)

थके-१. थक गए, २. थके हुए, ३. मोहित हुए, लुभा गए,

४. टिक गए, ठहर गए। उ० १. थके नयन पद पानि सुमति बल, संग सकल बिछुरयो। (वि० १००)
थन–(सं० स्तन)–गाय, भैंस, बकरी आदि चौपायों का स्तन। उ० अंतर अयन अयन भल, थन फल बच्छ बेद-बिस्वासी। (वि० २२) थन-धेनु–४ की संख्या। उ० अहि-रसना थन-धेनु रस गनपति-द्विज गुरु बार। (स० २१)
थपत–(सं० स्थापन)–स्थापित हो जाता है, ठहर जाता है, शांत हो जाता है। उ० नाम सो प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत। (वि० १३०) थपि–स्थापना करके, स्थापित करके। उ० करि कुल रीति, कलस थपि तेलु चढ़ावहिं। (जा० १२६) थपिहै–स्थापित करेगा। उ० उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै ? (क० ७।४७) थपे–१. स्थापित, जमे हुए, स्थापित किए हुए, २. स्थापित किए। उ० १ उथपे-थपन थपे-उथपन पन बिबुध बृंद-बंदिछोर को। (वि० ३१) थपै–स्थापित करे, थापे, जमावे। उ० उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै ? (क० ७।४७) थप्यो–दे० 'थप्यौ'। उ० २. बालि से बीर बिदारि सुकंठ थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे। (क० ७।१) थप्यौ–१. स्थापित किया, जमा दिया, २. राज्य दिया, गद्दी पर बिठलाया।
थपति–१. थवई, मकान बनानेवाला, २. स्थापित करनेवाला। उ० १. चले सहित सुर थपति प्रधाना। (मा० २।१३३।३)
थपन–१. स्थापन, ठहराने या जमाने का काम, २. बैठाना, ठहराना, ३. स्थापन करनेवाला। उ० ३. उथपे-थपन, थपे-उथपन पन बिबुध बृंद-बंदि छोर को। (वि० ३१)
थर-थर–(अनु०)–डर से काँपने की मुद्रा। उ० बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तनु थर-थर। (पा० ६६)
थरु–दे० 'थल'। उ० प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है। (क० ७।१३६)
थल–(सं० स्थल)–१. स्थान, जगह, स्थल, २. पृथ्वी। उ० १. आपनी भलाई थल कहाँ कौन लहैगो ? (वि० २५६) थलहि–स्थल ही, भूमि ही। उ० जे जल चलहिं थलहि की नाईं। (मा० १।२६६।४) थलो–स्थल भी, भूमि भी, स्थान भी। उ० तुलसी सुमिरत नाम सबनि को मंगल-मय नभ जल थलो। (गी० १।४२)
थलचर–(सं० स्थल+चर)–स्थलचारी, मनुष्य आदि भूमि पर रहनेवाले जीव।
थलपति–(सं० स्थलपति)–राजा। उ० स्रवन नयन मन मग लगे सब थलपति तायो। (वि० २५६)
थलरुह–(सं० स्थलरुह)–पृथ्वी पर उगनेवाले वृक्ष आदि। उ० उकठेउ हरित भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई। (गी० २।४६)
थलु–दे० 'थल'। उ० १. थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा। (मा० २।१३३।३)
थवई–(सं० स्थपति, प्रा० थवइ)–मकान बनानेवाला, कारीगर, मेमार।
थहाइबी–(सं० स्था, हि० थाह)–थहाना, गहराई का पता लगाना। उ० धाइ न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह। (दो० ४४६) थहाओं–दे० 'थहावों'। थहावों–थाह लगाऊँ, थाहूँ, गहराई का अंदाज़ा लूँ। उ० गोपद बूड़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावों। (वि० २३२)
थाका–(सं० स्थ+कृ, प्रा० थक्कन)–थक गया, थका, ढीला पड़ गया। उ० गर्जा अति अंतर बल थाका। (मा० ६।६२।१) थाकी–१. थकी, थक गई, २. ठहर गई, टिक गई। थाके–१. थक गए, थके, २. थक जाने पर, ३. ठहर गए। उ० २. थाके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलावोंगी। (गी० २।६) थाकेउ–१. थक गए, थके, २. ठहर गए, रुक गए। उ० २. रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ। (मा० १।१६५) थाको (१)–(सं० स्था+कृ, प्रा० थक्कन)–थका, थक गया, थक गया है, शिथिल पड़ गया। उ० सो पाँवर पहुँचो तहाँ जहँ मुनि मन थाको। (वि० १५२) थाक्यो–थका, थक गया, थक गया है। उ० अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत बिपति जाल जग छायो। (वि० २४३)
थाकु–(सं० स्था, हि० थाक)–सीमा, हद। उ० मेरे कहाँ थाकु गोरस, को नवनिधि मंदिर यासहिं। (कृ० ५)
थाको (२)–(?)–तुम्हारा। उ० खर्ब कियो सर्ब को गर्ब थाको। (क० ६।२१)
थाति–दे० 'थाती'। उ० २. भजे बिकल बिलोकि कलि अघ-अवगुननि की थाति। (वि० २२१)
थाती–(सं० स्थातृ)–१. धरोहर, अमानत, २. पूँजी, ३. स्थिरता, ठहराव। उ० १. थाती राखि न मागिहु काऊ। (मा० २।२८।१)
थान–(सं० स्थान)–जगह, स्थान।
थाना–(सं० स्थान)–१. स्थान, जगह, २. बैठक, अड्डा, जमाव। उ० २. तहँ-तहँ सुर बैठे करि थाना। (मा० ७।११८।६)
थापन–(सं० स्थापन)–स्थापित करनेवाला, जमानेवाला, बसानेवाला। उ० रघु-कुल-तिलक सदा तुम्ह उथपन थापन। (जा० १६३)
थापना–(सं० स्थापना)–१. किसी मूर्ति की स्थापना या प्रतिष्ठा, कहीं कोई नई मूर्ति स्थापित करना, २. रखना, बैठाना। उ० १. करिहउँ इहाँ संभु थापना। (मा० ६।२।२)
थापनो–स्थापित करनेवाला, जमाने या बसानेवाला। उ० राय दसरथ के तू उथपन-थापनो। (वि० १७६)
थापहिं–बसाते हैं, स्थापित करते हैं। उ० असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु। (मा० १।१२१) थापि–स्थापित कर, जमाकर। उ० थापि अनल हर बरहि बसन पहिरायउ। (पा० १३७) थापिए–स्थापना कीजिए, बैठाइए, बसाइए। उ० बाँह बोल दै थापिए जो निज बरिआईं। (वि० ३५) थापिय–प्रतिष्ठा बढ़ाइए, बड़ाई दीजिए। उ० थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ। (मा० २।८८।४) थापे–स्थापित किए, निश्चित किए, टिकाए, टहराए। उ० थापे मुनि सुर साधु आस्रम बरन। (वि० २४८) थापेउँ–स्थापना की, स्थापित किया। उ० इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुखधाम। (मा० ६।११६क) थाप्यो–दे० 'थाप्यौ'। उ० २. निज लोक दियो सबरी खग

को कपि थाप्यो सो मालुम है सबही। (क० ७।१०) थाप्यौ–१. स्थापन किया, २. प्रतिष्ठा दी।
थार–(सं० स्थाली, हि० थाली)–बड़ी थाली, थाल। उ० कंचन थार सोह बर पानी। (मा० १।६६।२)
थारा–दे० 'थार'। उ० कनक कलस भरि कोपर थारा। (मा० १।३०५।१)
थाला–(सं० स्थल)–पेड़ आदि के चारों ओर पानी देने के लिए बनाया गया गड्ढा, थावँला, आलवाल।
थालिका–छोटा थाला। दे० 'थाला'। उ० पुरजन-पूजोपहार सोभित ससि-धवल थार, भंजनि-भवभार भक्तिकल्प थालिका। (वि० १७)
थाह–(सं० स्था)–१ नदी, ताल आदि के नीचे की ज़मीन, पानी के नीचे की धरती, तला, पेंदा, गहराई का अंत, २. आधार, ३. आहट, ४. ख़बर। उ० १. बिषम-बिषाद-बारिनिधि बूड़त थाह कपीस कथा लही। (गी० ५।३१)
थाहत–थाह लेते हुए। थाहैं–१. थाह पाकर, ऐसे स्थान पर जहाँ थाह है, २. थाह लगाते हैं। उ १. होत सुगम भव उदधि अगम अति, कोउ लाँघत, कोउ उतरत थाहैं। (गी० ७।१३)
थाहा–दे० 'थाह'। उ० १. गावत नर पावहिं भव थाहा। (मा० ७।१०३।२)
थिति–(सं० स्थिति)–१. स्थान, जगह, २. ठिकाना, ठहराव, रहना, टिकाव, ३. रोक, ४. रक्षा, ५. अवस्था, दशा, स्थिति, ६. बने रहने का भाव। उ० १. प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं। (मा० २।२२७।२) २. तुलसी किये कुसंग-थिति होहिं दाहिने बाम। (दो० ३६१)
थिर–(सं० स्थिर)–१. ठहरा हुआ, अचंचल, स्थिर, २. शांत, धीर, ३. एक अवस्था में सर्वदा या अधिक दिन तक रहनेवाला, टिकाऊ, अचल, ४. निश्चित। उ० १. लषन कह्यो थिर होहु धरनि धरु। (गी०१।८८।४) २.तबही ते न भयो हरि! थिर जब जिव नाम धरयो। (वि० ६१)
थिरताइ–स्थिरता को प्राप्त हो, स्थिर हो। उ० सेइ साधु गुरु, समुझि, सिखि, राम भगति थिरताइ। (दो० १४०)
थिरातो–स्थिर हो जाता, नीचे बैठ जाता। उ० जनम कोटि को कँदैलो हद-हृदय थिरातो। (वि०१५१) थिराना–थिरा गया, स्थिर हो गया। उ० भरेउ सुमानस सुथल थिराना। (मा०१।३६।५) थिराने–१. स्थिर हुए, २.निर्मल हुए, साफ हुए। उ० २. सदा मलीन पंथ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने। (वि० २३५)
थीर–दे० 'थिर'।
थीरा–दे०' थिर'। उ० २. निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। (मा० ७।६०।४)
थूनि–(सं० स्थूण)–छप्पर आदि में लगाने की लकड़ी, थूनी, साधारण खंभा, टेकनी। उ० जनु हिरदय गुन-ग्राम थूनि थिर रोपहिं। (जा० ६५)
थैली–(सं० स्थल=कपड़े का घर, खेमा, रावटी) छोटा थैला, कपड़े या टाट आदि का बना बटुआ। उ० तुरत देउँ मैं थैली खोली। (मा० १।२७६।२)
थोर (१)–(सं० स्तोक, प्रा० थोअ)–थोड़ा, न्यून, अल्प। उ० मातु मते महुँ मानि मोहि, जो कछु करहिं सो थोर। (मा० २।२३३) मु० थोर थोर–थोड़ा-थोड़ा, धीरे-धीरे। उ० बोल घनघोर से बोलत थोर थोर हैं। (गी०१।७१) थोरि–१. लघुता, छोटाई, २. थोड़ी, तनिक। उ०२. बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि। (वि० १५८) थोरिउ–तनिक भी, ज़रा भी। उ० मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी। (मा०२।१२।१) थोरिक–थोड़ी ही, थोड़ी सी। उ० एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू। (क०२।६) थोरिकै–थोड़ी ही, थोड़ी सी ही। उ० दिवस छः सात जात जानिबे न,मातु धरु धीर,अरि अंत की अवधि रही थोरिकै। (क० ५।२७) थोरिहिं–थोड़ी सी ही, तनिक सी ही। उ० थोरिहिं बात पितहिं दुख भारी। (मा० २।४२।३) थोरे–थोड़े, अल्प, न्यून, ज़रा सा। उ० थोरे महुँ जानिहहिं सयाने। (मा० १।१२।३) थोरेहि–थोड़ा सा ही, ज़रा सा ही। उ० थोरेहि कोप कृपा पुनि थोरेहि, बैठि कै जोरत तोरत ठाढ़े। (क० ७।५४) थोरेहीं–थोड़ा ही, ज़रा सा ही। उ० साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल। (मा० ७।१०८ घ)थोरेहुँ–थोड़े ही, ज़रा। उ० जस थोरेहुँ धन खल इतराई। (मा० ४।१४।३)
थोर (२)–(?)–१. केले के बीच का गाभा, २. थूहर का पेड़।
थोरा–दे० 'थोर (१)'। उ०सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा। (मा० १।२५।२)

द

दं–(सं०)–दाता, देनेवाला। उ० मूलं धर्म तरोर्विवेक जलधेः पूर्णेन्दु मानंददं। (मा० ३।१। श्लो० १)
दंड–(सं०)–१. डंडा, सोटा, लाठी, २. किसी अपराध के प्रतिशोध रूप में अपराधी को पहुँचाई गई पीड़ा, सज़ा, ३. शासन, शमन, दमन, ४. ध्वजा का बाँस, ५. यमराज, ६. घड़ी, साठ पल का समय, आधे घंटे से कुछ कम का समय, ७. विष्णु, ८. कृष्ण, ९. शिव, १०. कुबेर का एक पुत्र, ११. इक्ष्वाकु के १०० पुत्रों में से एक जिसके कारण दंडक बन या दंडकारण्य नाम पड़ा था, १२. दंडवत करना, १३. सेना, फौज, १४. घोड़ा, १५. अर्थदंड, जुरमाना। उ० १. दंडपानि भैरव बिषान, मलरुचि खलगन भयदा सी। (वि०२२) ६. दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर काम-

कृत कौतुक अयं। (मा० १।८५। छं० १) १२. दंड-प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। (मा० १।३३१।१) १५. लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हें। (मा० १।१५४।४)

दंडक—१. रामायण काल का एक प्रसिद्ध जंगल। यहाँ पहले इक्ष्वाकु के पुत्र दंडक राज्य करते थे। इन्होंने अपने गुरु शुक्राचार्य की कन्या से व्यभिचार किया जिससे रुष्ट हो शुक्राचार्य ने इनको राज्य के साथ जला डाला। तभी से पूरा राज्य जंगल हो गया और दंडकारण्य कहलाने लगा। इसके पेड़ पहले सूखे थे पर रामावतार में राम के दर्शन से वे हरे-भरे हो गए। सूर्पणखा की नाक यहीं कटी थी तथा मारीच-बध और सीता-हरण भी यहीं हुआ था। २. इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम, ३.शासक, दंड देनेवाला, ४. एक छंद। उ० १. दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। (मा० १।२४।४)

दंडकारण्य—(सं०)—दंडक नामक वन। दे० 'दंडक'।

दंडकारन्य—दे० 'दंडकारण्य'। उ०दंडकारन्य-कृत-पुन्य-पावन-चरन, हरन-मारीच-माया कुरंग। (वि० ५०)

दंडकारि—दंड देनेवाले, न्याय करनेवाले। उ० कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि। (क० ७।१७१)

दंडपानि—(सं० दंडपाणि)—१. यमराज, २. काशी में शिव के गण भैरव की एक मूर्ति। यह एक हरीकेश नामक यक्ष की मूर्ति है जो शिव की तपस्या कर वरदान पाकर काशी का दंडधर हुआ था। उ० २. कालनाथ कोतवाल दंड-कारि दंडपानि। (क० ७।१७१)

दंड-प्रनाम—(सं० दंड + प्रणाम)—पृथ्वी पर डंडे के समान पड़कर प्रणाम करने की मुद्रा, दंडवत्। उ० दंड-प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। (मा० १।३३१।१)

दंडवत्—(सं० दंडवत्)—साष्टांग प्रणाम, दंड-प्रणाम। उ० बोले मनु करि दंडवत् प्रेम न हृदयँ समात। (मा० १। १४५)

दंडा—दे० 'दंड'। उ० १. करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। (मा० १।१४७।४)

दंडै—दंड देता है, सजा देता है। उ० कलि-कुचालि सुभ-मति-हरनि, सरलै दंडै चक्र। (दो० ५३७)

दंत—(सं०)—१. दाँत, दशन, २. ३२ की संख्या। उ० १. बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की। (क० १।५) दंतटेवैया—खाने के लिए दाँत तेज़ करने वाला, फाड़ खाने को उद्यत।

दंतकथा—(सं०)—ऐसी बात जिसे बहुत दिनों से लोग एक दूसरे से सुनते चले आए हों पर जिसका कोई पुष्ट प्रमाण न हो। जनश्रुति। उ० इति बेद बदंति न दंतकथा। (मा० ६।१११। छं० ८)

दंति—(सं० दंत)—हाथी, जिसके दाँत हों। उ० कमठ कोल दिग-दंति सकल अँग, सजग करहु प्रभु काज। (गी० १। ८८)

दँतियाँ—(सं० दंत)—छोटे-छोटे दाँत, दँतुली। उ० दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों। (क० १।३)

दँतुरियाँ—(सं० दंत)—छोटे-छोटे हाल के निकले हुए दाँत। उ० दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं। (गी० १।२८)

दंपति—(सं०)—स्त्री-पुरुष का जोड़ा, पति-पत्नी। उ० सुनि सहमे परि पाइँ, कहत भए दंपति। (पा० २०) दंपतिहि—स्त्री-पुरुष को, पति-पत्नी को। उ० दुख दंपतिहि उमा हरषानी। (मा० १।६८।१)

दंभ—(सं०)—१. पाखंड, ऊपरी दिखावट, २. अभिमान, घमंड, ३. जवान बैल। उ० २. महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर रूप, फेरु छल, दंभ मार्जार-धर्म्मा। (वि० ५९)

दंभा—दे० 'दंभ'। उ० २. सुनत नसाहिं काम मद दंभा। (मा० १।३५।३) दंभापहन—दंभ को दूर करनेवाले। उ० दनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुःपाप हर्त्ता। (वि० ५६)

दंभिन्ह—दंभियों, घमंडियों। उ० जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा। (मा० ४।१५।३) दंभिहि- दंभी को, घमंडी को। उ० मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई। (मा० ७।१०५) दंभी—१. पाखंडी, छली, २. घमंडी।

दंश—(सं०)—१. दाँत से काटने का घाव, २. व्यंग्य, कटूक्ति, ३. द्वेष, शत्रुता, ४. विषैले जंतुओं का डंक मारने या काटने का घाव, ५. दाँत, ६. डँस, बगदर, वर्मि, ७. दाँत से काटने की क्रिया।

दंष्ट्र—(सं०)—दाँत, दंत।

दंष्ट्रा—(सं०)—१. बड़े दाँत, दाढ़, २. बड़े दाँतवाला।

दंस—दे० 'दंश'। उ० ६. बिषय-सुख-लालसा दंस-मस-कादि खल झिल्लि, रूपादि सब सर्प स्वामी। (वि० ५९)

द—(सं०)—१.दाँत, २. पर्वत, ३. स्त्री, ४. रक्षा, पनाह, ५. खंडन, निराकरण, ६. दाता, देनेवाला। उ० ६. रंक धनद पदवी जनु पाई। (मा० २।५२।३)

दइ (१)—(सं० दैव)—१. ब्रह्मा, बिधाता, २. ईश्वर, पर-मेश्वर।

दइ (२)—(सं० दान)—दिया, प्रदान किया। उ० दइ जनक तीनिहु कुँवरि कुँवर बिबाहि सुनि आनँद भरी। (जा० १७१) दई (१)—(सं० दान)—१. दिया, दी, २. दी हुई, प्रदत्त। उ० १. दई सुगति सोन हेरि हरष हिय, चरन छुए पछिताउ। (वि० १००) २. जहाँ सांति सत गुरु की दई। (वै० ५१) दए—दिए, दिया। उ० तब जनक सहित समाज राजहि उचित रुचिरासन दए। (जा० १५३)

दइअ—दैव, बिधाता, भगवान। उ० आह दइअ मैं काह नसावा। (मा० २।१६३।३)

दइउ—दैव भी, ईश्वर या विधाता भी। उ० बर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन। (जा० ११४)

दई (२)-(सं० दैव)—१. देव, बिधाता, २. भगवान, ३. दयालु। उ० २. पतित-पावन, हित आरत अनाथनि को, निराधार को अधार दीनबंधु दई। (वि० २५२)

दक्ष—(सं०)—१. निपुण, कुशल, चतुर, होशियार, २. बायाँ का उलटा, दाहिना, ३. समर्थ, योग्य, ४. अनुकूल, मुवाफ़िक, ५. एक प्रजापति, दक्ष प्रजापति जो सती या पार्वती के पिता थे। ६. दक्षिण। उ० ६. सकल-सौभाग्य संयुक्त त्रैलोक्य श्री, दक्ष दिसि रुचिर बारीश कन्या। (वि० ६१)

दक्षसुत—(सं०)—दक्ष प्रजापति के पुत्र, प्रचेता।

दक्षसुता—१. दक्ष प्रजापति की श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, पूर्ति, तितिक्षा,

ह्री, स्वाहा, स्वधा और सती नामक १६ कन्याएँ, २. सती, पार्वती ।

दक्षिण-(सं०)-१. दक्षिण दिशा, उत्तर के विपरीत की दिशा, २. दाहिना, बायाँ का उलटा, ३. निपुण, चतुर, ४. अनुकूल, ५. उदार, सरल, ६. विष्णु । उ० २ आजानु भुजदंड, कोदंड, मंडित बाम बाहु, दक्षिण पानि बानमेकं । (वि० ५१)

दक्षिणा-(सं०)-१. दक्षिण दिशा, २. धर्म-कर्म का पारितोषिक, दान, ३. नायिका-विशेष, ४. भेंट, पूजा ।

दक्षिणायन-(सं०)-सूर्य का दक्षिण की ओर जाने का समय जो श्रावण से पौष मास अथवा कर्क की संक्रांति से धन की संक्रांति तक रहता है ।

दखिन-(सं० दक्षिण)-दे० 'दक्षिण' । उ० १. देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं । (मा० २।१४२।४)

दगा-(अर० दग़ा)-छल, कपट, धोखा । उ० तुलसिदास तब अपहुँ से भए जड़, जब पलकनि हठ दगा दई । (कृ० २४) दगाई-दग़ा ही, धोखा ही । उ० करुनाकर की करुना करुना-हित नाम-सुहेत जो देत दगाई । (क० ७।६३)

दगाबाज-(फ़ा० दग़ाबाज़)-छली, कपटी, धोखा देनेवाला, धूर्त, ठग । उ० नाम तुलसी पै भोंड़े भाग, सो कहायो दास, किए अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को । (क० ७।१३)

दगाबाजि-(फ़ा० दग़ाबाज़ी)-छल, कपट, धोखा । उ० सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत । (वि० २६४)

दगो-दे० 'दगौ' । उ० लोक बेद हूँ लौं दगो नाम भले को पोच । (दो० ३७३) दगौ-[सं० दग्ध+ना (प्रत्यय) हि० दगना-तोप या बंदूक छूटना]-प्रसिद्ध है । उ०लोक बेदहूँ लौं दगौ नाम भले को पोच । (स० ७१३)

दच्छ-दे० 'दक्ष' । उ० १. सापबस-मुनि बधू-मुक्त कृत, विप्रहित-यज्ञरच्छन-दच्छ पच्छकर्त्ता । (वि० ५०) ५. जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई । (मा० १।६८।३) दच्छहि-दक्ष प्रजापति को । उ० दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक । (मा० १।६०।३)

दच्छकुमारि-दे० 'दक्षसुता' । उ० २. कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि । (मा० १।६२)

दच्छकुमारी-दे० 'दक्षसुता' । उ० २. कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी । (मा० १।५५।४)

दच्छसुत-दे० 'दक्षसुत' ।

दच्छसुतन्ह-दक्ष के पुत्रों को । उ० दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई । (मा० १।७६।१)

दच्छसुता-दे० 'दक्षसुता' । उ० २. दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना । (मा० १।५२।३)

दच्छिन-दे० 'दक्षिण' । उ० १. सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू । (मा० ४।२३।१)

दछिना-दे० 'दक्षिणा' । उ० २. विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई । (मा० १।२०३।२)

दत्तं-दिया, दे दिया, दान कर दिया । उ०तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्म जालं । (वि० ४६) दत्त-(सं०)- दिया हुआ, दिया गया, समर्पित ।

ददाति-दे डालते हैं । उ० यो ददाति सतां शंभुः कैवल्यमपि दुर्लभम् । (मा० ६।१। श्लो० ३)

दद्रु-(सं०)-दाद का रोग ।

दधि (१)-(सं०)-१. दही, जमाया हुआ दूध, २. वस्त्र, कपड़ा । उ० १. मंगल बिटप मंजुल बिपुल दधि दूब अच्छत रोचना । (जा० २०७)

दधि (२)-(सं० उदधि)-समुद्र, सागर ।

दधिकाँदो-(सं० दधि+कर्दम)-एक पर्व जो जन्माष्टमी के बाद पड़ता है । उस दिन लोग हलदी मिला दही एक दूसरे पर डालते हैं ।

दधिनिधि-१. सागर, समुद्र, २. दही का समुद्र, दधि सागर, ३. क्षीर सागर । उ० १. तुलसी सिय लगि भव दधिनिधि मनु फिर हरि चहत मह्यो है । (गी० ४।२)

दधिवल-सुग्रीव के पुत्र का नाम ।

दधि-सुत-(सं० उदधि+सुत)-चंद्रमा । दधि-सुत-सुत-समुद्र के पुत्र चंद्रमा का पुत्र बुध । बुद्धि । उ० जिनके हरि बाहन नहीं दधि-सुत-सुत जेहि नाहिं । (स० २६३)

दधीच-दे० 'दधीचि' । उ० सिबि दधीच हरिचंद नरेसा । (मा० २।६५।२)

दधीचि-(सं०)-एक ऋषि । एक बार इंद्र को गर्व हो गया कि मैं त्रिलोकी का स्वामी हूँ । गर्व से उनकी बुद्धि मारी गई और उन्होंने कुलगुरु बृहस्पति का अपमान कर दिया। रूठकर बृहस्पति चले गए । इसका पता पाकर असुरों ने देवों पर चढ़ाई कर दी । ब्रह्मा की सलाह से त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप पुरोहित बनाए गए और उनके कारण नारायण कवच से देवताओं की किसी प्रकार विजय हुई । विजय के उपलक्ष्य में एक यज्ञ हुआ । यज्ञ में विश्वरूप धीरे से दैत्यों को भी आहुति दे दिया करते थे । इंद्र को इसका पता लगा तो वे बड़े बिगड़े और उन्होंने विश्वरूप का सिर काट डाला । उन्हें ब्रह्महत्या लगी, पर किसी प्रकार वे इससे मुक्त हुए । उधर त्वष्टा बहुत बिगड़े और उन्होंने यज्ञ कर वृत्रासुर को पैदा किया । वृत्रासुर ने इंद्र को ललकारा। इंद्र भागते-भागते फिर ब्रह्मा के यहाँ पहुँचे। इस बार ब्रह्मा ने बतलाया कि दधीचि की हड्डी से बने वज्र से इसकी मृत्यु संभव है । इस पर इंद्र दधीचि के पास गए । दधीचि ने सहर्ष अपनी हड्डी दे दी और उससे विश्वकर्मा ने वज्र बनाया जिससे वृत्रासुर मारा गया । दधीचि के पिता के विषय में विभिन्न मत हैं । वेदों में उनका नाम दध्यंच मिलता है । उ० सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा । (मा० २।३०।४)

दनुज-(सं०)-१. दनु से उत्पन्न, राक्षस, असुर, २. दक्ष प्रजापति की कन्या दनु और कश्यप मुनि से उत्पन्न पुत्र जो संख्या में ४० थे । असुरों के पूर्व पुरुष ये ही थे । ३. हिरण्यकशिपु । उ०१. दनुज-बन-धूमध्वज, पान-आजानु-भुजदंड-कोदंडवर-चंड-बानं । (वि० ४६) ३. अतुलितबल मृगराज-मनुज तनु दनुज हत्यो श्रुतिसाखी । (वि० ६३) दनुजसूदन-दानवों के संहारक, १. देवता, २. विष्णु । उ० २. दनुजसूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुःपापहर्त्ता । (वि० ५६)

दनुजारि-(सं०)-दानवों के शत्रु, १. देवता २. विष्णु ।

दनुजारी–दे० 'दनुजारि'। उ० २. बसनपूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। (वि० ६३)
दनुजेस–(सं० दनुजेश)–१. रावण, २. हिरण्यकशिपु, ३. हिरण्याक्ष। उ० १. दुष्ट-दनुजेस निर्बंस कृत दास हित बिस्व दुख-हरन बोधैकरासी। (वि० ५८) २. सकल यज्ञांसमय उग्रविग्रह क्रोड, मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी। (वि० ५२)
दपटि–(?)–डपटकर, डाँटकर। उ० इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। (मा० ६।८२।३)
दपट्टहिं–डपटते हैं, घुड़कते हैं, डाँटते हैं। उ० खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं। (मा० ६।८८।५)
दबकि–(सं० दमन, हि० दबाना)–१. दाबकर, २. डाँटकर। उ० २. दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक। (क० ६।४१)
दबत–१. दबने से, २. दबती हैं, ३. दबते हुए। उ० १. महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि। (क० ६।१६)
दबि–१. दबकर, दाब में आकर, बोझ के नीचे पड़कर, २. दबा, दबोच, ३. दबाया, ४. पिछड़ाया, ५. झेंपाया। उ० १. मैं तो दियो छाती पबि, लयो कालि काल दबि। (वि० २५६)
दबा–(?)–दाव, पेंच, घात।
दबाई–दबाया, दबा लिया। उ० दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु। (क० ७।९७)
दबोरे–(सं० दमन)–दबोचा, दबाया। उ० दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक। (क० ६।४१)
दमंकहिं–१. चमक रही हों। उ० जनु दहुँ दिसि दामिनी दमंकहिं। (म० ६।८७।२) दमंका–१. दमक, चमक, २. चमके, दमके, ३. चमक रही हो। उ० सोइ प्रभु जनु दामनी दमंका। (मा० ६।१३।३)
दम (१)–(सं०)–१. इंद्रियों का दमन, इंद्रियों को बश में रखना तथा बुरे मार्ग पर न जाने देना, २. दंड, सज़ा, ३. विष्णु। उ० १. दम अधार रजु सत्य सुबानी। (मा० ७।११७।८)
दम (२)–(फ़ा)–१. साँस, २. प्राण, जी, ३. लहमा, पल, ४. बोलना, कहना, ५. जीवनी शक्ति, ६. धोखा, छल, फ़रेब।
दमक–(?)–आभा, चमक, द्युति। उ० कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि। (जा० ८०)
दमकति–चमकती हैं, चमक रही हैं। उ० दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं। (गी० १।२८) दमकहिं–चमक रही हैं। उ० चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि। (मा० १।३४७।२) दमकेउ–चमका। उ० दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। (मा० १।२६१।३) दमकैं–दमकते हैं, चमकते हैं। उ० दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों। (क० १।३)
दमन–(सं०)–१. दबाने की क्रिया, रोकने या बश में रखने की क्रिया, २. दम, इंद्रियों को बश में रखना, ३. महादेव, ४. विष्णु, ५. एक ऋषि जिनके यहाँ दमयंती पैदा हुई थी। ६. एक राक्षस का नाम, ७. दौना, ८. कुंद पुष्प, ९. दबाने या नाश करनेवाला, १०. नाश करना। उ० ९. देहि अवलंब कर कमल कमलारमन दमन दुख समन-संताप-भारी। (वि० ५८)
दमनीय–(सं०)–१. दबाने, रोकने या नष्ट करने के योग्य, २. तोड़नेवाला, नष्ट करनेवाला, नष्ट करने की शक्ति रखनेवाला। उ० २. पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय। (मा० १।२५१)
दमनु–दमन करनेवाला, दबाने या नष्ट करनेवाला। लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु। (मा० २।१३)
दमनू–दे० 'दमनु'।
दमशील–(सं०)–जितेन्द्रिय, इंद्रियों के दमन करनेवाले।
दमसीला–दे० 'दमशील'। उ० कहहिं महा मुनिबर दमसीला। (मा० ७।२२।३)
दमानक–(?)–तोपों की बाढ़। उ० मोहिं पर दवरि दमानक सी दई है। (ह० ३८)
दमामा–(फ़ा०)–नगारा, धौंसा, बड़ा ढोल।
दमैया–(सं० दम, दमन)–दमन करनेवाला, नाशकर्त्ता। उ० तुलसी तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया। (क० ७।५३)
दया–(सं०)–कृपा, रहम। उ० तजि आस भो दास रघुप्पति को, दशरत्थ को दानि दया-दरिया। (क० ७।४६)
दयाकर–दया करनेवाले, दयालु। उ० दीन दयाकर आरत बंधो। (मा० ७।१८।१)
दयाधाम–अत्यंत दयालु, दया के घर।
दयानिकेत–दे० 'दयाधाम'। उ० देव तो दया निकेत, देत दादि दीनन की। (क० ७।१८)
दयानिधान–(सं०)–दया का ख़ज़ाना, बहुत दयालु। उ० तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी में। (क० ७।२१)
दयानिधि–दे० 'दयानिधान'। उ० निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। (मा० १।२८।२)
दयालं–दयालु, दया करनेवाले। उ० प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं। (मा० ७।१०८। छं० ४) दयाल–दे० 'दयालु'। उ० दीनदयाल अनुग्रह तोरें। (मा० २।१०२।४)
दयाला–दे० 'दयाल'। उ० सत्यधाम प्रभु दीनदयाला। (मा० १।५७।४)
दयालु–(सं०)–दयावान्, दयावाला। उ० गाँहक गरीब को दयालु दानि दीन को। (वि० ६६)
दयावने–जिनको देखकर दया उत्पन्न हो, दया के पात्र। उ० दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिर नावैं। (क० ७।२)
दयावनो–दया उपजानेवाला। उ० तब लौं दयावनो दुसह दुख दारिद को। (क० ७।१२५)
दयासिंधु–दया के समुद्र, अत्यंत दयालु। उ० दनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुःपापहर्त्ता। (वि० ५६)
दये–दिये। उ० पुरतें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै। (क० २।११)
दर (१)–(सं०)–१. शंख, २. छेद, ३. गुफा, कंदरा, ४. डर, भय, ५. प्रतिज्ञा, ६. फाड़ने की क्रिया, ७. दलनेवाला, हरनेवाला, नाश करनेवाला। उ० १. कटि मेखल, वर हार, ग्रीवदर, रुचिर बाँह भूषन पहिराए। (गी० १।२३) ४. दारुन दुसह दर-दुरित हरन। (वि० २४८)

दर (२)–(सं० दल)–१. समूह, २. सेना ।
दर (३)–(फ़ा०)–१. द्वार, दरवाज़ा, २. खिड़की ।
दरकि–(सं०दर)–१. फट, फटकर, २. फटना । उ० १. दरकि दरार न जाई । (गी० ६।६)
दरद–(फ़ा० दर्द)–पीड़ा, व्यथा । उ० दोख दुरत हर दरद दर उर बर बिमल बिनीत । (स० ३०८)
दरन–(सं० दलन)–१. दलना, पीसकर टुकड़े-टुकड़े करना, २. दलनेवाला, नाशक । उ० २. तिलक दियो दीन-दुख-दोष-दारिद-दरन । (गी०५।४३) दरनि–दलनेवाली, नाश करनेवाली । उ० देखत दुख-दोष-दुरित-दाह-दारिद-दरनि । (वि० २०)
दरप–(सं० दर्प)–गर्व, अहंकार । उ० बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी । (वि० ६३)
दरपन–(सं०दर्पण)–आरसी, शीशा, आइना । उ० रवि-रुख लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वालाजाल । (दो०३७५)
दरबार–(फ़ा०)–१. वह स्थान या कमरा जहाँ, राजा अपने दरबारियों के साथ बैठते हैं, राजसभा, २. दरवाज़ा, फाटक, द्वार । उ० १. प्रीति-पहिचानि यह रीति दरबार की । (वि० ७१)
दरबारा–दे० 'दरबार' । उ० २. भइ बड़ि भीर भूप दरबारा । (मा० २।७६।३)
दरश–(सं० दर्श)–१. दर्शन, अवलोकन, देखा-देखी, देखना २. रूप, छबि, सुंदरता ।
दरशन–दे० 'दरसन' । उ० दरशनारत दास, त्रसित-माया-पास, त्राहि त्राहि ! दास कष्टी । (वि० ६०)
दरस–दे० 'दरश' । उ० १. दरस परस मज्जन अरु पाना । (मा० १।३५।१)
दरसन–(सं० दर्शन)–देखना, अवलोकन, दर्शन । उ० तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची । (मा० १।४८ ख)
दरसनी–(सं० दर्शन)–दर्पण, शीशा । उ० नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाष । (दो० ४६०)
दरसनु–दे० 'दरसन' । उ० पावा दरसनु राम प्रसादा । (मा० २।२५०।३)
दरसाइ–(सं० दर्शन)–दिखाई पड़ता है । उ० निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ । (ब० २६)
दरसी–१. देखनेवाला, २. दिखाई पड़ी, सूझी । उ० १. सबँदरसी जानहिं हरिलीला । (मा० १।३०।३)
दरसु–दे० 'दरस' । उ० १. दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा । (मा० २।१३५।२)
दराज–(फा० दराज़)–१. बड़ा, भारी, लंबा, दीर्घ, २. बहुत अधिक । उ० १. उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए । (क० ७।७६)
दरार–(सं० दर)–किसी चीज़ के फटने पर बीच में हो जानेवाली खाली जगह, शिग़ाफ़ । उ० दरकि दरार न जाई । (गी० ६।६)
दरारा–दे० 'दरार' । उ० सुनि कादर उर जाहिं दरारा । (मा० ६।४१।२)
दरिद्र (१)–(सं०)–निर्धन, कंगाल, रंक, दीन । उ० जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई । (मा० १।१४६।३)
दरिद्र (२)–(सं० दारिद्र्य)–दरिद्रता, निर्धनता । उ० अभिमत दातार कौन दुख दरिद्र दारै ? (वि० ८०) दरिद्रहि–दरिद्रता से, निर्धनता से । उ० डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ । (मा० २।२१०।१)
दरिबे–(सं० दरण)–दलने, कुचलने । उ० दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे को भयो । (ह० ८)
दरिया–(फ़ा०)–१. नदी, सरिता, २. समुद्र, सागर । उ० २. तजि आस भो दास रघुपति को, दशरत्थ को दानि दया-दरिया । (क० ७।४६)
दरेरा–(सं० दरण)–१. रगड़ा, धक्का, २. तेज़ वर्षा, ३. बहाव का ज़ोर, तोड़ ।
दरेरो–दे० 'दरेरा' । उ० १. तापर सहि न जात करुना-निधि, मन को दुसह दरेरो । (वि० १४३)
दर्प–(सं०)–१. घमंड, गर्व, अहंकार, २. आतंक, दबाव, रोब, ३. उद्दण्डता, अक्खड़पन, ४. मान, अहंकार के लिए किसी पर कोप । उ० १. जयति गतराज-दातार, हरतार-संसार-संकट, दनुज-दर्पहारी । (वि० २८)
दर्पण–(सं०)–१. आइना, आरसी, शीशा, २. उत्तेजना, उभारने का कार्य ।
दर्पन–दे० 'दर्पण' ।
दर्पा–दर्प से भर गया, गर्वित हुआ । उ० १. रन मदमत्त निसाचर दर्पा । (मा० ६।६७।३)
दर्पित–घमंड से भरे, गर्वित । उ० बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए । (मा० ६।८८। छं० १)
दर्पी–(सं० दर्पिन्)–घमंडी, अहंकारी ।
दर्भ–(सं०)–कुश, एक प्रकार की घास । उ० बैठे कपि सब दर्भ डसाई । (मा० ४।२६।५)
दर्श–(सं०)–१. दर्शन, २. अमावस्या तिथि ।
दर्शन–(सं०)–१. चाक्षुष ज्ञान, अवलोकन, २. एक विद्या या शास्त्र जिसमें तत्वज्ञान हो । इसमें ब्रह्म जीव प्रकृति तथा जीवन के अंतिम लक्ष्य आदि का विवेचन रहता है । ३. आँख, नेत्र, ४. स्वप्न, ५. दर्पण, आइना, ६. बुद्धि, मनीषा, ७. धर्म । दर्शनात्–दर्शन से । उ० यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरति पापं । (वि० ५५)
दर्शनीय–(सं०)–मनोहर, सुंदर, देखने योग्य ।
दर्शी–(सं० दर्शिन्)–देखनेवाला, दरसी ।
दल (१)–(सं०)–१. पत्ता, पत्र, २. सेना, ३. झुंड, समूह, ढेर, समाज, ४. खंड, भाग, ५. मोटाई । उ० १. सुमन-सुविचित्र-नव तुलसिका-दल जुतं मृदुल वनमाल उर भ्राजमानं । (वि० ५१) २. धरनि, दलनि दानव दल, रन करालिका । (वि० १६) ३. कामादि खलदल गंजनं । (वि० ४५) दलन (१)–(सं० दल)–अनेक दल, बहुत से समूह । दलनि (१)–(सं० दल)–१. दल का बहुवचन, बहुत से समूह, २. पत्तों, पंखुड़ियों, ३. पत्तों पर । उ० २. नख-जोति मोती मानो कमल-दलनि पर । (गी० १। ३०) दलन्हि–दलों पर । उ० कमल दलन्हि बैठे जनु मोती । (मा० १।१९९।१) दलहि–दल को, समूह को । उ० मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिव नैन । (मा० ६।६७)

दल (२)–(सं० दलाढ्य)–कीचड़, पंक।
दल (३)–(सं० दलन)–दलनेवाला, नाशकर, चूर्ण करनेवाला, नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला।
दलइ–(सं० दलन)–नाश करता है। उ० दलइ नामु जिमि रबिनिसि नासा। (मा० १।२४।३)
दलकत–(सं० दोल)–दलकती है, थरथराती है। उ० महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि। (क० ६।१६) दलकि–१. दलककर, थर्राकर, दहलकर, काँपकर, २. फट, थर्रा, काँप। उ० २. दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। (मा० २।२७।२)
दलकन–१. धमक, थरथराहट, कंपन, डोलना, २. फटना, चिरना, दरार होना, ३. उद्वेग, चौकानेवाली क्रिया, ४. भय, डर, भीति। उ० १. मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे। (वि० १८६)
दलत–(सं० दलन)–१. नाश करता है, २. मारने या नाश करने में, ३. मारते या नाश करते समय। उ० ३. सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो। (क० ६।४) दलि–(सं० दलन)–चूर चूरकर, दलकर, उजाड़कर, नष्टकर। उ० कानन दलि होरी रचि बनाइ। (गी० ५।१६) दलिहौं–दलूँगा, दलन करूँगा, नष्ट-भ्रष्ट करूँगा। उ० सोई हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ' हौं दलिहौं बल ताको। (क० १।२०) दली–१. दलित, २. दली गई, दो टूक की गई, खंडित हुई, ३. नष्ट-भ्रष्ट हो गई, टुकड़े-टुकड़े हो गई, समाप्त हो गई। उ० ३. तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली। (गी० २।१०) दले–दलन किया, नष्ट कर दिये। उ० अब सोचत मनि बिनु भुजंग ज्यों बिकल अंग दले जरा घाय। (वि० ८३) दलौं–दलन करूँ, कुचल डालूँ। उ० कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं। (गी० ६।८) दल्यो–तोड़ा, नष्ट किया, मार डाला। उ० ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यो। (क० १।११) दल्यौ–तोड़ा, खंडित किया, नष्ट किया। उ० सोइ हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ' हौं दलिहौं बल ताको। (क० १।२०)
दलदल–(सं० दलाढ्य)–पंक, कीचड़, चहला। वह ज़मीन जो बहुत नीचे तक गीली हो और जिसमें पैर आसानी से धँसता हो।
दलन (२)–(सं० दलन)–१. चूर-चूर करनेवाला, मर्दन करनेवाला, संहारकर्ता, २. नाश, चूर-चूर करना। उ० १. कीस-कौतुक-केलि-लूम-लंका-दहन दलन-कानन-तरुन-तेजरासी। (वि० २६) २. है दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम। (वि० २७५) दलनि (२)–दलनेवाली, पीसकर टुकड़े-टुकड़े करनेवाली, नष्ट करनेवाली, संहार करनेवाली। उ० वर्म चर्म्मकर कृपान, सूलसेल धनुष-बान-धरनि दलनि दानवदल, रनकरालिका। (वि० १६)
दलनिहार–नाश करनेवाला, संहारक। उ० दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को। (वि० १५६)
दलमलि–कुचलकर, मसलकर। उ० भुजबल रिपुदल दलमलि देखि दिवस कर अंत। (मा० ६।४५) दलमले–(सं० दलन+मर्दन)–मसल डाला, मर्दन कर डाला। उ० रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले। (मा० ६।६५। छं० १)
दलित–(सं०)–१. जिसका दलन किया गया हो, मर्दित, २. रौंदा हुआ, कुचला हुआ, ३. खंडित, फाड़ा हुआ, घायल, ४. विनष्ट किया गया, ५. तिरस्कृत। उ० ३. अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से। (क० ६।४८)
दलु–दे० १. 'दल (१)'। उ० ३. सैलसृंग भव भंग हेतु लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ दलु। (वि० २४)
दलैया–नष्ट करनेवाला, तोड़नेवाला। उ० रोषि बान काढ़यो न दलैया दससीस को। (क० ६।२२)
दव–(सं०)–१. बन, जंगल, २. बन की आग, दावाग्नि, ३. आग, अग्नि, भयानक अग्नि, ४. तपन, जलन, दाह। उ० ३. जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही। (मा० २।८४।२)
दवन (१)–(सं० दमन)–दमन करनेवाला, नाश करनेवाला। उ० कंदर्प दर्प-दुर्गम-दवन, उमारवन, गुनभवन-हर। (क० ७।१५०)
दवन (२)–(सं० दव)–जलानेवाला।
दवनु–दे० 'दवन (१)'। उ० पुनि रिपु दवनु हरषि हियँ लाए। (मा० २।३१८।२)
दवनू–(सं० दमन)–दमन करनेवाला, नष्ट करने या दबानेवाला। उ० सिय समीप राखे रिपु दवनू। (मा० २।२४३।१)
दवरि–(सं० धोरण, हिं० धौरना)–दौड़कर। उ० मोहिं पर दवरि दमानक सी दई है। (ह० ३८)
दवा (१)–(सं० दव)–दवाग्नि, जंगल की आग, भयंकर आग। उ० तोसों समरथ सुसाहिब सेइ सहै तुलसी दुख-दोष दवा से। (ह० १८)
दवा (२)–(फ़ा०)–औषधि, ओखद।
दवागि–(सं० दवाग्नि)–बन की आग, दावाग्नि।
दवारि–दे० 'दवारी'। उ० १. लागि दवारि पहार ठही लहकी कपि लंक जथा खरखौकी। (क० ७।१४३)
दवारी–(सं० दवाग्नि)–१. बन की आग, दावानल, २. दाह, जलन। उ० २. एकइ उर बस दुसह दवारी। (मा० २।१८२।३)
दशकंठ–(सं०)–रावण, जिसके दस कंठ हों।
दशकंध–(सं० दश+स्कंध)–रावण, जिसके दस कंधे हों।
दशकंधर–(सं०)–दे० 'दशकंध'।
दशगात्र–(सं०)–मृतक संबंधी एक कर्म जो मरने के पीछे दस दिनों तक होता रहता है।
दशमुख–(सं०)–रावण।
दशमौलि–(सं०)–रावण।
दशरत्थ–दे० 'दशरथ'। उ० जयति मुनिदेव नरदेव दशरत्थ के, देव-मुनि-बंद्य किये अवधवासी। (वि० ४४)
दशरथ–(सं०)–अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय राजा अज के पुत्र एक प्राचीन राजा जिनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार पुत्र तथा कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीन रानियाँ थीं। ये देवों की ओर से कई बार असुरों से लड़े और उन्हें परास्त किया था। एक बार युद्धस्थल में कैकेयी ने

दशरथ की सहायता की थी, जिसके बदले में दशरथ ने दो वर माँगने को कहा था। राम के राज्याभिषेक के समय अपनी दासी मंथरा के कहने से कैकेयी ने राम को बनवास और भरत को राज्य, ये दो वर माँगे। अंत में राम बन को गये और उनके वियोग में दशरथ का शरीरांत हो गया।

दशशीश–(सं०)–दस सिरवाला, रावण।

दशा–(सं०)–१. अवस्था, स्थिति, हालत, २. चित्त, ३. कपड़े का छोर, ४. दीए की बत्ती, ५. मानव जीवन की दस दशाएँ या अवस्थाएँ, जिनके नाम गर्भवास, जन्म, बाल्य, कौमार, पौगंड, यौवन, स्थाविर्य, जरा, प्राणरोध और मृत्यु हैं। ६. साहित्य में विरह की अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण आदि दशाएँ। ७. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह का नियत भोग काल।

दशानन–(सं०)–दस मुखवाला, रावण।

दस–(सं० दश)–९ के बाद की संख्या, १०, ११ से एक कम। उ० दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहि मन अभिलाष। (दो० ४६०) दसउ–दसो, सभी दस। उ० अस रिस होति दसउ मुख तोरौं। (मा० ६।३४।१) दसहुँ–दसों। उ० मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे। (मा० १।९१।४) दसहु–दसों। उ० दसइँ दसहु कर संयम जो न करिय जिय जानि। (वि० २०३) दसहूँ–दसों। उ० नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ। (मा० १।२८।१)

दसइँ–(सं० दशमी)–चांद्र मास की किसी पक्ष की दसवीं तिथि, दसमी। उ० दसइँ दसहु कर संयम जो न करिय जिय जानि। (वि० २०३)

दसकंठ–दे० 'दशकंठ'। उ० जयति मंदोदरी-केसकर्षन विद्यमान-दसकंठ भट मुकुट-मानी। (वि० २६)

दसकंध–दे० 'दशकंध'। उ० मीत बालि-बंधु, पूत दूत, दसकंध-बंधु। (क० ७।२२)

दसकंधर–दे० 'दशकंधर'। उ० तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ। (मा० ३।२१ख)

दसगात्र–दे० 'दशगात्र'। उ०कीन्ह भरत दसगात विधाना। (मा० २।१७०।३)

दसचारि–चौदह, दस और चार। उ० सुजस-धवल, चातक नवल! तुही भुवन दसचारि। (दो० २९५)

दस-जान–(सं० दश + यान)–महाराज दशरथ। उ० जनक सुता दस-जान-सुत उरग-ईस अ-म जौर। (स० २१४)

दसन (१)–(सं० दशन)–दाँत, दंत। उ० तौ तुलसिहि तारिहौ बिप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के। (वि० ९६) दसननि–दाँतों को। उ० कुलिस-कुंद कुडमल-दामिनि-दुति दसननि देखि लजाई। (वि० ६२) दसनन्हि–दाँतों से। उ० दसनन्हि काटि नासिका काना। (मा० ६।५।४)

दसन (२)–(सं० दंशन)–डँसनेवाला।

दसबदन–(सं० दश + वदन)–दस मुखवाला, रावण। उ० सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न कालबली तें। (वि० १९८)

दसमाथ–(सं० दश + मस्तक)–१. दस सिरवाला, रावण, २. दस सिर। उ० १. रावण की रानी जातुधानी बिलखानी कहैं, हा हा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों। (क० ५।१३) २. जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिए दसमाथ। (दो० १६३)

दसमुख–दे० 'दशमुख'। उ० सूपनखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख बिचारि। (दो० ४०८)

दसमौलि–दे० 'दशमौलि'। उ० हँसि बोलिउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक। (मा० ६।२३च)

दसरत्थ–दे० 'दशरथ'। उ० चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रवर्ति दसरत्थ के। (मा० १।२९५)

दसरथ–दे० 'दशरथ'। उ० दसरथ राउ सहित सब रानी। (मा० १।१६।३) दसरथहि–दशरथ को। उ० आनहि नृप दसरथहि बोलाई। (मा० १।२८७।१)

दसरथपुर–(सं० दशरथ + पुर)–दसरथ का नगर, अयोध्या। उ० दसरथपुर छबि आपनी सुरनगर लजाए। (गी० १।६)

दसरथु–दे० 'दशरथ'। उ० सोच जोगु दसरथु नृप नाहीं। (मा० २।१७२।१)

दससीस–दे० 'दशशीश'। उ० सुनि दससीस जरे सब गाता। (मा० ३।२२।६)

दससीसा–दे० 'दशशीश'। उ० खर आरूढ़ नगन दससीसा। (मा० ५।११।२)

दसस्यंदन–(सं० दश + स्यंदन)–महाराज दशरथ। उ० सुनि सानंद उठे दस स्यंदन सकल समाज समेत। (गी० १।२)

दसहि–दशा को, हालत को, अवस्था को। उ० बरनौं किमि तिनकी दसहि, निगम-अगम प्रेम-रसहि। (गी० २।१७)

दसा (१)–(सं० दशा)–दे० 'दशा'। उ० १. सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दशा हृदय नहिं आवै। (वि० ११६) ७. प्रान मीन दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई। (कृ० २६)

दसा (२)–(सं० दश)–दस की संख्या, १०।

दसानन–दे० 'दशानन'। उ० दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु! (क० ७।९७)

दसि–(सं० दंशन)–काटकर। उ० अधर दसन दसि मीजत हाथा। (मा० ६।३१।३)

दहँ–(सं० दश)–दस, १०। उ० जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी। (मा० २।१५९।१)

दहइ–(सं०)–१. जलती है, जल रही है, २. जलाती है, जला रही है। उ० १. बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। (मा० १।२८०।१) २. दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू। (मा० २।१२६।२) दहई–जलाया, जला दिया। उ० रावन नगर अल्प कपि दहई। (मा० ६।२३।४) दहत–१. जलता, खलता है, २. जलाता, जलाता है, ३. जलता हुआ। उ० ३. लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं। (वि० ७६) दहति–जला देती है। दहते–जलाते, भस्म करते। उ० जौ सुत हित लिए नाम अजामिल के अघ अमित न दहते। (वि० ९७) दहसि–भस्म करती हो, जलाती हो। उ० विष्णु-पदकंज मकरंद-इव अंबु बर बहसि, दुख दहसि अघ बृंद-विद्रावनी। (वि० १८) दहहीं–दहते हैं, भस्म

हो जाते हैं। उ० ते नरेस बिनु पावक दहहीं। (मा० २।१२६।२) दहि–जलाकर। उ० जलधि लंघि, दहि लंक प्रबल-दल-दलन निसाचर घोर हो। (वि० ३१) दहिहौं–१. जलूँगा, २. जलाऊँगा। उ० १. यहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं, या बिनु परम दहुँ दुख दहिहौं। (वि० २३१)
दहीं (१)–(सं० दहन)–१.जली, जल गई, २. जला दी। उ० १. तीय-सिरोमनि सीय तजी जेहिं पावक की कलुषाई दही है। (क० ७।६) दहे–१. जलाए, २. जले, ३. जलने लगे। उ० ३. सुनत मातु पितु परिजन दारुन दुख दहे। (पा० ३३) दहेउ–जल उठा, जलने लगा, जला। उ० उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा। (मा० ३।१६।छं० १) दहेऊ–जला, जल उठा। उ० प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ। (मा० १।६३।२) दहैं–जलते हैं। उ० अहं-अगिनि ते नहिं दहैं, कोटि करै जो कोइ। (वै० ५४) दहै–१. जले, जल उठे, २. जलावे, जला-डाले। उ० १. तुलसी न्यारे ह्वै रहै दहै न दुख की आगि। (वै० ४२) दहो–१. जलता, जला, २. जलाता। उ० १. जीव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ तुलसी तिहुँ दाह दहो है। (क० ७।६१) दहौंगो–१. जलूँगा, २. जलाऊँगा। उ० १. परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो। (वि० १७२) दह्यंति–जलते। उ० ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यंति नो मानवाः। (मा० ७।१३१।श्लो० २) दह्यो (सं० दहन)–जलाया, भस्म किया। उ० सो ज्ञान ध्यान बिराग अनुभव जातना-पावक दह्यो। (वि० १३६)
दहन–(सं०)–१. आग, २. जलना,३. जलाना, ४. जलाने-वाला, भस्म करनेवाला। उ० १. रामहि सोहानी जानि सुनिमन-मानी सुनि नीच महिपावली दहन बिनु दही है। (गी० १।८५)
दहनकर–दहन करनेवाला, जलानेवाला। उ० बन अग्यान कहँ दहन कर अनल प्रचंड रकार। (स० १४७)
दहनि–१. दाह, जलन, २. भस्म करनेवाली, जलाने-वाली।
दहनु–दे० 'दहन'। उ० ३. बेष तौ भिखारि को, मयंक रूप संकर, दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है। (क० ७।१६०)
दहिन–(सं० दक्षिण)–दाहिना, दायाँ। उ० बाम दहिन दिसि चाप निषंगा। (मा० ६।११।३) दहिनि–दाहिनी, दायीं। उ० दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी। (मा० २।२०।३)
दही (२)–(सं० दधि)–जमा हुआ दूध, दधि। उ० सुखमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमिय-मय कियो है दही, री। (गी० १।१०४)
दहेंड़ि–(सं० दधि)–दही जमाने या रखने की मटकी। उ० अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो। (रा० ५)
दह्यो (२)–(सं० दधि)–दही, दधि। दह्योउ–दही भी। उ० दूध दह्योउ माखन ढारत हैं हुतो पोसात दान दिन दीबो। (कृ० ६)
दाँउ–दे० 'दाँव'।
दाँड़–(सं० दंड)–१. सज़ा, २. ताड़ना, ३. शासन, ४. नाव खेने का डाँड़ या डंडा।
दाँत–(सं० दंत)–दंत, दशन, रद। उ० तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जानै चित कहा ठई है। (वि० १३६) मु० दाँत पीसि–दाँत पर दाँत रगड़कर, क्रोधित होकर। उ० दे० 'दाँत'।
दाँव(?)–(सं० प्रत्यय-दा)–१. चाल, पेच, कुश्ती जीतने के लिए काम में लाई जानेवाली युक्ति, २. उपाय, कार्य-साधन की युक्ति, ३. कपट, छल, ४. चाल, खेलने की बारी, ५. मौका, उपयुक्त समय, सुअवसर, ६. बार, दफ़ा, मर्तबा, ७. पारी, बारी, ओसरी, ८. स्वार्थ, ९. जुए आदि में कौड़ी का इस प्रकार पड़ना कि जीत हो, जीत का पासा।
दाँवरी–(सं० दाम) रस्सी, रसरी, जेंवर। उ० दुसह दाँवरी छोरि, थोरी खोरि कहा कीन्हों। (कृ० १५)
दा–(सं०)–देनेवाली, दान करनेवाली।
दाइ (१)–(सं० दायिन्)–देनेवाला, दान करनेवाला। उ० गगन, जल, थल बिमल तब तें सकल मंगलदाइ। (गी० ७।३३)
दाइ (२)–दे० 'दाँव'।
दाइज–(सं० दाय)–वह धन जो विवाह में वर पक्ष को कन्या पक्ष की ओर से दिया जाय। दहेज। उ० दाइज दीन्ह न जाइ बखाना। (मा० १।१०१।४)
दाइनि–(सं० दायिनी)–देनेवाली, दान करनेवाली।
दाई–(सं० दायिन्)–देनेवाला, दान करनेवाला। उ० हौं मन बचन कर्म पातक-रत, तुम कृपालु पतितनि गति दाई। (वि० २४२)
दाउँ–दे० 'दाँव'। उ० ५. देखिबे को दाउँ, देखौ देखिबो बिहाइ कै। (गी० १।८२।४)
दाउ–दे० 'दाँव'। उ० ४. जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ। (वि० १००)
दाऊँ–दे० 'दाँव'।
दाऊ–दे० 'दाँव'। उ० ६. सूझ जुआरिहि आपन दाऊ। (मा० २।२५८।१)
दाग–(फ़ा० दाग़)–१. धब्बा, चित्ती, कुअंक, २. चिह्न, अंक, निशान, ३. कलंक, लांछन, दोष, ४. जलने का चिह्न। उ० १. बाम बिधि भालहू न कर्म-दाग दागिहै। (वि० ७०)
दागिहै–(सं० दग्ध)–१. दागेगा, दाग सकेगा, २. धब्बा लगा सकेगा, ३. कलंकित कर सकेगा, ४. चिह्नित कर सकेगा, लिख सकेगा। उ० १. बाम बिधि भालहू न कर्म-दाग दागिहै। (वि० ७०) दागी–(सं० दग्ध)–जला दी, जलाई। उ० गयो बपु बीति बादि कानन ज्यों कलप-लता दव दागी। (गी० ३।१२)
दाघ–(सं०)–१. गरमी, ताप, दाह, जलन, २. जला हुआ, दग्ध।
दाड़िम–(सं० दाडिम)–अनार। उ० कुंद कली दाड़िम दामिनी। (मा० ३।३०।६)
दाढ़ी–(सं० दंष्ट्रा, प्रा० डड्ढा, हि० दाढ़)–मुख के नीचे का चिबुक भाग या चिबुक और कपोल आदि पर उगे बाल।

दाढ़ीजार–जिसकी दाढ़ी जल गई हो। 'दाढ़ीजार' एक गाली है, जिसे औरतें देती हैं। उ० बार-बार कह्यौं मैं पुकारि दाढ़ीजार सों। (क० ५।११)

दातन्ह–दाँतों से। उ० मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। (मा० ६।५३।३)

दातहिं–दाता को, देनेवाले को। उ० तुलसी जाचक पातकी दातहि दूषन देहिं। (दो० ३७६)

दाता–(सं०)–१. देनेवाला, दानी, २. उदार। उ० १. होइ जलद जगजीवन-दाता। (मा० १।७।६)

दातार–देनेवाला, दानी। उ० राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार। (मा० २।३)

दातारु–दे० 'दातार'।

दाद (१)–(सं० दद्रु)–एक चर्म रोग जिसमें काले-काले चकत्ते पड़ जाते हैं और खुजली भी रहती है। दिनाय, दिनाई।

दाद (२)–(फ़ा० दाद) इंसाफ, न्याय।

दादि–दे० 'दाद (२)'। उ० कृपासिंधु! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे? (वि० १४४)

दादु–दे० 'दाद (१)'। उ० ममता दादु कंडु इरषाई। (मा० ७।१२१।१७)

दादुर–(सं० दर्दुर)–मेढक, मंडूक। उ० हर गुर निंदक दादुर होई। (मा० ७।१२१।१२)

दान–(सं०)–१. धर्म, श्रद्धा या दया के भाव से दिया गया अन्न, वस्त्र या धन आदि, ख़ैरात, २. कर, महसूल, ३. चंदा, ४. वह वस्तु जो दान में दी जाय, ५. राजनीति की चार उपायों में से एक, कुछ देकर शत्रु के विरुद्ध कार्य कराने की नीति, ६. हाथी के मस्तक से चूनेवाला मद, ७. दहेज़, दायज। उ० १. साहिब सब बिधि सुजान, दान-खंग-सूरो। (वि० ८०)

दानव–(सं०)–कश्यप के वे पुत्र जो दनु नाम्नी पत्नी से पैदा हुए थे। असुर, राक्षस। उ० भजु दीनबंधु दिनेश दानव दैत्य वंश निकंदनं। (वि०४५)

दाना–दे० 'दान'। उ० १. बिजेंवाइ देहिं बहु दाना। (मा० २।१२६।४)

दानि–दे० 'दानी'। १. दानि दसरथ राय के तुम बानइत-सिरताज। (वि० २१६) उ० २. राम कथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि। (मा० १।११३)

दानी–(सं० दानिन्)–१. दान करनेवाला, २. देनेवाला, दाता, ३. उदार। उ० १. दानी कहुँ संकर सम नाहीं। (वि० ४)

दानु–दे० 'दान'। उ० १. रुचै माँगनेहि माँगिबो, तुलसी दानिहि दानु। (दो० ३२७)

दाप–(सं० दर्प)–१. गर्व, अहंकार, २. शक्ति, बल, ज़ोर, ३. तेज़, प्रताप, ४. आतंक, ५. दुःख, ६. क्रोध, ७. जोश, उमंग। उ० १. रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु-फिरहु करि दाप। (मा० ६।८१) ३. भंजि भव चाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नत माथ भारी। (वि० ४३) ५. त्रिबिध ताप भव दाप नसावनि। (मा०७।३५।१)

दापा–दे० 'दाप'। उ० १. हारे सकल भूप करि दापा। (मा० १।२५६।२)

दापु–दे० 'दाप'। उ० १. भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। (मा० १।२८३।३) ४. ब्याही जेहि जानकी जीति जग हर्यो परसुधर-दापु। (गी० ६।१)

दाबि–(सं० दमन)–दबाकर, कुचलकर, तोड़-मरोड़कर। उ० ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं। (क० ६।३३)

दाम (१)–(सं०)–१. रस्सी, रज्जु, २. माला, हार, ३. चमकता हुआ। उ० १. धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम। (मा० १।१७५) २. श्याम तामरस दाम शरीरं। (मा० ३।११।२)

दाम (२)–(ग्री०)–१. मूल्य, २. द्रव्य, ३. एक पैसे का पच्चीसवाँ भाग, ४. राजनीति की एक चाल जिसमें शत्रु को धन द्वारा वश में करते हैं। ५. खरा माल, ६. धातु। उ० २. करमजाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को। (वि० १५५)

दामिनि–दे० 'दामिनी'। उ० दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों। (क० १।३)

दामिनी–(सं०)–बिजली, विद्युत। उ० मुक्ति की दूतिका, देह-दुति दामिनी। (वि० ४८)

दामोदर–(सं०)–१. श्रीकृष्ण, २. विष्णु। उ० १. तुलसी जे तोरे तरु किए देव, दिए बरु कै न लह्यो कौन फरु देव दामोदर तें। (कृ० १७)

दाय–समय में। दे० 'दाय (३)'। उ०२.सिर धुनि-धुनि पछिताति मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दायँ। (वि०८३)

दाय (१)–(सं०)–१. कन्यादान के बाद वर को कन्या पक्ष की ओर से दिया जानेवाला धन, २. बपौती।

दाय (२)–(सं० दाव)–१. दावानल, २. जलन, दुःख।

दाय (३)–(सं० प्रत्यय-दा, जैसे एकदा)–१. दफ़ा, बार, २. अवसर, समय, ३. दाव। उ० ३. होत हठि मोहिं दाहिनो दिन दैव दारुन-दाय। (गी० ७।३१)

दायक–(सं०)–देनेवाला, दाता। उ० भगत बिपति भंजन सुखदायक। (मा० १।१८।५)

दायकु–दे० 'दायक'। उ० बरनउँ रघुबर विमल जसु जो दायकु फल चारि। (मा० २।१। दोहा १)

दायज–दे० 'दायजा'।

दायजा–(सं० दाय)–विवाह में वर पक्ष को कन्या पक्ष से दिया जानेवाला धन, यौतुक, दहेज।

दायनी–देनेवाली, प्रदान करनेवाली। उ० बिमल कथा हरिपद दायनी। (मा० ७।५२।३)

दाया–(सं० दया)–दया, रहम, कृपा। उ० करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया। (वि० ११६)

दायिनि–(सं० दायिनी)–देनेवाली। उ० भक्ति-मुक्ति-दायिनि, भयहरनि, कालिका। (वि० १६)

दार–(सं०)–स्त्री, पत्नी, भार्या। उ० सुत, दार, अगार, सखा, परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे। (क० ७।३०)

दारण–(सं०)–१.फाड़ना, विदारण, चीड़-फाड़, २. फाड़नेवाला, चीरनेवाला।

दारदा–(सं० दरिद्र)–दरिद्र होती जाती है। उ० साहिब सरोष दुनी दिन-दिन दारदी। (क० ७।१८३)

दारन–दे० 'दारुण'। उ० २. भव बारन दारन सिंह प्रभो। (मा० ६।१११।१)

दारय–(सं० दारण, हि० दारना)–नाश कीजिए, विदीर्ण कीजिए, फाड़िए। उ० मन संभव दारुन दुख दारय। (मा० ७।३५।२)

दारा–(सं० दार)–स्त्री, पत्नी, भार्या। उ० जे लंपट पर धन पर दारा। (मा० १।१८४।१)

दारि–(सं० दालि)–दाल, दला हुआ अरहर, मूँग, उड़द, मटर तथा चने आदि का दाना। उ० चाहत अहारन पहार दारि कूरना। (क० ७।१४८)

दारिका–(सं०)–बालिका, कन्या। उ० ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई। (मा०१।३२६। छं० ३)

दारिद–(सं० दारिद्रय)–दरिद्रता, निर्धनता। उ० दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु! (क० ७।९७)

दारिदी–दरिद्री, गरीब, निर्धन। उ० दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु। (क० ७।१७४)

दारु–(सं०)–काठ, लकड़ी। उ० दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग। (मा० १।१० क)

दारुजोषित–(सं० दारु+योषित्)–कठपुतली। उ० उमा दारुजोषित की नाईं। (मा० ४।११।४)

दारुण–(सं०)–१. भयंकर, भीषण, घोर, २. कठिन, विकट, ३. विदारक, फाड़नेवाले, ४. भयानक रस, ५. एक नरक का नाम, ६. विष्णु, ७. शिव, ८. चीते का पेड़।

दारुन–दे० 'दारुण'। उ० १. दारुन दनुज जगत-दुख-दायक जारयो त्रिपुर एक ही बान। (वि० ३) २. दारुन-बिपति-हरन, करुनाकर। (वि० ७)

दारुनारि–(सं० दारुनारी)–कठपुतली। उ० सारद दारुनारि सम स्वामी। (मा० १।१०५।३)

दारू–(फ़ा०)–१. शराब, मद्य, २. बारूद। उ० काल तोपची, तुपक महि, दारू-अनय कराल। (दो० ५१५)

दारे–(सं० दलन)–दले, नष्ट किए। उ० भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे। (गी० १।३६)

दारै–विनाश करे, फाड़े, दले, ध्वंस करे। उ० अभिमत दातार कौन दुख दरिद्र दारै। (वि० ८०)

दालि–(सं० दलन)–१. दलन करनेवाला, नष्ट करनेवाला, २. दलन करके, नष्ट करके। उ० १. मंडलीक-मंडली-प्रताप-दाप दालि री। (क० १।१२)

दावन–(सं० दमन)–१. दमन, नाश, २. नाश करनेवाला, दमन करनेवाला। उ० २. जातुधान दावन, परावन को दुर्ग भयो। (ह० ७) दावनी (१)–नष्ट करनेवाली, मिटानेवाली। उ० त्रिबिध ताप भव भय दावनी। (मा० ७।१५।१)

दावनी (२)–(सं० दामिनी)–माथे का एक गहना।

दावा (१)–(सं० दाव)–१. बन की आग, २. आग, ३. दाह, जलन। उ० १. रानिन्ह कर दारुन दुख दावा। (मा० १।२६०।३) ३. करत प्रबेस मिटे दुख दावा। (मा० २।२३६।२)

दावा (२)–(अर०)–१. स्वत्व, हक, अधिकार, २. नालिश, अभियोग, ३. दृढ़तापूर्वक कथन।

दाशरथि–(सं०)–१. दशरथ के पुत्र, २. रामचंद्र, ३. ४. लक्ष्मण, भरत, ५. शत्रुघ्न, ६. दशरथ के चारों पुत्र। उ०१. जयति दाशरथि, समर-समरथ, सुमित्रासुवन्, शत्रुसूदन, राम-भरत बंधो। (वि० ३८)

दास–(सं०)–१. सेवक, किंकर, नौकर, २. शूद्र, चौथे वर्ण का मनुष्य, ३. चोर, तस्कर, ४. धीवर, मल्लाह, ५. आत्मज्ञानी, ६. एक उपाधि जो शूद्रों या हरिभक्तों के नामांत में लगाई जाती है। जैसे तुलसीदास, रैदास। उ० १. मोद मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं। (क० ७।१७४) दासतुलसीस–(सं० दास, तुलसी+ईश)–तुलसी के ईश भगवान रामचंद्र के दास हनुमान। उ० दासतुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष। (क० ७।४५) दासन्ह–दासों, नोकरों, सेवकों। उ० अति आनंद दासन्ह कहँ दीन्हा। (मा० १।२०३।१)

दासरथि–दे० 'दाशरथि'। उ० १. दासरथि बीर बिरुदैत बाँको। (क० ६।२१)

दासरथी–दे० 'दाशरथि'। उ० २. पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे। (क० ७।१)

दासा–दे० 'दास'। उ० १. सुंदरि सुनु मैं उन्हकर दासा। (मा० ३।१७।७)

दासीं–दासियाँ, नोकरानियाँ। उ० दासीं दास तुरग रथ नागा। (मा० १।१०१।४) दासी–(सं०)–नोकरानी, सेविका, सेवा करनेवाली स्त्री। उ० जानिअ सत्य मोहि निज दासी। (मा० १।१०८।१)

दासु–दे० 'दास'।

दाह–(सं०)१. जलन, ताप, २. जलाना, जलाने की क्रिया, ३. मुर्दा फूँकना, शवदाह, ४. डाह, ईर्ष्या, ५. दुःख। उ० १. देखत दुख-दोष-दुरित-दाह दारिद-दरनि। (वि०२०)

दाहक–(सं०)–जलानेवाला। उ० सीतल सिख दाहक भइ कैसें। (मा० २।६४।१)

दाहने–दे० 'दाहिने'।

दाहा–१. जलन, २. जलाया, भस्म किया। उ० २. साँचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा। (मा० ६।२३।४) दाहि–जलाकर, दहनकर, गर्मकर। उ० अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड। (मा० ७।३७) दाहे–१. जलाए, २. जलाने से, जलाने पर, ३. नष्ट किए, दूर किए। उ० ३. जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत तब तिन्हके दुख दाहे। (वि० १४५) दाहै–जलावे, दहन करे। उ० अहं-अगिनि नहिं दाहै कोई। (वै० ५२)

दाहिन–दे० 'दाहिना'। उ० १. लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ। (मा० २।७२३।३) २. भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। (मा० २।१४।२) ४. 'तुलसी भजु दीनि दयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू। (क० ७।७)

दाहिना–(सं० दक्षिण)–१. दायाँ, बाएँ का उलटा, २. अकूलुल, ३. सरल, सीधा, ४. सहायक। दाहिनी–दाएँ, 'दाहिना' का स्त्रीलिंग। उ० रामबाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर। (वै० १) दाहिने–१. दाहिने तरफ, २. अनुकूल, ३. सीधे, अच्छे। उ० ३. भए बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदास से बामो। (वि० २२८) दाहिनेउ–दाहिना भी, अनुकूल भी, सहायक भी। उ० लागे दुख दूषन से दाहिनेउ बामैं। (गी० ५।२५)

दाहिनो—१. अनुकूल, २. दाएँ। उ० १. सबको दाहिनो, दीनबंधु काहू को न बाम। (वि० ७७)
दाहु—दाह, जलाना, भस्मीकरण। उ० लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु। (मा० १।१६१क)
दाहू—१.दाह, जलन, २. दुःख, संताप, ३.डाह, ईर्ष्या। उ० २. जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू। (मा० १।७१।३)
दिअटि—दे० 'दियट'। उ० चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ। (मा० ७।११७ख)
दिआ—दे० 'दिया (१)'। उ० १. चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ। (मा० ७।११७ख)
दिआसे—(सं० दीपक)—दे० 'दियरा'। उ० मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे। (मा० २।११६।२)
दिक्—(सं०)—१. दिशा, २. ओर, तरफ़।
दिक—दे० 'दिक्'। उ० १. उकपात, दिकदाह दिन, फेकरहिं स्वान सियार। (प्र० ५।६।३)
दिखराय—(सं० दृश्, प्रा० देक्खर, हिं० देखना, दिखाना) दिखलाकर, जनाकर।
दिखाई—१. दिखा, बता, २. दिखलाई, ३. देखने का भाव। उ० १. बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई। (मा० ६।१८।५) दिखाया—दिखलाया, दिखा दिया। उ० प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया। (मा० १।२३९।३) दिखावहिं—दिखाते हैं, दिखलाते हैं। उ० जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि दिखावहिं डाँटि। (दो० ५५३) दिखाव—दिखलाते हैं, प्रत्यक्ष कराते हैं। दिखावै-दिखाता है, प्रत्यक्ष कराता है। दिखावौं—दिखाता हूँ, दिखलाता रहता हूँ। उ० मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं। (वि० १४२)
दिखात—दिखाई देता है, दिखलाई पड़ता है।
दिगंचल—(सं० दृगंचल)—पलक, नेत्रपट। उ० मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल। (मा० १।२३०।२)
दिगंत—(सं०)—१. दिशा का अंत, दिशा का छोर, २. चारो दिशाएँ, ३. दसों दिशाएँ।
दिगंबर—दिशाएँ ही जिसके वस्त्र हों, नंगा। उ० अकुल अगेह दिगंबर ब्याली। (मा० १।७९।३)
दिग—दे० 'दिक्'। उ० १. भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला। (मा० ६।८।२)
दिगकुंजर—दिशाओं के हाथी, दिग्गज। उ० डगे दिगकुंजर, कमठ कोल कलमले। (क० ६।७)
दिगदंति—दे० 'दिगकुंजर'। उ० कमठ कोल दिगदंति सकल अँग सजग करहु प्रभु-काज। (गी० १।८८)
दिगपाल—(सं० दिक्पाल)—पुराणानुसार दसों दिशाओं के पालन करनेवाले देवता जो निम्नांकित हैं। पूर्व के इंद्र, अग्निकोण के वह्नि, दक्षिण के यम, नैऋत के नैऋत, पश्चिम के बरुण, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान के ईश, ऊर्द्ध के ब्रह्म और अधो के अनंत। उ० ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर। (क० १।११)
दिगपुर—एक गाँव का नाम।
दिगभ्रम—(सं० दिग्भ्रम)—दिशाओं का भ्रम होना। उ० दिगभ्रम-कारन चारि ते जानहिं संत सुजान। (स० ३२६)
दिगसिंधुर—दे० 'दिग्गज'। उ० १. चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं। (मा० ६।७९।३)
दिग्गज—(सं०)—१. पुराणों के अनुसार आठो दिशाओं के आठ हाथी जो रक्षा करते हैं तथा पृथ्वी को दबाए रहते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—पूर्व में ऐरावत, आग्नेय कोण में पुंडरीक, दक्षिण में वामन, नैऋत में कुमुद, पश्चिम में अंजन, वायव्य में पुष्पदंत, उत्तर में सार्वभौम तथा ईशान में सप्तरतीक। २. बहुत बड़ा, अत्यंत भारी। उ० १.सकल-लोकांत-कल्पांत शूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी। (वि० ११)
दिग्गयंद—दे० 'दिग्गज'। उ० १. दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख भर। (क० १।११)
दिग्वसन—दिशा ही है वस्त्र जिनका, नंगा, वस्त्रहीन। उ० त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्वसन विष भोजन भव-भय-हरन (क० ७।१४९)
दिगीस—दे० 'दिक्पाल'। उ० सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी। (वि० २५०) दिगीसनि—दिक्पालों को, दिगीशों को। उ० ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि मुनीसनि हूँ। (वि० २४६)
दिच्छा—(सं० दीक्षा)—गुरु या आचार्य का नियमपूर्वक मंत्रोपदेश। उ० दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु। (मा० ६।५७।४)
दिछित—(सं० दीक्षित)—१. जिसे दीक्षा मिली हो, जिसने शिक्षा पाई हो। २. जिसने यज्ञादि का संकल्पपूर्वक अनुष्ठान किया हो। उ० १. गज धौं कौन दिछित जाके सुमिरत लै सुनाम बाहन तजि धाए। (वि० २४०)
दिढ़ाई—(सं० दृढ़)—१. दृढ़ाई, दृढ़ता, मज़बूती, २. दृढ़ होती। उ० २. प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। (मा० ७।८९।४)
दिति—(सं०)—कश्यप ऋषि की एक स्त्री जो दक्ष प्रजापति की पुत्री थीं। दैत्यों की उत्पत्ति इन्हीं से हुई थी। जब इनके सभी पुत्र इंद्रादि मारे गए तो दिति ने कश्यप से एक ऐसे पुत्र की प्रार्थना की जो इंद्र का दमन कर सके। ऐसा ही हुआ पर उस गर्भ को भी इंद्र ने भीतर ही ४९ टुकड़ों में कर दिया जो उनचास पवन हुए।
दितिसुत—(सं०)—दिति के पुत्र। १. दैत्य, असुर, २.हिरण्यकशिपु या हिरण्याक्ष आदि। उ० २.दितिसुत-त्रास-त्रसित निसि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी। (वि० ९३)
दिन (१)—(सं०—१. दिवस, उतनी देर का समय जब तक सूर्य क्षितिज के ऊपर रहता है। २. समय, काल, ३. प्रतिदिन, ४. सदा, नित्य, ५. निश्चत काल, ६. दशा, परिस्थिति। उ० १.दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। (मा० १।६।३) २. सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। (मा० १।२।६) ३. दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिर नावैं। (क० ७।२) दिन दिन—दिन प्रति दिन, रोज़-रोज़। उ० जेहि किए जीव-निकाय बस रसहीन दिन-दिन अति नई। (वि० १३६) दिनदीन—दिन-दिन, रोज़-रोज़, ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है। उ० प्रान मीन दिन-दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई। (कृ० २९) दिनन—दिनों, दिन का बहुवचन। उ० बहुते दिनन कीन्ह

मुनि दाया। (मा० १।१२८।३) दिननि–१. दिनों में, २. दिन का बहुवचन। उ० १. रिपु रन दलि, मख राखि, कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं। (गी०१।४८) दिनहिं–१. दिन में, २. प्रतिदिन, रोज़। उ० २. मैं तुम्ह रे संकल्प लगि दिनहिं करबि जेवनार। (मा० १।१६८) दिनहीं–दिन में ही। उ० दिनहीं लूक परन बिधि लागे। (मा० ६।३२।४) दिनहुँ–दिनों। उ० देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। (मा० २।३२५।१) मु० दिनहुँ दिन–दिन पर दिन। उ० दे० 'दिनहुँ'।

दिन (२)–(सं० दीन)–ग़रीब, अनाथ, दुखी। उ० १. नीलकंठ कारुन्य सिंधु हर दीनबंधु दिन दानि है। (गी० १।७८)

दिनकर–(सं०)–सूर्य। उ० हरन मोह तम दिनकर कर से। (मा० १। ३२।५) दिनकरहि–दिनकर में, सूर्य में। उ० खलु खद्योत दिनकरहि जैसा। (मा० ६।६।३)

दिनचारी–(सं० दिनचारिन्) १. सूर्य, २. बंदर।

दिननाथ–(सं०)–सूर्य। उ० कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिए। (जा० ३६)

दिननायक–(सं०)–सूर्य। उ० हा रघुकुल सरोज दिन नायक। (मा० ३।२६।१)

दिनमणि–(सं०)–सूर्य।

दिनमनि–दे० 'दिनमनि'। उ० प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं। (गी० १।७१)

दिनमानी–(सं० दिनमान)–सूर्य, जिसके द्वारा दिन का मान हो।

दिनराऊ–सूर्य। उ० बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। (मा० १।३२१।३)

दिनु–दे० 'दिन'। उ० १. नाहिं त मौन रहब दिनराती। (मा० २।१६।२)

दिनेश–(सं०)–सूर्य, दिन के स्वामी। उ० दिनेश वंश मंडनं। (मा० ३।४। छं० ४)

दिनेस–दे० 'दिनेश'। उ० लोल दिनेस त्रिलोचन, करनघंट घंटा सी। (वि० २२)

दिनेसा–दे० 'दिनेस'। उ० सो कह पच्छिम उदय दिनेसा। (मा० ७।७३।२)

दिनेसू–दे० 'दिनेश'। उ० महामोह निसि दलन दिनेसू। (मा० २।३२६।३)

दिबोई–(सं० दान, हि० देना)–देना ही। उ० दीनदायलु दिबोई भावै जाचक सदा सोहाहीं। (वि० ४)

दिब्य–दे० 'दिव्य'। उ० १. सुमिरत दिब्यदृष्टि हियँ होती। (मा० १।६।३) दिब्यतर–(सं० दिव्यतर)–अधिक सुंदर। उ० चाह-चंपक बरन, बसन भूषनो-धरन दिब्यतर, भव्य लावण्यसिंधो। (वि०३८) दिब्यदृष्टि–दे० 'दिव्यदृष्टि'। उ० सुमिरत दिब्यदृष्टि हियँ होती। (मा० १।६।३)

दिय–दिया, प्रदान किया। उ० मनहुँ मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चापसर मकर अदूषन। (गी० ७।१६)

दियउ–दिया है, प्रदान किया है। उ० स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ। (मा० ६।१७ ख) दिया (१)–(सं० दान, हि० देना) देना क्रिया का भूतकालिक रूप, प्रदान किया, अर्पित किया। दिये (१)–(सं० दान)–१. देने पर, देने से, दीन्हे, २. दिये, प्रदान किये, अर्पित किये। दियो–दिया, प्रदान किया। उ० बावन बलि सों छल कियो, दियो उचित उपदेस। (दो० ३६४)

दियावत–दिलाते हैं, दिलवाते हैं।

दियट–(सं० दीपस्थ, प्रा० दीवट्ट)–दीवट, दीपक रखने की बैठक।

दियाट–दे० 'दियट'।

दियरा–(सं० दीपक)–बड़ी मशाल जिसे शिकारी लोग हिरनों को आकर्षित करने के लिए जलाते हैं। हिरन उन्हें देखते रह जाते हैं और शिकारी पकड़ लेता है। दियरे–'दियरा' का बहुवचन। उ० देखि नरनारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे। (गी० १।४१)

दिया (२)–(सं० दीपक, प्रा० दीअ)–१. दीपक, दीप, चिराग़, २. श्रेष्ठ, उच्च, भूषण। उ० २. छुअत सरासन-सलभ जरैगो ये दिनकर-बंस-दिया रे। (गी० १।६६) दिये (२)–(सं० दीपक)–दीया का बहुबचन, बहुत से दीपक।

दियासे–दे० 'दियरा'। उ० मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे। (मा० २।११६।२)

दिरमानी–(फ़ा० दरमानः)–वैद्य, चिकित्सक, हकीम। उ० जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोस कहा दिरमानी। (वि० १२२)

दिव–(सं०)–१, स्वर्ग, २. आकाश, अंतरिक्ष, ३. बन, जंगल, ४. दिन, दिवस।

दिवस–(सं०)–१. दिन, वासर, २. प्रभात, प्रातःकाल। उ० १. मरमु न कोऊ जान कछु जुगसम दिवस सिराहिं। (मा० १।५८)

दिवसु–दे० 'दिवस'। उ० १. बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जानु। (मा० १।२१७)

दिवसेस–(सं० दिवस + ईश)–सूर्य। उ० सघन-तम-घोर-संसार-भर-शर्वरी-नाम दिवसेस-खर-किरन माली। (वि० ५५)

दिवा–(सं०)–दिन, दिवस। उ० दीन दयालु दिवाकर देवा। (वि० २)

दिवाकर–(सं०)–सूर्य, दिनकर। उ० नाम-प्रताप-दिवाकर-कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो। (गी० ५।४२)

दिवान–(अर० दीवान)–१. राजा के बैठने की जगह, दरबार, २. मंत्री।

दिव्य–(सं०)–१. स्वर्गीय, अलौकिक, स्वर्ग से संबंध रखनेवाला, २. बहुत सुंदर, ३. शपथ, सौगंद, कसम, ४. प्रकाशमान, चमकीला, ५. जौ, यव, ६. आँवला, ७. सतावर, ८. ब्राह्मी, ९. हड़, १०. लवंग, ११. हरिचंदन, १२. कपूर, १३. जीरा, १४. श्वेत दूर्वा, १५. गुग्गुल, १६. चमेली, १७. शूकर। उ० २. तड़ितगर्भांग सर्वांग सुंदर लसत, दिव्यपट, भव्य भूषण बिराजै। (वि० १५) दिव्यतन–१. ऐसा शरीर जो जरा और मरण से मुक्त हो, २. अप्सरा। दिव्यदृष्टि–ऐसी दृष्टि जिससे सब जगह की चीज़ें देखी जा सकें, ज्ञानचक्षु, त्रिकालदर्शी आँखें।

दिशा–(सं०)–१. दिक्, ककुभ, सिम्त, क्षितिज के चार कल्पित विभागों में कोई एक। चारों दिशाओं के नाम पूरब, पश्चिम,

दक्षिण तथा उत्तर है। २. ओर, तरफ, ३. दस की संख्या, ४. नियत।
दिशि—दे० 'दिशा'।
दिशित्राता—दे० 'दिगपाल'।
दिशिनाथ—दे० 'दिगपाल'।
दिशिनायक—दे० 'दिगपाल'।
दिशिप—दे० 'दिगपाल'।
दिशिपति—दे० 'दिगपाल'।
दिशिपाल—दे० 'दिगपाल'।
दिशिराज—दे० 'दिगपाल'।
दिसा—दे० 'दिशा'। उ० १. परम सुभग सब दिसा बिभागा। (मा० १।८६।४)
दिसि (१)—दे० 'दिशा'। उ० १. बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी। (क० ६।४४)
दिसि (२)—(सं० दश)—किसी पक्ष की दसवीं तिथि, दशमी। उ० रबि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार। (दो० ४५८)
दिसिकुंजर—दे० 'दिग्गज'। दिसिकुंजरहु—हे दिग्गजो, हे दिशाओं के हाथियो। उ० दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। (मा० १।२६०।१)
दिसित्राता—(सं० दिशि+त्राता)—दे० 'दिगपाल'। उ० भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता। (मा० ७।८१।१)
दिसिनायक—दे० 'दिगपाल'। उ० चौंके सिव, बिरंचि, दिसिनायक रहे मूँदि कर कान। (गी० १।८८)
दिसिप—दे० 'दिगपाल'। उ० कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। (मा० ५।२०।४)
दिसिपति—दे० 'दिगपाल'। उ० बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। (मा० १।३२१।३)
दिसिपाल—दे० 'दिगपाल'।
दिसिपाला—दे० 'दिगपाल'। उ० अमर नाग किंनर दिसिपाला। (मा० २।१३४।१)
दिसिराज—दे० 'दिगपाल'। उ० बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज। (मा० १।६२)
दिहल—(सं० दान, हिं० देना)—दिया, दिया है। उ० हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे। (वि० १८९) दिहेसु—देना।
दीक्षा—(सं०)—१. गुरु से मंत्र का विधिवत उपदेश, गुरु से मंत्र लेना, २. यज्ञ।
दीछा—दे० 'दीक्षा'।
दीख—(सं० दृश् प्रा० देक्खर)—१. दिखलाई दिया, २. देखा, दर्शन किया, ३. देखा हुआ। उ० २. दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा। (मा० २।१३६।२) ३. सकल कहहिं मगु दीख हमारा। (मा० २।१०९।२) दीखा—१. देखना, दर्शन करना, २. दिखाई दिया। उ० १. निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। (मा० २।४७।२) दीखि—देखा। उ० आगें दीखि जरत रिस भारी। (मा० २।३१।१)
दीजहु—देना, दीजिए। उ० उचित सिखावन दीजहु मोही। (मा०४।३०।५) दीजे—दे० 'दीजै'। दीजै—(सं० दान, हिं० देना)—१. दीजिए, प्रदान कीजिए, २. दिया जावे। उ० १. होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु। (मा० ७।३५।१)
दीठ—(सं० दृष्टि)—नज़र, दृष्टि।
दीठा—१. देखा, २. दर्शक, देखनेवाला। दीठे—देखा, निहारा, अवलोकन किया।
दीठि—(सं० दृष्टि)—१. नेत्र, नयन, २. दर्शन, ३. दृष्टि, नज़र, ४. वह नज़र जिसका किसी अच्छी चीज़ पर बुरा असर पड़े। उ० ३. तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि। (दो० ४६)
दीठी—दे० 'दीठि'।
दीन (१)—(सं०)—१. दरिद्र, निर्धन, २. दुखी, संतप्त, ३. नम्र, ४. कातर, ५. व्याकुल, ६. म्लान, ७. भीत, डरा हुआ। उ० १. कस न दीन पर द्रवहु उमावर। (वि०७) २. परम दुखी भा पवन सुत देखि जानकी दीन। (मा० ५।८) दीनन्ह—गरीबों, दीनों। उ० कोमल चित दीनन्ह पर दाया। (मा० ७।३८।२)
दीन (२)—(अर०)—मत, मज़हब।
दीन (३)—(सं० दान, हिं० देना)—दीन्ह, दिया।
दीनता—(सं०)—१. ग़रीबी, दरिद्रता, २. दुःख, ३. अधीनता, ४. नम्रता, ५. उदासी, ६. बेबसी, ७. आर्तभाव। उ० १. बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि, दीनता। (वि० २६२) ३. आरत नत दीनता कहे प्रभु संकट हरत। (वि० १३४)
दीनदयाल—दीनों पर दया करनेवाला। उ० नाथ दीनदयाल रघुराई। (मा० ६।७।१)
दीनदयालु—(सं०)—दे० 'दीनदयाल'। उ० दीनदयालु दिवाकर देवा। (वि० २)
दीनबंधु—(सं०)—दुखियों या दीनों का सहायक, भगवान। उ० भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनं। (वि० ४५)
दीना—दे० 'दीन'। उ० १. राखहु सरन नाथ जन दीना। (मा० ७।१८।४)
दीन्ह—दिया। उ० करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ। (मा० २।६४) दीन्हा—दिया। उ० सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। (मा० १।३०।२) दीन्हि—दी, दी है। उ० नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई। (मा० १।१३४।२) दीन्हिउँ—दी है। उ० प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। (मा० २।१५।१) दीन्हिसि—दी, दे दी। उ० दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं। (मा० २।२६।५) दीन्ही—दी, दी है। उ० लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही। (मा० १।१०२।१) दीन्हे—दिए, प्रदान किए। उ० सबहि यथोचित आसन दीन्हे। (मा० १।१००।१) दीन्हेउ—दिया, दे दिया। उ० दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं। (मा० ४।६।५) दीबे—(सं० दान, हिं० देना)—देने, प्रदान करने। उ० दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक। (क० ७।१६५) दीबो—देना, दीजिएगा। उ० नीके जिय की जानि अपनपौ समुझि सिखावन दीबो। (कृ० ३५)
दीप (१)—(सं०)—१. दीपक, चिराग, दीया, २. भूषण, श्रेष्ठ। उ० १. दीप मनोहर मनिमय नाना। (मा० १।२८९।२) दीपहि—१. दीप को, दीपक को, २. भूषण को। उ० २. रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई। (मा० २।३६।४)
दीप (२)—(सं० द्वीप)—द्वीप, ऐसा भू खंड जिसके चारों

और पानी हो। उ० राम-तिलक सुनि दीप दीप के नृप आए उपहार लिए। (गी० ६।२३)

दीप (३)–(सं० दीप्त)–चमकता हुआ, प्रदीप्त। उ० सोभा की दीयटि मानों रूप दीप दियो है। (गी० १।१०)

दीपक–(सं०)–१. दीप, चिराग, दीया, २. एक अलंकार, ३. एक राग, जिसे ग्रीष्म ऋतु में गाया जाता है। उ० १. भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को। (गी० १। ८६)

दीपमालिका–(सं०)–१. दीपदान, आरती या शोभा के लिए चिरागों की पंक्ति, २. दीवाली। उ० १. ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवधधनी। (गी० ७। २०)

दीपसिखा–(सं० दीपशिखा)–लौ, प्रदीपज्वाला, चिराग की लौ। उ० दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा। (मा० ७।११८।१) दीपसिखाउ–दीपशिखा भी, चिराग की लौ भी। उ० कनक सलाक, कला ससि, दीपसिखाउ। (ब० ३१)

दीपा–दे० 'दीप (१)'। उ०१. अंचल बात बुझावहिं दीपा। (मा० ७।११८।४)

दीपावली–(सं०)–दे० 'दीपमालिका'। उ० १. भगति-बैराग-बिज्ञान-दीपावली अर्पि नीराजनं जगनिवासं। (वि० ४७)

दीपिका–(सं०)–छोटा दीपक, छोटा मशाल। दे० 'दियरा'। उ० रूप-दीपिका निहारि मृग-मृगी नर-नारि। (गी० १।८२)

दीप्त–(सं०)–१. प्रज्वलित, जलता हुआ, २. प्रकाशित, जगमगाता हुआ, ३. उत्तेजित, ४. सोना, ५. हींग, ६, नीबू, ७. सिंह, केशरी।

दीप्ति–(सं०)–१. प्रकाश, उजाला, २. द्युति, आभा, चमक, ३. शोभा, कांति, छवि, ४. लाक्षा, लाख।

दीयटि–दीवट, दीपक रखने का आधार जो धातु या लकड़ी का होता है। उ० सोभा की दीयटि मानों रूप दीप दियो है। (गी० १।१०)

दीया–(सं० दीपक)–दीप, चिराग।

दीरघ–(सं० दीर्घ)–१. बड़ा, बहुत बड़ा, २. आयत, लंबा, ३. दीर्घ, गुरु या द्विमात्रिक वर्ण, ह्रस्व या लघु का उलटा। उ० १. दीरघ रोगी, दारिदी, कटुबच लोलुप लोग। (दो० ४७७) ३. दीरघ लघु करि तहँ पढ़ब जहँ मुख लह बिसराम। (स० २६)

दील–(फ़ा० दिल)–दिल, मन, जी, हृदय। उ० घायल लषनलाल लखि बिलखाने राम, भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की। (क० ६।५२)

दीवट–दीपक रखने का आधार, दीयट।

दीवान–दे० 'दिवान'।

दीसा–(सं० दृश, हि० दीसना)–दिखाई पड़ा, दीखा, देखा। उ० बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा। (मा० २। २३१।४)

दुंदुभि–(सं०)–१. नगाड़ा, धौंसा, २. वरुण, ३. एक राक्षस का नाम जिसे बालि ने मारकर ऋष्यमूक पर्वत पर फेंका था। इस पर मतंग ऋषि ने श्राप दिया था जिससे बालि उस पर्वत पर नहीं जा सकता था। उ० १. दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। (मा० १।३४७।३) ३. दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। (मा०४।७।६) दुंदुभीं–बहुत सी दुंदुभियाँ। उ० होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभीं बजाइ। (मा० १।३४७) दुंदुभी–दे० 'दुंदुभि'। उ०१. गहगह गगन दुंदुभी बाजी। (कृ० ६१)

दुःख–(सं०)–१. कष्ट, तकलीफ, क्लेश, २. पीड़ा या दर्द जो मानसिक हो, ३. व्याधि, रोग, बीमारी, ४. आफ़त, विपत्ति, ५. कष्ट, ताप। सांख्य शास्त्र के अनुसार दुःख या ताप तीन प्रकार के माने गये हैं–आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक। आध्यात्मिक दुःख के अंतर्गत रोग व्याधि आदि शारीरिक तथा क्रोध आदि मानसिक दुःख, आधिभौतिक के अंतर्गत स्थावर, जंगम (पशु पक्षी तथा कीड़े आदि) आदि द्वारा पहुँचाए गए दुःख तथा आधिदैविक के अंतर्गत देवताओं या प्राकृतिक शक्तियों द्वारा पहुँचाये गये दुःख आते हैं। उ० ४. जयति मरुदंजना मोद-मंदिर, नतग्रीव-सुग्रीव-दुःखैक-बंधो। (वि० २७) दुःखतः–(सं०)–दुःख से, कष्ट से, वेदना से। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले बनवास दुःखतः। (मा० २।१। श्लो० २)

दुःशासन–(सं०)–धृतराष्ट्र के १०० पुत्रों में एक जो दुर्योधन का प्रेमपात्र और मंत्री था। द्रौपदी को पकड़कर सभास्थल में यही ले आया था, और दुर्योधन के कहने से उसका वस्त्र खींचने लगा, पर कृष्ण ने द्रौपदी की रक्षा की। भीम ने दुःशासन के वक्ष का रक्त पीने की प्रतिज्ञा की थी। द्रौपदी ने भी प्रण किया कि जब तक दुःशासन के रक्त से अपने बाल न रँगेगी, वह बालों को न बाँधेगी। महाभारत के युद्ध में भीम ने इन प्रतिज्ञाओं को पूरी की और इस तरह दुःशासन भीम द्वारा मारा गया।

दुःसासन–दे० 'दुसासन'।

दुअन–दे० 'दुवन'।

दुआर–(सं० द्वार)–द्वार, दरवाज़ा। उ० बिप्र एक बालक मृतक, राखेउ रामदुआर। (प्र० ६।५।१) दुआरें–द्वार पर, दरवाज़े पर। उ० उर धरि धीरजु गयउ दुआरें। (मा० २।३६।२)

दुआरा–दे० 'दुआर'। उ० गावत पैठहिं भूप दुआरा। (मा० १।१९४।२)

दुइ–दो, युग, एक और एक। उ० ससि-सर नव दुइ छ दस गुन, मुनिफल बसु हर भानु। (दो०४५६) दुइचारी–दो चार, कुछ थोड़े से। उ० सुनहु जे अब अवगुन दुइचारी। (मा० १।६७।४) दुऔ–(सं० द्वि)–दोनों। उ० लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई। (मा० ४।४।३) दुइसाता–चौदह, १४। उ० सुख समेत संबत दुइसाता। (मा० २।२८०।४)

दुइज–(सं० द्वितीया)–१. दूज, प्रत्येक पक्ष की दूसरी तिथि, २. शुक्ल पक्ष की दूज। उ० १. दुइज द्वैत-मति छाँड़ि चरहि महि-मंडल धीर। (वि० २०३) २. दुइज न चंदा देखिये, उदौ कहा भरि पाख। (दो० ३४४)

दुकाल–(सं० दुष्काल)–अकाल, कहत, ऐसा समय जब

चीजें इतनी महँगी हों कि लोग भूख से मरने लगें। उ० लखि सुदेस कपि भालु दल, जनु दुकाल समुहान। (प्र० ५।७।२)

दुकालु-दे० 'दुकाल'। उ० बरषत सर हरषत बिबुध, दला दुकालु दयाल। (प्र० ५।७।३)

दुकूल-(सं०)-१. रेशमी वस्त्र, २. महीन कपड़ा, ३. दुपट्टा, चद्दर, ४. नदी के दोनों किनारे। उ० १. निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई। (वि० ६२)

दुख-दे० 'दुःख'। उ० १. किए दूर दुख सबनि के जिन जिन कर जोरे। (वि० ८) २. विष्णु-पदकंज मकरंद-इव अंबु बर बहसि, दुख दहसि अघ वृंद-विद्रावनी। (वि० १८) दुखउ-दुःख भी, कष्ट भी। उ० फिरयो ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखउ दुखित मोहिं हेरे। (वि० २२७)

दुखई-दुखित की। दुखवत-दुःख देते हुए, कष्ट पहुँचाते हुए। उ० सुतहिं दुखवत बिधि न बरज्यो काल के घर जात। (वि० २१६) दुखवहु-दुखित करो, नाराज़ करो। उ० दुखवहु मोरे दास जनि, मानेहु मोरि रजाइ। (गी० २।४७)

दुखकारी-दुख पहुँचानेवाला। उ० स्तुति-गुरु साधु-सुमृति सम्मत यह दृश्य सदा दुखकारी। (वि० १२०)

दुखद-(सं० दुःखद)-दुखदायी, दुखकारी। उ० कपट मर्कट, बिकट व्याघ्र पाखंड मुख दुखद-मृगव्रात उतपात कर्ता। (वि० ५६) दुखदा-दुःख देनेवाली। उ० दुखदा कुमति कुनारितर अति सुखदायक राम। (स० २७५)

दुखदाई-दुःख देनेवाला। उ० खल अति अजय देव दुखदाई। (मा० १।१७०।३)

दुखप्रद-दुःख देनेवाला। उ० दुखप्रद उभयबीच कछु बरना। (मा० १।५।२)

दुखारी-दुखी, कष्टित, पीड़ित। उ० अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन दुखारी। (वि० ३४) दुखारे-दुखी, दुखित, दुखारी। उ० बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे। (क० २।२८)

दुखित-जिसे दुःख पहुँचा हो, कष्टित। उ० फिरयौ ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखउ दुखित मोहिं हेरे। (वि० २२७)

दुखी-कष्टित, पीड़ित। उ० दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी। (वि० ५)

दुखु-दे० 'दुख'। उ० २. जाना राम सतीं दुख पावा। (मा० १। ५४।२)

दुगुन-(सं० द्विगुण)-दूना, दुगुना। उ० कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा। (मा० ५।२।४)

दुघरी-(सं०)-(द्वि+घटी)-दुघड़िया मुहूर्त। एक मुहूर्त जो आवश्यक काम के समय काम में लाई जाती है। इसमें दिन के अशुभ होने का विचार नहीं किया जाता। दिन रात की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभक्त कर राशि के अनुसार फल निकालते हैं। उ० दुघरी साधि चले ततकाला। (मा० २।२७२।३)

दुचित-(सं० द्वि+चित्त)-जिसका मन डाँवाडोल हो, अस्थिरचित्त, फ़िक्रमंद, चिंतित।

दुचितई-चित्त की अस्थिरता, दुबिधा, चिंता, आशंका, खटका। उ० आयसु भो राम को सो मेरे दुचितई है। (गी० १।८४)

दुति-(सं० द्युति)-१. द्युति, चमक, आभा, प्रकाश, २. छवि, शोभा, कांति, सौंदर्य, ३. किरण, रश्मि। उ० १. दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों। (क०१।३) २. जनु-तनु दुति चंपक कुसुममाल। (वि० १४)

दुतिकारी-चमकीला, प्रकाशयुक्त, कांतिमान। उ० तिलक ललाट पटल दुतिकारी। (मा० १।१४७।२)

दुतिवंत-प्रकाशवान, चमकीला, कांतियुक्त। उ० अरुन चरन अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत कछुक अरुनाई। (गी० १।१०६)

दुत्त-(सं० द्रुत)-१. फुर्तीला, शीघ्रगामी, २. शीघ्र, जल्दी। उ० १. जोबन नव ढरत ढार, दुत्त मत्त मृग मराल। (गी० २।४३)

दुनि-(अर० दुनिया)-दुनियाँ में। उ० हैं दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम, कियो न संभाषन काहूँ। (वि० २७५)

दुनिए-दुनिया ही। उ० हरष-विषाद-राग रोष-गुन दोषमई, बिरची बिरंचि सब देखियतु दुनिए। (ह० ४४)

दुनी-(अ० दुनिया)-संसार, जगत, विश्व। उ० खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो। (क० ७।७२)

दुबिद-(सं० द्विविद)-रामायण के अनुसार एक बंदर जो राम की सेना का एक सेनापति था। उ० कहँ नल नील दुबिद बलवंता। (मा० ६।४३।१)

दुभाषी-(सं० द्विभाषी)-दो भाषाओं का जाननेवाले ऐसा मनुष्य जो उन भाषाओं को बोलनेवाले दो मनुष्यों को एक दूसरे का अभिप्राय समझाए। दुभाषिया। उ० समय प्रबोधक चतुर दुभाषी। (मा० १।२१।४)

दुरंत-(सं०)-१. जिसका पार पाना असंभव हो, २. दुष्ट, शरारती, बदमाश, कुकर्मी। उ० १. काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत। (मा० ७।९१ख)

दुर (१)-दे० 'दुर्'।

दुर (२)-(सं० दूर)-एक तिरस्कारसूचक शब्द जो हटाने के लिए कहा जाता है।

दुरइँ-(सं० दूर)-छिपते। उ० बैरु प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ। (मा० २।१९३।१) दुरइ-छिपता, छिपता है। उ० बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराएँ। (मा० २।२६४।२) दुरई-दे० 'दुरइ'। दुरत-१. छिपता हुआ, २. छिपता है। उ० १. प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। (मा० १।१२७।२) दुरनि-छिपना, छिपने का स्वभाव। उ० नील जलद पर निरखि चंद्रिका दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति। (गी० ७।१७) दुरहिं-छिप जाती हैं। उ० प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। (मा० १।३४७।२)

दुरघट-दे० 'दुर्घट'।

दुरजन-(सं० दुर्जन)-खोटा आदमी। उ० यों मन गुनति दुसासन दुरजन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी। (कृ० ६०)

दुरतिक्रम-(सं०)-जो बड़ी कठिनाई से पार किया जा सके, दुस्तर, कठिन। उ० कालु सदा दुरतिक्रम भारी। (मा० ७।९४।४)

दुरदसा-(सं० दुर्दशा)-बुरी हालत, बुरी दशा, दुर्गति, दुर्दशा। उ० दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन। (वि० १४१)

दुरदिन-दे० 'दुर्दिन'। उ० दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन। (वि० १४१)

दुरबासनहिं-दुर्वासना को, बुरी इच्छा को। उ० प्रगटै उपासना, दुरावै दुरबासनहिं। (क० ७।११६)

दुरबासा-दे० 'दुर्वासा'। यह महिमा जानहिं दुरबासा। (मा० २।२१८।३)

दुरलभ-दे० 'दुर्लभ'।

दुराइ-छिपाकर। उ० देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना ते लै धरत दुराइ। (गी० ७।३६) दुराई-१. छिपाया, छिपा लिया, २. छिपाई हुई। उ० १. जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। (मा० १।६८।३) दुराउ-१. दुराव, छिपाव, २. कपट, छल, ३. छिपाओ। उ० १. देखा-देखी दंभ तें, कि संग तें भई भलाई, प्रगटि जनाई, कियो दूरित दूराउ मैं। (वि० २६१) दुराऊ-दे० 'दुराउ'। उ० १. सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। (मा० १।५३।३) दुराएँ-१. दुराने से, छिपाने से, २. छिपाए हुए। उ० १. बैरु प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ। (मा० २।१६३।१) दुराए-छिपा दिया, छिपा दिया है। उ० तेहिं इरिषा बन आनि दुराए। (मा० २।१२०।३) दुराय (१)-(सं० दूर)-१. छिपाकर, २. दुराव, छिपाव। दुराएहु-छिप जाना। उ० चलेउ प्रसंग दुराएहु तबहूँ। (मा० १।१२७।४) दुरावउँ-छिपाऊँ, छिपाता हूँ। उ० अब जौं तात दुरावउँ तोही। (मा० १।१६२।२) दुरावहिं-छिपाती हैं। उ० सुनि सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं। (कृ० ४) दुरावा-१. छिपावे, चुरावे, २. दुराव, छिपाव, कपट। उ० १.गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा। (मा० ४।७।२) दुरावै-१. छिपाता है, २. छिपावे। उ० १. प्रगटै उपासना, दुरावै दुरबासनहिं। (क० ७।११६।३) दुरावौं-१. दुराता हूँ, छिपाता हूँ, २. छिपाऊँ। उ० १. मन क्रम बचन लाइ कीन्हें अघ ते करि जतन दुरावौं। (वि० १४२)

दुराचार-(सं०)-१. बुरा आचरण, बुरी चालचलन, २. अन्याय, अत्याचार, ३. पाप, अधर्म।

दुराज-(सं० दुर्+राज्य)-बुरा राज्य, ऐसा राज्य जिसमें अत्याचार और अन्याय होता हो। उ० दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुख, दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है। (क० ७।८१)

दुराधरष-दे० 'दुराधर्ष'। उ० दुराधरष दुर्गम भगवाना। (मा० १।८६।२)

दुराधर्ष-(सं०)-जिसका दमन करना कठिन हो, प्रचंड, भयंकर।

दुरापं-(सं० दुराप)-१. कठिनता से मिलनेवाला। उ० सिद्ध कवि-कोविदानंद दायक पदद्वंद, मंदात्ममनुजै-र्दुरापं। (वि० ५५)

दुराप-(सं० दुः + अप्)-बुरा पानी, निषिद्ध जल।

दुराय (२)-(सं०)-कठिनता से मिलनेवाला, दुर्लभ।

दुराराध्य-(सं०)-जिसकी आराधना बहुत कठिन हो। उ० दुराराध्य पै अहहिं महेसू। (मा० १।७०।२)

दुराव-छिपाव, कपट, दुराने का भाव।

दुराशा-(सं०)-१. कुवासना, बुरी आशा, बुरी इच्छा, २. झूठी आशा, ऐसी आशा जो पूरी होनेवाली न हो, ३. निराशा।

दुरासा-दे० 'दुराशा'। उ० १. अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें। (वि० १९८)

दुरि-१. छिपकर, २. छिप। उ० २. कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई। (मा० ६।७६।६) दुरीदुरा-छिप-छिप कर, लुक-छिप कर। उ० दुरीदुरा करि नेगु सुनात जनाउ। (जा० १६६) दुरे-छिपे, छिप गए। उ० डग्यौ न धनु, जनु-बीर-बिगत महि, किधौं कहुँ सुभट दुरे। (गी० १।८७) दुरेउ-छिपा हो, छिप गया हो। उ० जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू। (मा० १। १५६।३) दुरेऊ-छिपा, छिप गया, छिप गया हो, छिपा हो। उ० जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ। (मा० ६।६३।२) दुरै-छिपे, ओट में हो जावे। दुरैगी-छिपेगी, ओट में होगी। उ० यहाँ क्यों दुरैगी बात मुख की औ हीय की। (वि० २६३)

दुरित-(सं०)-१. पाप, पातक, २. छिपा हुआ, गुप्त ३. पापी, पाप करनेवाला। उ० १. दहन देष दुख दुरित रुजाली। (वि० २) ३. जीवत दुरित-दसानन गहिबो। (गी० ५।१४) दुरितहारी-पापों को नाश करनेवाला। उ० जयति लवणांबुनिधि-कुंभसंभव, महादनुज-दुर्जन-दवक दुरितहारी। (वि० ४०)

दुर्-(सं०)-एक उपसर्ग जिसका प्रयोग (१) बुरे, (२) निषेध या (३) कष्टकर अर्थ में होता है। जैसे दुर्जन दुर्बल, दुर्गम। उ० ३. ते अति दुर्गम सैल बिसाला। (मा० १।३८।४)

दुर्ग-(सं०)-१. दुर्गम, जहाँ जाना कठिन हो, २.गढ़, कोट, किला, ३. एक असुर का नाम जिसे मारने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा। ४. कठिन। उ० १. दुर्द्धर्ष दुस्तर दुर्ग, स्वर्ग-अपवर्ग-पति भग्न-संसार-पादप-कुठारं। (वि० ५०) २. वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग। (वि० ५८) ४. दुर्ग-दुर्वासना नासकर्त्ता। (वि० ५६)

दुर्गत-(सं०)-दुर्दशाग्रस्त,, जिसकी बुरी गति हुई हो, २. दरिद्र। दुर्गति-(सं०)-१. दुर्दशा, बुरी गति।

दुर्गमं-दे० 'दुर्गम'। उ० १. यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शंभुना दुर्गमं। (मा० ७।१३१। श्लो० १) दुर्गम-(सं०) १. जहाँ जाना कठिन हो, जहाँ जल्दी पहुँच न हो सके, २. जिसे जानना कठिन हो, दुर्ज्ञेय, ३. दुस्तर, कठिन, विकट, ४.बन, कानन, जंगल, ५. संकट का स्थान, भीषण स्थिति, ६. दुर्ग, किला, गढ़, ७. विष्णु, केशव, ८. अजेय। उ० ८. दुराधरष दुर्गम भगवाना। (मा० १।८६।२)

दुर्गार्त्ति-(सं० दुर्ग+आर्ति)-बहुत कठिन दुःख। उ० सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गार्त्ति-हर्त्ता। (वि० ५४)

दुर्घट-(सं०)-१. कठिन, जिसका होना कष्टसाध्य हो, २. जो जाने योग्य न हो, दुर्गम। उ० १. प्रबल अंहकार

दुर्घट महीधर, महामोह गिरि गुहा निबिडांधकारम् । (वि० ५६)

दुर्जन-(सं०)-दुष्ट आदमी, खल या खोटा मनुष्य । उ० निज संगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून । (वै०१८)

दुर्जय-(सं०)-१. जो जीता न जा सके, अजेय, २. विष्णु, भगवान । उ० १.अमित बल परम दुर्जय निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी । (वि० ५८)

दुर्दशा-(सं०)-बुरी दशा, दुर्गति ।

दुर्दिन-(सं०)-१. बुरा दिन, आफ़त का समय, आपद्-काल।

दुर्दोष-कठिन अपराध, अक्षम्य अवगुण । उ० दनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुःपाप हर्त्ता । (वि०५६)

दुर्धर्ष-दे० 'दुर्द्धर्ष' ।

दुर्द्धर्ष-(सं०)-१. प्रचंड, उग्र, २. जिसका दमन करना कठिन हो, ३. रावण के दल का एक राक्षस, ४. धृतराष्ट्र का एक पुत्र, ५. निर्भय, निडर । उ० २. सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गार्त्ति-हर्त्ता । (वि०५४)

दुर्बचन-कटुवाणी, कड़ुवी बात, गाली । उ० मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे । (मा० १।१३८।२)

दुर्बल-(सं०)-कमज़ोर, अशक्त ।

दुर्बलता-(सं०)-१. कमज़ोरी, २. दुबलापन। उ० १. विषय आस दुर्बलता गई । (मा० ७।१२२।५)

दुर्बा-(सं० दूर्वा)-दूब । उ० दधि दुर्बा रोचन फल फूला । (मा० ७।३।३)

दुर्बाद-दे० 'दुर्वाद' । उ० ३. तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद । (मा० ६।१०८)

दुर्बासा-दे० 'दुर्वासा' । उ० जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा । (मा० ३।२।३)

दुर्मद-(सं०)-१. उन्मत्त, मदमाता अभिमान में चूर, २. एक राक्षस का नाम । उ० १. कुंभकरन दुर्मद रन रंगा । (मा० ६।६४।१)

दुर्मुख-(सं०)-१. बुरे या भयानक मुखवाला, २. अप्रिय या कटु बोलनेवाला, ३. महिषासुर का एक सेनापति, ४. राम की सेना का एक वीर बंदर, ५. धृतराष्ट्र का एक पुत्र, ६. साठ संवत्सरों में से एक, ७. शिव, ८. गणेश का एक गण । उ० ३. द्वेष-दुर्मुख, दंभखर, अकंपन-कपट । (वि०५८)

दुर्योधन-(सं०)-धृतराष्ट्र का पुत्र और कौरवों में सबसे बड़ा । यह पांडवों का विद्वेषी था । इसने लाक्षागृह में उन्हें एक बार जलवाने का प्रयास किया पर सफल न हो सका । इसने पांडवों को दो बार बनवास दिया । अंत में महाभारत का युद्ध इसी के कारण हुआ जिसमें १८वें दिन सबके मर जाने पर दुर्योधन भगकर एक तालाब में घुसा । भीम के ललकारने पर वह निकला और भीम ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार गदा से उसकी जाँघ तोड़कर उसे मार डाला ।

दुर्लभ-(सं०)-१. जो कठिनता से मिल सके, दुष्प्राप्य, २. अनोखा, ३. प्रिय, ४. विष्णु, ५. कष्टसाध्य । उ० १. अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन बचन काय । (वि० ८३)

दुर्वाद-(सं०)-१. अपवाद, निंदा, २. गाली, ३.कड़ी बात, ४. बकवाद ।

दुर्वासना-(सं०)-बुरी इच्छा, दुष्ट इच्छा, बुरी कामना । उ० दुष्टता दमन, दम भवन, दुःखौघहर दुर्ग-दुर्वासना-नासकर्त्ता । (वि० ५६)

दुर्वासा-(सं० दुर्वासस्)-अत्रि के पुत्र एक प्रसिद्ध ऋषि । ये बड़े क्रोधी थे । इनकी स्त्री और्व मुनि की कन्या कंदली थीं । विवाह के समय यह प्रतिज्ञा हुई थी कि दुर्वासा इसके १००अपराध क्षमा करेंगे पर १०१वें के समय कंदली को भस्म कर देंगे । अंत में ऐसा ही हुआ । इस पर कंदली ने भी इन्हें शाप दिया कि तुम्हारा दर्प चूर्ण होगा । इसी शाप के फलस्वरूप अंबरीष के साथ दुर्वासा को नीचा देखना पड़ा । दे० 'अंबरीष' । दुर्वासा एक बार इंद्र की सभा में बैठे थे । वहाँ एक अप्सरा और एक गंधर्व नाच-गा रहे थे । दुर्वासा की ओर देखकर उन सबों ने मुस्करा दिया । इस पर क्रोधित होकर दुर्वासा ने उन्हें राक्षस होने का शाप दिया पर फिर अनुनय-विनय करने पर वे प्रसन्न हुए और रामावतार में हनुमान द्वारा शाप-मुक्त होने का वर दिया । येही दोनों कालनेमि और मकरी होकर हनुमान से मिले थे जब वे जड़ी लेने जा रहे थे । हनुमान ने उन्हें मार कर शाप मुक्त किया । कपि तव दरस भइउँ निष्पापा । मिटा तात मुनिवर कर सापा । (मा० ६।५८।१)

दुर्विनीत-(सं०)-अविनीत, अशिष्ट, उद्धत । उ० प्रनत-पालक राम परम करुना धाम पाहि मामुर्विपति दुर्विनीतं । (वि० ५६)

दुर्विपाक-(सं०)-१. बुरा परिणाम, बुरा फल, २. बुरा संयोग, दुर्घटना, ३. दुर्भाग्य, बदकिस्मती ।

दुर्व्यसन-(सं०)-बुरी आदत, खराब चस्का । उ० दे० 'दुर्द्धर्ष' ।

दुलह-(सं० दुर्लभ)-वर, ऐसा पुरुष या लड़का जिसका विवाह हो । दूल्हा, दुलहा । उ० दुलह दुलहिनिन्हि देखि नारिनर हरषहिं । (जा० १५६)

दुलहिनि-(सं० दुर्लभ)-दुलही, नई विवाहिता स्त्री, दूल्ही । उ० बर लायक दुलहिनि जग नाहीं । (मा० १।६२।३) दुलहिनिन्ह-दुलहिनियों को । उ० देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी । (मा० १।३४८।४) दुलहियन-दुलहियों को, बहुओं को । उ० पाँलागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत-साता । (गी०१।१०८)

दुलहिया-दुलहि, दूल्हन । उ० डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि, हँसिहैं नई दुलहिया सुहाई । (कृ० १३)

दुलही-दूल्हन, दुलहिन, नवबधू । उ० रामसेन बर, दुलही न सीय सारखी । (क० १।१५)

दुलार-(सं० दुर्लालन, प्रा० दुल्लाडन)-प्रेम, प्यार, लाड़ । उ० राखा मोर दुलार गोसाईं । (मा०२।२००।३)

दुलारइ-दुलारती है, प्यार करती हैं । उ० मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना । (मा० १।१६८।४) दुलारत-दुलारता, दुलारता है, प्यार करता है । उ० जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ । (वि० १००) दुलारीं-प्यार किया, स्नेह किया, लाड़-चाव किया । उ० बार बार हियँ

हरषि दुलारीं। (मा० १।३४४।२) दुलारी–१. प्यारी, २. प्यार किया। दुलारे–१. प्यारे, प्रिय, २. लाड़िले, प्रिय पुत्र, ३. दुलार किए हुए, ४. मुँह लगे, ५. दुलार किया, दुलारा। उ० २. भावते भरत के, सुमित्रा सीता के दुलारे, चातक चतुर राम-स्याम घन के। (वि० ३७)
दुव–(सं० द्वि)–दो, जोड़ा, युग।
दुवन–(सं० दुर्मनस्)–१. दुष्ट, बुरा, दुर्जन, २.शत्रु, दुश्मन, ३. राक्षस। उ० १. ऋषि मख राख्यो, रन दले हैं दुवन। (गी० १।८१) २. आये देखि देखि दूत दारुन दुवन के। (क० ६।३) ३. दवन दुवन-दल भुवन विदित बल। (ह० ६)
दुवार–(सं० द्वार)–१. द्वार, दरवाज़ा, २. किवाड़, कपाट। उ० देव दुवार पुकारत। (वि १३६) दुवारे–द्वार पर, दरवाज़े पर। उ० कृपासिंधु! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे? (वि० १४५)
दुष्कर–(सं०)–१. दुःसाध्य, कठिन, २. आकाश, व्योम, ३. पाप, अघ, पातक। उ० १. सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग बनचर-ध्वज कोटिलावन्यरासी। (वि०५४)
दुष्कर्म–(सं० दुष्कर्म्मन्)–बुरा काम, पाप।
दुष्कर्मा–(सं० दुष्कर्मन्)–बुरा काम करनेवाला, पापी।
दुष्कर्मी–दे० 'दुष्कर्मा'।
दुष्कर्ष–१.कठिन खिंचाव, २.अनुचित बढ़ावा, बुरा जोश।
दुष्कृत–(सं०)–बुरा काम, कुकर्म।
दुष्ट–(सं०)–१. खल, दुर्जन, दुराचारी, २. दोषयुक्त, ३. कुष्ट, कोढ़, ४. पित्त आदि दोष से युक्त। उ० १. करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि। (मा० २।५९) २. एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। (मा० ३।१५।४)
दुष्टता–(सं०)–१. दुर्जनता, बदमाशी, २. बुराई, ३. ऐब, दोष। उ० १. दुष्टता दमन, दम भवन, दुःखौघहर दुर्ग-दुर्वासना-नासकर्त्ता। (वि० ५६)
दुष्पार–जिसका पार पाना कठिन हो। उ० दुष्प्राप्य दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर्क्य दुष्पार, संसार हर सुलभ मृदु भावगम्यं। (वि०५३)
दुष्प्राप्य–(सं०)–कठिनाई से मिलने योग्य। उ० दे० 'दुष्पार'।
दुष्प्रेक्ष्य–(सं०)–जिसका दर्शन कठिनाई से हो। उ० दे० 'दुष्पार'।
दुसरे–(सं० द्वि)–अन्य, किसी और। उ० पाइ सखा सेवक जाचक भरि जनम न दुसरे द्वार गए। (गी० १।४३)
दुसह–(सं० दुःसह)–जो सहा न जाय, असह्य, कठिन। उ० जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई। (मा० २।१२।४)
दुसही–१. जो कठिनता से रोका जा सके, २. बैरी, दुश्मन। उ० २. असही दुसही मरहु मनहिं मन, बैरिन बढ़हु बिषाद। (गी० १।२)
दुसासन–दे० 'दुःशासन'। उ० यों मन गुनति दुसासन दुरजन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी। (कृ० ६०)
दुस्तर–दे० 'दुस्तर'। उ० १. हरिं नरा भजंति येऽति दुस्तरं तरंति ते। (मा० ७।१२२ ग) दुस्तर–(सं०)–१. जिसे पार करना कठिन हो, २. दुर्घट, बिकट, कठिन। उ० १. दुद्धर्ष, दुस्तर, दुर्ग, स्वर्ग, अपवर्गपति, भग्न-संसार-पादप कुठारं। (वि० ५०)
दुस्तर्क्य–(सं०)–तर्क से जो नहीं जाना जा सके। उ० दे० 'दुष्पार'।
दुस्त्यज–जिसका त्यागना अत्यंत कठिन हो। उ० गुरुगिरा गौर वामरसु दुस्त्यज-राज्य त्यक्त श्री सहित, सौमित्र-भ्राता। (वि० ५०)
दुस्सह–(सं० दुःसह)–असह्य, जिसका सहना कठिन हो।
दुहाई (१)–(सं० द्वि+आह्वाय)–१. घोषणा, २. पुकार, न्याय के लिए पुकार, ३. सौगंद, शपथ, ४. न्याय, ५. आन, ६. शत्रुता, ७. आतंक, प्रभाव, ८. जय की ध्वनि।
दुहाई (२)–(सं० दोहन)–१. गाय भैंस आदि को दूहने का काम, २. दुहवाया। उ० २. सादर सब मंगल किए महि-मनि-महेस पर सबनि सुधेनु दुहाई। (गी० १।१२) दुहाए–दुहवाए, दूध निकलवाया। उ० गनप गौरि हर पूजिकै गोबृंद दुहाए। (गी० १।६)
दुहि–१. दूहकर, दूध दूहकर, २. तत्त्व निकालकर, सार निचोड़कर, ३. स्वार्थ साधने के लिए। उ० ३. बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। (मा० २।१६८।१)
दुहिता–(सं० दुहितृ)–कन्या, लड़की।
दुहिन–(सं० द्रुहण)–ब्रह्मा। उ० जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह। (पा० १५४)
दुहुँ–दे० 'दुहूँ'। उ० १. बेद बिहित कुलरीति कीन्हि दुहुँ कुलगुर। (जा० १४२)
दुहूँ–(सं० द्वि)–१. दोनों, उभय, २. दो।
दू–(सं० द्वि)–दो। उ० कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए। (ह० ३४)
दूक–१. दोनों, युग, २. दो, ३. दो, थोड़े। उ० ३. सदा बिचारहिं चारु मति सुदिन कुदिन दिन दूक। (दो० ४४४)
दूजा–१. द्वितीय, दूसरा, २. अन्य, अपर, और। उ० १. नारिधरमु पति देउ न दूजा। (मा० १।१०२।२) दूजी–दूसरी। उ० बोली मधुर बचन तिय दूजी। (मा० २।२२ २।३) दूजें–दूसरे ने। उ० मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। (मा० २।३।३)
दूत–(सं०)–समाचार या संदेशा ले जानेवाला, चर, हरकारा। उ० पठए दूत बोलि तेहि काला। (मा० १।२८७। १) दूतन्ह–दूतों को, सेवकों को। उ० दूतन्ह देन निछावर लागे। (मा० १।२९३।४) दूतहिं–दूत को। उ० माया-पति दूतहि चह मोहा। (मा० ५७।२)
दूता–दे० 'दूत'। उ० मैं रघुपति सेवक कर दूता। (मा० ६। ३०।४)
दूतिका–(सं०)–दे० 'दूती'। उ० २. मुक्ति की दूतिका, देह-दुति दामिनी। (वि० ४८)
दूतिन्ह–दूतियों। उ० दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। (मा० ५।३६।२) दूती–(सं०)–१. संदेशा पहुँचानेवाली स्त्री, कुटनी, वह स्त्री जो प्रेमी का संदेशा प्रेमिका तक तथा प्रेमिका का संदेशा प्रेमी तक पहुँचावे, २. प्रेम के अतिरिक्त अन्य संदेशा या अन्य चीज़ पहुँचानेवाली।
दूध–(सं० दुग्ध)–१. पय, क्षीर, दुग्ध, सफेद पदार्थ जो स्तनों से निकलता है, २. कच्चे अन्न या पेड़ों आदि से निकलनेवाला सफेद रस। उ० १. दस मुख तज्यो दूध-

माखी ज्यों आपु काढ़ि साढ़ी लई। (गी० ५।३७) दूध-माखी–(सं० दुग्ध + मक्षिका)–तुच्छ, बेकार। उ० दे० 'दूध'। दूधमुख–दूध पीनेवाला, छोटा। उ० सूध दूधमुख करिअ न कोहू। (मा० १।२७७।१)

दून–(सं० द्विगुण)–१. दुगुना, २. दोनों। उ० १. निज संगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून। (वै० १८) दूनउ–दोनों, दोनों ही। उ० बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। (मा० १।१२२।३)

दूना–दे० 'दून'। उ० १. सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना। (मा० २।२१।२)

दूब–(सं० दूर्वा)–एक प्रकार की घास जो पूजन के लिए मंगल द्रव्यों (हल्दी, दही आदि) के साथ स्थान पाती है। उ० राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है। (क० ७।-१०८)

दूबर–(सं० दुर्बल)–१. पतला, कमज़ोर, दुर्बल, २. असहाय, अनाथ। दूबरि–'दूबर' का स्त्रीलिंग। उ० १. देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। (मा० २।३२५।१) दूबरी–दे० 'दूबरि'। उ० १. होय दूबरी दीनता, परम पीन संतोष। (दो०६६) दूबरे–दे० 'दूबर'। उ० १. छोटे बड़े, खोटे खरे मोटेऊ दूबरे। (वि० २४६)

दूबरो–दे० 'दूबर'। उ० १. राम प्रेम बिनु दूबरो, राम प्रेम ही पीन। (दो० ५७)

दूर–(सं०)–१. फासले पर, देश, काल संबंध आदि के विचार से अंतर पर या पास का उलटा, २. भिन्न, न्यारा, अलग। उ० १. एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू। (क० २।६)

दूरति(सं० दूर)–१. छिपा देती है, २. तुच्छ कर देती है।

दूरि–दे० 'दूर'। उ० १. दीनबंधु दूरि किए दीन को न दूसरी सरन। (वि० २५७)

दूरिहि–१. दूर ही, फासले पर ही, २. दूरी ही। उ० १. दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। (मा० ५।४५।१) दूरी–दे० 'दूर'। उ० १. एहि बिधि सब संसय कर दूरी। (मा० १।३४।१)

दूर्वा–दे० 'दूब'।

दूलह–(सं० दुर्लभ)–१. बर, दुलहा, दूल्हा, जिसका विवाह हो रहा हो, या हाल में हुआ हो या शीघ्र होनेवाला हो, २. पति, स्वामी। उ०१. नहिं बरात दूलह अनुरूपा। (मा० १।९२।४)

दूषण–(सं०)–१. दोष, ऐब, बुराई, २. दोष लगाने की क्रिया या भाव, ३. एक राक्षस। यह रावण के भाई खर नामक राक्षस के साथ पंचवटी में सूर्पणखा की रक्षा के लिए नियुक्त था। सूर्पणखा के नाक-कान काटने पर इसने राम से युद्ध किया और उनके हाथ से मारा गया। इसके वज्रवेग और प्रमाथि नामक दो भाई भी थे। उ० १. समस्त दूषणा पहं। (मा० ३।४। छं० ५) दूषणापहं–दोषों को नाश करनेवाले। उ० समस्त दूषणापहं। (मा० ३।-४। छं० ५)

दूषत–दोष देते हैं। उ० तन करि मन करि बचन करि, काहू दूषत नाहिं। (वै० २३)

दूषन–दे० 'दूषण'। उ० १. जे पर दूषन भूषन धारी। (मा० १।८।५) ३. भुवन भूषन, दूषनारि भुवनेस, भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवनभर्त्ता। (वि० ५५)

दूषनहा–दूषण राक्षस को मारनेवाले रामचंद्र। उ० रघुबंस बिभूषन दूषनहा। (मा० ६।१११। छं० ४)

दूषनारि–(सं० दूषणारि)–दूषण राक्षस को मारनेवाले राम। उ० भुवन भूषन, दूषनारि, भुवनेस। (वि० ५५)

दूषनारी–दे० 'दूषनारि'। उ० अज्ञान-राकेस-ग्रासन बिधुंतुद, गर्ब-काम-करिमत्त-हरि दूषनारी। (वि० ५८)

दूषनु–दे० 'दूषण'। उ० १. कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन। (मा० २।२२३।३)

दूषा–दूषित, दोषयुक्त। उ० गुर अवमान दोष नहिं दूषा। (मा० २।२०१।३)

दूसर–(सं० द्वि, हि० दो)–१. दूसरा, जो क्रम से दो के स्थान पर हो, पहले के बाद का, २. अन्य, कोई और। उ० २.सब गुन अवधि, न दूसर पटतर लायक। (जा०६) दूसरि–'दूसर' का स्त्रीलिंग। उ० २. हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही। (मा० २।५०। छं० १) दूसरी–दे० 'दूसरि'। उ० २. दीन-बंधु दूरि किए दीन को न दूसरी सरन। (वि० २५७)

दूसरो–दे० 'दूसर'। उ० २. दूसरो न देखतु साहिब सम रामै। (गी० ५।२५)

दृक (१)–(सं०)–छिद्र, छेद, सूराख।

दृक (२)–(सं० दृग्भू)–हीरा, बज्र, एक रत्न।

दृक (३)–(सं० दृक्)–दृष्टि, नज़र, निगाह।

दृखत–(सं० दृषत्)-पत्थर, शिला। उ० दृखत करत रचना बिहरि रंग-रूप सम तूल। (स० ३६७)

दृगंचल–(सं०)–पलक, नेत्रपट।

दृग–(सं० दृक्)–नेत्र, आँख, नयन। उ० नयन अमिय दृग दोष बिभंजन। (मा० १।२।१)

दृढ़–(सं०)–१. पुष्ट, कड़ा, ठोस, मज़बूत, २. प्रगाढ़, जो ढीला न हो, ३. स्थायी, टिकाऊ, अचल, ४. निश्चित, ध्रुव, पक्का, ५. निडर, ढीठ, ६. विष्णु, ७. लोहा, ८. समर्थ। उ० ३. मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग। (मा० ७।६१)

दृढ़ता–१. दृढ़ होने का भाव, दृढ़त्व, २. मज़बूती, ३. स्थिरता। उ० ३. तप तीरथ साधन जोग बिराग सों होइ नहीं दृढ़ता तन कौ। (क० ७।८७)

दृढ़ाइ–मज़बूत करके, पक्का करके, स्थिर करके। उ० बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। (मा० २।२८।४) दृढ़ाई–दे० 'दृढ़ाइ'। उ० चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। (मा० २।८४।४) दृढ़ावा–निश्चित किया, निश्चय किया। उ० करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। (मा० ६।३६।२) दृढ़ाहीं–दृढ़ हो जाती हैं।

दृत–(सं०)–सम्मानित, आदृत, आदरित।

दृश–(सं०)–१. देखना, दर्शन, २. दिखानेवाला, प्रदर्शक, ३. देखनेवाला, ४. दृष्टि, नज़र, निगाह, ५. आँख, नेत्र, नयन, ६. ज्ञान, विवेक, समझ, ७. दो की संख्या।

दृश्य–(सं०)–१. खेल, तमाशा, कौतुक, २. अभिनय, नाटक, ३. सुन्दर, मनोहर, सुहावना, ४. नेत्रों का विषय, जो दृष्टिगोचर हो, ५. दर्शनीय। उ० १. स्तुति-गुरु-

साधु-सुस्मृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी। (वि० १२०) ४. परम कारन, कंजनाभ, जलदाभतनु सगुन निर्गुन सकल-दृश्य द्रष्टा। (वि० ५३)
द्दष्ट-(सं०)-१. देखा हुआ, जिस पर दृष्टि पड़ चुकी हो, २. जाना हुआ, समझा हुआ, ३. प्रत्यक्ष, प्रकट, ज़ाहिर।
द्दष्टा-देखनेवाला।
दृष्टि-(सं०)-१. नज़र, निगाह, देखने की शक्ति, २. ध्यान, विचार, ३. उद्देश्य, अभिप्राय, ४. पहचान, परख, तमीज़। उ० १. सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती। (मा० १।१।३)
दृष्टिगोचर-(सं०)-जो देखने में आ सके, जिसका बोध नेत्रेंद्रिय द्वारा हो।
दृस्यमान-(सं० दृश्यमान)-जो दिखाई पड़ रहा हो। उ० दृस्यमान चर-अचर-गन एकहि एक न लीन। (स० ३३६)
दे (१)-(सं० दान, हि० देना)-१. अर्पण करे, देवे, २. देनेवाले, ३. देकर, प्रदान कर, ४. दो। उ० ३. ज्ञान-बिज्ञान-बैराग्य ऐश्वर्य-निधि, सिद्धि अणिमादि दे भूरि दानम्। (वि० ६१) देइ (१)-दे० 'देई (१)'। उ० १. देइ अभागहिं भागु को। (वि० १६१) देइअ-१. दीजिए, २. देना चाहिए। उ० १. आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात। (मा० २।४५) देइगो-देगा। उ० सोकि कृपालुहि देइगो केवट पालहिं पीठि? (दो० ४६) देइहहु-देंगे, प्रदान करेंगे, देवेंगे। उ०मोहि राज हठि देइहहु जबहीं। (मा० २।१७६।१) देइहि-देगा। उ० कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी। (मा० १।१२।४) देई (१)-१. देता है, प्रदान करता है, २. दीजिए, ३. देकर। उ० २. सो अवलंब देव मोहि देई। (मा० २।३०७।४) देउँ-१. देता हूँ, अर्पण करता हूँ, २. दूँ, देऊँ। उ० १. निसि दिन नाथ! देउँ सिख बहु बिधि करत सुभाव निजै। (वि० ८६) देउ (१)-(सं० दान)-दो, प्रदान करो। उ० कोउ भल कहहु, देउ कछु कोऊ, असि बासना न उर तें जाई। (वि० ११६) देऊँ-दूँ। उ० भरतहि समर सिखावन देऊँ। (मा० २।२३०।२) देऊ-दें, दे। उ० तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। (मा० २।१६८।४) देत-(सं० दान, हि० देना)-१. देता है, प्रदान करता है, २. देते हुए, देते समय, ३. देने में। उ० १. देत एक गुन लेत कोटि गुन भरि सो। (वि० २६४) देता-१. देने में, २. दे देना, अर्पित करना। उ० १. नाथ न सकुचब आयसु देता। (मा०२।१२६।४) देति-१.देते हुए, २.देती है। उ० २.कर कंकन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी। (वि० ६२) देन-१. देने की क्रिया या भाव, दान, २. दी हुई चीज़, ३. देने के लिए, ४. देने, अर्पण करने। उ० ३. जब तेहिं कहा देन बैदेही। (मा० ५।२७।४) ४. लगे देन हिय हरषि कै हेरि-हेरि हँकारी। (गी० १।६) देना-देने को, देने के लिए। उ० सत्य सराहि कहेहु बरु देना। (मा० २।३०।३) देब-१. देने के लिए बचन देना, २. देना, हारना. अलग करना, ३.देगा। देबा-दे० 'देवा'। उ० २. जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा। (मा० २।१४६।३)देबि-दूँगी। उ० तदपि देबि मैं देबि असीसा। (मा०२।१०३।४) देबो-दे० 'देब'। देबोई-देना ही, दान करना ही। उ० देबोई पै जानिए सुभाव-सिद्ध बानि सो। (क० ७।१६१) देव (१)-(सं० दान, हि० देना)-१. दो, दे दो. प्रदान करो, २.देंगे, ३.देगा। देवा (१)-(सं० दान, हि० देना)१. देना, प्रदान करना, २.दूँगा, ३. देना पड़ेगा। देवी (१)-(सं०दान)-दूँगी, देऊँगी। देवे (१)-(सं०दान)-देने को। देहउ-दूँगी, दूँ गा। उ० जाइ उतरु अब देहउँ काहा। (मा० १।५४।१) देहिं-(सं० दान)-१. देते हैं, २. दंगे, ३. प्रकट करते हैं। उ० १. सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी। (मा० १।७।५) ३. देहिं सुलोचनि सगुन कलस लिए सीसन्ह। (पा० ६०) देहि-१. दीजिए, प्रदान कीजिए, २. देगा। उ० १. देहि कामारि श्री राम पद पंकजे। (वि० १०) देहीं-देते हैं, प्रदान करते हैं। उ० मिलत एक दुख दारुन देहीं। (मा० १।५।२) देही (१)-(सं० दान)-१. देता है, २. दीजिए। देहु-दो, दीजिए। उ० जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ। (मा० २।१२७) देहू-१. दो, दीजिए, २. देती हो। उ० १. तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू। (मा० १।१४६।२) २. केहिं अपराध आजु बन देहू। (मा० २।४६।३) देहेसु-देना। उ० तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता। (मा० ४।२८।५) दै-१. देकर, दानकर, २. दो, दीजिए। उ० १. तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं, समुझाइ कछू मुसुकाइ चली। (क० २।२२) दैअहिं (१)-(सं० दान)-देवेंगे, देंगे। दैन-१. देना, २. देने के लिए। उ० १. खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कवि दैन। (गी० १।३२) २. अद्भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग-लोगन्हि सुख दैन। (गी० २।२४) दैहउँ-दूँगा। उ० उतरु काह दैहउँ तोहि जाई। (मा० ६।६१।८) दैहैं-देंगे। उ० समरधीर महाबीर पाँच पति क्यों दैहैं मोहि होन उघारी। (कृ० ६०) दैहै-देगा। उ० को भोर ही उबटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेऊ दैहै? (गी० १।६७) दैहौं-दूँगा। उ० मन समेत या तन के बासिन इहै सिखावन दैहौं। (वि० १०४) दो-(१)-(सं० दान, हि० देना)-दीजिए, प्रदान करो।
दे (२)-(सं० देवी)-देवी, देवताओं की स्त्री, देवांगना।
देइ (२)-दे० 'देई (२)'।
देई (२)-दे० 'दे (२)'।
देउ (२)-(सं० देव)-देवता, सुर।
देख-(सं० दृश्, द्रक्ष्यति, प्रा० देक्खर, हि० देखना) १. देखो, दर्शन करो, २. देखकर, ३. देखा, ४. देखता है। उ० ३. भोजन करत देख सुत जाई। (मा० १।२०१।२) देखइ-देखता है। उ० सकल धर्म देखइ बिपरीता। (मा० १।१८४।३) देखई-देखती हैं, देख रही हैं। उ० दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई। (मा० २।२५। छं० १) देखउँ-१. देख रहा हूँ, २. देखूँगा, ३. देखा, देखता रहा। उ० १. देखउँ अति असंक सठ तोही। (मा० ५।२१।१) देखत-१. अवलोकत, चितवत, निहारत देखते हुए, २. देखते ही, दर्शन करते ही, ३. दर्शन से ही, ४. देखते हुए भी। उ० १. करि प्रनामु देखत बन बागा। (मा० २।१०६।२) देखन-१. देखने के लिए, २. देखने। उ० १. मनो देखने तुमहिं आई ऋतु

बसंत। (वि० १४) देखब–देखेंगे, देखूँगा। उ० देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय। (पा० ११६) देखहिं–देखते हैं। उ० मुदित नारि नर देखहिं सोभा। (मा० २।११५।२) देखहु–१. देखो, २. देख लेते, देखते। उ० २. देखहु कस न जाइ सब सोभा। (मा० २।११४।२) देखि–१. देखकर, २. देखा, ३. देखने के लिए, ४. देखो। उ० १. देखि कुठार बान धनु धारी। (मा० १।२८२।१) देखिअ–१. देखा जाय, देखना चाहिए, २. देखिए, ३. देखा जाता है, ४. दिखाई देते हैं। उ० १. देखिअ कपिहिं कहाँ कर आही। (मा० ५।१६।१) देखिअत–दिखाई पड़ते हैं। उ० देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे। (मा० ६।८१।४) देखिअहिं–१. देखे जाते हैं, देखते हैं, २. देखेंगे, ३. देखा। उ० १. देखिअहिं रूप नाम आधीना। (मा० १।२१।२) देखिए–१. देख लीजिए, २. देखना। उ० २. बीरता बिदित ताकी देखिए चहतु हौं। (क० १।१८) देखिन्ह–देखे, दर्शन किए। उ० देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा। (मा० ६।४१।२) देखिबी–देखेंगे, देखनी है। उ० देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबी रिसान। (दो० ४०३) देखिबो–देखेंगे, देखना है। उ० देखिबो दरस दूसरेहु चौथेहु बड़ो लाभ, लघु हानी। (कृ० ४८) देखिय–१. देखें, २. देखिए। उ० १. धरि धीर कहैं, चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं। (क० २।२३) देखियत–१. देखते हैं, २. दिखलाई दे रहे हैं। उ०२. बकसीस ईस जू की खीस होत देखियत। (क० ६।२०) देखिहहिं–देखेंगे। उ० जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे। (मा० २।१२०।४) देखिहि–देखेगा। उ० राम रहित रथ देखिहि जोई। (मा० २।१४५।४) देखी–१. देखा, देख लिया, २. देखकर, देखने पर। उ० १. देखी नयन दूत रखवारी। (मा० ६।२२।३) देखु–देखो, दर्शन करो। उ० देखु राम-सेवक सुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ। (वि० ८४) देखू–देख, देखो। उ० घरी कुवरी समुझि जियँ देखू। (मा० २।२६।४) देखें–देखने से, दर्शन से। उ० नाथ कुसल पद पंकज देखें।। (मा० २।८८।३) देखे–१. देख लिए, देखा, २. देखने पर, ३. देखे हुए, देखे सुने, जाने हुए। उ० १. देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं। (वि० १८०) देखेउ–देखा। उ० तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ। (मा० १।२४२।४) देखेन्हि–देखा। उ० अनुपम बालक देखेन्हि जाई। (मा० ७।११३।४) देखेसि–देखा। उ० सचिव सहित रथ देखेसि आई। (मा० २।१४२।३) देखेहु–देखना, देखिएगा। उ० देखेहु कालि मोरि मनुसाई। (मा० ६।७२।४) देखो–अवलोकन करो, दर्शन करो। उ० देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत। (वि० १४) देखौ–देखो, देखिए। उ० देखिबे को दाउँ, देखौ देखिबो बिहाइ कै। (गी०१।८२) देख्यो–देखा, देख लिया। उ० लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं। (वि० ७६) देख्योइ–देखना ही, दर्शन करना ही। उ० तुलसिदास प्रभु देख्योइ चाहति श्री उर ललित-ललामहि। (कृ० ५)

देखनिहारे–देखनेवाले। उ० सखि सब कौतुक देखनिहारे। (मा० १।२५६।१)

देखराइ–दिखलाकर। उ० रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि। (मा० २।८१) देखराए–दिखलाये, दिखलाया। उ० दुंदुभि अस्थि ताल दिखराए। (मा० ४।७।६) देखरावा–दिखलाया, दिखलाए। उ० अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। (मा० २।१३३।३)

देखवैया–देखनेवाले। उ० सोभा-देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं। (गी० १।३७)

देखाइ–१. दिखाकर, २. दिखला, ३. दिखलाई। उ० २. जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही। (मा० ६।१०७।२) देखाइयत–दिखलाती हो। उ० देवि ! क्यों न दास को देखाइयत पाय जू। (क० ७।१३६) देखाउ–दिखाओ, दिखा। उ० बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। (मा० १।२७०।२) देखाउब–दिखावेंगे, दिखाऊँगा। उ०सर निरझर जल ठाउँ देखाउब। (मा० २।१३६।४) देखाऊ–दिखलाओ, दिखाओ। उ० राम लखनु सिय आनि देखाऊ। (मा० २।८२।४) देखाए–दिखलाए। उ० सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम। (मा० ६।११९ख) देखायउँ–दिखाया, दिखाया था। उ० सो बल तात न तोहि देखायउँ। (मा० ६।७२।४) देखाव–१. दिखाते हैं, २. दिखलाओ। उ० १. पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। (मा० १।२७३।१) देखावत–दिखला रहे हैं, दिखाते हैं। उ० कपिन्ह देखावत नगर मनोहर (मा० ७।४।१) देखावसि–दिखला। उ० अब जनि नयन देखावसि मोही। (मा० ६।४६।२) देखावहिं–दिखलाते हैं। उ० दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी। (मा० १।२०५।१) देखावहु–दिखाते हैं, दिखा रहे हैं। उ० मृगुबर परसु देखावहु मोही। (मा० १।२७६।३) देखावा–१. दिखाना, दर्शन कराना, २. दिखलाया। उ० का देखाइ चह काह देखावा। (मा० २।४८।१) देखावौं–दिखाऊँ। उ० जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ। (मा० २।१२७) देखैहै–दिखलावेगा। उ० बहुरो सदल सनाथ, सलछिमन, कुसल-कुसल बिधि अवध देखैहै। (गी० ५।२०)

देखा-देखी–दूसरों को देखकर या दिखाने के लिए। उ० देखा-देखी दंभ तें, कि संगतें भई भलाई। (वि०२६१)

देखुवार–वर देखनेवाले, नेगी, तिलकहरू, देखहरू। उ० ऐहैं सुत देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह की बात चलाई। (कृ० १३)

देखैया–देखनेवाले। उ० तब के देखैया तोषे, तब के लोगनि भले। (गी० १।६३।४)

देनी–१. देनेवाली, २. देनेवाला। उ० १. ग्यान बिराग भगति सुभ देनी। (मा० ७।१२१।५) २. बोअनहार लुनिहै सोई देनी लहइ निदान। (स० २००)

देबि–देवी, हे देवी। उ० तदपि देवि मैं देवि असीसा। (मा० २।१०३।४)

देय–देने योग्य, दातव्य।

देव (२)–(सं०)–१. स्वर्ग में रहनेवाले अमर प्राणी, देवता, सुर, २. स्वामी, ३. नाटकोक्ति या बातचीत में राजा या स्वामी या बड़े के लिए प्रयुक्त एक संबोधन, ४. मेघ। उ० १. दानव देव ऊँच अरु नीचू। (मा० १।६।३) २. जयति मुनि देव नर देव दशरत्थ के। (वि० ४४) देवक–

देत का, देवता का। उ० सपनेहुँ आन भरोस न देवक। (मा० ३।१०।१) देवदेव–देवताओं के देवता, १. परमेश्वर, भगवान, २. इंद्र, देवपति। देवन–देवताओं, देव का बहुवचन। देवनि–देवाताओं ने। उ० देवनि हूँ देव परिहर्यो। (वि० २७२) देवन्ह–दे० 'देवन'। उ० देवन्ह समाचार सब पाए। (मा० १।८८।२) देव-मुनि–(सं०)–नारद, मुनियों में देवता स्वरूप। उ० देव-मुनि-बंद्य किए अवधबासी। (वि० ४४)

देव (३)–(फ़ा०)–राक्षस, दैत्य।

देवऋषि–देवताओं के लोक में रहनेवाले ऋषि। इनमें नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु आदि प्रसिद्ध हैं। उ०राम जनम सुभकाज सब कहत देव-ऋषि। (प्रा० ४।४।१)

देवतरु–(सं०)–कल्पवृक्ष। पुराणों के अनुसार देवतरु समुद्र से निकले १४ रत्नों में से एक है। यह इंद्र को मिला था। कहा जाता है कि यह माँगने पर सभी वस्तुएँ देता है। उ० अभिमत दानि देवतरु बर से। (मा० १।३२।६)

देवतन्ह–देवताओं को। उ० देइ देवतन्ह गारि पचारी। (मा० १।१८२।४) देवता–(सं०)–१. कश्यप और अदिति से उत्पन्न संतान, देव, सुर, २. शरीर की इंद्रियों के स्वामी देवगण। ऋग्वेद में मुख्य देवता ३३ माने गए हैं। बाद में इसी आधार पर ३३ कोटि देवताओं की कल्पना की गई। उ० १. देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे। (क० ७।१७५)

देवधुनि–(सं०)–गंगा नदी। उ० जुग बिच भगति देवधुनि धारा। (मा० १।४०।२)

देवधुनी–दे० 'देवधुनि'। उ० देवधुनी पास मुनिवास श्री निवास जहाँ, प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं। (क० ७।१४०)

देवनदी–गंगा, सुरनदी। उ० देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा कुल कोटि उधारे। (क० ७।१४५)

देवबधू–(सं०)–१. अप्सरा, २. देवताओं की स्त्रियाँ। उ० १. देवबधू नाचहिं करि गाना। (मा० १।२६२।२)

देवमनि–(सं० देवमणि)–१. सूर्य, २. कौस्तुभ मणि, ३. घोड़े की भँवरी, ४. देवों में शिरोमणि। उ० ४. जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि रुद्र-अवतार संसार पाता। (वि० २५)

देवमाया–(सं०)–देवताओं या परमेश्वर की माया जो अविद्यारूप होकर देवों को बंधन में डालती है।

देवरिषि–नारद मुनि। दे० 'देवऋषि'। उ० देखि देवरिषि मन अति भावा। (मा० १।१२५।१)

देवल–(सं०)–१. पुजारी, पूजा करनेवाला, २. पंडा ब्राह्मण, ३. नारद मुनि, ४. धर्म शास्त्र-वक्ता, ५. धार्मिक पुरुष, ६. एक प्रकार का चावल, ७. मंदिर, देवालय। उ० ७. तुलसी देवल देव को लागे लाख करोरि। (दो० ३८४)

देवलोक–(सं०)–देवताओं का लोक, स्वर्ग। उ० देवलोक सब देखहिं आनँद अति हिय हो। (रा० १)

देवसर–मानसरोवर आदि। उ० तिन्हहि देवसर सरित सराहहिं। (मा० २।११३।३)

देवसरि–(सं०)–गंगा, देवनदी। उ० देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही। (क० ७।१६५)

देवसरित–दे० 'देवसरि'।

देवहूति–(सं०)–स्वायंभुव मनु की पुत्री और कर्दम ऋषि की कन्या। सांख्य शास्त्र के प्रणेता कपिल इनके ही पुत्र थे। उ० देवहूति पुनि तासु कुमारी। (मा० १।१४२।३)

देवा (२)–दे० 'देव'। उ० १. बिबिध बेष देखे सब देवा। (मा० १।५४।४)

देवाइ–दे० 'देवाई'। उ० १. भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ। (मा० १।२९४) देवाई–(सं० दान, हिं० देना)–१. दिलाकर, २. दिलाया। उ० १. सकुचि राम निज सपथ देवाई। (मा० २।६६।३)

देवान–(फ़ा० दीवान)–१. दरबार, कचहरी, राजसभा, २. मंत्री, वज़ीर, ३. प्रबंधकर्त्ता। उ० १. मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे। (क० ५।३१)

देवापगा–(सं० देव + आपगा)–गंगा, देव नदी। उ० यस्यांके च विभाति भूधर सुता देवापगा मस्तके। (मा० २।१। श्लो० १)

देवि–दे० 'देवी (२)'। उ० २. दुसह-दोष-दुख दलनि करु देवि दाया। (वि० १५)

देवी (२)–(सं०)–१. देवता की स्त्री, २. चंडिका, भगवती, ३. पार्वती, ४. अच्छे गुणोंवाली स्त्री, ५. पटरानी, पट्टमहिषी, ६. श्रेष्ठ स्त्री के लिए प्रयुक्त एक संबोधन।

देवे (२)–(सं० देव)–हे देव! उ० ताको जोर, देवे दीन द्वारे गुदरत हौं। (क० ७।१६५)

देवैया–देनेवाला। उ० तुलसी जहँ मातु पिता न सखा, नहिं कोउ कहूँ अवलंब देवैया। (क० ७।५२)

देश–(सं०)–१. प्रदेश, वह भू भाग जिसका एक नाम हो, तथा जिसमें के निवासियों में भाषा, धर्म, संस्कृति आदि की एकता हो। राज्य, २. स्थान, जगह, ३. अंग, शरीर का कोई भाग।

देस–दे० 'देश'। उ० १. जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। (मा० १।१५८।१) देस-देस–प्रत्येक देश, सभी देश। उ० पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं। (जा० ६)

देसा–दे० 'देश'। उ० १. सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। (मा० १।२।६)

देसु–दे० 'देश'। उ० १. धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ। (मा० २।१२२।३)

देसू–दे० 'देश'। उ० १. बिपिन सुहावन पावन देसू। (मा० २।२३५।३)

देह–(सं०)–१. शरीर, तन, २. जीवन, जिंदगी। उ० १. मुक्ति की दूतिका, देह-दुति दामिनी। (वि० ५८) २. सेइय सहित सनेह देह भरि काम धेनु कलि कासी। (वि० २२)

देहनि–शरीरों से। उ० मालनि मानो है देहनि तें दुति पाई। (गी० १।२७)

देहरी–(सं० देहली)–द्वार की नीचे की लकड़ी, निचला चौखट, दहलीज। उ० राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार। (मा० १।२१)

देहवंत–शरीरधारी, देही। उ० संतोष सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिए। (वि० ३६)
देहा–दे० 'देह'। उ० १. हठ न छूट छूटै बरु देहा। (मा० १।८०।३)
देही (२)–(सं० देहिन्)–१. देह को धारण करनेवाला, जीवात्मा, २. देहवाला। उ० १. मर्कट बदन भयंकर देही। (मा० १।१३४।४)
दैअँ–देव ने, भगवान ने। उ० केहिं अघ एकहिं बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह। (मा० २।२०)
दैअहिं (२)–(सं० देव)–१.देव की, भगवान की, २. देव को, ३. भाग्य को। उ० १. दैअहि लागि कहौ तुलसी-प्रभु अजहुँ न तजत पयोधर पीबो। (कृ० ६)
दैउ–(सं० देव)–देव, भगवान। उ० देउ दैउ फिरि सो फलु ओही। (मा० २।१८४)
दैत्य–(सं०)–१. असुर, दिति और कश्यप की संतान, २. दुष्ट, दुराचारी। उ० १. भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य-वंश-निकंदनं। (वि० ४५)
दैव–(सं०)–१. भाग्य, प्रारब्ध, २. ईश्वर, भगवान, ३. विधाता, ४. ईश्वर का। उ० २. करिअ दैव जौं होइ सहाई। (मा० ५।५१।१) दैवहिं–दैव को, भगवान को, ईश्वर को। उ० अति बरषे अनबरषे हूँ देहिं दैवहिं गारी। (वि० ३४)
दैविक–(सं०)–देवता या भाग्य से होनेवाले दुःख, जिसे तीन दुःखों या तापों में स्थान दिया गया है। उ० दैहिक दैविक भौतिक तापा। (मा० ७।२१।१)
दैहिक–(सं०)–देह संबंधी, शारीरिक, तीन तापों या दुःखों में से एक। सारी शारीरिक बीमारियाँ इसी के अंतर्गत आती हैं। उ० दैहिक दैविक भौतिक तापा। (मा० ७।२१।१)
दो (२)–(सं० द्वि)–एक और एक, तीन से एक कम, २। दोइ–दोनों, युगल। दोउ–दे० 'दोइ'। उ० दोउ तन तकि मयन सुधारत सायक। (जा० ६४) दोऊ–दे० 'दोइ'। उ० आखर मधुर मनोहर दोऊ। (मा० १।२०।१)
दोख–दे० 'दोष'।
दोखिबे–दे० 'दोषिबे'।
दोना–(सं० द्रोण)–पत्ते का बना हुआ पात्र-विशेष। उ० फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये। (गी० ३।१७) दोनी–छोटा दोना। दे० 'दोना'। उ० सोभा-सुधा पिए करि अँखिया दोनी। (गी० २।२२) दोने–दोना का बहुवचन। दे० 'दोना'। उ० सोभा-सुधा, आलि! अँचवहु करि नयन मंजु मृदु दोने। (गी० २।२३)
दोष (१)–(सं०)–१. दूषण, खराबी, बुराई, ऐब, २. अपराध, लांछन, कलंक, ३. पाप, ४. वैद्यक के अनुसार बात, पित्त और कफ, ५. हिचक। उ० २. बिनु कारन हठि दोष लगावति तात गए गृह तामहिं। (कृ० ५) दोषउ–दोष को भी। उ० दोषउ गुन सम कह सबु कोई। (मा० १।६९।२)
दोष (२)–(सं० द्वेष)–विरोध, शत्रुता।
दोषा–दे० 'दोष (१)'। उ० १. समन दुरित दुख दारिद दोषा। (मा० १।४३।२)
दोषिबे–दुखित कराने, दुखाने। उ० खल दुख दोषिबे को' जन परितोषिबे को। (ह० ११)
दोषु–दे० 'दोष (१)'। उ० ५. सत्य कहें नहिं दोषु हमारें। (मा० २।११६।२)
दोस–दे० 'दोष' (१)। उ० ३. मोसे दोस-कोस पोसे, तोसे माय जायो को। (वि० १७६)
दोसा–दे० 'दोष (१)'। उ० १. गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। (मा० २।१३१।२)
दोसु–दे० 'दोष(१)'। उ० २. बेषु बिलोकें कहेसि कछु बाल कहू नहिं दोसु। (मा० १।२८१)
दोसू–दे० 'दोष(१)'। उ० २. छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। (मा० १।२७२।२)
दोहरा–दे० 'दोहा'। उ० साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान। (दो० ५५४)
दोहा–(सं० द्विपथक)–हिंदी का एक प्रसिद्ध छंद जिसे, उलट देने से सोरठा हो जाता है। इसके पहले और तीसरे चरण में १३-१३ तथा दूसरे और चौथे में ११-११ मात्राएँ होती हैं। उ० छंद सोरठा सुंदर दोहा। (मा० १।३७।३)
दोहाई–दे० 'दुहाई'। उ० ३. सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई। (मा० २।१०४।३) मु० फिरी दोहाई–राजा के सिंहासन पर बैठने पर उसके नाम की घोषणा हुई। उ० जब प्रताप रबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस। (मा० १।१५३)
दौन (१)–(सं० दमन)–दमन करनेवाला, नष्ट करनेवाला, समाप्त करनेवाला। उ० दीजै दरस दूरि कीजै दुख हौ तुम्ह आरत-आरति-दौन। (गी० ५।२०)
दौन (२)–(सं० दावाग्नि)–दावाग्नि, बहुत बड़ी आग। उ० कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन-तन दौन। (गी० २।८३)
दौर–(अर०)–चक्कर, भ्रमण, आना-जाना। उ० स्वामी सीतानाथ जी तुम लगि मेरी दौर। (स० ६६)
दौरि–(सं० धोरण)–दौड़कर। उ० खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है। (क० ५।१४) दौरे–दौड़े, भगे। उ० बालि बली खर दूषन और अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे। (क० ६।१२)
द्याइबी–दिला देना, दिलाइयेगा। द्यायबी–दे० 'द्याइबी'। द्यावबी–दे० 'द्याइबी'। उ० मेरिऔ सुधि द्यावबी कछु करुन-कथा चलाइ। (वि० ४१)
द्यु–(सं०)–१. स्वर्ग, २. आकाश, ३. अग्नि, ४. दिन, ५. सूर्य-लोक। (वि० ४१)
द्युति–(सं०)–१. चमक, २. छबि, सुंदरता। उ० १. श्याम-नव-तामरस-दाम-द्युति वपुष-छबि, कोटि-मदनार्क अगणित प्रकाशम्। (वि० ६०)
द्युलोक–(सं०)–स्वर्गलोक।
द्यूत–(सं०)–जुआ, एक खेल जिसे बुरा समझा जाता है। पासा।
द्योत–(सं०)–१. प्रकाश, उजेला, २. धूप।
द्रव्य–दे० 'द्रव्य'। उ० मंगल द्रव्य लिएँ सब ठाढ़ीं। (मा० १।२८८।३)

द्रव-(सं०)-१. तरल पदार्थ, पानी आदि बहनेवाली चीजें, २. पिघला हुआ, ३. बहाव, दौड़, ४. विनोद, हँसी, ५. वेग, गति, ६. गीला, ओद, ७. बह जाती है। उ० ७. जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी। (मा० ३।१७।३) द्रवइ-१. पिघलता है, दयालु होता है, २. दया करे, पिघले। उ० १. निज परिताप द्रवइ नवनीता। (मा० ७।१२५।४) द्रवउँ-द्रवित होता हूँ, दयालु होता हूँ, प्रसन्न होता हूँ। उ० १.जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। (मा० ३।१६।१) द्रवउ-दे० 'द्रवौ'। उ० जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना। (मा० १।१८६। छं० ४) द्रवत-द्रवित होता है, पिघलता है, दया करता है, प्रसन्न होता है। उ० औढर-दानि द्रवत पुनि थोरे। (वि० ६) द्रवति-टपकती है, पिघलती है। उ० बिन ही ऋतु तरुवर फरत, सिला द्रवति जल जोर। (दो० १७३) द्रवहिं-पिघलते हैं, द्रवित होते हैं, विचलित होते हैं। उ० पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता। (मा० ७।१२५।४) द्रवहि-१. दया करे, पिघले, २. पिघलता है, पसीजता है। उ० १. तुलसिदास इन्ह पर जो द्रवहि हरि तौ पुनि मिलौं बैरु बिसराई। (कृ० ५६) द्रवहु-१. द्रवित हो, पिघलो, २. पिघलते हो। उ० २. कस न दीन पर द्रवहु उमावर। (वि० ७) द्रवै-दे० 'द्रवइ'। उ० २. जौ लौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना। (क० ७।१४८)

द्रवित-१. बहता हुआ, पिघला हुआ, २. कृपायुक्त।

द्रव्य-(सं०)-१. वस्तु, पदार्थ, चीज़, २. सामग्री, सामान, ३. धन, दौलत, ४. औषधि, दवा।

द्रष्टा-(सं०)-१. देखनेवाला, साक्षात करनेवाला, २. प्रकाशक, ३. सांख्य के अनुसार पुरुष, ४. योग के अनुसार आत्मा। उ० १. परम कारन, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुन निर्गुन, सकल-दृश्य द्रष्टा। (वि० ५३)

द्रुत-(सं०)-१. शीघ्र, तुरत, २. द्रवीभूत, गला या पिघला हुआ, ३. तेज़ जानेवाला, ४. विन्दु, शून्य, ५. आकाश, गगन, ६. कूआँ, ७. पेड़, ८. बिल्ली, ९. बिच्छू।

द्रुपद-(सं०)-उत्तर पांचाल का महाभारतकालीन एक राजा। यह चंद्रवंशी पृषत का पुत्र था। द्रुपद और द्रोण मित्र थे पर राजा होने पर द्रुपद ने मित्रता नहीं निभाई। इससे द्रोण रुष्ट हुए और कौरवों-पांडवों से विद्या देने के बाद दक्षिणा रूप में द्रुपद को बाँधकर सामने लाने को कहा। कौरव तो यह नहीं कर सके पर पांडव उन्हें ले आए। द्रुपद का आधा राज्य द्रोण ने ले लिया। इससे द्रुपद रुष्ट हुए और यज्ञ करके द्रोण से बदला लेने के लिए धृष्टद्युम्न नामक पुत्र और कृष्णा या द्रौपदी नामक पुत्री पैदा की। द्रौपदी का विवाह पांडवों से हुआ। महाभारत की लड़ाई में द्रुपद मारे गए। उ० प्रीति प्रतीति द्रुपद तन या की भली भूरि भय भभरि न भाजी। (कृ० ६१) द्रुपदसुता-द्रौपदी। उ० साखि पुरान निगम आगम सब, जानत द्रुपदसुता अरु बारन। (वि० २०६)

द्रुम-(सं०)-वृक्ष, पेड़। उ० ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे, धनु काँधे धरे, कर सायक लै। (क० २।१३)

द्रोण-(सं०)-१. भारद्वाज के पुत्र एक प्रसिद्ध ऋषि। इन्होंने परशुराम से शास्त्र की शिक्षा पाई थी। शरद्वान की कन्या कृपी से इन्होंने विवाह किया था जिससे अश्वत्थामा पुत्र पैदा हुआ। द्रुपद से इनसे बैर था। (दे० 'द्रुपद') कौरवों पांडवों ने इनसे शिक्षा पाई थी। ये महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर थे। युधिष्ठिर के मुख से, 'अश्वत्थामा मारा गया' सुनकर ये बेहोश हो गए और इतने में द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने इनका सिर काट लिया। २. कठौता, काठ का बर्तन, ३. नाव, डोंगी, ४. पेड़, ५. घड़ा, ६. द्रोणाचल नामक पर्वत जो रामायण के अनुसार क्षीरोद समुद्र के किनारे है और जिस पर संजीवनी नाम की जड़ी होती है। ७. एक प्राचीन माप जो १३६५ तोले ४ माशे अर्थात् २१ सेर के लगभग होता है। ८. बिच्छू। उ० १. कह्यो द्रोण भीषम समीर सुत महावीर। (ह० ५)

द्रोणि-(सं०)-१. द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा, २. द्रोण की स्त्री कृपी, ३. नौका, डोंगी, ४. एक प्राचीन तौल, ५. दोनियाँ, छोटा दोना, ६. काठ का पात्र, ७. केला, ८. नील का पौधा, ९. दो पर्वतों के बीच की भूमि, दर्रा, १०. गुफा, कंदरा।

द्रोन-दे० 'द्रोण'। उ० ६. द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर। (ह० ६)

द्रोनाचल-(सं० द्रोणाचल)-दे० द्रोण का छठा अर्थ। उ० काल नेमि दलि बेगि बिलोक्यों, द्रोनाचल जिय जानि। (गी० ६।६)

द्रोनि-दे० 'द्रोणि'। उ० ९. जह्नु-कन्या धन्य, पुन्य कृत सगर सुत, भूधर-द्रोनि विद्दरनि बहु नामिनी। (वि० १८)

द्रोह-(सं०)-बैर, द्वेष, दूसरे का अहित-चिंतन। उ० कबहुँ मोह बस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई। (वि० ८१)

द्रोहा-दे० 'द्रोह'। उ० लोभ न छोभ न राग न द्रोहा। (मा० २।१३०।१)

द्रोहाई-द्रोह करने का भाव, द्रोहपना। उ० स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ-द्रोहाई। (वि० १७१)

द्रोहि-दे० 'द्रोही'। उ० हौं समुझत साँई-द्रोहि की गति छार-छिया रे। (वि० ३३)

द्रोहिहि-द्रोही को, द्वेषी को। उ० द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। (मा० ७।१२८।३) द्रोही-द्रोह करनेवाला, द्वेषी, विरोधी। उ० बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही। (मा० १।२७२।३)

द्रोहै-द्रोह करता है, बैर करता है। उ० को तुलसी से कुसेवक संग्रह्यो, सठ सब दिन साईं द्रोहै। (वि० २३०)

द्रौपदी-(सं०)-राजा द्रुपद की कन्या जिसे अर्जुन ने जीता था पर माता कुंती की आज्ञा से जिसका विवाह पाँचों पांडवों से हुआ था। द्रौपदी अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ यज्ञकुंड से उत्पन्न हुई थी। जुआ में युधिष्ठिर ने सब कुछ हार जाने के बाद द्रौपदी को दाव पर रक्खा और इसे भी हार गए। दुर्योधन ने द्रौपदी को जीत लेने के बाद दासी के रूप में बुलाया। रजस्वला होने के कारण द्रौपदी नहीं गई, इस पर दुःशासन उसे बलात् बाल पकड़कर घसीट ले गया और सबके सामने नंगा करने लगा। कृष्ण ने उस समय द्रौपदी की रक्षा की। द्रोपदी को पाँचों पांडवों से पाँच पुत्र थे जो अश्वत्थामा द्वारा मारे गए।

द्वंद-(सं०)-१. जोड़ा, मिथुन, दो, २. कलह, झगड़ा, बखेड़ा, ३. राग-द्वेष, ४. दुःख, ५. माया-मोह, ६. रहस्य, गुप्त बात, ७. द्वंद युद्ध, दो आदमियों की परस्पर लड़ाई, ८. किला, ९. नर और मादे का जोड़ा, १०. दुबिधा, संशय। उ० १. पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे। (मा० ७।१३। छं० ४) २. रुचिर हरिसंकरी-नाम मंत्रावली द्वंद दुख-हरनि आनंद खानी। (वि० ४९)

द्वंद्व-(सं०)-१. दो वस्तुएँ जो एक साथ हों, जोड़ा, २. नर और मादे का जोड़ा, ३. रहस्य, भेद की बात, ४. दो आदमियों की लड़ाई, ५. झगड़ा, बखेड़ा, कलह, ६. एक प्रकार का समास, ७. जन्म-मरण, हर्ष-शोक, दुःख-सुख आदि युग्म। उ० ७.गोबिंद गो पर द्वंद्व हर बिग्यान घन धरनीधरं। (मा० ३।३२। छं० २)

द्वादश-(सं०)-बारह, दो और दस।

द्वादशि-दे० 'द्वादशी'।

द्वादशी-(सं०)-किसी पक्ष की बारहवीं तिथि।

द्वादस-दे० 'द्वादश'। उ० द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग। (मा० १।१४३)

द्वादसि-दे० 'द्वादशी'। उ० द्वादसि दान देहु अस अभय होइ त्रैलोक। (वि० २०३)

द्वापर-(सं०)-चार युगों में तीसरा युग। पुराणों के अनुसार यह युग ८६४००० वर्षों का माना गया है। उ० द्वापर परितोषत प्रभु पूजें। (मा० १।२७।२)

द्वार-(सं०)-१. दरवाजा, दुआर, दीवार में भीतर जाने या बाहर निकलने के लिए खुला हुआ स्थान, २. मुख, मुहाना, ३. सांख्य कारिका में अंतःकरण ज्ञान का प्रधान स्थान कहा गया है और ज्ञानेंद्रियाँ उसके द्वार बतलाई गई हैं। उ० १. का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को। (क० ७।१०७) ३. इंद्री द्वार झरोखा नाना। (मा० ७।११८।६) द्वार-द्वार-दरवाज़े-दरवाज़े, दर-दर। उ० चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार-द्वार जग लागे। (वि० १७०) द्वारे-दरवाज़े पर। उ० सूत मागध प्रबीन, बेनु बीना धुनि द्वारे, गायक सरस राग रागे। (गी० ७।२) द्वारेहिं-द्वार पर, दरवाज़े पर। उ० द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई। (मा० २।१५९।२)

द्वारपाल-(सं०)-दरबान, ड्योढ़ीदार। उ० द्वारपाल हरि के प्रिय होऊ। (मा० १।१२२।२)

द्वारा (१)-(सं० द्वार)-१. द्वार, दरवाज़ा, २. द्वार पर। उ० २. बीना बेनु संख धुनि द्वारा। (मा० २।३७।३)

द्वारा (२)-(सं० द्वारात्)-ज़रीये, साधन से, कारण से।

द्विज-(सं०)-जिसका जन्म दो बार हो, १. ब्राह्मण, २. पक्षी, चिड़िया, ३. चंद्रमा, ४. ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य, ५. दाँत। उ० १. सब द्विज उठे मान बिस्वासू। (मा० १।१७३।४) ५. नासिका चारु, सुकपोल, द्विज वज्रद्युति। (वि० ५१)

द्विजबंधु-(सं०)-१. संस्कार हीन द्विज या ब्राह्मण, नाम मात्र का ब्राह्मण, २. अजामिल। उ० २. वृत्र बलि बाण प्रह्लाद मय व्याध गज गृद्ध द्विजबंधु निज धर्म-त्यागी। (वि० ५७)

द्विजराज-(सं०)-१. ब्राह्मण, २. चंद्रमा, ३. शिव, ४. गरुड़, ५. ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, ६. कपूर।

द्विजराजू-दे० 'द्विजराज'। उ० गे जहँ बिबुध कुमुद द्विज-राजू। (मा० २।२९४।२)

द्वितिय-दे० 'द्वितीय'।

द्वितीय-(सं०)-दूसरा।

द्विधा-(सं०)-१. दो प्रकार से, दो तरह से, २. दो प्रकार का, भला-बुरा या ऊँच-नीच इत्यादि।

द्विबिद-(सं० द्विविद)-राम की सेना का एक बंदर सेनापति। उ० द्विबिद मयंद नील-नल अंगद गद बिकटासि। (मा० ५।५४)

द्वेष-(सं०)-शत्रुता, बैर, रंज, चिढ़। उ० द्वेष दुर्मुख, दंभ-खर, अकंपन-कपट, दर्प मनुजाद-मद-सूलपानी। (वि० ५८)

द्वेषु-दे० 'द्वेष'। उ० मनहुँ उडुगन-निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु। (गी० ७।९)

द्वै-(सं० द्वय)-दो, दोनों। उ० गुन गेह, सनेह को भाजन सो, सबही सों उठाइ कहौं भुज द्वै। (क० ७।३४)

द्वैत-(सं०)-१. युग्म, युगल, दो का भाव, २. अंतर, भेद, ३. भ्रांति, भ्रम, द्विविधा, ४. अज्ञान, मोह, अविवेक, ५. भेद-भाव, अपने को ऊँचा और दूसरों को लघु समझने का भाव, ६. द्वैतवाद। वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा को दो भिन्न पदार्थ मानकर विचार किया जाता है। उ० ४. द्वैत रूप तमकूप परौं नहिं अस कछु जतन बिचारी। (वि० ११३)

ध

धंध-(?)-गड़बड़ी, गड़बड़। उ० धंध देखियत जग सोच परिनाम को। (क० ७।८३)

धंधक-(?)-धंधे का आडंबर, जंजाल। उ० धींग धरम ध्वज धंधक धोरी। (मा० १।१२।१)

धंधा-(?)-काम, काज, पेशा।

धँसि-(सं० दंशन, हिं० धँसना)-धँसकर, घुसकर, पैठकर। उ० सुन्दर-स्याम-सरीर-सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं। (गी० ७।१३)

धकधकी-(अनु० धक)-१. जी के धक-धक करने की क्रिया या भाव, जी की धड़कन, २. गले और छाती के बीच का गड्ढा, धुकधुकी, दुगदुगी, ३. घबराहट। उ० २. सुरगन समय धकधकी धरकी। (मा० २।२४१।४) ३. दसकंधर

उर धकधकी अब जनि धावै धनु धारि । (गी० १।१६)
धका-दे० 'धक्का' । धकानि-धक्कों, टक्करों । उ० तुलसी जिन्है धाय धुके धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं । (क० ६।३३)
धक्का-(अनु० धक)-१. टक्कर, आघात या प्रतिघात, २. ढकेलने की क्रिया, ३. आपदा, विपत्ति, ४. हानि, घाटा, टोटा, नुकसान ।
धज-(सं० ध्वज)-१. सजावट, बनाव, सुन्दर रचना, २. आकार, रूप, आकृति, ३. रंग, ४ शोभा, ५. व्यवहार ।
धड़-(सं० धर)-सर, हाथ तथा पैर को छोड़कर शेष शरीर, रुंड ।
धतूर (१)-(सं० धुस्तूर)-धतूरा, एक पेड़ जिसका फल विषैला होता है । इसके फल को भी धतूर या धतूरा ही कहते हैं । उ० माँग-धतूर अहार, छार लपटावहिं । (पा० ५७) धतूरै-धतूरा ही । उ० पात द्वै धतूरे के दै भोरे कै भवेस सो । (क० ७।१६२) धतूरोई-धतूरा ही, केवल धतूरा । उ० भौन में भाँग, धतूरोइ आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े । (क० ७।१५४)
धतूर (२)-(अनु० धू+सं० तूर)-तुरही, नरसिंहा नाम का बाजा ।
धतूरो-दे० 'धतूर' । उ० धाम धतूरो बिभूति को कूरो, निवास तहाँ सब लै मरे दाहै । (क० ७।१५५)
धनंजय-(सं०)-१. आग, अग्नि, २. पार्थ, अर्जुन, ३. अर्जुन वृक्ष, ४. चीता वृक्ष, ५. विष्णु, नारायण । उ० २. जयति भीमार्जुन-व्याल सूदन-गर्वहर धनंजय-रथत्रान केतू । (वि० २८)
धन (१)-(सं०)-१. संपत्ति, पूँजी, २. द्रव्य, वित्त, रुपया, ३. जमीन, जायदाद, ४. स्नेह पात्र, अत्यंत-प्रिय व्यक्ति, ५. बारह राशियों में से एक । उ० १. दानि सुकुति धन-धरम धाम के । (मा० १।३२।१)
धन (२)-(सं० धनी)-स्त्री, युवती ।
धन (३)-(सं० धन्य)-प्रशंसा के योग्य, धन्य ।
धनद-(सं०)-१. धन देनेवाला, दाता, २. कुबेर, ३. अग्नि । उ० २. पवन, परंदर, कृसानु, भानु, धनद से । (क० १।६) धनद-मित्रं-(सं०)-कुबेर के सखा शंकर को, शिव को । उ० ललित लल्लाट पर राज रजनी शकल, कलाधर, नौमि हर धनद-मित्रं । (वि० ११)
धनधारी-कुबेर । उ० रबि ससि पवन बरुन धनधारी । (मा० १।१८२।५)
धनपति-(सं०)-धन के देवता, कुबेर ।
धनवंत-धनी, धनवान, धनिक । उ० धनवंत कुलीन मलीन अपी । (मा० ७।१०१।४)
धनवाना-दे० 'धनवान्' । उ० धनद कोटि सत सम धन-वाना । (मा० ७।६२।४)
धनवान्-दे० 'धनवान्' । उ० सोचिअ बयसु कृपन धन-वान् । (मा० २।१७२।३)
धनवान्-(सं०)-धनवाला, दौलतमंद, जिसके पास धन हो ।
धनहीन-(सं०)-निर्धन, कंगाल । उ० धनहीन दुखी ममता बहुधा । (मा० ७।१०२।१)
धनाधिप-कुबेर, धन के स्वामी । उ० सुरराज सो राज-समाज, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप सो धन भो । (क० ७।४२)
धनिक-(सं०)-१. धनी, अमीर, मालदार, २. महाजन, जो रुपया दे, ३. स्वामी, पति । उ० २. देबे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ । (वि० १००)
धनि (१)-(सं० धन्य)-प्रशंसनीय, सराहने लायक, धन्य ।
धनि (२)-(सं० धनिन्)-धनी, अमीर, बड़ा आदमी । उ० मनहुँ सरद बिधु उभय, नखत धरनी धनि । (जा० ५५)
धनि (३)-(सं० धनी)-स्त्री, युवती स्त्री ।
धनी-(सं० धनिक या धनिन्)-१. धनवाला, धनिक, २. स्वामी, पति, ३. अधिकारी, महाजन । उ० १. बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेह बस, धनी धनु तुलसी से निरधन के । (वि० ३७)
धनु (१)-(सं०)-१. चाप, कमान, धनुष, २. चिरौंजी का पेड़, ३. एक राशि, ४. एक लग्न, ५. चार हाथ की माप ।
धनु (२)-दे० 'धन (१)' । उ० १. बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेहबस, धनी धनु तुलसी से निरधन के । (वि० ३७)
धनुधर-(सं० धनुर्द्धर)-तीरंदाज, धनुष धारण करनेवाला । उ० बीर बरियार धीर धनुधर राय हैं । (गी० २।२८)
धनुपानी-(सं० धनु+पाणि)-हाथ में धनुष लिए हुए, जिसके हाथ में धनुष हो । उ०सुमिरि गिरापति प्रभु धनु-पानी । (मा० १।१०५।२)
धनुमख-धनुषयज्ञ । उ० धनुमख कौतुक जनकपुर, चले गाधिसुत साथ । (प्र० ४।६।४)
धनुर्धर-(सं० धनुर्द्धर)-१. धनुष धारण करनेवाला, तीरं-दाज, २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
धनुष-(सं० धनुस्)-धन्वा, कोदंड, चाप, कमान, तीर फेंकने का अस्त्र । उ० सुमन धनुष कर सहित सहाई । (मा० १।८४।२)
धनुषु-दे० 'धनुष' । उ० भंजब धनुषु राम सुनु रानी । (मा० १।२५७।१)
धनुहियाँ-(सं० धनुस्)-बालकों के खेलने का धनुष, छोटा धनुष ।
धनुहीं-छोटे धनुषों के समूह । उ० बहु धनुहीं तोरीं लरि-काईं । (मा० १।२७१।४) धनुही-छोटा धनुष । उ० धनुही सम त्रिपुरारि धनु बिदित सकल संसार । (मा० १।२७१)
धनेश-(सं०)-१. धनी, धन का स्वामी, २. कुबेर, ३. धन राशि के स्वामी गुरु ।
धनेसा-दे० 'धनेश' । उ० २. अघ अवगुन धन धनी धनेसा । (मा० १।४।३)
धन्य-(सं०)-१. प्रशंसा के योग्य, श्लाघ्य, वाह, २. पुण्य-वान, सुकृती । उ० १. धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्र बर सोइ । (वै० ३६)
धन्या-(सं०)-१. प्रशंसा के योग्य, पुण्यशीला, २. भाग्य-वती स्त्री, ३. एक नदी का नाम, ४. वनदेवी, ५. उप-माता, ६. ध्रुव की स्त्री, ७. धनिया । उ० १. बसत

बिबुधापगा निकट तट सदनबर, नयन निरखंति नर तेऽति धन्या। (वि० ६१)

धन्विनौ–दोनो धनुर्धर, दोनों धनुषधारी। उ० शोभाढ्यौ वर धन्विनौ श्रुतिनुतौ गो विप्रवृंद प्रियौ। (मा० ४।१। श्लो० १) धन्वी–(सं० धन्विन्)–धनुर्धर, धनुषधारी। उ० धन्वी कामु नदी पुनि गंगा। (मा० ६।२६।३)

धमधूसर–(अनु० धम+सं० धूसर)–स्थूल और बेडौल मनुष्य, भद्दा मोटा और सुस्त आदमी। उ० कलिकाल बिचार अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को। (क० ७।१०३)

धरं–धारण करनेवाले। उ० धरं त्रिलोक नायकं। (मा० ३।४। छं० ३) धर (१)–(सं०)–१. धारण करनेवाला, ग्रहण करनेवाला, पकड़नेवाला, २. पकड़ा, ३. धारण किए हुए, पकड़कर, ४. पर्वत, ५. अमृत, ७. कूर्मराज, कच्छप जो पृथ्वी को शिर पर लिए हैं। ८. धरती, पृथ्वी। उ० १. बसन-किंजल्क-धर चक्र-सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति बिसाला। (वि०४१) ८. मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान। (मा० ३।२६)

धर (२)–दे० 'धड़'। उ० धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। (मा० ६।७१।३)

धरइँ–(सं० धरण, हिं० धरना)–पकड़ती हैं, धरती हैं। उ० ललना-गन जब जेहि धरइँ धाइ। (गी० ७।२२) धरइ–धारण करता है, धरते हैं। उ० तपबल सेषु धरइ महिभारा। (मा०१।७३।४) धरउँ–१. धारण करता, २. धारण करूँ। उ० १. जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरि जान। (मा०७।१०९ ग) धरऊँ–धारण करता। उ० त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊँ। (मा० ७।११०।१) धरत–१. धरते हैं, रखते हैं, २.पकड़ते हैं,३. धारण करने के समय। उ० १. सुनि अनुकूल मुदित मन मानहुँ धरत धीर जहि धाइ कै। (गी० १।६८) ३. का. सुनि सकुचे कृपालु नर सरीर धरत। (वि०१३४) धरनि (१)–१. धारणा, २. धरना, रखने का भाव। उ० २. ठुमुक ठुमुक पग धरनि नटनि, लरखरनि सुहाई। गी०१।२७) धरहिं–(सं०धरण, हिं० धरना)–धरते हैं, पकड़ते हैं। उ० एक धरहिं धनु धाय नाइ सिर बैठहिं। (जा०१२) धरहि–धारण करो, रक्खो। उ० धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु। (मा० १।१८४) धरहीं–१. रखते हैं, २. धारण करते हैं, ३. पकड़ते हैं, ४. आरोपित करते हैं। उ० २. कृपा सिंधु जन हित तनु धरहीं। (मा० १।१२२।१) ३. तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। (मा० १।२५०।४) ४. निज अयान राम पर धरहीं। (मा० ७।७३।५) धरहु–धरो, पकड़ो, पकड़ लो। उ० कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। (मा० ३।१८।५) धरहू–१. पकड़ो, पकड़ लो, २. पकड़े रहिए। उ० २. जानि मनुज जनि हठ मन धरहू। (मा० ६।१४।४) धरा (१)–(सं०धरण) १.रक्खा, २. धारण किया, उठाया, ३. पकड़ लिया। उ० २. दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा। (मा० १।८४।छं०१) ३. धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा। (मा०६।२४।८) धरि–१. धारण कर, २. रखकर, ३. पकड़ कर। उ० १. सुनि धरि धरि नृप बेष चले प्रमुदित मन। (जा० ११) धरिअ–धरिए, धरिएगा, धरना चाहिए, रखना चाहिए। उ० संसय अस न धरिअ उर काऊ। (मा० १।५१।३) धरित (१)–(सं० धरण)–१. धारण कर, २. पकड़कर, थामकर, ३. थामती, पकड़ती, गहती। उ० १. अतुल मृगराज वपु धरित, विद्दरित अरि, भक्त-प्रहलाद-अहलादकर्त्ता। (वि० ५२) धरिबे–धारण करने, धरने। उ० धरिबे को धरनि, तरनि तम दलिबे को। (ह० ११) धरिहउँ–धारण करूँगा। उ० तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा। (मा० १।१८७।१) धरिहहिं–धारण करेंगे, ग्रहण करेंगे। उ०धरिहहिं विष्नु मनुज तनु तहिआ। (मा० १।१३९।३) धरिहौ–१. रक्खोगे, २. ध्यान दोगे, ख्याल करोगे। उ० २. जौ पै जिय धरिहौ अवगुन जन के। (वि०९६) धरी–१. रक्खा, धारण किया, २. धरकर, धारण कर, ३. उपस्थित की। उ० १. धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे। (मा० १।८५) ३. धर बात धरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी। (पा० ६२) धरु–धारण करो, पकड़ो, रक्खो। उ० सम, संतोष, बिचार बिमल अति, सतसंगति, ए चारि दृढ़ करि धरु। (वि० २०५) धरे–रक्खे हुए, धारण किए हुए, रक्खे। उ० सुख-मंदिर सुंदर रूप सदा उर आनि धरे धनु भाथहिं रे। (क० ७।२८) धरेउँ–धारण किए। उ० एहि बिधि धरेउँ बिबिध तनु ग्यान न गयउ खगेस। (मा० ७। १०९) धरेउ–धारण किया। उ० भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप। (मा०७।७२ क) धरेऊ–धरा, रक्खा। उ० कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। (मा० ७।८३।२) धरेन्हि–धरे, पकड़े, ग्रहण किए। उ० तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। (मा०६।७६।२) धरेसि–१. पकड़ लिया, २. पकड़ लेता है। उ० १. कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। (मा० ६।९८।५) धरेहु–रखना, रक्खे रहना, रक्खो। उ०संतत हृदयँ धरेहु मम काजू। (मा०४।१२।५) धरै–१. धारण करता है, धारण कर लेता है, २. धारण करे। धरो–१. रक्खा हुआ, २. पकड़ो, ३. रक्खो, ४. रक्खा है। उ० २. कह्यो 'धरो धरो' धाए बीर बलवान हैं। (क० ५।७) धरोइ–रख लिया, रख ही लिया। उ० दीपक काजर सिर धरयो, धरयो सु धरयो धरोइ। (दो० १०६) धरौं–१. धरूँ, धारण करूँ, २. धारण करता हूँ। उ० १.बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। (मा०१।२५८।३) धरयो–१. धरता है, धारण करता है, २. रक्खा, ३. धारण किया। उ० १. निज तालूगत रुधिर पान करि मन संतोष धरयो। (वि० ९२)

धरकत–१. धड़कते हैं, डरते हैं, २. डरते हुए। उ० २.दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत। (क०६।४६) धरकी–(अनु० धड़)–धड़कने लगी, धड़धड़ करने लगी। उ० सुरगन सभय धकधकी धरकी। (मा० २।२४१।४)

धरण–(सं०)–१. धारण करनेवाला, २. थामने या धरने की क्रिया, ३. सेतु, पुल, ४. संसार, जगत।

धरणि–(सं०)–दे० 'धरणी'।

धरणी–(सं०)–१. पृथ्वी, धरती, २. धारण करनेवाली, ३. शालमलि वृक्ष। उ० १. अतुल बल बिपुल विस्तार,

विग्रह गौर, अमल अति धवल धरणी धराभं। (वि० ११)
धरन–दे० 'धरण'। उ० १. तरल-तृष्णा-तमी-तरणि धरनी धरन सरन-भय-हरन करुना निधानं। (वि० ५४) २. तिन्हहि धरन कहुँ भुजा पसारी। (मा० ६।६८।४)
धरनहार–धरनेवाला, थामने या पकड़नेवाला। उ० धरनी-धरनहार भंजन भुवन भार। (वि० ३७)
धरनि–दे० 'धरणि'। उ० १. वारिचर-वपुषधर, भक्त-निस्तार-पर, धरनिकृत नाव महिमाति गुर्वी। (वि० ५२) २. वर्म चर्म्मकर कृपान, सूल सेल धनुषबानधरनि, दलनि दानव दल, रन करालिका। (वि० १६) धरनिहिं–पृथ्वी को। उ० तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। (मा० १।१८७।५)
धरनिधर–(सं० धरणि+धर)–१. भूधर, पर्वत, २. हिमाचल, पार्वती के पिता, ३. त्रिकूट पर्वत, ४. शेषनाग, ५. कच्छप भगवान्, ६. राजा, ७. विष्णु, राम, ८. शिव, ९. पृथ्वी को धारण करनेवाला। उ० १. गुन निधान हिमवान धरनिधर धुर धनि। (पा०६) २. कन्यादान संकलप कीन्ह धरनिधर। (पा० १४४) ३. तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत। (क० ६।१६)
धरनिसुताँ–जानकी ने, सीता ने। उ० धरनिसुताँ धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि। (मा० २।२८६) धरनि-सुता–(सं० धरणि+सुता)–जानकी, सीता।
धरनी (१)–दे० 'धरणी'। उ० १. तरल-तृष्णा-तमी-तरणि धरनी धरन सरन-भय-हरन करुना निधानं। (वि० ५४) धरनीधनि–(सं० धरणी+धनिन्)–राजा, नृप। उ०मनहुँ सरद बिधु उभय, नखत धरनीधनि। (जा० ५५)
धरनी (२)–(सं० धरण, हि० धरना)–१. टेक, प्रतिज्ञा, २. रहन। उ० १. तुलसी अब राम को दास कहाइ हिये धरु चातक की धरनी। (क० ७।३२)
धरनीधर–दे० 'धरनिधर'। उ० ४. तुलसी जिन्हैं धाये धुकै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं। (क० ६।३३) ७. जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की। (क०७।२७) ९. सकल धरम धरनीधर सेसू। (मा० २।३०६।१)
धरम–(सं० धर्म)–धर्म, अधर्म का उलटा, न्यायोचित शुभ और अच्छे कर्म। उ० सपनेहुँ जिन्हकें धरम न दाया। (मा०१।१८१।१) धरमादिक–अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष चार फल। उ० जनु धन धरमादिक तनुधारी। (मा० १।३०३।१)
धरमसील–दे० 'धर्मशील'। उ० धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ। (मा० १।२९४।२)
धरमी–(सं० धर्मिन्)–धर्मात्मा, पुण्यात्मा, धर्मी। उ० करमी, धरमी, साधु, सेवक, बिरत, रत। (वि० २५९)
धरमु–दे० 'धरम'। उ० धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू। (मा० २।५५।२)
धरमू–दे० 'धरम'। उ० मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। (मा० २।२०४।४)
धरषा–(सं० धर्षण)–धर्षित हुआ, मर्दित हुआ, दब गया। उ० डोले धराधर-धारि, धराधर धरषा। (क० ६।७)
धरषि–दबाकर, मर्दनकर, डराकर। उ० रिपुबल धरषि हरषि कपि बालितन बलपुंज। (मा० ७।३५ क)
धरहर–(सं० धरण, हि० धरना)–१. गिरफ़्तारी, धर-पकड़, २. सहाय, अवलंब, आश्रय, ३. लड़नेवालों या झगड़ा करनेवालों को धर-पकड़कर लड़ाई झगड़ा समाप्त करने का कार्य, बीच-बिचाव, ४. रक्षा, बाचाव, ५. धैर्य, धीरज।
धरहरि–दे० 'धरहर'। उ० ३. लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी। (गी० ७।५)
धरा (२)–(सं०)–पृथ्वी, ज़मीन। उ० परम सभीत धरा अकुलानी। (मा० १।१८४।२)
धराधर–(सं०)–१. वह जो पृथ्वी को धारण करे, २. कूर्म, कच्छप, ३. शेषनाग, ४. विष्णु, ५.पर्वत, पहाड़, ६.धरातल। उ० ३.तथा ५.डोले धराधर-धारि, धराधर धरषा। (क०६।७) धराधरन–(सं०धरा+धरण)–पृथ्वी को धारण करनेवाले। उ० मरन-बिपति-हर धुरधरम धराधरन बलधाम। (स०२२३) धराधरनि–१. पृथ्वी को धारण करनेवालों ने, २. पहाड़ों ने। उ० १. धरा धराधरनि सु सावधान करी है। (गी० १।९०)
धराइ–१. पकड़ाकर, थमाकर, धराकर, २. धारणकर। उ० २. जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइ कै जाय जियैं। (क०७।३८) धराई–धराया, रक्खा, निश्चय किया। उ० राम तिलक हित लगन धराई। (मा० २।१८।३)
धरासुर–(सं०)–१. पृथ्वी के देवता ब्राह्मण, २. भृगु ऋषि। उ० २. भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो। (मा० ६।८६। छं० १)
धरित (२)–(सं० धरित्री)–धरती, पृथ्वी।
धरोहर–(सं० धरण, हि० धरना)–वह वस्तु जो किसी के पास इस विश्वास पर रक्खी हो कि उसका स्वामी जब भी माँगेगा वह मिल जायेगी। थाती।
धर्त्ता–(सं० धर्तृ)–१. धारण करनेवाला, कोई काम अपने ऊपर लेनेवाला, २. ऋणी।
धर्म–(सं०)–१. प्रकृति, स्वभाव, किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति जो उसमें सर्वदा रहे, २. गुण, वृत्ति, ३. अलंकार शास्त्र के अनुसार उपमेय और उपमान की वह बात जिसके आधार पर तुलना की जाती है। ४. शुभ कर्म, पुण्य कर्म, धरम, सत्कर्म, ५. कर्त्तव्य, फर्ज, ६. संप्रदाय, मज़हब, पंथ, ७. न्याय, नीति, कानून, ८. उचित अनुचित का विचार करनेवाली चित्तवृत्ति, ९. यमराज, धर्मराज, १०. धनुष, धनु, कमान, ११. संध्या-तर्पण आदि कर्मकांड जो वर्णों एवं आश्रमों के अनुसार होते हैं। उ०४. श्रुति कह परम धरम उपकारा। (मा० १।८४।१)
धर्मज्ञ–(सं०)–धर्म को जाननेवाला, धार्मिक।
धर्मध्वज–(सं०)–पाखंडी, दिखावे का धर्मात्मा, कपटी। उ० धींग धरमध्वज धंधक धोरी। (मा० १।१२।२)
धर्मशील–(सं०)–धर्म के अनुसार आचरण करनेवाला, धार्मिक।
धर्मा–१. दे० 'धर्म', २. धर्मवाला, स्वभाववाला। उ० २. महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर रूप, फेरु छल, दंभ, दंभ मार्जार-धर्मा। (वि० ५९)

धर्मार्थ-(सं०)-धर्म का काम।
धर्मी-(सं० धर्मिन्)-१. जिसमें धर्म हो, धर्मात्मा, २. मत या धर्म को माननेवाला, ३. विष्णु, हरि, ४. धर्म का आधार।
धर्ष-(सं०)-१. धृष्टता, गुस्ताख़ी, २. असहनशीलता, तुनकमिजाज़ी, ३. अधीरता, बेसब्री, ४. अपमान, अनादर, ६. नपुंसक, नामर्द, ७. रोक, दबाव, ८. हिंसा, हत्या, ६. सतीत्व-हरण।
धर्षण-(सं०)-१. अवज्ञा, अपमान, २. दबाने या हराने का कार्य, ३. मर्दित करना।
धर्षि-मर्दन करके।
धर्षित-(सं०)-हारा हुआ, मर्दित।
धव-(सं०)-१. पति, २. एक वृक्ष।
धवरहर-(?)-मकान के ऊपर बनी मीनार, धौरहरा।
धवल-(सं०)-१. श्वेत, उजला, २. निर्मल, झकाझक साफ, ३. सुन्दर, मनोहर, ४. गुणयुक्त। उ० १. कंबु-कर्पूर-वपु-धवल निर्मल मौलि, जटा सुर तटिनि, सित सुमन माला। (वि० ४६) २. नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे। (पा० ४३)
धवलिहउँ-उज्वल कर दूँगा। उ० जस धवलिहउँ भुवन दस चारी। (मा० २।११०।३)
धसइ-धँसी जाती थी। उ० धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। (मा० ६।७१।३) धसी-(सं० ध्वंसन)-उतरी, पैठीं। उ० जनु कलिंदजा सुनील सैल तें धसी समीप। (गी० ७।७)
धाँके-(सं० धाक)-१. धाक जमा दी, २. आतंक जमाए हुए, ३. रोब में आ गए। उ० ३. बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके। (क० ६।४५)
धाइ (१)-(सं० धावन, हि० धाना)-१. तेज़ी से चली, शीघ्रता से दौड़ी, २. दौड़कर। उ० २. धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। (मा० २।३८।२) धाईं-दौड़ीं। उ० हरषित जहँ-तहँ धाईं दासी। (मा० १।१६३।१) धाई (१)-१. दौड़ी, २. दौड़कर। उ० १. सुनि ताड़का क्रोध करि धाई। (मा० १।२०६।३) धाउ-धावा बोल देता है, चढ़ जाता है। उ० बूड़त लखि, पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ। (दो० ५२०) धाए-१. दौड़े, २. दौड़ने पर। उ० १. नगर निकट बिमान आए सब नर नारी देखन धाए। (गी० ७।३८) धाय (१)-(सं० धावन)-दौड़कर, चलकर। उ० अब सोचत मनि बिनु भुजंग ज्यों बिकल अंग दले जरा धाय। (वि० ८३) धायउँ-दौड़ा। उ० निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ। (मा० ७।८२।२) धायउ-दौड़ा, दौड़ा आता हो। उ० क्रोधवंत जनु धायउ काला। (मा० ६। ५१।१) धायल-दौड़ा। उ० अस कहि कोपि गगन पर धायल। (मा० ६।६७।३) धाये-१. दौड़ने पर, चलने पर, २. चले। उ० १. तुलसी जिन्हैं धाये धुके धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हते हैं। (क०६।३३) धायो-दौड़ता, इधर-उधर फिरता। उ० काहे को फिरत मूढ़ मन धायो। (वि० १६६) धाव-दौड़ा। उ० धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। (मा० ६।७१।३) धावइ-दौड़ता। उ० आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा। (मा० १।१८३। छं०१) धावत-(सं० धावन)-१. दौड़ते, भागते, २. ध्यान धरता है, ध्यान करता है। उ० १. जेहि करुना सुनि श्रवन दीन-दुख धावत हौ तजि धाम। (वि० ६३) धावहिं-दौड़ते हैं, दौड़ रहे हैं। उ० राम-राम कहि चहुँ दिसि धावहिं। (मा० २।८६।१) धावहीं-दौड़ते हैं, दौड़ रहे हैं। उ० अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं। (मा० ३।२०। छं० २) धावा-(सं० धावन)-१. आक्रमण, हमला, चढ़ाई, २. दौड़, जल्दी-जल्दी जाना, ३. दौड़ा, दौड़ता है। उ० ३. ताहि धरै जननी हठि धावा। (मा० १।२०३।४) धावै-दौड़े। उ० तौ कत मृग जल-रूप बिषय कारन निसि बासर धावै। (वि० ११६) धावौं-चला जाऊँ। उ० जोजन सत प्रमान लै धावौं। (मा० १।२५३।४)
धाइ (२)-(सं० धात्री)-धाय, दाई।
धाई (२)-दे० 'धाइ (२)'।
धाता-(सं० धातृ)-१. ब्रह्मा, विधाता, २. विष्णु, ३. पालनेवाला, ४. बनानेवाला, ५. शिव। उ० १. रामहिं भजहिं तात सिव धाता। (मा० ७।१०६।२)
धातु-(सं०)-१. खान से उत्पन्न सोना, लोहा, चाँदी आदि खनिज पदार्थ, २. धारण करने योग्य वस्तु, ३. शब्द का मूल, माद्दा, ४. तत्त्व, सार, ५. शरीरस्थ रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र नाम की सात धातुएँ, ६. माला। उ० ६. गुंजावतंस बिचित्र, सब अँग धातु भवभय-मोचनं। (कृ० २३)
धातुराग-(सं०) धातु से निकला रङ्ग, गेरू। उ० सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-बिभाग। (गी० २। ४४)
धातुवाद-(सं०)-कीमियागरी, ताँबे से सोना बनाना। उ० धातुवाद, निरुपाधि बर, सद्गुरु-लाभ, सुमीत। (दो० ५५७)
धान-(सं० धान्य)-१. बिना कूटा हुआ चावल, २. चावल का पौधा, ३.अनाज। उ० २.देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान। (मा० ७।१०१ ख)
धानी (१)-(सं०)-१. स्थान, ठौर, २. धान की पत्ती के रङ्ग का। उ० १. जातुधान धारि धूरि धानी करि डारी है। (ह० २७)
धानी (२)-(सं० धाना)-भुना हुआ जौ या गेहूँ।
धान्य-(सं०)-१. अन्न, गल्ला। कुछ स्मृतियों के अनुसार खेत में के अन्न को शस्य और छिलके सहित अन्न को धान्य कहते हैं, २. धान, व्रीहि, शालि, ३. धनिया, धना, ४. एक प्रकार का नगरमोथा।
धामं-दे० 'धाम'। धाम-(सं०)-१. घर, भवन, स्थान, २. बैकुंठ, ३. देश, ४. आश्रय, ५. तेज, प्रभा, दीप्ति, ६. राशि, ७. अभाव, ८. पुण्य क्षेत्र, देवालय, मंदिर, ६. शक्ति, १०. जन्म, ११. किरण, १२. अवस्था, १३. गति, १४. विष्णु, १५. शोभा, १६. समूह। उ० १. साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम कों। (पा० ३६) धामहिं-घर को। उ० कबहुँ न जात पराये धामहिं। (कृ० ५)
धामदं-पद देनेवाला। उ० अकामिनां स्वधामदं। (मा० ३।४।१) धामद-(सं०)-१. पद देनेवाला, २. मुक्ति देने-

वाला। धामदा–वैकुंठ देनेवाली, धाम देनेवाली। उ० राम धामदा पुरी सुहावनि। (मा० १।३५।२)

धामा–दे० 'धाम'। उ० १. लूटहिं तस्कर तव धामा। (वि० १२५)

धामिनी–१. धामवाली, घर बनानेवाली, २. स्थान करनेवाली, ३. रहनेवाली, ४. गमन करनेवाली, दौड़नेवाली। उ० ४. मिलित जल पात्र अज-युक्त हरि चरन रज, बिरज बरवारि त्रिपुरारि सिर-धामिनी। (वि० १८)

धामू–दे० 'धाम'। उ० १६. मायाधीस ग्यान गुन धामू। (मा० १।११७।४)

धाय (२)–(सं० धात्री)–दाई, बच्चों को दूध पिलानेवाली स्त्री।

धार–(सं०)–१. जल आदि का प्रवाह, बहाव, २. हथियारों का तेज अंश, किनारा, ३. किनारा, छोर, ४. सेना, फ़ौज, ५. दिशा, ओर, तरफ़, ६. गंभीर, गहरा, ७. ऋण, कर्ज़, ८. प्रांत, प्रदेश, ९. नोक, अनी, कोर, १०. रेखा, लकीर। उ० १. पुरजन-पूजोपहार सोभित ससि-धवल धार। (वि० १७) ४. जमकर धार किधौं बरिआता। (मा० १।९५।४)

धारण–(सं०)–१. धारने की अवस्था, ग्रहण, अवलंबन, रखना, २. रक्षण, ३. कर्ज़ लेना, ४ धारण करनेवाला।

धारणा–(सं०)–१. बुद्धि, विषयों को ग्रहण करनेवाली बुद्धि, २. मन की स्थिरता, विश्वास, ३. स्मरण, चेत, ४. उत्साह, ५. अष्टांग योग में की एक स्थिति जिसमें मन में ब्रह्म के अतिरिक्त कोई विचार नहीं आता।

धारन–दे० 'धारण'। उ० ४. धरम धुरीन सु-धीर-धर धारन बर पर-पीर। (स० ३०९)

धारना–दे० 'धारणा'। उ० ५. ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रवीनता। (क० ७।६२)

धारमिक–दे० 'धार्मिक'।

धारा (१)–(सं०)–१. धार, जलप्रवाह, २. घोड़े की चाल ३. समूह, समुदाय, ४. उत्कर्ष, उन्नति, ५ चलन, रीति। उ० १. मध्य धारा बिशद बिश्व अभिरामिनी। (वि० १८) ३. चतुरंगिनी धनी बहु धारा। (मा० ६।७९।१)

धारा (२)–(सं० धार)–किसी हथियार का तेज़ भाग जिससे काटा जाता है।

धारि (१)–(सं० धारा)–१. फ़ौज़, सेना, २. डाकुओं का समूह, ३. झुंड, समूह, ४. धारा, प्रवाह, बहाव। उ० १. बाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़। (क० ५।२८) २. धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति। (क० ७।७५)

धारि (२)–(सं० धारण, हिं० धारना)–१. धारण करके, २. कर्ज़ लेकर के। धारिअ–धरिए, रखिए। उ० भयउ समउ अब धारिअ पाऊ। (मा० १।३१३।४) धारिबे–धारण करने, पकड़ने। उ० कठिन कुठार धार धारिबे की धीरताहि। (क० १।१८) धारिहैं–रक्खेंगे। उ० पुर पाँउ धारिहैं उधारिहैं तुलसी हूँ से जन। (गी० २।४१) धारी (१)–(सं० धारण)–धारण की, धारण किया। उ० बिकल ब्रह्मादि-सुर-सिद्ध-संकोच बश-बिमल-गुण-गेह-नर देह-धारी। (वि०४३) धारे–१. रक्खे हुए हैं, २.धारण किया। उ०१.जिनको पुनीत बारि धारे सिर पै पुरारि। (क०२।९) धारेउ–धरा, रक्खा। उ० भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ। (मा० २।१६०।१) धारै–धारण करे। उ० तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान। (वै० २१)

धारिनि–(सं० धारिणी)–१. धारण करनेवाली, २. पृथ्वी, धरती, ३. अपने ऊपर लेनेवाली। उ० १. निज इच्छा लीला बपु धारिनि। (मा० १।९८।२)

धारी (२)–(सं० धारिन्)–धारण करनेवाला, जिसने धारण किया हो। उ० भस्म तनुभूषणं, व्याघ्रचर्म्माम्बरं, उरग-नरमौलि-उरमालधारी। (वि० ११)

धारी (३)–(सं० धारा)–१. सेना, फौज, २. समूह, झुंड, ३. रेखा, लकीर। उ० १. थकित भई रजनीचर धारी। (मा० ३।१९।१)

धारैं–धाराएँ हैं, धाराएँ। उ० धारैं बान, कूल धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब धारैं। (गी० ७।१३)

धार्मिक–(सं०)–१. धर्मशील, धर्मात्मा, पुण्यात्मा, २. धर्म संबंधी, धर्म का।

धार्मीक–दे० 'धार्मिक'। उ० १. जयति धार्मीक-धुर धीर रघुबीर ! गुरु-मातु-पितु बंधु-बचनानुसारी। (वि० ४३)

धार्य–(सं०)–धारणीय, धारण करने योग्य।

धावन–(सं०)–१. वेगपूर्वक गमन, दौड़ना, २. दूत, हरकारा, ३. गति, फिराव। उ० २. सो सुग्रीव केर लघु धावन। (मा० ६।२३।५)

धाहैं–(?)– ज़ोर से चिल्लाकर रोता, धाड़ें देता। उ० जिन्ह रिपु मारि सुरारि-नारि तेइ सीस उघारि दिवाईं धाहैं। (गी० ७।१३)

धिक–(सं० धिक्) धिक्कार, लानत, २. फटकार।

धिग–१. धिक्कार है, २. फटकार, ३. व्यर्थ। उ० १. साँचेहु सुत बियोग सुनिबे कहँ धिग बिधि मोहिं जिआयो। (गी० २।५६) ३. धिग जीवनु रघुबीर बिहीना। (मा० २।८६।३)

धी–(सं०)–बुद्धि, अकल, समझ। उ० सरनागत तेहि राम के जिन्ह दिय धी सिय-रूप। (स० १८४)

धींग–(सं० डिंगर)–१. गँवार, असभ्य, २. हट्टा-कट्टा, पुष्ट, ३. जार, उपपति, ४. पापी, कुमार्गी। उ० ४. अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो। (क० ७।१६)

धीम–(सं० मध्यम)–धीमा, सुस्त, आलसी, मंद।

धीय–(सं० दुहिता)–बेटी, पुत्री। उ० धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं। (क० ७।१५)

धीर (१)–(सं०)–१. जिसमें धैर्य हो, जो जल्द घबरा न जाय, २. बलवान, ताकतवर, ३. विनीत, नम्र, ४.गंभीर, ५. मनोहर। उ० १. साँवरे गोरे सरीर, धीर महाबीर दोऊ। (क० १।२१) धीरौ–धैर्यवान भी। उ० दे० 'धीरै'।

धीर (२)–(सं० धैर्य)–धैर्य, धीरज, ढारस, संतोष, सब्र। धीरै–धैर्य को। उ० तुलसी सुनि सौमित्रि-बचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै। (गी० ६।१५)

धीरज–(सं० धैर्य)–धीरता, चित्त की स्थिरता, धैर्य। धीरजहि–धीरज को, धैर्य को। उ० उर धीरजहि धरि, जन्म सफल करि। (गी० २।१९)

धीरजु–दे० 'धीरज' । उ० मुनि महिमा सुनि रानिहि धीरजु आयउ । (जा० ८७)
धीरता–(सं०)–१. चित्त की स्थिरता, मन की दृढ़ता, धैर्य, २. शिष्टता, ३. प्रतिज्ञा । उ० १. सीय बिलोकि धीरता भागी । (मा० १।३३८।३)
धीरन्ह–धीर पुरुषों, विवेकी पुरुषों । उ० धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई । (मा० ३।३९।१)
धीरा–दे० 'धीर' (१) । उ० १. सेवत जाहि सदा मुनि धीरा । (मा० १।५१।४)
धुआँ–(सं० धूम्र)–१. धूम, धुँआँ, २. नाश, विनाश, ३. मुर्दा, ४. मृत्यु, मरण, ५. टुकड़े-टुकड़े होना । उ० २. धुआँ देखि खरदूषन केरा । (मा० ३।२१।३)
धुंध–(सं० धूम्र + अंध)–अँधेरा, मैलापन, धुँधलापन, २. अंधा ।
धुकधुकी–(अनु० धुक धुक)–१. घबराहट, छाती का धुक-धुक करना, २. छाती, कलेजा ।
धुकि–(अनु० धुक)–झपटकर, जल्दी से । उ० बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया । (कृ० १९)
धुकै–(अनु० धुक) १. काँपता है, २. झुकता है । उ० १. तुलसी जिन्हैं धाये धुकै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं । (क०६।३३)
धुज–(सं०–ध्वजा)–पताका, ध्वजा, झंडा । उ० तोरन कलस चँवर धुज बिबिध बनाइन्हि । (पा० ९७)
धुजा–दे० 'धुज' । उ० कदलि ताल बर धुजा पताका । (मा० ३।३८।१)
धुन (१)–(सं० धनुस, हि० धुनकी, हि० धुनना)–१.लगन, किसी काम को निरंतर करते रहने की प्रवृत्ति, २. मन की तरंग, मौज, ३. चित्त, ख़्याल, फ़िक्र ।
धुन (२)–(सं० ध्वनि)–आवाज़, नाद, ध्वनि ।
धुन (३)–(सं०)–काँपने की क्रिया, कंपन ।
धुनइ–धुनता है, पीटता है । उ० जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई । (मा० २।४६।४) धुनत–१. हिलते हैं, काँपते हैं, २. टंकोरते हैं, धनुष की डोरी पर मारते हैं, ३. धुनते हैं । उ० २. निकट निषंग, संग सिय सोभित, करनि धुनत धनु तीर । (गी० २।६६) धुनहिं–धुनते हैं । उ० देखि निषाद बिषाद बस धुनहिं सीस पछताहिं । (मा० २।१९९) धुना–पीटा, पटका । उ० पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना । (मा० ६।५६।२) धुनि (१)–(सं० धनुस्)–१. धुनकर, पीट कर, २. सिर मारकर, ३. कँपाकर, ४. अनुनय-विनय कर, ५. मन की तरंग । उ० १. कोमल सरीर, गँभीर बेदन, सीस धुनि धुनि रोवहीं । (वि० १३६) धुनेउ–धुना, पीटा । उ० नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ । (मा०२।७३) धुनेऊ–पीटा, पटका, धुना । उ०अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ । (मा०६।६२।३)
धुनि (२)–(सं० ध्वनि)–१ आवाज़, नाद, ध्वनि, २. आशय, गूढ़ अर्थ, मतलब, ३. काव्य में शब्दों के नियत अर्थों के योग से सूचित होनेवाले अर्थ की अपेक्षा जब प्रसंग से निकलनेवाले अर्थ में विशेषता होती है तो उसे 'ध्वनि' या 'धुनि' कहते हैं । उ० १. बनिहि अवसि यहु काज गगन भइ अस धुनि । (पा० ८९) ३. धुनि अवरेब कबित गुन जाती । (मा० १।३७।४)
धुनि (३)–(सं०)–नदी ।
धुरंधर–(सं०)–१. प्रकांड, बहुत बड़ा, २.अक्खड़, ३. मस्त, ४. आधार, भार ढोनेवाला, धुरी धारण करनेवाला, ५. गाड़ी या हल आदि खींचनेवाला, ६. प्रधान, नेता, मुखिया, अगुआ, ७. एक राक्षस का नाम जो प्रहस्त का मंत्री था । उ० ४. धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा । (मा०७।५।३)
धुर–(सं० धुर्)–१. गाड़ी या रथ आदि का धुरा, २. शीर्ष या प्रधान, ३. बोझ, भार, ४. आरंभ, शुरु, ५. जुवा, ६. ज़मीन की एक माप, ७. सटीक, ठीक, ८. दृढ़, पक्का, ९. अवधि, १० अंत, किनारा, ११. जड़, मुख्य । उ० २. धर्मधुर धीर रघुबीर भुजबल-अतुल, हेलया दलित भू भार भारी । (वि० ४४)
धुरधनि–(सं० धुर + धन्य)–धन्य, बहुत बढ़े-चढ़े । उ० गुन निधान हिमवान धरनिधर धुरधनि । (पा० ६)
धुरा–(सं० धुर्)–१ धुर, अक्ष, गाड़ी या रथ की धुरी, २. भार, बोझ ।
धुरा–छोटा धुरा, लकड़ी या लोहे का छोटा डंडा जिस पर गाड़ी के पहिए घूमते हैं ।
धुरीण–(सं०)–१. बोझ सँभालनेवाला, धुरी को धारण करनेवाला, २. मुख्य, प्रधान, ३. धुरंधर, दिग्गज, ४. साहसी, ५. अगुआ, अग्रगण्य ।
धुरीन–दे० 'धुरीण' । उ० १. धरम धुरीन बिषय रस रूखे । (मा० २।५०।२) २. बीर धुरीन धरे धनुभाथा । (मा० २।९९।१)
धुवाँ–(सं० धूम्र)–१. धुआँ, धूम, २. नाश, खंड खंड होना, नष्ट-भ्रष्ट होना ।
धूत–(सं० धूर्त)–धूर्त, कपटी । उ० धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ । (क० ७।१०६)
धूति–१. ठगई, धूर्तता, कपट, २. पलट देना, ३. ठग करके, धूर्तता करके, छल से, ४. ठग, धोखा दे । उ० ४. तुलसी रघुबर सेवकहि, सकै न कलिजुग धूति । (दो० ८७)
धूतिहौं–ठगूँगा ।
धूप–(सं०)–१. देव पूजन में सुगंधि के लिए गुग्गुल, अगर, कपूर, चंदन आदि गंध द्रव्यों को जलाकर उठाया हुआ धुआँ, सुगंधित धूम, २. आतप, घाम, ३. सरल निर्यास । उ० १.अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत इति बासना धूप दीजै । (वि० ४७)
धूम–(सं०)–१. धुआँ, धूम्र, २. कोलाहल, हल्ला, शोर, ३. प्रसिद्धि, जनरव, शुहरत, ४. समारोह, भारी आयोजन, ५. उपद्रव, उत्पात, ६. चारों ओर सुनाई देनेवाली चर्चा । उ० १. होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम । (दो० २६८) ६. भरि भुवन सकल कल्यान धूम । (गी० ५।१६) धूमउ–धुआँ भी । उ० धूमउ तजइ सहज करुआई । (मा० १।१०।५)
धूमकेतु–(सं०)–१. अग्नि, जिसकी पताका धूम है । २. पुच्छल तारा, ३. केतु ग्रह, ४. शिव, ५. एक राक्षस जो रावण की सेना में था । उ० २. कैधौं ब्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु । (क० ५।५)

धूमकेतू–दे० 'धूमकेतु'। उ० १. वृष्णिकुल-कुमुद-राकेस राधारमन कंस-बंसाटवी-धूमकेतू। (वि० ५२)

धूमधुज–दे० 'धूमध्वज'।

धूमध्वज–(सं०)–अग्नि, धूम ही है ध्वजा जिसकी। उ० दहन इव धूमध्वज, बृषभ-यानं। (वि० १०)

धूरि–(सं० धूलि)–धूल, मिट्टी, रज। उ० बाल-बिभूषन बसन बर, धूरि-धूसरित अंग। (दो० ११७) धूरिधानी–धूल की ढेर, नष्ट, बर्बाद। उ० जातुधान धारि धूरिधानी करि डारी है। (ह० २७)

धूरी–दे० 'धूरि'। उ० सिर धरि गुर पद पंकज धूरी। (मा० १।३४।१)

धूर्जटि–(सं०)–महादेव, शिव।

धूर्त–(सं०)–१. मायावी, छली, चालबाज़, २. वंचक, ३. जुआरी, ४. धतूरा, कनक, ५. साहित्य में शठ नायक का एक भेद।

धूसर–(सं०)–१. धूल के रङ्ग का, मटमैला, २. धूल लगा हुआ, धूल से भरा। उ० १. धूसर धूरि भरें तनु आए। (मा० १।२०३।५)

धूसरित–(सं०)–१. धूसर किया हुआ, धूल से मटमैला, २. धूल से भरा। उ० २. बाल बिभूषन बसन धर, धूरि-धूसरित अंग। (प्र० ४।३।१)

धृत–(सं०)–१. धारण किया हुआ, ग्रहण किया हुआ, २. धरे या पकड़े हुए, ३. निश्चित, स्थिर या ठहराया हुआ, ४. पतित, गिरा हुआ। उ० २.धृत बर चाप रुचिर कर सायक। (मा० ६।११५।१)

धृति–(सं०)–१. धैर्य, धीरता, ढाढ़स, मन की स्थिरता, ठहराव, २. सुख, ३. योग विशेष। उ० १. धृति सम जावनु देइ जमावै। (मा० ७।११७।७)

धृष्ट–(सं०)–१. उद्धत, ढीठ, गुस्ताख़, २. निर्लज्ज, बेहया, ३. साहित्य में नायक का एक भेद। वह नायक जो अपराध करता जाता है, पर छल-कपट से बातें बनाकर नायिका के पीछे भी लगा रहता है।

धेइ–(सं० ध्यान)–ध्यान करके, सुरति लगाकर। उ० सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद प्रीति सुधारी। (वि० १४८)

धेनु–(सं०)–१. गाय, २. दूध देनेवाली गाय, ३. पृथ्वी। उ० १. बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया। (कृ० १६) २. बसन कनक मनि धेनु दान बिप्रन्ह दिए। (जा० २१२) धेनुहि–धेनु को। उ० खरी सेव सुर धेनुहि त्यागी। (मा० ७।११०।४)

धेनुमति–दे० 'धेनुमती'। उ० पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। (मा० १।१४३।३)

धेनुमती–(सं०)–गोमती नदी।

धेनू–दे० 'धेनु'। उ० १. सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। (मा० १।१४६।१)

धैया–दौड़ पड़ी, धाई। उ० बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया। (कृ० १६)

धैर्य–(सं०)–धीरज, धीरता, अव्यग्रता, उतावला न होने का भाव।

धैहै–(सं० धावन)–दौड़ेगा, धावेगा। उ० कनक-पुरी भयो भूप बिभीषन, बिबुध-समाज बिलोकन धैहै। (गी० ५।२०) धैहौ–दौड़ोगे। उ० छगन-मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुक-ठुमुक कब धैहौ। (गी० १।८)

धोइ–(सं० धावन, हि० धोना)–धोकर। उ० पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं। (मा० २।१००। छं०१) धोएँ–धोने से। उ० छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। (मा० ७।४९।३) धोए–धोया, साफ़ किया। उ० जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। (मा० १।४३।४) धोयो–साफ़ किया, धोया। उ० करम-कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो। (वि०२४५) धोवे–दे० 'धोए'।

धोख–दे० 'धोखा'। उ० १. भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ माहि। (मा० २।१९१)

धोखहुँ–धोखे में भी। उ० कृपा, कोप, सति भायहूँ धोखहुँ, तिरछेहुँ राम तिहारेहि हेरे। (वि० २७३) धोखा–(सं० धूर्तता = धूर्तता)–१. छल, भुलावा, दग़ा, २. दूसरे के छल द्वारा उपस्थिति भ्रांति, मिथ्या प्रतीति, ३. भूल-चूक, ग़लती, ४. निराशा, ५. संदेह, ६. मृगतृष्णा।

धोखें–धोखे से, अनजाने में। उ० जिमि धोखें मदपान कर सचिव सोच तेहि भाँति। (मा० २।१४४) धोखेउ–धोखे से भी, धोखे में भी। उ० तुलसी जाके बदन तें धोखेउ निकसत राम। (वै० ३७)

धोखो–दे० 'धोखा'। उ० १. तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं। (गी० ३।१३)

धोबी–(सं० धावन, हि० धोना)–एक जाति जिसका काम कपड़े धोना है। रजक। उ० धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को। (क० ७।६६) मु० धोबी कैसो कूकर–धोबी के कुत्ते सा, जिसका घर पर या घाट पर कहीं भी ठिकाना न हो। व्यर्थ इधर उधर घूमनेवाला। उ० दे० 'धोबी'।

धोरी–(सं० धौरेय)–१. धुरे को उठानेवाला, भार उठानेवाला, २. बैल, ३. श्रेष्ठ पुरुष, ४. गाड़ी में आगे चलनेवाला बैल। उ० १. धींग धरमध्वज धंधक धोरी। (मा० १।१२।२) ३. नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी। (गी०।१०२)

धौं–(सं० अथवा, हि० दँव, दहुँ)–१. एक अव्यय जो ऐसे प्रश्नों के पहले लगाया जाता है जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और संशय का अधिक होता है। २. अथवा, ३. एक शब्द जिसका प्रयोग ज़ोर देने के लिए ऐसे प्रश्नों के पहले 'तो' या 'भला' अर्थ में होता है जिनका उत्तर काकु से 'नहीं' होता है। ४. किसी वाक्य के पूरे होने पर उससे मिले हुए प्रश्न वाक्य का आरंभ सूचक शब्द जो 'कि' का अर्थ देता है। ५. विधि, आदेश आदि के पहले केवल ज़ोर देने के लिए आनेवाला एक शब्द। ६. तो, ७. ध्रुव, निश्चय, ८. भी। उ० १. कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम? (वि०९३) ६. जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की। (क० ७।२७)

धौज–(सं० ध्वंजन)–१. दौड़-धूप, धाव-धूप, दौड़ना-धूपना, २.व्याकुलता, घबराहट, ३.विवेचना, विचार, परिशीलन। उ० १. एक करै धौज, एक कहै काढ़ौ सौंज। (क० ५।१८) २. एक काढ़ै सौंज, एक धौज करै कहा ह्वै है। (क० ६।६)

धौत–(सं०)–धोया हुआ, साफ, शुद्ध, परिष्कृत।

धौर-(सं० धोरण, हि० धौरना)-दौड़ने, दौड़ना। उ० तुलसी जिन्हैं धाय धुकै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं। (क० ६।३३)

धौरहर-(?)-भवन का वह ऊपरी भाग जो बहुत ऊँचा खंभे की तरह हो, और जिस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हों। धरहरा, मीनार। उ० धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे! (वि० ६६)

धौल (१)-(सं० धवल) सफ़ेद, उज्वल। उ० मानों हरे तृन चारु चरैं बगरे सुर धेनु के धौल कलोरे। (क० ७।१४४)

धौल (२)-(अनु०)-थप्पड़, चाँटा।

ध्याइबे-ध्यान करने। उ० ध्याइबे को, गाइबे को, सेइबे सुमिरिबे को। (गी० २।३३) ध्याव-ध्यान करते हैं। ध्यान लगाते हैं, भजते हैं। उ० कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। (मा० ६।११३।७) ध्यावहिं-ध्यान करते हैं। उ० निसि बासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा। (मा० १।१८६।२) ध्यावहीं-ध्यान करते हैं। उ० जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं। (मा० ७।१३। छं०६)

ध्याता-(सं० ध्यातृ)-१. ध्यान करनेवाला, २. विचारक, सोचनेवाला।

ध्यान-(सं०)-१.मानसिक प्रत्यक्षीकरण, अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव, २. चिंतन, मनन, सोच-विचार, ३. स्मृति, याद, ४. बुद्धि, समझ, ५. चित्त को चारों ओर से हटाकर किसी एक पर स्थिर करने की क्रिया। अष्टांग योग में इसका भी स्थान है। ६. भावना, विचार, ख्याल, ७. ज्ञात वस्तु का पुनस्स्मरण। उ० ५. जीवन मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान। (मा० ७।४२)

ध्याना-दे० 'ध्यान'। उ० तब संकर देखेउ धरि ध्याना। (मा० १।५६।२)

ध्यानि-(सं० ध्यानिन्)-ध्यानी, मुनि, साधू, ध्यान लगानेवाला। उ० सोइ ज्ञानी सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि। (वै० ४१)

ध्यानी-दे० 'ध्यानि'। उ० तब बोला तापस बग ध्यानी। (मा० १।१६२।३)

ध्येय-(सं०)-ध्यान करने योग्य, स्मरणीय।

ध्रुवँ-ध्रुव ने। उ० १.ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। (मा० १।२६।३) ध्रुव-१. पक्का, दृढ़, अटल, सदा एक स्थान पर रहनेवाला, २. नित्य, अनीश्वर, ३. आकाश, ४. पर्वत, ५. खंभा, ६. बरगद का पेड़, ७. विष्णु, हरि, ८. शिव, ९. ध्रुवतारा जो एक ही स्थान पर स्थिर रहता है, १०. प्रसिद्ध भक्त जो राजा उत्तानपाद के पुत्र थे। राजा उत्तानपाद की सुरुचि और सुनीति नाम की दो स्त्रियाँ थी। सुरुचि से उत्तम और सुनीति से ध्रुव पैदा हुए। राजा सुरुचि पर अधिक स्नेह रखते थे जिसका फल यह हुआ कि ध्रुव का अपमान होने लगा और वे घर से निकलकर जंगल में तप करने लगे। अंत में भगवान् ने दर्शन दिया और इनके नाम से एक ध्रुवलोक बनाकर उसमें इन्हें अवस्थित कर दिया। बाद में घर लौटकर ध्रुव ने ३६००० वर्ष तक राज्य किया और उसके बाद अपने लोक में निवास करने लगे। विष्णु के प्रसिद्ध भक्तों में इनका नाम लिया जाता है। उ० १. सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा। (मा० १।८४।२) ६. बंदन बंदि, ग्रंथि विधि करि, ध्रुव देखेंउ। (पा० १४६) १०. ध्रुव हरि भगत भयउ सुत जासू। (मा० १।१४२।२)

ध्रू-दे० 'ध्रुव'। उ० १०. रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रह्लाद न ध्रू की। (क० ७।८८)

ध्वंस-(सं०)-नाश, क्षय, हानि।

ध्वज-(सं०)-१. ध्वजा, पताका, २. निशान, चिह्न, ३. छोटी-छोटी झंडी, ४. दर्प, घमंड। उ० १. चौकें पूरैं चारु कलस ध्वज साजहिं। (जा० २०५)

ध्वजा-दे० 'ध्वज'।

ध्वजी-(सं० ध्वजिन्)-पताकाधारी, चिह्न धारण करनेवाला।

ध्वनि-(सं०)-शब्द, नाद, स्वर।

ध्वांत-(सं०)-अंधकार, अँधेरा। उ० वैराग्याम्बुजभास्करंह्य घघन ध्वांतापहं तापहम्। (मा० ३।१। श्लो० १)

ध्वैहौं-(सं० धावन)-१. धोऊँगा, २. धुलवाऊँगा। उ० तौ जननी! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं। (गी० २।६२)

न

नँचहिं-(सं० नृत्य, हिं नाँच)-नाचते हैं। नँचहीं-दे० 'नँचहिं'।

नंद-(सं०)-१. आनंद, हर्ष, २. सच्चिनांद, परमेश्वर, ३. पुराणानुसार नौ निधियों में से एक, ४. विष्णु, ५. लड़का, पुत्र, ६. गोकुल के गोपों के मुखिया जिनके यहाँ कृष्ण जन्म के बाद पाले गये थे। नंद की स्त्री का नाम यशोदा था। ६. महात्मा बुद्ध के सौतेले भाई। उ० ६. सुनि हँसि उठ्यो नंद को नाहरु, लियो कर कुधर उठाइ। (कृ० १८)

नंदकुमार-(सं०)-नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण। उ० सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि हृदय न नंदकुमार। (वि० १८८)

नंदनंदन-(सं०)-नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण। उ० तुम सकुचत कत हौं हीं नीके जानति, नंदनंदन हो निपट करी सठई। (कृ० ३६)

नंदन-(सं०)-१. आनंद देनेवाला, २. इंद्र के उपवन का नाम, ३. एक प्रकार का विष, ४. शिव, महादेव, ५. लड़का, ६. विष्णु, ७. एक प्रकार का अस्त्र, ८. मेघ,

बादल, ६. एक वर्ण वृत्त। उ० १. या ५. संकर सुवन भवानी नंदन। (वि० १)

नंदललन–श्रीकृष्ण, नंद के पुत्र। उ० तुलसिदास नंदललन ललित लखि रिस क्यों रहति उर-ऐन। (कृ० १५)

नंदललाऊ–(सं० नंद + लालक)–नंदलला भी, नंदलाल भी, कृष्ण भी। उ० तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागर मनि नंदललाऊ। (कृ० १२)

नंदसुवन–कृष्ण, नंद के पुत्र। उ० तुलसिदास अब नंदसुवन-हित। (कृ० ३७)

नंदिनी–(सं०)–१. कन्या, पुत्री, २. रेणुका नामक गंध द्रव्य, ३. उमा, ४. गंगा, ५. ननद, ६. दुर्गा, ७. तेरह अक्षरों का एक छंद, ८. वशिष्ट की कामधेनु जो सुरभि की कन्या थी। दिलीप ने इसी गौ की सिंह से रक्षा की और इसी की आराधना करके उन्होंने रघु नामक पुत्र प्राप्त किया। ९. पत्नी। उ० १. दास तुलसी सभय बदति मयनंदिनी। (क० ६।२१)

नंदी–(सं० नंदिन्)–१. धव का पेड़, २. बरगद, ३. शिव का बैल, ४. आनंदयुक्त, प्रसन्न।

नंदीमुख–(सं०)–एक आभ्युदायिक श्राद्ध जो पुत्रजन्म, विवाह आदि मंगल अवसरों पर किया जाता है। वृद्धि श्राद्ध। उ० नंदीमुख सराध करि, जातकरम सब कीन्ह। (मा० १।१९३)

नः–(सं०)–हमें, हम सब को। उ०सीतान्वेषण तत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः। (मा० ४।१। श्लो० १)

न–(सं०)–१. उपमा, २. रत्न, ३. सोना, हेम, ४. नहीं, मत, निषेधबाचक शब्द। उ० ४. लोकहुँ बेद न आन उपाऊ। (मा० १।३।३)

नइ (१)–(सं० नव)–नवीन, नूतन, नया। उ० नित नइ प्रीति राम पद पंकज। (मा० ७।१५।५)

नइ (२)–(सं० नय)–नीतिवान, नीतिज्ञ।

नइ (३)–(सं० नमन)–१. झुक गई, २. झुककर। नई (१)–दे० 'नइ (३)'। उ० १. सोहत सकोच सील नेह नारि नई है। (गी० १।८३) नए (१)–(सं० नमन)–झुक गए, नव गए। उ० हारे हरष होत हिय भरतहि, जिते सकुच सिर नयन नए। (गी० १।४३) नया (१)–(सं० नमन, हि० नयना)–१. झुका हुआ। २. झुके। नये (१)–१. झुके, २. झुके हुए। नयो–(सं० नमन)–१. झुक गया, झुका, २. झुकाया, ३. प्रणाम किया, नमस्कार किया। उ० १. प्रेम पुलकि पहिचानि कै पदपदुम नयो है। (गी० ६।१०) ३. रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो। (मा० ६।८४। छं० १) नव (१)–(सं० नमन)–नवेगा, नवता है, दबता है। उ० बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच। (मा० ५।५८) नवइ–नवता है, झुकता है, नीचे आता है। नवहिं–झुक जाते हैं। उ० लता निहारि नवहिं तरु-साखा। (मा० १।८५।१) नवहीं–नत होते हैं, झुकते हैं, विनम्र होते हैं। उ० मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। (मा० २।१०८।२)

नई (२)–दे० 'नइ (१)'। उ० प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि। (दो० २८९)

नउनियाँ–(सं० नापित, हि० नाऊ)–नाइन, नाई की स्त्री। उ० नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो। (रा० ८)

नए (२)–नवीन, नूतन। उ० कौसिक बसिष्ठहि पूजि पूजे राउ दै अंबर नए। (जा० १५३)

नक (१)–(?)–रात, निशा।

नक (२)–(सं० नासिका)–नाक, नासिका।

नकवानी–(सं० नासिका + पानीय)–नाक में पानी, नाक में दम। उ० दे० मु० 'नकवानी आयों'। मु० नकवानी आयों–नाक में दम हो गया। उ० तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकबानी। (वि० ५)

नकीब–(अर०)–बंदीजन, भाट, चारण। उ० बोलत पिक नकीब गरजनि मिस मानहुँ फिरति दोहाई। (कृ० ३२)

नकुल–(सं०)–१. नेवला, २. महादेव, ३. पांडवों में से एक, ४. निर्वंश, जिसके कुल में कोई न हो। उ० १. नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाष। (दो० ४६०)

नक्खत–दे० 'नक्षत्र'।

नक्र–(सं०)–घड़ियाल, मगर। उ० नक्र-रागादि-संकुल-संकुल मनोरथ सकल संग संकल्प-बीची-बिकारम्। (वि० ५८)

नक्षत्र–(सं०)–चंद्रमा के पक्ष में पड़नेवाले तारों का समूह या गुच्छ। ये ग्रहों से भिन्न हैं। इनकी संख्या २७ मानी गई है। इनके स्थान से शुभ अशुभ समय का ज्योतिष में पता लगाया जाता है।

नख–(सं०)–१. नाखून, नखर, २. एक गंध द्रव्य, ३. एक प्रकार का फल। उ० १. बिकट भ्रुकुटि, बज्र दसन नख, बैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी। (वि० २८) नखन्हि–नखों से, नाखूनों से। उ० नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ। (मा० ७।९८।३)

नखत–१. दे० 'नक्षत्र', २. तारे। उ० २. मनहुँ सरद बिधु उभय, नखत धरनी धनि। (जा० ५५)

नखतु–दे० 'नक्षत्र'। उ० सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। (मा० १।९१।२)

नखसिख–(सं० नखशिख)–नख से शिखा तक, पूरे शरीर में। उ० हँसत देखि नखसिख रिस व्यापी। (मा० १।२७७।३)

नग–(सं०)–जो गमन न करे। १. पर्वत, २. वृक्ष, ३. सात की संख्या, ४. सर्प, ५. सूर्य, ६. नगीना, रत्न, मणि, ७. संख्या। उ० ६. सोभासिंधु-संभव से नीके नीके नग हैं। (गी० २।२७)

नगन (१)–(सं० नग्न)–नंगा, जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। उ० जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेष। (मा० १।६७)

नगन (२)–(सं० नगण)–पिंगल शास्त्र के अनुसार तीन लघु अक्षरों का एक गण।

नग-फँग–(सं०नग्न + ?)–नंगे, बदमाश। उ० हौ भले नग-फँग परे गढ़ीबै अब एक गढ़त महरि-मुख जोए। (कृ०११)

नगफनियाँ–(सं० नाग + फण)–सर्प के फन की आकृति का एक आभूषण जो कान में पहना जाता है। उ० बिकट

भृकुटि सुखमानिधि आनन कल कपोल काननि नग-फनियाँ। (गी० १।३१)

नगर-(सं०)-शहर, पुर, नगरी। उ० नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं। (मा० १।१८३।३)

नगरु-दे० 'नगर'। उ० दीख मंथरा नगरु बनावा। (मा० २।१३।१)

नग्न-(सं०)-नंगा, वस्त्रहीन।

नचत-(सं० नृत्य, हिं० नाच)-नाचते हैं, नाचता है।

नचाइ-नाच नचाकर। उ० छाँड़हिं नचाइ हाहा कराइ। (गी० ७।२२) नचाइहि-नचावेगी। उ० निगा नाँग करि नितहिं नचाइहि नाच। (ब० २४) नचायो-नचाया, घुमाया। उ० करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो। (वि० ९८) नचाव-१. नचाता है, नृत्य कराता है, २. घुमाता है, फिराता है। उ० १. भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव। (मा० १।३१६) नचावइ-नचाते हैं। उ० भृकुटि बिलास नचावइ ताही। (मा० १।२००।३) नचावत-नचाते हैं। उ० नट मरकट इव सबहि नचावत। (मा० ४।७।१२) नचावती-नचाती है। उ० चुटकी बजावती नचावती कौसल्या माता। (गी० १।३०) नचावहिं-नचाते हैं, नचाया करते हैं। उ० कबि उर अजिर नचावहिं बानी। (मा० १।१०५।३) नचावा-नचाया, नचाया है। उ० जेहिं बहु बार नचावा मोही। (मा० ७।५९।३)

नचावनिहारे-नचानेवाले। उ० बिधि हरि संभु नचावनिहारे। (मा० २।१२७।१)

नछत्र-१. दे० 'नछत्र', २. तारा, ३. नक्षत्र विशेष, हस्त नक्षत्र। उ० ३. के दिग दून नछत्र हनि तुलसी तेहि पद लीन। (स० २२१)

नट-(सं०)-१. कौतुकी, तमाशा करनेवाला, तमाशा दिखाने वाला, २. जादूगर, ३. एक राग जो तीसरे पहर गाया जाता है, ४. नाचनेवाला, ५. नाटक में अभिनय करने-वाला। उ० ४. तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागर मनि नंदललाऊ। (कृ० १२)

नटत-(सं० नट)-१. नाचते हैं, २. बहाना करता है, अस्वी-कार करता है। उ० १. कूजत बिहग नटत कल मोरा। (मा० १।२२७।२)

नटन-नाचना, नृत्य करना। उ० अट घट लट नट नादि जहँ, तुलसी रहित न जान। (स० ५७६)

नटनागर-१. नाचने में चतुर, चतुर, खिलाड़ी, २. कृष्ण। नाचने में चतुर होने के कारण ही कृष्ण का नटनागर नाम है। उ० २. ऊधो जू! क्यों न कहैं कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी। (क० ७।१३४)

नटनि (१)-(सं० नर्त्तन)-नाचना, नृत्य करना। उ० झुकनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि। (गी० १।२५)

नटनि (२)-(सं० नट)-इनकार, अस्वीकृति।

नटी-(सं०)-१. नाटक में सूत्रधार की स्त्री, २. वेश्या, नर्तकी। उ० २. नाच नटी इव सहित समाजा। (मा० ७।७२।१)

नटैया-(?)-गर्दन, गला। उ० जबै जमराज रजायसु तें, मोहिं लै चलिहैं भट बाँधि नटैया। (क० ७।५१)

नतः-प्रणाम करता हूँ।

नत-(सं०)-नवा हुआ, झुका हुआ, नम्र, दीन। उ० बोल को अचल, नत करत निहाल को? (वि० १८०)

नतपाल-शरणागत को पालनेवाले, शरणागतवत्सल, शरण में आए के रक्षक। उ० बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है। (ह० २९)

नतपालक-दे० 'नतपाल'।

नतपालु-दे० 'नतपाल'।

नतरु-(दे० 'नतु')-नहीं तो, अन्यथा। उ० नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। (मा० २।७५।१)

नति-(सं०)-१. प्रणाम, नमस्कार, २. विनय, बिनती। उ० १. पितुपद गहि कहि कोटि नति बिनय करब करजोरि। (मा० २।९५)

नतु-(सं० न + हिं० तो)-नहीं तो, अन्यथा। उ० नतु और सबै विष बीज बये हर-हाटक काम दुहा नहि कै। (क० ७।३३)

नतो-नमस्कार करता हूँ। नतोऽहं-मैं नमस्कार करता हूँ। उ० सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं राम बल्लभाम्। (मा० १।१। श्लो० ५)

नथुनियाँ-(सं० नाथ, हिं० नाथना)-नाक में पहनने की छोटी सी नथ या बाली। उ० रुचिर चिबुक, रद अधर मनोहर, ललित नासिका लसति नथुनियाँ। (गी० १।३१)

नद-(सं०)-बड़ी नदी या ऐसी नदी जिसका नाम पुल्लिंग-वाची हो। उ० सब सर सिंधु नदीं नद नाना। (मा० २।१३८।३)

नदीं-नदियाँ, सरिताएँ। उ० नदीं कुतर्क भयंकर नाना। (मा० १।३८।५) नदी-(सं०)-दरिया, सरिता, तटिनी।

नदीश-(सं० नदी + ईश)-समुद्र, जलधि।

नदीस-दे० 'नदीश'। उ० सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस। (मा० ६।५)

ननिअउरें-(?)-ननिहाल, नाना के घर। उ० पठए भरतु भूप ननिअउरें। (मा० २।१८।१)

नपुंसक-(सं०)-१. नामर्द, हिजड़ा, क्लीव, २. डरपोक, कायर। उ० १. पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। (मा० ७।८७ क)

नफीरि-(फ़ा० नफ़ीरी)-तुरही, शहनाई। उ० भेरि नफीरि बाज सहनाई। (मा० ७।७९।५)

नबीन-दे० 'नवीन'। नबीने-नए, नवीन। उ० काटत हीं पुनि भए नबीने। (मा० ६।९२।६)

नबीना-(सं० नवीन)-नवीन, नया, नूतन। उ० नेम पेम निज निपुन नबीना। (मा० २।२३४।२)

नभ-(सं०)-१. आकाश, आसमान, २. पंचतत्त्वों में से एक, ३. आश्रय, आभार, ४. सावन का महीना, ५. निकट, पास, ६. मेघ, बादल, ७. शिव, शंकर, ८. पानी, जल, ९. अबरक, १०. हिंसक, ११. सूर्य। उ० १. ईस-सीस बससि, त्रिपथ लससि नभ-पाताल-धरनि। (वि० २०)

नभग-(सं०)-आकाशचारी, उड़नेवाला, पक्षी।

नभगनाथ–(सं०)–दे० 'नभगेस'। उ० नभगनाथ पर प्रीति न थोरी। (मा० ७।७०।१)
नभगामी–दे० 'नभग'। उ० पायहु कहाँ कहहु नभगामी। (मा० ७।६४।२)
नभगिरा–आकाशवाणी। उ० सुनि नभगिरा सती उर सोचा। (मा० १।५७ क)
नभगेस–(सं० नभगेश)–पक्षियों के स्वामी, गरुड़। उ० राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं। (मा० ७।२१)
नभचर–(सं० नभश्चर)–१. पक्षी, चिड़िया, आकाश में उड़नेवाले जीव, २. बादल, ३. हवा, ४. देवता, गंधर्व और ग्रह आदि। उ० १. जलचर थलचर नभचर नाना। (मा० १।३।२)
नभबानी–(सं० नभवाणी)–आकाशवाणी। उ० मंदिर माझ भई नभबानी। (मा० ७।१०७।१)
नम (१) (सं० नमस्)–१. नमस्कार, २. अन्न, अनाज, ३. बज्र, गाज, ४. यज्ञ, मख, ५. स्तोत्र, स्तुति, ६. त्याग, विरक्ति।
नम (२)–(फ़ा०)–तर, गीला।
नमत (१)–(सं०)–१. प्रभु, स्वामी, २. नट, नर्तक, ३. धूम, धुआँ। उ० १. जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे नमत नर्मद पाप-ताप-हर्त्ता। (वि० ४४)
नमत (२)–(सं० नमन, हि० नमना)–१. झुकते हैं, नमस्कार करते हैं, २. प्रणाम करते ही। उ० २. जयति श्रुति-कीर्ति-वल्लभं सुदुर्लभं सुलभ नमत नर्मद-भक्ति-मुक्ति-दाता। (वि० ४०) नमाम–नमस्कार करता हूँ। उ० जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमाम हे। (मा० ७।१३। छं० १) नमामि–नमस्कार करता हूँ। उ० नमामि भक्त वत्सलं। (मा० ३।४। छं० १) नमामी–दे० 'नमामि'। रिपुसूदन पदकमल नमामी। (मा० १।१७।५) नमिहै–नमित हो जायगा, झुक जायगा।
नमित–(सं०)–झुका हुआ, नत, नम्र। उ० बैठि नमित मुख सोचति सीता। (मा० २।५८।१)
नम्र–(सं०)–१. विनीत, जिसमें नम्रता हो, २. नमित, झुका हुआ, ३. दीन, ४. लज्जित। उ० १. बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। (मा० ७।१०५।३)
नय (१)–(सं०)–१. नीति, २. नम्रता, ३. विष्णु, ४. न्याय, ५. धर्म, ६. दूत, ७. नेता, ८. नवीन, नया। उ० १. नय परमारथ स्वारथ सानी। (मा० २।२५५।२) २. नय नगर बसाए बिपिन भारि। (गी० २।४६) नयसानी–नीतियुक्त, नीतिपूर्ण। उ० भगति बिबेक बिरति नयसानी। (मा० ५।२४।१)
नय (२)–(सं० नद)–नदी, सरिता।
नयन (१)–(सं०)–१. नेत्र, लोचन, आँख, दृष्टि, नज़र, २. दूज, द्वितीया, ३. आँखें दो होती हैं, अतः इनसे दो का भी बोध होता है। उ० १. इंदु पावक-भानु-नयन मर्दन मयन, ज्ञान गुण-अयन, विज्ञान रूपं। (वि० ११) २. रबि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार। (दो० ४५८) नयनन्हि–१. नयनों का, आँखों का, २. आँखों से। उ० १. नयनन्हि को फल बिसेष ब्रह्म अगुन सगुन बेष। (गी० ७।७) नयननि–आँखों से। उ० जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ। (मा० २।२०६)
नयन (२)–(?)–एक प्रकार की मछली।
नयनगोचर–(सं०)–समक्ष, जो आँखों के सामने हो।
नयनपट–(सं०)–पलक, आँख की पलक। उ० एकटक रहे नयनपट रोकी। (मा० १।१४८।३)
नयनवंत–आँखवाला। उ० नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। (मा० २।१३६।१)
नयना–दे० 'नयन (१)'। उ०१ प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। (मा० ७।८८।२)
नयनी–आँखवाली। उ० सोउ मुनि ग्यान निधान मृग-नयनी बिधु मुख निरखि। (मा० ७।११५ ख)
नयपाल–नीति का पालन करनेवाला। उ० खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल। (दो ४४२)
नयवान–नीतिवान, नीतिज्ञ। उ० सगुन सत्य ससि नयन गुन, अवधि अधिक नयवान। (प्र० ७।७।३)
नया–(सं० नव, फ़ा० नौ)–नवीन, नूतन, ताज़ा। नये (२)–'नया' का बहुवचन।
नरं–दे० 'नर'। उ० ६. नौमि नारायणं नरं करुणायनं ध्यान पारायणं ज्ञान मूलम्। (वि० ६०) नर–(सं०)–१. पुरुष, मर्द, आदमी, २. मनुष्य, मानव, ३. अर्जुन, पार्थ, ४. विष्णु, ५. शिव, ६. धर्मराज और दक्ष प्रजापति की कन्या से उत्पन्न एक ऋषि जो ईश्वर के अवतार माने जाते हैं। नारायण इनके बड़े भाई थे। सहस्र-कवची दैत्य ने तप से सूर्य भगवान् को प्रसन्न करके वर माँग लिया था कि मेरे शरीर में हज़ार कवच हों। जब कोई हज़ार वर्ष युद्ध करे तब कहीं एक-एक कवच टूटे परन्तु कवच टूटते ही शत्रु भी मर जाय। उसे मारने के लिए सत्ययुग में नर-नारायण का अवतार हुआ। एक भाई हज़ार वर्ष तक युद्ध करके मरता और दूसरा उसे मंत्र द्वारा जिला देता और स्वयं हज़ार वर्ष लड़कर दूसरा कवच तोड़कर मरता, पर पहला इसे जिलाकर फिर वैसा ही करता। इस तरह करते-करते जब केवल एक कवच बच रहा तो वह भागकर सूर्य में लय हो गया और नर नारायण बद्रीनारायण में जाकर तप करने लगे। वही असुर द्वापर में कर्ण हुआ जो गर्भ से ही कवच धारण किए था। नर नारायण ने अर्जुन और कृष्ण होकर उसे मारा। उ०१. जग बहु नर सर सरि सम भाई। (मा० १।८।७) ६. नर नारायण सरिस सुभ्राता। (मा० १।२०।३) नरहि–आदमियों को, पुरुषों को। उ० समय परे सु-पुरुख नरहि लघु करि गनिय न कोइ। (स० ६२६) नराः–नर का बहुवचन। उ० त्वदंघ्रि मूलये नराः। (मा० ३।४। छं० ७) नराणां–१. मनुष्यों में, २. मनुष्यों को। उ० १. भजंतीह लोके परे वा नराणां। (मा० ७।१०८। छं० ७) नरेषु–मनुष्यों में।
नरक–(सं०)–१. दोज़ख़, जहन्नुम। पुराणों और धर्मशास्त्रों के अनुसार वह स्थान जहाँ पापी मनुष्यों की आत्मा फल भोगने के लिए भेजी जाती है। मनु ऋषि के अनुसार इनकी संख्या २१ है। २. मल, पुरीष, ३. बहुत अपवित्र और गंदा स्थान। उ० १. नरक अधिकार मम घोर संसार-तम-कूप कहिं। (वि० २०६) नरकहु–१. नरक भी, २.

नरक में भी। उ० १. सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी। (मा० १।२९।१) २. सुख संपति की का चली नरकहु नाहीं ठौर। (दो० ६४) नरकै-नरक को, नरक में। उ० प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाय। (दो० ५३३)

नरका-दे० 'नरक'। उ० १. कलप-कलप भरि एक-एक नरका। (मा० ७।१००।२)

नरकु-दे० 'नरक'। उ० १. सरगु नरकु अपबरगु समाना। (मा० २।१३१।४)

नरकेशरी-(सं०)-विष्णु के एक अवतार जिनका नाम नृसिंह या नरसिंह था। प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु का बध इन्होंने किया था।

नरकेसरी-दे० 'नरकेशरी'। उ० राम-नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल। (मा० १।२७)

नरत-(सं० नरत्व)-मनुष्यत्व, मानवता।

नरदेव-(सं०)-१. राजा, नृप, भूपाल, २. ब्राह्मण, ३. मनुष्य रूप में देवता राम। उ० ३. जयति मुनि देव नरदेव दशरत्थ के, देव मुनि वंद्य किए अवधबासी। (वि० ४४)

नरनाथ-(सं०)-राजा, नृप। उ० तब गुर भूसुर सहित गृह गवनु कीन्ह नरनाथ। (मा० १।३५१)

नरनायक-(सं०)-राजा, नृप। उ० जनक नाम तेहि नगर बसै नरनायक। (जा० ६)

नरनारायण-(सं०)-नर और नारायण नामक दो ऋषि जो द्वापर में अर्जुन और कृष्ण रूप में पैदा हुए। दे० 'नर'।

नरनारायन-दे० 'नरनारायण'। उ० नरनारायण की तुम्ह दोऊ। (मा० ४।१।५)

नरनारी-अर्जुन (नर) की स्त्री द्रौपदी। उ० बसन बेष राखी बिसेषि लखि बिरदावलि मूरति नरनारी। (कृ०६०)

नरपति-(सं०)-राजा, नृप। उ० नरपति सकल रहहिं रुख ताकें। (मा० २।२५।१)

नरपाल-(सं०)-राजा, नृप।

नरपालू-दे० 'नरपाल'। उ० बिबरन भयउ निपट नरपालू। (मा० २।२९।३)

नरम-(फ़ा० नर्म)-मृदु, कोमल, मुलायम।

नरलोक-(सं०)-मृत्युलोक, संसार। उ० नाम नरलोक पाताल कोउ कहत किन। (क० ६।४५)

नरवइ-(सं० नर+वर)-मनुष्यों में श्रेष्ठ, राजा। उ०भयउ न होइहि, है न, जनक सम नरवइ। (जा० ७)

नरहरि-(सं०)-१. दे० 'नरकेशरी', २. तुलसीदास के गुरु नरहरदास, ३. नर रूप से लीला करनेवाले भगवान् रामचंद्र। उ० १.नरहरि किए प्रगट प्रहलादा। (मा० २। २६५।३)

नरहरी-दे० 'नरहरि'। उ० ३. लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी। (मा० ५।४।१)

नरेश-(सं०)-राजा, नृप, भूप।

नरेस-दे० 'नरेश'। उ० ब्याही जानकी, जीते नरेस देस-देस के। (क० १।२१) नरेसहि-राजा को। उ० परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि। (जा० १२८)

नरेसु-दे० 'नरेश'। उ० कहै तुलसीदास क्यों मतिमंद सकल-नरेसु। (गी० ७।९)

नरेसू-दे० 'नरेश'। उ० सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। (मा० २।२३५।३)

नरो-नर, पुरुष, मर्द। उ० स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो। (वि० २२६)

नरौं-(?)-आगे या पीछे का चौथा दिन, नरसों। उ० आजु कि कालिह परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो। (क० ७।१७९)

नर्क-दे० 'नरक'।

नर्तक-(सं० नर्त्तक)-नाचनेवाला, नट। उ० दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज। (मा० ७।२२)

नर्तकी-(सं० नर्त्तकी)-नाचनेवाली स्त्री, रंडी, वेश्या। उ० माया खलु नर्तकी बिचारी। (मा० ७।११६।२)

नर्म-(सं० नर्मन्)-१. परिहास, क्रीड़ा, खेल, हँसी, २. कल्याण, कुशल, ३. आनंद, हर्ष, खुशी। उ०३. धर्म वर्म नर्मद गुणग्रामः। (मा० ३।११। छं० ८)

नर्मद-(सं०)-१. सुख देनेवाला, आनंददायक, २. दिल्लगीबाज़, मसखरा। उ० १. धर्म वर्म नर्मद गुणग्रामः। (मा० ३।११। छं० ८)

नल-(सं०)-१. निषध देश के चंद्रवंशी राजा वीरसेन के पुत्र एक राजा। ये विद्वान तथा सुंदर थे। विशेषतः घोड़ों की परीक्षा तथा उनके संचालन में ये बड़े दक्ष थे। इनका विवाह दमयंती से हुआ था। २. नरकट, ३. कमल, सरोज, ४. राम की एक सेना का बंदर जिसने समुद्र लाघने के लिए पुल बनाया था। कहा जाता है कि इसके हाथ द्वारा पानी में रक्खा हुआ पत्थर एक ऋषि के शाप से कभी नहीं डूबता था। यह विश्वकर्मा का पुत्र था। ५. यदु के एक पुत्र का नाम। उ० ४. तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमंत। (मा० ४।२२)

नलिन-(सं०)-१. कमल, पद्म, २. पानी, ३. सारस। उ० १. अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए। (गी० १।२०)

नलिनी-(सं०)-१. कमलिनी, २ कुमुदिनी, ३. कमलों का समूह,४ ऐसा देश जहाँ कमल बहुत अधिक होते हों। उ० १. कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा। (मा० ५।६।४)

नलु-दे० 'नल'। उ० १. सकृत प्रवेस करत जेहि आस्रम बिगत-बिषाद भए पारथ नलु। (वि० २४)

नव (२)-(सं०)-१. नया, नवीन, २. सुंदर। उ० १. श्याम-नव-तामरस-दाम-द्युति वपुष-छबि, कोटि-मदनार्क अगणित प्रकाशम्। (वि० ६०)

नव (३)-(सं०)-१. नौ, आठ और एक, २. नव व्याकरण। उ० १. सात द्वीप नव खंड लौं तीनि लोक जग माहिं। (वै० ५०) नवगुन-(सं० नवगुण)-नव प्रकार के गुण। शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान तथा अस्तिकता। उ० नवगुन परम पुनीत तुम्हारें। (मा० १।२८८।४) नवग्रह-(सं०)-फलित ज्योतिष में सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नवग्रह। उ० नवग्रह निकर अनीक बनाई। (मा० ७।२७।३) नवद्वारपुर-ऐसा नगर जिसमें ९ द्वार हों। शरीर। शरीर में २ आँख, २ कान, २ नाक, १ मुख, १ गुदा तथा १ मूत्रेन्द्रिय, कुल ९ द्वार हैं। उ० नवमी नवद्वारपुर बसि

जेहि न आपु भल कीन्ह । (वि० २०३) नवनिद्धि-दे० 'नवनिधि'। उ० अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं। (गी० १।२३) नवनिधि-दे० 'निधि'।
नवरस-(सं०)-काव्य के नौ रस। शृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत। उ० तौ नवरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे। (वि० १६६) नवसत-दे० 'नवसप्त'। उ० सो समौ देखि सुहावनो नवसत सँवारि सँवारि। (गी० ७।१८) नवसप्त-(सं०)-नौ और सात, १६ शृंगार। पूर्ण शृंगार। उ० नवसप्त साजें सुंदरीं सब मत्त कुंजर गामिनीं। (मा० १। ३२२। छं० १) नव-सात-दे० 'नवसप्त'। उ० संग नारि सुकुमारि सुभग सुठि राजति बिन भूषन नव-सात। (गी० २।१५)
नवजर-दे० 'नवज्वर'। उ० तुलसी कान्ह बिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो। (कृ० ३६)
नवजल-प्रथम वर्षा का पानी। उ० मनहुँ मीनगन नवजल जोगा। (मा० २।२६४।३)
नवज्वर-(सं०)-नवीन ज्वर, चढ़ता हुआ बुख़ार।
नवधा-(सं०)-नव प्रकार की। उ० नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। (मा० ३।३५।४) नवधाभक्ति-(सं०)-नौ प्रकार की भक्ति। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य और आत्म-निवेदन।
नवनि-१. झुकना, नवना, नम्र होना, २. झुकाव। उ० १. तैसेई स्रम-सीकर रुचिर राजत मुख तैसिए ललित भ्रकुटिन्ह की नवनि। (गी० ३।५)
नवनीत-(सं०)-मक्खन, माखन। उ० संत हृदय नवनीत समाना। (मा० ७।१२५।४)
नवनीता-दे० 'नवनीत'। उ०तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। (मा० ७।११७।८)
नवम-(सं०)-नवाँ, जो गिनती में नवाँ हो। उ० नवम सरल सब सन छलहीना। (मा० ३।३६।३)
नवमी-(सं०)-चांद्र मास के किसी पक्ष की नवीं तिथि। उ० नवमी नवद्वारपुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह। (वि० २०३)
नवल-(सं०)-१. नया, नवीन, २. सुंदर, मनोहर, ३. अनोखा, ४. उज्ज्वल, ५. जवान, युवा। उ० १. पूँछत कहत नवल इतिहासा। (मा० ५।२८।३) ५. सुजस-धवल, चातक नवल! तुही भुवन दस चारि। (दो० २६५)
नवला-(सं०)-नवीन स्त्री, तरुणी। उ० का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि। (ब० १६)
नवावहिं-नवाते हैं, नवा रहे हैं। उ० प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं। (मा० ७।३३।२) नवावौं-नवाऊँ, झुकाऊँ, झुका दूँ। उ० का बापुरो पिनाकु मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं। (गी० ८७)
नवीन-(सं०)-१.नया, नूतन, हाल का, २. विचित्र, अपूर्व, अनोखा, ३. तरुण, जवान। उ०१. गावन लगे राम कल कीरति सदा नवीन। (मा० ७।५०)
नव्य-(सं०)-नया, नवीन। उ० दिव्यतर दुकूल भव्य, नव्य रुचिर चंपक चय। (गी० ७।४)
नश्वर-(सं०)-१. नष्ट होनेवाला, जो नष्ट होने के योग्य हो, मिथ्या, २. हिंसक, विनाशी।
नष्ट-(सं०)-१. जिसका नाश हो गया हो, जो बरबाद हो गया हो, २. जो समाप्त हो गया हो और दिखाई न दे, ३. अधम, नीच, पापी, ४. दरिद्र, निर्धन, कंगाल, ५. व्यर्थ, बेफायदा। उ० ३. नष्टमति, दुष्ट अति, कष्ट रत, खेदगत। (वि० १०)
नस-(सं० स्नायु)-नाड़ी, आँत, अँतड़ी, शरीर के तंतु या रक्तवाहिनी नालिकाएँ। उ० अस्थि सैल सरिता नस जारा। (मा० ६।१५।४)
नसाइ-(सं० नाश)-१. नष्ट हो, बिगड़े, २. नष्ट होकर, बिगड़कर। उ० १. सोइ ब्रत कर फल पावै आवागमन नसाइ। (वि० २०३) नसाइहि-बिगड़ जायगा, नष्ट हो जायगा। उ० काज नसाइहि होत प्रभाता। (मा० ६। ६०।३) नसाई-१.बिगड़े, नष्ट हो, २.नष्ट कर दी, ३.बिगड़ने से। उ० २. भलो कियो खल को निकाई सो नसाई है। (क० ७।१८१) नसाउ-दे० 'नसाई'। उ० ३. तिन्हहिं लागि धरि देह करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ। (गी० ५। ४५) नसाऊ-दे० 'नसाई'। उ० १. अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। (मा० २।४५।१) नसाए-१. नाशकर, २. नाश किया। उ० १. सियनिंदक अघ ओघ नसाए। (मा० १।१६।२) नसातो-नष्ट होता, बरबाद हो जाता। नसाना-नष्ट होता है, खराब होता है। उ० स्वारथरत परलोक नसाना। (मा० ७।४१।२) नसानी-नष्ट हो गई, बिगड़ी, नाश हुई। उ० काम क्रोध बासना नसानी। (वै० ६०) नसाय-दे० 'नसाई'। नसावा-१. नाश करनेवाला, २. नाश किया, बिगाड़ा, खो दिया। उ० १. तपु सुख-प्रद दुख दोष नसावा। (मा० १।७३।१) नसावै-१. नष्ट हो सकती, २. मिटे, नाश हो। उ० १. चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै। (वि० १२३) नसावौं-नष्ट करता हूँ। उ० तेहि सुख पर-अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावौं। (वि० १४२) नसाहिं-नाश हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। उ० सुनत नसाहिं काम मद दंभा। (मा० १।३५।३) नसाहीं-नाश हो जाते हैं। उ० पर संपदा बिनासि नसाहीं। (मा० १।१२१।१०) नसै-नष्ट हो, नाश को प्राप्त हो। नसैहैं-नाश हो जावेंगे, नष्ट होंगे। उ० बंधु समेत प्रानवल्लभ पद परसि सकल परिताप नसैहैं। (गी० ५।५१) नसैहौं-नाश करूँगा। उ० अब लौं नसानी अब न नसैहौं। (वि० १०५)
नसावन-नाश करनेवाला। उ० काम कोह मद मोह नसावन। (मा० १।४३।३) नसावनि-नाश करनेवाली। उ० सरजू सरि कलि कलुष नसावनि। (मा० १।१६।१)
नस्वर-दे० नश्वर'। उ० १. नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि। (मा० ६।७७)
नहछू-(सं० नख+क्षौर)-विवाह की एक रस्म जिसमें वर की हजामत बनती है, नाखून काटे जाते हैं और उसे मेंहदी आदि लगाई जाती है। उ० नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो। (रा० ६)
नहत-(सं० नद्ध, हिं० नाधना)-नाधता है, जोतता है, काम में लगाता है। उ० पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत

छोरत नहत । (वि० १३३) नहते–नाधते, जोतते, काम में लगाते। उ० तौ जमभट साँसति-हर हमसे वृषभ खोजि खोजि नहते। (वि० ६७) नहिकै–नाधकर, जोतकर। उ० नतु और सबै विष बीज बये हर-हाटक काम दुहा नहिकै। (क० ७।३३) नहे–नधे, जुते, जुड़े। उ० सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री। (गी० ५।४६)

नहरनी–(सं० नख + हरणी)–नाखून काटने के लिए प्रयुक्त एक औज़ार। उ० कनक चुनिन सों लसित नहरनी लिए कर हो। (रा० १८)

नहाइ–(सं० स्नान, हिं० नहाना)–१. नहाकर, स्नान करके, २. रोग से मुक्त होने पर नहाकर। उ० २. सगुन कुसल कल्यान सुभ, रोगी उठै नहाइ। (प्र० ४) नहात–नहा रहे थे। उ० जाना मरमु नहात प्रयागा। (मा० २।२०८।३) नहाने–स्नान किया। उ० सबिधि सितासित नीर नहाने। (मा० २।२०४।२) नहावा–स्नान किया। उ० सकल सौच करि राम नहावा। (मा० २।६४।२) नहाहीं–स्नान करते हैं। उ० ते सुकृती मन मुदित नहाहीं। (मा० १।४१।३) नहाहू–नहा लो, नहाओ। उ० तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। (मा० २।५३।१) नह्यो–नहाना, नहाया। उ० जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं। (वि० २६०)

नहारू (१)–(?)–१. बाज, २. ताँत, ३. चाम का टुकड़ा। उ० २. मारसि गाइ नहारू लागी। (मा० २।३६।४)

नहारू (२)–(सं० नरहरि, हिं० नाहर)–बाघ, व्याघ्र।

नहिं–दे० 'नहीं'। उ० पाप संताप घनघोर संसृति दीन, भ्रमत जगयोनि, नहिं कोपि त्राता। (वि० ११)

नहिंन–नहीं। उ० रामचरन तजि नहिंन आन गति। (वि० १२८)

नहियर–(सं० मातृगृह, हिं० मैहर)–पीहर, मैका।

नहीं–(सं० नहि)–एक अव्यय जिसका प्रयोग निषेध या अस्वीकृति प्रकट करने के लिए होता है। न। उ० जनि लेहु मातु कलंकु करुना, परिहरहु अवसर नहीं। (मा० १।६७। छं० १)

नहुष–(सं०)–अयोध्या के एक प्राचीन राजा जो अंबरीष के पुत्र और ययाति के पिता थे। बृहस्पति ने कुछ दिन के लिए इन्हें इंद्रासन दिया था। वहाँ ये इंद्राणी पर आसक्त हुए और हठकर उनसे मिलने के लिए सप्तर्षियों को कहार बना पालकी पर चले। इस पर अगस्त्य ने उन्हें सर्प हो जाने का शाप दिया। बाद में युधिष्ठिर ने उन्हें मुक्त किया। उ० हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस। (मा० २।६१)

नहुषु–दे० 'नहुष'। उ० ससि गुर तिय गामी नहुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान। (मा० २।२२८)

नाँगे–(सं० नग्न)–नंगा, वस्त्रहीन, जिसके पास कुछ न हो। उ० भौन में भाँग, धतूरोई आँगन, नांगे के आगे हैं, माँगने बाढ़े। (क० ७।१५४)

नाँगो–दे० 'नाँगे'। उ० नाँगो फिरै कहै माँग तो देखि 'न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो'। (क० ७।१५३)

नाँघी–(सं० लंघन)–लाँघी, फलाँगकर पार की। उ० कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजै। (गी० ३।७)

नांत–(न + अंत)–जिसका अंत न हो, अनंत।

नांदीमुख–(सं०)–एक आभ्युदयिक श्राद्ध जो विवाह आदि मंगल अवसरों पर किया जाता है।

नाँय–दे० 'नाउँ'।

ना–(सं०)–नहीं, न। उ० केवट की जाति कछू बेद ना पढ़ाइहौं। (क० २।८)

नाइ (१)–नम्र होकर, २. नवाकर, ३. डालकर, ४. खोया, बहाया। उ० २. चले मनहिं मन कहत बिभीषन सीस महेसहि नाइ कै। (गी० ५।२८) नाइन्हि–नवाया। उ० सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि। (पा० ८४) नाइहि–नवावेगा, झुकावेगा। उ० कालउ तुअ पद नाइहि सीसा। (मा० १।१६५।१) नाइहै–नवावेगा, झुकावेगा। उ० भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै। (वि० १३५) नाईं (१)–दे० 'नाइ (१)'। नाउ (१)–१. झुको, नम्र हो, २. नावो, डालो, ३ झुकावो। उ० २. सत्रु सयानो सलिल ज्यों राज सीस रिपु नाउ। (दो० ५२०) नाऊँ (१)–झुकाता हूँ, नवाता हूँ। नाए–१. नवाया, झुकाया, २. झुकाने पर, ३. परास्त किया, ४. डाला। उ० १. प्रभुपद जलज सीस तिन्ह नाए। (मा० १।६३।३) ३. निज सुंदरता रति को मद नाए। (क० ७।४५) नाएसि–नवाया, नाया। उ० जाइ कमल पद नाएसि माथा। (मा० २।२१।४) नाओं–नवाता हूँ, सिर नवाता हूँ। नायउ–नाया, नवाया। उ० द्वार आइ पद नायउ माथा। (मा० २।६।१) नाये–(सं० नमन)–१. नवा दिये, २. नम्र हुए, ३. नवाए हुए, ४. नवाने से। नायो–१. डाल दिया, डाला, २. नवाया, ३. नम्र हुए, सिर झुकाए। उ० १. तुलसिदास सुनि बचन क्रोध अति पावक जरत मनहुँ घृत नायो। (गी० ६।२) नाव (१)–(सं० नामन)–१. नाओ, डालो, २. नमन होने का आदेशसूचक शब्द। नावइ–नवाते हैं, नवाने लगे। उ० बार-बार नावइ पदसीसा (मा० ४।७।७) नावत–१. डालने पर, २. झुकाने पर, ३. डालते हैं, ४. नवाते हैं, झुकाते हैं। उ० ४. सुरनर मुनि सब नावत सीसा। (मा० १।५०।३) नावहिं–नवाते हैं। उ० भए परसपर प्रेमबस फिरि फिरि नावहिं सीस। (मा० १।३४२) नावा (१)–(सं० नमन)–नवाया, झुकाया। उ० बहुरि राम मायहि सिरु नावा। (मा० १।५७।१) नावौं–१. नवाता, २. नवाता हूँ, ३. डालता हूँ। उ० १. आश्रम जाइ जाइ सिरु नावौं। (मा० ७।११०।५) २. सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं। (वि० २०८)

नाइ (२)–दे० 'नाईं (२)'।

नाईं–(सं० न्याय)–तरह, समान। उ० नहिं आदरेहु भगति की नाईं। (मा० ७।११५।५)

नाईं (२)–(सं० नापित)–हज्जाम, नाऊ, बाल बनानेवाला।

नाईं (३)–(सं० न्याय)–तरह, भाँति, समान। उ० राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। (क० २।२)

नाउँ-(सं० नाम)-नाम, नावँ। उ० लीजै गाँउ, नाउँ लै रावरो है जग ठाउँ कहूँ हूँ जीबो। (कृ० ६)
नाउ (२)-(सं० नौ, फा़ नाव)-नौका, तरणी।
नाऊँ (२)-दे० 'नाउँ'। उ० ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरिनाऊँ। (मा० १।२६।३)
नाऊ-(सं० नापित)-नाई, हजामत बनानेवाला। उ० नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ। (मा० १।३१६)
नाक (१)-(सं० नक, प्रा० नक्क)-१. सूँघने और साँस लेने की इंद्रिय, नासा, नासिका, २ प्रतिष्ठा, मर्यादा। उ० १. दससुख-बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना है। (गी०७।१३) २. नाक पिनाकहि संग सिधाई। (मा० १।२६६।४) मु० बिनाए नाक चना है-बहुत तंग किया है, बहुत परेशान किया है। उ०दे०'नाक'। मु० नाक सकोरी-घृणा करेगा, नहीं चाहेगा। उ० सुन अब नरकहु नाक सकोरी। (मा० १।२६।१) मु० नाकहि आई-परेशान हो गया, तंग आ गया। उ० सहि देख्यो तुम्ह सों कह्यो, अब नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छीजै। (कृ०७) नाकहि-नाक में। उ० दे० मु० 'नाकहि आई'।
नाक (२)-(सं० नक्र)-मगर की जाति का एक जीव।
नाक (३)-(सं०)-१. स्वर्ग, २. आकाश। उ० १. महि पाताल नाक जसु ब्यापा। (मा० १।२६५।३)
नाकनटीं-स्वर्ग की नर्तकियाँ, अप्सराएँ। उ० नाकनटीं नाचहिं करि गाना। (मा० १।३०६।२)
नाक-नायक-स्वर्ग के नायक, इंद्र। उ० करि पुटपाक नाक-नायक हित घने घने घर घलतो। (गी० ५।१३)
नाकप-(सं०)-१. लोकपाल, २. इंद्र। उ० २. राँकनि नाकप रीझि करै, तुलसी जग जो जुरै, जाचक जोरो। (क० ७।१५३)
नाकपति-(सं०)-इंद्र।
नाकपाल-(सं०)-इंद्र, स्वर्ग के राजा। उ० भूमि भूमिपाल व्यालपालक पताल, नाकपाल, लोकपाल जेते सुभट समाज हैं। (क०५।२२)
नाकेस-(सं० नाकेश)-इंद्र। उ० नाकेस-दुर्लभ भोग लोग करहिं न मन विषयनि हरै। (गी० ७।१६)
नाग-(सं०)-१. सर्प, साँप, २. हाथी, ३. मेघ, बादल, ४. आठ की संख्या, ५. पान, ६. दुष्ट या निर्दय मनुष्य, ७. एक देश का नाम, ८. सीसा, सातों धातुओं में एक, ९. नागकेशर, १०. नागरमोथा, ११. हस्तिनापूर, १२. एक जाति विशेष, जिसकी उत्पत्ति कश्यप और कद्रू से मानी गई है और जिसका स्थान पाताल है। उ० १. जसु पावन रावन नाग महा। (मा० ६।१११।२) २. मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। (मा० ६।१२।१)१२. नर-नाग बिबुध बंदिनि, जय जह्नु बालिका। (वि० १७)
नागअरि-हाथी का शत्रु, सिंह। उ० जिमि ससु चहै नाग-अरि भागू। (मा० १।२६७।१)
नागनग-(सं०)-गजमुक्ता। उ० निज गुन घटत न नागनग परखि परिहरत कोल। (दो० २८९)
नागपाश-(सं०)-वरुण के एक अस्त्र का नाम जिससे शत्रुओं को बाँध लेते थे। तंत्र के अनुसार ढाई फेर के बंधन को नागपाश कहते हैं।
नागपास-दे० 'नागपाश'। उ० नागपास बाँधेसि लै गयऊ। (मा० ५।२०।१)
नागफाँस-दे० 'नागपाश'।
नागभूप-नागों के राजा, शेषनाग। उ० बरनत यह अमित रूप थकित निगम नाग भूप। (गी० ७।७)
नागमनि (सं० नागमणि)-गजमुक्ता। उ० उर अति रुचिर नागमनि माला। (मा० १।२१६।३)
नागर-(सं०)-१. चतुर, निपुण, २. नगर में रहनेवाला, ३. नायक, ४. सोंठ, ५. नारंगी। उ० १. मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए। (कृ० ५०) २. गनी गरीब ग्रामनर नागर। (मा० १।२८।३)
नागराज-गजेन्द्र जिसका उद्धार विष्णु ने किया था। उ० नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन। (वि० ८३)
नागरि-चतुर स्त्री। उ० तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागरमनि नंदललाऊ। (कृ० १२) नागरिन्ह-१. शहर की स्त्रियाँ, चतुर स्त्रियाँ, २. चतुर या शहर की स्त्रियों के। उ० २. तुलसी ये नागरिन्ह जोगपट जिन्हहिं आजु सब सोही। (कृ० ४१)
नागरिपु-१. हाथी का शत्रु, सिंह, २. सर्पों के शत्रु गरुड़। उ० १. निजकर डासि नागरिपु छाला। (मा०१।१०६।३)
नागरी-१. नगर की रहनेवाली या चतुर स्त्री, २. भारत की प्रसिद्ध लिपि जिसमें हिंदी आदि भाषाएँ लिखी जाती हैं। उ० १. ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को। (वि० २६६)
नागा-दे० 'नाग'। उ० २. दासी दास तुरग रथ नागा। (मा० १।१०१।४)
नागु-दे० 'नाग'।
नागेन्द्र-(सं०)-१. गजेन्द्र, २. शेषनाग। उ० १. लोभ-अति मत्त नागेंद्र-पंचाननं, भक्त हित-हरन-संसार भारं। (वि० ४६)
नाघइ-(सं० लंघन, हिं० लाँघना)-लाँघेगा, लाँघ सकेगा। उ० जो नाघइ सत जोजन सागर। (मा० ४।२६।१) नाघत-लाँघते हुए, इस पार से उस पार जाते हुए। उ० नाघत सरित सैल बन बाँके। (मा० २।१२८।१) नाघहिं-लाँघ जाते हैं। उ० नाघहिं खग अनेक बारीसा। (मा० ६।२८।१) नाघि-(सं० लंघन)-लाँघकर, फाँदकर। उ० बारिधि नाघि एक कपि आवा। (मा० ६।६।१)
नाच-(सं० नृत्य, प्रा० णच्च, नच्च)-१. नृत्य, नर्तन, नाचने की क्रिया, २. कृत्य, कर्म, धंधा, ३. इधर उधर फिरना, दौड़ना। उ० १. करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो। (वि० ६८)
नाचइ-नाचता है। उ० जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा। (मा० ६।२४।१) नाचत-१. नाचते हैं, २. नाचते हुए। उ० २. जाकी मायाबस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो। (वि० ६८) नाचहिं-नाचते हैं, नृत्य करते हैं। उ० नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं। (पा० ५६) नाचा-नाचने लगा। उ० सिर भुजहीन रुंड महि नाचा। (मा० ६।१०३।१) नाचि-नाचकर। उ० नाचि कूदि करि लोग रिझाई। (मा० ६।२४।१)

नाज (१)-(फ़ा० नाज़)-१. नखरा, बनावट, दिखावा, २. घमंड ।

नाज (२)-(सं० अन्नाद्य)-अनाज, खाद्य सामग्री ।

नाजु-दे० 'नाज (२)' । उ० बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कंदमूल फल अमिय नाजु । (गी० २।७)

नाजुक-(फ़ा० नाज़ुक)-कोमल, सुकुमार ।

नाटक-(सं०)-१. अभिनय, वह दृश्य जिसमें स्वांग के द्वारा चरित्र दिखाए जायँ, २. दृश्यकाव्य, अभिनय ग्रंथ, ३. नट, नाच या अभिनय करनेवाला ।

नाठी-(सं० नष्ट)-नष्ट हो गई । उ० मुनि अति बिकल मोंह मति नाठी । (मा० १।१३४।३) नाठे-नष्ट हो गए । उ० आपनि सूझि कहौं, पिय ! बूझिए, जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे । (क० ६।२८)

नाड़-दे० 'नारि' ।

नात-(सं० ज्ञाति, प्रा० णाति, हिं० नात)-१. नाता, रिश्ता, संबंध, २.संबंधी, नातेदार। उ० १.आरज सुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात । (मा० २।६७)

नाता-रिश्ता, संबंध । उ० मानउँ एक भगति कर नाता । (मा० ३।३५।२) नाते-दे० 'नात' । उ० १. तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावे । (वि० ७६)

नाती-(सं नप्तृ, प्रा० नत्ति)-लड़की या लड़के का लड़का। उ० सुत समूह जन परिजन नाती । (मा० १।१८१।२)

नातो-रिश्ता, संबंध । उ० नातो मिटत न धोए । (गी० २।६१)

नात्र-(सं० ना + अत्र)-यहाँ नहीं, इसमें नहीं, इस विषय में नहीं । उ० व्रजंति नात्र संशयं । (मा० ३।४।१२)

नाथ-(सं०)-१. स्वामी, मालिक, भगवान, २. पति, भर्तार, ३. नाक का नथ, एक आभूषण, ४. पशुओं की नाक की रस्सी, ५. गोरखपंथी साधुओं की एक पदवी । उ० १. तत्र अक्षिप्त तव विषम माया नाथ ! अंध मैं मंद व्यालाद गामी । (वि० ५६) नाथहिं-स्वामी को, मालिक को, भगवान को । उ० अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें । (वि० ११८) नाथहि-प्रभु को, नाथ को । उ० तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही । (मा० १।२०६।४) नाथहू-नाथ भी, भगवान भी । उ० नाथहू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै प्रभू हू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को । (क० ७।७०)

नाथा-दे० 'नाथ' । उ० १. आयसु काह होइ रघुनाथा । (मा० २।५६।४)

नाथु-दे० 'नाथ' । उ० १. कियउ निषादनाथु अगुआई । (मा० २।२०३।१)

नाथू-दे० 'नाथ' । उ० १. चलन चहत बन जीवननाथू । (मा० २।५८।२)

नाद-(सं०)-१. शब्द, ध्वनि, आवाज़, २. वर्णों का अव्यक्त मूल रूप, ३. संगीत । उ० १. पुनि-पुनि सिंघनाद करि भारी । (मा० १। १८२।४)

नादत-बजते हैं, शब्द करते हैं, ध्वनि करते हैं । उ० इन्हहीं के आए ते बधाए ब्रज नित नए, नादत बाढ़त सब सब सुख जियो है । (कृ० १६)

नादा-दे० 'नाद' ।

नादू-दे० 'नाद' । उ० १. मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू । (मा० २।५४।२)

नाना (१)-(सं०)-१. अनेक प्रकार के, बहुत तरह के, विविध, २. अनेक, बहुत । उ० १. मध्य बयस धनहेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय । (वि० ८३)

नाना (२)-(?)-मातामह, माता का पिता ।

नान्ह-(सं० न्यंच)-१. छोटा, लघु, २. हीन, क्षुद्र, तुच्छ, ३. पतला, बारीक, महीन । उ० ३. तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह । (दो० ४६२)

नाप-(सं० मापन, हिं० माप)-१. पानी या अनाज भरने का बड़ा मटका, २. पैमाइश, परिमाण, माप । उ० १. नाप के भाजन भरि जलनिधि जल भो । (ह० ७।१) २. तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख । (दो० २८१)

नापे-नापा, पैमाइश की । नापे जोखे-अंदाज़ा किया, अनुमान लगाया । उ० बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं । (गी० १।६३)

नाभं-दे० 'नाभि' । उ०तप्त कांचन-वस्त्र शस्त्र विद्या-निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोजनाभं । (वि० ५०) नाभ-दे० 'नाभि' ।

नाभि-(सं०)-नाभी, तुंडिका, पिंडज जीवों के पेट के बीच का वह गड्ढा जहाँ गर्भावस्था में जरायु-नाल जुड़ा रहता है । उ० नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भवँर छबि छीनि। (मा० १।१४७)

नाभी-दे० 'नाभि' । उ० नाभी सर त्रिबली निसेनिका, रोमराजि सैवल छबि पावति । (गी० ७।१७)

नाम-(सं० नामन्)-१. संज्ञा, आख्या, किसी व्यक्ति या वस्तु का निर्देश करनेवाला शब्द। वह शब्द जिससे किसी व्यक्ति या वस्तु का बोध हो । २.ख्याति, प्रसिद्धि । उ०१. सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह । (मा० १।७ ख) नामन्ह-नामों । उ० राम सकल नामन्ह ते अधिका । (मा० ३।४२।४) नामहुँ-नाम ने भी । उ० यह बड़ि त्रास दास तुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो । (वि० ६६) नामैं-नाम को । उ० हर से हरनिहार जपैं जाके नामैं । (गी० ५।२५)

नामा-दे० 'नाम' । उ० १. रामचरित मानस एहि नामा । (मा० १।३५।४)

नामानि-दे० 'नामानी' ।

नामानी-(सं० नामानि)-अनेक नाम, नामों का समूह । उ० जन्म कर्म अनंत नामानी । (मा० ७।५२।२)

नामिनी-१. नामवाली, संज्ञावाली, २. विख्यात, प्रसिद्ध, ३. नामधारी, ४. प्रसिद्धि पाना, ५. रूप । उ० १. जय महेसभामिनी, अनेक रूप-नामिनी । (वि० १६)

नामी-नामवाला । उ० समुझत सरिस नाम अरु नामी । (मा० १।२१।१)

नामु-दे० 'नाम' । उ० १. नामु सत्य अस लाग न केहू । (मा० २।२७१।१)

नामू-दे० 'नाम' । उ० १. सुमिरि पवन सुत पावन नामू। (मा० १।२६।३)

नायँ-दे०'नाय (२)' । नाम से । उ०तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयंद जाके अर्द्ध नायँ । (वि० ८३)

नाय (१)-(सं०)-१. नीति, २. उपाय, युक्ति, ३. नेता, अगुआ, ४. आधार, सहारा।
नाय (२)-(सं० नामन्)-नाम।
नायकं-दे० 'नायक'। उ० २. धरं त्रिलोक नायकं। (मा० ३।४।छं०३) नायक-(सं०)-१. नेता, अगुआ, प्रधान, २. स्वामी, प्रभु, ३. श्रेष्ठ पुरुष, ४. सेनाध्यक्ष, फ़ौज का अफ़सर, ५. कलावंत, संगीतकला में निपुण, ६. एक वर्ण-वृत्त, ७. नायिका का पति, ८. साहित्य में शृंगार का आलंबन या साधक वह पुरुष जिसका चरित्र किसी काव्य या नाटक आदि का मुख्य विषय हो। उ० १ दच्छहि कान्ह प्रजापति नायक। (मा० १।६०।३) नायकहि-नायक से, स्वामी से। उ० चले मिलन मुनि नायकहि, मुदित राउ एहि भाँति। (मा० १।२१४)
नायका (१)-(सं० नायिका) नायक की स्त्री।
नायका (२)-(सं० नायक) नायकों को, सेनापतियों को। उ० दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका। (मा० ३।२०।छं०३)
नायकु-दे० 'नायक'।
नारकी-(सं० नारकिन्)-१. पापी, नरक में जाने योग्य कर्म करनेवाला, २. नरक में रहनेवाला। उ० २. पाव नारकी हरि पदु जैसें। (मा० १।३३५।३)
नारद-(सं०)-१. एक प्रसिद्ध देवर्षि जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। ये बहुत बड़े हरिभक्त थे साथ ही कलहप्रिय भी थे। इन्हें ब्रह्मा का शाप था कि तुम सर्वदा घूमते रहोगे और इसी कारण ये एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते थे। घूमने और कलहप्रिय स्वभाव के कारण ये चुगली और लड़ाई-झगड़ा लगानेवाले थे। इनके इस कृत्य से पौराणिक कहानियाँ भरी पड़ी हैं। २. विश्वामित्र के एक पुत्र, ३. एक प्रजापति, ४. झगड़ा लगानेवाला आदमी। उ० १. बालमीक नारद घट जोनी। (मा० १।३।२) नारदहि-नारद को। उ० सनकादिक नारदहि सराहहिं। (मा० ७।४२।४) नारदहूँ-नारद भी। उ० नारदहूँ यह भेदु न जाना। (मा० १।६८।१) नारदी-(सं० नारद)-सत्य भी कहना और झगड़ा भी लगा देना, चतुरतापूर्ण बात। उ० लखि नारद-नारदी उमहिं सुख भा उर। (पा० १६)
नारा-(सं० नाल)-१.सूत्र, २. जल, ३. छोटी नदी, नाला, ४. कुसुम। उ० ३. चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा। (मा० ३।१३३।१)
नाराच-(सं०)-तीर, ऐसा तीर जो पूर्णतः लोहे का बना हो। उ० छाँड़े बिपुल नाराच। (मा० ३।२०।४)
नारायणं-नारायण को। उ० नौमि नारायणं नरं करुणायनं ध्याव पारायणं ज्ञान मूलम्। (वि० ६०) नारायण-(सं०)-ईश्वर, भगवान्। कहीं-कहीं इन्हें नर का पुत्र और कहीं-कहीं भाई होना लिखा है। दे० 'नर'।
नारायन-दे० 'नारायण'। उ० नर नारायन सरिस सुभ्राता। (मा० १।२०।३)
नारि (१)-(सं० नाल, नाड़)-ग्रीवा, गर्दन। उ० जियत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि। (दो० ३०५)
नारि (२)-(सं० नारी)-स्त्री, औरत। उ० का घूँघट मुख मूँदहु नबला नारि। (ब० १६)
नारियरु-(सं० नारिकेल)-नारियल का फल। उ० टकटोरि कपि ज्यौं नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए। (जा० ६६)
नारी (१)-(सं०)-स्त्री, औरत। उ० सोह न बसन बिना बर नारी। (मा० १।१०।२) नारिन्ह-स्त्रियाँ, औरतें। उ० सब नारिन्ह मिलि भेंटि भवानी। (मा० १।१०२।४) नारिहि-नारी को, स्त्री को। उ० पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मतिधीर। (मा० ७।११५ क)
नारी (२)-(सं० नाडी)-नाड़ी, नब्ज़।
नारी (३)-(सं० नाल)-नाली, प्रणाली।
नाल-(सं०)-कमल का डंठल, नलकी। उ० कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं। (मा० १।२५३।४)
नाव (२)-(सं० नौ का बहुवचन, मि० फ़ा० नाव)-नौका, तरनी, डोंगी, जलयान। उ० पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है? (क० २।७)
नावरि-१. नाव की एक क्रीड़ा, २. छोटी नौका। उ० १. जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं। (मा० ६।८८।३)
नावा (२)-(सं० नौ)-नाव, नौका।
नाश-(सं०)-१.न रह जाना, लोप, ध्वंस, मृत्यु, २. ग़ायब होना, ३. पलायन।
नासं-दे० 'नाश'। उ० कंठदर, चिबुक बर, वचन गंभीरतर, सत्य संकल्प सुरत्रास नासं। (वि० ५१)
नासक-(सं० नाशक)-१. नाश करनेवाला, २. दूर भगानेवाला। उ० १. को हित संत अहित कुटिल नासक को हित लोभ। (स० २६१)
नासन-(सं० नाश)-नाश करना, बध करना। नासहिं-नष्ट हो जाते हैं। उ० नासहिं बेगि नीति अस सुनी। (मा० ३।२१।६) नासा (१)-(सं० नाश)-१. नाश किया, नाश करता है, २. नाश, ३. नष्ट करनेवाला। उ० १. दलइ नासु जिमि रबि निसि नासा। (मा० १।२४।३) नासिबे-नष्ट करने। उ० जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि। (वि० १८४) नासी-१. नष्ट कर दी है, २. नष्ट हो गई है। उ० १. दास तुलसी दीन, धर्म बंसलहीन अमित अति खेद, मति मोहनासी। (वि० ६०) नासे-१. नष्ट हो गए, २. नष्ट हो जायँगे, ३. नष्ट हो जाने पर। नासै-नष्ट हो सकता है, नष्ट होता है। उ० संसृति-सन्निपात दारुन दुख बिनु हरिकृपा न नासै। (वि० ८१)
नासा (२)-(सं०)-नाक, नासिका। उ० मुकुट कुंडल तिलक, अलक अलि ब्रात इव, भ्रकुटि द्विज अधर बर चारु नासा। (वि० ६१)
नासापुट-(सं०)-१. नाक का अगला भाग, नथना, २. नाक के पुरवे या छेद।
नासिक-दे० 'नासिका'। नाक। उ० नासिक सुभग कृपा परिपूरन, तरुन अरुन राजीव बिलोचन। (गी० ७।१६)
नसिका-(सं०)-नाक। उ० नासिका चारु, सुकपोल, द्विज वज्रद्युति, अधर बिंबोपमा, मधुर हासं। (वि० ५१)
नासू-(सं० नाश)-नाश, विनाश, मृत्यु। उ० नाथ न होइ मोर अब नासू। (मा० १।१६५।४)
नाह-दे० 'नाह'। नाथ ने। उ० १. तब नर नाहँ बसिष्ठु

बोलाए। (मा० २।६।१) नाह-(सं० नाथ)-१. स्वामी, मालिक, २. पति, मर्द, शौहर, भर्त्तार। उ० १. नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी। (मा० २।१४०।२)

नाहक-(फ़ा० ना+अर० हक़)-व्यर्थ, वृथा, झूठा। उ० सो तैं सब नहिं आन तब नाहक होसि मलान। (स० २१०)

नाहर-(सं० नरहरि)-१. सिंह, शेर, २. शेर के समान पराक्रमी।

नाहरु-दे० 'नाहर'। उ० २. सुनि हँसि उठ्यौ नंद को नाहरु, लियो कर कुधर उठाइ। (कृ० १८)

नाहरू (१)-(सं० नरहरि)-शेर, सिंह।

नाहरू (२)-(?)-१. चाम का टुकड़ा, २. मोट या चरसा खींचने का रस्सा, ३. ताँत।

नाहाँ-दे० 'नाहँ'। उ० १. सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। (मा २।७७।३)

नाहिं-(सं० नहिं)-नहीं। उ० बिनु प्रयास सब साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहिं सँभारे। (गी०२।२) नाहिंन-१. नहीं है, २. नहीं। उ०१. नाहिंन चरन रति ताहि तें सहौं बिपति, कहत स्रुति सकल मुनि मतिधीर। (वि० १६७) नाहिनै-नहीं है। उ० नाहिनै काहू लहो सुख प्रीति करि इक अंग। (कृ० ४४) नाहीं-नहीं, नहीं है। उ० निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। (मा० १।८।२)

नाहु-दे० 'नाह'। उ० १. जानति हहु बस नाहु हमारें। (मा० २।१४।३)

नाहू-दे० 'नाह'। उ० २ करम लिखा जौं बाउर नाहू। (मा० १।६७।४)

निंदक-निंदा करनेवाला। उ० सिय निंदक अघ ओघ नसाए। (मा० १।१६।२)

निंदत-(सं० निंदा)-निंदा करते हुए, निंदा करने से। उ० जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार। (दो० ४६४) निंदति-निंदा करती है, निंदा कर रही है। उ० रोम रोम छबि निंदति सोम मनोजनि। (जा० १०६) निंदहिं-निंदा करते हैं। उ० निंदहिं बलि हरिचंद को 'का कियो करन दधीचि'। (दो० ३८२) निंदैं-निंदा करते हैं। उ० निंदै सब साधु सुनि मानौं न सकोचु हौं। (क० ७।१२१) निंदै-निंदा करता है। उ० सरद सुधा सदन-छबिहि निंदै बदन। (गी० १।८०)

निंदरी-१. निंदा करके, निरादर करके, २. मुझसे बिना पूछे। उ० २. सो कह चलेसि मोहि निंदरी। (मा० ४।४।१)

निंदा-(सं०)-१. दोष-कथन, बुराई का वर्णन, २. अपवाद, बदनामी। उ० १. सर-निंदा करि ताहि बुझावा। (मा० १।३६।२)

निंदित-(सं०)-दूषित, बुरा, जिसकी निंदा हो। उ० जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार। (दो० ४६४)

निंद्य-निन्दा के योग्य, बुरा। उ० प्रबल-पाखंड-महिमंडला-कुल देखि निंद्यकृत्-अखिल-मख कर्म-जालं। (वि० ५२)

निः-(सं० निस्)-निषेध, नहीं। उ० गहन-दहन-निर दहन-लंक, निःसंक, बंकभुव। (ह० १)

निःकंप-अचल, स्थिर, जो काँपता न हो। उ० निर्भरानंद निःकंप निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता। (वि० ५६)

निःकाज-निष्प्रयोजन, बिना किसी काम के। उ० निःकाज राज बिहाय नृप इव स्वप्न-कारागृह पर्यो। (वि० १३६)

निःकाम-(सं० निष्काम)-जिसमें किसी प्रकार की इच्छा या कामना न हो। उ० बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम। (मा० ३।१६)

निःपाप-पापरहित।

निःपापा-पापरहित, बिना पाप का।

निःप्राप्य-अप्राप्य, जो मिल न सके। उ० संत संसर्ग त्रय-वर्ग पर परम पद आप, निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने। (वि० ५७)

निःशुंभ-(सं०)-एक राक्षस का नाम। यह शुंभ तथा निमुचि का भाई था। नमुचि तो इंद्र के हाथ से मारा गया, परंतु शुंभ और निशुंभ ने देवताओं को जीत लिया और स्वर्ग के राजा बन गए। जब इन दोनों ने रक्तबीज से सुना कि दुर्गा ने महिषासुर को मार डाला तो निशुंभ ने प्रतिज्ञा की मैं दुर्गा को मार डालूँगा। उसी समय नर्मदा नदी से निकलकर चंड और मुंड नामक दो और राक्षस उनसे मिल गए। शुंभ और निशुंभ ने दुर्गा से कहलाया कि तुम हममें से किसी के साथ विवाह करो। इस पर दुर्गा ने कहलाया कि युद्ध में मुझे जो जीतेगा उसी के साथ मैं विवाह करूँगी। लड़ाई हुई। दुर्गा ने धुम्रलोचन, चंडमुंड, रक्तबीज आदि को मारने के बाद निशुंभ और शुंभ को मार डाला। इनकी मृत्यु के बाद इंद्र पुनः स्वर्ग के राजा बने। उ० शुंभ निःशुंभ कुंभीश रणकेशरिणि, क्रोध बारिधि बैरि वृंद बोरे। (वि० १५)

निःसंक-(सं० निःशंक)-१. निडर, निर्भय, २. अशक्त, पुरुषार्थहीन। उ० १. गहन-दहन-निरदहन-लंक, निःसंक, बंक भुव। (ह० १)

निःसरित-निकली हुई। उ० चरित-सुरसरित कवि-मुख्य-गिरि निःसरित पिबत मज्जत मुदित संतसमाजा। (वि० ४४)

निःसीम-जिसकी सीमा न हो, अनंत। उ० दे० 'निःकंप'।

नि-(सं०)-एक उपसर्ग जिसके लगने से शब्दों में निम्नांकित अर्थों की विशेषता हो जाती है-१. संघ या समूह, जैसे निकर, २. अधोभाव, जैसे निपतित, ३. अत्यंत, जैसे निगृहीत, ४. आदेश, जैसे निदेश, ५. नित्य, ६. कौशल, ७. बंधन, ८. अन्तर्भाव, ९. समीप, १०. दर्शन, ११. उपरम, १२. आश्रय, १३. संशय, १४. क्षेप, १५. दान, १६. मोक्ष, १७. विन्यास, १८. निषेध।

निग्रराइ-(सं० निकट)-पास आए हैं, पास आ लगे हैं। उ० फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निग्रराइ। (मा० ३।४०) निग्रराई-(सं० निकट)-नज़दीक गए। उ० तेहि कि मोह ममता निग्रराई। (मा० २।२७७।१) निग्रराए-समीप आकर। उ० बरषहिं जलद भूमि निग्र-

राएँ। (मा० ४।१४।२) निअरानां–निकट या समीप आ गया। उ० मान न ताहि कालु निअराना। (मा०६।३२।५) निअरानु–समीप आ गया है। उ० असगुन असुभ न गनहिं गत, आइ कालु निअरानु। (प्र० ५।६।६) निअराने–समीप जा पहुँचे, नज़दीक गए। उ० आश्रम निकट जाइ निअराने। (मा०२।२३५।१) निअराया–निकट पहुँच गए। उ० बेगि बिदेह नगर निअराया। (मा० १।२१२।२) निअरावा–पास चला गया, समीप चला गया। उ० मैं अभिमानी रबि निअरावा। (मा० ४।२८।२)

निअ्राउ–(सं० न्याय)–इन्साफ़, न्याय। उ० नीक सगुन, बिबरिहि झगर, होइहि धरम निआउ। (प्र० ६।६।२)

निकंद–१. नाश, २. नाशकर्ता, ३. उखड़ा हुआ, ४. नाश में, नाश करने में। उ० ४. खल बृंद निकंद महा कुसलं। (मा० ६।१११।५)

निकंदन–[सं० नि+कंदन (=नाश, बध)] १. नाश, विनाश, २. नाशक, विनाश करनेवाला, ३. उखाड़नेवाला। उ० २. सकल-अमंगल-मूल-निकंदन। (वि० ३६) निकंदिनि–नाश करनेवाली। उ० असुर सेन सम नरक निकंदिनि। (मा० १।३१।५) निकंदिनी–नाश करनेवाली। उ० पावनि पय सरित सकल मल-निकंदिनी। (गी० २।४३)

निकंदय–नाश कीजिए, उखाड़िए, नष्ट कीजिए। उ० रघुनंद निकंदय द्वंद्व घनं। (मा०७।१४। छं० १०)

निकर–(सं०)–समूह, भीड़-भाड़, ढेर। उ० बद्ध पाथोधि, सुर-निकर-मोचन, सकुल-दलन दससीस-भुजबीस भारी। (वि० ५०)

निकरत–(सं० निष्कासन, हि० निकसना)–निकलता है, निर्गत होता है।

निकसत–(सं० निष्कासन)–१. निकलता है, २. निकल रहा है, ३. निकलने पर। उ० २. फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को। (ह० ४१) निकसहिं–निकलते हैं। उ० ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। (मा० २।१०६।४) निकसि–निकल कर। उ० निकसि भए पुर बाहेर ठाढ़े। (मा० १।२६६।१) निकसी–निकलीं, बाहर हुईं। उ० पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै। (क० २।११)

निकाई (१)–[सं० निक्त (=साफ़, स्वच्छ) तु० फ़ा० नेक]–१. अच्छाई, २. शोभा, सुंदरता, ३. भलाई, उपकार, ४. अनुकूलता। उ० २. बनइ न बरनत नगर निकाई। (मा० २।२१३।१) ३. भलो कियो खल को निकाई सो नसाई है। (क० ७।१८१)

निकाई (२)–(सं० निकाय)–समूह, झुंड।

निकाज–बिना काम का, निकम्मा। उ० तुलसी तृन जल-कूल को निरधन, निपट निकाज। (दो० ५४४)

निकाम (१)–(सं० निस्+काम)–१. निकम्मा, व्यर्थ, २. बुरा, खराब, ३. कामनारहित, ४. लक्ष्यशून्य, अंधाधुंध। उ० १. भागत अभाग, अनुरागत बिराग, भाग जागत आलसि तुलसी हू से निकाम को। (क० ७।७५) ४. चले बिसिख निसित निकाम। (मा० ३।२०।छं० १)

निकाम (२)–(सं०)–बहुत, अतिशय।

निकाय–(सं०)–१. समूह, झुंड, २. शरीर, ३. परमात्मा। उ० १. एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय। (मा० १।१८०)

निकाया–दे० 'निकाय'। उ० करहिं उपद्रव असुर निकाया। (मा० १।१८३।२)

निकारहिं–निकालते हैं, निकाल देते हैं। उ० कुलवंति निकारहिं नारि सती। (मा० ७।१०१।२) निकारि–निकाल लाए। उ० धरि केस नारि निकारि बाहेर तेति दीन पुकारहीं। (मा० ६।८५। छं० १)

निकासइ–निकाल देता था, बाहर कर देता था। उ० तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना। (मा० १।१८३।छं०१) निकासौं–निकाल दूँ। उ० कहु केहि नृपहि निकासौं देसू। (मा० २।२६।१)

निकिष्ट–(सं० निकृष्ट)–बुरा, अधम, नीच। उ० सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई। (मा० ३।५।७)

निकेत–(सं०)–१. घर, मकान, २. जगह, ३. शरीर, ४. वास। उ० १. ललित-लता-द्रुम-संकुल मनहुँ मनोज-निकेत। (गी० २।४७)

निकेतन–दे० 'निकेत'।

निकेता–दे० 'निकेत'। उ० १. सकल कहहु प्रभु कृपा-निकेता। (मा० ७।११५।५)

निकेतु–दे० 'निकेत'। उ० १. समय राम-जुवराज कर, मंगल-मोद-निकेतु। (प्र० २।१।१)

निकेवल–(सं० नि + केवल)–अकेला, एकाकी।

निकैया–(सं० निक्त)–सुंदरता, शोभा। उ० सुंदर तनु सिसु-बसन-बिभूषन नख सिख निरखि निकैया। (गी० १।६)

निखंग–(सं० निषंग)–तरकश, तुणीर। उ० भुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारु निषंग। (वि० १०७)

निखोट–(सं० नि + खोट)–निर्दोष, दूषणरहित, ठीक। उ० नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल। (क० ७।१७)

निगड़–(सं० निगड)–बेड़ी, जंज़ीर, मोटी जंज़ीर, जिससे हाथी बाँधा जाता है। उ० बाँधो हौं करम जड़ गरम गूढ़ निगड़, सुनत दुसह हौं तो साँसति सहत हौं। (वि० ७६)

निगदित–(सं०)–कथित, उल्लेख किया हुआ, वर्णन किया हुआ। उ० नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। (मा० १।१। श्लो० ७)

निगम–(सं०)–१. वेद, श्रुति, २. मार्ग, रास्ता, ३. हाट, बाज़ार, ४. व्यापार, व्यवसाय, ५. निश्चय, ध्रुव, पक्का, ६. मेला, भीड़। उ० १. शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११) निगमहूँ–वेद के लिए भी। उ० भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। (मा० २।३०४।१)

निगानाँग–(? + सं० नग्न)–बिल्कुल नंगा, नंग-धड़ंग। उ० निगानाँग करि नितहिं नचाइहि नाच। (ब० २४)

निगूढ़–(सं०)–अत्यंत गुप्त, गहरा, सूक्ष्म।

निगूढ़ा–दे० 'निगूढ़'। उ० समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा। (मा० १।१३३।२)

निगोड़ा–(?)–१. जिसके आगे पीछे कोई न हो, अभागा, २. निकम्मा, बुरा, ३. एक गाली, कमीना। निगोड़ी–'निगोड़ा' का स्त्रीलिंग। दे० 'निगोड़ा'। उ० ३. छलिन

की छोंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति। (क० ७।१८)

निग्रह-(सं०)-१. रोक, अवरोध, २. दमन, ३. चिकित्सा, ४. दंड, ५. पीड़न, सताना, ६. बंधन, ७. डाँट, फटकार, ८. सीमा, हद। उ० ६. सागर निग्रह कथा सुनाई। (मा० ७।६७।४)

निग्रहण-(सं०)-१. रोकने का कार्य, थामने का कार्य, २. दंड देने का कार्य।

निग्रोध-(सं० न्यग्रोध)-१. बट वृक्ष, २. अक्षयवट।

निघटत-१. घटता है, २. बहुत कँपता है, ३. घटने पर। उ० १. जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। (मा० २। ३२५।२) ३. निघटत नीर मीन गन जैसें। (मा० २। १४७।२) निघटि-समाप्त हो, नष्ट हो। उ० निघटि गए सुभट, सत सब को छूट्यो। (क० ६।४६)

निचय-(सं०)-१. समूह, झुंड, २. निश्चय, ठीक, ३. संचय, इकट्ठा करना। उ० १. यथा रघुनाथ-सायक निसाचर चमू-निचय-निर्दलन-पटु वेग भारी। (वि० ५७)

निचाइहि-(सं० नीच)-नीचता को ही। उ० भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु। (मा० १।५) निचाई-नीचता, ओछापन, कमीनापन। उ० नीच निचाई नहिं तजै सज्जन हू के संग। (दो० ३३७)

निचोइ-[सं० नि० + च्यवन (=चूना)]-निचोड़कर। उ० कहे बचन बिनीत प्रीति प्रतीति नीति निचोइ। (गी० ५।५) निचोयो-निचोड़ा, गारा। उ० तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो। (वि० २४५)

निचोड़-(सं० नि + च्यवन) तत्व, सार।

निचोर-दे० 'निचोड़'। उ० दामिनि-बरन तनु रूप के निचोर हैं। (गी० १।७१)

निचोरि-१. निचोड़कर, गारकर, २. निचोड़, सार वस्तु, ३. मुख्य तात्पर्य, कथन का सारांश। उ० १. बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि। (मा० १।१०९)

निचोल-(सं०)-१. आच्छादन, उपर का वस्त्र, २. वस्त्र, कपड़ा, ३. ओढ़नी, ४. चोली, ५. लहँगा, घाघरा। उ० २. हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई। (वि० ६२)

निछावर-(?)-१. उतारा, बलिहारी, कुर्बान, २. पारितोषिक, ईनाम। निछावरि-दे० 'निछावर'। उ० १. करि आरती निछावरि बरहिं निहारहिं। (जा०१५२) २. दूतन्ह देह निछावरि लागे। (मा०१।२९३।४)

निज-(सं०)-१. अपना, स्वीय, जो पराया न हो, २. प्रधान, मुख्य, ३. वास्तविक, ठीक, यथार्थ, ४. उत्कृष्ट। उ० १. जौं फुर कहहुत नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान। (मा० २।२५६) निजै-अपनी ही। उ० निसि दिन नाथ! देउँ सिख बहु बिधि करत सुभाव निजै। (वि० ८६)

निजु-दे० 'निज'। उ० १. प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई। (मा० २।७२।३)

निठुर-(सं० निष्ठुर)-कठोर, निर्दय, स्नेहशून्य। उ० पुरीसुरबेलि केलि काटत किरात कलि, निठुर निहारिए उघारि डीठि भाल की। (क० ७।१६९)

निठुरता-(सं० निष्ठुरता)-निठुराई, कठोरपन, क्रूरता। उ० निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न। (कृ०५५)

निठुराई-निष्ठुरता, निर्दयता, क्रूरता। उ० तुलसिदास सीदत निसि दिन देखत तुम्हारि निठुराई। (वि० ११२)

निडर-(नि + डर)-निर्भय, निःशंक, जिसे डर न हो, साहसी, हिम्मतवाला। उ० बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं। (मा० १।१९५)

नितंब-(सं०)-कमर के पीछे का उठा हुआ भाग, चूतड़।

नित-(सं०)-१. प्रतिदिन, रोज, २. सदा, सर्वदा, हमेशा, ३. नाशरहित, अविनाशी। उ० १. पछिले पहर भूपु नित जागा। (मा० २।३८।१) नितई-नित्य ही, हर रोज। नितहिं-नित्य ही, सर्वदा ही। उ० सुर पुर नितहिं परावन होई। (मा० १।१८०।४) नितहीं-नित्य ही। उ० अति दीन मलीन दुखी नितहीं। (मा० ७।१४।६)

निति (१)-(?)-के लिए। उ० मीन जिअन निति बारि उलीचा। (मा० १।१६१।४)

निति (२)-(सं० नित्य)-हमेशा, सर्वदा।

निति (३)-(सं० नीति)-नीति। सं० बिरह बिबेक धरम निति सानी। (मा० ६।१०१।२)

नितै-(सं० नित्य)-नित्य ही। उ० भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं। (क० ७।१०२)

नित्यं-सर्वदा रहनेवाले को। उ० वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्। (मा० १।१। श्लो० ३) नित्य-(सं०)-१. शाश्वत, जिसका कभी भी नाश न हो, २. प्रतिदिन का, रोज का, ३. प्रतिदिन, रोज, सदा, सर्वदा, हमेशा, ४. दृढ़, अटल, निश्चय, ध्रुव, ५. यथार्थ, ठीक। उ० २. नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन। (ब० १३) ३. नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान, हरि ज्ञान घन सच्चिदानंद मूलं। (वि० ५३)

निदरत-(सं० निरादर)-निरादर करता। उ० सब सद्गुन सनमानि आनि उर, अघ औगुन निदरत को? (गी० ६। १२) निदरहिं-निरादर करते हैं। उ० जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगु नाथ। (मा० १।२८३) निदरहु-निरादर करें। उ० कै निदरहु कै आदरहु सिंहहिं स्वान सियार। (दो० ३८१) निदरि-१. तिरस्कार करके, निरादर करके, अपमान करके, २. रोककर, ३. घुड़क कर, ४. जबरदस्ती, हठ करके। उ० १. बोलसि निदरि बिप्र के भोरें। (मा० १।२८३।३) निदरे-१. निरादर करके, २. निरादर किया, ३. निरादर करता है, ४. तिरस्कार करने पर। उ० १. सानुज निदरि निपातउँ खेता। (मा० २।२३०।४) २. निदरे रामु जानि असहाई। (मा० २। २२१।२) निदरेसि-निरादर किया। उ० जग-जय-मद निदरेसि हर, पायेसि फर तेउ। (पा० २१) निदरौं-१. अनादर करता हूँ, २. अनादर करूँ। उ० १. रज सम पर अवगुन सुमेरु करि गुन-गिरि सम रज ते निदरौं। (वि० १४१)

निदाघ-(सं०)-ग्रीष्म ऋतु, घाम, उष्ण। उ० द्रुम-दल सिसिर सुखात, सब सह निदाघ अति लाल। (स० ६२६)

निदान-(सं०)-१. आदि कारण, २. कारण, ३. रोगनिर्णय, रोग की पहिचान, ४. अंत, अवसान, ५. अंत

में, आखिरकार, ६. सर्वनाश, ७. निश्चय। उ० १. कर्म हू के कर्म, निदानहू के निदान हौ। (क० ७।१२६) ५. तुलसी गुसाईं भयो, भोंड़े दिन भूलि गयो, ताको फल पावत निदान परिपाक हौं। (ह० ४०)

निदाना–दे० 'निदान'। उ० ४. देहि अगिनि जनि करहि निदाना। (मा० ५।१२।६)

निदानु–दे० 'निदान'। उ० ६. परेउ राउ कहि कोटि विधि काहे करसि निदानु। (मा० २।३६)

निदेश–(सं०)–१. शासन, २. आज्ञा, हुक्म, ३. कथन, ४. पास।

निदेस–दे० 'निदेश'। उ० २. प्रीति को बधिक, रस रीति को अधिक, नीति-निपुन, बिबेक है निदेस देसकाल को। (क० ७।१३५)

निदेसा–दे० 'निदेश'। उ० २. सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा। (मा० ७।५६।४)

निद्रा–(सं०)–नींद, ऊँघाई, एक ऐसी अवस्था जिसमें पलकें बंद करके प्राणी चेतनारहित हो जाता है।

निधड़क–[नि + धड़क (अनु० धड़)]–१. निर्भय, निडर, साहसी, २. बिना डर के, बेखटके।

निधन–(सं०)–१. नाश, २. मरण, ३. धनहीन, कंगाल। उ० १. भीषम-द्रोन-करनादि- पालित, काल दृक, सुयोधन-चमू-निधन हेतू। (वि० २८) २. बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा। (मा० ५।१६।२)

निधरक–दे० 'निधड़क'। उ० २. निधरक बैठि कहइ कटु बानी। (मा० २।४१।१)

निधानं–दे० 'निधान'। उ० १. चर्म-असि शूलधर, डमरु शर चापकर, यान वृषभेश, करुणानिधानं। (वि० ११)

निधान–(सं०)–१. भंडार, खज़ाना, ढेर, २. लय स्थान, वह स्थान जहाँ कोई चीज जाकर लय हो जाय, ३. घर, ४. आधार, आश्रय। उ० १. गुन ग्यान निधान अमान अजं। (मा० ६।१११।५)

निधाना–दे० 'निधान'। उ० १. तापस सम दम दया निधाना। (मा० १।४४।१)

निधानु–दे० 'निधान'। उ० १. पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु। (मा० २।५८)

निधानू–दे० 'निधान'। उ० १. रामु सहज आनंद निधानू। (मा० २।४१।३)

निधि–(सं०)–१. कुबेर का ख़ज़ाना, कुबेर के रत्न जिनकी संख्या ९ कही गई है। नौ निधियाँ ये हैं—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और बर्च्य, २. ख़ज़ाना, ढेर, भंडार, ३. आधार, आसरा, ४. समुद्र, ५. धन का भंडार, ६. घर। उ० १. जेहि गए सिधि होय परम निधि पाइय हो। (रा० १) २. सकल-सौंदर्य-निधि, विपुल-गुण-धाम विधि-वेद बुध शंभु सेवित अमानम्। (वि० ६०) निधिम्–खान को, ढेर को। उ० योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्। (मा० ६।१। श्लो० १)

निनाद–(सं०)–शब्द, आवाज़।

निनारे–(सं० निः + निकट, प्रा० निनिअड, हि० निनर)–अलग, दूर, हटा हुआ। उ० ज्ञान कृपान समान लगत उर, बिहरत छिन-छिन होत निनारे। (कृ० ५६)

निपट–(?)–१. निरा, विशुद्ध, खाली, २. सरासर, एकदम, बिल्कुल, नितांत। उ० १. भीर बाँह पीर की निपट राखी महाबीर कौन के सँकोच, तुलसी के सोच भारी है। (ह० २७) २. बिबरन भयउ निपट नरपालू। (मा० २।२९।३) निपटहि–निरा ही, बहुत ही, बिल्कुल ही। उ० निपटहि डाँटति निठुर ज्यों, लकुट कर तें डारु। (कृ० १४)

निपात–(सं०)–१. पतन, नाश, विनाश, २. मृत्यु, ३. अधः-पतन, गिराव। उ० ३. मनजात किरात निपात किए। (मा० २।१४।४)

निपातउँ–गिराऊँगा, पछाड़ूँगा। उ० लछिमन निदरि निपातउँ खेता। (मा० २।२३०।४) निपाता–१. गिराया, २. नष्ट किया, ३. उखाड़ फेंका हो, ४. काट डाला। उ० ४. केहँ तव नासा कान निपाता। (मा० ३।२२।१) निपाते–मार डाला, नष्ट कर डाला। उ० बड़े-बड़े बानइत बीर बलवान बड़े, जातुधान जूथप निपाते बात जात हैं। (क० ६।४१) निपाति–मारकर, नष्ट कर। उ० ताहि निपाति महाधुनि गर्जा। (मा० ५।१८।४)

निपुण–(सं०)–दक्ष, कुशल, पटु, चतुर।

निपुन–दे० 'निपुण'। उ० अखिल खल निपुन-छल-छिद्र निरखत सदा जीव-जन-पथिक-मन-खेदकारी। (वि० ५६)

निपुनता–(सं० निपुणता)–चतुरता, चातुरी, निपुणाई। उ० लघु लाग विधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही। (मा० १।९४। छं० १)

निपुनाई–निपुणता, चतुराई। उ० लागइ लघु बिरंचि निपुनाई। (मा० १।६४।४)

निफन–(सं० निष्पन्न, पा० निष्फन्न)–पूरा, पूर्ण, संपूर्ण, अच्छी तरह, भली भाँति। उ० जोते बिनु बए बिनु निफन निराए बिनु। (गी० २।३२)

निफल–(सं० निष्फल प्रा० निप्फल)–निरर्थक, बेकार, निष्फल। उ० निफल होहिं रावन सर कैसें। (मा० ६। ९१।३)

निबंध–(सं०)–प्रबंध, रचना। उ० स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-भाषा निबंध मति मंजुलमातनोति। (मा० १।१। श्लो० ७)

निबरत–(सं० निवर्त्तन, प्रा० निबट्टन)–निबरते, छुटकारा पाते, निवृत्त होते। उ० पाइकै उराहनो-उराहनो न दीजै मोहिं, काल-कला कासीनाथ कहे निबरत हौं। (क० ७। १६५) निबर्‍यो–१. चुक गया, २. निश्चिंत हो गया, ३. छुटकारा पा गया। उ० २. प्रभु की सौं करि निबर्‍यो हौं। (वि० २६७)

निबल–(सं० निर्बल)–अशक्त, कमज़ोर, निर्बल। उ० प्रभु समीप छोटे, बड़े, निबल होत बलवान। (दो० ५२७)

निबहंत–निर्वाह करते हैं। उ० पर काजै परमारथी, प्रीति लिए निबहंत। (वै० १०) निबह (१)–बसे हों। उ० जनु बिधु-निबह रहे करि दामिनि-निकर निकेत। (गी० ७।२१) निबहइ–(सं० निर्वाह)–१. निभता है, २. निभेगा। उ० २. सखा धरम निबहइ केहि भाँती। (मा० ५।४६।३) निबहति–निभती है, निभ जाती है। उ० राम! रावरे

निबाहे सब ही की निबहति। (वि० २४६) निबहते–निर्वाह होता। उ० तौ कालि कठिन करम-मारग जड़ हम केहि भाँति निबहते ? (वि० ६७) निबहहिंगे–निर्वाह करेंगे। निबहा–निबह गया, निभ गया। उ० कै तुलसी जाको राम-नाम सों प्रेम-नेम निबहा है। (गी० २।६४) निबही–भरी, पूरी, पूरी है। उ० घन-दामिन-बर बरन, हरन-मन सुंदरता नखसिख निबही री। (गी० १।१०४) निबहै–निर्वाह हो, बनी रहे। उ० जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई। (क० ७।१८) निबहैगो–निभेगा। उ० तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो। (वि० २५६) निबहौंगो–निभाऊँगा, पालन करूँगा, निर्वाह करूँगा। उ० परहित-निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो। (वि० १७२) निबह्यो–निर्वाह हो गया, पूरा हो गया। उ० ताको तौ कपिराज आज लगि कछु न काज निबह्यो है। (गी० ४।२)

निबह (२)–(?)–समूह। उ० मनहुँ उडुगन-निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु। (गी० ७।६)

निबाह–(सं० निर्वाह)–१. रहाइस, गुज़ारा, निर्वाह, २. लगातार साधना, परंपरा की रक्षा, किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार, ३. पालन, ४. बचाव का ढंग, छुटकारे का रास्ता। उ० १. नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर। (क० ७।१२३)

निबाहा–(सं० निर्वाह) १. दे० 'निबाह', २. निर्वाह किया। उ० २. जेहिं न प्रेमपनु मोर निबाहा। (मा० १५५।३) निबाहि–१. निबाहकर, पूरा करके, २. उबारो, बचाओ, ३. समाप्त करके। उ० १. नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए। (मा० १।२२७।१) निबाहिब–निर्वाह कीजिएगा, निबाहिएगा। उ० तहँ तहँ राम निबाहिब नाम सनेहु। (ब० ६६) निबाहिये–निर्वाह कराइए, निर्वाह करा दीजिए। उ० तुलसी तिहारो मन बचन करम, तेहि नाते नेह नेम निज ओर तें निबाहिए। (क० ७।७६) निबाहीं–निबाह दिया, इच्छाएँ पूरी कीं, पूरी कीं। उ० प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। (मा० २।४।२) निबाही–निबाह, निर्वाह कर। उ० आजु बयरु सबु लेउँ निबाही। (मा० ६।६०।४) निबाहु–१. निभाओ, निर्वाह करो, २. जैसी चाहिए वैसी गठन। उ० १. राम नाम पर तुलसी नेहु निबाहु (ब० ५७) २. चितै चित हित-सहित नखसिख अंग-अंग-निबाहु। (गी० १।६५) निबाहूँ–निबाहनेवाले हैं, निबाह किया है। उ० तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर निबाहूँ। (वि० २७५) निबाहें–निबाहने से ही। उ० तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहें। (वि० ६५) निबाहे–निबाहने से, निबाहने के कारण। उ० प्रेम-नेम के निबाहे चातक सराहिए। (वि० १७८) निबाहेउ–निबाहा, निर्वाह किया। उ० कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू। (मा० २।२०२।३) निबाहै–निबाह दें, निर्वाह कर दें। उ० जौं बिधि कुसल निबाहै काजू। (मा० २।१०।२)

निबाहू–दे० 'निबाह'। उ० १. उघरहिं अंत न होइ निबाहू। (मा० १।७।३)

निबिड़–(सं० निबिड)–१. घना, सघन, २. भीषण, घोर, भयानक। उ० १. कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग। (मा० ४।१५ ख)

निबुकि–(सं० निर्मुक्त, प्रा० निम्मुक्त)–निर्मुक्त होकर, छूटकर। उ० लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरु तें बिसाल भो। (क० ५।४)

निबृत्ति–दे० 'निवृत्ति'। उ० नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा। (मा० ७।११७।६)

निबेदित–(सं० निवेदन) प्रार्थना करके, भोग लगा कर, अर्पण करके। उ० तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। (मा० २।१२६।१)

निबेरीं–(सं० निवृत्त) पूरा किया। उ० नेग सहित सब रीति निबेरीं। (मा० १।३२५।४) निबेरे–(सं० निवृत्त) छुड़ाए, दूर किए। उ० तुलसिदास यह बिपति बाँगुरी तुमहि सों बनै निबेरे। (वि० १८७) निबेरो–दूर कर दिया है, हटा दिया है। उ० छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति स्त्रुति संदेह निबेरो। (वि० ८७)

निबेही–(सं० निवृत्त)–अछूता, मुक्त, उन्मुक्त। उ० कोउ न मान मद तजेउ निबेही। (मा० ७।७१।१)

निभ–(सं०)–तुल्य, समान। उ० हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला। (मा० ६।५३।१)

निभरम–(सं० निर्भ्रम)–निःशंक, भ्रमरहित। उ० जीते लोकनाथ नाथ बल निभरम। (वि० २४६)

निमग्न–(सं०)–मग्न, डूबा हुआ, तन्मय, लीन।

निमज्जत–(सं० निमज्जित)–१. डूबता हुआ, २. स्नान करता है, ३. स्नान करने पर। उ० १. सोक-समुद्र निसज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो। (मा० ७।४) ३. प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। (मा० २।३१०।४) निमज्जहिं–स्नान करते हैं। उ० निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा। (मा० २।२२४।१)

निमज्जन–(सं०)–स्नान। उ० पूजहि सिवहि समय तिहुँ करहिं निमज्जन। (पा० ४०)

निमज्जनु–दे० 'निमज्जन'। उ० कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा। (मा० २।२१६।१)

निमि–(सं०)–इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जिनका निवास मनुष्य की पलकों पर माना जाता है। कहा जाता है कि उन्हीं के अधिकार से पलकें खुलतीं और बंद होती हैं। उ० निरखहिं नारि-निकर बिदेहपुर निमि नृप की मरजाद मिटाई। (गी० १।१०६)

निमिराज–(सं०)–निमिबंशी राजा जनक।

निमिष–(सं०)–१. निमेष, आँखों का मिलना, पलकों का गिरना, २. वह समय जो पलकों के गिरने में लगता है, ३. पलकों का एक रोग, ४. पलक। उ० २. परम पावन पाप पुंज-मुंजाटवी-अनल-इव-निमिष-निर्मूल कर्त्ता। (वि० ५५)

निमेखी–(सं० निमेष)–पलक का गिरना।

निमेष–(सं०)–पलक मारने का समय, बहुत थोड़ी देर, क्षण मात्र। उ० लव निमेष महुँ भुवन निकाया। (मा० १।२२५।२) निमेषें–पलक मारना, पलक गिराना। उ० नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें। (मा० १।२४३।१) निमेषै–पलकों के मारने को। उ० बिथके बिलोचन निमेषै बिसराइ कै। (गी० १।८२)

निर्मोह-(सं०)-१. बिना मोह का, मोहरहित, २. ज्ञानी, ३. निर्दय, निठुर, दयारहित। उ० १. निर्भरानंद निःकंप निःसीम निर्युक्त निरुपाधि निर्मम बिधाता। (वि० ५६)

नियंता-(सं० नियन्तृ)-१. व्यवस्था करनेवाला, कायदा बाँधनेवाला, २. कार्य को चलानेवाला, ३. शिक्षक, ४. घोड़ा फेरनेवाला, ५. विष्णु। उ० १. नित्य निर्मुक्त संयुक्त गुन निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता। (वि० ५५)

नियत-(सं०)-१. निश्चित, स्थिर, २. संयत, परिमित, पाबंद, ३. शिव, महादेव, ४. प्रारब्ध। उ० ४. तहँ तहँ तू विषय-सुखहिं चहत, लहत नियत। (वि० १३२)

नियम-(सं०)-१. प्रतिबंध, रोक, पाबंदी, २. परंपरा, दस्तूर, ३. व्यवस्था, पद्धति, ४. प्रतिज्ञा, शर्त, ५. शासन, ६. योग के ८ अंगों में से एक। शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान, इन सब क्रियाओं का पालन नियम कहलाता है। ७. याज्ञवल्क्य स्मृति में १० नियम गिनाए गए हैं-स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, वेद-पाठ, इंद्रिय-निग्रह, गुरु-सेवा, शौच, अक्रोध तथा अप्रमाद। ८. विष्णु, ९. शिव, १०. एक अर्थालंकार। उ० ६. सम जम नियम फूल फल ज्ञाना। (मा० १।३७।७)

नियर-(सं० निकट, प्रा० निअड)-पास, समीप।

नियराइन्हि-समीप आ गया। उ० सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि। (जा० १३४) नियरानु-दे० 'निअरानु'।

नियरे-समीप, पास। उ० सुनि सुख लहै मनु रहै नित नियरे। (गी० १।४१)

नियामक-(सं०)-१. नियम करनेवाला, प्रबंधक, २. व्यवस्था करनेवाला, ३. मारनेवाला, बधिक, ४. माझी, मल्लाह, ५. पार करनेवाला, समुद्र या नदी आदि पार उतारनेवाला। उ० १. नित्य निर्मुक्त संयुक्त गुन निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता। (वि० ५५)

नियारा-(सं० निर्निकट प्रा० निण्णियर, हि० न्यारा)-अलग, पृथक्, न्यारा।

नियोग-(सं०)-१. तैनाती, मुकर्ररी, २. आज्ञा, आदेश, ३. निश्चय, ४. शासन, ५. अनुमति, ६. प्रवृत्ति। उ० २. निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है। (क० ७।८४)

नियोगा-दे० 'नियोग'। उ० २. मागि मातु गुर सचिव नियोगा। (मा० २।२३३।३)

निरंकुश-(सं०)-स्वतंत्र, बेअदब, हठीला, स्वेच्छाचारी, उद्दंड।

निरंकुस-दे०, निरंकुश'। उ० निपट निरंकुस निठुर निसंकू। (मा० २।११७।२)

निरंजन-(सं०)-अंजनरहित, कलुष या माया से रहित, स्वच्छ, निर्मल, मोह या राग-द्वेष आदि विकारों से मुक्त। यह परमात्मा का एक विशेषण है। उ०व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद। (मा० १।१९८)

निरंतर-(सं०)-१. अंतररहित, अविच्छिन्न, २. घना, निबिड़, ३. लगातार, अटूट, ४. स्थायी, सदा रहनेवाला, ५. सर्वदा, हमेशा, ६. जो अंतर्धान न हो, जो दृष्टि से ओझल न हो। उ० ४. संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मति मलिन कह दास तुलसी। (वि० ५७)

निरंबु-जल के बिना, बिना पानी का, सूखा, निर्जल। उ० ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। (मा० २।२४७।४)

निरक्षर-(सं०)-अक्षर-शून्य, मूर्ख, अपढ़, अनपढ़।

निरखंति-(सं० निरीक्षण)-अवलोकन करते हैं, देखते हैं, निहारते हैं। उ० नसत बिबुधापगा निकट तत सदन बर, नयन निरखंति नरतेऽतिधन्या। (वि०६१) निरखत-१. देखता है, देखते हैं, २. देखते ही। उ० १. अखिल खल निपुन-छल-छिद्र निरखत सदा जीव-जन-पथिक मन-खेदकारी। (वि० ५९) निरखतहि-देखते ही। उ० दे० 'निरखनिहारू'। निरखहिं-१. देखते हैं, २. देखकर उ० २. निरखहिं छबि जननी तृन तोरी। (मा० १।१९८।३)

निरखि-देखकर, निहारकर। उ० नयन मलिन पर नारि निरखि। (वि० ८२) निरखु-देख, देखो। उ० स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ सुमुखि! निरखि भरि नैन। (गी० २।२४) निरखे-देखे, देख पाए। उ० जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ। (मा० २।२०९)निरखै-देखती है। उ० माता लै उछंग गोबिंद मुख बार-बार निरखै। (कृ० १)

निरखनिहारू-देखनेवाला, निरखनेवाला। उ० दास तुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनिहारू। (गो० ७।८)

निरगुन-(सं० निर्गुण)-१. गुणरहित, व्यर्थ, निकम्मा, २. निराकार ब्रह्म, जो गुणों से बँधा नहीं है। उ० १. निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ। (वि० १५३)

निरगुनी-मूर्ख, गुणहीन। उ० रंक निरगुनी नीच जितने निवाजे हैं। (वि० १८०)

निरच्छर-दे० 'निरक्षर'। उ० बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। (मा० ७।१००।४)

निरजोषु-(सं० जुष)-जो तौला न जा सके, अतौल।

निरजोस-(सं० निर्यास)-१.निचोड़, २.निर्णय, ३.निश्चय।

निरजोसु-दे० 'निरजोस'। उ० १. यह निरजोसु दोसु बिधि बामहिं। (मा० २।२०१।४) २. मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु। (वि० १५९)

निरझर-(सं० निर्झर)-झरना, निर्झर। उ० निरझर मधु बर मृदु मलय बात। (वि० २३)

निरतं-लगे हुए को। निरत-(सं०)-१. तत्पर, लीन, २. आसक्त, लिप्त। उ० १. राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल। (मा०२।२१९) २. एहि आरती निरत सनकादि श्रुति सेष सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्वदरसी। (वि० ४७)

निरति-(सं०)-१. अप्रीति, २. बेग़र्ज़ी।

निरदय-(सं० निर्दय)-दयाहीन, कठोर। उ० निज तनु पोषक निरदय भारी। (मा० २।१७३।२)

निरदहन-निश्चय ही जलानेवाले, अत्यंत जलानेवाले। उ० गहन-दहन-निरदहन-लंक, निःसंक, बंक भुव। (ह० १)

निरदह्यो-जलाया। उ० को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिं कीन्हों? (क० ७।११७)

निरधन-(सं० निर्धन)-ग़रीब, धनहीन। उ० निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ। (वि० १५३)

निरधार-(सं० निर्धारण)-१. ठीक, २. निश्चय, निर्णय।
निरनउ-(सं० निर्णय)-निर्णय, फ़ैसला। उ० चलत प्रात लखि निरनउ नीके। (मा० २।१८४।१)
निरनय-(सं० निर्णय)-निश्चित बात, निर्णय, फ़ैसला।
निरपने-(सं० निः+आत्मनो, प्रा० अप्पणो)-अन्य, गैर, पराये, अपने नहीं। उ० जानकी-रमन मेरे! रावरे बदन फेरे, ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने। (क० ७.७८)
निरपेच्छ-वासनाहीन, जिसे किसी चीज़ की इच्छा न हो, बेपरवाह। उ० शांत निरपेच्छ निर्मम निरामय अगुन शब्द-ब्रह्मैक पर-ब्रह्म-ज्ञानी। (वि० ५७)
निरबहई-दे० 'निर्बहई'। निरबहनि-निर्वाह होने का भाव, पूरा पड़ते जाने का भाव। उ० दिन-दिन पन प्रेम नेम निरुपाधि निरबहनि। (गी० २।८१) निरबहा-निभ गया, अच्छी तरह बीत गया। उ० कहतेउँ तोहि समय निरबहा। (मा० ६।६३।३) निरबही-पूरी उतर गई, निभ गई। उ० सिथिल सनेह सराहत नखसिख नीक निकाई निरबही। (गी० ५।३१) निरबह्यो-शान्त हो गया, निश्चित हो गया। उ० अपनो सो नाथ हूँ सों कहि निरबह्यो हौं। (वि० २६०)
निरबान-(सं० निर्वाण)-मोक्ष, मुक्ति। उ० नाना पथ निरबान के, नाना बिधान बहु भाँति। (वि० १९२)
निरबाहक-निर्वाह करनेवाले, गुज़र करनेवाले, रक्षा करनेवाले। उ० गई-बहोर, ओर निरवाहक, साजक बिगरे साज के। (गी० ५।२९)
निरबाहा-निबाह सकता है। उ० तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा। (मा० १।७६।३) निरबाहिबो-निर्वाह करेंगे।
निरबाहु-(सं० निर्वाह)-गुज़र, निबाह। उ० का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति-रीति-निरबाहु। (वि० १९३)
निरभय-(सं० निर्भय)-निडर, निशंक, बिना भय का। उ० तुलसी निरभय होत नर सुनियत सुरपुर जाइ। (दो० ४९७)
निरमई-(सं० निर्माण)-रची, बनाई। उ० मोको गति दूसरी न बिधि निरमई। (वि०२५२) निरमय-१. बनाना, बनाइएगा, २. बनाया। निरमयउ-बनाया, रचा, रचना की। उ० बंदउँ मुनि पद कंजु, रामायन जेहिं निरमयउ। (मा० १।१४ घ) निरमयऊ-रचा, बनाया, रचना की। उ० निज मायाँ बसंत निरमयऊ। (मा०१।१२६।१) निरमये- निर्माण किये, बनाये। उ० तुलसी आइ पवन सुत-बिधि मानो फिरि निरमये नये हैं। (गी० ६।५)
निरमल-(सं० निर्मल)-स्वच्छ, साफ़, बिना मैल का। उ० सत्य संध, सत्य ब्रत परम धरम रत, निरमल करम बचन अरु मन के। (वि० ३७)
निरमान (१)-(सं० निर्माण)-निर्माण, रचना, बनाने की क्रिया। उ० बिरंचि बुद्धि को बिलास लंक निरमान भो। (क० ५।३२)
निरमान (२)-(निः+मान्)-अहंकाररहित।
निरमित-(सं० निर्मित)-बना हुआ, रचित।
निरमूलिनी-दे० 'निर्मूलिनी'।
निरमोख-(सं० निर्मोक्ष)-त्याग। उ० ग्यान गरीबी गुरु-धरम नरम बचन निरमोख। (स० १२३)
निरमोहियन-ऐसे लोग जिनके हृदय में मोह न हो। उ० ऊधो! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुख दीन? (कृ० ५५) निरमोही-(सं० निर्मोह)-मोहरहित, जिसे किसी से प्रेम न हो।
निरय-(सं०)-नरक, दोज़ख़। उ० जातें निरय-निकाय निरंतर सोइ इन्ह तोहिं सिखायो। (वि० ११९)
निरलज्ज-(सं० निर्लज्ज)-बेशर्म, जिसे किसी बात की लाज न हो।
निरलेप-(सं० निर्लेप)-जो किसी विषय में आसक्त न हो। उ० जे बिरंचि निरलेप उपाए। (मा० २।३१७।४)
निरवध-(सं० निर्वध्य)-निर्दोष, साफ़, जिससे कोई त्रुटि न हुई हो।
निरवधि-(सं०)-अवधि रहित, सीमा रहित, असीम, जिसकी कोई मर्यादा न हो। उ० निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरतु भरत सम जानि। (मा० २।२८८)
निरवाहक-निर्वाह करनेवाले। उ० गई-बहोर, और निरवाहक, साजक बिगरे साज के। (गी० ५।२९)
निरव्यलीक-निष्कपट। दे० 'निर्व्यलीक'।
निरस-(सं०)-१. जिसमें रस न हों, रसविहीन, सूखा, २. लाभरहित, ३. विरक्त, ४. बिना स्वाद का, फीका। उ० १. निरस भूरुह सरस फूलत फलत अति अधिकाइ। (गी० ७।३३) ३. जयति सीतेस-सेवा सरस, विषयरस-निरस, निरुपाधि, धुर धर्मधारी। (वि० ३८)
निरस्य-(सं०)-१. हटाने के योग्य, फेंकने लायक, २. निग्रह करके, दूर हटाकर। उ० २. निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांति ते गतिं स्वकं। (मा० ३।४। छं० ८)
निराए-खेत में से व्यर्थ की घासों को निकाले, खेत के खरों को साफ किए। उ० जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए बिनु। (गी० २।३२) निरावहिं-(सं० निराकरण)-निराते हैं। उ० कृषी निरावहिं चतुर किसाना। (मा० ४।१५।४)
निराकारं-निराकार को। उ० निराकारमोंकार मूलं तुरीयं। (मा० ७।१०८।२) निराकार-(सं०)-बिना आकार का, ब्रह्म, ईश्वर। यह ब्रह्म का एक विशेषण है। उ० निर्गुन गननायक निराकार। (वि० १३)
निराचार-आचारभ्रष्ट, आचारविहीन। उ० निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। (मा० ७।९८।४)
निरादर-(सं०)-तिरस्कार, अपमान, अप्रतिष्ठा। उ० मुक्ति निरादर भगति लुभाने। (मा० ७।११९।४)
निरादरु-दे० 'निरादर'। उ० उचित न तासु निरादरु कीन्हें। (मा० २।४३।३)
निराधार-(सं०)-१. जिसका कोई भी आधार न हो, बेसहाय, २. मिथ्या, जो प्रमाणों से पुष्ट न हो। उ० १. माय-बाप भूखे को अधार निराधार को। (वि०६३)
निरापने-(निः+आपने)-पराए, बेगाने, जो अपने नहीं हैं। उ० सब दुख आपने, निरापने सकल सुख, जौ लों जन भयो न बजाइ राजा राम को। (क० ७।१२४)
निरामयं-नीरोग को। उ० तुमहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं। (मा० ६।१०४। छं०१) निरामय-(सं०)-निरोग, सुखी। उ० शांत निरपेच्छ निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक पर-ब्रह्म-ज्ञानी। (वि० ५७)

निरामिष-(सं०)-मांस न खानेवाला। उ० होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा। (मा० १।५।१)
निरारी-(सं० निरालय, हिं० निराला)-निराली, अनोखी। उ० तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी। (वि० ३४)
निरास-(सं० निराश)-नाउम्मेद, जिसे आशा न हो। उ० भा निरास उपजी मन त्रासा। (मा० ३।२।२)
निरासा-(सं० निराशा)-आशा का न होना, नाउम्मेदी। उ० नृप समाज सब भयउ निरासा। (मा० १।१३५।२)
निरीश-(सं०)-१. बिना ईश या स्वामी का, अनाथ, २. नास्तिक, अनीश्वरवादी।
निरीस-दे० 'निरीश'। उ० २. नीच निसील निरीस निसंकी। (मा० २।२६६।१)
निरीह-(सं०)-१. चेष्टारहित, जो किसी चीज़ के लिए प्रयत्न न करे, २. इच्छारहित, जिसे किसी बात की चाह न हो, निस्पृह, ३. शांत, ४. विरक्त। उ० २. ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी। (मा० ७।७२।४)
निरुअरई-(सं० निवारण, हिं० निरुवार)-छूट पाती है, सुलझ पाती है। उ० तबहु कदाचित सो निरुअरई। (मा० ७।११७।४)
निरुआरे-सुलझाया। उ० निज कर राम जटा निरुआरे। (मा० ७।११।२)
निरुक्त-(सं०)-१. निश्चय रूप से कहा हुआ, नियुक्त, ठहराया हुआ, २. वेद के छः अंगों में से चौथा अंग। इसे यास्क मुनि ने लिखा था। इसमें वैदिक शब्दों की व्याख्या है।
निरुज-(सं० नीरुज)-निरोग, स्वस्थ। उ० मारिए तो अनायास कासी बास खास फल, ज्याइए तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं। (क० ७।१६६)
निरुत्तर-(सं०)-चुप, बे जबाब। उ० बंधु-बधू-रत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि। (दो० १५७)
निरुपउँ-(सं० निरूपण)-निरूपण किया।
निरुपधि-दे० 'निरुपाधि'।
निरुपाधि-(सं०)-१. उपाधिरहित, संज्ञारहित, २. बाधारहित, व्यवधानरहित, ३. मायारहित, ४. ब्रह्म। उ० २. धातुवाद, निरुपाधि बर, दुरे पुरान सुभ ग्रंथ। (दो०५५६) ३. गृध्र-शवरी-भक्ति-विवश करुणासिंधु, चरित-निरुपाधि त्रिविधार्ति-हर्त्ता। (वि० ४३)
निरुपाधी-दे० 'निरुपाधि'। उ० २. कलि मति बिकल न कछु निरुपाधी। (वि० १२८)
निरूपन-(सं० निरूपण)-किसी विषय का विवेचनापूर्ण वर्णन, विस्तार से किसी चीज़ का वर्णन, निदर्शन। उ० भगति निरूपन बिबिध बिधाना। (मा० १।३७।८)
निरूपउँ-दे० 'निरुपउँ'। उ० सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी। (मा० ७।१११।७) निरूपहिं-निरूपण करते हैं, वर्णन या विवेचन करते हैं। उ० भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान। (दो० ५५४) निरूपा-निरूपण किया है, वर्णन किया है, विवेचना की है, कहा है। उ० नेति-नेति जेहि बेद निरूपा। (मा० १।१४४।३)
निरै-(सं० निरय)-नरक, दोज़ख़।
निर्-१. नहीं, बिना, २. निश्चय, ३. बाह्य, बाहरी, बाहर का, ४. उचित। उ० १. दे० 'निर्दय', 'निर्दंभ', 'निर्गुण'।
निर्गत-(सं०)-निकला हुआ, बाहर आया हुआ।
निर्गता-(सं०)-निकली हुई। उ० नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी। (मा० ७।१३।छं० ४)
निर्गम-निकलना, बाहर जाना।
निर्गमहिं-बाहर निकलते हैं। उ० एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार। (मा० २।२३)
निर्गुणं-निर्गुण को। उ० योगींद्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणंनिर्विकारम्। (मा० ६।१। श्लो० १) निर्गुण-(सं०)-१. सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों से परे, परमेश्वर, २. जिसमें कोई गुण न हो, मूर्ख, बुरा।
निर्गुन-दे० 'निर्गुण'। उ० १. नित्य निर्मोह निर्गुन निरंजन निजानंद निर्वाण निर्वाणदाता। (वि० ५६)
निर्जोष-निश्चय, अवश्य। दे० 'निरजोषु'।
निर्झर-(सं०)-१. झरना, पर्वत से गिरता हुआ जलप्रवाह, २. सूर्य का घोड़ा। उ० १. ऋषिन के आश्रम सराहैं, मृग नाम कहैं, लागी मधु, सरित, झरत निर्झर हैं। (गी० २।४५)
निर्णय-(सं०)-औचित्य और अनौचित्य आदि का विचार करके किसी विषय के दो पक्षों में से एक पक्ष को ठीक ठहराना। निश्चय, फैसला।
निर्दंभ-(सं०)-अहंकार रहित, दंभ या गर्व से रिक्त। उ० सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। (मा० ७।२१।४)
निर्दय-(सं०)-जिसके हृदय में दया न हो, बेरहम, निठुर। उ० द्वेष मत्सर-राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय, क्रूर-कर्म-कर्त्ता। (वि० ६०)
निर्दयी-दयाहीन, बेरहम।
निर्दलन-दलनेवाले, नष्ट करनेवाले। उ० यथा रघुनाथ-सायक निसाचर चमू-निचय-निर्दलन-पटु वेग भारी। (वि० ५७)
निर्दहन-जलानेवाले, दहन करनेवाले।
निर्दह्यो-जलाया, संतप्त किया।
निर्देष-(सं० निर्देश)-१. आज्ञा, कथन, २. प्रस्ताव, ३. निर्णय।
निर्द्वन्द्व-(सं०)-१.बिना बिरोध या झगड़े का, जिसके लिए कोई द्वंद्व न हो, २. जो राग, द्वेष, मान, अपमान आदि द्वंद्वों से परे हो, ३. स्वतंत्र, स्वच्छंद।
निर्धन-(सं०)-जिसके पास धन न हो, धनहीन, कंगाल।
निर्नय-दे० 'निरनय'। उ० निर्नय सकल पुरान बेद कर। (मा० ७।४१।१)
निर्पक्ष-(सं०)-१. निस्पृह, निरीह, इच्छारहित, २. उदासीन, विरक्त, ३. जो किसी का शत्रु-मित्र न हो।
निर्बंस-दे० 'निर्वंश'। उ० १.दुष्ट-दनुजेस निर्बंस कृत दास-हित बिस्व दुख-हरन बोधैक रासी। (वि० ५८)
निर्बहई-(सं० निर्वाह)-निर्वाह कर लेता है, निबाह लेता है। उ० जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। (मा० ७।११६।१) निर्बहिहौं-पूरा करूँगा, निबाहूँगा। उ० दीजै बचन कि हृदय आनिए तुलसी को पन निर्बहिहौं। (वि० २३१) निर्बही-निर्वाह चाहता है। उ० दास तुलसी राम-चरन-

पंकज सदा बचन मनकर्म चहै प्रीति नित निर्बही। (गी० ७।६) निर्बहे–१. छूट गए, २. बचा गए, ३. निभ गए। उ० १. जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे। (मा० ७।१३।२)
निर्बान–दे० 'निर्वाण'। मुक्ति, मोक्ष। उ० राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान। (मा० ३।२० क)
निर्बिकार–(सं० निर्विकार)-बिना किसी विकार का, शुद्ध। उ० निर्बिकार निरवधि सुखरासी। (मा० ७।१११।३)
निर्भय–(सं०)-जिसे भय न हो, निडर। उ० निर्भय होहु देव समुदाई। (मा० १।१८७।४)
निर्भर–(सं०)-पूर्ण, भरा। उ० तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए। (मा० ३।६। छं० १)
निर्मत्सर–द्वेषरहित, बिना ईर्ष्या का। उ० अखिल-जीव-बत्सल निर्मत्सर चरन-कमल-अनुरागी। (वि० ११८)
निर्मथनकर्ता–मथनेवाला, मंथन करनेवाला, हलचल मचानेवाला। उ० वेद-पय-सिंधु, सुविचार-मंदर महा, अखिल-मुनिवृंद निर्मथनकर्ता। (वि० ५७)
निर्मम–(सं०)-जिसे ममता न हो, जिसको कोई वासना न हो। उ० नित्य निर्मम नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञान-धन सच्चिदानंद मूलं। (वि० ५३)
निर्मयउ–(सं० निर्माण)-निर्माण किया, रचा, बनाया। निर्मयी-रची, बनाई, निर्माण की।
निर्मलं–दे० 'निर्मल'। उ० ४. निर्मलं सांत सुविसुद्ध बोधायतन क्रोध-मद-हरन करुना-निकेतं। (वि० ५३) निर्मल–(सं०)-१. मलरहित, स्वच्छ, २. निष्पाप, पापरहित, ३. शुद्ध, पवित्र, ४. निर्दोष, कलंकरहित, ५. अभ्रक, अभ्र, ६. निर्मली। उ० १. निर्मल अति पीत चैल-दामिनि जनु जलद नील। (गी० ७।७)
निर्मलीं–विशुद्ध, स्वच्छ। उ० जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मलीं। (मा० ६।१०६।छं० १)
निर्मान (१)–(सं० निर्माण)-१. रचना, बनावट, २. रचना का कार्य, बनाने का काम।
निर्मान (२)–(सं०)-१. अभिमानरहित, बिना घमंड का, २. बेहद, सीमारहित, अपार। उ० २. नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञानघन सच्चिदानंद मूलं। (वि० ५३)
निर्मित–(सं०)-रचित, बनाया हुआ। उ० भ्राजत सिर मुकुट पुरट-निर्मित मनि-रचित चारु। (गी० ७।७)
निर्मुक्त–१. जो छूट गया हो, आवागमन के दुख से मुक्त, जिसे कोई बंधन न हो, २. स्वतंत्र, आज़ाद, ३. वह साँप जिसने तुरत केंचुली छोड़ी हो। उ०१. नित्य निर्मुक्त संयुक्त गुन निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता। (वि० ५५)
निर्मूल–(सं०)-१. बिना जड़ का, मूल रहित, २. ऐसी बात जिसकी कोई जड़ न हो, बे बुनियाद, ३. ध्वंस, नष्ट। उ० ३. परम पावन, पाप पंज-मुंजाटवी-अनल-इव-निमिष-निर्मूलकर्ता। (वि० ५५) निर्मूलकर–जड़ से उखाड़नेवाले, नष्ट-भ्रष्ट करनेवाले। उ० भक्त अनुकूल, भव-सूल निर्मूलकर, तूल अघ-नाम पावक समानं। (वि० ५४)
निर्मूलनं–जड़ से उखाड़नेवाले को, नष्ट करनेवाले को। उ० त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिम्। (मा० ७।१०८। श्लो० ५)
निर्मूला–दे० 'निर्मूल'। उ० ३. जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। (मा० १।१८३।३)
निर्मूलिनं–दे० 'निर्मूलनं'।
निर्मूलिनी–नाश करनेवाली, जड़ से उखाड़नेवाली। उ० दहति दुख दोष निर्मूलिनी काम की। (वि० ४८)
निर्लेप–(सं०)-संगरहित, निर्लिप्त, संसार में जो लीन न हो।
निर्वंश–(सं०)-१. वंशरहित, जिसका वंश नष्ट हो गया हो, २. संतानहीन, बे औलाद।
निर्वहा–दे० 'निरबहा'।
निर्वाण–(सं०)-१. बुझा हुआ, २. अस्त, डूबा, ३. शांत, धीमा पड़ा हुआ, ४. मृत, मरा, ५. निश्चल, ६. बुझना, ठंडा होना, ७. समाप्ति, न रह जाना, ८. शांति, ९. मुक्ति, मोक्ष। उ० ८. सत्य संधान निर्वाणप्रद सर्वहित सर्वगुन-ज्ञान-विज्ञान साली। (वि० ५५) निर्वाणप्रद–शांति प्रदान करनेवाला। उ० दे० 'निर्वाण'।
निर्वान–दे० 'निर्वाण'। उ०९. ब्रह्म बर देश वागीश व्यापक विमल बिपुल बलवान निर्वान स्वामी। (वि० ५४)
निर्वापकर्ता–(सं०)-हरण करनेवाला, हरनेवाला। उ० वेद गर्भार्भकादभ्रगुण-गर्व-अर्वाग पर-गर्व-निर्वापकर्त्ता। (वि० ५४)
निर्वापण–(सं०)-१. त्याग, २. दान, ३. प्राणनाश, ४. हरण करना, दूर करना, ५. बुझाना, ६. समाप्त होना, ७. भुला देना, ८. निःशेष होना।
निर्वाह–(सं०)-१. किसी परंपरा या क्रम का चला चलना, निबाह, २. किसी बात के अनुसार बराबर आचरण, पालन, ३. समाप्ति, पूरा होना।
निर्विकल्पं–दे० 'निर्विकल्प'। उ० निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। (मा० ७।१०८। श्लो० १) निर्विकल्प–(सं०)-दृढ़ संकल्पवाला, स्थिर, निश्चित।
निर्विकारं–दे० 'निर्विकार'। उ० नौमि करुणाकरं, गरल-गंगाधरं, निर्मलं, निर्गुणं, निर्विकारं। (वि० १२) निर्विकार–(सं०)-विकाररहित, परिवर्तनरहित, सदा एक प्रकार का रहनेवाला।
निर्विघ्न–(सं० निर्विघ्न)-बाधारहित, अड़चन शून्य। उ० जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई। (मा० ७।११९।१)
निर्व्यलीक–(सं०)-१. निष्कपट, कपटरहित, २. पीड़ा-रहित, बाधाहीन, सुखी, प्रसन्न, ३, सत्य, जो झूठ न हो। उ०१. निर्व्यलीक मानस-गृह संतत रहे छाई। (गी० ७।३)
निलज–(सं० निर्लज्ज)-बेहया, बेशरम, निर्लज्ज। उ० निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ। (वि० १५३)
निलजई–निर्लज्जता, बेहयाई, बेशर्मी। उ० रीझिबे लायक तुलसी की निलजई। (वि० २५२)
निलज्ज–(सं० निर्लज्ज)-बेशर्म, जिसे लज्जा न हो। उ० अधम निलज्ज लाज नहिं तोही। (मा० ५।६।५)
निलय–(सं०)-घर, मकान, स्थान, जगह। उ० दोष-निलय

यह बिषय सोकप्रद कहत संत स्रुति टेरे। (वि० १८७) निलयकारी–घर बनानेवाले। उ० यस्यांघ्रि पाथोज अज शंभु सनकादि सुक शेष मुनिवृंद अलि निलयकारी। (वि० ६१)

निवसत–(सं० निवसन)–बसते हैं, रहते हैं। उ० निवसत जहँ नित कृपालु राम-जानकी। (गी० २।४४) निवसति–बसती हैं, रहती हैं। निवसीं–बसीं, स्थिर हुईं। उ० केहि भाँति कहौं, सजनी! तोहि सों मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं। (मा० २।२४) निवसे–रहे, निवास किया। उ० तेहि आश्रम निवसे कछु काला। (मा० १।१४२।४)

निवह–(सं०)–समूह, झुंड। उ० जनु बिधु-निवह रहे करि दामिनि-निकर निकेत। (गी० ७।२१)

निवहति–निबहती है, पूर्ण पड़ती है।

निवाज–(फ़ा० नेवाज)–कृपा करनेवाला, दया करनेवाला। उ० तूँ गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो। (वि० ७८)

निवाजब–दया करना, मेहरबानी करना, दया करेंगे, रक्षा करेंगे। निबाजिबो–दया करना, दया कीजिएगा। निवाजिहैं–रक्षा करेंगे, दया करेंगे। उ० राम गरीब निवाज निवाजिहैं जानिहैं ठाकुर ठाउँगो। (गी० ५।३०) निवाजिहौं–शरण देंगे, रक्षा करेंगे। उ० राज दै निवाजिहौं बजाइ कै भीषनै। (क० ६।२) निवाजे–१. शरण में लिए हुए, २. शरण में लिए, ३. दया की। उ० १. आपने निवाजे कीन काहू को सरम। (वि० २४६) ३. रंक निरगुनी नीच जितने निवाजे हैं। (वि० १८०) निवाजो–शरण में लिया। उ० एते बड़े साहेब समर्थ को निवाजो आजु। (ह० ३१) निवाज्यो–अनुगृहीत किया, दया की। उ० सोंउ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे। (वि० ७१) निवाज्यौ–१. अपनाया हुआ, अपनाया, २. निहाल कर दिया। उ० १. जानत जहान हनुमान को निवाज्यौ जन। (ह० २०)

निवाजू–दे० 'निवाज'।

निवारक–(सं०)–१.टोकनेवाला, २. हटानेवाला। उ० २. जाउँ कहाँ, को बिपति-निवारक भव-तारक जग माहीं। (वि० १४५)

निवारण–(सं०)–रोक, रुकावट, अटकाव, हटाना, दूर करना।

निवारन–दे 'निवारण'। उ० करिअ जतन जेहिं होइ निवारन। (मा० २।४०।३)

निवारा–(सं० निवारण)–रोका, रोका था। उ०बाढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा। (मा० २।२६७।१) निवारि–१. हटाकर, दूर हटा कर। २. रोककर, बंदकर। उ० १. सर निवारि रिपु के सिर काटे। (मा० ६।६३।३) निवारिए–१. रोकिए, २.दूर कीजिए, निवारण कीजिए ३. बँचाइए। उ० ३. तासों|रारि निवारिए, समय सँभारिय आपु। (दो० ४३२) २. बाँह पीर महाबीर बेगिही निवारिए। (ह० २०) निवारी–(सं० निवारण)–निवारण किया, हटाया। उ० कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी। (वि०१६६) निवारे–निवारण किया, दूर किया। उ० कौतुक हीं प्रभुकाटि निवारे। (मा०६।५१।३)

निवास–(सं०)–१. वासस्थान, रहने का स्थान, २. रहने की क्रिया या भाव। उ० १. मम हृदयकंज निवास करु कामादि-खल-दल-गंजनं। (वि० ४५)

निवासा–दे० 'निवास'। उ० १. रूप तेज बल नीति निवासा। (मा० १।१३०।२)

निवासिनि–रहनेवाली, निवास करनेवाली। उ० सदा संभु अरधंग निवासिनि। (मा० १।६८।२)

निवासी–रहनेवाला, बसनेवाला। उ० पुन्य पुंज मग निकट निवासी। (मा० २।११३।२)

निवासु–दे० 'निवास'। उ० १. मानहुँ कीन्ह विदेहपुर करुनाँ बिरहँ निवासु। (मा० १।३३७)

निवासू–दे० 'निवास'। उ० १. सदा जहाँ सिव उमा निवासू। (मा० १।१०५।४)

निवृत्त–(सं०)–१. मुक्त, विरक्त, संसार से अलग, २. दूर, अलग। उ० २. निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई। (वि० १२३)

निवृत्ति–(सं०)–सांसारिक विषयों और प्रपंचों से हटना।

निवेरी–(सं०–निवृत्त, प्रा० निविट्ट)–१. निबराई, पूरी की, २. तय की, ३. छुड़ाई।

निशंकी–(सं० निःशंक)–निर्भय, निडर।

निश–दे० 'निशा'।

निशा–(सं०)–१. रात्रि, रजनी, रात, २. हल्दी।

निशाकर–(सं०)–१. चंद्रमा, २. मुर्गा, कुक्कुट, ३. शिव, महादेव, ४. एक ऋषि का नाम।

निशाचर–(सं०)–१. राक्षस, २. शृगाल, गीदड़, ३. उल्लू, ४. चोर, तस्कर, ५. सर्प, साँप, ६. भूत, पिशाच ७. चक्रवाक, चकवा, ८. रात में विचरनेवाले जीव-जंतु, ९. सूर्य। उ० १. अनय-अंभोधि कुंभज, निशाचर-निकर-तिमिर-घनघोर-खर किरणमाली। (वि० ४४)

निशान–(फ़ा०)–१. नगाड़ा, डंका, २. चिह्न।

निशानी–(फ़ा०)–१. स्मृति, चिह्न, यादगार, २. निशान, लक्षण, ३. रेखा, लकीर।

निशि–(सं०)–रात। निशिदिन–रात-दिन, सदा, सर्वदा।

निशिचर–(सं०)–राक्षस, निशाचर।

निशिचरि–दे० 'निशिचरी'।

निशिचरी–राक्षसी, निशाचरों की स्त्रियाँ। उ० दिव्य-देवी-वेष देखि, लखि निशिचरी जनु विडंबित करी बिश्वबाधा। (वि० ४३)

निशित–(सं०)–चोखा, तेज़।

निशेश–(सं०)–चंद्रमा, शशि, रात्रि का स्वामी। उ० सीता नयन चकोर निशेशं। (मा० ३।११।४)

निशेष–(सं० निःशेष)–सब, समूचा, पूरा।

निशोच–चिंतारहित, बिना सोच का।

निश्चय–(सं०) १. अवश्य, २. तय।

निश्चल–(सं०)–अचल, जो अपने स्थान से न हटे, स्थिर, अडिग। उ० जयति काल-गुन-कर्म-माया-मथन, निश्चल-ज्ञान व्रत, सत्यरत, धर्म्मचारी। (वि० २६)

निश्चलता–स्थिरता, शांति।

निषंग–(सं०)–तूण, तरकश। उ० कटि निषंग पट पीत, करनि सर धनु धरे। (जा० ३०)

निषंगा–दे० 'निषंग'। उ० बाम दहिन दिसि चाप निषंगा। (मा० ६।११।३)
निषाद–(सं०)–१. चांडाल जो ब्राह्मण पति और शूद्रा पत्नी के गर्भ से पैदा हो, २. मल्लाह, माँझी, ३. निषाद के भेजे हुए चारों मल्लाह, ४. एक राग, ५. वह निषाद जिसने राम को पार उतारा था। उ० ५. सजल कठौता कर गहि कहत निषाद। (ब० २५) निषादहि–निषाद (पाँचवाँ अर्थ) को। उ० भयउ बिषादु निषादहि भारी। (मा० २।६२।१)
निषादा–दे० 'निषाद'। उ० ३. चले अवध लेइ रथहि निषादा। (मा० २।१४४।१)
निषादू–दे० 'निषाद'। उ० मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। (मा० २।१४२।३)
निषिद्ध–(सं०)–१. दूषित, बुरा, खराब, २. जो न करने योग्य हो, जिसके लिए मनाही हो, ३. अपवित्र, अशुद्ध। उ० ३. पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग-जानी। (कृ० ४६)
निषेध–(सं०)–१. वर्जन, मनाही, न करने का आदेश, २. निषिद्ध बात, न करने योग्य बात। उ० २. राम को बिसारिबो निषेध सिरताज रे। (वि० ६७) निषेध-वाक्य–ऐसे वाक्य या वेद वाक्य जो अकरणीय कार्यों के विषय में निषेध करते हैं।
निष्कंप–(सं०)–स्थिर, अचल।
निष्काम–(सं०)–१ इच्छारहित, जिसको किसी प्रकार की कामना न हो, २. बिना प्रयोजन, बिना मतलब।
निष्केवल–अकेला, अनन्य। उ० राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम। (मा० ६।११७ ख)
निष्पाप–(सं०)–पाप रहित, बिना कलुष का।
निष्पापा–दे० 'निष्पाप'। उ० कपि तव दरस भइउँ निष्पापा। (मा० ६।५८।१)
निष्प्राप्य–न प्राप्त होने योग्य, दुर्लभ।
निसंकी–(सं० निःशंक)–निडर, निशंक। उ० नीच निसील निरीस निसंकी। (मा० २।२६६।१)
निसंकू–(सं० निःशंक)–निशंक, निडर। उ० निपट निरंकुस निठुर निसंकू। (मा० २।११६।२)
निसंबर–दे० 'निसंबल'। उ० संबर निसंबर को, सखा असहाय को। (वि० ६६)
निसंबल–(सं० निःनसंबल)–राहखर्च के बिना, असहाय। उ० पंगु अंध निरगुनी निसंबल जो न लहै जाँचे जलो। (गी० ५।४२)
निसरत–(नि स्रवण)–निकलने में। उ० निसरत प्रान करहिं हठि बाधा। (मा० ५।३१।३) निसरि–निकलकर। उ० निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा। (मा० ६।६७।२) निसरी–निकली, बाहर आई। उ० निसरी रुधिर-धार तहँ भारी। (मा० ४।६।४) निसरिगे–निकल गए, बाहर हो गए। उ० देह गेह नेह नाते मन से निसरिगे। (गी० २।३२) निसरै–निकले, बाहर हुए।
निसा–(सं०)–निशा)–१. रात, रात्रि, २. हरिद्रा।
निसाकर–(सं० निशाकर)–चंद्रमा। उ० निरखि निसाकर-नृप-मुख भए मलीन। (ब० १३)
निसाचर–(सं० निशाचर)–१. विभीषण, २. राक्षस, निशिचर। उ० १. कीस निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है। (क० ७।६) निसाचरहि–निसाचर को, राक्षस को।
निसान–दे० 'निशान'। उ० १. मंगल गान निसान नभ, नगर मुदित नर नारि। (प्र० ४।२।२)
निसाना–दे० 'निशान'। उ० अरु बाजे गह-गहे निसाना। (मा० १।१५४।२)
निसानु–दे० 'निशान'। उ० १. बाजहिं निसानु सुगान नभ, चढ़ि बसह बिधु भूषन चले। (पा० १०८)
निसास–(सं० निःश्वास)–१. उसास, पश्चाताप की साँस, २. पछतावा।
निसि–(सं० निशा)–रात, रात्रि। उ० दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा (मा० १।२४।३) निसिदिन–दे० 'निशिदिन'। उ० रघुबीर चरित पुनीत निसिदिन दास तुलसी गावई। (मा० ३।६। छं० १) निसिहि–रात्रि को। उ० निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती। (मा० ६।१००।२)
निसिचर–दे० 'निशिचर'। उ० निसिचर निकर दले रघुनंदन। (मा० १।२४।४) निसिचरन्हि–राक्षसों ने। उ० परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे। (मा० ६।११४।१) निसिचरिन्ह–राक्षसियों को। उ० कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। (मा० ५।१०।४) निसिचरी–(सं० निशिचरी) १. राक्षसी, २. सूर्पणखा। उ० २. जय निसिचरी-बिरूप-करन रघुबंस बिभूषन। (क० ७।११३)
निसित–दे० 'निशित'। उ० चले बिसिख निसित निकाम। (मा० ३।२०। छं० १)
निसिनाथ–(सं० निशिनाथ)–चंद्रमा। उ० साथ निसिनाथ-मुखी पाथ नाथ-नंदिनी सी। (क० २।१५)
निसिराज–(सं० निशिराज)–चंद्रमा, राकेश। उ० चैत चतुरदसि चाँदनी, अमल उदित निसिराज। (गी० १।५)
निसील–(सं० नि+शील) शीलहीन, बिना शील का। उ० नीच निसील निरीस निसंकी। (मा० २।२६६।१)
निसेनि–दे० 'निसेनिका'।
निसेनिका–(सं० निःश्रेणी)–सीढ़ी, ज़ीना। नाभी सर त्रिबली निसेनिका, रोमराजि सैवल छबि पावति। (गी० ७।१७)
निसेनी–दे० 'निसेनिका'। उ० नरक स्वर्ग अपवर्ग नसेनी। (मा० ७।१२१।५)
निसेस–(सं० निशा+ईश)–चंद्रमा को। निसेस (१)–(सं० निशेश)–चंद्रमा।
निसेस (२)–दे० 'निशेष'। उ० रघुबंस-कुमुदसुखप्रद निसेस। (वि० ६४)
निसेष–दे० 'निशेष'। उ० काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु। (वि० २०५)
निसोच–(सं० निः+शोच)–बिना सोच के, बिना चिंता के, निश्चिंत।
निसोचु–दे० 'निसोच'। उ० नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है। (क० ७।८१)
निसोत–(सं० निःसंयुक्त)–१. शुद्ध, सच्चा, जिसमें किसी और चीज़ का मेल न हो, २. अकेला, केवल। निसोती–

दे० 'निसोत'। उ० २. तौ कत त्रिबिध सूल निसि वासर सहते बिपति निसोती। (वि० १६८) निसोतें-विशुद्ध से बेमेल से। उ० रीझत राम सनेह निसोतें। (मा०१।२८।६)

निसोतो-निराला, खरा, विशुद्ध। उ० कृपा सुधा जलदान माँगिबो कहौं सो साँच निसोतो। (वि० १६१)

निस्तरइ-(सं० निस्तारण)-निस्तार पा सकता है, पार उतर सकता है। उ०सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा। (मा० ४।३।१) निस्तारिये-निस्तार कीजिए, उद्धार कीजिए, पार लगाइए। उ० जब कब निज करुना सुभाव तें द्रवहु तो निस्तरिए। (वि० १८६) निस्तरै-दे० 'निस्तरइ'।

निस्तार-(सं०)-१. उद्धार, छुटकारा, मोक्ष, २. बचाव। उ० १. गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार। (म० ७।१०२ क)

निस्तारा-उद्धार किया। उ० तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा। (मा० ६।७७।२)

निहकाम-(सं० निष्काम)-जिसमें किसी प्रकार की बासना, इच्छा या आसक्ति न हो। उ० मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम। (मा० ३।११)

निहचय-दे० 'निश्चय'। उ० दुतिय कोल राजिब प्रथम बाहन निहचय माहिं। (स० २२५)

निहचलता-दे० 'निश्चलता'। उ० निहचलता तुलसी कठिन राम कृपा बस होइ। (स० ५६५)

निहत-(सं०)-१. फेंका हुआ, २. नष्ट, ३. मारा हुआ, जो मार डाला गया हो। उ० २. निसिचर कलि-कर निहत तरु मोहि कहत बिधि बाम। (स० ४०)

निहार (१)-(सं० निभालन=देखना)-देखकर, घूरकर। निहारइ-देखे, देखती हो, घूरती हो। उ० मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई। (मा० २।२५।छं१) निहारत-देखता है, निहारता है। उ० ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार। (वि० १८८) निहारहि-१. देखे, चितवे, अवलोकन करे, २. निहारा, देखा, भली भाँति देखा, ३. देखता है। उ०३. रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहि। (जा० १३) निहारा-१. देखा, २. देखता है। उ० २. सहस नयन पर दोष निहारा। (मा० १।४।६) निहारि-देखकर, अवलोकन कर। उ० लता निहारि नवहिं तरुसाखा। (मा०१।८५।१) निहारी-देखा। उ० भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। (मा० १।५०।१) निहारु (१)-देखो, निहारो। उ० सरद-बिधु रवि-सुवन मनसिज-मान-भंजनिहारु। (गी० ७।८) निहारे-देखा। उ० सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे। (मा० १।२३४।२)

निहार-(२) (सं० नीहार)-कुहरा, पाला। उ० मोह-निहार-दिवाकर संकर सरन-सोक-भयहारी। (वि ०६)

निहारु-(सं० नीहार)-वर्फ। उ०चारु चंदन मनहुँ मरकत सिखर लसत निहारु। (गी० ७।८)

निहाल-(फ़ा)-संतुष्ट, प्रसन्न, तृप्त। उ० जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए। (वि० ८०)

निहालु-दे० 'निहाल'। उ० तुलसिदास भलो पाच रावरो, नेकु निरखि कीजै निहालु। (वि० १५४)

निहिचर-दे० 'निशिचर'।

निहित-(सं०)-१. छिपा हुआ, २. रक्खा हुआ।

निहोर-(सं०मनोहार, हि०मनुहार)-१. निहोरा कर, बिनती कर, २. बिनती, प्रार्थना, निहोरा, ३. एहसान, ४. उपकार। उ०३. राखा राम निहोर न ओही। (मा०४।२६।३) निहोरउँ-निहोरा करता हूँ। उ० देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि। (मा०६।११६ ख) निहोरत-बिनती करते हैं, प्रार्थना करते हैं। उ० साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम कों। (पा० ३६) निहोरहिं-प्रार्थना करती हैं। उ० बार बार रघुनाथहिं निरखि निहोरहिं। (जा० १८७) निहोरा-१. बिनती, २. उपकार, भलाई, ३. कारण से, बदौलत, द्वारा, ४. मनाने की क्रिया, मनाना, ५. मना रहे हैं, निहोरा कर रहे हैं, ६. निहोरा किया। उ० १. मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। (मा० १।५।१) २. बोले रामहि देइ निहोरा। (मा० १।२७८।४) ५. सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। (मा० २।१०१।२) निहोरि-बिनती कर के, नम्र वाणी से। उ० संग बस किये सुभ सुनाए सकल लोक निहोरि। (वि० १५८) निहोरिहौं-मनाऊँगा, मनौती करूँगा। उ० दुहूँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं। (वि० २५८) निहोरी-विनय करके। उ० देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। (मा० २।१२।१) निहोरें-१. लिए, २. विनय करने। उ०१. तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। (मा०२।१६०।३) निहोरे-१. बिनती करके, २. प्रार्थना की, ३. उपकार में, ४. एहसान, कृतज्ञता, ५. कारण, ६. मनाना, मनौती करना। उ० २. देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे। (क०७।१७५) निहोरै-बिनती करे। उ० सपने पर बस पर्यो जागि देखत केहि जाइ निहोरै? (वि० ११६)

नींद-(सं० निद्रा, प्रा० निद्दा)-जीवन की एक नित्यप्रति होनेवाली अवस्था जिसमें चेतन क्रियाएँ रुकी रहती हैं और शरीर तथा अंतःकरण दोनों विश्राम करते हैं। सोने की अवस्था। उ० जातहिं नींद जुड़ाई होई। (मा० १।३६।१)

नींदरी-दे० 'नींद'। उ० गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई। (गी० १।१६)

नीक-(सं० निक्त)-अच्छा, साफ, सुंदर। उ० कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। (मा०१।६२।१) नीकि-अच्छी, बढ़िया। उ० नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई। (मा०१।१३४।२) नीकियै-नीकी ही, अच्छी ही। उ०भूपति बिदेह कही नीकियै जौ भई है। (गी०१।८३) नीके-अच्छी तरह से, अच्छे प्रकार से, भली भाँति। उ० नीके देखे देवता देवैया घने गथ के। (क० ७।२४) नीकेई-अच्छे ही। उ० तुलसिदास इहै अधिक कान्ह पहिं, नीकेई लागत मन रहत समाने। (कृ० ३८)

नीका-१. अच्छा, २. ठीक, यथार्थ। उ० २. कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। (मा० १।२१६।३) नीकी-अच्छी। उ० प्रभुपद प्रीति न सामुझि नीकी। (मा० १।६।३)

नीको-अच्छा। उ० सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत लगन सुहाइ। (ग० ७।३४)

नीच-(सं०)-१. क्षुद्र, तुच्छ, अधम, बुरा, २. गृद्ध, नीच गृद्ध। उ० १. बर-बारि विषम नर नारि नीच। (वि०

२३) २. प्रभुहि बिलोकत गोदगत, सिय-हित घायल नीच। (दो० २२२) नीचउ-नीच भी। उ० भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। (मा० ७।८६।५) नीचऊ-नीच भी, नीचों को भी। उ० नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रबीनता। (वि० २६२) नीचि-नीची, निम्न श्रेणी की। उ० नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। (मा० ७।१८।४) नीचियौ-नीची भी, तुच्छ भी, हलकी भी। उ० सील सिंधु तोसों ऊँची नीचियौ कहत सोभा। (वि० २५७)

नीचा-नीच, स्वार्थी। उ० नाइ माथ स्वारथरत नीचा। (मा० ३।२४।३)

नीचु-नीच, अधम। उ० भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु। (मा० १।५)

नीचू-नीच, कमीने। उ० दानव देव ऊँच अरु नीचू। (मा० १।६।३)

नीड़-(सं० नीड)-पक्षियों का घोंसला, खोंता। उ० मदन सकुन जनु नीड़ बनाए। (मा० १।३४६।३)

नीति-(सं०)-१. आचार पद्धति, व्यवहार की रीति, २. व्यवहार की वह रीति, जिससे अपना कल्याण हो और समाज को भी कोई बाधा न हो। ३. सदाचार, लोक मर्यादानुसार व्यापार, ४. राजाओं के लिए आवश्यक ज्ञानशास्त्र, ५. युक्ति, उपाय, ६. नीति के ग्रंथ। वह पुस्तक जिसमें नीति की बातें कही गई हों। जैसे शुक्र नीति, चाणक्य नीति आदि। उ० २. नीतिनिपुन जिन्ह कइ जग लीका। (मा० २।१३१।१)

नीती-दे० 'नीति'। उ० २. पठइअ काज नाथ असि नीती। (मा० २।६।३)

नीर-(सं०)-पानी, जल। उ० चरन-नख-नीर त्रैलोक्य पावन परम, विबुध जननी-दुसह-सोक हरणं। (वि० ५२) नीरै-नीर को, जल को। उ० उपमा राम-लषन की प्रीति की क्यौं दीजै खीरै-नीरै। (गी० ६।१५)

नीरचारी-जलजंतु, जल के जीव। उ० सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ। (क० ६।४६)

नीरज-(सं०)-१. कमल, पंकज, २. मोती, मुक्ता, ३. जल में उत्पन्न वस्तु, ४. कूट, ५. रजोगुणरहित। उ० १. नीरज नयन भावते जी के। (मा० १।२४३।१)

नीरद-(सं०)-१. मेघ, बादल, २. जल देनेवाला।

नीरधर-(सं०)-बादल, मेघ। उ० नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम। (मा० १।१४६)

नीरनिधि-(सं०)-समुद्र। उ० बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। (मा० ६।५)

नीराजन-(सं०)-आरती, देवता को दीपक दिखाने की विधि।

नीरा-दे० 'नीर'। उ० हरषि नहाने निरमल नीरा। (मा० १।१४३।३)

नीराजनं-आरती को। उ० भगति-वैराग-बिज्ञान दीपावली अर्पि नीराजनं जगनिसं। (वि० ४७)

नीरु-दे० 'नीर'। उ० नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी। (मा० १।१०४।१)

नीरू-दे० 'नीर'। उ० जीह नामु जप लोचन नीरू। (मा० २।३२६।१)

नीलं-(सं०) श्याम रङ्ग को, श्याम रङ्गवाले को। उ० केकीकंठाभनीलं सुरवर विलसद्विप्रपादाब्ज चिह्नं। (मा० ७।१। श्लो १) नील-(सं०)-१. नीला, गहरे आसमानी रङ्ग का। २. काला, ३. एक बंदर जो राम की सेना में था। इसके छू देने से पत्थर पानी में तैरने लगते थे। इसका कारण एक मुनि का शाप था। नल और नील ने राम का सेतु बाँधा था। ४. सौ अरब की संख्या, ५. एक पौधा, ६. विष, ज़हर, ७. एक पर्वत, ८. कुबेर की नौ निधियों में एक, ९. कलंक, १०. नीलमणि। उ० १. नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन। (मा० १।१। सो० ३) ४. द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि। (मा० ५।५४) नीलहिं-नील को। उ० नल नीलहि सब कथा सुनाई। (मा० ६।१।३)

नीलकंठ-(सं०)-जिसका कंठ नीला हो, १. शिव, २. एक पक्षी, ३. मोर। उ० १. नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति। (पा० ३०) २. नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर। (मा० २।१३७)

नीलमणि-(सं०)-नीलम नाम का नीले रङ्ग का रत्न विशेष।

नीलमनि-दे० 'नीलमणि'। उ० नील सरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम। (मा० १।१४६)

नीला-दे० 'नील'। उ० ३. सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला। (मा० ६।२३।३)

नीलोपल-(सं०)-नीलमणि, नीलम।

नीसान-(फ़ा० निशान)-१. निशान, झंडा, २. नगाड़ा। उ० २. नीसान गान प्रसून झरि तुलसी सुहावनि सो निसा। (मा० १४७)

नीहार-(सं०)-१. कुहरा, २. पाला, हिम, बर्फ़।

नुतौ-(सं०)-वंदित, स्तुति किए गए। उ० शोभाढ्यौ वर धन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ। (मा० ४।१। श्लो० १)

नूतन-(सं०)-नया, नवीन, ताज़ा। उ० जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान। (मा० ७।१०६ ग)

नूपुर-(सं०)-१. घुँघुरू, २. पैंजनी, पाज़ेब। उ० १. कंकन किंकिन नूपुर बाजहिं। (मा० १।३१८।२) २. पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये। (क० १।२) नूपुरा-नूपुर शब्द का बहुबचन, बहुत से नूपुर। उ० युगल पद नूपुरा मुखर कलहंसवत, सुभग सर्वांग सौंदर्यवेषम्। (वि० ६१)

नृ-(सं०)-नर, मनुष्य। उ० व्याल-नृकपाल-माला बिराजै। (वि० १०)

नृकेहरि-नृसिंह, भगवान नरसिंह। उ० 'राम कहाँ' 'सब ठाँउ है' खंभ में ?' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे। (क० ७।१२८)

नृग-(सं०)-एक राजा का नाम। ये बड़े दानी थे। एक बार इनकी गायों के झुंड में एक ब्राह्मण की गाय आ मिली। उन्हें इसका पता न चला और एक दूसरे ब्राह्मण को हज़ार गाएँ दान देते समय उन्होंने वह गाय भी दे डाली। जिस ब्राह्मण की गाय गायब हो गई थी उसने संयोग से उन हज़ार गायों में अपनी गाय पहचान ली और दोनों ब्राह्मण लड़ते-झगड़ते महाराज नृग के पास पहुँचे। जिस

ब्राह्मण की गाय थी वह उसे लेना चाहता था पर जिसे दान मिली थी वह नहीं देना चाहता था। राजा उस एक गाय के बदले एक हजार और एक लाख गाय तक देने को तैयार हो गए पर दोनों में किसी ने भी स्वीकार न की। अंत: दोनों ब्राह्मण रुष्ट होकर चले गए। जाते-जाते उन्होंने राजा को गिरगिट होने का श्राप दिया। मरने के बाद एक सहस्र वर्ष के लिए वे गिरगिट होकर एक कुएँ में रहने लगे। अवधि समाप्त होने पर कृष्ण के हाथों इनका उद्धार हुआ। उ० बिप्रतिय, नृग, बधिक के दुख दोष दारुन दरन। (वि० २१८) नृगउद्धरन–राजा नृग के उद्धार करनेवाले, भगवान्। उ० तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृगउद्धरन। (वि० ५०)

नृत्य–(सं०)–नाच, नाचना, संगीत के ताल और गति के अनुसार हाथ-पाँव हिलाने उछलने-कूदने आदि का व्यापार। उ० सकल-लोकांत-कल्पांतशूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी। (वि० ११) नृत्यकारी–नाचनेवाला, नृत्यक। उ० दे० 'नृत्य'। नृत्यपर–नृत्य में तत्पर, नृत्य करते हुए।

नृप–(सं०)–राजा, नरपाल, नरेश। उ० नृप कियो भोजन पान, पाइ प्रमोद जनवासहि चले। (जा० १८०) नृपघाती–राजाओं को मारनेवाला, परशुराम। उ० भा कुठारु कुंठित नृपघाती। (मा० १।२८०।१) नृपन–राजा लोग। नृपन्ह–नृपों को, राजाओं को। उ० प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया। (मा० १।२३९।३) नृपहिं–राजा को। उ० दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी। (मा० १।२०१।१)

नृपति–(सं०)–१. राजा, नृप, २. राजा परीक्षित। उ० १. मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ। (मा० १। १५८) २. ब्रह्म-बिसिख ब्रह्मांड-दहन-छम गर्भ न नृपति जरयो। (वि० २३९)

नृपती–दे० 'नृपति'। उ० १. सुखी भए मानहुँ जग नृपती। (मा० ७।६३।२)

नृपनय–राजनीति, राजाओं की नीति। उ० करब साधु मत लोकमत नृपनय निगम निचोरि। (मा० २।२५८)

नृपाल–(सं०)–राजा, नृप। उ० भवधनु दलि जानकी बिवाही भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं। (गी० ७।१३) नृपालन–राजाओं, राजा गण। उ० काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए। (क० १।२२)

नृपाला–नृप, राजा। उ० साधु सुजानु सुसील नृपाला। (मा० १।२८।४)

नृपु–दे० 'नृप'। उ० नृपु सब भाँति सराह बिभूती। (मा० १।३३२।१)

नेईं–(सं० नेमि, प्रा० नेइँ)–नीवँ, मूल, जड़। उ० दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं। (मा० २।२९।४)

नेउ (१)–दे० 'नेईं'।

नेऊ (२)–(हिं० नेक)–थोड़ा, कुछ, नेक।

नेक (१)–(हिं० न+एक)–थोड़ा, कुछ, अत्यल्प।

नेक (२)–(फा०)–अच्छा, भला, उत्तम।

नेकु (१)–दे० 'नेक (१)'। उ० पै तौ लौं जौ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे। (वि० ७८)

नेकु (२)–दे० 'नेक (२)'। उ० भलो नेकु लोक राखे निपट निपाई हैं। (गी० ५।२६)

नेग–(सं० नैयमिक, हिं० नेवग)–विवाह आदि में ब्राह्मण या नाई बारी आदि को दी जानेवाली दक्षिणा या दस्तूर। उ० नेगी नेग जोग सब लेहीं। (मा० १।३५३।३)

नेगचारु–(नेग+चाल)रसम, कुलरीति। उ० नेगचारु कहँ नागरि गहरु लगावहिं। (जा० १५१)

नेगी–१. लेनेवाले, नेग पाने के हकदार ब्राह्मण, नाई आदि, २. लेनेवाला, ३. सहायक। उ० १. नेगी नेग जोग सब लेहीं। (मा० १।३५३।३) ३. लछिमन होहु धरम के नेगी। (मा० ६।१०९।१)

नेगु–दे० 'नेग'। उ० नेगु मागि मुनि नायक लीन्हा। (मा० १।३५३।१)

नेति–(सं० न+इति)–यह एक संस्कृत वाक्य है जिसका अर्थ 'अंत नहीं है' होता है।

नेत्रं–दे० 'नेत्र'। उ० चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। (मा० ७।१०८।४) नेत्र–(सं०)–आँख, लोचन, नयन।

नेपथ्य–(सं०)–नाटक आदि में परदे के भीतर का स्थान जहाँ नाटक करनेवाले सजाये जाते हैं।

नेब–(फा० नायब)–सहायक, नायब। उ० भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब। (मा० २।१९)

नेम–(सं० नियम)–१. नियम, संयम, २. धर्म, ३. व्रत, ४. प्रतिज्ञा, संकल्प।

नेमा–दे० 'नेम'। उ० १. असन बसन बासन ब्रत नेमा। (मा० २।३२४।२)

नेमु–दे० 'नेम'। उ० १. देखि प्रेम ब्रतु नेमु सराहहिं सज्जन। (पा० ४०)

नेरी–दे० 'नेरे'। उ० जाहि मृत्यु आई अति नेरी। (मा० ५।५३।२)

नेरे–(सं० निकट)–समीप, पास, नजदीक। उ० अगम अपवर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम-बल क्यों बसौं जम नगर नेरे? (वि० २१०)

नेरो–दे० 'नेरे'। उ० कबहुँक हौं संगति-प्रभाव ते जाउँ सुमारग नेरो। (वि० १४३)

नेवछावरि–(सं० न्यासावर्त)–न्यौछावर, निछावर, उतारा, वाराफेरा। उ० तुलसी नेवछावरि करति मातु अति प्रेम-मगन मन, सजल सुलोचन कोये। (गी० १।१२)

नेवत–दे० 'नेवता'। उ० यह अनुचित नहिं नेवत पठावा। (मा० १।६२।१)

नेवता–(सं० निमंत्रण)–१. निमंत्रण, नवेद, २. निमंत्रण दिया है। उ० २. मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। (मा० २।२१३।४) नेवति–१. निमंत्रण देकर, न्यौता देकर, २. निमंत्रण। उ० १. सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम। (प्र० ७।७।१) २. सब कहँ गिरिबर-नायक नेवति पठायउ। (पा० ६४) नेवते–निमंत्रण दिया, निमंत्रित किया। उ० नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग। (मा० १।६०)

नेवनि–(दे० 'नेब')–सहायकों, मंत्रियों। उ० कुल गुरु, सचिव, निपुन नेवनि अवरेब न समुझि सुधारी। (गी० १।६८।१)

नेवाज-(फ़ा० नेवाख्तन, नेवाज) कृपा करनेवाला। उ०दे० 'नेवाजी'।

नेवाजा-कृपा की है। उ० राम कृपाल निषाद नेवाजा। (मा० २।२४०।४) नेवाजि-रक्षा करके। उ० बिभीषन नेवाजि सेतु सागर तरन भो। (क० ६।५६) नेवाजिये-१. कृपा कीजिए, २. कृपा करते हैं। उ० १. रीति महाराज की नेवाजिये जो माँगनो सो। (क० ७।२५) नेवाजिहैं-रक्षा करेंगे, शरण में लेंगे। नेवाजी-१. शरण में ली, कृपा की, २. शरण में लेकर, कृपा करके, ३. दया, ४. दया करना, ५. कृपा करनेवाला। उ० ४. राम गरीब नेवाज! भये हौं गरीब नेवाज गरीब नेवाजी। (क०७।६५) नेवाजे-कृपा की। उ० नाम गरीब अनेक नेवाजे। (मा० १।२५।१)

नेवाजू-दयालु, कृपालु। उ० गई बहोर गरीब नेवाजू। (मा० १।१३।४)

नेवारई-(सं० निवारण)-हटाती है, हटा देती है। उ० केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई। (मा० २।२५। छं० १) नेवारत-मना करता, रोकता। नेवारिहैं-हटावेगा, हटावेंगे। उ० मोह-बन कलिमल-पल-पीन जानि जिय, साधु गाय बिप्रन के भय को नेवारिहैं। (क० ७। १४२) नेवारे-मना किया। उ० सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। (मा० १।२५४।२)

नेवारित-(?)-मढ़ा हुआ, पानी चढ़ाया हुआ। उ० कुतिय सु-भूखन भूखियत लोह नेवारित हेम। (स० ६८६)

नेह-(सं० स्नेह)-१. प्यार, प्रेम, स्नेह, २. तेल। उ० १. जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े। (क० २।१२)

नेहरुआ-(?)-एक रोग जो प्रायः कमर के निचले भाग में होता है। इसमें पहले सूजन और फिर घाव हो जाता है, जिसमें सफेद रङ्ग के लंबे-लंबे कीड़े पड़ जाते हैं। उ० दंभ कपट मद पान नेहरुआ। (मा० ७।१२१।१८)

नेहा-दे० 'नेह'। उ० बिपति काल कर सतगुन नेहा। (मा० ४।७।३)

नेही-प्रेमी, स्नेह करनेवाला। उ० जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही मेह-मन। (दो० ३०७)

नेहु-दे० 'नेह'। उ० १. अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मोपर निज नेहु। (मा० १।७६)

नेहू-दे० 'नेह'। उ० मन क्रम बचन रामपद नेहू। (मा० २।६३।३)

नैंया-(सं० न्याय)-एक सी, नाईं, समान, तरह। उ० किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों, कूदत कपि कुरंग की नैंया। (कृ० १६)

नैन-(सं० नयन)-नेत्र। उ० सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन। (मा० २।११६)

नैमिष-दे० 'नैमिषारण्य'। उ० तीरथबर नैमिष बिख्याता। (मा० १।१४३।१)

नैमिषारण्य-एक प्राचीन वन। यह स्थान सीतापुर ज़िले में है। किसी मुनि ने यहाँ असुरों की अपार सेना एक निमिष में भस्म कर दी थी अतः इसका नाम नैमिषारण्य पड़ा। आजकल यह एक तीर्थ माना जाता है।

नैया-(फ़ा० नाव, सं० नौ)-नौका, तरणी।

नैव-(सं० न+एव)-नहीं। उ० न जानामि योगं जपं नैव पूजां। (मा० ७।१०८। छं० ८)

नैवेद्य-(सं०)-देवबलि, भोग, देवता के निवेदन के लिए भोज्य द्रव्य। भोजन की वह सामग्री जो देवता को चढ़ाई जाय। उ० भाव अतिसय बिसद प्रवर नैवेद्य सुभ श्री रमन परम-संतोषकारी। (वि० ४७)

नैहर-[सं० ज्ञाति, प्रा० णाति, णाइ (=पिता)+हि० घर]-मायका, पीहर। उ० नैहर जनमु भरब बरु जाई। (मा० २।२१।१)

नैहौं-नवाऊँगा, नाऊँगा, झुकाऊँगा। उ० रोकि हौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं। (वि० १०४)

नो-(सं०)-१. मेरी, हमारी, २. हमको, ३. नहीं। उ० १. त्रासु सदा नो भव खग बाजः। (मा०३।११।३) ३. पतंति नो भवार्णवे। (मा० ३।४।७)

नोइ-दे० 'नोई'। उ० १. नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। (मा० ७।११७।६)

नोइनि-दे० 'नोई'।

नोई-(सं० नद्ध, हि० नहना)-१. दूध दूहते समय गौ के पिछले पैरों में बाँधने की रस्सी, २. दूहते समय गाय की टाँग बाँधना।

नौ (१)-(सं०नव)-१. नया, नवीन, २. ९ की संख्या, नव। उ० १. ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे। (क०२।१३) २. तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि इकीस सबै। (क० १।७)

नौ (२)-(सं० नौः)-नौका, नाव।

नौका-(सं०)-नाव, किश्ती। उ० श्री हरिचरन-कमल-नौका तजि फिरि-फिरि फेन गह्यो। (वि० ९२)

नौमि-(सं० नमामि)-मैं स्तुति करता हूँ, प्रणाम करता हूँ, मैं झुकता हूँ। उ० नौमि नारायणं नरं करुणायनं ध्यान पारायणं ज्ञान मूलम्। (वि० ५६)

नौमी-(सं० नवमी)-पक्ष की नवीं तिथि। उ० नौमी तिथि मधुमास पुनीता। (मा० १।१९१।१)

नौमीड्यं-(सं०)-स्तुति करने योग्य। उ० नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्। (मा०७।१। श्लो०१)

न्याउ-दे० 'न्याव'। उ० २. मोर न्याउ मैं पूछा साईं। (मा० ४।२।४)

न्याय-(सं०)-१. ठीक या उचित बात, नियमानुकूल, २. प्रमाणपूर्वक निश्चय, विवाद या व्यवहार में उचित अनुचित का निबटारा, इन्साफ, ३. वह शास्त्र जिसमें किसी वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिए विचारों की उचित योजना का निरूपण होता है। ४. तर्कशास्त्र, ५.लौकिक कहावत, जैसे 'वलीवर्द न्याय' आदि। उ०२. ऐसे तो सोचहिं न्याय निठुर-नायक-रत। (गी० ५।८) ५. होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक। (मा० ७।११८ ख)

न्यारिये-(सं० निर्निकट, प्रा० निन्निअड, निन्नियर, हि० न्यारा)-भिन्न प्रकार की, अलग ढङ्ग की, विशेष प्रकार की, अनोखी। उ० दीनबंधु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये। (ह० २१) न्यारी-१. विलक्षण, अनोखी, निराली, २. पृथक् अलग,

३. दूर, जो पास न हो, ४. अन्य, भिन्न, ५. एक ओर, जुदे ही, अलग ही। उ० ५. कर कंकन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी। (वि० ६३) न्यारे-१. अलग, २. विलक्षण।
न्यारो-दे० 'न्यारे'। उ० १. जो कलिकाल प्रबल अति होते तुव निदेस तें न्यारो। (वि० ६४)
न्याव-(सं० न्याय)-१. न्याय, इन्साफ, २. उचित, यथार्थ विचार, ठीक बात।
न्यास-(सं०)-१. अर्पण, त्याग, २. धरोहर, थाती, ६. धरोहर रखने योग्य धन।
न्हाइ-(सं० स्नान)-स्नान कर, नहाकर। उ० न्हाइ प्रातहि पूजिबो बट बिटप अभिमत दानि। (गी० ७।३२) न्हात-१. स्नान करते समय, नहाते समय भी, २. नहाते हैं। उ० १. न्हात खसै जनि बार, गहरु जनि लावहु। (जा० ३२) न्हाहु-स्नान करो, नहाओ। उ० उबटौं न्हाहु, गुहौं चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहिं बड़ाई। (कृ० १३)

प

पंक-(सं०)-१. कीचड़, कीच, दलदल, २. पाप, पातक। उ० प्रेम पंक जनु गिरा समानी। (मा० १।३३७।१)
पंकज-(सं०)-कीचड़ से उत्पन्न, कमल, कंज। उ० भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकजनाल। (मा० १।२६२) पंकजे-पंकज में, कमल में।
पंकजात-दे० 'पंकज'। उ० पद-पंकजात पखारि पूजे पंथ-स्रम-बिरहित भये। (गी० ३।१७)
पंकनिधि-समुद्र।
पंकरुह-(सं०)-कमल, पंक से निकलनेवाला। उ० अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद। (मा० १।४३ ख)
पँख-(सं० पक्ष)-पर, डैना, पंख। उ० हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो। (गी० २।६६)
पंख-(सं० पक्ष)-१. पक्षियों के पर, डैने, २. फूल की पंखड़ी। उ० १. काटेसि पंख परा खग धरनी। (मा० ३।२९।११) २. पल्लव पंख सुमन सिर सोहत, क्यों कहौं वेष लुनाई। (गी० १।५०) पंखन-पाँखें।
पंगति-(सं० पंक्ति)-पंक्ति, कतार, श्रेणी। उ० बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की। (क० १।५)
पंगु-(सं०)-लँगड़ा, जो पाँव से ठीक से न चल सके। उ० मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन। (मा० १।१। सो० २)
पंच-(सं०)-१. पाँच, २. पाँच या अधिक व्यक्तियों का समुदाय, समाज, ३. वह जो किसी मामले का फैसला करे, ४. मध्यस्थ, ५. पंचतत्त्व। उ० २. गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै। (क० ७।६१) ५. जड़ पंच मिल जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की। (क० ७। २७) पंचन-कई पंच, पंचों का समूह, मुकदमे का फैसला करनेवालों का समूह।
पंचकोस-(सं० पंचकोश)-१. पाँच कोस में बसी काशी की पवित्र भूमि, काशी, २. आत्मा संबंधी अन्न, प्राण, मन, विज्ञान तथा आनंदमय पाँच कोष। उ० १. स्वारथ-परमारथ-परिपूरन पंचकोस महिमा सी। (वि० २२)
पंचकोसि-काशी की पाँच कोस की परिक्रमा। दे० 'पंचकोस'।
पंचगव्य-(सं०)-गाय से प्राप्त होनेवाले पाँच द्रव्य--दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र--जो पवित्र माने जाते हैं, और पापों के प्रायश्चित या शुद्धि के लिए खिलाए जाते हैं।
पंचग्रह-मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि नाम के पाँच ग्रह। उ० सरल-वक्रगति पंचग्रह, चपरि न चितवत काहु। (दो० ३६७)
पंचदश-(सं०)-१. पंद्रह, २. दस-पाँच, थोड़ी संख्या का द्योतक शब्द।
पंचदस-दे० 'पंचदश'। उ० १. नयन पंचदस अति प्रिय लागे। (मा० १।३१७।१)
पंचदसा-दे० 'पंचदश'।
पंचनदा-पंच गंगा, पाँच नदियों का समूह। उ० पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव गव्य सुपंचनदा सी। (वि० २२)
पंचबटी-(सं० पंचवटी)-रामायण के अनुसार दंडकारण्य के अंतर्गत एक स्थान जहाँ राम बनवास में रहे थे। यहाँ पीपल, बेल, वट, आँवला और अशोक ये पाँच वृक्ष थे। उ० पंचबटी पावन राघव करि सूपनखा कुरूप कीन्हीं। (गी० ७।३८)
पंचबान-(सं० पंचवाण)-कामदेव। इन के पाँच वाणों के नाम द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन हैं तथा पाँच पुष्पबाणों के नाम कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल हैं। उ० उर बसि प्रपंच रचै पंचबान। (वि० १४)
पंचबीस-(सं० पंचविंशति)-पच्चीस। उ० षटकंध साखा पंचबीस अनेक पर्न सुमन घने। (मा० ७।१३। छं० ५)
पंचम-(सं०)-पाँचवाँ, चौथे के बाद का। उ० तुलसी जय मंगल कुसल, सुभ पंचम उनचास। (प्र० ५।७।७)
पंचमुख-(सं०)-शिव, महादेव। उ० पंचमुख छमुख भृग मुख्य भट, असुर-सुर सर्व सरि समर समरत्थ सूरो। (ह० ३)
पंचविश-दे० 'पंचबीस'।
पंचसर-(सं० पंचशर)-कामदेव।
पंचसबद-(सं० पंच+शब्द)-पाँच प्रकार के बाजे। तंत्री, ताल, झाँझ, नगारा और तुरही। उ० पंच सबद धुनि मंगल गाना। (मा० १।३१९।२)

पंचाच्छरी-(सं० पंच + अक्षर)-'नमः शिवाय' का मंत्र। उ० पंचाच्छरी प्रान मुद माधव गव्य सुपंचनदा सी। (वि० २२)
पंचानन-(सं०)-जिसके पाँच मुँह हों। १. महादेव, २. सिंह। उ० २. जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ। (मा० ६।११)
पंचीकरण-(सं०)-वेदांत में पंचभूतों का सिद्धांत विशेष। प्रत्येक भूत में शेष चार भूतों के अंश भी वर्तमान रहते हैं। भूतों की यह स्थूल स्थिति पंचीकरण द्वारा होती है। पंचभूतों के भागों का मिलान।
पंजर-(सं०)-१. पिंजड़ा, २. ठटरी, कंकाल। उ० १. प्रनतारति-भंजन जनरंजन सरनागत पबि-पंजर नाउँ। (वि० १५३)
पंडित-(सं०)-१. शास्त्रज्ञ, विद्वान्, ज्ञानी, २. कुशल, प्रवीण, चतुर, ३. ब्राह्मण, ४. संस्कृत भाषा का विद्वान्। उ० १. कबहुँ मूढ़ पंडित बिडंब रत, कबहुँ धरम-रत ज्ञानी। (वि० ८१)
पंडु (१)-(सं०)-१. पीलापन लिए हुए मटमैला, २. श्वेत, उज्ज्वल, ३. पीत, पीला।
पंडु (२)-(सं० पांडु)-पांडु राजा जो पांडवों के पिता थे। पंडुवनै-पांडवों को ही।
पंथ-(सं० पथ)-१. मार्ग, रास्ता, २. धर्म, सम्प्रदाय, मत। उ० १. तेहि परिहरिहिं बिमोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक। (दो० ५५५) मु० पंथ लाग-१. अनुयायी होकर, २. पीछे पड़कर, तंग करके। उ० २. हठि सिद्ध मुनिन के पंथ लाग। (गी० २।४६) पंथहि-रास्ते को, रास्ते पर। मु० पंथहिं लागा-पीछे पड़ गया। उ० हठि सबहीं के पंथहिं-लागा। (मा० १।१८२।६)
पंथा-दे० 'पंथ'।
पंथाना-दे० 'पंथ'। उ० १. रघुपति भगति केर पंथाना। (मा० ७।१२६।२)
पंथि-(सं० पंथिन्)-पथिक, यात्री। उ० राम-लषन-सिय पंथि की कथा पृथुल। (गी० २।३७)
पंथु-दे० 'पंथ'। उ० १. नाथ साथ रहि पंथु देखाई। (मा० २।१०४।२)
पंनग-(सं० पन्नग)-दे० 'पन्नग'।
पंपा-(सं०)-दक्षिण भारत का एक तालाब। उ० पंपा नाम सुभग गंभीरा। (मा० ३।३६।३)
पँबारें-(सं० प्रवारण)-फेंकने पर, फेंका जाय तो। उ० रज होइ जाइ पषान पबारें। (प० १।३०१।२)
पँवरि-(सं० पुर)-पौरि, ड्यौढ़ी, प्रवेशद्वार। उ० पहिलिहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक। (पा० १२६)
पँवारत-(सं० प्रवारण)-फेंकते हैं, दूर हटाते हैं। उ० सर तोमर सेल समूह पँवारत, मारत बीर निसाचर के। (क० ६।३५) पँवारे-(सं० प्रवारण)-फेंकने से, डालने से।
पँवारा-(सं० प्रवाद)-पँवाड़ा, लंबी चौड़ी कथा या बात जिसे सुनते-सुनते जी ऊब जाय।
पँवारो-दे० 'पँवारा'। उ० बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो। (क० ६।३८)
प-(सं०)-१. वायु, हवा, २. पत्र, पत्ता, ३. प्रभु, स्वामी, जैसे नृप, ४. पीनेवाला, जैसे मधुप।

पइठि-(सं० प्रविष्ठ)-घुसकर, प्रवेश करके। उ० बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। (मा० ५।२।६) पइठिहउँ-घुस जाऊँगा। उ० तब तुअ बदन पइठिहउँ आई। (मा० ५।२।३)
पइयत-(सं० प्रापण, प्रा० पावण)-पाता हूँ, प्राप्त करता हूँ। पइहहिं-पाएँगे।
पइसार-दे० 'पैसार'। उ० अतिलघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार। (मा० ५।३)
पकये-(सं पक्व)-पकाए हुए, पकने के पहले तोड़कर पाल में पकाए हुए। उ० पाके पकाये विटप-दल उत्तम मध्यम नीच। (दो० ५१०)
पकरै-(सं० प्रकृष्ठ, प्रा० पक्कड्ढ)-१. पकड़े, ग्रहण करे, २. पकड़ता है, थामता है। पकरयो-पकड़ा। उ० अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकरयो। (वि० ६२)
पकवान-(सं० पक्वान्न)-घी में तलकर बनाई गई पूरी, कचौरी आदि खाने की चीजें। उ० पान, पकवान बिधि नाना को सँधानो सीधो। (क० ५।२३)
पकवाना-दे० 'पकवान'। उ० बिबिध भाँति मेवा पकवाना। (मा० १।३३३।२)
पकवानें-दे० 'पकवान'। उ० भरे सुधा सम सब पकवाने। (मा० १।३०५।१)
पक्खर (१)-(सं० प्रखर)-प्रचंड, प्रखर।
पक्खर (२)-(सं० प्रक्षर, प्रा० प्रक्खर)-लोहे की वह झूल जो लड़ाई के समय रक्षा के लिए हाथी या घोड़े पर डाली जाती है। उ० लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं। (क० ६।३६)
पक्ष-(सं०)-१. पाख, अँधेरा और उजेला पाख, २. आधा महीना, ३. पंख, पर, ४. सहाय, बल, ५. तरफ, ओर, ६. अंग, पार्श्व, ७. जत्था, दल, टोली, ८. मित्र, ९. आधा, १०. शरीर का आधा भाग, ११. तीर का पंख, १२. तरफदारी, १३. जुल्फ, बाल, जूरा।
पक्षपात-(सं०)-बिना अनुचित-उचित बिचार के किसी के अनुकूल प्रवृत्ति, तरफ़दारी।
पखवारा-(सं० पक्ष)-आधा महीना, पक्ष, १५ दिन। उ० परिखेसु मोहि एक पखवारा। (मा० ४।६।३)
पखाउज-(सं० पक्ष + वाद्य)-मृदंग की तरह का उससे कुछ छोटा एक बाजा। उ० बाजहिं ताल पखाउज बीना। (मा० ६।१०।५)
पखान-(सं० पाषाण)-पत्थर, पाथर।
पखारत-(सं० प्रक्षालन, प्रा० पक्खाडन)-१. धो रहे हैं, २. धोने पर, धोते ही। उ० १. ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु जय जय सब कहैं। (मा० १।३२४।छं० २) पखारि-धोकर, धो करके। उ० पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं आयसु होत कहा है? (क० २।७) पखारिहउँ-दे० 'पखारिहौं'। पखारिहौं-धोऊँगी, धोऊँगा। उ० पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढे। (क० २।१२) पखारु-धो ले, पखार ले। उ० बेगि आनु जल पाय पखारू। (मा० २।१०१।१) पखारे-१. धोए, शुद्ध किए, प्रक्षालन किया, २. धोने से, धोने पर। उ० १. अंतर मलिन

विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे। (वि ११५) २. तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक। (दो० ४६६)

पखावज–दे० 'पखाउज'।

पग–(सं० पदक, प्रा०पअक)–१. पाँव, पैर, २. डग, फाल। उ०१. ताके पग की पगतरी, मेरे तनुको चाम। (वै०३७)

पगन–१. पग का बहुवचन, पैरों, २. पैरों में। उ० २. उमहिं बोलि ऋषिपगन मातु मेलति भइ। (पा० १२) पगनि–१. पैरों से, चरणों से, २. पैरों में। उ० १. पगनि कब चलिहौ चारौ भैया? (गी० १।६) २. छोटिए धनुहियाँ पनहियाँ पगनि छोटी। (गी० १।४२) पगहुँ–दे० 'पगहु'। पगहु–पग से भी, कदम से भी। उ० जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा। (मा० २।१०१।२)

पगतरी–(हि० पग+तल)–जूता। उ० दे० 'पग'।

पगाई–(सं० पक्व)–पागा, डुबाया। उ० का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई। (क० ७।६३)

पगार–(सं० प्रकार)–गढ़, मकान या बाग आदि के रक्षार्थ बनी हुई चहारदीवारी। रखवाली के लिए बनी हुई दीवार। उ० तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो। (क० ५।२३)

पगि–(सं०पक्व) सनकर, पगकर, मिलकर, मग्न होकर, अनुरक्त होकर। पगी–मिली, मग्न हुई, सन गई।

पगिया–(सं० पग)–पगड़ी, पाग। उ० सुंदर बदन, सिर पगिया जरकसी। (गी० १।४२)

पगु–दे० 'पग'। उ० १. जो पगु नाउनि धोवइ राम धोवावइँ हो। (रा० १४)

पघिलाइ–(सं० प्र+गलन)–पिघला कर, गलाकर। उ० बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं बूँदियाँ सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै। (क० ५।१४)

पचत–(सं० पचन)–१. नष्ट होता है, समाप्त होता है, २. क्षीण होता है, खिन्न होता है, ३. झुरता है, पकता है, ४. तन्मय होया है, लीन होता है, पूर्णरूप से लगता है, ५. कष्ट उठाता है, दुःख सहता है, ६. जल रहा, खौल रहा। उ० ५. पेट ही को पचत बेचत बेटा बेट की। (क० ७।९६) ६. तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं। (क० ७।१६६) पचवइ–दे० 'पचवै'। पचवै–पचा डालती है। उ० जिमि सो असन पचवै जठरागी। (मा० ७।११६।५) पचहि–पचेगा, नष्ट हो जायगा। उ० परिनाम पचहि पातकी पाप। (गी० ५।१६) पचा–परिश्रम करके थक गया। उ० तमके वननाद से बीर पचारि कै हारि निसाचर सैन पचा। (क० ६।१५) पचि–१. कष्ट झेलकर, २. तन्मय होकर, पूर्णरूप से लगकर, ३. परेशान होकर, ४. बहुत श्रम करके, खपकर। उ० ४. करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया। (वि० ११६) मु० पचि मरहिं–बहुत परिश्रम करते हैं। उ० करहिं ते फोकट पचि मरहिं, सपनेहु सुख न सुबोध। (दो० २७४)

पचारि–(सं० प्रचार)–ललकार कर, ज़ोर से सुनाकर। उ० जामवंत हनुमंत बलु, कहा पचारि पचारि। (प्र० ५।५।३) पचारी–ललकार करके, ज़ोर के कहकर। उ० देइ देवतन्ह गारि पचारी। (मा० ११८२।४) पचारै–(सं० प्रचार)– ललकारे। उ० जौं रन हमहि पचारै कोऊ। (मा० ११२८४।१) पचारयो–१. प्रचारा, ललकारा, २. फटकारा, बुरा-भला कहा। उ० १.फिरत न बारहिं बार पचारयो। (गी० ३।८)

पचास–(सं० पंचाशत, प्रा० पचासा)–५०, संख्या में ४९ से एक अधिक। पचासक–पचासों। उ० राज सुरेस पचासक को, बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए। (क० ७।४५)

पचीसा–(सं० पंचविंशति)–पच्चीस। उ० तुरग लाख रथ सहस पचीसा। (मा० १।३३३।२)

पच्ची–(सं० पचित)–लगा हुआ, संयुक्त।

पच्छ–(सं० पक्ष)–दे० 'पक्ष'। उ० १. सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता। (मा० १।१९१।१) ३. जयति धर्मांसु संपाति-नवपच्छ-लोचन-दिव्यदेह-दाता। (वि० २८) १२. सापबस-मुनिबधू-मुक्तकृत् बिप्रहित-यज्ञरच्छन-दच्छ पच्छकर्ता। (वि० ५०) पच्छजुत–पक्षों के साथ, पाँखवाले। उ० भए, पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा। (मा० ५।३५।२)

पच्छधर–(सं० पक्ष+धारण)–पक्ष ग्रहण करनेवाला, पक्षपात करनेवाला। उ० तुलसी हरि भए पच्छधर, ताते कह सब मोर। (दो० १०७)

पच्छपात–(सं० पक्षपात)–तरफ़दारी, पक्षपात, न्यायतः उचित न होने पर भी किसी का पक्ष लेना। उ० इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। (मा० ७।११६।१)

पच्छिम–(सं० पश्चिम)–पश्चिम दिशा। उ० पच्छिम द्वार रहा बलवाना। (मा० ६।४३।२)

पच्छी–(सं० पक्षी)–पखेरू, खग, चिड़िया। उ० सपदि होहि पच्छी चंडाला। (मा० ७।११२।८)

पछताउ–दे० 'पछताव'। पछतात–पछताते हैं, पश्चाताप करते हैं। उ० मानिय सिय अपराध बिनु प्रभु परिहरि पछतात। (प्र० ६।७।२) पछताय–दे० 'पछताव'। पछताव–(सं० पश्चाताप)–१. अनुताप, पछतावा, पश्चाताप, २. पछता करके।

पछारहिं–(सं० पश्च, पश्चात्, प्रा० पच्छा)–पछाड़ देते हैं, गिरा देते हैं, पटक देते हैं। उ० मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। (मा० ६।८१।३) पछारहु–पछाड़ो, पछाड़ दो। उ० पद गहि धरनि पछारहु कीसा। (मा० ६।३४।५) पछारा–गिराया, पछाड़ दिया। उ० सिर लंगूर लपेटि पछारा। (मा० ६।५८।३) पछारि–पछाड़कर, पटककर। उ० महि पछारि निज बल देखरायो। (मा० ६।७४।४) पछारु–पछाड़ो, गिराओ। उ० धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही। (मा० ६।८१।छं०२) पछारे–पछाड़ा, गिराया। उ० मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे। (मा० ३।२०।छं०२) पछारेसि–पछाड़ा, गिरा दिया, पटक दिया। उ० पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। (मा० ६।६५।५)

पछालि–(सं० प्रक्षालन)–धोकर, प्रक्षालनकर। उ० प्रभुकर चरन पछालि तौ अति सुकुमारी हो। (रा० १५)

पछि–(सं० पक्ष)–सहायक, पक्षपात करनेवाला।

पछिताई–(सं० पश्चाताप, प्रा० पच्छाताव)–पछताकर, पश्चाताप कर। उ० अगम देखि नृप अति पछिताई। (मा०

१।१५७।४) पछिताउ–१. पछताओ, २. पश्चाताप, अनुताप। उ०२. दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए पछिताउ। (वि० १००) पछिताऊँ–पछताती हूँ, पछतावा करती हूँ। उ० मैं सुनि बचन बैठि ,पछिताऊँ। (मा०२।२६।४) पछिताऊ–दे०'पछिताउ'। उ० २.जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ। (मा० २।४।३) पछितात–पश्चाताप करते हैं। उ० सिर धुनि-धुनि पछितात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय। (वि० ८३) पछिताति–पछता रही हैं, पछतावा कर रही हैं। उ० मन पछताति सीय महतारी। (मा०१।२७०।४) पछिताती–पछता रही हैं, पश्चाताप कर रही हैं। उ० सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। (मा०२।१२।१) पछिताना–पछताने, पश्चाताप करने। उ० सिर धुनि गिरा लगत पछिताना। (मा० १।११।४) पछितानि–पछताना, पश्चाताप करना। उ०प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। (मा० २।१०।४) पछितानी–पछतायीं, पश्चाताप किया। उ० करि कुचालि अंतहुँ पछितानी। (मा० २।२०७।३) पछितानें–(सं० पश्चाताप)–पछताना ,पश्चाताप करना। उ० समय चुकें पुनि का पछितानें। (मा० १।२६१।२) पछिताने–पछताने लगे। उ० भएहुँ दुखी मन महुँ पछिताने। (मा० ६।६०।१) पछिताब–पछतायँगे, पछतावा करेंगे। उ० भली भाँति पछिताब पिताहूँ (मा० १।६४।१) पछिताय–१. पश्चाताप करके, पछताकर, २. पछतावा, पश्चाताप। उ० २. सुखी हरिपुर बसत होत परीछितहिं पछिताय। (वि० २२०) पछितायो–पश्चाताप किया। उ० बूझि न सकत कुसल प्रीतम की हृदय यहै पछितायो। (गी० २।५६) पछिताहिं–पछताते हैं, पछता रहे हैं। उ० देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं। (मा० २।९९) पछिताहीं–पछताते हैं। उ० सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। (मा० २।४।४) पछिताहू–पछताओ, पश्चाताप करो। उ० पैहहु सीतहि जनि पछिताहू। (मा० ४।२५।३) पछितैहसि–पछतायगी, पश्चाताप करेगी। उ० फिरि पछितैहसि अंत अभागी। (मा० २।३६।४) पछितैहहु–पछताओगी। उ० ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु। (पा० ६२) पछितैहै–पछतावेगा, पश्चाताप करेगा। उ० तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ। (वि० ८४) पछितैहौ–पछताओगे। उ० जानिकै जोर करौ परिनाम तुम्है पछितैहो। (क० ७।१०२)

पछितावा–पश्चाताप। उ० जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। (मा० १।४९।१)

पछिले–(सं० पश्च)–बाद के, पीछे के। उ० पछिले पहर भूपु नित जागा। (मा० २।३८।१)

पछु–(सं० पक्ष)–१. पक्ष, २. सहाय, ३. बल। उ० २. सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यौ। (गी० ३।१३)

पछोरन–(सं० प्रक्षालन, प्रा० पच्छाड़ना)–अन्न आदि सूप से साफ़ करने पर बची हुई बेकार और गंदी वस्तु। उ० ठालीं ग्वालि जानि पठए, अलि कह्यो है पछोरन छूछो। (कृ० ४३)

पट (१)–(सं०)–१. वस्त्र, कपड़ा, २.पर्दा, ओट, ३. रेशमी वस्त्र। उ० १. यथा पट-तंतु घट-मृत्तिका, सर्प-स्रग दारु करि, कनक-कटकांगदादी। (वि० ५४) २. ध्वज पताक पट चमर सुहाए। (मा० १।२८९।१) पटनि–'पट' का बहुवचन। दे० 'पट'। रेशमी वस्त्रों। उ० अंसनि सरासन लसत, सुचिकर सर, तून कटि मुनिपट लूटक पटनि के। (क० २।१६)

पट (२)–(सं० पट्ट)–किवाड़, कपाट।

पटक–(सं० पतन)–पटक दिए, धराशायी कर दिए। उ० बिकट चटकन चपट चरन गहि पटक महि। (क० ६।४६) पटकइ–पटकने लगा, पटकता है। उ० महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस। (मा० ६।६६) पटकत–पटकते समय, पटकते वक्त। उ० महि पटकत भजे भुजा मरोरी। (मा० ६।९८।५) पटकहिं–पटकते हैं, गिराते हैं। उ० भागत भट पटकहिं धरि धरनी। (मा० ६।४७।४) पटकि–पटककर, गिराकर। उ० तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ। (मा० ६।३०) पटके–पटक दिये, पटका। पटकेउ–पटक दिया, मार गिराया। उ० गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई। (मा० ६।१८।३)

पटतर–१. बराबरी, समानता, २. उपमा। उ० २. बैदेही मुख पटतर दीन्हे। (मा० १।२३८।१) पटतरहि–तुलना, उपमा। उ० प्रनतपाल, सेवक-कृपालु-चित, पितु पटतरहि दियो हौं। (गी० ३।१४) पटतरिअ–उपमा दी जाय, तुलना की जाय। उ० यह छबि सखी पटतरिअ जाही। (मा० १।२२०।४) पटतरिय–उपमा दी जाय। उ० कहहु काहि पटतरिय गौरि गुनरूपहि। (पा० १४०) पटतरौं–उपमा दूँ, मुकाबिला करूँ। उ० केहिं पटतरौं बिदेह कुमारी। (मा० १।२३०।४)

पटल–(सं०)–१.पंक्ति, श्रेणी, कतार, २. आवरण, पर्दा, ३. छप्पर, छत, ४. समूह, राशि, ढेर, परत, तह, ६. मोतियाबिंद, आँख का एक रोग, ७. माथे का तिलक, ८. पटरा, तख्ता। उ० १. पिंगल जटा-पटल शत कोटि विद्युच्छटाभं। (वि० ११) २. उघरे पटल परसुधर मति के। (मा० १।२८४।३) पटली–दे० 'पटल'। 'पटल' का स्त्रीलिंग, पंक्तियाँ। उ० १. चंचरीक पटली कर गाना। (मा०३।४०।४)

पटु–(सं०)–१. प्रवीण, चतुर, २. धूर्त, छलिया, ३. क्रूर, निर्दय, ४. सुन्दर, ५. तीक्ष्ण, तेज़, ६. स्वस्थ, ७. व्यक्त, प्रकाशित, ८. उग्र, प्रचंड, ९. बच, १०. ज़ीरा, ११. करेला, १२. परवल, १३. नमक, १४. नकछिकनी, १५. चीनीकपूर, १६. ठोस, मज़बूत। उ० १. पाप-ताप-तिमिर-तुहिन-विघटन-पटु। (ह० ९) ४. रघुपति पटु पालकी मंगाई। (मा० २।३२०।२) ५. गर्भ के अर्भक काटन को पटु धार कुठार कराल है जाको। (क० १।२०)

पटुली–(सं० पट्ट)–झूले के रस्सों पर रक्खी जानेवाली पटरी या तख्त। उ० पटुली पदिक रति-हृदय जनु कलधौत-कोमल-माल। (गी० ७।१८)

पटो–(सं० पट्टा)–किसी स्थावर संपत्ति विशेषतः भूमि के उपयोग का अधिकार-पत्र जो किसी के नाम लिखा जाता है। उ० राज सुरेस पचासक को, बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए। (क० ७।४५)

पटोर–(सं० पटोल)–रेशमी कपड़ा। पटोरन्हि–रेशमी कपड़ों से। उ० हाट पटोरन्हि छाय, सफल तरु लाइन्हि। (पा०

६७) पटोरे–रेशमी कपड़े। उ० सिअनि सुहावनि टाट पटोरे। (मा० १।१४।६)
पटोसिर–(?)–पाँवड़ा। उ० धन-धावन, बगपाँति पटोसिर, बैरख-तड़ित सोहाई। (कृ० ३२)
पट्टन–(सं०)–नगर, शहर।
पठंति–(सं० पठ्)–पढ़ते हैं। उ० पठंति ये स्तवं इदं। (मा० ३।४। छं० १२)
पठइ–(सं० प्रस्थान, प्रा० पट्ठान)–भेजकर, पठाकर। उ० जहँ-तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रव्य मगाइ। (मा० ७।१० ख) पठइअ–पठा दिया जाय, भेजा जाय, भेजिये। उ० अंग-भंग करि पठइअ बंदर। (मा० ५।२४।५) पठइन्हि–भेजा। उ० पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता। (मा० ५।२।१) पठइब–भेजूँगा, रवाना करूँगा। उ० अवसि दूत मैं पठइब प्राता। (मा० २।३१।४) पठइहि–भेजेंगे, रवाना करेंगे। उ० तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। (मा० ४।२८।४) पठई–भेजी, रवाना की। उ० जोग कथा पठई ब्रज को। (क० ७।१३४) पठउ–भेजो, भेजिए। उ० प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। (मा० ६।६।५) पठउब–भेजूँगा। पठए–भेजे। उ० पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। (मा० १।२८७।४) पठएउ–१. भेजिएगा, २. भेजा है। पठएसि–भेजा। उ० पठएसि मेघनाद बलवाना। (मा० ५।१६।१) पठएहु–भिजवाइए, भेजिए। उ० गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु। (मा० १। ७७) पठयउ–भेजा, भेजा है। उ० गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई। (मा० २।१५७।२) पठये–दे० 'पठए'। पठवत–भेजता है। उ० तौ बसीठ पठवत केहि काजा। (मा० ६।२८।४) पठवन–भेजने, पहुँचाने। उ० पठवन चले भगत कृत चेता। (मा० ७।१६।१) पठवहु–भेजो, भेज दो। उ० पठवहु कंत जो चहहु भलाई। (मा० ५।३६।४) पठवा–भेजा। उ० चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ। (मा० १।२३६) पठवौं–भेजूँ, भेज दूँ। उ० पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता। (मा० ६।६०।३) पठाइअ–पठाया जाय, भेजा जाय। उ० दूत पठाइअ बालिकुमारा। (मा० ६।१७।२) पठाइहि–भेजेगा। उ० जहँ-तहँ मरकट कोटि पठाइहि। (मा० ४।४।२) पठाई–भेजा, भेजा था। उ० गिरिजा पूजन जननि पठाई। (मा० १।२२८।१) पठाए–भेजा। उ० बीरभद्रु करि कोपु पठाए। (मा० १। ६५।१) पठाएउ–भेजा। उ० दूत पठाएउ तब हित हेतू। (मा० ६।३७।१) पठाओं–दे० 'पठावौं'। पठायऊ–भेजा। उ० लिखि लगन तिलक समाज सजि कुल गुरहि अवध पठायऊ। (जा० १२६) पठायो–भेजा। उ० ज्ञान परसु दै मधुप पठायो। (कृ०५६) पठावा–भेजा। उ० यह अनुचित नहिं नेवत पठावा। (मा० १।६२।१) पठावौं–भेजता हूँ, पठाता हूँ। उ०आपु सरिस कपि अनुज पठावौं। (मा० ६।१०५।२) पठै–१. पठए, भेजे, २. भेजकर। उ० १. सहस-दस चारि खल सहित खर दूषनहि पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो। (क० ६।१८) २. गौतम नारि उधारि पठै पति धामहिं। (जा० ४४)
पठावनी–मज़दूरी, भेजने का पारिश्रमिक। उ० ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वै हौं न हँसाइ कै। (क० २।६)
पडिकँ–(सं० पद्क)–चाँदी, रजत। उ० भोडर सुक्ति विभव पडिक मनि गति प्रगट लखात। (स० ३७४)
पढ़–(सं० पठ्)–पढ़ें। उ० सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी। (मा० १।२०४।३) पढ़त–पढ़ते हुए। उ० चले पढ़त गावत गुन गाथा। (मा० १।३३१।४) पढ़न–पढ़ने से लिए, पढ़ने। उ० गुरगृह गए पढ़न रघुराई। (मा० १।२०४।२) पढ़हिं–पढ़ते हैं, पढ़ रहे हैं। उ० पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। (मा० २।३७।३) पढ़ि–पढ़ कर, अध्ययन कर, सीख कर। उ० गाढ़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू। (मा० २।२१२।२) पढ़िबो–पढ़ना, अध्ययन करना। उ० पढ़िबो परयो न छठी छमत, ऋगु जजुर अथर्बन साम को। (वि० १५५) पढ़िय–१. बाँचिए, पढ़िए, २. पढ़ता हूँ। पढ़े–१. पढ़ा, २. पढ़ा है, पढ़ दिया है। उ० २. तुलसी-प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने। (गी० २।२३)
पढ़ाइ–पढ़ाकर। उ० हारेउ पिता पढ़ाइ-पढ़ाई। (मा० ७। ११०।४) पढ़ाई–१. दे० 'पढ़ाइ', २. पढ़ाया, ३. पढ़ाई हुई। उ० ३. कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई। (मा० २। २७।३) पढ़ाये–१. पढ़ाया, २. सिखा पढ़ाकर अपने पक्ष में कर लिया। उ० २. मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए। (कृ० ५०) पढ़ाव–पढ़ाते थे। उ० बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं। (मा० ७।१०५।३) पढ़ावहिं–पढ़ाते हैं। उ० सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। (मा० ७।२८।४) पढ़ावा–पढ़ाया, पढ़ाने लगे। उ० प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। (मा० ७।११०।३) पढ़ैया–पढ़नेवाला, उच्चारण करनेवाला। उ० ज्ञान कों गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया। (क० ७।१३५)
पणव–(सं०)–छोटा नगारा, छोटा ढोल।
पतंग–(सं०)–सूर्य. २. पतिंगा, शलभ, ३. टिड्डी, ४. गेंद, ५. पारा, ६. पक्षी, चिड़िया, ७. जटायु, ८. एक लकड़ी जिससे लाल रङ्ग निकलता है। ६. नाव, १०. गुड्डी, कनकौवा। उ० १. पवन पंगु पावक पतंग ससि दूरि गए थके बिमान। (गी० ५।२२) २. जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खर बृंद। (मा०६।२६) ४. बहुबिधि क्रीड़हि पानि पतंगा। (मा० १।१२६।३) ७. पाहन पसू पतंग कोल भील निसिचर। (वि० २५७)
पतंगसुत–(सं०)–सूर्य का पुत्र, १. अश्विनीकुमार, २. कर्ण, राधेय, ३. यम, ४. सुग्रीव। उ० २. भजु पतंगसुत आदि कहँ मृत्युंजय-अरि अंत। (स० २२६)
पतंगा–दे० 'पतंग'। उ० १. देखेउ रघुकुल कमल पतंगा। (मा० १।६८।४)
पतंति–(सं० पत्)–गिरते हैं। उ० पतंति नो भवार्णवे। (मा० ३।४। छं० ७)
पत–(सं० पति)–१. प्रतिष्ठा, बड़ाई, इज़्ज़त, २. नाथ, स्वामी, ३. लज्जा।
पतनी–(सं० पत्नी)–स्त्री, औरत।
पताक–(सं० पताका)–झंडा, निशान रूप में डंडे में पहनाया जानेवाला कपड़ा। उ० बिपुल बरन पताक ध्वज नाना। (मा० ६।७६।१)
पताका–(सं०)–१. ध्वजा, झंडा, फरहरा, २. चिह्न, निशान,

३. झंडे का डंडा, ध्वज। उ० १. रघुपति कीरति बिमल पताका। (मा० १।१७।३)
पताल-दे० 'पाताल'। उ० ईस सीस बससि त्रिपथ लससि नभ-पताल-धरनि। (वि० २०)
पताला-दे० 'पाताल'। उ० बलिहि जितन एक गयउ पताला। (मा० ६।२४।७)
पतिं-पति को। उ० नतोऽहमुर्विजा पतिं। (मा० ३।४। छं० ११) पति-(सं०)-१. मालिक, स्वामी, २. प्रतिष्ठा, इज्जत, ३. प्रभु, ४. भर्ता, ५. रक्षक, ६. लाज। उ० २. नीच यहि बीच पति पाइ भरु आइगो। (ह० ४१) ४. शुद्ध मति युवति पति प्रेम पागी। (वि० ३६) ६. नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडु बधू की। (क० ७।६) पतिधाम-(सं०)-१. स्त्री की ससुराल, २. पति का लोक। पतिधामहिं-पति के लोक को। उ० गौतम नारि उधारि पठै पतिधामहिं। (जा० ४४) पतिन्ह-पतियों को। उ० पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही। (मा० १।३३६।१) पतिहिं-पति को। उ० तीरथ-पतिहिं आव सब कोई। (मा० १।४४।२) पतिहि-पति के। उ० केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई। (मा० २।२५। छं० १) पते-हे स्वामिन्। उ० नान्या स्पृहा रघुपते। (मा० ५।१। श्लो० २)
पतिआउ-(सं० प्रत्यय, प्रा० पत्तय)-विश्वास करो। उ० पुनि-पुनि भुजा उठाइ कहत हौं सकल सभा पतिआउ। (गी० ५।४५) पतिआतो-विश्वास करता। उ० स्वारथ-परमारथ-पथी तोहिं सब पतिआतो। (वि० १५१) पतिआनि-विश्वास कर लिया। उ० सुर माया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि। (मा० २।१६) पतिआयो-विश्वास किया, भरोसा किया। पतिआहु-विश्वास कर लो या कर लेना। उ० काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। (मा० २।२२) पतिआहू-विश्वास करो। उ० कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। (मा० २।१७४।१)
पतित-(सं०)-१. गिरा, नीचे आया हुआ, च्युत, २. आचारच्युत, भ्रष्ट, ३. पापी, ४. जाति से निकाला हुआ, ५. नीच, बुरा, अपवित्र। उ० २. अधम आरत दीन पतित पातक-पीन। (वि० ४४) ३. तुलसिदास कहँ आस इहै बहु पतित उधारे। (वि० ११०) ४. तै उदार, मैं कृपन पतित मैं तैं पुनीत स्रुति गावै। (वि० ११३) पतितन-पतितों, पापियों को। 'पतित' का बहुवचन। उ० हौं मन बचन कर्म पातक-रत तुम कृपालु पतितनि गतिदाई। (वि० २४२) पतितन्ह-दे० 'पतितन'।
पतितपवन-दे० 'पतितपावन'।
पतितपावन-(सं०)-पतितों को पवित्र करनेवाला, भगवान्, ईश्वर। उ० पतितपावन सुनत नाम विश्रामकृत। (वि० २०६)
पतिनिहिं-(सं० पत्नी)-पत्नी को, स्त्री को। पतिनी-स्त्री, औरत। उ० जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी। (मा० ७।१३।छं० ४)
पतिब्रत-(सं० पतिव्रत)-पति में अनन्य प्रीति और भक्ति, पातिव्रत्य। उ० त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा। (मा० १।६७।३)
पतिब्रता-(सं० पतिव्रता)-पति में अनन्य अनुराग रखनेवाली, ऐसी स्त्री जिसका उपास्य और प्रेम-पात्र एकमात्र पति हो। उ० जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। (मा० ३।५।६)
पती-दे० 'पति'। मर्द, शौहर, भर्त्ता। उ० लियो हृदयँ लाइ कृपानिधान सुजान रायँ रमापती। (मा० ६। १२१। छं० १)
पतीजै-(सं० प्रत्यय) १. विश्वास कीजिए, २. विश्वास दिलाइए। उ० १. बोल्यो बिहग बिहँसि रघुबर बलि कहौं सुभाय पतीजै। (गी० ३।१५)
पतोहू-(सं० पुत्रवधू)-बेटे की स्त्री।
पतौवा-(सं० पत्र)- पत्ता। उ० सिवहि चढ़ाये ह्वै हैं बेल के पतौवा द्वै। (क० ७।१६३)
पत्नी-(सं०)-जोरू, स्त्री, भार्या।
पत्यात-(सं० प्रत्यय) पतियाते, विश्वास करते, विश्वास करते हैं। उ० तौलों तुम्हहिं पत्यात लोग सब, सुसुकि, सभीत साँचु सो रोए। (कृ० ११)
पत्र-(सं०)-१. पत्ता, दल, २. कागज, ३. चिट्ठी, ४. पन्ना, ५. वह कागज जिस पर कर्ज या किसी मामले आदि की बात लिखी हो, दस्तावेज, ६. तीर, ७. पंख। उ० १. हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल। (मा० १।२८७) ३. तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाये। (मा० १।१७५।२) ५. देबे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ। (वि० १००)
पत्रिका-(सं०)-१. पत्र, चिट्ठी, २. कोई छोटा लेख आदि, जैसे जन्मपत्रिका। उ० १. पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। (मा० १।२६०।३)
पत्री-(सं०)-१. चिट्ठी, पत्र, २, वृक्ष, ३. पक्षी, ४. कमल। उ० १. महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ। (वै० ३५)
पथ-(सं०)-१. मार्ग, रास्ता, राह, २. पंथ, मत, मज़हब, ३. विधान, व्यवहार। उ० १. परमारथ पथ परम सुजाना। (मा० १।४४।१) पथै-मार्ग पर, मार्ग में। उ० तापस बेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ। (क० २।१७)
पथि-१. पथिक, २. रास्ते में, पथ में। उ० १. धर्म-कल्प द्रुमाराम हरिधाम-पथि-संबलं, मूलमिदमेव एकं। (वि० ४६)
पथिक-(सं०)-मुसाफ़िर, बटोही। उ० अखिल खल निपुन-छल-छिद्र निरखत सदा जीव-जन-पथिक-मन-खेदकारी। (वि० ५६)
पथी-(सं० पथ)-पथिक, मुसाफिर। उ० स्वारथ-परमारथ-पथी तोहिं सब पतिआतो। (वि० १५१)
पथु-दे० 'पथ'।
पथ्य-(सं०)-१. वह हलका और जल्दी पचनेवाला भोजन जो रोगी के लिए लाभकर हो, २. उचित, ३. परहेज़, ४. हित, ५. हितकर, हितकारी। उ० १. पूत पथ्य गुर आयसु अहई। (मा० २।१७६।१)
पदं-दे० 'पद'। उ० २. नवादरेण ते पदं। (मा० ३।४।१२)
पद-(सं०)-१. पैर, गोड़, २. मोक्ष, मुक्ति, ३. व्यवसाय, ४. उपाधि, पदवी, ५. ओहदा, जगह, दर्जा, ६. त्राण,

रखा. ७. लक्षण, निशान, ८. पदार्थ, चीज़, ९. क़दम, १०. श्लोक या छंद का चतुर्थांश, एक चरण, ११. पद्य, गीत, ईश्वर भजन संबंधी भजन, १२. शब्द, वाक्य, १३. प्रतिष्ठा। उ० १. कल कदलि जंघ पद कमल लाल। (वि० १४) ९. भुवन पर्य्यंत पद तीनि करणं। (वि०५२) ११.उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान। (गी० १।२) पदतल–(सं०)–पैर का तलवा। उ० पदुमराग रुचि मृदु पदतल, धुज अंकुस कुलिस कमल यहि सूरति। (गी० ७।१७) पदात्–पद से, स्थान से। उ० ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। (मा० ७।१३। छं० ३)

पदक–दे० 'पदिक'।

पदचर–(सं०)–पैदल चलनेवाला, प्यादा। उ० जुग पदचर असवार प्रति जे असि कला प्रबीन। (मा०१।२९८)

पदचार–पैदल चलकर। उ० दसचारि बरिस बिहार बन पदचार करिबे पुनीत सैल सर सरि मही है। (गी० २।४१)

पदचारी–(सं०)–पैदल चलनेवाला, प्यादा। उ० ते अब फिरत बिपिन पदचारी। (मा० २।२०१।२)

पदज–(सं०)–१. पैर की अँगुली, २. शूद्र। उ० १. मृदुल चरन सुभ चिह्न पदज नख अति अद्‌भुत उपमाई। (वि० ६२)

पदत्राण–(सं०)–जूता, खड़ाऊ।

पदत्रान–दे० 'पदत्राण'।

पदबी–(सं० पदवी)–१. उपाधि, ख़िताब, २. तरीका, परिपाठी, ३. ओहदा, दरजा,४. पंथ, रास्ता। उ० १. रंक धनद पदबी जनु पाई। (मा० २।५२।३)

पदाति–(सं०)–पैदल सेना। उ० बहु गज रथ पदाति असवारा। (मा० ६।८६।२)

पदादिका–(सं० पदातिक)–पैदल सेना। उ० प्रभु-कर सेन पदादिका बालक राज समाज। (दो० ५२५)

पदारथ–(सं० पदार्थ)–वस्तु, चीज़। उ० प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि। (मा० १।३४५)

पदार्थ–(सं०)–१. वस्तु, द्रव्य, चीज़ २. वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छः पदार्थ होते हैं। ३.वह चीज़ जिसका कोई नाम हो और जिसका ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

पदिक (१)–(सं०)–पैदल सेना।

पदिक (२)–(सं० पदक)–१. मणि, २. माला के बीच में जड़ी चौकी, ३. जुगनू नाम का गले में पहनने का एक आभूषण। उ० १. रुचिर उर उपबीत राजत, पदिक गजमनि हारु। (गी० ७।८)

पदिक (३)–(सं० पद)–१. भृगुलता, २. चरण।

पदु–दे० 'पद'।

पदुम–(सं० पद्म)–१. कमल २. एक संख्या जो अंकों में १००००००००००००००० लिखी जाती है। ३.एक निधि का नाम, ४. एक पुराण। उ० १. बंदउँ गुरुपद पदुम परागा। (मा० १।१।१)

पदुमराग–दे० 'पद्मराग'। उ० हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल। (मा० १।२८७)

पदुमराज–दे० 'पद्मराग'।

पदुमु–दे० 'पदुम'।

पद्म–(सं०)–१. कमल, कंज, २. एक निधि का नाम, ३. सौ नील की संख्या, ४. एक पुराण। उ० १.राम पद पद्म-मकरंद-मधुकर पाहि! दास तुलसी-सरन-सूलपानी। (वि० २९)

पद्मनाम–(सं०)–विष्णु, नारायण, जिसकी नाभि में कमल हो।

पद्मराग–(सं०)–माणिक या लाल नाम का रत्न।

पद्मा–(सं०)–लक्ष्मी। उ० युगल पद पद्म सुख सद्म पद्मालयं। (वि० ५१)

पद्मालय–(सं०)–ब्रह्मा।

पद्मासनं–पद्मासन लगाए हुए। दे० 'पद्मासन'। उ० पुन्य-बन शैल सरि बदरिकाश्रम सदाऽसीन पद्मासनं एक रूपं। (वि० ६०) पद्मासन–(सं०)–१. योग का एक आसन, २. ब्रह्मा, ३. शिव।

पन (१)–(सं० प्रण)–प्रतिज्ञा, संकल्प। उ० सुमिरे संकट-हारी सकल सुमंगलकारी, पालक कृपालु आपने पन के। (वि० ३७)

पन (२)–(सं० पर्वन्)–अवस्था, आयु के चार भागों में एक।

पन (३)–(सं० पण)–मोल।

पनच–(सं० पतंचिका)–प्रत्यंचा, धनुष की डोरी। उ० नदी पनच सर सम दम दाना। (मा० २।१३३।२)

पनव–(सं० पणव)–१. छोटा नगारा, २. छोटा ढोल, ३. डंका। उ० १. हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना। (मा० १।२९९।१)

पनवार–दे० 'पनवारा'।

पनवारा–(सं० पर्ण, प्रा० पण्ण)–पत्तल, पत्तों का बना बर्तन, दोना। पनवारे–पत्तलों का समूह, दोनें। उ० सादर लगे परन पनवारे। (मा० १।३२८।४)

पनवारो–दे० 'पनवारा'। उ० अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो। (वि० ९४)

पनस–(सं०)–कटहल का वृक्ष। उ० संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।९०।छं०१)

पनहि–दे० 'पनहीं'। उ० पनहि लिहे कर सोभित सुंदर आँगन हो। (रा० ७)

पनहियाँ–दे० 'पनहीं'। उ० बार बार उर नैननि लावति लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ। (गी० २।५२)

पनहीं–जूते, पनही का बहुबचन। उ० राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। (मा० २।२११।४) पनही–(सं० उपानह)–जूता। पनह्यौ–पनहीं भी। उ० पाइँ पनह्यौ न, मृदु पंकज से पग हैं। (गी० २।२७)

पनारे–(सं० प्रणाली)–पनाला, नाला। उ० जनु कज्जल-गिरि गेरु पनारे। (मा० ६।६९।४)

पनिघट–(सं० पानीय + घट्ट)–पानी भरने का घाट। उ० पनिघट परम मनोहर नाना। (मा० ७।२९।१)

पनी–(सं० प्रण)–प्रण करनेवाला। उ० बाँह-पगार उदार-सिरोमनि नत-पालक पावन-पनी। (गी० ५।३९)

पनु (१)–दे० 'पन (१)'। उ० सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा। (मा० १।२३४।२)

पनु (२)-दे० 'पन (२)'। उ० मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा। (मा० २।२।४)
पन्नग-(सं०)-सर्प, साँप। उ० रामकथा कलि पन्नग भरनी। (मा० १।३१।३)
पन्नगारि-(सं०)-गरुड़ पक्षी, जो सर्पों का शत्रु होता है। उ० पन्नगारि असि नीति श्रुति सम्मत सज्जन कहहिं। (मा० ७।९५ क)
पन्नगारी-दे० 'पन्नगारि'। उ० त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्तगज-चर्म-धर, अंधकोरग-ग्रसन-पन्नगारी। (वि० ४९)
पन्हाइ-(सं० पयः स्रवन, प्रा० पह्णवन)-थनों में दूध उतार कर, पसुराकर। उ० धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तें। (क० ७।१२९)
पपीहरा-दे० 'पपीहा'। उ० ब्याधा बधे पपीहरा परेउ गंग-जल जाइ। (स० ९८)
पपीहा-(हिं० पपी (प्रिय)+हा या सं० पपिः (पीना)+ सं० हार (वाला)=पीनेवाला) एक पक्षी जो केवल स्वाती नक्षत्र का पानी पीने तथा पी कहाँ पी कहाँ कहने के लिए प्रसिद्ध है। इसकी ध्वनि बड़ी सुरीली होती है। उ० देहि मा! मोहि प्रण प्रेम, यह नेम निज राम घन-श्याम, तुलसी पपीहा। (वि० ५५)
पबारें-(सं० प्रवारण)-फेंकने से। उ० रज होइ जाइ पषान पबारें। (मा० १।३०१।२) पबारे-(सं० प्रवारण)-फेंक दिए। उ० कछु अंगद प्रभु पास पबारे। (मा० ६।३२।३) पबारै-फेंके, फेंकता है। उ० कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै। (मा० ६।९१।३)
पबि-दे० 'पवि'। उ० २. गरजि तरजि पाषान बरषि पबि प्रीति परखि जिय जानै। (वि० ६५)
पबिपात-वज्रपात, बिजली का गिरना। उ० घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले। (मा० ६।४१। छं०१०)
पबै-(सं० प्रापण, प्रा० पावण)-१. प्राप्त हो, मिले, २. प्राप्त हुई, मिली। उ० १. बिचारि फिरी उपमा न पबै। (क० १।७) २. मति-भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि बिचारि फिरी उपमान पबै। (क० १।७)
पब्बइ-(सं० पर्वत)-पहाड़, पर्वत। उ० कूदिए कृपाल तुलसी सु प्रेम पब्बइ तें। (ह० २३)
पब्बै-दे० 'पब्बइ'। उ० डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्र सर। (क० १।११)
पय-(सं०)-१. दूध, २. जल, ३. पयस्विनी, नदी, ४. पानी। उ० १. संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार। (मा० १।६) २. दे० 'पयनिधि'।
पयज-(सं० प्रतिज्ञा, प्रा० पतिञ्ञा, अप० पइज्जाँ, पुरानी हिं० पैज) प्रण, प्रतिज्ञा, टेक, हठ। उ० परखत प्रीति प्रतीति पयज पनु रहे काज ठटु ठानिहैं। (गी० १।७८)
पयद-(सं०)-दूध या जल देने वाला, १. बादल, २. स्तन। उ० १.पोषत पयद समान सब विष पियूष के रूख। (दो० ३७७) २. स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए। (मा० २।५२।२)
पयनिधि-(सं०)-१. समुद्र, २. क्षीर सागर, दूध का समुद्र। उ० २. कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई। (मा० १।१८५।१)
पयमुख-दूध पीनेवाला, दुधमुहाँ, छोटा। उ० कालकूट मुख पयमुख नाहीं। (मा० १। २७७।४)
पयस-(सं० पयस्)-दूध। उ० बचन गाय सब के बिबिध कहहु पयस के देइ। (स० ५९७)
पयसरित-मंदाकिनी नदी। उ० पावनि पयसरित सकल मल निकंदिनी। (गी० २।४३)
पयस्विनी-(सं०)-मंदाकिनी, चित्रकूट की एक नदी।
पयादें-(फ़ा० प्यादा)-पैदल, बिना किसी सवारी के। उ० तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें। (मा० २।२२१।३) पयादेहिं-पैदल ही। उ० चलब पयादेहिं बिनु पद त्राना। (मा० २।६२।३) पयादेहि-पैदल ही। उ० पाँयन तौ पनही न, पयादेहि क्यों चलिहैं ? सकुचात हियो है। (क० २।२०)
पयान-(सं० प्रयाण)-१. गमन, जाना, यात्रा, २. धावा, आक्रमण या आक्रमण के लिए गमन, ३. कूच करने या प्रयाण करने का समय। उ० १. प्रभु पयान जाना बैदेहीं। (मा० ५।३५।३) ३. राम पयान निसान नभ बाजहिं गाजहिं बीर। (प्र० ५।५।५)
पयाना-दे० 'पयान'। उ० १. एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। (मा० १।३०४।२)
पयानो-दे० 'पयान'। उ० १. जब रघुबीर पयानो कीन्हों। (गी० २।२२)
पयोद-(सं०)-१. बादल, २. स्तन। उ० १. सान्द्रानन्द पयोद सौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं। (मा० ३।१। श्लो० २)
पयोदनाद-(सं०)-मेघनाद। उ० कुंभकर्न-रावन-पयोदनाद-ईंधन को तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो। (ह० ७)
पयोधर-(सं०)-१. स्तन, २. बादल। उ० १. दैअहि लागि कहौ तुलसी-प्रभु अजहुँ न तजत पयोधर पीबो। (कृ० ९)
पयोधि-(सं०)-१. समुद्र, २. दूध का समुद्र, क्षीर सागर। उ० २. संत समाज पयोधि रमा सी। (मा० १।३१।१)
पयोधी-दे० 'पयोधि'। उ० १. पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी। (मा० ७।६७।३)
पयोनिधि-(सं०)-समुद्र। उ० जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। (मा० १।२४७।४)
परं-दे० 'पर'। उ० ६. वन्देऽहं तमशेषकारण परं रामाख्य-मीशं हरिम्। (मा०१।१।श्लो०६) परंतु-(सं० परं+तु)-किंतु, लेकिन। उ० तहाँ परंतु एक कठिनाई। (मा०१।१६७।१) पर (१)-(सं०)-१.दूसरा, अन्य, और, २.पराया, जो अपना न हो, ३. भिन्न, जुदा, ४. पीछे का, बाद का, ५. अलग, तटस्थ, जो सीमा के बाहर हो, ६. श्रेष्ठ, सर्वोत्तम, सबसे आगे, ७. प्रवृत्त, लीन, ८. शत्रु, दुश्मन, ९. शिव, १०. ब्रह्म, ११. ब्रह्मा, १२. मोक्ष। उ० २. अनहित-भय परहित किये, पर अनहित हितहानि। (दो० ४६७) ५. घोर संसार पर पारदाता। (वि० ५४) ८. जयति भुवनैक भूषन बिभीषन-बरद-बिहित-कृत, राम संग्राम-साका। (वि० २६)
पर (२)-(सं० उपरि)-अधिकरण का चिह्न, ऊपर, पर। उ० जाहि लगै पर जानै सोई। (क० ७।१३४)

पर (३)–(सं० परम्)–पश्चात्, पीछे।
पर (४)–(फ़ा०)–पंख, पक्ष।
परइ–(सं० पतन, प्रा० पडन, हि० पड़ना)–पड़ता, गिरता। उ० सोच बिकल मग परइ न पाऊ। (मा० २।३१।२) परई–पड़ जावे, पड़े, गिरे। उ० होइ सुखी जौं एहिं सर परई। (मा० १।३५।४) परउँ–१. पड़ती हूँ, २. पड़ूँ। उ० १. मैं पाँ परउँ कहइ जगदंबा। (मा० १।८१।४) परत (१)–१. पड़ते हैं, गिरते हैं, २. घटित होता है, होता है, पड़ता, पड़ता है, बनता है, ३. ठहरता है, ४. पड़ते हुए, गिरते हुए, ५. पड़ने में, गिरने में। उ० १. समय पुराने पात परत डरत बात। (क० ५।१) २. परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो। (वि० २६४) ५. नाहिन नरक परत मो कहँ डर। (वि० ६४) परति–पड़ती पहै, जाती है, जाती। उ० निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न। (कृ० ५५) परतिहुँ–पड़ते भी, गिरते भी। उ० परतिहुँ बार कटकु संघारा। (मा० ५।२०।१) परब (१)–(सं० पतन)–पड़ूँगा। उ० इन्ह कर कहा न कीजिए बहुरि परब भवकूप। (वि० २०३) परहिं–गिर जाते हैं, पड़ जाते हैं। उ० अटुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। (मा० २।१४३।३) परहीं–पड़ते हैं, गिरते हैं। उ० बारहिं बार पायलै परहीं।(मा० २।११।४) परा (१)–पड़ा, पड़ गया, पड़ गया है। उ० मनु हठ परा न सुनइ सिखावा। (मा० १।७८।३) परि (१)–(सं० पतन, प्रा० पडन)–पड़ी। उ० परि न बिरह बस नींद बीति गइ जामिनि। (जा० १८२) परिअ–पड़ता है, पड़ेगा, पड़ना चाहिए। उ० मारत हूँ पा परिय तुम्हारें। (मा०१।२७३।४) परिए–पड़ा रहूँ। उ० संतत सोइ प्रिय मोहिं सदा जातें भवनिधि परिए। (वि० १८६) परिगा–(सं० पतन, प्रा०पडन)–पड़ गया। उ० कीदहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो। (रा० १२) परिय–(सं० पतन)–पड़ना चाहिए। परिहहिं–(सं० पतन, हि० पड़ना, परना)–गिरेंगे, पड़ेंगे। उ० परिहहिं धरनि राम सर लागें। (मा० ६।२७।२) परिहिं–पड़ेंगे, गिरेंगे, पतित होंगे। परिहि–गिर पड़ेंगे, गिरेंगे। उ० सोक-कूप पुर परिहि, मरिहि नृप, सुनि सँदेस रघुनाथ-सिधायक। (गी० २।३) परिहै–पड़ेगा। उ० तुलसी पर बस हाड़ पर परिहै पुहुमी नीर। (दो० ३०१) परिहौ–पड़ोगे, गिरोगे। परीं–पड़ीं, गिरीं। उ० बिनु प्रयास परीं प्रेम सही। (गी० २।३८) परी–१. पड़ी, गिरी, पतित हुई, २. हुई, घटी। उ० १. अस कहि परी चरन धरि सीसा। (मा० १।७१।४) परीगो–पड़ ही गया। उ०हाय हाय करत परीगो काल फँग मैं। (क०७।७६) परे (१)–१. गिरे, गिर पड़े, २. पड़कर, ३. पड़ने पर, ४. पड़े हुए, गिरे हुए। उ० ३. हौ भले नग-फँग परे गढ़ीबै, अब ए गढ़त महरि मुख जोए। (कृ० ११) परेउँ–पड़ा हूँ, गिरा हूँ। उ० फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। (मा० १।१५९।३) परेउ–पड़ा, पड़ा हो। उ० अभिमत बिरवँ परेउ जनु पानी। (मा०२।५।३) परेऊ–पड़े, पड़ गए। उ०सोच बिकल बिवरन महि परेऊ। (मा० २।३८।४) परेहु–पड़े हो। उ० परेहु कठिन रावन के पाले। (मा० ६।६०।४) परै–पड़ता, पड़ती। उ० जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही। (मा० १।८६। छं० १) परौं–(सं० पतन)–गिर पड़ूँ, गिरूँ। परो–पड़ा, पड़ा हुआ। उ० कृपनु देइ पाइय परो, बिन साधन सिधि होइ। (प्र० ७।४।३) परयो–१. पड़ा, गिर पड़ा, २. पड़ा हुआ। उ० २. रन परयो बंधु बिभीषन ही को सोच हृदय अधिकाई। (वि० १६४)

परखि–(सं० परीक्षा)–१. देखकर, पहचानकर, २. परीक्षा लेकर। उ० १. प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ। (जा० ११६) परखिअहिं–परीक्षा होती है, परीक्षा की जाती है। उ० आपद काल परिखिअहिं चारी। (मा० ३।५।४) परखिय–परखिए, परीक्षा कीजिए। उ० प्रेम न परखिय परुषपन, पयद-सिखावन एह। (दो० २९८) परखी–परख ली, परीक्षा कर चुका। उ० परखी पराई गति, आपने हूँ कीय की। (वि० २६३) परखे–१. परीक्षा कर ली, परख लिया, २. परख कर। उ० १.परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो। (वि० २६४)

परचंड–दे० 'प्रचंड'। उ० १. प्रबल-भुजदंड-परचंड कोदंड धर। (वि० ५०)

परचा–(सं० परिचय)–१. परिचय, जान-पहचान, २. परीक्षा, जाँच।

परचारि–(सं० प्रचार)–प्रचारकर, डंके की चोट पर, पुकारकर। उ० चारु चरन-तल-चिह्न चारि फल देत परचारि जानि जन। (गी० ७।१६) परचारे–ललकारने पर। उ० उठा आपु कपि के परचारे। (मा० ६।३५।१)

परचे–(सं० परिचय)–परिचय, पहचान। उ० रामचरन परचे नहीं बिनु साधुन पद नेह। (स० ३८८)

परजंक–(सं० पर्यंक)–पलंग, चारपाई।

परजरा–(सं० प्रज्वलन)–जला, उल उठा, भभक उठा, जल गया। उ० सुनत बचन रावन परजरा। (मा० ६।२७।४)

परजारि–जलाकर, प्रज्वलित कर। उ० लंका परजारि मकरी बिदारि बार-बार। (ह० २७)

परत (२)–(सं० पत्र)–१. स्तर, तह, पटल, २. लड़।

परतच्छ–(सं० प्रत्यक्ष)–प्रत्यक्ष, सम्मुख, सामने, प्रकट। उ० कह तुलसी परतच्छ जो सो कहु अपर को आन। (स० ५०६)

परतीति–(सं० प्रतीति)–विश्वास, यकीन। उ० बिछुरत श्री ब्रजराज आजु इन नयनन की परतीति गई। (कृ० २४)

परतीती–दे० 'परतीति'। उ० सखी वचन सुनि भै परतीती। (मा० १।२५७।२)

परत्र–(सं०)–१. परलोक में, २. दूसरी जगह, अन्यत्र। उ० १. सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताय। (मा० ७।४३)

परदखिना–(सं० प्रदक्षिणा)–परिक्रमा, किसी देवमूर्ति या देवस्थान के चारों ओर घूमना। उ० परदखिना करि करहिं प्रनामा। (मा० २।२०२।२)

परदा–(फ़ा०)–१. कपड़े आदि का आड़, पट, चिक, २. बनी हुई प्रतिष्ठा या मर्यादा, ३. छिपाव, दुराव, लाज, ४. व्यवधान। उ० २. सेवक को परदा फटै तू समरथ सी

ले। (वि० ३२) ३. नारद को परदा न नारद सो पारिखो। (क० १।१६)
परदेस-(सं० पर+देश)-पराया देश, दूसरा देश। उ० ते तुलसी तजि जात किमि निज घरतर परदेस। (स० ७)
परधान (१)-(सं० प्रधान)-१. प्रधान, मुखिया, अगुवा, २. मुख्य, खास। उ० २. पुरुषारथ, पूरब करम, परमेस्वर परधान। (दो० ४६८)
परधान (२)-(सं० परिधान)-वस्त्र, परिधान, पहिरन।
परधानू-दे० 'परधान (१)'। उ०२. जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। (मा० २।२९१।१)
परधाम-(सं०)-१. वैकुंठ, परलोक, २. ईश्वर। उ० १. को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को। (वि० १५५)
परधामा-दे० 'परधाम'। उ० २. कहि सच्चिदानंद परधामा। (मा० १।५०।४)
परन (१)-(सं० पर्ण)-पत्ता, पत्र। उ० मरकत बरन परन, फल मानिक से। (क० ७।१३९)
परन (२)-(सं० प्रण)-प्रतिज्ञा, प्रण।
परनकुटी-(सं० पर्णकुटी)-पत्तों की झोपड़ी। उ० रघुबर परनकुटी जहँ छाई। (मा० २।२३७।३)
परनकुटीर-दे० 'परनकुटी'। उ० सानुज सीय समेत प्रभु राजत परनकुटीर। (मा० २।३२१)
परनगृह-(सं० पर्णगृह)-कुटी, झोंपड़ी। उ० गोदावरी निकट प्रभु रहे परनगृह छाइ। (मा० ३।१३)
परनपुटीं-(सं० पर्ण+पुटिका)-दोनों में, पत्ते के बर्तनों में। उ० भरि भरि परनपुटीं रचि रूरीं। (मा० २।२५०।१)
परनसाल-(सं० पर्ण+शाला)-झोपड़ी, पर्णकुटी। उ० नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल। (मा० २।६५)
परना-(सं० पर्ण)-पत्र, पत्ता। उ० पुनि परिहरे सुखानेउ परना। (मा० १।७४।४)
परनाम-दे० 'प्रणाम'।
परनामा-(सं० प्रणाम)-प्रणाम, नमस्कार। उ० कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। (मा० १।१४।२)
परपंचु-(सं० प्रपंच)-१. संसार, २. झमेला। उ० १. मिलइ रचइ परपंचु बिधाता। (मा० २।२३२।३)
परपद-परमपद, ब्रह्मपद। उ० सतसैया तुलसी सतर तम हरि परपद देत। (स० ३१४)
परब (२)-(सं० पर्व)-१. त्यौहार, उत्सव, २. योग, घड़ी। उ० १. परब जोग जनु जुरे समाजा। (मा० १।४१।४)
परबस-(सं० परवश)-पराधीन, दूसरे के वश में। उ० करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। (मा० २।१६।३)
परबास-(सं०)-ऊपर का कपड़ा, बेठन। उ० कपटसार सूची सहस, बाँधि बचन-परबास। (दो० ४१०)
परब्बत-(सं० पर्वत)-पहाड़। उ० मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो। (क० ६।५४)
परब्रह्म-(सं०)-ब्रह्म जो जगत से परे है।
परभात-दे० 'प्रभात'। उ० हरषु हृदयँ परभात पयाना। (मा० २।१८६।१)
परमं-महान्, बड़ा। उ० भव बारिधि मंदर परमं दर। (मा० ६।१११।३) परम-(सं०)-१. भारी, बड़ा, अधिक, अत्यंत, २. उत्कृष्ट, श्रेष्ठ, ३. प्रधान, मुख्य, ४. आद्य, आदिम, ५. शिव, ६. विष्णु। उ० १. परम कृपाल प्रनत अनुरागी। (मा० १।१३।३) २. रघुपति-पद परम प्रेम तुलसी चह अचल नेम। (वि०१६) ४. परम कारन, कंजनाभ, जलदाभ तनु सगुन निर्गुन सकल दृश्य-द्रष्टा। (वि० ५३)
परमगति-(सं०)-मोक्ष, मुक्ति। उ० सकल परमगति के अधिकारी। (मा० ७।२१।२)
परमपद-मोक्ष, मुक्ति। उ० लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच-उदासी। (वि० २२)
परमा-(सं०)-शोभा, छवि।
परमाणु-(सं०)-१. अत्यंत सूक्ष्म अणु, ऐसा अणु जो विभाजित न हो सके, २. सात निमेष का समय, अत्यंत अल्प समय।
परमातम-(सं० परमात्मन्)-परमात्मा, सबसे बड़ी आत्मा। उ० नमो-नमो श्रीराम प्रभु परमातम परधाम। (स० १)
परमातमा-दे० 'परमात्मा'। उ० प्रगट परमातमा प्रकृति स्वामी। (वि० ४९)
परमात्मा-(सं० परमात्मन्)-ब्रह्म, ईश्वर, भगवान्।
परमाधर-(सं०)-बड़ी शोभा को धारण करनेवाला।
परमानंद-(सं०)-१. बहुत बड़ा सुख, २. ब्रह्म के अनुभव का सुख, ३. आनंदस्वरूप ब्रह्म। उ० १. परमानंद अमित सुख पावा। (मा० १।१११।४)
परमान-(सं० प्रमाण)-१. प्रमाण, सबूत, २. यथार्थ बात, सत्य बात, ३. सीमा, मिति, हद, ४. समान, सदृश, ५. यथेष्ठ, पर्याप्त। उ० ५. दान मान परमान प्रेम पूरन किए। (जा० १७६)
परमानु-दे० 'परमाणु'। उ० १. बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा काल-परमानु चिच्छक्ति गुर्वी। (वि० ५४) २. लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड। (मा० ६। १। दो० १)
परमारथ-दे० 'परमार्थ'। उ० २. रामब्रह्म परमारथ रूपा। (मा० २।९३।४) परमारथहि-परमारथ को, ज्ञान को। उ० तौ सकोच परिहरि पालागौं परमारथहिं बखानो। (कृ० ३५)
परमारथी-१. असली चीज़ को जानने की इच्छा रखनेवाला, तत्त्वजिज्ञासु, २. सिद्धहस्त, ३. मोक्षार्थी, मोक्ष की चिंता करनेवाला। उ० १. घर घाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी। (पा० १२१)
परमारथु-दे० 'परमार्थ'। उ० १. सखा परम परमारथु एहू। (मा० २।९३।३)
परमार्थ-(सं०)-१. उत्कृष्ट पदार्थ, सबसे बढ़कर वस्तु, २. यथार्थ तत्व, सार वस्तु, ३. मोक्ष, ४. दुःख का सर्वथा अभाव।
परमीसा-(सं० परम+ईश)-परमेश्वर, भगवान्। उ० माया मोह पार परमीसा। (मा० ७।५८।४)
परलोक-(सं०)-१. दूसरा लोक, वह स्थान जो शरीर छोड़ने पर आत्मा को प्राप्त होता है। २. श्रेष्ठ जन, उत्तम पुरुष, ३. अन्य जन, दूसरे मनुष्य। उ० १. अजसु लोक

परलोक दुख दिन-दिन सोक समाजु। (मा० २।२१८)
परलोका–दे० 'परलोक'। उ० १. तजि माया सेइअ परलोका। (मा० ४।२३।३)
परलोकु–दे० 'परलोक'। उ० १. सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। (मा० २।७६।२)
परलोकू–दे० 'परलोक'। उ० १. नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। (मा० २।२११।३)
परवान–(सं० प्रमाण)–१. प्रमाण, सबूत, २. यथार्थ बात, सत्य, ३. सीमा, तक, अवधि। उ० ३. तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम परवान। (गी० २।५६)
परवाना–दे० 'परवान'। उ० २. रखिहउँ इहाँ बरष परवाना। (मा० १।१६६।३)
परवास–(सं० प्र+वास)–आच्छादन, प्रबंध, रक्षा। उ० कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परवास। (दो० ४१०)
परवाह–(फ़ा० परवा)–१. फिक्र, चिंता, व्यग्रता, २. अपेक्षा, ३. सहारा, ४. खटका, ५. ध्यान, ख्याल, ६. आसरा। उ० २. जग में गति जाहि जगत्पति की, परवाह है ताहि कहा नर की। (क० ७।२७)
परवाहि–दे० 'परवाह'। उ० १. करैं तिनकी परवाहि ते जो बिनु पूँछ बिषान फिरैं दिन दौरे। (क० ७।४६)
परशु–(सं०)–एक अस्त्र जिसमें एक डंडे के सिरे पर एक अर्द्ध चंद्राकार लोहे का फल लगा रहता है। कुल्हाड़ी, कुठार।
परशुराम–(सं०)-विष्णु के अवतारों में एक। इनकी उत्पत्ति के विषय में एक कथा है। ऋचीक ऋषि ने एक बार प्रसन्न होकर अपनी स्त्री सत्यवती तथा सत्यवती की माता के लिए दो चरु प्रस्तुत किए। प्रथम चरु के खाने से शान्त पुत्र की प्राप्ति होती और दूसरे के खाने से प्रचंड और वीर की। सत्यवती को खाना तो था प्रथम पर वह भूल से दूसरा खा गई। जब उसे यह भूल ज्ञात हुई तो उसने अपने पति से प्रार्थना की कि मेरा पुत्र उग्र और प्रचंड न हो बल्कि पौत्र हो। अंत में यही हुआ। सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि ऋषि पैदा हुए। परशुराम इन्हीं के पुत्र थे और पूर्वकथा में दिए गए कारणों से उग्र, प्रचंड और क्रोधी थे। एक बार परशुराम की माँ रेणुका चित्ररथ राजा को अपनी रानी के साथ जल-क्रीड़ा करते देख कामातुर हो गईं और उसी दशा में जमदग्नि के आश्रम में प्रवेश किया, जिस पर जमदग्नि क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने चार पुत्रों को एक-एक करके रेणुका का वध करने की आज्ञा दी। और कोई पुत्र तो इसके लिए तैयार न हुआ पर परशुराम ने आज्ञा पाते ही माता का सिर काट डाला। पिता ने प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा। परशुराम ने प्रथम वर तो माता पुनर्जीवित करने के विषय में माँगा और दूसरा अपने को दीर्घायु तथा अतुल पराक्रमी बनाने के संबंध में। पिता ने दोनों वर स्वीकार किए। एक बार राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ने जमदग्नि के आश्रम को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इस पर परशुराम ने उनकी सहस्र भुजाओं को भाले से काट डाला। इस पर सहस्रार्जुन के कुलवालों ने एक दिन जमदग्नि को मार डाला। यह देखकर परशुराम इतने क्रुद्ध हुए कि संपूर्ण क्षत्रियों के नाश की प्रतिज्ञा की और सचमुच क्षत्रियों का नाश कर डाला। एक दिन विश्वामित्र के पौत्र परावसु ने व्यंग्य में कहा कि तुम्हारी प्रतिज्ञा व्यर्थ है, अब भी संसार में बहुत से क्षत्रिय पड़े हैं। इस पर परशुराम की क्रोधाग्नि फिर भड़की और बचे-खुचे क्षत्रियों को मारकर उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया और उसमें संपूर्ण पृथ्वी कश्यप ऋषि को दान दे दी। वाल्मीकि रामायण के अनुसार धनुषभंग और व्याहोपरांत राम जब लौट रहे थे तो परशुराम ने उनका रास्ता रोका और वैष्णव धनु उनके हाथ में देकर कहा कि शैव धनुष तो तुमने तोड़ा अब इस वैष्णव धनुष को चढ़ाओ। यदि इस पर बाण न चढ़ा सकोगे तो तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। राम ने धनुष चढ़ा दिया और परशुराम हतप्रभ हो गए।
परस–(सं० स्पर्श)–१. छूने की क्रिया, छूना, २. छूकर। उ० २. पाँचहुँ पाँच परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप। (वि० २०३) परसत–१. स्पर्श करता है, छूता है, छूते हैं, २. छूते ही, ३. परोसते ही, ४. परोसा हुआ। उ० १. लगे सुभग तरु परसत धरनी। (मा० १।३४४।४) २. परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भइ तपपुंज मही। (मा० १।२११। छं० १) ४. अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो। (वि० ६४) परसति–छूती है। उ० गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि। (दो० १८६) परसा–स्पर्श किया। उ० कर परसा सुग्रीव सरीरा। (मा० ४।८।३) परसि–छूकर, स्पर्श कर। उ० तुलसी जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी। (क० २।६) परसे–छूने से, छूने में, स्पर्श करने से। उ० परसे पग धूरि तरै तरनी, धरनी घर क्यों समुझाइहौं जू? (क० २।६) परसेउ–स्पर्श किया, छूवा। उ० कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर। (मा० ४।३०) परसै–१. छुवे, स्पर्श करे, २. स्पर्श करता है, छूता है। उ० १.बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत। (वै० ३) परस्यो–छूवा, स्पर्श किया। उ० चंदन चंद्रबदनि भूषन पट ज्यों चह पाँवर परस्यो। (वि० १७०)
परसपर–(सं० परस्पर)–आपस में, एक दूसरे के साथ। उ० प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी। (मा० १।२१।१)
परसमनि–(सं० स्पर्शमणि)–पारस पत्थर, जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। उ० गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई। (मा० ७।४४।२)
परसाद–(सं० प्रसाद)–दया, कृपा, प्रसाद।
परसु–दे० 'परशु'। उ० बोले चितइ परसु की ओरा। (मा० १।२७२।२)
परसुधर–(सं० परशुधर)–परशुराम, विष्णु के एक अवतार। उ० छत्रियाधीस-करिनिकर-वर-केसरी परसुधर विप्र-ससि-जलद रूपं। (वि० ५२) परसुधरहि–परशुराम का। उ० बोले परसुधरहि अपमाने। (मा० १।२७१।३)
परसुपानि–(सं० परशु + पाणि)–परशुराम, हाथ में परशु या कुठार धारण करनेवाले। उ० परसुपानि जिन्ह किए महामुनि जे चितए कबहूँ न कृपा हैं। (गी० ७।१३)

परसुराम–दे० 'परशुराम'। उ० परसुराम पितु अग्या राखी। (मा० २।१७४।४)

परस्पर–(सं०)–अन्योन्य, आपस में। उ० सुरविमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर। (क० १।११)

परहुँ–(सं० परश्वः)–तीसरे दिन भी। उ० ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते दिये। (गी० १.५)

परहेलि–(सं० प्रहेलन)–तिरस्कार कर, निरादर कर, उल्लंघन कर। उ०सींचि सनेह सुधा खनि काढ़ी लोक-बेद परहेलि। (कृ० २६) परहेलु–तिरस्कार कर, अवहेलना कर, अनादर कर। उ० कै करु ममता राम सों कै ममता परहेलु। (दो० ७१) परहेलें–अवहेलना कर, परवा न कर। उ० सुन्दर जुवा जीव परहेलें। (मा० १।१५६।२)

परा (२)–(सं०)–१. ब्रह्मविद्या, वहँ विद्या जो ऐसी चीजों का ज्ञान कराती है जो सब गोचर पदार्थों से परे हों। २. सायण के अनुसार वह नादात्मक वाणी जो मूलाधार से उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता। ३. श्रेष्ठ उत्तम, ४. श्रेणी, पंक्ति, कतार, ५. प्रभुता, बड़ाई, ६. उलटा, विपरीत, ७. सामर्थ्य, बल, ८. अपमान, निरादर, ९. मंडली, गरोह।

पराइ (१)–(सं० पलायन)–१. भागकर, २. पराता है, भगता है। उ० २. तुलसी छुवत पराइ ज्यों पारद पावक आँच। (दो० ३३९) पराई (१)–१. भगी, २. भग जाती है, ३. भग जाय। उ० ३. श्रवन मूदि नत चलिअ पराई। (मा० १।६४।२) पराउ–पलायन कर जाय, भग जाय। उ० जरत तुहिन लखि वनजबन रवि दै पीठि पराउ। (दो० ३१६) परातहि–(सं० पलायन)–भागते ही, भागते। उ० भभरे, बनइ न रहत, न बनइ परातहि। (पा०११५) परान (१)–भागने। उ० तब लगे कीस परान। (मा० ६।१०१।३) परानि–भगी हुई, भागी। उ० निकसि चिता तें अधजरति मानहुँ सती परानि। (दो० २५३) परानी–भागती, भगती, दौड़ती। उ० जाति हैं परानी, गति जानि गज चालिहै। (क० ५।१०) पराने–भाग गए, दूर हो गए। उ० बालक सब लै जीव पराने। (मा० १।६५।३) परान्यौ–भाग गया, भाग चला, भागा। उ० तब ससि काढ़ि काटि पर पाँवर लै प्रभु-प्रिया परान्यौ। (गी० ३।८) पराय (१)–(सं० पलायन)–१. भागे, भाग गए, २. भागकर, ३. भागता है। उ० २. पुन्य पराय पहार बन, दुरे पुरान सुभ ग्रंथ। (दो० ५५६) ३. दिए पीठि पाछे लगै सनमुख होत पराय। (दो० २५७) पराये (१)–(सं० पलायन)–भागे, भाग गए। परावन (१)–(सं० पलायन)–भागना, भगदड़ मचाना। उ० सुरपुर नितहिं परावन होई। (मा० १।१८०।४) परावना–दे० 'परावन'। पराहिं–(सं० पलायन)–भाग जाते हैं। उ० जाउँ समीप गहन पद फिरि-फिरि चितइ पराहिं। (मा० ७।७७ क) पराहि–पलायन करो, भाग जाओ। उ० बाप! तू पराहि, पूत पूत! तू पराहि रे। (क० ५।१६) पराहीं–भाग जाते हैं। उ० कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं। (मा० ४।१५।५)

पराइ (२)–(सं० पर)–दूसरे की, अन्य की। उ० देखि न सकहिं पराइ बिभूती। (मा० २।१२।३)

पराई (२)–दूसरे की। उ० बेगि पाइअहिं पीर पराई। (मा० २।८५।१)

पराक्रम–(सं०)–१. बल, शक्ति, सामर्थ, २. पौरुष, उद्योग, ३. शूरता, शूरत्व। उ० २. बाहुबल-बिपुल परमिति पराक्रम अतुल, गूढ़ गति जानकी जानि जानी। (वि० ३९)

पराग–(सं०)–वह रजया धूलि जो फूलों के बीच लंबे केसरों पर जमा रहती है, पुष्परज। उ० सोइ पराग मकरंद सुबासा। (मा० १।३७।३)

परागा–दे० 'पराग'। उ० परसि राम पद पदुम परागा। (मा० २।११३।४)

पराजय–(सं०)–हार।

पराधीन–(सं०)–परवश, परतंत्र। उ० पराधीन नहिं तोर सुपासा। (मा० २।१७।७)

पराधीनता–(सं०)–परतंत्रता, गुलामी। उ० बूझि परी रावरे की प्रेम-पराधीनता। (वि० २६२)

परान (१)–(सं० प्राण)–जान, प्राण।

पराभउ–दे० 'पराभव'। उ० १. सोउ तेहि सभाँ पराभउ पावा। (मा० १।२६२।४)

पराभव–(सं०)–१. हार, पराजय, २. निरादर, तिरस्कार, ३. प्रलय, नाश। उ० ३. भव भव बिभव पराभव कारिनि। (मा० १।२३५।४)

पराभौ–दे० 'पराभव'। उ० २. बाये मुँह सहत पराभौ देस देस को। (क० ७।१२५)

पराय (२)–(सं० पर)–१. दूसरा, अन्य, ग़ैर, २. पराया, दूसरे का।

परायन–(सं० परायण)–१. निरत, तत्पर, लगा हुआ, २. गत, गया हुआ, ३. आश्रय, भागकर शरण लेने का स्थान। उ० १. काम क्रोध मदलोभ परायन। (मा० ७।३९।३)

पराये (२)–(सं० पर)–दूसरे के, ग़ैर के, अन्य के। उ० कबहुँ न जात पराये धामहिं। (कृ० ५)

परारथ–(सं० परार्थ)–परमार्थ, पारलौकिक सुख। दूसरे का सुख। स्वार्थ का विलोम। उ० पंचकोस पुन्यकोस स्वारथ परारथ को। (क० ७।१७२)

पराव–(सं० पर)–पराया, दूसरे का। उ० धनु पराव बिष से बिष भारी। (मा० २।१३०।३)

परावन (२)–(सं० पतन, प्रा० पडन, हिं० पड़ाव)–पड़ाव का बहुवचन, पड़ावों। उ० जातुधान दावन परावन को दुर्ग भयो। (ह० ७)

परावनो–(सं० पलायन)–भगदड़, पलायन। उ० भहराने भट परयो प्रबल परावनो। (क० ५।८)

परावर–(सं०)–१. सर्वश्रेष्ठ, २. दूर और पास, सर्वत्र, ३. जड़-चेतन, चराचर, ४. ब्रह्मादि और मनुष्य आदि। उ० ४. पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ। (मा० १।११६) ३. बामनाव्यक्त पावन परावर बिभो। (वि० ४९)

परावा–(सं० पर)–१. अन्य का, दूसरे का, २. दूसरे से। उ० २. करहिं मोहबस द्रोह परावा। (मा० ७।४०।३)

पराशर–(सं०)–एक ऋषि। ये वशिष्ट और शक्ति के पुत्र थे। व्यास इनके पुत्र कहे जाते हैं।

परास–(सं० पलाश)–पलाश, ढाक, टेसू। उ० पाटल पनस परास रसाला। (मा० ३।४०।३)
परि (२)–(सं०)–एक संस्कृत का उपसर्ग जिसके लगने से शब्द के अर्थ में वृद्धि हो जाती है। वृद्धि की दिशाएँ हैं—१. चारों ओर (परिभ्रमण), २. अच्छी तरह (परिपूर्ण), ३. अति (परिवर्द्धन), ४. पूर्णता (परित्याग), ५. दोषाख्यान (परिहास) तथा ६. नियम (परिच्छेद)।
परि (३)–(सं० परम्)–परंतु, किंतु, पर।
परिकर–(सं०)–१. पलंग, चारपाई, २. कमर, ३. नौकर, ४. परिवार, ५. समूह, ६. साज, ७. तैयारी, समारंभ, ८. घेरनेवालों का समूह, अनुयायियों का दल, ९. फेटा, कमर में बाँधने का वस्त्र। उ० २. परिकर बाँधि उठे अकुलाई। (मा० १।२५०।३) ९. मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। (मा० ३।२७।४)
परिखेसु–(सं० प्रतीक्षा)–इंतज़ार करना, प्रतीक्षा करना। उ० परिखेसु मोहिं एक पखवारा। (मा० ४।६।३) परिखेहु–प्रतीक्षा करना, राह देखना। उ० तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। (मा० ५।१।१)
परिगहैगो–(सं० परिग्रहण)–आश्रय देगा, ग्रहण करेगा, थामेगा, सहारा देगा। उ० तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो ? (वि०२५६)
परिग्रह–(सं०)–१. प्रतिग्रह, ग्रहण, लेना, २. स्वीकार, अंगीकार, ३. सेना के पीछे का भाग, ४. पत्नी, भार्या, ५. परिजन, परिवार ६. नौकर, सेवक, ७. शाप, ८. शपथ ९. सूर्यग्रहण, राहुग्रस्त सूर्य।
परिघ–(सं०)–१. मूसलाकार एक शस्त्र विशेष, २. लोहाँगी, गड़ाँसा। उ० १. सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसुधरा। (मा० ३।१९।छं० १)
परिचरजा–दे० 'परिचर्या'। उ० निजकर गृह परिचरजा करई। (मा० ७।२४।३)
परिचर्या–(सं०)–सेवा, टहल, सुश्रूषा।
परिचारक–(सं०) सेवक, नौकर। उ० पुनि परिचारक बोलि पठाए। (मा० १।२८७।३) परिचारिका–(सं०)–दासी, सेविका, नौकरानी। उ० छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका श्रुति सेष सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्वदरसी। (वि० ४७)
परिचारे–(सं० प्रचार)–१. ललकारने पर, २. ललकारा।
परिचेहु–(सं० परिचय)–परच गए हो, परक गए हो, आदी हो गए हो। उ० डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। (मा० १।१३७।२)
परिचौ–(सं० परिचय)–पता, परिचय। उ० करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुत न परिचौ पायो। (गी० १।१४)
परिच्छन्न–(सं०)–१. ढका हुआ, छिपा हुआ, २. साफ़ किया हुआ।
परिच्छा–(सं० परीक्षा)–इम्तहान, परीक्षा।
परिछन–(सं०परि+अर्चन)–एक विशेष प्रकार की आरती। विवाह की एक रीति जिसमें बारात द्वार पर आने पर कन्या पक्ष की स्त्रियाँ वर के पास जाती हैं और उसे दही-अक्षत, आदि का टीका लगाकर आरती आदि करती हैं। वर जब अपने घर से चलता है तो वहाँ भी उसका परिछन होता है तथा विवाहोपरांत या द्विरागमन के बाद जब वर बधू के साथ अपने घर आता है तब भी परिछन होता है। उ० परिछन चली हरहि हरषानी। (मा० १।९६।२)
परिछनि–दे० 'परिछन'। उ० चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि। (मा० १।३१७)
परिछाँहिं–(सं० प्रतिच्छाया)–छाया, परछाहीं। उ० तुलसी सुनी न कबहुँ काहु कहुँ तनु परिहरि परिछाँहि रही है। (गी० २।९)
परिछाहीं–दे० 'परिछाहिं'। उ० जिमि पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं। (मा० २।१४१।३)
परिछि–परिछन करके। दे० 'परिछन'। उ० बधुन्ह सहित, सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत। (मा० १।३४९)
परिछिन्न–(सं० परिच्छिन्न)–१. आच्छादित, घिरा, २. कटा हुआ, अलग। उ० १. माया बस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान। (मा० ७।१११ ख)
परिजन–(सं०)–१. परिवार, घर के लोग, २. नौकर-चाकर, सेवक। उ० १. प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। मा० १।१७।१) परिजनन्हि–कुटुंबियों को। उ० प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा। (मा० ७।२०।३) परिजनहि–परिजन को, सेवक को। उ० तो प्रभु-चरन-सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ। (गी० २।७६)
परिडरै–(सं० परि+सं० दर)–डरकर, डरकर के। उ० सो परिडरै मरै रजु अहि तें बूझै नहिं व्यवहार। (वि० १८८)
परिणाम–(सं०)–१. फल, नतीजा, २. अंत, समाप्ति।
परिताप–(सं०)–१.दुःख, कष्ट, मानसिक या शारीरिक व्यथा, २.जलन, ताप। उ० १.भय विषाद परिताप घनेरे। (मा० २।६६।३)
परितापा–दे० 'परिताप'। उ० १. आए अवध भरे परितापा। (मा० २।८६।४)
परितापी–(सं० परितापिन्)–दुःख देनेवाला, दुखदायक। उ० बरनि न जाहिं बिस्व परितापी। (मा० १।१७६।४)
परितोष–(सं०)–१. संतोष, तृप्ति, २. प्रसन्नता, हर्ष, ३. समाधान। उ० १.कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोषु। (मा० २।६०)
परितोषत–प्रसन्न होता है, प्रसन्न होते हैं। उ० द्वापर परितोषत प्रभु पूजें। (मा० १।२७।२) परितोषा–संतुष्ट किया, तृप्त किया। उ० कहि प्रिय बचन काम परितोषा। (मा० १।१२७।१) परितोषि–संतुष्ट कर, संतोष देकर। उ० परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति प्रबीनता। (पा० ८३) परितोषिबे–संतुष्ट करने, तृप्त करने। उ० खल दुख दोषिबे को, जन परितोषिबे को। (ह० ११) परितोषी–संतोष दिया, दिलासा दी। उ० तापस नृपहि बहुत परितोषी। (मा० १।१७१।३) परितोषे–संतष्ट हुए। उ० पूरन काम रामु परितोषे। (मा० १।३४२।३)
परितोषु–दे० 'परितोष'। उ० १.बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह बृषकेतु। (मा० १।१०२)
परितोषू–दे० 'परितोष'। उ०१. रहहु करहु सब कर परितोषू। (मा० २।७१।३)

परित्याग–(सं०)–सब प्रकार से त्याग, विसर्जन, छोड़ना। उ० पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी। (मा० १।६१।४)
परित्राण–(सं०)–बचाव, रक्षा, रक्षण।
परित्राता–(सं० परित्रातृ)–रक्षा करनेवाला, बचानेवाला। उ० तपबल बिष्नु भए परित्राता। (मा० १।१६३।१)
परिधन–(सं० परिधान)–१. नाभि से नीचे पहिनने का कपड़ा, २. पहनने का वस्त्र, पहिरन। उ० २. सीस जटा, सरसीरुह लोचन, बने परिधन मुनिचीर। (गी० २।६६)
परिधान–(सं०)–१. पोशाक, पहनावा, २. नाभि से नीचे पहनने का वस्त्र। उ०१. व्याघ्र-गज-चर्म परिधान विज्ञान-घन। (वि० १०)
परिधाना–दे० 'परिधान'। उ० १. कृस सरीर मुनिपट परिधाना। (मा० १।१४३।४)
परिनाम–(सं० परिणाम)–फल, नतीजा, अंत। उ० कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम। (दो० ४२६) परिनामहिं–परिणामस्वरूप, अंत में। उ० तौ कोउ नृपहि न देत दोसु परिनामहिं। (जा० ८३) परिनामहु–फल में भी, अंत में भी। उ० तुलसी जियत बिडंबना, परिनामहु गत जान। (दो० ३६०) परिनामै–फल, फल है। उ० मतो नाथ सोई जातें भलो परिनामै। (गी० ५।२५) परिनामो–अंत में भी। उ० ताको भलो कठिन कलिकालहु आदि मध्य परिनामो। (वि० २२८)
परिनामा–दे० 'परिनाम'। उ० बर दोउ दल दुख फल परिनामा। (मा० २।२३।३)
परिनामु–दे० 'परिनाम'। ३.परिनामु मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ। (मा० २।२०१।छं०१)
परिनामू–दे० 'परिनाम'। उ० सो सब मोर पाप परिनामू। (मा० २।३६।१)
परिपाक–(सं०)–१. फल, नतीजा, २. जीर्णता, ३. भली भाँति पका हुआ, ४. निपुणता, ५. पचना, ६. प्रौढ़ता, पूर्णता, ७. पकने का भाव, ८. बहुदर्शिता। उ० १. कर्म-परिपाक-दाता। (वि० २६)
परिपाका–दे० 'परिपाक'। उ० १.सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका। (मा० २।२१।२)
परिपाकू–दे० 'परिपाक'। उ० १. बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। (मा० २।२६१।३)
परिपाटी–(सं०)–रीति, दस्तूर, परंपरा। उ० प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी। (मा० १।२३६।३)
परिपालन–(सं०)–रक्षा, पालन, बचाव।
परिपालय–रक्षा करो, बचाओ। उ० बससि सदा हम कहुँ परिपालय। (मा० ७।३४।४)
परिपूरन–(सं० परिपूर्ण)–१. संपूर्ण, पूर्ण, भरा-पूरा, जैसा चाहिए, २. समाप्त, ख़तम, ३. तृप्त, आसूदा। उ० १. रूपसील वय बंस राम परिपूरन। (जा० ५३) ३. पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे। (मा० २।१०७।१)
परिपोषे–(सं० परिपोष)–१. पुष्ट हुए, परिपुष्ट हुए, २. पालन किया। उ० १. आदर दान प्रेम परिपोषे। (मा० १।३५२।२)
परिपूरित–पूर्ण, भरा। उ० मिले प्रेम परिपूरित गाता। (मा० १।३०८।४)

परिबारू–दे० 'परिवार'।
परिबे–(सं० पतन)–पड़ना, बँधना। उ० उन्हहिं राग रबि नीरद-जल ज्यों, प्रभु-परमिति परिबे हो। (कृ० ३६)
परिमित–(सं०)–नापा हुआ, सीमित, नियमित।
परमिति–(सं० परिमिति)–१. परिणाम, २. नाप, तोल, सीमा, ३. मर्यादा, इज़्ज़त, ४. हद से परे, बहुत, ५. किनारा। उ० १. पन-परमिति और भाँति सुनि गई है। (गी० १।८३) ३. प्रीति रीति समुझाइबी नत पाल कृपालुहि परमिति पराधीन की। (वि० २७८) ४. बाहुबल विपुल, परमिति पराक्रम अतुल। (वि० ३६)
परिवा–(सं० प्रतिपदा, प्रा० पडिवआ)–किसी पक्ष की पहली तिथि, एक्कम। उ० परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूर। (वि० २०३)
परिवार–(सं०)–कुल, कुटुंब, खान्दान। उ० सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू! (क० २।८)
परिवारा–दे० 'परिवार'। उ० मैं जनु नीचु सहित परिवारा। (मा० २।८८।३)
परिवारु–दे० 'परिवार'। उ० प्रिय परिवारु मातु सम सासू। (मा० २।९८।३)
परिवारू–दे० 'परिवार'। उ० देसु कोसु परिजन परिवारू। (मा० २।३१५।४)
परिशिष्ट–(सं०)-शेष, बँचा हुआ।
परिहर–(सं० परिहरण)–छोड़ता, तजता। उ० जारेहुँ सहजु न परिहर सोई। (मा० १।८०।३) परिहरइ–छोड़ता, त्यागता, त्यागता है। उ० सुनि धीरजु परिहरइ न केही। (मा० १।२३८।१) परिहरई–छोड़ देता है। उ० सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। (मा० २।१७२।४) परिहरऊँ–छोड़ूँगी। उ० नारद बचन न मैं परिहरऊँ। (मा० १।८०।४) परिहरत–छोड़ देते हैं, छोड़ रहे हैं। उ० निज गुन घटत न नाग नग परखि परिहरत कोल। (दो० ३८५) परिहरते–छोड़ते, त्यागते। उ० तौ कि जानिकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ। (दो० ४६३) परिहरहिं–१. त्याग दे, त्याग देंगे, २. त्यागते हैं। उ० १. जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। (मा० २।२३४।१) परिहरहि–त्याग दे। उ० बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू। (मा० २।२६।४) परिहरहीं–१. छोड़ते हैं, छोड़ देते हैं, २. छोड़ दें, त्याग करें। उ० २. हमहि सीयपद जनि परिहरहीं। (मा० २।५८।३) परिहरही–छोड़ दे, त्याग दे। उ० सुनु मम बचन मान परिहरही। (मा० ६।३०।१) परिहरहु–त्याग दो, छोड़ो। उ० अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू। (मा० २।१४३।१) परिहरहू–छोड़ दो। उ० अस अनुमानि सोच परिहरहू। (मा० २।१६१।२) परिहरि–छोड़कर, त्यागकर। उ० ईस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाँचन जाहीं। (वि० ४) परिहरिअ–१. त्याज्य, त्यागने के योग्य, २. छोड़ दो। उ० १. कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई। (मा० २।७२।४) परिहरिए–१. छोड़िए, त्यागिए, २. छोड़ रहा हूँ। उ० १. जेहि साधन हरिद्र वहु जानि जन सो हठि परिहरिए। (वि० १८६) परिहरिय–छोड़ो, त्यागो। उ० तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान। (दो० ४६६) परिहरिहि–छोड़ देंगी। उ० सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि

रहिहहिं धाम। (मा० २।४६) परिहरिहु–छोड़ा, छोड़ दिया। उ० जनकसुता परिहरिहु अकेली। (मा० ३।३०।१) परिहरीं–त्याग दिया, छोड़ा। उ० सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं। (मा० १।९८। छं० १) परिहरी–छोड़ दिया। परिहरु–त्याग दो, छोड़ो। उ० काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु। (वि० २०५) परिहरे–१. छोड़ा, त्याग दिया, २. छोड़ने पर। उ० १. बड़े अलेखी लखि परैं, परिहरे न जाहीं। (वि० १४७) परिहरेउ–त्यागा, त्याग दिया। उ० बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ। (मा० १।१६) परिहरेऊ–छोड़ा, छोड़ दिया। उ० मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ। (मा० २।३८।४) परिहरेहिं–छोड़ने में, त्यागने में। उ० अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई। (मा० ४।७।४) परिहरै–त्याग दे, छोड़े। उ० जौ निज मन परिहरै बिकारा। (वि० १२४) परिहर्यो–१. छोड़ दिया, २. छोड़ा हुआ, त्यक्त। उ० १. देवनि हूँ देव परिहर्यो अन्याव न तिनको हौं अपराधी सब केरो। (वि० २७२) २. तुलसी प्रभु को परिहर्यो सरनागत सो हौं। (वि० १५०)

परिहार–(सं०)–१. दोषादि दूर करने या छुड़ाने का कार्य, २. उपचार, इलाज, ३. अवज्ञा, अपमान, ४. त्याग।

परिहास–(सं०)–१. हँसी, ठट्ठा, २. व्यंग्य वचन, ३. निंदा, उपहास। उ० १. रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा। (मा० २।३२।३) ३. सहि न जात मौ पै परिहास एते। (वि० २४१)

परीक्षा–(सं०)–दे० 'परीछा'।

परीक्षित–(सं०)–१. जिसकी जाँच की गई हो, निश्चित, निश्चय रूप से, २. पांडु कुल के एक राजा जो अर्जुन के पोते और अभिमन्यु के पुत्र थे। इनकी माँ उत्तरा थीं। अश्वत्थामा ने इन्हें गर्भ में ही मारने का उपाय किया पर कृष्ण की कृपा से ये जीवित हो गए। इन्होंने कृपाचार्य से अस्त्र-विद्या सीखी थी। इन्हीं के राज्यकाल में द्वापर का अंत और कलियुग का आरंभ हुआ।

परीच्छित–दे० 'परीक्षित'। उ० १. संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो। (क०७।१७६)

परीछा–(सं० परीक्षा)–परीक्षा, इम्तहान। उ० तौ किन जाइ परीछा लेहू। (मा० १।५२।१)

परीछित–दे० 'परीक्षित'। उ० २. छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु। (क० ७।१८१) परीछितहिं–परीक्षित को। उ० सुखी हरिपुर बसत होत परीछितहिं पछिताय। (वि० २२०)

परुख–दे० 'परुष'।

परुष–(सं०)–कठोर, कड़ा, कठिन। उ० सापत ताड़त परुष कहंता। (मा० ३।३४।१) परुषा–'परुष' का स्त्रीलिंग। दे० 'परुष'। उ० करषा तजि कै परुषा बरषा हिम मारुत धाम सदा सहि कै। (क० ७।३३)

परुषपन–परुषता, कठोरता। उ० प्रेम न परखिय परुषपन। (दो० २६८)

परुषाच्छर–(सं० परुषाक्षर)–कड़ुई बात, कड़ए बचन। उ० इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। (मा० ७।१०२।४)

परुसन–(सं० परिवेषण)–परोसने की क्रिया, परोसना। उ० परुसन जबहिं लाग महिपाला। (मा० १।१७३।३) परुसहु–परोसो, परोसने का कार्य करो। उ० तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई। (मा० १।१६८।३) परुसि–परोसकर। उ० सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि धरो। (वि० २२६)

परे (२)–(सं० पर)–१. दूर, २. अतीत, बाहर, दूसरे, ३. ऊपर, ऊँचे, ४. बाद, पीछे। उ० ३. भजंतीह लोके परे वा नराणां। (मा० ७।१०८।८)

परेखा–दे० 'परेखो'।

परेखो–(सं० परीक्षा)–१. परीक्षा लेते हो, २. पछतावा, पश्चाताप। उ० १. काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं। (क० ७।१२१)

परेवा–(सं० पारावत)–कबूतर।

परेशं–दे० 'परेश'। उ० प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। (मा०७। १०८।४) परेश–(सं०)–परमेश्वर, परमात्मा, परात्पर प्रभु।

परेषो–दे० 'परेखो'। उ०२. समुझि सो प्रीति की रीति स्याम की सोइ बावरि जो परेषो उर आने। (कृ० ३८)

परेस–दे० 'परेश'। उ० परमानंद परेस पुराना। (मा० १। ११६।४)

परोक्ष–(सं०)–१. जो प्रत्यक्ष न हो, जो सामने न हो, २. अज्ञात।

परोपकार–(सं०)–दूसरे की भलाई।

परोसो–(सं० परिवेषण)–१. परोसनेवाला, २. परोस दो। उ० १. पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो। (क० ५।२४) परोसौ–१. सामने परोसा हुआ भोजन, परोसा, २. परोस दो। उ० १. तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे! (वि० ६७)

परौं–(सं० परश्वः)–परसों, कल के बाद या पूर्व। उ० आजु कि काल्हि परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो। (क० ७।१७६)

पर्जंत–दे० 'पर्यंत'।

पर्ण–(सं०)–पत्र, पत्ता।

पर्णकुटी–(सं०)–तृण आदि की बनी झोपड़ी।

पर्णपुटी–पत्रों से बने हुए दोने।

पर्णशाल–(सं० पर्णशाला)–पत्रों से बनी कुटी।

पर्न–दे० 'पर्ण'। उ० षटकंध साखा पंचबीस अनेक पर्न सुमन घने। (मा० ७।१३। छं० ५)

पर्नकुटी–दे० 'पर्णकुटी'। उ० पंचबटी बर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए। (क० ३।१)

पर्नसाल–दे० 'पर्णशाल'। उ० बिरचित तहँ पर्नसाल, अति विचित्र लषनलाल। (गी० २।४४)

पर्यंक–(सं०)–१. पलंग, खाट, २. सेज, ३. मंच, ४. एक प्रकार का वीरासन। उ० १. नील पर्यंक कृत शयन सर्वेश जनु। (वि० १८)

पर्यंत–(सं०)–१. तक, लौं, २. सीमा, अंत, ३. पार्श्व, बगल। उ०१. भुवन पर्यंत पद-तीनि-करणं। (वि० ५२)

पर्यालोचना–(सं०)–ध्यान से देखना, समीक्षा, पूरी जाँच-पड़ताल।

पर्व–(सं० पर्वन्)–१. गाँठ, संधि, २. अष्टमी, ३. पूर्णिमा,

४. अमावस्या, ५. चतुर्दशी, ६. संक्रांति, ७. उत्सव, ८. सुयोग, ९. ग्रहण, १० पुण्यकाल। उ० ३. मंगल-मुद-सिद्धि सदनि पर्व शर्वरीश-बदनि। (वि० १६)

पर्वत–(सं०)–१. पहाड़, गिरि, २. देवर्षि विशेष। उ० १. पाप पर्वत-कठिन कुलिस रूपं। (वि० ४६)

पलँग–(सं० पर्यंक)–चारपाई, खाट, सेज। उ०चरन पखारि पलँग बैठाए। (मा० ४।२०।३)

पल (१)–(सं०)–१. घड़ी या दंड का ६० वाँ भाग, दम, क्षण, थोड़ी देर, २. मांस, ३. पयाल, ४. तृण, ५. धोखे-बाज़ी। उ० १. जनक-नगर नर-नारि मुदित मन निरखि नयन पल रोके। (गी०१।८९) २.सुधा सुनाज कुनाज पल। (दो० ५०६) ५. मोह-बन कलिमल-पल-पीन जानि जिय। (क० ७।१४२) पल पल–प्रत्येक पल, क्षण-क्षण। उ०पल-पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके। (वि०१७१)

पल (२)–(सं० पलक)–पलक। उ० कर टेकि रही पल टारति नाहीं। (क० १।१७)

पलक–(सं०)–१. आँख के ऊपर का चमड़े का परदा, २. क्षण, पल। उ० १. दीन्हें पलक कपाट सयानी। (मा० १।२३२।४) २. बासर जाहिं पलक सम बीती। (मा० २।२५२।१) पलकन्हि–पलकों ने। उ० पलकन्हि हूँ परि-हरी निमेषें। (मा० १।२३२।३) पलकैं–'पलक' का बहु-वचन। दे० 'पलक'। उ० १. पलकैं न लावतीं। (क० १।१३) मु० पलकैं लैहैं–सोवेंगे, पलकें बंद करेंगे। उ० यह सोभा सुख समय बिलोकत काहू तो पलकैं नहिं लैहैं। (गी० ५।५१)

पलकु–दे० 'पलक'।

पलटि–(सं० प्रलोठन) पलटकर। उ० उलटि पलटि लंका सब जारी। (मा० ५।२६।४)

पलना–(सं० पर्यंक)–झूला। उ० कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। (मा० १।१९८।४)

पलायन–(सं०)–भागना, भागने की क्रिया।

पलास–(सं० पलाश)–ढाक, परास का पेड़।

पलिअहिं–(सं० पालन) पालिये। उ० बायस पलिअहिं अति अनुरागा। (मा० १।५।१)

पलीता–(फ़ा० फतीलः)–बत्ती, मशाल, जिससे बारूद में आग लगाते हैं। उ० पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल। (दो० ५१५)

पलु–(सं० पल) पल, क्षण। उ० बरष पाछिले सम अगिलो पलु। (वि० २४)

पलुहइ–(सं० पल्लव)–हरा-भरा कर देती है। उ० पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई। (मा० ३।४४।३) पलुहत–हरा-भरा होता है। उ० फूलत फलत पल्लवत पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई। (गी० २।४६)

पलुहावहिंगे–(सं०पल्लव) हरा-भरा करेंगे, पल्लवित करेंगे। उ० बिरह अगिनि जरि रही लता ज्यों कृपा दृष्टि जल पलुहावहिंगे। (गी० ५।१०)

पलोटत–(सं० प्रलेठन)–धीरे से पाँव दबाता है। उ० गुरु पद कमल पलोटत प्रीते। (मा० १।२२६।३) पलोटिहि–दबावेगी। उ० पाय पलोटिहि सब निसि दासी। (मा० २।६७।३)

पल्लव–(सं०)–१. नया पत्ता, २. अंकुर, कोंपल, ३. पत्ता, पत्र, ४. अँगुली, करज, ५. चंचलता, ६. हाथ का कड़ा, ७. बल, ८. विस्तार। उ० १. बदन निकट पद पल्लव लाए। (गी० १।२०) २. कर नवल बकुल-पल्लव रसाल। (वि० १४)

पल्लवत–पल्लवयुक्त होता है, फलता-फूलता है। उ० फूलत-फलत पल्लवत पलुहत। (गी० २।४६)

पल्लवित–(सं०)–१. हरा-भरा, पल्लवयुक्त, २. प्रसन्न, खुश, ३.रोमांचित। उ०२.चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात। (मा० १।३४६)

पव–(सं०)–१. गोबर, २. हवा, वायु, ३. बरसाना।

पवन (१)–(सं०)–१. हवा, वायु, २. हनुमान तथा भीम के पिता, ३. प्राण, ४. जल, ५. श्वास। उ० १. गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। (मा० १।७।५) ३. जिति पवन मन गो निरस करि। (मा० ४।१०।छं०१)

पवन (२)–(सं०पावन)–१.पवित्र, २.पवित्र करनेवाला। उ० २.परम कृपालु प्रनत-प्रतिपालक पतित-पवन। (वि०२१२)

पवनकुमार–(सं०)–१. हनुमान, पवन के पुत्र, २. भीम। उ० १. प्रनवउँ पवनकुमार। (मा० १।१७)

पवनज–(सं०)–१. हनुमान, २. भीम। उ० १. लही नाव पवनज प्रसन्नता। (गी०५।२१)

पवनतनय–१. हनुमान, २. भीम। उ० १. पवनतनय संतन हितकारी। (वि० ३६)

पवननंदन–१. हनुमान, २. भीम। उ० १. तुलसीस पवन-नंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत। (क० ६।४७)

पवनपूत–हनुमान। उ० सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत। (वि० १३४)

पवनसुत–१. हनुमान, २. भीम। उ० १. सुमिरि पवनसुत पावन नामू। (मा० १।२६।३)

पवनसुव–(सं० पवनसुत)–हनुमान। उ० जातुधान-बल-वान-मान-मद दवन पवनसुव। (ह०१)

पवनसुवन–(सं० पवनसुत)–हनुमान। उ० पवनसुवन रिपु दवन भरतलाल, लखन दीन की। (वि० २७८)

पवनि–(सं० पावन)–पवित्र, पूत। 'पावन' का स्त्रीलिंग। उ० गावत तुलसिदास कीरति पवनि। (गी० ३।५)

पवमान–(सं०)–हवा, वायु। उ० पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो। (क० ५।२४)

पवरि–(सं० प्रतोली)–द्वार, देहली, दरवाज़ा।

पवि–(सं०)–१ वज्र, २. बिजली, ३. हीरा, ४. सेंहुड़, ५. रास्ता, ६. वाक्य। उ० १. राहु-रवि-सक्र-पवि-गर्व खर्वी-करन। (वि० २५)

पवित्र–(सं०)–१. शुद्ध, साफ, पूत, निर्मल, २. वर्षा, ३. पानी, ४. दूध, ५. कुश। उ० १. चरित पवित्र किए संसारा। (मा० १।१२३।२)

पशु–(सं०)–जानवर, पूँछवाला प्राणी।

पशुपति–(सं०)–पशुओं के स्वामी, महादेव।

पशुपाल–(सं०)–दे० 'पसुपाल'।

पशू–दे० 'पशु'।

पश्चात्–(सं०)–१. पीछे, बाद, अनंतर, २. पश्चिम दिशा, ३. शेष, अंत।

पश्यंति–(सं०)–देखते हैं, निरखते हैं। उ० याभ्यां बिना न पश्यंति। (मा० १।श्लो० २) पश्यामि–(सं०)–मैं देख रहा हूँ।
पषवारा–(सं० पक्ष)–पाख, १५ दिन का समय।
पषाउज–दे० 'पखाउज'।
पषान–(सं० पाषाण)–दे० 'पखान'। १. पत्थर, २. अहल्या। उ० १. कंचन काँचहि सम गनै, कामिनि काठ पषान। (वै० २७) २. कौसिक की चलत, पषान की परस पायँ। (क० ७।२०) पषाननि–पत्थरों से। उ० सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो। (वि० २२६)
पषाना–दे० 'पषान'। उ० १. द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। (मा० २।२२०।४)
पषारन–(सं० प्रक्षालन)–पखारना, धोना। पषारे–पखारा। धोया। पषारि–धोकर।
पसाउ–(सं० प्रसाद, प्रा० पसाव)–१. कृपा, २. प्रसाद, ३. प्रसन्नता, ४. प्रेम, छोह। उ० ३. गुरु-सुर-संभु-पसाउ। (प्र० १।६।३)
पसाऊ–दे० 'पसाउ'। उ० १. सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। (मा० १।८६।२)
पसारत–(सं० प्रसारण)–फैलाते हैं, फैलाता है। उ० किलकत पुनि-पुनि पानि पसारत। (गी० १।२०) पसारा–फैलाया। उ० जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। (मा० ५।२।४) पसारि–फैलाकर, पसारकर। उ० सोवत गोड़ पसारि। (दो० ४६४) पसारी (१)–(सं० प्रसारण)–१. फैलाया, बिछाया, २. फैलाकर। उ० २. सरन गए आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी। (वि० १६६)
पसारी (२)–(?)–एक प्रकार का धान।
पसीजै–(सं० प्र+स्विद्)–द्रवित होता है, पसीजता है, दयार्द्र होता है। उ० गति सुनि पाहनौ पसीजै। (कृ० ४५)
पसु–दे० 'पशु'। उ० पसु पच्छी नभ जल थल चारी। (मा० १।८५।२)
पसुपति–(सं० पशुपति)–महादेव, शंकर। उ० तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे। (पा० १०८)
पसुपाल–पशुओं का पालनेवाला, ग्वाला, अहीर। उ० पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत। (वि० १३३)
पसेउ (१)–(सं० प्रस्वेद)–१. पसीना, २. पसीजना। उ० १. पोंछि पसेउ बयारि करौं। (क० २।११)
पसेउ (२)–(सं० प्रसाद)–प्रसन्न।
पसेऊ–दे० 'पसेउ (१)'। उ० १. स्याम सरीर पसेऊ लसै। (क० २।२६)
पसेव–दे० 'पसेउ (१)'।
पसोपेश–(फ़ा० पस व पेश)–१. सोच-विचार, आगापीछा, २. हानिलाभ, ऊँच-नीच।
पस्यामि–दे० 'पश्यामि'। उ० रन जीति रिपुदल बंधुजुत पस्यामि राम मनामयं। (मा० ६।१०७।छं०१)
पहँ–(सं० पार्श्व)–पास, निकट।
पहर (१)–(सं० प्रहर)–१. तीन घंटा का समय, दिन या रात का चतुर्थांश, २. समय, ज़माना, वक्त, ३. पहरुवा। उ० १. पछिले पहर भूपु नित जागा। (मा० २।३८।१)
पहर (२)–(प्रा० ॐपढिल्ल)–प्रथम, पहला।
पहरी–(सं० प्रहर)–रक्षक, चौकीदार, पहरुवा। उ० जमकाल करालहु को पहरी है। (क० ६।२६)
पहरु–दे० 'पहरी'। उ० नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु। (वि० २५०)
पहरू–दे० 'पहरी'। उ० जम के पहरू दुख रोग बियोग। (क० ७।३१)
पहार (१)–(सं० पाषाण)–पर्वत, पहाड़। उ० छार ते सँवारिकै पहार हू तें भारी कियो। (क० ७।६१)
पहार (२)–(सं० प्रस्तार)–पहाड़ा, किसी अंक के गुणन-फलों की क्रमागत सूची या नकशा। उ० जैसे घटत न अंक नव नव के लिखत पहार। (स० १३८)
पहारा–दे० 'पहार (१)'। उ० अगम पंथ बनभूमि पहारा। (मा० २।९८।४)
पहारू–दे० 'पहार (१)'। उ० अवध सौध सत सरिस पहारू। (मा० २।६६।२)
पहिं–दे० 'पहँ'। उ० तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। (मा० १।७७।४)
पहचानत–पहचानता है, पहचान लेता है। उ० बिनय सुनत पहिचानत प्रीती। (मा० १।२८।३)
पहिचान–(सं० प्रत्यभिज्ञान)–१. परिचय, चिन्हारी, मुलाकात, पहचानने का भाव, २. पहचाने, जाने। उ० २. पहिचान को केहि जान। (मा० १।३२१। छं० १) पहिचानहु–पहचानते हो। उ० पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ (मा० १।२६१।३) पहिचाना–पनिचान लिया, जान लिया, जाना। उ० राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। (मा० १।१५८।४) पहिचानि–१. जान-पहिचान, परिचय, २. पहिचान कर, ३. पहिचानो। उ० १. प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि। (दो० २८१) पहिचानिहौ–पहिचानोगे, परिचित होगे। उ० पाल्यो है, पालत पालहुगे प्रभु प्रनत-प्रेम पहिचानिहौ। (वि० २२३) पहिचानी–१. परिचय, पहिचान, २. पहचाना, परिचय प्राप्त किया। उ० १. एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। (मा० ५।६।२) पहिचाने–पहिचान लिया, पहचाना। उ० राम-मातु भलि सब पहिचाने। (मा० २।३३।४) पहिचानेउ–पहचानना, पहचान लेना। पहिचानेहु–पहचान लेना। उ० मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि। (मा० १।१६६) पहिचानै–पहिचान लेता है। उ० अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै। (वि० ६५)
पहिरइ–(सं० परिधान, हि० पहिरना)–पहनता है। पहिरत–पहनते हैं। उ० देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद अघानी। (गी० १।४) पहिरहिं–पहनते हैं, धारण करते हैं। उ० पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग। (मा० १।११) पहिरि–पहनकर। उ० उठि-उठि पहिरि सनाह अभागे। (मा० १।२६६।१) पहिरिय–पहिनना चाहिए। उ० तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक। (दो०४६६) पहिरें–१. पहने, २. पहने हुए। उ० २. कहत चले पहिरें पट नाना। (मा०१।२६६।१) पहिरे–१. पहने, पहन लिया, २. पहने हुए।

पहिराइ–पेहनायी। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई। (मा० १।२६४।३) पहिराई–पहनाई है। उ० पीत झगुलिया तनु पहिराई। (मा० १।१९९।६) पहिराए–पहनाया। उ० दान मान सनमानि जानि रुचि जाचक जन पहिराए। (गी० ६।२२) पहिरायउ–पहनाना। उ० थापि अनल हरबरहि बसन पहिरायउ। (पा० १३७) पहिरावत–१. पहनाते हैं, २. पहिनाते हुए। उ० १. दे० 'पहिरत'। पहिरावनि–१. पहनावा, २. वस्त्रादि जो मान्य नेगी इत्यादि को विवाह में दिए जाते हैं। ३. बड़े लोगों द्वारा दिए हुए वस्त्र, खिलअत। उ० २. रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं। (मा० १।३५३।३) ३. सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि। (पा० १५६) पहिरावहु–पहनाओ। उ०पहिरावहु जयमाल सुहाई। (मा० १।२६४।३)

पहिलिहि–(प्रा०*प्रथिल्ल)–पहली ही, प्रथम ही। उ०पहिलिहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक। (पा० १३०) पहिले–प्रथम, शुरू में। पहिलेहिं–पहले से ही। उ० सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ। (मा० १।१८३।१)

पहुँच–(प्रा० प्रहूच)–१. प्रवेश, पैठ, गति, २. पकड़ दौड़, ३. प्राप्ति, ४. परिचय। उ०जाकहँ जहँ लागि पहुँच है ताकहँ तहँ लगि डार। (स० ५०)

पहुँचइहउँ–पहुँचाऊँगा। पहुचाई–१. पहुँचाया, २. विदा करके, पहुँचाकर। उ० २. गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। (मा०२।१४४।१) पहुँचाए–पहुँचाया। उ० अति आदर सब कपि पहुँचाए। (मा० ७।१९।३) पहुँचाएसि–पहुँचा दिया, पहुँचाया। उ०पहुँचाएसि छन माझ निकेता। (मा०१।१७१।४) पहुँचाव–१.पहुँचावेगा, २.पहुँचाता है। उ० १ जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान। (ब० ६७) पहुँचावन–पहुँचाने के लिए। उ० सहित सचिव गुरुबंधु चले पहुँचावन। (जा० १९१) पहुँचावहिं–पहुँचाती हैं, भेजती हैं। उ० भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहिं। (पा० १५८) पहुँचैहउँ–पहुँचा दूँगा। उ० पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता। (मा० १।१६९।४)

पहुँचति–पहुँचती है। उ० बाहु बिसाल जानु जगि पहुँचति। (गी० ७।१७) पहुँची–(१)–पहुँच गई। पहुँचे–पहुँच गए। उ० संग बेरपुर पहुँचे जाई। (मा० २।८७।१)

पहुँचियाँ–(सं० प्रकोष्ठ)–'पहुँची' नाम के एक आभूषण की जोड़ी। उ० पंकज-पानि पहुँचियाँ राजैं। (गी० १।२८) पहुँची (२)–कलाई में पहनने का एक आभूषण। उ० पहुँची मंजु कंजकर सोहति। (गी० ७।१७)

पहुनई–(सं० प्राघुण, हिं० पाहुन)–मेहमानी, पहुँनाई, २. आतिथ्य, आदर। उ० २. पूजि पहुनई कीन्हि पाइ प्रिय पाहुन। (जा० १७)

पहुनाई–१. मेहमानी, २. अतिथि-सत्कार, आगत व्यक्ति की ख़ातिर। उ०२. बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। (मा०१।३११।१)

पाँ–(सं० पाद)–पैर, पाँव।

पाँउ–दे० 'पाँ'। उ० चलहिं न पाउँ बटोरा रे। (वि० १८९)

पाँगुर–(सं० पंगु)–लँगड़ा-लूला लुंज-पुंज। पाँगुरे–दे० 'पाँगुर'। उ० पाँगुरे को हाथ पाँय, आँधरे को आँखि है। (वि० ९९)

पाँच–(सं० पंच)–१. पाँच की संख्या, २. पंच, लोग, बहुत लोग, जनता। उ० १. मिलि दस-पाँच राम पहिं जाहीं। (मा० २।२४।१) २. तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहि। (जा० १०२) पाँचहि–पंचों को, लोगों को। उ० जौं पाँचहि मत लागै नीका। (मा० २।५।२) पाँचों–पंचों से, लोगों से, सभासदों से। उ० पहुँचि पूँछिए पाँचो। (वि० २७७)

पाँचइँ–(सं० पंचमी)–प्रत्येक पक्ष की पाँचवीं तिथि। उ० पाँचइँ पाँच, परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप। (वि० २०३)

पाँचसर–(सं० पंचसर) कामदेव। उ० गच काँच लखि मन नाच सिखि जनु, पाँचसर सुफँसौरि। (गी० ७।१८)

पाँचा–(सं० पंच)–पाँच। उ० कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। (मा० २।२०६।१) दस पाँचा–कुछ, दस पाँच।

पाँछि–(?)–पाछकर, चीर कर। उ० मरमु पाँछि जनु माहुर देई। (मा० २।१६०।४)

पांडव–(सं०)–पंडु के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव पाँच पुत्र। ये कुंती और माद्री से उत्पन्न थे। उ० ध्रुव, प्रहलाद, बिभीषन, कपि जदुपति पांडव सुदाम को। (वि० ९९)

पांडु–(सं०)–१. पांडवों के पिता, २. कुछ लाली लिए पीला रंग, ३. एक रोग। उ० १. प्रभु प्रसाद सौभाग्य विजय-जस पांडु-तनय बरिआइँ बरै। (वि० १३७)

पाँड़र–(सं० पाडर)–१. पीला और सफ़ेद, २. कुंद का फूल। उ० २. बर बिहार चरन चारु पाँड़र चंपक चनार करनहार बार पार पुर पुरंगिनी। (गी० २।४३)

पाँति–(सं० पंक्ति)–१. क़तार, पंक्ति, अवली, २. समूह, वृंद। उ० १. खग-गनिका-गज-ब्याधि-पाँति जहँ तहँ हौं हूँ बैठारो। (वि० ९४) २. पूछत चले लता तरु पाँती। (मा० ३।३०।४)

पाँय–(सं० पाद)–पैर, पाँव। उ० सौंपि राम अरु लखन पाँय पंकज गहे। (जा० २९) पाँयन–(सं० पाद)–'पाँय' का बहुवचन, चरणों। उ० सानुज भरत सप्रेम राम पाँयन नए। (जा० ३३)

पाँलागनि–(सं० पाद+लग्न)–पैर पड़ने की रीति, पावलगी, प्रणाम। उ० पाँलागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत-साता। (गी० १।१०८)

पाँव–(सं० पद)–पैर।

पाँवड़ा–(सं० पाद)–वह कपड़ा जिस पर बड़े आदमी पैर रखकर चलते हैं या जो पैर पोंछने के लिए दरवाज़े पर रक्खा रहता है। पायंदाज़। पाँवड़े–दे० 'पाँवड़ा'। उ० बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। (मा० १।३०६।३)

पाँवर–(सं० पामर)–पतित, पापी, नीच। पाँवरनि–नीच लोगों ने। उ० बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं। (गी० १।९३)

पाँवरी–(सं० पाद, हिं० पाँव)–जूता, खड़ाऊ। उ० सुनि सिय आसिष, पाँवरी, पाइ, नाइ पद माथ। (प्र०२।५।५)

पांशु-(सं०)-धूल, रज, कण।
पांसु-दे० 'पांशु'। उ० तुलसी पुष्कर-जग्य-कर चरन-पांसु इच्छंत। (स० २२६)
पाँसुरी-(सं० पांसुरी)-पसली, अस्थि-पंजर। उ० मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है। (क० ७।६६)
पा (१)-(सं० पाद)-पैर, पाँव, चरण। उ० मारतहूँ पा परिय तुम्हारें। (मा० १।२७३)
पा (२)-(सं० प्रापण)-प्राप्त कर, पा कर। पाइ (१)-(सं० प्रापण)-पा कर, प्राप्त कर, पाने पर। उ० साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ। (वि० २३) पाइअ-पावें। उ० कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा। (मा० १।१८५।१) पाइअहिं-पाते हैं, पा जाते हैं। उ० बेगि पाइअहिं पीर पराई। (मा० २।८५।१) पाइए-१. पाए जाते हैं, २. पाए जावेंगे। उ० १. २. बिरले बिरले पाइए मायात्यागी संत। (वै० ३२) पाइन्हि-१. पाए, २. पा लिया। उ० १. बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि। (जा० १३४) २. कीन्ह संभु सनमानु जनमफल पाइन्हि। (पा० ८४) पाइबी-पा जाइएगा, पा जाओगे। उ० तुलसी तीरहु के चले समय पाइबी थाह। (दो० ४४६) पाइबे-पाने, पा लेने। उ० सुगम उपाय पाइबे केरे। (मा० ७।१२०।६) पाइहउँ-दे० 'पाइहौं'। पाइहहु-पा जाओगे। उ० पुनि मम धाम पाइहहु। (मा० ६।११६ घ) पाइहि-पा जावेगा, पावेगा। उ० राम धाम पथ पाइहि सोई। (मा० २।१२४।१) पाइहैं-पावेंगे। उ० तुलसी उमा-संकर-प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं। (पा० १६४) पाइहौं-पाऊँगा। उ० अवध बिलोकि हौं पाइहौं। (गी० १।४६) पाई (१)-पाया, प्राप्त किया। उ० जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई। (मा० १।३।३) पाउ (२)-१. पाया, २. पावे, मिले। उ० १. राम नाम को प्रभाव पाउ महिमा प्रतापु। (क० ७।७२) पाउब-पाउँगी, पाओगे। उ० जाब जहँ पाउब तहीं। (मा० १।६७। छं० १) पाऊँ-१. प्राप्त हो, मिले, मिल जाय, २. मैं पाऊँ। पाए-१. पाया, पा गए, २. पाने पर। उ० १. पाए जू! बँधायो सेतु। (क० ६।३) २. पाए पालिबे जोग मंजु मृग। (गी० ३।३) पाएहि-पाने, मिलने। उ० पाएहि पै जानिबो करम-फल। (वि० १७३) पाता (१)-पा जाता, प्राप्त करता। पाती (१)-प्राप्त करती, हासिल करती। पाय (१)-१. पाकर, २. पाया, पा गया। पायउ-पाया, प्राप्त किया। उ० देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ। (पा० ४६) पायऊ-पाए। उ० सिय रूप रासि निहारि लोचन लाहु लोगन्हि पायऊ। (जा० ६०) पायहु-पाये, पाए हैं। उ० बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। (मा० ६।२०।२) पाया (१)-प्राप्त किया। उ० बड़ अपराध कीन्ह फल पाया। (मा० १।१२६।२) पाये-१. प्राप्त किए, मिले, २. प्राप्त करने से। पायेसि-पा लिया, पा गया। उ० जग-जय-मद निदरेसि हर, पायेसि फर तेउ। (पा० २६) पायो-पाया, पाया है। उ० पायो केहि घृत बिचारु हरिन बारि महत। (वि० १३३) पाव (१)-(सं० प्रापण)-१. पावेगा, पा सकेगा, २. पा जाय, ३. पाता है, पाते हैं। उ० १. राम नीतिरत काम कहा यह पाव! (ब० ७) २. मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा। (मा० १।३३५।३) पावइ-पावे। उ० आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा। (मा० १।१८३। छं० १) पावई-१. पावे, प्राप्त करे, २. पाते हैं। उ० २. जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। (मा० ४।३०। छं० १) पावत-१. पा करके, २. पाते हैं, ३. पाते ही। उ० २. नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग। (मा० १।६०) पावति-पाती, पाती है। उ० पावति नाव न बोहितु बेरा। (मा० २।२५७।२) पावहिं-१. पाते हैं, २.पावेंगे, ३. पावें। उ० ३.आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं। (मा० २।११।१) पावहीं-१. पाते हैं, २. पावेंगे। उ० १. भूप सुनि सुख पावहीं। (जा० ६) २. तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं। (जा० २१६) पावहु-पाओ, प्राप्त करो। उ० ईस मनाइ असीसहिं जय जस पावहु। (जा० ३२) पावहुगे-पावोगे, प्राप्त करोगे। उ० पावहुगे फल आपन कीन्हा। (मा० १।१३७।३) पावा-पाए, प्राप्त किए, पा सके। उ० सपनेहुँ नहि प्रतिपच्छिन्ह पावा। (मा० २।१०५।३) पावै-प्राप्त हो। उ० मुनि उदबेगु न पावै कोई। (मा० २।१२६।१) पावौं-पाऊँ, प्राप्त करूँ। उ० पावौं मैं तिन्हकै गति घोरा। (मा० २।१६८।२) पैयत-१. पाये जाते हैं, २. पाता हूँ, ३ मिलता है, मिल सकता है। उ० ३. अलि पैयत रबि पाहीं। (कृ० ५८) उ० १. धरम बरन आस्रमनि के पैयत पोथिही पुरान। (वि० १६२) पैहहिं-पावेंगे। उ० एहि तें जसु पैहहिं पितु माता। (मा० १।६७।२) पैहहि-पावेगी, पावेगा। उ० पैहहि सजाय तनु कहत बजाय तोहि। (ह० २६) पैहहु-पावोगी, पावोगे। उ० हिये हेरि हठ तजहु हठै दुख पैहहु। (पा० ६२) पैहैं-पावेंगे। उ० राम बाम दिसि देखि तुमहिं सब नयनवंत लोचन फल पैहैं। (गी० ५।२१) पैहै-पावेगा। उ० बिस्वदवन सुर-साधु-सतावन रावन कियो आपनो पैहै। (गी० ५।४८) पैहौं-पाऊँगा, पा जाऊँगा। उ० उपजी उर प्रतीति, सपनेहुँ सुख प्रभुपद बिमुख न पैहौं। (वि० १०४) पैहौ-पाओगे।
पाइँ-दे० 'पाँ'। उ० पाइँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं। (क० ७।१६६)
पाइ (२)-(सं० पाद)-पैर, पाँव। उ० कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ। (ब० २६)
पाइक-(सं० पादातिक, पायिक)-१. पियादा, हरकारा, २. मल्ल, कसरतिया तमाशा करनेवाले। उ० २. सरब करहिं पाइक फहराहीं। (मा० १।३०४।४)
पाइमाल-(सं०पाद+मलना)-पददलित, पामाल, नष्ट। उ० देहि सीय नतौ, पिय! पाइमाल जाहिगो। (क० ६।२३)
पाई (२)-(सं० पाद)-एक चौथाई, चतुर्थांश।
पाउ (२)-(सं० पाद)-१. पाँव, चरण, २. चौथाई। उ० १. बेगि पाउ धारिअ थलहि। (मा० २।२८४) २. राम! रावरे बनाए बनै पल पाउ में। (वि० २६१)
पाऊ-दे० 'पाउ (२)'।
पाक (१)-(सं०)-१. पकाने की क्रिया, २. रसोई, पकवान, ३. ओषधियों का पाक, ४. पचना, ५. एक दैत्य जिसे इंद्र ने मारा था। उ० २. आपु गई जहँ पाक बनावा। (मा० १।२०१।२) ५. दे० 'पाकरिपु'।

पाक (२)–(फ़ा०)–पवित्र, साफ, शुद्ध । उ० अंजनीकुमार सोध्यो राम पानि पाक हौं । (ह० ४०)
पाकड़–(सं० पर्कटी)–एक वृक्ष ।
पाकत–(सं०पक्व)–१. पकते समय, २. पकते हुए, ३. पकता है । उ० १. ईति भीति जिमि पाकत साली । (मा० २।२५३।१) पाकी–१. पक्का, परिपक्व, २. तैयार, ३. पक गई । उ० १. धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी । (मा० ७।१२७।४) पाके–पके, पककर तैयार हुए । उ० पाके, पकये बिटप-दल उत्तम मध्यम नीच । (दो० ५१०)
पाकरि–दे० 'पाकड़' ।
पाकरिपु–(सं०)–'पाक' नाम के राक्षस को मारनेवाले इंद्र । उ० मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे । (मा० १।३४७।२)
पाकरी–दे० 'पाकड़' । उ० बट पीपर पाकरी रसाला । (मा० ७।२६।५)
पाकारिजित्–(सं०)–दे० 'पाकरिपु' । पाकारि अर्थात् इंद्र को जीतनेवाला मेघनाद । उ० दुष्ट-रावन-कुंभकरन-पाकारिजित्-मर्मभित्-कर्म-परिपाक-दाता । (वि० २६)
पाखंड–(सं० पाषंड)–१. ढोंग, आडंबर, ढँकोसला, २. छल, धोखा, ३. दंभ, ४. वेदविरुद्ध आचार । उ० १. प्रबल-पाखंड-महिमंडलाकुल देखि । (वि० ५२) ४. सदा खंडि पाखंड निर्मूलकारी । (वि० ५३)
पाखंडमुख–पाखंडी, धूर्त । उ० कपट मर्कट, बिकट व्याघ्र पाखंडमुख । (वि० ५६)
पाखंडी–पाखंड करनेवाला, धूर्त ।
पाख–(सं० पक्ष)–१. पक्ष, प्रत्येक महीने का अँधेरा या उजेला पक्ष, २. १५ की संख्या ।
पाखु–दे० 'पाख' । उ० २. भयउ पाखु दिन सजत समाजू । (मा० २।१६।२)
पाग–(सं० पाक)–चीनी या गुड़ की तैयार चाशनी जिसमें मिठाई आदि पागते हैं । उ० बूँदिया सी लंक पधिलाइ पाग पागिहै । (क० ५।१४)
पागिहैं–(सं० पाक) पागेंगे, चाशनी में डुबाएँगे । उ० दे० 'पाग' । पागी–मग्न हुई, तन्मय हुई, सनी, चिपटी । उ० शुद्ध-मति-युवति-वत प्रेम-पागी । (वि० ३६) पागे–१. पगे हुए, लीन, सने, २. पग गए, ३. पागा । उ० १. मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे । (मा० १।१४६।४)
पाछ–(सं० पश्च)–पीछे । उ० ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात । (मा० ७।७९ क)
पाछिल–(सं० पश्च)–पिछला, पीछे का । उ० पाछिल दुखु न हृदय अस व्यापा । (मा० १।६३।३) पाछिली–पिछली, पीछे की, पहली । उ० परिहरु पाछिली गलानि । (वि० १९३) पाछिले–पीछे का, पहले का, पुराने लोगों का । उ० संगति न जाइ पाछिले को उपखानु है । (क० ७।६४)
पाछे–१. बाद में, अनंतर, २. पीछे । उ० १. बाचिहै न पाछे त्रिपुरारिहू मुरारिहू के । (क० ६।१)
पाटंबर–रेशमी वस्त्र । उ० दे० 'पाट (१)' ।
पाट (१)–(सं० पट्ट, पाट)–१. रेशम, २. पटुआ, पटसन । उ० १. हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि । (मा० १।२८८) १. पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर । (मा० ७।९५ ख)
पाट (२)–(सं० पट्ट)–प्रधान, मुख्य । उ० जनक पाटमहिषी जग जानी । (मा० १।३२४।१)
पाटन–(सं० उत्पाटन)–नष्ट-भ्रष्ट करना । उ० मोहाम्भोधर पूग पाटनविधौ स्वःसंभवं शंकरं । (मा० ३।१। श्लो० १)
पाटल–(सं०)–१. गुलाब, २. वृक्ष विशेष, जिसमें केवल फूल होते हैं फल नहीं । ३. सफेदी मिला लाल रङ्ग, गुलाबी । उ० २. संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा । (मा० ६।९०। छं० १)
पाटि–(सं० पाट)–१. पट्टी, पटिया, तख्ता, २. पाटकर । उ० १. चारु पाटि पटी पुरट की झरकत मरकत भौंर । (गी० ७।१६) पाटियत–(सं० पाट)–पाटना चाहता, पाटता । उ० ससक की बाँसुरी पयोधि पाटियत है । (क० ७।६६) पाटे–पाट दिया, भर दिया, समथल कर दिया ।
पाटीर–(सं०)–एक प्रकार का चंदन । उ० पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलिन लाल । (गी० ७।१८)
पाठ–(सं०)–सबक, पढ़ाई । उ० चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारै । (क० ७।१०४)
पाठक–(सं०)–१. पढ़ानेवाला, गुरु, २. विद्यार्थी, पढ़नेवाला ।
पाठीन–(सं०)–एक मछली, पढ़िना । उ० मीन पीन पाठीन पुराने । (मा० २।१९६।२)
पाणि–(सं०)–हाथ । पाणौ–दोनों हाथों में । उ० पाणौ महा सायक चारु चापं । (मा० २।१। श्लो० ३)
पाणिग्रहण–(सं०)–विवाह की एक रीति, विवाह ।
पाणी–दे० 'पाणि' ।
पात (१)–(सं०)–१. पतन, गिरना, २. राहु । उ०१. बार-बार पविपात, उपल घन बरषत बूँद बिसाल । (कृ० १८)
पात (२)–(सं० पत्र)–१. पत्ता, २. कान का एक आभूषण ।
पात (३)–(सं० पंक्ति)–१. कतार, पंक्ति, २. साथ खानेवाले, कुल के लोग । उ० २. पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे । (क० २।८)
पातक–(सं०)–पाप, महापाप, अघ । उ० ते पातक मोहि होहुँ बिधाता । (मा० २।१६७।४)
पातकिनि–पापिनी, पापाचारिणी । उ० बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु । (मा० २।२२) पातकी–पापी, पाप करनेवाला । उ० तेरे ही नाथ को नाम लै बेचिहौं पातकी पामर प्राननि पोसों । (क० ७।१३७)
पातकु–दे० 'पातक' । उ० दीयँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ । (मा० २।९५।४)
पातरि–दे० 'पातरी' । उ० २. चाटत रह्यों स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो । (वि० २२६)
पातरी–(सं० पत्र)–१. पतली, महीन, २. पत्तल, पत्रों का थाल ।
पाता (२)–(सं० पातृ)–रक्षक, रक्षा करनेवाला, त्राता । उ० जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि रुद्र-अवतार संसार पाता । (वि० २५)
पाता (३)–(सं० पत्र)–पत्ता । उ० ए महि परहिं डासि कुस पाता । (मा० २।११९।४)
पाताल–(सं०)–१. पुराणानुसार पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में सातवाँ, २. गुफा, बिल, ३. सात पाताल, यथा-

अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल। उ० १. भूमि-पाताल-जल-गगन-गंता। (वि० २५)

पातालु–दे० 'पाताल'।

पाती (२)–(सं० पत्र)–पत्र, चिट्ठी। उ० तात कहाँ ते पाती आई। (मा० १।२६०।४)

पाती (३)–सं० पति)–इज्ज़त, मर्यादा।

पातु–(सं०)–रक्षा करें, रक्षा करो। उ० श्री शंकरः पातु माम्। (मा० २।१। श्लो० १)

पात्र–(सं०)–१. बर्तन, २. उपयुक्त, योग्य, ३. नाटक का पात्र। उ० १. मिलित जल पात्र अज-युक्त हरिचरन रज। (वि० १८) २. कृपापात्र रघुनायक केरे। (मा० ७।७०।१)

पाथ (१)–(सं० पाथस्)–पानी, जल। उ० जैसे श्रम-फल घृतहित मथे पाथ। (वि० ८४)

पाथ (२)–(सं० पथ)–मार्ग, रास्ता।

पाथकी–१. रास्ता, २. नदी, ३. जल की।

पाथनाथ–(सं०)–समुद्र। उ० कृपा पाथनाथ सीतानाथ सानुकूल हैं। (क० ५।३०)

पाथप्रद–(सं०)–बादल। उ० 'भले नाथ!' नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ। (क० ५।१६)

पाथा–दे० 'पाथ (१)'। उ० सोइ गुन अमल अनूपम पाथा। (मा० १।४२।४)

पाथोज–(सं०)–कमल। उ० नील पीत पाथोज-बरन बपु, बय किसोर बनिआई। (गी० १।५०)

पाथोजनाभं–(सं०)–विष्णु, जिनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ हो। उ० तप्तकांचन-वस्त्र शास्त्र विद्या-निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोजनाभं। (वि० ५०)

पाथोजपानी–(सं० पाथोजपाणि)–कमल जिनके हाथ में है, विष्णु। उ० मदन मर्दन मदातीत मायारहित मंजुमानाथ पाथोजपानी। (वि० ५६)

पाथोद–(सं०)–बादल, मेघ। उ० पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं। (मा० ३।३२। छं० १)

पाथोधि–(सं०)–समुद्र। उ० सर्वदानंद-संदोह, मोहापहं, घोर-संसार-पाथोधि-पोतं। (वि० ५६)

पाद–(सं०)–१. पाँव, चरण, पैर, २. चतूर्थांश, किसी चीज का चौथा भाग, ३. किरण, ४. छोटा पर्वत, ५. श्लोक या पद्य का चरण, ६. पुस्तक का खंड या अंश, ७. वृक्ष का मूल, ८. नीचे का भाग, ९. चलना, गमन। उ० १. न यावद् उमानाथ पादारविन्दं। (मा० ७।१०८।७)

पादप–(सं०)–वृक्ष, पेड़। उ० भग्न-संसार-पादपं-कुठारं। (वि० ५०)

पादुकन्हि–पादुकाओं में। उ० जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ। (मा० ५।४२) पादुका–(सं०)–खड़ाऊँ, जूता। उ० सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिं बार जोहारे। (गी० २।७६)

पादोदक–चरणोदक, देवता अथवा ब्राह्मण के पैर धोने का पानी या चरण धोया पानी। उ० पद पखारि पादोदक लीन्हा। (मा० ७।४८।१)

पानं–पीने की क्रिया, पीना, आचमन। उ० मधुपं-मुनिवृंद कुर्वन्ति पानं। (वि० ६०) पान (१)–(सं०)–१. पीने की वस्तुएँ, २. पीना, ३. मद्यपान। उ० १. पान, पकवान विधि नाना को सँधानो, सीधो। (क० ५।२३) ३. मान ते ग्यान पान तें लाजा। (मा० ३।२१।५)

पान (२)–(सं० पर्ण)–१. पत्र, पत्ता, २. तांबूल। उ० २. देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज। (मा० १। ३२६)

पानहिन्ह–(सं० उपानह)–पानहीं का बहुवचन, जूते। उ० बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। (मा०२।२६२।३) पानही–जूता, पनहीं। उ० इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं। (वि० २३१) पानह्यों–(सं० उपानह)–पनहीं भी, जूता भी। उ० मंजु मधुर मृदु मूरति, पानह्यों न पायनि। (गी० २।२५)

पाना (१)–(सं० पान)–१. पान, पीना, २. पीने की वस्तु, ३. मद्यपान। उ० १. दरस परस मज्जन अरु पाना। (मा० १।३५।१)

पाना (२)–(सं० पर्ण)–१. पत्र, पत्ता, २. तांबूल। उ० १. औषध मूल फूल फल पाना। (मा० २।६।१)

पानि–दे० 'पाणि'। उ० दक्षिण पानि बानमेकं। (वि० ५१) पानिहि–हाथ में। उ० कटि कै छीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो। (रा० ८)

पानिग्रहन–दे० 'पाणिग्रहण'। उ० पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। (मा० १।१०१।२)

पानी (१)–(सं० पानीय)–१. जल, २. वर्षा, ३. ओप, चमक, ४. प्रतिष्ठा, मान, ५. वर्ष, साल, ६. शुक्र, बीज, ७. समय, अवसर। उ० १. राम सुप्रेमहिं पोषत पानी। (मा० १।४३।१)

पानी (२)–(सं० पाणि)–हाथ, कर। उ० जयत जय बज्र तनु, दसन नख, मुख बिकट, चंड-भुजदंड-तरु, सैल-पानी। (वि० २५)

पाप–(सं०)–१. अघ, अधर्म, बुरा कर्म, २. संकट, कठिनाई। उ० १. पाप संताप घनघोर संसृति दीन। (वि० ११) २. भयो परिताप पाप जननी जनक को। (क० ७।७३) पापवंत–पापी, पाप करनेवाला, अघी। उ० पापवंत कर सहज सुभाऊ। (मा० ५।४४।२) पापहि–पाप का, पापों का। उ० हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति। (मा० १।१८३)

पापा–दे० 'पाप'। उ० प्रभु पद देखि मिटा सो पापा। (मा० ३।३३।४)

पापिउ–(सं०पापिन्) पापी भी। उ०पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। (मा०४।२६।२) पापिन–'पापी' का बहुवचन, पाप करनेवाले। उ० चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं। (वि० ९५) पापिनि–दे० 'पापिनी'। उ० तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। (मा० २।१३।४) पापिनिहि–पापिन को। उ० एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। (मा० २।४७।१) पापिनी–पाप करनेवाली, अघिनी। उ० पराहि जाहि पापिनी! मलीन मन माहँ की। (ह० २६) पापिहि–पापी को। उ० एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा। (मा० ६।७६।७) पापी–पातकी, अघी, पाप करने-

वाला। उ० होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ। (मा० १।१३५)

पापिष्ट-पापात्मा, अधर्मी, अघी। उ० पायो सो फलु पापिष्ट। (मा० ६।११३।५)

पापु-दे० 'पाप'।

पामर-(सं०)-नीच, अधम, कमीना, दुष्ट। उ० तेरे ही नाथ को नाम लै बेचिहौं पातकी पामर प्राननि पोसों। (क० ७।१३७) पामरन्हि-'पामर' का बहुवचन। दे० 'पामर'।

पायँ-(सं० पाद)-पैर को। उ० दंडक-पुहुमि पायँ-परस पुनीत भई। (वि० २५७) पायँन-'पाय' का बहुवचन, पैरों। उ० रावरे दोष न पायँन को, पग धूरि की भूरि प्रभाउ महा है। (क०२।७) पाय (१)-(सं० पाद)-चरण, पैर। उ०लखन सीय रघुबंस मनि, पथिक पाय उर आनि। (प्र० २।२।४) पायनि-पैरों में। उ० पानह्यों न पायनि। (गी० २।२५) पायन्ह-चरणों में। उ० परिहरि सकुचि सप्रेम पुलकि पायन्ह परी। (जा० १८६)

पायक (१)-(सं० प्रापण)-पाने को। उ० कछु सुभाउ जनु नरतनु-पायक। (गी० २।३)

पायक (२)-(सं० पादातिक)-१. दूत, हरकारा, २. नट, ३. पैदल, ४. ध्वजा। उ० १. जाके हनूमान से पायक। (मा० ६।६३।२)

पायस-(सं०)-खीर, तस्मयी। उ० पायस पाइ बिभाग करि। (प्र० ४।१।२)

पाया (२)-(सं० पाद)-खंभा, स्तंभ।

पाया (३)-(सं० पद)-पद, पदवी, ओहदा।

पायिक-(सं० पादातिक)-दूत, हरकारा।

पारं-दे० 'पार'। उ० २. विकट वेषं, विभुं वेद पारं। (वि० १२) पार-(सं०)-१. नदी या समुद्र का अपर तट या सीमा, २. परे, बाहर, ३. आगे, ४. दूर, अलग, ५. अंत, समाप्ति, छोर, ६. ओर, तरफ़। उ० १. सिंधु पार सेना तब आई। (मा० ५।३७।४) २. प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। (मा० ७।७२।४) पारहि-(सं० पार)-उस पार, उस पार को। उ० अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं। (मा० ६।४)

पारई-(?)-परई, सकोरा, मिट्टी का कटोरा। उ० मनि भाजन मधु, पारई पूरन अमी निहारि। (दो० ३५१)

पारखी-(सं० परीक्षा, हिं० परख)-१. 'परख' करनेवाला, जिसमें परखने की योग्यता हो, योग्य, २. जौहरी। उ० १. सोइ पंडित सोइ पारखी सोई संत सुजान। (वै० ५८)

पारण-(सं०)-१. व्रत या उपवास के दूसरे दिन किया जानेवाला पहला भोजन और तत्संबंधी कृत्य, २. बादल, ३ समाप्ति, अंत, ४. तृप्त करने की क्रिया या भाव।

पारथ-(सं० पार्थ) १. पृथा (=कुंती) के पुत्र अर्जुन, २. पांडव। उ० १. भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज। (ह० ५) २. सकृत प्रवेस करत जेहि आस्रम बिगत-बिषाद भए पारथ नलु। (वि० २४)

पारथिव-(सं० पार्थिव)-पृथ्वी का। मिट्टी का बना शिव लिंग। उ० पूजि पारथिव नायउ माथा। (मा०२।१०३।१)

पारथी-दे० 'पारथिव'।

पारद-(सं०)-१. पारा, रसराज, २. पार कर देनेवाला, संसार समुद्र से पार करानेवाला। उ० तुलसी छुवत पराइ ज्यों पारद पावक-आँच। (दो० ३३६)

पारन-दे० 'पारण'। उ० परहित-निरत सो पारन बहुरि न ब्यापत सोक। (वि० २०३)

पारबति-दे० 'पारबती'। उ० रामकृपा तें पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं। (मा० १।११२)

पारबतिहि-पार्वती को। उ०पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान। (मा० १।७१) पारबती-(सं० पार्वती)-उमा, गौरी, शंकर की स्त्री। उ० पारबती-मन सरिस अचल धनु चालक। (जा० १०४)

पारस (१)-(सं० स्पर्श)-एक कल्पित पत्थर जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि लोहा उससे छू जाय तो सोना हो जाता है। उ० जनम रंक जनु पारस पावा। (मा० १।३५०।४)

पारस (२)-(सं० परिवेषण)-परसा हुआ भोजन, परोसा।

पारसु-दे० 'पारस (१)'। उ० मानहुँ पारसु पायउ रंका। (मा० २।२३८।२)

पारहिं (१)-(सं० पारय, हिं० पारना)-समर्थ नहीं हो सकता, नहीं सकता। उ० ललकि लोभाहिं नयन मन, फेरि न पारहिं। (जा० १३)

पारहिं (२)-(सं० पतन, हिं० पढ़ना, पाटना)-१. पटकते हैं, गिराते हैं, डालते हैं, २. डालें, पटकें। उ० १. एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं। (मा० ६।८१।३) पारा (१)-(सं० पतन)-गिराया, पटका। उ० तुम्ह जेहि लागि बज्रपुर पारा। (मा० २।४६।४) पारी (१)-(सं० पतन)-गिराया, डाला, डाल दिया, फेंका। उ० प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी। (मा० ६।७०।५)

पारा (२)-(सं० पार)-१. पार, उस पार, २. पार किया। उ० १. कब जैहउँ दुखसागर पारा। (मा० १।५६।१)

पारा (३)-(सं० पारय)-पूरा किया, बनाया। पारी (२)-बनाया, पूरा किया।

पारायणं-दे० 'परायण'। उ० नौमि नारायणं नरं करुणा-यनं ध्यान पारायणं ज्ञान मूलम्। (वि० ६०) परायण-(सं०)-१. समाप्ति, पूरा करने का कार्य, २. समय बाँध कर किसी ग्रंथ का आद्योपांत पाठ, ३. लीन, तत्पर।

पारावत-(सं०)-कबूतर, कपोत। उ० मोर हंस सारस पारावत। (मा० ७।२८।३)

पारावार-(सं०)-१. आरपार, दोनों तट, २. सीमा, अंत, हद, ३.समुद्र। उ० २. रूप के न पारावार। (गी०२।२६)

पारिखि-दे० 'पारखी'। उ० २. कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ। (मा० २।२८३।३)

पारिखी-दे० 'पारखी'।

पारिखो-दे० 'पारखी'। उ० १. नारद को परदा न नारद सो पारिखो। (क० १।१६)

पारिजात-(सं०)-१. स्वर्गलोक का एक वृक्ष, २. हरसिंगार।

पारिषद-(सं०)-१. सभासद, परिषद में बैठनेवाला, २. गण, ३. सेवक।

पारी (३)-(सं० बार, हिं० बारी)-बारी, अवसर, क्रम।

पारी (४)–(सं० पार)–पार किया।
पारु–(सं० पार)–पार, किनारा। उ० निगम सेष नारद सुख शंकर बरनत रूप न पावत पारु। (गी० ७।१०)
पारू–पार, उस पार। उ० होत बिलंबु उतारहि पारू। (मा० २।१०१।१)
पारे–सामर्थ्य, समर्थता। उ० प्रभु कोमल-चित चलत न पारे। (गी० २।२)
पारो–पार पा सकते हो। उ० मधुकर कहहु कहन जो पारो। (कृ० २४)
पार्थ–(सं०)–अर्जुन। दे० 'पारथ'।
पार्थिव–(सं०)–दे० 'पारथिव'।
पार्यो–(सं० पतन)–गिरा कर। उ० गहि भूमि पार्यो लात मार्यो। (मा० ६।९७।छं१)
पार्वती–(सं०)–हिमालय की कन्या और शिव की स्त्री। पार्वती ने एक बार राम की परीक्षा लेने के लिए 'सीता' का रूप धारण किया। यह बात उन्होंने शंकर से छिपाई जिससे वे रुष्ट हो गए। बाद में पार्वती बिना निमंत्रण के अपने पिता हिमालय के घर चली गईं जहाँ शंकर का अपमान देख उन्होंने यज्ञ विध्वंश किया तथा कुंड में अपने को जला डाला। दूसरे जन्म में पार्वती ने फिर बहुत तप के बाद शंकर को पति रूप में प्राप्त किया। उ०जासु नाम सर्वस सदा सिव पार्वती के। (गी०१।१२)
पार्षद–दे० 'पारिषद'।
पार्श्व–(सं०)–१. कक्ष का अधोभाग, बग़ल, २. समीप, पास।
पाल (१)–(सं०)–१. पालक, पालन करनेवाला, २. पालन, रक्षा। उ० १. दुर्जन को काल सो कराल पाल सज्जन को। (ह० १०)
पाल (२)–(सं० पट) नाव पर तानने का कपड़ा।
पालइ–(सं० पालन)–पालता है। उ० पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक। (मा० २।३१५) पालत–१. पालते हैं, पाला करते हैं। २. पालन कर रहे हो, ३. पालते हुए। उ० १. पालत नीति प्रीति पहिचानी। (मा०२।२७४।३) २. पाल्यो है, पालत, पालहुगे। (वि०२२३) पालति–पालती है, रक्षा करती है। उ० जो सजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की। (मा० २।१२६। छं० १) पालबी–पालना, पालन करना, पालन कीजिएगा। उ० पालबी सब तापसनि ज्यों राज धरम बिचारि। (गी०७।२९) पालहिं–१.रक्षा करते हैं, पालन-पोषण करते हैं, २. रखते हैं, निर्वाह करते हैं, ३.नहीं टलते हैं। उ० २. अनुचित उचित बिचार तजि जे पालहिं पितु बैन। (दो०५४१) पालही–रक्षा करो, पालन करो। उ० जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही। (मा० २।५०। छं०१) पालहु–पालन करो, रक्षा करो। उ० पालहु प्रजा सोकु परिहरहू। (मा०२।१७५।१) पालहुगे–पालन करोगे, रक्षा करोगे। उ० दे० 'पालत'। पाला (१)–रक्षा की, पालन-पोषण किया। पालि–१. रक्षा करके, पालन करके, २. पालन करो। उ० २. सखी कहैं सखी सों तू प्रेम पय पालि, री। (क० १।१२) पालिए–रक्षा कीजिए, पालन कीजिए। उ० बिन सेवा सो पालिए सेवक की नाईं। (वि० ३५) पालित–(सं०)–रक्षित, पाला हुआ, २. स्थापित। उ० १. भीषम-द्रोन-करनादि-पालित, कालदृक, सुयोधन-चमू-निधन हेतू। (वि० २८) पालिबीं–पालन कीजिएगा। उ० ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई। (मा०१।३२६।छं३) पालिबी–पालन कीजिएगा। पालिबे–पालने, रक्षा करने। उ० पालिबे को कपि-भालु-चमू जमकाल करालहु को पहरी है। (क०६।२९) पालिहइ–दे० 'पालिहै'। पालिहिं–पालन करे। उ० पितु आयसु पालिहिं दुहुँ भाईं। (मा० २।३१५।२) पालिहै–पालेगा, रक्षा करेगा। उ० आनन सुखाने कहैं 'क्योंहूँ कोऊ पालिहै ?' (क० ५।१०)पाली–१. पालन किया, रक्षा की, २. पूरी की। उ० २. बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली। (वि० १४७) पालु–१. पालन करो, २. पालन करनेवाला। उ० १. पालु बिबुधकुल करि छल छाया। (२।२६५।१) २. सरनागत-प्रिय प्रनत-पालु। (वि० १५४) पालू–१. पालन करो, २. रक्षा करो। पाले–१. पालने पर, रक्षा करने पर, २. पाला, रक्षा की, निर्वाह किया, ३. अधीन, बश में। उ० २. आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे। (वि० २५०) ३. परेहु कठिन रावन के पाले। (मा० ६।६०।४) पालेहु–पालन करना। उ० पालेहु प्रजहि करम मन बानी। (मा० २।१५२।२) पालो–१. पालन करो, २. पाला हुआ। उ० २. पालो तेरे टूक को, परेहूँ चूक मूकिए न। (ह० ३४) पाल्यो–पालन किया, पाला। उ० पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु प्रनत-प्रेम पहिचानिहौ। (वि० २२३)
पालउ–(सं० पल्लव)–पत्रों को, पत्ते को। उ० पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। (मा० २।१६१।४)
पालक–(सं०)–१. पालन करनेवाला, रक्षक, २. पाला हुआ, लड़का। उ० १. बिस्वनाथ पालक कृपालुचित, लालति नित गिरिजा सी। (वि० २२)
पालकिन्ह–पालकियों पर। उ० कुअँरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस। (मा०१।३३८) पालकीं–पालकियाँ। दे० 'पालकी'। उ० सजि सुंदर पालकीं मगाईं। (मा० १।३३८।४) पालकी–(सं० पल्यंक)–एक प्रकार की सवारी जिसे आदमी कंधे पर लेकर चलते हैं। म्याना, डोली।
पालन–(सं०)–१. रक्षण, भरण-पोषण, २. भंग न करना, न टलना, निर्वाह। उ० १. जग संभव पालन लय कारिनि। (मा० १।९८।२)
पालनकरता–(सं० पालनकर्त्ता)–पालनेवाला, रक्षक।
पालना–(सं० पल्यंक)–झूला, हिंडोला। पालने–पालने पर। दे० 'पालना'। उ० रहत न बैठे ठाढ़े पालने झुलावत हू। (गी० १।१२)
पालनिहार–पालनेवाला, रक्षक। उ० बिधि से करनिहार, हरि से पालनिहार। (गी० ५।२५)
पालनो–दे० 'पालना'। उ० कनक-रतनमय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुत हार। (गी० १।१९)
पालन्ह–पालनेवाले, रक्षक गण।
पालव–(सं०पल्लव)–१.कोमल पत्ते, २.शाखा, डाली, टहनी। उ० २. पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा। (मा० २।४७।३)

पाला (२)–पालनेवाले, रक्षक। उ० विधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। (मा० २।२५४।३)
पालागौं–(सं० पाद+लग्न)–पैर लगती हूँ, पैर पड़ती हूँ। उ० तौ सकोच परिहरि पालागौं परमारथहि बखानो। (कृ० ३९)
पालिका–(सं०)–पालन करनेवाली, पालनेवाली। उ० देहि ह्वै प्रसन्न, पाहि प्रणत पालिका। (वि० १६) पालिके–हे पालन करनेवाली। उ० तेरे ही प्रसाद जग अग जग पालिके। (क० ७।१७३)
पावँर–दे० 'पाँवर'। उ० आन जीव पावँर का जाना। (मा० १।१११।३) पावँरन्हि–दे० 'पामरन्हि'। उ० भए काम बस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै। (मा० १।८५। छं० १)
पाव (२)–(सं० पाद)–१. चतुर्थांश, २. पैर। उ० २. पंथ देत नहिं पाव। (वै० १२)
पावक–(सं०)–१. आग, अग्नि, २. ताप, गर्मी, ३. तेज, ४. सूर्य, ५. शुद्ध या पवित्र करनेवाला, ६. सदाचार, ७. एक वृत्त। उ० १. इंदु-पावक-भानु-नयन। (वि० ११)
पावकु–दे० 'पावक'। उ० १. छाइ भवन पर पावकु धरेऊ। (मा० २।४७।१)
पावड़े–दे० 'पाँवड़े'।
पावन–(सं०)–१. पवित्र, शुद्ध, २. पवित्र करनेवाला। जल, अग्नि, गोबर, गंगा, तथा सत्संग आदि। उ० १. जसु पावन रावन नाग महा। (मा० ६।१११।२) पावनि–(सं० पावन)–१. पवित्र, २. पवित्र करनेवाली। उ० १. रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। (मा० १।३१।६) पावनी–१. पवित्र, २. पवित्र करनेवाली। उ० २. जयति जय सुरसरी जगदखिल-पावनी। (वि० १७)
पावनताई–पवित्रता। उ० कहि दंडक बन पावनताई। (मा० ७।६६।१)
पावनि (२)–(सं० प्रापण)–पानेवाली। उ० समधी सकल सुआसिनि गुरु तिय पावनि। (जा० २१४)
पावनो–पवित्र। उ० सुनि बचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अबिचल पावनो। (पा० ७४)
पावस–(सं० प्रावृष्)–बरसात, सावन-भादों का महीना। उ० पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं। (गी० ७।१६)
पाश–(सं०)–१. रस्सी, २. फंदा, फाँसी।
पाषंड–दे० 'पाखंड'। १. ढोंग, आंडबर, २. माया, छल, धोखा, ३. वेदविरुद्ध आचार। उ० २. पुनि उठत करि पाषंड। (मा० ३।६)
पाषंडी–पाखंड करनेवाला, धूर्त, नीच। उ० पाषंडी हरिपद विमुख, जानहिं झूठ न साच। (मा० १।११४)
पाष–दे० 'पाख'।
पाषरी–(सं० पक्ष्म)–पंखुरी, छोटे-छोटे पत्ते, दल।
पाषाण–(सं०)–१. पत्थर, २. ओला, ३. गौतम की स्त्री अहल्या, ४. कठोर, ५. गंधक।
पाषान–दे० 'पाषाण'। उ० २. गरजि तरजि पाषान बरषि। (वि० ६५)
पाषाना–दे० 'पाषाण'। उ० १. डारइ परसु परिघ पाषाना। (मा० ६।७३।१)
पासंग–(फ़ा०)–पसँघा, डंडी बराबर करने के लिए तराजू के पलड़े पर रक्खी गई कोई चीज़। पासंगहु–पसँगा भी। दे० 'पासंग'। उ० मेरे पासंगहु न पूजिहैं। (वि० २४१)
पास (१)–दे० 'पाश'। उ० त्रसित-माया-पास। (वि० ६०)
पास (२)–(सं० पार्श्व)–१. बग़ल, समीप, २. ओर।
पासा (१)–दे० 'पास (२)'। उ० १. होत सिमिटि इक पासा। (वि० ६२) २. उमगत प्रेमु मनहुँ चहुँ पासा। (मा० २।२२०।३)
पासा (२)–(सं० पाशक)–चौसर खेलने की गोटी। पासे–दे० 'पासा (२)'। उ० तुलसी सबै सराहत भूपहि भले पैत पासे सुढर ढरे, री। (गी० १।७४)
पासू–(सं० पार्श्व)–१. समीप, निकट, २. निकटता, समीपता। उ० २. लुबुध मधुप इव तजइ न पासू। (मा० १।१७।२)
पाहन–(सं० पाषाण)–१. पत्थर, ओला, २. अहल्या। उ० १. जाचत जलु पवि पाहन डारउ। (मा० २।२०५।२) २. पाहन पसू पतंग कोल भील निसिचर। (वि० २५७) पाहनौ–पत्थर भी। उ० खग मृग मीन सलभ सरसिज गति सुनि पाहनौ पसीजै। (कृ० ४५)
पाहनकृमि–पत्थर का कीड़ा जो लाल रंग का होता है। यह पत्थर में पैदा होता और वहीं रहता है। उ० पाहनकृमि जिमि कठिन सुभाऊ। (मा० २।६०।१)
पाहरु–(सं० प्रहर)–प्रहरी, चौकीदार।
पाहरू–दे० 'पाहरु'। उ० गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। (मा० २।६०।२) पाहरूई–पहरेदार ही, प्रहरी ही। उ० पाहरूई चोर हेरि हिय हहरानु हैं। (क० ७।८०)
पाहि–(सं०)–रक्षा करो, बचाओ। उ० तुलसी 'पाहि' कहत नत-पालक मोहुँ से निपट निकाज के। (गी० ५।२६)
पाहीं–(सं० पार्श्व)–१. समीप, पास, निकट, २. से, प्रति। उ० १. अलि पैयत रबि पाहीं। (कृ० ५८) २. राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। (मा० २।१०६।१)
पाही (१)–दे० 'पहि'। उ० कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही। (मा० ३।२।५)
पाही (२)–(सं० पार्श्व)–वह खेती जो दूसरे गाँव में की जाय। घर से दूर की खेती। उ० पाही खेती, लगन वट, ऋन कुब्याज मग-खेत। (दो० ४७८)
पाहुन–(सं० प्राघुण)–अतिथि, मेहमान। उ० दे० 'पहुनई'। पाहुनि–पाहुनी, स्त्री मेहमान। उ० पाहुनि पावन पेम प्रान की। (मा० २।२८६।२) पाहुने–दे० 'पाहुन'। उ० पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो। (क० ५।२४)
पाहूँ (१)–(सं० पार्श्व)–पास, समीप।
पाहूँ (२)–(सं० पाद)–पैर भी। उ० द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद, परि पाहूँ। (वि० २७५)
पिंग–(सं०)–पीला, पीलापन लिए भूरा। उ० पिंग नयन, भृकुटी कराल, रसना दसनानन। (ह० २)
पिंगल–(सं०)–१. पीला, भूरापन या ललाई लिए पीला, २. सूर्य, ३. एक मुनि जो छंद शास्त्र के आदि आचार्य कहे

जाते हैं। ४.एक बंदर का नाम, ५. आग, ६. उल्लू पत्ती, ७. एक संवत्सर, ८. चमगादर। उ० १. जयति बालार्क-बर-बदन, पिंगल नयन, कपिस-कर्कस-जटाजूट धारी। (वि० २८)

पिंगला-(सं०)-एक प्रसिद्ध भगवद्भक्त वेश्या। इसने एक धनिक को जाते देखा और उसकी प्रतीक्षा में बहुत रात तक बैठी रही। जब धनिक बहुत रात बीत जाने पर भी न आया तो उसे ज्ञान प्राप्त हुआ और आशा को जो सारे दुखों का मूल है छोड़ उसने शांति प्राप्त की। उ०गज पिंगला अजामिल। (वि० २१२)

पिंजरन्हि-पींजरों में। दे० 'पिंजरा'। उ० कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए। (मा० १।३२८।१) पिंजरा-(सं० पंजर)-लोहे या बाँस आदि की तीलियों का बना झाबा जिसमें पत्ती आदि पाले जाते हैं।

पिंड-(सं०)-१ शरीर, २. कोई गोल वस्तु, गोला, ३.पके चावल का गोल लोंदा जो श्राद्ध में पितरों को दिया जाता है। ४. भोजन, आहार। उ० ३. कौने गीध अधम को पितु ज्यों निज कर पिंड दियो। (गी० ५।४६) पिंडोदक-(सं०)-पिंडा और तर्पण, पिंडा-पानी। उ० दे० 'पिंड'।

पिअत-(सं०पा)-दे० 'पियत'। उ० १.पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। (मा०२।१११।३) पिअहिं-पीते हैं। उ० जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा। (मा० ७।२९।१) पिउ (१)-पिओ, पान करो। पिए-पान किए।

पिअर-दे० 'पियर'। उ० पिअर उपरना काखासोती। (मा० १।३२७।४)

पिआउ-पिलाओ, पान कराओ। उ० जाँचों जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो। (वि० १८२) पिआएँ-१. पिलाया, २. पिलाने से। उ० १. भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ। (मा० ७।१०६।३)

पिआरा-(सं० प्रिय)-प्यारा, प्रिय। उ० रामहि सेवकु परम पिआरा। (मा० २।२१०।१) पिआरी-दे० 'पियारी'। उ० दे० 'पियहिं'।

पिआस-(सं० पिपासा)-प्यास, तृषा। उ० आस पिआस मनो मलहारी। (मा० १।४३।१)

पिआसे-(पिपासित)-प्यासे, तृषित। उ० थके नारि नर प्रेम पिआसे। (मा० २।११६।२)

पिउ (२)-(सं० प्रिय)-प्रियतम, पिय।

पिक-(सं०)-कोयल, कोकिला। उ० सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक। (गी० १।३४) पिकबयनी-कोयल के समान मधुर बोलनेवाली। उ० पिकबयनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड। (गी० ७।१६)पिकबैनी-दे० 'पिक-बयनी'। उ० मनसहु अगम समुझि यह अवसरु कत सकुचति पिकबैनी। (गी० १।७६)

पिचकनि-(सं० पिच्य)-पिचकारियाँ। उ० भरत परसपर पिचकनि मनहुँ मुदित नर नारि। (गी० २।४७)

पिचकारि-दे० 'पिचकारी'। उ० झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ। (गी० ७।२२)

पिचकारी-(सं० पिच्य) एक प्रकार का नलदार यंत्र जिसका व्यवहार जल या दूसरे तरल पदार्थ जोर से किसी ओर फेंकने के लिए होता है। पिचका।

पिछोरी-(सं० पत्त+पट)-दुपट्टा, चादर, ओढ़नी। उ० मंगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी। (गी० १।१०३)

पिटारी-(सं० पिटक)-छोटा संदूक, डब्बा।

पितर-(सं० पितृ)-पुरखा, पूर्वपुरुष, पूर्वज। उ० गुर सुर संत पितर महि देवा। (मा० १।१५५।२)

पितहि-पिता को। उ० पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। (मा० २।४३।३) पितहु-पिता के। उ० पितहु मरन कर मोहि न सोकू। (मा० २।२११।३) पिता-(सं० पितृ का कर्त्ता एक वचन)-१. बाप, उत्पन्न करनेवाला, जनक, २. रक्षक। उ० १. पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू। (मा० ६।६१।३) पिताहूँ-पिता भी। उ० भली भाँति पछिताब पिताहूँ। (मा० १।६४।१) पितै-पिता भी। उ० तुलसिदास कासों कहै तुमहीं सब मेरे प्रभु गुरु मातु पितै हौ। (वि० २७०) पितौ-पिता भी। उ० तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु-धनु भूरि भाग सिय मातु पितौ री। (गी० १।७५)

पितु-दे० 'पिता'। उ० १. काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ पितु काल कराल बिलोकि न भागे। (क०७।१२८) पितुआना-पिता की। उ० लखन तुम्हार सपथ पितुआना। (मा० २।२३२।२)

पिधान-(सं०)-आच्छादन, ढक्कन। उ० सुख के निधान पाए, हिय के पिधान लाए। (गी० १।६२)

पिनाक-(सं०)-शिव का धनुष, अजगव। उ० लोकप बिलो-कत पिनाक भूमि लई है। (गी० १।८४) पिनाकहि-धनुप के, पिनाक के। उ० नाक पिनाकहि संग सिधाई।। (मा० १।२६६।४)

पिनाकी-(सं० पिनाकिन्)-शिव, महादेव। उ० सेष संकु-चित, संकित पिनाकी। (क० ६।४४)

पिनाकु-दे० 'पिनाक'। उ० घोर कठोर पुरारि-सरासन नाम प्रसिद्ध पिनाकु। (गी० १।८७)

पिपासा-(सं०)-१. प्यास, तृषा, २. लालच, लोभ। उ० १. जाते लाग न छुधा पिपासा। (मा० १।२०६।४)

पिपीलिकउ-चींटी भी। उ० चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं। (मा० १।१३) पिपीलिका-(सं०)-चींटी। उ० जिमि पिपीलिका सागर थाहा। (मा० ३।१।३)

पिबंति-पीते हैं, पीते रहते हैं। उ० धन्यास्ते कृतिनः पिबंति सततं श्रीराम नामामृतम्। (मा० ४।१। श्लो० २)

पिय-(सं० प्रिय)-१. स्वामी, पति, २. प्यारा। उ० १. कहन चह्यो संदेस, नहिं कह्यो, पिय के जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो। (गी० ५।१५) २. बूझति सिय पिय-पतिहि बिसूरि। (गी० २।११)

पियत-(सं० पा)-१. पीता है, २. पीता, पान करता। पियतु-दे० 'पियत'। पियहिं-पीते हैं। पियहि-(१)-पीता है। पिये-१. पीने पर, पान करने पर, २. पान किया, पीया। उ० १. पुलकति प्रेम-पियूष पिये। (गी० १।७) पियौं-पीऊँ, पीलू। उ० मुनिहि बूझि जल पियौं जाइ श्रम। (मा० ६।५७।१) पिवत-पीता है, पान करता है। उ० चरित-सुर सरित कवि-मुख्य-गिरि निःसरित पिवत मज्जत मुदित संत समाजा। (वि० ४४) पी (१)-पीकर,

पान करके। पीबो–१. पीना, पान करना, २. पीयोगे। उ० १. अजहुँ न तजत पयोधर पीबो। (कृ० ६) पीय (१)–पीकर, पानकर । पीवत–१. पीता है, पान करता है, २. पीते हुए। उ० २. मज्जत पय पावन पीवत जलु। (वि० २४) पीवन–पीना, पान करना। उ० चोंच मूंदि पीवै नहीं धिग पीवन पन जाइ। (स० ४८) पीवै–पीता, पान करता। उ० दे० 'पीवन'।

पियर–(सं० पीत)–पीला। पियरी–पीली। उ० पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली। (गी० १।३०) पियरे–पीले। उ० तैसी तरकसी, कटि कसे पट पियरे। (गी० १।४१)

पियहि (२)–(सं० प्रिय)–पति को, स्वामी को। उ० होइहि संतत पियहि पिआरी। (मा० १।६७।२)

पियाउ–पिलाओ, पान कराओ। पियावहिं–पिलाते हैं। उ० नरकपाल जल भरि भरि पियहिं पियावहिं। (पा०१११)

पियारा–(सं० प्रिय)–'प्यारा'। पियारी–प्यारी, प्रिया, प्रेम-पात्री। उ० दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पियारी। (पा० १४७) पियारे–प्यारे, प्रीतम, स्नेही। उ० समरथ सुवन समीर के रघुबीर पियारे। (वि० ३३)

पियास–(सं० पिपासा)–१. प्यास, पानी पीने की इच्छा, २. इच्छा, कामना। उ० १. तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु। (वि० १६६)

पियासा–(सं० पिपासित)–१. प्यासा, २. लालची, जिसमें किसी तरह की कामना हो। उ० १. राम नाम-रति स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेम-पियासा। (वि० ६५) पियासे–प्यासे, तृषित। उ० बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के। (क० ७।२४)

पियूष–(सं०)–१. अमृत, २. दूध, ३. पानी, ४. उस गाय का दूध जिसे बच्चा दिये सात दिन से अधिक हो गया हो। उ० १.पोषत पयद समान सब बिष पियूष के रूख। (दो० ३७७)

पियूषा–दे० 'पियूष'। उ० पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। (मा० २।१११।३)

पिराति–(सं० पीडन)–दुखती, दर्द करती। उ० ढील तेरी, बीर, मोहिं पीर तें पिराति है। (ह० ३०) पिरातो–१. पिराता, दर्द करता, २.दुखी होता। उ० २.सेइ साधु सुनि समुझि कै पर-पीर पिरातो। (वि० १५१) पिराने–दुखने लगे। उ० बैठिअ होइहिं पाय पिराने। (मा० १।२७८।१) पिरानो–दुखा, दर्द किया, पीड़ा की।

पिरीते–(सं० प्रीति)–१. प्यारा, २. प्रेमी, ३. प्रेमयुक्त, प्रेम से। उ० १. हा रघुनंदन प्रान पिरीते। (मा० २। १५५।४) ३. बोले गुर सन राम पिरीते। (मा० २। २४८।२)

पिरोजा–(फ़ा० फीरोजा)–हरापन लिए एक प्रकार का नीला पत्थर। उ० मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। (मा० १। २८८।२)

पिशाच–(सं०)–एक हीन देवयोनि, भूत, शैतान।

पिशित–(सं०)–मांस, गोश्त।

पिशुन–(सं०)–१. चुगला, चुगलखोर, निंदक, २. दुष्ट, ३. केसर, ४. कौआ।

पिसाच–दे० 'पिशाच'। उ० प्रेत पिसाच भूत बेताला। (मा० १।८१।३) पिसाचिनि–पिशाचों की स्त्रियाँ। उ० नाचहिं गगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं। (पा० ५६)

पिसाचा–दे० 'पिशाच'। उ० लगे कटन भट बिकट पिसाचा। (मा० ६।६८।२) पिसाची–पिशाच स्त्री, पिशाचिनी, भूतिनी। उ० अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि दाहन आस-पिसाची। (वि० १६३)

पिसुन–दे० 'पिशुन'। उ० पिसुन पराय पाप कहि देहीं। (मा० २।१६८।१)

पिसुनता–(सं० पिशुनता)–चुगलखोरी। उ० अघ कि पिसुनता सम कछु आना। (मा० १।११२।५)

पिहानी–(सं० पिधान)–ढक्कन, छिपानेवाली वस्तु। उ० आलस, अनख न आचरज प्रेम पिहानी जानु। (दो० ३२७)

पींजरनि–पींजरों में। उ० हम पँख पाइ पींजरनि तरसत। (गी० २।६६) पींजरा–दे० 'पिंजरा'। उ० तेहि निसि आस्रम-पींजरा राखे भा भिनुसार। (दो० २०६)

पी (२)–(सं० प्रिय)–प्रिय, प्रियतम, स्वामी, पति। उ० सेवक स्वामि सखा सिय पी के। (मा० १।१५।२)

पीछें–(सं० पश्च)–१. बाद में, पश्चात्, २. आगे का उलटा, पीछे की ओर। उ० २. अठुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। (मा० २।१४३।३)

पीटत–(सं० पीडन)–पीटते हैं, मारते हैं। उ० अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड। (मा० ७।३७) पीटहिं–पीटती हैं, पीटने लगीं। उ०नारि बृंद कर पीटहिं छाती। (मा० ६।४४।२) पीटि–पीटकर, चोट पहुँचाकर, मारकर।

पीठ (१)–(सं० पृष्ठ)–पीछे का अंग।

पीठ (२)–(सं०)–१. पीढ़ा, आसन, २. स्थान, ३. केन्द्र-स्थान। उ० १. पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। (मा०२। ५१।३) २. जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ। (क० ७।१४०)

पीठि (१)–दे० 'पीठ (१)'। उ० सो कि कृपालुहि देइगो केवट पालहि पीठि? (दो० ४६)

पीठी–दे० 'पीठ (१)'। उ० जिन्हकै लहहिं न रिपु रन पीठी। (मा० १।२३१।४)

पीड़त–पीड़ा देते हैं, कष्ट पहुँचाते हैं।

पीड़ा–(सं० पीडा)–कष्ट, दुःख। उ० पर पीड़ा सम नहिं अधमाई। (मा० ७।३६।१)

पीड़ित–(सं० पीडित)–पीड़ायुक्त, दुखित, रोगी, बीमार, दबाया हुआ। उ०त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी। (मा० २।२३५।२)

पीढ़न्ह–पीढ़ों पर, आसनों पर। उ० जथा जोगु पीढ़न्ह बैठारे। (मा० १।३२८।२) पीढ़ा–(सं० पीठ)–आसन, चौकी।

पीत (१)–(सं०)–पीला, पिंग, कपिल। उ० दिव्य भूपन बसन पीत उपवीत। (वि० ४४)

पीत (२)–(सं० पा)–पीया हुआ, जिसका पान किया गया हो।

पीतांबर–(सं०)–१. पीले रंग का रेशमी वस्त्र, २. रेशमी वस्त्र, ३. पीला कपड़ा।

पीन-(सं०)-१. स्थूल, मोटा, मांसल, २. पुष्ट, प्रौढ़, ३. मोटाई, स्थूलता। उ० १. जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम। (मा० २।२५१) २. बिसद किसोर पीन सुंदर बपु। (वि० ६२)
पीनता-(सं०)-१. मोटाई, स्थूलता, २. पुष्टता, प्रौढ़ता, ३. अधिकता। उ०३. पाप ही की पीनता। (क०७।६२)
पीना (१)-(सं० पीन)-पुष्ट, पीन, प्रौढ़। उ० नित नव राम प्रेम पनु पीना। (मा० २।३२५।१)
पीना (२)-(सं० पीडन)-तिल की खरी, निःसार भोजन। उ० बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पेखि हैं। (गी० १। ६३)
पीपर-(सं० पिप्पल)-पीपल का वृक्ष। उ० पीपर पात सरिस मनु डोला। (मा० २।४५।२)
पीय (२)-(सं० प्रिय)-१. पति, भर्तार, स्वामी, २. प्यारा, प्रिय। उ० १. हौं किए कहौं सौंह साँची सीयपीय की। (वि० २६३)
पीयूष-(सं०)-१. अमृत, २. दूध, ३. पानी। उ० १. नाम प्रेम-पीयूष-हृद तिनहुँ किए मन मीन। (दो० ३०)
पीर-(सं० पीडा)-१.पीड़ा, दर्द, २. सहानुभूति, हमदर्दी। उ० १. रावन धीर न पीर गनी। (क० ६।५१) २. काहू तो न पीर रघुबीर दीन जन की। (वि० ७५)
पीरा (१)-(सं० पीडन)-१.दे० 'पीड़ा'। २.पीड़ा पहुँचाया, पीड़ा पहुँचाते हैं। उ० २. नर सरीर धरि जे पर पीरा। (मा० ७।४१।२)
पीरा (२)-(सं० पीत)-पीला, पीतवर्ण।
पील-(फ़ा०)-हाथी, गज, गजेंद्र। उ० पील-उद्धरन सील सिंधु ढील देखियत। (वि० २४८)
पीवर-(सं०)-मोटा, स्थूल, तगड़ा, बलिष्ट। उ० तनु बिसाल पीवर अधिकाई। (मा० १।१५६।४)
पीसत-(सं० पेषण)-१. रगड़ता है, पीसता है, २. कुचलता है, चूर-चूर करता है। उ० १. पीसत दाँत गए रिस रेते। (वि० २४१)
पुंग-(सं० पूग)-सुपारी।
पुंगव-(सं०)-१. बैल, २. श्रेष्ठ, प्रधान, बड़ा। उ० २. ब्यास आदि कवि पुंगव नाना। (मा० १।१४।१)
पुंगीफल-(सं० पूगी)-सुपारी, कसैली। उ० जातुधान पुंगीफल जव तिल धान हैं। (क० ५।७)
पुंज-(सं०)-ढेर, समूह, राशि। उ० परम पावन पापपुंज-मुंजाटवी-अनल-इव निमिष-निर्मूलकर्त्ता। (वि० ५५)
पुंजा-दे० 'पुंज'। उ० तुरत उठाए करुनापुंजा। (मा० १।१४८।४)
पुंजी-पूँजी, धन, राशि। उ० तुलसी सो सब भाँति परम-हित पुंजी प्रान ते प्यारो। (वि० १७४)
पुंडरीक-(सं०)-१. कमल, २. सफ़ेद कमल, ३. बाघ, शेर, ४. अग्नि, ५. अग्निकोण के दिग्गज का नाम, ६. सफ़ेद रंग का हाथी। उ० १. शंकर-हृदि-पुंडरीक निसि बस हरि चंचरीक। (गी० ७।३)
पुकार-(?)-१. हाँक, टेर, बुलाना, २. गोहार, दुखी होकर बुलाना, सहायता के लिए बुलाना, ३. ललकार। उ० २. एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहिं पुकार। (मा०६।४६)
पुकारत-(?)-१. पुकारते हैं, बुलाते हैं, २. दोहाई देते हैं, हाय हाय करते हैं, ३.ललकारते हैं, ४.घोषणा करते हैं। उ० ४. बेद पुरान पुकारत, कहत पुरारि। (ब० ५६) पुकारहीं-पुकारते हैं। उ०धरि केस नारि नारि बाहेर तेति दीन पुकारहीं। (मा० ६।८५। छं० १) पुकारा-क. दे० 'पुकार'। ख. १.बुलाया, टेरा, २. ललकारा। उ० क २. कहँ पाइय प्रभु करिअ पुकारा। (मा०१।१८५।१) ख. २. अर्धराति पुर द्वार पुकारा। (मा० ४।६।२) पुकारि-पुकार कर, चिल्लाकर। उ० बार बार कह्यों मैं पुकारि दाढ़ीजार सों। (क० ५।११) पुकारी-पुकारा, बुलाया। उ० राम राम सिय लखन पुकारी। (मा० २।१४२।४) पुकारे-१. पुकारा, बुलाया, टेरा, २. पुकारने पर, बुलाने पर, टेरने पर। उ० २. मढ़े से स्रवन नहिं सुनति पुकारे। (गी० ५।१८) पुकारेसि-पुकारा। उ०परेउ भूमि जय राम पुकारेसि। (मा० ६।९१।४)
पुजाइ-(सं० पूजा)-पूजा लेकर, आराधना कराकर। पुजाइबे-पूजा कराने, पुजवाने। उ० बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि। (वि० १५८) पुजाइये-१. पूजा कराइए, आराधना कराइए, पुजावन-पूजा कराने। पुजावहिं-पुजाते हैं, पुजवाते हैं। उ० ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। (मा० ७।१००।४)
पुट-(सं०)-१.आच्छादन, आवरण, २. मध्य, ३. चूर्ण, ४. कमल, ५. पेषण, ६. औषधि पकाने का पात्र, ७. मिलाव, मिश्रण, ८.दोना, कटोरा, ९. अँगुली, १०. घोड़े की टाप, ११. मियान, १२. युगल, दो। उ० १२. पुट सूखि गए मधुराधर वै। (क० २।११) पुटन्हि-पुटों में। उ० श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मति धीर। (मा० ७।५२ ख)
पुटपाक-(सं०)-पत्ते के दोने में रखकर औषध पकाने का विधान। उ० जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप। (क० ५।२५)
पुटीं-पुटी का बहुवचन। दे० 'पुटी'। उ० १. भरि भरि परन पुटीं रचि रूरीं। (मा०२।२५०।१) पुटी-(सं० पुट)-१. छोटा दोना, पत्ते का छोटा पात्र, २. आच्छादन, आवरण, ३. कौपीन, लँगोटी।
पुण्यं-दे० 'पुण्य'। पुण्यस्वरूप। उ० पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्तिप्रदं। (मा० ७ का अंतिम श्लोक) पुण्य-(सं०)-१. धर्म, धर्म का कार्य, २. शुभ, ३. पवित्र, ४. सुंदर।
पुण्यभूमि-(सं०)-आर्यावर्त्त देश।
पुण्यश्लोक-(सं०)-जिसका सुंदर चरित्र या यश हो। पुण्यात्मा।
पुतरि-पुतली। उ० नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। (मा० २।५९।१)
पुतरिका-(सं० पुत्तलिका)-पुतली, कठपुतली।
पुतोहू-दे० 'पतोहू'। उ० होहु राम सिय पूत पुतोहू। (मा० २।१५।४)
पुत्र-(सं०)-आत्मज, लड़का, सुत, बेटा। उ० राम अनुग्रह पुत्रफल, होइहि सगुन बिसेष। (प्र० ४।४।४)

पुत्रजागु–(सं० पुत्रयज्ञ)–पुत्र प्राप्त्यर्थ किया गया यज्ञ। उ० पुत्रजागु करवाइ ऋषि, राजहि दीन्ह प्रसाद। (प्र० १।२।५)

पुत्रबधू–(सं० पुत्रवधू)–पतोहू। उ० मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। (मा० २।५६।१)

पुत्रवती–पुत्रवाली। उ० पुत्रवती जुवती जग सोई। (मा० २।७५।१)

पुत्रि–हे पुत्री ! उ० पुत्रि ! न सोचिए आई हौं जनक-गृह जिय जानि। (गी० ७।३२)

पुत्रिका–(सं०)–१. पुतली, कठपुतली, २. बेटी, पुत्री, लड़की, ३. स्त्री की तसवीर। उ० १. बिटप मध्य पुत्रिका सूत्र महँ कंचुक बिनहिं बनाए। (वि० १२४)

पुन–(सं० पुनर्)–१. फिर, पुनः, दोबारा, २. बाद, पीछे, अनंतर।

पुनि–दे० 'पुन'। उ० १. पुनि फिरि राम निकट सो आई। (मा० ३।१७।६) २. तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताए ? (वि० २०१)

पुनी (१)–(सं० पुनर्)–पुनः, फिर। उ० राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो। (क० ७।७२)

पुनी (२)–(सं० पुण्य)–१. पुण्य कार्य, पवित्र काम, २. पवित्र, शुद्ध, ३. पुण्यात्मा। उ० ३. सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। (मा० ७।२१।४)

पुनी (३)–(सं० पूर्णिमा)–पूर्णिमा। शुक्लपक्ष का १५वाँ दिन।

पुनीत–दे० 'पुनीत'। पुनीत–(सं०)–पवित्र, पाक, शुद्ध। उ० प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो। (वि०२६४)

पुनीतता–पवित्रता, निर्मलता। उ० प्रभु की पुनीतता आपनी छोटाई छोटी। (वि० २६२)

पुनीता–दे० 'पुनीत'। उ० रूपरासि पति प्रेम पुनीता। (मा० २।५८।१)

पुन्य–दे० 'पुण्य'। उ० १.जह्नु कन्या धन्य, पुन्य कृत सगर सुत, भूधर-द्रोनि-विद्दरनि बहुनामिनी। (वि० १८) ३. बध्यो बधिक पर्‌यो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच। (दो० ३०२)

पुन्यसिलोक–दे० 'पुण्यश्लोक'। उ० पुन्यसिलोक तात तर तोरें। (मा० २।२६३।३)

पुरंगिनी–(सं० पुर+रंगिनी)–गाँव की स्त्रियाँ। उ० बर बिहार चरन चारु पाँड़र चंपक चनार करनहार बार पार पुर पुरंगिनी। (गी० २।४३)

पुरंदर–(सं०)–इंद्र। उ० नीच निसाचर बैरी को बंधु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो। (क० ७।४)

पुर (१)–(सं०)–१. नगर, शहर, कसबा, २. एक राक्षस, जिसका शंकर ने संहार किया था, ३. पूरा, छोटी बस्ती, ४. शरीर, ५.घर, मकान, ६.लोक, भुवन, ७. दुर्ग, किला, ८. कोठा, अट्टालिका, ९. नक्षत्र, १०. ढेर, राशि। उ० २. मयनमहन पुरदहन गहन जानि। (क० १।१०) पुरइ (१)–नगरी में, नगरी को। उ० नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन। (जा० ९६)

पुर (२)–पूर्ण)–भरा पूरा, पूर्ण।

पुरइ (२)–(सं० पूर्ण)–पूरा कर के। पुरइहि–पूरा करेगा। उ० सो पुरइहि जगदीस पैज पन राखिहि। (जा० ७६) पुरई–पूर्ण किया, पूरी की। उ० हौं बलि बलि गई पुरई मंजु मनोरथ मोरि। (गी०३।१७) पुरउब–पूरा करेंगे, पूर्ण करेंगे, पूरा करूँगा। उ० पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। (मा० १।१५२।३) पुरउबि–पूरा कीजिएगा। उ० मातु मनोरथ पुरउबि मोरी। (मा० २।१०३।१) पुरब–पूरा करेगा, पूरा कर दे। उ० जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। (मा० २।२३।२) पुरवइ–पूरी करेगा। पुरवहु–पूरा करो, पुजा दो, भर दो। उ०होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि। (मा० १।१४छ) पुरवै–दे० 'पुरवइ'। उ० तुलसिदास लालसा दरस की सोइ पुरवै जेहिं आनि देखाए। (गी० २।३५)

पुरइनि–(सं० पुटकिनी)–१. कमल का पत्ता, २. कमल, ३. कमल की बेल। उ० १. पुरइनि सघन चारु चौपाई। (मा० १।३७।२)

पुरजन–पुरबासी, गाँव या नगर के लोग। उ० प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे। (गी० २।७६)

पुरट–(सं०)–सोना, सुवर्ण। उ० मनहुँ पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम। (दो० ७)

पुरदहन–तीनों पुरों (लोकों) या त्रिपुरासुर का संहार करनेवाले, शिव। उ० मयनदह पुरदहन गहन जानि। (क० १।१०)

पुरहूत–(सं० पुरुहूत)–इंद्र।

पुरा–(सं०)–पहले का, प्राचीन काल का। उ० यह संघट्ट तब हो जब पुन्य पुराकृत भूरि। (मा० १।२२२) पुराकृत–पहले का किया हुआ, पूर्व जन्म का किया हुआ। उ० दे० 'पुरा'।

पुराइ–(सं० पूर्ण)–१. पुरवाकर, सजाकर, २. पुरवाए, सजवाए। पुराईं–पुरवाया, बनवाया। उ० चौकें भाँति अनेक पुराईं। (मा० १।२८८।४)

पुराण–(सं०)–१.प्राचीन, पुरातन, २.हिंदुओं के धर्म संबंधी कथाओं के ग्रंथ जिनमें सृष्टि, लय तथा प्राचीन मुनियों और राजाओं के वृत्तांत हैं। पुराण दो प्रकार के हैं, एक तो पुराण और दूसरे उपपुराण। पुराणों की संख्या १८ और उपपुराणों की कुछ मतों से १८ और कुछ मतों से १८ से ऊपर है। उ०नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् (मा० १।श्लो०७)

पुराणपुरुष–विष्णु, भगवान।

पुरातन–(सं०)–पुराना, प्राचीन। उ० अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकरयो। (वि० ९२)

पुरान–(सं० पुराण)–१. प्राचीन, पुराना, २. पुराण, १८ पुराण दे० 'पुराण', ३. अनादि। उ० २. पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं। (क० ७।३८) पुराननि–पुराणों में। दे० 'पुराण'। उ० बहु मत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो। (वि० १७३) पुरानन्ह–पुराणों ने। उ० लव कुस बेद पुरानन्ह गाए। (मा० ७।२५।३)

पुराना–(सं० पुराण)–१. प्राचीन, पहले का, २. जीर्ण-शीर्ण ३. परिपक्व, ४. अनुभवी, ५. १८ पुराण आदि। उ० १. परमानंद परेस पुराना। (मा० १।११६।४) पुरानी–

दे० 'पुरानि' । उ० सुनु मुनिकथा पुनीत पुरानी । (मा० १।१४३।१) पुराने-प्राचीन ।
पुरानि-(सं० पुराण)-प्राचीन, पुरानी । उ० जाइ अनत सुनाइ मधुकर ज्ञानगिरा पुरानि । (कृ० ५२)
पुरारि-(सं०)-तीनों पुरों या त्रिपुरासुर के शत्रु शंकर, महादेव । उ० टूट्यौ मानों बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है । (क० १।१०)
पुरारी-दे० 'पुरारि' । उ० जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । (मा० १।१३८।४)
पुरि-दे० 'पुरी' ।
पुरिन-पुरियों में, पवित्र नगरों में । उ० सुर-सदननि तीरथ, पुरिन, निपट कुचालि कुसाज । (दो० ५५८) पुरिहि-पुरी को, पुरी में । उ० अपनी बीसी आपुही पुरिहि लगाये हाथ । (दो० २४०) पुरी-(सं० पुरी)-१. नगरी, पत्तन, शहर, २. जगन्नाथ पुरी, ३. गोसाइयों की एक उपाधि । उ० बंदउँ अवधपुरी अति पावनि । (मा० १।१६।१)
पुरीष-(सं०)-विष्टा, मल, मैला । उ० सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवहि । (वि० १३६)
पुरु-(सं०)-एक राजा जो ययाति के पुत्र थे ।
पुरुष-दे० 'पुरुषा' ।
पुरुखा-दे० 'पुरुषा' । उ० पुरुखा ते सेवक भए, हर ते भे हनुमान । (दो० १४४)
पुरुष-(सं०)-१. मनुष्य, आदमी, २, आत्मा, जीव, ३. विष्णु, ४. सूर्य, ५. शिव, ६. पति, स्वामी, ७. पारा, ८. पुरखा, पूर्व पुरुष । उ० १. पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । (मा० ६।३४।७) ३. पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परावर नाथ । (मा० १।११) ८. सो सठु कोटिक पुरुष समेता । (मा० २।१८४।४) पुरुषहि-पुरुष को । उ० जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं । (मा० २।१४१।३)
पुरुषा-(सं० पुरुष)-पुरखा, पूर्व पुरुष ।
पुरुषारथ-दे० 'पुरुषार्थ' । उ० १. बेद पुरान प्रगट पुरुषारथ, सकल सुभट-सिरमोर को । (वि० ३१)
पुरुषारथु-दे० 'पुरुषार्थ' । उ० ४. मोर तुम्हार परम पुरुषारथु । (मा० २।३१५।२)
पुरुषार्थ-(सं०)-१. परिश्रम, उद्यम, उद्योग, पराक्रम, पौरुष, २. साहस, हिम्मत, ३. पुरुष का प्रयोजन, ४. चार पुरुषार्थ-अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ।
पुरुषोत्तम-(सं०)-१. राम, २. विष्णु, ३. मलमास का महीना, ४. उत्तम व्यक्ति ।
पुरोडास-(सं० पुरोडाश)-जौ के आटे की बनी टिकिया जिसकी यज्ञों में आहुति दी जाती है । उ० पुरोडास चह रासभ खावा । (मा० ३।२६।३)
पुरोध-दे० 'पुरोधा' ।
पुरोधा-(सं० पुरोधस्)-पुरोहित, कुलगुरु, यज्ञ करानेवाला । उ० हंस बंस गुर जनक पुरोधा । (मा० २।२७८।१)
पुलक-(सं०)-प्रेममय या हर्ष आदि के उद्वेग से रोम कूपों का प्रफुल्ल होना, रोमांच । उ० मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ । (वि० १००)
पुलकत-१. पुलकते हैं, २. पुलकते हुए । उ० २. पुनि-पुनि पुलकत कृपानिकेता । (मा० १।५०।२) पुलकहिं-रोमांचित होते हैं । उ० द्रवहिं स्रवहिं पुलकहिं नहीं तुलसी सुमिरत राम । (दो० ४१) पुलकाहीं-पुलकित होते हैं, प्रसन्न होते हैं । उ० कहत सुनत हरषहिंपु लकाहीं । (मा० १।४१।३) पुलकि-रोमांचित होकर, प्रसन्न होकर । उ०परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी । (जा० १८६) पुलके-पुलकित हो गए, प्रसन्न हो गए । उ० आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात । (मा० २।४५) पुलकेउ-पुलकित हो गए, प्रसन्न हुए । उ० सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ । (मा० २।१७१।४)
पुलकित-हर्षित, रोमांचयुक्त । उ० पुलकित तनु आनंदघन छन-छन मन हरषै । (कृ० १)
पुलकालि-पुलकावली , हर्ष या भय से प्रफुल्ल रोमावलि । उ० बीज राम-गुनगन, नयन जल, अंकुर पुलकालि । (दो० ५६८)
पुलकावलि-हर्ष या भय आदि से प्रफुल्ल रोमावलि । उ० अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई । (मा० १।३१८।छं०१)
पुलस्ति-दे० 'पुलस्त्य' । उ० रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका । (मा० ५।२३।१)
पुलस्त्य-(सं०)-एक ऋषि जिनकी गणना प्रजापतियों और सप्तर्षियों में होती है ।
पुष्कर-(सं०)-एक तीर्थ जो अजमेर के पास है । उ० तुलसी पुष्कर-जग्य कर चरन-पांसु इच्छंत । (स० २२६)
पुष्ट-(सं०)-पाला हुआ, मोटा ताज़ा, दृढ़, प्रौढ़, मज़बूत, सामर्थ्यवान । उ० सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका कंबु कंठ सोभा मन मानति । (गी० ७।१७)
पुष्पक-(सं०)-कुबेर का विमान जिसे रावण ने छीन कर लंका पुरी में रक्खा था । राम ने रावण को मारने के बाद अयोध्या आने में इसका उपयोग किया और फिर इसे कुबेर को लौटा दिया । उ० पुष्पक जान जीति लै आवा । (मा० १।१७६।४) पुष्पकहि-पुष्पक विमान से । उ० उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु । (मा० ७।४ख)
पुहकर-दे० 'पुष्कर' ।
पुहुप-(सं० पुष्प)-फूल, सुमन । उ०अतिसय पुहुप क माल राम-उर सोहइ हो । (रा० १४)
पुहुमि-दे० 'पुहुमी' । उ० पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी । (मा० २।३१३।४)
पुहुमी-(सं० भूमि)-पृथ्वी, धरती । उ० तुलसी परबस हाड़ पर परिहै पुहुमी नीर । (दो० ३०१)
पूँग-दे० 'पूग' ।
पूँछउँ-(सं० पृच्छण)-पूछता हूँ, प्रश्न करता हूँ । उ० एक बात प्रभु पूँछउँ तोही । (मा०७।११५।४) पूँछत-१. पूछते हैं, प्रश्न करते हैं । २. पूछते, पूछते समय । उ० दे० 'पूँछेहु, । पूँछति-पूछती है । उ० सादर पुनि पुनि पूँछति ओही । (मा० २।१७।१) पूँछन-पूछने, पूछने के लिए । पूँछब-पूछूँगा । पूँछहि-पूछते हैं । पूछहुँ-पूछूँ । पूँछहु- पूछो । पूँछा-पूछा, प्रश्न किया । पूँछि-१. पूछकर, २. पूछ । उ० १. चहुँ दिसि चितइ पूँछि माली गन । (मा० १।२२८।१) २. भरत कुसल पूँछि न

सकहिं भय बिषाद मन माहिं। (मा० २।१५८) पूँछिय–१. पूछे, २. पूछिए। पूँछिहहिं–पूछेंगे। उ०धाइ पूँछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि। (मा०२।१४५) पूँछिहहि–पूछेगा। पूँछिहि–पूछेगा। पूँछिहु–पूछा। उ०पूँछिहु नाथ राम कटकाई। (मा०५।२४।३) पूँछी–पूछा। पूँछें–पूछे हुए। उ० मैं सबु कीन्ह तोहि बिन पूँछें। (मा० २।३२।१) पूँछे–पूछा, पूछा था। पूँछेउँ–पूछा। उ० पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। (मा० २।२१।४) पूँछेउ–पूछा। पूँछेसि–१. पूछा, २. पूछना। पूँछेहु–पूछा, प्रश्न किया। उ० पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ। (मा० २।१२७) पूँछेहू–दे० 'पूँछेहु'।

पूँजी–(सं० पुंज)–संचित धन या वस्तु, संपत्ति, रुपया-पैसा। उ० पूँजी बिनु बाढ़ी सई। (गी० ५।३७)

पूग–(सं०)–१. सुपारी, कसैली, २. समूह, ढेर, पुंज। उ० १. सफल रसाल पूगफल केरा। (मा० २।६।३) २. मोहांभोधर पूग पाटन विधौ स्वःसंभवं शंकरं। (मा० ३। १। श्लो० १) पूगफल–(सं०)–सुपारी का फल, सुपारी, कसैली। उ० सफल पूगफल कदलि रसाला। (मा० १।३४४।४)

पूगनि–(सं० पूर्यते)–पूरा होने, पूरने। उ० काज जुग पूगनि को करतल पल भो। (ह० ६)

पूगुन–'पू' जिनके आदि में हो ऐसे ३ नक्षत्र। पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और, पूर्वा भाद्र पद। उ० ऊगुन पूगुन वि अज कृम, आ भ अ मू गुनु साथ। (दो० ४५७)

पूछ–(सं० पुच्छ)–जानवरों आदि के शरीर के पीछे का अंतिम भाग, दुम, लांगूल, पूँछ। उ० पूछ सों प्रेम, बिरोध सींग सों, यहि बिचार हित हानी। (कृ० ४६)

पूछउँ–(सं० पृच्छ)–पूँछूँ, पूछता हूँ। पूछत–पूछते, पूछते हैं। उ० माथ नाइ पूछत अस भयऊ। (मा० ४।१।३) पूछति–पूछती है। पूछन–पूछने। पूछब–पूँछूगा। पूछहिं–पूछते हैं। पूछहु–पूछो, प्रश्न करो। पूछा–प्रश्न किया, दरियाफ़्त किया। उ० पूछा सिवहि समेत सकोचा। (मा० १।५७।३) पूछि–पूछकर, प्रश्न कर। पूछिअ–पूछ रहे हैं, पूछते हो। उ० जानत हूँ पूछिअ कस स्वामी। (मा० ३। ६।४) पूछिये–प्रश्न कीजिए, पूछो। पूछिहहिं–पूछेंगे, प्रश्न करेंगे। पूछिहहि–पूछेगा। पूछिहिं–पूछेंगी, पूछेगी। उ० पूछिहि जबहिं लखन महतारी। (मा० २।१४६।१) पूछिहैं–पूछेंगे। पूछिहै–पूछेगा। उ० हमैं पूछिहै कौन ? (दो० ४६४) पूछी–पूछा, प्रश्न किया। पूछु–पूछो, प्रश्न करो। पूछे–प्रश्न किये। पूछेसि–पूछा। उ० पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। (मा० २।१३।१) पूछेहु–पूछना, प्रश्न करना। पूछेहू–दे० 'पूछेहु'।

पूजइ–(सं० पूजा)–पूजेगी, पूजा करेगी। पूजत–१. पूजते, पूजते हैं, २. पूजते समय, पूजते हुए। उ० १. गिरिवर मैना मुदित मुनिहि पूजत भए। (पा० ११) पूजहिं (१)–(सं० पूजा)–पूजती हैं, आराधना करती या करते हैं। उ० सिद्ध सची सारद पूजहिं। (वि० २२) पूजहु–पूजा करो। पूजि (१)–(सं०पूजा)–पूजा करके, आराधना करके। उ० देबि पूजि पदकमल तुम्हारे। (मा० १।२३६।१) पूजिअ–पूजना चाहिए। उ० पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। (मा० ३।३४।१) पूजिअत–पूजे जाते हैं। उ० प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ। (मा० १।१९।२) पूजिअहिं–पूजते हैं। उ० बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ। (मा० १।७०।३) पूजिबे–पूजा करने। उ० दे० 'पुजाइबे'। पूजिबो–पूजना, सेवा या पूजा करना। पूजिये–पूजा कीजिए। उ०देव, पितर, ग्रह पूजि के तुला तौलिए घी के। (गी० १।१२) पूजिहि (१)–पूजा करेगा। पूजिहैं (१)–पूजा करेंगे। पूजीं (१)–(सं० पूजा)–पूजन किया। पूजी (१)–(सं० पूजा)–१. पूजा, पूजन किया, २. सम्मान किया। उ० २. तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। (मा० २।२२।३) पूजें–पूजा करके, पूजने पर। उ० सबु पायउँ रज पावनि पूजें। (मा० २।३।३) पूजे–पूजन किया। उ० पूजे देव पितर सब राम-उदय कहँ। (जा० २१३) पूजेउ–पूजा, पूजन किया। उ० मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि। (मा० १।१००) पूजेहु–पूजा की। उ० सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती। (मा० ६।२०।२) पूजैं (१)-(सं० पूजा)–पूजें, पूजा करें। पूजै (१)–(सं० पूजा)–पूजा करे।

पूजक–पूजा करनेवाला। उ० जापक पूजक पेखियत, सहत निरादर भार। (दो० ३६३)

पूजन–अर्चन, आराधना, पूजा। उ० गिरिजा पूजन जननि पठाई। (मा० १।२२८।१)

पूजनीय–(सं०)–पूजा के योग्य, पूज्य। उ० पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। (मा० २।७४)

पूजहिं (२)–(सं० पूर्यते)–पूरी होती हैं। पूजहि–१. पूरा हो, २. पूरी होगी। उ० २. पूजहि मन अभिलाष। (दो० ४६०) पूजा (१)–(सं० पूर्यते)–पूरा हुआ। पूजि (२)–(सं० पूर्यते)–पूरी हो। उ० ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की। (वि० ३०) पूजिहि (२)–पूरी होगी, पूर्ण होगी। उ० तौ हमार पूजिहि अभिलाषा। (मा० १।१४४।४) पूजिहैं (२)–पूरे होंगे। उ० मेरे पासंगहु न पूजिहैं।पूजीं (२)–(सं० पूर्यते)–पूरी हुईं। उ० पूजीं सकल बासना जी की। (मा०१।३५१।१) पूजी (३)–(सं० पूर्यते)–पूरी हुई, पूर्ण हो गई। पूजैं (२)–दे० 'पूजै (२)'। पूजै (२)–(सं० पूर्यते)–बराबरी करते हैं। उ० धन-धाम निकर, करनि हू न पूजै क्वै। (क० ७।१६३)पूजो (१)–(सं० पूर्यते)–पूरा पड़ा, पूजा। पूज्यो–पूरा हुआ, पूजा। उ० टूट्यो धनुष, मनोरथ पूज्यौ। (गी० १।६६)

पूजां– पूजा को। उ० न जानामि योगं जपं नैव पूजां। (मा० ७।१०८।छं०८) पूजा (२)–(सं०)–१. अर्चना, आराधना, उपासना, २. सम्मान, सत्कार। उ० १. करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। (मा० १।४५।३)

पुजाइबे–पुजाने, पुजवाने, पूजा कराने। उ० बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि। (वि० १५८)

पूजि (३)–(सं० पुज्य)–पूज्य, माननीय, पूजनीय। उ० पाप हरे परिताप हरे, तन पूजि भो सीतल सीतलताई। (क० ७।५८)

पूजित–(सं०)–अर्चित, आराधित, जिसकी पूजा की गई हो। पूजे हुए। उ० पूजित कलिजुग माहिं। (दो० ५५)

पूजो (२)–(सं० पूजा)–पूजा, आराधना, अर्चना। उ० कूर कुजाति कुपूत अघी सब की सुधरै जो करै नर पूजो। (क० ७।४)

पूज्य–(सं०)–पूजा के योग्य। उ० अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। (मा० १।३२।४)

पूत (१)–(सं० पुत्र)–लड़का, बेटा। पूतऊ–पुत्र भी। उ० छोटे और बड़ेरे पूतऊ अनेरे सब। (क० ५।११)

पूत (२)–(सं०)–पवित्र, शुद्ध। उ० यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी। (वि०५५)

पूतना–(सं०)–१. एक दानवी जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिए भेजा था। यह अपने स्तनों में विष लगाकर बाल कृष्ण को दूध पिलाने गई पर कृष्ण का कुछ न हुआ और उन्होंने इसका सारा ख़ून खींच लिया और यह मर गई। २. बालकों का एक रोग। उ० १. पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत। (वि० १६)

पूतरा–मर्द पुतली, गुड्डा। मु० पूतरो बाँधिहैं–निंदा करेंगे। उ०अब तुलसी पूतरो बाँधिहै सहि न जात मो पै परिहास एते। (वि० २४१) पूतरि–दे० 'पूतरी'। उ० २.करौं तोहि चख पूतरि आली। (मा० २।२३।२) पूतरी–(सं० पुत्तलिका)–१. काठ या कपड़े की पुतली, २. आँख की पुतली।

पूतरो–पुतला, गुड्डा। काठ या कपड़े का आदमी। उ० दे० 'पुतरा'।

पूति–(सं०)–१. पवित्रता, शुद्धता, २. दुर्गंध, बदबू।

पूतु–दे० 'पूत (१)'। उ० पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। (मा० २।१४।३)

पूनों–(सं० पूर्णिमा)–पूर्णमांसी, शुक्ल पक्ष की १५ वीं तिथि। उ० पूनों प्रेम भगति-रस हरिरस जानहिं दास। (वि० २०३)

पूप–(सं०)–पूआ, मालपूआ। उ० चलउँ भागि तब पूप देखावहिं। (मा० ७।७७।४)

पूय–(सं०)–पीप, मवाद। उ०विष्ठा पूय रुधिर कच हाड़ा। (मा० ६।५२।२)

पूर–(सं० पूर्ण)–१. पूरा, संपूर्ण, २. भरा हुआ, ३. वह पदार्थ जो किसी पकवान के भीतर भरा जाय। ४. अधिक, ज्यादा, पूरे, ५.पूरा हो। उ० १. देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई। (मा०१।८।७) २.कल केयूर पूर-कंचन-मनि। (गी० ७।१७)

पूरक–(सं०)–पूर करनेवाला, भरनेवाला।

पूरण–(सं० पूर्ण)–१. भरा हुआ, पूरा २. पूरा करनेवाला, ३. समाप्त, ख़तम, ४. सब, ५. पूर्ण करने की क्रिया, समाप्त करने का भाव, ६.पुल, ७. सफल।

पूरत–(सं० पूर्ति)–पूरा करता है, पूरा पड़ता है। पूरति–१. पूर्ण कर देती, २. भर देती है। उ० १. तुलसिदास बड़े भाग मन लागेहु तें सब सुख पूरति। (कृ० २८) २. पुलक तनु पूरति। (पा० ७६) पूरहिं–१. भर दें, पूरा कर दें, पाट दें, २. भर देंगे, पाट देंगे। उ०१. पूरहिं नत भरि कुधर बिसाला। (मा० ५।५५।३) पूरि–१. पूरा कर के, पूर्ण कर, २. भरे, ३. समाप्त कर। उ० १. बसन पूरि अरि दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। २.रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं। (मा० ६।८२।छं० १) पूरीं–पूरा, बनाया, भरा। उ० चौकें चारु सुमित्राँ पूरीं। (मा० २।८।२) पूरे–१. पूर्ण हो गए, भर गए, २. पूर्ण, भरपूर, भरे हुए, ३. बजाया। उ० १. सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता। (मा० १।२६८।१) २. सुचि सुगंध-मंगल जल पूरे। (मा० १।३२४।२) ३. रूरे सृंगी पूरे काल कंटक हरत हैं। (क० ७।१५६) पूरैं–बनाते हैं, पूरते हैं। उ० चौकैं पूरैं चारु कलस ध्वज साजहिं। (जा० २०५)

पूरन–दे० 'पूरण'। उ० १. प्रेम परिपूरन हियो। (मा० १।१०१।छं०१) १. जनु चकोर पूरन ससि लोभा। (मा० १।२०७।३) ७. देखि राम भए पूरनकामा। (मा० १। ३२३।२) पूरनकामा–दे० 'पूर्णकाम'। उ० देउँ काह तुम्ह पूरनकामा। (मा० ३।३१।५)

पूरनिहारु–पूर्ण करनेवाला। उ० स्याम सुभग सरीर जनु मन-काम-पूरनिहारु। (गी० ७।८)

पूरब–(सं० पूर्व) १. पूर्व दिशा, प्राची, प्राची की ओर, २. पहले, पूर्व।

पूरा–पूर्ण, भरा हुआ। उ० मम भुज सागर बल जल पूरा। (मा० ६।२८।२)

पूरित–भरे हुए। उ० सबकें उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर। (मा० १।३००)

पूरुब–दे० 'पूरब'। उ० १. पुर पूरुब दिसि गे दोउ भाई। (मा० १।२२४।१) २. पूरुब भाग मिलाहिं। (वै० २४)

पूरुष–(सं० पुरुष)–१. पुरखा, बड़े लोग, २.आदमी। उ० २. संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।६०।छं० १)

पूरो–पूरा, पूर्ण। उ० पिय पूरो आयो अब काहि कहु करि रघुबीर-बिरोधु। (गी० ६।१)

पूरोहितहिं–(सं० पुरोहित)–पुरोहित को।

पूर्ण–(सं०)–१. परिपूर्ण, पूरा, अखंडित, २. अभाव, शून्य, जिसे कोई इच्छा न हो, ३. काफ़ी, पर्याप्त, ४. समस्त, संपूर्ण। उ० १. मूलं धर्म तरोर्विवेकजलधेः पूर्णेंदुमानन्ददं। (मा० ३।१।श्लो०।१)

पूर्णकाम–(सं०)–जिसकी सारी इच्छाएँ तृप्त हो चुकी हों।

पूर्वं–दे० 'पूर्व'। उ० ३. यत्पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्री शंभुना दुर्गमं। (मा० ७।१३१। श्लो० १) पूर्व–(सं०)–१. प्राची, पूरब, २. आगे का, अगला, पुराना, पहले का, ३. पहले।

पूषण–दे० 'पूषन'।

पूषन–(सं० पूषण)–सूर्य, रवि। उ० पूषन-बंस-बिभूषन-पूषन तेज प्रताप गरे अरि-ओरे। (क० ६।५७)

पृथक–(सं० पृथक्)–भिन्न, अलग, जुदा। उ० पृथक-पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। (मा० १।८८।३)

पृथुराज–एक राजा का नाम जो वेनु के पुत्र थे और जिन्होंने पृथ्वी को समतल किया। इन्होंने पृथ्वी का दोहन कर औषधियाँ तथा रत्नादि भी निकाले थे। पृथु ने भगवान् का यश सुनने के लिए १० हज़ार कान माँगे थे। उ० पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। (मा० १।४।५)

पृथुल–(सं०)–महत्, बड़ा, अति विस्तृत। उ० राम-लषन सिय-पंथि की कथा पृथुल। (गी० २।३७)
पृथ्वी–(सं०)–पृथिवी, धरती, भूमि। उ० तुलसी ऐसे संत-जन, पृथ्वी ब्रह्म समान। (वै० २७)
पृष्ठ–(सं०)–१. पीठ, २. पन्ना, पुस्तक आदि का सफ़हा। उ० १. कमठ अति विकठ-तनु, कठिन पृष्ठोपरि भ्रमत मंदर कंडु-सुख मुरारी। (वि० ५२)
पेखक–(सं० प्रेक्षण)–देखनेवाला, दर्शक। उ० व्योम बिमानिनि बिबुध बिलोकत खेलक पेखक छाँह छये। (गी० १।४३)
पेखत–(सं० प्रेक्षण)–१. देखता हूँ, देख रहा हूँ, २. देखता है, ३. देखते ही। उ० २. पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीत न आवइ। (पा० ७८) ३. सीता बट पेखत पुनीत होत पातकी। (क० ७।१३८) पेखहु–देखो, दर्शन करो। उ० देखहु पनस रसाल। (दो० ३५४) पेखा–देखा, अवलोकन किया। उ० भूमि बिबर एक कौतुक पेखा। (मा० ४।२४।३) पेखि–देखकर, अवलोकन कर। उ० लछिमन देखु मोरगन नाचत बारिद पेखि। (मा०४।१३) पेखिअ–देखिए, देखो। उ० मज्जनफल पेखिअ तत काला। (मा० १।३।१) पेखियत–दिखलाई दे रहा है, दिखाई दे रहा है, देखते हैं। पेखी–१. देखकर, २. देखा। उ० १. समर सरोष राम मुखु पेखी। (मा० २।२२६।२) पेखु–देख, देखो। उ० सुमुखि ! केस सुदेस सुन्दर सुमन-संजुत पेखु। (गी० ७।६) पेखेउ–देखा, देख लिया। उ० पेखेउ जनम फल भा बियाह, उछाह उमगहिं दस दिसा। (पा०१४७)
पेखन–(सं० प्रेक्षण)–१. दृश्य, देखने की चीज़, २. देखने के लिए, देखना, देखने की क्रिया। उ० १. जगु पेखन तुम्ह पेखनिहारे। (मा० २।१२७।१) २. ऋषि तिय तारि स्वयं बर पेखन जनक-नगर पगु धारे। (गी० १।५८)
पेखनिहारे–देखनेवाले। दे० 'पेखन'।
पेखनो–खेल, तमाशा, दृश्य। उ०पेखनो सो पेखन चले हैं पुर-नर-नारि। (गी० १।७१)
पेट–(सं०)–१. उदर, तुंद, शरीर का वह भाग जिसमें पहुँच कर भोजन पचता है, २. गर्भ, हमल। उ० १. पेट की कठिन, जग जीव को जवारु है। (क० ७।९७) पेटै–पेट को। उ० तब लौं उबैने पायँ फिरत पेटै खलाय। (क० ७।१२५)
पेटक–(सं० पिटारा)–संदूक, पेटी। उ० रघुबीर जस-मुकुता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे। (जा० ११७)
पेटारा–(सं० पिटक)–बाँस, बेंत या मूँज आदि का बना संदूक। पेटारे–पेटारियाँ, संदूकें। उ० कनक किरीट कोटि, पलँग पेटारे, पीठ काढ़त कहार सब जरे भरे भारहीं। (क० ५।२३)
पेड़–(सं० पिंड)–वृक्ष, दरख़्त। उ० पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। (मा० २।१६१।४)
पेन्हाई–(दे० 'पन्हाई')–पेन्हावे, बछड़े को पिलाकर या हाथ से छूकर थनों में दूध उतारे। उ० भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई। (मा० ७।११७।६)
पेम–(सं० प्रेम)–प्रीति, स्नेह। उ० का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई। (क० ७।९३)
पेरि–(सं० पीडन)–पीसकर, दबाकर, पेरकर। उ० समर-तैलिक यंत्र तिल-तिल-तमीचर-निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी। (वि० २५) पेरो (१)–१. पेरा, दबाया, पीसा, २. बहुत सताया, कष्ट दिया। उ० १. भूल्यो सूल कर्म-कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो। (वि० १४३)
पेरो (२)–(सं० प्रेरणा)–१. प्रेरणा की, २. पठाया।
पेलइहि–(सं०पीड़न)–१.त्याग करेंगे, २.टाल देंगे, छोड़ देंगे, ३. मिटा देंगे। पेलि–१. पीछे हटाकर, २, टालकर, धक्का देकर, ३. बलात्, हठात्, ज़बरदस्ती। उ०१. भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं। (क० ५।१५) २. मुनि पेलि पैठे मधुबन में। (क० ५।३१) ३. ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि। (क० ५।८) पेलिहहिं–त्याग करेंगे, टाल देंगे, छोड़ देंगे। उ० भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ। (मा० २।२८९) पेली–१. टालकर, हटाकर, २. टाला, हटाया। उ० १. आयहु तात बचन मम पेली। (मा० ३।३०।१)
पेव (१)–(सं० प्रेम)–प्रेम, प्रीति। उ०दीन्हीं मुदित गिरि-राज जे गिरिजहि पियारी पेव की। (पा० १४७)
पेव (२)–(?)–बचपन, दूध पीने का समय।
पेषण–(सं०)–पीसना, चूर्ण करना।
पेषत–(सं० प्रेक्षण)–देखते हुए, देखकर। उ० बचन कहे अभिमान के पारथ पेषत सेतु। (दो० ४४०) पेषन–(सं० प्रेक्षण)–१. निरीक्षण, देखना, २. तमाशा, दृश्य। उ० १.बटु बेष पेषन पेम पन ब्रत नेम ससि सेखर गए। (पा० ४५) पेषि–देखकर। उ० पेषि पुरुषारथ परखि पन, पेम नेम। (गी० १।९०) पेष्यि–१. देखो, २. प्रेक्ष्य, देखने के योग्य। पेषियत–दे० 'पेखियत'। उ० तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस। (ह० ४१) पेषिये–देखिए, दर्शन कीजिए। उ० राम-प्रेम-पथ पेषिये दिये विषय तनु पीठि। (दो० ८२) पेषु–देखो।
पैंजनि–दे० 'पैंजनी'। उ० कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजैं। (गी० १।२८)
पैंजनी–(?)–पाँव का एक गहना, घुँघरू।
पैंत–(सं० पणकृत, प्रा० पणइत)–१. दावँ में रखा हुआ द्रव्य, जूए पर का दाँव, २. घात, दाँव, बाज़ी। उ० १. प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधि बस सुढर ढरे हैं। (गी० ६।१३) २. माँगे पैंत पावन पचारि पातकी प्रचंड। (क० ७।८१)
पै (१)–(सं० परं)–१. पर, परन्तु, लेकिन, २. निश्चय, अवश्य, ज़रूर, ३. अनंतर, पीछे। उ० १. मन तौ न भरो घर पै भरिया। (क० ७।४६) २. मिलिए पै नाथ रघुनाथ पहिचानि कै। (क० ६।२६)
पै (२)–(सं० प्रति, प्रा० पडि, पइ)–१. पास, समीप, २. प्रति, ओर, तरफ़।
पै (३)–(सं० उपरि)–१. पर, उपर, २. से, द्वारा। उ० १. परम कृपालु जो नृपाल लोक पालन पै। (क० ७।२६) २. तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काह तो पायो न बिये। (गी० १।७)
पैज–(सं० प्रतिज्ञा)–१. प्रतिज्ञा, प्रण, २. प्रतिद्वंद्विता, होड़। उ० १. ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस

पषान की। (वि० ३०) २. पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें। (क० ७।१२६)
पैठ–(सं० प्रविष्ठ)–पैठे, प्रवेश किया। उ० पैठ भवन रथु राखि दुआरें। (मा० २।१४७।३) पैठत–१. प्रवेश करते हुए, घुसते हुए, २. प्रवेश करते हैं। उ० १. पैठत नगर सचिव सकुचाई। (मा० २।१४७।२) पैठहिं–प्रवेश करती हैं, घुसती हैं, भीतर आते हैं। उ० गावत पैठहिं भूप दुआरा। (मा० १।१६४।२) पैठा–प्रवेश किया। उ० पैठा नगर सुमिरि भगवाना। (मा० ५।५।२) पैठि–प्रविष्ठ होकर, पैठकर, घुसकर। उ० पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि। (वि० १५८) पैठीं–घुस गईं, घुसीं। उ० भागि भवन पैठीं अति त्रासा। (मा० १।१६६।३) पैठे–१. पैठना, घुसना, २. घुसे, प्रवेश किया। उ० १. चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे। (मा० २।२०६।२) पैठेउ–घुसे, प्रवेश किया। उ० चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। (मा० ५।१८।१) पैठो–प्रविष्ट हुआ, पैठा, घुसा। उ०पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को। (क० ५।२)
पैठारा–(सं० प्रविष्ठ)–प्रवेश करते समय, प्रवेश में। उ० असगुन होहिं नगर पैठारा। (मा० २।१५८।२)
पैन–(सं० पैण)–पैना, तेज़। उ० सनमुख सहै बिरह सर पैन। (गी० ५।२१)
पैना–दे० 'पैन'। उ० सन्मुख हतै गिरा-शर पैना। (वै० ४६) पैनी–तीखी, तेज़, तीव्र। उ० कुलगुरु-तिय के मधुर बचन सुनि जनक-जुवति मति-पैनी। (गी० १।७६)
पैरत–(सं० प्लवन)–१. तैरते हैं, २. तैरते हुए। पैरि–तैरकर, पैर कर। उ० पावत न पैरि पार पैरि-पैरि थाके हैं। (गी० १।६२)
पैसार–(सं० प्रवेश)–पहुँच, प्रवेश।
पैहहिं–(सं० प्रापण)–पावेंगे। उ० पैहहिं सुख सुनि सुजन सब। (मा० १।८) पैहहु–पावोगे, प्राप्त करोगे।
पोंछि–(सं० प्रोच्छन)–पोंछकर। उ० आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे। (मा० २।१६५।२)
पोऊ–(सं० प्रोत)–पिरोना, पिरोओ। उ० परसपर कहैं, सखि! अनुराग ताग पोऊ। (गी० २।१६)
पोख (१)–सने हुए, पोषित। उ० प्रेम-परिहास-पोख-बचन परसपर। (गी० १।६५)
पोखे–(सं० पोषण)–पुष्ट हुए, बली हुए। उ० बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं। (गी० ७।६३)
पोच–(फ़ा० पूच)–१. तुच्छ, छोटा, नीच, बुरा, २. अशक्त, क्षीण, हीन। उ० १. सोचत जनक पोच पेच परि गई है। (गी० १।८४) १. मिटे संकट सोच पोच प्रपंच पाप-निकाय। (वि० २२०)
पोचा–(फ़ा० पूच)–नीच, ओछा। उ० सकल कहहिं दस-कंधर पोचा। (मा० ६।७७।४) पोची–ओछी, छोटी। उ० जद्यपि मोतें कै कुमातु तें ह्वै आई अति पोची। (गी० २।६५)
पोचु–दे० 'पोच'। उ० १. काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं। (क० ७।१२१)
पोंचू–दे० 'पोच'। उ० नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू। (मा० २।२११।२)
पोत–(सं०)–१. पशु पक्षी आदि का छोटा बच्चा, २. नाव, जहाज़। उ० १. रे कपि पोत न बोलु सँभारी। (मा ६।२१।१) २. बिप्ररूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत। (मा० ७।१ क)
पोतक–(सं०)–बालक, बच्चा। उ० जो सब पातक पोतक डाकिनि। (मा० २।१३२।३)
पोतो–बच्चा। उ० स्वाति-सनेह-सलिल-सुख चाहत चित-चातक को पोतो। (वि० १६१)
पोथा–(सं० पुस्तिका, प्रा० पोत्थिआ)–पुस्तक, पोथी।
पोथिन–(सं० पुस्तक)–पोथियों, पुस्तकों। उ० देव-दरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभीत। (दो० ५५७) पोथिही–पुस्तकों में ही, पोथियों में ही। उ० धरम बरन आश्रमनि के पैयत पोथिही पुरान। (वि० १६२) पोथी–पुस्तक, किताब। उ० सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम। (प्र० ७।७।१)
पोष–(सं०)–१. पोषण, पुष्टि, २. उन्नति, तरक्की, ३. वृद्धि, बढ़ती, ४. संतोष, तुष्टि। उ०१. रसना मंत्री, दसन जन, तोष पोष निज काज। (दो० ५२५)
पोषइ–(सं० पोषण)–पोषण करता है। उ० पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक। (मा० २।३१५) पोषत–पोषण करता है, पालता है, पुष्ट करता है। उ० राम सुप्रेमहि पोषत पानी। (मा० १।४३।२) पोषि–रक्षा करके, पालकर। उ०पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिए। (ह० ३४) पोषिए–पालन कीजिए, रक्षा कीजिए। उ० अब गरीब जन पोषिए, पायबो न हेरो। (वि० १४६) पोषिबे–पालने, रक्षा करने को। उ० सोखिबे कृसानु पोषिबे को हिम भानु भो। (ह० ११) पोषीं–पुष्ट कर दीं। उ० जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं। (मा० २।११८।२) पोषे–१. पुष्ट किए हुए, २. पाले हुए। उ० १. सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। (मा० १।३४२।३) २. आपुन नास आपने पोषे। (गी० ५।१२) पोषेउ–दृढ़ किया। उ० जानकी तोषि पोषेउ प्रताप। (गी० ५।१६)
पोषक–(सं०)–पालन करनेवाला, रक्षक, पुष्टिकर्त्ता, बढ़ानेवाला। उ० ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह। (दो० ३७२)
पोषण–(सं०)–पालन, रक्षण, सहायता, वृद्धि, पुष्टि।
पोषन–दे० 'पोषण'। उ० विश्व-पोषन-भरन विश्व कारन-करन सरन-तुलसीदास-त्रासहंता। (वि० ५५)
पोषनिहारा–पालनकर्त्ता, पालनेवाला। उ० भानु कमल कुल पोषनिहारा। (मा० २।१७।४)
पोषरिन–(सं० पुष्कर)–पोखरियों में, छोटे तालाबों में। उ० डोलत बिपुल बिहग बन, पियत पोषरिन बारि। (दो० २६५) पोषरी–पोखरी, तलैया। उ० पोषरी बिसाल बाहुँ, बलि, बारिचर पीर। (ह० २२)
पोसात–(सं० पोषण)–पोसे जाते, पोषण होते, पोष पाते, पुष्ट या पालित होते। उ० दूध दह्योउ माखन ढारत हैं हुतो पोसात दान दिन दीबो। (कृ० ६)
पोसु–(सं० पोषण)–१. पोषण करनेवाले, पालक, २. पोष, पोषण, पालन। उ० १. सील सिंधु, कृपालु नाथ, अनाथ-आरत पोसु। (वि० १५६) पोसे–पोसा, पालन किया।

उ० मोसे दोस-कोस पोसे तोसे माय जायो को। (वि० १७१) पोसौं–पालन करता हूँ, पालता हूँ। उ० पातकी पामर प्राननि पोसौं। (क० ७।१३७) पोसो–१. पालन करो, पालो, पोषण करो, २. पालना, पोषण करना, ३. पालन किया है। उ० २. बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है। (ह० २९) ३. निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। (मा० १।२८।२)

पोहत–(सं० प्रोत)–१. गूथते हैं, गूहते हैं, २. लगाते हैं, मिलाते हैं। उ० २. तुलसी प्रभु जोहत पोहत चित, सोहत मोहत कोटि मयन। (गी० १।४६) पोहहीं–लगा रहे हों, गूथ रहे हों, पिरो रहे हों। उ० जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं। (मा० ६।६२। छं० १) पोहिअहिं–१. पोहेंगे, पिरोएँगे, २. पिरो। उ० १. जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग। (मा० १।११) पोही–१. पिरो लिया है, २. पिरोकर, गूथकर। उ० १. चारु चितवनि चतुर लेति चित पोही। (गी० २।१८) पोहैं–पिरो लेते हैं, लगा लेते हैं। उ० कुंचित, कुंडल कल नासिक चित पोहैं। (गी० ७।४)

पौढ़ाए–(सं० प्रलोठन)–लिटा दिए, लेटाए। उ० करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए। (मा० १।२०१।१)

पौढ़ि–(सं० प्रलोठन)–लेटकर, सोकर। उ० कबहुँ पौढ़ि पय पान करावति। (गी० १।७) पौढ़िये–लेट जाइए, सोइए। उ० पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं। (गी० १।१५) पौढ़े–सो रहे, सोए। उ० पौढ़े धरि उर पद जलजाता। (मा० १।२२६।४)

पौन–(सं० पवन)–हवा, वायु। उ० पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते। (क० ७।४४)

पौर–(सं० प्लवन)–पैरकर, तैरकर। उ० तुलसिदास दस पद परखि भवसागर पौ पौर। (स० २१४) पौरि (१)–तैरकर, पैरकर।

पौरि (२)–(सं० प्रतोली)–डेवढ़ी, देहली, द्वार। उ० हाट, बाट, कोट, ओट, अट्टनि अगार, पौरि। (क० ५।१४)

पौरुष–(सं०)–पुरुषत्व, पुरुषार्थ। उ० धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता। (मा० ३।१८।१)

प्याइ–(सं० पा)–पिलाकर, पान करा कर। उ० जे पय प्याइ पोखि कर-पंकज बार बार चुचुकारे। (गी० २।८७) प्याइहौं–पान कराऊँगा, पिलाऊँगा। उ० रामचंद्र-मुखचंद्र-सुधा-छबि नयन-चकोरनि प्याइहौं। (गी० १।४६)

प्यार–(सं० प्रिय)–मुहब्बत, प्रेम।

प्यारा–प्रेमपात्र, प्रिय, स्नेही। प्यारी–'प्यारा' का स्त्रीलिंग। उ० प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी। (मा० ७।६५।१) प्यारे–दे० 'प्यारा'। उ० प्रानहुँ तें प्यारे प्रियतम उपही। (गी० २।३८)

प्यास–(सं० पिपासा)–१. तृषा, जल पीने की इच्छा, २. कामना, लालसा। उ० १. जन कहाइ नाम लेत हौं किए पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-प्रान की। (वि० ४२)

प्यासा–तृषित, जिसे प्यास लगी हो।

प्र–एक संस्कृत उपसर्ग जो आरंभ, उन्नति, बड़ा, श्रेष्ठ, प्रधान, मुख्य, अधिक तथा चारों ओर से आदि अर्थों के लिए धातुओं या शब्दों के पूर्व लगता है। 'प्रकृति' में यह 'प्र' उपसर्ग है जिसका अर्थ है 'श्रेष्ठ' कृति या 'बड़ी' कृति। दे० 'प्रकृति'।

प्रकट–(सं०)–१. प्रत्यक्ष, स्पष्ट, सामने, ज़ाहिर, २. उत्पन्न, पैदा, आविर्भूत। उ० १. खंग धाराव्रती प्रथम रेखा प्रकट। (वि० ३६)

प्रकर्ष–(सं०)–१. उत्कर्ष, श्रेष्ठता, बड़ाई, २. अधिकता, बहुतायत।

प्रकार–(सं०)–१. क्रम, २. रीति, ढंग, युक्ति, तरह, ३. भेद, ४. समानता, बराबरी। उ० २. एहि प्रकार बल मनहि देखाई। (मा० १।१४।१)

प्रकारा–दे० 'प्रकार'। उ० ३. कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा। (मा० १।६।५)

प्रकाशं–दे० 'प्रकाश'। उ० १. कोटि-मदनार्क अगणित प्रकाशम्। (वि०५६) प्रकाश–(सं०)–१. रोशनी, उजेला, दीप्ति, २. प्रकट, स्पष्ट, व्यक्त।

प्रकाशक–(सं०)–प्रकाश करनेवाला, प्रकट करनेवाला।

प्रकाशनीय–दे० 'प्रकाश्य'।

प्रकाशी–१. प्रकाश करनेवाला, जो चमके और प्रकाश करे, २. सूर्य, ३. दीपक, ४. प्रकाश होता था।

प्रकाश्य–(सं०)–प्रकाश के योग्य, जिसे स्पष्ट किया जाय।

प्रकास–दे० 'प्रकाश'। उ० १, अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकास। (वि० ७४) २. पाइ उमा अति गोप्य-मपि सज्जन करहिं प्रकास। (मा० ७।६९ ख) प्रकासे–प्रकाश से। उ० जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। (मा० २।३२५।२)

प्रकासक–दे० 'प्रकाशक'। उ० जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। (मा० १।११७।४)

प्रकासति–प्रकाशित कर रही है, प्रकाश कर रही है। उ० सिरसि हेम-हीरक-मानिकमय मुकुट-प्रभा सब भुवन प्रकासति। (गी० ७।१७)

प्रकासा–दे० 'प्रकाश'। उ० १. सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा। (मा० १।२४२।२)

प्रकासी–दे० 'प्रकाशी'। उ० बचन नखत अवली न प्रकासी। (मा० १।२५५।१)

प्रकासु–दे० 'प्रकाश'। उ० करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं। (मा० १।२३१।१)

प्रकासू–दे० 'प्रकाश'। उ० १. तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू। (मा० २।७४।२)

प्रकास्य–दे० 'प्रकाश्य'। उ० जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। (मा० १।११७।४)

प्रकृति–(सं०)–१. स्वभाव, तासीर, २. स्वभाव, मिजाज़, ३. माया, ४. ईश्वरीय शक्ति, वह आदि शक्ति जिसे विश्व में अनेक रूपों में हम देखते हैं। जगत् का मूल बीज। सांख्य में पुरुष के अतिरिक्त केवल प्रकृति का ही अस्तित्व माना गया है। उ० ३. प्रगट परमात्मा प्रकृति-स्वामी। (वि० ४६) ४. प्रकृति, महतत्व, सब्दादि, गुन, देवता, व्योम, मरुदग्नि अमलांबु, उर्वी। (वि० ५४)

प्रकृष्टं–(सं०)–१. उत्तम, श्रेष्ठ, २. मुख्य। उ० १. प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। (मा० ७।१०८।५)

प्रक्रिया–(सं०)–१. प्रकरण, २. क्रिया, युक्ति, तरीका।

प्रखर-(सं०)-१. तेज, तीखा, २. घोड़े-हाथी का बख्तर, ३. पैना, धारदार।

प्रख्यात-(सं०)-मशहूर, विख्यात, नामवर, प्रतिष्ठित।

प्रगट-दे० 'प्रकट'। उ० १. अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकास। (वि० ७४) २. भूमि-भर-भारहर प्रगट परमातमा ब्रह्म नररूप धर-भक्त हेतू। (वि० ५२)

प्रगटइ-(सं० प्रकट)-प्रकट होता है। प्रगटउँ-प्रकट करता हूँ। उ० अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। (मा० १।४६।१) प्रगटत-१. प्रकट होता है, सामने आता है, स्पष्ट होता है। २. प्रकट करते हुए, स्पष्ट करते हुए। उ० १. प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी। (मा० १।३२५।३) २. प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं। (जा० ६५) प्रगटसि-प्रकट होती। उ० सिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं। (मा०३।३०।८) प्रगटहिं-प्रकट होती हैं, स्पष्ट होती हैं। उ० प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। (मा० १।३४७।२) प्रगटि-१. उत्पन्न होकर, २. उत्पन्न करके, ३. कहकर, ४. प्रकट करके, ज़ाहिर कर, स्पष्ट कर। उ० १. मानहुँ प्रगटि बिपुल लोहित पुर पठइ दिये अवनी। (गी० ७।२०) २. सभा सिंधु जदुपति जय-जय जनु रमा प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी। (कृ० ६१) प्रगटिहु-प्रकाशित किया। उ० जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु-पिता कर। (पा० ४६) प्रगटी-उत्पन्न हुई, प्रकट हुई, जन्म लिया। उ०सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुख-सागर। (जा० ५) प्रगटें-१. प्रकट होने से, प्रकट होने में, २. पैदा हुए। उ० १. यह प्रगटें अथवा द्विज श्रापा। (मा० १।१६६।२) प्रगटे-१. प्रकट हुए, २. प्रकट होने पर। प्रगटेउ-प्रकटे, प्रकट हो गए। उ० प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला। (मा० १।१३२।२) प्रगटेसि-१. प्रकट किया, २. प्रकट हुआ। उ० १. प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। (मा० १।८६।३) प्रगटै-१. प्रकट करता है, २. प्रकट होवे, उत्पन्न हो। उ० १. प्रगटै उपासना, दुरावै दुरबासनाहिं। (क०७।११६) प्रगट्यौ-प्रकट किया, दिखाया, स्पष्ट किया। उ० कौतुक ही मारीच नीच मिस प्रगट्यौ बिसिष प्रतापु। (गी० ६।१)

प्रगल्भं-दे० 'प्रगलभ'। उ० ५. प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। (मा० ७।१०८।५) प्रगलभ-(सं०)-१. ढीठ, दुःसाहसी, उद्दंड, २. बातूनी, बक्की, ३. अच्छी बुद्धिवाला, चतुर, ४. दंभी, घमंडी, ५. तेजस्वी।

प्रगाढ़-(सं० प्रगाढ)-१. कठोर, कठिन, २. बड़ा गहरा, ३. बहुत, अधिक।

प्रघोर-(सं०)-१. अत्यंत कठिन, २ भयंकर, अत्यंत भयावह। उ० २. आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर। (मा० ६।८३)

प्रचंडं-दे० 'प्रचंड'। उ० ८. प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। (मा० ७।१०८।५) प्रचंड-(सं०)-१. भयानक, २. बहुत तीखा, करारा, तेज, ३. प्रबल, ४. असह्य, ५. क्रोधी, ६. क्रूर, कठोर, सख्त, ७. बड़ा, भारी, ८. तेजस्वी, प्रतापवाला। उ० २. रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा। (मा० ३।२०। छं० १)

प्रचंडा-दे० 'प्रचंड'। उ० १. तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा। (मा० ६।४०।४)

प्रचलित-(सं०)-चलता, रायज, जारी, जिसका प्रचलन हो।

प्रचार-(सं०)-१. चलन, रवाज, २. प्रसिद्धि, ३. प्रकाश, ४. विस्तार, फैलाव, ५. उत्तेजन, ललकार, चुनौती, ६. प्रेरणा, ७. प्रवेश, पैठ। उ० ४. राम सुजस कर चहुँ जुग होत प्रचार। (ब० ३६)

प्रचारइ-प्रचार करता है। प्रचार-क. दे० 'प्रचार'। ख. फैलाया, प्रचार किया, ग. ललकारा। उ०क. ६. भँवर कुबरीं बचन प्रचारा। (मा० २।३४।२) प्रचारि-ललकार कर। उ० मानी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट। (क० ६।५२) प्रचारी-दे० 'प्रचारि'। प्रचारू-१. दे० 'प्रचार', २. प्रचार करो। उ० १. ७. इहाँ जथा मति मोर प्रचारू। (मा० २।२८८।२) प्रचारे-उत्तेजित किया, ललकारा। उ० जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे। (गी० ६।७।) प्रचार्‌यो-१. ललकारा २. फटकारा।

प्रचुर-(सं०)-१. अधिक, बहुत, अपार, २. यथेष्ट, ३. चोर, तस्कर। उ० १. जयति पाथोधि पाषान-जलजान कर जातुधान-प्रचुर-हरष हाता। (वि० २६) २. प्रचुर-भव भंजन, प्रणत-जन-रंजन। (वि० १२)

प्रच्छन्न-(सं०)-१. ढका हुआ, छिपा हुआ, २. झरोखा, खिड़की।

प्रजंत-(सं० पर्यंत)-तक, ताईं। उ० श्रवन प्रजंत सरासनु तान्यो। (मा० ६।७१।१)

प्रजंता-दे० 'प्रजंत'। उ० तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। (मा० ७।६१।३)

प्रजउ-प्रजा भी। उ० परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा (मा० २।२५०।४) प्रजा-(सं०)-१. रिआया, रैयत, वह जनसमूह जो किसी राजा के अधीन रहता हो। २. संतान, औलाद। उ० १. प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम। (मा० १।११०)

प्रजापति-(सं०)-१. सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला, सृष्टिकर्ता, ब्रह्मा, २. पिता, ३. आग, ४. सूर्य, ५. मनु, ६. राजा, ७. घर का स्वामी। उ० १. दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक। (मा० १।६०।३)

प्रजारी-(सं० प्रज्वलन)-१. जलानेवाला, २. जलाई, ३. जलाकर, भस्मकर। उ० १. कानन उजार्‌यौ अब नगर प्रजारी है। (क० ५।५)

प्रजार्‌यौ-जलाया, अच्छी तरह जलाया। उ० नगर प्रजार्‌यो सो बिलोक्यो बल कीस को। (क० ६।२२)

प्रजाशन-(सं०)-प्रजा को खानेवाला, अत्याचारी।

प्रजासन-दे० 'प्रजाशन'। उ० द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। (मा० ७।६८।१)

प्रजेश-(सं०)-१. प्रजापति, प्रजा का स्वामी, २. ब्रह्मा, ३. दक्ष प्रजापति।

प्रजेस-दे० 'प्रजेश'। उ० १. दच्छ प्रजेस भए तेहि काला। (मा० १।६०।३)

प्रजेसकुमारी-(सं० प्रजेशकुमारी)-दक्ष प्रजापति की पुत्री सती। उ० एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। (मा० १।६०।१)

प्रखर-(सं०)-१. तेज, तीखा, २. घोड़े-हाथी का बख्तर, ३. पैना, धारदार।

प्रख्यात-(सं०)-मशहूर, विख्यात, नामवर, प्रतिष्ठित।

प्रगट-दे० 'प्रकट'। उ० १. अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकास। (वि० ७४) २. भूमि-भर-भारहर प्रगट परमातमा ब्रह्म नररूप धर-भक्त हेतू। (वि० ५२)

प्रगटइ-(सं० प्रकट)-प्रकट होता है। प्रगटउँ-प्रकट करता हूँ। उ० अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। (मा० १।४६।१) प्रगटत-१. प्रकट होता है, सामने आता है, स्पष्ट होता है। २. प्रकट करते हुए, स्पष्ट करते हुए। उ० १. प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी। (मा० १।३२५।३) २. प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं। (जा० ६५) प्रगटसि-प्रकट होती। उ० प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं। (मा०३।३०।८) प्रगटहिं-प्रकट होती हैं, स्पष्ट होती हैं। उ० प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। (मा० १।३४७।२) प्रगटि-१. उत्पन्न होकर, २. उत्पन्न करके, ३. कहकर, ४. प्रकट करके, ज़ाहिर कर, स्पष्ट कर। उ० १. मानहुँ प्रगटि बिपुल लोहित पुर पठइ दिये अवनी। (गी० ७।२०) २. सभा सिंधु जदुपति जय-जय जनु रमा प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी। (कृ० ६१) प्रगटिहु-प्रकाशित किया। उ० जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु-पिता कर। (पा० ४६) प्रगटी-उत्पन्न हुईं, प्रकट हुईं, जन्म लिया। उ०सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुख-सागर। (जा० ५) प्रगटें-१. प्रकट होने से, प्रकट होने में, २. पैदा हुए। उ० १. यह प्रगटें अथवा द्विज श्रापा। (मा० १।१६६।२) प्रगटे-१. प्रकट हुए, २. प्रकट होने पर। प्रगटेउ-प्रकटे, प्रकट हो गए। उ० प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला। (मा० १।१३२।२) प्रगटेसि-१. प्रकट किया, २. प्रकट हुआ। उ० १. प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। (मा० १।८६।३) प्रगटै-१. प्रकट करता है, २. प्रकट होवे, उत्पन्न हो। उ० १. प्रगटै उपासना, दुरावै दुरबासनाहिं। (क०७।११६) प्रगट्यौ-प्रकट किया, दिखाया, स्पष्ट किया। उ० कौतुक ही मारीच नीच मिस प्रगट्यौ बिसिष प्रतापु। (गी० ६।१)

प्रगल्भं-दे० 'प्रगलभ'। उ० ५. प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। (मा० ७।१०८।५) प्रगलभ-(सं०)-१. ढीठ, दुःसाहसी, उद्दंड, २. बातूनी, बक्की, ३. अच्छी बुद्धिवाला, चतुर, ४. दंभी, घमंडी, ५. तेजस्वी।

प्रगाढ़-(सं० प्रगाढ)-१. कठोर, कठिन, २. बड़ा गहरा, ३. बहुत, अधिक।

प्रघोर-(सं०)-१. अत्यंत कठिन, २ भयंकर, अत्यंत भयावह। उ० २. आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर। (मा० ६।८३)

प्रचंडं-दे० 'प्रचंड'। उ० ८. प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। (मा० ७।१०८।५) प्रचंड-(सं०)-१. भयानक, २. बहुत तीखा, करारा, तेज, ३. प्रबल, ४. असह्य, ५. क्रोधी, ६. क्रूर, कठोर, सख्त, ७. बड़ा, भारी, ८. तेजस्वी, प्रतापवाला। उ० २. रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा। (मा० ३।२०। छं० १)

प्रचंडा-दे० 'प्रचंड'। उ० १. तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा। (मा० ६।४०।४)

प्रचलित-(सं०)-चलता, रायज, जारी, जिसका प्रचलन हो।

प्रचार-(सं०)-१. चलन, रवाज, २. प्रसिद्धि, ३. प्रकाश, ४. विस्तार, फैलाव, ५. उत्तेजन, ललकार, चुनौती, ६. प्रेरणा, ७. प्रवेश, पैठ। उ० ४. राम सुजस कर चहुँ जुग होत प्रचार। (ब० ३६)

प्रचारइ-प्रचार करता है। प्रचार-क. दे० 'प्रचार'। ख. फैलाया, प्रचार किया, ग. ललकारा। उ०क. ६. भँवर कुबरीं बचन प्रचारा। (मा० २।३४।२) प्रचारि-ललकार कर। उ० मानी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट। (क० ६।५२) प्रचारी-दे० 'प्रचारि'। प्रचारू-१. दे० 'प्रचार', २. प्रचार करो। उ० १. ७. इहाँ जथा मति मोर प्रचारू। (मा० २।२८८।२) प्रचारे-उत्तेजित किया, ललकारा। उ० जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे। (गी० ६।७।) प्रचार्‌यो-१. ललकारा २. फटकारा।

प्रचुर-(सं०)-१. अधिक, बहुत, अपार, २. यथेष्ट, ३. चोर, तस्कर। उ० १. जयति पाथोधि पाषान-जलजान कर जातुधान-प्रचुर-हरष हाता। (वि० २६) २. प्रचुर-भव भंजन, प्रनत-जन-रंजन। (वि० १२)

प्रच्छन्न-(सं०)-१. ढका हुआ, छिपा हुआ, २. झरोखा, खिड़की।

प्रजंत-(सं० पर्यंत)-तक, ताईं। उ० श्रवन प्रजंत सरासनु तान्यो। (मा० ६।७१।१)

प्रजंता-दे० 'प्रजंत'। उ० तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। (मा० ७।६१।३)

प्रजउ-प्रजा भी। उ० परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा (मा० २।२५०।४) प्रजा-(सं०)-१. रिआया, रैयत, वह जनसमूह जो किसी राजा के अधीन रहता हो। २. संतान, औलाद। उ० १. प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम। (मा० १।११०)

प्रजापति-(सं०)-१. सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला, सृष्टिकर्ता, ब्रह्मा, २. पिता, ३. आग, ४. सूर्य, ५. मनु, ६. राजा, ७. घर का स्वामी। उ० १. दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक। (मा० १।६०।३)

प्रजारी-(सं० प्रज्वलन)-१. जलानेवाला, २. जलाई, ३. जलाकर, भस्मकर। उ० १. कानन उजार्‌यौ अब नगर प्रजारी है। (क० ५।५)

प्रजार्‌यौ-जलाया, अच्छी तरह जलाया। उ० नगर प्रजार्‌यो सो बिलोक्यो बल कीस को। (क० ६।२२)

प्रजाशन-(सं०)-प्रजा को खानेवाला, अत्याचारी।

प्रजासन-दे० 'प्रजाशन'। उ० द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। (मा० ७।६८।१)

प्रजेश-(सं०)-१. प्रजापति, प्रजा का स्वामी, २. ब्रह्मा, ३. दक्ष प्रजापति।

प्रजेस-दे० 'प्रजेश'। उ० १. दच्छ प्रजेस भए तेहि काला। (मा० १।६०।३)

प्रजेसकुमारी-(सं० प्रजेशकुमारी)-दक्ष प्रजापति की पुत्री सती। उ० एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। (मा० १।६०।१)

प्रज्वलित-(सं०)-१. जलता हुआ, धधकता हुआ, २. खरा, साफ़।
प्रज्ञा-(सं०)-१. बुद्धि, मनीषा, २. ज्ञान, विवेक, ३. सरस्वती, शारदा।
प्रण-(सं०)-१. प्रतिज्ञा, कौल, २. नियम, अटल निश्चय, ३. प्राचीन, पुराना।
प्रणत-(सं०)-१. झुका, नम्र, २. दास, सेवक, ३. अधीन, वश में, शरणागत, ४. भक्त। उ० ३. देहि ह्वै प्रसन्न, पाहि प्रणत पालिका। (वि० १६) ४. सदय-हृदय तपनिरत प्रणतानुकूलम्। (वि० ६०)
प्रणति-दे० 'प्रनति'।
प्रणय-(सं०)-१. प्रेम, प्यार, २. भरोसा, ३. नम्रता, विनय, विनती, ४. श्रद्धा, ५. सुशीलता।
प्रणव-(सं०)-१. ओंकार, ओंकार मंत्र, २. ब्रह्मा, ३. विष्णु, ४. महेश।
प्रणवौं-प्रणाम करता हूँ, सर झुकाता हूँ।
प्रणाम-(सं०)-अभिवादन, नमस्कार।
प्रणामी-प्रणाम करनेवाला।
प्रतच्छ-दे० 'प्रत्यक्ष'। उ० १. मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो। (क० ६।५४)
प्रताप-(सं०)-१. पौरुष, मरदानगी, २. तेज, इक़बाल, ३. गर्मी, ताप, ४. महिमा, ५. ऐश्वर्य, ६. प्रखरता, प्रचंडता। उ० २. बेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि। (क० ५।६) प्रतापहि-प्रताप को।
प्रतापा-दे० 'प्रताप'। उ० २. सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। (मा० ६।७६।८)
प्रतापी-पराक्रमी, प्रतापवाला, तेजवाला। उ० सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। (मा० ६।२५।४)
प्रतापु-दे० 'प्रताप'। उ० २. बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु। (मा० १।२७४)
प्रतापू-दे० 'प्रताप'। उ० २. प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू। (मा० १।१५।३)
प्रति-(सं०)-१. एक उपसर्ग जो शब्दों के आरंभ में लग कर विपरीत, सामने, बदले या आदि का अर्थ देता है। २. हर एक, प्रत्येक। उ० २. प्रति संवत अति होइ अनंदा। (मा० १।४५।१)
प्रतिउत्तर-(सं० प्रति+उत्तर)-उत्तर का उत्तर, जवाब का जवाब, वादविवाद। उ० प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस। (मा० ६।२३ ङ०)
प्रतिउपकार-उपकार का बदला, नेकी का बदला। उ०प्रतिउपकार करौं का तोरा। (मा० ५।३२।३)
प्रतिकार-(सं०)-१. प्रतीकार, बदला, जवाब, २. चिकित्सा, इलाज, ३. मुक्ति, छुटकारा, उद्धार, ४. वर्जन, निवारण।
प्रतिकूल-(सं०)-१. उलटा, विरुद्ध, विमुख, २. दूसरा किनारा। उ० १. जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल। (मा० १।२७७)
प्रतिकूला-दे० 'प्रतिकूल'। उ० १. जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला। (मा० ७।१२२।८)
प्रतिग्रह-(सं०)-१. दान, २. स्वीकार, ग्रहण।
प्रतिग्राही-(सं० प्रतिग्राहिन्) लेनेवाला, दान लेनेवाला। उ० प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाय। (दो० ५३३)
प्रतिछाँह-प्रतिबिंब, छाँह, छाया। उ० प्रतिछाँह छबि कवि भाखि दै प्रति सों कहै गुरु हौं रि! (गी० ७।१८)
प्रतिछाँहीं-(सं० प्रतिच्छाया)-प्रतिबिंब, परछाहीं। उ० राम सीय सुदर प्रतिछाहीं। (मा० १।३२५।२)
प्रतिज्ञा-(सं०)-१. प्रण, वादा, २. क़सम, सौगंध। उ० १. प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी। (वि० ९३)
प्रतिदिन-रोज़ प्रत्येक दिन। उ० बिहरहिं बन चहुँ ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब। (मा० २।२५१)
पतिपच्छ-बैरी, दूसरे पक्ष का।
प्रतिपच्छी-(सं०)-दूसरे पक्षवाले, शत्रु।
प्रतिपच्छिन्ह-दूसरे पक्षवालों ने, शत्रुओं ने। उ० सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा। (मा० २।१०५।३) प्रतिपच्छी-दे० 'प्रतिपच्छी'।
प्रतिपद-पगपग पर, हर क़दम पर। उ० बिनय छत्र सिर जासु के प्रतिपद पर-उपकार। (स० ५५२)
प्रतिपादक-(सं०)-१. बोधक, ज्ञापक, २. संस्थापक, ३. प्रकाशक, संपादक, ४. निरूपक।
प्रतिपादन-(सं०)-१. संपादन, २. बोधन, ३. निरूपण।
प्रतिपाद्य-(सं०)-१. जिसका प्रतिपादन किया जाय, २. जानने योग्य, जिसका ज्ञान किया जाय। उ० २. प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना। (मा० ७।६१।३)
प्रतिपाल-(सं०)-पोषक, रक्षक, पालन करनेवाला।
प्रतिपालइ-पालता है, पालन करता है। उ० जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक। (मा० ६।२३ च) प्रतिपालउँ-पालता हूँ, पोषता हूँ। उ० एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। (मा०२।१००।४) प्रतिपालहिं-पालते हैं, रक्षा करते हैं। उ० जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं। (मा० ७।१००।१) प्रतिपाला-पालन किया, पाला। उ० प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला। (मा० १४२।४) प्रतिपालि-पालन करके, रक्षा करके। उ० प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं। (मा०२।१५१।छं०१) प्रतिपाली-पाला, पालन-पोषण किया। उ० सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली। (मा० २।५९।२) प्रतिपाल्यौ-पाला, निर्वाह किया। उ० दसरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यौ हुतो जो सकल जग साखी। (गी० ३।१२)
प्रतिपालक-पालनेवाला, रक्षक। उ० बोले बचन नीति प्रतिपालक। (मा० ५।५०।२)
प्रतिपालन-पालन, रक्षा करना, निर्वाह। उ० बहु बिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हीं। (वि० १३६)
प्रतिफल-(सं०)-१. परिणाम, फल, नतीजा, २. प्रतिबिंब, छाया, ३. बदला, प्रतिशोध।
प्रतिबिंब-(सं०)-१. परछाहीं, छाया, प्रतिरूप, २. मूर्ति, प्रतिमा, ३. चित्र, ४. मुकुर, दर्पण, ५. आभा, झलक। उ० १. निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। (मा० ३।२४।२)
प्रतिबिंबनि-१. प्रतिबिंबों में, परछाहियों में, छाया में, २. परछाहियों को। उ० १.हँसे हसत अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई। (गी० १।१६) २. किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि। (गी० १।२८)

प्रतिबिंबु–दे० 'प्रतिबिंब'। उ० १. निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। (मा० २।४७।४)
प्रतिभट–बराबरी का वीर, बराबरी करनेवाला। उ० जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता। (मा० १।१८०।२)
प्रतिभा–(सं०)–बुद्धि, ज्ञान, बुद्धि की तेज़ी या चमक।
प्रतिमा–(सं०) मूर्ति, पुतली, मूरत। उ० सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। (मा० १।२८८।३)
प्रतिमूरति–(सं० प्रतिमूर्ति) प्रतिरूप, अक्स, प्रतिबिंब, परछाहीं। उ०निज पानि मनि महुँ देखि प्रतिमूरति सुरूप निधान की। (मा० १।३२७।३)
प्रतिवाद–(सं०)–खंडन, विरोध।
प्रतिष्ठा–(सं०)–१. मान, इज़्ज़त, आदर, २. स्थापना, प्रतिष्ठापित करना, ३. देवताओं की मूर्ति की स्थापना करना, प्राण-प्रतिष्ठा, ४. ख्याति, प्रसिद्धि, ५. कीर्ति, यश, ६. शरीर, देह, ७. पृथ्वी, ८. यज्ञ की समाप्ति।
प्रतिहत–(सं०)–१. अवरुद्ध, रुका, २. श्रीहत, निराश, हर्षहीन, ३. तिरस्कृत, अपमानित, पतित, ४. समाप्त। उ० ४. सिरकंप, इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत बचन काहु न भावई। (वि० १३६)
प्रतीत–(सं०)–१. ज्ञात, जाना, विदित, २. प्रसिद्ध, विख्यात, ३. प्रसन्न, खुश,।
प्रतीति–(सं०)–१.भरोसा, विश्वास, २.ज्ञान, जानकारी उ० १. सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। (मा० २।७।३)
प्रतीती–विश्वासपात्र, जिस पर भरोसा किया जा सके। उ० गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। (मा० २।६०।२)
प्रतोषीं–(सं० प्रतोष)–संतुष्ट किया, संतोष दिया। उ० राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन।(मा०१।३५७)
प्रत्यक्ष–(सं०)–१. जो सामने हो, स्पष्ट, प्रकट, २. चार प्रमाणों में से एक।
प्रत्याहार–(सं०)–योग के आठ अंगों में एक, इंद्रियनिग्रह।
प्रत्युत–(सं०)–१. बल्कि, वरन्, २. विपरीतता।
प्रत्युत्तर–(सं०)–उत्तर का उत्तर, जवाब का जवाब।
प्रत्यूह–(सं०)–बिघ्न, बाधा, उपद्रव। उ० होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक। (मा० ७।११८ ख)
प्रथक–दे० 'पृथक'।
प्रथम–(सं०)–१. पहला, शुरू का, आरंभ का, २. प्रधान, मुख्य, सर्वश्रेष्ठ। उ० १. सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। (मा० ७।१२७।४) प्रथमहिं–पहले ही। उ० प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। (मा० ७।१२१।२)
प्रथुल–दे० 'पृथुल'।
प्रदं–दे० 'प्रद'। उ०शांतं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशांतिप्रदं। (मा० ५।१। श्लो० १) प्रद–(सं०)–देनेवाला, दाता। उ० तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा। (मा० १।७३।१) प्रदा–(सं०)–देनेवाली, दात्री। 'प्रद' का स्त्रीलिंग। उ० सा मंजुल मंगलप्रदा। (मा० २।१। श्लो० २) प्रदे–'प्रदा' शब्द का संबोधनकारक का रूप। हे देनेवाली! प्रदौ–देनेवाले दोनों। उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगता भक्तिप्रदौ तौ हि नः। (मा० ४।१। श्लो० १)
प्रदक्षिण–(सं०)–पूजन आदि के समय, प्रतिमा, मंदिर या किसी स्थान के चारों ओर घूमना, परिक्रमा।
प्रदक्षिणा–दे० 'प्रदक्षिण'।
प्रदच्छिन–दे० 'प्रदक्षिण'। उ० उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ। (मा० ४।२६)
प्रदच्छिना–दे० 'प्रदक्षिण'। उ० दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम न प्रेम अघाइ। (गी० ३।१७)
प्रदान–(सं०)–१. दान, २. देने की क्रिया, ३. विवाह, शादी, ४. अंकुश।
प्रदीप–(सं०)–१. दीपक, चिराग, २. उजाला, प्रकाश।
प्रदेशं–दे० 'प्रदेश'। उ० ३. रतन जटित मणि मेखला कटि प्रदेशम्। (वि० ६१) प्रदेश–(सं०)–१. देश, भूखंड, २. स्थान, जगह, ३. अंग।
प्रदेस–दे० 'प्रदेश'। उ० १. पुन्य प्रदेस देस अति चारू। (मा० २।१०५।२)
प्रदोष–(सं०)–१. संध्याकाल, दो घड़ी दिन से दो घड़ी रात तक का समय, २. बहुत बड़ा अपराध, ३. दुष्ट, पाजी। उ०१. जातुधान प्रदोष बल पाई। (मा०६।४६।२)
प्रधान–(सं०)–१. मुख्य, श्रेष्ठ, २. मुखिया, ३. ईश्वर, ४. सेनापति। उ० १. करम प्रधान सत्य कह लोगू। (मा० २।६११४)
प्रध्वंसनं–नष्टकर देनेवाला। उ० ब्रह्माम्भोधि समुद्भवं कलिमल प्रध्वंसनं चाव्ययं। (मा० ४।१। श्लो० २)
प्रन–दे० 'प्रण'।
प्रनत–दे० 'प्रणत'। शरणागत। उ० ३. कहेसि पुकारि प्रनतहित पाही। (मा० ३।२।५) प्रनतनि–भक्तों, शरणागतों। उ० सरनागत आरत प्रनतनि को दै दै अभयपद ओर निबाहैं। (गी० ७।१३) प्रनतपाल–शरण में आए की रक्षा करनेवाला। उ० प्रनतपाल, कृपालु पतित-पावन नाम। (वि० ७७)
प्रनति–(सं० प्रणति)–प्रणाम, नमस्कार।
प्रनमामि–प्रणाम करता हूँ। उ० प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं। (मा० ७।१४।१०)
प्रनय–दे० 'प्रणय'। उ० १. प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। (मा० ३।२१।६)
प्रनवउँ–प्रणाम करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। उ० प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें। (मा० १।१४।३) प्रनवौं–दे० प्रनवउँ'।
प्रनाम–दे० 'प्रणाम'। उ० सकृत प्रनाम प्रनत-जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ। (वि० १००)
प्रनामा–दे० 'प्रणाम'। उ० बार बार कर दंड प्रनामा। (मा० ७।११।२)
प्रनामु–दे० 'प्रणाम'। उ० कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। (मा० १।२१५।१)
प्रनामू–दे० 'प्रणाम'। उ० जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। (मा० १।५३।४)
प्रपंच–(सं०)–१. संसार, भवजाल, सृष्टि, २. संसार का जंजाल, ३. विस्तार, फैलाव, ४. झंझट, झमेला, झगड़ा, ५. आडंबर, ढोंग, ६. छल, कपट, ७. माया। उ० २. तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब। (वि० ८४) ४. मोहि सों आनि प्रपञ्च रहा है। (क० ७।१०१) ५. स्वारथ सयानप प्रपञ्च परमारथ। (क० ७।८०) प्रपंचहिं–१. प्रपञ्च

को, प्रपञ्चयुक्त संसार को, २. माया को। उ० २. रचहु प्रपञ्चहि पञ्च मिलि। (मा० २।२६४)
प्रपंची-१. छली, २. ढोंगी, ३. झगड़ालू। उ० १. दूरि कीजै द्वार तें लबार लालची प्रपञ्ची। (वि० २५८)
प्रपंचु-दे० 'प्रपञ्च'। उ० १. विधि प्रपञ्चु गुन अवगुन साना। (मा० १।६।२) ६. प्रेम प्रपञ्चु कि झूठ फुर। (मा० २। २६१)
प्रपुंज-भारी झुंड, बड़ा समूह। उ० बिकसित कमलावली, चले प्रपुञ्ज चंचरीक। (गी० १।३६)
प्रफुलित-(सं० प्रफुल्ल)-खिले हुए, प्रसन्न। उ० निसि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाइ। (ब० २६)
प्रफुल्ल-(सं०)-१.फूला हुआ, खिला, प्रस्फुटित, २.प्रसन्न। उ० १. प्रफुल्ल कंज लोचनं। (मा० ३।४। छं० २)
प्रफुल्लित-प्रसन्न, पुलकित। उ० सुनि पुलक प्रफुल्लित गात। (मा० १।१४५)
प्रबंध-(सं०)-१. इंतजाम, बंदोबस्त, २. एक प्रकार का काव्य जिसमें कथा रहती है। इस प्रकार के काव्य की रचना। ३. बंधन, बँधाव। उ० २. परम पुनीत प्रबंध बनाई। (मा० १।१४०।२)
प्रबरषन-(सं० प्रवर्षण)-एक पर्वत का नाम। उ० कपिहि तिलक करि प्रभुकृत सैल प्रबरषन बास। (मा०७।६६ ख)
प्रबल-(सं०)-१. बलवान, मज़बूत, बली, २. समर्थ, ३. धृष्ट, साहसी, ४. प्रचंड, उग्र। उ० १. प्रबल-भुजदंड-परचंड कोदंडधर। (वि० ४०) ४. प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर। (वि० ४६)
प्रबलता-१. आधिक्य, अधिकता, २. प्रभाव। उ० २. निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि। (मा० १। १३७)
प्रबाल-(सं० प्रवाल)-१. मूँगा, २. नया पत्ता।
प्रबाह-(सं० प्रवाह)-धारा, प्रवाह। उ० प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े। (मा० १।३४०।३)
प्रबाहू-दे० 'प्रबाह'। उ० उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू। (मा० १।३६।५)
प्रबिसहिं-(सं० प्रवेश)-प्रवेश करते हैं, भीतर जाते हैं। उ० एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार। (मा० २। २३) प्रबिसि-प्रवेश करके, भीतर घुसकर। उ० प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। (मा० ५।५।१) प्रबिसे-प्रवेश कर गये, घुसे। उ० पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रबिसे सब नाराच। (मा० ६।६८) प्रबिसेउ-पैठ गया, प्रवेश किया। उ० अस कौतुक करि रामसर प्रबिसेउ आइ निषंग। (मा० ६।१३ ख)
प्रबीन-(सं० प्रवीण)-चतुर, होशियार। उ० सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन। (मा० २।८०)
प्रबीनता-(सं० प्रवीणता)-चतुराई, होशियारी। उ० नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रबीनता। (वि० २६२)
प्रबीना-दे० 'प्रबीन'। उ० सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना। (मा० १।५४।३)
प्रबीनु-दे० 'प्रबीन'।
प्रबीनू-दे० 'प्रबीन'। उ०कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। (मा० १।९।४)
प्रबेस-(सं० प्रवेश)-घुसना, पैसार। उ० करत प्रबेस मिटे दुख दावा। (मा० २।२३६।२)
प्रबेसा-दे० 'प्रबेस'। उ० अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा। (मा० ६।४५।४)
प्रबेसु-दे० 'प्रवेश'। उ० २. निजपुर कीन्ह प्रबेसु। (मा० १।१५४)
प्रबोध-(सं०)-१. जागना, नींद का हटना, २. यथार्थ ज्ञान, पूर्णबोध, ३. सांत्वना, आश्वासन, तसल्ली, संतोष। उ० ३. मोरें मन प्रबोध जेहिं होई। (मा० १।३१।१)
प्रबोधक-(सं०)-जतानेवाला, उपदेशक, ज्ञानदाता। उ० उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी। (मा० १।२१।४)
प्रबोधन-(सं०)-१. जागरण, जागना, २. उपदेश, सीख, सिखाना, ३. सिखाने, शिक्षा देने। उ० ३. लगे प्रबोधन जानकिहि। (मा०२।६०) प्रबोधहि-समाधान को, प्रबोध को। उ० पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ। (मा० १।७३) प्रबोधा-आश्वासन दिया, समझाया-बुझाया। उ० प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। (मा० १।१०६।३) प्रबोधि-समझाकर, सांत्वना देकर। उ० सुनि बिनय सासु प्रबोधि तब रघुबंस मनि पितु पहिं गये। (जा० १८६) प्रबोधिसि-समझाया, धीरज दिलाया। उ० धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी। (मा० २।२०) प्रबोधी-१. समझायी, २. समझाकर, शिक्षा देकर, ३. समझायी हुई, सिखलाई हुई। उ० २. बन उजारि रावनहि प्रबोधी। (मा० ७। ६७।३) प्रबोधे-सांत्वना दी, समझाया। उ० सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। मा० २।३२३।१)
प्रबोधु-दे० 'प्रबोध'। उ० ३.पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। (मा० २।२४४।४)
प्रबोधू-दे० 'प्रबोध'। उ० २. बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू। (मा० २।२६३।४)
प्रभंजन-(सं०)-१. प्रचंड वायु, आँधी, २. तोड़-फोड़, उखाड़-पखाड़, नाश। उ० १. मोह महा घन पटल प्रभंजन। (मा० ६।११५।१)
प्रभंजनजाया-वायु के पुत्र, हनुमान। उ० जीति न जाइ प्रभंजनजाया। (मा० ५।१६।५)
प्रभंजनतनय-दे० 'प्रभंजनजाया'। उ० प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजनतनय विषयवन-दहनमिव धूमकेतू। (वि०५८)
प्रभंजनसुत-दे० 'प्रभंजनजाया'। उ० चला प्रभंजनसुत बल भाषी। (मा० ६।५६।१)
प्रभव-(सं०)-१. उत्पत्तिकारण, जन्महेतु, जिससे पैदा होते हैं, जैसे माता-पिता। २. जन्म, उत्पत्ति, ३. पराक्रम, ज़ोर। उ० १. कपि-केसरी-कस्यप-प्रभव-जगदार्तिहर्ता। (वि० २६)
प्रभा-(सं०)-१. प्रकाश, चमक, उजेला, २. छवि, शोभा, ३. सूर्य का तेज, ४. सूर्य की एक स्त्री। उ० १. प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। (मा० २।६७।३)
प्रभाउ-दे० 'प्रभाऊ'। उ० १. भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा। (मा० १।१३।१)
प्रभाऊ-(सं० प्रभाव)-१. महिमा, माहात्म्य, २. प्रताप, ३. नियम। उ० १. को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। (मा० २।१०६।१)

प्रभाकर-(सं०)-१. सूर्य, २. अग्नि, ३. चंद्रमा, ४. समुद्र, ५. आक का वृक्ष। उ० १. सील सोभा सागर प्रभाकर प्रभाय के। (गी० १।६५)
प्रभात-(सं०)-सवेरा, प्रातःकाल। उ० अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकास। (वि० ७४)
प्रभाता-दे० 'प्रभात'। उ० कासु नसाइहि होत प्रभाता। (मा० ६।६०।३)
प्रभाय-दे० 'प्रभाव'। उ० १. कौन पाप कोप, लोप प्रगट प्रभाय को। (ह० ३१) ३. सील सोभा सागर प्रभाकर प्रभाय के। (गी० १।६५)
प्रभाव-(सं०)-१. असर, महिमा, शक्ति, २. उद्भव, प्रादुर्भाव, ३. प्रताप, तेज, इक़बाल। उ०१. गुरु प्रभाव पालिहि सबहिं। (मा० २।३०५)
प्रभावा-दे० 'प्रभाव'। उ० १. राम नाम कर अमित प्रभावा। (मा० १।४६।१)
प्रभुं-प्रभु को। प्रभु-(सं०)-१. स्वामी, मालिक, २. पालक, रक्षक, ३. भगवान्, ईश्वर, राम, कृष्ण। उ० ३. तुलसिदास प्रभु हरहु भेद-मति। (वि० ७) प्रभुणा-प्रभु ने। उ०यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शंभुना दुर्गमं। (मा० ७।१३१। श्लो० १) प्रभुदासी-विष्णु की दासी। तुलसी। प्रभु-दासी-दास-विष्णु की दासी तुलसी के दास अर्थात् तुलसीदास। उ० नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ। (वि० ४१) प्रभुन्ह-प्रभुओं, स्वामियों। उ० नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ। (मा० १।८९।२) प्रभुहि-प्रभु को, राजा को, स्वामी को। उ० प्रभुहि न प्रभुता परिहरै। (दो० ५१७) प्रभो-हे प्रभु। उ० प्रभोऽप्रमेय वैभवं। (मा० ३।४।३)
प्रभुता-(सं०)-१. बड़ाई, महत्व, २. शासनाधिकार, हुकूमत, ३. वैभव, ४. साहिबी, मालिकपन, ५. सामर्थ्य। उ० १. दे० 'प्रभु'। २. श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि। (दो० २६२)
प्रभुताई-दे० 'प्रभुता'। उ० ५. अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। (मा० ३।२।६)
प्रमथ-(सं०)-शिव के गण। ये भोगी और योगी दो प्रकार के कहे गए हैं। उ० प्रमथनाथ के साथ प्रमथ गन राजहिं। (पा० ११०)
प्रमथनाथ-(सं०)-शंकर, महादेव। उ० दे० 'प्रमथ'।
प्रमथराज-दे० 'प्रमथनाथ'। उ० त्रैलोक-सोकहर, प्रमथराज। (वि० १३)
प्रमदा-(सं०)-१. स्त्री, सुंदरी स्त्री, २. मालकँगनी, प्रियंगु, काकुन। उ० १. प्रेम मगन प्रमदा गन तनु न सम्हारहिं। (जा० १५२)
प्रमाण-(सं०)-१. वह बात जिसके द्वारा कोई दूसरी बात सिद्ध की जाय, सबूत, २. सत्य, सच्चा, यथार्थ, ३. निश्चय, प्रतीति, ५. मर्यादा, थाप, साख, ६. प्रामाणिक बात या वस्तु, ७. इयत्ता, हद, मान, ८. शास्त्र, ९. मूलधन, १०.प्रमाणपत्र, ११.आदेशपत्र, १२.तक, पर्यंत, १३. सच्चाई, सत्यता, १४. अटल। विशेष-न्याय के अनुसार प्रमाण (सबूत) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द-प्रमाण ये चार माने गए हैं।

प्रमाद-(सं०)-१. मतवालापन, नशा, २. असावधानी, ३. अहंकार, गर्व।
प्रमादू-दे० 'प्रमाद'। उ० २. तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू। (मा० २।७७।२)
प्रमान-दे० 'प्रमाण'। उ०२.नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान। (मा० १।२५२) १२. जोजन सत प्रमान लै धावौं। (मा० १।२५३।४) १४. यह प्रमान पन मोरे। (वि० ११२)
प्रमाना-दे० 'प्रमाण'।
प्रमानिक-(सं० प्रामाणिक)-जिसका प्रमाण हो, मानने योग्य, ठीक, सत्य। उ० बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो। (गी० १।१४)
प्रमुख-(सं०)-१. प्रधान, श्रेष्ठ, २. मुखिया, अगुआ, ३. प्रथम, पहला। उ० १. छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका। (वि० ४७)
प्रमुदित-(सं०)-प्रसन्न, आह्लादित, आनंदित। उ० हरषे निरखि बरात प्रेम प्रमुदित हिए। (जा० १३६)
प्रमोद-(सं०)-हर्ष, आनंद, सुख। उ० उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू। (मा० १।३९।५)
प्रमोदु-दे० 'प्रमोद'। उ० प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा। (मा० १।३४९।१)
प्रयच्छ-(सं०)-दीजिए, प्रदान कीजिए। उ० भक्ति प्रयच्छ रघु पुंगव निर्भरामे कामादि दोष रहितं कुरु मानसं च। (मा० ५।१। श्लो० २)
प्रयांति-(सं०)-जाते हैं, प्राप्त होते हैं। उ० प्रयांति ते गतिं स्वकं। (मा० ३।४।छं० ८)
प्रयाग-(सं०)-गंगा और यमुना के संगम पर बसा प्रसिद्ध नगर और तीर्थस्थान। इलाहाबाद। कहा जाता है कि यहाँ गंगा जमुना के संगम पर सरस्वती की प्रच्छन्न धारा मिलती है इसी कारण संगम त्रिवेणी नाम से प्रसिद्ध है। मकर की संक्रांति पर यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। इसे 'तीर्थराज' या 'तीर्थपति' भी कहते हैं।
प्रयागा-दे० 'प्रयाग'। उ० जाना मरमु नहात प्रयागा। (मा० २।२०८।३)
प्रयागु-दे० 'प्रयाग'। उ० जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधिबस सुलभ प्रयागु। (मा० २।२२३)
प्रयाण-(सं०)-जाना, प्रस्थान, गमन।
प्रयान-दे० 'प्रयाण'। उ० रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी। (मा० ५।३५।छं०२)
प्रयास-(सं०)-१. परिश्रम, आयास, श्रम, २. कोशिश, यत्न, ३. इच्छा, ख्वाहिश। उ० १.करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं। (मा० ६।१।३)
प्रयासा-दे० 'प्रयास'। उ० भगति करत बिनु जतन प्रयासा। (मा० ७।११६।४)
प्रयोजन-(सं०)-१. अभिप्राय, उद्देश्य, आशय, २. कार्य, काम, २. उपयोग, व्यवहार। उ० १. हरि तज किमपि प्रयोजन नाहीं। (मा० १।१६२।१)
प्रलंब-(सं०)-लंबा, विशाल। उ०भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा। (मा० १।१०६।३)
प्रलय-(सं०)-संसार का अंत, जगत के नाना रूपों का

प्रकृति में विलीन हो जाना। उ० उदभव पालन प्रलय कहानी। (मा० १।६३।३) प्रलयहुँ–प्रलय में भी। उ० महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं। (मा० ७।९४।३)
प्रलाप–(सं०)–१. व्यर्थ की बकवाद, व्यर्थ बात, बड़बड़, २. वियोग की विशेष अवस्था में उच्चरित व्यर्थ के वचन। उ० २. प्रभु प्रलाप सुनि कान। (मा० ६।६१)
प्रलापी–बकवाद करनेवाला। उ० सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी। (मा० ६।२५।४)
प्रलापु–दे० 'प्रलाप'। उ० १.बिद्यमान रन पाय रिपु कायर करहिं प्रलापु। (दो० ४३६)
प्रवर–(सं०)–१. संतान, संतति, २. गोत्र, वंश, ३. श्रेष्ठ, उत्तम, प्रधान, बड़ा। उ० ३. तांडवित-नृत्य-पर, डमरु-डिमडिम-प्रवर। (वि० १०)
प्रवर्षण–(सं०)–१. वर्षा, २. किष्किंधा के पास के एक पर्वत का नाम, ३. वह स्थान जहाँ पानी विशेष बरसे।
प्रवान–(सं० प्रमाण)–प्रामाणिक, सत्य। उ० मैं पुनि करि प्रवान पितुबानी। (मा० २।६२।१)
प्रवाहँ–प्रवाह में, धारा में। उ० जल प्रवाहँ जल अलि गति जैसी। (मा० २।२३४।४) प्रवाह–(सं०)–१. बहाव, नदी की धारा, धारा, २. प्रवृत्ति, झुकाव।
प्रविसति–(सं० प्रविश्यति)–घुसती है, प्रवेश करती है। उ० केहि मग प्रविसति जाति केहि कहु दर्पन में छाँह। (दो० २४४)
प्रवीण–(सं०)–१. दक्ष, चतुर, निपुण, कुशल, २. अच्छा गाने-बजानेवाला।
प्रवृत्त–(सं०)–१. तत्पर, उद्यत, तैयार, २.लगा हुआ, लीन।
प्रवृत्ति–(सं०)–१. प्रवाह, बहाव, झुकाव, २. वृत्तांत, हाल, ३. संसार के कामों में लगाव, निवृत्ति का उलटा, ४. उत्पत्ति, आरम्भ, ५. प्रवेश, पहुँच, पैठ, ६. इच्छा, ख्वाहिश। उ० ३. वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग रचित मन-दनुज-मय रूपधारी। (वि० ५८)
प्रवेश–(सं०)–१. पहुँच, गति, २. घुस जाना, पैठ, दखल।
प्रवेसु–दे० 'प्रवेश'।
प्रशंसक–(सं०)–प्रशंसा करनेवाला, सराहने या स्तुति करनेवाला।
प्रशंसत–१. प्रशंसा करता है, बड़ाई करती है, २. प्रशंसा करते हुए।
प्रशंसा–(सं०)–बड़ाई, स्तुति, तारीफ, गुण-वर्णन।
प्रशस्त–(सं०)–१. सराहने योग्य,श्रेष्ठ, उत्तम, २. विस्तृत, चौड़ा।
प्रशस्ति–(सं०)–प्रशंसा, स्तुति, बड़ाई।
प्रश्न–(सं०)–१. सवाल, पूछताछ, २. विचारणीय विषय, ३. एक उपनिषद।
प्रसंग–(सं०)–१. संबंध, लगाव, साथ, संग, २. विषय का लगाव, अर्थ की संगति, ३. बात, वार्ता, चर्चा, कथा, ४. उपयुक्त संयोग, अवसर, ५. हेतु, कारण, ६. विस्तार, फैलाव, ७. संसर्ग, संगम। उ० ३. चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ। (मा० १.१२७।४)
प्रसंगा–दे० 'प्रसंग'। उ० १. गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। (मा० १।७।५)
प्रसंगु–दे० 'प्रसंग'। उ० ३. सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। (मा० २।४१।२)
प्रसंगू–दे० 'प्रसंग'। उ० ३. भूप सोचकर कवन प्रसंगू। (मा० २।२११।४)
प्रसंसक–दे० 'प्रशंसक'। उ० बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं। (वि० ३१६)
प्रसंसत–(सं० प्रशंसा)–दे० 'प्रशंसत'। उ० १. सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ। (वि० २३५) प्रसंसहि–प्रशंसा करते हैं। उ० संतत संत प्रसंसहिं तेही। (मा० १।८४।१) प्रसंसि–बड़ाई करके। उ० बहु विधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान। (मा० १।१२० क) प्रसंसी–प्रशंसा की। उ० कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। (मा० १।२८४।२) प्रसंसे–प्रशंसा की। प्रसंसेउ–प्रशंसा की। उ० नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। (मा० १।१६०।१)
प्रसंसा–दे० 'प्रशंसा'। उ० दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी। (मा० २।१३०।२)
प्रसन्नं–प्रसन्न को। उ० सर्वदा सुप्रसन्नम्। (मा० ७।१। श्लो० १) प्रसन्न–(सं०)–१. खुश, हर्षित, २. संतुष्ट, तुष्ट। उ० १. प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। (मा० १। १६४।४)
प्रसन्नतां–प्रसन्नता को। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः। (मा० २।१। श्लो० २)
प्रसन्नता–(सं०)–१. खुशी, हर्ष, २. तुष्टि, संतोष। उ० १. लही नाव पवनज प्रसन्नता, बरबस तहाँ गह्यो गुन मैन। (गी० ५।२१)
प्रसन्नु–दे० 'प्रसन्न'।
प्रसन्ने–प्रसन्नता में, प्रसन्न होने पर। उ० निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने। (वि० ५७)
प्रसव–(सं०)–१. बच्चा जनने की क्रिया, जनन, २. जन्म, उत्पत्ति, ३. बच्चा, संतान, ४. निकलना, बाहर आना। उ० १. ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै। (वि० ८९) ४. अरुन नील पाथोज प्रसव जनु मनिजुत दल समुदाई। (वि० ६२)
प्रसाद–(सं०)–१. दया, कृपा, २. प्रसन्नतापूर्वक दी हुई वस्तु, ३. उच्छिष्ट, जूठन, ४. वह वस्तु जो देवता पर चढ़ाई जाय, ५. देवता या बड़ों आदि को देने पर बची हुई वस्तु, ६. भोजन, रसोई। उ० १. ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। (मा० २।२८३।१) ५. प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं। (मा० २।१२९।१)
प्रसादा–दे० 'प्रसाद'। उ० १. सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा। (मा० १।१२०।२)
प्रसादु–दे० 'प्रसाद'। उ० १. मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए। (मा० १।२९५।४)
प्रसादू–दे० 'प्रसाद'। उ० १.नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। (मा० १।२६।२)
प्रसिद्ध–(सं०)–१. विख्यात, मशहूर, २. अलंकृत, भूषित, ३. यशस्वी, कीर्तिवान, नामवर। उ० १. पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परा वरनाथ। (मा० १।११६)
प्रसिद्धि–(सं०)–१. ख्याति, नामवरी, २. श्रृंगार, बनाव।
प्रसीद–(सं०)–प्रसन्न हो, कृपा करो, प्रसाद दो। उ०

प्रसीद-प्रसीद प्रभो मन्मथारी। (मा० ७।१०८। छं० ६)

प्रसीदति-(सं०)-प्रसन्न होते हैं। उ० तेषां शंभुः प्रसीदति। (मा० ७।१०८। श्लो० ६)

प्रसूति-(सं०)-१. प्रसव, जनन, २. उद्भव, जन्म, ३. उत्पन्न करनेवाली, माता। उ० ३. तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर-प्रेम-प्रसूति। (दो० १५२)

प्रसूती-दे० 'प्रसूति'। उ० १. मंजुल मंगल मोद प्रसूती। (मा० १।१।२)

प्रसून-(सं०)-१. फूल, पुष्प, सुमन, २. उत्पन्न, ३. फल, परिणाम। उ० १. भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग। (वि० १४)

प्रस्तार-(सं०)-१. फैलाव, विस्तार, २. आधिक्य, वृद्धि, ३. पत्तों की सेज।

प्रस्थान-(सं०)-गमन, यात्रा, जाना।

प्रस्थिति-(सं०)-अटलता, स्थिरता, दृढ़ता। उ० रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी। (मा० ५।३५।२)

प्रस्न-दे० 'प्रश्न'। उ० १. कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे। (मा० २।१०७।१)

प्रहरषे-(सं० प्रहर्ष)-अत्यंत प्रसन्न हुए। उ० पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई। (मा० ७।१२।२)

प्रहलाद-दे० 'प्रह्लाद'। उ० वृत्र बलि बाण प्रहलाद मय। (वि० ५७)

प्रहलादू-दे० 'प्रह्लाद'। उ० भगत सिरोमनि भे प्रहलादू। (मा० १।२६।२)

प्रहस्त-(सं०)-रावण का एक पुत्र जिसके हाथ बहुत बड़े थे। उ० सबके बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि। (मा० ६।८)

प्रहार-(सं०)-१. चोट, वार, आघात, मारना, २. मार-काट। उ० १. सनमुख ते करहिं प्रहार। (मा० ३।२०।३)

प्रहारा-दे० 'प्रहार'। उ० १. अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। (मा० ५।४१।३)

प्रहारी-मारनेवाला, प्रहार करनेवाला।

प्रह्लाद-(सं०)-हिरण्यकश्यप का पुत्र एक बड़ा भक्त। इसके पिता ने इसे भक्ति से विमुख करने के लिए बहुत प्रयास किया पर इसे न मोड़ सका। अंत में हिरण्यकश्यप एक दिन तलवार लेकर इसे मारने आया और अपने भगवान् को दिखलाने को कहा। प्रह्लाद ने कहा कि वह सर्वत्र है। इस पर हिरण्यकश्यप ने पूछा कि क्या इस खंभ में भी है? प्रह्लाद ने 'हाँ' कहा। यह सुनते ही हिरण्यकश्यप ने उस खंभे पर प्रहार किया और नरसिंह रूप में भगवान् खंभे में से ही प्रकट हुए। नरसिंह ने हिरण्यकाशिपु को वहीं मार डाला। प्रह्लादपति-नरसिंह भगवान्। उ० प्रह्लादपति जनु बिबिध तनु। (मा० ६।८१। छं० २)

प्राकार-(सं०) प्राचीर, दीवाल, चहारदीवारी।

प्राकृतं-प्रकृत से बद्ध, मनुष्य रूपधारी। उ० प्राकृतं प्रकट परमातमा परम हित। (वि० ५३) प्राकृत-(सं०)-साधारण, प्रकृति के, सांसारिक। उ० कहहु करहु जस प्राकृत राजा। (मा० २।१२७।३) प्राकृतहु-साधारण मनुष्य को भी। उ० सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु। (मा० २।३११)

प्राक्-(सं०) पहले का, अगला, शुरू का।

प्राग-दे० 'प्राक'। उ० प्राग कवन, गुरु-लघु, जगत तुलसी अवर न आन। (स० २८४)

प्राची-(सं०)-पूर्व दिशा, पूरब। उ० बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। (मा० १।१६।२)

प्राचीन-(सं०)-पुराना, पहले का।

प्राज्ञ-(सं)-पण्डित, विद्वान्, प्रज्ञावान।

प्राण-(सं०)-१. पवन, वायु, हवा, २. जीव, जीवन तत्व, जान, ३. शक्ति, पराक्रम, ४.साँस, दम, ५. अत्यंत प्यारा, ६. दस प्राण, ५ प्राण तथा ५ उपप्राण, ५ प्राण--प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। ५ उपप्राण--मीन, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय।

प्राणदाता-जीवनदाता, प्राणरक्षक।

प्राणनाथ-१. स्वामी, नाथ, पति, २. प्रभु, ईश्वर, भगवान्।

प्राणपति-दे० 'प्राणनाथ'।

प्राणबल्लभा-(सं)-प्राणप्यारी, प्रेयसी, प्राणेश्वरी।

प्रात-(सं० प्रातः)-तड़के, सवेरे। उ० प्रात बरात चलिहि सुनि भूपतिभामिनि। (जा० १८२) प्रातक्रिया-प्रातःकाल के कार्य, प्रातःकाल के स्नान संध्या-वंदन आदि। उ० प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ। (मा० १।३५८) प्रातहि-सवेरे ही। उ० ऋषि साथ प्रातहि चले प्रभु दिन ललित लगन लिखाइ कै। (पा० ६२)

प्राता-दे० 'प्रात'। उ० अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। (मा० २।३१।४)

प्रातु-प्रात, सवेरा, तड़का। उ० होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं। (मा० २।३३)

प्रान-दे० 'प्राण'। उ० ४. पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपंचनदा सी। (वि० २२) ६. बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा। (वि० ५४) प्रानप्रिय-१. प्राणों के प्रिय, अत्यंत प्यारे। उ० १. रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। (मा० २।७४।३) प्रानहु-प्राण भी। उ० प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल। (मा० १।२०४) प्रानौ-प्राण भी, जान भी। उ० प्रानौ चलिहैं परिमिति पाई। (कृ० २५)

प्राननाथ-दे० 'प्राणनाथ'। उ० १. प्राननाथ प्रिय देवर साथा। (मा० २।६६।१)

प्रानपति-दे० 'प्राणनाथ'। उ० २. उर धरि उमा प्रानपति चरना। (मा० १।७४।१)

प्रानपियाउ-प्राणप्रिया भी, प्यारी भी। उ० राम जोगवत सीय-मनुप्रिय मनहि प्रानपियाउ। (गी० ७।२५)

प्रानप्रिया-प्रिय स्त्री, प्यारी, प्राणप्यारी। उ० प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी। (मा० २।२५।४)

प्रानबल्लभ-(सं० प्राणवल्लभ)-१. अत्यंत प्रिय, प्राणों से भी प्यारा, २. पति, स्वामी। उ० २. बंधु समेत प्रान बल्लभपद परसि सकल परिताप नसैहैं। (गी० ५।५१) प्रानबल्लभा-प्राणप्यारी, प्राणेश्वरी। उ० पल्लव-सालन हेरी, प्रानबल्लभा न टेरी। (गी०३।१०)

प्राना–दे० 'प्रान'। उ० २. की तनु प्रान कि केवल प्राना। (मा० २।५८।२)
प्रानी–(सं० प्राणी)–व्यक्ति, प्राणवाला। उ० जीवत सब समान तेइ प्रानी। (मा० १।११३।३)
प्राप–(सं० प्रापण)–पाते हैं। उ० संत संसर्ग भय वर्ग पर परमपद प्राप। (वि० ५७)
प्रापति–(सं० प्राप्ति)–लाभ, आमदनी, मिलना, प्राप्ति। उ० रतिन के लालचिन प्रापति मनक की। (क० ७।२०) प्रपतिउ–प्राप्ति भी, मिलना भी। उ० पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमाथ-पथ पाँच। (दो० ३५३)
प्राप्त–(सं०)–१. लब्ध, हस्तगत, मिला, २. उत्पन्न, उपजा, पैदा हुआ, ३. विद्यमान, मौजूद।
प्राप्ति–(सं०)–१. उपलब्धि, मिलना, २. उपार्जन, पैदा करना, ३. प्रवेश, पहुँच, पैठ, ४. उदय, निकलना, पैदा होना, ५. आठ सिद्धियों में से एक, ६. आमदनी, आय। प्राप्त्यै–प्राप्त होने के लिए। उ० श्री मद्रामपदाब्ज भक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम् (मा० ७।१३१।श्लो० १)
प्राप्नोतु–प्राप्त कर।
प्राप्य–(सं०)–१. पाने योग्य, मिलने योग्य, २. गम्य, जहाँ तक पहुँच हो।
प्राबिट–(सं० प्रावृट)–१. वर्षा ऋतु, बरसात, २. बरसना। उ० १. प्राबिट सरद पयोद घनेरे। (मा० ६।४६।५)
प्रारंभ–(सं०)–आरंभ, शुरू, अनुष्ठान।
प्रारब्ध–(सं०)–पूर्व कर्म, भाग्य।
प्रार्थित–(सं०)–वांछित, निवेदित, माँगा।
प्रविट–दे० 'प्राबिट'।
प्रावृट–दे० 'प्राबिट'।
प्रावृष–दे० 'प्राबिट'।
प्रासाद–(सं०)–१. मकान, भवन, २. मंदिर, देवस्थान, ३. राजमहल।
प्रियं–प्रिय को। उ० वंदे ब्रह्म कुलं कलंक शमनं श्री राम भूपप्रियम्। (मा० ३।१।श्लो० १) प्रिय–(सं०)–१. प्यारा, जिससे प्रेम हो, २. मनोहर, सुंदर, ३. प्रियतम, पति, स्वामी, ४. दामाद, जामाता, ५. हित, कल्याण, भलाई। उ० १. राम लखन सम प्रिय तुलसी के। (मा०१।२०।२) ३. प्रिय मनहि प्रान प्रियाउ। (गी० ७।२५) प्रियहि–प्रिय को। उ० सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। (मा० २।८७।३) प्रियौ–प्यारे (दोनों)। उ० शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ। (मा० ४।१। श्लो० १)
प्रियतमा–(सं०)–अत्यंत प्यारी, भार्या। उ० प्रियतमा-पति देवता जिहि उमा रमा सिहाहिं। (गी० ७।२६)
प्रियव्रत–(सं० प्रियव्रत)–ध्रुव का छोटा भाई। उ० लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही। (मा० १।१४२।२।)
प्रिया–(सं०)–प्यारी, पत्नी, स्त्री। उ० गिरजा सर्बदा संकर प्रिया। (मा० १।९८।छं० १) प्रियाउ–प्यारी भी, प्रिया भी। उ० प्रिय मनहि प्रानप्रियाउ। (गी० ७।२५) प्रियाहि–प्यारी को। उ० प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु दै, चले लै चित चोरे। (क० २।२६)
प्रीत–(सं०) प्रीतियुक्त, सप्रेम।
प्रीतम–(सं० प्रियतम)–प्यारा, पति, प्राणवल्लभ। उ० प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो। (वि० २६४)
प्रीतमु–दे० 'प्रीतम'। उ० हृदय न बिदरेउ पङ्क जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु। (मा० २।१४६)
प्रीता–प्यारा, दोस्त, प्रीति-पात्र। उ० हित अनहित मानहु रिपु प्रीता। (मा० ५।४०।४)
प्रीति–(सं०)–प्रेम, स्नेह, प्यार। उ० प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं। (वि० ७६)
प्रीती–दे० 'प्रीति'। उ० सीता देइ करहु पुनि प्रीती। (मा० ६।९।५)
प्रीते–१. प्रीतिवान हुए, २. प्रेमपूर्वक, सप्रेम। उ० २. गुर पद कमल पलोटत प्रीते। (मा० १।२२६।३)
प्रीय–प्रिय, प्यारा।
प्रेक्ष्य–प्रेक्षणीय, देखने योग्य।
प्रेत–(सं०)–१. मरा हुआ, मृतक, २. भूत, पिशाच, विशेष योनि, ३. नरक में रहनेवाला, ४. पुराणों के अनुसार वह कल्पित शरीर जो मनुष्य को मरने के बाद प्राप्त होता है। उ० १. ईति अति भीति-ग्रह-प्रेत-चौरानल व्याधि बाधा समन घोर मारी। (वि० २८)
प्रेतपावक–(सं०) दलदलों और मैदानों में रात को दिखाई देता हुआ लुक जिसे आग समझकर लोग धोखा खाते हैं। उ० उभय प्रकार प्रेतपावक ज्यों धन दुखप्रद स्रुति गायो। (वि० १९९)
प्रेम–(सं०)–अनुराग, स्नेह, प्रीति। उ० प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं। (जा० ९५)
प्रेमा–दे० 'प्रेम'। उ० करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा। (मा० २।३२४।२)
प्रेमु–दे० 'प्रेम'। उ० नेमु प्रेमु संकर कर देखा। (मा० १। ७६।२)
प्रेरइ–(सं० प्रेरणा)–१. प्रेरणा देती है, २. भेजती है। उ० २. रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। (मा०७।११८।४) प्रेरत–१. प्रेरणा देते हैं, प्रेरित करते हैं, २. चलाते हैं, हिलाते हैं। उ० २. रूप निहारत पलक न प्रेरत। (गी० २।१४) प्रेरा–उसकाया, उभाड़ा, प्रेरणा दी। उ० जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा। (मा० ३।२१।३) प्रेरि–प्रेरणा देकर, प्रेरित कर, उसका कर। उ० प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा। (मा० १।५६।३) प्रेरी–प्रेरित किया, प्रेरणा की, प्रेरा, उसकाया, आज्ञा दी। उ० श्रीपति निज माया तब प्रेरी। (मा० १।१२९।४) प्रेरे–प्रेरणा देने से, उसकाने या उभाड़ने से। उ० लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे। (मा० ६।४६। ५) प्रेरेउ–प्रेरणा दी, प्रेरा, उसकाया। उ० मसक पवन प्रेरेउ अपराधी। (वि० १३६) प्रेर्यो–दे० 'प्रेरेउ'। उ० प्रेर्यो जो परम प्रचंड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो। (वि० १३६)
प्रेरक–(सं०)–किसी कार्य में प्रवृत्त या प्रेरणा करनेवाला, जो प्रेरणा देकर कोई कार्यादि करवाए, आज्ञा देनेवाला। उ० तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै। (वि० ८९)
प्रेरण–दे० 'प्रेरणा'।
प्रेरणा–(सं०)–१. कार्य में प्रवृत्त करना, उत्तेजना देना, उभाड़ना, २. दबाव, ज़ोर।

प्रेरित-(सं०)-१. भेजा हुआ, पठाया, २. जिसे किसी दूसरे से प्रेरणा मिली हो, उसकाया गया, ३. जिसे किसी ने आज्ञा दी हो, आज्ञा से। उ० १. कठिन काल प्रेरित चलि आई। (मा० ५।२३।३) ३. तव प्रेरित मायाँ उपजाए। (मा० ५।५६।२)

प्रोक्तं-(सं०)-कहा हुआ, कहा गया, कहा। उ० रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये। (मा० ७।१०८। श्लो० ६)

प्रौढ़-(सं० प्रौढ)-१. बड़ा, अवस्था में अधिक, २. पुष्ट, मज़बूत, ३. तगड़ा, मोटा, ४. साहसी, हिम्मती, ५. जवानी और बुढ़ापे के बीच की अवस्था, ६. गूढ़, रहस्यमय, गंभीर, ७. दृढ़, अटल। उ० १. प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। (मा० ७।११०।३) ७. प्रौढ़ अभिमान चितवृत्ति छीजै। (वि० ४७)

प्रौढ़ि-अभिमानयुक्त कथन, ढिठाई। उ० प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। (मा० १।२३।२)

प्लवंग-(सं०)-१. बंदर, मर्कट, बानर, २. दादुर, ३. हरिन, ४. सूर्य का सारथी।

प्लव-(सं०)-१. नाव, नौका, डोंगी, २. मेंढक, ३. बंदर, ४. चांडाल, ५. बगुला, ६. सारस। उ० १. यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां। (मा० १। श्लो० ६)

फ

फंक-(?)-कवर, ग्रास।

फग-(?)-१. कीट, कीड़ा, पतंग, २. फंदा, बंधन, ३. लफंगा, झूठा, गप्पी, ४. अनुराग, प्रेम। उ० २. बड़े बरजोर परे फँग पाए। (क० ६।३७) ३. हौं भले नग-फँग परे गढ़ीबै। (कृ० ११)

फंद-(सं० बंध)-१. पाश, बंधन, फंदा, जाल, २. छल, धोखा, ३. कष्ट, दुःख, ४. रहस्य, मर्म, गुप्त भेद। उ० १. मनहुँ मनोभवँ फंद सँवारे। (मा० १।२८६।१)

फँदावत-(सं० बंध)-फँसाते हैं, फंदे में डालते हैं। उ० फंद जनु चंदनि चनज फँदावत। (जा० १२२)

फँसौरि-(सं० पाश)-फंदा, पाश। उ० पाँचसर सुफँसौरि। (ग० ७।१८)

फगुआ-(सं० फाल्गुन)-१. होली, होली का त्यौहार, २. एक दूसरे पर रंग आदि डालना। उ० २. लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ। (गी० ७।२२)

फजीहति-(अर० फ़ज़ीहत)-दुर्दशा, दुर्गति। उ० अंत फजीहति होहिंगे गनिका के से पूत। (दो० ६५)

फटत-(सं० स्फटन)-फटता है, चिरता है, खंड-खंड होता है। उ० तिमिर-तोम फटत। (वि० १२६) फटे-१. फटने पर, २. फटा, चिर गया, खंड-खंड हो गया। फटैं-फट जाते हैं, तितर-बितर हो जाते हैं। उ० लिए नाम फटैं मकरी के से जाले। (ह० १७) फट्यौ-फटे, फटे हुए। उ० कत बिमोह लट्यौ फट्यौ गगन मगन सियत। (वि० १३२)

फटिक-(सं० स्फटिक)-संगमरमर, सफ़ेद पत्थर। उ० फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। (मा० ५।२६।४)

फण-(सं०)-साँप का फन, भोग।

फणिक-(सं०)-१. साँप, सर्प, २. साँप का।

फणींद्र-(सं०)-साँपों का राजा, १. शेषनाग, अनंत, २. बासुकी नाग। उ० १. ब्रह्मा शंभु फणींद्र, सेव्यमनिशं वेदांत वेद्यं विभुम्। (मा० ५।१।श्लो० १)

फणी-(सं० फणिन्)-सर्प, साँप।

फन-(सं० फण)-साँप का फण, भोग। उ० जैसो अहि जासु गई मनि फन की। (गी० २।७१)

फनि-(सं० फणी)-साँप, सर्प। उ० राम-नाम महा मनि फनि जगजाल रे। (वि० ६७) फनिहिं-साँप को, सर्प को। उ० तुलसी मनि निज दुति फनिहि ब्याधहि देउ दिखाइ। (दो० ३१५)

फनिक-दे० 'फणिक'। उ० १. तुलसी मनहुँ फनिक मनि ढूँढ़त निरखि हरषि हिय धायो। (गी० २।६८) फनिकन्ह-सर्पों ने, साँपों ने। उ० फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोई। (मा० १।३५८।२) फनिकि-(सं० फणिक)-सर्पिणी, नागिन।

फनिकु-दे० 'फणिक'। उ० १. मनि बिनु फनिकु जिए दुख दीना। (मा० २।३३।१)

फनी-(सं० फणिन्)-साँप, सर्प। उ० लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी। (गी० ७।५)

फनीश-(सं० फणीश)-सर्पों के राजा, १. शेषनाग, अनंत २. बासुकि नाग।

फनीस-दे० 'फणीश'। उ० १. बरनि न सकइ फनीस सारदा। (मा० ७।२२।३)

फबि-(सं० प्रभवन)-१. छवि, शोभा, २. अनुकूल। उ० १, अधन, अगुन, आलसिन को पालिबो फबि आयो रघुनायक नवीन को। (वि० २७४) १. कहि न जाइ जो निधि फबि आई। (कृ० २५)

फबी-१. शोभा, २. सुंदर, ३. फबना, सजना, ४. मज़बूत।

फबैं-शोभा देते हैं, सुंदर लगें या लगते हैं। उ० तुलसी तीनिउ तब फबैं। (दो० २८५)

फर-दे० 'फल'। उ० १. बिनु फर बान राम तेहि मारा। (मा० १।२१०।२) ४. जग-जय-मद निदरे सिहर, पायेसि फर तेउ। (पा० २६) ५. असनु अमिअ सम कंद मूल फर। (मा० २।१४०।३) फरनि-१. फलनेवाला, २. 'फल' का बहुवचन, फलसमूह, ३. फलने, फलना। उ० ३. उकठे बिटप लागे फूलन फरन। (वि० २५७) फरनि-१.

फलों को, २, फलाव, फल आना, ३. फलों से। उ० १. दे० 'फरत उ० ३.'। २.तरु फर्‌यौ है अदभुत फरनि। (गी० १।२४) ३. फिरि सुख-फरनि फरी। (गी० १।५५)
फरइ–(सं० फल)–फलता है। उ० फरइ कि कोदव बालि सुसाली। (मा० २।२६१।१) फरत–१. फलता है, फल देता है, २. फलते समय, ३. फल देता, फलता। उ० १. बिनु ही ऋतु तरुवर फरत। (दो० १७३) २. फरत करिनि जिमि हतेउ समूला। (मा० २।२६।४) ३. अभिमत फरनि फरत को। (गी० ६।१२) फरहिं–फलते हैं। उ० फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। (मा० ७।२३।१) फरहिं–फलता है। फरि–फलकर। फरी–१. फली, फल लगे, २. फली हुई, ३. फलती हुई। उ० १. जनक-मनोरथ कलपबेलि फरी है। (गी० १।६०) फरे–फले, फल लगे। उ०कलप तरु रूख फरे, री। (गी० १।७४) फरै–फलेगा, फल लगेगा। उ० सुरतरु सोउ बिष फरनि फरै। (वि० १३७) फरैगो–फलेगा। उ० कुटिल कटुक फर फरैगो तुलसी करत अचेत। (दो० ४५२) फरो–फला, फला है। उ० मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो। (वि० २२६) फर्‌यो–फला, फरा। उ० जनु सुभग सिगार-सिसु-तरु फर्‌यो है अदभुत फरनि। (गी० १।२४)
फरकइ (सं० स्फुरण)–फड़का करती है, काँपती है। उ० दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी। (मा० २।२०।३) फरकत–१. काँपता, फड़कता, हिलता, २. फड़क रहे थे, ३. फड़कते हैं, फड़कता है। उ० १. अरुन नयन चढ़ि भ्रुकुटि, अधर फरकत भए। (पा० ६८) २. फरकत अधर कोप मन माहीं। (मा० १।१३६।१) फरकन–फरकने, फड़फड़ाने। उ० मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे। (मा० १।२३६) फरकहिं–फड़कते हैं, फड़क रहे हैं। उ० फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू। (मा० २।२२५।१) फरकि–फड़क, फड़फड़ा। उ० फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला। (मा० ४।६।७) फरके–फड़के, फड़कने लगे। उ० फरके बाम बाहु लोचन बिसाल। (गी० ३।६) फरकेउ–फड़क उठे। उ० फरकेउ बाम नयन अरु बाहू। (मा० ६।१००।३)
फरसा–(सं० परशु)–फावड़ा, कुल्हाड़ी। उ० काल कराल नृपालनके धनुभंग सुने फरसा लिए धाए। (क० १।२२)
फरहार–दे० 'फलहार'। उ० पूजि पितर सुर अतिथि, गुर लगे करन फरहार। (मा० २।२७६)
फराक (१)–(फ़ा० फ़राख़)–१. खुली जगह, २. मैदान।
फराक (२)–(फ़ा० फ़र्क़)–अलग, हटकर। उ० दूरि फराक रुचिर सो घाटा। (मा० ७।२६।१)
फरित–(सं० फलित)–फला, फला हुआ। उ० बिलसति महि कल्पवेलि मुद-मनोरथ-फरित। (वि० १६)
फरु–दे० 'फल'। उ० २. नाम-प्रेम चारि फलहू को फरु है। (वि० २५५)
फलँग–(सं० प्लवन)–कूदने की क्रिया। उ० लगि फलँग फलाँगहू तें घाटि नभतल भो। (ह० ५)
फल–(सं०)–१. हथियार की नोक या धार या उसका वह प्रधान भाग जो तेज़ या नोकीला रहता है। २. लाभ, ३. कर्मभोग, ४. परिणाम, नतीजा, ५. पेड़-पौधों का फल, मेवा, फलहरी, ६. चार फल—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, ७. चौथा, चार। उ० ५. बारि अधार मूल फल त्यागे। (मा० १।१४४।१) ६.राम नाम काम तरु देत फल चारि, रे। (वि० ६७) ७. मुनिफल बसु हर भानु। (दो० ४५६)
फलनि–फल का बहुवचन। उ० सुखमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली। (पा० १३६) फलहू–फल भी। दे० 'फल'। उ० ६. नाम-प्रेम चारि फलहू को फरु है। (वि० २५५)
फलइ–१. फलते हैं, फल देते हैं, २. फल ही। उ० २.एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं। (मा० ६।६०।छं० १) फलत–१. फलने के समय, २. फलता है। उ० १. फूलत फलत भयउ बिधि बामा। (मा० २।२६।२) फलहिं–फलते हैं। उ० फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। (मा० २।१३७।३) फली–(सं० फल)–१. बीजदार फल, छीमी, २. फलयुक्त हुई। उ० २. सुखमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली। (पा० १३६) फलें–फलते हैं। फलैं–१. फलयुक्त हों, २. सफल होते हैं, सफल मनोरथ होते हैं, ३. फलते हैं। उ० २. फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल, खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं। (क० ७।१७१)
फलदायक–(सं०)–फल देनेवाला। उ० फलदायक फल चारि के दसरथ-सुत चारी। (गी० १।६)
फलहार–(सं० फलाहार)–फलों का भोजन।
फलाँग–दे० 'फलँग'।
फलित–(सं०)–१. फला हुआ, २. संपन्न, पूर्ण। उ० १. फलित बिलोकि मनोरथ बेली। (मा० २।१।४)
फलु–दे० 'फल'। उ० ४.तस फलु उन्हहि देउँ करि साका। (मा० २।३३।४)
फहम–(अर० फ़हम)–१. अनुमान, अटकल, २. ज्ञान, विचार। उ०२. मोहिं कछु फहम न तरनि तमी को। (वि० २६५)
फहराहीं–(सं० प्रसरण)–१. फहराते हैं, उड़ते हैं, २. प्रसन्नता से रोमांचित होते हैं। उ० १. सरब करहिं पाइक फहराहीं। (मा० १।३०२।४)
फाँस–(सं० पाश)–१. बंधन, जाल, पाश, २. काँटा। उ०१. १. माधव ! मोह फाँस क्यों टूटै ? (वि० ११५)
फागु–(सं० फाल्गुन)–होली, फगुआ, फागुन में होनेवाला एक प्रसिद्ध त्यौहार। उ० नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु। (गी० ७।२१)
फाटत–(सं० स्फाटन)–फट जाता है, खंड-खंड होता है। उ० नहिं फाटत हियो। (वि० १३६) फाटहु–फट जाय, फटे। उ० हिय फाटहु, फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम। (दो० ४१) फाटी–फट जाता है। उ० जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी। (मा० ६।६७।१)
फाबी–(सं० प्रभा)–फब गई, ठीक बैठ गई, सुंदर लगी, अच्छी लगी। उ० कुमतहिं कसि कुबेषता फाबी। (मा० २।२५।४)
फारहिं–(सं० स्फाटन)–फाड़ते हैं। उ० धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अतावरि मेलहीं। (मा० ६।८१।छं०

१) फारै—१. फाड़डाले, २. फाड़ेगा, ३. फाड़ता है । उ० १. चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारै । (क० ७।१०४)

फिर—(सं०प्रेरणा)—१.पुनः, पुनि, पीछे, इसके बाद, २. एक बार और, फिर, दोबारा, लौटकर, घूमकर, उलटकर। ४. लौट, घूम। फिरइ—लौट आवे, लौटे । उ० फिरइ त होइ प्रान अवलंबा । (मा० २।८२।३) फिरउँ—फिरूँ, लौट आऊँ। फिरत—१. फिरता है, डोलता है, चलता है, विचरता है, २. लौटने में, फिरने में । उ०१. फिरत सनेह मगन सुख अपनें । (मा० १।२५।४) २. फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। (मा० १।८६।३) फिरती—लौटती, आती। उ० फिरती बार मोहिं जो देबा। (मा० २।१०२।४) फिरहीं—१. फिरते हैं, घूमते है, २. लौटते हैं । उ०तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं । (मा० ३।१६।५) फिरहु—१. फिरो, घूमो, २.लौट जावो, लौटो । उ० २. फिरहुत सब कर मिटै खभारू। (मा० २।६७।२) फिरा—१. फलट गया, २. घूमा, ३. लौट गया । उ० १. फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। (मा० २।२०।२) फिरि (१)—लौटकर, फिरकर। उ० पुनि फिरि भिरे प्रबल हनुमाना। (मा० ६।६५।३) फिरिअ—फिरे, लौटै। उ० जौ एहि मारग फिरिअ बहोरी। (मा० २।११८।१) फिरिय—लौट जाइए। फिरिहहिं—फिरेंगे, घूमेंगे, भटकेंगे। उ० फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी। (मा० १।४३।४) फिरिहि—फिरेगी, उलटेगी, बदलेगी। उ० फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। (मा० २।६८।४) फिरिहैं—लौटेंगे। उ० फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं। (गी० २।७०) फिरें—१. लौटे, घूमे, २. फिर जाने पर। उ०२. समय फिरें रिपु होहिं पिरीते। (मा०२।१७।३) फिरे—१. लौटे, २. लौटने पर। उ० १. फिरे सराहत सुंदरताई। (मा० २।१०८।४) फिरेउँ—फिरा, फिरता रहा, घूमता रहा। उ०सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला। (मा० ४।६।६) फिरेउ—फिरे, लौटे। उ० फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई। (मा० २।६६।४) फिरेहु—लौटना, लौट आना। उ० रथ चढ़ाइ देखाइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि। (मा० २।८१) फिरै—१. फिरे, २.फिरना। उ० २.जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं। (मा० १।३४०।२) फिरौ—१. फिरा, लौटा, २. विमुख । उ० २. जो तोसों हो तौ फिरौ मेरो हेत हिया रे। (वि० ३३)

फिरि (२)—(सं प्रेरणा)—पुनः, फिर। उ० अहुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। (मा० २।१४३।३)

फीक—दे० 'फीका'। उ० २. तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारत फीक। (दो० ४६६)

फीका—(सं० अपक्व ?)—१. नीरस, स्वादहीन, २. जिसका रंग चटक न हो, धूमिल, ३. जो अच्छा न लगे। उ० १. सरस होउ अथवा अति फीका। (मा० १।८।६) फीकी—'फीका' का स्त्रीलिंग। उ०३. तिनहिं कथा सुनि लागहि फीकी। (मा० १।६।३) फीके—दे० 'फीका'। उ० ३. जोरे नये नाते नेह फोकट फीके। (वि० १७६)

फीको—दे० 'फीका'।

फीरोजा—(फ़ा० फ़ीरोज़ा)—हरापन लिए नीले रंग का बेशकीमत पत्थर।

फुंकरत—(सं० फूत्कार)—१. फूत्कारता है, २. फूत्कारते हुए, फुफकारते हुए। उ० २. तब चले बान कराल फुंकरत जनु बहु ब्याल। (मा० ३।२०।१)

फुंकार—(सं० फूत्कार)—फुफकार, 'फू' 'फू' का शब्द।

फुर—(सं० स्फुरण)—सत्य, यथार्थ, ठीक, साँच। उ०बामदेव फुर, नाम काममद मोचन। (पा०५८) फुरे—सच्चे। उ० जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन रिपु माने फुरे। (मा० ६।६६। छं०१)

फुरि—सचमुच, सच। उ० कब ऐहैं मेरे लाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता। (गी० ६।१६)

फुरी—दे० 'फुरि'।

फुरै—सच्चे, सत्य। उ० जासों सब नातो फुरै तासों न करी पहचानि। (वि० १६०)

फुलवाई—(सं० फुल्ल)—उपवन, फुलवाड़ी। उ० गए रहे देखन फुलवाई। (मा० १।१५।२)

फुलाई—(सं० फुल्ल)—फुलाकर। उ० बचन कहहिं सब गाल फुलाई। (मा० ६।६।३) फुलाउब—१. फुलाऊँगा, २. फुलाकर, ३. फुलाना। उ० ३. हँसब ठठाइ फुलाउब गाला। (मा० २।३५।३) फुलाए—फुलाया, फुला लिया। उ० हरषित खगपति पंख फुलाए। (मा० ७।६३।१)—फुलावौं—प्रफुल्लित करूँ। उ०तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं। (गी० १।१५)

फुल्ल—(सं०)—१. प्रसन्न, २ फूला हुआ।

फूँक—(अनु०फू फू)—१. फूँकना, २. फूँककर, उ०२.मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। (मा० २।२३२।२) फूँकि—फूँककर, फूँक से। उ० चहत उड़ावन फूँकि पहारू। (मा० १।२७३।१)

फूट—(सं० स्फुटन)—१. मेल का न होना, २. फूट गया, खंडित हो गया। उ० २. कूबर टूटेउ फूट कपारू। (मा० २।१६३।३) फूटहिं—फूटते हैं, फूट रहे हैं। उ० रावन आगें परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुंड। (मा० ६।४४) फूटहु—१. फूट जावे, फूटे, २. फूटो। उ० १. हिय फाटहु फूटहु नयन जरउ सो तन केहि काम। (दो० ४१) फूटि—फूटकर, खंडित होकर, टूटकर। उ० महा वृष्टि चलि फूटि किआरीं। (मा० ४।१५।४) फूटिहि—फूटेगी, नष्ट हो जायगी। उ० अवस राम के उठत सरासन टूटिहि। गवनिहि राज समाज नाक असि फूटिहि। (जा० ६८) फूटी—१. फूट गई, २. फूटने का, आँख फूटने का। उ० २. लोकरीति फूटी सहैं आँजी सहै न कोइ। (दो० ४२३) फूटे—१. फूट गए, टूट गए, २. अपने पक्ष से फूटकर शत्रु-पक्ष से मिल गए, ३. बेधकर, छेदकर, पारकर, ४. अपना चिह्न बना सके। उ० ४. जिन्ह के दसन कराल न फूटे। (मा० ६।२५।३) फूटेहु—फूटे हुए या फूटी हुई भी। उ० फूटेहु बिलोचन पीर होत हितकरिये। (वि० २७१)

फूरति—(सं० स्फुरण)—स्फुरित होती है, विकसित होती है। उ० नील नलिन स्याम, सोभा अगनित काम, पावन हृदय जेहि उर फूरति। (कृ० २८)

फूल—(सं० फुल्ल)—१. पुष्प, कुसुम, २. खुशी, प्रफुल्ल होने का भाव, ३. गर्व, घमंड। उ० १. सम जम नियम फूल फल ग्याना। (मा० १।३७।७) ३. सबहि भाँति सब कहँ सुखद दलनि फलनि बिनु फूल। (दो० ५२६)

फूलइ–(सं० फुल्ल)–१. फूलता है, २. गर्व से भर जाता है, ३. प्रसन्न होता है। उ० १. फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद। (मा० ६।१६ ख) फूलत–१. फूलता है, २. फूलते हुए, ३. फूलने के समय। उ० ३. फूलत फूल भयउ बिधि बामा। (मा० २।५४।२) फूलहिं–फूलते हैं, पुष्पित होते हैं। उ० फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। (मा० २।१३७।३) फूला–१. फूल गया, पुष्पित हो गया, फूल चुका, २. फूल, पुष्प। उ० १. मोर मनोरथु सुरतरु फूला। (मा० २।२४।४) २. जनु सनेह सुरतरु के फूला। (मा० २।५३।२) फूलि–१. फूलकर, २. गर्व कर, ३. प्रसन्न होकर। फूली (१)–१. फूल गई, २. गर्व से भर गई, ३. फूलकर, ४. गर्व से भर कर। उ० ४. जेहि दिसि बैठे नारद फूली। (मा० १।१३५।१) फूले–१. फूल गए, पुष्पित हुए, २. गर्व से भर गए, ३. फूले हुए, फूलकर, ४. गर्व से भर कर, घमंड में फूलकर, ५. प्रसन्न। उ० १. सरनि सरोज बिटप बन फूले। (मा० २।१२४।४) ५. जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए। (वि० ८०) फूलेउ–फूला हो। उ० मनहुँ काम आराम कल्पतरु फूलेउ। (जा० १४०)

फेंट–(?)–फेरा, घुमाव, २. कमरबंद, कटिबंधन, ३. पटुका, ४. पल्ला, ५. कमर में लपेटा गया धोती का भाग। उ० ५. सघन चोर मन मुदित मन धनी गही ज्यों फेंट। (दो० २०७)

फेकरहिं–(?)–रोते हैं, चिल्लाते हैं। उ० कटु कुठायँ करटा रटहिं फेकरहिं फेरु कुभाँति। (प्र० ३।१।५) फेकरि–रोकर, चिल्लाकर। उ० फेकरि फेकरि फेरु फारि-फारि पेट खात। (क० ६।४६)

फेन–(सं०)–झाग, गाज, बुलबुलों का समूह, समुद्रकफ़, जल-विकार। उ० सुभग सुरभिमय फेन समाना। (मा० १।३५६।१) विशेष–फेन बहुत कोमल होता है पर जो नमुचि असुर वज्र से भी नहीं मरता था इंद्र द्वारा समुद्र के फेन से मारने पर ही मर गया था। उ० अजर अमर कुलिसहुँ नाहिन वध सो पुनि फेन मर्‌यो। (वि० २३६)

फेनु–दे० 'फेन'।

फेनू–दे० 'फेन'। उ० जलधि अगाध मौलि बह फेनू। (मा० १।१६७।४)

फेर–(सं० प्रेरण, हिं० फेरना)–१. पुनः फिर, बहुरि, २. चक्कर, घुमाव, ३. कठिनाई, ४. ओर, तरफ। उ० ४. प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर। (मा० ७।१। दो० २)

फेरइ–(सं० प्रेरण)–फेरता है, घुमाता है। उ० सुरतरु सुर बेलि पवन जनु रुख फेरइ। (जा० १२१) फेरत–१. फेरते हैं, घुमाते हैं, २ फेरते हुए, फेरने से, ३. लौटाते हैं। उ० १. कर कमलनि धनु सायक फेरत। (मा० २।२३६। ४) २. चले भाजि गज बाजि फिरत नहिं फेरत। (पा० ११६) फेरति–फेरती है, लौटाती है। उ० फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। (मा० २।२३४।३) फेरि–फिर, पुनः। उ० कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं। (मा० ६।४१।४) फेरिअ–फेरिए, लौटा दीजिए। उ० फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी। (मा० २।८२।१)

फोकट–(सं० वल्कल)–१. बिना मूल्य का, व्यर्थ, २. झूठा, असत्य, ३. सारहीन। उ० २. जोरे नये नाते नेह फोकट फीके। (वि० १७६)

फोरइ–(सं० स्फोटन) फोड़ता है, टूक टूक करता है। फोरहिं–फोड़ते हैं। उ० फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढ़ुक पहार। (दो० ५६०) फोरा–फोड़ दिया। उ० राखा जिअत आँखि गहि फोरा। (मा० ६।३६।६) फोरि–फोड़ कर, तोड़कर। उ० पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा। (मा० ६।४१।३) फोरी–१. फोड़ दी, २. फोड़नेवाली। उ० २. पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी। (मा० २।१४।४) फोरै–१. फोड़े, टुकड़े टुकड़े करे, २. फोड़ने। उ० २. फोरै जोगु कपारु अभागा। (मा० २।१६।१)

फौज–(अर० फ़ौज)–१. सेना, २. झुंड, समूह। उ० १. अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई। (मा० ६।७६।६)

ब

बंचेहु–(सं० वंचन)–ठगा, ठगा है। उ० बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। (मा० १।१३७।३)

बंजुल–(सं० वंजुल)–१. बेंत, २. गुच्छा। उ० १. बंजुल मंजु, बकुल कुल सुरतरु, ताल, तमाल। (गी० २।४७)

बँटावन–(सं० वितरण)–बँटानेवाला, बाँट लेनेवाला। उ० बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो का को? (गी० ६।७)

बँटैया–बटानेवाला, सहयोगी, साझेदार। उ० तात न मात न स्वामि सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बँटैया। (क० ७।५१)

बंद (१)–(फ़ा०)–१. बंधन, क़ैद, २. प्रतिज्ञा, क़ौल, क़रार, ३. यंत्र, ताला, ४. अवयव, अंग, ५. नस, नाड़ी, ६. आधार, सहारा।

बंद (२)–(सं० बंध)–भाग, शाखा। उ० नगर-रचना सिखन को बिधि तकत बहु बिधि बंद। (गी० ७।२३)

बंदइ–(सं० वंदन)–वंदना करते हैं, झुकते हैं, नमस्कार करते हैं। उ० टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। (मा० १।२८१।३) बंदउँ–बंदना करता हूँ, प्रणाम करता हूँ। उ० बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ। (मा० १।३ क) बंदत–प्रणाम करता है, बंदना करता है। उ० मनसा वाचा कर्मना, तुलसी बंदत ताहि। (वै० २६) बंदि (१)–(सं० वंदन)–बंदना करके,

पूजकर। उ० बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। (मा० १।२८७।४) बंदिअ–बंदना करते हैं, आदर करते हैं। उ० दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग। (मा० १।१० क) बंदे–बंदना की, स्तुति की। उ० पुनि पुनि पारबती पद बंदे। (मा० १।९९।१)

बंदन–(सं० वंदन)–१. सिंदूर, ईंगुर, २. बंदना, प्रणाम। उ० १. बंदन बंदि ग्रंथि बिधि करि ध्रुव देखेउ। (मा० १४६)

बंदनवार–(सं०वंदन+माला)–तोरण, द्वार पर बाँधी जानेवाली फूल-पत्तों की माला। उ० बंदनवार बितान पताका घर घर। (जा० २०६)

बंदना–(सं० वंदन)–नमस्कार, प्रणाम, स्तुति।

बंदनिवारे–दे० 'बंदनवार'। उ० रचे रुचिर बर बदनिवारे। (मा० १।२८९।१)

बंदनीय–(सं० वंदनीय)–वंदना करने योग्य, सराहनीय। उ० बंदनीय जेहिं जग जस पावा। (मा० १।२।३)

बंदारु–(सं० वंदारु)–बंदना करनेवाला। उ० बहुल बंदारु-वृंदारका वृंद-पद-द्वंद। (वि० ५४)

बंदि (२)–(सं० वंदी)–क़ैद किया हुआ, मुजरिम।

बंदि (३)–(सं० वंदी)–भाट, राजाओं की बड़ाई करनेवाली एक जाति। उ० बंदि मागधन्हि गुन गन गाए। (मा० १।३५८।३) बंदिन्ह–बंदी जनों ने, भाट लोगों ने। उ० तब बिदेहपन बंदिन्ह प्रगटि सुनायउ। (जा० ९८)

बंदिगृह–(सं०)–क़ैदखाना, जेल। उ०भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब। (मा० २।१९)

बंदिछोर–बंधनों से छुड़ानेवाले, मुक्तिदाता। उ० उथपे-थपन, थपे उथपन पन बिबुधवृंद-बंदिछोर को। (वि० ३१)

बंदिनि–वंदना या आदर के योग्य, पूज्य। उ० नर-नाग-बिबुध वंदिनि जय जह्नुबालिका। (वि० १७)

बंदी (१)–(फ़ा)–कैदी, जो क़ैद हो।

बंदी (२)–(सं०)–एक चारणों की जाति, भाट, मागध। उ० बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम। (मा० २।१०५)

बंदी (३)–(सं० विंदु)–एक आभूषण।

बंदीछोर–क़ैद से छुड़ानेवाले। उ० केसरी-किसोर, बंदीछोर को निवाजे सब। (ह० १३)

बंदीजन–भाट, प्रशंसक, मागध। उ० मागध सूत बिदुष बंदीजन। (मा० १।३०९।३)

बंद्य–बंदना करने योग्य, पूज्य। उ० देव-मुनि-बंद्य किए अवधबासी। (वि० ४४)

बंध–(सं०)–१. बंधन, बाँधने की रस्सी आदि, २. क़ैद, ३. उत्पत्ति, ४. धारा, ५. रोध, रोक। उ० १. तेहि के रचि पचि बंध बनाए। (मा० १।२८८।२)

बंधन–(सं०)–१. बाँधने की क्रिया, २. बाँधने की रस्सी आदि, ३. वह जो किसी की स्वतंत्रता आदि में बाधक हो। ४. शरीर का संधि-स्थान, जोड़, ५. क़ैद, जेल। उ० ४. हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले। (वि० ३२)

बँधाइअ–(सं० बंधन)–बँधाइए। उ० एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। (मा०५।६०।२) बँधायउ–बँधाया, बँधा लिया। उ० जेहिं बारीस बँधायउ हेलाँ। (मा० ६।६।३) बँधाया–बंधन में डलवाया, बँधवाया। उ० लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। (मा० ४।२१।३) बधायो–बँधाया, बँधवाया। उ०कौतुकहीं पाथोधि बँधायो। (मा० ६।६।१) बँधावा–बँधवाया। उ० प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा। (मा० ५।२०।२)

बँधान–(सं० बंधन)–१. नियम, सिद्धांत, परिपाटी, २. नियत आजीविका, ३. किसी बात का निश्चय, ४.लेन-देन या व्यवहार आदि की नियत परिपाटी। उ० १. नागर नट चितवहिं चकित उगहिं न ताल बँधान। (मा० १।३०२)

बंधु–(सं०)–१.भाई, भ्राता, २.मित्र, ३.सहायक, ४.पिता, ५. बंधूक नाम का फूल, ६. नीच, ७. अपने लोग। उ० १. बंधु गुरु जनक जननी बिधाता। (वि० ११) ६. छत्र बंधु तैं बिप्र बोलाई। (मा० १।१७४।१) बंधुना–भाई द्वारा, भाई से। उ० पाणौ नाराच चापं कपि निकरयुतं बंधुना सेव्यमानं। (मा० ७।१। श्लो० १)

बंधुक–(सं०)–गुल दुपहरिया का फूल या पौधा। उ० बंधुक-सुमन-अरुन पद पंकज अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आए। (गी० १।२३)

बंधुजीव–(सं०)–दे० 'बंधुक'।

बंधुर–(सं०)–१. मुकुट, २. बहरा, ३. सुंदर, रम्य, ४. स्त्रीचिह्न।

बंधूक–(सं०)–१. दे० 'बंधुक', २. लाल छींट, लाल बूटी।

बँधेउ–(सं० बंधन)–बँध गये, फँस गये। उ० बँधेउ सनेह बिदेह बिराग बिरागेउ। (जा० ४६) बँधो–१. बँधा हुआ, २. फँसा, लगा, अटका।

बंधो–(सं० बंधु)–हे बंधु, हे भाई। उ० नत ग्रीव-सुग्रीव-दुःखैक-बंधो। (वि० २७)

बंध्या–(सं०)–वह स्त्री जिसे संतान न हो सके, बाँझ। उ० बंध्यासुत बरु काहुहि मारा। (मा० ७।१२२।८)

बंब–(ध्व०)–१. युद्ध आदि में वीरों को उत्साहवर्द्धक शब्द, २. नगारा, डंका। उ० १. कूदत कबंध के कदंब बंब सी करत। (क० ६।४८)

बंस–(सं० वंश)–बाँस नाम का पेड़। उ० उपजेहु बंस अनल कुल बालक। (मा० ६।२१।३)

बंसी–(सं० वंशी)–मछली फँसाने का एक औज़ार। उ० जन-मन-मीन हरन कहँ बंसी रची सँवारि। (गी० ७।२१)

बँसूला–दे० 'बसूला'। उ० तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला। (मा० २।२१२।२)

बई–(सं० वपन)–बोया, बीज डाला। उ० कामधेनु-धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल, जामति न बई है। (वि० १३९)

बए–(सं० वचन)–कहा, बखाना। उ० बंदिन्ह बाँकुरे बिरद बए। (गी० १।३)

बक (१)–(सं० वक)–बगला। उ० हंसहि बक दादुर चातकही। (मा० १।६।१) बकउ–बगला भी। उ० काक होहिं पिक बकउ मराला। (मा० १।३।१)

बक (२)–(सं० वच्)–बकना, गपशप, व्यर्थ की बातें।

बकता–दे० 'वक्ता'। उ० ते श्रोता बकता समसीला। (मा० १।३०।३)
बकध्यानी–बगुला भगत, पाखंडी।
बकसत–(फ़ा० बख्श)–दान देते हैं, ईनाम देते हैं। उ० प्रभु बकसत गज बाजि बसनमनि, जय-धुनि गगन निसान हये। (गी० १।४३)
बकसीस (फ़ा० बख्शिश)–१. इनाम, पारितोषिक, २. दान। उ० १ भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा। (मा० १।३०६।२)
बकहिं–बक, व्यर्थ का बड़-बड़ कर। उ० तुलसिदास जनि बकहिं, मधुप सठ! हठ निसि दिन अँबराई। (कृ० ५१) बकहि–बकती है, बड़-बड़ करती है। उ० ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ बकहि बेकामहिं। (कृ० ५) बकि–(सं० वच्)–बक, बड़बड़ा, व्यर्थ प्रलाप कर। उ० बकि जनि उठहि बहोरि। (पा० ७३) बक्यो–बकवाद किया, बका, कहा। उ० जीह हू न जप्यों नाम, बक्यो आउ बाउ मैं। (वि० २६१)
बकिहि–(सं० वक)–बगली को। उ० बकिहि सराहइ मानि मराली। (मा० २।२०।२)
बकी–(सं० वकी)–पूतना, बकासुर की बहिन। उ० बकी बक भगिनी काहू तें कहा डरैगी? (ह० २५)
बकुचौहीं–(तुर०बुकचा)–गठरी की भाँति। उ० राखी सचि कूबरी पीठ पर ये बातें बकुचौहीं। (कृ० ४१)
बकुल (१)–(सं०)–मौलश्री का पेड़ या फूल। उ० रोपे बकुल कदंब तमाला। (मा० १।३४४।४)
बकुल (२)–(सं० वक)–बगला।
बकैयाँ–(?)–दोनों हाथ तथा पैर के सहारे लड़कों के चलने का ढंग।
बक्ता–(सं० वक्ता)–बोलने या कहनेवाला।
बक्त्र–(सं०)–मुख, आनन। उ० वक्त्र-आलोक त्रैलोक्य-सोकापहं, मार रिपु-हृदय-मानस-मरालं। (वि० ५१)
बक्र–(सं० वक्र)–१. टेढ़ा, कुटिल, २. टेढ़ाई, कुटिलता। उ० १. बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू। (मा० १।२८१।३) २. तुलसी यह निहचय भई, बाढ़ि लेति नव बक्र। (दो० ५३७)
बखसीस–(फ़ा० बख़्शिश)–दिया हुआ धन, ईनाम, पारितोषिक। उ० बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत। (क० ६।१०)
बखान–(सं० व्याख्यान)–१. वर्णन, कथन, २. तारीफ, कीर्तन, यश गाना। उ०२. नर कर करसि बखान। (मा० ६।२५)
बखानउँ–बखानता हूँ। उ० अस तव रूप बखानउँ जानउँ। (मा० ३।१३।७) बखानत–१. वर्णन करते हुए, २. बखानते हैं। उ० १. बाहर भीतर भीर न बनै बखानत। (जा० १४) बखानहिं–बखानते हैं, बड़ाई करते हैं। उ० प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। (मा० ५।५२।१) बखानहीं–बखानते हैं, यश गाते हैं, प्रशंसा करते हैं। उ० 'काहू न कीन्हेउ सुकृत' सुनि मुनि मुदित नृपहि बखानहीं। (जा० १८) बखानहु–वर्णन कीजिए, बयान करो। उ० तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु। (मा० ७।१२१।३) बखाना–१. कहा, वर्णन किया, २. कहा जाता है, ३. यश गाया, बड़ाई की। उ० २.कलि जुग सोइ गुनवंत बखाना। (मा० ७।९८।३) ३. राम जासु जस आपु बखाना। (मा० १।१७।५) बखानि–१. बखानकर, सराहना कर, २. विस्तार से, ३. प्रशंसा करते हुए, बखानते हुए, ४. बखानी, वर्णन की। उ० २. कहा भुसुंडि बखानि। (मा० १।१२० ख) ४. परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि। (मा० २।११०) बखानिय–१. वर्णन किया है, २. वर्णन किया जाय, ३. बखानकर, प्रशंसा कर। उ० ३. गौरी नैहर केहि बिधि कहहुँ बखानिय। (पा० ९८) बखानिहैं–बखानेंगे, वर्णन करेंगे। उ० त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं। (मा० ४।३०। छं० १) बखानी–वर्णन की, कही, गायी। उ० जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी। (मा० १।१००।४) बखाने–बखान किया, बड़ाई की। उ० राज सभाँ रघुबीर बखाने। (मा० १।२९१।४) बखानै–वर्णन करे, कहे, यश गावे। उ० पट रस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै। (वि० १२३) बखानो–१. वर्णन करो, २. सराहो, सराहना करो। उ० १. तौ सकोच परिहरि पालागौं परमारथहि बखानो। (कृ० ३५) बखान्यो–बखाना है, वर्णन किया है। उ० होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो। (वि० ८८)
बखार–(सं० प्राकार)–गल्ला रखने का स्थान, अमार। बखारहीं–बखारों में। दे० 'बखार'। उ० बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं। (क० ५।२१)
बग–(सं० वक)–बगला नाम का पक्षी। उ० बग उलूक झगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ। (प्र० ६।६।२)
बगध्यानी–बगले की तरह ध्यान धरनेवाला, पाखंडी। उ० तब बोला तापस बगध्यानी। (मा० १।१६२।३)
बगपाती (?)–कक्ष, काँख।
बगमेल–(सं० वल्गा+मेल)–१. बाग मिलाकर या घोड़े की बाग ढीली करके, २. एक पंक्ति बनाकर, ३. एक साथ धावा करना। उ० १. हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल। (मा० १।३०५)
बगरि–(सं० विकिरण)–फैलकर, पसरकर। उ० जाको जस लोक बेद रह्यो है बगरि सो। (वि० २६४) बगरे–फैले, बिखरे, पसरे। उ० बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि जव धान। (गी० १।२)
बगुर–(?)–फंदा, जाल, पाश।
बगुरा–फंदा, जाल।
बगूला–दे० 'बघूरा'।
बघनहा–(सं० व्याघ्र+नख)–१. बाघ का नाखून, २. एक प्रकार का हथियार जो बाघ के पंजे की भाँति होता है, ३. एक सुगंधित द्रव्य, ४. एक आभूषण जिसमें बाघ के नाखून मढ़े रहते हैं। उ० ४. कठुला कंठ बघनहा नीके। (गी० १।२८)
बघूर–दे० 'बघूरा'। उ० तुलसी अंधबर के भए, ज्यौं बघूर को पान। (स० ३८६)
बघूरा–(सं० वायु+गोल)–बवंडर, वातचक्र, घूमती हुई हवा। बघूरे–दे० 'बघूरा'। बघूरे में, बवंडर में। उ० चढ़े

बघूरे चंग ज्यों, ज्ञान ज्यों सोक-समाज। (दो० ४१३)

बच-(सं० वचः)-१. वचन, बात, वाणी, २. वाक्य। उ० १. मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा। (मा० १।१८६। छं० ३)

बचइ-दे० 'बचै'। उ० बचइ काल-क्रम दोख तें। (स० ६०७) बचउँ-(सं० वंचन)-१. बचता हूँ, बच रहा हूँ, २. टाल देता हूँ, तरह देता हूँ। उ० १. बिप्र बिचारि बचउँ नृप द्रोही। (मा० १।२७६।३) बचा (१)-शेष रहा, बाकी बचा। उ० तुलसी सब सूर सराहत हैं 'जग में बलसालि है बालि-बचा'। (क० ६।१५) बचे-१. रक्षित हुए, बच गए, शेष रहे, उबरे, २. भिन्न हुए, छूटे, अलग हुए। उ० १. सहसबाहु दस बदन आदि नृप बचे न काल बली ते। (वि० १६८) बचै-बचा। दे० 'बचे'। बचौं-१. बचता हूँ, हटता हूँ, २. बचूँ, बच जाऊँ।

बचन-(सं० वचन)-१. बात, वाणी, बोल, २. कौल, प्रतिज्ञा, ३. होड़, शर्त। उ० १. तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इया रे। (वि० ३३) बचनहि-बचन के लिए। उ० तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। (मा० २।१७४।२)

बचना-दे० 'बचन'। उ० १. सुनि सिव के भ्रमभंजन बचना। (मा० १।११४।४)

बचनि-बोलनेवाली। उ० बार-बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिक बचनि। (मा० २।२५)

बचनु-दे० 'बचन'। उ० २. सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु। (मा० २।४०)

बचा (२)-(सं० वत्स)-बच्चा, शिशु, बालक।

बचावन-(सं० वंचन) बचाने, रक्षा करने। उ० सचिव बोलि सठ लाग बचावन। (मा० ५।५६।५) बचावा-१. बचाया, रक्षा की, २. बचाता जाता है। उ० २. करि छल सुअर सरीर बचावा। (मा० १।१५७।२)

बचांसि-बातों से, बात करके।

बच्छ-(सं०वत्स)-१. बच्चा, शिशु, २. पुत्र, लड़का, बेटा, ३. प्रिय, प्यारा, स्नेही, ४. बछड़ा, गाय का बच्चा। उ० २. अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। (मा० २।१६५।३) ४. भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई। (मा० ७।११७।६) बच्छ-पद-बछड़े के पैर का पृथ्वी पर बना हुआ चिह्न।

बच्छल-दे० 'बछल'।

बच्छलता-दे० बछलता'।

बच्छु-(सं० वत्स)-बछड़ा। उ० सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई। (मा० २।१४६।२)

बछरु-(सं० वत्स)-बाछा, बछवा। उ० बछरु छबीलो छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाइ। (गी० १।१६)

बछल-(सं० वत्सल)-प्रेमी, कृपालु। उ० भगत बछल कृपालु रघुराई। (मा० ७।११।३)

बछलता-(सं० वत्सलता)-वत्सलता, प्रेम, प्रेमभाव। उ० भगत बछलता प्रभु कै देखी। (मा० ७।८३।४)

बजनिआ-(सं० वाद्य)-बजानेवाला, बाजावाला। उ० सेवक सकल बजनिआ नाना। (मा० १।३५१।४)

बजाइ-(सं० वाद्य)-१. बजाकर, गा-बजाकर, २. युद्ध करा कर, जुझाकर, ३. निर्भय होकर, ४. सबको चेतावनी देकर, डंके की चोट पर। उ० १, राज दै निवाजिहौं बजाइ कै भीषनै। (क० ६।२) ४. हौं बजाइ जाइ रह्यो हौं। (वि० २६०) बजाई-१. बजाया, शब्दायमान किया, २. बजाकर, डंका बजाकर। उ० २. देउँ भरत कहुँ राजु बजाई। (मा० २।३१।४) बजायउ-१. बजाया, २. बजाकर। उ०२. चले देव सजि जान निसान बजायउ। (पा० १५५) बजावत-बजाते हुए, शब्दायमान करते हुए। उ० जाइ नगर नियरानि बरात बजावत। (पा० ११३) बजावती-बजाती है। उ० चुटकी बजावती। (गी० १।३०) बजावन-बजाने। उ० जहँ-तहँ गाल बजावन लागे। (मा० १।२६६।१) बजावहिं-१. बजाते हैं, २. बजाने लगे। उ० २. सुखहिं निसान बजावहिं भेरी। (मा० ६।३९।५) बजावहु-बजाओ। उ० कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना। (मा० ६।८६।१) बजावा-बजाता है। उ० पण्डित सोइ जो गाल बजावा। (मा० ७।९८।२) बजैहैं-बजावेंगे। उ० व्योम बिमान निसान बजैहैं। (गी० ५।५१)

बजाज-(अर० बजाज़)-कपड़े का व्यापारी। उ० बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते। (मा० ७।२८। छं०१)

बजारी-(फ़ा० बाज़ार)-बाजारू आदमी, जिसका विश्वास न किया जा सके। उ० कीति बड़ो, करतूति बड़ो जन, बात बड़ो सो बड़ोई बजारी। (क० ६।५)

बजारु-बाजार, हाट। उ० चारु बजारु बिचित्र अँबारी। (मा० १।२१३।१)

बजारू-१.दे०'बजारी' २. बाजार, हाट। उ०२. छावा परम बिचित्र बजारू। (मा० १।२६६।४)

बजै-(सं० वाद्य) १. बजता है, पड़ता है, २. बजे। उ०१. जहँ-तहँ सिर पदत्रान बजै। (वि० ८६)

बज्जत-बजता है, शब्दायमान होता है। उ० चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत। (क० ६।४७)

बज्र-(सं० वज्र)-१. कुलिश, बिजली, इंद्र का शस्त्र, २. हीरा। उ० १. तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा। (मा० २।४६।४) बज्रन्हि-बज्रों से, हीरों से। उ० प्रतिद्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे। (मा०७।२७।छं० १)

बज्रसार-दे० 'वज्रसार'। उ० बज्रसार सर्वांग भुजदंड भारी। (वि० २६)

बझत-(सं० बद्ध, पा० बज्झ)-१. बझता है, फँसता है, २. उलझता है, लिपटता है। उ० २. बझत बिनहिं पास सेमर-सुमन-आस। (वि० ११७)

बझाऊ-१. फँसानेवाला, उलझानेवाला, २. फँसाव, उलझाव। उ० १. काँट कुरायँ लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँउँ बझाऊ रे! (वि० १८९)

बझावौं-(सं० बद्ध) बझाता हूँ, फँसाता हूँ। उ० ब्याध ज्यों बिषय-बिहँगनि बझावौं। (वि० २०८)

बट-(सं० वट)-१. बरगद का पेड़, २. अक्षयवट नाम का पेड़ जो प्रयाग में है। उ० १. तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। (मा० १।१०६।१)

बटत-(सं० वट)-१. बटता हूँ, पूरता हूँ, २. बटता है। उ० १. बाँधिबे को भवगयंद रेनु की रजु बटत। (वि० १२९)

बटपार-(सं० वाट + मृ)-ठग, डाकू, लुटेरा, छली।

बटपारा–दे० 'बटपार'। उ० मैं एक अमित बटपारा। (वि० १२५)
बटाऊ (१)–(सं० वाट)–पथिक, मुसाफिर, राही। उ० राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। (क० २।२)
बटाऊ (२)–(सं० वितरण) हिस्सा बटानेवाला।
बटु (१)–दे० 'बट'। उ० २. बटु बिस्वास अचल निज धरमा। (मा० १।२।६)
बटु (२)–(सं०वटु)–१. ब्रह्मचारी, वेदपाठी, क्वारा लड़का, २.विद्यार्थी। उ०१. बटु वेष पेषन पेम पन व्रत नेम ससि-सेखर गये। (पा० ४५)
बटुक–दे० 'बटु'।
बटोरत–(सं० वर्तुल, हिं० बटुरना)–बटोरते हैं, एकत्र करते हैं। उ० सुचि सुन्दर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को। (क० ७।१०३) बटोरा–१. एकत्र किया, एक स्थान पर किया,२. बटोरकर, सिकोड़कर।उ०१. राम भालु कपि कटकु बटोरा। (मा० १।२५।२) बटोरि–एकत्र कर, एक जगह कर। उ० सानुज कुसल कपि कटक बटोरि कै। (क० ५।२७) बटोरी–१.बटोरकर, एकत्रकर, २. इकट्ठा किया, एक स्थान पर किया। उ० १. सब कै ममता ताग बटोरी। (मा० ५।४८।३) बटोरै–१. सिकोड़े, २. एकत्र किये, ३. इकट्ठा करे। उ० ३. जेहि के भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै। (वि० ११६) बटोरयौ–इकट्ठा किया, एकत्र किया। उ० करि पिनाक-पन, सुता-स्वयंबर सजि, नृप-कटक बटोरयो। (गी० १।१००)
बटोही–(सं० वाट)–राहगीर, यात्री, पथिक। उ० देखु कोऊ परम सुंदर सखि! बटोही। (गी० २।१८)
बड़ (१)–(सं० वट)–बरगद का पेड़।
बड़ (२)–(सं० वर्द्धन)–बड़ा, भारी। उ० हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ बिषय बैरी रावरो। (पा० ५४)
बड़प्पन–(सं० वर्द्धन+पन)–बड़ाई, श्रेष्ठता, बड़ापन।
बड़प्पनु–दे० 'बड़प्पन'। उ० केहिं न सुसंग बड़प्पनु पावा। (मा० १।१०।४)
बड़भागी–भाग्यशाली, भाग्यवान। उ० अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही। (मा० १। २११। छं० १)
बड़री–(सं० वर्द्धन)–बड़ी, भारी। उ० बिकटी भ्रुकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है। (क० २।१३)
बड़वागि–दे० 'बड़वाग्नि'। उ० आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की। (क० ७।९६)
बढ़वागिन–(सं०)–दे० 'बड़वानल'।
बड़वानल–(सं०)–बड़वाग्नि, समुद्र की आग। उ० जद्यपि है दारुन बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीरतर। (कृ० ३१)
बड़ा (१)–(सं० वर्द्धन)–१. बृहत्, विशाल, २. भारी, गुरु, ३. प्रधान, मुखिया, श्रेष्ठ, ४. उम्र में बड़ा।
बड़ा (२)–(सं०वटक)–उर्द की दाल का बना एक पक्वान्न।
बड़ाइ–बड़ाई, बड़प्पन, श्रेष्ठता। उ० सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइ कै। (मा० १।३२६। छं० १)
बड़ाई–(सं० वर्द्धन) १. श्रेष्ठता, बड़प्पन, २. यश, कीर्ति, ३. उच्चता, ऊँचाई। उ० १. कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो। (क० ५।६)
बड़ि–'बड़ा' का स्त्रीलिंग। दे० 'बड़ा'। भारी, बड़ी। उ० बड़ि अवलंब बाम-बिधि-बिघटित। (गी० २।८८)
बड़िआर–बलवान, बलवाला, शक्तिशाली।
बड़िए–बड़ी ही, बहुत ही। उ० ताके अपमान तेरी बड़िए बड़ाई है। (गी० ५।२६) बड़ी–'बड़ा' का स्त्रीलिंग, भारी, बहुत। उ० दैहै तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंड़िये। (क० ७।२५) बड़े–१. बड़ा, भारी। दे० 'बड़ा'। २. बड़े लोग। उ० १. बड़े पाप बाढ़े किए, छोटे किये लजात। (दो० ४१३) २. बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई दूरि करै। (वि० १८३) बड़ेहि–बड़े का ही। उ० बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू। (मा० २।१०।४)
बड़ेरी–बड़ी-बूढ़ी। बड़ेरे–बड़े। उ० छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब। (क० ५।११)
बड़ेरो–१. बड़प्पन, श्रेष्ठता, बड़ाई, २. बड़ा, महान, ३. मुख्य। उ० २. बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो। (वि० १४६) ३. तहँ रिपु राहु बड़ेरो। (वि० ८७)
बड़ो–बड़ा। दे० 'बड़ा'। उ० बड़ो सुसेवक साँइ तें, बड़ो नेम तें प्रेम। (दो० ४७३) बड़ोइ–बड़ा ही। उ० सुवन समीर को धीर धुरीन बीर बड़ोइ। (गी० ५।५) बड़ोई–बड़ा ही। उ० कीर्ति बड़ो, करतूति बड़ो जन, बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी। (क० ६।५)
बड़ौ–दे० 'बड़ो'।
बढ़इ–(सं०वर्द्धन) १. बढ़ता है,२.बढ़े, वृद्धि करे। बढ़ई–(१) बढ़ता है। बढ़त–(सं०वृद्धि)–१. बढ़ता है, २. बढ़कर, ३. बढ़ते ही, ४. बढ़ता हुआ। उ० ४. बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा। (मा०२।५।४) बढ़ता–उन्नत होता,वृद्धि करता, ऊँचे जाता। बढ़ति–बढ़ती है।उ०राम दूरि माया बढ़ति। (दो० ६९) बढ़ा–बढ़ गया। बढ़ि–१. बढ़कर, अधिक, २. बाढ़, वृद्धि, बढ़ती। उ० १. साँची बिरुदावली न बढ़ि कहि गई है। (वि० १८०) २. पाय-प्रतिष्ठा बढ़ि परी। (दो० ४६४) बढ़े–१. वृद्धि को प्राप्त हुए, २. बढ़ने पर। उ० १. तुलसी प्रभु भूषन किए गुंजा बढ़े न मोल। (दो० ३८५)
बढ़ई–(२) (सं० वर्द्धकि)–लकड़ी का काम करनेवाला। उ० मातु कुमत बढ़ई अघमूला। (मा० २।२१२।२)
बढ़ाइहौं–बढ़ाऊँगा। उ० प्रभु सों निषाद ह्वैकै बाद न बढ़ाइहौं। (क० २।८) बढ़ाउ–(सं० वृद्धि)–१. बढ़ाओ, २. उन्नति, बढ़ती, ३. बढ़ावा, उत्तेजना। उ० १. समुझि समुझि गुन ग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ। (वि० १००) बढ़ाव–दे० 'बढ़ाउ'। बढ़ावइ–बढ़ावे, वृद्धि करे। उ० को करि बादु बिबादु बिषादु बढ़ावइ? (पा० ७२) बढ़ावन–१. बढ़ाना, २.।बढ़ानेवाला। उ० २. बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन। (मा०१।४३।३) बढ़ावनो–बढ़ाना, अधिक करना। उ० विषम बली सों बादि बैर को बढ़ावनो। (क०५।६) बढ़ियार–बढ़ने पर, वृद्धि पाने पर। उ० बिगत-नलिन-अलि, मलिन जल, सुरसरिहू बढ़ियारि। (दो० ४९८)

बढ़ैया–बढ़ानेवाला। उ० खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उर साल को। (क० ७।१३५)
बढोइ–बढ़ा ही, बढ़ा ही था। उ० अकनि कटुबानी कुटिल की क्रोध-विंध्य बढ़ोइ। (गी० ५।५)
बणिक–(सं० बणिक्)–व्यापार करनेवाला, बनिया।
बत–(सं० वार्त्ता)–बात, बोली, बचन। उ० अब जनि बत-बढ़ाव खल करही। (मा० ६।३०।१) बतबढ़ाव–बातचीत को बढ़ाना, विवाद। उ० दे० 'बत'।
बतकही–बातचीत, बोल-चाल, बात। उ० करत बतकही अनुज सन मन सियरूप लोभान। (मा० १।२३१)
बताई–(सं०वार्ता)१.बतलाकर,कहकर,समझाकर,२.बतलायी, कही। बतायो–बतलाया, जताया, सूचित किया। उ० बूझत 'चित्रकूट कहँ' जेहि तेहि मुनि बालकनि बतायो। (गी० २।६८) बतावत–बतलाता है, ज्ञात कराता है।
बतास–(सं० वातासह)–१. एक रोग, गठिया, २. हवा, पवन, ३. एक मिठाई।
बतासा–दे०'बतास'। उ०२.कछु दिन भोजनु बारि बतासा। (मा० १।७४।३)
बतिआ–(सं० वर्तिका)–छोटा फल, थोड़े दिन का फल, जई। उ० इहाँ कुम्हड़ बतिआ कोउ नाहीं। (मा० १।२७३।२)
बतियाँ–(सं० वार्त्ता)–बातें। उ० सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ। (क०२।२३) बतिया–(सं० वार्ता)–बातचीत, बात। उ० बतिया कै सुघरि मलिनिया सुंदर गातहि हो। (रा० ७)
बत्तिस–(सं० द्वात्रिंशत्, प्रा० बत्तीसा)–तीस और दो। उ० तुरत पवन सुत बत्तिस भयऊ। (मा० ५।२।४)
बत्स (१)–(सं० वत्स)–१. बछड़ा, २. प्रिय, प्यारा, ३. बच्चा, ४. वत्सासुर, ५. छाती। बत्सपद–(सं०वत्सपद)–बछड़े के खुर का निशान। उ० जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय वत्सपद जैसे। (वि० ११८)
बत्स (२)–(सं० वत्सर)–वर्ष।
बत्सर–(सं० वत्सर)–वर्ष, साल।
बदंति–कहते हैं। उ० इति बेद बदंति न दंतकथा। (मा० ६।१११।८) बद (१)–(सं० वद्)–१. कहो, बोलो, २. कहते हैं। उ० १. मोसन भिरिहि कवन जोधा बद। (मा० ६।२३।१) २. देस काल पूरन सदा बद, बेद पुरान। (वि० १०७) बदत–कहता है, बोलता है। उ० भद्रसिंधु दीनबंधु बेद बदत रे। (वि० ७४) बदति–(सं० वद्)–१. बोलती, कहती, २. कहती है। उ० १. रोदति बदति बहु भाँति करुना करत संकर पहिं गई। (मा० १।८७। छं० १) बदहिं–कहते हैं, बखानते हैं। उ० बंदी मागध सूत गन बिरुद बदहिं मतिधीर। (मा० १।२६२) बदहि–१. कहिए, बतलाइए, २. कहता है। उ० १. इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख। (मा० ६।२४) बदौं–(सं० वद्)–१. कहता हूँ, २. मानता हूँ। उ० १. प्रेम बदौं प्रह्लादहि को जिन पाहन तें परमेस्वर काढ़े। (क० ७।१२७)
बद (२)–(फ़ा०)–बुरा, नीच, ख़राब।
बदन (१)–(फ़ा०)–शरीर, देह।
बदन (२)–(सं० वदन)–मुख, मुँह। उ० मकरी ज्यौं पकरि कै बदन बिदारिए। (ह०२२) मु० बदन फेरे–मुख मोड़ने पर, अप्रसन्न होने पर। उ० जानकी-रमन मेरे! रावरे बदन फेरे। (क० ७।७८) बदननि–बदन (मुँह) का बहुवचन। उ० बदननि बिधु निदरे हैं। (गी० २।२५)
बदनि–मुखवाली। उ० पर्व शर्वरीश-बदनि। (वि० १६) बदनीं–मुखवाली स्त्रियाँ। उ० बिधु बदनीं मृग सावक नयनीं। (मा० २।८।४)
बदनु–दे० 'बदन'। उ० निरखि बदनु कहि भूप रजाई। (मा० २।३३।४)
बदर–(सं० बदरि)–१. बेर का पौदा, २. बेर का फल। उ० २. बिस्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा। (मा० २।१२५।४)
बदरि–(सं०)–बेर का पेड़ या फूल।
बदरिकाश्रम–नर नारायण के तपस्या का प्रसिद्ध स्थान जो चार प्रसिद्ध धामों में है। उ० पुन्यबन शैल सरि बदरिकाश्रम सदाऽसीन पद्मासनं एक रूपं। (वि० ६०)
बदरी–दे० 'बदरि'। उ० बदरीबन कहुँ सो गई, प्रभु अग्या धरि सीस। (मा० ४।२५) बदरीबन–(सं०बदरि+वन)–बदरिकाश्रम। बैर के पेड़ों के आधिक्य के कारण उसका यह नाम पड़ा है। उ० बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस। (मा० ४।२५)
बदलि–(अर० बदल)–बदलकर, एक के बदले दूसरी देकर या लेकर।
बदली (१)–(सं० वारिद्)–मेघ, बादल।
बदली (२)–दे० 'बदरि'। उ० कदली बदली बिटप गति, पेखहु पनस रसाल। (दो० ३५४)
बदलें–(अर० बदल) बदले में। उ० काँच किरिच बदलें ते लेहीं। (मा० ७।१२१।६)
बदि–दे० 'बदि (२)'। उ० १. जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ। (मा० १।२८३)
बदी (१)–(?)–कृष्ण पक्ष, अँधेरा पाख।
बदी (२)–(फ़ा०)–बुराई, अपकार।
बद्ध–(सं०)–बँधा हुआ, जकड़ा हुआ, गुथा हुआ, हद के भीतर रक्खा या किया हुआ। उ० १. बद्ध-बारिधि-सेतु, अमर मंगल हेतु। (वि० २५)
बध–(सं०)–मारना, हत्या, हनन। उ० निसिचर बध मैं होब सनाथा। (मा० १।२०७।५)
बधउँ–१. मारता हूँ, २. मारूँ। उ० १. बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही। (मा० १।२७२।३) बधब–बध करेंगे, मारेंगे, मारूँगा। उ० तेहि बधब हम निज पानि। (मा० ३।२०।३) बधि–१. मारकर, हत्याकर, २. मारनेवाले। उ० १. बालि-बलशालि बधि, करण-सुग्रीव-राजा। (वि० ४३) २. जयति मद अंध कु कबंध बधि। (वि० ४३) बधिहि–बध करेंगे। उ० निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुख सागर हरी। (मा० ३।२६। छं० १) बधी–(सं० वध)–मार डाली। उ०बधी ताड़का, राम जानि सब लायक। (जा० ४०) बधे–दे० 'बधें'। उ० २. बधे पापु अपकीरति हारें। (मा० १।२७३।४) बधें–१. मारे, २. मार डालने पर। बधेउ–मार डाला, बध किया। उ०

बयनीं–बोलनेवाली, बोलनेवालियों का समूह। उ० करहिं गान कल कोकिल बयनीं। (मा० १।२८६।१) बयनी–बोलनेवाली।
बयर–दे० 'बैर'। उ० लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय। (वि० २२०)
बयरु–दे० 'बैर'। उ० तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा। (मा० १।१७०।४)
बयस–(सं० वय)–आयु, अवस्था। उ० स्याम गौर मृदु बयस किसोर। (मा० १।२१५।३)
बयारि–(सं० वायु)–हवा, पवन। उ० लागिहि तात बयारि न मोही। (मा० २।६७।३)
बयारी–दे० 'बयारि'। उ० सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। (मा० १।३०३।२)
बये (२)–(सं० वचन)–बोले, कहे, बखाने।
बये (३)–(सं० वय)–उम्र बिताई।
बर (१)–(सं० वर)–१. वरदान, आशीर्वाद, २. स्वामी, दूलहा, ३. श्रेष्ठ, बढ़ा-चढ़ा। उ० १. गननायक बरदायक देवा। (मा० १।२५७।४) २. बर अनुहारि बरात न भाई। (मा० १।६३।१) ३. बर सुषमा लही। (मा० ७।५। छं०१) बरतर–(सं० वरतर)–अधिक, श्रेष्ठ। बरहिं–दुलहे को। उ० मंगल आरति सालि बरहिं परिछन चलीं। (जा० १४८) बरहि (१)–दुलहे को। उ० बरहि पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन। (जा० १५७)
बर (२)–(सं० वट)–बरगद, बड़।
बर (३)–(सं० ज्वल)–१. जलकर, २. जलना। बरत (१)–(सं० ज्वल)–१. बलता हुआ, जलता हुआ, गरम, २. बलते हैं, जलते हैं। उ० १. बार-बार बर बारिज लोचन भरि-भरि बरत बारि उर ढारति। (गी० ५।१६) बरति (१)–जलती है। उ० याके उए बरति अधिक अँग-अँग दव। (कृ० २६) बरी–(सं० ज्वल)–बल उठी, जली।
बर (४)–(सं० बल)–ज़ोर, शक्ति। उ० बर करि कृपासिंधु उर लाए। (मा० ७।५।४)
बर (५)–(सं० वरं, हि० वरु)–वरन्, बल्कि।
बरइ–(सं० वरण)–व्याहेगा। उ० जो एहि बरइ अमर सोइ होई। (मा० १।१३१।२) बरई (१)-(सं० वरण)–बरेगा, विवाह करेगा। उ० लछिमन कहा तोहि सो बरई। (मा० ३।१७।६) बरउँ–१. बरूँ, विवाह करूँ। उ० १.बरउँ संभु नत रहउँ कुआरी। (मा० १।८१।३) बरबे–व्याह करने, ब्याहने। उ० बरबे को बोले बयदेही बरकाज के। (क० १।८) बरहि (२)–बरे, बरेगा। बरि (१)–१. ब्याह कर, २. बचकर। बरिय–बरो, विवाह करो। उ० कहा मोर मन धरि न बरिय बर बौरेहि। (पा० ६१) बरिहि–बरेगी, ब्याहेगी। उ० मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें। (मा० १।१३३।२) बरीं–व्याह किया, ब्याहा। उ० जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुन्दर बर नारि। (मा० १।१८२ ख) बरी (१)–(सं० वरण)–बरा, ब्याहा। बरे (१)–१. ब्याह करे, २. निमंत्रण दे, ३. नियुक्त करे, नियुक्त किया। उ० २. बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटंब समेत। (मा० १।१७२) ३. सुवन-सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे हैं। (गी० ६।१३) बरेहु–बरा, ब्याहा। उ० जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो। (पा० ५४) बरै–बरे, विवाह करे। उ० जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी। (मा० १।१३१।४)
बरई (२)–(सं० वरुजीवी)–एक जाति जो पान का कारबार करती है।
बरक्खत–(सं० वर्षा)–बरसते हैं। उ० कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत। (क० ६।४७)
बरखइ–बरसता है, बरसे। उ० कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो। (रा० १६)
बरगद–(सं० वट)–१. वट वृक्ष, २. बरगद का फल। उ० २. बेधे बरगद से बनाइ बानबान हैं। (ह० ३६)
बरजउँ–(सं० वर्जन)–बरजता हूँ, मना करता हूँ। उ० तातें मैं तोहि बरजउँ राजा। (मा० १।१६६।१) बरजत–बरजता है, मना करता है। बरजति–मना करती है। उ० गरजति कहा तरजन्हि तरजति बरजति सैन नयन के कोए। (कृ० ११) बरजहु–रोको, रोकना, रोक देना। उ० तौ मोहि बरजहु भय बिसराई। (मा० ७।४३।३) बरजि–मनाकर, मना करके, निषेध करके। उ० सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३६) बरजी–मना किया, निवारण किया। उ०जब नयनन प्रीति ठई ठग स्याम सों स्यानी सखी हठि हौं बरजी। (क०७।१३३)बरजे–मना किया। उ०प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी। (मा० २।१६।२) बरजें–रोकें, मना किए। उ० तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै। (वि०८६) बरज्यो–रोका, मना किया। उ० सुतहिं दुखवत बिधि न बरज्यो काल के घर जात। (वि० २१६)
बरजित–(सं० वर्जित)–१. मना किया हुआ, छोड़ा हुआ, २. छोड़कर, अलग। उ० २. जौं जप-जाप-जोग-ब्रत-बरजित केवल प्रेम न चहते। (वि० ६७)
बरजोर–(सं० बल+फ़ा० जोर)–प्रबल, जबरदस्त, बलवान, ज़ोरावर। उ० जनरंजन, अरिगन-गंजन, मुख भंजन खल बरजोर को। (वि० ३१)
बरजोरा–जबरदस्ती। दे० 'बरजोर'। उ० अति कठिन करहिं बरजोरा। (वि० १२५)
बरजोरी–ज़बरदस्ती, जोरावरी।
बरत (२)–(सं० वट)–बटते हैं, बरते हैं।
बरत (३)–(सं० व्रत)–१. व्रत, उपवास, २. प्रण, प्रतिज्ञा। उ० १. तौं कपि कहत कृपान-धार-मग चलि आचरत बरत को? (गी० ६।१२)
बरतमान–दे० 'वर्तमान'। उपस्थित। उ० ता बिधि रघुबर नाम महँ बरतमान गुन तीन। (स० १४५)
बरति (२)–(सं० वर्तन)–व्यवहार करके। उ० जनमपत्रिका बरति के देखहु मनहिं बिचारि। (दो० २६८) बरतेउ–बरताव किया। उ० बामदेव सन काम बाम होइ बरतेउ। (पा० २६)
बरतिका–(सं० वार्तिका)–बत्ती।
बरतोर–(सं० बाल+त्रुट)–बाल टूटने से निकलनेवाला फोड़ा या घाव। उ० तातें तनु पोषियत घोर बरतोर मिस। (ह० ४१)

बरतोरू–दे० 'बरतोर'। उ० जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू। (मा० २।२७।२)

बरद (१)-(सं० वरद)-वर देनेवाला, वरदाता। बरदा (१)-(सं० वरदा)-वर देनेवाली। उ० सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ्यो बरदा, घरन्यौ बरदा है। (क० ७।१५५)

बरद (२)-(सं० वलीवर्द)-बैल। उ० बावरे बड़े की रीझ बाहन-बरद की। (क० ७।१५८)

बरदा (२)-(सं० वलीवर्द)-बैल।

बरदा (३)-(?) गंगा।

बरदान-(सं० वरदान)-वर, आशीर्वाद।

बरदाना-दे० 'बरदान'। उ० सबहि बंदि मागहिं बरदाना। (मा० १।३५१।१)

बरदानि-वर देनेवाला। उ० सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ्यो बरदा, घरन्यो बरदा है। (क० ७।१५५)

बरदायक-बर देनेवाला। उ० ब्रह्म राम तें नामु बड़ बरदायक बरदानि। (मा० १।२५)

बरध-(सं० वलीवर्द)-बैल, बरद।

बरन (१)-(सं० वर्ण)-१. रंग, २. अक्षर, ३. जाति, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण। उ० १. रूप के निधान, धन दामिनी-बरन हैं। (क० २।१७) ४. थापे मुनि सुर साधु आस्रम बरन। (वि० २४८) बरन-बरन–तरह तरह के। उ० पहिरें बरन-बरन बर चीरा। (मा०१।३१८।१)

बरन (२)-(सं० वर्णन)-१. वर्णन करके, २. वर्णन। उ० २. केहि बिधि बरन की। (पा० २७) बरनइ-वर्णन करते हैं। उ० सहस बदन बरनइ पर दोषा। (मा०१।४।४) बरनउँ–दे० 'बरनों'। बरनत–बर्णत, वर्णन करते, कहते हुए। उ० राम सीय सनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं। (गी० ७।२६) बरनब–वर्णन करूँगा। उ० बरनब सोइ बर बारि अगाधा। (मा० १।३७।१) बरनहिं–वर्णन करते हैं। उ०सुर बार बार बरनहिं लँगूर। (गी० ५।१६) बरनहीं–वर्णन कर रहे हैं। उ० जस प्रतापहिं बरनहीं। (जा० १८०) बरनि–१. वर्णन करके, २. वर्णन किया, ३. वर्णन करते। उ० २. नगर सोहावन लागत बरनि न जातै हो। (रा० २) ३. दुसह दसा सो मो पै परति नहीं बरनि। (कृ० ३०) बरनिसि–वर्णन किया। उ० निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिध प्रकार। (मा० ७।६७ ख) बरनी–वर्णन की, कही, बखानी। उ० भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। (मा० १।१०।५) बरनै–कहे, बखाने। उ० को बरनै मुख एक। (वै० ३४) बरनौं–कहता हूँ, वर्णन कर रहा हूँ।

बरननिहारु–वर्णन करनेवाला। उ० सकल अंग अनूप नहिं कोउ सुकबि बरननिहारु। (गी० ७।८)

बरनसंकर–दे० 'वर्णसंकर'। उ० भए बरनसंकर कलि भिन्न सेतु सब लोग। (मा० ७।१०० क)

बरनित–वर्णित, भाषित।

बरबर–(?) बकवादी, भड़भड़िया। उ० आलि ! बिदा करु बटुहि बेगि, बड़ बरबर। (पा० ६६)

बरबस–(सं० बाल+वश)–बलपूर्वक, ज़बरदस्ती। उ० बली बंधु ताको जेहिं बिमोह-बस बैर-बीज बरबस बए। (गी० ५।३२)

बरम–(सं० वर्म)–कवच, ज़िरहबख़्तर। उ० असन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्यौ कठिन कुधाय। (गी०७।३१)

बररे–दे० 'बर्रे'। उ० बररे बालकु एकु सुभाऊ। (मा० १।२७६।२)

बरष–(सं० वर्ष)–साल, वर्ष। उ० एहि बिधि बीते बरष पट सहस बारि आहार। (मा० १।१४४) बरषासन–(सं० वर्ष+अशन)–वर्ष भर का भोजन। उ० गुर सन कहि बरषासन दीन्हे। (मा० २।८०।२)

बरषइ–बरसाता था। उ० बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा। (मा० ६।५२।२) बरषत–१. बरसता है, बरसाता है, २. बरसते हुए। उ० १. बरषत करषत आपु जल, हरषत अरघनि भानु। (दो० ४५५) बरषतु–दे० 'बरसतु'। उ० अनुकूल देव मुनि फूल बरसत है। (मा० ६।५८) बरषहिं–१. बरसते हैं, २. बरसाते हैं। उ० २. देहिं असीस मुनीस सुमन बरषहिं सुर। (जा० १६३) बरषहु–बरसा दो। उ० गगन जाइ बरषहु पट भूषन। (मा० ६।११७।३) बरषि–बरस कर, पानी बरसा कर। उ०गरजि तरजि पाषान बरषि पबि प्रीति परखि जिय जावै। (वि० ६५) बरषे–१. बरसाये, २. बरसने से, ३. बर्षा से। उ० १. साधु सराहि सुमन सुर बरषे। (मा० २।२१०।४) बरषै–वृष्टि करे, बरसे। उ० पीत बसन सोभा बरषै। (वि० ६३)

बरषा–(सं० वर्षा)–बरखा, पानी बरसना। उ० बरषा को गोबर भयो। (दो० ७३)

बरस–(सं० वर्ष) साल, वर्ष।

बरसत–(सं० बर्षा)–१.बरसता है, २.बरसते हुए। बरसतु–बसता, बरसाते।

बरह–(?)–१. गोचर भूमि, २. खेतों में पानी जाने की नाली।

बरहि (३)–(सं० वर्हि)–मोर, मयूर। उ० जनु बर बरहि नचाव। (मा० १।३१६)

बरहि (४)–(सं० वारण)–बराकर, अलग कर।

बरहयों–(?)–१. बरहे में, पानी की नाली में, २. गोचर भूमि में। उ० १. सो थाक्यो बरह्यों एकहि तक देखत इनकी सहज सिंचाई। (कृ० ५६)

बराइ–(सं० वारण)–बराकर, चुनकर। उ० तुलसी रावन बाग-फल, खात बराइ बराइ। (प्रा० ५।३।७) बराई–१. छाँटी, चुन कर रक्खा, २. चुनकर, छाँटकर, ३. बँचाकर, ४. हटाकर। ३. करि केहरि अहि बाघ बराई। (मा० २।१३६।३) बराएँ–बचाए, बचाते हुए। उ० सीय राम पद अंक बराएँ। (मा० २।१२३।३) बराय (१)–(सं० वरण)–१. बचाकर, २. हटाकर, ३. छाँटकर, चुनकर। उ० ३. कौने देव बराय बिरद-हित। (वि० १०१) बरायो–छाँटा हुआ, चुना हुआ। उ० महाबीर बिदित बरायो रघुबीर को। (ह० १०)

बराक–(सं० वराक)–बेचारा, तुच्छ, गरीब। उ० चले दस दिसि रिस भरि धरु-धरु कहि, को बराक मनुजाद। (गी० ५।२२) बराकी–बेचारी, तुच्छ। उ० महाबीर बाँकुरे बराकी बाहुपीर क्यों न ? (ह०२३)

बराका–दे० 'बराक'।
बराट–दे० 'बराट'। उ० नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को। (क० ७।६६)
बरात–(सं० वरयात्रा)–विवाह में जानेवाले लोगों का समूह। बारात। उ० चढ़ि-चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। (मा० १।२९९) बरातहि–बरात को। उ० लै अगवान बरातहि आए। (मा० १।३०१।१)
बराता–दे० 'बरात'। उ० चढ़ि-चढ़ि बाहन चले बराता। (मा० १।९२।४)
बरातिन्ह–बरातियों को। उ० देखत देव सिहाहिं अनंद बरातिन्ह। (जा० १४१) बराती–बारात में जानेवाले। उ० उमा महेस बिबाह बराती। (मा० १।४०।४)
बराबरि–(फ़ा० बर)–बराबरी, तुल्यता, समानता। उ० तौंकि बराबरि करत अयाना। (मा० १।२७७।१)
बराबरी–दे० 'बराबरि'।
बराय (२)–(सं० ज्वल)–जलाकर, बालकर। उ० मानिक दीप बराय बैठि तेहि आसन हो। (रा० ४)
बराय (३)–(सं० वल)–बलात, ज़बरदस्ती। उ० निगम-अगम मूरति महेस-मति-जुवति बराय बरी। (गी० १।५५)
बरायन–(सं० वर+आयन)–लोहे का छल्ला जो ब्याह के समय दुलहे के हाथ में पहिनाया जाता है। उ० बिहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो। (रा० ५)
बरासन–दे० 'वरासन'। उ० बैठि बरासन कहहिं पुराना। (मा० ७।१००।५)
बराह–(सं० वराह)–शूकर, विष्णु का तीसरा अवतार। उ० धरि बराह बपु एक निपाता। (मा० १।१२२।४)
बराहा–दे० 'बराह'। उ० खगहा करि हरि बाघ बराहा। (मा० २।२३६।२)
बराहु–दे० 'बराह'। उ० नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु। (मा० १।१५६)
बराहू–दे० 'बराह'। उ० फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। (मा० १।१५६।३)
बरि–(सं० वट)–बरकर, बटकर। उ० मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी। (मा० ५।४८।३)
बरिआँइ–(सं० बल)–ज़बरदस्ती, हठपूर्वक। उ० प्रभु प्रसाद सौभाग्य बिजय-जस पांडु-तनय बरिआइँ बरै। (वि० १३७)
बरिआई–दे० 'बरिआइँ'। उ० करवाउब बिबाहु बरिआई (मा० १।८३।३)
बरिआत–दे० 'बरिआता'।
बरिआता–(सं० वर+यात्रा)–बरात, बारात। उ० जमकर धार किधौं बरिआता। (मा० १।९५।४)
बरिआर–(सं० बल+आर)–मज़बूत, बलिष्ठ, बलवान।
बरिआरा–दे० 'बरिआर'। उ० तपबल बिप्र सदा बरिआरा। (मा० १।१६५।२)
बरिनिआँ–(सं० वरु+जीवी)–दोना-पत्तल आदि बनानेवाली जाति की स्त्रियाँ। उ०कटि कै छीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो। (रा०८)
बरिबंड–(सं०बलवंत:)–१.बलवान, २.तेजस्वी, ३. दुष्ट, धृष्ट, प्रचंड। उ०प्रबल प्रचंड बरिबंड बरबेष बपु। (क० १।८)
बरिबंडा–दे० 'बरिबंड'। उ० १. रावन नाम बीर बरिबंडा। (मा० १।१७६।१)
बरियाँ–(सं० वेला)–समय, वक्त।
बरियाइँ–दे० 'बरिआई'।
बरियाई–दे० 'बरिआई'।
बरियार–(सं० बल)–१. बलवान, मज़बूत, २. समर्थ। उ० १. बीर बरियार धीर धनुधर राय हैं। (गी० २।२८)
बरियो–(सं० वल)–१. बली, बलिष्ट, २. समर्थ। उ० २. कोसलपति सब प्रकार बरियो। (गी० ५।२६)
बरिस–(सं० वर्षा)–साल, वर्ष। उ० जिअहु जगतपति बरिस करोरी। (मा० २।५।३)
बरिसन–(सं० वर्षा)–बरसने, बरसाने। उ० बरिसन लगे सुमन सुर। (जा० १०६) बरिसहिं–बरसते हैं। उ० देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। (मा० २।२१६।४) बरिसा–वर्षण किया, बरसा। उ० बारिद तपत तेल जनु बरिसा। (मा० ५।१५।२) बरिसो–बरसो, पानी बरसो। उ० राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो। (वि० २६४)
बरी (३)–(सं० बटी)–उर्द आदि की बड़ी जो खाने के काम आती है। उ० बरी बरी कै लोन। (दो० ५४६)
बरीसा–(सं० वर्ष)–वर्ष, साल। उ० जिअहु सुखी सय लाख बरीसा। (मा० २।१९६।३)
बरु (१)–(सं० बल)–बल, शक्ति। उ० दास तुलसी को, बलि, बड़ो बरु है। (वि० २५५)
बरु (२)–(सं० वर)–१. वरदान, २. दुलहा, दूल्हा। उ० १. होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु। (मा० ७।३५।१) २. पूजो मन कामना भावतो बरु बरि कै। (गी० १।७०)
बरु (३)–दे० 'बरुक'। उ० बारि मथे घृत होइ बरु सिकता तें बरु तेल। (दो० १२६)
बरुक–(सं० वर)–बल्कि, भले ही, चाहे।
बरुकु–दे० 'बरुक'। उ० निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। (मा० २।४७।४)
बरुण–(सं० वरुण)–१. जल के देवता, २. एक वृक्ष विशेष।
बरुन–दे० 'बरुण'। उ० बरुन पास मनोज धनु हंसा। (मा० ३।३०।६)
बरुनालय–दे० 'वरुणालय'। उ० पान कियो बिष भूषन भो, करुना-बरुनालय साइँ हियो है। (क० ७।१५७)
बरूथ–दे० 'वरूथ'। उ० १. जातुधान बरूथ बल भंजन। (मा० ७।५१।२) बरूथन्हि–समूहों को। उ० गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै। (मा० ५।३।१)
बरूथा–दे० 'बरूथ'। उ० २. हमरे बैरी बिबुध बरूथा। (मा० १।१८१।३)
बरे (२)–स्वीकार किया, माना। उ० रघुपति-भगति बरे हैं। (गी० ६।१३)
बरेखी–(?)–१. मँगनी, सगाई, २. भुजा पर पहनने का एक गहना।
बरेषी–दे० 'बरेखी'। उ०१. रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी। (मा० १।८१।२)

बरोरु–दे० 'बरोरू'।
बरोरू–(सं०वरोरु)–सुन्दरी, सुन्दर जंघेवाली स्त्री, हे सुंदरी। उ० जानसि मोर सुभाउ बरोरू। (मा० २।२६।२)
बर्ग–दे० 'वर्ग'। उ० नारि बर्ग जानइ सब कोऊ। (मा० ७।११६।२)
बर्ज–दे० 'बर्य'। उ० रामकथा मुनि बर्ज बखानी। (मा० १।४८।२)
बर्जित–दे० 'वर्जित'।
बर्बर–(सं०)–१. असभ्य, उजड्ड, जंगली,२. घुँघराले बाल, ३. बकी। उ० १. रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ज्ञान। (मा० ६।२५)
बर्म–दे० 'वर्म'। उ० जयति सुभग शारंग-सु-निखंग-सायक-सक्ति-चारु-चर्मासि-बरबर्म-धारी। (वि० ४४)
बर्य–(सं० वर्य)–श्रेष्ठ, उत्तम।
बर्रें–(सं० वरट)–भिड़, तितैया।
बलंद–(फ़ा०)–१. ऊँचा, ऊपर को उठा हुआ, २. भारी, बड़ा।
बल–(सं०)–१. शक्ति, ज़ोर, सामर्थ्य, बूता, २. बलदेव, ३. सेना, ४. स्थूलता, मोटाई, ५. शुक्र, बीज, ६. एक राक्षस, ७. वरुण नाम का वृक्ष। उ०१. अतुल बल विपुल विस्तार। (वि० ११) बलउ–बल भी। उ० बिधि बस बलउ लजान। (जा० ६७) बलधामा–बल के धाम, अत्यंत बली। उ० भयउ सो कुंभकरन बलधामा। (मा० १। १७६।२) बलधीर–बल तथा धैर्यवाला। उ० टरै न चाप, करैं अपनी सी महा-महा बलधीर। (गी० १।८७) बलनि–बल के। उ० जीते लोकनाथ नाथ बलनि भरम। (वि०२४६) बलमूल–बल की जड़, बलवान। उ०सुवा सो लँगूल बलमूल, प्रतिकूल हवि। (क० ५।७) बलसीम–बल की सीमा, बलवान। उ० कौन के तेज बलसीम भट भीम से। (क० ६।४५)
बलकल–(सं० वल्कल)–पेड़ों की छाल जो प्राचीन काल में पहनने के काम आती थी। उ० बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर। (मा० २।१६५)
बलकहीं–(?) बलबलाते हैं, व्यर्थ की बकवाद करते हैं। उ० बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकहीं। (क० ७।६८)
बलकावा–(?)–१. आपे से बाहर किया, २. नीचा दिखाया, झुकाया। उ० १. जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। (मा० ७।७१।१)
बलतोड़–बाल टूटने के कारण उत्पन्न फोड़ा। दे०'बरतोर'।
बलदाऊ–(सं० बलदेव)–बलराम। उ० 'सिगरियै हौं हीं खैहौं, बलदाऊ को न देहौं'। (कृ० २)
बलभैया–बलदेव, बलराम। उ० सैल-सिखर चढ़ि चितै चकित चित अति हित बचन कह्यौ बलभैया। (कृ० १६)
बलमीक–(सं०वाल्मीकि)–१.बाँबी, बिल,२.वाल्मीकि मुनि। उ०१. मरै न उरग अनेक जतन बलमीक बिबिध बिधि मारे। (वि० ११५)
बलय–(सं० वलय)–कंकण, चूड़ी, कड़ा। उ० मंजीर-नूपुर-बलय धुनि जनु काम-करतल तार। (कृ० १८)
बलवंत–(सं० बलवंतः) बलवान, बलशाली। उ० प्रभु माया बलवंत भवानी। (मा० ७।६२।५)
बलवंता–दे० 'बलवंत'। उ० कहँ नल नील दुबिदि बलवंता। (मा० ६।४३।१)
बलवान–(सं०बलवान्)बलवाला, शक्तिशाली। उ०हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान। (मा० ६।४८ क)
बलवाना–दे० 'बलवान'। उ० पच्छिम द्वार रहा बलवाना। (मा० ६।४३।२)
बलशाली–(सं० बलशालिन्)–बलवान, बलवाला।
बलसालि–दे०'बलशाली'। उ० बालि-बलसालि-बध-मुख्य हेतू। (वि० २५)
बलसाली–दे० 'बलशाली'। उ० बधे सकल अतुलित बलसाली। (मा० ५।२१।५)
बलसील–(सं० बलशील)–बलवान, बलिष्ट। उ० अंगद मयंद नल-नील बलसील महा। (क० ५।२६)
बलसीला–दे० 'बलसील'। उ० है कपि एक महा बलसीला। (मा० ६।२३।३)
बलहा–(सं० बलहन्)-१. श्लेष्मा, कफ़, २. बलनाशक।
बलाइ–(अर० बला)–बिपत्ति, बलाय। उ० बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै। (क० ५।१०)
बलाक–(सं०)–बक, बगला। उ० कामी काक बलाक बिचारे। (मा० १।३८।३)
बलाका–बगलों की पंक्ति।
बलाय–(अर० बला)–आपत्ति, आपदा, विपत्ति।
बलाहक–(सं०)–१. मेघ, बादल, २. पर्वत। उ०१. गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा। (मा० ६।८७।२)
बलि–(सं०)–१. प्रहलाद का पौत्र और विरोचन का पुत्र जो दैत्यों का राजा था। विष्णु ने बावन अवतार धारण कर इसे छला था। २. बलिदान, न्यौछावर। उ० १. वृत्र बलि बाण प्रहलाद। (वि० ५७) २. जानकी जीवन की बलि जैहौं। (वि० १०४) बलिहि–बलि को। उ० बलिहि जितन एक गयउ पताला। (मा० ६।२४।७)
बलित–(?)–१. घेरा हुआ, वेष्टित, २. सिकुड़न पड़ा हुआ, गंडेदार, सिमटा। उ० १. मंजु बलित बर बेलि बिताना। (मा० २।१३७।३) २. पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलिन लाल। (गी० ७।१८)
बलिदान–(सं०)–१. देवता पर कोई पूजा चढ़ाना, २. किसी जीव को किसी देवता को चढ़ाने के लिए मारना।
बलिष्ट–(सं० बलिष्ठ)–बहुत बलवान।
बलिहारी–(सं० बलि)–१. न्यौछावर, क़ुर्बान, २. बलिहारी जाती है, क़ुर्बान होती है। उ० २. कहहु तात जननी बलिहारी। (मा० २।५२।४)
बली–(सं०बलिन्)–बलवान। उ०बालि बली बलसालि दली सखा कीन्ह कपिराज। (दो० १५८)
बलीमुख–(सं० वलिमुख)–बंदर। उ० चली बलीमुख सेन पराई। (मा० ६।५।५)
बलु–(सं० वल)–ज़ोर, ताक़त। उ० चले बलु सबनि गह्यौ है। (गी० ४।२)
बलैया–(अर० बला)–बला, बलाय। मु० बलैया लेउँ–मंगला कामना करते हुए प्यार करूँ। उ० साहब न राम से बलैया लेउँ सीता की। (क० ६।५२)

बलौ–बल वाले दोनों। उ० कुंदेन्दीवर सुंदरावतिबलौ विज्ञान धामावुभौ। (मा० ४।१।श्लो० १)
बल्लभ–(सं० वल्लभ)–प्यारा, प्रिय। उ० ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड। (मा० ७।३७)
बवनहार–(सं० वपन)–बोनेवाला।
बवरि–(सं० मुकुल)–बौर, मंजरी।
बवा–(सं० वपन)–बोया, लगाया। उ० बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा। (मा० २।१६।३) बवै–बोवे। उ० बवै सो लवै निदान। (वै० ५)
बषान–(सं० व्याख्यान)–स्तुति, बड़ाई।
बषाना–(सं० व्याख्यान)–कहा।
बसंत–(सं० वसंत)–१. एक प्रसिद्ध ऋतु जिसका समय चैत और बैसाख है। २. फाग, ३. एक पर्व। उ० १. औरै सो बसंत, और रति, औरै रतिपति। (क० २।१७)
बसंता–दे० 'बसंत'।
बस (१)–(सं० वश)–अधीन, काबू में। उ० जिन्ह के बस सब जीव दुखारी। (मा० ७।१२०।४)
बस (२)–(सं० वसन)–१. बसता था, २. बसे। उ० १. बस मारीच सिंधुतट जहवाँ। (मा० ३।२३।४) २. राम भगति मनि उर बस जाके। (मा० ७।१२०।५) बसइ–बसती है। उ० बसइ जासु उर सदा अबाधी। (मा० ७।११६।३) बसउ–१. बसे, बस जावे, २. बसो। उ० २. बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ। (मा० १।८०।४) बसत–१. बसें, रहें, २. बसते हैं, रहते हैं, ३. बसते हुए, ४. बसता हूँ। उ० २. अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै। (वि० ४७) बसति (१)–(सं० वसन)–बसती हो, रहती हो। उ० बसति सो तुलसी हिए। (जा० ३६) बसतु–१. रहो, निवास करो, २. बसता। उ० १. बसतु मनसि मम काननचारी। (मा० ३।११।६) बसब–१. बसना, रहना, २. रहोगे, निवास करोगे। उ० २. जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्री भगवंत। (मा० ७।११३ ख) बससि–१. बसती हो, बसते हो, बसता है, २. बसनेवाली, रहनेवाली। उ० १. ईस सीस बससि, त्रिपथ लससि नभ-पताल-धरनि। (वि० २०) बसहिं–बसते हैं, निवास करते हैं। उ० सीय समेत बसहिं दोउ बीरा। (मा० २।२२५।३) बसहीं–बसते हैं, रहते हैं। उ० अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। (मा० २।१३२।४) बसही–बसता है, बस गया है। बसहु–१. ठहर जाओ, २. निवास करो। उ० १. बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान। (मा० १।१५६ क) बसा–(१)–१. निवास किया, २. ठहरा, रुका। बसि–बसकर, निवास करके, रहकर। उ० उर बसि प्रपंच रचै पंचबान। (वि० १४) बसिहहिं–बसेंगे। उ० सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें। (मा० ७।८५।३) बसी–टिकी, ठहरी। उ० बसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि। (गी० १।२४) बसे–१. रहे, निवास किए २. टिके, रुके। उ० २. जलु थलु देखि बसे निसि बीतें। (मा० २।२२६।१) बसेऊ–बस गई। उ० मंदोदरी सोच उर बसेऊ। (मा० ६।१४।३) बसैं–बस जावें, रहें। उ० बसैं सुबास सुपास होहि सब फिरि गोकुल रजधानी। (कृ० ४८) बस्यौ–१. बसा, २. बसा हुआ। उ० २. चाहत अनाथ-नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं। (वि० १८१)
बसकर्ता–(सं० वशकर्ता)–वश में करनेवाला।
बसकारी–(सं० वशकारिन्)–वश में रखनेवाला। उ० अंकुस मन गज बसकारी। (वि० ६३)
बसति (२)–(सं० वसति)–बस्ती, स्थान, नगर। उ० बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो। (क० ७।१८२)
बसन–(सं० वसन)–१. कपड़ा, वस्त्र, २. बसनेवाले। उ० १. दिव्य-भूषन-बसन। (वि० ४४)
बसबर्ती–(सं० वशवर्ती)–अधीन, वश में।
बसबास–(सं० वसन + वास)–निवास, रहना। उ० सुनि मुनि आयसु प्रभु कियो, पञ्चवटी बसबास। (प्र० २।७।१)
बसवर्ती–वश में रहनेवाला। उ० दसमुख बसवर्ती नर नारी। (मा० १।१८२।६)
बसहँ–बैलों पर। उ० भरि भरि बसहँ अपार कहारा। (मा० १।३३३।३) बसह–(सं० वृषभ)–बैल। उ० बसह बाजि गज पसु हियँ हारें। (मा० २।३२०।४)
बसा–(२)–(सं० वसा,–चर्बी, मज्जा।
बसाई (१)–(सं० वश)–बश चले। उ० काटिअ तासु जीभ जो बसाई। (मा० १।६४।२) बसात (१)–(सं० वश)–वश चलता है। बसाति–वश चला। उ० बिधि सों न बसाति। (गी० ५।७)
बसाइ–(सं० वास)–बसा करके। उ० बिधि की न बसाइ उजारो। (गी० २।६६) बसाइहौं–बसाऊँगी, टिकाऊँगी। उ० हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनंदनि भूपति-भवन बसाइहौं। (गी० १।१८) बसाई–(२)–टिकाया, ठहराया। बसावत–१. बसाता, बसाता है, २. टिकाता, ठहराता है। उ० १. आप पाप कों नगर बसावत। (वि० १४३) बसैहैं–बसावेंगे। उ० तिलक सारि अपनाय बिभीषन अभय-बाँह दै अमर बसैहैं। (गी० ५।२१) बसैहौं–बसाऊँगा, टिकाऊँगा। उ० मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद कमल बसैहौं। (वि० १०५)
बसाई (३)–(सं० वास)–१. बुरा महँकता है, गंधाता है, २. महकता है, अच्छा महँकता है, ३. वासयुक्त होकर, सुवासयुक्त होकर, ४. सुवासित कर देता है। उ० ३. अगरु प्रसंग सुगंध बसाई। (मा० १।१०।५) ४. निज गुन देइ सुगंध बसाई। (मा० ७।३७।४) बसात (२)–(सं० वास)–बुरा महँकता है, महँकता। उ० तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु। (दो० ३५५)
बसावन–(सं० वास) बसानेवाले, टिकानेवाले। उ० उथपे-थपन, उजार-बसावन। (वि० १३६)
बसिष्ठ–(सं० वसिष्ठ)–एक ऋषि जो राम के कुलगुरु थे। उ० भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। (मा० २।१७१।२)
बसीठ–(सं० अवसृष्ट)–दूत, संदेशवाहक। उ० प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। (मा० ६।६।५)
बसीठीं–'बसीठी' का बहुवचन। दे० 'बसीठी'। उ० त्रिबिध बयारि बसीठीं आई। (मा० ३।३८।५) बसीठी–संदेशा देने का काम, दूतत्व।

बसुंधरा—(सं० वसुंधरा)—पृथ्वी, धरती।
बसुधा—(सं० वसुधा)—पृथ्वी, धरती। उ० कमल सेष सम धर बसुधा के। (मा० १।२०।४) बसुधाहूँ—पृथ्वी पर भी, पृथ्वी को भी। उ० कीन्हेउ सुलभ सुधा बसुधाहूँ। (मा० २।२०६।३)
बसूला—(सं० वासि)—एक हथियार जिससे बढ़ई काम करते हैं।
बसेरा—(सं०वास) बसने का स्थान, घोंसला, घर, रहने की जगह। उ०मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा। (मा०२।३८।२) बसेरें—बसने में, बसने पर। उ० उजरें हरष बिषाद बसेरें। (मा० १।४।१) बसेरे—१. बसने पर, २. स्थान, निवास-स्थान, घर। उ० १. गोरस-हानि सहौं न कहौं कछु यहि ब्रजबास बसेरे। (कृ०३) २. निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर। (क० ७।१७४)
बसैया—बसनेवाले। उ० तुलसी तब के से अजहुँ जानिबे रघुबर-नगर-बसैया। (गी० १।६)
बस्ती—(सं० वसति)—बसने का स्थान, गाँव, आबादी। उ० बस्ती हस्ती हास्तनी देति न पति रति दानि। (स० १६५)
बस्तु—(सं० वस्तु)—चीज़, जिन्स। उ० मनि गन मंगल बस्तु अनेका। (मा० २।६।२)
बस्य—(सं० वश्य)—वश में, अधीन, वशीभूत। उ० रुचिर रूप-आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो। (वि०६२)
बह—(सं० वहन)—१. बहता है, चलता है, २. चले, बहे, ३. भार ढोवे। उ० १. सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। (मा०१।३०३।२) बहइ—१.चलता है, २.बहता है, ३.ढोता है। उ० १. बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। (मा० १। २८०।१) बहई—१. बहता है, २. ढोता है। उ० १. सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। (मा० १।६९।४) बहत—१. बहता है, प्रवाहित होता है, २. बहते हुए, ३. ढोता है, ४. ढोते हुए। उ० १. बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे। (मा०२।३११।३) बहति—१.बहती है, २.ढोती है। उ० १. दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी। (मा० ६।८७। छं० १) बहतु—१. बहता, २. वहन करना, ढोता, ३. धारण करना। उ० २. छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहतु हौं। (क० १।१८) बहते—१. वहन किया होता, धारण किया होता, २. प्रवाहित होते। बहसि—१. ढोता है, वहन करता है, धारण करता है, २. बहता है। उ० २. बिमल बिपुल बहसि बारि। (वि० १७) बहहिं—१. उठाते हैं, ढोते हैं, २. बहते हैं। उ० १. जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खर बृंद। (मा० ६। २६) बहहीं—१. बहते हैं, २. ढोते हैं। उ० १.सरिता सब पुनीत जलु बहहीं। (मा० १।६६।१) बहहू—ढो रहे हैं। उ० मुधा मान ममता मद बहहू। (मा० ६।३७।३) बहिबे—१. भुगतोगे, सहन करोगे, २. भोगना पड़ेगा, सहना पड़ेगा। उ० २. गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बहिबे ही। (कृ० ४०) बहिबो—बहना। उ० तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो। (वि० ८७) बही—बह निकली, बहने लगी। उ० अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही। (मा०१।२११। छं०१) बहे—१. बह गए, २. बहते, बिगड़े, गिरे। उ० २. बहे जात कइ भइसि अधारा। (मा० २।२३।१) बह्यो—१. बहा, २. बहा हुआ, गया, ३. बहता। उ० ३. महामोह-सरिता अपार महँ संतत फिरत बह्यो। (वि० ९२)
बहन (१)—(सं० वहन)—१. ढोने या धारण करने की क्रिया या भाव, २. जाना, बहना।
बहन (२)—(सं० भगिनी)—बहिन।
बहनु—ढोनेवाला, वाहन। उ० भवन बिभूति भाँग बृषभ बहनु है। (क० ७।१६०)
बहरावा—(फ़ा० बहाल)—भुलाया, टाला। उ० सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा। (मा० ५।२२।१)
बहरी (१)—(अर०)—एक शिकारी चिड़िया। उ० तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है। (क० ६।२६)
बहरी (२)—(सं० वधिर) जो न सुने। 'बहरा' का स्त्रीलिंग।
बहाई—(सं० वहन)—बहाया है, बहा दिया है। उ० दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई। (मा० ७।४९।४) बहावै—दूर कर देता है। उ० मोह अंध रबि बचन बहावै। (वै० २२) बहैहौं—(सं० वहन)—बहा दूँगा, अलग कर दूँगा, बर्बाद कर दूँगा। उ० नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं। (वि० १०४)
बहि—(सं० बाह्य)-बाहर, अलग, दूर। उ० त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहि काढ़न। (वि० २१)
बहिनी—(सं० भगिनी)—बहन, भगिनी। उ० सूपनखा रावन कै बहिनी। (मा० ३।१७।२)
बहिर—(सं० वधिर)—जो न सुने, बहरा।
बहिर्मुख—(सं०)—१. विमुख, बिरुद्ध, २. अधर्मी, ३. बाग़ी।
बहु (१) (सं०)—अधिक, अनेक। उ० तुलसी अभिमान महिषेस बहु कालिका। (वि० ४८) बहुबाहू—बहुत सी भुजाओंवाला, रावण। उ० नाहिं त अस होइहि बहुबाहू। (मा० ३।२६।८)
बहु (२)—(सं० वधू)—बहू, बधू।
बहुत—(सं० बहुतर)—अधिक, झुंड, समूह, अनेक, बहु। उ० बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। (मा० २।२५६।३) बहुतक—बहुत से, अनेक। उ० बहुतक बीर होहिं सतखंडा। (मा० ६।६८।३) बहुतन—बहुत से, बहुतों ने। उ० बहुतन परिचौ पायो। (गी० १।१४) बहुते—बहुत, अधिक। उ० बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया। (मा० १।१२८।३) बहुतेन्ह—बहुतों को। उ० बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका। (मा० ७।३१।१) बहुतै—बहुत से। उ० बूढ़ भये, बलि, मेरेहि बार, कि हारि परे बहुतै नत पाले। (ह० १७)
बहुताई—१. बहुतता, अधिकता, बहुत्व, बहुतायत, २. विस्तार। उ० १. चले बिलोकत बन बहुताई। (मा० ३।३३।२) २. चितव कृपाल सिंधु बहुताई। (मा० ६। ४।२)
बहुतेरे—(सं० बहुतर+एरा)—बहुत से, अधिक, अनेक। उ० अवलोके रघुपति बहुतेरे। (मा० १।५५।२)
बहुतेरो—बहुत से, बहुत। उ० पर-गुन सुनत दाह, पर-दूषन सुनत हर्ष बहुतेरो। (वि० १४३)

बहुधा-(सं०)-प्रायः, अक्सर, २. बहुत प्रकार के, बहुत तरह के। उ० २. धनहीन दुखी ममता बहुधा। (मा० ७।१०२।१)

बहुरंग-दे० 'बहुरंगा'। उ० १. सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा। (मा० १।३७।३)

बहुरंगा-(सं०बहु + रंग)-१.बहुत से रंगोंवाला, रंगबिरंगा। २. तरह तरह का। उ० २. देखउँ बालचरित बहुरंगा। (मा० ७।७५।४)

बहुरहिं-(प्रा० पहोलन)-१. बहुरते हैं, लौटते हैं, २. लौटेंगे, फिरेंगे। उ० २. मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। (मा० २।२५३।२) बहुरि-१. पुनः, २. फिर, लौट, ३. लौटकर, फिरकर। उ० २. आवहिं बहुरि रामु रजधानी। (मा० २।१८३।४) बहुरे-फिरे, लौटे। उ० बहुरे लोग रजायसु भयऊ। (मा० १।३६१।२) बहुरो-१. फिर, पुनः, २. लौटे, फिरे। उ० १. बहुरो भरत कह्यो कछु चाहैं। (गी० २।७३)

बहुल-(सं०)-प्रचुर, बहुत, अधिक, पर्याप्त। उ० बहुल वंदारु-वृंदारका वृंद-पद-द्वंद। (वि० ५४)

बहू-(सं० वधू)-बधू, सौभाग्यवती स्त्री।

बहूता-(सं० बहुतर)-बहुत, अधिक। उ० तात मोर अति पुन्य बहूता। (मा० ५।४।४)

बहेड़ा-(सं० बिभीतक)-एक विशेष पेड़ या उसका फूल। यह निषिद्ध वृक्षों में गिना जाता है।

बहेरा-दे० 'बहेड़ा'। बहेरे-दे० 'बहेड़ा'। उ० नाम-प्रसाद लहत रसाल-फल अब हौं बबुर बहेरे। (वि० २२७)

बहोर-(प्रा० प्रहोलन)-बहोरनेवाला, लौटानेवाला, फिर से ले आनेवाला। उ० गई बहोर गरीब नेवाजू। (मा० १।१३।४)

बहोरि-१. फिर, दोबारा, दोहरैया, २. लौटानेवाला, ३. लौटाकर, फेरकर, ४. फेरी। उ० १. जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। (मा० १।३६।२)

बहोरी-दे० 'बहोरि'। उ० १. प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। (मा० १।१६।१)

बाँक-(सं० वक्र)-१. टेढ़ा, घुमावदार, २. एक शस्त्र, ३. हाथ का एक आभूषण। उ० दे० 'होइहि बारु न बाँक'। मु० होइहि बारु न बाँक-बाल न टेढ़ा होगा, कुछ भी बुरा न होगा। उ० सकल सगुन मंगल कुसल, होइहि बारु न बाँक। (प्र० ६।३।४)

बाँका-(सं० वक्र)-१. टेढ़ा, २. बहादुर, वीर, ३. छैला, बना ठना आदमी, ४. पैना, तेज़, ५. कुशल, चतुर, ६. सुंदर, अनूठा। बाँकी-(सं० वक्र)-१. टेढ़ी, तिरछी, २. गहरी, ३. विकट, ४. अपूर्व, चोखी, अनोखी, ५. तीव्र, ६. सुंदर, मनोहर। उ० ३. सुनत हनुमान की हाँक बाँकी। (क० ६।४४) ४. बाँकी बिरदावली बनैगी पाले ही कृपालु। (वि०२५१)६.चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। (मा० १।२१९।४) बाँके-अच्छे, मज़े के। उ० कहाँ हनुमान से बीर बाँके। (क० ६।४५)

बाँकुर-दे० 'बाँका'। उ० ६. जौ जग-बिदित पतित-पावन अति बाँकुर बिरद न बहते। (वि० ९७)

बाँकुरा-दे० 'बाँका'। उ० २. रन बाँकुरा बालिसुत बंका। (मा० ६।१८।१) बाँकुरे-दे० 'बाँका'। उ० ६. बाँकुरे बिरद बिरुदैत केहि केरे। (वि० २१०)

बाँकुरो-दे० 'बाँका'। उ० ६. बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली। (ह० ३)

बाँको-(सं० वक्र)-१. बाँका, टेढ़ा, २. सुंदर, सुघर। उ० १. होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै। (वि० १३७) मु० होइ न बाँको बार-कुछ भी हानि न हो। उ० दे० 'बाँको'।

बाँगुरो-(?) जाल, फंदा। उ० तुलसिदास यह बिपति-बाँगुरो तुमहि सों बनै निबेरे। (वि० १८७)

बाँच (१)-(सं० वाचन)-बाँचकर, पढ़कर। बाँचन-बाँचते समय, पढ़ते समय। उ० बारि बिलोचन बाँचत पाती। (मा०१।२९०।२)बाँचि (१)-(सं०बाचन)-पढ़कर, बाँचकर। बाँची (१)-(सं०वाचन)-१.पढ़ी,२. पढ़कर। उ०१. पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। (मा० १।२९०।३) बाँचो (१)-(सं० वाचन)-१. पढ़ो, पाठ करो, २. अवलोकन करो, देखो। उ० १. बिनयपत्रिका दीन की, बापु! आपु ही बाँचो। (वि० २७७)

बाँच (२)-बचा, शेष रहा। बाँचा-१.बचा, जीवित रहा,२. बचाया। उ० २.बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। (मा० १। २७५।२) बाँचि (२)-(सं०वंचना)-१. बचे, शेष रहे २. बचे, रक्षा पाये, ३.बचाकर, रक्षा कर। उ० १.बड़े ही की ओट, बलि, बाँचि आए छोटे हैं। (वि० १७८) बाँचिय-बचेंगे, बचें, शेष रहें। उ० देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय। (पा०११९) बाँची (२)-(सं०वंचना)-बचा कर, छोड़ कर, २.बची, शेष रही, छूटी, ३. बचे, शेष रहे। उ० २. बिरचे बिरंचि बनाइ बाँची रुचिरता रंचौ नहीं। (जा० ३६) ३.सो माया रघुबीरहि बाँची। (मा०६।८६।४) बाँचु-१. बँचे, २ बँचा। बाँचैं-१. बचे, शेष रहे, २. बचते हैं, बच जाते हैं। उ० २. तुलसी बाँचैं संत जन, केवल सांति-अधार। (वै० ५३) बाँचो (२)-बचा, शेष रहा। उ० बड़ी ओट राम नाम की जेहि लई सो बाँचो। (वि० १४९)

बाँझ-(सं० वंध्या)-वह स्त्री या किसी प्राणी की मादा जिसे संतान न हो। उ० जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ, गई किन च्वै। (क० ७।४०)

बाँझा-दे० 'बाँझ'।

बाँट-(सं० वितरण)-भाग, अंश, हिस्सा। उ० बिप्रद्रोह जनु बाँट पर्यो, हठि सब सों बैर बढ़ावौं। (वि० १४२)

बाँटि-बाँटकर। बाँटी-(सं० वितरण)-१ बाँट ली, बँटाया, २. हिस्सा किया, ३. हिस्सा करके दिया। उ० १ .बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई। (मा० २।३०६।३)

बाँध-(सं०बंधन)-बाँध देता है। उ० मम पद मनहि बाँध बरि डोरी। (मा०५।४८।३) बाँधई-बाँधे, रोके। उ०तुलसी भली सो बैदई बेगि बाँधई ब्याधि। (स० ४९) बाँधत-१. बाँधता है, जकड़ता है, बंधन में डालता है, २. बाँधते हुए। उ० २. कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यों? (मा० ३।१८।छं० १) बाँधहु-बाँधो। उ० धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ। (मा० १।२६६।२) बाँधा-बाँध दिया। उ० बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई। (मा०

६।२८।१) बाँधि–१. पुल बाँधकर, २. बाँध, बाँध कर। उ० १. राम बाँधि उतरे उदधि लाँघि गए हनुमान। (दो० ५२८) बाँधियैगी–बाँधेगी। उ० जानी है जानपनी हरि की, अब बाँधियैगी कछु मोटि कला की। (क० ७।१३४) बाँधी-बाँध दी। बाँधे–बाँधा, बाँध लिया। उ० उ० जिन बाँधे सुर असुर नागनर प्रबल करम की डोरी। (वि० ९८) बाँधेउ–दे० 'बाँधे'। बाँधेसि–बाँध दिया। उ० हय गृहँ बाँधेसि बाजि बनाई। (मा० १।१७१।४) बाँधेसु–बाँधना, बाँध लेना। उ० मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। (मा०१।१९।१) बाँधेहु–बाँध लो। बाँधै–१. बाँधो, २. बाँध ले। उ० १. मेरो कह्यो मानि तात! बाँधै जिनि बेरै। (गी० ५।२७) बाँध्यो–बाँधा, बाँध दिया। उ० सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति बाँध्यौ हठि सकत न छोरी। (वि० ९८)

बाँय–(सं० वाम)–बाँयें, दायें का उलटा। उ० घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं बिधि बाँय। (गी० ७।३१)

बाँया–१. बाँयीं ओर का, २. उलटा।

बाँयो–बायाँ।

बाँवों–बाँयाँ। मु० दियो बावों–१. न माना, टाल दिया, २. अनादर किया, विरोध किया, ३. बँचकर निकल गया। उ० १. जो दसकंठ दियो बाँवों जेहि हर-गिरि कियो है मनाकु। (गी० १।८७)

बाँस–(सं० वंश)–१. बाँस नाम का एक पेड़, २. ज़मीन नापने की लग्गी, ३. बल्लम, भाला, ४. लाठी। उ० ३. फरसा बाँस सेल सम करहीं। (मा० २।१९१।३)

बाँह–(सं० वाहु)–१. भुजदंड, भुजा, बाहु, २. शरण, रक्षा, पनाह, ३.सहायता, बल, मदद। उ० १.सुरपति बसइ बाहँ बल जाकें। (मा० २।२५।१) मु० बाँह बस्यो हौं–शरण में हूँ। उ० चाहत अनाथ-नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं। (वि० १८१) बाँह बोल दे–अपना भरोसा देकर। उ० बाँह बोल दै थापिए जो निज बरिआई। (वि० ३५) बाँह बोलि–आश्वासन या भरोसा देकर। उ० मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि। (वि० ७६) बाँह बोले की–शरण में लेने की, सहायता की प्रतिज्ञा करने की। उ० लाज बाँह बोले की, नेवाजे की, सँभार सार। (क० ७।५२)

बा–(सं० वा)–या, अथवा।

बाइ–(सं० व्यापन)-फैलाकर, खोलकर। उ० मुख बाइ धावहिं खान। (मा० ६।१०१।छं० ३) बाई (१)–(सं० व्यापन)–१. खुली, २. खोली।

बाइन–(सं० वायन)–१. भेंट, उपहार, खुशी के उपलक्ष में बाँटी गई मिठाई आदि, २. पेशगी, अगवढ़।

बाई (२)–(?) स्त्री, अबला।

बाउ (१)–(सं० वायु)–हवा, पवन। उ० संतत बहै त्रिबिध बाउ। (गी० २।४४)

बाउ (२)–(फ़ा० वाह)–१. धन्यवाद, २. वाह।

बाउर–(सं० वातुल)–बौड़म, पागल, बौरहा। उ०तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा। (मा० १।९६।४) बाउरि–बावली, पगली। उ० बौरेहि के अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि। (पा० ७०)

बाऊ–(सं० वायु)–हवा, पवन। उ० सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। (मा० १।१९१।२)

बाएँ–(सं० वाम)–१. बाईं ओर, २. बायाँ, ३. विरोधी, प्रतिकूल। मु० बाएँ लाइ–न मानकर, अवहेलना कर। उ० आयसु लाइ रजायसु बाएँ। (मा० २।३००।१)

बाक्य–(सं० वाक्य)–बचन।

बाग (१)–(सं० वाक्)–वाणी, बचन। उ० मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषण। (मा० २।४१।३) बागहीं–वाणी से, मुँह से, जीभ से। उ० एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं। (मा० ६।९०।छं० १)

बाग (२)–(अर० बाग़)–बगीचा, उपवन, उद्यान। उ० पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु। (मा० १।३७) बागन्ह–(अर० बाग़)–बाग़ों में, बाटिकाओं में। उ० बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। (मा० २।८३।४)

बाग (३)–(सं० वल्गा)–लगाम, बागडोर।

बागत (१)–(सं० वक=चलना)–चलते, फिरते, टहलते हुए। उ० बैठे उठे जागत बागत सोए सपने। (क० ७।७८) बागिहै–भटकता फिरेगा। उ० पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै। (वि० ७०) बागे–फिरे, डोले। उ० चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग बागे। (वि० १७०)

बागत (२)–(सं० वाक्)–बोलते हुए। उ० जागत बागत सपने न सुख सोइहै। (वि० ६८)

बागबान–(फ़ा० बाग़बान)–माली, बाग़ की देख रेख करनेवाला। उ० मारे बागबान ते पुकारत देवान गे। (क० ५।३१)

बागा–दे० 'बाग'। बगीचा। उ० करि प्रनामु देखत बन बागा। (मा० २।१०६।२)

बागीसा–(सं० वाग+ईश)–आकाशवाणी। उ० जानेहु तब प्रमान बागीसा। (मा० १।७५।२)

बागु–दे० 'बाग'। बगीचा। उ० बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत। (मा० १।२२७)

बागुर–(?)–पशु या पक्षी आदि फँसाने का जाल। उ० बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस। (मा० २।७५)

बागुरा–दे० 'बागुर'। बागुरी–दे० 'बागुर'।

बागुरि–दे० 'बागुर'।

बाघ–(सं० व्याघ्र)–शेर, सिंह, नाहर। उ० तिन्हके बचन बाघ हरि ब्याला। (मा० १।३८।४) बाघउ–बाघ भी। उ० बाघउ सनमुख गएँ न खाई। (मा० ६।७।१) बाघिनि–दे० 'बाघिनी'। उ० मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी। (मा० २।५१।१)

बाघिनी–बाघ की स्त्री, शेरिनी।

बाचक–(सं० वाचक)–कहने या बाँचनेवाला।

बाचत–(सं०बाचन)–१.बाँचते या पढ़ते हैं, २.बाँचते समय, पढ़ते समय। उ०२.बाचत प्रीति न हृदयँ समाती। (मा०१।२९१।३) बाचा–१. पढ़ा, पाठ किया, २. बोलने की शक्ति, ३. बचन, बात, वाणी, ४. सरस्वती। उ० ३. मनसा वाचा कर्मना, तुलसी बंदत ताहि। (वै० २६) ४. रावन

कुंभकरन बर माँगत सिव बिरंचि बाचा छले। (गी० ५।४१) बाचि-बाँचकर, पढ़कर । उ० जनक पत्रिका बाचि सुनाई। (मा० १।२९१।१) बाचिहै (१)-पढ़ेगा ।

बाचाल-(सं० वाचाल)-बोलने में तेज़, बकवादी। उ० मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन। (मा० १।१। सो० २)

बाचाला-दे० 'बाचाल'। उ० धन मद मत्त परम बाचाला। (मा० ७।९७।२)

बाचिहै (२)-(सं० वंचन)-बचेगा, शेष रहेगा। उ० बाचिहै न पाछे त्रिपुरारिहू मुरारिहू के। (क० ६।१)

बाज (१)-(सं० वाद्य)-१. बजने लगे, २. बज सकता है। उ० १. गावहिं गीत सुवासिनि बाज बधावन। (जा० १२७) बाजइ-बजता है। उ० कर कंकन, कटि किंकिनि, नूपुर बाजइ हो। (रा० ११) बाजत-१. बजता है, शब्द करता है, २. लड़ता है, युद्ध करता है। उ० १. राजत बाजत बिपुल निसाना। (मा० १।२९७।३) बाजन-(सं० वाद्य)-१. बाजा, वाद्य, २. बजने, शब्दायमान होने। उ० १. कोटिन्हि बाजन बाजहिं दसरथ के गृह हो। (रा० २) २. बिपुल बाजने बाजन लागे। (मा० १। ३४८।२) बाजने-१. बाजे, २. बजने, ३. लड़ने। उ० १. दे० 'बाजन' का 'उ० २.'। बाजनेऊ-बाजे भी। उ० बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ। (क० १।८) बाजहिं- बजते हैं, बज रहे हैं। उ० बिबिध प्रकार गहगहे बाजन बाजहिं। (जा० २०५) बाजा-(सं० वाद्य)-१. कोई बजनेवाली चीज, २. लड़ा, लड़ गया, ३. बजा, शब्दायमान हुआ। उ० २. तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। (मा० ५।१९।४) बाजिहैं-बाजेंगे, बजेंगे। उ० लंका खरभर परैगी, सुरपुर बाजिहैं निसान। (गी० १।१९) बाजी (२)-(सं० वाद्य)-१. बजी, २. लड़ी। उ० २. सेइ साधु गुरु, सुनि पुरान स्रुति बूझ्यो राग बाजी ताँति। (वि० २३३) बाजे (१)-(सं० वाद्य)-१. बजने के यंत्र, २. बजने लगे। बाजै-बजता है। उ० सुसमय दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजै। (वि० ८०)

बाज (१)-(अर० बाज़)-एक प्रसिद्ध शिकारी पक्षी।

बाज (३)-(फ़ा० बाज़)-बिना, रहित। उ० दीनता दारिद दलै को कृपा बारिधि बाज। (वि० २१९) मु० आए बाज-छोड़ा, तर्क किया। उ० कहे की न लाज, पिय ! अजहूँ न आए बाज। (क० ६।२४)

बाजपेई-अश्वमेध यज्ञ करनेवाला। उ० कौन गजराज धौं बाजपेई। (वि० १०६)

बाजराज-बाज, बड़ा बाज। उ० बाजराज के बालकहि लवा दिखावत आँखि। (दो० १४४)

बाजार-(फ़ा० बाज़ार)-जहाँ दूकानें हों। उ० बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए। (मा० ७।२८। छं० १)

बाजि-(सं०बाजिन्)-घोड़ा, अश्व। उ० चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। (मा० १।१५६।२)

बाजी (२)-(फ़ा० बाज़ी)-१. खेल, २. ऐसी शर्त जिसमें हार जीत के अनुसार कुछ लेन-देन भी हो। शर्त, ३. प्रतिज्ञा, ४. प्रतिष्ठा। उ० ३. जग जाचत दानि दुतीय नहीं तुमहीं सब की सब राखत बाजी। (क० ७।९५) ४. तुलसी की बाजी राखी। (म० ७।६७) मु० बाजी राखी-खेल में जिताया। उ० तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम। (क० ७।६७)

बाजी (३)-(सं० बाजिन्)-घोड़ा, अश्व। उ० आवत देखि अधिक रव बाजी। (मा० १।१५७।१)

बाजीगर-(फ़ा० बाज़ीगर)-जादूगर। उ० बाजीगर के सूम ज्यों, खल ! खेह न खातो। (वि० १५१)

बाजु-दे० 'बाज (२)'। उ० भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचलु भयंकरु बाजु। (मा० २।२८)

बाजू-दे० 'बाज (२)'। उ० लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू। (मा० २।२३०।३)

बाजे (२)-(फ़ा० बाज़)-कोई, कोई कोई। उ० बाजे बाजे बीर बाहु धुनत समाज के। (क० १।८)

बाट-(सं० बाट)-रास्ता, पथ, राह। उ० घाट बाट पुर द्वार बजार बनावहिं। (जा० २०४) मु० बाट परै-नाश हो, बर्बाद हो। उ० बाट परै मोरि नाव उड़ाई। (मा० २।१००।३)

बाटा-दे० 'बाट'। उ० मुख नासा श्रवनन्हि की बाटा। (मा० ६।६७।२)

बाटिकाँ-उपवन में फुलवारी में। उ० विप बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि। (मा० २।५९) बाटिका-(सं० वाटिका)-फुलवाड़ी, उपवन। उ० बन बाटिका बिहग मृग नाना। (मा० २।२१५।२)

बाड़वानल-(सं० बाड़व+अनल)-समुद्र की आग।

बाढ़ (१)-(सं० बाट)-धार, तलवार आदि की धार।

बाढ़ (२)-(सं० वृद्धि)-१. बढ़ाव, बढ़ना, २. नदी में पानी का बढ़ना, ३. बढ़ती है। उ० ३. प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा। (मा० ४।१५।६) बाढ़इ-१. बढ़ जायगी, २. बढ़े। उ० १.बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ। (मा०१।१२।३) बाढ़त-१. बढ़ता, उमड़ता, २. बढ़ते हुए। उ० १. नित नूतन सब बाढ़त जाई। (मा० १।१८०।१) बाढ़ति-बढ़ती हुई। उ० प्रेमतृषा बाढ़ति भली। (दो० २७९ बाढ़न-१. बढ़ने, वृद्धि करने, २. बढ़नेवाला। उ० १. जमुना ज्यों-ज्यों लागी बाढ़न। (वि० २१) बाढ़हिं-बढ़ते हैं, बढ़ जाते हैं। उ० बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी। (मा० १। १२१।३) बाढ़हीं-बढ़ती हैं। बाढ़ा-बढ़ा, बढ़ गया। उ० बेधु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। (मा० १।१३५।४) बाढ़ि-१. बढ़ती, वृद्धि, २. बढ़ी। उ० १. बिभव-बिलास बाढ़ि दसरथ की देखि न जिनहिं सोहानी। (गी० १।४) बाढ़ी-बढ़ी, बढ़ गई। उ० पाय-प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि। (दो० ४६४) बाढ़े-१. बढ़े, २. बढ़ने पर। उ० २. तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़े। (क० ७।५४) बाढ़ेउ-दे० 'बाढ़े'।

बाण-(सं०)-१. शर, विशिख, तीर, २. 'बाण' नाम का असुर जो बलि के सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था। उ० २. बृत्र बालि बाण प्रह्लाद मय व्याध गज गृद्ध द्विजबंधु निज धर्म-त्यागी। (वि० ५७)

बाणी-(सं० वाणी)-१. बचन, बोली, भाषण, उक्ति, २. सरस्वती।

बात (१)-(सं० वार्ता)-१. कथन, जो कहा जाय, बचन, २. कथा। उ० १. बात चले बात को न मानिबो बिलग बलि। (क० ७।१६) बातन-बातों से। उ० तिमि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई। (वि० १२३) बातन्ह-बातों से, बात करने से। बातहि-बात ही। उ० बातहि बातहि बनि पड़े। (स० ५६८) बातहू-बात भी। उ० बातहू किंतिक तिन तुलसी तनक की। (क० ७।२०) बातें-'बात' का बहुवचन। बातैं-'बात' का बहुवचन। बहुत से बचन। उ० सुसुकि सभीत सकुचि रूखे मुख बातैं सकल सवाँरी। (कृ० ६) बातो-बात भी। उ० जौ पै कहुँ कोउ बूझत बातो। (वि० १७७)

बात (२)-(सं०वात)-वायु, पवन। उ० लपट-झपट झहराने, हहराने बात। (क० ५।८)

बातसंजात-वायु के पुत्र हनुमान। उ० जयति बातसंजात। (वि० २८)

बाता-दे० 'बात'। बात, बचन। उ० भए बिकल मुख आव न बाता। (मा० १।७३।४)

बाति-दे० 'बाती'। उ० दीप बाति नहिं टारन कहऊँ। (मा० २।५६।३)

बाती-(सं० वर्तिका)-बत्ती, पलीता। उ० नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती। (मा० ७।१२०।२)

बातुल-(सं० वातुल)-पागल, सनकी। उ० बातुल भूत बिबस मतवारे। (मा० १।११५।४)

बाद-(सं० वाद)-बहस, तर्क, कलह। उ० प्रभु सों निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं। (क० २।८)

बादर-(सं० वारिद)-बादल, मेघ। उ० उमगि चलेउ आनंद भुवन भुइँ बादर। (जा० २१०)

बादल-(सं० वारिद)-मेघ, बदली।

बादले-बादल, मेघ। उ० बहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले। (मा० ६।४६।छं० १)

बादहिं-(सं० वाद) विवाद करते, तर्क करते हैं। उ०बादहिं सूद्र द्विजन सन, हम तुम तें कछु घाटि? (दो० ५५३)

बादि-(सं० वादि)-व्यर्थ, झूठ-मूठ। उ० नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। (मा० २।७५।१) बादिहिं-व्यर्थ ही। उ० जनम गयो बादिहिं बर बीति। (वि० २३४)

बादिनि-१. बोलनेवाली, २. झगड़ालू, कलहप्रिय। उ० १. प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। (मा० २।१५।१)

बादिनी-दे० 'बादिनि'।

बादी-(सं०वादिन्)-१. कहनेवाला, बोलनेवाला, २. झगड़ालू, विवाद करनेवाला, ३. वाला। उ० ३. प्रभु जे मुनि परमारथ बादी। (मा० १।१०८।३)

बाद्य-(सं० वाद्य)-बाजा, बजनेवाला यंत्र।

बाधक-(सं०)-रुकावट डालनेवाला, हानिकर। उ० जो न होहिं मंगलमय सुर बिधि बाधक। (पा० ३५) बाधको-बाधकउ, बाधक भी। उ० जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाधको। (क० ७।६८)

बाधा-(सं०)-१. विघ्न, रुकावट, अड़चन, २. संकट, कष्ट। उ०१.करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। (मा०१।१३७।२) २. सपने ब्याधि बिबिध बाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई। (वि० १२०)

बाधित-(सं०)-रोका हुआ।

बाधिये-रोकिए, रोके देना चाहिए। बाधी-बाधा को प्राप्त हुई, रुकी, बाधित हो गई। उ० सुमिरत हरिहि आप गति बाधी। (मा० १।१२५।२)

बान (१)-(सं० वाण)-१. बाण, तीर, २. 'बाण' नाम का असुर। उ० १. दस-दस बान भाल दस मारे। (मा० ६। ६२।४) २. रावन बान छुआ नहिं चापा। (मा० १. २५६।२) बानन्ह-बाणों से। उ० पुनि निज बानन्ह कीन्हि प्रहारा। (मा० ६।८३।३)

बान (२)-(सं० वर्ण)-१. रंग, वर्ण, २. चमक, दीप्ति, पानी। उ० २. कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। (मा० २।२०५।३) मु० बान चढ़इ-पानी चढ़ने पर, ओप आने पर। उ० दे० 'बान (२)'।

बानइत-(सं० वाण+ऐत)-१. बानैत, तीरअंदाज़, तीर चलाने वाला, २. सैनिक, योद्धा, ३. प्रख्यात, प्रसिद्ध। उ० १. लोकपाल महिपाल बात बानइत। (गी० १।१०१) २. रोप्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत। (क० ६।३०) ३. दानि दसरथ राय के तुम बानइत-सिरताज। (वि० २१६)

बानक-(सं० वर्णन)-१. वेश, सजधज, बनाव, २. ख्याति, नामवरी। उ० १. मैं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने। (वि० १६०)

बानति-(सं० वर्णन)-बनती है। उ० कछु कहत न बानति। (गी० ७।१७)

बानधर-बाण धारण करनेवाला, कमनैत।

बानर-(सं० वानर)-बंदर, मर्कट। उ० बानर-बाज! बढ़े खल खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से? (ह० १८) बानरहि-बानर का। उ० नर बानरहि संग कहु कैसें। (मा० ५।१३।६)

बाना (१)-दे० 'बान (१)'। उ० १. चले सुधारि सरासन बाना। (मा० ६।७०।३)

बाना (२)-दे० 'बानक'। उ० १. जनु बानैत बने बहु बाना। (मा० ३।३८।२)

बाना (३)-(सं० वर्ण)-स्वभाव, प्रकृति।

बानि (१)-दे० 'बानी (१)'। उ० २. बानि विनायकु अंब रवि, गुरु हर रमा रमेस। (प्र० १।१।१)

बानि (२)-दे० 'बानी (२)'। उ० तजहि तुलसी समुझि यह उपदेसिबे की बानि। (कृ० ५२)

बानिक-(सं० वर्णन)-वेष, सजधज, बनाव, सिंगार। उ० आपनी-आपनी बर बानिक बनाइ कै। (गी० १।८२)

बानिहि-(सं० वाणी)-वाणी को। उ० पर अपवाद-विवाद-बिदूषित बानिहि। (पा० ४) बानी (१)-१. बात, वाणी, बयन, २. सरस्वती। उ० १. तुलसी करु बानि बिमल बिमल-बारि-बरनि। (वि० २०) २. बानी बिधि गौरी हर सेसहू गनेस कही। (क० १।१६)

बानी (२)-(सं० वर्णन)-आदत, लत, टेव। उ० १. लरिकाइहि तें रघुबर बानी। (मा० २।२७४।३)

बानी (३)-(सं० वणिक्)-बनिया।

बानु-(सं० बाण)-१. बाणासुर नाम का प्रसिद्ध असुर, २. बाण, तीर। उ० १. तथा २. बानु-बानु जिमि गयउ गवहिं दसकंधरु। (जा० १०३)

बानैत (१)-(सं० वर्णन)-बनानेवाला, निर्माता।

बानैत (२)-(सं० बाण)-१. बाण चलानेवाला, धनुर्धर, २. वीर, ३. नामवर, प्रसिद्ध। उ० १. बर बिपुल बिटप बानैत बीर। (गी० २।४६)

बानैत (३)-(?)-प्रण या बात का पक्का। उ० बाहु-बली, बानैत बोल को, बीर बिस्वबिजयी जई। (गी० ५।३८)

बानो-(सं० वर्ण)-बाना, स्वरूप। उ० लहि नाथ हौं रघुनाथ बानो पतितपावन पाइ कै। (गी०३।१७)

बाप-(सं० वाप)-पिता, जनक। उ० बाप आपने करत मेरी घनी घटि गई। (वि० २५२)

बापड़ा-दे० 'बापुरा'।

बापरो-दे० 'बापुरा'।

बापिका-(सं० वापिका)-बावली, छोटा तालाब। उ० देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव। (क० ५।१)

बापीं-बावलियाँ, तालाब। दे० 'बापिका'। उ० बापीं कूप सरित सर नाना। (मा० १।२१०।३)

बापु-दे० 'बाप'। उ० बिनय पत्रिका दीन की, बापु! आपु ही बाँचो। (वि० २७७)

बापुरा-(?)-तुच्छ, बेचारा, असमर्थ, दीन। बापुरे-बेचारे। दे० 'बापुरा'। उ० बापुरे बराक और राजा राना राँक को। (ह० १२)

बापुरो-बेचारा। दे० 'बापुरा'। उ० को बापुरो पिनाक पुराना। (मा० १।२५३।३)

बाम (१)-(सं० वाम)-१. बायाँ, २. उलटा, प्रतिकूल, ३. टेढ़ा, कुटिल, खोटा, ४. कामदेव, ५. महादेव। उ० १. राम बाम दिसि सीता सोई। (मा० १।१४८।२) २. राम से बाम भए तेहि बामहि। (क० ७।२) ३. पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम। (ह० ३२) बामहि-कुटिल को। उ० राम से बाम भए तेहि बामहि बाम सबै सुख संपति लावैं। (क० ७।२) बामहू-विमुख या प्रतिकूल के लिए भी। उ० पतित-पावन नाम, बामहू दाहिनो, देव। (वि० २५७)

बाम (२)-(सं० वामा)-स्त्री।

बामता-(सं० वामता)-१. कुटिलता, कुटिलाई, २. उलटापन, प्रतिकूलता। उ० १. समुझे सहे हमारो है हित बिधि बामता बिचारि। (कृ० २७)

बामदेउ-(सं० वामदेव)-१. एक प्रसिद्ध ऋषि, २. शिव। उ० १. बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि। (मा० १।३३०)

बामदेव-(सं० वामदेव)-१. शिव, २. ऐसे देवता जो अनुकूल न हों, ३. एक ऋषि। उ० १. बामदेव सन काम बाम होइ बरतेउ। (पा० २६)

बामन-(सं० वामन)-विष्णु के ५वें अवतार जो बलि को छलने के लिए अदिति के गर्भ से हुए थे। उ० छलन बलि कपट बटुरूप वामन ब्रह्म। (वि० ५२)

बामा-(सं० वामा)-स्त्री, औरत। उ० बाम अंग बामा बर बिस्व-बंदिनी। (गी० २।४३)

बामू-टेढ़ा, विपरीत। दे० 'बाम'। उ० भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू। (मा० २।३६।१)

बाम्हन-(सं० ब्राह्मण)-१. ब्राह्मण, द्विज, २. उपरोहित।

बायँ-(सं० वाम)-१. टेढ़ा, प्रतिकूल, २. बायें। उ० १. घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं बिधि बायँ। (गी० ७।३१)

बाय (१)-(सं० वायु)-१. हवा, पवन, २. बाई, बात का रोग, सन्निपात। उ० १. भरत-गति लखि मातु सब रहि ज्यों गुड़ी बिनु बाय। (गी० ६।१४)

बाय (२)-(सं० बर्तते)-है, होता है। उ० काक सुता गृह ना करै, यह अचरज बड़ बाय। (स० १६०)

बायन-(सं० वायन)-१. वह मिठाई या पकवान जो उपहार स्वरूप दूसरे के पास भेजा जाता है। भेंट, उपहार। मु० बायन दीन्हा-छेड़खानी की, छेड़छाड़ की। उ० भले भवन अब बायन दीन्हा। (मा० १।१३७।३)

बायस-(सं० वायस)-१. कौवा, काग, २. कागभुशुंडि, ३. इंद्र का पुत्र जयंत। उ० १. करतब बायस बेष मराला। (मा० १।१२।१) ३. बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि। (क० ६।२७)

बायें-(सं० बाम)-१. बायाँ, दाहिना का उलटा, २.विरुद्ध, प्रतिकूल।

बायों-(सं० वाम)-बाँयाँ। मु० बायों दियो-टाल दिया, छोड़ दिया। उ० बायों दियो बिभव कुरुपति को। (वि० २४०)

बायो-(सं० व्यापन)-फैलाया, पसारा, खोला। उ० परी न छार मुँह बायो। (वि० २७६)

बार (१)-(सं० द्वार)-१. द्वार, दरवाजा, २. ठिकाना, आश्रय, स्थान, ३. दरबार।

बार (२)-(सं० वार)-१. काल, समय, २. देर, विलंब, ३. दफ़ा, मरतबा, ४. दिन, दिवस, ५. बार-बार। उ० २. बहु बिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार। (मा० १। २०६) ३. अँधियारे मेरी बार क्यों? (वि० ३३)

बार (३)-(फ़ा०)-भार, बोझा।

बार (४)-(सं० बाल)-केश, लोम। उ० ऊपर अनूप मसि बिंदु बारे-बारे बार। (गी० १।१०)

बार (५)-(सं० ज्वल)-१. जला, बाल, प्रज्वलित कर, २. जलावे। उ० २. तेहि बिधि दीप को बार बहोरी। (मा० ७।११८।८) बारी (१)-जलाई, भस्म किया। उ० बारी बारानसी बिनु कहे चक्र चक्रपानि। (क० ७।१७२)

बारक-(सं० वार+एक)-एक बार, एक बार भी। उ० बारक बिलोकि बलि कीजै मोहि आपनो। (वि० १८०)

बारन (१)-(सं० वारण)-रोकना, रोक, रुकावट। बारय-दूर करो, मना करो। उ० बारय तारय संसृति दुस्तर। (मा० ६।११५।३) बारि (१)-मना करके। बारिये (१)-(सं० वारण)-मना कीजिए, वर्जिए। बारें-छोड़ कर। उ० बानर मनुज जाति दुइ बारें। (मा० १।१७७।२) बारे (१)-(सं० वारण)-१. मना किए, रोके, २. छोड़कर। बारेहि (१)-मना करते हैं, रोकते हैं।

बारन (२)-(?)-गजेन्द्र, जिसे भगवान ने ग्राह से बचाया

था। उ० नाम अजामिल से खल तारन तारन बारन बारबधू को। (क० ७।६०)

बारबधू-(सं०वार+बधू)-वेश्या, रंडी। उ०दे०'बारन (२)'।

बारह-(सं० द्वादश)-दस से दो अधिक, १२। मु० बारह बाट-तितर-बितर, नष्ट-भ्रष्ट। उ० सूधे-टेढ़े, सम विषम, सब महँ बारह बाट। (दो० ५००)

बारहिं (१)-(सं० वार)-कई बार। मु० बारहिं बार-कई बार, बार-बार। उ० होहिं हानि-भय-मरन-दुख-सूचक बारहिं बार। (प्र० १।५।२)

बारहीं-(सं० द्वादश)-पुत्र जन्म के १२वें दिन होनेवाली संस्कार-विधि, बरही। बारहें-दे० 'बारहीं'। उ० मुनिवर करि छठी कीन्हीं बारहें की रीति। (गी० ७।३५)

बारहौं-दे० 'बारहीं'। उ० छठी बारहौं-लोक-वेद बिधि करि सुबिधान बिधानी। (गी० १।४)

बारांनिधे-(सं० वारांनिधि)-हे समुद्र ! उ० जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे नमत नर्मद पाप-ताप-हर्त्ता। (वि० ४४)

बारा-दफ़ा, बार। दे० 'बार (२)'। उ० परहिं भूमितल बारहिं बारा। (मा० २।१५६।२)

बारान्निधे-दे० 'बारांनिधे'।

बाराह-(सं० वराह)-१. शूकर, सूअर, २. विष्णु का एक अवतार।

बारि (२)-(सं० वारि)-जल, पानी। उ० मरिबे को बारा-नसी, बारि सुरसरि को। (ह० ४२)

बारि (३)-(सं० वाटिका)-बाड़ी, बगीची।

बारि (४)-(सं० अवार)-बाड़ा, घेरा, डाँड़। उ० जनु इंद्र-धनुष अनेक की वर बारि तुंग तमालही। (मा० ६। १०१। छं० १)

बारि (५)-(सं० अवतरण)-निछावर करके। बारिये (२)-न्यौछावर कीजिए। बारी (२)-न्यौछावर किया। उ० काम कोटि सोभा अंग-अँग उपर बारी। (गी० १।२२) बारौं-न्यौछावर करूँ, वारूँ। उ० बारौं सत्य वचन स्रुति सम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे। (गी० २।२)

बारिक-(फ़ा० बारीक)-महीन, बारीक। उ० है निर्गुण सारी बारिक। (कृ० ४१)

बारिखो-(सं० वर्ष)-वर्षोंवाला। उ० सही भरी लोमस भुसुंडि बहु बारिखो। (क० ११६)

बारिज-(सं० वारिज)-कमल, जलज। उ० नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन। (मा० १।१। सो० ३)

बारिद-(सं० वारिद)-मेघ, बादल। उ० मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी। (मा० १।२६५।२)

बारिधर-(सं० वारिधर)-बादल, जलद। उ० तात न तर्पन कीजिये बिना बारिधर-धार। (दो० ३०४)

बारिधि-(सं० वारिधि)-समुद्र। उ० बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस। (मा० १।१४ ङ)

बारिनिधि-दे० 'बारिधि'। उ० मनहुँ वारिनिधि बूड़ जहाजू। (मा० २।८६।२)

बारिपुर-एक स्थान का नाम। कुछ लोगों के अनुसार यह काशी का नाम है। उ० बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि। (क० ७।१३८)

बारी (३)-(सं० बाल)-१. क्वारी कन्या, २. छोटी, नन्हीं। उ० २. कुंदकली जुगल जुगल परम सुभ्र बारी। (गी०१। २२)

बारी (४)-(सं० वालिका)-कान में पहनने की बाली।

बारी (५)-(सं० वाटिका)-१. बगीचा, उपवन, २. खिड़की, झरोखा।

बारी (६)-(सं० अवार)-डाँड़, मेंड़, खेत आदि का घेरा। उ० कानन बिचित्र बारी बिसाल। (वि० २३)

बारी (७)-(सं० वारि)-पानी।

बारी (८)-(सं० वरुजीवी)-पत्तों आदि से संबंधित कार्य करनेवाली एक जाति। अब पत्तल आदि बनाना ही इनका प्रधान कार्य है। उ० नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ। (मा० १।३१६)

बारी (६)-(सं० वार)-पारी, ओसरी।

बारीस-(सं० वारीश)-समुद्र। उ० जेहिं बारीस बँधायउ हेलाँ। (मा० ६।६।३)

बारु-(सं० बाल)-केश, बाल। उ० भेंट पितरन को न मूड़ हू में बारु है। (क० ७।६७)

बारुणी-(सं० वारुणी)-१. मदिरा, शराब, २. पश्चिम दिशा, ३. एक विशेष पर्व।

बारुनि-दे० 'बारुणी'। उ० १. सुरसरि जलकृत बारुनि जाना। (मा० १।७०।१)

बारुनी-दे० 'बारुणी'। उ० १. संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी। (मा० १।१४ च)

बारे (२)-(सं०बाल)-१. बच्चे, बालक, २. बचपन, ३. छोटे। उ० १ भैआ कहहु कुसल दोउ बारे। (मा० १।२६१।२) २. हौं तो बिन मोल ही बिकानो, बलि बारे ही तें। (ह० ३८) ३. बारे बारिधर। (गी० १।३०) बारेहि (२)-(सं० बाल)-१. लड़कपन से ही, २. बचपन में। उ० १. बारेहि ते निज हित पति जानी। (मा० १।१६८।२)

बारो-(सं० बाल)-किशोर, बच्चा, छौना। उ० बारिदनाद अकंपन कुंभकरन्न से कुंजर केहरि-बारो। (ह० १६)

बाल (१)-(सं०)-१. लड़का, बालक, २. अज्ञानी, मूर्ख, ३. बार, केश, लोम, ४. अन्नों की बाली या फली। उ० १. बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। (मा० १।२७५।२) २. सो श्रम बादि बाल कबि करहीं। (मा० १।१४।४) ३. बाल कुमार जुवा जरा। (स० २०५)

बाल (२)-(सं० वारि)-पानी, जल।

बाल (३)-(सं० बाला)-युवती। उ० खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को। (क० ७।१३५)

बालक-(सं०)-१. लड़का, २. बेटा, पुत्र, ३. छोटा। उ० १. राज मराल के बालक पेलि कै। (क० ७।१०३) ३. बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर। (गी० १।३०)

बालकन्ह-१. लड़कों, २. लड़कों को। बालकन्हि-बालकों को, लड़कों को। उ० मातु-पिता बालकन्हि बोलावहिं। (मा० ७।६६।४) बालकहिं-बालक को। बालकहू-बालक भी, बालक का भी। उ० बेषु बिलोकें कहेसि कछु बाल-कहू नहिं दोसु। (मा० १।२८१) बालको-बालक भी।

बालकु-दे० 'बालक'। उ० १. कटुबादी बालक बध जोगू। (मा० १।२७५।२)

बालधि-(सं०)-पूँछ, दुम। उ० कुलिस नख दसन बर, लसति बालधि-बृहद् बैरिसस्त्रास्त्रधर-कुधरधारी। (वि० २६)

बालधी-दे० 'बालधि'। उ० बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्हीं आगि। (क० ५।३)

बालपन-लड़कपन, छुटपन। उ० समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत। (मा० १।३० क) बालपने-लड़कपन में, बचपन में। उ० बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो। (ह० ४०)

बालमीक-(सं० वाल्मीकि)-एक प्रसिद्ध ऋषि और आदि कवि। रामायण की रचना सबसे पहले इन्होंने ही की थी। उ० बालमीक नारद घटजोनी। (मा० १।३।२)

बाला-(सं०)-१. युवती, १३ से १६ वर्ष की स्त्री, २. स्त्री, पत्नी, ३. औरत, नारी, ४. लड़की, कुमारी, ५. हाथ का कड़ा, ६. कान का एक आभूषण।

बालि (१)-(सं०)-अंगद का पिता और सुग्रीव का भाई एक बंदर जो किष्किंधा का राजा था। इसे राम ने धोखे से मारा। उ०तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते? (वि०९७) बालिहि-बालि को। उ० सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान। (मा० ४ ६)

बालि (२)-(सं० बाल)-बाल, जौ आदि की फली।

बालिका-(सं०)-छोटी लड़की, कन्या। उ० नर-नाग-विबुध-बंदिनि, जय जह्नुबालिका। (वि० १७)

बालिकुमार- बालि के पुत्र अंगद। दे० 'अंगद'। उ० ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार। (मा० ४।१९)

बालिश-(सं०)-१. मूर्ख, अज्ञ, २. बालक, लड़का।

बालिस-दे० 'बालिश'। उ० बालिस बासी अवध को बूझिए न खाको। (वि० १५२) बालिसो-रे मूर्खो, अज्ञो! उ० याही बल, बालिसो! बिरोध रघुनाथ सों। (क० ५।१३)

बाली-दे० 'बालि'। उ० जेहिं सायक मारा मैं बाली। (मा० ४।१८।३)

बालु-(सं० बालुका)-बालू, रेत। उ० बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बालु को। (क० ७।१७)

बालू-दे० 'बालु'। उ० ऊपर ढारि देहिं बहु बालू। (मा० ६।८१।४)

बालेंदु-(सं० बालेंदु)-दूज का चाँद। उ० लसद्भालबालेंदु कंठे भुजंगा। (मा० ७।१०८।३)

बाल्मीकि-दे० 'वाल्मीकि'।

बाल्य-(सं० वाल्य)-शैशव, लड़कपन।

बावन-दे० 'वामन'। विष्णु का एक अवतार। बावनो-वामन भगवान का अवतार भी। उ० कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो। (क० ५।६)

बावरि-(सं० बातुल)-बावली, पगली। उ० समुझि सो प्रीति की रीति स्याम की सोइ बावरि जो परेखो उर आने। (कृ० ३८)

बावरी-दे० 'बावरि'। उ० बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की। (क० ७।२६)

बावरे-रे पागल, रे सनकी। उ० राम जपु राम जपु राम जपु बावरे। (वि० ६६)

बावरो-पागल, बौरहा, उन्मत्त। उ० नाम, राम! रावरो सयानो किधौं बावरो। (क० ७।७३)

बावौं-(सं० वाम)-१. बाम, बायाँ, २. प्रतिकूल, विपरीत। उ० २. ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावौं। (वि० १७१)

बास-(सं० वास)-१. गंध, महँक, २. रहने का स्थान, डेरा, आवास, घर। उ० १. ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा। (मा० १।११८।४) २. बास चले सुमिरत रघुबीरा। (मा० २।२०३।१) बासहि-१. स्थान को, निवास को, २. महँक को, गंध को। उ० १. नाइ नाइ सिर देव चले निज बासहि। (पा० १६१)

बासन (१)-(?)-बरतन, भाँड़ा। उ० लेहिं न बासन बसन चोराई। (मा० २।२५१।२)

बासन (२)-(सं० वास)-१. महँकें, २. रहने के स्थान।

बासना-(सं० वासना)-१. इच्छा, अभिलाषा, कामना, २. सुगंध। उ० १. बासना-बल्लि खर-कंटकाकुल बिपुल निबिड़ बिटपाटवी कठिन भारी। (वि० ५९)

बासर-(सं० वासर)-दिन, दिवस। उ० पाप करत निसि बासर जाहीं। (मा० २।२५१।३)

बासरु-दे० 'वासर'। उ० नींद न भूख पियास, सरिस निसि बासरु। (पा० ५१)

बासव-(सं०)-इंद्र। उ० जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। (मा० २।१४१)

बासा-(सं० वास)-घर, निवास। उ० भगत होहिं मुद मंगल बासा। (मा० १।२४।१)

बासि-१.बासकर, महँकाकर, बासयुक्त करके, २.बासने की, महँकाने की। उ० १. दै दै सुमन तिल बासि कै अरु खरि परिहरि रस लेत। (वि० १९०) २. सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि बिधि जतन-जंत्र भरि घानी। (गी० १।४)

बासिन्ह-(सं० वास)-निवासियों को, वासियों को। उ० कोलसपुर बासिन्ह सुखदाता। (मा०१।२००।१) बासी-१. रहनेवाला, निवासी, २. सुगंधित किया हुआ, ३. पुराना, जो ताज़ा न हो। उ० १.मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी। (वि० २२)

बासु-(सं० वास)-१. बास, महँक, २. बुरी महँक, ३. डेरा, रहने का स्थान। उ० २. तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु। (दो० ३५५) ३. भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ। (मा० १।२९४)

बासुदेव-(सं० वासुदेव)-वसुदेव के पुत्र कृष्ण। उ० बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग। (मा० १। १४३)

बासू-वास, स्थान, निवास। उ० भीतर भवन दीन्ह बर बासू। (मा० १।३५२।४)

बाहक-(सं० वाहक)-ढोनेवाला, भार पहुँचानेवाला।

बाहन-(सं० वाहन)-सवारी, जो ढोवे। उ० सूकर, महिष, स्वान, खर बाहन साजहिं। (पा० १०३)

बाहनी-(सं० वाहिनी)-सेना।

बाहर–(सं० बाह्य)–भीतर का उलटा, अलग, दूर, बहिर्गत। बाहरहुँ–बाहर भी।
बाहरजामि–(सं० बाह्ययामी)–बाहर की बात जाननेवाला। उ० अंतर्जामिहु ते बड़ बाहरजामि हैं। (क० ७।१२६)
बाहँ–दे० 'बाहु'। हाथ। उ० बैठारे रघुपति गहि बाहँ। (मा० २।७७।३)
बाहिज–(सं० बाह्य)–ऊपर से, देखने में। उ० बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी। (मा० ३।३०।१)
बाहिनी–(सं० वाहिनी)–१. ढोनेवाली, सवारी, २. बहनेवाली, ३. सेना। उ० ३. बिबिध बाहिनी बिलसति सहित अनंत। (ब० ४२)
बाहिर–दे० 'बाहर'।
बाहु–(सं०)–भुजा, हाथ। उ० आजानु भुजदंड, कोदंड मंडित बाम बाहु, दच्छिण पानि बानमेकं। (वि० ५१)
बाहुक–(सं० बाहु+?)–बाहु की पीडा, हाथ का दर्द। उ० बाहुक-सुबाहु नीच, लीचर-मरीच मिलि। (ह० ३६)
बाहुल्य–(सं०)–आधिक्य, बहुलता, अधिकाई।
बाहू–दे० 'बाहु'। उ० बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू। (मा० १।६३।४)
बाहेर–दे० 'बाहर'। उ० गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ। (मा० २।८२)
बाहैं–१.बाहँ, भुजा, २.भुजाओं में। उ० १.सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं। (गी० ७।१३) बाहै–बाहों में। उ० सपनेहूँ नहीं अपने बर बाहै। (क० ७।५६)
बिंजन–(सं० व्यंजन)–रसोई, भोजन। उ० बिंजन बहु गनि सकइ न कोई। (मा० १।१७३।१)
बिंद–(सं० बिंदु)–बिंदी, शून्य। उ० लोयन नील सरोज से ऊपर मसि-बिंद बिराज। (गी० १।१६)
बिंदक–(?)–१. जाननेवाले, ज्ञाता, २. पानेवाला, ३. नामयुक्त। उ० १. भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। (मा० ७।११२।३)
बिंध–दे० 'बिंधि'। उ० बिंध न ईंधन पाइए, सायर जुरै न नीर। (दो० ७२)
बिंधि–(सं० विंध्य)–विंध्य नाम का पर्वत। उ० बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। (मा० २।१३८।४)
बिंध्य–दे० 'बिंधि'। उ० चित्रकूटाद्रि-विंध्याद्रि दंडक विपिन-धन्यकृत। (वि० ४३)
बिंध्याचल–(सं० विंध्याचल)–एक प्रसिद्ध पर्वत। उ० बिंध्याचल गभीर बन गयऊ। (मा० १।१५६।२)
बिंब–(सं० बिंब)–१. बिंबाफल, कुंदरू नाम का फल, २. छाया, प्रतिबिंब, ३. मूर्ति, ४. सूर्य अथवा चंद्र का मंडल। उ० १. अधर बिंबोपमा मधुर हासं। (वि० ५१)
बिआधि–(सं० व्याधि)–रोग, बीमारी। उ० बिनु औषध बिआधि बिधि खोई। (मा० १।१७१।२)
बिआनी–(?)–१. बच्चा देना, प्रसव करना, २. ब्याई, जनी। उ० १. नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। (मा० २।७५।१)
बिआहबि–(सं० विवाह)–ब्याहेंगे, ब्याहूँगा। उ० सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के। (मा० १।२४५) बिआही–विवाह किया। उ० भंजि धनुष जानकी बिआही। (मा० ६।३६।६) बिआहेसि–विवाह किया, ब्याहा। उ० पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई। (मा० १।१७८।२)
बिएतें–दे० 'बियेतें'।
बिकट–(सं० विकट)–१. भयंकर, २. कठिन, मुश्किल। उ० १. बिकट बेष मुख पंच पुरारी। (मा० १।२२०।४) बिकटी–टेढ़ी, वक्र। उ० बिकटी भ्रुकुटी बड़री अँखियाँ। (क० २।१३)
बिकरारा–(सं० विकराल)–१. भयंकर, विकराल, प्रचंड, २. टेढ़ा, ३. कठिन। उ० १. नाक कान बिनु भइ बिकरारा। (मा० ३।१८।१)
बिकराल–(सं० विकराल)–भयंकर, प्रचंड। उ० बड़ो बिकराल बेष देखि। (क० ५।६)
बिकल–(सं० विकल)–व्याकुल, बेचैन, घबराया। उ० बिरह विकल नर इव रघुराई। (मा० १।४९।४) बिकलतर–अधिक विकल, अधिक दुखी। उ० चले तमीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराइ। (मा० ६।७४ ख)
बिकलई–दे० 'बिकलाई'। उ० प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई। (मा० ६।६४।२)
बिकलाई–विकलता, व्याकुलता। उ० उठहु न सुनि मम बच बिकलाई। (मा० ६।६१।३)
बिकस–(सं० विकास)–खिलना, प्रसन्न होना। उ० उदय बिकस, अथवत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ। (दो० ३१६) बिकसत–१. बिकसता है, खिलता है, २. खिलते हुए, प्रसन्न। उ० २. बिकसत-मुख निकसत धाइ धाय कै। (गी० १।८२) बिकसे–फूले, खिले, प्रफुल्लित हुए, प्रसन्न हुए। उ० बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा। (मा० ८६।छं०१) बिकसो–खिला, प्रफुल्लित हुआ। उ० रविकुल रवि अवलोकि सभा-सर हित चित-बारिज-बन बिकसो री। (मा० १।१०२)
बिकसित–खिला हुआ, फूला हुआ, प्रसन्न।
बिकाइ–(सं० विक्रय)–बिकता है। उ० जलु पय सरिस बिकाय देखहु प्रीति की रीति भलि, बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि। (मा० १।५७ ख) बिकाउँ–बिकता हूँ, विक्रीत होता हूँ। बिकात–बिकता है। बिकातो–बिकता, बेचा जाता। उ० तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो। (वि० १७७) बिकानी–बिकी, बिक चुकी। उ० तुलसी हाथ पराए प्रीतम, तुम्ह प्रिय हाथ बिकानी। (कृ० ४७) बिकाने–बिके, बिक गए। उ० को करि सोच मरै, तुलसी, हम जानकी नाथ के हाथ बिकाने। (क० ७।१०५) बिकानो–१. बिका, बिक गया, २. बिक गया हूँ। उ० २. हौं तो बिन मोल ही बिकानो। (ह० ३८) बिकैहैं–बिक जायेंगे। उ० सोभा-देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं। (गी० २।३७।२)
बिकार–(सं० विकार)–अवगुण, खराबी, ईर्ष्या आदि मन के विकार। उ० कहैं दससीस ईस बामता बिकार है। (क० ५।२०)
बिकारी–जिसका रूप बिगड़ गया हो, बिकारयुक्त, बुरा, हानिकर। उ० असुभ होइ जिनके सुमिरे तें बानर रीछ बिकारी। (वि० १६६)
बिकास–(सं० विकास)–उन्नति, आगे बढ़ना, खिलना। बिकासा–१. खिला देती है, २. विकास, खिलना,

३. उन्नति । उ० १. बचन किरन मुनि कमल बिकासा । (मा० २।२७७।१) बिकासी–प्रकाशित है । उ० स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी । (मा० २।३२५।३) बिकासे–विकसित होते हैं, खिलते हैं । उ० बिलसत बेतस बनज बिकासे । (मा० २।३२५।२)
बिक्रम–(सं० विक्रम)–वीरता, पराक्रम । उ० भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला । (मा० ६।२५।२)
बिखंडन–१.नाश करना, खंड खंड करना, २.नाश करनेवाले । उ०२.तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन । (मा० ६।११५।५)
बिखान–(सं० विषाण)–सींग । उ० तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ बिखानन हैं । (क० ७।४०)
बिखाना–दे० 'बिखान' ।
बिख्यात–(सं० विख्यात)–प्रसिद्ध, मशहूर । उ० जग बिख्यात नाम तेहिं लंका । (मा० १।१७८।४)
बिख्याता–दे० 'बिख्यात' ।
बिगत–(सं० विगत)–१. रहित, शून्य, हीन, २. बीता, गुज़रा, ३. निकम्मा, ४. पुराना । उ० १.पवन कुमार जो बिगत समसूल है । (क० ५।३०)
बिगता–(सं० विगत)–नष्ट हो गई, जाती रही । उ० भरि पूरि रही समता बिगता । (मा० ७।१०२।४)
बिगरत–(सं० विकार)–१. बिगड़ता है, ख़राब होता है । २. अप्रसन्न होता है, ३. नष्ट होता है । उ० १. बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो । (वि० (१७३) २. हरषन रचत, विषाद न बिगरत । (कृ० २६) बिगरन–बिगड़ने, ख़राब होने । बिगरहिं–बिगड़ते हैं । बिगरहिं–बिगड़ता है । बिगरिए–१. ख़राब कीजिए, बिगाड़िए, २. नाराज़ हूजिए । उ० १. दे० 'बिगरायल' । बिगरिऔ–बिगड़ी हुई भी । उ० सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ । (वि० ४१) बिगरिहै–बिगड़ेगा । उ० देव ! दिनहूँ दिन बिगरिहै । (वि० २७२) बिगरी–१. ख़राब, नष्ट, २. भूल, ग़लती, ३. खराब हुई । उ०१. बिगरी-सँवार अंजनीकुमार कीजै मोहिं । (ह० १५) २. बिगरी सेवक की । (वि० ३४) बिगरीयौ–बिगड़ी हुई भी । उ० बूड़ियौ तरति, बिगरीयौ सुधरति बात । (क० ७।७५) बिगरे–१. बिगड़ने, बिगड़ने पर, २. बुरा होने पर । ३. बिगड़ गए । उ० २. बिगरे सेवक स्वान ज्यों साहिब-सिर गारी । (वि० १५०) बिगरो–१. बिगड़ा हुआ, २. बिगड़ गया । उ० १. दे० 'बिगरायल' ।
बिगरायल–बिगड़ा हुआ, ख़राब, बिगड़ैल । उ० हौं तो बिगरायल ओर को, बिगरो न बिगरिए । (वि० २७१)
बिगसत–(सं० विकास)–१. विकसित होती है, खिलती है, २. खिल उठी । बिगसीं–(सं० विकास)–खिलीं, प्रफुल्लित हुईं । उ० अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली । (क० २।२२)
बिगसाइ–१. खिलाकर, २. खिला रहता है । उ० निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाइ । (ब० ३)
बिगसित–दे० 'बिकसित' । उ० दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज । (मा० ४।२४)
बिगार–(सं० विकार)–१. बिगड़ने की क्रिया या भाव, बिगाड़, २. ख़राबी, दोष, ३. झगड़ा, लड़ाई, वैमनस्य । उ० १. बुधि न बिचार, न बिगार न सुधार सुधि । (गी० २।३२)
बिगारा–(सं० विकार)–बिगाड़ दिया, बिगाड़ा । उ० कौसल्याँ अब काह बिगारा । (मा० २।४६।४) बिगारी–१. बिगाड़ी, ख़राब की, बुराई की, ३. शत्रुता की, ४. बिगाड़ने से । उ० ४. रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी । (वि० २५६) बिगारे–बिगाड़ा । बिगारेउ–बिगाड़ा, बिगाड़ दिया । उ० कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ । (मा० २।१६०।१) बिगारो–बिगाड़ा, ख़राब किया । उ० ढारो बिगारो मैं का को कहा केहिं कारन खीझत हौं तो तिहारो । (ह० १६) बिगार्‌यो–१. बिगाड़ा था, २. हानि पहुँचाई थी, अपकार किया था । उ० १. कहा बिभीषन लै मिलो कहा बिगार्‌यो बालि ? (दो० १५६)
बिगारु–(सं० विकार) १. बिगाड़, सुधार का उलटा, २. झगड़ा, शत्रुता । उ० १. नरदेह कहा, करि देखु बिचार बिगारु गँवार न काजहि रे । (क० ७।३०)
बिगोइए–(सं० विगोवन)–१. बिगाड़िए, बिगाड़ो, नष्ट करो, २. नष्ट करता हूँ, बिगाड़ता हूँ । उ० २. जागिए न सोइए बिगोइए जनम जाय । (क० ७।८३) बिगोई–१. नष्ट कर दीं, २. नष्ट हो गई, ३. भुलावा, ४. छिपाव । उ० २. राजु करत निज कुमति बिगोई । (मा०२।२३।४) बिगोए–दे० 'बिगोवे' । बिगोयो–१. बिगाड़ा, नष्ट किया, मिटाया, २. छिपाया, ३. भुलवाया । उ० १. मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो । (बि० २४५) बिगोवति–बिताती है, बुरी तरह बिताती है, ख़राब करती है । उ० बहु राच्छसी सहित तरु के तर तुम्हरे बिरह निज जनम बिगोवति । (गी० ५।१७) बिगोवहू–१.नष्ट करते हो, ख़राब करते हो, २. भुलावे में डालते हो । उ० १. बिनु काज राज समाज महँ तजि लाज आपु बिगोवहू । (जा० ७२) बिगोवा–१. धोखे में डाला, भरमाया, २. नष्ट किया, दुर्दशा की । उ०१. प्रथम मोहँ मोहिं बहुत बिगोवा । (मा०७।९३।३) बिगोवै–१. नष्ट करे, बिगाड़े, २. छिपावे, छिपाती है, ३. भुलाती है । उ० १. तुलसी मँदोवै रोइ रोइकै बिगोवै आपु । (क० ५।११)
बिग्यानी–(सं० विज्ञान)–ज्ञानी, विशेष ज्ञानवाला । उ० अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी । (मा० ७।४६।३)
बिग्रह–(सं० विग्रह)–लड़ाई, विरोध । उ० बैर न बिग्रह आस न त्रासा । (मा० ७।४६।३)
बिघटन–(सं०विघटन)–१.विनाशना, बिगाड़ना, २.तोड़ना, ३. नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला । उ०१. पाप-ताप-तिमिर-तुहिन-बिघटन पटु । (ह० ६) २. प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी । (मा०१।२३९।३) बिघटै–नाश करे, नाश करता है । उ० रजनीचर मत्तगयंद-घटा, बिघटै मृगराज के साज लरै । (क०६।३६)
बिघटित–नष्ट किया हुआ, बिगाड़ा हुआ । उ० बड़ि अवलंब बाम-बिधि बिघटित, बिषम बिषाद चढ़ाए । (गी० २।८८)
बिघन–(सं० विघ्न)–बाधा, रुकावट, अड़चन ।
बिघ्न–दे० 'बिघन' । उ० जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी । (मा० ७।११८।५)

बिच-(सं० विच)-बीच, मध्य। उ० अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। (मा० १।२१।४)
बिचछन-(सं० विचक्षण)-चतुर, प्रवीण।
बिचर-(सं० विचरण)-विचर रहे हैं। उ० दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई। (मा०१।२०३।३) बिचरउ-दे० 'बिचरहु'। बिचरत-बिचरता है, डोलता है, फिरता है। उ० सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ। (वि० ८६) बिचरति-विचरण करती है, घूमती है। बिचरन-पर्यटन, घूमना-फिरना, चलना। बिचरनि-चलना, फिरना। उ० जानु पानि बिचरनि मोहि भाई। (मा० १।१९९।६) बिचरहिं-घूमते हैं, फिरते हैं। उ० जे जग महँ बिचरहिं धरे रहे बिगत अभिमान। (स० १७१) बिचरहु-विचरण करो, फिरो, डोलो। उ० अस उर धरि महि बिचरहु जाई। (मा० १।१३८।४)
बिचलत-(सं० विचलन)-बिचलते, बिचलित होते। उ० बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया। (मा० ६।४७।५) बिचलि-बिचलित होकर। उ० चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे। (मा० ६।९६।छं० १)
बिचलाइ-(सं० विचलन)-हटाकर, दूरकर, विचलित कर। उ० रे नीच! मारीच बिचलाइ, हति ताड़का। (क०६।१८) बिचलाए-हटाए, विचलित किए। उ० भारी भारी भूरि भट रन बिचलाए हैं। (गी० १।७२)
बिचार-(सं० विचार)-ख्याल, भावना, धारणा। उ० मुदिताँ मथै बिचार मथानी। (मा० ७।११७।८)
बिचारत-(सं० विचार)-बिचारते हैं, सोचते हैं। उ० हृदयँ बिचारत संभु सुजाना। (मा० १।५९।३) बिचारति-विचारती है। बिचारहिं-विचार करते हैं। बिचारहीं-बिचारते हैं, बिचारने लगे। उ० सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं। (मा० १।२६१।छं० १) बिचारहु-बिचारो, सोचो। उ० मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु। (मा० ६।३६।४) बिचारा (१)-१. विचार, ख्याल, २. विचार किया। उ० २. तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा। (मा० १।१७०।४) बिचारि-बिचारकर, सोच समझकर। उ० कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि। (मा० १।१३०) बिचारिए-विचार कीजिए, समझिए। उ० आस रावरीयै, दास रावरो बिचारिए। (ह० २१) बिचारी (१)-(सं० विचार)-१. विचार कर, २. विचारनेवाला, ३. सोचा। उ०१. इनको बिलगु न मानिए बोलहिं न बिचारी। (वि० ३४) बिचारु-१. विचार कर, सोचकर, २. विचारो, सोचो, ३. विचार, ख्याल। उ० २. नकरु बिलंब, बिचारु चारु मति। (वि० २४) ३. सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। (मा० २।८४।३) बिचारू-दे० 'बिचारु'। उ० ३. नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। (मा० २।१५४।३) बिचारे (१)-१. बिचारा, समझा, २. सकझ कर, विचार कर। उ० २. सुमति बिचारे बोलिये समुझि कुफेर सुफेर। (दो० ४३७) बिचारेउ-दे० 'बिचारेहु'। बिचारेहु-बिचारो, सोचो। उ० मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। (मा० ४।२३।२)
बिचारा (२)-(बेचारा)-दीन, विवश। उ० भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा। (मा० ५।५३।४) बिचारी (२)-बेचारी, विवश। उ० माया खलु नर्तकी बिचारी। (मा० ७।११६।२) बिचारे (२)-बेचारे। उ० कामी काक बलाक बिचारे। (मा० १।३८।३)
बिचित्र-(सं० विचित्र)-अनोखा। उ० बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। (मा० २।२३६।१)
बिच्छेदकारी-(सं० विच्छेदन)-काटनेवाला, अलग करनेवाला। उ० सोक संदेह भय हर्षतम तर्षगण साधु-सद्युक्ति विच्छेदकारी। (वि० ५७)
बिछुरत-(सं० विच्छेद)-१. अलग होता है, वियुक्त होता है, २. अलग होते, बिछुड़ते। उ० २. बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। (मा० १।५।२) बिछुरनि-बिछुड़ना, अलग होना। उ० तबतें बिरह-रबि उदित एकरस सखि बिछुरनि वृष पाई। (कृ० २९) बिछुरे-१. अलग हुए, २. अलग होने पर, बिलगने पर। उ० २. बिछुरे ससि रबि, मन! नयननि तें पावत दुख बहुतेरो। (वि० ८७)
बिछोह-(सं० विच्छेद)-अलगाव, जुदाई, वियोग, बिरह।
बिछोहइ-(सं० विच्छेद)-छुड़ाती है, दूर करती है, अलग करती है। उ० सुमिरत सकृत मोह मल सकल बिछोहइ। (जा० १०७) बिछोही-१. छोड़कर, २. अलग किया। उ० १. राजति तड़ित निज सहज बिछोही। (गी० २।१९) २. जेहि हौं परिपद कमल बिछोही। (मा०६।९९।३) बिछोहे-अलग हुए। उ० राम प्रेम अतिसय न बिछोहे। (मा० २।३०२।२) बिछोहैं-अलग कर देता है, दूर कर देता है। उ० काको नाम अनख आलस कहें अघ अवगुननि बिछोहै। (वि० २३०)
बिछोहनि-छुड़ाने वाली, अलग करनेवाली। उ० सब मल-बिछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू। (जा० १०८)
बिछोहू-(सं० विच्छेद)-वियोग, बिछुड़ना। उ० जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। (मा० ६।६१।३)
बिजई-दे० 'बिजयी'। उ० कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान। (मा० १।१२२)
बिजन-(सं० विजन)-एकांत।
बिजय-(सं० विजय)-१. जय, जीत, फतह, २. जय का भाई विजय जो भगवान का पार्षद था। दे० 'जय'। उ० २. जय अरु बिजय जान सब कोऊ। (मा० १।१२२।२)
बिजयी-(सं० विजयी)-जिसकी जीत हुई हो।
बिजोग-(सं० वियोग)-बिछुड़ना, अलग होना।
बिज्ञान-(सं० विज्ञान)-विशेष ज्ञान, ज्ञान। बिज्ञानमय-विज्ञानरूप, विज्ञानयुक्त। दे० 'बिज्ञान'।
बिज्ञाना-दे० 'बिज्ञान'।
बिज्ञानी-(सं० विज्ञानिन्)-विद्वान्, विशेष ज्ञानवाला।
बिटप-(सं० विटप)-१. पेड़, वृक्ष, २. यमलार्जुन। उ० २. खग, मृग, व्याध, बिटप, जड़ जमन कवन सुर तारे। (वि० १०१)
बिटपी-वट वृक्ष।
बिटपु-दे० 'बिटप'।
बिडंब-दुर्दशा, दुर्गति। उ० करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं। (मा० ७।१०१।३)

बिडंबना-(सं० विडंबन)-१. नकल, स्वरूप बनाना, २. उपहास, हँसी, ३. निंदा। उ० २. केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न यहि संसार ? (दो० २६१)
बिडंबित-१. तिरस्कृत, अपमानित, २. त्रासित, डराया। उ० १. दिव्य-देवी-वेष देखि, लखि निशिचरी जनु बिडंबित करी विश्व बाधा। (वि० ४३) २. तुलसी सूधे सूर ससि, समय बिडंबित राहु। (दो० ३६७)
बिडरि-डरकर, भयभीत होकर। उ० बिडरि चले बाहन सब भागे। (मा० १।६४।२)
बिडरो-(सं०विट्) १. विशेष भय, २. छितराकर।
बिडार-(सं० विट्)-१. भगाते हैं, २ भगाकर। उ० २. तुलसी तोरत तीर तरु मानस हंस बिडार। (स० ६८) बिडारी-१. भगाई, २. भगाकर। उ० २. कुंभकरन कपि फौज बिडारी। (मा० ६।६७।४)
बिढ़ई-(सं० वृद्धि)-१. कमाकर. अर्जन कर, २. सामर्थ्य। उ० १. बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू। (मा० २।१६१। १) बिढ़ई-दे० 'बिढ़इ'।
बिढ़तो-१. कमाई, २. लाभ। उ०१. दै पठ्यो पहिलो बिढ़तो ब्रज सादर सिर धरि लीजै। (कृ० ४६)
बित-दे० 'बित्त'। उ० सुत बित नारि भवन परिवारा। (मा० ६।६१।४)
बितई-(सं० व्यतीत)-बिता दी, ख़तम कर दी। उ० सुजन सुभाव सराहत सादर अनायास साँसति बितई है। (वि० १३६) बितए-बिताए, ख़तम किए। उ० रहे इक टक नर-नारि जनकपुर, लागत पलक कलप बितए, री। (गी० १।७६)
बितान-(सं० वितान)-१. चँदवा, मंडप, शामियाना, २. फैलाव, विस्तार। उ० १ सजहि सुमंगल कलस बितान बनावहिं। (जा० १३२)
बिताना-दे०'बितान'। उ०१.मंजु बलित बर बेलि बिताना। (मा० २।१३७।३)
बितैहो-(सं० व्तीत)-१. बिताओगे, व्यतीत करोगे, २. अंत करोगे। उ० २. अवगुन अमित बितैहो। (वि० २७०)
बित्त-(सं० वित्त)-१. धन, दौलत, पूँजी, २. सामर्थ्य, शक्ति। उ० १. देहिं निछावरि बित्त बिसारी। (मा० १। २६५।३)
बिथक-(सं० स्थक्)-थक जाते हैं। उ० रचना बिचित्र बिलोकि लोचन बिथक ठौरहि ठौरही। (पा० ६६) बिथकनि-विशेष थकना। उ० धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसि उर आछे। (गी० ३।३) बिथकहिं-स्तंभित होते हैं, चकित होते हैं। उ० बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू। (मा० १।२१३।४) बिथकि-१. विशेष थककर, २. तन्मय या लीन होकर। उ० १. सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। (मा० २।२८४।४) बिथकी-थकित, स्तंभित। उ० बिथकी है ग्वालि-मैन-मन-मोए। (कृ० ११) बिथके-१. थक गए, २. रुक गए, ३. अचंभित हो गए। उ० १. बिथके बिलोचन निमेषै बिसराइ कै। (गी० १।८२) २. बिथके हैं बिबुध-बिमान। (गी० १।२)
बिथकित-शिथिल, हैरान। उ० तुलसी भइ मति बिथकित करि अनुमान। (ब० २३)
बिथा-(सं० व्यथा)-पीड़ा, दुःख।
बिथारे-(सं० वितरण)-फैला दिए हैं। उ० दलित अति ललित मनिगन बिथारे। (गी० १।३)
बिथुरित-फैले, बिखरे। उ० बिथुरित सिररुह-बरूथ कुंचित बिच सुमन-जूथ। (गी० ७।३)
बिथुरे-(सं० वितरण)-बिखरे हुए, फैले हुए। उ० बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। (मा० ६।१२।२)
बिदरत-(सं०विदीर्ण)-विदरता है, फटता है, खंड-खंड होता है। उ० बिदरत छिन-छिन होत निनारे। (कृ० ५६) बिदरेउ-विदीर्ण हुआ, फट गया। उ० हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीरु। (मा० २।१४६) बिद्-र्यो-फटा, फट गया। उ० हृदय दाड़िम ज्यों न बिद्र्यो समुझि सील सुभाउ। (गी० २।२७)
बिदरनि-१. फाड़नेवाली, विदीर्ण करनेवाली, २. फाड़ने या मारने की रीति। उ० १. बिदरनि जगजाल की। (क० ७।१८२) २. रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की। (क० ६।४०)
बिदले-(सं०वि+दलन) विदारण किए, फाड़े। उ० तैं रन केहरि के बिदले अरि कुंजर छैल छवा से। (ह० १८)
बिदा-(अर०)-प्रस्थान, गमन रवानगी, विदाई। उ० भूधर भोर बिदा करि साज सजायउ। (पा० १५५)
बिदारन-काटनेवाले, फाड़नेवाले। उ० जय कबंध सूदन बिसाल-तरुताल बिदारन। (क० ७।११४)
बिदारहिं-(सं०विदीर्ण) फाड़ते हैं। उ० उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। (मा०६।८१।३) बिदारि-विदीर्ण कर, फाड़कर। उ०बैरी बिदारि भए बिकराल। (क०७।१२८)बिदारी-फाड़ा, टुकड़े-टुकड़े किया। बिदारे-१. बिदारे हुए, फाड़े हुए, २. फाड़ा, विदीर्ण किया। उ० १. मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे। (मा० ३।२०। छं० २) बिदा-रेसि-फाड़ा, फाड़ डाला। उ० चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। (मा० ३।२९।१०)
बिदित-(सं० विदित)-ज्ञात, मालूम। उ० तव प्रभाउ जग बिदित न केही। (मा० २।१०३।३)
बिदिसहु-(सं० वि + दिशा)-दिशाओं के कोनों में। उ० देस काल दिसि बिदिसहु माहीं। (मा० १।१८५।३)
बिदिसि-(सं० विदिशा)-दिशाओं का कोना। उ०अध ऊर्द्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर है। (क० ५।१७)
बिदुषन्ह-(सं० विदुष)-पंडित गण, विद्वान लोग। उ० बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। (मा० १।२४२।१)
बिदूषक-(सं० विदूषक)-भाँड़, हँसानेवाला। उ० बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी। (मा० २।१६८।२)
बिदूषहिं-(सं० दोष)-दोष लगाते हैं। उ० इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ। (मा० १।२७६।२)
बिदेस-(सं० विदेश)-परदेश, दूसरा देश। उ० सुमिरि करहु सब काज सुभ, मंगल देश बिदेस। (प्र० १।१।१)
बिदेह-(सं० विदेह)-१. राजा जनक, २. बिना देह का, ३. जिसे देह की सुधि बुधि न हो। १. बेगि बिदेहनगर निअराया। (मा० १।२१२।२) बिदेहनगर-जनकपुर। बिदेहकुमारी-

जानकी, जनक की पुत्री सीता। उ० केहि पटतरौं बिदेह-कुमारी। (मा० १।२३०।४) बिदेहपन–राजा जनक का प्रण। उ०तब बिदेहपन बंदिन्ह प्रगटि सुनयाउ। (जा०९८)
बिदेहता–१. देहहीनता, २. देहाभिमान से रहित होना। उ० २. कब ब्रज तज्यौं, ज्ञान कब उपज्यौ ? कब बिदेहता लही है। (कृ० ४२)
बिदेहु–दे० 'बिदेह'। उ० १. ३. भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी। (मा० १।२१५।४)
बिदेहू–दे० 'बिदेहु'। उ० ३.भा निषाद तेहि समयँ बिदेहू। (मा० २।२३४।४)
बिद्रत–(सं० विदारण)–बिदारण करते हैं, फाड़ते हैं। उ० बिकट कटक बिद्रत बीर बारिद जिमि गज्जत। (क० ६। ४७)
बिद्या–(सं० विद्या)–ज्ञान, शास्त्र, शिक्षा। उ० बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। (मा० १।२०४।३)
बिद्रुम–(सं० विद्रुम)–मूँगा। उ० मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रचीं। (मा० ७।२७। छं० १)
बिधंस–(सं० विध्वंस)–नष्ट, बर्बाद। उ० जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस। (मा० १।६४)
बिधंसा–दे० 'बिधंस'। उ० कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। (मा० ६।७६।१)
बिधंसि–नाश कर, समाप्त कर, तोड़-फोड़कर। उ० बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। (मा० ६।२४।३)
बिध–(सं० विधि)–१. रीति, व्यवहार, २. तरह, भाँति। उ० २. संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।९०। छं० १)
बिधवन्ह–बिधवा स्त्रियाँ। उ० बिधवन्ह के सिंगार नवीना। (मा० ७।९९।३) बिधवा–(सं० विधवा)–धव से विहीन। जिसका पति मर गया हो।
बिधातहि–विधाता को, ब्रह्मा को। उ० बिलपहिं बाम बिधातहि दोष लगावहिं। (पा० ३४) बिधाता–(सं० विधाता)–ब्रह्मा। उ० सुभग सेज कत सृजत बिधाता। (मा० २। ११९।४) बिधातो–विधाता भी, ब्रह्मा भी। उ० होतो मंगलमूल तू, अनुकूल बिधातो। (वि० १५१)
बिधान–(सं० विधान)–नियम, रीति। उ० बेदी बेद बिधान सँवारी। (मा० १।१००।१)
बिधाना–दे० 'बिधान'। उ० बेद बिदित कहि सकल बिधाना। (मा० २।६।३)
बिधानी–विधान करनेवाला, रचनेवाला। उ० छठी बारहौं-लोक-बेद बिधि करि सुबिधान बिधानी। (गी० १।१२)
बिधि–(सं० विधि)–१. भाँति, तरह, २. भाग्य, किस्मत, ३. ब्रह्मा, ४. कार्य करने की रीति, ५. किसी ग्रंथ या शास्त्र में लिखी व्यवस्था, ६. क्रिया का एक रूप जिसमें आज्ञा देते हैं, ७. आचार-व्यवहार। उ० १. जदपि साधु सब ही बिधि हीना। (वै० ४१) २. बिधि के सुढर होत सुढर सुहाय के। (गी० १।६५) ३. बिधि को न बसाइ उजारो। (गी० २।६६) बिधिहिं–दे० 'बिधिहि'। बिधिहि–ब्रह्मा को। उ० अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। (मा० ७।२५।३) बिधिहु–दे० 'बिधिहू'। बिधिहू–ब्रह्मा भी। उ० तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की। (क० ७।२०)
बिधिवत–(सं० विधिवत्)–विधिपूर्वक, नियमपूर्वक। उ० लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। (मा० ६।२।३)
बिधिसुत–विश्वकर्मा जो ब्रह्मा के पुत्र कहे गए हैं। उ० मनहुँ भानु-मंडलहि सँवारत धर्यो सूत बिधि-सुत बिचित्र मति। (गी ७।१७)
बिधुंतुद–(सं० विधुंतुद)–राहु। उ० जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहही। (मा० ६।९२।छं० १)
बिधु–(सं० विधु)–चंद्रमा, शशि। उ० बार बार बिधु वदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये। (गी०१।७) बिधुहि–चंद्रमा को। उ० बिधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि। (ब० ४१)
बिधूम–१. निर्धूम, बिना धुएँ की, २. वैद्यक में धातुओं को भस्म करने की एक रीति। उ० १. जारि बारि कै बिधूम, बारिधि बुताइ लूम। (क० ५।२६)
बिन–(सं० विना)–बिना, बिला, बग़ैर। बिनहिं–बिना ही। उ० होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ। (मा० १।५९)
बिनइ–(सं० विनय)–वंदना करके, विनय करके। उ० बिनइ गुरुहि गुनि गनहि गिरिहि गननाथहि। (पा० १) बिनव–(सं०विनय)–बिनती की। उ०भाइन्ह सहित बहोरि बिनव रघुबीरहि। (जा० १९६) बिनवउँ–बिनती करता हूँ। उ० महाबीर बिनवउँ हनुमाना। (मा० १।१७।५) बिनवत–प्रार्थना करता है। बिनवति–बिनती करती है। उ० बिधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि। (ब० ४१)
बिनई–बिनयशील। उ० दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। (मा० ७।२५।४)
बिनतहि–(सं० विनता)–विनता को। उ० कहूँ बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब। (मा० २।१९) बिनता–(सं० विनता)–दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो कश्यप की स्त्री और गरुड़ की माता थी।
बिनती–(सं० विनय)–प्रार्थना, विनय। उ० बिनती करउँ जोरि कर रावन। (मा० ५।२२।४)
बिनय–(सं० विनय)–मिन्नत, बिनती, प्रार्थना। उ० जौं जिय धरिअ बिनय पिय मोरी। (मा० २।१५४।४)
बिनसइ–(सं० विनाश)–नष्ट हो जाता है, विनष्ट हो जाता है। उ० बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग। (मा० ४।१५ ख)
बिनसाइ–(सं० विनाश)–नष्ट हो, नष्ट हो सकता है। उ० कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ। (मा० २। २३१)
बिना–(सं० विन)–बिला, बग़ैर। उ० बरु मारिए मोहिं बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू। (क० २।६)
बिनाए–(सं० वीक्षण)–बिनवाया, चुनवाया। मु० बिनाए नाक चना–परेशान किया। उ० बिनाए नाक चना हैं। (गी० ७।१३)
बिनास–(सं० विनाश)–नाश, संहार।
बिनासन–नष्ट करनेवाला। उ० दससीस बिनासन बीस भुजा। (मा० ७।१४।२)
बिनासि–(सं०विनाश)–विनष्ट कर, नाश कर। उ०दंभ लोभ लालच उपासना बिनासि नीके। (वि० १८४) बिनास्यौ–

नष्ट कर दिया। उ० करम उपासना कुबासना बिनास्यो ज्ञान। (क० ७'८४)

बिनिंदक–(सं० वि + निंदक)–विशेष निंदा करनेवाला, नीचा दिखानेवाला। उ० तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि। (मा० १।१४७)

बिनीत–(सं० विनीत)–विनय-युक्त, विनीत, नम्र। उ० सुनि उमा वचन विनीत कोमल सकल अबला सोचहीं। (मा० १।६७। छं० १)

बिनीता–दे० 'बिनीत'। उ० नवहिं आइ नित चरन बिनीता। (मा० १।१८२।७)

बिनु–दे० 'बिन'। उ० बैद्य अनेक उपाय करहिं जागे बिनु पीर न जाई। (वि० १२०)

बिनोद–(सं० विनोद)–खेल, आनंद, क्रीड़ा। उ० एहि बिधि सिसु बिनोदु प्रभु कीन्हा। (मा० १।२००।४)

बिनोदु–दे० 'बिनोद'। उ० भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं। (मा० १।६६। छं० १)

बिपच्छ–(सं० विपक्ष)–विमुख, प्रतिकूल। उ० परै उपास कुबेर घर जो बिपच्छ रघुबीर। (दो० ७२)

बिपति–(सं० विपत्ति)–दुःख, कष्ट, आफ़त। उ० परी जासु फल बिपति घनेरी। (मा० १।४१।४)

बिपत्ति–दे० 'बिपति'। उ० होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ। (मा० १।५६)

बिपदा–दे० 'बिपति'। उ० तिन्ह के सम बैभव वा बिपदा। (मा० ७।१४।७)

बिपरीत–(सं० विपरीत)–उलटा, विरुद्ध। उ० बिधि बिपरीत चरित सब करई। (मा० ६।६६।३)

बिपरीता–दे० 'बिपरीत'। उ० भयउ कराल कालु बिपरीता। (मा० २।५७।३)

बिपिन–(सं० विपिन)–जंगल, वन। उ० खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई। (मा० १।४६।४)

बिपुल–(सं० (विपुल)–१. प्रशस्त, बड़ा, २. बहुत। उ० २. बालचरित चहुँ बंधु के बनज बिपुल बहु रंग। (मा० १।४०)

बिपुलाई–अधिकता। उ० राम तेज बल बुधि बिपुलाई। (मा० ५।२६।१)

बिप्र–(सं० विप्र)–ब्राह्मण। उ० बिप्र सहित परिवार गोसाईं। (मा० २।३।२) बिप्रन्ह–ब्राह्मणों। उ० बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा। (मा० २।२०३।१) बिप्रहु–हे ब्राह्मणो! उ० बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। (मा० १।१७४।३)

बिफल–(सं० विफल)–निष्फल, व्यर्थ। उ० बिफल होहिं सब उद्यम ताके। (मा० ६।६२।२)

बिबर–(सं० विवर)–बिल, छेद, माँद, गुफा, कंदरा। उ० भूमि बिबर एक कौतुक पेखा। (मा० ७।२४।३)

बिबरन (१)–(सं० विवरण)–वर्णन, विवेचना।

बिबरन (२)–(सं० विवर्ण)–बदरंग, उदास, शोभारहित, श्रीहीन। उ० बिबरन भयउ निपट नरपालू। (मा० २।२६।३)

बिबराए–(?) खोला। उ० पुनि निज जटा राम बिबराए। (मा० ७।११।४)

बिबरिहि–(?) सुलझ जायगा। उ० नीक सगुन बिबरिहि झगर होइहि धरम निआउ। (प्र० ६।६।२)

बिबर्ध–बढ़ता है, बढ़ता जाता है। उ० सेवत विषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार। (मा० ६।६२)

बिबल–विशेष बल, अधिक बल। उ० त्रिबिध बिबल तें ते हठहि तुलसी कहहि प्रमान। (स० ६०७)

बिबस–(सं० विवश)–१. मजबूर, लाचार, विवश, २. परतंत्र, पराधीन। उ० १. बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकहीं। (क० ७।६८) बिबसहु–विवश भी।

बिबहार–(सं० व्यवहार)–१. आचार, व्यवहार, रीति-नीति, २. रुपए पैसे की लेन-देन। उ० १. कुल-बिबहार, बेद बिधि चाहिय जहँ जस। (जा० १५६)

बिबाकी–(फ़ा० बेबाकी)–चुकता, भुगतान, अंत। उ० सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी। (मा० १।२४।२)

बिबाके–बेबाक किया, छोड़ा। उ० भे सनेह बिबस बिदेहता बिबाके हैं। (गी० १।६२)

बिबाद–(सं० विवाद)–कलह, झगड़ा। उ० जिमि पाखंड बिबाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ। (मा० ४।१४) बिबादन–(सं० विवाद)–झगड़े को, विवाद करने को। उ० यह तो मोहिं खिझाइ कोटि बिधि उलटि बिबादन आइ अगाऊ। (कृ० १२)

बिबाह–(सं० विवाह)–ब्याह, शादी। उ० उमा महेस बिबाह बराती। (मा० १।४०।४)

बिबाहहु–विवाह करो। उ० जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहिं माँगें देहु। (मा० १।७६) बिबाहीं–१. ब्याही, २. ब्याही गई थी। उ० २. तहँहु सती संकरहि बिबाहीं। (मा० १।६८।३) बिबाही–ब्याहा, ब्याह किया। उ० पंच कहें सिव सती बिबाही। (मा० १।७६।४)

बिबाहु–दे० 'बिबाह'।

बिबाहू–दे० 'बिबाह'। उ० सीय राम कर करै बिबाहू। (मा० १।२४६।२)

बिबिध–(सं० विविध)–बहुत से, अनेक तरह के। उ० दाइज भयउ बिबिध बिधि, जाइ न सो गनि। (जा० १७५) बिबिध विधान बाजने बाजे। (मा० १।३४६।२) बिबिधि–'बिबिध' का स्त्रीलिंग। उ० बिबिधि पाँति बैठी जेवनारा। (मा० १।६६।४)

बिबुध–(सं० वि + बुध)–देवता, देव। उ० हिमवान कन्या जोग बर बाउर बिबुध बंदित सही। (पा० १८) बिबुधनदी–देवताओं की नदी, गंगा। उ० ताकहँ बिबुध नदी बैतरनी। (मा० ३।२।४)

बिबुधेश–(सं० विबुधेश)–देवताओं के राजा इंद्र। उ० जयति बिबुधेश धनदादि दुर्लभ। (वि० ३६)

बिबुधेस–दे० 'बिबुधेश'। उ० जीते जातुधान जे जितैया बिबुधेस को। (क० १।२१)

बिबि–(सं० द्वि)–दो, दोनों। उ० सोभित स्रवन कनककुंडल कल लंबित बिबि भुज मूले। (गी० ७।१२)

बिबेक–(सं० विवेक)–ज्ञान, सत्यासत्य का विचार। उ० अस बिबेक जब देइ बिधाता (मा० १।७।१)

बिबेका–दे० 'बिबेक'। उ० कहहु नाथ अति बिमल बिबेका। (मा० १।१११।२)

बिबेकी–(सं० विवेकिन्)–ज्ञानी, ज्ञानवान। उ० जागबलिक मुनि परम बिबेकी। (मा० १।४५।२)

बिबेकु–दे० 'बिबेक'। उ० प्रिया हास रिस परिहरहि मागु बिचारि बिबेकु। (मा० २।३२)

बिबेकू–दे० 'बिबेक'। उ० नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। (मा० १।२७।४)

बिभंजन–नाश करनेवाला। बिभंजनि–नाश करनेवाली। उ० रामकथा कलि कलुष बिभंजनि। (मा० १।३१।३)

बिभंजय–नष्ट करो। उ० द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। (मा० ७।३४।४) बिभंजि–नष्ट करके, तोड़कर। उ० आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन् सूत हति ब्याकुल कियो। (मा० ६।८४।छं० १)

बिभव–(सं० विभव)–ऐश्वर्य, संपत्ति, धन। उ० ते जनु सकल बिभव बस करहीं। (मा० २।३।३)

बिभाग–(सं० विभाग)–भाग, हिस्सा। उ० ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व बिभाग। (मा० १।४४)

बिभागा–दे० 'बिभाग'। उ० बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। (मा० १।४०।३)

बिभिचारी–(सं० व्यभिचारिन्)–पर-स्त्री-गामी, व्याभिचारी। उ०ब्यसनी धन सुभगति बिभिचारी। मा० ३।१७।८)

बिभीखन–दे० 'बिभीषन'।

बिभीखनु–दे० 'बिभीषन'।

बिभीषण–(सं०)–दे० 'बिभीषन'।

बिभषन–(सं० विभीषण)–रावण का भाई जो राम का भक्त था। रावण की मृत्यु के बाद यही लंका का राजा हुआ। उ० नाम बिभीषन जेहि जग जाना। (मा० १। १७६।३) बिभीषनहि–विभीषण को। उ० सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ। (मा० ५।४९ ख)

बिभीषनु–दे० 'बिभीषन'। उ० जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड। (मा० ५।४९ क)

बिभु–(सं० विभु)–प्रभु, सर्वव्यापी। उ० जौं अनीह व्यापक बिभु कोई। (मा० १।१०६।१)

बभूति–(सं० विभूति)–संपत्ति, धन, ऐश्वर्य। उ० भोग बिभूति भूरि भर राखे। (मा० २।२१४।३)

बिभूती–दे० 'बिभूति'। उ० कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। (मा० २।१।३)

बिभूषन–(सं० विभूषण)–गहना, आभूषण। उ० सहुगामिनिहि बिभूषन जैसें। (मा० २।३७।४)

बिभेद–(सं० विभेद)–भेद, अंतर। बिभेदकरी–विभेद या भेद करनेवाली।

बिभेदा–दे० 'बिभेद'। उ० समदरसी मुनि बिगत बिभेदा। (मा० ७।३२।३)

बिभो–(सं० विभो)–हे सर्वव्यापी! उ० अवधेस सुरेस रमेस बिभो। (मा० ७।१४।१)

बिमत्त–मतवाले। उ० जे ग्यान मान बिमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी। (मा० ७।१३। छं० ३)

बिमद–(सं० वि+मद)–मद से रहित, गर्वरहित। उ० सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। (मा० ७।३८।१)

बिमर्दि–(सं० वि+मर्दन)–मर्दन करके।

बिमल–(सं० विमल)–शुद्ध, मल से रहित, निर्मल। उ० बालि बिमल जस भाजन जानी। (मा० ६।२४।६)

बिमात–(सं० विमाता)–सौतेली मा, मैभा।

बिमात्र–(सं० विमाता)–सौतेला। उ० भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू। (मा० १।१७६।२)

बिमान–(सं० विमान)–१. आकाश का जहाज़, वायुयान, २. रथ, ३. घोड़ा, ४. अरथी। उ० १. लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान। (मा० १।६१)

बिमानु–दे० 'बिमान'।

बिमुक्त–(सं० वि+मुक्त)–सांसारिकता से मुक्त, जीवन्मुक्त। उ० सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। (मा० ७।१५।३)

बिमुख–(सं० विमुख)–विरुद्ध, खिलाफ़। उ० बिषय बिमुख बिरागरत होई। (मा० ७।४४।१)

बिमूढ़–(सं० वि+मूढ़)–महा मूढ़, अत्यंत मूर्ख। उ० किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित बिमूढ़। (मा० १।३०ख)

बिमूढ़ा–दे० 'बिमूढ़'। उ० कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा। (मा० ६।३१।१)

बिमोचन–(सं० विमोचन)–छुड़ानेवाला, मुक्तकर्त्ता। उ० भए सोचबस सोच बिमोचन। (मा० २।२२६।३) बिमोचनि–छुड़ानेवाली। उ० निज सरूप रतिभानु बिमोचनि। (मा० १।२६७।१)

बिमोचहिं–छोड़ते हैं, निकालते हैं। बिमोचहीं–निकालती हैं, बहाती हैं, छोड़ती हैं। उ० बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं। (मा० १।६७। छं० १)

बिमोह–(सं० विमोहन)–मोहित हों। उ० श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी। (मा० १।१३०।२)

बिमोहन–(सं० विमोहन)–मोहित करना।

बिमोहनि–मोहित करनेवाली। उ० दनुज बिमोहनि जन सुखकारी। (मा० ७।७३।१)

बिमोहनसीला–मोहित करनेवाली। उ० सुर हित दनुज बिमोहनसीला। (मा० १।११३।४) बिमोहा–१. मोहित किया, २. मोह। उ० २.कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। (मा० ७।८३।३)

बिय (१)–(सं० बीज)–बीज, गुठली। उ० बरने जामवंत तेहि अवसर, बचन बिबेक बीर रस बिय के। (गी०४।१)

बिय (२) (सं० द्वि)–१. दो, २. दूसरा। उ०२. प्रथम बढ़े पट बिय बिकल, चहत चकित निज काज। (दो० १६६)

बिये–(सं० द्वि)–दूसरे। उ० कहिबे की न बावरि बात बिये तें। क० ७।१२६) बियौ–(सं० द्वि)–दूसरा भी। उ० कहाँ रघुबीर सो वीर बियौ है। (क० ६।५३)

बिया (१)–(सं० विजनन)–उत्पन्न हुआ। बियो (१)–(सं० विजनन)–उपजा, पैदा हुआ।

बिया (२)–(सं० द्वि)–दूसरा, अन्य। उ० तो सो ज्ञान निधान को सर्वज्ञ बिया रे? (वि० ३३) बियो (२)–(सं० द्वि)–दूसरा ही। उ० तुलसी मो समान बड़ भागी को कहि सकै बियो हौं। (गी० ३।१४)

बिया (३)–(सं० बीज)–बीज, बीया।

बियाह–(सं० विवाह)–ब्याह, शादी।

बियाहन–(सं० विवाह)–विवाह करने। उ० कहेन्हि बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब। (पा० १००) बियाहब–ब्याहेंगे, ब्याह करेंगे।

बियाहा–ब्याह, विवाह।

बियाहू–दे० 'बियाह'।

बियो (३)-(सं० बीज)-बीज।
बियोग-(सं० वियोग)-विरह, जुदाई। उ० राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। (मा० २।८४।१) बियोगन्हि-बियोगों से। उ० बहु रोग बियोगन्हि लोग हए। (मा० ७।१४।५)
बियोगा-दे० 'बियोग'। उ०कृस तन श्री रघुबीर बियोगा। (मा० ७।१।१)
बियोगी-वियोगी, बिछुड़ा, छूटा हुआ। उ० मरमारथी प्रपंच बियोगी। (मा० २।९३।२)
बियोगु-दे० 'बियोग'। उ० जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। (मा० २।८६।३)
बियोगू-दे० 'बियोग'। उ० बरनत रघुबर भरत बियोगू। (मा० २।३१८।१)
बिरँचि-दे० 'बिरंचि'। उ० दे० 'बिरवा'।
बिरंचि-(सं० विरंचि)-ब्रह्मा, बिधाता। उ० बिरचे बिरंचि बनाइ बाँची रुचिरता रंचौ नहीं। (जा० ३६)
बिर-(सं० वीर)-वीर, बहादुर।
बिरक्त-(सं० विरक्त)-उदास, त्यागी। उ० कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। (मा० ७।५४।२)
बिरचत-(सं० विरचन -१. बनाते हैं, २. बनाते हुए, रचते हुए। उ० २. बिरचत हंस काग किय जेहीं। (मा० १। १७५।१) बिरचति-१. बनाती है, रचती है, २. रचते हुए। बिरचि-रचकर, बनाकर। उ० कपट नारि बर बेष बिरचि मंडप गईं। (जा० १४७) बिरची-रची, बनायी। उ० बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी। (मा० २।२३७.३) बिरचे-बनाया। उ०दे० 'बिरंचि'। बिरचेउ-बनाया, रचा।
बिरजं-दे० 'बिरज'। बिरज-रजरहित, विशुद्ध। उ० व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। (मा० ७।५८।४)
बिरत-(सं० विरत)-१. विरक्त, अलग, २. वैरागी, साधु। उ० २. बिरत, करमरत, भगत, मुनि, सिद्ध ऊँच अरु नीचु। (दो० २२३)
बिरति-(सं० विरति)-उदासीनता, त्याग। उ० बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह। (मा० ७।५३)
बिरथ-(सं० वि + रथ)--रथरहित, बिना रथ का। उ० रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। (मा० ६।८०।१)
बिरद-(सं० विरुद)-यश, बड़ाई।
बिरदावलि-दे० 'बिरिदावली'।
बिरदु-दे० 'बिरद'।
बिरदैत-(सं० विरुद)-प्रसिद्ध वीर, यशस्वी योद्धा। उ०बरन बरन बिरदैत निकाया। (मा० ६।७९।२)
बिरलइ-बिरला ही। दे० 'बिरला'।
बिरला-(सं० विरल)-कोई-कोई, शायद ही कोई।
बिरले-दे० 'बिरला'। उ० तुलसी ऐसे संतजन बिरले या संसार। (वै० २९)
बिरवँ-बिरवा में। दे० 'बिरवा'। उ० अभिमत बिरवँ परेउ जनु पानी। (मा० २।५।३)
बिरव-दे० 'बिरवा'।
बिरवनि-वृक्षों में, पेड़ों में। उ० दसरथ सुकृत-मनोहर-बिरवनि रूप-करह जनु लाग। (गी० १।२६) बिरवा-(सं० विरुह)-वृक्ष, पेड़, पौदा। उ० वर प्रथम बिरवा बिरँचि बिरचो मंगला मंगल मई। (पा० १८)
बिरह-(सं० विरह)-वियोग, बिछोह, बिछुड़न। उ० केतिक बीच बिरह परमारथ जानत ही किधौं नाहीं। (कृ० ३३)
बिरहनी-दे 'बिरहिनि'।
बिरहवंत-विरही, वियोगी। उ० बिरहवंत भगवंतहि देखी। (मा० ३।४१।३)
बिरहा-दे० 'बिरह'। उ० अब ब्यौंत करै बिरहा दरजी। (क० ७।१३३)
बिरहित-छोड़ा हुआ, अलग।
बिरहिन-दे० 'बिरहिनि'।
बिरहिनि-(सं० विरहिणी)-वियोगिनी, अपने प्रिय से अलग स्त्री। उ० घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। (मा० १।२३८।१)
बिरहिनी-दे० 'बिरहिनि'। उ० जात निकट न बिरहिनी-अरि अकनि ताते बैन। (गी० ५।२)
बिरही-(सं० विरहिन्)-वियोगी, बिछुड़ा। उ० बिरही इव प्रभु करत बिषादा। (मा० ३।३७।१)
बिरहु-दे० 'बिरह'।
बिराग-(सं० विराग)-वैराग्य की अवस्था। उ० बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ। (जा० ४६)
बिरागी-जिसके हृदय में वैराग्य हो, विरक्त। उ०जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा। (मा० १।१८६।२)
बिरागु-वैराग्य, संसार से विरक्त होने का भाव। उ० देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं। (मा० ७।२७।१)
बिरागेउ-विरक्त हो गए, दूर हो गए, अलग हो गए। उ० बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ। (जा० ४६)
बिराज-(सं० वि० + रंजन)-१.विशेष शोभित, २.उपस्थित, बैठा, वर्तमान, ३.विराजमान है। उ० ३.बर बिराज मंडप महँ बिस्व बिमोहइ। (जा०१५५) बिराजइ-१. बैठी है,२. सुशोभित है। उ०जुवति जुत्थ महँ सीय सुभाइ बिराजइ। (जा०१५८) बिराजत-१.बैठे हैं, बैठे रहते हैं, रहते हैं, २. शोभायमान हैं। उ०१.तेरे निवाजे गरीब निवाज बिराजत बैरिन के उर साले। (ह० १७) बिराजति-बिराजती है। बिराजते-१. बिराजते थे, रहते थे, २. शोभित होते थे। बिराजहिं-१. शोभित हैं,२.बैठे हैं, हैं। उ०१.बिबिध भाँति मुख, बाहन, बेष बिराजहिं। (पा० ११०) बिराजा-बिराजमान हुआ। उ० राजसभाँ रघुराज बिराजा। (मा० २।२।१)बिराजी-बिराजमान हुई,सुशोभित हुई। उ०सिथिल सनेह मुदित मन ही मन बसन बीच बिच बधू बिराजी। (कृ० ६१) बिराजे-दे० 'बिराजै'। बिराजै-१. बैठे, बैठे हैं, बिराजमान हैं, २. शोभायमान हो रहे हैं। उ० १. तुलसी समाज राज तजि सो बिराजै आजु। (क० १।१८)
बिराजमान-१. वर्तमान, उपस्थित, मौजूद, २. सुशोभित। उ० १.ऐसे सम समधी समाज ना बिराजमान। (क० १। १५) २. लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि। (क० ७।१७७)
बिराट-(सं० विराट्)-१. बड़ा, बहुत बड़ा, २. ब्रह्म का वह रूप जो संपूर्ण विश्वरूप है। उ० २. बिदुपन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। (मा० १।२४२।१)
बिराध-दे० 'बिराधा'।

बिराधा–(सं० विराध)–एक राक्षस जिसे लक्ष्मण ने दंडकारण्य में मारकर पृथ्वी में गाड़ दिया था। यह पूर्व जन्म का एक गंधर्व था और कुबेर के शाप से राक्षस हो गया था। इसकी प्रार्थना पर कुबेर ने लक्ष्मण के हाथ से इसे मुक्त होने का वर दिया था। उ०खनि गर्त गोपित बिराधा। (वि० ४३)

बिराना–(फ़ा०बेगाना ?)–पराया, दूसरे का। बिराने-पराये, दूसरे के। उ० प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने। (वि० २३५)

बिरावत–(?)–चिढ़ाते हैं। उ० बाल बोलि डहकि बिरावत चरित लखि। (कृ० २)

बिरिद–दे० 'बिरद'। उ० लोक बेद बर बिरिद बिराजे। (मा० १।२५।१)

बिरिदावली–(सं० विरुद+अवलि)–यशोगान, बड़ाई। उ० बिरिदावली कहत चलि आए। (मा० १।२४ ६।४)

बिरिया–(सं० वेला)–समय, वक्त।

बिरुचि–(सं०वि+रुचि)–अपनी रुचि या प्रसन्नता से। उ० बिरुचि परखिए सुजन जन, राखि परखिये मंद। (दो० ३७४)

बिरुज–रोगरहित, स्वस्थ। उ०सब सुंदर सब बिरुज सरीरा। (मा० ७।२१।३)

बिरुझे–(सं० विरुद्ध)–लड़े। उ० बिरुझे बिरुदैत जो खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के। (क० ६।३४) बिरुझो–१. क्रुद्ध हुआ, २. लड़ा, लड़ गया। उ० २. बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत जो कालहु काल को बूझि परै। (क० ६।३६)

बिरुद–(सं० विरुद)–यश, कीर्ति। उ० प्रनतपाल बिरुदावली सुनि जानि बिसारी। (वि० १४८) बिरुदावलि-दे० 'बिरिदावली'।

बिरुदावली–दे० 'बिरिदावली'।

बिरुदैत–(सं० विरद+ऐत)–१. लड़ाका, योद्धा, २. बानेवाला, बानेबंद। उ० १. दे० 'बिरुझो'।

बिरुद्ध–(सं० विरुद्ध)–प्रतिकूल, खिलाफ। उ० जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। (मा० ६।४४।१)

बिरुद्धा–दे० 'बिरुद्ध'। उ० कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। (मा० ६।६७।१)

बिरुद्धे–बिरुद्ध हुए। उ० बीर बली सुख जुद्ध बिरुद्धे। (मा० ६।८१।४)

बिरूप–(सं० विरूप)–कुरूप, असुंदर। उ० जय निसिचरी-बिरूप-करन रघुबंस बिभूषन। (क० ७।११३)

बिरोध–(सं० विरोध)–झगड़ा, बैर। उ० सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध। (मा० ६।४८)

बिरोधा–१. विरोध, २. विरोध किया। बिरोधि–बिरोध करके। उ० तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा। (मा० ३।२५।४) बिरोधें–बिरोध करने से। उ० नवहि बिरोधें नहिं कल्याना। (मा० ३।२६।२) बिरोधे–बिरोध किया, २. बिरोध करने से।

बिरोधी–शत्रु, विरोध करनेवाला। उ० राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि। (मा० २।१६२)

बिरोधू–दे० 'बिरोध'।

बिलंद–(फ़ा० बुलंद)–ऊँचा। उ० मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे। (वि० १८६)

बिलँब–दे० 'बिलंब'।

बिलंब–(सं० विलंब)–देर, देरी। उ० बिलंब किए अपनाइए सबेरो। (वि० २७२)

बिलँबत–(सं० विलंब)–बिलंब करते हैं, देर करते हैं। उ० खेलत चलत करत मग कौतुक बिलँबत सरित-सरोवर तीर। (गी० १।५२) बिलँबे–ठहरे। उ० तुलसी प्रभु तरु तर बिलँबे किए प्रेम कनौड़े कै न? (गी० २।२४)

बिलंबा–दे० 'बिलंब'। उ० तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा। (मा० १।८१।४)

बिल–(सं० विल)–माँद, छेद, विवर। उ० खोजत गिरि, तरु लता भूमि, बिल परम सुगंध कहाँ धौं आयो। (वि० २४४) बिलै–(सं० विल)–बिल में। उ० सो सहेतु ज्यों बक्रगति ब्यालन बिलै समाइ। (दो० ३३४)

बिलख–(सं० विकल)–१. उदास, २. रोकर, विलख कर। उ० १. ब्याकुल बिल बिलख बदन उठि धाए। (मा० २।७०।१) बिलखत (१)–रोते हैं, दुखी होते हैं। बिलखि–दुखी होकर, रोकर। उ० सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ। (मा० २।१७१) बिलखेउ–उदास हुआ, रोया। उ०सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। (मा० १।३३६।४)

बिलखत (२)–विशेष प्रकार से देखते हैं। उ० इन महँ चेतन असल अल बिलखत तुलसीदास। (स० ४६२)

बिलखाइ–(सं० विकल)–१. बिलखकर, रोकर, २. प्रेम से गद्गद होकर। उ० १. सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ। (मा० १।२५५) २. करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ। (मा० २।२८६) बिलखाई–१. विलाप करता है, दुखी होता है, २. रोकर, दुखी होकर। उ० १. सबइ सुमन बिकसत रबि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई। (गी० १।१) बिलखात–उदास होते हैं। बिलखाति–उदास होती है। बिलखान–बिलखाया, उदास हुआ। उ० काल कराल बिलोकि मुनि, सब समाज बिलखान। (प्र० १।६।५) बिलखानी–उदास होकर, उदास होती हुई। उ० भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। (मा० २।१३।३) बिलखाने–उदास हुए, दुखी हुए। उ० घायल लषन लाल लखि बिलखाने राम। (कृ० ६।५२) बिलखाहिं–दुखित होते हैं, रोते हैं। उ० जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना। (मा० २।२१४।२) बिलखाहीं–दुखी होते हैं, रोते हैं। उ० देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं। (मा० २।३३।४)

बिलखावति–उदास करती है, दुखित करती है। उ० काम-तून-तूल सरिस जानु जुग, उरु करि-कर करभहि बिलखावति। (गी० ७।१७)

बिलखित–उदास, दुखी। उ० बहु समुझाइ बुझाइ फिरै बिलखित मन। (पा० १६०)

बिलग–(सं० वि+लग्न)–१. अलग, न्यारा, २. बुरा, अयुक्त। उ०१. बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज। (मा० १।६२)

बिलगाइ–(सं० वि+लग्न)–अलग हो, अलग हो जावे,

अलग हो सकता है। उ० किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना। (मा० ७।११११५) बिलगाई–अलग करके। उ० पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। (मा० १।३३७।४) बिलगाउ–अलग हो, अलग हो जावे। उ० सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। (मा० १।२७१।३) बिलगाऊ–१. अलग करो, २. दे० 'बिलगाउ'। बिलगाए–अलग किया, अलग किया है। उ० गनि गुन दोष बेद बिलगाए। (मा० १।६।२) बिलगान–बिलगाया, फटा, विदीर्ण हुआ। उ० ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान। (मा० २।६७) बिलगाना–अलग हुआ। बिलगावै–अलग करे, अलगावे। उ० ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बल तें न कोउ बिलगावै। (वि० १६७) बिलगान्यो–अलग हुआ। उ० जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो। (वि०१३६) बिलगायउ–अलग कर लिया। उ० आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ। (पा० १०६) बिलगाव–१. भिन्नता, अलगाव, २. बिलगाओ, अलग करो। बिलगाहिं–अलग होते हैं। बिलगाहीं–अलग होते हैं। उ० जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं। (मा० १।५।३)

बिलगु–दे० 'बिलग'। उ० २. इनको बिलगु न मानिए बोलहिं न बिचारी। (वि० ३४)

बिलपत–बिलाप करते। उ० बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। (मा० २।३७।३) बिलपति–बिलाप करती है। उ० बिलपति अति कुररी की नाईं। (मा० ३।३१।२) बिलपहिं–(सं० विलाप)–विलाप करते हैं, रोते हैं। उ० बिलपहिं बाम बिधातहि दोष लगावहिं। (पा० ३४)

बिलपाता–(सं० विलाप) विलाप करते हुए। उ० परबस परी बहुत बिलपाता। (मा० ४।५।२)

बिलम–(सं० विलंब)–देर, देरी।

बिललात–(सं० विलाप)–बिलल्लाते हैं, रोते हैं। उ० नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति। (क० ५।१५)

बिलष–(सं० विकल)–१. उदास, २. उदास होकर, सुस्त होकर, ३. उदासीनता, व्याकुलता।

बिलषाइ–(सं० विकल)–२. दुखित होकर, १. रोकर। बिलषाता–रोता, दुखी होता।

बिलसत–(सं० विलसन)–१. सुंदर लगते हैं, २. बिलास करते हैं, आनंद मनाते हैं, भोगते हैं, ३. भोगते हुए। उ० १. कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु। (वि० २४) ३. राज भवन सुख बिलसत सिय सँग राम। (ब० २१) बिलसति–'बिलसत' का स्त्रीलिंग। सुंदर लगती है। उ० बिबिध बाहिनी बिलसति सहित अनंत। (ब० ४२) बिलसहि–बिलास करता है, भोगता है। उ० शांत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसहि नित नरनाहु। (दो० ५२१) बिलसै–बिलास करे, भोगे, सुख लूटे। उ० सज्जन-सींव बिभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर बंधु-बधू जो। (क० ७।५)

बिलाई–(सं० बिडाल)–बिल्ली। उ० जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई। (मा० ३।२४।४)

बिलानी–(सं० विलयन)–मिट गई, नष्ट हो गई, समाप्त हो गई। उ० सकल काम बासना बिलानी। (वै० ५१)

बिलाहिं–(सं० विलयन)–नष्ट हो जाते हैं, विलीन हो जाते हैं, नहीं रह जाते हैं। उ० मुख देखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहिं। (वै०२४) बिलाहीं–दे० 'बिलाहिं'। उ० जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं। (मा० ७।१२१।१०)

बिलाप–(सं० विलाप)–रोना, रुदन। उ० बरनि न जाहिं बिलाप कलापा। (मा० २।५७।४)

बिलापु–दे० 'बिलाप'।

बिलास (सं० विलास)–क्रीड़ा, आनंददायक क्रिया। उ० उपमा बीचि बिलास मनोरम। (मा० १।३७।२)

बिलासा–दे० 'बिलास'।

बिलासिनि–(सं० विलासिनी)–स्त्रियाँ। उ० बिबुध बिलासिनि सुर मुनि जाचक जो जेहि जोग। (गी० १।५)

बिलासु–दे० 'बिलास'।

बिलासू–दे० 'बिलास'।

बिलुलित–(?) उलझे हुए। उ० अति चमुत स्रमकन सुखनि बिथुरे चिकुर बिलुलित हार। (गी० ७।१८)

बिलोएँ–(सं० बिलोडन)–मथने से। उ० घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ। (मा० ७।४६।३) बिलोये–(सं० बिलोडन)–मथे, मथ डाले। बिलोयो–मथा, मथ डाला। उ० बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस बृथहिं मंद मति बारि बिलोयो। (वि० २४५) बिलोवत–मथते हुए। उ०सोइ आदरौ आस जाके जिय बारि बिलोवत घी की। (कृ०४३)

बिलोक–(सं० बिलोकन)–१. देखकर, २. देखो। बिलोकइ–देखता है। बिलोकउँ–(सं० विलोकन)–देखूँ। उ० ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। (मा० ३।४१।४) बिलोकत–१. देखत हैं, २. देखते ही। उ० २. राम बिलोकत प्रगटेउ सोई। (मा० १।१७।१) बिलोकति–देखती है। बिलोकन–देखना, अवलोकन करना। बिलोकनि–देखने की क्रिया, चितवनि। उ० उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। (मा० ६।७०।६) बिलोकय–देखो, अवलोकन करो। बिलोकहि–देखती है। उ०जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि साथहि हो। (रा० ६) बिलोकहु–देखो। बिलोका–देखा, अवलोकन किया। उ० उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। (मा० ६।७०।६) बिलोकि–देखकर। उ०जय धन्य जय-जय धन्य-धन्य बिलोकि सुर नर मुनि कहे। (जा० १४४) बिलोकिबे–१. देखूँगी, २. देखना। उ० १. बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ। (गी० २।३६) बिलोकिय–देखिए, देखो। बिलोकियत–दिखाई देता है। उ० लोक परलोक हूँ तिलोक न बिलोकियत। (ह० २४) बिलोकी–देखा, अवलोकन किया। बिलोकु–देखो, अवलोको, समझो। उ० सुत दार अगार सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे। (क० ७।३०) बिलोके–१. देखे, अवलोके, २. देखने पर। उ० १. मूरति बिलोके तन-मन के हरन हैं। (क० २।१७) बिलोकेउँ–देखा, बिलोका। उ० जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। (मा० ६।२६।१)

बिलोकनिहारे–देखनेवाले। उ० तुलसी सुनत एक एकनि सों चलत बिलोकनिहारे। (गी० १।५८)

बिलोकित–देखा हुआ।

बिलोचन–(सं० लोचन)–आँख। उ० मूकनि बचन-लाहु, मानो अंधनि लहे हैं बिलोचन-तारे। (गी० १।५८) बिलोचननिह–आँखों से, नेत्रों से। उ० निरखि बिबेक बिलोचननिह सिथिल सनेहँ समाजु। (मा० २।२६७)
बिवाह–दे० 'बिबाह'।
बिवेक–दे० 'बिबेक'।
बिशोका–दे० 'बिसोका।
बिशोकी–दे० 'बिसोका'।
बिश्राम–(सं० विश्राम)–१. आराम, २. शयन । उ० १. ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम। (मा० ६।७८)
बिश्रामा–दे० 'बिश्राम' उ० १. सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा। (मा० १।३५।४)
बिश्रामु–दे० 'बिश्राम'। उ० १. चलिअ करिअ बिश्रामु यह बिचारि दृढ़ आनि मन। (मा० २ २०१)
बिष–(सं० विष)–ज़हर, गरल। उ० चंदु चवै बरु अनल-कन सुधा होइ विष तूल। (मा० २।४८)
बिषइक–(सं० विषय)–संबंधी, विषयक। उ० सुत बिषइक तव पद रति होऊ। (मा० १।१५१)
बिषई–(सं० विषयी)–विषयों में आसक्त। उ० सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। (मा० ७।१५।३)
बिषद–(सं० विशद)–१. विस्तृत, २. पवित्र, निर्मल।
बिषम–(सं० विषम)–विकट, कठिन, टेढ़ा। उ० तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे। (मा० ७।१३। छं० २)
बिषमता–(सं० विषमता)–कठोरता, कठिनता।
बिषमु–दे० 'बिषम'।
बिषय–(सं० विषय)–१. बारे, संबंध, २. स्त्री-संभोग, ३. संसार के प्रलोभन। उ० १. आपु बिषय बिस्वास बिसेषी। (मा० १।१६१।३) ३. धरम धुरीन बिषय रस रूखे। (मा० २।५०।२) बिषया–बिषयों ने, संसार के प्रलोभनों ने। उ० बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती। (मा०७।१०१।१)
बिषयिक–दे० 'बिषइक'।
बिषयी–दे० 'बिषई'।
बिषाद–(सं० विषाद)–दुःख, कष्ट। उ० उजरें हरष बिषाद बसेरें। (मा० १।४।१)
बिषादा–दे० 'बिषाद'। उ० होहिं छनहिं छन मगन बिषादा। (मा० २।१४४।१)
बिषादु–दे० 'बिषाद'। उ० बिरह बिषादु बरनि नहिं जाई। (मा० २।१४४।१)
बिषादू–दे० 'बिषादु'। उ० कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। (मा० २।५४।२)
बिषाना–(सं० बिषाण)–सींग। उ० ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना। (मा० ५।५०।१)
बिषु–दे० 'बिष'। उ० जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक। (मा० १।२३७)
बिषेषा–विशेष, अधिक। उ०सिव उर भयउ बिषाद बिषेषा। (मा० १।५६।४)
बिष्टा–(सं० विष्टा)–गुह, पाख़ाना। उ० बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। (मा० ६।५२।२)
बिष्नु–(सं० बिष्णु)–भगवान। रामादि दस या चौबी अवतार इन्हीं के हुए थे। उ० भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसि त्राता। (मा० ७।८१।१)
बिसद–(सं० विशद)–स्वच्छ, निर्मल। उ० निरस बिसद गुनमय फल जासू। (मा० १।२७।३)
बिसमउ–(सं० विस्मय)–१. शोक, २. आश्चर्य। उ० १. हरष समय बिसमउ कत कीजै। (मा० २।७७।२)
बिसमय–दे० 'बिसमउ'।
बिसमित–(सं० विस्मित)–आश्चर्यचकित। उ० सुनत बचन बिसमित महतारी। (मा० १।७३।३)
बिसर–(सं० विस्मरण)–भूलता, विस्मृत हो जाता। उ० एक सूल मोहि बिसर न काऊ। (मा०७।११०।१) बिसरा–भूला। उ० बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी। (मा०६।६३।१) बिसरि–भूल, विस्मृत हो। उ० तुव बियोग संभव दारुन दुख बिसरि गई महिमा सुबान की। (गी० ५।११) बिसरिए–भूलिए, भूल जाइए। उ०अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरिए। (वि० २७१) बिसरी–भूल गई। उ० बिसरी देह तपहिं मनु लागा। (मा० १।७४।२) बिसरे–भूल गये, दूर हो गये। उ० दुसह-बियोग-जनित दारुन दुख रामचरन देखत बिसरे। (गी० ७।३८) बिसरेउ–भूल गया, याद जाती रही। उ० भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु। (मा० २।१६०) बिसर्यो–(सं० विस्मरण)–भूला, विस्मरण हुआ। उ० जो निज धर्म बेद-बोधित सो करत न कछु बिसर्यो। (वि० २३९)
बिसराइ–(सं० विस्मरण)–भूलकर। उ० सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान। (मा० १।१४ क) बिसराइयो–१. भुला दिया, २. भूलिएगा। उ० १. मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोहबस बिसराइयो। (मा०६।१२१। छं०२) बिसराई–१.भूले, भूल गए, २.छोड़कर, भुलाकर। उ० १.कारन कौन कृपा बिसराई। (वि०२४२) २.तुलसिदास इन्ह पर जो द्रवहि हरि तौ पुनि मिलौं बैरु बिसराई। (कृ० ४९) बिसराए–१. भुलाकर, २. भूले। उ० १. देखत नभ घन-ओट चरित मुनि जोग समाधि बिरति बिसराए। (गी० १।२६) बिसरायो–भुला दिया। उ० नीच! मीचु जानत न सीस पर, ईस निपट बिसरायो। (वि० २००) बिसरावहिं–भुला देते हैं, भूल जाते हैं। उ० देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं। बिसरावहिंगे–दूर करेंगे। उ० तुलसिदास प्रभु मोह जनित भ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावहिंगे? (गी० ५।१०) बिसरावहीं–भूलेंगे।
बिसराते–(सं० बेशरः)–खच्चर। उ० ढेक महोख ऊँट बिसराते। (मा० ३।३८।३)
बिसहते(–सं० व्यवसाय)–मोल लेते, खरीदते। उ० तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते? (वि० ९७)
बिसारउ–भूलो, भूल जाओ। बिसारहि–बिसारो, भूलो। उ० तौ जनि तुलसिदास निसिबासर हरिपद-कमल बिसारहि। (वि० ८५) बिसारा–भूले, भूल गए। उ० राम काजु सुग्रीवँ बिसारा। (मा० ४।१९।१) बिसारि–छोड़कर, भूलकर। उ० निसि दिन भ्रमत

बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन-तान्यो। (वि० ८८) बिसारिबौ–भूलेंगे, बिसार देंगे। उ० तुलसीऔ तारिबो बिसारिबो न अंत मोहिं। (क० ७।१८) बिसारी–१. भूल-कर, २. छोड़कर, ३. भूले, भुला दिया। उ० १. अपनेनि को अपनो बिलोकि बल सकल आस बिस्वास बिसारी। (कृ० ६०) ३. कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम? (वि० ९३) बिसारे–भूले, भूल गए। उ० सोइ कछु करहु रहहु ममता मम फिरहुँ न तुमहिं बिसारे। (वि० ११२) बिसा-रेउ–दे० 'बिसारेहु'। बिसारेहु–भुला दी, भुलाया। उ० केहिं अपराध बिसारेहु दाया। (मा० ३।२६।१) बिसारो–भुलाया, भुला दिया। उ० काहे तें हरि मोहिं बिसारो। (वि० ६४) बिसारौं–छोड़ दूँ, भूल जाऊँ, भुला दूँ। उ०वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौं। (कृ० ३३) बिसार्‌यो–भुला दिया।

बिसारद–(सं० विशारद)–चतुर। उ० जे मुनिबर बिग्यान बिसारद। (मा० १।१८।३)

बिसारन–१. भूल जानेवाला, २. भूलना, भूलने का भाव। उ० १. जन-गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन। (वि० २०६) बिसारनसील–विस्मरण-शील, भूल जानेवाली। उ० बानि बिसारनसील है मानद अमान की। (वि० ४२)

बिसाल–(सं० विशाल)–बड़ा, भारी। उ० नीच निरादर ही सुखद आदर सुखद बिसाल। (दो० ३५४)

बिसाला–दे० 'बिसाल'। उ० एक ललित लघु एक बिसाला। (मा० २। १३३।४)

बिसाही–(सं० व्यवसाय)–खरीदी हुई, क्रीत। उ० समरथ पापी सों बयर जानि बिसाही मीचु। (दो० ४७६)

बिसिख–दे० 'बिसिष'। उ० कटि कसि निषंग चाप बिसिख सुधारि कै। (मा० ३।१८। छं० १)

बिसिष–(सं० विशिख)–बाण, तीर।

बिसिषासन–(सं० विशिख + आसन)–धनुष, कमान। उ० बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि। (क० २।१५)

बिसुद्ध–(सं० विशुद्ध)–बहुत पवित्र। उ० भए बिसुद्ध दिए सब दाना। (मा० २।१७०।४)

बिसूरति–(सं० विसूरण)–१. दुखित होती हुई, विलाप करती हुई, २. दुखी होती हैं, रोती हैं, चिंता करती हैं। उ० १. जानि कठिन सिव चाप बिसूरति। (मा० १। २३५।१) २. कहि प्रिय बचन सखिन्ह सन रानि बिसू-रति। (जा० ८२) बिसूरन–दुखी होने, चिंता करने। उ० समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन। (जा० ५३) बिसूरि–चिंता कर, चिंतित होकर। उ० जहाँ गवन कियो कुँवर कोसलपति, बूझति सियपिय पतिहि बिसूरि। (गी० २।१३)

बिसेक–दे० 'बिसेख'। उ० गोखग, खेखग बारिखग तीनों माहिं बिसेक। (दो० ५३८)

बिसेख–(सं० विशेष)–खास, जिसमें कोई विशेषता हो, विशेष।

बिसेखी–दे० 'बिसेख'।

बिसेषा–विशेष, अधिक। उ० उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा। (मा० १।५०।१) बिसेषी–विशेष, अधिक। उ० जौं तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी। (मा० १।८१।२)

बिसेषि–दे० 'बिसेख'। उ० बिपुल बनिज, बिद्या, बसन, बुध बिसेषि गृहकाज। (प्र० ७।१।६)

बिसेषु–दे० 'बिसेख'। उ० उतरि सिंधु जार्‌यो प्रचारि पुर जाको दूत बिसेषु। (गी० ६।१)

बिसेषे–(सं० विशेष)–१. विशेष, खास, २. अधिक।

बिसोक–(सं० वि + शोक)–१. शोकरहित, निश्चिंत, २. शोक रहित करनेवाला। उ० १. होत न बिसोक ओत पावै न मनाक सो। (क० ५।२५) २. लोक परलोक को बिसोक सो बिलोक ताहि। (ह० १३)

बिसोका–(सं० वि + शोक)–शोक रहित, निश्चिंत। उ० भए नाम जपि जीव बिसोका। (मा० १।२७।१) बिसोकी–दे० 'बिसोक'। उ० जासु नाम बल करउँ बिसोकी। (मा० १।११६।१)

बिस्तर–(सं० विस्तर)–बिस्तार, बढ़ाव। उ० बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी। (मा० १।७६।४)

बिस्तरिहहिं–विस्तारेंगे, फैलाएँगे। उ० जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं। (मा० ६।६६।२)

बिस्तार–(सं० विस्तार)–विस्तार, फैलाव। उ० राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार। (मा० १।३३)

बिस्तारक–विस्तार करनेवाला। उ० बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक। (मा० ७।३५।३)

बिस्तारय–विस्तार कीजिए। उ० दीनबंधु समता बिस्ता-रय। (मा०७।३५।२) बिस्तारहिं–फैलाएँगे, विस्तार करेंगे। बिस्तारा–फैलाया, विस्तार किया। बिस्तारी–फैलायी। उ० तब रावन माया बिस्तारी। (मा० ६।८९।३) बिस्तारे–फैलाया। बिस्तारेउ–फैलाया, फैला दिया, विस्तार कर दिया।

बिस्राम–(सं० विश्राम)–आराम।

बिस्रामा–दे० 'बिस्राम'।

बिस्रामु–दे० 'बिस्राम'।

बिस्व–(सं० विश्व)–संसार, जगत। उ० जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार। (मा० १।६)

बिस्वधृत–(सं० विश्वधृत)–शेषनाग।

बिस्वनाथ–(सं० विश्वनाथ)–शंकर, महादेव। उ० बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ कीजो। (क० ७।१८२)

बिस्वामित्र–(सं० विश्वामित्र)–एक प्रसिद्ध ऋषि जो गाधि के पुत्र थे। उ० बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। (मा० १। २०६।१)

बिस्वास–(सं० विश्वास)–एतबार, यक़ीन। उ० हियँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास। (मा० १।६०)

बिस्वासा–दे० 'बिस्वास'। उ० तेहि के बचन मानि बिस्वासा। (मा० १।७६।३)

बिस्वासु–दे० 'बिस्वास'। उ० ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। (मा० २।३२५।३)

बिहंग–दे० 'बिहग'। उ० २. जातुधान भालु कपि केवट बिहंग जो-जो। (क० ७।१३) ३. कौन भीर जो नीरदंहि जेहि लगि रटत बिहंग? (कृ० ५४)

बिहँगराज–दे० 'बिहगेस' । उ० बिहँगराज-बाहन तुरत काढ़िय मिटइ कलेस। (दो० २३५)
बिहंगा–दे० 'बिहंग'। उ० १. तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा। (मा० १।३७।८)
बिहंडत–नष्ट करता है, तोड़ता है। उ० नख दंतन सों भुज दंड बिहंडत। (क० ६।३५)
बिहंडन–(सं० विघटन, प्रा० बिहंडन)–तोड़नेवाले, नष्ट करनेवाले। उ० नृपगन-बलमद सहित संभु कोदंड-बिहंडन। (क० ७।११२)
बिहँसत–(सं० विहसन)–१. हँसते ही, २. हँसते हुए। उ० १. बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं। (मा० ७।८०।१) बिहँसहिं–मुस्कराते हैं, हँसते हैं। उ० साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहिं। (पा० १४३) बिहँसा–हँसा, मुस्कराया। बिहँसि–हँसकर, मुस्कराकर। उ० बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लही है। (वि० २७६) बिहँसी–हँसी, हँस पड़ी। उ० बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई। (कृ० १३) बिहँसे–हँसे, मुस्कराए।
बिहग–(सं० विहंग)–१. पक्षी, चिड़िया, २. जटायु, ३. पपीहा। उ० १. उड़त अघ बिहग सुनि ताल करतालिका। (वि० ४८)
बिहगेस–(सं० विहंगेश)–पक्षियों के राजा, गरुड़। उ० प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहगेस। (मा० ७।९६ क)
बिहबल–(सं० विह्वल)–आनंदविभोर, प्रसन्न। उ० बिहबल बचन पेम बस बोलहिं। (मा० २।२२५।२)
बिहर–(सं० विदीर्ण)–१. फट जा, २. फट जाता है। उ० २. अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा। (मा० ६।२२।१) बिहरई–फट जाता है। बिहरत (१)–फट जाता है। उ० ज्ञान कृपान समान लगत उर, बिहरत छिन-छिन होत निनारे। (कृ० ५६) बिहरो–विदीर्ण हुआ, फटा। उ० तुलसिदास ऐसे बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिहरो न आजु। (गी० २।७) बिहर्‌यो–१. फटा, २. फटा हुआ, विदीर्ण। उ० २. तुलसिदास बिहर्‌यो अकास सो कैसे कै जात सियो है। (गी० ६।१०)
बिहरत (२)–(सं० विहार)–बिहार करते हैं, आनंद लूटते हैं। उ० राजमराल बिराजत बिहरत जे हर हृदय-तड़ाग। (गी० १।२६) बिहरहिं–बिहार करते हैं। बिहरि–क्रीड़ा करके, विहार करके। उ० आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी। (गी० २।५०) बिहरैं–दे० 'बिहरहिं'। उ० अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन मंदिर में बिहरैं। (क० १।४)
बिहरन–(सं० विहरण)–१. बिहरना, घूमना-फिरना, २. आनंद लूटना। बिहरनसीला–(सं० विहरणशील)–विहार करनेवाली। उ० नव रसाल बन बिहरनसीला। (मा० २।६३।४)
बिहाइ–(?)–१. छोड़कर, भूलकर, २. अतिरिक्त, सिवाय, ३. छोड़ता है। उ० १. सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। (मा० १।२७१।३) ३. मिलै जो सरलहि सरल ह्वै, कुटिल न सहज बिहाइ। (दो० ३३४) बिहाई–दे० 'बिहाइ'। उ० १. रहि न सकइ हरि भगति बिहाई। (मा० ७।११९।३) बिहाउ–छोड़ दो, छोड़ो। उ० रिपु सों बैर बिहाउ। (दो० ९३) बिहाय–छोड़कर, भूलकर। बिहाव–छोड़ दो।
बिहात–(?)–जाता है, व्यतीत होता है। उ० कहा कहौं, तात ! देखे जात ज्यों बिहात दिन। (क० ५।२६) बिहान (१)–दूर होती, बीतती। उ० तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान। (मा० २।९६) बिहानी–१. बिता दी, बिताई, २. बीत गई, बीती। उ० १. कहत कथा सिय राम लषन की बैठहि रैनि बिहानी। (गी० २।६८)
बिहान (२)–(सं विभात)–१. प्रातः, सबेरा, २. कल, अग्रिम दिन। उ० १.भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को। (गी० १।८६)
बिहाना–दे० 'बिहान (२)'। उ० १.नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना। (मा० १।११६।३)
बिहार–(सं० विहार)–१. विलास, २. खेल, क्रीड़ा, ३. आनंद से फिरना, ४. स्त्री प्रसंग। उ० २. भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहार-थलु। (वि० २४) ३. तम तड़ित उडुगन अरुन बिधु जनु करत ब्योम बिहार। (गी० ७।१८)
बिहारा (१)–दे० 'बिहार'।
बिहारा (२)–(सं० व्यवहार)–व्यवहार। उ० तदपि करहिं सम विषम बिहारा। (मा० २।२१९।३)
बिहारिनि–(सं० विहारिणी)–विहार करनेवाली। उ० बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि। (मा० १।२३५।४)
बिहारी–विहार करनेवाला। उ० द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी। (मा० १।११२।२)
बिहारु–क. दे० 'बिहार'। ख. विहार करते हैं। उ० ख. तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु। (मा० १।३१)
बिहारू–(सं० विहार)–१. विहार, आनंद, २. विहार करने वाले, ३. विहारस्थल। उ० ३. करि केहरि मृग बिहग बिहारू। (मा० २।१३२।२)
बिहाल–(फ़ा० बेहाल)–परेशान, बेचैन। उ० कलिकाल बिहाल किए मनुजा। (मा० ७।१०२।३)
बिहाला–दे० 'बिहाल'। उ० सकल भुवन में फिरेउँ बिहाला। (मा० ४।६।६)
बिहालु–दे० 'बिहाल'। उ० बिहालु भंज्यो भवजालु परम मंगलाचरे। (वि० ७४)
बिहालू–दे० 'बिहाल'। उ० राम बिरहँ सबु साजु बिहालू। (मा० २।३२२।१)
बिहित–(सं विहित)–जिसका विधान किया गया हो। उ० बेदबिहित कहि सकल बिधाना। (मा० २।६।३)
बिहीन–(सं० विहीन)–रहित, बिना। उ० मनहुँ कोव कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। (मा० २।८६)
बिहीना–दे० 'बिहीन'। उ० धिग जीवन रघुबीर बिहीना (मा० २।१४४।२)
बिहून–(सं० वि+हीन)–विहीन, रहित, बिना। उ०मलयाचल हैं संत जन, तुलसी दोष बिहून। (वै० १८) बिहूने-

दे० 'बिहून'। उ० सेवा अनुरूप फल देत भूपकूप ज्यों, बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के। (क० ७।२४)
बीके–(सं० विक्रय)–बिक गए। उ० आपने आपने मन मोल बिनु बीके हैं। (गी० २।३०)
बीच–(सं० विच)–१. मध्य, माँझ, २. मौक़ा, ३. अंतर, फ़रक, ४. भीतर, ५. बैर, विरोध। उ० १.गजमनि-माला बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई। (वि० ६२) २. सून बीच दसकंधर देखा। (मा० ३।२६।४) ३. दुख-प्रद उभय बीच कछु बरना। (मा० १।५।२) मु० बीच-कियो–बीच में पड़कर, मध्यस्थता की। उ० लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो जाई। (गी० ७।३) बीचहिं–बीच ही में। उ० अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा। (मा० १।१८८।३) बीचहि–दे० 'बीचहिं'।
बीचा–दे०'बीच'। उ०१.मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा। (मा० १।१९४)
बीचि–(सं० वीचि)–लहर, तरंग। उ० बिलसति बीचि बिजय-बिरदावलि, कर-सरोज सोहत सुषमा हैं। (गी० ७।१३)
बीची–दे० 'बीचि'।
बीचु–दे० 'बीच'। उ० २. बीचु पाइ निज बात सँवारी। (मा० २।१८।१)
बीछी–(सं० वृश्चिक)–बिच्छू। उ० छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी। (मा० २।४६।३)
बीछे–(सं० विच)–चुने, छाँटे। उ० आछे आछे बीछे बिछौना बिछाइ कै। (गी० १।८२)
बीज–(सं०)–१. फूलवाले वृक्षों या पौदों का गर्भांड जिससे अंकुरित होकर वृक्ष या पौदे आदि उत्पन्न होते हैं। बीया, दाना, तुख़्म, २. प्रधान कारण, कारण, ३. जड़, मूल, ४. शुक्र, वीर्य। उ० १. सुचि सुंदर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को। (क० ७।१०३) ३. बीज-मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस। (वि० १०८)
बीजु–दे० 'बीज'। उ० १. तुम्ह कहँ बिपति बीजु बिधि बयऊ। (मा० २।१६।३)
बीता–(सं० व्यतीत)–१. बीत गया, २. पूरा हो गया, ३. बीतने लगा। उ० २. सब कर आजु सुकृत फल बीता। (मा० २।५७।२) ३. अरध निमेष कलप सम बीता। (मा० १।२७०।४) बीति–बीत, खतम हो, समाप्त। उ० जनम गयो बादिहिं बर बीति। (वि० २३४) बीती–१. बीत गई, २. पूरी हो गई। उ० १. लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुनी चाय। (वि० ८३) बीते–बीत गए, समाप्त हो गये। उ०देखत रघुबर-प्रताप, बीते संताप पाप। (वि० ७४) बीत्यौ–बीता, बीत गया।
बीथि–दे० 'बीथी'। उ० स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी। (मा० २।३२५।३)
बीथिन्ह–(सं० वीथी)–गलियों में। उ० बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले। (मा० १।११६।३) बीथीं–गलियों को। उ० बीथीं सींचीं चतुर सम चौकें चारु पुराइ। (मा० १।२६६) बीथी–गली, पतली सड़क।
बीन–दे० 'बीना'। उ० तेहिं अवसर मुनि नारद आए कर-तल बीन। (मा० ७।५०)
बीनती–(सं० विनय)–विनती, विनय। उ० बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती। (मा०६।१२१।छं०१)
बीना–(सं० वीणा)–बीन, एक प्रकार का बाजा। उ० बीना बेनु मधुर धुनि सुनि किन्नर गंधर्व। (गी० ७।२१)
बीर–(सं० वीर)–योद्धा, बहादुर। उ० एक ही बिसिष बस भयो बीर बाँकुरो जो। (क० ६।११)
बीरता–(सं० वीरता)–बहादुरी, शूरता। उ० कीरति बिजय बीरता भारी। (मा० १।२५१।२)
बीरबहूटि–दे० 'बीरबहूटी'। उ० बीरबहूटि बिराजहीं, दादुर-धुनि चहुँ ओर। (गी० ७।१९)
बीरबहूटी–(सं० वीरन बधूटी)–एक लाल मखमली बरसाती कीड़ा। उ० मानौ मरकत-सैल बिसाल में फैलि चली बर बीरबहूटी। (क० ६।५१)
बीरभद्र–(सं० वीरभद्र)–शिव का एक प्रसिद्ध गण। उ० बीरभद्रु करि कोपु पठाए। (मा० १।६५।१)
बीरा (१)–(सं० वीटक)–पान की गिलौरी। उ० रूपस-सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो। (रा० ६)
बीरा (२)–(सं० वीर)–शूर, योद्धा, बहादुर। उ० इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। (मा० ६।२६।५)
बीरासन–(सं० वीरासन)–एक आसन विशेष जिसमें वीर लोग बैठते हैं। उ० जागन लगे बैठि बीरासन। (मा० २।९०।१)
बीरु–दे० 'बीर'। उ० बिरद बाँधि बर बीरु कहाई। (मा० २।१४।४)
बीरू–दे० 'बीर'। उ० जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू। (मा० २।१४४।२)
बीस–(सं० विंशति)–२०, दस का दूना। उ० दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। (मा० १।१७६।१) मु० बीस कै–निश्चय ही। उ० निडर ईस तें बीस कै बीस बाहु सो होइ। (दो० ४८८) बीसहू कै–पूरी तरह से। उ० मोको बीसहू कै ईस अनुकूल आजु भो। (गी० २।३३) बीसहुँ–बीस भी। उ० बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़। (मा० ६।३३ क)
बीसबाहु–(सं० विंशति + बाहु)–बीस भुजाओंवाला, रावण। उ० निडर ईस तें बीस कै बीस बाहु सो होइ। (दो० ४८८)
बीसा–दे० 'बीस'। उ० मुंडित सिर खंडित भुज बीसा। (मा० ५।११।२)
बीसी–१. बीस वर्ष का समय, २. उत्पत्ति से प्रलय तक कुल तीन बीसियाँ कही गई हैं। प्रथम बीसी ब्रह्मा की, दूसरी विष्णु की और तीसरी शंकर की होती है। ३. एक मत से प्रत्येक साठ वर्ष ३ बीसियों में बटता है जिसमें प्रथम ब्रह्मा की, दूसरी विष्णु की और तीसरी शिव की होती है। शंकर की एक बीसी संवत् १६६५ से १६८५ तक थी। उ० ३. बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी। (क० ७।१७०)
बीहा–(सं० विंशति)–बीस, २०। उ० साँचेहुँ मैं लबार भुजबीहा। (मा० ६।३४।४)
बुंद–(सं० विंदु)–बूँद।
बुझयो (१)–(?)–बुझ गया, शांत हो गया।

बुझयो (२)–(सं० बुद्धि)–समझ गया, जान गया।
बुझाइ (१)–(सं० बुद्धि)–समझाकर, ज्ञान कराकर। उ० कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही। (मा० ७।११५।४) बुझाई (१)–१. बुझाया, बतलाया, समझाया, २. समझ पड़ता है, मालूम होता है। उ० १. कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै। (मा० १।१९२।छं०३) बुझाउ (१)–(सं० बुद्धि)–१. ज्ञान, समझ, २. समझाओ। उ० १. तेरे ही बुझाए बूझैं अबुझ बुझाउ सो। (वि० १८२) बुझाए (१)–(सं० बुद्धि)–१. बुझाने से, समझाने से, २. बुझाया, समझाया। उ० १. तेरे ही बुझाए बूझैं अबुझ बुझाउ सो। (वि० १८२) २. बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं। (मा० १।१५) बुझायो (१)–(सं० बुद्धि)–समझाया। बुझावहि (१)–समझाते हैं। बुझावा–समझाता, समझाता था। उ० सर निंदा करि ताहि बुझावा। (मा० १।३१।२)
बुझाइ (२)–(?)–बुझाकर, ठंडा कर कर शांत कर। बुझाई (२)–(?)–१. बुझाकर, गुल करके, शांतकर, २. बुझ जाता है, गुल हो जाता है। उ० २. तबहिं दीप बिग्यान बुझाई। (मा० ७।११८।७) बुझाउ (२)–बुझाओ, ठंडा करो। बुझाए (२)–बुताए, गुल किये। बुझानी–बुझी, ज्यों ही बुझी। उ० राग द्वेषकी अगिनि बुझानी। (वै० ६०) बुझायो (२)–बुताया, गुल किया। उ० पावक-काम भोग-घृत तें सठ कैसे परत बुझायो ? (वि०१९८) बुझावहिं (२)–बुझाते हैं, शांत करते हैं।
बुझिहैं–(सं० बुद्धि)–पूछेंगे। उ० सादर समाचार नृप बुझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं। (गी० १।४६)
बुझैये–बतलाइए, समझाइए। उ० तुम तें कहा न होय, हा हा ! सो बुझैये मोहिं। (ह० ४४)
बुट–(सं० बिटप)–बूटी, जड़ी। उ० जातुधान बुट पुटपाक लंक जातरूप। (क० ५।२५)
बुड़ि–(?)–डूबकर, मग्न होकर। बुड़िबे–डूबने, गोता खाने। उ० गोपद बूड़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावौं। (वि० २३२)
बुढ़ाई–(सं० वृद्ध)–बुढ़ापा, वृद्धावस्था। उ० जनु बरषाकृत प्रगट बुढ़ाई। (मा० ४।१६।१)
बुताइ–(?)–१. बुझाकर, गुलकर, २. बुतती, बुझती, शांत होती। उ० १. पूँछ बुताइ प्रबोधि सिय, आइ गहे प्रभु पाय। (अ० ५।५।३) २. रघुपति-कृपा-बारि बिनु नहिं बुताइ लोभागि। (वि०२०३) बुताई–१.बुझाकर, २.बुझती है। उ०२.मनमोदकन्हि कि भूख बुताई। (मा०१।२४६।१) बुताओ–बुझाओ, गुल करो। उ० कह्यो लंकपति लंक बरत बुताओ बेगि। (क० ५।१६) बुतावत–बुझाते हैं।
बुतैहै–(?)–बुझेगी, शांत होगी। उ० गुरु, पुर लोग, सास, दोउ देवर, मिलत दुसह उर तपनि बुतैहै। (गी० ५।५०)
बुद्ध–(सं०)–१. पंडित, ज्ञानी, २. ज्ञात, विदित, ३. विष्णु का नवाँ अवतार। भगवान बुद्ध जिन्होंने बौद्ध धर्म स्थापित किया। उ० ३. जो निंदत निंदित भयो विदित बुद्ध अवतार। (दो० ४६४)
बुद्धि–(सं०)–धी, मनीषा, अक़्ल, ज़ेहन, चेतना, विवेक, ज्ञान। उ० बिद्या बारिधि बुद्धि-बिधाता। (वि० १)
बुद्धिहि–बुद्धि को। उ० बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई। (मा० ७।११८।४) बुद्ध्या–१. बुद्धि के लिए, २. बुद्धि से।
बुध–(सं०)–१. पंडित, विद्वान्, ज्ञानी, २. सप्ताह का चौथा दिन, बुधवार, ३.नवग्रहों में एक। बुध का जन्म बृहस्पति की स्त्री और चंद्रमा के वीर्य से हुआ था। उ० १. बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। (मा० १।१३।४) २. बिपुल बनिज बिद्या बसन बुध बिसेषि गृहकाज। (प्र० ७।१।६) ३. जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही। (मा० २।१२३।२)
बुधि–(सं० बुद्धि)–बुद्धि, समझ, अक़्ल। उ० बुधि न बिचार, न बिगार न सुधार सुधि। (गी० २।३२)
बुबुक–(?)–१. ज़ोर का रोना, २. आग की लपट या भभक। उ० २. जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत। (क० ५।६)
बुबुकारी–(?) ज़ोर से रोने की क्रिया। उ० दे० 'बुबुक'।
बुरो–(सं० विरूप)–ख़राब, निकृष्ट। उ० राम के बिरोधे बुरो बिधि हरिहरहू को। (क० ६।८)
बुलाइ–(सं० ब्रू, प्रा० बुल्लइ)–बुला करके। उ० कहेन्हि बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब। (पा० १००) बुलाई–१. बुलाया, २. बुलाकर, ३. बुलाई हुई। उ० ३. ताहि तकैं सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई। (वि० ३५) बुलायउ–बुलाया। उ० देव देखि भल समउ मनोज बुलायउ। (पा० २८) बुलाये–बुलाया, तलब किया। बुलावन–बुलाने। बुलैहो–बुलाओगे। उ० कल बल बचन तोतरे मंजुल कहि 'माँ' मोहिं बुलैहो। (गी० १।८)
बूँद–(सं० बिंदु)–ठोप, क़तरा, बुंद, जल या किसी द्रव का थोड़ा अंश। उ० बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। (मा० ४।१४।२)
बूँदिया–(सं० बिंदु)–१. एक प्रकार की मिठाई, बूँदी, २. बूँदें। उ० १. बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं, बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै। (क० ५।१४)
बूझ–(सं० बुद्धि)–१. समझ, अक़्ल, २. बूझते हो। उ० २.अयमय खाँड़ न ऊख मय अजहुँ न बूझ अबूझ। (मा०१।२७५) बूझइ–१. मालूम पड़ता है, ज्ञात होता है, २. मालूम करना चाहिए, खोजना चाहिए, ३. समझना चाहिए। उ० १. बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ। (पा० ५०) २. तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझइ। (जा० ६६) बूझउँ–बूझूँ, समझूँ। बूझत–१. बूझता है, समझता है, जानता है, २. पूछता, ३. पूछते हुए। उ० १. तुलसी अलि, अजहूँ नहिं बूझत। (कृ० ५०) २. जो पै कहुँ कोउ बूझत बातो। (वि० १७७) ३. तेहि ते बूझत काजु डरौं मुनिनायक। (जा० २४) ४. जग बूझत बूझत बूझै। (वि० १२४) बूझति–१. बूझती हो, समझती हो, २. पूछती। उ० १. बूझति और भाँति भामिनि कत कानन कठिन कलेस रही है। (गी० २।६) २. फिरि बूझति हैं, चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै ? (क० २।११) बूझब–१. पूछना, २. पूछेंगे। उ० १.बूझब राउर सादर साईं। (मा०२।२७०।४) बूझहिं–पूछते हैं। बूझा–मालूम किया, समझ गया। उ० प्रथमहिं मैं कहि सिव-चरित बूझा मरमु तुम्हार। (मा० १।१०४) बूझि–१. दे० 'बूझ'। २. समझकर, जानकर, ३. समझ ले, ४. पूछ लें।

उ० १. अपनी न बूझि न कहे को राढ़ रोर रे। (वि० ७१) २. पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके। (वि० १७१) ३. कहैं बेद बुध तू तौ बूझि मन माहिं रे। (वि० ७३) मु० बूझि परै—मालूम होता है, ज्ञात होता है। उ० बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै। (क०६।३६) बूझिअ—१. बूझना, समझना, हृदयंगम करना, २.समझ पड़ती है। उ०१.अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। (मा० १।५६।२) २. सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही। (मा० ५।३२।१) बूझिए—१. समझ में आती, २. पूछिए, ३. समझ लीजिए,४. चाहिए। उ० १. बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की। (क० ७।१७०) ३. मो कहँ नाथ बूझिए यह गति सुख-निधान निजपति बिसरायो। (वि० २४३) ४. ऐसी तोहि न बूझिए हनुमान हठीले। (वि०३२) बूझिबो—१. समझ-बूझकर समझौता कर लेना, मेल कर लेना, २. ज्ञान मार्ग पर चलना। उ० १. जूझे ते भल बूझिबो। (दो० ४३१) २. कै जूझिबो कै बूझिबो, दान कि काच-कलेस। (दो० ४५१) बूझिय—दे० 'बूझिअ'। बूझिहैं—पूछेंगे। उ० बूझिहैं सो है कौन कहिबीं नाम दसा जनाइ। (वि० ४१) बूझिहै—१. पूछेगा, २. मालूम होगा, जान पड़ेगा। उ० १. अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी? (क० ६।५) बूझी—१. पूछा, २. समझा। बूझे—पूछने पर। उ० तुलसिदास प्रभु के बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई। (गी० १।५०) बूझेसि—बूझा, बूझ गया। २. पूछा, । बूझेहु—१. पूछा, २. समझा। बूझैं—१. समझता, जानता है, २. समझने में। उ० १. तुलसिदास कह चिद बिलास जग बूझत बूझत बूझै।(वि०१२४)२.दीनबंधु कीजै सोइ बनि परै जो बूझैं। (वि० १५०) बूझौ—पूछो, दरियाफ़्त करो। उ० आली! काहू तौ बूझौ न पथिक कहाँ धौं सिधैहैं। (गी० २।३७) बूझ्यौ—पूछा, २. समझ गया। उ० १. हहरि हिय में सदय बूझ्यो जाइ साधु-समाज। (वि० २१६)

बूट—(सं० विटप)—१. छोटा पेड़, झाड़, २. हरा पेड़, ३. बूटी, ४. चने का पेड़ या चना, रहिला। उ० २. सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक बूट सो। (क० ७।१४१) ३. करम न कूट की, कि जंत्र मंत्र बूट की। (ह०२६)

बूड़—(?)—बूड़े, डूब गए। बूड़त—डूबता है बूड़ता है। उ० सुभग सेज सोवत सपने बारिधि बूड़त भय लागै। (वि० १२१) बूड़हिं—डूबते हैं, गोता खाते हैं। उ० बूड़हिं आनहिं बोरहिं जेई। (मा० ३।४) बूड़ि—डूब, २. डूबकर। उ० १.लरिकाई को पौरिबो धोखेहु बूड़ि न जाय। (स० ११६) बूड़िबे—डूबना, डूबने। उ० गोपद बूड़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावों। (वि० २३२) बूड़ियौ—डूबी हुई भी। उ० बूड़ियौ तरति, बिगरीयौ सुधरति बात। (क० ७।७५) बूड़िहि—डूबेगा। बूड़े—डूबे, डूब गए। बूड़ो—डूबा, डूब गया। उ० बूड़ो मृग बारि खायो जेंवरी को साँप रे! (वि० ७३)

बूढ़—(सं० वृद्ध)—बुड्ढा, वृद्ध। उ० बूढ़ भये, बलि, मेरेहि बार, कि हारि परे बहुतै नत पाले। (ह० १७)

बूढ़ा—दे०'बूढ़'। उ०जामवंत मंत्री अति बूढ़ा।(मा०६।२३।२)

बूता—(?)—पुरुषार्थ, बल, हौसला, ज़ोर। बूतें—बल, बल से। उ०किए जोहिं जुग निज बस निज बूतें। (मा०१।२३।१)

बृंद—(सं० वृंद)—समूह, ढेर। उ० जरहिं पतंग मोहबस भार बहहिं खर बृंद। (मा० ६।२६)

बृंदा—दे० 'बृंद'। उ० आवत देखि मुदित मुनि बृंदा। (मा० २।१३४।३)

बृक—(सं० वृक)—भेड़िया।

बृकासुर—(सं० वृकासुर)—एक राक्षस जिसे भस्मासुर भी कहा जाता है। इसे शंकर ने वरदान दिया कि जिस पर भी यह हाथ रख देगा वह जल जायगा। वरदान पाते ही इसने शंकर को जलाना चाहा पर विष्णु की चतुराई में वे बँच गए और इसने अपने ही सर पर हाथ रख दिया जिससे यह स्वयं जल गया। उ० बिनुऽपराध भृगुपति, नहुष, बेनु बृकासुर सारि। (दो० ४७२)

बृकु—(सं० वृक)—भेड़िया। उ० बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा। (मा० ६।७०।१)

बृतांत—(सं० वृत्तांत)—समाचार, हाल। उ० यह बृतांत दसानन सुनेऊ। (मा० ६।६२।३)

बृथा—(सं०वृथा)—व्यर्थ।

बृद्ध—(सं० वृद्ध)—बूढ़ा, ढला। उ० अबला बालक वृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं। (मा० २।१२१)

बृद्धि—(सं० वृद्धि)—बढ़ती, अधिकता। उ० तृस्ना उदर बृद्धि अति भारी। (मा० ७।१२१।१८)

बृष—(सं० वृष)—बैल, साँड़। उ० देखि महिष बृष साजु सराहा। (मा० २।२३६।२)

बृषभ—(सं० वृषभ)—बैल, साँड़। उ० बृषभ कंध केहरि ठवनि, बलनिधि बाहु बिसाल। (मा० १।२४३)

बृष्टि—(सं० वृष्टि)—वर्षा, पानी। उ० महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। (मा० ४।१५।४)

बेंचिए—(सं० विक्रय)—बेच डालिए। उ० बेंचिए बिबुध धेनु रासभी बेसाहिए। (क० ७।७६) बेंचि—(सं० विक्रय)—बेचकर, विक्रय करके। उ० सुनु मैया! तेरी सौं करौं याकी टेव लरन की, सकुच बेंचि सी खाई। (कृ०८) बेंचे—१. बेचने से, २. बेचा, विक्रय किया। उ० १. बेंचे खोटो दाम न मिलै, न राखे काम रे! (वि० ७१) बेंच्यो—बेच रक्खा है। उ० उदर भरौं किंकर कहाइ, बेंच्यो विषयनि हाथ हियो है। (वि० १७१)

बेंत—(सं०वेत्र)—१. एक प्रसिद्ध लता, बेत,२.बेंत की छड़ी। उ० १. लिए छरी बेंत सोधैं विभाग। (गी० ७।२२)

बेकामहिं—(फ़ा० बे + सं० कर्म)—व्यर्थ ही, बिना काम के। उ० ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ बकहि बेकामहिं। (कृ० ५)

बेख—(सं० वेष)—वेष, वेश।

बेखा—दे० 'बेख'।

बेग—(सं० वेग)—१. जल्दी, शीघ्र, २. ज़ोर से, ३. उतावली। उ० १. पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ। (मा० २।८२)

बेगारि—(फ़ा० बेगारी)—बिना लाभ के पराई इच्छा से कोई काम करना। उ० नाहिं तो भव बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे। (वि० १८६)

बेगि-(सं० वेग)-१. जल्दी से, शीघ्रतापूर्वक, चटपट, २. शीघ्र, जल्दी। उ० १. बेगि बोलि बलि बरजिए करतूति कठोरे। (वि० ८) बेगिहिं-जल्दी ही। उ० ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई। (मा० २।४६।२)

बेगिअ-जल्दी करनी चाहिए। उ० बेगिअ नाथ न लाइअ बारा। (मा० २।५।४)

बेगी-शीघ्र, तुरत। उ० पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी। (मा० ६।१०८।१)

बेचक-बेचनेवाला। उ० द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। (मा० ७।६८।१)

बेचहिं-(सं० विक्रय)-बेचते हैं। उ० बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। (मा० २।१६८।१)

बेचारा-(फ़ा०)-दीन, असहाय, गरीब, बेबश।

बेटकी-(सं० वटु)-बेटी, पुत्री। उ० पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी। (क० ७।६६)

बेटा-(सं० वटु)-लड़का, पुत्र। उ० पुर पैठत रावन कर बेटा। (मा० ६।१८।२)

बेठन-(सं० वेष्ठन)-खोल, आच्छादन, वह कपड़ा जिसमें कोई चीज़ बाँधी जाय।

बेड़ा-(सं० वेष्ठ)-१. घरनई, चौघड़ा, २. नाव या जहाज़ों का समूह।

बेण-दे० 'बेणु'।

बेणु-दे० 'बेनु (१)' तथा 'बेनु' (२)'।

बेत-(सं० वेत्र)-बेंत। उ० फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद। (मा० ६।१६ ख)

बेतस-बेंत। उ० बिलसत बेतस बनज बिकासे। (मा० २।३२५।२)

बेताल (१)-(सं० वैतालिक)-भाट, वंदीजन।

बेताल (२)-(सं० वेताल)-एक प्रकार के भूत। उ० बेताल भूत पिसाच। (मा० ६।१०१।१)

बेताला-दे० 'बेताल (२)'। उ० मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। (मा० ६।८८।१)

बेद-दे० 'वेद'। उ० बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी। (मा०२। १६८।१) बेदन्ह-वेदों ने। उ० सबके देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार। (मा० ७।१३ क) बेदहि-बेद को। उ० नहिं मान पुरान न बेदहि जो। (मा० ७।१०१।४) बेदहुँ-बेद में। उ० ते लोकहुँ बेदहुँ बड़ भागी। (मा०२।२५६।३)

बेदसिरा-(सं० वेदशिरा)-एक ऋषि का नाम। उ० बेद-सिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ। (मा०१।७३)

बेदा-दे० 'बेद'। उ०कहि नित नेति निरूपहिं बेदा। (मा० २।९३।४)

बेदिका-(सं० वेदिका)-कर्मकांड करने की बेदी। उ०बिमल बेदिका रुचिर सँवारी। (मा० १।२२४।१)

बेदी-(सं० वेदी)-धार्मिक कार्यों के लिए बनाई गई ऊँची भूमि, वेदिका। उ० बेदी बेद बिधान सँवारी। (मा० १। १००।१)

बेदु-दे० 'बेद'। उ० लोकु बेदु बुध संमत दोऊ। (मा० २। २०७।१)

बेध-(सं० वेध)-१. छेद, २. किसी नोकीली चीज़ से छेदने की क्रिया, बेधना, ३. ग्रहों का एक विशेष योग। उ० २. करनबेध उपबीत बिआहा। (मा० १।१०।३)

बेधत-(सं० वेधन)-छेदता है, धँसता है, चुभता है,बेधता है। बेधि-छेदकर, फोड़कर। उ० जुगुति बेधि पुनि पोहि-अहिं रामचरित बर ताग। (मा० १।११) बेधिय-छेदो। बेधे-छेद डाला, बेधा। उ० संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले। (मा० ६।९३।छं० १) बेध्यो-छेदा, बेधा।

बेन-दे० 'बेनु (२)'। उ० लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान। (मा० २।२२८)

बेनि-त्रिवेणी। दे० 'बेनी (२)'।

बेनी (१)-(सं० वेणी)-१. चोटी, बाल की लट, २. किवाड़ में लगाने की लकड़ी, ३. बेणीमाधव। उ० १. कृस तनु सीस जटा एक बेनी। (मा० १।८।४)

बेनी (२)-(सं० त्रिवेणी)-त्रिबेनी, गंगा, जमुना तथा सरस्वती नदियों का संगम। उ० एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। (मा० २।१०६।३)

बेनु (१)-(सं० वेणु)-१. वंशी, मुरली, बाँसुरी, २. बाँस। उ० १. घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार। (गी० १।२) २. बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। (मा० १। २८८।१)

बेनु (२)-(सं० वेन)-एक प्रसिद्ध राजा जो धर्म-विमुख थे।

बेर (१)-(सं० बदरी)-एक कँटेदार वृक्ष या उसका फल।

बेर (२)-(सं० वार)-१. बार, दफ़ा, २. देर, बिलंब, ३. समय। उ० १. हमरि बेर कस भयो कृपिनतर। (वि०७)

बेर (३)-(?)-शरीर। उ० कुसल गो कीस बर बेर जाको। (क० ६।२१)

बेरा (१)-(सं० बेला)-१. समय, वक्त, २. तड़का, प्रातः काल। उ० १. गिरिबर पठए बोलि लगन बेरा भई। (पा० १२८)

बेरा (२)-(सं० वेष्ट)-बाँस या तख़्ते या नावों आदि को जोड़कर बनाया गया ढाँचा जो पानी पर तैरता है। बेड़ा। बेरे-दे० 'बेरा (२)' बेड़े के। उ०बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे। (वि०२७३) बेरै-बेड़े को। दे० 'बेरा (२)'। उ० मेरे कह्यो मानि, तात ! बाँधै जिनि बेरै। (गी० ५।२७)

बेरिआँ-दे० 'बिरिया'। उ० पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। (मा० १।२३४।३)

बेरो-दे० 'बेरा (२)'। उ० साधन-फल, स्रुति-सार नाम तव, भव-सरिता कहँ बेरो। (वि० १४३)

बेल-(सं०बिल्व)-एक विशेष पेड़ या उसका फल, श्रीफल। इसका फल अमरूद से बड़ा और गोला होता है। बेल की पत्तियाँ महादेव की पूजा में चढ़ाई जाती हैं। उ० सिवहि चढ़ाये ह्वैहैं बेल के पतौवा द्वै। (क० ७।१६३) बेलपाती-(सं० विल्वपत्र)-श्रीफल की पत्ती। उ० बेलपाती महि परइ सुखाई। (मा० १।७४।३)

बेला (१)-(सं० मल्लिका)-एक पुष्प-विशेष, बेइल।

बेला (२)-(सं० वेला)-१. समय, २. कटोरा। उ० १. धेनु धूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल। (मा० १। ३१२)

बेलि (१)–(सं० वल्ली)–लता, लतर। उ० सुखमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली। (पा० १३६)
बेलि (२)–(सं० मल्लिका)–बेला का फूल। उ० हार बेलि पहिरावौं चंपक होत। (ब० ६)
बेलिन–(सं० वलन)–ऊपर का वह बेलन जिसके आधार पर झूला रहता है। उ० पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलिन लाल। (गी० ७।१८)
बेवहरिया–(सं० व्यवहार)–१. महाजन, कर्ज़ देनेवाला, २. हिसाब-किताब ठीक से करनेवाला।
बेष–(सं० वेष)–वेश। उ० जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष। (मा० १।६७)
बेषा–दे० 'बेष'। उ० पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। (मा० १।५४।२)
बेषु–दे० 'बेष'।
बेसरि–(?)–खच्चर। उ० बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। (मा० १।३००।३)
बेसा–(?)–नाक का एक गहना, बुलाक। उ० कनि कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो। (रा० ११)
बेसा–(सं० वेष)–वेष, भेष, रूप।
बेसाह–(सं० व्यवसाय)–खरीदकर, दाम देकर। उ०आनेहु मोल बेसाहि कि मोही। (मा० २।३०।१) बेसाहत–खरीदते हैं। उ० तेरे बेसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचनहारे। (क० ७।१२) बेसाहि–(सं० व्यवसाय)–खरीदकर। उ० आनेहु मोल बेसाहि कि मोही। (मा० २।३०।१) बेसाहिए–खरीद लीजिए। उ० बेंचिये बिबुध धेनु रासभी बेसाहिए। (क० ७।७६) बेसाहे–खरीदे हुए, दास, क्रीत दास। उ० दे० 'बेसाहत'। बेसाहै–खरीदे। उ० दिन प्रति भाजन कौन बेसाहै ? घर निधि काहू केरे। (कृ० ३) बेसाह्यो–१. खरीदा, २. खरीदा हुआ, मोल लिया हुआ। उ० १. तब तें बेसाह्यो दाम लोह कोह काम को। (क० ७।७०)
बेह–(सं० वेध)–छेद, सूराख।
बेहड़–(सं० विकट)–बीहड़, भयंकर, कठिन। उ० बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। (मा० २।१३६।३)
बेहाल–(फ़ा० बे+अर० हाल)–व्याकुल, बेचैन, विकल।
बेहालू–दे० 'बेहाल'। उ० जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू। (मा० २।३७।१)
बेहू–दे० 'बेह'। उ० कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू। (मा० २।२६२।३)
बैकुंठ–(सं०वैकुंठ)–विष्णु का धाम, स्वर्ग। उ० पुर बैकुंठ जान कह कोई। (मा० १।१८५।१)
बैकुंठा–दे० 'बैकुंठ'। उ० सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। (मा० ६।२६।४)
बैखानस–(सं० वैखानस)–वह जो वानप्रस्थ आश्रम में हो। उ० बैखानस सोइ सोचै जोगू। (मा० २।१७३।१)
बैजंतीमाला–भगवान् की माला जिसमें नीलम, मोती, माणिक, पुखराज और हीरा ये पाँच रत्न होते हैं।
बैठ–(सं० वेशन)–बैठे। उ० कहि जयजीव बैठ सिरु नाई। (मा० २।३८।३) बैठत–१. बैठता है, २. बैठते हुए, ३. बैठते ही। उ०३. बैठत पठए रिषयँ बोलाई। (मा० २।२४३।४) बैठन–बैठने के लिए। उ० काहूँ बैठन कहा न ओही। (मा० ३।२।३) बैठहिं–१. बैठते हैं, २. बैठेंगे। उ० बैठहिं रामु होइ चित चेता। (मा० २।११।३) बैठहि–१. बैठ, बैठो, २. बैठते हैं। उ० १. आँखि ओट उठि बैठहि जाई। (मा०२।१६२।४)बैठि–बैठकर। उ०बैठि इनकी पाँति अब सुख चहत मन मतिहीन। (कृ०५५) बैठिअ–बैठ जाइए। उ० बैठिअ होइहिं पाय पिराने। (मा०१।२७८।१) बैठिय–दे० 'बैठिअ'। बैठीं–बैठ गईं, बिराजमान हुईं। उ० बैठीं सिव समीप हरषाई। (मा० १।१०७।२) बैठी–बैठ गई। बैठु–बैठो। बैठे–बैठ गए। बैठेउ–बैठे। उ० आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। (मा० २।६०।२) बैठेहिं–बैठे ही। उ० बैठेहिं बीति गई सब राती। (मा० २।१६६।३) बैठो–बैठकर, २. बैठा ३. बैठ जाओ। उ०१. तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरिहौं। (वि०२५८) बैठ्यो–बैठा, बैठा है। उ० चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानों। (क० ७।१४२)
बैठारा–(सं०वेशन) बिठलाया। बैठारि–बैठाकर। बैठारी–१. बिठलाया २. बिठलाकर। उ०१. गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। (मा० २।३४।३) बैठारे–बिठलाए। उ० सचिव सँभारि राउ बैठारे। (मा० २।४४।१) बैठारेन्हि–बैठाया, बिठलाया। उ० निज आसन बैठारेन्हि आनी। (मा० १।२०७।१) बैठारो–बैठाया, बैठा लिया। उ० खग-गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ तहँ हौं हूँ बैठारो। (वि० ९४)
बैठाइ–(सं०वेशन) बैठा, बैठाकर। उ० क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ। (मा० ३।२८) बैठाई–बैठाया, बिठलाया। बैठाए–बैठा लिए। बैठायउ–बैठाया। उ०अरघ देइ मनि आसन बर बैठायउ। (पा० १३५)
बैतरनी–(सं० वैतरणी)–एक पौराणिक नदी जो यम के द्वार पर है। उ० ताकहँ बिबुध नदी बैतरनी। (मा० ३।२।४)
बैद–(सं० वैद्य)–चिकित्सक, वैद्य। उ० सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस। (मा० ५।३७)
बैदिक–(सं०वैदिक) १.वेद का, २.वेद के अनुसार। उ०२. बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। (मा० ७।१०५।२)
बैदेहि–दे० 'बैदेही'। उ० बैदेहि अनुज समेत। (मा० ६।११३।छं० ८)
बैदेही–(सं० वैदेही)–जानकी, सीता। उ० ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। (मा० ६।१०८।४)
बैन–(सं० वचन)–वाणी, बोल, बचन। उ० सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। (मा० २।१००)
बैनतेय–(सं० वैनतेय)–विनता के पुत्र गरुड़। उ० बैनतेय खग अहि सहसानन। (मा० ६।२६।४)
बैना (१)–दे० 'बैन'। उ० नाथ न मैं समुझे मुनि बैना। (मा० १।७१।१)
बैना (२)–(सं० वायन)–उपहार स्वरूप दी जानेवाली मिठाई या कोई और भेंट।
बैनी–बोलनेवाली। दे०'पिकबैनी'।
बैभव–(सं० वैभव)–ऐश्वर्य। उ० पितु बैभव बिलास मैं डीठा। (मा० २।९८।१)
बैमात्र–(सं० वैमात्र)–सौतेला, सौतेला भाई।
बैयर–दे० 'बैर'।

बैर–(सं० वैर)–शत्रुता, विरोध, अदावत, द्वेष। उ० तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते ? (वि० ९७)
बैरक–(तुर० बैरक)–पताका, झंडा। उ० दीजै भगति बाँह बैरक ज्यों सुबस बसै अब खेरो। (वि० १४५)
बैरख–दे० 'बैरक'। उ० घन-धावन बगपाँति पटोसिर बैरख-तड़ित सोहाई। (कृ०३२)
बैरागी–जिसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया हो।
बैराग्य–(सं० वैराग्य)–विराग, विरक्ति की भावना। उ० भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरे सरीर। (मा० २। ३२१)
बैरिउ–बैरी भी। उ० बैरिउ राम बड़ाई करहीं। (मा० २। २००।४) बैरिनिहि–बैरिन को। उ० सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि। (मा०२।१६) बैरी–(सं० वैरी)–शत्रु, दुश्मन। उ० सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही। (वि०१७४)
बैरु–दे० 'बैर'। उ० बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू। (मा० २। २६३।४)
बैरू–दे०'बैर'।
बैल–(सं० बलद)–१. बरद, वृषभ, २. मूर्ख, अनाड़ी।
बैषानस–दे० 'बैखानस'।
बैस (१)–(सं० वयस्)–१. अवस्था, उमर, २. जवानी, युवावस्था।
बैस (२)–(सं० वैश्य)–बनिया, वैश्य।
बैसा–(सं०वेशन)–१. बैठा, २. बैठा हुआ। बैसें–बैठे हुए। उ० अंगद दीख दसानन बैसें। (मा० ६।१६।२) बैसे–बैठे। उ० मेरु के शृंगनि जनु घन बैसे। (मा० ६।४१।१)
बोअनहार–(सं० वपन)–बोनेवाला। उ० बोअनहार लुनिहै सोई देनी लहइ निदान। (स० २००)
बोझा–(सं० वहन)–भार, वज़न।
बोड़ी–(?)–कौड़ी, दमड़ी।
बोध–(सं०)–१. ज्ञान, समझ, जानकारी, २. तसल्ली, धीरज, संतोष। उ० १.दुष्ट-दनुजेस निर्बंस कृत दासहित बिश्व दुख-हरन बोधैकरासी। (वि० ५८) २. तदपि मलिन मन बोधु न आवा। (मा० १।१०९।२)
बोधा–दे० 'बोध'। उ० मायाबस न रहा मन बोधा। (मा० १।१३६।३)
बोधित–बोध कराया हुआ, ज्ञान कराया हुआ। उ० बेद बोधित करम-धरम बिनु, अगम अति। (वि० २०९)
बोरउँ–(सं० बुड)–बोरूँ, डुबाऊँ। बोरत–१. डुबाता है, बोरता है, २. खोता है, गँवाता है। उ० १. बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो। (वि० ७२) बोरति–डुबाती है। उ० बोरति ग्यान बिराग करारे। (मा० २।२७६।१) बोरहिं–डुबा देते हैं। उ० बूड़हिं आनहिं बोरहिं जेई। (मा० ६।३।४) बोरा–डुबोया। उ० तासु दूत होइ हम कुल बोरा। (मा० ६।२२।१) बोरि–डुबाकर। उ० कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत। (मा० १।१६०) बोरिहौं–डुबा दूँगा। उ० ढील किए नाम-महिमा की नाव बोरिहौं। (वि० २५८) बोरी–डुबाई, डुबाया। बोरे–१. डुबोए हुए, २. डुबाया, डुबा दिया। उ० १. आपु कंज मकरंद सुधा हृद हृदय रहत नित बोरे। (कृ० ४४) २. शंभ निःशुंभ कुंभीश रण केशरिणि क्रोध बारिधि बैरिवृंद बोरे। (वि०१५) बोरौं–डुबा दूँ, डुबाऊँ। उ० कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं। (क०६। १४) बोर्‌यो–डुबोया, बोरा। उ० महामोह-मृगजल-सरिता महँ बोर्‌यो हौं बारहिं बार। (वि० १८८)
बोल–(सं० ब्रू)–१. शब्द, आवाज़, २. बचन, बात, प्रतिज्ञा, ३. बुलाया, बोला, ४. बुलाते हैं। उ०२.बोल को अचल, नत करत निहाल को ? (वि० १८०) ४. भोजन करत बोल जब राजा। (मा० १।२०३।३) बोलत–१. बोलते हुए, २. बोलते हैं, ३. बुलाते, ४. बोलने में। उ० १. बोलत लखनहिं जनकु डेराहीं। (मा० १।२७८।२) ४. रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार। (मा० १। २७१) बोलन–बोलना, बोली। बोलनि–आवाज़, शब्द, बोली। उ० धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तें। (क० ७।१२६) बोलब–बोलना। उ० मौन मलिन मैं बोलब बाउर। (मा० २।२६३।३) बोलसि–बोल रहा है। उ० बोलसि निदरि बिप्र के भोरें। (मा०१।२८३ ।३) बोलहिं– बोलते हैं। उ० भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर। (मा० २।१३७) बोलहु–बोलो। उ० काहे न बोलहु बचन सँभारे। (मा० २।३०।२) बोला–कहा, उच्चरित किया। उ०अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। (मा० २।४५।२) बोलि–१. बुलाकर, बुला, २. बुलाना, ३. बुलाया, ४. बोली। उ० १. बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज। (मा० १।६२) ४ नृप लखि कुँवरि सयानि बोलि गुरु परिजन। (जा० ८) बोलिबे–बुलाने। उ० मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ री। (गी० १।७५) बोलिहैं–बोलेंगे। उ० अब तौ दादुर बोलिहैं हमै पूछिहै कौन ? (दो० ५६४) बोलिहौं–१. बुलाऊँगी, २. बोलूँगी। उ० १. गाइ-गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई। (गी० १।१६) बोलीं–कहीं, उच्चरित किया। उ० बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी। (मा० १।१०७।३) बोली–कहा, कही। उ० बोली सती मनोहर बानी। (मा० १।६१।४) बोलु–बोलो, कहो। उ० बोलु सँभारि अधम अभिमानी। (मा० ६।२६।१) बोले–१. कहने लगे, कहा, २. बुलाया। उ० १. बोले चितइ परसु की ओरा। (मा० १।२७२।१) २. जामवंत बोले दोउ भाई। (मा० ६।१।३) बोलेउँ–१. बोले, २. बोला। बोलेउ–बोले। उ० पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। (मा० ७।१२१।१) बोलेसि–कहा, बखान किया, वर्णन किया। उ० सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति। (मा० ३।२२) बोलेहुँ–१. बोले, २. बुलाए। उ० २. जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा। (मा० १।६२।३) बोल्यो–१. बुलाया, २. बोला, कहा। उ०१. तिलक को बोल्यो, दियो बन चौगुनो चित चाउ। (गी० २।५७)
बोलाइ–(सं० ब्रू)–बुलाकर, बुला। उ० गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई। (मा० २।१५७।२) बोलाउब–बुलावेंगे। उ० बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय। (मा० १

३१०) बोलावन–बुलाने । उ० आवै पिता बोलावन जबहीं । (मा० १।७५।२)

बोल्लहिं–(सं० ब्रू) बोल रहे हैं । उ०सीस परे महि जय जय बोल्लहिं । (मा० ६।८८।५)

बोह–(?)–डुबकी, गोता । बोहैं–डुबकियाँ । दे० 'बोह' । उ० रूप-जलधि-वपुष लेत मन-गयंद बोहैं । (गी० ७।४)

बोहितु–(सं० बोहित्य)–नाव, जहाज़ । उ० संभु चाप बड़ बोहितु पाई । (मा० १।२६०।४)

बौंड़–(सं० वोंट)–१. बेल, लता, बँवर, २. मंजरी, बाल । उ०१. बढ़त बौंड़जनु लही सुसाखा । (मा०२।५।४)बौंड़ी–१. लता, २. फली, छीमी, ३. बौर, ४. दमड़ी, छदाम । उ० २. राम कामतरु पाइ बोलि ज्यों बौंड़ी बनाइ । (गी० १।७०)

बौंड़ि–(सं०वोंट) लता । उ० नखत-सुमन, नभ-बिटप बौंड़ि मानो छपा छिटकि छबि छाई । (गी०१।१६)

बौंड़िये–(?)–कौड़ी ही, दमड़ी ही, छदाम ही । उ० देहै तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंड़िए । (क० ७।२५)

बौर (१)–(सं० मुकुल)–बउर, मंजरी । उ० हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि । (मा० १।२८८)

बौर (२)–(सं० बातुल)–भोला, बावला ।

बौरहा–दे० 'बौराहा' ।

बौरा–दे० 'बौराहा' । उ० भे सब लोक सोक बस बौरा । (मा० २।२७१।१)

बौराइ–(सं०बातुल) १. पागल हो जाता है, मतवाला हो जाता है, २.पागल होकर ।उ०१.जग बौराइ राजपदु पाएँ । (मा० २।२२८।४) बौराई–१. पागलपन, २. पागल हो जाता है, बौरा जाता है । उ०१.सुनहु नाथ ! मन जरत, त्रिबिध ज्वर करत फिरत बौराई । (वि० ८१) बौराएँ–बहकाने में, बहकाने पर । उ० भल भूलिहु ठग के बौराएँ । (मा० १।७६।४) बौरात–बौरा जाता है, पागल हो जाता है । बौराना–बौराया, पागल हुआ । बौरानी–१. पागल, बौराई हुई २.पागल हुई । उ० १. सती सरीर रहिहु बौरानी । (मा० १।१४१।२) बौरायहु–पागल बना दिया । उ०मथत सिंधु रुद्रहिं बौरायहु । (मा० १।१३६।४)

बौराह–दे० 'बौराहा' । उ० बर बौराह बसहँ असवारा । (मा० १।६५।४)

बौराहा–(सं० बातुल)–पागल, सिड़ी । उ० तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा । (मा० ७।७०।४)

बौरे–उन्मत्त, पागल । उ० रघुनाथ-बिरोध न कीजिय बौरे । (क० ६।१२) बौरेहिं–बावले को, पागल को । उ० कहा मोर मन धरि न बरिय बर बौरेहि । (पा०६१)

ब्यंग–दे० 'बिंग्य' ।

ब्यंजन–(सं० व्यंजन)–१. भोजन, अच्छे पकवान, २. स्वर के अतिरिक्त वर्ण जो बिना स्वर की सहायता के नहीं बोले जा सकते ।

ब्यग्र–(सं० व्यग्र)–आतुर, व्याकुल । उ० कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात । (मा० ३।२४)

ब्यजन–(सं० व्यजन)–पंखा । उ० गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते । (मा० ७।१२।छं० १)

ब्यथा–(सं० व्यथा)–दुःख, कष्ट । उ० एहि तें कवन ब्यथा बलवाना । (मा० २।८१।४)

ब्यरथ–दे 'ब्यर्थ' । उ० ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू । (मा० २।१७२।१)

ब्यर्थ–(सं० व्यर्थ)–बेकार, बेमतलब । उ० ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा । (मा० १।२७३।४)

ब्यलीक–(सं० व्यलीक) झूठा । उ० कारुनीक ब्यलीक मद खंडन । (मा० ७।५१।४)

ब्यवहरिआ–(सं० व्यवहार)–१. हिसाब करनेवाले, २. ब्यापारी । उ० १. अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली । (मा० १।२७६।२)

ब्यवहारु–(सं० ब्यवहार)–व्यवहार, आचार, सलूक । उ० तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु । (मा० १।२८६)

ब्यवहारू–दे० 'व्यवहारु' । उ० सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू । (मा० २।९२।४)

ब्याकुल–(सं० व्याकुल)–घबराया, आतुर । उ० चले लोग सब ब्याकुल भागी । (मा० २।८४।२)

ब्याकुलता–(सं० व्याकुलता)–घबराहट । उ० सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी । (मा० १।२५९।२)

ब्याज–(सं० व्याज)–१. बहाना, २. सूद, ३. लक्ष्य, निशाना । उ०१. ईस-बामता बिलोकु, बानर को ब्याज है । (क० ५।२२)

ब्याध–(सं० व्याध)–बहेलिया, चिड़ीमार । उ० बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा । (मा० ६।१०।३)

ब्याधि–(सं० व्याधि)–रोग । उ० देखी ब्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ । (मा० २।३४) ब्याधिन–रोगों । ब्याधिन्ह–रोगों । उ० मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । (मा० ७।१२१।१५)

ब्याप–(सं० व्यापन)–व्यापते, व्याप्त होते । उ० ताहि न ब्याप त्रिबिध भवसूला । (मा० ५।४७।३) ब्यापइ–ब्यापती है, ढक लेती है । उ० प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या । (मा० ७।७९।१) ब्यापई–ब्यापता है, ब्याप्त होता है । ब्यापत–१. फैलता है, पसरता है, २. ब्यापता, छेंकता, ग्रसता । उ०२.तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन ? (मा० ७।९४क) ब्यापहिं–१. व्यापते हैं, ग्रसते हैं, ढक लेते हैं, २. फैलते हैं । ब्यापहि–ब्यापेगा, ग्रसेगा । उ० कबहूँ काल न ब्यापहि तोही । (मा० ७।८८।१) ब्यापा–१. छा गया, पसर गया, २. ग्रस लिया । उ०१. दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा । (मा० २।५७।४)

ब्यापि–(सं० व्यापन)–फैल, पसर । उ० नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी । (मा० २।४६।३) ब्यापिहहिं–१. फैलेंगी, फसरेंगी, २. ग्रसेंगी, ढक लेंगी । ब्यापिहि–दे०'ब्यापहि' । ब्यापी–ब्याप गई, छा गई । उ० रघुपति प्रेरित ब्यापी माया । (मा० ७।७८।१) ब्यापै–१. फैले, पसरे, २. लगे, बाँधे । उ० २. अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि । (मा० १।२०२)

ब्यापक–(सं० व्यापक) व्यापनेवाला, सर्वव्याप्य । उ० ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता । (मा० ७।७२।२)

ब्यापित–व्याप्त, लीन। उ०मोह कलिल ब्यापित मति मोरी। (मा० ७।८२।४)
ब्याप्य–व्याप्त होने योग्य। उ० दे० 'ब्यापक'।
ब्याल–(सं० व्याल)–सर्प। उ० मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। (मा० १।३२।५) ब्यालहि–सर्प को। उ० चितव गरुड़ लघु ब्यालहि जैसें। (मा० १।२५९।४)
ब्याला–दे० 'ब्याल'। उ० किंनर निसिचर पसु खग ब्याला। (मा० ७।८१।१)
ब्यालू–दे० 'ब्याल'। उ० मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू। (मा० २।१५४।१)
ब्यास–(सं० व्यास)–महाभारत के तथाकथित रचयिता ऋषि। उ० ब्यास आदि कवि पुंगव नाना। (मा० १।१४।१)
ब्याह–(सं० विवाह)–शादी, विवाह।
ब्याहब–(सं० विवाह)–ब्याह दूँगा। उ० काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ। (क० ७।१०६) ब्याहि–विवाह करके। उ० एहि बिधि ब्याहि सकल सुत जग जस छायउ। (जा० २०२)
ब्याहु–दे० 'ब्याह'। उ० राम रूपु भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु। (मा० १।३६०)
ब्याहू–दे० 'ब्याह'। उ० हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। (मा० १।४२।१)
ब्योंत–(सं० व्यवस्था)–काट-छाँट। उ० अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी। (क० ७।१३३)
ब्योम–(सं० व्योम) आकाश। उ० पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। (मा० १।२६५।१)
ब्रज–(सं०)–मथुरा-गोकुल के आस पास की भूमि। यह कृष्ण की लीला-भूमि है। उ० नयननि को फल लेत निरखि खगमृग सुरभी ब्रज बधू अहीर। (गी० १।५२)
ब्रजनाथ–(सं०)–कृष्ण। उ० जीवन कठिन, मरन की यह गति दुसह बिपति ब्रजनाथ निवारे। (कृ० ५६)
ब्रत–(सं० व्रत)–१. उपवास, २. नियम। उ० २. सत्य संध दृढ़ब्रत रघुराई। (मा० २।८२।१)
ब्रता–ब्रत धारण करनेवाली। दे० 'पतिब्रता'।
ब्रतु–दे० 'ब्रत'।
ब्रन–(सं० व्रण)–घाव। उ० तन बहु ब्रन चिंता जर छाती। (मा० ४।१२।२)
ब्रह्मंड–दे० 'ब्रह्मांड'। उ० श्री प्रभु के संग सो बढ़ो, गयो अखिल ब्रह्मांड। (दो० ५३२)
ब्रह्मंडा–दे० 'ब्रह्मांड'। उ० जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। (मा० ६।१०३।५)
ब्रह्म–(सं० ब्रह्मन्)–परब्रह्म, परमात्मा। उ० सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति बाँध्यो हठि सकत न छोरी। (वि० ९८)
ब्रह्मचरज–दे० 'ब्रह्मचर्य'। उ० १. ब्रह्मचरज ब्रत रत मति धीरा। (मा० १।१२९।१)
ब्रह्मचर्ज–दे० 'ब्रह्मचर्य'। उ० १. ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना। (मा० १।८४।४)
ब्रह्मचर्य–(सं०)–१. वीर्य को रक्षित रखने का प्रतिबंध, २. पहला आश्रम जिसमें वेदाध्ययन किया जाता है।
ब्रह्मचारी–(सं० ब्रह्मचारिन्)–ब्रह्मचर्य का ब्रत धारण करनेवाला। पहले आश्रम में रहकर वेदाध्ययन करनेवाला। उ० शक्र-प्रेरित-घोर-मारमद-भंगकृत, क्रोधगत बोधरत, ब्रह्मचारी। (वि० ६०)
ब्रह्मज्ञान–(सं०)–ब्रह्म विषयक ज्ञान, तत्त्व ज्ञान। उ० ब्रह्म-ज्ञान बिनु नारि-नर कहहिं न दूसरि बात। (दो० ५५२)
ब्रह्मज्ञानी–(सं० ब्रह्मज्ञानिन्)–ब्रह्म को जाननेवाला, तत्त्ववेत्ता। उ० शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुन शब्दब्रह्मैक पर-ब्रह्म-ज्ञानी। (वि० ५७)
ब्रह्मन्य–(सं० ब्रह्मण्य)–१. ब्राह्मणों का, २. ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखनेवाला। उ० १. प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना। (मा० १।२०९।२) ब्रह्मन्यदेव–ब्राह्मणों के भक्त। उ० दे० 'ब्रह्मन्य'।
ब्रह्मर्षि–(सं०)–ऐसा ऋषि जो ब्राह्मण हो।
ब्रह्मविद्–(सं०)–ब्रह्म या परमात्मा को जाननेवाला। उ० ब्यापक ब्योम बंद्यांघ्रि बामन बिभो ब्रह्मविद्-ब्रह्मचिंता-पहारी। वि० ५६)
ब्रह्माँ–ब्रह्मा से। दे० 'ब्रह्मा'। उ० मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा। (मा० १।१७७।३) ब्रह्मा–(सं० ब्रह्म)–भगवान का एक रूप जो जगत की सृष्टि करता है। उ० ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू। (मा० १।६६।२)
ब्रह्मांड–(सं०)–चौदहो भुवन का समूह, संपूर्ण विश्व। उ० कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। (मा० १।२५३।२)
ब्रह्मानंद–ब्रह्मप्राप्ति का आनंद। उ० मानहुँ ब्रह्मानंद समाना। (मा० १।१९३।२)
ब्रह्मानी–(सं० ब्रह्माणी)–१. ब्रह्मा की स्त्री, शक्ति, २. सरस्वती। उ० १. अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। (मा० १।१४८।२)
ब्रात–(सं० व्रात)–समूह। उ० गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी। (मा० ७।१०१।५)
ब्राता–दे० 'ब्रात'। उ० दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता। (मा० ७।९३।३)
ब्राह्मण–(सं०)–चारो वर्णों में प्रथम और सर्वश्रेष्ठ, विप्र।
ब्राह्मन–दे० 'ब्राह्मण'। उ० बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो। (गी० १।१४)
ब्रीड़ा–(सं० व्रीडा)–लज्जा। उ० बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा। (मा० ७।७७।५)

भ

भंगं-भंग करने या काटने के लिए। उ० सुहृद-सुग्रीव-दुख-रासि-भंगं। (वि० ५०) भंग-(सं०)-१. खंड, टुकड़े-टुकड़े, २. पराजय, हार, ३. नाश। उ० १. महिषमद-भंग करि अंग तोरे। (वि० १५) भंगकर-भंग करनेवाले। उ० त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्तगज-चर्म-धर, अंधकोरग-ग्रसन-पन्नगारी। (वि० ४६) भंगकृत-तोड़ने या नाश करनेवाले। उ० शक्र-प्रेरित-घोर-मारमद-भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी। (वि० ६०)

भंगा-दे० 'भंग'।

भंगुर-(सं०)-नाशवान।

भंगू-(सं० भंग)-नाश होनेवाला। उ० राम बिरहँ तजि तनु छन भंगू। (मा० २।२११।४)

भंजक-(सं०)-तोड़नेवाला, नाशक।

भंजन-(सं०)-१. भंजन, तोड़ना, ध्वंस करना, नष्ट करना, २. तोड़नेवाला, नष्ट करनेवाला, समाप्त करनेवाला। उ० १. नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। (वि० ३०) २. जन-रंजन भंजन सोक भयं। (मा० ६।१११।३) भंजनि-भंग करनेवाली, तोड़नेवाली। उ० भय भंजनि श्रम भेक भुअंगिनि। (वि० ३१।४)

भंजनिहारु-(सं भंजन+धार)-तोड़नेवाले, समाप्त करनेवाले। उ० सरद-बिधु रवि-सुवन मनसिज-मान भंजनिहारु। (गी० ७।८)

भंजनु-दे० 'भंजन'।

भंजब-(सं० भंजन)-१. तोड़ूँगा, २. तोड़ेंगे। उ० २. भंजब धनुषु राम सुनु रानी। (मा० १।२५७।१) भंजहिं-तोड़ते हैं। भंजहु-नाश कीजिए, तोड़िए। उ० तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु राम उदार। (वि० ६३) भंजा-तोड़ डाला, तोड़ा। उ० हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। (मा० ५।२१।४) भंजि-तोड़कर, भंगकर। उ० भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी। (वि० ४३) भंजिहिं-नाश करेगा, तोड़ेगा। उ० जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति। (मा० १।१८४) भंजिहैं-तोड़ेंगे। उ० तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु-धनु भूरि भाग सिय मातु पितौ री। (गी० १।७५) भंजी-तोड़ा, नष्ट किया। भंजे-तोड़ा, टुकड़े-टुकड़े किया। भंजेउ-तोड़ा, खंडित किया। उ० भंजेउ राम आपु भव चापू। (मा० १।२४।३) भंजौं-१. तोड़ूँ, तोड़ डालूँ, २. तोड़ता हूँ। उ० २. लै धावौं भंजौं मृनाल ज्यौं तौ प्रभु अनुग कहावौं। (गी० १।८७) भंज्यो-१. तोड़ा, तोड़ डाला, २. दूर किया। उ० १. भंज्यो संभु-चाप भारी। (गी० ७।३८) २. भंज्यो दारिद काल। (दो० १६०)

भंजिक-दे० 'भंजक'।

भंड-(सं०)-१. भ्रष्ट, २. धूर्त, ३. भँड़ैती करनेवाला। उ० १. चोर, चतुर, बटपार, नट प्रभुप्रिय भँडुआ भंड। (दो० ५४६)

भंडार-(सं० भंडागार)-कोष, खजाना।

भँडारही-भंडार में, खजाने में। उ० झपट लपट भरे भवन भँडारही। (क० ५।२३)

भँडारू-दे० 'भंडार'। उ० नगरु बाजि गज भवन भँडारू। (मा० २।१८६।१)

भँडारी-(सं०भंडार+ई) १. छोटा भंडार, छोटा कोष, खज़ाना या कोठरी, २. खज़ाने का मालिक, ३. रसोइँया। उ० ३. बोलि सचिव सेवक सखा पट धारि भँडारी। (गी०१।६)

भँड़ुआ-(सं० भंड)-वेश्या के साथ रहनेवाला, वेश्यापुत्र। उ० चोर चतुर बटपार नट प्रभु प्रिय भँडुआ भंड। (दो० ५४६)

भँभोरि-(सं० भय)-डर, भय।

भँवनि-(सं० भ्रमण)-घूमना, भ्रमण। उ० देखत खग-निकर, मृग रवनिन्ह जुत थकित बिसारि जहाँ तहाँ की भँवनि। (गी० ३।५)

भँवर-(सं० भ्रमर)-१. आवर्त, चक्कर, २. भँवरा, मधुकर, ३. गड्ढा, गर्त। उ० १. भँवरवर विभंगतर तरंग मालिका। (वि० १७) २. किहेसि भँवर कर हरवा हृदय बिदारि। (ब० ३२)

भँवरा-(सं० भ्रमर)-१. भौंरा, भ्रमर, द्विरेफ, २. घूमनेवाली चीज़, ३. भँवर, कली, लोहे या पीतल की वह कड़ी जो कील में इस प्रकार जड़ी रहती है कि वह जिधर चाहे घूम सके। उ० ३. पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलिन लाल। (गी० ७।१८)

भ-(सं०)-भरणी नक्षत्र। उ० ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ भू गुनु साथ। (दो० ४५७)

भइँ-(सं० भू)-हुईं। उ० उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भइँ। (जा० १४७) भइ-हुई, हो गई। उ० भइ बड़ि बार आलि कहुँ काज सिधारहि। (पा० ७३) भइउँ-हो गई हूँ। उ० बौरेहि अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि। (पा० ७०) भइन्ह-हो गईं, हुईं। उ० भइन्ह धन्य जुवती जन लेखें। (मा० २।२२३।२) भइसि-हुई है। उ०बहे जात कइ भइसि अधारा। (मा०२।२३।१) भइहु-भई, हो गई। उ० भामिनि भइहु दूध कइ माखी। (मा० २।१६।४) भईं-हुईं, हो गईं। उ० दिन दूसरे भूप-भामिनि दोउ भईं सुमंगल-खानी। (गी० १।४) भई (१)-(सं० भू)-हो गई, हुई। उ० तुलसी जाके चित भई राग द्वेष की हानि। (वै० ५६) भए-१. हुए, हो गए, २. उत्पन्न हुए, उपजे, ३. होने पर। उ० १. सो बल गयो, किधौं भए अब गर्ब-गहीले। (वि० ३२) ३. साँप सभा साबर लबार भए देव दिव्य। (वि० ७५) भएउ-हुआ, हो गया। भएसि-हुआ, हुआ है। उ० भएसि काल बस निसिचर नाहा। (मा० ३।२८।८) भयउ-हुआ, भया। उ० सुनतहिं भयउ पर्वताकारा। (मा० ४।३०।३) भयऊ-दे० 'भयउ'। उ० तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ। (मा० १।१०६।२) भयहु-हुआ, हो गया।

भयो–१. हुआ, हो गया, २. पैदा हुआ। उ० भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि। (दो० २९१) भा(१)–१. हुआ, २.होते ही। उ० १.लखि नारद-नारदी उमहिं सुख भा उर। (पा० १६) २. भा भिनुसार गुदारा लागा। (मा०२।२०२।४) भे–हुए, हो गये। उ० भे सब लोक सोक बस बौरा। (मा० २।२७१।१)

भइया–(सं० भ्राता)–भैया, भाई। उ० एक कहत भइया भरत जये। (गी० १।४३)

भई (२)–(सं० भ्राता)–भाई।

भकुआ–(सं० भेक)–मूर्ख, जड़, अज्ञानी।

भक्त–(सं०)–१. ईश्वर का भक्त, साधु, २. सेवक, ३. प्रेमी, ४. भात, पकाया चावल, ५. बाँटकर दिया हुआ। उ० १. भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम-हारिनी। (वि० ४८) भक्तवत्सलं–दे० 'भक्तवत्सल'। भगवान को। उ०नमामि भक्तवत्सलं। (मा० ३।४।१) भक्तवत्सल–(सं०)–भक्त के लिए जिसके हृदय में प्रेम हो। भगवान

भक्ति–भक्ति को, प्रेम को, अनुराग को। उ० भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे कामादि दोष रहितं कुरु मानसं च। (मा० ५।१। श्लो० २) भक्ति–(सं०)–१. परमात्मा के प्रति अनुराग, २. श्रद्धा, आदर भाव, ३. प्रेम। उ० १. भंजनि-भवहार, भक्त कल्प-थालिका। (वि० १७) भक्त्या–भक्ति से, भक्तिपूर्वक। उ०ये पठंति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति। (मा० ७।१०८।९)

भक्ष–(सं०)–आहार, भोजन।

भक्षक–(सं०)–खानेवाला, भोजन करनेवाला।

भक्षण–(सं०)–१. खाना, आहार, २. भोजन करना, खाना खाना।

भक्षित–(सं०)–खाया हुआ।

भक्ष्य–(सं०)–भोजन के योग्य, भक्षणीय।

भक्ष्याभक्ष्य–(सं०)–खाने योग्य और न खाने योग्य।

भख–दे० 'भक्षण'।

भखा–(सं० भक्षण)–भक्षण किया, खाया।

भग–(सं०)–१. ऐश्वर्य, २. स्त्री चिह्न।

भगत–(सं० भक्त)–भक्त, उपासक, दास। उ० भगत-काम तरु नाम राम परिपूरन चंद चकोर को। (वि० ३१) भगतन–१. भक्तों, २. भक्तों को, ३. भक्तों ने। भगतन्ह–भक्तों, भक्तों ने। उ० हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। (मा०१।२४२।३) भगतबछलता–(सं०भक्त+वत्सलता)–भक्त के प्रति उपास्य के हृदय में प्रेम भाव। उ० भगत-बछलता हियँ हुलसानी। (मा० १।२१८।२)

भगति–दे० 'भक्ति'। उ० १. सेये नहिं सीतापति-सेवक साधु सुमति भले भगति भाय। (वि० ८३) ३. तुलसिदास हरिचरन-कमल, हर ! देहु भगति अविनासी। (वि० ६) भगतिहि–भक्ति में। उ० ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। (मा० ७।११५।६)

भगतु–दे० 'भगत'।

भगन–(सं० भगण)–एक गण जिसके आदि में गुरु और मध्य तथा अंत में लघु होता है। उ० भगन जगन का सों करसि राम-अपर नहिं कोय। (स० २८८)

भगवंत–(सं० भगवत्)–१. ईश्वर, भगवान्, विष्णु, २. शिव। उ०१. तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु। (मा० १।१७७) भगवंतहि–भगवान् को, भगवंत को। उ० बिरहवंत भगवंतहि देखी। (मा० ३।४१।३)

भगवंता–दे० 'भगवंत'। उ० १. जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता। (मा० १।१८६। छं० १)

भगवान–(सं० भगवत्)–ईश्वर, परमेश्वर। उ० सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान। (मा० ७।११० घ)

भगवाना–दे० 'भगवान'। उ० मुनि मति पुनि फेरी भगवाना। (मा० ७।११३।२)

भगवानू–दे० 'भगवान'। उ० राजा राम स्वबस भगवानू। (मा० २।२५४।१)

भगान–(?)–भागना। उ० सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान। (मा० २।२३०)

भगिनि–दे० 'भगिनी'। उ० सिय लघु भगिनि लषन कहँ रूप-उजागरि। (जा० १७३)

भगिनी–(सं०)–बहन। उ० अनुजबधू भगिनी सुत नारी। (मा० ४।९।४)

भगीरथ–(सं०)–सूर्यवंशी राजा जो गंगा को पृथ्वी पर लाने में सफल हुए थे। उ० भूप भगीरथ सुरसरि आनी। (मा० २।२०६।४)

भगीरथनंदिनि–गंगा। उ० जय-जय भगीरथनंदिनि, मुनि चय-चकोरि चंदिनि। (वि० १७)

भग्न–(सं०)–१. टूटा हुआ, खंडित, २. पराजित, हारा, ३. नष्ट-भ्रष्ट, ४. नश्वर, ५. विफल, असफल। उ० ४. भग्न-संसार-पादप-कुठारं। (वि० ५०) ५. जद्यपि भगन-मनोरथ बिधि-बस सुख इच्छत दुख पावै। (वि० ११६)

भग्नी–दे० 'भगिनी'।

भच्छ–(सं० भक्ष्य)–भक्ष्य, जो खाया जाय। उ० असुभ बेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं। (मा० ७।९८ क)

भच्छक–दे० 'भक्षक'। उ० ते फल भच्छक कठिन कराला। (मा० ३।१३।४)

भच्छन–(सं० भक्षण)–भक्षण, खाना। उ० आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ। (मा० ४।२७।२)

भच्छहीं–खाते हैं, भक्षण करते हैं। उ० कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं। (मा०५।३।छं०३)

भच्छाभच्छ–दे० 'भक्ष्याभक्ष्य'। उ० असुभ बेष भूषन धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं। (मा० ७।९८ क)

भजंति–भजन करते हैं। उ० भजंति हीन मत्सराः। (मा० ३।४। छं० ७) भज–(सं० भजन)–१. भजनकर, २. सेवा, टहल, ३. भजता है। उ० ३. सब भरोस तजि जो भज रामहि। (मा० ७।१०३।३) भजइ–१. भजन करे, २. भजन करता है। भजई–१. भजन करे, भजेगा, सेवेगा, २. भजन करता है। उ० १. बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई। (मा० १।२२२।२) भजत–१. भजत करते ही, २. भजता है। उ० १. भजत कृपा करिहहिं रघुराई। (मा० १।२००।३) भजति–भजती है। भजते–१. भजते हुए, २. भजा करते। उ० १. तौ हरि रोस भरोस दोस गुन तेहिं भजते तजि गारो। (वि० ६४) भजसि–भजता है, भजन करता है। उ० तुलसिदास सठ तेहिं न भजसि कस कारुनीक जो अनाथहि दाहिन।

(वि० २०७) भजहिं–भजते हैं, स्मरण करते हैं। उ० भजहिं मोहि संसृत दुख जाने। (मा० ७।४१।३) भजहि–१. भज, भजनकर, २. भजता, भजन करता। उ० १. समुझि तजहि भ्रम भजहि पद जुगम। (वि० २३६) २. तुलसिदास तेहि सकल तजि भजहिं न अजहुँ अयाने। (वि० १९६) भजहु–भजो, भजन करो। उ० भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी। (मा० ५।२२।४) भजामहे–हम लोग भजते हैं, हम लोग भजते रहते हैं। उ० पदकंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे। (मा० ७।१३।छं०४) भजामि–भजता हूँ, भजन करता हूँ। उ० भजामि ते पदांबुजं। (मा० ३।४।छं०१) भजि (१)–भजकर, भजन कर। उ० पाई न केहिं गति पतित पावन रामभजि सुनु सठ मना। (मा० ७।१३०।छं०१) भजिअ–भजिए, स्मरण कीजिए। उ० अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि। (मा० १।१४०) भजिय–दे० 'भजिअ'। भजी(१)–भजा, याद किया। भजु–भजो, भजन करो। उ० तौ तजि बिषय बिकार-सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु। (वि०२०५) भजे(१)–१.भजन किए, २.मैं भजन करता हूँ। उ०१.छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति स्रु ति संदेह निबेरो। (वि० ८७) २. मुनि मानस पंकज भृ ंग भजे। (मा० ७।१४। छं० ६) भजेसु–भजना, भजन करते रहना। उ० सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही। (मा० ७।८८।१) भजेहु–भजा, याद किया। उ० भजेहु राम सोभा सुख सागर। (मा० ६।६४।५) भजै–१. भजे, भजन करे, २. भजन करता है। उ० २. भावै जो जेहिं भजै सुभ असुभ सगाई। (वि० ३५) भजौं (१)-१. भजता हूँ, भजन करता हूँ, २. सेवा करता हूँ। उ० १. आयो सरन भजौं, न तजौं तिहि यह जानत ऋषिराउ। (गी०२।४५) भज्यो–१. भजो, २. भजना, याद करना, ३. भजा, स्मरण किया। उ० २. जौ मन भज्यो चहै हरि सुरतरु। (वि० २०५)

भजतहिं–भजते हुए को। उ० किए छोह छाया कमल कर की भगत पर भजतहि भजै। (वि० १३५)

भजन–(सं०)–बार बार किसी आराध्य का नाम-स्मरण या गुण-कथन करना, जप, ईश्वर का नाम स्मरण या कीर्तन आदि। उ० जब तव सुमिरन भजन न होई। (मा० ५।३२।२)

भजनि–(सं० व्रजन)-भागना, भगने का भाव। उ० भजनि मिलनि रूठनि टूठनि किलकनि। (गी० १।२७) भजहिं–भाग, भग जा। उ० तुलसिदास प्रभु के दासन तजि भजहि जहाँ मदमार। (वि०१८८) भजि (२)-भगकर, दौड़कर। उ० किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहर तैया। (गी० १।६) भजी (२)–भगी, भाग गई। भजे (२) भगे, भाग गए। भजौं (२)-भागता हूँ।

भजनीय–भजन करने योग्य। उ० चरनारबिंद महं भजे भजनीय सुर-मुनि-दुर्लभं। (कृ० २३)

भट–(सं०)–१. वीर, बहादुर, २. सैनिक, सिपाही, योद्धा। उ० भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। (मा० १।१८०।४) भटन्ह–भटों को, वीरों को। उ० खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं। (मा० ६।८८। छं० १)

भटकत–(?) १. भटकते हैं, २. भटकते हुए। उ० २. भटकत पद अद्वैतता अटकत ग्यान गुमान। (स० ३४७) भटकि–भूलकर, भ्रम में पड़कर। उ०तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु-कोटर गहौं। (वि० २२२) भटकै–भटकें, भटकते हैं। उ० नाहिं त दीन मलीन हीन-सुख कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै। (वि० ६३)

भटभेरे–(सं० भट + भिड़ना)–ठोकर, धक्का। उ० नर हत भाग्य देहिं भटभेरे। (मा० ७।१२०।६)

भटभेरो–दे० 'भटभेरे'। उ० तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भटभेरो। (वि० १४३)

भटमानी–अपने को भट (=योद्धा) माननेवाला। उ० अहो मुनीसु महा भटमानी। (मा० १।२७३।१)

भटा–दे० 'भट'। उ० १. गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै। (क० ७।४१)

भटू–(?) एक संबोधन जो व्रज में स्त्रियों के लिए प्रयोग में आता है। उ० सो क्यों भटू तेरो कहा कहि इत उत जात। (कृ० २)

भट्टा–दे० 'भट'। उ० १ देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। (मा० ६।८७।१)

भड़िहाईं–(सं० भंड)–१. चोरी, २. भँड़ैती। उ० १. इत उत चितइ चला भड़िहाईं। (मा० ३।२८।५)

भँडुआ–(सं० भंड)-वेश्यापुत्र, वेश्या के साथ रहनेवाला। उ० चोर चतुर बटपार नट, प्रभुप्रिय भँडुआ भंड। (दो० ५४६)

भडुवा–दे० 'भँडुआ'।

भणित–(सं०) दे० 'भनिति'।

भदेस–(सं० भद्र)–१. भद्दा, कुरूप, बेडौल, २. निंद्य, ३. अनुचित। उ० ३. भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सों। (क० १।१५)

भदेसू–दे० 'भदेस'। उ० ३. मोर कहब सब भाँति भदेसू। (मा० २।२६६।४)

भद्र–(सं०)–१. मंगल, कल्याण, २. सभ्य, सुशिक्षित, ३. श्रेष्ठ। उ० १. कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्र सदन मर्दन मयन। (क०७।१५२) ३ भेंटेउ राम भद्र भरि बाहू। (मा० २।१९६।४)

भनंता–(सं० भण)–कहते हैं, वर्णन करते हैं। उ० माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता। (मा० १।१९२।२) भनई–१. कहता है, २. पढ़ता है, ३. वर्णन कर सकता है। उ० ३. सुकबि लखन मन की गति भनई। (मा० २।२४०।३) भनत–कहते हैं। भनि–कहकर, बोलकर। भनियत–कही जाती। उ० सोऊ साधु-सभा भली भाँति भनियत है। (वि० १८३) भनिहैं–कहेंगे। उ० देखि खलल अधिकार प्रभू सों मेरी भूरि भलाई भनिहैं। (वि० ६५) भनी–१. कही, वर्णन की, २. कहकर, कहते हुए, ३. कविता की। उ० २. चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी। (मा० १।३२७। छं० ४) भनु–१. कहो, २. कहते हो। उ० २. सो भनु मनुज खाब हम भाई। (मा० ६।६।३) भने–कहे,

भाषे, बोले। उ० ब्याध, गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने। (वि०१६०) भनै–कहे। उ० तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै। (गी० ५।४०) भन्यो–१. कहा, २. पुकारा। उ० १. महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जय जय भन्यो। (मा० ६।६५। छं० १)

भनक–(अनु०)–ध्वनि, आहट, धुनि।

भनित–१. कहा हुआ, २. कविता, रचना। उ० १. सहस नाम मुनि-भनित सुनि, तुलसी-बल्लभ नाम। (दो० १८८) २. तुलसी-भनित सवरी-प्रनति, रघुबर प्रकृति करुनामई। (गी० ३।१७)

भनिति–दे० 'भनित'। उ० २. भाषा भनिति भोरि मति मोरी। (मा० १।६।२)

भभर–(सं० भय)–१, खटका, डर, २. घबराहट, व्याकुलता।

भभरा–(सं० भय)–घबराया। भभरि–१. घबराकर, २. डरकर। उ० १. सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान। (मा० २।२३०) २. तुलसी भभरि मेघ भागे सुख मोरि कै। (क० ५।१६) भभरे–डरे, डर गये। उ० भभरे, बनइ न रहत न बनइ परातहि। (पा० ११५)

भभेरि–(?)–१. चक्कर, २. मूर्खता, ३. शोरगुल। उ० १. गुन-ज्ञान-गुमान भभेरि बड़ी। (क० ७।१०३)

भयं–भय, डर। उ० जनरंजन भंजन सोक भयं। (मा० ६। १११।३) भय–(सं०)–डर, त्रास, खौफ। उ० भक्ति-भुक्ति-दायिनि, भयहरनि कालिका। (वि० १६)

भयंक–दे० 'भयंकर। उ० बेष तौ भिखारि को, भयंक रूप संकर। (क० ७।१६०)

भयंकर–(सं०)–भीषण, भयानक, डरावना। उ० संभु सिव रुद्र संकर भयंकर भीम घोर-तेजायतन क्रोधरासी। (वि० ४६)

भयंकरा–दे० 'भयंकर'। उ० तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा। (मा० १।६५। छं० १)

भयकारी–भयभीत करनेवाला। उ० असगुन अमित होहिं भयकारी। (मा० ३।१८।४)

भयचक–डरा हुआ, भयभीत।

भयदा–(सं०) भय देनेवाला, भयानक। उ० दंडपानि भैरव विषान, मलरुचि खलगन भयदा सी। (वि०२२)

भयदायक–(सं०)–भय देनेवाला। उ० भयदायक खल कै प्रिय बानी। (मा० ३।२४।४)

भयभीत–(सं०)–डरा हुआ, भयातुर।

भयमोचन–डर दूर करनेवाला। उ० स्यामल गात प्रनत भयमोचन। (मा० ५।४५।२)

भयातुर–(सं०)–डरा हुआ, भयभीत। उ० मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा। (मा० १। १८६।४)

भयातुरे–भयातुर होकर, डरकर। उ० चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे। (मा० ६।६६।छं० १)

भयानक–(सं०)–भयंकर, भीषण, डरावना। उ० मनहु भयानक सूरति भारी। (मा० १।२४१।३)

नभयाव–(सं०)–डरावना, भयंकर। उ० कहाँ अमंगल बेषु बिसेषु भयावन। (पा०६०) भयावनि–डरावनी, भयंकर। 'भयावन' का स्त्रीलिंग। उ० मारग जात भयावनि भारी। (मा० १।३२६।४)

भयावनी–दे० 'भयावनि'।

भयावने–दे० 'भयावन'।

भयावनो–दे० 'भयावन'। उ० नाथ न चलै गो बल अनल भयावनो। (क० ५।८)

भयावह–(सं०)–भयंकर, भयकारक।

भयावहा–दे० 'भयावह'। उ० प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। (मा० ३।१७।छं० १)

भरंदर–(?) अंधाधुंध।

भर (१)–(सं० भरण)–१. पूर्ण, भरा-पूरा, २. भारी, ३. भरण-पोषण करनेवाला, ४. भरण, भरने की क्रिया, ५. धारण करनेवाला। उ० १. सघन तम-घोर-संसार-भर-शर्वरी-नाम दिवसेस-खर-किरनमाली। (वि० ५५) ५. बिस्वभार भर अचल छमा सी। (मा० १।३१।५)

भर (२)–(सं०भरत)–एक जाति। उ० प्रभु तिय लूटत नीच भर। (दो० ४४०)

भरई–(सं० भरण)–भरती है, भर देती है। उ० मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। (मा० ७।१०६।६) भरऊँ–१. भरता हूँ, पूरा करता हूँ, २. ऋण चुकाता हूँ। भरत (१)–१. भर देता है, २. भरण-पोषण करते हुए। उ० १. देत जो भू भाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि। (दो० २८७) भरब–भरूँगी, पूरा करूँगी। उ०नैहर जनमु भरब बरु जाई। (मा०२।२११।१) भरहीं–भरते हैं। उ० तब तब बारि बिलोचन भरहीं। (मा० २।१४१।२) भरहु–भरो। भरहुगे–भर दोगे। उ० अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे। (वि० २११) भरा–१. बोझा हुआ, भरा हुआ, आपूर्ण, २. भरण-पोषण किया, ३. लादा, पूरा किया, ४. धारण किया। उ०१. विषरस भरा कनक घटु जैसे। (मा०१।२७८) भरि–१.पूर्ण करके, भरकर, अच्छी तरह, २. पोषण करके, ३. पाल करके, ४. भर, पर्यंत। उ० १. जोबन-जर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन-बाय। (वि० ८३) ४. दुइज न चंदा देखिये, उदौ कहा भरि पाख। दो० ३४४) भरिबे–भरना, पूरा करना। उ० तुलसी कान्ह बिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो। (कृ० ३६) भरिया–भर गया, आपूर्ण हो गया। उ०तिन सोने के मेरु से ढेरु लहे मन तौ न भरो घर पै भरिया। (क० ७।४६) भरी–१. भर गई, पूर्ण हो गई, भरी है, २. भरी हुई, आपूर्ण। उ० १. भरी क्रोध जल जाइ न जोई। (मा० २। ३४।१) भरे–१. भरा, भर दिया, २. भरे हुए। उ० २. भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे। (मा० ७।१३।छं० २) भरेउ–भरा। भरेऊ–भरा। भर्‍यो–भरा हुआ। उ०तीय हरी रन बंधु पर्‍यौ पै भर्‍यौ सरनागत-सोच हियो है। (क० ६।५३)

भरत (२)–(सं०)–१. राम के छोटे भाई जो कैकेयी के पुत्र थे। इनके ही लिए कैकेयी ने राम को १४ वर्ष का बनवास दिलाया था, पर ये राम के अनन्य भक्त थे, अतः इन्होंने राज्य को ठुकरा दिया। २. एक प्रसिद्ध राजा जो शकुंतला के पुत्र थे। उ० १. कहैं मोहि मैया, कहौं, मैं न

मैया भरत की। (क० २।३) भरतहि–भरत को। उ० तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु। (मा० २।५५) भरतहु–भरत भी। उ० भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे। (मा० ७।८।४)
भरतखंड–(सं०)-भारतवर्ष। उ० यह भरतखंड समीप सुरसरि, थल भलो संगति भली। (वि० १३५)
भरता–(सं० भरण)-भरनेवाला, पालनेकरनेवाला। उ० भरता भरत सो जगत को तुलसी लसत अकार। (स० १५२)
भरतार–(सं० भर्त्ता)-१. पति, २. भरण-पोषण करनेवाला, ३. ईश्वर। उ० २. करतार भरतार हरतार कर्म काल। (ह० ३०)
भरतारा–दे० 'भरतार'। उ० १. चाहिअ सदा सिवहि भरतारा। (मा० १।७८।४)
भरतु–दे० 'भरत (२)'।
भरदर–(?)-पूर्ण रूप से, अच्छी तरह। उ० भरदर बरषत कोस सत बचैं जे बूँद बराइ। (दो० ४०२)
भरद्वाज–(सं०)-एक ऋषि। ममता के गर्भ से वृहस्पति के पुत्र। घृताची को देखकर इन्हें स्खलन हुआ था जिससे द्रोणाचार्य पैदा हुए थे। उ० भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान। (मा० १।१२७)
भरण–(सं०)-१. पूरा करनेवाला, २. भरण पोषण करनेवाला, ३. पालन, रक्षा, बचाव, ४. वेतन, तनख्वाह।
भरणी–(सं०)-१.एक नक्षत्र, २. मोरनी, ३. साँप का विष उतारने का मंत्र।
भरन–दे० 'भरण'। उ० १. विश्व-पोषन-भरन विश्वकारन-करन, सरन-तुलसीदास त्रास हंता। (वि० ५५)
भरनी–दे० 'भरणी'। उ०२. रामकथा कलिपन्नग भरनी। (मा० १।३१।३)
भरपूर–(सं० भरण+पूर्ण)-पूर्ण, भरा पूरा।
भरपूरि–दे० 'भरपूर'।
भरम–(सं० भ्रम)-१. भ्रम, भ्रांति, भुलावा, धोखा, २. प्रतिष्ठा, मान, इज्ज़त। उ० १. तुलसी सुनि जानि बूझि भूलहि जानि भरम। (वि० १३१)
भरमाए–(सं०भ्रम) भ्रम में डाल दिया, धोखे में डाल दिया। उ० हाय-हाय राय बाम बिधि भरमाए। (गी० २।३६)
भरायो–(सं०भरण) १. भराया, २ भरण-पोषण कराया हुआ। उ० २. आपु हौं आपु को नीके कै जानत, रावरो राम भरायो गढ़ायो। (क० ७।६०)
भरित–(सं०) १. पूर्ण, पूरित,२.भरनेवाली, पूर्ण करनेवाली, ३.पोषित, पालित। उ० १.सोहति ससि धवल-धार-सुधा-सलिल भरित। (वि० १६)
भरिता–दे० 'भरित'। उ०१. राम बिमल जस जल भरिता सो। (मा० १।३६।६)
भरोस–दे० 'भरोसा'। उ० २. सोइ भरोस मोरें मन आवा। (मा० १।१०।४)
भरोसा–(सं० भरण+आशा)-१. आशा, उम्मीद, २. सहारा, अवलंब। उ० २. नाथ दैव कर कवन भरोसा। (मा० ५।५१।२) भरोसे–दे० 'भरोसा'। उ० २. बूझत छेम कुसल सप्रेम अपनाइ भरोसे भारि कै। (गी० ५।३६)

भरोसो–दे० 'भरोसा'। उ० २. जाके है सब भाँति भरोसो कपि केसरी किसोर को? (वि० ३१)
भर्त्ता–(सं०)-१. पति, स्वामी, २. पालनेवाला, रक्षक, ३. ईश्वर, ४. ब्रह्मा। उ० २. राहु-रवि-सक्र-पबि-गर्व-खर्वीकरन, सरन भयहरन, जय भुवनभर्त्ता। (वि० २५)
भर्म–(सं० भ्रम)-भ्रम, संदेह। उ० नाम जाति गुन देखि कै भएउ प्रबल उर भर्म। (स० ५८१)
भल–(सं० भद्र)-१. श्रेष्ठ, उत्तम, अच्छा, २. मनोहर, सुन्दर, ३. खूब। उ० १. प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर। (जा० ४७) २. अंतरअयन अयन भल, थन फल बच्छ बेद-बिस्वासी। (वि० २२) ३. भल भूलिहु ठग के बौराएँ। (मा० १।७६।४) भले–१. अच्छे, २. खूब, बाह। उ०२. चल सुपंथ मिलि भले साथ। (वि० ८४) भलेउ–भले को भी, अच्छे को भी। उ० अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद। (दो० ४६६) भलेहिं–दे० 'भलेहि'। उ० १. सादर भलेहिं मिली एक माता। (मा० १।६३।१) ४. भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। (मा० १।१६०।१) भलेहि–१. अच्छे भाव से, २. अच्छे को, ३. भले ही, ४. बहुत अच्छा। उ० २. भलेहि मंद मंदहि भल करहू। (मा० १।१३७।१) भलेहु–भले को भी, अच्छे को भी। उ० भलेहु चलत पथ पोच भय। (दो० ५०६)
भला–दे० 'भल'। भली–दे० 'भलि'। उ० भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै। (वि० ७०)
भलाइहि–भलाई ही। उ० भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु। (मा० १।५) भलाई–१. श्रेष्ठता, उत्तमता, निकाई, २. उपकार, नेकी। उ० १. भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीचु। (दो० ३३८)
भलि–भली, अच्छी। उ० सील सिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै। (क० ६।५५)
भलेरो–भला, अच्छा, कल्याण। उ० ह्वै है जब तब तुम्हहि तें तुलसी को भलेरो। (वि० २७२)
भलो–भला, अच्छा। उ० तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले। (वि० ३२) भलोइ–भला ही, उत्तम ही। उ० सीय सुनि हनुमान जान्यौं भली भाँति भलोइ। (गी० ५।५) भलोई–दे० 'भलोइ'। उ० आपनी भलाई भलो कीजै तो भलोई, न तौ। (क० ७।७०)
भवँर–(सं० भ्रमर)-१. भौंरा, २. पानी की भँवर। उ० २. भँवर कूबरी बचन प्रचारा। (मा० २।३४।२)
भवंत (१)–(सं०)-१. आपका, आप लोगों का, २. आप। उ० १. अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें। (मा० ७।१४। छं० ६) भवत्–आपका, तुम्हारा। उ० भवदंघ्रि निरादर के फल ए। (मा० ७।१४।५)
भवंत (२)–(?)-१. समय, काल, २. पूज्य, श्रेष्ठ, ३. प्रधान।
भवंति–(सं०)-होते हैं। भवतु–हो, होवे। उ० तत्र त्वद्भक्ति सज्जन-समागम सदा भवतु मे राम विश्राममेकम्। (वि० ५७)
भव–(सं०)-१. संसार, जगत, २. उत्पत्ति, ३. उत्पन्न, पैदा, ४. कल्याण, कुशल, ५. शिव, ६. जन्म-मरण का दुःख, ७. बादल, ८. कामदेव, ९. सत्ता १०. जन्म-

स्थान। उ० १. घोर अवगाह भव-आपगा। (वि०५६) १. २. भव भव बिभव पराभव कारिनि। (मा० १।२३५।४) ५. भव अंग भूति मसान की। (मा० १।१०। छं० २) ६. प्रचुर भव भंजनं, प्रणत-जन-रंजनं। (वि० १२)

भवचाप–शिव का धनुष, पिनाक। उ० भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली। (वि० ४३)

भवतब्यता–(सं० भवितव्यता)–होनहार, भावी, होनी, भाग्य। उ० तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ। (मा० १।१५६ ख)

भवदीय–(सं०)–आपका, तुम्हारा। उ० एक गति राम भवदीय पदत्रान की। (वि० २०६)

भवन (१)–(सं०)–१. मकान, महल, घर, २. यज्ञ, हवन, ३. होमकुंड। उ० १. भवन आनि सनमानि सकल मंगल किए। (जा० २१२) भवननि–घरों, भवनों। उ० भवननि पर सोभा अति पावत। (मा० ७।२८।३) भवनन्हि–दे० 'भवननि'।

भवन (२)–(सं० भुवन)–संसार।

भवनि–(सं० भ्रमण)–घूमना। भवे–घूमते फिरे, भटकते फिरे।

भवनी–(सं० भवन)–स्त्री, भार्या। उ० कहति मुदित मुनि-भवनी। (गी० १।५६)

भवनु–भवन, घर, महल। उ० कलस सहित गहि भवनु ढहावा। (मा० ६।४४।२)

भवभामिनी–(सं०)–शिव की स्त्री पार्वती। उ० दास तुलसी त्रास हरणि भवभामिनी। (वि० १८)

भवाँई–(सं० भ्रमण)–घुमाकर। उ० गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई। (मा० ६।१८।३)

भवानिए–भवानी ही। उ० मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिए। (क० ७।१६८) भवानिहिं–पार्वती को। उ० पावनि करउँ सो गाइ भवेस-भवानिहि। (पा० ४)

भवानी–(सं०)–१. पार्वती, २. दुर्गा। उ० १. कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। (मा० १।३३।१)

भवानीनंदन–(सं०)–गणेश, पार्वती के पुत्र।

भवान्–आप। उ० नाना स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलांतरात्मा। (मा० ५।१। श्लो० २)

भविष्य–(सं० भविष्यत्)–आनेवाला काल।

भवेस–(सं० भवेश)–महादेव, विश्व के स्वामी। उ० तुलसी भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ। (क० ७। १६१)

भव्य–(सं०)–१. सुन्दर, अच्छा, २. शुभ, मंगलप्रद। उ० १. तड़ित गर्भांग सर्वांग सुन्दर लसत, दिव्य पद, भव्य भूषण बिराजै। (वि० १५)

भसम–दे० 'भस्म'। उ० भये भसम जगु जान। (प्र० ३। १।६)

भस्म–(सं० भस्मन्)–जलने के बाद बची राख, खाक। उ० भस्म तनु भूषणं, व्याघ्र चर्माबरं। (वि० ११)

भहरानी–(?)–गिरी, गिर पड़ीं। उ० हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की। (क० ६।४०) भहराने–गिर पड़े। उ० भहराने भट परयो प्रबल परावनो। (क० ५।८)

भाँग–(सं० भृंगा)–भंग, प्रसिद्ध पौधा जिसकी पत्तियाँ मादक होती हैं। उ० जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु। (मा० १।२६)

भाँट–दे० 'भाट'। उ० किसबी किसान-कुल बनिक भिखारी भाँट। (क० ७।९६)

भाँड़–(सं० भंड)–मसखरा, विदूषक। उ० मूड़ मुड़ाए बाद ही भाँड़ भए तजि गेह। (स० ३८८)

भाँड़ा–(सं० भांड)–बर्तन, मटका। भाँड़े–बर्तन, भाँड़ा। उ० कपट कलेवर कलि मल भाँड़े। (मा० १।१ २।१)

भाँड़िगो–(सं० भंड)–नष्ट-भ्रष्ट कर गया। उ० सहित समाज गढ़ राँड़ कैसो भाँड़िगो। (क० ६।२४)

भाँडु–दे० 'भाँड़'। उ० राम बिमुख कलिकाल को भयो न भाँडु। (ब० ६३)

भाँडू–(सं० भांड)–भंडा-फोड़, भेद का खुलना।

भाँति–(सं०)–१. तरह, किस्म, २. मर्यादा, चाल। उ० १. अस सब भाँति अलौकिक करनी। (मा० १।११८।४) २. रटत-रटत लट्यो जाति पाँति भाँति घट्यो। (वि० २६०) भाँतिन्ह–तरहों, रीतियों। उ० १. जनक कीन्ह पहुनाई अगनित भाँतिन्ह। (जा० १८१) भाँतिहिं–प्रकार से, तरह से। उ० सिव कृपा सागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो। (मा० १।१०१। छं० १)

भाँती–दे० 'भाँति'। उ०१. मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। (मा० १।२८।२)

भाँमर–(सं० भ्रमण)–१. फेरी, २. विवाह के अवसर पर सम्पन्न होनेवाली सप्तपदी।

भाँवर–दे० 'भाँमर'।

भाँवरि–दे० 'भाँमर'। उ० २. लावा होम बिधान बहुरि भाँवरि परी। (पा० १४५)

भाँवरी–दे० 'भाँमर'। उ० २. सिंदूर बंदन होम लावा होन लागीं भाँवरी। (जा० १६२)

भा (२)–प्रकाश, उजाला। उ० अच्छ-बिमर्दन कानन-भान दसानन आनन भा न निहारो। (ह० १६)

भाइ (१)–दे० 'भाई (२)'। उ० जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ। (मा० १।२१८)

भाइ (२)–दे० 'भाई (१)'। भाई (१)–(सं० भान)–१. अच्छी लगी, २. मीठी। उ० १. नासा नयन कपोल ललित श्रुति कुंडल भ्रू मोहि भाई। (वि० ६२) भाऊ (१)–भावे, अच्छा लगे। भाए–१. अच्छे लगे, २. चाहे हुए। उ० २. तुरत मुदित जहँ तहँ चले मन के भए भाए। (गी० १।६) भायऊ–अच्छा लगा। उ० रघुपतिहि यह मत भायऊ। (मा० ५।६०। छं० १) उ० १. सुनि हनुमान हृदय अति भाये। (मा० ५।१।१) भायो–१. अच्छा लगा, २. मन का चाहा हुआ। भावइ–अच्छा लगे, सुहावे। उ० मीठ काह कवि कहहिं जाहि जोइ भावइ। (पा० ७२) भावई–१. दे० 'भावइ', २. अच्छी लगती है, सुहाती है। उ० २. दंभिहि नीति कि भावई। (मा० ७।१५ ख) भावत–अच्छा लगता है। भावता–१. अच्छा लगता, २. प्रिय, पसंद का। भावति–सुहाती है। उ० भावति हृदय जाति नहि बरनी। (मा०

१।२४३।२) भावती-१. अच्छी लगती है, २. मनचाही, ३. प्यारी। भावते-१. प्यारे, अच्छे, २. अच्छे लगे। उ० १. भैया भरत भावते के सँग। (गी० २।६६) भावा-१. अच्छा लगा, अच्छा लगता है, २. दे० 'भाव'। उ० १. अजहुँ को जानइ का तेहिं भावा। (मा० २।१६२।४)भावै-अच्छा लगे, पसंद हो। उ० मोहिं तोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै। (वि० ७६) भावौं-अच्छा लगूँ।

भाइन्ह-भाइयों को। उ० पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही। (मा० १।२३७।२) भाई (२)-(सं० भ्राता)-बंधु, भ्राता। उ० जग बहु नर सर सरि सम भाई। (मा०१।८।७)

भाउ-(सं० भाव)-१ भावना, भाव, २. प्रेम, ३. स्वभाव। उ० २. इनकी भगति कीन्हीं इनहीं को भाउ मैं। (वि० २६१)

भाऊ (२)-दे० 'भाउ'। उ० २. जिन्ह के राम चरन भल भाऊ। (मा० १।३६।४)

भाएँ-१. भाव से, २. समझ से, अनुमान से।

भाखइ-(सं० भाषण)-भाषण करे। भाखउँ-कहूँ, कहता हूँ। भाखा-१. कहा, २. भाषा, ज़बान। भाखि-कहकर। भाखी-कही। भाखैं-कहते हैं, वर्णन करते हैं। भाखे-कहा। भाख्यो-कहा।

भाग (१)-(सं०)-हिस्सा, अंश। उ० अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। (मा० १।१६०।१)

भाग (२)-(सं० भाग्य)-भाग्य, किस्मत। उ० बर दुलहिनि अनुरूप लखि सखी सराहहिं भाग। (प्र० १।७।२)

भाग (३)-(सं० भाज्)-१. भागो, भाग जाओ, २. भाग गया। उ० २. मनहुँ भाग मृग भाग बस। (मा० २।७५) भागउँ-भागूँ, भाग जाऊँ। भागन-भागने, भाग जाने। भागहिं-भागते हैं, भगते हैं। भागहि-भाग जाती है। उ० रुचि भावती भमरि भागहि, समुहाहिं अमित अनभाई। (वि० १६५) भागा-भाग गया, दौड़ा। उ० धावा बालि देखि सो भागा। (मा० ४।६।२) भागि-भागकर। उ० भागि भवन पैठीं अति त्रासा। (मा० १।९६।३) भागिहै-भाग जायगा। उ० सहित सहाय कलिकाल भीरु भागिहै। (वि० ७०) भागु-(सं० भाज्) भागो, भाग जाओ। उ० भागु भाग तजि भाग थलु। (प्र० ७।५।५) भागू (१)-भागो, भाग जाओ। भागे-१. भाग गए, २. भागने पर। उ० २. भागे भल ओड़ेहु भलो। (दो० ४२४) भागेउ-दे० 'भागेहु'। भागेहु-भागने पर भी।

भागी-(सं० भाग्य)-भाग्यवान। उ० भरत भूरि भागी। (वि० ३६)

भागी (२)-(सं० भाग)-साझी, हिस्सेदार।

भागीरथी-(सं०)-गंगा नदी। उ० भागीरथी जलपान करौं अरु नाम है राम के लेत नितै हौं। (क० ७।१०२)

भागू (२)-(सं० भाग)-भाग, हिस्सा।

भागू (३)-(सं० भाग्य)-भाग्य, तकदीर।

भाग्य-(सं०)-किस्मत, नसीब। उ० चरन बंदि निज भाग्य सराही। (मा० १।१६०।१)

भाजत-(सं० भाज्)-१. भागता है, २. भाग जाने पर। उ० २. आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं। (मा० ७।७७ क) भाजहिं-भागते हैं, भाग जाते हैं। उ० बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं। (मा० ६।६८।४) भाजि-भागकर, भाग, परा, पलायन कर। उ० करैं कूटि निपट गइ लाजि भाजि। (गी० ७।२२) भाजी-भाग गई, भागी। उ० सबरी के दिए बिनु भूँख न भाजी। (क० ७।६५) भाजे-भगे, भग गए। उ० हाँक सुनत रजनीचर भाजे। (मा० ६।४७।३)

भाजन-(सं०)-१. पात्र, बर्तन, २. योग्य। उ० १. जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं। (वि० १५०)

भाजनु-दे० 'भाजन'।

भाट-(सं० भट्ट)-चारण, बंदी, एक गायक जाति। उ० चले भाट हियँ हरषु न थोरा। (मा० १।२४६।४)

भाटा-दे० 'भाट'। उ० भूप भीर नट मागध भाटा। (मा० १।२१४।१)

भात (१)-(सं० भक्त)-पका चावल। उ० लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो। (क०६।४) मु० नहिं खात भात राँध्यो-तुच्छ समझता। कुछ परवा न करता। उ० दे० 'भात'।

भात (२)-(सं०)-सबेरा, प्रभात।

भाति-(सं० भान)-१. ज्ञात होता है, २. प्रकाशित होता है, ३. शोभित होता है। उ० १. यत्सत्वाद मृषैव भाति सकलं। (मा० १।१ श्लो० ६)

भाथ-(सं० भस्त्रा, पा० भत्था) तरकश, तुणीर। उ० जौं न करौं प्रभुपद सपथ कर न धरौं धनु भाथ। (मा०१।२५३) भाथहिं-तरकश को। उ० हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहि। (पा० १)

भाथा-(सं० भस्त्रा)-तुणीर, तरकश। उ० भाथा बाँधि चढ़ाइन्हि धनुहीं। (मा० २।१६१।२)

भाथी-(सं० भस्त्री)-१. धौंकनी, २. छोटा तरकश। उ० २. कटि भाथी सर चाप चढ़ाई। (मा० २।६०।२)

भादव-(सं० भाद्रपद)-भादों का महीना। उ० राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास। (मा० १।१६)

भान-(सं०)-ज्ञान, चेत, स्मरण, बोध।

भानन-(सं० भंजन)-तोड़नेवाला। उ० खल-दल-बल-भानन। (ह०२) भाननी-तोड़नेवाली, मिटानेवाली। उ० बचन गँभीर मृदुहास भव-भाननी। (गी० ७।५)

भानि-(सं० भंजन)-१. तोड़कर, २. तोड़नेवाले। भानिहौ-तोड़ोगे, नष्ट करोगे। उ० सरनागत-भय भानिहौ। (वि० २२३) भानी-तोड़ी, तोड़ दी, नष्ट की। उ० बिषम वियोग ब्यथा बड़ि भानी। (गी०६।२०) भान्यो-तोड़, भंजा, नष्ट किया। उ० सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यौ। (गी० ३।१३)

भानु-(सं०)-१. सूर्य, रवि, २. राजा, ३. विष्णु। उ० १. इंदु-पावक-भानु-नयन। (वि० ११) भानुहिं-भानु को, सूर्य को। उ० संसय सोक निबिड़ तम भानुहि। (मा० ७।३०।४)

भानुकुल-(सं०)-सूर्यवंश, वह वंश जिसमें राम पैदा हुए थे। उ० भानुकुलभानु कीरति-पताका। (वि० २६)

भानुजा-(सं०)-यमुना।

भानुसुवन-१. अश्विनीकुमार, २. शनैश्चर, ३. यमराज, ४. राजा कर्ण। उ० १. कोटि भानुसुवन सरद-सोम कोटि अनंग। (गी० २।१७)

भामा–(सं०)–दे० 'भामिनी'। उ० जगदंबिका जानि भवभामा। (मा०१।१००।४) भामो–भामा भी, स्त्री भी। उ० दे० 'भील'।
भामिन–दे० 'भामिनी'।
भामिनि–दे० 'भामिनी'। उ० नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि। (जा० १५०)
भामिनी–(सं०)–स्त्री, औरत। उ० तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी। (मा० २।५०।छं०१)
भायँ–प्रेम में, भाव से। उ० भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। (मा० १।२८।१) भाय (१)–(सं० भाव)–१. भाव, २. प्रेम।
भाय (२)–(सं० भ्राता)–भाई। उ० बिगरे तें आपु ही सुधारि लीजै भाय जू। (क० ७।१३६)
भायप–भाईपन। उ० भायप भगति भरत आचरनू। (मा० २।२२३।१)
भारं–बोझ, भार। भार–(सं०)–१. बोझ, २. उत्तरदायित्व, ३.भारी। उ० १.दुष्ट बिबुधारि संघात महिभार-अपहरन। (वि० ५०) भारहि–भार को। उ० मुनिरंजन भंजन महि-भारहि। (मा० ७।३०।५)
भारत–(सं०)–१. कौरव-पांडव युद्ध, २. महाभारत ग्रंथ, ३. युद्ध, ४. बहुत बड़ी कहानी। उ० १. भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज। (ह० ५)
भारति–दे० 'भारती'। उ० १. मति-भारति पंगु भई जो निहारि। (क० ११७)
भारती–(सं०)–१. सरस्वती, २. वाणी, बचन, बोली। उ० १. भरत भारती रिपुदवनु, गुरु गनेस बुधवार। (प्र० १।१।४)
भारद्वाज–(सं०)–भरद्वाज ऋषी के पुत्र द्रोणाचार्य।
भारा–दे० 'भार'। उ० ३. नित नव सोच सती उर भारा। (मा० २।८८।१)
भारिए–भारी है। उ० जीव जामवंत को भरोसो तेरो भारिये। (ह० २३)
भारी–(सं० भार)–१. वज़नी, गरुआ, २. बड़ा, ३. कठिन, ४. भीषण, ५. अधिक, ६. प्रबल, ७. गंभीर, ८. शांत। उ० २. त्रिपुर मर्दन भीम कर्म भारी। (वि० ११) ३. भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत। (क० १।४२) ५. सोभा अति भारी। (वि० ५१)
भारु–दे० 'भार'। उ० ३. गुरहिं भयउ दुख भारु। (मा० २।८८)
भारू–दे० 'भार'।
भारे–१. बोझल, २. बड़े, विशालकाय। उ० २. नाना बरन बली मुख भारे। (मा० ६।४६।४)
भार्गव–(सं०)–भृगुवंशी, १. परशुराम, २. दैत्यगुरु शुक्राचार्य, ३. लक्ष्मी। उ० १. भार्गवागर्व-गरिमापहर्ता। (वि० ५०)
भार्या–(सं०)–स्त्री, पत्नी।
भाल–(सं०)–ललाट, मस्तक। उ० भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। (मा०१।२४३।३) भाले–भाल पर, मस्तकपर। उ० भाले बाल विधुर्गले च गरलं। (मा० २।१ श्लो० १)
भाला (१)–(सं० भल्ल)–बरछा, एक नोकीला हथियार।
भाला (२)–(सं० भाल)–ललाट, मस्तक। उ० बिधि के लिखे अंक निज भाला। (मा० ६।२६।१)
भालु–(सं० भालुक)–१. भालू, रीछ, २. जामवंत। उ० १. सुभट मर्कट-भालु-कटक-संघट सजत। (वि० ४३) २. जातुधान भालु कपि केवट बिहंग जो जो। (क० ७।१३)
भालुनाथ–जामवंत। उ० भालुनाथ नल नील साथ चले। (गी० ५।१)
भालू–दे० 'भालु'। उ० १. निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। (मा० ६।८१)
भाव–(सं)–१. विचार, भावना, मनोवृत्ति, २. प्रेम। उ० १. भावभेद रसभेद अपारा। (मा० १।९।५) २. जौ श्रीपति महिमा विचारि उर भजते भाव बढ़ाये। (वि० १६८)
भावतो–(सं० भान)–भानेवाला, चाहा हुआ। उ० मन भावतो धेनु पय स्रवहीं। (मा० ७।२३।३)
भावन–भानेवाला, अच्छा लगनेवाला। जैसे मनभावन।
भावना–(सं०)–१. विचार, मनोवृत्ति, २. इच्छा, कामना, ख़्वाहिश। उ० २. जिन्हकें रही भावना जैसी। (मा० १।२४१।२)
भावनि–अच्छी लगनेवाली। उ० सुक सनकादि संभु मन भावनि। (मा० ७।१२३।३)
भावनी–दे० 'भावनि'।
भाविउ–भावी भी, होनहार भी। उ० भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी। (क०१।७०।३) भावी–(सं०भाविन्) होनेवाला, होनहार, भविष्य। उ० भावी बस न जान कछु राऊ। (मा० १।१७०।४)
भावें–विचार में, मन में।
भाषउँ–(सं० भाषा)–कहता हूँ। उ० बेद पुरान संत मत भाषउँ। (मा० ७।११६।१) भाषा–(सं०)–१. बोली, २. बात, बचन, ३. कहा, ४. हिंदी। उ० ३. पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा। (मा०१।३५।६) ४. भाषा निबंध मति मंजुल मातनोति। (मा० १।१ श्लो० ७) भाषी–(सं० भाषण)–१. कहनेवाला, २. कहा, ३. कहकर। उ० १. कोशला-कुशल-कल्यान भाषी। (वि० २७) ३. अंतरधान भये अस भाषी। (मा० १।७७।४)
भाषित–(सं०)–कहा हुआ, कथित।
भास–(सं० भास)–ज्ञात होता है। उ०भास सत्य इव मोह सहाया। (मा० १।११७।४) भासै–ज्ञात हो, दीखे। उ० रिपुमय कबहुँ नारिमय भासै। (वि० ८१)
भास्कर–(सं०)–१. सूर्य, २. अग्नि।
भिंडिपाल–(?)–हाथ से चलाने का एक अस्त्र, गोफिया। उ० गहि कर भिंडिपाल बर साँगी। (मा० ६।४०।४)
भिंसार–दे० 'भिनुसार'।
भिक्षु–(सं०)–भिखारी।
भिखारि–दे० 'भिखारी'। उ० बेष तौ भिखारि को मयंक रूप संकर। (क० ७।१६०)
भिखारी–(सं० भिक्षा, हि० भीख)–भीख माँगनेवाला, भिक्षुक। उ० राम निछावरि लेन को हठि होत भिखारी। (गी० १।६)
भिजई–(सं० अभ्यंज)–भिगो दी, तर करती। उ० करुना-

वारि भूमि भिजई है। (वि० १३६) भीजै-(सं०अभ्यंज)-भीगता है, भीजता है। उ० तन राम नयन जल भीजै। (गी० ३।१५)

भितैहौं-(सं० भीति)-डरूँगा, भयभीत होऊँगा। उ० पै मैं न भितैहौं। (क० ७।१०२)

भिद्यो-(सं० भित्)-१. चुभा, धँसा, २. टूटा, छिदा। उ० २ भिद्यो न कुलिसहु तें कठोर चित। (वि० १७१)

भिनुसार-(सं० विनिशा)-सवेरा, भोर। उ० भा भिनुसार गुदारा लागा। (मा० २।२०२।४)

भिनुसारा-दे० 'भिनुसार'।

भिनुसारु-दे० 'भिनुसार'।

भिन्न-(सं०)-अलग, दूसरा। उ० गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। (मा० १।१८)

भिया-(सं० भ्राता)-भाई, हे भाई। उ० कोउ कहै तेज प्रताप पुंज चितए नहिं जात, भिया रे! (गी० १।६६)

भियो-(सं० भय)-डरा, भयभीत हुआ। उ० कलिमल खल देखि भारी भीति भियो हौं। (वि० १८१)

भिरउँ (१)-भिड़ा, टकराया। उ० जब जब भिरउँ जाइ बरिआई। (मा० ६।२५।३) भिरत-लड़ते हैं, भिड़ते हैं। उ० महि परत उठि भट भिरत मरत। (मा०३।२०।छं०४) भिरहिं-भिड़ते हैं, टकराते हैं, लड़ते हैं। भिरिहि-भिड़ेगा। भिरे-भिड़ गये। उ० जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे। (मा० ६।४६।३) भिरेउँ-दे० 'भिरउँ'।

भिल्ल (सं०)-भील, कोल। उ० श्वपच खल भिल्ल यवनादि। (वि० ४६) भिल्लनि-भीलों, मुसहरों। उ० नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा। (मा० २।२५१। छं० १) भिल्लिनि-भील जाति की स्त्री। उ० भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु। (मा० २।२८)

भिषक्-(सं०)-वैद्य।

भी-(सं०)-भय, डर। उ० सुमिरत भय भी के। (गी० १।१२)

भीख-(सं० भिक्षा)-भिक्षा, माँगने पर मिली वस्तु। उ० भूसुर मिलै न भीख। (दो० ४२७)

भीत-(सं०)-डरा हुआ, भयभीत। उ० भारी भीत भियो हौं। (वि० १८१)

भीतर-(सं० आभ्यंतर)-बीच, मध्य, अंदर। उ० बाहर भीतर भीर न बनै बखानत। (जा० १४)

भीता-दे० 'भीत'। उ० लंकेस बस नाथ! अत्यंत भीता। (वि० ५८)

भीति (१)-(सं०)-डर, भय। उ० ईति अति भीति ग्रह-प्रेत। (वि० २८)

भीति (२)-(सं० भित्ति)-दीवार। उ० सुन्य भीति पर चित्र रंग नहि तनु बिनु लिखा चितेरे। (वि० १११)

भीती-दे० 'भीति (१)' तथा 'भीति (२)'।

भीम-(सं०)-१. पाँच पांडवों में एक, २. भीषण, भयानक, ३. शिव। उ० १. पाँचहिं मारि न सौ सके सयो सँहारे भीम। (दो० ४२८) २. बिबुध बैद्य भव भीम रोग के। (मा० १।३२।२)

भीमता-भयंकरता। उ० भीमता निरखि कर नयन ढाँके। (क० ६।४५)

भीर (१)-(?)-भीड़, लोगों का समूह। उ० १. बाहर भीतर भीर न बनै बखानत। (जा० १४)

भीर (२)-(सं० भीरु)-१. डरपोक, २.कोमल हृदयवाला।

भीर (३)-(सं० भी)-डर। भीरहि-डर को, भय को। उ० कस न भजहु भंजन भव भीरहि। (मा० ७।३०।४)

भीरा (१)-दे० 'भीर (१)'।

भीरा (२)-दे० 'भीर (२)'। उ० सील सनेह न छाड़िहि भीरा। (मा० २।७६।२)

भीरा (३)-दे० 'भीर (३)'। उ० परघर घातक लाज न भीरा। (मा० १।६७।२)

भीरु-(सं०)-डरपोक, कायर। उ० दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु। (क० ७।१७४)

भील-(सं० भिल्ल)-एक जंगली जाति, कोल। उ० सुकृत सील भील भामो। (वि० २२८) भीलनी-१. भील की स्त्री, २. शवरी। उ० २. भीलनी को खायो फल। (वि० १८३)

भीषण-(सं०)-भयंकर, भयानक। उ० भीषणाकार, भैरव भयंकर। (वि० ११)

भीषन-दे० 'भीषण'।

भीष्म-(सं०)-१. भयानक, २. शांतनु के पुत्र।

भुअँग-दे० 'भुजंग'।

भुअंग-दे० 'भुजंग'। उ० तुलसी चंदन-बिटप बसि बिनु बिष भये न भुअंग। (दो० ३३७) भुअंगिनि-सर्पिणी। उ०भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि। (मा०१।३१।४)

भुअँगिनि-दे० 'भुअंगिनि'।

भुअंगू-(सं० भुजंग)-साँप, सर्प। उ० मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू। (मा० २।४०।१)

भुअन-दे० 'भुवन'।

भुआल-दे० 'भुवाल'। उ० होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत। (मा० १।१५१)

भुआला-दे० 'भुवाल'। उ० दुइकि होइ एक समय भुआला। (मा० २।३५।३)

भुआलु-दे०'भुवाल'। उ० कहइ भुआलु सुनिय मुनिनायक। (मा० २।३।१)

भुआलू-दे० 'भुवाल'। उ० राम राम रट बिकल भुआलू। (मा० २।३७।१)

भुइँ-(सं० भूमि)-पृथ्वी पर, धरती पर। उ०उमगी चलेउ आनंद भुवन भुइँ बादर। (जा० २१०)

भुक्ति-(सं०)-लौकिक सुख। उ० भुक्ति मुक्तिदायिनि भय-हरनि कालिका। (वि० १६)

भुजँग-दे० 'भुजंग'। उ०भुजँग-भोग भुजदंड, कंज दर चक्र गदा बनि आई। (वि० ६२)

भुजंग-(सं०)-साँप। उ० जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने। (मा० १।११२।१)

भुजंगा-दे० 'भुजंग'। उ० नयन तीनि उपबीत भुजंगा। (मा० १।६२।२)

भुज-(सं० भुजा)-बाँह, बाहु। उ० नाग सुंड सम भुज-चारी। (वि० ६३) भुजन-भुजाएँ। भुजनि-भुजाओं।

उ० भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी। (गी०१।१०७) भुजन्ह-भुजाएँ। भुजहिं-भुजा में। उ०जुग अंगुलकर बीन सब रामभुजहि मोहि तात। (मा०७।७६ क)
भुजवीहा-बीस भुजाओंवाला, रावण। उ० साँचेहु मैं लबार भुजवीहा। (मा० ६।३४।४)
भुजग-दे० 'भुजंग'। उ० भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। (मा० १।१०६।४)
भुजगेंद्र-(सं० भुजंगेन्द्र)-शेषनाग, सर्पों का राजा। उ० संसार-सार भुजगेंद्र हार। (वि० १३)
भुजदंड-बाहु, भुजा। उ० चंड भुजदंड खंडनि बिहंडनि महिष। (वि० १५)
भुजा-(सं०) बाँह, भुज। उ०सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई। (मा० १।१६१।३)
भुबि-दे० 'भुवि'। उ० सुर रंजन सज्जन सुखद हरिभंजन भुबि भार। (मा० १।१३१)
भुलाई-(सं० विह्वल)-१. भूल, भूलने का भाव, २. भूल गये। उ० १. फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। (मा० १। १५६।३) भुलान-भूला, भूला हुआ। उ० बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत। (पा० ११६) भुलाना-दे० 'भुलान'। उ० तव माया बस फिरउँ भुलाना। (मा० ४। २।५) भुलानी-भूल गई। भुलाने-१. भूले, भूले हुए, २. भूल गये, भूले। उ० २. लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। (मा० १।१३।१) भुलाव-(सं० विह्वल)-१. भुलवाया, २. भूलने का भाव। भुलावा-भुलवाया, भटकाया। उ० जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा। (मा० १।१७०।२)
भुवंग-दे० 'भुजंग'।
भुवगिनि-दे० 'भुअंगिनि'।
भुव-(सं० भ्रू)-भृकुटी, भौहें। उ० गहन-दहन-निरदहन-लंक, निःसंक बंक भुव। (ह० १)
भुवन-(सं०)-१. लोक, जगत, २. १४ भुवन, ३. १४ की संख्या। उ० १. भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवन भर्ता। (वि० ५५)
भुवाल-(सं० भूपाल)-राजा, नरेश। उ० बन तें आइ कै राजा राम भए भुवाल। (गी० ७।१)
भुवि-(सं० भू)-पृथ्वी, ज़मीन।
भुशुंडि-दे० 'भुशुंडी'।
भुशुंडी-(सं०)-काक भुशुंडी ऋषि।
भुसुंड-(सं० भुशुंड)-बहुत मोटे शरीरवाला।
भुसुंडा-दे० 'भुशुंडी'। उ० गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा। (मा० ७।६३।१)
भुसुंडि-दे०'भुशुंडी'। उ० कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़। (मा० १।१२० ख) भुसुंडिहि-भुशुंडी को। उ० सोइ सिव कागभुशुंडिहि दीन्हा। (मा० १।३०।२)
भुसुंडी-दे० 'भुशुंडी'।
भूँजब-(सं० भुज्)-भोगेंगे, भोग सकेंगे। उ० राजु कि भूँजब भरतपुर नृपु कि जिइहि बिनु राम। (मा० २।४६)
भू-(सं०)-पृथ्वी। उ० कपट भू भट अंकुरे। (मा० ६।६६। छं० १)
भूख-(सं० बुभुक्षा)-भोजन करने की इच्छा। उ० दास तुलसी रही नयननि दरस ही की भूख। (गी० ५।६)
भूखा-जिसे भूख लगी हो। उ० मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा। (मा० २।१११।३) भूखी-जिसे भूख लगी हो। 'भूखा' का स्त्रीलिंग। उ० मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी। (मा० २।५१।१) भूखे-क्षुधित, जिसे भूख लगी हो। उ० एक भूखे जानि आगे आने कंद मूल फल। (क० ५।३०)
भूचरं-दे० 'भूचर'। उ० डाकिनी-शकिनी-खेचरं-भूचरं। (वि० ११) भूचर-(सं०)-१. पृथ्वी पर चलनेवाले जीव, २. भूत-प्रेत, ३. शिव, ४. एक प्रकार की सिद्धि।
भूत-(सं०)-१. प्राणी, जीव, २. शिव के गण, ३. शरीर, ४. पिशाच, जिंद। उ० १. भूत द्रोहरत मोह बस। (मा० ६।७८) २. भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति। (वि० ११) ४. भूत-ग्रह-बेताल-खग-मृगालि-जालिका। (वि० १६)
भूतनाथ-(सं०)-शंकर, महादेव। उ० तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के। (क० ७।१६८)
भूतल-पृथ्वी, ज़मीन का धरातल। उ० सब खल भूप भए भूतल-भरन। (वि० २४८)
भूता-दे० 'भूत'।
भूति-(सं०)-१. वैभव, संपत्ति, ऐश्वर्य, २. राख, भस्म, ३. मोक्ष। उ० १. कीरति भनिति भूति भलि सोई। (मा० १।१४।५) २. भव अंग भूति मसान की। (मा० १।१०। छं० २)
भूतेस-(सं० भूतेश)-शंकर।
भूधर-(सं०)-१. पर्वत, पहाड़, २. पृथ्वी को धारण करने-वाले, ३. शेषनाग, ४. विष्णु, ५. राजा। उ० १. कनक भूधराकार सरीरा। (मा० ५।१६।४) २. जय इंदिरारमण जय भूधर। (मा० ७।३४।२) भूधरन-१. दे० 'भूधर', २. 'भूधर' का बहुवचन, बहुत से पर्वत। भूधरनि-पहाड़ों। उ० अति ऊँचे भूधरनि पर भुजगन के अस्थान। (वै० ३६)
भूप-(सं० -राजा। उ० सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों। (क०७।२४) भूपहिं-राजा को। उ० बोलि ब्याहि सिय देत दोष नहिं भूपहिं। (जा० ७७) भूपहि-राजा को।
भूपतहि-राजपद को, भूप के पद को। उ०चहत न भरत भूपतहि भोरें। (मा० २।३६।१) भूपता-(सं०) राजपद।
भूपतिं-१. राजा को, राजा के। भूपति-(सं०) राजा। उ० शिव धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ। (वि० १००) भूपतिहि-भूपति को।
भूपा-दे० 'भूप'।
भूपाल-(सं०)-राजा। उ० रुचिर रूप भूपाल मनि नौमि रामं। (वि० ५३)
भूपाला-दे० 'भूपाल'। उ० तात राम तहिं नर भूपाला। (मा० ५।३६।१)
भूपु-दे० 'भूप'। उ० पछिले पहर भूपु नित जागा। (मा० २।३८।१)
भूभुरि-(?)-गर्म रेत। उ० पोंछि पसेउ बयारि करौं अ पाय पखारि हौं भूभुरि ठाढ़े। (क० २।१२)
भूमि-(सं०)-पृथ्वी, ज़मीन। उ० भूमि-उद्धरन भूधरन-धारी। (वि० ५६)

भूमिजा–सीता । उ० भूमिजा-दुःख-संजात-रोषांतकृत् । (वि० २६)
भूमिदेव–(सं०)–ब्राह्मण । उ० भूमिदेव देव देखिकै नरदेव सुखारी । (गी० १।६)
भूमिधर–(सं०)–पर्वत । उ० भूतनाथ भयहरन भीम भय भवन भूमिधर । (क० ७।१५२) भूमिधरनि–पहाड़ों, पर्वतों । उ० भूमि के हरैया उखरैया भूमिधरनि के । (गी० १।८३)
भूमिनागु–(सं० भूमिनाग)–केंचुवा । उ० भूमिनागु सिर धरै कि धरनी । (मा० १।३५५।३)
भूमिपति–(सं०)–राजा । उ० ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी । (मा० २।७६।४)
भूमिपाल–(सं०)–१. राजा, २. ईश्वर । उ० १. भूमिपाल ब्यालपाल नाकपाल लोकपाल । (क० ७।२३)
भूमिसुर–(सं०)–ब्राह्मण । उ० सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा । (मा० २।६।४)
भूरज–(सं० भूर्ज)–'भूर्ज' नाम का पेड़ या उसकी 'भूर्ज-पत्र' या 'भोजपत्र' नाम की छाल जिस पर पहले लिखा जाता था ।
भूरि–(सं०)–अधिक, बहुत, भारी । उ० करि भूरि कृपा दनुजारी । (वि० ६३)
भूरी–दे० 'भूरि' । उ० सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी । (मा० ७।१११।७)
भूरुह–(सं०)–वृक्ष, पेड़ । उ० साखा सुश्रृंग भूरुह-सुपात । (वि० २३)
भूर्ज–दे० 'भूरज' । उ० भूर्ज तरु सम संत कृपाला । (मा० ७।१२१।८)
भूल–(सं० विह्वल ?)–१. चूक, ग़लती, २. बिस्मृति, बिसरना । उ० १. रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल । (मा० १।२८७)
भूलत–(सं० विह्वल)–भूल जाते हैं । उ० भूलत सरीर सुधि सक्र रबि राहु की । (ह० २८) भूलहिं–भूलते हैं, भूल जाते हैं । भूलहि–भूलो । उ० भूलहि जनि भरम । (वि० १३१) भूला–भूल गया, याद न रहा । उ० एतना कहत नीति रस भूला । (मा० २।२२९।३) भूलि–भूल कर । भूलिहु–भूले, भूली । उ० मन भूलिहु ठग के बौराएँ । (मा० १।७६।४) भूलिहै–भूलेगा । उ० भूलिहै दस दिसा । (क० ६।२०) भूली–१. भूल गई, २. भूल कर । भूले–१. भूले हुए, २. भूल गए । उ० १. गुंजत मंजु मधुप रस भूले । (मा० २।१२४।४) भूलेहु–१. भूल गए, २. भूलने पर भी ।
भूष–(सं० भूषण)–भूषित कर रहा है । उ० ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें । (मा० १।३२५।५)
भूषण–(सं०)–आभूषण, गहना ।
भूषन–दे० 'भूषण' । उ० भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग । (वि० १४) भूषनहि–भूषण को, श्रेष्ठ को । उ० देखि भानुकुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान । (मा० १।२३३)
भूषित–(सं०)–शोभायमान, सजा हुआ । उ० ब्याह-बिभूषन-भूषित भूषन-भूषन । (जा० १३६)
भूसुर–(सं०)–१. ब्राह्मण, २. अगस्त्य मुनि । उ० २. हार्‌यौ हिय खारो भयो भूसुर डरनि । (वि० २४७)
भृंग–(सं०)–भ्रमर, भौंरा । उ० बोलत मधुर बचन खग पिक-वर गुंजत भृंग । (गी० ७।२१) भृंगी (१)–भ्रमरी, भौंरी ।
भृंगा–दे० 'भृंग' । उ० कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा । (मा० २।१२६।१)
भृंगिहि–(सं० भृंगिन्)–भृंगी नाम के गण को । दे० 'भृंगी (२)' । उ० भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे । (मा० १।६३।२) भृंगी(२)–महादेव का गण ।
भृकुटि–दे० 'भृकुटी' । उ० उमा राम कर भृकुटि बिलासा । (मा० ६।३५।४)
भृकुटी–(सं०)–भौंह, भ्रू । उ० भृकुटी कुटिल नयन रिस राते । (मा० १।२६८।३)
भृगु–(सं०)–एक ब्रह्मर्षि जिन्होंने विष्णु की छाती में लात मारी थी । परशुराम इन्हीं के कुल के थे । उ० भृगु-कुल-कमल-पतंग । (मा० १।२६८।१)
भृगुनाथ–(सं०)–परशुराम । उ० भृगुनाथ से रिषी जितैया कौन लीला को । (वि० १८०)
भृगुनायकु–परशुराम । उ० सुनि सरोष भृगुनायकु आए । (मा० १।२६३।१)
भृगुपति–(सं०)–परशुराम । उ० भृगुपति केरि गरब गरुआई । (मा० १।२६०।३)
भृत–(सं०)–१. दास, नौकर, २. पाला हुआ, ३. बेतन, तनख़्वाह ।
भृत्य–(सं०)–नौकर । उ० भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे । (गी० १।३६)
भेंट–(?)–१. मिलना, मिलाप, २. पूजा, नज़राना, सौगात, उपहार, ४. विलाप, ५. दर्शन । उ० ३. लिए फलफूल मूल भेंट भरि भारा । (मा० २।८८।१)
भेंटत–(?)–भेंटते हैं, मिलते हैं, गले से मिलते हैं । भेंटहु–भेंटो । भेंटा–हृदय से लगाया । उ० रामसखा रिपि बरबस भेंटा । (मा० २।२४३।३) भेंटि–भेंट कर । भेंटी–भेंट की, भेंटा । भेंटे–१. भेंट की, २. मिल गए । उ० २. मृतक सरीर प्रानजनु भेंटे । (मा० १।३०८।२) भेंटेउ–भेंटे, मिले । उ० भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई । (मा० २।२४२।१) भेंट्यो–भेंटा, हृदय से लगाया । उ० जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों परम प्रीति केवट भेंट्यो । (वि० १३८)
भे (१)–(सं० भू)–१. हुए, हो गए, २. होने पर । उ० १. मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे अजर-अमर हर अँचइ हलाहलु । (वि० २४) भै (१)–(सं० भू)–हुई, भई । उ० सीय सुता भै जासु सकल मंगल मइ । (जा० ७) भो (१)–(सं० भू)–भया, हुआ । उ० रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो । (क० ५।४)
भे (२)–(सं० भी)–डर, त्रास, भय । उ० जमगन तमकि तये ताको भे ते । (वि० २४१)
भेई–(सं० अभ्यंज)–भिगोई, ठंडी कर दी । उ० सरल सुभायँ भगति मति भेई । (मा० २।२४४।४) भेवहिं–भिगाते हैं, डुबाते हैं । उ० अति आदर अनुराग भगति मन भेवहिं । (पा० २६)

भेउ-(सं० भेद)-१.भेद, २. फूट, अंतर। उ०१. रहे तहाँ दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ। (मा० १।१३३)
भेऊ-दे० 'भेउ'। उ०१. जानी जौ यहु जानौं भेऊ! (मा० २।१६८।४)
भेक-(सं० मंडूक)-मेंढक, दादुर। उ० रामबान अहिगन सरिस निकर निसाचर भेक। (मा० ५।३६)
भेका-दे० 'भेक'।
भेख-(सं०वेष)-१. वेशा, पहनावा, २.रूप, आकृति।
भेटि-(?)-भेंटकर। उ० जनक जानकिहि भेटि सिखाइ सिखावन। (जा० १६१) भेटे-भेंटा। भेटेउ-दे० 'भेटे'।
भेड़ी-(सं० मेष)-भेड़, गाडर। उ० तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़-जनता सनमान। (दो० ४६५)
भेद-(सं०)-१. अंतर, अलगाव, भिन्नता, २. शत्रुता, खट-पट। उ० १. भक्ति अनबरत गत-भेद-माया। (वि० १०)
भेदा-दे० 'भेद'। उ० १. सकल बिकार रहित गत भेदा। (मा० २।६३।४)
भेदि-(सं० भेदन)-फोड़कर, छेदकर। उ० भेदि भुवन करि भानु बाहिरो। (गी० ६।८) भेदै-१. छेदा, बेधा। २. भेदती, छेदती, नष्ट करती। उ०१ तहँ उतपात न भेदै आई। (वै० ४६)
भेदु-दे० 'भेद'।
भेरि-दे० 'भेरी'। उ० भेरि संख धुनि हय गय गाजे। (मा० १।३४४।१)
भेरी-(सं०)-दुंदुभी, नगारा। उ० सुखहिं निसान बजावहिं भेरी। (मा० ६।३६।५)
भेव-(सं० भेद)-१. अंतर, भेद, २. स्वभाव, प्रकृति, ३. फूट, जुदाई, ४. भाँति, प्रकार।
भेष-(सं०वेष) १. वेश, लिबास, २. रूप, आकार।
भेषज(सं०)-दवा, ओषधि। उ० काल बिबस कहुँ भेषज जैसें। (मा० ६।१०।३)
भैंसा-(सं० महिष)-भैंस का नर। उ० आहुति देत रुधिर अरु भैंसा। (मा० ७।७६।१)
भै (२)-(सं० भय)-डर, ख़ौफ़।
भैया-(सं० भ्राता)-भाई। उ० भैया भरत भावते के सँग। (गी० २।६६)
भैरव-(सं०)-१. भयंकर, भयानक, २. शंकर, महादेव। उ० १. पाहि भैरव रूप राम रूपी रुद्र। (वि० ११)
भैषज्य-दवा, औषधि। उ०भक्त भैषज्यमद्वैत दरसी। (वि० ५०)
भोंड़ा-(?)-भद्दा, कुरूप, बुरा। भोंड़े-दे० 'भोंड़ा'। उ० अभागे तिय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ सों? (क०५।१३)
भोंदू-(?)-मूर्ख, बेवक़ूफ़।
भो (२)-(?)-हे, ऐ। उ० हृदय अवलोकि यह सोक सरनागतं पाहि मां पाहि, भो बिस्वभर्ता। (वि० ५६)
भोग-(सं)-१. दुःख या सुख का अनुभव, २. विषय, भोग-बिलास, ३. उपभोग, ४. शरीर, ५. भोजन, खाना, ६. सुख की सामग्री, ७. ऐश्वर्य. ८. देवता का नैवेद्य, ९. फन, १०. हाथी का सूँड़। उ० २. कबहुँ जोगरत, भोगनिरत सठ। (वि० ८१) ७. भोग बिभूति भूरि भरि राखे। (मा० ३।२१४।३) १० भुजँग-भोग भुजदंड, कंज दर चक्र गदा बनि आई। (वि० ६२)
भोगा-दे० 'भोग'।
भोगावति-नागलोक, पाताल। उ० भोगावति जसि अहिकुल बासा। (मा० १।१७८।४)
भोगी-(सं० भोगिन्)-१. विषयी, विषयासक्त, २. सुखी, ३. साँप, ४. साँप खानेवाला, ५. भोगनेवाले। उ० १. समुझि काम सुख सोचहिं भोगी। (मा०१।८७।४) ५. नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी। (मा० १।२६।१)
भोगु-दे० 'भोग'।
भोगू-दे० 'भोग'। उ० ७. पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू। (मा० १।७४।१)
भोज-(सं० भोजन)-१. भोजन, खाना, २. दावत।
भोजन-(सं०)-आहार, भोजन। उ० ह्वै है बिष भोजन जो सुधा सानि खायगो। (वि० ६८)
भोजनखानी-(सं० भोजन + फ़ा०खाना)-रसोईघर। उ० भूप गयउ जहँ भोजनखानी। (मा० १।१७४।३)
भोजनु-दे० 'भोजन'।
भोर (१)-(?)-सवेरा, तड़का। उ०जाको बाल बिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को। (वि०३१) भोरहिं-सवेरे ही।
भोर (२)-(?) सीधा, भोला। उ० बिसरि गयेउ मोहि भोर सुभाऊ। (मा० २।२८।१) भोरे (१)-भोले, सीधे।
भोर (३)-(?)-भूल, भूलना। उ० कीदहुँ रानि कोसिलहिं परिगा भोर हो। (रा० १२) भोरें-धोखे में भी, भूलकर भी। उ०मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें। (मा०१।१३३।२) भोरे (२)-भूलकर। भोरेहुँ-धोखे से भी, भूलकर भी। उ० भोरेहुँ भरन न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ। (मा० २।२८६)
भोरा-भूल, भूलना, चूकना। उ०तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा। (मा०१।५।१) भोरी-१. सीधी, भोली,२.चकराई, भूली हुई। उ० २. भाषा भनिति मोरि मति भोरी। (मा० १।६।२)
भोरानाथ-भोलानाथ, शंकर, महादेव। उ० भोरानाथ भोरे जानि अपनी सी ठई है। (क० ७।१७५)
भोरि-दे० 'भोरी'। उ० २. नारि बिरह मति भोरि। (मा० १।१०८)
भोरु-दे० 'भोरू'।
भोरू-दे० 'भोर (१)'। सवेरा। उ० जागे सकल लोग भएँ भोरू। (मा० २।८६।१)
भोरो-भोला, सीधा। उ० पति रावरो दानि है बावरो भोरो। (क० ७।१५३)
भोला-(?)-सीधा, निष्कपट।
भोलानाथ-शंकर। उ० कपिनाथ, रघुनाथ, भोलानाथ भूतनाथ। (ह० ४३)
भौं-(सं० भ्रू)-भौंह, भृकुटी। उ० नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो। (रा० ८)
भौंड़े-(?)-भद्दे, कुरूप, बुरे। उ० नाम तुलसी तै भौंड़े भाग सो कहायो दास। (क० ७।१३)
भौंड़ो-(?) बुरा, भद्दा।
भौंतुवा-(?)-नदियों में तैरनेवाला एक काला कीड़ा।

उ० कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं कियो भौंतुवा भौंर को हौं। (वि० २२६)

भौंर-(सं० भ्रमण)-१. पानी का आवर्त, चक्कर, २. वह घूमनेवाली अँकड़ी जिसमें झूले की डोरी बँधी रहती है। उ० २. चारु पाटि पटी पुरट की झरकत मरकत भौंर। (गी० ७।१६)

भौंरा-(सं० भ्रमर)-१. एक उड़नेवाला काला कीड़ा। भ्रमर। यह फूलों का रस लेता फिरताहै। २. एक प्रकार का खिलौना। उ० २. खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चक डोरि। (गी० १।४१)

भौंह-(सं० भ्रू)-भृकुटी, भौं। उ० पिय तन चितय भौंह-करि बाँकी। (मा० २।११७।३) भौंहैं-'भौंह' का बहुवचन। उ० माखे लखन कुटिल भइँ भौंहैं। (मा० १।२५२।४)

भौचक-(?)-अकस्मात्, सहसा।

भौतिक-(सं०)-१. भूत-संबंधी, भूत का, २. भूतों से उत्पन्न। उ० २. दैहिक दैविक भौतिक तापा। (मा० ७।२१।१)

भौम-(सं०)-मंगल। उ० सिय भ्राता के समय भौंम तहँ आयउ। (जा० १६६)

भौमबार-(सं० भौमवार)-मंगलवार। उ० नौमी भौमबार मधुमासा। (मा० १।३४।३)

भ्रम-(सं०)-१. भूल, मिथ्या ज्ञान, २. घूमना। उ० १. निज संदेह मोह भ्रम हरनी। (मा०१।३१।२)

भ्रमत-(सं० भ्रम)-भटकते हैं। उ० भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे। (मा० ७।१३।छं०१) भ्रमति-१. घूमता है, २. भूलता है, ३. घूमती है। भ्रमहिं-घूमते हैं। भ्रमहीं-१. घूमते हैं, २. भूलते हैं। भ्रमाहीं-(सं० भ्रम)-भटकते हैं। उ० हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। (मा० १।११५।३) भ्रमि-भ्रमित होकर। उ० कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै। (वि० ६३)

भ्रमर-(सं०)-भौंरा। उ० भ्रमर ह्वै रवि किरनि ल्याये करन जनु उनमेखु। (गी० ७।६)

भ्रमित-भ्रम में पड़ा।

भ्रमु-दे० 'भ्रम'।

भ्रष्ट-(सं०)-पतित, च्युत, गिरा, अधर्मी, अशुद्ध। उ० अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना। (मा० १।१८३। छं० १)

भ्राज-(सं० भ्राजन)-सुशोभित है, सुन्दर लगता है। उ० भ्राज बिबुधापगा आप पावन परम। (वि० ११) भ्राजत-शोभित होता है। उ०गज मनिमाल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई। (वि०६२) भ्राजहिं-शोभित होता है। उ० बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। (मा० ७।२७।४) भ्राजहीं-दे० 'भ्राजहिं'। भ्राजा-१. शोभित हुआ, २. शोभित है। उ० १. राम बास।बन संपति भ्राजा। (मा० २।२३५।३) भ्राजी-सुशोभित हुई।

भ्राजमानं-शोभायमान। उ० मृदुल बनमाल उर भ्राजमानं। (वि० ५१)

भ्रात-दे० 'भ्राता'। उ० तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात। (मा० ६।११६ क) भ्रातन्ह-भाइयों। भ्रातहिं-भाई को। भ्रातहिं-भाई से। उ० तब भ्रातहि पूँछेउ नयनागर। (मा० ५।५६।१)

भ्राता-(सं०)-भाई, बंधु। उ० बिबिध रूप भरतादिक भ्राता। (मा० ७।८१।४)

भ्रू-(सं०)-भौंह। उ० सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। (मा० ७।७२।१)

म

मंगन-(सं० मार्गण)-माँगनेवाला, दरिद्री, भिखारी। उ० जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि। (क० ७।७३)

मंगल-(सं०)-१. कुशल, कल्याण, शुभ, २. मांगलिक कार्य, ३. एक प्रसिद्ध ग्रह, ४. मंगलवार, ५. आनंद, सुख, ६. मंगल के गीत, ७. शुभ लक्षण। उ० १. सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगलदायक। (जा० ३) २. राम सुमंगल हेतु सकल मंगल किए। (जा० १३८) ५. जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो। (रा० ३) ६. होहिं सगुन सुभ मंगल जनु कहि दीन्हेउ। (जा० ३४) मंगलानाम्-मंगलों के। उ० मंगलानां च कर्त्तारौ वंदे वाणी विनायकौ। (मा० १।१। श्लो० १)

मंगलचार-(सं० मंगलाचार)-किसी शुभ कार्य में होनेवाले गीत, बधावा आदि मांगलिक कार्य। उ० घर-घर मंगल-चार एक रस हरषित रंक गनी। (गी० ७।२०)

मंगला-(सं०)-पार्वती। उ० बर प्रथम बिरवा बिरँचि बिरचो मंगला मंगल मई। (पा० १८)

मंगलामुखी-(सं० मंगल+मुखी)-रंडी, वेश्या।

मंगलु-दे० 'मंगल'। उ० १. एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु। (मा० २।७)

मँगाइ-(सं० मार्गण)-मँगाकर। मँगाई-१. मँगाया, मँगवाया, २. मँगाकर। मँगाए-मँगवाए। मँगावा-मँगवाया। मँगि-माँग। उ० दिव्य-देह इच्छा-जीवन जग बिधि मनाइ मँगि लीजै। (गी० ३।१५)

मंच-(सं०)-बैठने की ऊँची जगह। मंचन्ह-मंचों। उ० सब मंचन्ह तें मंचु एक सुन्दर बिसद बिसाल। (मा० १।२४४)

मंचु-दे० 'मंच'। दे० ऊपर।

मंजरि-दे० 'मंजरी। उ० मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा। (मा० १।३४६।३)

मंजरिय–दे० 'मंजरी'। उ० मरकत मय साखा, सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि। (क० ७।११५)
मंजरी–(सं०)–तुलसी आदि कुछ विशेष पौदों के फूल, बौर। उ० उरसि बनमाल सुविशाल, नव मंजरी भ्रात श्रीवत्स-लांछन उदारम्। (वि० ६१)
मँजा–(सं० मार्जन)–माँजा, माँजा हुआ।
मंजिर–(सं० मंजीर)–१. पैर का बजनेवाला गहना, पाजेब, नूपुरयुक्त पाजेब, २. करधनी, घुँघरुदार करधनी, ३. घुँघरू।
मंजीर–(सं०)–दे० 'मंजिर'। उ० १. मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं। (मा० १।३२२। छं० १) २. हाटक-घटित जटित मनि कटितट रट मंजीर। (गी० ७।२१)
मंजु–(सं०)–१. मनोहर, सुन्दर, २. मधुर, ३. अच्छा। उ० १. बाल मृग मंजु-खंजन-बिलोचनि, चंद्रबदनि, लखि कोटि रति मार लाजै। (वि०१५) मंजुतर–अधिक सुंदर। उ० मंजुतर मधुर मधुरकर गुंजारे। (गी० १।३५)
मंजुल–(सं०)–सुन्दर, मनोहर। उ० मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के। (क० २।१६) मंजुलौ–दोनों सुन्दर। उ० कोसलेंद्र पद कंज मंजुलौ कोमलाब्ज महेश वंदितौ। (मा० ७।१। श्लो० २)
मंजुलता–(सं०)–सुन्दरता।
मंजुलताई–दे० 'मंजुलता'। उ० तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं। (क० १।३)
मंजूषा–(सं०)–संदूक, पिटारा।
मँझारि–(सं० मध्य)–बीच, में। उ० कियो लीन सुआपु में हरि राजसभा मँझारि। (वि० २१४)
मँझारी–दे० 'मँझारि'।
मंड–(सं०)–माँड़, भात का पानी।
मंडनं–दे० 'मंडन'। उ० २. दिनेश वंश मंडनं। (मा० ३।४। छं० ४) मंडन–(सं०)–१. शृंगार करना, सजाना, २. भूषण, अलंकार, ३. खंडन का उलटा। उ० २. मुनि रंजन महि मंडल-मंडन। (मा० ६।११५।५)
मंडप–(सं०)–१. विश्राम का स्थान, २. बारहदरी, ३. उत्सव आदि के लिए बना स्थान, रंगभूमि, ४. शामियाना। उ० ३. कपट नारि-बर-बेष बिरचि मंडप गइँ। (जा० १४७)
मँडरानी–दे० 'मड़रानी'।
मंडल–(सं०)–१. सूर्य या चंद्र के बाहर की परिधि, २. घेरा, ३. गोल, वृत्ताकार, ४. चक्र, ५. समाज, ६. सैनिकों की स्थिति विशेष, ७. समूह, संघात, ८. ग्रहों के घूमने का कक्ष, ९. शरीर, १०. ऋग्वेद के खंड। उ० ३. पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ। (मा० १।२६१।३) ८. जनु उडुगन-मंडल बारिद पर नवग्रह रची अथाई। (वि० ६२) मंडलिहि–मंडली को, समूह को। उ० करि प्रनामु मुनि मंडलिहि, बोले गदगद बैन। (मा० २।२१०) मंडलीं–मंडली में, समूह में। उ० खल मंडलीं बसहु दिनुराती। (मा० ५।४६।३) मंडली–(सं०)–१. समूह, समाज, २. बिल्ली, ३. सूर्य, ४. वट वृक्ष। उ० १. दे० 'मंडलीक'।
मंडलीक–(सं०)–राजा, राजाओं का राजा। उ० मंडलीक-मंडली-प्रताप-दाप दालि री। (क०१।१२)
मंडि–(सं० मंडन)–विभूषित करके, शोभा बढ़ाकर। उ० मंडि मेदनी को मंडलीक-लीक लोपिहैं। (मा० ६।१)
मंडै–१. रचे, २. सुशोभित करे। उ० १. जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै। (क० ७।११६)
मंडित–(सं०)–सजाया हुआ, भूषित, सुशोभित। उ० रत्न हाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानु सुत-सदस-उद्योतकारी। (वि० ५१)
मंडूक–(सं०)–१. मेढक, २. एक मुनि।
मंत–दे० 'मंत्र'। उ० १. मंदमति कंत सुनु मंत म्हाको। (क० ६।२१)
मंत्र–(सं०)–१. रहस्यपूर्ण बात, भेद की बात, १.अ. परामर्श, राय, २.गुरु का उपदेश, ३.तंत्र के वे शब्द या शब्द समूह जिनके द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते हैं या किसी कार्यादि की सिद्धि करते हैं। ४. इच्छा। उ० १. अ. अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। (मा० ३।१३।२) ३. यंत्र मंत्र भंजन, प्रबल कल्मषारी। (वि० ११) ४. मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र। (मा० १।१८२ क) मंत्रराजु–मंत्रों का राजा, राम का नाम। उ० मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। (मा० २।१२९।३) मंत्राभिचार–मंत्रों का प्रयोग।
मंत्रिन्हि–मंत्रियों, मंत्रियों के। उ० मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। (मा० ४।५।२) मंत्रिहि–मंत्री को। उ० मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। (मा० २।९५।१) मंत्री (सं० मंत्रिन्)–परामर्श देनेवाला, राज्य-सचिव, अमात्य। उ० मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। (मा० २।५।३)
मंत्रु–दे० 'मंत्र'। उ० १. अ. चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। (मा० २।८४।४)
मंथरा–(सं०)–कैकेयी की दासी जिसके बहकाने से कैकेयी ने दशरथ से राम को बन भेजने तथा भरत को राज्य देने का अनुरोध किया था। उ० नाम मंथरा मंद मति, चेरी कैकइ केरि। (मा० २।१२)
मंद–(सं०)–१. जो तेज़ न हो, सुस्त, २. नीच, तुच्छ, ३. मूर्ख, ४. पापी, ५. गड्ढा, ६. धीमा, धीरे-धीरे चलनेवाला। उ० १. मंदमति कंत सुनु मंत म्हाको। (क० ६।२१) २. मंदजन-मौलि-मनि, सकल-साधनहीन। (वि० २११) ६. सीतल सुगंध सुमंद मारुत। (मा० १।८६। छं० १) मंदतर–१. अधिक नीच, २. अधिक मूर्ख। उ० १.होहिं बिषय रत मंद मंदतर। (मा० ७।१२१।६) मंदेहि–मंद को, बुरे को। उ० भलेहि मंद मंदेहि भल करहू। (मा० १।१३७।१)
मंदरं–दे० 'मंदर'। मंदर–(सं०)–१.मंदराचल नाम का पर्वत, २.पर्वत। उ० २.गहि मंदर बंदर भालु चले। (क०६।३४)
मंदरु–दे० 'मंदर'। उ० १. मंदरु मेरु कि लेहिं मराला। (मा० २।७२।२)
मंदा–दे० 'मंद'। बुरा, जो अच्छा न हो। उ० जोग बियोग भोग भल मंदा। (मा० २।९२।३)
मंदाकिनि–दे० 'मंदाकिनी'। उ० सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। (मा० २।१३२।३)

मंदाकिनी-(सं०)-गंगा नदी। उ० राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु। (मा० १।३१)
मंदिर-(सं०)-१. महल, मकान, घर, २. देवालय। उ० १. बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन। (मा० ६।१०।४) मंदिरन्ह-महलों में, मंदिरों पर। उ०कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भए। (मा०७।४१। छं०१)
मंदोदरि-दे० 'मंदोदरी'। उ०मय तनुजा मंदोदरि नामा। (मा० १।१७८।१)
मंदोदरी-(सं०)-रावण की स्त्री और मय दानव की पुत्री। उ० मंदोदरी आदि सब रानी। (मा० ५।६।२)
मँदोवै-(सं० मंदोदरी)-मंदोदरी, रावण की स्त्री। उ० तुलसी मँदोवै रोइ-रोइ कै बिगोवै आपु। (क० ५।११)
म-(सं०)-मघा नक्षत्र। उ०अगुन पूगुन विअज कृ म, आ भ अ भू गुनु साथ। (दो० ४५७)
मइकें-(सं० मातृ)-(?)-नैहर में, पीहर में। उ० मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान। (मा० २।६६)
मइत्री-(सं० मैत्री)-मित्रता, मैत्री।
मई-(सं० मय)-युक्त, मय, वाली। उ० है तुलसिहि परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है। (वि० १७०)
मकरंद-(सं०)-१. फूल का रस, २. फूलों की धूल, पराग। उ० १. विष्णु-पद कंज मकरंद-इव अंबु बर। (वि० १८)
मकरंदा-दे० 'मकरंद'। उ० १. गुंजत अलि लै चलि मकरंदा। (मा० ७।२३।२)
मकर (१)-(सं०)-१. ग्राह, मगर, २. कामदेव की ध्वजा का चिह्न, ३. माघ का महीना, ४. एक राशि जिसका क्रम दसवाँ है। उ० १. मकर षडवर्ग गोनक्र चक्राकुला। (वि० ५६) ४. माघ मकरगत रबि जब होई। (मा० १।४४।२)
मकर (२)-(फ़ा०)-छल, कपट।
मकरीं-दे० 'मकरी'। मकरी ने। उ० १. सर पैठत कपि पद गहा मकरीं तब अकुलान। (मा० ६।५७) मकरी-(सं०)-१. मकर की स्त्री, ग्राह की मादा, २. एक कीड़ा, मकड़ी। उ० २. संकट सोच सबै तुलसी लिए नाम फटैं मकरी के से जाले। (ह० १७)
मकु-(?)-चाहे, बल्कि। उ० गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई। (मा० २।२३२।१)
मकुट-दे० 'मुकुट'।
मख-(सं०)-यज्ञ, क्रतु। उ० मख राखिबे के काज राजा मेरे संग दये। (क० १।२१)
मखपाल-(सं०) यज्ञ की रक्षा करनेवाले। उ० मुनि मखपाल कृपाल प्रभु चरन कमल उर आनु। (प्र० १।३।५)
मखु-दे० 'मख'।
मग (१)-(सं० मार्ग)-रास्ता, पथ। उ० ठाढ़ी मग लिये रीते भरे घट हैं। (कृ० २०)
मग (२)-(सं० मगध)-मगध नाम का देश। उ० कासी मग सुरसरि क्रमनासा। (मा० १।६।४)
मगन-(सं० मग्न)-१. लीन, डूबा, तल्लीन, २. प्रसन्न। उ० १. आधि मगन मन। (वि० १६५) २. तहँ मगन मज्जति पान करि। (वि०१३६)
मगर-(सं० मकर)-ग्राह, मच्छ।
मगरा-(?)-१. ढीठ, २. घमंडी, अहंकारी।
मगराई-ढिठाई, धृष्ठता।
मगसिर-(सं० मार्गशीर्ष)-अगहन का महीना।
मगहँ-मगध देश में। उ० मगहँ गयादिक तीरथ जैसे। (मा० २।४३।४) मगह-(सं० मगध)-मगध का देश। इसे पवित्र माना गया है।
मगाइ-(सं० मार्गण)-मँगाकर। उ० जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रव्य मगाइ। (मा० ७।१० क) मगाई-दे० 'मँगाई'। उ० १. राम सखाँ तब नाव मगाई। (मा० २।१२।२) मँगावा-मँगवाया। उ० होत प्रात बट छीरु मगावा। (मा० २।१५।१)
मगु-(सं० मार्ग)-रास्ता, मग। उ० कोपित कलि लोपित मंगल-मगु बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु। (वि० २४)
मग्न-(सं०)-दे० 'मगन'।
मगे-(सं० मग्न)-मग्न हो गये। उ० तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनँद-रँग-मगे। (पा० ६६)
मघवा-(सं० मघवन्)-इंद्र। उ० मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत। (मा० २।३०१)
मघवान-दे० 'मघवा'। उ० सरिस स्वान मघवान जुबानू। (मा० २।३०२।४)
मघा-(सं०)-एक नक्षत्र का नाम। उ० मानहु मघा मेघ झरि लाई। (मा० २।७३।२)
मचत-(?)-मचता है, होता है। उ० अति मचत छूटत कुटिल कच छबि अधिक सुंदर पावहीं। (गी० ७।१६) मची-१. फैल गई, छा गई, २. हुई, हो गई। उ०१. मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा। (मा० १।१६४।४)
मचला-(?)-१. मचलनेवाला, हठी, २. मचला हूँ, अड़ गया हूँ। उ०२. हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि हर्‌यो हौं। (वि० २६७) मचलाई-हठ, बाल हठ, अड़ना। उ० सागर सन ठानी मचलाई। (मा० ५।५६।३)
मच्छर-(सं० मशक)-मच्छर, एक उड़कर काटनेवाला छोटा कीड़ा। उ० लोभ मोह मच्छर मद माना। (मा० ५।४७।१)
मजा-(सं० मज्जा)-फेन, झाग। उ० दीन मलीन छीन तनु डोलत मीन मजा सों लागे। (कृ० ३५)
मजार-(सं० मार्जार)-बिल्ली, विलाव। उ० तुलसी सिखवत नाहिं सिसु मूषक हनत मजार। (स० १६१)
मजूर-(फ़ा० मज़दूर)-सेवक, काम करनेवाला।
मजूरी-सेवा, टहल। उ० बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। (मा० २।१०२।३)
मज्जत-(सं० मज्जन)-१. स्नान करते हुए, २. स्नान करता या करते हैं। उ० २. मज्जत पय पावन पीवत जलु। (वि० २४)
मज्जन-(सं०)-स्नान, नहाना। उ० मज्जन पान पाप हर एका। (मा० १।१५।१)
मज्जनु-दे० 'मज्जन'। उ० मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। (मा० २।८७।४)
मज्जसि-स्नान करता है। उ० तह मगन मज्जसि पान करि। (वि० १३६) मज्जहिं-स्नान करते हैं, नहाते हैं। उ०

मनुज मज्जहिं सुकृत पुंज जुत कामिनी। (वि० १८)
मज्जि–स्नान करके, नहाकर। उ० मकर मज्जि गवनहिं मुनि बृंदा। (मा० १।४४।१)
मज्जा–(सं०)–चर्बी, मेद। उ० बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन। (मा० ६।८७)
मज्जित–(सं०) डूबा हुआ, लीन।
मझार–(सं० मध्य)–में, बीच, अंदर।
मझारी–दे०'मँझारि'। उ० कूदि परा पुनि सिंधु मझारी। (मा० ५।२६।४)
मटक–(सं० मट)–चंचलता, मटकना।
मठी–(सं० मठ)–निवासस्थान, वास। उ० तिन्हकी छठी, मंजुल मठी, जग सरस जिन्हकी सरसई। (गी० १।५)
मड़रानी–(सं० मंडल)–घेरा देकर घूमने लगी, चक्कर काटने लगी। उ० सुनि सनेहमय बचन निकट ह्वै मंजुल मंडल कै मड़रानी। (गी० ६।२०)
मढ़–(सं० मठ)–घर, कुटी, झोपड़ी। उ० चढ़ि गढ़ मढ़ दृढ़ कोट के कँगूरे कोपि। (क० ६।१०)
मढ़ी–(सं०मठ) कुटी, झोपड़ी।
मढ़े–(सं०मंडन) मढ़े हुए, वेष्टित।उ०मढ़े से स्रवन नहिं सुनति पुकारे। (गी० ५।१८)
मढ़ैया–छोटा छप्पर, छोटी झोंपड़ी।
मढ़ैहौं–मढ़ाऊँगी। उ० दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं। (गी० ६।१६)
मणि–(सं०)–१. बहुमूल्य पत्थर, रत्न, २. उच्च, श्रेष्ठ, उत्तम। मणे–हे मणि। मतवारा–मतवाले। दे०'मतवारा'। उ० दिव्य-भूम्यंजना-मंजुलाकर-मणे। (वि० २६)
मतंग–(सं०)–१. हाथी, २. शवरी के गुरु एक ऋषि। उ० १. झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मदअंबु चुचाते। (क० ७।४४)
मत–(सं०)–१. सम्मति, राय, २. सिद्धान्त, ३. उपदेश। उ० २. पढ़िबो परयो न छठी छमत, ऋगु जजुर अथर्वन साम को। (वि० १५५)
मतवारा–(सं०मत्त + वाला)–१. पागल, उन्मत्त, २. मस्त, प्रसन्न, ३.नशा में चूर। मतवारे–मतवाले। दे० 'मतवारा'। उ० ३. जिमि मद उतरि गएँ मतवारे। (मा० १।८६।३)
मतवाला–दे० 'मतवारे'।
मता–दे०'मत'।
मति–(सं०)–१. बुद्धि, समझ, अक्ल, २. राय, सलाह। उ० १. नकरु बिलंब बिचारु चारु मति, बरष पाछिले सम अगिलो पलु। (वि० २४) मते–दे० 'मत'। मति में, राय में। उ० मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर। (मा० २।२३३)
मतु–दे० 'मत'।
मतेई–(सं० विमातृ)–विमाता, मैभा। उ० काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है। (क० २।३)
मतो–दे० 'मत'।
मत्त–(सं०)–१. उन्मत्त, मतवाला, पागल, २. मस्त, ३. प्रसन्न, ४. गर्वीला, ५. उग्र, विकट। उ० १. यातुधान-प्रचुर-मत्तकरि-केसरी भक्त-मन पुन्य-आरन्यवासी। (वि० ५६)

मत्सर–(सं०)–१. डाह, हसद, जलन, २. क्रोध। उ० १. मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन मोह-अंभोधि-मंदर मनस्वी। (वि० ५५) मत्सराः–'मत्सर' का बहुवचन। उ० भजंति हीन मत्सराः। (मा० ३।४।छं० ७)
मत्सरता–(सं०)–डाह, हसद।
मत्वा–(सं०) मानकर। उ० मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं स्वांतस्तमः शान्तये। (मा० ७।१३१।श्लो० १)
मत्स्य–(सं०)–१. मछली, २. भगवान का प्रथम अवतार।
मथइ–(सं० मथन)–मथे, मंथन करे। मथत–१. मथता है, महता है, २. महते हुए, मथते समय। उ० २. मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। (मा० १।१३६।४) मथहिं–मथते हैं, महते हैं। मथि–मथकर। उ० तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। (मा० ७।११७।८) मथें–मथने से। उ० बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल। (मा० ७।१२२क) मथे–मंथन करे, मथ डाले। मथै–दे० 'मथइ'। उ० मुदिताँ मथै बिचार मथानी। (मा० ७।११७।८) मथ्यौ–१. मथा है, मथा, २. मथा गया है। उ० १. यह जलनिधि खन्यो मथ्यो लँघ्यो बाँध्यो अँचयो है। (गी० ६।११)
मथन–(सं०)१. मथनेवाला, २.मथना, ३. नाश करनेवाला। उ०१. जयति बिहगेस-बल बुद्धि-बेगाति-मद-मथन, मन्मथ-मथन ऊर्ध्वरेता। (वि० २६) ३. कलिमल मथन नाम ममताहन। (मा० ७।५१।५)
मथानी–(सं० मथन)–एक विशेष प्रकार का डंडा जिससे मथते हैं। उ० मुदिताँ मथै बिचार मथानी। (मा० ७।११७।८)
मथुरा–(सं० मधुपुर)–यमुना के किनारे स्थित एक तीर्थ। मथुराहि–मथुरा में। उ०तौ मथुराहि महामहिमा लहि सकल ढरनि ढरिबे हो। (कृ० ३६)
मद–(सं०)–१. घमंड, गर्व, २. नशा, मस्ती, मत्तता, ३. आनंद, प्रसन्नता, ४. मदिरा, ५ वीर्य, ६. कस्तूरी, ७. हाथी की कनपटी से चूनेवाला एक द्रव पदार्थ। उ० १. मद मत्सर अभिमान ज्ञान-रिपु इन महँ रहनि अपारो। (वि० ११७) ४. जिमि धोखें मद पानकर सचिव सोच तेहि भाँति। (मा० २।१४४) ६. ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतहीन मरम नहिं पायो। (वि० २४४) ७. मद अंबु चुचाते। (क० ७।४४) मदमाता–मस्ती में चूर, गर्व से मतवाला। मदमाते–दे० 'मदमाता'। उ० बिषम कहार मार-मदमाते, चलहिं न पाउँ बटोरा रे। (वि० १८६) मदहारी–गर्व को दूर करनेवाला। उ० जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अति मदहारी। (गी० ७।३८)
मदन–(सं०)–१. कामदेव, २. मैनफल, ३. धतूरा। उ० १. मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन मोह-अंभोधि-मंदर मनस्वी। (वि० ५५)
मदनु–दे० 'मदन'।
मदा–दे० 'मद'। गर्व, अहंकार। उ० नहिं राग न लोभ न मान मदा। (मा० ७।१४।७)
मदानि–(सं० मद)–कल्याणदायिनी। उ० तुलसी संगति पोच की सुजनहिं होति मदानि। (दो० ४३६)

मदारी–(अर० मदार)–बाज़ीगर, तमाशा दिखानेवाले।

मदिरा–(सं०)–शराब, दारू। उ० महिष खाइ करि मदिरा पाना। (मा० ६।६४।१)

मद्य–(सं०)–शराब।

मधु–(सं०)–१. शहद, २. शराब, ३. बसंत ऋतु, ४. चैत का महीना, ५. मीठा, ६. दूध, ७. पानी, ८. एक राक्षस का नाम जिसे विष्णु ने मारा था। उ० १. देति मनहुँ मधु माहुर घोरी। (मा० २।२२।२) २. मनि भाजन मधु, पारई पूरन अमी निहारि। (दो० ३५१) ३. जनु मधु मदन मध्य रति लसई। (मा०२।१२३।२) ८. महा मंगल मूल मोद-महिमायतन मुग्ध मधु-मथन मानद अमानी। (वि० ५६)

मधुकर–(सं०)–भौंरा। उ० सुक-पिक-मधुकर-मुनिवर-बिहारु। (वि० २३) मधुकरा–भौंरों का समूह। उ० बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा। (मा० १।८६।छं०१)

मधुकरी–(सं० मधुकर)–वह भिक्षा जिसमें केवल पका अन्न लिया जाता हो। उ० माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि। (दो० ४६४)

मधुप–(सं०)–भौंरा, भ्रमर। उ० आनन सरोज कच मधुप पुंज। (वि० १४)

मधुपर्क–(सं०)–दही, घी, जल, शहद और चीनी का मिश्रण जो देवताओं को चढ़ाया जाता है। उ० मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं। (मा० १।३२३। छं० १)

मधुपुरी–(सं०)–मथुरा नगरी। उ० ब्रज बसि राम-बिलास, मधुपुरी चेरी सों रति मानी। (कृ० ४७)

मधुबन–(सं०)–१. सुग्रीव के बाग का नाम, २. मथुरा का एक बन। उ० १. तब मधुबन भीतर सब आए। (मा० ५।२८।४) २. अब नंदलाल-गवन सुनि मधुबन तनहि तजत नहिं बार लगाई। (कृ० २५)

मधुमास–(सं०)–चैत का महीना।

मधुमासा–दे० 'मधुमास'। उ० नौमी भौम बार मधुमासा। (मा० १।३४।३)

मधुर–(सं०)–१. मीठा, छः रसों में एक, २. सुंदर, ३. कोमल, ४. सुनने में भला, ५. धीरे धीरे। उ० ३. मंगल मूरति मोदनिधि मधुर मनोहर बेष। (प्र० ४।४।४) ४. बेष बिसद बोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन। (दो० १५३) ५. मधुर झुलाई मल्हावहीं। (गी० १।१६) मधुरतर–अधिक मीठा। उ०अमत आमोदबस मत्तमधुकर-निकर मधुरतर मुखर कुर्वन्ति-गानं। (वि० ५१) मधुरी–१. मीठी, रसीली, २. माधुर्य, सौंदर्य। मधुरे–१. मीठे, २. सुंदर। उ० २. मधुरे दसन राजत जब चितवन मुख मोरी। (गी० ७।७)

मधुरता–१. मीठापन. माधुरी, २. सुंदरता, ३. मृदुलता। उ० १. कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं। (मा० ७ १२०क)

मधूकरी–दे० 'मधुकरी'।

मध्य–(सं०)–१. बीच, माँझ, २. मध्यम, जो न उत्तम हो और न ख़राब, ३. कमर, ४. १६ से १७ वर्ष तक की आयु। उ० १. जीव भवदंघ्रि-सेवक-बिभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता। (वि० ५८) मध्यदिवस–दोपहर। उ० मध्यदिवस जिमि ससि सोहई। (मा०६।३५।२)

मध्यम–(सं०)–१. मध्य का, बीच का, २. न अच्छा न बुरा, ३. एक स्वर। उ० १. हित अनहित मध्यम भ्रमफंदा। (मा० २।९२।३) २. उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि। (मा० १।२४०)

मध्यस्थ–(सं०)–१. तटस्थ, उदासीन, २. बिचवई, बिचवैत। उ० १. सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें बरिआईं। (वि० १२४)

मध्याह्न–(सं०)–दोपहर, दिन का मध्य।

मन (१)–(सं० मनस्)–अंतःकरण, चित्त, जी। उ० श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरण-भवभय दारुणं। (वि०४५) मनहिं–१. मन को, २.मन में। उ० १.लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा डोरि। (वि० १५८) मनहि–दे० 'मनहिं'। मनही–मन ही, जी ही। उ०मनहीं मन मागहिं बरु एहू। (मा० २।२२४।२) मनहूँ–मन में भी। उ० मनहूँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है? (क० ५।२२)

मन (२)–(?)–चालीस सेर की तौल।

मनक–(सं० मनस्)–मन भर। उ० रतिन के लालचिन प्रापति मनक की। (क० ७।२०)

मनजात–(सं०)–कामदेव। उ० डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात। (मा० २।३७ ख)

मनतेउँ–(सं० मानन)–मानता। उ० पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू। (मा० ६।६१।३)

मनन–(सं०)–१. चिंतन, सोचना, २. भली भाँति अध्ययन करना।

मननसील–(सं०मननशील)–विचारशील, चिंतन करनेवाला।

मननसीला–दे० 'मननसील'। उ० गायंति तव चरित सुपवित्र श्रुति सेस सुक संभु सनकादि मुनि मननसीला। (वि० ५२)

मनमथ–(सं० मन्मथ)–कामदेव।

मनमाना–यथेच्छ, मनके अनुकूल, मन भर। उ० ध्यान नयन निरखत मनमाना। (मा० १।३७।१) मनमानी–मन के अनुकूल। उ० कही है भली बात सब के मनमानी। (कृ० ४६)

मनरंजन–(सं० मनस्+रंजन)–मन को प्रसन्न करनेवाला। उ० तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सु खंजन-जातक से। (क० १।१)

मनशा–(अर०)–१. इच्छा, कामना, २. सम्मति, राय, सलाह।

मनसहि–इच्छा में, मन में। उ० प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव। (मा० १।३१६) मनसहु–१. मन से भी, २. कल्पना से भी। उ० १. मुनि-मनसहु ते अगमत पहि लायउ मनु। (पा० ३८) मनसा (२)–(सं० मनस्)–मन। उ० मनसा अनूप राम-रूप-रंग रई है। (गी० १।६४) जिमि परद्रोह निरत मनसा के। (मा० ६।९२।२) मनसि–मन में, हृदय में। उ० बसतु मनसि मम कानन चारी। (मा० ३।११।६)

मनसा (२)–दे० 'मनशा'। उ० १. संपति सिद्धि सबै तुलसी, मन की मनसा चितवैं चित लाए। (क० ७।४५)

मनसिज–(सं०)–कामदेव। उ० धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे। (मा० १।८५)

मनसिजु–दे० 'मनसिज'।

मनस्वी–(सं० मनस्विन्)–१. बुद्धिमान, २. स्वेच्छाचारी, स्वतंत्र।

मनहर–(सं० मनस्+हर)–मनोहर, सुंदर। उ० मेढ़ी लटकन मसि बिंदु मुनि मनहर। (गी० १।३०)

मनहरण–मनोहर, सुंदर।

मनहरनि–मन हरनेवाली। उ० तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहनी मनहरनि। (गी० १।२५)

मनहुँ–(सं० मानन)–मानो। उ० मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुरमुनि भृंगनि। (गी० २।५०) मनियत–१. मानता हूँ, अंगीकार करता हूँ, २. मान, स्वीकार करे, ३. माने जाते हैं। उ०३. नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं। (वि० १७४) मनिहैं–मानेंगे। उ० हँसि करिहैं परतीत भगत की भगत सिरोमनि मनिहैं। (वि० ९५) मनु (१)–(सं० मानन)–मानों। उ० मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए। (गी०१।२३) मनो–मानो, मान लो। उ० गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के। (क० ६।३४)

मना (१)–(अर०)–१. रोक, बर्जन, ममानियत, २. रोकना, मना करना।

मना (२)–(सं० मनस्)–मन। उ० तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना। (मा० ५।६०।छं० १)

मनाइ–(सं० मानन)–१. बिनती करके, प्रार्थना करके, २. मनौती करके। उ० १. ईस मनाइ असीसहिं जय जस पावहु। (जा० ३२) मनाइय–स्तुति कीजिए, प्रार्थना करनी चाहिए। उ० आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो। (रा० १) मनाई–१. मनाया, २. स्तुति या प्रार्थना की। मनाए–१. मनाया, २. प्रार्थना करने पर, मनाने पर। उ० १. नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए। (मा० १।२६०।२) मनाव–मनाते हैं, प्रार्थना करते हैं, मनौती करते हैं। उ० बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। (मा० २।४४।३) मनावउँ–मनाऊँ, प्रार्थना करूँ। मनावत–१. मनाते हैं, २. मनाता हूँ, ३. मनाते हुए, प्रार्थना करते हुए। उ० २. हौं तिनसों करि परम बैर हरि तुम सों भलो मनावत। (वि० १८५) ३. सुर तीरथ तासु मनावत आवत। (क० ७।३४) मनावति–मनौती करती हैं। उ० बैठी सगुन मनावति माता। (गी० ६।१६) मनावन–मनाना, प्रार्थना करना। मनावहिं–मनाते हैं, प्रार्थना करते हैं। उ०खरभर नगर नारि नर बिधिहि मनावहिं। (जा०१८३) मनावहीं–प्रर्थना करते हैं। उ० जग जनमि लोचन लाहु पाए सकल सिवहि मनावहीं। (जा० ६३) मने–मनाई हो गई। उ० जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने। (वि० १६०)

मनाक–(सं० मनाक्)–थोड़ा, किंचित्। उ० होत न बिसोक ओत पावै न मनाक सो। (क० ५।२५)

मनाकु–दे० 'मनाक'। उ० जो दसकंठ दियो बाँवों, जेहि हर गिरि कियो है मनाकु। (गी० १।८७)

मनाग–दे० 'मनाक'। उ० तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा। (मा० १।१४५।२)

मनि–दे० 'मणि'। उ० प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनिखानी। (मा० ७।२३।४) २. अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु बिषम भवभीर। (मा० ७।१३० क) मनिन्ह–मणियाँ। मनिमय–मणियों से युक्त। उ०सिंधुर मनिमय सहज सुहाई। (मा० १।२८८।४) मनिहिं–मणि को। उ० पीर कछू न मनिहिं जाके बिरह-बिकल भुअंग। (कृ० ५४)

मनिआरा–दे०'मनियारा'।

मनिकर्निका–(सं० मणिकर्णिका)–काशी नगर में स्थित एक पवित्र स्थान जहाँ इसी नाम का एक कुंड है। यात्री इसमें स्नान करते हैं। उ० मनिकर्निका-बदन-ससि सुंदर, सुरसरि सुख सुषमा सी। (वि० २२)

मनियारा–मणियों से युक्त या पूर्ण। उ० बन कुसुमित गिरिगन मनियारा। (मा० १।१६१।२)

मनी (१)–(सं० मान)–गर्व, अहंकार। उ० होय भलो ऐसे ही अजहुँ गये राम-सरन परिहरि मनी। (गी० ५।३६)

मनी (२)–(सं० मणि)–१. धन, २.मणि।

मनीषा–(सं०)–अक़्ल, बुद्धि।

मनु (२)–(सं० मनस्)–मन, चित्त, जी। उ० देखि दसा जनक की कहिबे को मनु भो। (गी० १।६४)

मनु (३)–(सं०)–१. मनुष्यों के आदि पुरुष, २. एक ऋषि जिन्होंने मनुस्मृति का प्रणयन किया।

मनुज–(सं०)–आदमी, मनुष्य। उ० मनु दनुज तनुज बन-दहनमंडन-मही। (गी० ७।६) मनुजा–मनुष्यों को। उ० कलिकाल बेहाल किए मनुजा। (मा० ७।१०२।३)

मनुजाद–(सं० मनुज+अद्)–राक्षस, मनुष्यभक्षक। उ० चित्त बैताल मनुजाद मन, प्रेतगन रोग, भोगौघ बृश्चिक-बिकारम्। (वि० ५६)

मनुजादा–दे० 'मनुजाद'। उ० भएसि कालबस खल मनुजादा। (मा० ६।३३।३)

मनुष्य–(सं०)–आदमी, मानव।

मनुसाई–(सं०मनुष्य)–१. पुरुषार्थ, पराक्रम, बल, २. भलमनसी, आदमियत। उ० १. सोउ नहिं नावेहु असि मनुसाई। (मा० ६।३६।१)

मनुहार–(?)–१. मनौआ, खुशामद, २. विनय, प्रार्थना।

मनुहारि–दे० 'मनुहार'। उ० २. तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहार। (गी० ७।२६)

मनुहारी–दे० 'मनुहार'। उ० १. क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी। (गी० १।१०७)

मनोगति–मन की चाल। उ० तीखे तुरंग मनोगति चंचल पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते। (क० ७।४४)

मनोज–(सं०)–१. कामदेव, २. चंद्रमा। उ० १. जनु ऋतु राज मनोज-राज रजधानिय। (पा० ९८) २. तुलसी बिकसत मित्र लखि सकुचत देखि मनोज। (स० ६८३)

मनोभव–(सं०)–कामदेव। उ० मनहुँ मनोभव फंद सँवारे। (मा० १।२८९।१)

मनोभूत–कामदेव। उ० मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरम्। (मा० ७।१०८।३)

मनोरथ-(सं०)-चाह, कामना, इच्छा। उ० तजि सोइ सुधा मनोरथ करि करि को मरिहै री माई। (कृ० ५१)
मनोरथु-दे० 'मनोरथ'। उ० जौं बिधि पुरव मनोरथु काली। (मा० २।२३।२)
मनोरम-(सं०)-सुंदर, अच्छा। उ० जनक-अनुज-तनया दुइ परम मनोरम। (जा० १७२)
मनोराज-मनमाना कार्य, मन की आज्ञाओं का पालन। उ० मनोराज करत अकाज भयो आजु लगी। (क० ७।६६)
मनोहर-(सं०)-सुंदर। उ० जान रूप मनिजटित मनोहर नूपुर जन सुखदाई। (वि० ६२)
मनोहरता-सुंदरता। उ० मनहुँ मनोहरता तन छाए। (मा० १।२४१।१) मनोहरताउ-सुंदरता भी। उ० निपट असमंजसहु बिलसति सुख मनोहरताउ। (गी० ७।२५)
मनोहरताई-सुंदरता, मनोहरता। उ० भँवर तरंग मनोहरताई। (मा० १।४०।४)
मनौती-(सं० मानन)-१. मनाना, २. आराधना, ३. किसी देवता को प्रसन्न करने के लिए कोई मानसिक संकल्प।
मन्मथ-दे० 'मनमथ'। उ० जयति विहगेस-बल-बुद्धि-बेगाति मद-मथन, मन्मथ-मथन ऊर्ध्वरेता। (वि० २६)
मन्यु-(?)-१. शिव, २. यज्ञ, ३. क्रोध, ४. शोक, ५. दीनता, ६. अहंकार। उ० ५. त्यक्त मद मन्यु कृत पुण्य रासी। (वि० ५७)
मन्वंतर-(सं०)-७१ चतुर्युगी का काल। चतुर्युगी चारों युगों के समय को कहते हैं।
मम-(सं०)-मेरा, मेरी। उ० ज्यों गज-दसन तथा मम करनी। (वि० ११८)
ममता-(सं०)-१. मोह, प्रेम, प्रीति, २. ममत्व, मेरापन। उ० १. उपजि परी ममता मन मोरें। (मा० १।१६४।२) २. ममता जिन पर प्रभुहिं न थोरी। (वि० १६)
मम्ल-मलिन, म्लान। मम्ले-दे० 'मम्ल'। उ० तथा न मम्ले वनवास दुःखतः। (मा० २।१।श्लो० २)
मयं-(सं०)-युक्त, सहित। उ० अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबला मयं। (मा० १।८५।छं१) मय-(सं०)-१. पूर्ण, भरा हुआ, २. एक दानव जो शिल्पी था। मंदोदरी इसी की पुत्री थी। उ० १. जयमय मंजुल माल-उर। (प्र० ४।७।३) २. वृत्र बलि बाण प्रहलाद मय व्याध गज गृद्ध द्विजबंधु निजधर्म-त्यागी। (वि० ५७)
मयंक-(सं०)-चंद्रमा। उ० सरद मयंक बदन छबि सींवा। (मा० १।१४७।१)
मयंका-दे० 'मयंक'। उ० रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। (मा० ५।२३।१)
मयंद-(सं० मृगेन्द्र)-१. शेर, सिंह, २. सुग्रीव का साथी एक वीर। उ० २. द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि। (मा० ५।५४)
मयत्री-(सं० मैत्री)-मित्रता, दोस्ती। उ० तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। (मा० ४।४।२)
मयन-(सं० मदन)-कामदेव। उ० मयन महन पुर दहन गहन जाति। (क० १।१०) मयननि-कामदेवों की। उ० मयननि बहु छबि अंगनि दूरति। (गी० ५।४७)
मयना-(सं० मदना)-१. एक काले रंग का गानेवाला पक्षी, २. पार्वती की माता का नाम। मैना। उ० २. हिमगिरि संग बनी जनु मयना। (मा० १।३२४।२)
मया-(सं० माया)- मोह, छोह, ममता। उ० तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन। (जा० १८८)
मयूख-(सं०)-किरण, रश्मि। मयूखन्हि-किरणों से। उ० बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज। (मा० ७।२३)
मयूर-(सं०)-मोर। उ० देखत चारु मयूर नयन-सुभ, बोलि सुधा इव बानी। (वि०११८)
मये-(सं०मय)-भरकर, भरपूर होकर। उ० एक लै बढ़त एक फेरत सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये। (गी० १।४३)
मरंद-(सं० मकरंद)-मकरंद, फूल का रस। उ० जिन्हके सुअलि-चख पियत राम मुखारबिंद-मरंद। (गी० ७।२३)
मरइ-(सं० मारण)-मृतक हो, मुर्दा हो, मरे। उ० दनुज महाबल मरइ न मारा। (मा० १।१२३।३) मरई-मरता, मरता है। उ० रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। (मा० ६।६६।३) मरउँ-१. मरूँ, मर जाऊँ, २. मरता था। मरऊँ-मरता था। उ० दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ। (मा० ४।२७।२) मरत-(सं० मरण)-१. मरता है, २. मरते हुए, मरते समय। उ० १. चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी। (वि० २२) मरतहु-मरते समय भी। उ० तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच। (दो० ३०२) मरता-मरता, मृत्यु को प्राप्त होता, मर जाता। उ० मरता कहाँ जाइ को जाने लटि लालची ललाइ कै।(गी०५।२८)मरती-'मरता'का स्त्रीलिंग। मरते-मर जाते, मृत्यु को प्राप्त होते। मरतेउँ-१. मरता, २.मार डालता। उ०२. बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। (मा०६।४६।२) मरब-१.मरूँगा,२.मरना। उ०२. भूपति जिअब मरब उर आनी। (मा० २।२८२।७) मरसि-मरता है। मरहीं-मरते हैं। उ० मरहिं कुनृप करि-करि कुनप। (दो० ५१४) मरहीं-मरते हैं। उ० सुनि प्रभुबचन लाज हम मरहीं। (मा० ६।११८।५) मरहु-मरो, मर। उ० बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी। (मा० ६।२२।३) मरि-१. मरकर, २. मर। उ० २. जे तरजनी देखि मरि जाहीं। (मा०१।२७३।२) मरिअ-मरिए। उ०चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि-पचि मरिअ। (मा० ७।८६ ख)
मरिबे-मरने। उ० मरिबे को बारानसी, बारि सुरसरि को। (कृ० ४२) मरिबोइ-मरना ही। उ० कहिबो न कछू मरिबोइ रह्यो है। (क० ७।६१) मरिहउँ-मरूँगा। उ० देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई। (मा० १।१३६।२) मरिहहिं-१. मारेंगे, २.मरेंगे। उ०१. तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान। (मा०६।६६) मरिहि-मरेगा, मर जायगा। उ० सोक-कूप पुर परिहि मरिहि नृप, सुनि सँदेस रघुनाथ सिधायक। (गी० २।३) मरु (१)-(सं० मरण)-मर जा। उ० मरु गर काटि निलज कुलघाती। (मा०६।३३।२)मरै-मर जावे। उ०जो मधु मरै न मारिये माहुर देइ सो काउ। (दो० ४३३) मरो-१. मर जावो, २. मरे। उ० २. तुलसी बिनु परितीति प्रीति फिरि

फिरि पचि मरै मरो सो। (वि० १७३) मर्‌यो—मरा। उ० नाचत ही निसि दिवस मर्‌यो। (वि० ९१)
मरकट—दे० 'मर्कट'। बंदर। उ० जहँ-तहँ मरकट कोटि पठाइहि। (मा० ४।४।२)
मरकत—(सं०)—पन्ना नाम की मणि। उ० मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। (मा० ७।७६।३)
मरघट—(सं०)—श्मशान।
मरजाद—(सं० मर्यादा)—१. मान, प्रतिष्ठा, २. सीमा, हद। उ० २. चले धरम मरजाद मेटाई। (मा० २।२२८।२)
मरजादा—दे० 'मरजाद'। उ० २. मरजाद चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी। (वि० २२)
मरद—(फ़ा० मर्द)—१. पुरुष, मर्द, २. समर्थ। उ० २. कासी करामाति जोगी जागत मरद की। (क० ७।१४८)
मरदहिं—(सं० मर्दन)—कुचल डालते हैं। उ० मरदहिं मोहि जानि अनाथा। (वि० १२५)
मरन—(सं० मरण)—मरना, मौत, मृत्यु। उ० सोइ गति मरन-काल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान। (वि० ३)
मरना—दे० 'मरन'। उ० उभय भाँति देखा निज मरना। (मा० ३।२६।३)
मरनिहार—मरनेवाला, मरणासन्न। उ० अब यहु मरनिहार भा साँचा। (मा० १।२७५।२)
मरनु—दे० 'मरन'।
मरम—(सं० मर्म)—१. चुभनेवाले, मर्मभेदी, २. रहस्य, भेद, ३. प्राणियों का वह स्थान जहाँ आघात से पीड़ा अधिक होती है। उ० १. मरम बचन जब सीता बोला। (मा० ३।२८।३) २. बिदित बिसेषि घट-घट के मरम। (वि० २४६)
मरमु—दे० 'मरम'। उ० ३. मरमु पाँछि जनु माहुर देई। (मा० २।१६०।४)
मरायल—(सं० मारण)—मार खानेवाले, पीटे जानेवाले। उ० सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। (मा० ६।६७।३)
मराए—(सं० मारण)—मरवाया। मराएन्हि—मरवा डाला। उ० पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही। (मा० १।७६।४)
मरालं—दे० 'मराल'। मराल—(सं०)—१. हंस, २. हंस की भाँति विवेकी। उ० १. कूजत मंजु मराल मुदित मन। (मा० २।२३६।३) २. सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो। (क० ७।१६) मरालन्ह—मरालों, हंसों।
मराला—दे० 'मराल'। उ० मंदरु मेरु कि लेहिं मराला। (मा० २।७२।२)
मरालिके—हे हंसिनी। उ० देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके। (क० ७।१७३) मराली—१. हंसिनी, २. हंस की। उ० १. बकिहि सराहइ मानि मराली। (मा० २।२०।२) २. चलौं मराली चाल। (दो० २३३)
मरिजाद—दे० 'मरजाद'।
मरीच—दे० 'मारीच'। उ० बाहुक-सुबाहु नीच लीचर-मरीच मिलि। (ह० ३१)
मरीचि—(सं०)—१. किरण, रश्मि, २. एक ऋषि जो ब्रह्मा के १० पुत्रों में प्रथम थे।
मरीचिका—(सं०)—मृगतृष्णा। किरणों में जल का भ्रम।
मरु (२)—(सं०)—१. ऊसर २. मरुस्थल, रेतीली ज़मीन, ३. मारवाड़। उ० २. मरु मालव महिदेव गवासा। (मा० १।६।४)
मरुत—(सं० मरुत्)—पवन, वायु। उ० चलेउ बराह मरुत-गति भाजी। (मा० १।१५७।१)
मरुतु—दे० 'मरुत'।
मरुत्—दे० 'मरुत'। उ० जयति मरुदंजना मोद-मंदिर। (वि० २७)
मरोरी—(?)—मरोड़कर, ऐंठकर। उ० महि पटकत भजे भुजा मरोरी। (मा० ६।६८।५)
मर्कट—(सं०)—बंदर। उ० रिच्छ मर्कट सुभट उद्भट। (वि० ५०)
मर्द—(फ़ा०)—१. पुरुष, २. साहसी, वीर।
मर्दइ—(सं० मर्दन) मर्दन करता है, मींजता है। उ० गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा। (मा० ५।१६।३) मर्दहिं—मलते हैं, नाश करते हैं। मर्दहु—नाश करो, मलो। मर्दा—मला, नाश किया। मर्दि—मलकर, नाश करके। उ० कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करक्खत। (क० ६। ४७) मर्देसि—मसल डाला। उ० कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि। (मा० ५।१८)
मर्दन—(सं०)—१. मलना, मसलना, मींजना, २. मर्दन करनेवाले, नष्ट करनेवाले, कुचलनेवाले। उ० २. जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन। (मा० १।१।सो० ४)
मर्म (सं०)—१. रहस्य, भेद, २. शरीर का वह स्थान जहाँ चोट पहुँचना बड़ा भयावह होता है। उ० १. पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म। (मा० ३।३९ क) मर्मबचन—कलेजे में घुसनेवाली बात।
मर्मज्ञ—(सं०)—भेद जाननेवाला।
मर्मी—(सं० मर्मिन्)—भेद जाननेवाला, मर्मज्ञ। उ० मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। (मा० ६।१२०।७)
मर्याद—(सं० मर्यादा)—१. मान, प्रतिष्ठा, २. सीमा, हद, ३. नियम। उ० २. बिश्व विख्यात बिश्वेश बिश्वायतन विश्व मर्याद व्यालादगामी। (वि० ५४)
मल—(सं०)—१. मैल, २. बिष्टा, पाखाना, ३. पाप, ४. दूषण, ऐब-विकार। उ० १. छूटइ मल कि मलहिं के धोएँ। (मा० ७।४९।३) ३. कलिमल मथन नाम ममता-हन। (मा० ७।५१।५) मलहि—(सं० मलन)—मल से ही, मैल से ही। उ० करम-कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो। (वि० २४५)
मलय—(सं०)—१. सफ़ेद चंदन, २. मलय पर्वत जो दक्षिण भारत में है। उ० १. काटइ परसु मलय सुनु भाई। (मा० ७।३७।४) २. मलयाचल हैं संत जन, तुलसी दोष बिहून। (वै० १८)
मलाई—(फ़ा० बालाई)—दूध का सार भाग जो औटने पर ऊपर जम जाता है। साढ़ी। उ० खत खुनसात सोंधे दूध की मलाई है। (क० ७।७४)
मलान—(सं० म्लान)—उदास, मलिन। उ० आइ पाय पुनि देखिउँ मनु जनि करसि मलान। (मा० २।५३)
मलाना—दे० 'मलान'। उ० कौसल्याँ नृपु दीख मलाना। (मा० २।१५४।२)

मलानि–थकी, कुम्हलाई। उ० राम सद्गुन-धाम परमिति भई कछुक मलानि। (गी० ७।२८)
मलार–(सं० मल्लार)–वर्षा ऋतु का एक राग।
मलिंद–(सं० मिलिंद)–भौंरा।
मलिन–(सं०)–१. मैला, २. उदास, दुखी, ३. पापी, ४. अपवित्र, अशुद्ध। उ० ३. मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू। (मा० १।७।२) ४. नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय सँग लागे। (वि० ८२)
मलिनाई–मलीनता, मैलेपन का भाव।
मलिनिया–(सं०मालिन्) मालिन। उ० बतिया कै सुघरि मलिनिया सुंदर गातहि हो। (रा० ७)
मलीन–दे० 'मलिन'। उ० ३. ते सुरतरु-तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन। (दो० ४१४)
मलीनता–अपवित्रता, अशुद्धि, गंदगी। उ० सूधौ सत भाय कहे मिटति मलीनता। (वि० २६२)
मलीना–दे० 'मलिन'। उदास। उ० हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। (मा० २।६४।३) मलीनी–मलिन, उदास।
मलीने–दे० 'मलीना'। उ०तन कृस मन दुखु बदन मलीने। (मा० २।७६।२)
मलु–(सं०मल) १. गंदगी, २. पाप। उ०२. बिलसत बढ़त मोह माया मलु। (वि० २४)
मलेछ–(सं०म्लेच्छ)–१.नीच, २. अहिंदू, ३. जिनकी भाषा समझ में न आए।
मल्ल–(सं०)–पहलवान।
मल्लजुद्ध–बाहुयुद्ध। उ० द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै। (मा० ६।६४।छं० १)
मल्हावति–(सं० मल्ह)–पुचकारती है, चुमकारती है। उ० बाल केलि किलकि हँसैं द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं। (गी०१।३०) मल्हावहीं–प्यार करती हैं, पुचकारती हैं। उ० मधुर झुलाइ मल्हावहीं, गावैं उमँगि उमँगि अनुराग। (गी० १।१६)
मवास–(सं०)–१. रक्षास्थल, शरण, २. क़िला, गढ़। मवासे–दे० 'मवास'। उ०२. सिंधु तरे बड़े बीर दले खल, जारे हैं लंक से बंक मवासे। (ह० १८)
मशक–(सं०)–मच्छर, दंश।
मष्ट–(सं०)–चुप, मौन। उ० ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। (मा० ५।३७।४)
मसक–दे० 'मशक'। उ० मसक दंस बीते हिम त्रासा। (मा० ४।१७।४) मसकहि–मच्छर को। उ० मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन। (मा० ७।१२२ख)
मसकतु–(?)–फटता, विदीर्ण होता। उ० तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकतु है। (क० ६।१६)
मसखरी–(अर० मसख़रा)–हँसी, दिल्लगी, मज़ाक। उ० जो कह झूँठ मसखरी जाना। (मा० ७।६८।३)
मसान–(सं० श्मशान)–१. मरघट, श्मशान, २. रणभूमि। उ० १. घर मसान परिजन जनु भूता। (मा० २।८३।४) २. देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान के। (क० ६।४८)
मसानु–दे० 'मसान'। उ० कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसान। (मा०२।३६) मु० मसानु जागति–मसान जगा रही हो, श्मशान में बैठकर प्रेतमंत्र सिद्ध कर रही हो। उ० दे० 'मसानु'।
मसि–(सं०)–कालिख, स्याही। उ० महि पत्री करि सिंधु मसि तरु लेखनी बनाइ। (वै० ३५)
मसीत–(फ़ा० मस्जिद)–मुसलमानों के पूजा का स्थान। उ० माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो। (क० ७।१०६)
मस्तक–(सं०)–सिर, माथा। मस्तके–मस्तक पर।
महँ–(सं० मध्य)–में। उ० तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। (मा० १।१२।२)
महगे–(सं० महार्घ)–बहुमूल्य, अधिक दाम के। उ० मनि मानिक महँगे किये, सहँगे तृन जल नाज। (दो० ५७३)
महँगो–महँगा। उ० सो तुलसी महँगो कियो राम गरीब निवाज। (दो० १०८)
मह–दे० 'महँ'।
महक–(?)–वास, गंध।
महत (१)–(सं० महत्)–बड़ा, महान।
महत (२)–(सं० मथन)–१. मथते हुए, २. मथता है। उ० १. पायो केहि घृत बिचारु हरिन बारि महत। (वि०१३३) महिबे–मथना पड़ेगा। उ० मति-मटुकी मृगजल भरि घृत-हित मनहीं मन महिबे ही। (कृ० ४०) मही (१)–मथी, मंथन किया।
महतत्व–(सं०)–१. परब्रह्म, परमात्मा, २. सांख्य में प्रकृति का पहला विकार। उ०२. प्रकृति, महतत्व, सब्दादि गुन देवता, व्योम मरुदग्नि अमलांबु उर्वी। (वि० ५४)
महतारि–दे० 'महतारी'। उ० दूलह कै महतारि देखि मन हरषइ हो। (रा० १६)
महतारी–(सं० माता)–मा, जननी। उ० रावन की रानी मेघनाद-महतारी है। (ह० २७)
महत्–(सं०)–श्रेष्ठ, बड़ा।
महन–(सं०मथन) १.मथनेवाला, २. नाश करनेवाला। उ० २.महन मय पुर दहन गहन जानि। (क० १।१०)
महनु–दे० 'महन'। उ० २. अर्द्ध अंग अंगना अनंग को महनु है। (क० ७।१६०)
महर–(सं० महत्)–१. प्रधान, नेता, २. नंद। उ० २. ब्रज को बिरह अरु संग महर को। (कृ० ३८)
महरि–'महर' की स्त्री। यशोदा। उ० महरि तिहारे पाँय परौं अपनो ब्रज लीजै। (कृ० ७)
महर्षि–(सं०)–बड़ा ऋषि।
महल–(अर०)–१. गृह, घर, भवन,२. प्रासाद, राजभवन। उ०१.टहल सहज जन महल महल जागत चारो जुग जाम सो। (वि० १५७)
महाँ–दे० 'महँ'। उ० प्रगटे नर केहरि खंभ महाँ। (क० ७।८)
महा–(सं०)–१. अत्यंत, बहुत, अधिक, २. बड़ा, बृहत्, ३. उत्तम, श्रेष्ठ, प्रतिष्ठित। उ० १. प्रलय पावक-महा-ज्वाल-माला-बमन। (वि० ३८) २. महा कल्पांत ब्रह्मांड मंडल-दवन। (वि० १०) ३. नृप करि बिनय महाजन फेरे। (मा० १।३४०।१)
महानद–(सं०)–बड़ी नदी।

महानदु—दे० 'महानद'। उ० मिलेउ महानदु सो न सुहावन। (मा० १।४०।१)
महाजन—बड़े लोग। उ० सचिव महाजन सकल बोलाए। (मा० २।१६६।४)
महातम—(सं० माहात्म्)—महात्म, महत्व, गौरव। उ० कहत महातम अति अनुरागा। (मा० २।१०६।२)
महात्मा—(सं० महात्मन्)—जिसकी आत्मा बहुत उच्च हो, संन्यासी, साधु।
महादेव—(सं०)—शंकर, शिव। उ० जयति मर्कटाधीस मृगराज-बिक्रम महादेव मुदमंगलालय कपाली। (वि० २६)
महान—(सं० महान्)—१. बहुत बड़ा, विशाल, २. विष्णु, केशव। उ० २. अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान। (मा० ६।१५ क)
महानाटक—(सं०)—बड़ा नाटक जिसमें १० अंक होते हैं। उ० महानाटक-निपुन, कोटि-कबि कुल-तिलक, गान गुन-गर्ब-गंधर्व-जेता। (वि० २९)
महाप्रलय—(सं०)—वह काल जब संपूर्ण सृष्टि का विनाश हो जाता है।
महाबल—(सं०)—अत्यंत बलवान। उ० सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो। (ह० ७)
महाबाहु—बड़ी भुजावाले। उ० साँवरे गोरे सरीर महाबाहु महाबीर। (गी० १।७२)
महाबीर—(सं० महावीर)—१. बहुत वीर, २. हनुमान। उ० १. महाबीर बिनवउँ हनुमाना। (मा० १।१७।५)
महाराज—बड़े राजा, बड़े। उ० महाराज बाजी रची प्रथम न हति। (वि० २४६)
महिं—(सं० मध्य)—में। उ० जितिहहिं राम न संसय या महिं। (मा० ६।५७।३)
महि (१)—(सं०)—पृथ्वी। उ० देव! महिदेव-महि-धेनु सेवक-सुजन-सिद्ध-मुनि सकल-कल्यान-हेतू। (वि० ४०)
महि (२)—(सं० मध्य)—में। उ० तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं पुलकीं लखि राम हिये महि हैं। (क० २।२३)
महिदेव—ब्राह्मण। उ० देव! महिदेव-महि-धेनु-सेवक-सुजन-सिद्ध-मुनि सकल-कल्यान-हेतू। (वि० ४०)
महिधरु—(सं० महीधर)—पर्वत। उ० जो सहस सीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी। (मा० २।१२६।छं० १)
महिप—(सं०)—राजा, नृप। उ० मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं। (मा० १।३३१।२)
महिपति—दे० 'महिप'।
महिपाल—दे० 'महिप'। उ० तहाँ राम रघुबंस मनि सुनिअ महा महिपाल। (मा० १।२९२)
महिपालक—दे० 'महिप'। उ० कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि महिपालक। (जा० ५१)
महिपाला—दे० 'महिप'। उ० आए तहँ अगनिहत महिपाला। (मा० १।१३०।३)
महिपालु—दे० 'महिपाल'।
महिपु—दे० 'महिप'।
महिमा—(सं० महिमन्)—१. महत्त्व, माहात्म्य, बड़ाई, २. इज्जत, ३. प्रभाव, प्रताप, ४. एक सिद्धि। उ० १. मुनि महिमा सुनि रानिहि धीरजु आयउ। (जा० ८७)
महिष—(सं०)—१. भैंसा, २. महिषासुर नाम का राक्षस जिसे काली ने मारा था। उ० १. महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर रूप। (वि०५९) २. महिष मद-भंग करि अंग तोरे। (वि० १५)
महिषमती—(सं०)—सहस्रबाहु की राजधानी का नाम। उ० महिषमती को नाथ साहसी सहसबाहु। (क० ६।२५)
महिषीं—१. भैंसें, २. रानियाँ। उ० १. महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना। (मा० १।३३३।४) महिषी—(सं०)—१. भैंस, २. रानी, पटरानी। उ० २.जनक पाट महिषी जगजानी। (मा० १।२३४।१)
महिषेस—(सं० महिषेश)—१. महिषासुर, २. यमराज। उ० १. तुलसि अभिमान-महिषेस बहु कालिका। (वि० ४८)
महिषेसा—दे० 'महिषेस'।
महिषेसु—दे० 'महिषेस'।
महिसुर—(सं०)—ब्राह्मण। उ० सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। (मा० १।२७३।३) महिसुरन्ह—ब्राह्मणों को। उ० सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। (मा० १।१७४।४)
महीं—(सं०मया)—मैं ही। उ०महीं सकल अनरथ कर मूला। (मा० २।२६२।२)
मही ( )—(सं०)—१. पृथ्वी, २. मिट्टी। उ० १. करिबे पुनीत सैल सर सरि मही है। (गी० २।४१)
महीधर—(सं०)—१. पर्वत, २. शेषनाग। उ० १. प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर। (वि ५९)
महीप—(सं०)—राजा, नरेश। उ० लखी महीप कराल कठोरा। (मा० २।३१।२) महीपन्ह—राजाओं।
महीपति—दे० 'महीप'। उ० सुनहु महीपति मुकुटमनि तुम सम धन्य न कोउ। (मा० १।२९१)
महीपा—दे० 'महीप'।
महीरुह—वृक्ष, पेड़।
महीस—(सं० महि + ईश)—राजा। उ० तकि तकि तीर महीस चलावा। (मा० १।१५७।२)
महीसा—दे० 'महीस'।
महीसु—दे० 'महीस'। उ० पाइ असीस महीसु अनंदा। (मा० १।३३१।३)
महीसुर—(सं०)—ब्राह्मण। उ० मारग मारि महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो। (क०७।१७६) महीसुरन्ह—ब्राह्मणों।
महुँ—(सं० मध्य)—में, बीच। उ० भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। (मा० १।१८०।४)
महु—दे० 'महुँ'।
महूँ—(सं० मया)—मैं भी, मैंने भी। उ० महूँ महेस सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन। (मा० २।२६०)
महेश—(सं०)—शिव, महादेव। उ० महेश चाप खंडनं। (मा० ३।४। छं० ४)
महेशानि—पार्वती, उमा। उ० महामारी महेशानि महिमा की खानि। (क० ७।१७४)
महेस—दे० 'महेश'। उ० गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात। (मा० १।५५) महेसहि—महादेव को, महेश को। उ० सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। (मा० २।४४।४)
महेसा—दे० 'महेश'।

महेसु–दे० 'महेश'। उ० सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु। (मा० २।१)
महेसू–दे० 'महेश'। उ० महामंत्र जोइ जपत महेसू। (मा० १।१९।२)
महोख–(सं० मधूक)–एक पक्षी। उ० ढेक महोख ऊँट बिसराते। (मा० ३।३८।३)
महोत्सव–(सं०)–बड़ा उत्सव, बड़ा पर्व। उ० जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। (मा० १।३४।४)
महोदर–(सं०)–एक वीर राक्षस जो रावण का पुत्र था। उ० लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध-पापिष्ट बिबुधांतकारी। (वि० ५८)
महोष–दे० 'महोख'।
मह्यौ–(सं० मथन)–१. छाछ, मठा, तक्र, २. मथने की क्रिया, मथना। उ० १. दूध को जर्‍यो पियत फूँकि-फूँकि मह्यो हौं। (वि० २६०) २. तुलसी सिय लगि भवदधि-निधि मनु फिर हरि चहत मह्यौ है। (क० ४।२)
माँखी–(सं० मक्षिका)–१. मक्खी, २. जो तिरस्कारपूर्वक अलग किए जाने योग्य हो।
माँखा–दे० 'माखा'।
माँग (१)–(सं० मार्ग)–सिर के बालों के बीच की रेखा, सीमंत। उ० माँग कोपि तोषि फैलि फूलि फरिकै। (गी० १।७०) माँगहु–माँग भी। उ० आनंद अवनि, राजरानी सब माँगहु कोखि जुड़ानी। (गी० १।४)
माँग (२)–(सं० मार्गण)–१. माँगे, माँगेगा, २. मगनी, सगाई। माँगउँ–मागूँ। माँगऊँ–दे० 'माँगउँ'। माँगत–१. माँगते हुए, २. माँगता है, याचना करता है, माँगते हैं। उ० २. सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े। (क० २।५) माँगब–याचना करेगा, माँगेगा। उ० मुयहु न माँगब नीच। (दो० ३३५) माँगसि–दे० 'मागसि'। माँगहिं–माँगते हैं। माँगहीं–दे० 'माँगहिं'। माँगा–याचना की, मागा। माँगि–१. माँगा, याचना की, २. माँगकर, ३. मँगाकर। उ० ३. मुदित माँगि इक धनुही नृप। (ब० १६) माँगिए–याचना कीजिए। उ० और काहि माँगिए को माँगिबो निवारै। (वि० ८०) माँगिबो–माँगना, याचना करना। उ० और काहि माँगिए को माँगिबो निवारै? (वि० ८०) माँगिहै–माँगेगा। उ० काम तरु राम नाम जोइ जोइ माँगिहै। (वि० ७०) माँगी–१. माँगी हुई, २. माँगा, याचना की। उ०१.मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं। (क०७।१६७) माँगु–माँगो, माँग लो। माँगे–१.माँगा, २.माँगा हुआ। उ० २. माँगे पैंत पावत प्रचारि पातकी प्रचंड। (क० ७।८१) माँगेउ–दे० 'माँगे'। माँगेसि–माँगी। माँगेहु–१. माँगा, २. माँगने पर भी। माँगै–१. माँगे, २. माँगता है।
माँगतो–(सं०मार्गण) मंगन, भिखारी। उ० नाँगो फिरै कहै माँगतो देखि न खाँगो कछू जनि माँगिए थोरो। (क० ७।१५३)
माँगन–१. माँगने के लिए, २. माँगने की वस्तु, ३. भिखारी। उ० १. मोचिनि बदन-सकोचिनि हीरा माँगन हो। (रा० ७) माँगन्यो–माँगनेवाले भी।
माँगने–१. भिक्षुक, मंगन, २. माँगने के लिए। उ० १. नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े। (क० ७।१५४) माँगनेउ–माँगनेवाले भी, भिक्षुक भी। उ० तुलसी दाता माँगनेउ देखियत अबुध अनाथ। (दो० १७०)
माँगनो–मंगन, भिखारी। उ० रीति महाराज की नेवाजिये जो माँगनो सो। (क० ७।२५)
माँची–(?)–फैली, व्याप्त हुई।
माँजहिं–(सं० मार्जन)–माजते हैं, रगड़ते हैं।
माँजा–(?)–एक रोग जो जलचरों को बरसाती पानी पीने से होता है। उ० बिकल सकल महामारी माँजा भई है। (क० ७।१७६)
माँझ–(सं० मध्य)–में, मध्य, बीच।
माँझा–दे० 'माँझ'।
माँठ–दे० 'माठ'।
माँड़व–(सं० मंडप)–मंडप, विवाह का मंडप। उ० आले हि बाँस के माँड़व मनिगन पूरन हो। (रा० ३)
मांडवी–(सं०)–राजा जनक के भाई कुशध्वज की बेटी जिसका विवाह भरत से हुआ था। उ० मांडवी-चित्त चातक-नवांबुदवरण, सरन-तुलसीदास-अभय दाता। (वि० ३९)
माँतहिं–(सं०मत्त) मस्त या मतवाले हो जाते हैं। माँता–दे० 'माँत्यो'। माँत्यो–१.माता हुआ, मतवाला, २. मस्त हो गया।
माँथ–(सं० मस्तक)–माथा, कपाल।
मांस–(सं०)–गोश्त। उ० धावहिं सठ खग मांसअहारी। (मा ६।४०।५)
माँह–(सं० मध्य)–में, मध्य।
मा–(सं०)–१. माता, जननी, २. लक्ष्मी, ३. नहीं। उ० १. देहि मा! मोहि प्रण प्रेम यह नेम निज राम घनश्याम तुलसी पपीहा। (वि० १५)
माइ–दे० 'माई'।
माई–(सं० मातृ)–१. माता, माँ, २. संबोधन का शब्द। उ० १. सत्य कहउँ मोहि जान दे माई। (मा० ५।२।३) २. ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई। (मा० २।१६।२)
माख–(सं० मक्ष)–खीझना, क्रोध। उ० इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख। (मा० ६।२४)
माखा–(सं० मक्ष)–अप्रसन्न हुआ, नाराज़ हुआ। उ० तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा। (मा० १।८७।१) माखि–(सं० मक्ष)–क्रोध करके। उ० तुलसी रघुबर-सेवकहि खल डाटत मन माखि। (दो० १४४) माखी (१)–(सं० मक्ष)–क्रुद्ध हुई। माखे–क्रुद्ध हुए, तमतमाए। उ० भटमानी अतिसय मन माखे। (मा० १।२५०।३) माखै–नाराज़ हो। उ० अब जनि कोउ माखै भटमानी। (मा० १।२५२।२)
माखी (२)–(सं० मक्षिका)–मक्खी। उ० भामिनि भइहु दूध कइ माखी। (मा० २।१६।४)
माखीय–दे० 'माँखी'। उ० राखि कहौं हौं जो पै तो ह्वैहौं माखीय की। (वि० २६३)
माग–(सं० मार्गण)–माँगे, माँगता है। उ० १. कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। (मा० १।१३३।१) मागउँ–माँगूँ, याचना करूँ। मागउ–माँगती, याचना करती। उ०

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउ बर आना। (मा० १।२११।३) मागसि–माँगता। उ० काहे न मागसि अस बरदाना। (मा० ७।८४।१) मागहिं–मागते हैं। उ० मनहीं मन मागहिं बरु एहू। (मा० २।२२४।२) मागहु–माँगो, याचना करो। उ० मागहु आजु जुड़ावहु छाती। (मा० २।२२।३) मागा–याचना की। उ० बर दूसर असमंजस मागा। (मा० २।३२।२) मागु–दे० 'माँगु'। उ० देबि मागु बरु जो रुचि तोरें। (मा० १।१५०।२) मागे–माँगा, याचना की। मागेसि–माँगी। उ० मागेसि नींद मास षट केरी। (मा० १।१७७।४)

मागध–(सं०)–१. मगध देश का, २. भाट, यश बखाननेवाला। उ० २. मागध सूत बंदिगन गायक। (मा० १।१९४।३)

माघ–(सं०)–एक महीना जो पूस और फागुन के बीच में पड़ता है। उ० माघ मकरगत रबि जब होई। (मा० १।४४।२)

माचल–(?)–मचला, मचलनेवाला, ज़िद्दी।

माचहीं–(?)–मचाते हैं। उ० तुलसी मुदित रोम-रोम मोद माचहीं। (क० १।१४) माची–मची, फैली। उ० कीरति जासु सकल जग माची। (मा० १।१६।२)

माछी–(सं० मक्षिका)–मक्खी। उ० जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास। (मा० ६।१०१ क)

माजहि–(?)–माजा (पहली वर्षा का फेन) को। उ० माजहि खाइ मीन जनु मापी। (मा० २।५४।२)

माझ–दे० 'माँझ'। उ० पहुँचाएलि छन माझ निकेता। (मा० १।१७१।४)

माझा–दे० 'माँझ'। उ० कैकइ कत जनमी जग माझा। (मा० २।१६४।२)

माठ–(सं० मट्टक)–मटका, बर्तन। उ० स्वामि दसा लखि लषन सखा कपि, पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के। (गी० ४।१)

माणिक–(सं० माणिक्य)–मानिक, लाल।

मात (१)–(अर०)–हार, पराजय।

मात (२)–(सं० मातृ)–माता, जननी। उ० कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिएँ मात। (मा० १।३४६) मातन्ह–माताओं से। उ० लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ। (मा० ७।६ ख)

मातलि–(सं०)–इंद्र का सारथी। उ० हरष सहित मातलि लै आवा। (मा० ६।८८।१)

मातहिं–(सं० मत्त)–मत्त हो जाते हैं, मतवाले हो जाते हैं। उ० जो अचवँत नृप मातहिं तेई। (मा० २।२३१।४) माति–मतवाली होकर। उ० करमभूमि कलि जनम कुसंगति मति बिमोह मद माति। (वि० २३३) माती–१. मतवाली हुई, २. मतवाली होकर। उ० १. सहित समाज प्रेम मति माती। (मा० २।२७५।३) माते–१. मतवाले हुए, मत्त हुए, २. मतवाले। उ० २. कूजत पिक मानहुँ गज माते। (मा० ३।३८।३) मात्यो–मतवाले हुए। उ० मोह-मद-मात्यो, रात्यो कुमति कुनारि सों। (क० ७।८२)

माता–दे० 'मात'। उ० कालकलि-पाप-संताप-संकुल-सदा प्रनत-तुलसीदास तात माता। (वि० २८)

मातु–दे० 'मात'। उ० मोहि कहु मातु तात दुख कारन। (मा० २।४०।३)

मातुल–(सं०)–माता का भाई, मामा। उ० बातुल मातुल की न सुनी सिख का तुलसी कपि लंक न जारी। (क० ६।५)

मात्र–(सं०)–१. केवल, २. थोड़ा, कुछ। उ० १. अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा। (मा० १।१४५।२)

माथ–(सं० मस्तक)–सिर, ललाट, भाल। उ० माथ नाइ पूछत अस भयऊ। (मा० ४।१।३) मु० माथ नाइ–सर नवाकर। उ० दे० 'माथ'। माथहि–१. माथ को, २. माथ पर, ३. माथ से। माथे–मस्तक पर, माथे पर। उ० तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै। (गी० ५।४०)

माथा–दे० 'माथ'। उ० जहँ बस श्रीनिवास श्रुति माथा। (मा० १।१२८।२)

माधव–(सं०)–१. विष्णु, २. कृष्ण, ३. बैसाख का महीना, ४. बिंदुमाधव नामक काशी का तीर्थ। उ० १. माधव ! अब न द्रवहु केहि लेखे। (वि० ११३) ३. जनु संग मधु माधव लिए। (जा० ३६)

माधुरि–दे० 'माधुरी'।

माधुरी–(सं०)–१. मधुरता, मिठास, २. सौंदर्य, शोभा, ३. मद्य, शराब। उ० १. मायप भलि चहु बंधु की जल माधुरी सुबास। (मा० १।४२)

माधुर्य–दे० 'माधुरी'।

मान–(सं०)–१. आदर, इज़्ज़त, २. परिमाण, तोल, ३. समान, तुल्य, बराबर, ४. माना, मानता, ५. मान ले, मानो, ६. घमंड। उ० १. मान लोक बेद राखिबे को पन रघुबर को। (क० ७।१२२) ४. बिनय न मान खगेस सुनु। (मा० ५।५८) ५. मान सही ले। (वि० ३२) ६. जय ताड़का-सुबाहु मथन, मारीच मान हर। (क० ७।११२) मानइ–दे० 'मानई'। मानई–मानती है, अनुभव करती है। उ० उर लाइ उमहिं अनेक बिधि जलपति जननि दुख मानई। (पा० १२१) मानउँ–१. मानूँ, २. प्रेम करूँ, ३. आदर करूँ। मानत–दे० 'मानता'। मानता–मानता है, मानते हैं। उ० मानत मनहुँ सतड़ित ललित धन। (गी० ३।१) मानति–मानती है। मानब–मानिएगा। उ० देबि करौं कछु बिनय सो बिलगु न मानब। (पा० ४८) मानबि–मानिएगा। उ० गहि सिव पद कह सासु बिनय मृदु मानबि। (पा० १५७) मानसि–मानता है। उ० मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। (मा० ७।११२।७) मानहिं–मानते हैं, मान लेते हैं। मानहि–मानो, मान लो। उ० मन मेरे मानहि सिख मेरी। (वि० १२६) मानहीं–दे० 'मानहिं'। मानहुँ–१. मानो, जैसे, २. मान लो। उ० १. पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि। (वि० ४५) मानहु–१. मान लो, २. मानो, जैसे। माना–१. स्वीकार किया, मान लिया, २. मान। दे० 'मान'। उ० १. नाहिन कछु औगुन तुम्हार अपराध मोर मैं माना। (वि० ११४) मानि–मानकर। उ० सकल-सौभाग्य-सुख-खानि जिय जानि, सठ ! मानि बिस्वास बद बेद सारं। (वि० ४६) मानिअहिं–१. मानो, २. मानेगा। मानिबी–दे० 'मानबि'। उ० तुलसी सील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी।

(मा० १।३३६।छं० १) मानिबो–मानना, मानिएगा। उ० लंक दाह उर आनि मानिबो। (गी० ५।१४) मानिय–१. मानिये, स्वीकार कीजिये, २. मानते हैं। उ० २. मानिय सिय अपराध बिनु। (प्र० ६।७।२) मानियत–मानता है। मानिये–मानो, मानना चाहिए। उ० इनको बिलगु न मानिये बोलहिं न बिचारी। (वि० ३४) मानिहहिं–मानेंगे। मानिहि–मानेगा, स्वीकार करेगा। मानिहौं–मानूँगा। उ०दे०'मान्यौ'। मानी–१.अभिमानी, घमंडी, २. मान किया, सम्मान किया, ३. मान ली। उ० १. विद्यमान-दसकंठ-भट-मुकुट मानी। (वि० २६ २. मानी राम अधिक जननी तें। (गी० ७।३७) मानु–मान जा, मान ले। उ० सुमिरु सनेह सहितु हित रामहिं मानु मतो तुलसी को। (वि० १६४) माने–१, मान्य, माननीय, २. स्वीकार किया, समझा, ३. पूजा की, उपासना की। उ० १. सोम से सील गनेस से माने। (क० ७।४३) २. हरि ते अधिक करि माने। (वि० २३५) मानेहु–१. मानो, जैसे, २. माना, मान लिया। मानो–१. मनु, जैसे, २. मान जाओ, ३. माना। उ० १. मानो देखन तुमहिं आई ऋतु बसंत। (वि० १४) ३. लेहु अब लेहु तब कोऊ न सिखाओ मानो। (क० ५।१७) मान्यौ–माना। उ० मान्यौ मैं न दूसरो न मानत न मानिहौं। (क० ७।६३)

मानद–मान या प्रतिष्ठा देनेवाला। उ० मुग्ध-मधु-मथन मानद अमानी। (वि० ५६)

मानप्रद–मान या इज़्ज़त प्रदान करनेवाला।

मानव–(सं०) मनुष्य। मानवाः–बहुत से मनुष्य। उ० ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यंति नो मानवाः। (मा० ७।१३१।श्लो०२) मानवी–स्त्री, औरत।

मानसं–मानस को, हृदय को। उ० कामादि दोष हितं कुरु मानसं च। (मा०५।१।श्लो०२) मानस–(सं०)–१ हृदय, चित्त, मन, २. मानसरोवर नामक झील। उ० १. बसहिं राम सिय मानस मोरे। (वि० १) २. कवि कोविद रघुवर चरित मानस मंजु मराल। (मा० १।१४ ग)

मानसनंदिनि–(सं०)–मानसरोवर से निकलनेवाली सरयू नदी। उ० नदी पुनीत सुमानसनंदिनि। (मा० १।३६।७)

मानसर–मानसरोवर नामक झील।

मानसिक–(सं०) मन का, दिल का, हृदय का। उ०मुएउ न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ। (गी० २।५७)

मानिक–दे० 'माणिक'। उ० सूझहिं रामचरित मनि मानिक। (मा० १।१।४)

मानुष–मनुष्य, आदमी। उ०मानुष करनि मूरि कछु अहई। (मा० २।१००।२)

मान्य–(सं०)–पूज्य, माननीय। उ० तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो। (कृ० ३१)

मान्यता–(सं०)–आदर, सम्मान, प्रतिष्ठा। उ०लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु। (मा० १।१६१ क)

मापा–(सं० मापक)–१. नापा, तौला, २. व्याकुल हो गया। उ० २. तलफत बिषम मोह मन मापा? (मा० २।१५३।३) मापी (१)–नापी।

मापी (२)–(?)–मत्त हुई, पागल हुई। उ० माजहि खाइ मीन जनु मापी। (मा० २।५४।२)

माम्–(सं०)–मेरा, हमारा। उ० श्री शंकरः पातु माम्। (मा० २।१।श्लो० १)

माय (१)–(सं० मातृ)–माता, माँ। उ० तुलसी सुखी निसोच राज ज्यों बालक माय बबा के। (वि०२२५)

माय (२)–(सं० माया)–माया। उ० मुनि वेष किये किधौं ब्रह्म जीव माय हैं। (गी० २।२८) मायहि–माया को। उ० बहुरि राम मायहि सिरु नावा। (मा० १।५६।३)

मायन–(सं० मातृ)–मातृका पूजन। उ० बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो। (रा० ५)

माया–(सं०)–१. मोह, विषयों का मोह, २. करुणा, दया, ३. धन, ४. ईश्वर की एक शक्ति जो विद्या और अविद्या दो प्रकार की होती है। अविद्या माया बंधन और विद्या मोक्ष का कारण है। उ० १. तजि माया सेइअ परलोका। (मा० ४।२३।३) ४. तत्र आश्रित तव विषम मायानाथ। (वि० ५६)

मायावी–(सं०)–१. छली, कपटी, २. मय राक्षस का पुत्र। उ० २. मय सुत मायावी तेहि नाऊँ। (मा० ४।६।१)

मायिक–(सं०)–माया से उत्पन्न, मिथ्या, झूठ। उ० कहि जगगति मायिक मुनिनाथा। (मा० २।२४७।१)

मायो–(?)–अंदाज़ किया, आज़माया। उ० सबनि अपनो बलु मायो। (गी० ५।१)

मार (१)–(सं० मारण)–१. मारो, २. मारते हैं, ३. मारकर। उ० २. मार खोज लै सौंह करि करियत लाज न त्रास। (दो० ४०६) मारइ–१. मारती है, २. मारे, मार सके। उ० २. तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता। (मा०३।२३।१) मारउँ–मारूँ, मार डालूँ। मारत–मारते हैं, धुनते हैं। उ० हाहाकार पुकार सब आरत मारत माथ। (प्र० ५।५।२) मारतहू–मारने पर भी, मारते ही। मारन (१)–मारना, मार डालना। मारब–दे०'मारबि'। मारबि–मार डालूँगा। उ० तो मैं मारबि काढ़ि कृपाना। (मा० ५।१०।५) मारसि–मारना। उ० मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। (मा० ५।१८।१) मारहिं–मारते हैं। मारहीं–मारते हैं। मारहु–मारो। मारा (१)–मार डाला, बध किया। उ० राम सकुल रन रावन मारा। (मा०१।२५।३) मारि–१. मार कर, २. लड़ाई। उ० १. मारि कै मार थप्यौ जग में। (वि० ४) २. नाहि त सनमुख समर महि तात करिअ हठि मारि। (मा० ६।६) मारिय–मारिए, मार डालिए। मारिहउँ–मारूँगा। उ० तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ। (मा० १।१८१) मारिहि–मारेगा। मारु (१)–मारो, मार डालो। उ० दे० 'मारू (१)'। मारू (१)–१.मारो, मार डालो, मार दो, २.लड़ाई का बाजा। उ० १. मारु मारु धरु धरु धरु मारू। (मा० ६।४३।३) मारे–१. मार डाले, २. मार डालने पर, मारने पर, ३.मारे हुए। उ० २.मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि बिबिध बिधि मारे। (वि० ११५) मारेउँ–मारा। मारेउ–मारा। मारेसि–मारा। मारेहु–१.मारना, २. मारा, ३. मारने पर भी। मारौं–मारूँ, मार डालूँ। उ० जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही। (मा० ३।१३।२) मार्यो–मारा। उ० गहि भूमि पार्यो लात मार्यो बालि सुत प्रभु पहिं गयो। (मा० ६।६७।छं०१) मार्यौ–१.

मारा, २. मारना। उ० २. मिले रहैं मार्‍यौ चहैं कमादि सँघाती। (वि० १४७)
मार (२)-(सं०)-कामदेव। उ० मार-करि मत्त-मृगराज त्रय नयन हरे। (वि० ४९) मारन (२)-कामदेवों, कामदेवों का समूह।
मारकंडेय-दे० 'मार्कंडेय'। उ० मारकंडेय मुनिवर्य हित कौतुकी। (वि० ६०)
मारखी-(?)-परंपरागत। उ० लोक लखि बोलिए पुनीत रीति मारखी। (क० १।१५)
मारग-दे० 'मार्ग'। उ० हरि मारग चितवहिं मति धीरा। (मा० १।१८८।२)
मारगन-(सं० मार्गण)-बाण, तीर। उ० राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल। (मा० ६।९१)
मारगु-दे० 'मारग'।
मारतंड-दे० 'मार्तंड'। उ० बेग जीत्यौ मारुत प्रताप मारतंड कोटि। (क० ५।६)
मारव-(सं० मालव)-मालव देश। उ० मरु मारव महिदेव गवासा। (मा० १।६।४)
मारा (२)-(सं० मार)-कामदेव। उ० तुम जो कहा हर जारेउ मारा। (मा० १।९०।३)
मारीच-(सं०)-एक राक्षस जो ताड़का राक्षसी का पुत्र तथा रावण का अनुचर था। उ० चतुर्दश-सहस-सुभट मारीच-संहारकर्ता। (वि० ४३) मारीचहिं-मारीच को।
मारीचा-दे० 'मारीच'।
मारु (१)-(सं० मार)-कामदेव।
मारु (२)-(सं० मारण)-चोट। उ० मोटी रोटी मारु। (दो० ४२६)
मारुत-(सं०)-वायु, हवा। हनुमान वायु के पुत्र थे। उ० मारुतनंदन मारुत को मन को खगराज को बेग लजायो। (क० ६।५४)
मारुति-(सं)-मारुत के पुत्र हनुमान। उ० जाको मारुति दूत। (दो० १७६)
मारू (२)-(सं० मार)-कामदेव। उ० मथै पानि पंकज निज मारू। (मा० १।२४७।४)
मार्कंडेय-(सं०)-एक अमर ऋषि।
मार्ग-(सं०)-पथ, रास्ता।
मार्जार-(सं०)-बिलार। उ० मोह-मूषक-मार्जार। (वि० ११)
मार्तंड-(सं०)-सूर्य।
मालं-दे० 'माल'। माल (१)-(सं० माला)-१. हार, माला, २. पंक्ति, ३. समूह। उ० १. उरग-नर-मौलि उर-मालधारी। (वि० ११) २. पावन गंग तरंग माल से। (मा० १।३२।७) मालनि-मालाओं ने। उ० मालनि मानो है देहनि तें दुति पाई। (गी० १।२७)
माल (२)-(सं० मल्ल)-पहलवान।
मालवान-दे० 'माल्यवंत'। उ० मालवान! रावरे के बावरे से बोल हैं। (क० ५।२१)
माला-(सं०)-१. हार, २. पंक्ति, ३. समूह। उ० ३. सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। (मा० १।३७।४)
मालिका-(सं०)-१. माला धारण करनेवाला, २. माला, पंक्ति, अवली। उ० १. विभंगतर तरंग-मालिका। (वि० १७) २. सुभग सौरभ धूप दीप वर मालिका। (वि० ४८)
मालिनि-(सं० मालिनी)-माली की स्त्री। उ० मंदाकिनि मालिनि सदा सींच। (वि० २३)
माली-(सं०)-१. फूल या उपवन आदि सींचनेवाला। २. जो माला पहने हो। उ० १. माली मेघमाल, बन माल विकराल भट। (क० ५।२) २. नाम दिव सेखर किरणमाली। (वि० ५५)
मालुम-(अर० मालूम)-विदित, मालूम। उ० नाथहि नीके मालुम जेते। (वि० २४३)
माल्यवंत-(सं०)-रावण का नाना और मंत्री। इसका दूसरा नाम 'माल्यवान' भी था। उ० माल्यवंत अति सचिव सयाना। (मा० ५।४०।१)
माष-(सं० मक्ष)-क्रोध।
माषी-(सं० मक्ष) क्रोधित हुई। माषे-क्रोधित हुए। उ० तुलसी लखन माषे, रोषे राखे राम रुख। (गी० १।८२)
मास (१)-(सं०)-३० दिनों का एक समय-विभाग, महीना। उ० मास दिवस महँ नाथु न आवा। (मा० ५।२७।३)
मास (२)-(सं० मांस)-गोश्त।
मासा (१)-दे० 'मास (१)'।
मासा (२)-दे० 'मास (२)'।
मासु (१)-दे० 'मास (१)'।
मासु (२)-दे० 'मास (२)'।
मासू (१)-दे० 'मासु (१)'।
मासू (२)-दे० 'मास (२)'।
माहँ-दे० 'माँह'। उ० जाई राजघर ब्याहि आई राजघर माहँ। (क० २।४)
माहली-(अर० महल)-महल में रहनेवाले। उ० कौने ईस किए की सभालु खास माहली। (क० ७।२३)
माहिं-(सं० मध्य)-में।
माहिष्मती-(सं०)-सहस्रबाहु की राजधानी।
माहीं-दे० 'माँह'। उ० तिभुवन तीनि काल जग माहीं। (मा० २।२।२)
माहुर-(सं० मधुर)-विष, ज़हर। उ० अमिय सजीवन माहुर मीचू। (मा० १।६।३)
माहुरु-दे० 'माहुर'। उ० अमिअ सजीवनु माहुरु मीचू। (मा० १।६।३)
माहूँ-(सं०मध्य)-में। उ०सोचै जनि मन माहूँ। (वि०२७५)
मिटइ-(सं० मृष्ट)-मिट जाता है। उ० सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारु। (मा०२।८७।४) मिटत-मिटता है, नष्ट होता है। उ०तजे चरन अजहूँ न मिटत नित। (वि०८७) मिटति-मिटती है, मिट जाती है। मिटहिं-मिटती है, मिट जाते हैं। उ० करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल। (मा० २।९३) मिटहि-१. मिटता है, २. मिटेगा। मिटा-मिट गया। मिटि-मिटकर। मिटिहहिं-मिटेंगे। मिटिहि-मिटेगा, मिट जाएगा। मिटी-मिट गई। उ० मिटी मीचु लहि लंक संक गई। (गी० ५।२७) मिटे-मिट गए, समाप्त हो गए। उ०मिटे दोष दुख दारिद दावा। (मा० २।१०२।३) मिट्यौ-मिटा, दूर हुआ। उ०

मिट्यौ महा मोह जी को छूट्यो पोच। (गी० १।८६)
मित–(सं०)–थोड़ा, कम, परिमित। उ० मित सुखप्रद सुनु राजकुमारी। (मा० ३।५।३)
मितभोगी–मितहारी, आहार-विहार में संतुलित। उ० अमित बोध अनीह मित भोगी। (मा० ३।४५।४)
मिताई–(सं० मित्र)–मित्रता। उ० ईंधन पात किरात मिताई। (मा० २।२५१।१)
मिति–(सं०)–अंत, सीमा, मर्याद। उ० हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापहि कवन मिति। (मा० १।१८३)
मित्र–(सं०)–दोस्त, बंधु, साथी, संगी। उ० ससि छवि-हर रबि सदन तउ मित्र कहत सब कोइ। (दो० ३२२) मित्रहि–मित्र को, दोस्त को। उ० मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। (मा० १।१७१।१)
मित्रता–(सं०)–दोस्त, मैत्री।
मिथिला–(सं०)–वर्तमान तिरहुत का प्राचीन नाम। जनक का राज्य यहीं था। इसी कारण वे 'मिथिलापति' 'मिथला-धनी' तथा मिथिलेश आदि कहे गए हैं। उ० मिथिला अवध विसेष तें जगु सब भयउ अनाथ। (मा० २।२७०)
मिथिलेस–(सं० मिथिलेश)–जनक। उ० फेरिअ प्रभु मिथि-लेस किसोरी। (मा० २।८२।१)
मिथ्या–(सं०)–झूठ, असत्य। उ०मिथ्या माहुर सज्जनहिं। (दो० ३३६) मिथ्यावादी–झूठा, झूठ बोलनेवाला।
मिनाक–दे० 'मैनाक'। उ० पूजा पाइ मिनाक पहिं। (प्र० ५।२।२)
मिल–(सं० मिलन)–मिला, मिलता। उ० कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। (मा० ४।२७।२) मिलइ–मिलती है, मिल जाती है। उ० तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ। (मा० १।१५९ ख) मिलई–१. मिले, २. मिलता है, मिल जाती है। उ० गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई। (मा० २।२३२।१) मिलउँ–मिलूँ, मिल जाऊँ। मिलत–१. मिलता है, २.मिलने पर। उ० २.मिलत एक दुख दारुन देहीं। (मा० १।५।२) मिलति–मिलती है। मिलतेउ–मिलता। उ० मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही। (मा०७।६९।२) मिलतेहु–मिलते। उ० जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। (मा०१।८१।१) मिलनि–मिलने का भाव। उ० बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं। (मा० २।२००।४) मिलनी–दे० 'मिलनि'। मिलब–१. मिलूँगा, २.मिलिएगा। मिलयेसि–मिलाया, मिलवाया। मिलवहिं–मिलाते हैं। मिलहिं–१. मिलते हैं, २. मिलें, मिल जावें। उ० २. मिलहिं जोगी जरठ तिनहिं दिखाउ निरगुन खानि। (कृ०५२) मिलहु–मिलो, मिलना। मिला–१.भेंट की, २. मिल गया, ३. गले मिला। मिलि–मिलकर। उ० मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं। (मा० २।२४।१) मिलिहहिं–मिलेंगे। मिलिहि–मिलेगा। मिली–मिल गई। मिलु–मिलो। मिले–१. मिल गए, २. मिलने पर। उ० १. मिले मुदित, बूझि कुसल परसपर। (गी० ५।३५) मिलेउ–मिला। मिलेहु–मिला। मिलौं–मेल करूँ, मिलूँ। उ० पुनि मिलौं बैरु बिसराई। (कृ० ५६)
मिलन–(सं०)–१. मिलाप, सम्मिलन, २. प्राप्ति। उ० १. कहहुँ जुगल मुनिवर्य कर मिलत सुभग संवाद। (मा० १।४३ ख)
मिलनु–दे० 'मिलन'।
मिलाउब–मिलाऊँगा, मिला दूँगा। उ० अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी। (मा० १।८०।२)
मिलिक–(अर० मिल्कियत)–जागीर। उ० यह ब्रजभूमि सकल सुरपति सों मदन मिलिक करि पाई। (कृ० ३२)
मिष–दे० 'मिस'।
मिष्ट–(सं०)–मीठा, मधुर।
मिस–(सं० मिष)–१. बहाना, हीला, २. हेतु, कारण, ३. कपट, छल, ४. स्वाँग, तमाशा, ५. डाह। उ० १. उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन। (ब० १८)
मिसकीनता–(अर०)–गरीबी। उ०लाभ योग छेम की गरीबी मिसकीनता। (वि० २६२)
मिसि–दे० 'मिस'।
मिसु–दे० 'मिस'। उ० १. रामहिं चले लिवाइ धनुष मख मिसु करि। (जा० ४३)
मींच–(सं० मृत्यु)–मौत, मरण। उ० मींच ते नीच लगी अमरता। (मा० ५।१५)
मींचु–दे० 'मींच'। उ० मीचु हति महि देव बालक कियो मींचु बिहीन। (गी० ७।२४)
मींचू–दे० 'मींच'।
मींजत–(?) १.मीजते हैं, मसलते हैं, २. मीजते हुए। उ० २. लियो छुड़ाइ चले कर मींजत। (क०४।८) मु० कर मींजत–पछताते हुए। दे० 'मींजत'। मींजहीं–पीस देते थे। मींजा–१. मला, मसला, २. हाथ फेरा, ठोका। उ० २. मींजा गुरु पीठ। (वि० ७६) मींजि–मीजकर, पीस कर।
मीचु–दे० 'मींच'। उ० आई मीचु मिटत चपत राम नाम को। (क० ७।७५)
मीचू–दे० 'मींच'। उ० अमिअ सजीवनु माहुरु मीचू। (मा० १।६।३)
मीजत– दे० 'मींजत'। उ०अधर दसन दसि मीजत हाथा। (मा०६।३१।३) मीजहीं–मींजते हैं, मसलते हैं, पीसते हैं। उ० दाँतन्ह काटि लातन्ह मीजहीं। (मा०६।८१। छं० १) मीजि–मीजकर। उ०मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। (मा० २।१४४।४) मु० मीजि हाथ–हाथ मीजकर, पछताकर। उ० दे० 'मीजि'। मीजिहैं–मीजेंगे। मु० मींजिहैं हाथ–पछताएँगे। उ० मूढ़ मीजिहैं हाथ। (दो० १६५)
मीठ–(सं० मिष्ट)–१. मीठा, मधुर, २. अच्छा। उ० १. मीठ काह कवि कहहिं जाहि जेइ भावइ। (पा०७२) मीठी–'मीठ' का स्त्रीलिंग।
मीठो–दे० 'मीठ'। उ० १. मीठो अरु कठवत भरो, रौताई अरु खेम। (दो० १५)
मीत–(सं० मित्र)–दोस्त, मित्र। उ० मीत पुनीत कियो कपि भालु को। (क० ७।५)
मीन–(सं०)–१. मछली, २. मीन राशि। उ० १. मीन मनोहर ते बहु भाँती। (मा० १।३७।४) मीन की सनीचरी–मीन राशि पर शनीचर होना। इसका फल राजा-प्रजा का नाश है। उ० कोढ़ में की खाज सी सनी-चरी है मीन की। (क० ७।१७७) मीनहिं–मछली को।

मीनता–मछलीपन। उ० सीतापति-भक्ति-सुरसरि-नीर मीनता। (वि० २६२)
मीना–दे० 'मीन'। उ० १.पाय पयोनिधि जन मन मीना। (मा० १।२७।२)
मीनु–दे० 'मीन'।
मीला–(सं०मिल) १. मिल करके, २. मिला। उ० १. खेल गरुड़ जिमि अहि गन मीला। (मा० ६।६६।१)
मीसी–(सं० मिश्रित)–एक से अधिक अनाज से बनी। उ० छोटी मोटी मीसी रोटी। (कृ० २)
मुंज–(सं०)–सरपत, सरई, मूँज। उ० परम पावन पापपुंज-मुंजाटवी-अनल-इव-निमिष-निर्मूलकर्ता। (वि० ५५)
मुंड–(सं०)–१. कटा सिर, कटा हुआ कपाल, २. सिर, ३. शुंभ राक्षस का सेनापति जिसे दुर्गा ने मारा था। उ० १. रुंड मुंड मय मेदिनि करहीं। (मा० २।११२।१) ३. मुंड-मद भंग करि अंग तोरे। (वि० १५)
मुंडित–(सं०) मूड़े हुए। उ०मुंडित सिर खंडित भुज बीसा। (मा०५।११।२)
मुँदरी–(सं० मुद्रिका)–अँगूठी। उ० नाथ हाथ माथे धरेउ, प्रभु-मुँदरी मुँह मेलि। (प्र० ३।७।१)
मुँह–(सं०मुख)–१.बदन, आनन, २.मुख-विवर। उ०.२.गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा। (मा० २।१६२।१) मु० बोलौं बात मुँह भरि–प्रेम से बोले, भली भाँति बोले। (गी० ७।३७) मुँह मसि लाई–मुँह में कालिख लगाकर। (मा० १।२६६।४) मुँह मीठ–मधुर बोलनेवाला। (मा० २।१७)
मुई–(सं० मरण)–मरी, मर गई, कष्ट सहा। उ० जननी कत भार मुई दस मास। (क० ७।४०) मुए–१. मरे, २. मरने पर, ३. मृतक। उ० १. मुए मरत मरिहैं सकल। (दो० २२४) मुएउ–मरने पर भी। उ० मुएउ न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ। (गी० २।५७)
मुकता–(सं० मुक्ता)–मोती।
मुकतावहिंगे–(सं० मुक्त)–छुड़ावेंगे। उ० लोकपाल सुरनाग मनुज सब परे बंदि कब मुकतावहिंगे। (गी० ५।१०)
मुकताहल–(सं० मुक्ताफल)–मोती।
मुकति–दे० 'मुक्ति'।
मुकुंद–(सं०)–१. कृष्ण, २. विष्णु। उ० २. तीज त्रिगुन पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद। (वि० २०३)
मुकुट–(सं०)–शिरोभूषण, ताज। उ० रत्न हाटक जटित मुकुट मंडित मौलि। (वि० ५१)
मुकुत–(सं० मुक्ति)–मोक्ष मुक्ति। उ० मुकुत जात जब कोइ। (दो० ५३१)
मुकुता–(सं० मुक्ता)–मोती, मौक्तिक। उ० मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। (मा० १।११।१)
मुकुति–(सं० मुक्ति)–मोक्ष, अपवर्ग। उ० मुकुति मनोहर मीचु। (दो० २२२)
मुकुर–(सं०)–शीशा, दर्पण। उ० काई बिषय मुकुर मन लागी। (मा० १।११५।१)
मुक्ख–दे० 'मुँह'।
मुक्त–(सं०)–बंधनरहित, जन्म-मरण रहित। उ० नित्य निर्भय नित्य मुक्त निर्मान हरि। (वि० ५३)
मुक्तये–मुक्ति के लिए, छुटकारे के लिए।
मुक्ताफल–(सं०)–मोती।
मुक्ताहल–दे० 'मुक्ताफल'।
मुक्ति–(सं०)–१. छुटकारा, २. मोक्ष, निर्वाण। उ० २. भुक्ति मुक्ति दायिनि भयहरण कालिका। (वि० १६)
मुख–(सं०) मुँह, आनन। उ० का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि। (बा० १६) मुखनि–मुखों से। मुखहिं–मुख से। उ० मुखहिं निसान बजावहिं भेरी। (मा० ६।३६।५)
मुखर–(सं०)–१. अप्रिय बोलनेवाला, २. बकवादी, बहुत बात करनेवाला, ३. आवाज़, रव, ध्वनि। उ० २. गिरा मुखर तनु अर्धभवानी। (मा० १।२४७।३) ३. मधुकर मुखर सोहाई। (वि० ६२)
मुखागर–(सं० मुखाग्र)–ज़बानी, मुँह से। उ० कहेउ मुखागर मूढ़ सन मम संदेस उदार। (मा० ५।५२)
मुखिया–(सं० मुख्य)–सरदार, राजा, प्रधान पुरुष। उ० मुखिया मुख सो चाहिए खान-पान को एक। (मा०२।३१५)
मुखु–दे० 'मुख'।
मुख्य–(सं०)–प्रधान, खास। उ० मुख्य रुचि होत बसिबे की पुर रावरे। (वि० २१०)
मुग्ध–(सं०)–१. मोहित, २. विस्मित, ३. मूर्ख, ४. अल्प-वयस्क, ५. सुन्दर। उ०३. मुग्ध-मधुमथन मानद अयानी। (वि० ५६)
मुचत–(सं० मोचन)–छूटते हैं। उ० अति मुचत स्रम कन मुखनि। (गी० ७।१८)
मुट्ठी–(सं० मुष्टि)–१. हाथ की मूठी, २. किसी हथियार आदि की मुठिया।
मुठभेर–(?)–सामना होना।
मुठभेरी–(?)–आमने-सामने से। उ० चूक न घात मार मुठभेरी। (मा० २।१३३।२)
मुठिकन्ह–(सं० मुष्टिक)–मूठों से, घूसों से। उ० मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। (मा० ६।५३।३) मुठिका–घूसा, मुक्का। उ० तब मारुत सुत मुठिका हन्यो। (मा० ६।६५।४)
मुड़ाई–(सं० मुंड)–मुड़ाकर, मुंडन कराकर। उ० मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी। (मा० ७।१००।३)
मुद–(सं०)–हर्ष, आनंद। उ० पंचाक्षरी प्रान मुद माधव। (वि० २२)
मुदा–(सं० मुद)–प्रसन्न। उ० एहि ते तब सेवक होत मुदा। (मा० ७।१४।छं० ७)
मुदित–(सं०)–प्रसन्न, हर्षित। उ०पिवत मज्जत मुदित संत समाजा। (वि० ४४)
मुदिताँ–प्रसन्नता। उ० मुदिताँ मथै बिचार मथानी। (मा० ७।११७।८)
मुद्रिक–दे०'मुद्रिका'। उ०देति मोद मुद्रिक न्यारी। (वि०६३)
मुद्रिका–(सं०)–अँगूठी। उ० तब देखी मुद्रिका मनोहर। (मा० ५।१३।१)
मुधा–(सं०)–व्यर्थ, निष्प्रयोजन। उ० मुधा भेद जद्यपि कृत माया। (मा० ७।७८।४)
मुनिंदा–(सं० मुनीन्द्र)–मुनियों में श्रेष्ठ। उ० सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। (मा० १।६४।१)
मुनि–(सं०)–१. साधु, ऋषि, महात्मा, तपस्वी, २. सात

की संख्या, ३. सप्तमी, ४. सातवाँ। उ० १. मुनि माँगत सकुचाहीं। (वि०४) ३. मुनि प्रथमादिक बार। (दो०४५८) मुनिन्ह-मुनियों को, मुनिगण को। उ० कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। (मा० १।७६।१) मुनिहिं-१. मुनि को, २ मुनि ने।

मुनिपट-मुनियों का वस्त्र, वल्कल, भोजपत्र। उ० मुनिपट भूषण भाजन आनी। (मा० २।७६।१)

मुनिहुँ-मुनि की भी। उ० मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ। (गी० २।३२)

मुनी-दे० 'मुनि'। उ० १. सोइ भयो द्रव रूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को। (क० ७।१४६)

मुनीस-(सं० मुनीश)-मुनियों में श्रेष्ठ। मुनीसन्ह-श्रेष्ठ मुनियों ने। उ० भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए। (मा० १।३३।४)

मुनीसा-दे० 'मुनीस'। उ० करहु कृपा जन जानि मुनीसा। (मा० १।१८।३)

मुनीसु-दे० 'मुनीस'।

मुमुक्षु-(सं०)-मोक्ष की इच्छा रखनेवाला।

मुयहु-(सं० मरण)-मरने पर भी। उ० मुयहु न माँगब नीच। (दो० ३३५) मुये-१. मरे हुए, मुर्दे, २. मरे। उ० १. नतु डोलत और मुये धरि देही। (क० ७।३६) मुयेहि-मरने पर, मरने पर भी।

मुर-(सं०)-एक दैत्य जिसे कृष्ण ने मारा था, इसके पाँच सिर थे।

मुरछा-(सं० मुर्च्छा)-बेहोशी, वह अवस्था जिसमें चेतना नहीं रह जाती।

मुरछि-मूर्च्छित होकर।

मुरछित-जिसे मुर्च्छा आ गई हो, बेहोश।

मुरा-(सं०मुरण)-हिचका, झिझका। उ० गयउ सभाँ मन नेकु न मुरा। (मा० ६।१६।४) मुरि-१. मुड़कर, २. झिझककर। मुरे-दे० 'मुरेउ'। उ० २. बड़ो लाभ कन्या की रति को जहँ तहँ महिप मुरे। (गी० १।८७) मुरेउ-१. मुड़ गए, विमुख हो गए, २. हिचक गए। उ० १. मुरेउ न मन तनु टरेउ न टारे। (मा०६।६५।३) मुरै-१. मुरे, मुड़े, २. हिचके।

मुरारि-(सं०)-'मुर' राक्षस को मारनेवाले, कृष्ण। उ०कस न करहु करुना हरे! दुख हरन मुरारि! (वि० १०६) मुरारे-हे कृष्ण! उ० जद्यपि मैं अपराध-भवन दुख सम न मुरारे। (वि० ११०)

मुरारी-दे० 'मुरारि'। उ०आजु उनींदे आए मुरारी। (कृ०२२)

मुरुखाई-(सं० मूर्ख)-मूर्खता। उ० बटु कहत 'मुरुखाई महा'। (पा० ५४)

मुरुछा-मूर्च्छा, बेहोशी। उ० गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह। (मा० २।४३)

मुरुछि-मूर्च्छित होकर।

मुरुछित-(सं० मूर्च्छा)-बेहोश, मूर्च्छित। उ० जोगी अकंटक भए पतिगति सुनत रति मुरुछित भई। (मा० १। ८७। छं० १)

मुष्टि-(सं०)-घूसा, मूका। उ० मुष्टि प्रहार हनत सब भागे। (मा० ५।२८।४)

मुसलाधार-(सं० मुशल)-मूसल के समान मोटी धार का। उ० बरषैं मुसलाधार बार बार घोरि कै। (क० ५।१६)

मुसुकाइ-(सं० मुस्कान)-मुस्कराकर, हँसकर। मुसुकाई-मुस्कराकर। उ० जागबलिक बोले मुसुकाई। (मा० १। ४७।१) मुसुकाता-मुस्काते हुए। उ० भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता। (मा० १।६३।१)

मूँठि-(सं० मुष्टि)-मूठी, मुट्ठी। मूँठि मारि दी-टोना कर दिया। उ० काहू देवतानि मिलि मोटी मूँठि मारि दी। (क० ७। १८३)

मूँड़-(सं० मुंड)-कपाल, सर। उ० मूँड़ के कमंडलु खपर किये कोरि कै। (क० ६।५०) मु० मूँड़ चढ़े-गुस्ताख हो गए। (वि० २४६) मूँड़ मारि-परेशान होकर, दिमाग लड़ाकर। (वि० २७६)

मूँदि-(सं० मुद्रण)-बंद करके।

मू-मूल नक्षत्र। उ० आ भ अ मू गुनु साथ। (दो० ४५७)

मूक-(सं०)-१. चुप, २. गूँगा, न बोलनेवाला, ३. दीन, ४. प्रेत, ५. मत्स्य। उ० २. सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै? (जा० ६७)

मूकिये-(सं० मूक)-चुप रहिए। उ० पाले तेरे टूक को परेहूँ चूक मूकिये न। (ह० ३४)

मूकी-(सं० मुक्त)-छोड़ दी, त्याग दी। उ० मन मानि गलानि कुबानि न मूकी। (क० ७।८८)

मूठि-दे० 'मुट्ठी'। उ०२. मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। (मा० २।३१।१)

मूठी-दे० 'मुट्ठी'। उ० १. भरि-भरि मूठी मेलिए। (दो० ४५)

मूड़हि-(सं०मुंड) सिर पर। उ० मुँह लाए मूड़हि चढ़ी अंतहु अहि-रिनि तू सूधी करि पाई। (कृ०८)

मूढ़-(सं० मूढ)-मूर्ख। उ० मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। (मा० ५।५६।३)

मूढ़ता-मूर्खता, बेवकूफ़ी। उ० जागि त्यागु मूढ़तानुरागु श्री हरे। (वि० ७४)

मूत्र-(सं०)-पेशाब, मूत। उ० सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि। (वि० १३६)

मूदि-दे० 'मूँदि'। उ० श्रवन मूदि न त चलिअ पराई। (मा० १।६४।२)

मूर-(सं० मूल)-१. जड़, २. मूलधन, जमा, पूँजी। उ० २. फिरेउ धनिक जिमि मूर गँवाई। (मा० २।६६।४)

मूरख-दे० 'मूर्ख'। उ० मूरख अवगुन गहे। (मा० ३।१)

मूरति-(सं० मूर्ति)-१. मूर्ति, प्रतिमा, २. शरीर, देह, ३. आकृति, शकल, ४. चित्र, तसवीर। उ० १. मंगल-मूरति मारुत-नंदन। (वि० ३६) २. मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरंचि। (गी० १।५)

मूरि-(सं० मूल)-जड़, जड़ी। उ० सुजन सजीवनि मूरि सुहाई। (मा० १।३।४)

मूरुख-दे० 'मूर्ख'। उ० मूरुख हृदय न चेत। (दो० ४८४)

मूर्ख-(सं०)-बेवकूफ़, बालिश, मूढ़।

मूर्च्छा-(सं०)-बेहोशी, अचेतनता।

मूर्च्छित-(सं०)-बेहोश, बेसुध।

मूल–(सं०)–१. जड़, २.कारण, हेतु, ३. मूल नाम का १६ वाँ नक्षत्र, ४. प्रधान। उ० १. तथा ३. मूल-मूल सुर बीथि-बेलि। (गी० १।१६) २. सकल अमंगल मूल निकंदन। (वि० ३६)
मूलक–(सं०)–मूली। उ० सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी। (मा० १।२५३।३)
मूलिका–(सं०)-जड़ी, औषधि की जड़। उ० बलिदान पूजा मूलिका मनि साधि राखी आनि कै। (गी० ७।५)
मूषक–(सं०)–चूहा। उ० मोह-मूषक-मार्जार। (वि० ११)
मूसर–(सं० मुशल)–अनाज कूटने का डंडा। उ० कलपद्रुम काटत मूसर को। (क० ७।१०३।३)
मृग–(सं०)–१. पशु, २, हरिण, ३. हाथी, ४. मृगशिरा नक्षत्र, ५. खोज, ढूँढ़, तलाश। उ० १. खग मृग ब्याध पषान बिटप जड़। (वि० १०१) २.चारु जनेउ माल मृगछाला। (मा० १।२६८।४) ४. स्नुति-गुन कर-गुन पु-जुग मृग। (दो० ४५६)
मृगछाला–(सं० मृग+छल्ल)–मृगचर्म, हरिन का चमड़ा। उ० दे० 'मृग'।
मृगजल–दे० 'मृगतृष्ना'। उ० मृगजल-रूप बिषय कारन। (वि० ११६)
मृगतृष्ना–(सं० मृगतृष्णा)–धूप में जल का ज्ञान। मृग-बारि। उ० मृगतृष्ना सम जग जिय जानी। (वै० १४)
मृगनयनी–(सं० मृग+नयन)–मृगे की तरह सुंदर आँख-वाली सुंदरी, स्त्री। उ० मृगनयनी के नयन सर, को अस लाग न जाहि? (दो० २६२)
मृगपति–(सं०)–पशुओं का राजा, सिंह। उ० मृगपति सरिस असंक। (मा० ६।११ ख)
मृगबारि–(सं० मृगवारि)–झूठा जल, तृष्णा का जल। उ० बूड़ो मृगबारि, खायो जेंवरी कों साँप रे! (वि० ७३)
मृगमद–(सं०)–कस्तूरी। उ० मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। (मा० १।१६४।४)
मृगया–(सं०)–शिकार, आखेट। उ० मृगया कर सब साजि समाजा। (मा० १।१५६।२)
मृगराऊ–दे० 'मृगराज'। उ० कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ। (मा० २।१०६।१)
मृगराज–(सं०)–जानवरों का राजा, सिंह। उ० अतुल मृगराज वपु धरित विहरित अरि। (वि० ५२)
मृगलोचनि–(सं० मृग+लोचन)–मृग की तरह सुंदर आँखवाली स्त्री। उ० बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि। (मा० १।३१८।१)
मृगांक–(सं०)–१. वैद्यक की एक दवा, सोने का भस्म, २. चंद्रमा। उ० १. रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो। (क० ५।२५)
मृगा–(सं० मृग)–१. हरिण, २. पशु। उ० १. देखि मृगा मृगनैनी कहै। (क० ३।१)
मृगी–(सं०)–हरिणी। उ० मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू। (मा० २।५४।२)
मृड–(सं०)–महादेव।
मृणाल–दे० 'मृनाल'।
मृत–(सं०)१. मरा हुआ, २. मिट्टी।
मृतक–(सं०)–मरा हुआ। उ० मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। (मा० १।१४५।४)
मृत्तिका–(सं०)-मिट्टी। उ० यथा पट-तंतु घट-मृत्तिका। (वि० ५४)
मृत्युंजय–(सं०)–महादेव, शंकर।
मृत्यु–(सं०)–मौत, मरण। उ० मृत्यु उपस्थित आई। (वि० १२०)
मृदंग–(सं०)–पखाउज नामक बाजा। उ० बाजहि मृदंग डफ ताल बेनु। (गी० ७।२२)
मृदु–(सं०)–१. मधुर, २. कोमल, नरम। उ० २. तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु। (वि० ६३)
मृदुता–(सं०)–कोमलता, सुकुमारता। उ० बिटप फूलि-फलि तृन मृदुता हीं। (मा० २।३११।४)
मृदुल–(सं०)–कोमल, नरम। उ० मृदुल बनमाल उर आजमानं। (वि० ५१)
मृनाल–(सं० मृणाल)–कमल का डंठल, कमलनाल। उ० तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। (मा० १।२५५।४)
मृषा–(सं०)–झूठ, मिथ्या। उ०मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। (मा० ५।२६।१)
में–(सं० मध्य)–बीच, मध्य।
मेंढक–दे० 'मेढक'।
मेंढुक–दे० 'मेढक'। उ० मेंढुक मर्कट बनिक बक, कथा सत्य उपखान। (दो० ३१८)
मे–(सं०)–मेरे लिए, मुझे, मुझको। उ० मुखांबुज श्री रघुनंदनस्यमे सदाऽस्तु सा मंजुलमंगलमदा। (मा० २।१। श्लो० २)
मेकल(सं०)–विंध्य पर्वत का एक भाग जिससे नर्मदा नदी निकली है। उ० मेकलसुता गोदावरि धन्या। (मा० २।१३८।२) मेकलसुता–(सं०)–नर्मदा नदी। उ० दे० 'मेकल'।
मेखल–दे० 'मेखला'। उ० १. कनक जटित मनि नूपुर मेखल। (वि० ६३)
मेखला–(सं०)–१. करधनी, कटिसूत्र, २. जनेऊ, ३. पहाड़ का ढाल, ४. नर्मदा नदी। उ० १. मणि-मेखला कटि प्रदेशं। (वि० ६१)
मेखु–दे० 'मेष'। उ० २. मनहुँ बिधि जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेखु। (गी० ७।१६)
मेघ–(सं०)–१. बादल, अभ्र, २. कपास। उ० १. करहि मेघ तहँ-तहँ नभ छाया। (मा० ३।७।३)
मेघडंबर–(सं०)–रावण का छत्र विशेष। उ० छत्र मेघडंबर सिरधारी। (मा० ६।१३।३)
मेघनाद–(सं०)–मेघ के समान गरजनेवाला इंद्रजित् जो रावण का पुत्र था। उ० मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। (मा० १।१८२।१)
मेचक–(सं०)–१. काला, श्याम, २. मोरपंख की चंद्रिका। उ० १. धूप धूम नभु मेचक भयउ। (मा० १।३४७।१)
मेचकताई–कालिमा, श्यामता। उ० कह प्रभु ससि महँ मेचकताई। (मा० ६।१२।२)
मेटत–(सं० मृष्ट)–मिटाते हैं, नष्ट करते हैं। उ० मेटत कठिन कुअंक भाल के। (मा० १।३२।५) मेटहु–मेटो,

मिटाओ। उ० मेटहु कुल कलंक कोसलपति। (गी० २।७१) मेटि-मिटा, मिटाकर। उ० मेटि को सकइ। (पा० ७१)
मेडुकन्हि-(सं० मंडूक)-मेढकों को। उ० जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि। (मा० ६।२३ ग)
मेढक-(सं० मंडूक)-दादुर, मेघा। उ० तेरे देखत सिंह को सिसु-मेढक लीले। (वि० ३२)
मेढ़ी-(सं० वेणी)-तीन लड़ियों की गुथी चोटी। उ० मेढ़ी लटकन मनि-कनक-रचित। (गी० १।११)
मेद-(सं०)-१. बसा, चरबी, मज्जा, २.मोटी, भारी। उ० २.मेद महिमा निधान गुन ज्ञान के निधान हो। (ह०१४)
मेदिनी-(सं०)-पृथ्वी। उ० मंडि मेदिनी को मंडलीक लीक लोपिहैं। (क० ६।१)
मेध-(सं०)-यज्ञ। उ० कोटिन बाजि मेध प्रभु कीन्हे। (मा० ७।२४।१)
मेधा-(सं०)-बुद्धि, धारण करनेवाली बुद्धि, समझ। उ० मेधा महि गत सो जल पावन। (मा० १।३६।४)
मेर-दे० 'मेल'।
मेरवनि-(सं० मेल)-मेल की, मिली। उ०कटि निषंग परिकर मेरवनि। (गी० ३।५)
मेरियै-मेरी ही। उ० चूक चपलता मेरियै तू बड़ो बड़ाई। (वि० ३५) मेरियौ-मेरी भी। उ० पै मेरियौ टेव कुटेव महा है। (क० ७।१०१) मेरी-(सं० मया+प्रा० केरा)-मम, मदीय, हमारी। उ० जिनके भाल लिखी लिपि मेरी। मेरे-मेरे, हमारे। उ० मेरे मन मान है न हर को न हरि को। (ह० ४२)
मेरु (१)-(सं०)-१. सुमेरु पर्वत जो सोने का कहा गया है, २. पर्वत, ३. माला की बड़ी मनिया। उ० १. सकौं मेरु मूलक इव तोरी। (मा० १।२५३।३) २. धौर धकानि सों मेरु हले हैं। (क० ६।३३)
मेरु (२)-(सं० मेल)-मेल, मिलाप। उ० करत मेरु की बतकही। (गी० ७।६)
मेरू (१)-दे० 'मेरु (१)'। सुमेरु पर्वत। उ० सकइ उठाइ सुरासुर मेरू। (मा० १।२६२।४)
मेरू (२)-दे० 'मेरु (२)'।
मेरो-(सं० मया+प्रा० केरा)-हमारा, मेरा। उ० मेरो अनुचित न कहत लरिकाई बस। (गी० १।८३) मेरोइ-मेरा ही। उ० मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ। (गी० २।८४) मेरोई-दे० 'मेरोइ'।
मेल-(सं०)-मिलने की क्रिया या भाव, संयोग, भेंट।
मेलइ-(सं० मेल)-मेलता है, डालता है। मेलत-डालते हैं। मेलहीं-पहनते हैं, डालते हैं। उ०धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं। (मा० ६८१।छं० २) मेला-१.डाला, २.कर लिया। उ० २.तुरत बिभीषन पाछें मेला। (मा० ६।९४।१) मेलि-डालकर। उ० मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना। (मा० ७।६६।१) मेलिहि-डालेगी। उ० मेलेहि सीय राम उर माला। (मा० १।२४५।२) मेलीं-१. डाल दी, २. डालकर। उ० १. सुता बोलि मेली मुनि चरना। (मा० १।६६।४) मेले-डाले, गिराये। उ० पद-सरोज मेले दोउ भाई। (मा० १।२६०।३) मेलैं-(सं० मेल)-१. मेलते हैं, मिलाते हैं, २. डालते हैं। उ० १. मेलैं गरे छुरा धार सों। (क० ५।११) मेलै-डाले, डाल दे। उ०जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल। (मा० १।१३१)
मेष-(सं०)-१. भेंड़, मेढ़, २. पहली राशि। उ० १. वृक बिलोकि जिमि मेष बरूथा। (मा० ६।७०।१) २. मेषादिक क्रम ते गनहिं। (दो० ४५६)
मेह-(सं० मेघ)-बादल, घटा। उ० राम नाम नव नेह मेह को मन हठि होहि पपीहा। (वि० ६५)
मैं-(सं०मया)-१.उत्तम पुरुष एक वचन सर्वनाम, हम, २. अहंकार। उ० १. मैं अरु मोर तोर तैं माया। (मा० ३।१५।१) २. मैं तैं मेट्यो मोहतम। (वै० ३३)
मैत्री-(सं०)-मित्रता, दोस्ती, स्नेह।
मैथिली-(सं०)-जानकी, सीता। उ० श्रीखंड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली। (मा० ६।१०९।छं०१)
मैथुन-(सं०) स्त्रीप्रसंग, सहवास, भोगविलास। उ० भय निद्रा मैथुन अहार सब के समान जग जाए। (वि०२०१)
मैन-(सं० मदन)-१. मोम, २. कामदेव, ३. प्रेम। उ० १. मैन के दसन कुलिस के मोदक। (कृ० ५१) २. मुनि वेष बनाए है मैन। (गी० २।२४) ३. ग्वालि मैन मन मोए। (कृ० ११)
मैना-(सं० मेनका या मदन)-पार्वती की माता। उ० सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। (मा० १।६८।२)
मैनाक-(सं०)-एक पर्वत का नाम। उ० तैं मैनाक होहि श्रमहारी। (मा० ५।१।५)
मैया-(सं० मातृ)-माता, माँ। उ० सुनु मैया! तेरी सौं करौं। (कृ० ८)
मैला-(सं० मलिन)-१. गंदा, मलिन, २. उदास। उ० १. पठए बालि होहिं मन मैला। (मा० ४।१।३)
मों-(सं० मध्य)-में, बीच। उ० मन मों न बस्यौ अस बालक जौ। (क० १।२)
मो (१)-(सं० मम)-मैं, मेरा, मेरे। उ० मो पर कीबी तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि० ३३) मोकहँ-दे० 'मोको'। उ०नाहिन नरक परत मोकहँ डर जद्यपि हौं अति हारो। (वि० ६४) मोको-मुझको, मेरे लिए। उ० मोको और ठौर न सुटेक एक तोरिए। (वि०१८१) मोतें-मुझसे, मेरी अपेक्षा। उ० २. को जग मंद मलिनमति मोतें। (मा० १।२८।६)
मो (२)-(सं०मध्य)-में। उ० पर निंदक जे जग मो बगरे। (मा० ७।१०२।५)
मोई-(?)-१. भिगोई, २.मोह ली। उ० २. कछुक देवमायाँ मति मोई। (मा०२।८५।३) मोए-भिगोए, डुबोए। उ० बिथकी है ग्वालि मैन मन मोए। (कृ० ११)
मोक्ष-(सं०)-मुक्ति, निर्वाण, अपवर्ग। उ० मोक्ष-बितरनि, बिदरनि जगजाल की। (क० ७।१८२)
मोखे-(सं० मुख)-खिड़कियाँ। उ० नयन बीस मंदिर कैसे मोखे। (गी० ५।१२)
मोचक-(सं०)-छुड़ानेवाले।
मोचत (सं० मोचन)-छोड़ते हैं, बहाते हैं। उ० बारिज लोचन मोचत बारी। (मा०२।३१७।३) मोचति-छोड़ती

हैं, बहाती हैं। उ० मंजु बिलोचन मोचति बारी। (मा० २।५८।४) मोचहिं–१.छोड़ती हैं, २.दूर करती हैं। उ०१. उमा मातु मुख निरखि नयन जल मोचहिं। (पा० १५६)

मोचन–(सं०)–१. छुड़ाना, छुटकारा देना, २. दूर करनेवाला, छुटकारा देनेवाला। उ० २. गए कौसिक आश्रमहिं बिप्रभय-मोचन। (जा० ४१) मोचनि–मोचनेवाली, छुड़ानेवाली। उ० ससि मुख कुंकुम बरनि सुलोचनि मोचनि सोचनि बेद बखानी। (गी० ६।२०)

मोचिनि–(?)–जूता सीनेवाली। उ० मोचिनि बदन सँकोचिनि हीरा माँगन हो। (रा० ७)

मोच्छ–(सं० मोक्ष)–मुक्ति, मोक्ष। उ० ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना। (मा० ३।१६।१)

मोट–(दे० 'मोटरी')–१. गठरी, मोटरी, २. बोझ, ३. स्थूल, मोटा, ४. अमीर, धनी। उ० १. चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को। (क० ७।१७) ३. भूमि सयन पट मोट पुराना। (मा० २।२५।३)

मोटरी–(तैलंग मूटारी)–गठरी, पोटली। उ० निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी। (क० ७।१८३)

मोटा–(सं०मुष्ट)–१. दबीज़, पतला का उलटा, २. मजबूत, पुष्ट, ३.अधिक। मोटी–'मोटा' का स्त्रीलिंग। उ० २.काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी। (क०७।१८३) मोटेऊ–मोटे भी। उ०छोटे बड़े खोटे खरे मोटेऊ दूबरे। (वि०२४६)

मोती–(सं० मौक्तिक)–एक बहुमूल्य रत्न जो सीपी से निकलता है। उ० कमल-दलन्हि बैठे जनु मोती। (मा० १।१६६।१)

मोद–(सं०)–प्रसन्नता, हर्ष। उ० देखत विषाद मिटै मोद करषतु हैं। (क० ६।५८)

मोदक–(सं०)–१.लड्डू, २.आनंद देनेवाला। उ० १.मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए। (ह० २०) मोदकन्हि–लड्डुओं से। उ० मन मोदकन्हि कि भूख बुताई। (मा० १।२४६।१)

मोदु–दे० 'मोद'। उ० नृपहिं मोदु सुनि सचिव सुभाषा। (मा० २।५।४)

मोर (१)–(सं० मम+प्रा० केरा)–मेरा, मेरी। मोरि–मेरी, हमारी। उ० लघु मति मोरि चरित अवगाहा। (मा० १।८।३) मोरें–मेरे में, मुझमें। उ० मुनि मन हरष रूप अति मोरें। (मा० १।१३३।३) मोरे (१)–१. मेरे, अपने, २.मुझको। उ० २.सुंदर मुख मोहि दिखाउ। (कृ० १)

मोर (२)–(सं० मयूर)–मयूर, एक सुंदर पक्षी। उ०१. मोर सिखा बिनु मूरिहू पलुहत गरजत मेह। (दो० ३१६)

मोरा (१)–मेरा। उ० खल परिहास होइ हित मोरा। (मा० १।६।१) मोरी (१)–मेरी। उ० तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। (मा० १।१२।२)

मोरा (२)–(सं० मयूर)–मोर, मयूर। उ० जाचक चातक दादुर मोरा। (मा० १।३४७।३)

मोरी (२)–(सं० मुरण)–मोड़कर। उ० बोली बिहँसि नयन मुँहु मोरी। (मा० २।२७।४) मोरेहु–मेरे भी। उ० मोरेहु मन अस आव। (पा०१६) मोरे (२)–१. मोड़े हुए, २.मोड़ने पर।

मोल–(सं० मूल्य)–१. क़ीमत, दाम, २. क्रय, ख़रीद, ३. दर, भाव, ४. खरीद कर। उ० १.गज गुन मोल अहार बल। (दो० ३८०)

मोला–दे० 'मोल'। उ० ४. हास बिलास लेत मनु मोला। (मा० १।२३३।३)

मोह–(सं०)–१. अज्ञान, भ्रम, २. प्रेम, मुहब्बत, ३. माया, ४. मूर्च्छा, बेहोशी। उ० १. मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन मोह-अंभोधि-मंदर मनस्वी। (वि० ५५) ३. तुलसिदास प्रभु मोह शृंखला छुटहि तुम्हारे छोरे। (वि० ११४)

मोहइ–(सं० मोह)–मोहता है। उ० लोचन भाल बिसाल बदनु मन मोहइ। (पा०७५) मोहई–मोहित हो जाते हैं। उ० सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई। (मा० ५।३५।छं० २) मोहहिं–१. मोहते हैं, मोहित हो जाते हैं, २. मोह को प्राप्त होते हैं। उ० २. जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे। (मा०२।१२७।४) मोहहीं–दे० मोहहिं। उ० १. बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं। (मा० १।६४। छं० १) मोहा–दे० 'मोह'। १. अज्ञान, २. मोह लेता है। उ० २. छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा। (मा० २।१०५।४) मोहि (१)–मोहकर, अज्ञानवश होकर। मोही–मोह लिया, मोहित कर लिया। मोहे–मोहित हो गए। उ० देखत रूपु सकल सुर मोहे। (मा० १।१००।३) मोहेउ–मोहित हो गए। उ० नैन तीर तनु पुलक रूप मन मोहेउ। (जा २०) मोहेहु–दे० 'मोहेउ'।

मोहन (सं०)–१. मोहनेवाला, २. कृष्ण। उ० १. सब भाँति मनोहर मोहन रूप। (क० २।१८)

मोहनिहारु–मोहनेवाला। उ० बदन सुषमा सदन सोभित मदन-मोहनिहारु। (गी० ७।८)

मोहनी–(सं०)–१. मोहनेवाली, २. विष्णु का वह स्त्री-रूप जो उन्होंने अमृत बाँटते समय असुरों को छलने के लिए धारण किया था। ३. वशीकरण मंत्र। उ० १. तोतरी बोलनि बिलोकनि मोहनी मन हरनि। (गी० १।२५) ३. सिलमोहनी करि मोहनी मन हर्‌यौ मूरति साँवरी। (जा० १६२)

मोहिं–(सं० मम)–१ मुझको, २.मुझ में, ३. मेरे। उ० २. तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिए जो भावे। (वि० ७६) ३. कहेउ भूप मोहिं सरिस सुकृत किए काहु न। (जा० १७) मोहि (२)–मुझे, मुझको। उ० देहि मा! मोहि प्रण प्रेम यह नेम निज राम घनश्याम, तुलसी पपीहा। (वि १५०)

मोहित–१. मुग्ध, २. मूर्च्छित, अचेत। उ०२. काम-मोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह। (वि० २१४)

मोहिनी–दे० 'मोहनी'।

मोहीं–मुझे। दे० 'मोहिं'।

मोही–मुझे, मुझसे। उ० कहिअ बुझाइ कृपा-निधि मोही। (मा० १।४६।३)

मोहुं–मुझे, मुझ। उ० मोहुँ से कहूँ कतहुँ कोउ तिन्ह कह्यो कोसलराज। (वि० २१६)

मोहु (१)–दे० 'मोह'। उ० १. कोहु मोहु ममता मदु त्यागी। (मा० १।३४१।३)

मोहु (२)–मुझे। दे० 'मोहिं'।

मोहू (१)–दे० 'मोह' । उ० १. अस बिचारि, प्रगटउँ निज मोहू । (मा० १।४६।१)
मोहू (२)–मुझ । उ० अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर । (मा० ५।७)
मौंगा–(सं० मौन)–चुप । उ० सुनि खग कहत अंब मौंगी रहि समुझि प्रेम पथ न्यारो । (गी० २.६६)
मौक्तिक–(सं०)–मुक्ता, मोती ।
मौन–(सं०)–१. चुप, मूक, २. चुप्पी, मूकता । उ० १. नाहिं त मौन रहब दिनु राती । (मा० २।१६।२) मौनै–मौन में, चुप्पी में । उ० रूप प्रेम परमित न पर सकहि बिर्थाक रही मति मौनै । (गी० १।१०५)
मौनु–दे० 'मौन' । उ० २. हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु । (मा० २।१६०)
मौर–(सं० मुकुट)–१. शिरोभूषण, मुकुट, २. विवाह के अवसर पर पहना जानेवाला सेहरा, ३. बौर, मंजरी । उ० २. कनक रतन मनि मौर लिहे मुसुकातहि हो । (रा०७)
मौलि–(सं०)–चोटी, सिर । उ० स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा । (मा० ७।१०८।३)
मौसी–(सं० मातृश्वसा)–माता की बहिन । उ० मातु मौसी बहिनिहूँ तें सासु तें अधिकाइ । (गी० ७।३४)
म्लान–(सं०)–दुखी, उदास, सूखा ।
म्लेच्छ–(सं०)–१. वे जातियाँ जिनमें वर्णाश्रम धर्म न हो । २. मुसलमान, ३. गंदा, ४. अपवित्र, ५. नीच, पापी ।
म्हाको–(?) १. मेरा, २. मुझको । उ० १. मंदमति कंत ! सुनु मंत म्हाको । (क० ६।२१)

य

यं–(सं०) जिसको, जिसके ।
यंता–(सं० यंतृ)–सारथी ।
यंत्र–(सं०)–१. तांत्रिकों के अनुसार कुछ विशिष्ट प्रकार से बने कोष्ठक, जंतर, २. औज़ार, मशीन, ३. बाजा, ४. ताला । उ० १. डाकिनी-शाकिनी-खेचरं-भूचरं यंत्रमंत्र-भंजन प्रबल कल्मषारी । (वि० ११)
यंत्रणा–(सं०)–१. क्लेश, दुःख, २. दंड, यातना ।
यंत्रिका–(सं०)–छोटा ताला ।
यँत्रित–(सं०)–१. कैद, बद्ध, बंद, २. नियमित, ३. ताला लगा हुआ, ताले में बंद । उ० ३. जयति निरुपाधि, भक्ति भाव यंत्रित-हृदय, बंधुहित-चित्रकूटाद्रिचारी । (वि० ३९)
यंत्री–(सं० यंत्रिन्)–चाँदी-सोने का तार खींचने का यंत्र । दे० 'जंत्री' ।
यः–(सं०) जो ।
यक्ष–(सं०)–१. एक देवयोनि । ये लोग कुबेर के सेवक तथा उनकी निधियों के रक्षक माने जाते हैं । २. कुबेर । उ० १. यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृत-पुंज जुत कामिनी । (वि० १८)
यक्षराज–(सं०)–यक्षों के स्वामी कुबेर ।
यक्ष्मा–(सं० यक्ष्मन्)–क्षय नामक रोग, तपेदिक ।
यगण–(सं०)–छंदःशास्त्र में आठ गणों में एक जो एक लघु और दो गुरु मात्राओं का होता है ।
यगन–दे० 'यगण' । उ० तिनहिं यगन कैसे लहइ परे सगन के बीच । (स० २८६)
यच्छेस–(सं० यक्षेश)–यक्षों के राजा कुबेर । उ० तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि । (क० ७।११५)
यजन–(सं०)–१. यज्ञ करना, २. पूजा, ३. बलिदान ।
यजमान–(सं०)–यज्ञकर्त्ता, यष्टा ।
यजुः–दे० 'यजुर्वेद' ।
यजुर–दे० 'यजुर्वेद' ।
यजुर्वेद–(सं०)–चार प्रसिद्ध वेदों में एक जिसमें यज्ञकर्म आदि का वर्णन है ।
यज्ञ–(सं०)–एक धार्मिक कृत्य जिसमें हवन बलिदान आदि होता है । यजन, अध्वर, क्रतु । यज्ञ कई प्रकार के होते हैं, जिनमें पंचमहायज्ञ, राजसूय यज्ञ, देवयज्ञ, नरमेध यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ तथा गोमेध यज्ञ आदि प्रधान हैं । उ०साप बस-मुनि बधू मुक्तकृत,विप्र हित-यज्ञ रच्छन-दच्छ पच्छकर्ता । (वि० ५०)
यज्ञपुरुष–(सं०)–विष्णु, नारायण ।
यज्ञेश–(सं०)–विष्णु, नारायण ।
यज्ञोपवीत–(सं०)–१. जनेऊ, यज्ञसूत्र, २. एक संस्कार जो द्विजातियों में प्रचलित है । अध्ययन आरम्भ करने के पूर्व यह होता है, इसी समय बालक सर्वप्रथम जनेऊ पहनता है । उ० १. यज्ञोपवीत बिचित्र हेम मय, मुक्तामाल उरसि मोहिं भाई । (गी० १।१०६)
यतत–(सं०यत्न) यत्न करते हैं ।
यतन–(सं० यत्न)–प्रयास, यत्न, कोशिश ।
यति–(सं०)–संन्यासी, त्यागी, योगी ।
यती–दे० 'यति' ।
यत्–(सं०)–१. जितना, २. जहाँ तक, ३. जो, ४. जिसका, ५. जिससे । उ० ३. वर्म-चर्मासि-धनु-बाण-तुणीरधर, सत्रु संकट-समन यत्प्रनामी । (वि० ४०) ४. यत्पाद प्लवमेकमेव हि भवांभोधेस्तितीर्षावतां । (मा० १।१। श्लो० ६)
यत्न–(सं०)–१. उपाय, जतन, तदवीर, २. चिकित्सा, इलाज ।
यत्र–(सं०)–जहाँ, जिस जगह । उ० यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति क्षीराब्धिवासी । (वि० ५७)
यथा–(सं०)–जिस प्रकार, जैसे, ज्यों । उ० चारिभुज चक्र कौमोदकी जलज दर सरसि जो परि यथा राजहंसम् । (वि० ६१) यथाअर्थ–यथार्थ, ठीक, सत्य । उ० की मुख

पट दीन्हें रहै, यथाअर्थ भाषंत। (वै० ११) यथाथिति-(सं० यथा + स्थिति)-१. जैसी स्थिति, यथार्थ, सत्य, २. जैसे का तैसा, पूर्ववत। यथामति-अपनी बुद्धि के अनुसार। उ० सिय-रघुबीर-बिबाहु यथामति गावौं। (जा० २) यथायोग्य-जैसा उचित हो, यथोचित। यथाजोग-दे० 'यथायोग्य'। उ० यथाजोग जेहि भाग बनाई। (मा० १।१८६।४) यथाविधि-विधिपूर्वक, बिधि से।

यथारथ-(सं० यथार्थ)-तत्वतः, जैसा होना चाहिए, ठीक।

यथार्थ-(सं०)-१. ठीक, वाजिब, उचित, २. ज्यों का त्यों, जैसा का तैसा।

यथेष्ट-(सं०)-१. इच्छानुसार, यथेच्छ, २. प्रचुर, पर्याप्त, अधिक।

यथोचित-(सं०यथा + उचित)जैसा उचित हो, जैसा चाहिए।

यदपि-दे० 'यद्यपि'।

यदा-(सं०)-जब, जिस समय।

यदि-(सं०)-अगर, जो।

यदुपति-(सं०)-१. श्रीकृष्ण, २. राजा ययाति।

यद्यपि-(सं०)-अगरचे, हालाँ कि।

यम-(सं०)-१.प्रसिद्ध देवता जो मृत्यु तथा न्याय या धर्म के अधिष्ठाता कहे गए हैं और यमराज, तथा धर्मराज आदि नामों से पुकारे जाते हैं। २.इंद्रियादि को रोकना, निग्रह, संयम, ३. जोड़ा। उ० १. ब्रह्मेंद्र-चंद्रार्क-वरुणाग्नि-वसु-मरुत-यम। (वि० १०) २. नियम यम सकल-सुरलोक-लोकेस। (वि० ५८)

यमदग्नि-(सं०)-एक ऋषि जो परशुराम के पिता थे।

यमदूत-(सं०)-यमराज के गण जो पापियों को यमलोक या नरक में ले जाते हैं और वहाँ तरह-तरह की यातना देते हैं।

यमधार-(सं०)-ऐसी तलवार जिसके दोनों ओर धार हो।

यमधारि-(सं०)-यमराज की सेना।

यमन (१)-(सं०)-संयम, बाँधना, रोकना।

यमन (२)-(सं० यवन)-१. एक राग, २. म्लेच्छ, मुसलमान। कुछ लोगों का मत है कि यवन मूलतः यूनानियों का नाम था पर यथार्थतः यवन मुसलमानों और यूनानियों दोनों ही से भिन्न जाति का नाम था। मध्य युग में इस शब्द का प्रयोग मुसलमानों के लिए हुआ है। उ० २. गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल। (दो० ५५६)

यमपुर-(सं०)-यमराज के रहने का स्थान, यमलोक।

यमनगर-दे० 'यमपुर'।

यमभट-दे० 'यमदूत'।

यमराज-(सं०)-यम। दे० 'यम'।

यमल-(सं०)-१. युग्म, जोड़ा, २. साथ उत्पन्न होनेवाली संतान या कोई वस्तु, यमज।

यमलार्जुन-(सं०)-गोकुल के दो अर्जुन वृक्ष जो पुराणों के अनुसार कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव थे और नारद के शाप से जड़ हो गए थे। कृष्ण ने बालक्रीड़ा में इन्हें उखाड़कर इनका उद्धार किया।

यमुना-(सं०)-एक प्रसिद्ध नदी जो ब्रज में से होकर बहती है। इसका पानी नीला है। यमुना सूर्य की पुत्री और यमराज की बहिन है। यमराज के वरदान से जो यमुना की शरण में जाता है उसे यमदूत दंड नहीं देते, अर्थात् वह मुक्त हो जाता है।

यम्-दे० 'यं'। उ० यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते। (मा० १।१। श्लो० ३)

ययाति-(सं०)-राजा नहुष के छः पुत्रों में एक। ययाति शुक्र के शाप से वृद्ध हो गए तो इनके छोटे पुत्र पुरु ने अपनी जवानी देकर इन्हें पुनः युवा बनाया था।

यव-(सं०)-जौ नाम का अन्न।

यवन-(सं०)-१. मुसलमान, २. यूनानी। दे० 'यमन'। उ० १. श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरि लोक-गत नाम बल बिपुल मति मलिन-परसी। (वि० ४६)

यवास-(सं०)-जवास नाम का कँटेदार पौदा।

यश-(सं०)-१. कीर्ति, नेकनामी, २. बड़ाई, प्रशंसा, महिमा।

यशस्वी-(सं०यशस्विन्)-जिसका यश खूब फैला हो, कीर्तिमान, नामवर, यशी।

यशुमति-दे० 'यशोदा'।

यष्टी-(सं० यष्टि)-लाठी, लकड़ा, छड़ी, सोटा। उ० परम दुर्घट पंथ, खल असंगत साथ, नाथ नहिं हाथ बर बिरति-यष्टी। (वि० ६०)

यस्य-(सं०)-जिसका, जिस किसी का। उ० यस्य गुण गण गनति बिमल मति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११)

यह-(सं० एषः)-निकट की वस्तु का निर्देश करनेवाला एक सर्वनाम जिसका प्रयोग वक्ता और श्रोता को छोड़कर और सब मनुष्यों, जीवों तथा पदार्थों के लिए होता है। उ० ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की। (वि० ३०) यहउ-यह भी। उ० यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। (मा० २।२०७।१) यहु-यह, यह भी, इस। उ० मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। (मा० २।३।३) यहै-यही, यह ही। उ०तुलसी यहै सांति सहिदानी। (वै०५१)

यहाँ-(सं० इह)-इस जगह, इस स्थान पर। यहैं-यहीं, इसी स्थान पर। उ० राम लषन मेरी यहैं भेंट, बलि जाउँ जहाँ मोहिं मिलि लीजै। (गी० २।१२)

यहि-(सं० इह)-यह, इस। उ० तुलसिदास भवत्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै। (वि० ६३)

याँचा-(सं० याचन)-माँगा।

या (१)-(फ़ा०)-अथवा, वा।

या (२)-(सं० इह)-यह, इस। उ० या ब्रज में लरिका घने, हौंही अन्याई। (कृ० ८) याकी-इसकी। उ० सुनु मैया ! तेरी सौं करौं याकी टेव लरन की, सकुच बेंचि सी खाई। (कृ० ८) याके-इसके। उ० सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहैं। (क० ७।७१) याको-इसको। यातें-इससे। उ०यातें सबै सुधि भूलि गई। (क०१।१७) यामहिं (१)-(सं० इह)-इसमें। उ० मेरे कहाँ थाकु गोरस, को नवनिधि मंदिर यामहिं। (कृ० ४) याहि-१. इसको, इसे, २. इसी। उ० १. याहि कहा मैया मुँह लावति। (कृ० १२) याही-दे० 'याहि'। उ० २. सब परिवार मेरो याही लागि, राजाजू। (क० २।८)

याग-(सं०)-यज्ञ, हवन ।
याचक-(सं)-माँगनेवाला, भिखारी ।
याचकता-(सं०)-भिखारीपन ।
याचत-(सं० याचन)-माँगता है । याचन-माँगना, पाने के लिए प्रार्थना करना । याचने-माँगने, जाचना करने । याचहिं-माँगते हैं ।
याचना-दे० 'याचन' ।
यातना-(सं०)-कष्ट, तकलीफ़, पीड़ा ।
याता-(सं० यातृ)-चलनेवाला, गमन करनेवाला ।
यातुधान-(सं०)-राक्षस, निशिचर । यातुधानी-राक्षसी, 'यातुधान' का स्त्रीलिंग । उ० अमित बल परम दुर्जय निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी । (वि० ५८)
यात्रा-(सं०)-सफ़र, जाना ।
यादव-(सं०)-राजा यदु के वंशज, अहीर ।
यादवराय-(सं० यादव+राजन्)-यदुवंशियों के स्वामी, श्रीकृष्ण।
यान-(सं०)-१. गाड़ी, रथ, वाहन, विमान, २. शत्रु पर चढ़ाई करना ।
यापन-(सं०)-१.चलाना,निर्वाह,२.कालक्षेप,समय बिताना ।
याप्य-(सं०)-निंदनीय, बुरा, अधम ।
याभ्यां-(सं०) जिन दोनों को, जिनके। उ० याभ्यां विना न पश्यंति। (मा० १।१।श्लो० २)
याम (१)-(सं०)-१. तीन घंटे का समय, पहर, जाम, २. समय, काल, ३. एक प्रकार के देवता ।
याम (२)-(?)-संयम, परहेज़ ।
यामहिं (२)-(?)-दिन की ।
यामिक-(सं०)-पहरू, पहरेदार ।
यामिनी-(सं०)-रात, निशा ।
यावक-(सं०)-महावर, लाल रंग ।
यावत्-दे०'यावद्' । यावद्-(सं०) जब तक, जहाँ तक । उ० न यावद् उमानाथ पादारविंद । (मा० ७।१०८।७) यावज्जीवन-आजीवन, जीवन भर ।
युक्त-(सं०)-१. एक साथ किया हुआ, जुड़ा हुआ, साथ, २. उचित, ठीक, वाजिब । उ० १. मिलित जलपात्र अज-युक्त हरिचरन रज । (वि० १८)
युक्ति-(सं०)-१. उपाय, ढंग, २. योग, मिलन, ३. कौशल, चातुरी, ४. एक अलंकार ।
युग-(सं०)-१. जोड़ा, युग्म, २. समय, वक्त, ३. सत्ययुग, त्रेता, द्वापर आदि चार युग, ४. योग, विधान, विधि ।
युगम-दे० 'युग्म' ।
युगल-(सं०)-युग्म, जोड़ा, दो, दोनों । उ० युगल पद-पद्म सुख सद्म पद्मालयं । (वि० ५१)
युग्म-(सं०)-जोड़ा, दो, युग ।
युतं-(सं०)-युक्त को, सहित को । उ० पाणौनाराच चापं कपि निकर युतं बंधुना सेव्यमानं । (मा० ७।१।श्लो० १)
युत-(सं०)-मिला हुआ, युक्त, सहित । उ० तुलसी या संसार में सों विचार युत संत । (वै० ११)
युद्ध-(सं०)-लड़ाई, संग्राम, रण ।
युधिष्ठिर-(सं०)-पाँच पांडवों में सबसे बड़े । ये बड़े सत्यवादी और धर्मपरायण थे ।
युवक-(सं०)-तरुण, जवान, युवा ।
युवति-(सं०)-तरुणी, नवयौवना, युवती । उ० खंग धारा-व्रती प्रथम रेखा प्रकट, शुद्ध-मति-युवति-व्रतप्रेम-पागी । (वि० ३६)
युवती-दे० 'युवति' ।
युवराज-(सं०)-राजकुमार, राजा का वह लड़का जो राज्य का उत्तराधिकारी हो ।
युवा-(सं० युवन्)-जवान, तरुण ।
यूथ-(सं०)-१. झुंड, गरोह, दल, २. तिर्यक योनिवाले जीवों का समुदाय । उ० १. साकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत-बैताल-भूत-प्रमथ जूथ-जंता । (वि० २६)
यूथप-(सं०)-सेनापति, दलपति ।
यूथा-दे० 'यूथ' ।
यूहा-(सं० यूथ)-झुंड, समूह ।
ये (१)-(सं०)-जो, जो लोग। उ० पठंति ये स्तवं इदं । (मा० ३।४।छं० १२)
ये (२)-यह का बहुवचन, ये लोग । दे० 'यह' । उ० ऐसी मनोहर मूरति ये । (क० २।२०)
येतु-(?)-१. जो, २. किंतु, परंतु । उ० १. येतु भवदंघ्रि-पल्लव-समाश्रित सदा भक्तिरत विगत संसय मुरारी । (वि० ५७)
येन-(सं०)-१. जिस, जो, २. जिससे । उ०१. येन श्रीराम-नामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं । (वि० ४६) येनकेन-जिस किसी, किसी भी । उ० येनकेन बिधि दीन्हे ही दान करै कल्यान । (दो० ५६१)
येह-यही । येहि-इसको, इस । येहु-ये भी । उ० आली अवलोकि लेहु, नयननि के फलु येहु । (गी० २।३०)
यों-(सं०इत्थं)१.इस प्रकार, ऐसे,२.सहज ही, आसानी से,३. निष्प्रयोजन, बे मतलब । उ० १. यों सुधारि सनमानि जन किये साधु सिरमौर । (मा० २।२६६) १. मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो । (क० ६।५५)
योग-(सं०)-१. कुछ विशेष अवसर, २. उपाय, युक्ति, तद-बीर, ३. समाधि, ४. मेल, संयोग, मिलन, ५. संबंध, लगाव, ६. कवच, बख्तर, ७. चित्त की वृत्तियों को रोकने का उपाय, ८. धोखा, छल, ९. प्रयोग, १०. औषधि, ११. वैराग्य, १२. तपस्या, १३. अवसर, सुभीता, १४. एक शास्त्र जिसके प्रतिपादक पतंजलि कहे जाते हैं ।
योगक्षेम-(सं०)-अप्राप्य की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा करना ।
योगिनी-(सं०)-१. रण-पिशाचिनी, २. योगाभ्यासिनी, तपस्विनी, ३. भूतिनी, ४. नारायणी, गौरी, शाकंभरी, भीमा, चामुंडा तथा पार्वती आदि ६४ योगिनियाँ, ५. शैलपुत्री, चंद्रघंटा तथा चंडिका आदि ८ देवियाँ, ६. देवी, योगमाया ।
योगींद्र-(सं०)-१. योगियों के स्वामी, योगेश्वर, बड़ा योगी, २. ईश्वर, परमात्मा, ३. शिव, महादेव ।
योगी-(सं० योगिन्)-योगसाधक, तपस्वी, योगाभ्यासी ।
योगीस-(सं० योगीश)-१. बड़ा योगी, २. ईश्वर, परमात्मा, ३. शिव ।

योगू (१)-(सं० योग्य)-योग्य, लायक।
योगू (२)-(सं० योग)-दे० 'योग'।
योग्य-(सं०)-१. काबिल, लायक, २. श्रेष्ठ, अच्छा, ३. प्रवीण, चतुर।
योग्यता-(सं०)-१. काबिलियत, लायकियत, २. श्रेष्ठता, अच्छाई, ३. चतुराई, प्रवीणता।
योजन-(सं०)-दूरी की एक नाप जो किसी मत से दो कोस की, किसी मत से चार कोस की तथा किसी मत से आठ कोस की होती है।
योजना-(सं०)-१. व्यवस्था, आयोजन, विन्यास, २. जोड़, मेल, मिलाप।
योद्धा-(सं०)-वीर, शूर, बहादुर, लड़ाका।
योधन-(सं०)-युद्ध, लड़ाई, संग्राम।
योनि-(सं०)-१. स्त्रियों की जननेंद्रिय, भग, २. खान, ३. कारण, हेतु, ४. प्राणियों के विभाग, वर्ग या जाति। योनियाँ ८४ लाख कही गई हैं।
योवन-दे० 'यौवन'।
योषा-(सं०)-नारी, स्त्री।
योषित-दे० 'योषिता'।
योषिता-(सं० योषित्)-स्त्री, नारी।
यौं-(सं० इत्थं)-इस प्रकार, ऐसे।
यौतुक-(सं०)-वह धन जो ब्याह में कन्या पक्ष से वर पक्ष को मिले। दहेज, दायज।
यौवन-(सं०)-जवानी, तरुणाई।

र

रँए-दे० 'रए'। उ० ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए। (मा० ३।४६।छं० १)
रंक-(सं०)-१. धनहीन, गरीब, २. कृपण, कंजूस। उ० १. ऊँचे, नीचे, बीच के, धनिक रंक राजा राय। (क० ७।१७२) रंकतर-अत्यंत दरिद्र। उ० कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी। (वि०८१) रंकन-'रंक' का बहुवचन, गरीब लोग। उ० तिन रंकन को नाक सँवारत। रंक-निवाज-(सं० रंक+फ़ा० निवाज)-गरीबों पर कृपा रखनेवाला, दीनों का रक्षक। उ० रंक-निवास रंक राजा किये, गये गरब गरि गरि गनी। (गी० ५।३६) रंकन्ह-गरीबों ने। उ० लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी। (मा० २।११४।३) रंकन्हि-दे० 'रंकन्ह'। रंकहि-रंक को, गरीब को। उ० कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। (मा० २।२६।१)
रंका-दे० 'रंक'। उ०१.मानहुँ पारसु पायउ रंका। (मा०२।२३८।२)
रंकु-दे०'रंक'।उ०१. सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ। (मा० २।९२)
रंग-(सं०)-१. वह पदार्थ जिसका व्यवहार रँगने के लिए होता है, २. बदन और चेहरे की रंगत, ३. तमाशा, ४. मौज, विलास, आनंद, ५. हर्ष, प्रसन्नता, ६. वह स्थान जहाँ नृत्य संगीत या अभिनय आदि हो, ७. रणक्षेत्र ८. राँगा, ९. वर्ण। उ० १. भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग। (वि० १४) ४. प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रई है। (वि० १३)
रंगभूमि-(सं०)-१. वह स्थान जहाँ कोई जलसा हो, २. युद्धस्थल, ३. नाट्यशाला, ४. अखाड़ा। उ० १. रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहि। (जा० १३)
रँगमगे-(सं० रंग+मग्न)-रंग में मग्न हुए, रँगे हुए। उ० सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि। (गी० २।५०)
रंगा-दे० 'रंग'। उ० १. कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। (मा० १।१२६।१)
रँगीले-१. रँगे हुए, रंगवाले, २. रसिया, रसीले, रसिक। उ० १. तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले। (वि० ३२)
रँगौ-रँग ले, रँगे। उ०चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल। (दो० २३३)
रंच-(सं० न्यंच, प्रा० णंच)-अल्प, थोड़ा। उ० रिपु रिन रंच न राखब काऊ। (मा० २।२२९।१) रंचौ-बिलकुल, थोड़ी भी, ज़रा भी। उ० बिरचे बिरंचि बनाइ बाँची, रुचिरता रंचौ नहीं। (जा० ३६)
रंचक-थोड़ा, कुछ। उ० संग लिए बिधु बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है। (क० २।१६)
रंजनं-दे० 'रंजन'। उ०१. मुनीन्द्र संत रंजनं। (मा० ३।४।छं० ४) रंजन-(सं०)-१. प्रसन्न करनेवाला, २. प्रसन्न करने की क्रिया, ३. सुन्दर। उ० १. जनरंजन भंजन सोक भयं। (मा० ६।१११।छं० ३) रंजनि-प्रसन्न करनेवाली। उ० बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। (मा० १।३१।३)
रंजित-(सं०)-१. जिस पर रंग चढ़ा या लगा हो, रँगा हुआ, २. प्रसन्न, ३. अनुरक्त, प्रेम में पड़ा हुआ। उ० १. तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन-जातक से। (क० १।१)
रंतिदेव-(सं०)-एक पौराणिक राजा जो अपने दान के लिए प्रसिद्ध हैं।
रंध्र-(सं०)-छेद, सूराख़। उ० श्रवन रंध्र अहिभवन समाना। (मा० १।११३।१)
रंभा-(सं०)-१. पुराणों के अनुसार एक वेश्या, २. केला। उ० १. रंभादिक सुरनारि नबीना। (मा० १।१२६।२)
रइनि-(सं० रजनी)-रात, निशा।
रई (१)-(सं० रथ)-दही आदि मथने की मथानी।
रई (२)-(सं० रज)-भूसी, गेहूँ की भूसी।

रई (३)-(सं० रंग)-रँगी, रँगी हुई। उ० प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रई है। (वि० १३९) रए-(सं०रंग)-रँग गए। उ०सकल लोक एक रंग रए। (गी० १।३)
रई (४)-(सं० रंजित)-आनंदित, प्रसन्न।
रउरें-अपने हृदय में, आप में। उ० राम मातु मत जानब रउरें। (मा० २।१८।१) रउरे-(सं०राजपुत्र)-१. आप, २. आपका, आपके। उ०२. रउरे अंग जोगु जग को है। (मा० २।२८४।३) रउरेहि-आपको। उ० भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा। (मा० २।१६।१)
रकतबीज-(सं० रक्तवीर्य)-दे० 'रक्तबीज'। उ० रकतबीज जिमि बाढ़त जाहीं। (वि० १२८)
रक्त-(सं०)-१. रुधिर, खून, २. कुंकुम, केसर, ३. लाल, अरुण।
रक्तबीज-दे० 'रतकबीज'। एक दैत्य का नाम जिसके पराक्रम का पार नहीं था। युद्ध में इसके शरीर से रक्त की जितनी बूँदें बनती थीं, उतने ही योद्धा तैयार होते थे। काली ने इसका संहार किया।
रक्षक-(सं०)-रक्षा करनेवाला, पालक।
रक्षण-(सं०)-बचाव, रखवाली।
रक्षा-दे० 'रक्षण'।
रक्षित-(सं०)-रखा हुआ, बचाया हुआ, रक्षा किया हुआ।
रख-(सं० रक्षण, प्रा० रक्खण)-रक्खो, रखलो। रखि-१.रक्षा करके,२. रखकर। रखिअहिं-१. रखिए, रक्खें, २. रक्खेंगे। उ०१. रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन। (मा० २।२८४।१) रखिहउँ-रक्खूँगा, रक्षा करूँगा। रखिहहिं-रक्खेंगे, रक्षा करेंगे।
रखवार-रक्षक, रखवाला। उ० होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा। (मा० १।८४।छं० १)
रखवारा-रक्षक, बचानेवाला। उ० तिन्ह कें कोप न कोउ रखवारा। (मा० १।१६५।२) रखवारे-रक्षा करनेवाले। उ० तेइ एहि ताल चतुर रखवारे। (मा० १।३८।१)
रखवारी-१. रखवाली, रक्षा करना, २. रक्षा। उ० १. देखि नयन दूत रखवारी। (मा० १।२२।३) २. अबला अनघ अनवसर अनुचित होति, हेरि करिहैं रखवारी। (कृ० ६०)
रखवारो-रक्षक, रखवाला। उ० तुलसी सबको सीस पर रखवारो रघुराउ। (दो० ४२४)
रगरि-(सं घर्षण)-हठ, घर्षण, टेक। उ० जन्म कोटि लगि रगर हमारी। (मा० १।८१।३)
रघु-(सं०)-राजा दिलीप के पुत्र। राम का जन्म इन्हीं के वंश में हुआ था और इन्हीं के नाम पर राम को राघव, रघुनाथ, रघुनंदन तथा रघुराई आदि नामों से पुकारा जाता है। रघु के नाम के आधार पर तुलसी द्वारा प्रयुक्त राम के अन्य नाम रघुकुल-कल-केहरि,रघुकुल-मनि, रघुकुल दीप, रघुबंसमनि, रघुकुलतिलक, तथा रघुकुल कैरवचंद आदि हैं। उ० जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु। (मा० २।३९)
रघुकुल-(सं०) महाराजा रघु का कुल जिसमें राम पैदा हुए थे। उ० रघुकुलकुमुद सुखद चारु चंद। (गी०१।२८) रघुकुलदीप-रामचन्द्र। रघुकुलदीपहि-रघुकुल के दीप को, रामचंद्र को। उ० रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई। (मा० २।३९।४)
रघुनंद-(सं०)-रामचंद्र। दे० 'रघु'।
रघुनंदन-दे० 'रघुनंद'। उ० तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ। (मा० २।१२९) रघुनंदनस्य-राम का। उ० मुखांबुज श्री रघुनंदनस्य मे सदास्तु सा मंजुल मंगलप्रदा। (मा० २।१। श्लो० २)
रघुनंदनु-दे० 'रघुनंदन'।
रघुनंदू-दे० 'रघुनंद'। उ० बोले उचित बचन रघुनंदू। (मा० २।२६३।२)
रघुनाथ-(सं०)-राम। उ० जानकीनाथ रघुनाथ रागादि-तम-तरणि, तारुण्यतनु तेजधामं। (वि० ५१) रघुनाथहिं-राम को। उ० तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयंद जाके अर्द्ध नायँ। (वि० ८३)
रघुनाथा-दे० 'रघुनाथ'। उ० गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। (मा० २।६।१)
रघुनाथु-दे० 'रघुनाथ'।
रघुनायकं-रघुनायक को, राम को। रघुनायक-राम। उ० बहुत बंधु सिय सह रघुनायक। (मा० २।१२८।४) रघुनायकहि-राम को। उ० बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि। (मा० ७।१९क)
रघुपति-(सं०)-राम। उ०बंदौ रघुपति करुणानिधान। (वि० ६४)रघुपतिहिं-१. राम को, रघुपति को, २.राम का। रघुपतिहि-१. रघुनाथ को, राम को, २. राम का। उ० १. तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे। (मा० २।१६९।१) रघुपतिहीं-दे० 'रघुपतिहिं'। रघुपतिहु-१. राम का २. राम को भी। उ० १. छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। (मा० १।२७२।२) रघुपते- हे राम! उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं बदामि च भवानखिलान्तरात्मा। (मा० ५।१। श्लो० २)
रघुपुंगव-(सं०)-राम। उ० भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे कामादिदोष रहितं कुरु मानसं च। (मा०५।१। श्लो० २)
रघुबंशनाथम्-रघुवंश के नाथ राम को। उ० नमामि रामं रघुवंशनाथम्। (मा० २।१। श्लो० ३)
रघुबंस-(सं० रघुवंश)-रघु का वंश या कुल। उ० रघुबंस-कुमुद सुखप्रद निसेस। (वि० ६४) रघुबंसभूषन-(सं० रघुवंश + भूषण)-राम। उ० त्राहि रघुबंसभूषन कृपा कर कठिन काल बिकराल-कलि-त्रासस्तम्। (वि० ५९) रघुबंसमनि-(सं० रघुवंशमणि)-राम। उ० सुनि बिनय सासु प्रबोधि तब रघुबंसमनि पितु पहिं गए। (जा० १८९) रघुबंसराय-(सं० रघुवंशराज)-राम। उ० सुने न पुलकि-तनु, कहे न मुदित मन, किए जे चरित रघुबंसराय। (वि० ८३)
रघुबर-(सं० रघु + वर)-राम। उ० रघुबर सब उर अंतर-जामी। (मा० १।११९।१) रघुबरहिं-१. राम को, २. राम की। रघुबरहि-राम की। उ० सुनि सनेहँ साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस। (मा०२।९) रघुबरौ-वे दोनों

रघुबर, राम और लक्ष्मण। उ० माया मानुष रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ। (मा० ४।१।श्लो० १)
रघुबीरं-रघुवीर को। रघुबीर-(सं० रघुवीर)-राम। उ० रघुबीर जस-मुकुता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे। (जा० १७) रघुबीरहि-राम को, रघुबीर को। उ० लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि। (मा० १। २४८) रघुबीरहीं-दे० 'रघुबीरहिं'। रघुबीरै-रघुवीर को, राम को। उ० हृदय-घाउ मेरे, पीर रघुबीरै। (गी० ६। १५)
रघुबीरा-दे० 'रघुबीर'। उ० नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। (मा० २।७६।२)
रघुबीरु-दे० 'रघुबीर'।
रघुबीरू-दे० 'रघुबीर'। उ० जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू। (मा० २।१४४।३)
रघुराई-(सं० रघुराज)-राम। उ० दीनबंधु सुखसिंधु कृपाकर, कारुनीक रघुराई। (वि० ८१)
रघुराउ-राम। उ० प्रेम प्रपंचु कि झूठ-फुर जानहिं मुनि रघुराउ। (मा० २।२६१)
रघुराऊ-दे० 'रघुराउ'। उ० बिसमय हरष रहित रघुराऊ। (मा० २।१२।२)
रघुराज-(सं०)-१. राम, २. दशरथ, ३. राम का राज्य। उ० २. रघुराज-साज सराहि लोचन-लाहु लेत अघाइ के। (गी० १।५)
रघुराजु-दे० 'रघुराज'।
रघुराजू-दे० 'रघुराज'। उ० सरल सबल साहिब रघुराजू। (मा० १।१३।४)
रघुराया-(सं० रघुराज)-राम, रघुराज। उ० तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया। (मा० २।१३०।१)
रघुरैया-रघुकुल के राजा। उ० मोद-कंद-कुल-कुमुद-चंद्र मेरे रामचंद्र रघुरैया। (गी० १।१७)
रचइ-(सं० रचना)-रचता है। उ० मिलइ रचइ परपंचु बिधाता। (मा० २।२३२।३) रचत-रचते हैं, रचता है। उ० हरष न रचत, बिषाद न बिगरत, डगरि चले हँसि खेलि। (कृ० २६) रचहिं-रचते हैं, तैयार करते हैं। रचहु-रचो, तैयार करो। उ० रचहु बिचित्र बितान बनाई। (मा० १।२८७।३) रचा-रचना की, बनाया। उ० यह सँजोग बिधि रचा बिचारी। (मा० ३।१७।४) रचि-१. निर्माणकर, बना कर, २. रचे हैं, बनाए हैं, ३. सजाकर। उ० २. कंकन चारु बिबिध भूषन बिधि रचि निज कर मन लाई। (वि० ६२) रचिबे-रचने, रचना करने। उ० रचिबे को बिधि जैसे पालिबे को हरिहर। (ह० ११) रची-निर्माण की, बनायी। उ० कहत पुरान रची केसव निज, कर-करतूति-कला सी। (वि०२२) रचु-१.सजा कर, २.सज्जित कर दे। उ० २.आनि काठ रचु चिता बनाई। (मा० ५।१२।२) रचे-रचा, सजाया, सज्जित किया। रचेउ-रचा, बनाया। उ० इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। (मा० १।६४।१) रचेन्हि-१. रचा, बनाया, किया, २. रचना चाहिए। उ० १. जेहिं रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ। (मा० १।१७०।४) रचेसि-रचा, किया। उ० मरनु ठानि मन रचेसि उपाई। (मा० १।८६।३) रचै-१. रचना करे, बनावे, २. रचता है, बनाता है, ३. रचा दिए हैं। उ० २. उर बसि प्रपंच रचै पंचबान। (वि० १४) रच्यौ-रचना की, बनाया। उ० सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगल-दायक। (जा० ३)
रचना-(सं०)-१. बनावट, निर्माण, २. संसार की उत्पत्ति, जगत का निर्माण, ३. पैदा की हुई चीज़, ४. सजावट, ५. ग्रंथ लिखना। उ० २. देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए। (वि० १११)
रचित-(सं०)-निर्माण किया हुआ, बनाया हुआ। उ०वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग रचित मन-दनुज-मय रूपधारी। (वि० ५८)
रच्छ-(सं० रक्षण)-१. रक्षा करे, रखवाली करे, २. रक्षा कीजिए। उ० १. तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ-तेहि। (क० ७।११५) रच्छहीं-रक्षा करते हैं, रखवाली करते हैं। उ० करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं। (मा० ५।३।३)
रच्छक-दे० 'रक्षक'। उ० रच्छक कोटि जच्छपति केरे। (मा० १।१७६।१) रछच्कनि-(सं० रक्षक)-रक्षकों को, रखवालों को। उ० बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि। (क० ६।२४)
रच्छन-दे० 'रक्षण'। उ० जयति सुग्रीव-सिच्छादि-रच्छन-निपुन, बालि-बलसालि-बध-मुख्य हेतू। (वि० २५)
रच्छा-(सं० रक्षा)-रक्षा, हिफ़ाजत। उ० लगे पढ़न रच्छा ऋचा ऋषिराज बिराजे। (गी० १।६)
रज (१)-(सं०)-१. धूल, रेत, मिट्टी, २. रजोगुण, ३. आर्त्तव, कुसुम, ऋतु, ४. पृथ्वी। उ० १. मिलित जल पात्र अज-युक्त हरिचरन रज। (वि० १८) २. रावन सो राजा रज तेज को निधान भो। (क० ५।३२) ४. रज अप अनल अनिल नभ जड़ जानत सब कोइ। (स० २०३) रजहिं-रज पर, धूल पर। उ० गुर पद रजहिं लाग छरुभारू। (मा० २।३१५।४)
रज (२)-(सं० रजक)-धोबी, कपड़ा धोनेवाला। उ० तिय निंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई। (वि० १६५)
रजक-(सं०) धोबी, कपड़ा धोनेवाला।
रजत-(सं०)-चाँदी, रूपा। उ० रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानुकर बारि। (मा० १।११७)
रजधानिय-(सं० राजधानी)-राजधानी, मुख्य नगर। उ० जनु ऋतुराज मनोज-राज रजधानिय। (पा० १८)
रजधानी-दे० 'रजधानिय'। उ० राजा रामु अवध रजधानी। (मा० १।२५।३)
रजनि-दे० 'रजनी'। उ० १. याके उए बरति अधिक अँग-अँग दव, वाके उए मिटति रजनि-जनित जरनि। (कृ० ३०)
रजनिचर-(सं० रजनीचर)-१. राक्षस, २. भूत, ३. चोर, ४. पहरेदार। उ० १. असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये। (वि० ५७)
रजनी-(सं०)-१. रात, निशा, २. हल्दी, ३. लाख, ४. नील का वृक्ष। उ० १. पुरी बिराजति राजति रजनी। (मा० १।३५८।२)

रजनीकर–(सं०)–चंद्रमा। उ० संतत दुखद सखी! रजनी-कर। (कृ० ३१)
रजनीचर–(सं०)–दे० 'रजनिचर'। उ० १.तू रजनीचर नाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौं हौं। (क० ६।१३)
रजनीचरा–दे० 'रजनिचर'। उ० १. सँग भूत प्रेत पिचास जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा। (मा० १।६५। छं० १)
रजनीमुख–(सं०)–संध्या, साँझ।
रजनीश–(सं०)–चंद्रमा, निशाकर। उ० ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल, कलाधर, नौमि हर धनद-मित्रं। (वि० ११)
रजनीस–दे० 'रजनीश'। उ० तुलसी महीस देखे दिन रज-नीस जैसे। (गी० ११६२)
रजपूत–(सं० राजपुत्र)–१. क्षत्रिय, राजपूत, २. वीर, परा-क्रमी। उ० २. पवन को पूत रजपूत रूरो। (ह० ३)
रजाइ–दे० 'रजाई'। उ० रामदूत की रजाइ माथे मानि लेत हैं। (ह० ३२)
रजाई–(अर० रज़ा)–आज्ञा, हुक्म। उ० ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई। (मा० २।४६।२)
रजाय–(अर० रज़ा)–आज्ञा, अनुशासन। उ० राम की रजाय तें रसायनी समीर सूनु। (क० ५।२५)
रजायस–दे० 'रजायसु'।
रजायसु–(सं० राजन्+आयसु)–आज्ञा, राजाज्ञा, हुक्म। उ० पाय रजायसु राय को ऋषिराज बोलाए। (गी०१।६)
रजु–दे० 'रज्जु'। उ० बाँधिबे को भवगयंद रेनु की रजु बटत। (वि० १२६)
रजोगुण–(सं०)–प्रकृति का वह स्वभाव जिससे जीवधारियों में भोग-विलास तथा दिखावे की रुचि उत्पन्न होती है। राजस।
रजोगुन–दे० 'रजोगुण'। उ० तामस बहुत रजोगुन थोरा। (मा० ७।१०४।३)
रज्जु–(सं०)–रस्सी, डोरी, जेवरी। रज्जौ–जेवरी में, रस्सी में। उ० यत्सत्वाद मृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः। (मा० १।१। श्लो० ६)
रट–(?)–१. रटना, याद करना, २. बार-बार कहना, ३. रटते हैं, रट रहे हैं। उ० ३. राम-राम रट बिकल भुआलू। (मा० २।३७।१) रटत–रटता है, कहता है, बार-बार कहता है। उ० रुचिर रसना तू राम-राम क्यों न रटत। (वि० १२६) रटति–रटती है, याद करती है, बक बक करती है। उ० कनक-जटित मनि नूपुर मेखल कटितट रटति मधुर बानी। (वि० ६३) रटन–दे० 'रट'। रटनि–दे० 'रट'। उ० २. तव कटु रटनि करउँ नहिं काना। (मा० ६।२४।२) रटहिं–रटते हैं, बार-बार शब्द करते हैं। उ० रटहिं कुभाँति कुखेत करारा। (मा० २।१५८।२) रटहि–रटो, याद करो। उ० देखु राम-सेवक सुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ। (वि० ८४) रटहु–रटो, याद करो, भजो। रटि–रटकर, रट-रटकर। उ० तौ सहि निपट निरादर निसि दिन लट ऐसो रटि घटि को तो। (वि० १६१) रटु–रटो, रटा करो। उ० राम-राम रमु राम राम रटु, राम-राम जपु जीहा। (वि० ६५) रटौ–१. बोलो, कहो, कहा करो, २. जप किया है, रटा है। उ० १. तुलसी जो सदा सुख चाहिय तौ रसना निसि बासर राम रटौ। (क० ७।८६) २. नाम रटो, जम बास क्यौं जाउँ, को आइ सकै जम-किंकर नेरे? (क० ७।६२)
रढ़े–(?)–रटा, बोला। उ० जब पाहन भे बन बाहन से, उतरे बनरा 'जयराम' रढ़े। (क० ६।६)
रण–(सं०)–लड़ाई, युद्ध। उ० सकुन सानुज सदल दलित दशकंठ रण, लोक-लोकप किए रहित शंका। (वि० ४३)
रणित–(सं०)–बजता हुआ।
रत–(सं०)–१. अनुरक्त, आसक्त, २. संसार या सांसरिक विषयों में लीन, ३. लगा हुआ, लीन, तत्पर, ४. मैथुन, प्रसंग। उ० १. सीय राम पद होइ न रत को। (मा० २।३०४।१) २. करमी, धरमी, साधु, सेवक, बिरत, रत। (वि० २५६)
रतन–(सं० रत्न)–बेशकीमत पत्थर, हीरा आदि। उ० सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें। (मा० १।२३।४)
रतनाकर–दे० 'रत्नाकर'।
रतनागर–दे० 'रत्नाकर'। उ० तीय रतन तुम उपजिहु भव रतनागर। (पा० ४६)
रतनार–(सं० रक्त)–लाल, अरुण। रतनारे–दे० 'रतनार'। उ० नव सरोज लोचन रतनारे। (मा० १।२३३।२)
रतहिं–(सं० रति)–मुग्ध हो जाते हैं। उ० बड़े रतहिं लघु के गुनहिं तुलसी लघुहि न हेत। (स० ६३४)
रता–(सं० रत)–आसक्त, रत, लीन। उ० दास रता एक नाम सों, उभय लोक सुख त्यागि। (वै० ४२)
रति–(सं०)–१. कामदेव की स्त्री। रति प्रजापति की कन्या थी। इसे स्त्री-सौंदर्य का आदर्श मानते हैं। २ प्रेम, प्रीति, ३. मैथुन। उ० १. बालमृग मञ्जु-खंजन-विलोचनि, चंद्रबदनि, लखि कोटि रति मार लाजै। (वि० १५) २. सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। (मा० ७।१०४।२) रति-प्रद–प्रेम उत्पन्न करनेवाला। रत्यो–रति भी, कामदेव की स्त्री भी। उ० रत्यो रची बिधि जो छोलत छबि छूटी। (गी० २।२१)
रतिआतो–(सं० रति)–प्रीति करता, प्रीतिवान होता। उ० राम-नाम-अनुराग ही जिय जो रतिआतो। (वि० १५१)
रतिन–(सं० रत्तिका)–रत्तियों के, रत्ती भर के। उ० रतिन के लालचिन प्रापति मनक की। (क० ७।२०)
रतिनाथ–(सं०)–कामदेव। उ० दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा। (मा० १।८४। छं०१)
रतिनायक–(सं०)–कामदेव। उ० न डगैं, न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है। (क० २।२७)
रतिपति–(सं०)–कामदेव। उ० जनु रतिपति ऋतुपति कोसल पुर बिहरत सहित समाज। (गी० १।२)
रती–(सं० रति)–१. कामदेव की पत्नी, रति, २. सौंदर्य, शोभा, ३. प्रेम, प्रीति, ४. समान, अन्दर, ५. तेज, कांति। उ० ५. बेद लोक सब साखी, काहू की रती न राखी। (वि० २४८)
रत्न–(सं०)–१. कुछ विशिष्ट बहुमूल्य पत्थर या पदार्थ। नौ रत्नों में हीरा, मोती, पन्ना, माणिक, पुखराज नीलम गो-मेद, लहसुनियाँ और मूँगा का नाम लिया जाता है। २.

आभूषण। उ० १. रत्न हाटक-जटित मुकुट मण्डित मौलि भानुसस-सहस्र-उद्योतकारी। (वि० ५१)
रत्नाकर-(सं०)-रत्नों की खानि, समुद्र।
रथ-(सं०)-स्यंदन, यान, गाड़ी। एक विशिष्ट प्रकार की पुरानी गाड़ी जिसमें घोड़े जोते जाते थे। उ० जयति भीमार्जुन-ब्याल सूदन-गर्वहर धनंजय-रथ त्रान केतू। (वि० २८) रथगामी-(सं० रथगामिन्)-रथ पर चढ़कर चलनेवाला। उ० सारथि पंगु, दिव्य रथ-गामी। (वि० २)
रथहि-रथ को। उ० चले अवध लेइ रथहि निषादा। (मा० २।१४४।१)
रथांग-(सं०)-१. रथ का पहिया, २. चकवा, चक्रवाक। उ० २. पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर। (मा० २।८३)
रथी-(सं० रथिन्)-रथ पर चढ़ा हुआ, रथारूढ़। उ० रथी सारथिन्ह लिए बोलाई। (मा० २१६।४)
रथु-दे० 'रथ'।
रद (१)-(सं०)-दाँत, दंत। उ० अधर अरुन रद सुन्दर नासा। (मा० १।१४७।१)
रद (२)-(अर०)-१. नष्ट, खराब, २. तुच्छ, फीका।
रदन-(सं०)-दाँत।
रदपट-(सं०)-ओष्ठ, अधर। उ० रदपट फरकत नयन रिसौहैं। (मा० १।२५२।४)
रदपुट-दे० 'रदपट'।
रन-(सं० रण)-युद्ध, लड़ाई। उ० महाबीर-बिदित, जितैया बड़े रन के। (वि० ३७)
रनबाँकुरो-(सं० रण+वक्र)-रण में कुशल योद्धा, शूर-वीर। उ० धीर रघुबीर को बीर रन-बाँकुरो। (क० ६।४६)
रनवास-दे० 'रनिबास'।
रनिबास-(सं० राज्ञी+वास)-रानियों का महल, हरम, अंतःपुर। उ० जुवति जूथ रनिबास रहस-बस यहि बिधि। (जा० १७०)
रनिबासा-दे० 'रनिबास'।
रनिबासु-दे० 'रनिबास'।
रनिबासू-दे० 'रनिबास'। महल की रानियाँ। उ० आयउ जनक राज रनिबासू। (मा० २।२८१।२)
रनी-(सं० रण)-योद्धा, वीर, लड़ाका। उ० कलुष-कलंक कलेस-कोस भयो जो पद पाय रावन रनी। (गी० ५।३६)
रवि-दे० 'रवि'। उ० १. रबि आतप भिन्नमाभिन्न जथा। (मा० ६।११३।८) ७ रबि हर दिसि गुन रस नयन। (दो० ४५८) रबिहिं-रवि का, सूर्य का। उ० रबिहि राउ, राजहि प्रजा, बुध ब्यवहरहिं बिचारि। (दो०५०५) रबिहि-१. सूर्य का, २. सूर्य को, ३. सूर्य ने।
रविकर-(सं०)-सूर्य की किरण। उ० महा मोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर। (मा० १।१। सो० ५)
रविकुल-(सं०)-सूर्यकुल, सूर्यवंश। इसी कुल में राम का जन्म हुआ था। उ० रविकुल-कैरव-चंद भो आनंद-सुधा को। (वि० १५२) रबिकुलनंदन-सूर्यकुल के पुत्र या सूर्य कुल को प्रसन्न करनेवाले। रामचंद्र। उ० दिये बूझि रुचि रबिकुलनंदन। (मा० १।३३१।३)

रबितनुजा-(सं०)-यमुना नदी। उ० रबितनुजा कइ करत बड़ाई। (मा० २।११२।१)
रबिनंदनि-दे० 'रविनंदिनी'। उ० करम कथा रबिनंदनि बरनी। (मा० १।२।५)
रबिमनि-(सं० रविमणि)-सूर्यकांत मणि। उ० जिमि रबि-मनि द्रव रबिहि बिलोकी। (मा० ३।१७।३)
रबिसुत-(सं० रविसुत)-अश्विनीकुमार। उ० निरखत ही नयननि निरुपम सुख रबिसुत मदन सोम-दुति निदरति। (गी० ७।१७)
रबिसुता-(सं०रविसुता)-यमुना। उ० जनु रबिसुता सारदा सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी। (गी० ७।१५)
रम-(सं०रमण)-१.रम जाना, मिल जाना, लीन हो जाना, २.रम गया, मिल गया। उ० २. जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम। (मा० १।८०) रमु-रमणकर, क्रीड़ा कर। उ० राम राम रमु, राम राम रटु। (वि०६५) रमेउ-रम गया, लीन हो गया। उ० रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। (मा० २।१३३।३)
रमण-(सं०)-१. आनंदोत्पादक क्रिया, क्रीड़ा, २. मैथुन, सहवास, ३. रमण करनेवाला, पति, ४. कामदेव, ५. जार, ६. गर्दभ।
रमणी-(सं०)-स्त्री, सुन्दरी।
रमणीक-(सं० रमणीय)-सुन्दर, मनभावन।
रमणीय-(सं०)-सुन्दर, मनोहर। उ० तरुण रमणीय राजीव लोचन बदन राकेश कर निकर हासम्। (वि० ६०)
रमनं-दे० 'रमन'। रमन-दे० 'रमण'। रमण करनेवाले, पति। उ० विज्ञान-भवन गिरिसुता-रमन। (वि० १३)
रमनि-दे० 'रमणी'।
रमनीय-दे० 'रमणीय'। उ० निरखत मनहिं हरत हठि हरित अवनि रमनीय। (गी० ७।१६)
रमा-(सं०)-१. लक्ष्मी, कमला, श्री, २. स्त्री। उ० १. सिद्ध सची सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा सी। (वि० २३)
रमानाथ-(सं०)-लक्ष्मी के पति, विष्णु। उ० रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ। (मा० ७।२६)
रमानिकेत-(सं०) विष्णु।
रमानिकेता-दे० 'रमानिकेत'। उ० हरषि मिले उठि रमा-निकेता। (मा० १।१२८।३)
रमानिवास-(सं०) विष्णु, लक्ष्मीपति।
रमानिवासा-दे० 'रमानिवास'। उ० एवमस्तु करि रमा-निवासा। (मा० ३।१२।१)
रमापति-(सं०)-विष्णु। उ० का अपराध रमापति कीन्हा। (मा० १।१२४।४)
रमाबिलासु-(सं० रमा + विलास)-लक्ष्मी का विलास, भोग और ऐश्वर्य। उ० रमाबिलासु राम अनुरागी। (मा० २।३२४।४)
रमारमनं-(सं० रमा+रमण)-विष्णु। उ० जय राम रमा-रमनं समनं। (मा० ७।१४।१)
रमित-(सं० रमण) सर्वव्यापी। उ० रेफ रमित परमात्मा सह अकार सिय रूप। (स०१५)

रमेश–(सं०)–विष्णु।
रमेस–दे० 'रमेश'। उ० साहिब महेस सदा, संकित रमेस मोहिं। (क० ५।२१)
रमैया–(सं०रमण) सर्वत्र रमण करनेवाला, सब के हृदय में वास करनेवाला। उ० जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया। (क० ७।५३)
रम्यं–दे० 'रम्य'। उ० सदा शंकरं शंप्रदं सज्जनानंददं, शैलकन्यावरं परमरम्यं। (वि० १२) रम्य–(सं०)–मनोहर, सुंदर, रमणीय। उ० परम रम्य उत्तम यह धरनी। (मा० ६।२।२)
रम्यता–(सं०) शोभा, रमणीयता। उ० पुर रम्यता राम जब देखी। (मा० १।२१२।३)
रये–(सं० रंग)–रँग गये। रयो–रँग गये, रँगे, मिले। उ० धनि भरत! धनि भरत! करत भयो मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है। (गी० ६।११)
ररिहा–(सं० रटन)–१. झगड़ालू, रार करनेवाला, २. मंगन, भिक्षुक।
रव–(सं०)–ध्वनि, गुंजार, शब्द, आवाज़। उ० कटितट रटति चारु किंकिनि, रव अनुपम बरनि न जाई। (वि० ६२)
रवन–दे० 'रमण'। उ० ३. रवन गिरिजा, भवन भूधराधिप सदा। (वि० ११)
रवनि–(सं० रमणी)–१. स्त्री, सुंदरी, २. पत्नी, भार्या। उ० २. रति सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति। (क० ७।१६४)
रवनी–दे० 'रवनि'। उ० २. गर्जत गर्भ स्रवहिं सुररवनी। (मा० १।१८२।३)
रवा–(फ़ा०)–उचित, योग्य, ठीक। उ० राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिबो न रवा है। (क० ७।५६)
रवि–(सं०)–१. सूर्य, २. मदार का पेड़, ३. अग्नि, ४. नायक, सरदार, ५. रविवार, इत्तवार, ६. १२ की संख्या, ७. द्वादशी। उ० १. बानि विनायकु अंब रवि, गुरु हर रमा रमेस। (प्र० १)
रवत–(सं० रव)–शब्द करता हुआ। उ० लखि नव नील पयोद रवित सुनि रुचिर मोर जोरी जनु नाचति। (गी० ७।१७)
रवितनया–(सं०)–यमुना नदी।
रविनंदिनी–(सं०)–सूर्य की पुत्री, यमुना नदी।
रविसुवन–(सं० रविसूनु)-दे० 'रविसुत'। उ० सरद-बिधु रवि-सुवन मनसिज-मान-भंजनिहारु। (गी० ७।८)
रश्मि–(सं०)–किरण।
रस–(सं०)–१.अर्क, सार,२. स्वाद के छः रस–मीठा, खट्टा, खारा, चरपरा, कडुवा तथा कसैला, ३. आनंद, स्वाद, ४. प्रेम, प्रीति, ५. काव्य के श्रृंगार, वीर, शांत, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स और रौद्र नामक नौ रस, ६. पारा, ७. छः की संख्या, ८. जल, ९. मकरंद। उ० ३. जयति सीतेस-सेवा सरस, विषय रस-निरस, निरुपाधि, धुरधर्मधारी। (वि० ३८) ७. सुभग सगुन उनचास रस, रामचरितमय चारु। (प्र० ६।७।७) ९. गुंजत मंजु मधुप रस भूले। (मा०२।१२४।४) रसपागी–रस में पगी। उ० बोली बचन नीति रसपागी। (मा० ५।३६।३) रस-रस–धीरे धीरे। उ० रस रस सूख सरित सर पानी। (मा० ४।१६।३) रसानां–रसों की, नव रसों की। उ० वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि। (मा० १।१।श्लो० १)
रसग्य–दे० 'रसज्ञ'।
रसज्ञ–(सं०)–रसिक, रस को जाननेवाला। उ० अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै। (वि० १६७)
रसन–दे० 'रसना'। उ० कहै कौन रसन मौन जानै कोइ कोई। (कृ० १)
रसना–(सं०)–१. जीभ, जिह्वा, २. करधनी। उ० १. गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। (मा० ६।३३।५) २. रसना रचित रतन चामीकर। (गी० ७।१७)
रसभंग–रस या आनंद में भङ्ग, आनंद की समाप्ति, मज़ा किरकिरा होना। उ० रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग। (मा० ६।१३ ख)
रसम–दे० 'रसमि (२)'।
रसमि (१)–(सं० रश्मि)–किरण, मरीचि। उ० रसमि बिदित रबि-रूप लखु सीत सीतकर जान। (स० ४५२)
रसमि (२)–(अर० रस्म)–रीति, रिवाज।
रसराज–(सं०)–१. सब रसों का राजा, श्रृंगार रस, २. पारद, पारा। उ० १. जनु बिधु-मुख-छबि-अमिय को रच्छक राखे रसराज। (गी०१।१६) २. रावन सो रसराज सुभट-रस सहित लंक खल खलतो। (गी० ५।१३)
रसरी–(सं० रसना, प्रा० रसणा)–रस्सी, डोरी।
रसहीन–आनंद या रसरहित, नीरस। उ० जेहि किये जीव-निकाय बस रसहीन दिन दिन अति नई। (वि० १३६)
रसा–(सं०)–१. पृथ्वी, ज़मीन, २. जीभ। उ० १. रसा रसातल जाइहि तबहीं। (मा० २।१७६।१)
रसातल–(सं०)–पाताल, पृथ्वी के नीचे का लोक। उ० तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो। (क० ४।१)
रसायन–(सं०)–वैद्यक में एक प्रकार की दवा जो अपेक्षाकृत अधिक महँगी और शीघ्र लाभ पहुँचानेवाली होती है।
रसायनविद्या–वह विद्या जिसमें धातुओं को शोधना तथा भस्म करना एवं पदार्थों के तत्त्वों और उन तत्त्वों के परमाणुओं आदि का विवेचन रहता है।
रसायनी–रसायन शास्त्र का ज्ञाता। उ० राम की रजाय तें रसायनी समीर सूनु। (क० ५।२५)
रसाल–(सं०) १. आम, २. पनस, कटहल, ३. ऊख, ४. जल, ५. रसीला, सरस, रसयुक्त, ६. मधुरभाषी। उ० १. नव रसाल बन बिहरन सीला। (मा० २।६३।४) ४. कहाँ जनम कहँ मरन अपि समुझहि सुमति रसाल। (स० १६०) ६. राम-सिय-सेवक सनेही साधु सुमुख रसाल। (गी० ७।१)
रसाला–दे०'रसाल'। उ० १. सफल पूगफल कदलि रसाला। (मा०१।३४४।४) ५. लगे कहन हरिकथा रसाला। (मा० १।६०।३)
रसिक–(सं०)–१. रस जाननेवाला, रसिया, रस का प्रेमी, २. ऐयाश, ३.प्रेमी, ४. मौजी, मस्त, ५. कवि, काव्य की रचना करनेवाला। उ० १. कवित रसिक न रामपद नेहू।

(मा० १।४।२) ३. चंद किरन रस रसिक चकोरी। (मा० २।५१।४)
रसु-दे० 'रसु'।
रसेस-(सं० रसेश)-रसों में शिरोमणि, नमक। उ० रुचिर रूप-जल।मो रसेस ह्वै मिलि न फिरन की बात चलाई। (कृ० २५)
रसोई-(सं० रस)-१. पका हुआ खाना, भोजन, २. चौका, पाकशाला। उ० १. माया मय तेहिं कीन्हि रसोई। (मा० १।१७३।१)
रस्मि-(सं० रश्मि)-किरण, मरीचि।
रहँट-(सं० अरघट्ट)-कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र। उ० सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत न हेरी। (गी० ५।४६)
रहँसेउ-(सं० हर्ष)-हर्षित हो उठा। उ० एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु। (मा० २।७)
रह-(?)-१. ठहर, थम्ह, रुक, २. रुक गया, ३. एकांत, निर्जन। उ० २.लोचन जलु रह लोचन कोना। (मा० १। २५१।१) रहइ-रहता, रहता है। उ० कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमार। (मा० १।६२) रहई-रहता है। उ० एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। (मा०१।११८।१) रहउँ-रहूँ, रह जाऊँ। रहउ-१. रहे, २. रहो। उ० १. पुनि न सोचु तनु रहउ कि जाऊ। (मा० २।४।३) रहऊँ-रही हूँ। उ० जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। (मा० २।५१।३) रहत-१. रहता है, ठहरता है, २. रुकता है, बंद होता है, ३. रहते हुए। उ० २. नयननि बारि रहत न एक छन। (गी० ५।१७)३. लखी राम रुख रहत न जाने। (मा० २।७८।१) रहति-१. रहती है, २. रहते हुए। उ० १. सिद्ध सची सारद पूजहिं मन जोगवति रहति रमा सी। (वि० २२) रहन-१. चाल, रीति, रहने का ढंग, २. स्वभाव, प्रकृति, ३. रहना। उ० ३. तुलसिदास निज भवनद्वार प्रभु दीजै रहन परयो। (वि० ६१) रहनि-दे० 'रहन'। उ० १. तुलसी रहिए एहि रहनि, संत जनन को काम। (वै० १७) रहब-१. रहोगे, रहियेगा, २. रहना, ३. रहा करेंगे, रहूँगा। उ० १. दरसनु देत रहब मुनि मोहू। (मा० १।३६०।४) २. भयउ बहोरि रहब दिन चारी। (मा०२।२७३।१) ३. नाहिं त मौन रहब दिनु राती। (मा० २।१६।२) रहसि-रहा, रही। रहहिं-रहते हैं। उ० नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। (मा० २। २।२) रहहि-रहता है, रहा। रहहीं-रहते हैं। उ० प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। (मा० ७।२५।१) रहहु-रहो, रहोगी। उ० तौ घर रहहु न आन उपाई। (मा० २। ६१।४) रहहू-रहो। रहा-१ रह गया, रुका, २. था, ३. शेष रहा। उ० २. रहा बालि बानर मैं जाना। (मा० ६। २१।२) ३.रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग। (मा० ७।१। दो० १) रहि-१. रहकर, २. रह, ३. रह रही हो। उ० ३. अलप तड़ित जुगरेख इंदु महँ रहि तजि चंचलताई। (वि० ६२) रहिअ-रहा जाय। उ० इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना। (मा० १।२१४।३) रहिउँ-रही, थी। उ० तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। (मा०१।१७।५) रहिबो-रहना। उ० तौलौं, मातु! आपु नीके रहिबो। (गी० ५।१४) रहिय-१. रहो, रहिए, २. रहना, रुकना, ३. रहे, रुके। रहिहउँ-रहूँगा। उ० रहिहउँ निकट सैल पर छाई। (मा० ४।१२।४) रहिहहिं-रहेंगे। उ० सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम। (मा० २।४६) रहिहि-रहेगी, रहेगा। उ० जो चलिहैं रघुनाथ पयादेहि सिला न रहिहि अवनी। (गी० १।५६) रहिहु-तुम थी, थी। उ० जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास। (मा० ७।६०) रहीं-रह गईं, रुकीं, थीं। रही-१. रह गई, २. थी। उ० २. तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहिं तारेहु? कछु रही सगाई? (वि० ११२) रहु-रहो। उ० झुकी रानि अब रहु अरगानी। (मा० २। १४।४) रहे-१. थे, टिके थे, ठहरे, ठहरे थे, रुके, २. शेष बचे, बाकी रहे। उ० १. कराल हैं, रहे कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही। (क० ६।८) रहेउँ-१. रहा, २. अड़ा रहा। उ० १. मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। (मा० ४।६। ४) २. भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप। (मा०७।११४ख) रहेउ-रहा, था। रहेऊँ-मैं था, मैं मौजूद था। उ०तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। (मा०१।१८५।२) रहेऊ-रहा, था, रुका। रहेसि-रहा, रह गया। उ० जौं तै जिअत रहेसि सुरद्रोही। (मा० ६।८४।२) रहेहु-दे० 'रहेउ'। रहै-१. रहे, रहता है, २.रहने। उ० १.रहै जहाँ बिचरै तहाँ, कमी कहूँ कछु नाहिं। (स० ५५७) २. आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा। (मा० १।१८३।छं० १) रहैगो-रहेगा, ठहरेगा। रह्यों-रहा हूँ, रहा। उ० चाटत रह्यों स्वान पातरि ज्यों कबहूँ न पेट भरो। (वि० २२६) रह्यो-था, रहा। उ० अचवाँइ दीन्हें पान गवने बास जहँ जाको रह्यो। (मा० १।९९।छं० १) रह्यौ-रहा। उ० कहे बिनु रह्यौ न परत। (वि० २५६)
रहसि (२)-(सं० रहस्)-एकांत में, गुप्तस्थान में। उ० रहसि जोरि कर पति पग लागी। (मा० २।३६।३)
रहम-(अर०)-करुणा, दया। उ० सबको भलो है राजा राम के रहम ही। (क० ६।८)
रहस-(सं० हर्ष)-आनंद, प्रसन्नता। उ० कौसल्या कैकयी सुमित्रा रहस-बिबस रनिवास। (गी० १।२)
रहसहिं-(सं० हर्ष)-प्रसन्न होते हैं, हर्षित होते हैं। उ० बर दुलहिनिहि बिलोकि सकल मन रहसहिं। (पा० १४३) रहसि (१)-प्रसन्न होकर, खुश होकर। रहसी-प्रसन्न हुई। उ० रहसी चेरि घात जनु फाबी। (मा० २।१७।२) रहसे-प्रसन्न हुए। रहसेउ-प्रसन्न हुए।
रहस्य-(सं०)-१. गुप्त भेद, गोप्य विषय, २. वह जो आसानी से समझ में न आ सके। उ० १. यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। (मा० १।११६।१) २. यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ। (मा० ७।११६ क)
रहित-(सं०)-हीन, शून्य, खाली। उ० मदन मर्दन मदातीत माया रहित मंजुमानाथ पाथोज पानी। (वि०५६)
राँक-(सं० रंक)-रंक, भिखारी। उ० राँक सिरोमनि काकिनि भाग बिलोकत लोकप को करदा है। (क० ७।१५५) राँकनि-१. रंकों को, २. रंकों ने। उ० १. राँकनि नाकप रीझि करै। (क० ७।१५३)

राँकु–दे० 'राँक'। उ० धनु तोरै सोई बरै जानकी राउ होइ की राँकु। (गी० १।८७)
राँची–(सं० रचना)–रची, निर्माण की।
राँचो–(सं० रंजन) चाहा, प्यार किया। उ० मन जाहि राँचो मिलहि सो वर सहज सुंदर साँवरो। (मा० १।२३६।छं०१)
राँड–(सं० रंडा)–१. विधवा, बेवा, २. वेश्या, कसबी। उ० २. ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी। (क० ६।२७)
राँधा–(सं० रंधन)–पकाया। राँधे–पकाने से। उ० हाँड़ी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज। (दो०११९७) राँध्यो–पकाया, चुराया। उ० लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो। (क० ६।४)
राइ–(सं० राजा, प्रा० राया)–छोटा राजा, राय। उ० राइ दसरत्थ के समत्थ राम राजमनि। (क० ७।२०)
राई–(सं०,राजा)–राजा, प्रधान। यह शब्द प्रायः शब्दों के बाद में लगता है। जैसे रघुराई, यदुराई तथा ऋषिराई आदि। उ० जेहिं बन जाइ रहब रघुराई। (मा०२।१०४।३) गवने तुरत तहाँ रिषिराई। (मा० १।१३३।२)
राउ–(सं० राजा)–१. राजा, भूपति, २. स्वामी, ३. प्रधान, सरदार। उ० १. कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ। (वि० १००)
राउत–(सं० राज+पुत्र)–सरदार, शूरवीर। उ० राउ राउत होत फिरि कै जूझै। (वि० १७६)
राउर–(सं० राज+पुत्र)–१. आपका, तुम्हारा, २. राजा, राजकुमार। उ०१. जौं राउर आयसु मैं पावौं। (मा० १।२१८।३) २.राउर नगर कोलाहलु होई। (मा०२।२३।४) राउरि–आपकी।
राऊ–दे० 'राउ'। उ० २. जद्यपि अखिल लोक कर राऊ। (मा० ४।५७।३)
राकस–(सं० राक्षस)–राक्षस, निशिचर। राकसनि–राक्षसों ने। उ० खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि। (ह० ३५)
राका–(सं०)–१. पूर्णिमा की रात, पूर्णमासी, २. रात, ३. नदी, ४. खुजली, ५. प्रथम रजोवती स्त्री। उ० १. ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। (मा० २।३२५।३)
राकापति–(सं०)–पूर्णमासी का चंद्रमा, राकेश। उ० राकापति षोड़स उअहिं तारा गन समुदाइ। (मा० ७।७८ख)
राकेश–(सं०)–पूर्णमासी का चंद्रमा।
राकेस–दे० 'राकेश'। उ० वृष्णिकुल-कुमुद-राकेस राधारमन कंस-बंसाटवी धूमकेतू। (वि० ५२)
राक्षस–(सं०)–१. निशाचर, दैत्य, असुर,२. पापी, हिंसक।
राख (१)–(?)–भस्म, खाक।
राख (२)–(सं० रक्षण)–१. रखवाली करो, २. रख लिया, रखता है, ३. रक्षा करें, ४. रक्खो। उ० २. सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपुनाउ। (दो० ५२०) ३. जेहि राख राम राजिव नयन। (कृ० ७।११७) राखइ–१. रखता है, २. रक्षा करता है। राखउँ–१. रक्खूँ, २. रक्षा करूँ। राखत–१. रखता है, २. रखवाली करता है, रक्षा करता है। उ० २. अब बिनु मन, तन दहत दया तजि, राखत रवि ह्वै नयन बारिधर। (कृ० ३१) राखति–१. रखती है, २. रखती हूँ। उ० २. राखति प्रान बिचारि दहत मत। (गी० ५।६) राखन–१. रखने के लिए, २. रखना। उ० १. रायँ राम राखन हित लागी। (मा० २।७६।१) राखब–१. रक्खूँगा, २. रखना चाहिए। उ० २. रिपु रन रंच न राखब काऊ। (मा० २।२२९।१) राखबि–रखना, रखिएगा। उ० तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन। (जा० १८८) राखहिं–१. रक्षा करते हैं, २. रखते हैं। उ० १. राखहि सोइ है बरियाई। (कृ० ५६) राखहु–रखो, रक्षा करो। उ० राखहु राम कान्ह यहि अवसर, दुसह दसा भइ आइ। (कृ० १८) राखा–रक्खा। उ० तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा। (मा० २।३०।४) राखि–दे० 'राखी'। उ० १. करि करि बिनय कछुक दिन राखि बरातिन्ह। (जा० १८१) २. दले मलिन खल, राखि मख, मुनि सिष आसिष दीन्हि। (प्र० ४।६।३) राखिबे–रक्षा करने, बँचाने। उ० मख राखिबे लागि दसरथ सों माँगि आस्रमहिं आने। (गी० १।५४) राखिय–१. रखिए, २ रक्षा कीजिए, रक्षा करनी चाहिए। राखिये–१. रक्षा कीजिए, २. रखिए। उ० १. संकर निज पुर राखिये चितै सुलोचन-कोर। (दो० २३६) २. राखिये नीके सुधारि, नीच को डारिए मारि। (वि० २४८) राखिहहिं–रक्खेंगे, रक्षा करेंगे। राखिहि–रखेगा। उ० तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधार्यो। (वि० २०२) राखिहैं–रखेंगे, रक्षा करेंगे। उ० राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे। (क० ७।५०) राखिहौ–रखोगे, घर ही रखोगे। उ० जो हठि नाथ राखिहौ मो कहँ तौ सँग प्रान पठावोंगी। (गी० २।६) राखी (१)–१. रखकर, २. रक्षा करके, ३. रक्खी, ४. रखते। राखु–रक्षा करो। उ० भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कह्यो नर-नारी। (वि० ९३) राखे-रक्खा, रख दिया। उ०ठावँ ठाव राखे अति मीती। (मा० २१६०।२) राखेउँ–रक्खे हैं। उ० राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई। (मा० २।५९।१) राखेउ–रक्खा, रक्खा है। उ० मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ। (पा० ७१) राखेसि–रक्खा। उ० लै राखेसि गिरिखोह महुँ मायाँ करि मति भोरि। (मा० १।१७१) राखेसु–१. रखा, २. रक्खा गया। राखेहु–रक्खा था। उ० सो भुज बल राखेहु उर घाली। (मा० ६।२६।४) राखैं–१. रखते हुए, २. रक्खे। उ० १. नीच ज्यों टहल करैं राखैं रुख अनुसरैं। (गी० १।१७०) २. रोटी लूगा नीके राखैं, आगे हू को बेद भाषैं। (वि० ७६) राखै–१. रक्षा करता है, २. रक्खे। उ० १. जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया। (क० ७।५३) राख्यो–१. रक्खा है, रख लिया है, २. रक्षा की। उ० १. जद्यपि है दारुन बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीरतर। (कृ० ३१) २. प्रथम ताड़का हति सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज-हितकारी। (गी० ७।३८) राख्यौ–दे० 'राख्यो'।
राखनहार–रक्षा करनेवाला। उ० राखनहार तुम्हार अनुग्रह घर बन। (जा० २८)

राखी (२)–(?)–राख, भस्म।
राग–(सं०)–१. मोह, प्यार, आसक्ति, २. मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, ३. संगीत के भैरव, मलार आदि राग, ४. विषयासक्ति। उ० १. राग बस भो बिरागी पवनकुमार सो। (क० ५।१) २. निसि दिन पर-अपवाद वृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि। (वि० २३८) ३ उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान। (गी० १।२) ४. राग को न साज। (क० ७।६६) राग-रंग–हँसी खुशी, गाना-बजाना, आनंद। उ० सब की सुमति राम-राग-रंग रई है। (गी० २।३४) रागहि–प्रेम में, राग में। उ० रोष न प्रीतम-दोष लखि, तुलसी रागहि रीझि। (दो० २८४) रागऊ–राग भी, आसक्ति या प्रेम भी। उ० रागऊ बिराग, भोग जोग जोगवत मन। (गी० १।८५)
रागा–दे० 'राग'। उ० १. तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। (मा० २।३२४।४)
रागिन–रागी लोग। दे० 'रागी'। उ०रागिन पै सीठि डीठि बाहरी निहारिहैं। (क०७।१४०) रागिहिं–रागी को,सांसारिक विषयों के प्रेमी को। उ० रागिहि सीठ बिसेषि थलु, विषय-बिरागिहि मीठ। (प्र०२।६।१) रागी–(सं०रागिन्)–जो विरक्त न हो, संसार से प्रेम रखनेवाला। उ० राजा रंक रागी औ बिरागी, भूरि भागी ये। (क० ७।८३)
रागु–दे० 'राग'।
रागे–(सं० राग)–गाए, गाना आरंभ किया। उ० गायक सरस राग रागे। (गी० ७।२)
राघव–(सं०) १. रघु के वंशज, रामचंद्र, २.समुद्र में रहनेवाली एक प्रकार की बड़ी मछली। उ० १. जब द्रवै दीन दयालु राघव साधु-संगति पाइए। (वि० १३६)
राघौ–दे० 'राघव'। उ० १. राघौ गीध गोद करि लीन्हों। (गी० ३।१३)
राचहीं–(सं० रंजन)–अनुरक्त होते हैं, मुग्ध होते हैं। उ० बरषैं सुमन सुर रूरे रूप राचहीं। (क० १।१४) राचा (१)–अनुरक्त हो गया, लुब्ध हो गया। उ० सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा। (मा०१।२३६।४)
राचा (२)–(सं० रचना)–रचना की, रचा।
राच्छस–दे० 'राछस'। राच्छसी–राक्षसी, राक्षस की स्त्री। उ० त्रिजटा नाम राच्छसी एका। (मा० ५।११।१)
राछस–(सं० राक्षस)–निश्चर, असुर। उ० राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी। (मा० ५।५७।६)
राज (१)–(सं० राज्य)–राज्य, राजा का प्रदेश।
राज (२)–(राजन्)–१. राजा, नरेश, २. राजगीर, थवई, ३. बड़ा। उ० १.राज-अजिर राजत रुचिर। (प्र० ४।२।६)
राज (३)–(सं० राजन)–राजित, शोभित। उ० ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल। (वि० ११)
राजलखन–(सं० राजन्+लक्षण)–राजा के लक्षण। उ० राजलखन सब अंग तुम्हारें। (मा० २।११२।२)
राजऋषि–दे० 'राजर्षि'। उ० राजऋषि पितु ससुर, प्रभु पति, तू सुमङ्गल खानि। (गी० ७।३२)
राजकिसोर–(सं० राजकिशोर)–राजा का लड़का, राजपुत्र। उ० भूप सभा भव चाप दलि, राजत राजकिसोर। (प्र० ४।७।२)
राजकुअँरि–(सं० राजकुमारी)–राजा की पुत्री। उ० रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। (मा० १।१३४।२)
राजकुमार–(सं०)–राजपुत्र, राजा का लड़का। राजकुमारी–(सं०)–राजा की पुत्री। उ० संग रमा सोइ राजकुमारी। (मा० १।१३६।२)
राजकुमारा–दे० 'राजकुमार'। उ० तेहि पठए बन राजकुमारा। (मा० २।११६।२)
राजकुमारि–(सं० राजकुमारी)–राजपुत्री। उ० आनि देखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि। (मा० १।१३०)
राजडगर–(सं० राज+ ?)–राजमार्ग, सीधी और बड़ी सड़क। राज-डगरो–दे० 'राजडगर'। उ० गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो। (वि० १७३)
राजत–(सं० राजन)–राजता है, सुशोभित होता है। उ० कसे हैं बनाइ नीके राजत निषंग हैं। (क०२।१५) राजति–शोभती है, सुन्दर लगती है। उ० पुरी बिराजति राजति रजनी। (मा०१।२५८।२) राजहिं–सुंदर लगती हैं, सुशोभित हैं। उ०मन्दिर महँ सब राजहिं रानी। (मा०१।१६० ।४) राजहि–सुन्दर लगता है। राजे (१)–(सं० राजन्)–विराजे शोभित हुए। राजैं–शोभा देती हैं, शोभा दे रही हैं। उ० पंकज-पानि पहुँचियाँ राजैं। (गी० १।२८)
राजधानी–(सं०)–किसी राज्य का वह प्रधान नगर जहाँ राजा तथा उसके कोष एवं कार्यालय आदि रहते हैं। उ० जयति सौमित्र-सीता-सचिव-सहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी। (वि० ४३)
राजन–हे राजा। उ० राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार। (मा० २।३)
राजनय–(सं०)–राजनीति।
राजपूत–(सं० राजपुत्र)–श्रेष्ठ पुत्र। उ० राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है। (क० २।४)
राजमराल–दे० 'राजहंस'।
राजमराला–दे०'राजमराल'। उ०संकर मानस राजमराला। (मा० ३।८।१) राजमरालिनि–राजहंसिनी, राजमराल की मादा। उ० देखि बधिक-बस राजमरालिनि लषन-लाल छिनि लीजै। (गी० ३।७)
राजमहिषी–(सं०) पटरानी, रानी। उ०बारहिं मुकुता रतन राजमहिषी पुर-सुमुखि समान। (गी०१।२)
राजमारग–(सं० राजमार्ग)–बड़ी सड़क, शासन की ओर से बना प्रधान मार्ग। उ० सो निबह्यो नीके जो जनमि जग राम-राजमारग चलो। (गी० ५।४२)
राजरोग–(सं० राज+रोग)–वह रोग जो असाध्य हो, तपेदिक, क्षय। उ० रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर। (क० ५।२५)
राजरिषि–दे० 'राजर्षि'।
राजर्षि–(सं०)–वह ऋषि जो जन्म से राजा या राज्य कुल का हो।
राजसता–(सं०)–रजोगुण, राजसीपन। उ० राजत राजसता अनुज बरद धरनि-धर धीर। (स० १५३)
राजहंस–(सं०)–एक हंस जिसकी चोंच और पैर लाल होते हैं। उ० तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहंस से जोरे। (गी० २।८६)

राजा–(सं० राजन्)–१. नरेश, नृप, भूप, २. सम्राट्, चक्रवर्ती राजा, ३. क्षत्रिय, ४. प्रभु, स्वामी, ५. चंद्रमा। उ० १. सुनत राजा की रीति, उपजी प्रतीति प्रीति। (गी० १।६४)
राजाधिराज–राजाओं के राजा। उ० खेलत बसंत राजाधिराज। (गी० ७।२२)
राजि–दे०'राजिका'। उ०कुसुमित नव तरु राजि विराजा। (मा० १।८६।३)
राजिका–(सं०)–पंक्ति, कतार।
राजित–(सं०) १. विराजित, शोभित, २.आसीन, बैठे हुए।
राजिव–दे० 'राजीव'। उ० राजिव दल-नयन, कोमल-कृपा अयन, मयननि बहु छबि अंगनि दूरति। (गी० ५। ४७)
राजी (१)–(अर० राज़ी)–१. सम्मत, तैयार, २. प्रसन्न। उ० १. तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्ण कृपालु-भगति पथ राजी ? (कृ० ६१)
राजी (२)–दे० 'राजिका'।
राजीव–(सं०)–कमल, पद्म। उ० अरुन कर चरन मुख, नयन राजीव, गुन अयन, बहु-मयन शोभानिधानं। (वि० ४६)
राजु–दे० 'राज (१)'। राजा का प्रदेश, राज्य। उ० रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु। (मा० २।११)
राजू–दे० 'राजु' तथा 'राज (२)'।
राजेंद्र–(सं०)–राजों का राजा, श्रेष्ठ राजा। उ० जयति राज राजेंद्र राजीवलोचन राम-नाम-कलिकामतरु, सामशाली। (वि० ४४)
राजे (२)–(सं० रंजन)–प्रसन्न हुए।
राज्य–(सं०)–साम्राज्य, किसी एक शासन के अधीन देश।
राट्–(सं०)–राजा, बादशाह। उ० भाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्। (मा० २।१।श्लो० १)
राड़–दे० 'राढ़'। उ० १. जग-गुन-मोल, अहार, बल, महिमा जान कि राड़ ? (दो० ३८०)
राढ़–(सं०राटि)-१. झगड़ालू, रार, दुष्ट, २.झगड़ा, झंझट, ३. कायर। उ० १. आपनी न बूझि, ना कहे को राढ़ रोर रे ! (वि० ७१) राढ़उ–कायर भी। उ० राढ़उ राउत होत फिरि कै जूझै। (वि० १७६)
रात–(सं० रात्रि)–रजनी, निशा।
राता (१)–(सं० रत)–अनुरक्त हुआ, लगा, प्रीतियुक्त हुआ। उ० जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। (मा० १।२०४।१) राती (१)–१. प्रीतियुक्त, अनुरक्त, २. अनुरक्त हुई। राते (१)–प्रीतिमान हुए, अनुरक्त हुए। उ० ऐसे भए तौ कहा तुलसी जु पै जानकीनाथ के रंग न राते। (क० ७।४४) रातेउ (१)–दे० 'राते (१)'
रातो–(सं० रत)–१. रत हो जावो, लीन हो, २. लीन होते, अनुरक्त हो जाते। उ० २. जो मन प्रीति प्रतीति सों राम नामहि रातो। (वि० १५१) रात्यो–(सं० रत)–१. आसक्त लीन, २. लीन हुआ। उ० १. जौबन जुवति-सँग रंग रात्यो। (वि० १३६)
राता (२)–(सं०रक्त)–लाल, अरुण। राती (२)–लाल,सुर्ख राते (२)–लाल, १. सुर्ख, २. लाल हो गया। उ० १. भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। (मा०१।२६८।३) रातेउ (२)–दे० 'राते (२)'।
राति–दे० 'रात'। रातिहिं–रात में ही। उ० रातिहिं घाट घाट की तरनी। (मा० २।२२१।१)
रातिचर–(सं० रात्रि+चर)–राक्षस, निशिचर। उ० सारे रन रातिचर, रावन सकुल दल। (क० ६।५८)
राती (३)–दे० 'रात'। उ० होइ अकाजु कवनि बिधि राती। (मा० २।१३।२)
रात्रि–(सं०)–रात, सूर्यास्त से सूर्योदय तक का समय।
राधा–(सं०)–१. वृषभानु गोप की पुत्री और कृष्ण की प्रेयसी, २. विशाखा नक्षत्र, ३. अधिरथ की पत्नी जिसने कर्ण को पाला था।
राधारमन–(सं० राधारमण)–राधा के प्रेमी कृष्ण। उ० वृष्णिकुल-कुमुद-राकेस राधारमन कंस-बंसाटवी-धूमकेतू। (वि० ५२)
राधो–(सं० आराधना)–आराधना की। उ० साधो कहा-करि साधन तें जो पै राधो नहीं पति पारबती को ? (क० ७।१५६)
राना–(सं० राट्)–राजा। उ० बापुरे बराक और राजा राना राँक को। (ह० १२)
रानि–दे० 'रानी'। उ० हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। (मा० २।१३।४)
रानिन–रानियों ने। उ० रानिन दिए बसन मनि भूषन, राजा सहन-भँडार। (गी० १।२) रानिन्ह–दे० 'रानिन'। रानिहिं–दे० 'रानिहि'। रानिहि–रानी का। उ० कोउ कह दूषन रानिहि नाहिन। (मा० २।३२३।३) रानी–(सं० राज्ञी)–राजपत्नी, महिषी। उ० चेरि छाड़ि अब होब कि रानी। (मा० २।१६।३)
रामं–राम को। उ० नौमीड्य जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढ रामम्। (मा० ७।१।श्लो० १) रामः–राम। उ० संतत शं तनोतु मम रामः। (मा० ३।११।८) राम–(सं०)–१. रामचंद्र, भगवान, २. बलराम, ३. परशुराम। उ० १. लछिमन रामचरन रति मानी। (मा० १।१६८। २) २. राखहु राम कान्ह यहि अवसर दुसह दसा भइ आइ। (कृ० १८) ३. बार बार मुनि बिप्रवर कहा राम सन राम। (मा० १।२८२) रामहिं–रामको। उ० रामहिं सुमिरत, रन भिरत, देत, परत गुरु पाय। (दो० ४२) रामहि–राम को। उ० परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत। (मा० १।२२७) रामो–राम भी। उ० प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो। (वि० २२८)
रामकहानी–१. लंबी कहानी, २. रामायण।
रामघाट–(सं०राम+घट्ट)–वह घाट या नदी के किनारे का स्थान जहाँ राम ने स्नानादि किया था। उ० रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। (मा० २।११७।२)
रामगिरि–(सं०)–चित्रकूट पर्वत। उ० अटनु रामगिरि बन तापस थल। (मा० २।२८०।४)
रामचंद–दे० 'रामचंद्र'। उ० रामचंद मुखचंदु निहारी। (मा० २।१।३)

रामचंदु–दे० 'रामचंद्र'। उ० रामचंदु पति सो बैदेही। (मा० २।६१।४)
रामचंद्र–(सं०)अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र। इनकी माता का नाम कौशल्या और स्त्री का नाम सीता था। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इनके भाई थे, जिनमें इन पर विशेष स्नेह लक्ष्मण का रहता था। राम की कथा के प्रथम लेखक वाल्मीकि हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा हिंदी के विभिन्न ग्रंथों में राम की कथा विभिन्न रूपों में मिलती है। उ० रामचंद्र मुख चंद चकोरा। (मा० २।११५।३)
रामजिउ–रामचंद्र जी। उ० काहे रामजिउ साँवर, लछिमन गोर हो। (रा० १२)
रामपुर–(सं०–)राम का नगर, अयोध्या। उ० पहुँचे दूत रामपुर पावन। (मा० १।२९०।१)
रामपुरी–दे० 'रामपुर'। उ० रामपुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख-द्वंद। (गी० ७।२३)
रामबोला–राम शब्द बोलनेवाला। कहा जाता है कि तुलसी का यही नाम था। तुलसी के अनुसार राम ने ही यह नाम रक्खा था। उ० राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम। (वि० ७६)
रामा (१)–(सं०)–१. सुंदर स्त्री, स्त्री, २. नदी, ३. सीता, जानकी, ४. रुक्मिणी, ५. राधा, ६. लक्ष्मी। उ० ६. रूप-सुख-शील-सीमासि भीमासि रामासि वामासि बर बुद्धि बानी। (वि० १५)
रामा (२)–राम, रामचंद्र। दे० 'राम'। 'रामचंद्र'। उ० कह तुलसिदास सुनु रामा। (वि० १२५)
रामायणं–दे० 'रामायण'। उ० श्री मद्रामपदाब्ज भक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्। (मा० ७।१३१।श्लो० १)
रामायण–(सं०)–राम के चरित्र से संबंध रखनेवाला ग्रंथ। सामान्यतः बाल्मीकि कृत रामायण और तुलसी कृत रामचरितमानस रामायण कहे जाते हैं। रामायणे–रामायण में। उ० रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। (मा० १। श्लो० ७)
रामायन–(सं० रामायण)–१. राम के चरित्र से संबंध रखनेवाला ग्रंथ, २. रामकथा। उ० १. रामायन-अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति। (दो० ५४५)
रामु–दे० 'रामू'। उ० मङ्गलमूल रामु सुत जासू। (मा० २।२।३)
रामू–दे० 'राम'। रामचंद्र। उ० अपने बस, करि राखे रामू। (मा० १।२६।३)
रामेस्वर–(सं० रामेश्वर)–दक्षिण भारत के समुद्रतट का शिवलिंग। उ०जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। (मा०६।३।१)
राय–(सं० राजन्)–१. राजा, २. श्रेष्ठ, ३. नायक, सरदार। उ० १. राउर राय रजायसु होई। (मा० २।२६६।४)
रायमुनीं–(सं० राजन्+मुनि)–लाल नामक पक्षी की मादाएँ। उ० जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने। (मा० ६।१०३।छं० २)
राया–दे० 'राय'। उ० २. संत सहज सुभाउ खगराया। (मा० ७।१२१।७)
रार–(सं० राद)–लड़ाई, झंझट, विरोध।
रारि–दे०'रार'। उ० घोर रारि हेरि त्रिपुरारि बिधि हारे हिये। (क० ६।५६)
रारी–दे० 'रार'। उ० बरषा घोर निसाचर रारी। (मा० १।४२।३)
राव–दे० 'राय'।
रावण–(सं०)–लंका का प्रसिद्ध राजा जो राक्षसों का नायक था और जिसे सीता को चुराने के कारण राम ने मारा था। दस मुख होने के कारण इसे 'दसानन' आदि भी कहते हैं। इसे २०भुजाएँ थीं। कुंभकर्ण तथा बिभीषण, इसके भाई, मंदोदरी इसकी स्त्री तथा मेघनाद इसका पुत्र था। उ० नमत पद रावणानुज निवाजा। (वि० ४३)
रावन–दे० 'रावण'। उ० कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जगजान। (मा० १।१२२) रावनहिं–रावण को। रावनहि–रावण को। उ० सहित सहाय रावनहि मारी। (मा० ४। ३०।५) रावनो–रावण भी। उ० भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो। (क० ५।८)
रावनु–दे० 'रावन'। उ० रावनु जातुधान कुल टीका। (मा० ६।३८।३)
रावर–(सं० राजपुत्र)–तुम्हारा, आपका। रावरि–तुम्हारी, आपकी। उ० रघुबर! रावरि यहै बड़ाई। (वि० १६५) रावरिये–आपही की। उ० मेरे रावरिये गति है रघुपति बलि जाउँ। (वि०१५३) रावरी–दे० 'रावरि'। उ० रावरी पिनाक मैं सटीकता कहा रही। (क० १।१६) रावरीयै–आपही की। उ०आस रावरीयै, दास रावरो बिचारिए। (ह० २१) रावरे–१. आप, २. आपके। उ० १. तुलसी के ईस राम रावरे सों साँची कहौं। (क० २।८) रावरेऊ–१. आप भी, २. आप के भी। उ० १.रावरेउ जानि जिय कीजिये जु अपने। (क० ७।७८) रावरेहु–आपके, तुम्हारे। उ० रावरेहु सतानंद पूत भए माय के। (गी० १।६५)
रावरा–दे० 'रावरो'।
रावरो–(सं० राजपुत्र)–आपका, तुम्हारा। उ० हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो। (पा० ५४) रावरोई–आपका ही। उ० पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै। (क० ७।६१)
राशि–(सं०)–१. ढेर, समूह, २. ज्योतिष की १२ राशियाँ, ३. अनाज का ढेर।
राषा–(सं० रक्षण)–रख लिया। राषे–रक्खा।
रास–(सं०)–नाच। एक विशष प्रकार की नाच जो कृष्ण गोपियों के साथ करते थे। उ० नहिंन रास रसिक रस चाख्यो तातें डेल सो डारो। (कृ० ३४)
रासभ–(सं०)–१. गदहा, गर्दभ, २. खच्चर, अश्वतर। उ० १. पुरोडास चह रासभ खावा। (मा० ३।२६।३) रासभी–१. गदही, २.खच्चरी। उ० १. बेचिये बिबुध धेनु रासभी बेसाहिए। (क० ७।७६)
रासि–दे० 'राशि'। उ० १. बालि बल-मत्त गजराज-इव केसरी सुहृद-सुग्रीव दुखरासि-भंग। (वि० ५०) रासिन्ह–रशियों, ढेरों। उ० जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ। (मा० ६।५३) रासिहि–समूहों को, राशियों

को। उ० बहु बासना मसक हिमरासिहि। (मा० ७। ३०।५)
रासी–दे० 'राशि'। उ० १. चेतन अमल सहज सुखरासी। (मा० ७।११७।१)
रासीन्ह–दे० 'रासिन्ह'।
राहु–(सं०) पुराणानुसार ६ ग्रहों में एक। समुद्र-मंथन से निकले अमृत को पीने के लिए जब देवता बैठे तो उनमें एक असुर भी बैठ गया था। ज्यों ही उसने अमृतपान किया चंद्रमा तथा सूर्य यह भेद जान गये और उन लोगों के संकेत से विष्णु ने चक्र से असुर को काट डाला। पर, वह अमृत भी चुका था अतः उसके दोनों कटे भाग जीवित रहे और वे राहु-केतु कहलाये। तभी से राहु चंद्रमा तथा सूर्य को ग्रसता है जिसे चंद्रग्रहण और सूर्यग्रहण कहते हैं। राहु की माता सिंहिका थी जो समुद्र में रहती थी और छाया द्वारा जीवों को पकड़ लेती थी। उ० भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महँ रिपु राहु बड़ेरो। (वि०८७)
राहू–दे० 'राहु'। उ० लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। (मा० २।२५।१)
रिक्त–(सं०)–शून्य, खाली, खोखला, रीता।
रिगु–(सं० ऋक्)–ऋग्वेद, प्रथम वेद।
रिच्छ–(सं० ऋक्ष)–रीछ, भालू। उ० रिच्छ मर्कट विकट सुभट उद्भट। (वि० ५०)
रिच्छेश–दे० 'रिच्छेस'।
रिच्छेस–(सं० ऋक्षेश)–भालुओं का राजा, जांबवान्। उ० तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। (मा० ६।३६।२)
रिच्छेसा–दे० 'रिच्छेस'।
रिछेस–दे० 'रिच्छेस'।
रिछेसा–दे० 'रिच्छेस'। उ० जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। (मा० ४।२६।४)
रिझये–(सं० रञ्जन)–रिझाया, रिझा लिया, मोह लिया। उ० कर-कमलनि विचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये। (गी०१।४३) रिझवै–१. रिझावे, प्रसन्न करे, २. रिझाती है, प्रसन्न करती है। उ० २. सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि। (क० ७।२६)
रिझाइ–(सं०रंजन) प्रसन्न करके,खुश करके। उ०ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामि सों पाइहै जो मुँह मागिहै। (वि० २२४) रिझाइबो–प्रसन्न करना। उ० उपदेसिबो रिझाइबो तुलसी उचित न होइ। (दो०४८६) रिझाई–रिझाया, प्रसन्न किया। रिझाएँ–रिझाने से। उ०कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ। (मा०१।१६२।१)रिझाए–रिझाया, प्रसन्न किया। रिझावौं–रिझा सकूँ, प्रसन्न कर सकूँ। उ० तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहु तुमहिं रिझावौं। (वि० १४२)
रितई–(सं० रिक्त)–रिक्त कर दिया, खाली कर दिया। उ० दीजै दादि देखि ना तो बलि, मही-मोद-मङ्गल-रितई है। (वि० १३६) रितए–१. खाली कर दिये, २. खाली करने पर। उ० १. उमगि चल्यौ आनंद लोक तिहुँ देत सबनि मन्दिर रितए। (गी० १।३) रितवहिं–(सं० रिक्त)–खाली करते हैं। उ० भरहिं अरु रितवहिं। (जा० ८६) रितवै–खाली करे। उ० रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै। (क० ७। ४७) रितौ–खाली करके। उ० साँवर रूप सुधा भरिबे कहँ नयन कमल कल कलस रितौ री। (गी० १।७५)
रितु–दे० 'ऋतु'। मौसम। उ० बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास। (मा० १।१६)
रितुराज–(सं० ऋतुराज)–वसंत ऋतु। उ० सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत। (मा०२।१३३)
रितुराजू–दे० 'रितुराज'। उ० सो मुद मङ्गलमय रितुराजू। (मा० १।४२।२)
रिद्धि–दे०'ऋद्धि'। उ० रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ। (मा० १।६४)
रिध–दे० 'रिद्धि'।
रिन–(सं० ऋण)–कर्ज। उ० रिपु रिन रंच न राखब काऊ। (मा० २।२२६।१)
रिनियाँ–कर्ज़दार। उ० देबे को न कछू रिनियाँ हौं धनिक तु पत्र लिखाउ। (वि० १००)
रिनी–दे० 'रिनियाँ'। उ० तेरो रिनी कह्यो हौं कपीस सों, ऐसी मानिहि को सेवकाई। (वि० १६४)
रिनु–दे० 'रिन'।
रिपु–(सं०)दुश्मन। उ० सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान। (मा० १।१४ क) रिपुहि–शत्रु को। उ० रिपुहि जीति आनिबी जानकी। (मा० ५।३२।२)
रिपुता–(सं०) शत्रुता।
रिपुदवन (सं० रिपु+दमन)–शत्रुओं का नाश करनेवाले शत्रुघ्न। उ० पवन-सुवन रिपुदवन भरतलाल लखन दीन की। (वि० २७८)
रिपुदवनू–(सं० रिपु+दमन)–शत्रुघ्न। उ० सिय समीप राखे रिपुदवनू। (मा० २।२४३।१)
रिपुहन–शत्रुघ्न। उ० सुनि रिपुहन लखि नखसिख खोटी। (मा० २।१६३।४)
रिरिहा–(?)–गिड़गिड़ाकर माँगनेवाला। उ० रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज। (वि० २१६)
रिषय–(सं० ऋषि)–ऋषि लोग। उ० सुनत बचन बिहसे रिषय गिरि संभव तव देह। (मा० १।७८)
रिषि–(सं० ऋषि)–मुनि, तपस्वी, ऋषि। उ० सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। (मा० ७।११३।१) रिषिन–दे० 'रिषिन्ह'। रिषिन्ह–ऋषि लोग, ऋषि लोगों ने। उ० रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। (मा० १।७८।१) रिषिहि–ऋषियों के। उ० बैठे आसन रिषिहि समेता। (मा० १। १२८।३)
रिष्ट–(सं० हृष्ट)–१. प्रसन्न, २. मोटा-ताजा। रिष्ट-पुष्ट–स्वस्थ, मोटा-ताजा। उ० रिष्ट-पुष्ट कोउ अति तन खीना। (मा० १।६३।४)
रिष्यमूक–दे० 'ऋष्यमूक'। उ० रिष्यमूक पर्वत निअराया। (मा० ४।१।१)
रिस–(सं० रुष)–क्रोध, गुस्सा। उ० दास तुलसी रहत क्यों रिस निरखि नंदकुमार। (कृ० १४) रिसराते–गुस्से में लाल। उ० कुटिल नयन रिसराते। (मा० १।२६८।३)
रिसाइ–(सं० रुष)–क्रोधित होकर। उ० सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही। (मा० १।२७१।१) रिसाई–क्रोधित होकर। उ० सुनत दसानन उठा रिसाई। (मा०५।४१।१) रिसाते–क्रोध से लाल होते हैं, क्रोधित हैं। उ० सहजहुँ चितवन

मनहुँ रिसाते। (मा० १।२६८।३) रिसान–रिसाया, क्रोधित हुआ। उ० सुनि दसकंठ रिसान अति तेहिं मन कीन्ह बिचार। (मा०६।५६) रिसाना–रुष्ट हुआ, क्रोधित हुआ। रिसानि–रिसाई, रुष्ट हुई। उ० केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई। (मा० २।२५। छं० १) रिसानी–१. क्रोधित हुई, २. क्रोध करना। उ० २. घोर धार भृगुनाथ रिसानी। (मा०१।४१।२) रिसाने–१.क्रोधित हुए, २. क्रोधित होकर, ३. क्रोध करने से। उ० २. टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। (मा० १।२७८।१) रिसाहिं–क्रोधित हो जाते हैं, रुष्ट हो जाते हैं।

रिसि–दे० 'रिस'। उ० लक्खन राम बिलोकि सप्रेम महा रिसि ते फिरि आँखि दिखाए। (क० १।२२)

रिसिआइ–क्रोधित होकर। उ० कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं। (क० १।४)

रिसौहैं–(सं० रुष)–क्रोधित, नाराज़। उ० रदपट फरकत नयन रिसौहैं। (मा० १।२५२)

री–(सं०)–अरी, एरी। उ० सोहर-गौरि-प्रसाद एक तें, कौसिक-कृपा चौगुनो भो री! (गी० १।१०२)

रीछ–(सं० ऋक्ष) भालू। उ० असुभ होइ जिनके सुमिरे तें बानर रीछ बिकारी। (वि० १६६)

रीछपति–(सं० ऋक्षपति)–जामवंत। उ० कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। (मा० ४।३०।२)

रीछराज–दे० 'रीछपति'। उ० रीछराज कपिराज नील नल बोलि बालिनंदन लये। (गी० ५।३२)

रीछा–दे० 'रीछ'। उ० जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा। (मा० ६।५०।४)

रीझ–(सं० रञ्जन)–१. खुशी, प्रसन्नता, २. प्रसन्न होकर। उ० १. बावरे बड़े की रीझ बाहन-बरद की। (क० ७। १५८) रीझइ–१. प्रसन्न होता है, २. प्रसन्न हो। रीझत–प्रसन्न होता है। उ० तुलसी जेहि के रघुनाथ से नाथ, समर्थ सुसेवत रीझत थोरे। (क०७।४६) रीझहु–१. प्रसन्न हो जाओ, २.प्रसन्न हो जाते हैं। उ०२.तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें। (मा० १।३४२।२) रीझि–१. प्रसन्नता, खुशी, २. प्रसन्न होकर। उ० २. राँकनि नाकप रीझि करै। (क० ७।१५३) रीझिहि–रीझेगी। उ० रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। (मा० १।१३४।२) रीझिहु–प्रसन्न हो जाते हो, प्रसन्न हो जाते हैं। रीझेउँ–रीझ गया। उ० रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। (मा० ७।८५।३) रीझै–रीझे, प्रसन्न हो। उ० जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल। (मा० १।१३१)

रीति–(सं०)–नियम, परिपाटी, व्यवहार, ढंग, चाल। उ० यह दिनकर कुल रीति सुहाई। (मा० २।१५।२)

रीती (१)–दे० 'रीति'। उ० लोकहुँ बेद सुसाहब रीती। (मा० १।२८।३)

रीती (२)–(सं० रिक्त)–खाली। उ० जोगि जन मुनि मण्डली मों जाइ रीति ढारि। (कृ० ४३) रीते–(सं० रिक्त)–१. खाली, जो भरा न हो, शून्य, २. तुच्छ, व्यर्थ, सारहीन। उ०१. भये देव सुख संपति रीते। (मा० १।८२।३)

रीस–दे० 'रिस'।

रुंड–(सं०)–धड़, कबंध, मुंडरहित शरीर। उ० धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा। (मा० ६।५३।४) रुंडन–रुंडों, धड़ों। उ० रुंडन के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं। (क० ६।३१)

रु–(सं० अपर)–और।

रुख–(फ़ा० रुख़)–१. सम्मुख, सामने, ओर, २. इच्छा, ३. इशारा, ४. अनुमति, मर्ज़ी, ५. मुख। उ० १. मनहुँ मघा-जल उमगि उदधि रुख चले नदी नद नारे। (गी० १।६६) ३. जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपा-निधान की। (आ० ३।१२६।छं० १)

रुखान–(?)–बढ़इयों का एक हथियार। उ० सुजन सुतरु बन ऊख सम खल टंकिका रुखान। (दो० ३४२)

रुगदैयाँ–दे० 'रोगदैया'।

रुचि–(सं०)–चाह, इच्छा। उ० रामकथा पर रुचि मन माहीं। (मा० १।१०९।४)

रुचिर–(सं०)–सुन्दर, अच्छा। उ० रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। (मा० १।२४३।४)

रुचिरता–(सं०)–सुन्दरता। उ० भाल तिलकु रुचिरता निवासा। (मा० १।३२७।५)

रुचिराई–सुन्दरता, शोभा। उ० बाहेर नगर परम रुचिराई। (मा० ७।२९।४)

रुचीं–(सं० रुचि)–अच्छी लगीं, सोहाईं। उ०चातक बतियाँ ना रुचीं अनजल सींचे रूख। (दो० ३११) रुची–अच्छी लगी, भली लगी। उ० राम-रोष-इरषा-बिमोह बस रुची न साधु-समीति। (वि० २३४) रुचै–१. अच्छा लगे, २. अच्छा लगता है। उ० १. जेहि जो रुचै करो सो। (वि० १७३)

रुज–(सं०)–वेदना, कष्ट, रोग। उ० समन सकल भव रुज परिवारू। (मा० १।१।१)

रुजा–दे० 'रुज'। उ० कृत दूरि महामहि भूरि रुजा। (मा० ७।१४।२)

रुदन–(सं०)–रोना, रोने की क्रिया। उ० आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहि। (मा० ७।७७ क)

रुदनु–दे० 'रुदन'। उ० घर-घर रुदनु करहिं पुरबासी। (मा० २। १५६।३)

रुदित–(सं०)–रोता हुआ, उदास। उ० हित मुदित अनहित रुदित मुख छबि कहत कबि धनु जाग की। (जा० ११७)

रुद्ध–(सं०)–रुका हुआ।

रुद्र–(सं०)–१. एक प्रकार के गण देवता जो संख्या में ११ होते हैं। ये शिव के रूप हैं। भयंकर शिव। उ० पाहि भैरवरूप रामरूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी विधाता। (वि० ११) रुद्रहिं–दे० 'रुद्रहि'। रुद्रहि–रुद्र को। उ० रुद्रहि देखि मदन भय माना। (मा० १।८६।२)

रुद्राणी–(सं०)–पार्वती।

रुद्राष्टक–(सं०)आठ श्लोकों का शिवस्तोत्र। उ० रुद्राष्टक-मिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये। (मा० ७।१०८।९)

रुधिर–(सं०)–खून, लोहू। उ० दलित दसन मुख रुधिर-प्रचारू। (मा० २।१६३।३)

रुधिरु–दे० 'रुधिर'।

रुनझुनु-(अनु०)-घुँघरू की आवाज़ । उ० कटि किंकिनी पैंजनी पाँयनि बाजति रुनझुनु मधुर रेंगाए । (गी० १।२९)
रुमा-(सं०)-सुग्रीव की स्त्री ।
रुष-(सं० रोष)-क्रोध । उ० सरुष समीप दीखि कैकेई । (मा० २।४०।१)
रुष्ट-(सं०)-नाराज़, रूठा ।
रुह-(सं०)-उत्पन्न होनेवाला । यह दूसरे शब्दों के साथ प्रायः लगता है, जैसे भूरुह तथा जलरुह आदि । उ० जल-थल रुह फल-फूल सलिल सब करत प्रेम पहुनाई । (गी० १।५३)
रूँधहु-(सं० रुद्ध)-१. काँटों से घेरो, घेरो, रक्षा करो, २. रोको । उ० १. रूँधहु करि उपाय बर बारी । (मा० २। १७।४) रूँधिबे-घेरने, रक्षा करने । उ० रूँधिबे को ताहि सुरतरु काटियतु है । (क० ७।९९) रूँधो-१. घेरा किया, छेंक लिया, २. घिरा हुआ । रूध्यौ-दे० 'रूँधो' ।
रूख (१)-(सं० वृक्ष) पेड़ । उ० रूख कलपतरु सागरु खारा । (मा० २।११९।२)
रूख-(२)-(सं० रूक्ष)-१. रूखा, सूखा, २. कठोर, ३. निर्दय । उ० १. रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्री भगवान । (मा० १।१२८)
रूखा-दे० 'रूख (२)' । उ० १. सजल नयन कछु मुख करि रूखा । (मा० ७।८८।३) रूखी-दे० 'रूख (२)' । 'रूखा' का स्त्रीलिंग । उ० उतरु न देइ दुसह रिस रूखी । (मा० २।५१।१)
रूखु-दे० 'रूख' । पेड़ ।
रूखे-दे० 'रूख (२)' । उ० धरम धुरीन बिषय रस रूखे । (मा० २।५०।२)
रूठहिं-(सं० रुष्ट)-क्रुद्ध होते हैं । रूठा-१.नाराज़, अप्रसन्न, २.नाराज़ हुआ । उ० १ अजहुँ सो देव मोहि पर रूठा । (मा० ६।९९।४) रूठे-नाराज़ हुए ।
रूपं-दे० 'रूप' । उ० १. निर्गुण सगुण विषम सम रूपं । (मा० ३।११।६) रूप-(सं०)-१. आकार, सूरत, स्वरूप, २. सौंदर्य, शोभा । उ० १. ब्यापक बिस्वरूप भगवाना । (मा० १।१३।२) २. गुण के निधान रूपधाम सोम काम को । (क० १।९) रूपहि-रूप को । रूपादि-रूप, रस, शब्द, गंध तथा स्पर्श ये पाँच विषय । उ० रूपादि सब सर्व स्वामी । (वि० ५९)
रूपा-दे० 'रूप' । उ० १. राम ब्रह्म परमारथ रूपा । (मा० २।९३।४)
रूपिनी-(सं० रूपिणी)-रूपवाली । उ०तब बिग्यान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ । (मा० ७।११७ ख) रूपी-रूपवाली । उ० तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि । (मा० ३।४३)
रूपु-दे० 'रूप' ।
रूरी-(सं० रूढ)-सुन्दर, अच्छी । उ० कीरति सरित छहूँ रितु रूरी । (मा० १।४२।१) रूरे-अच्छे, सुन्दर । उ० राज समाज बिराजत रूरे । (मा० १।२४१।२)
रूरो-अच्छा, 'सुन्दर । उ० पवन को पूत रजपूत रूरो । (ह० ३)
रेंगाई-(सं० रिंगण)-चलाई, बढ़ाई । उ० अस कहि संमुख फौज रेंगाई । (मा० ६।७९।६) रेंगाए-चलाया, ज़मीन से सटकर चलाया ।
रेंड़-(सं० अरंड)-रेंड़ी, अंडी का पेड़ । उ० तुलसी बिहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िये । (क० ७।२५)
रे-(सं०)-एक निरादर या प्रेमसूचक संबोधन । उ० रे हत भाग्य अग्य अभिमानी । (मा० ७।१०७।१)
रेख-दे० 'रेखा' । उ० १. अलप तड़ित जुगरेख इंदु महँ रहि तजि चंचलताई । (वि० ६२) रेखैं-रेखाएँ । उ० ललित कंध बर भुज बिसाल उर लेहिं कंठ-रेखैं चित चोरे । (गी० ३।२)
रेखा-(सं०)-१. लकीर, चिह्न, सतर, २. भाग्यरेखा, भाग्य, प्रारब्ध, ३. गिनती । उ० १. सुमिरत रामचरन जिन्ह रेखा । (मा० ३।३०।९)
रेखु-दे० 'रेखा' । उ० १. भृकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर कुंकुम रेखु । (गी० ७।९)
रेणु-(सं०)-धूल, बालू । उ० भरत-राम-सीता चरण रेणु । (वि० ४०)
रेत-(सं० रेतजा)-धूल, बालू, कण । उ० दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी । (मा० ६।८७। छं० १)
रेता-दे० 'रेत' । उ० उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता । (मा० २।१०२।१)
रेनु-दे० 'रेणु' । उ० रेनु रजु बटत । (वि० १२९)
रेनू-दे० 'रेणु' । उ० बिधि हरि हर बंदित पद रेनू । (मा० १।१४६।१)
रेला-(?)-१. बाढ़, नदी का तेज़ प्रवाह, २. धक्का ।
रेवा-(सं०)-नर्मदा नदी । उ० बीच बिंध्य रेवा सुपास थल बसे हैं परन गृह छाई । (गी० २।८९)
रेषु-रेखा । दे० 'रेखा' । उ० लाँघि न सके लोक-बिजयी तुम जासु अनुज-कृत-रेषु । (गी० ६।१)
रेसू-दे० 'रोष' । उ० कबहुँ न कियहु सवतिआ रेसू । (मा० २।४९।४)
रैन-दे० 'रइनि' । रात । उ० अति बल जल बरषत दोउ लोचन दिन अरु रैन रहत एकहिं तक । (गी० ५।९)
रैनि-दे० 'रैन' । उ० कहत कथा सिय राम लषन की बैठेहि रैनि बिहानी । (गी० २।६८)
रैयत-(अर०)-प्रजा, रिआया । उ० रैयत राज-समाज घर तन धन धरम सुबाहु । (दो० ५२१)
रोंगदैया-दे० 'रोगदैया' ।
रोइ-(सं० रुदन)-रोकर, रुदन कर । उ० तो हौं बारहिं बार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ ? (वि० २१७) रोइहै-रोवेगा, रोया करेगा । उ० जनमि जनमि जुग-जुग जग रोइहै । (वि० ९८) रोई-१. रोकर, २. रोना प्रारम्भ किया, रुदन किया । उ० १. निज संताप सुनाएसि रोई । (मा० १। १८४।४) रोए-रो दिए, रुदन किए । रोवत-१. रोता है, २. रोते हुए । उ० २. रोवत करहिं प्रताप बखाना । (मा० ६।१०४।२)-रोवनि-रोना, रुदन करना । उ०रोवनि धोवनि अनखानि अनरसनि डिठि-मुठि निठुर नसाइहौं । (गी० १।१८) रोवहिं-रोते हैं । रोवहीं-रोते हैं । रोवा-१.रोया,

रुदन किया, २. रो रही हो। उ० २. जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा। (मा० ४।११।३)
रोंक-(सं० रोधक)-बाधा, अटकाव, रुकावट। उ० तासु पंथ को रोक न पारा। (मा० ६।५६।२)
रोकनिहारा-(सं० रोधक)-रोकनेवाला।
रोकहिं-(सं० रोधन)-रोकते हैं। उ० धावहिं बाल सुभाय बिहँग मृग रोकहिं। (जा०३७) रोका-रोक दिया। रोकि-रोककर। उ० जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू। (मा० १।२७४।४) रोकिहौं-रोक लूँगा। उ० रोकिहौं नयन बिलोकन औरहिं। (वि० १०४) रोकी-१.रोका, २. रोकने से। उ० २. अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी। (मा० १। ५०।४) रोके-रोक लिए। रोक्यौ-रोका। उ० रोक्यौ परलोक लोक भारी भ्रम भानि कै। (क० ६।२६)
रोखा-(सं० रोष)-क्रोध।
रोग-(सं०)-व्याधि, मर्ज़। उ० रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को। (क० ७।१६७) रोगनि-रोगों ने। उ० घेरि लियो रोगनि कुलोगनि कुजोगनि ज्यौं। (ह० ३५)
रोगदैया-(?)-अन्याय, बेइमानी। उ० खेलत खात परसपर डहकत, छीनत कहत करत रोगदैया। (कृ० १६)
रोगा-दे० 'रोग'। उ० सुनहु तात अब मानस रोगा। (मा० ७।१२१।१४)
रोगिहि-रोगी को। उ० सुधा कि रोगिहि चाहहि। (पा० ५२) रोगी-रोगग्रस्त, बीमार। उ० एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। (मा० ७।१२२।१)
रोगु-दे० 'रोग'।
रोगू-दे० 'रोग'। उ० भरत दरस मेटा भव रोगू। (मा० २।२१७।१)
रोचन-(सं०)-१. रोचक, सुन्दर, २. लाल, ३. हल्दी, ४. गोरोचन, ५. काम के पाँच बाणों में एक। उ० ३. दल फल फूल दूब दधि रोचन घर-घर मंगलचार। (गी० १।२)
रोचना-दे० 'रोचन'। उ० ३. दधि दूब अच्छत रोचना। (जा० २०७)
रोटिहा-(?)-केवल रोटी पर काम करनेवाला। उ० कहिहौं बलि रोटिहा रावरो बिनु मोल ही बिकाउँगो। (गी० ५। ३०)
रोटी-(?)-चपाती, फुलका। उ० रोटी लूगा नीके राखैं। (वि० ७६)
रोदति-(सं० रुदन)-रोती है। उ० रोदति बदति बहु भाँति करुना करत संकर पहिं गई। (मा० १।८७। छं० १)
रोदन-(सं०)-क्रंदन, रोना। उ० केहि हेतु सिसु रोदन करे। (वि० १३६)
रोपहु-(सं० रोपण)-रोप दो, लगा दो। उ० रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा। (मा० २।६।३) रोपा-१ फैलाया, पसारा, २. लगाया, रोपित किया। उ० १. चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। (मा० ६।६।२) रोपि-१. रोपकर, २. फैलाकर। रोपी-रोपकर, दृढ़कर। उ० सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। (मा० ५।२३।४) रोपे-१. लगाये, २. फैलाए। उ० १. रोपे बकुल कदंब तमाला। (मा० १।३४४।४) रोपैं-लगाते हैं, लगाते थे। उ० रोपैं सफल सपल्लव मङ्गल तरुवर। (जा० २०६) रोप्यो-जमाया। उ० रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो। (क० ६।२३)
रोम-(सं० रोमन्)-लोम, बाल, रोयाँ। उ० रोम-रोम छबि निंदति सोम मनोजनि। (जा० १०६)
रोमपट-(सं०रोमन्+पट) ऊनी वस्त्र, कंबल।
रोमांच-(सं०)-पुलक, आनंद से रोयों का उभर आना। उ० जयति रामायण श्रवण-संजात-रोमांच-लोचन सजल सिथिल बानी। (वि० २९)
रोर-(सं० रवण)-हुल्लड़, हल्ला। उ० कुलिस कठोर तनु जोर परै रोर। (ह० १०)
रोवनिहारा-(सं० रुदन)-रोनेवाला। उ० रहा न कोउ कुल रोवनिहारा। (मा० १०४।५)
रोवाइ-(सं० रुदन)-रुलाकर। कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि मिस करि उठि-उठि धावहिं। (कृ० ४)
रोष-(सं०)-१. क्रोध, कोप, २. प्रसन्नता। उ० १. राग न रोष न दोष दुख दास भये भव पार। (दो० ६४)
रोषा-(सं० रोष)-१. क्रोध, २. क्रोध किया। उ० १. भयउ न नारद मन कछु रोषा। (मा० १।१२७।१) रोषि-क्रोध करके। उ० रोषि बान काढ़यो न दलैया दससीस को। (क० ६।२२) रोषे-१. क्रोधित हुए, २. क्रोधित होने पर। उ० २. काहे की कुसल रोषे राम बामदेवहू के। (क० ५।६)
रोषु-दे० 'रोष'। उ० १. कहु तजि रोषु राम अपराधू। (मा० २।३२।३)
रोस-दे० 'रोष'।
रोसा-दे० 'रोष'। उ० २. सर्बस देउँ आजु सह रोसा। (मा० १।२०८।२)
रोसु-दे० 'रोष'। उ० १. प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु। (मा० १।२८१)
रोहिणी-(सं०)-१. नक्षत्र विशेष, २. बलराम की स्त्री, ३. चंद्रमा की स्त्री।
रोहित-(सं०)-'रोहू' नाम की एक मछली।
रोहिनि-दे० 'रोहिणी'। उ० जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही। (मा० २।१२३।२)
रोहु-दे० 'रोहित'।
रौंदि-(?)-मर्दन करके, कुचलकर। उ० भरि भरि ठेलि-पेलि रौंदि खौंदि डारहीं। (क० ५।१५)
रौताई-(सं० राजपुत्र)-१. ठकुराई, २. रजपूती। उ० २. होइ कि खेम कुसल रौताई। (मा० २।३५।३)
रौद्र-(सं०)-१. भयंकर, रुद्र, प्रचंड, २. साहित्यशास्त्र के अनुसार एक रस।
रौर-(सं०रवण) १. शोर, हुल्ला, २. कीर्ति, प्रसिद्ध।
रौरव-(सं०) एक बहुत कष्टदायक नरक। उ० रौरव नरक परहिं ते प्रानी। (मा०७।१२१।१३)
रौरा-(सं०राजपुत्र)-आपका। रौरिहि-आप ही की, तुम्हारी ही। उ० करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं। (मा० २।३।२) रौरें-आपके। उ० हित सब ही कर रौरें हाथा। (मा० २।२६०।३) रौरेहि-आपही की, आपकी। उ० जो सोचहि ससि कलहि सो सोचहि रौरेहि। (पा० ६१)

ल

लंक (१)-(सं०)-कमर, कटि। उ० लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसलधनी। (गी० ७।५)
लंक (२)-(सं०)-लंका, रावण का राज्य। उ० लंकदाहु देखे न उछाहु रह्यो काहुन को। (क० ६।१)। लंकहि-लंका को। उ० लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी। (मा० ५।४।१)
लंका-(सं०)-रावण की राजधानी, लंकापुरी। उ० जग बिख्यात नाम तेहि लंका। (मा० १।१७८।४)
लंकिनी-(सं०)-लंका की एक राक्षसी। उ० लंकिनी ज्यों लात घात ही मरोरि मारिए। (ह० २३)
लंकेस-(सं० लंकेश)-रावण। उ० सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। (मा० ५।४६।१)
लंगर-(?)-नटखट, ढीठ। उ० लोकरीति लायक न लंगर लबारु है। (क० ७।६७)
लंगरि-(?)-ढीठ स्त्री। उ० गनति किए लंगरि झगराऊ। (कृ० १२)
लँगूर-(सं० लांगूल)-१. बंदर, बड़ी पूँछवाला एक विशेष बंदर, २. पूँछ। उ० २. खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं। (क० ५।३)
लंगूर-दे० 'लँगूर'।
लंगूल-दे० 'लँगूर'।
लंघि-(सं० लंघन)-लाँघकर। उ० जलधि लंघि, दहि लंक। (वि० ३१) लंघेउ-लाँघा, लाँघ गए। उ० तुलसी प्रभु लंघेउ जलधि। (प्र० ५।१।७)
लंपट-(सं०)-१. व्यभिचारी, कामी, लुच्चा, २. झूठा, लबार। उ० १. लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। (मा० १।११५।१)
लंबित-(सं०)-लंबा। उ० सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लंबित बिबि भुजमूले। (गी० ७।१२)
लइ-लेकर। दे० 'लई'। लई-(सं० लभन, हिं० लहना)-१. लिया, ग्रहण किया, पाया, २. लेकर, ३. लिवाकर। उ० २. मंगल अरघ आँवड़े देते चले लई। (पा० १२८)
लउ-दे० 'लय'।
लकड़ी-(सं० लगुड)-पेड़ का कोई स्थूल अंग, काठ। उ० लकड़ी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि। (दो० ५२६)
लकीर-(सं० रेखा ?)-धारी, रेखा।
लकुट-(सं० लगुड)-लकड़ी, छड़ी, लाठी। उ० निपटहिं डाँटति निठुर ज्यों, लकुट कर तें डारु। (कृ० १४)
लकुटि-दे० 'लकुट'।
लकुटी-लकड़ी, छड़ी, लाठी। उ० डारि दे घर-बसी लकुटी बेगि करतें। (कृ० १७)
लक्ख-(सं० लक्ष)-लाख, लक्ष, सौ हज़ार। उ० लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं। (क० ६।३६)
लक्खन (१)-दे० लक्ष्मण। उ० ते रन तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं। (क० ६।३३)
लक्खन (२)-(सं० लक्षण)-चिह्न, लच्छन, लक्षण।
लक्खौ-(सं० लक्ष)-देखो।
लक्ष (१)-(सं०)-एक लाख, सौ हज़ार।
लक्ष (२)-(सं० लक्ष्य)-१. ध्येय, २. निशाना।
लक्षण (१)-चिह्न, पहचान।
लक्षण (२)-(सं० लक्ष्मण)-राम के भाई लक्ष्मण।
लक्षित-(सं०)-१. बतलाया हुआ, निर्दिष्ट, २. जाना हुआ, विदित।
लक्ष्मण-(सं०)-दशरथ के चार पुत्रों में से दूसरे जो शेष के अवतार कहे जाते हैं। इनका विवाह उर्मिला से हुआ था। ये राम और सीता के साथ बन में गए थे, जहाँ इन्हें शक्ति लगी थी। सुमित्रा इनकी माता तथा शत्रुहन छोटे भाई थे। उ० जयति लक्ष्मण, नंत भगवंत भूधर, भुजंगराज, भुवनेश भूभार हारी। (वि० ३८)
लक्ष्मिनिवास-(सं० लक्ष्मीनिवास)-विष्णु।
लक्ष्मी-(सं०)-१. विष्णु की पत्नी जो धन की अधिष्ठात्री देवी हैं। इनकी उत्पत्ति समुद्र-मंथन से हुई थी। २. धन, समृद्धि, संपदा।
लक्ष्य-(सं०)-१. निशाना, २. उद्देश्य, ध्येय, ३. हीला, बहाना।
लख-(सं० लक्ष)-१. लक्ष्य, निशाना, २. लखो, देखो। लखइ-१. देखता है, २. दिखाई देता है। लखत-१. देखता है, निहारता है, २. देखकर, ३. देखते ही। उ० १. सुनत लखत श्रुति नयन बिनु रसना बिनु रस लेत। (वै० ३) २. तुलसी लखत राम-रावन बिबुध, बिधि। (क० ६।४१) लखहिं- देखते हैं। लखहु-१. देखो, २. देखते, देखती। उ० १. लखहु न भूप कपट चतुराई। (मा० २।१४।३) लखा-१. देखा, अवलोका, २. जाना, देखा-भाला,ज्ञात। उ०१. सो सरूप नृपकन्याँ देखा। (मा० १।१३४।४) लखि-१. देख, देखकर, २. देखा, अवलोका। उ० १.रघुबर बिकल बिहंग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर। (दो० २२६) लखियत-देखी जाती है, दिखाई पड़ती है। लखी-१.देखी, जानी, २. समझा, समझ गए, भाँप लिया। उ० १. लखी औ लखाई इहाँ किए सुभ सामैं। (गी० ५।२५) लखु-देख, देखो। उ० जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की। (क० ७।२७) लखें-१. देखे, पहिचाना, जाना, २. देखने पर, जानने पर। उ० १. सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए। (मा० १।३२१।छं० १) लखेउ-१. देखा, २. पहिचाना। लखै-देखे, जाने, समझे। उ० लखै अघानो भूख ज्यों, लखै जीति में हारि। (दो० ४४३) लख्यौ-देखा। उ० जानकी नाम को नेह लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े। (क० २।१२)
लखन-दे० 'लक्ष्मण'। उ० राम लखन सम प्रिय तुलसी के। (मा० १।२०।२)
लखाइ-(सं० लक्ष्य)-दिखला, अवलोकन करा। उ० मेरोई

फोरिबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाइ दियो है। (क० ७।१५७) लखाई–दिखाई, दिखाया। उ० लखी औ लखाई इहाँ किए सुभ सामैं। (गी०२५) लखाए–दिखाया।
लखाउ-(सं० लक्ष्य)–१. गुप्त भेद, रहस्य, २. लखने योग्य, जानने योग्य, ३. पहचान, चिह्न रूप में दिया गया पदार्थ, ४. पता, पता लगना, प्रकट होना। उ० १. जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ। (गी०७।२५) २. कियो सीय प्रबोध मुँदरी कियो कपिहि लखाउ। (गी० ५।४) लखाऊ–दे० 'लखाउ'। उ० ३. और एक तोहि कहउँ लखाऊ। (मा० १।१६१।२) ४. आएहु बेगि न होइ लखाऊ। (मा० २।२७१।४)
लग–(सं० लग्न)–तक, लौं, पास।
लगत–(सं० लग्न)–१. लगते ही, २. लगता है, जुटता है। उ०१. सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि। (मा० २।७८) लगति–लगती है। लगनि–लगना, सटना। उ०नहिं बिसरति वह लगनि कान की।(गी०५।११) लगिहिं–१. लगते हैं, २. लगे, समझ पड़े। उ० २. तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी। (मा० १।२८१।४) लगि (१)–१. तक, पर्यंत, २. लगकर, ३. लगे, ४. लिए, वास्ते। उ० १. जदुपति मुखछबि कलप कोटि लगि कहि न जाइ जाके मुखचारी। (कृ० २२) २. जिन्ह लगि निज परलोक बिगार्‌यो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ। (वि० ८३) लगिहहु–लगेगा, लगोगे,लगेंगे। लगी–लग गईं, जुड़ गईं। उ०तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं। (क०२।२३) लगी–लग गई। लगु–लगो। लगें–दे० 'लगे'। उ० १. आजु लगें अरु जब तें भयऊँ। (मा० १।१६७।२) लगे–१. तक, पर्यंत, २. लग गए, चिमट गए, ३. आरंभ किया। उ०१. जीव चराचर जहँ लगे है सब को हित मेह। (दो०२८४) २. सकुचि लगे जननी उर धाई। (कृ० १३) ३. निदरि लगे बहि काढ़न। (वि० २१) लग्यो–१. लगा, लग गया, २. आरंभ किया ३. लगा हुआ। उ० १. लग्यो मन बहु भाँति तुलसी होइ क्यों रस भंग। (कृ० ५४) २.द्रुपदसुता को लग्यो दुसासन नगन करन। (वि० २१३)
लगन–(सं० लग्न)–१. समय, २. उचित समय, लग्न, साइत, मुहूर्त, ३. टीका, ४. लगना, ध्यान लगाना, ५. प्रेम, ६. मेल, ७. संबंध, ८. विवाहादि होने के दिन। उ० २. जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भए अनुकूल। (मा० १।१६०)
लगनवट–(सं० लग्न+वट)–राही या पथिक से प्रेम। उ० पाही खेती लगनवट ऋन कुब्याज, मग खेत। (दो०४७८)
लगाइ–(सं० लग्न)–लगाकर। उ० लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि। (मा० २।१६४) लगाइय–१. लगाया, २. लगाकर, ३. लगाइए। लगाई–१. लगाया, लगा लिया, २. लगाकर। उ० १. कौसल्याँ लिए हृदय लगाई। (मा० २।१६७।१) लगाउ–१. संबंध, नाता, २. लगाओ, जोड़ो। लगाऊ–१. संबंध, मिलाप, २. साथी, जो लगा हो, ३.लगाओ। उ० २.जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे। (वि० १८६) लगाए–लगाया, जुटाया। लगावत–लगाते हैं। लगावति–लगाती है, लगाती हैं। लगावहिं–लगाते हैं। लगावा–लगाया, सटाया। उ० कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। (मा० ५।३३।२)
लगाव–(सं० लग्न)–संबंध, वास्ता, रिश्ता।
लागि (२)–(सं० लगुड)–१. लग्गी, बाँस, २. मछली पकड़ने की बंसी। उ० २. नाम-लगि लाइ, लासा-ललित-बचन कहि। (वि० २०८)
लग्न–(सं०)–दे० 'लगन'।
लघिमा–(सं० लघिमन्)–१ आठ सिद्धियों में चौथी जिसको प्राप्त कर लेने पर मनुष्य बहुत छोटा या हलका बन सकता है। २. लघुत्व, लाघव, छुटाई।
लघिष्ट–(सं०)–छोटा, नीच, अत्यंत छोटा।
लघु–(सं०)–१. छोटा, तुच्छ, २. हलका, जो भारी न हो, ३. शीघ्र, तुरत, ४. थोड़ा, ज़रा सा, कम, ५. निकृष्ट, नीच, ख़राब, ६. ह्रस्व वर्ण, एकमात्रिक स्वर। उ० ६. सब लघु लगे लोकपति लोक। (मा० २।२१५।१) लघुन्ह–छोटे, छोटे आदमी। उ० बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। (मा० १।१६७।४) लघुहिं–लघुओं पर, छोटों पर। उ० बड़े रतहिं लघु के गुनहिं तुलसी लघुहिं न हेत। (स० ६३४)
लघुतहि–लघुता को, छोटाई को। उ० जो लघुतहि न भितैहो (वि० २७०) लघुता–(सं०)–१. छोटापन, तुच्छता, छोटाई २. हलकापन। उ० १. रावरी राम बड़ी लघुता, जस मेरो भयो सुखदायक ही को। (क० ७।५६)
लच्छ (१)–(सं० लक्ष्मी)–लक्ष्मी, श्री, विष्णु की स्त्री। उ० मरकतमय साखा, सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि। (क० ७।११५)
लच्छ (२)–(सं० लक्ष)–एक लाख, सौ हज़ार। उ० चार लच्छ बर धेनु मगाई। (मा० १।३३१।१)
लच्छ (३)–(सं० लक्ष्य)-निशान। उ० मनहु महिप मृदु लच्छ समाना। (मा० २।४१।१)
लच्छन–(सं० लक्षण)–१. निशान, लक्षण, २. शुभ गुण, अच्छे लक्षण। उ० २. लच्छन धाम रामप्रिय सकल जगत आधार। (मा० १।११७)
लच्छा–(सं० लक्ष)–लाख, एक लाख। उ० सत्य-संध छाँड़े सर लच्छा। (मा० ६।६८।२)
लच्छि–(सं० लक्ष्मी)–१. रमा, लक्ष्मी, २. धन। उ० १. एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुखमूल। (मा० १।२४७)
लच्छिनिवास–दे० 'लक्ष्मिनिवास'।
लच्छिनिवासा–दे० 'लक्ष्मिनिवास'। उ० दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। (मा० १।१३५।२)
लछि–दे० 'लक्ष्मी'।
लछिमन–दे० 'लक्ष्मण'। उ० एक जीभ कर लछिमन दूसर शेष। (ब० २७) लछिमनहि–लक्ष्मण को। उ० प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। (मा० २।२७।४) लछिमनहुँ–लक्ष्मण भी। लछिमनहूँ–लक्ष्मण भी। उ० लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। (मा० ३।२४।३)
लछिमनु–दे० 'लक्ष्मण'।
लजाइ–(सं० लज्जा)–१. लज्जित होकर, लजाकर, २. लज्जित होती है। उ० १. उपमा कहत लजाइ भारती

भाजइ। (जा० १६८) लजाईं–दे० 'लजाइ'। लजाए–१. लज्जित कर दिए, २. लज्जित हो गए। उ० १. दसरथपुर छबि आपनी सुरनगर लजाए। (गी० १।६) लजात–लजाता है. शर्मिंदा होता है। उ० जिन्ह लागि निज परलोक बिगर्यो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ। (वि० ८३) लजान–लजा गया, शर्मा गया। उ० बिधि बस बलउ लजान। (जा० ६७) लजाना–लजा गया। लजानि–लजा गई, शर्मा गई। लजानीं–दे० 'लजानि'। लजाने–लज्जित हुए। उ० ब्रज को बिरह, अरु संग महर को, कुबरिहि बरत न नेकु लजाने। (कृ० ३८) लजायो–१. लज्जित किया, २. लज्जित हुआ। लजावै–१. लज्जित करे, २. लज्जित हो। लजाहि–लज्जित होता। उ० ताको कहाय कहै तुलसी तू लजाहि न माँगत कूकुर कौरहि। (क० ७।२६) लजाहीं–लजाते हैं, लज्जित होते हैं। उ० देखि दसा मुनिराज लजाहीं। (मा० २।३२६।२) लजै–लज्जित होता है। उ० तदपि अधम बिचरत तोहि मारग कबहूँ न मूढ़ लजै। (वि० ८६)

लजारू–दे० 'लजालू'। उ० २. जनक-बचन छुए बिरवा लजारू के से। (गी० १।८२)

लजालू–(सं० लज्जालु)–१. शर्मीला, लजानेवाला, २. लज्जावंती घास, लजानेवाला पौदा।

लजावनिहारे–लजानेवाला, लज्जित करनेवाले। उ० कोटि मनोज लजावनिहारे। (मा० २।११७।१)

लज्जा–(सं०)–शर्म, लाज।

लज्जित–(सं०)–लज्जायुक्त, शर्मिंदा।

लट (१)–(सं० लड)–दुबला होकर, कमज़ोर होकर। उ० तौ सहि निपट निरादर निसिदिन रटि लट ऐसो घटि को तो। (वि० १६१)

लट (२)–(सं० लट्वा)–केशपाश, लटूरी, सर के उलझे बालों का समूह। उ० त्रिबिध भाँति की सबद बर बिघट न लट परमान। (स०३२२) लटैं–लट का बहुवचन, बालों के उलझे गुच्छे। उ०धुँघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की। (क० १।५)

लट (३)–(सं०लट् लकार)–आजकल, वर्तमान समय में। उ० तुलसी लट पद तें भटक अटक अपि तु नहिं ज्ञान। (स० ३७६)

लटकन–(सं० लडन)–१. मस्तक पर पहनने का गहना जिसे झूमर कहते हैं। २. अन्य कोई भी गहना जो लटकाकर पहना जाता हो, ३. लटकना, लटकने की क्रिया। उ० १. गभुआरी अलकावली लसै, लटकन ललित ललाट। (गी० १।१६) ३. मेढ़ी लटकन मनि कनक-रचित, बाल-भूषन बनाइ आछे अंग अंग ठए हैं। (गी० १।११)

लटकैं–(सं० लडन)–लटकती हैं। उ० दे० 'लटैं'।

लटत–(सं० लड)–१. ललचाता है, २. लटता है, दुर्बल होता है, ३. हिम्मत हारता है, झुक जाता है, ४. मुरझाता है,५. आसक्त होता है, रत होता है, ६. मरता है। उ० १. परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत। (वि० १२६) ३. मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए। (मा० ६।४६।छं० १) लटा–१. दुर्बल, निर्बल, अशक्त, असमर्थ, २. लट गया, दुर्बल हो गया। लटि–१. लटकर, थककर, २. दुर्बल होकर, ३. लटा हुआ, थका, हैरान। उ० १. श्री रघुबीर निवारिए पीर, रहौं दरबार परो लटि लूलो। (ह० ३६) लटी–१. थक गई, हैरान हो गई, २. दुर्बल, कमज़ोर, ३. बुरी या झूठी बात उ० १. रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अंग। (दो० २८०) लटे–१. पतित, नीचे गिरे, २. दुर्बल, शिथिल। उ० १. लटे लटपटेनि को कौन परि गहैगो? (वि० २५६) लट्यो–१. फँसा हुआ, सना हुआ, २. दुर्बल, कमज़ोर। उ० १. कत बिमोह लट्यो फट्यो गगन मगन सियत। (वि० १३२)

लटपटा–(सं०लट + पट) १.गिरता पड़ता, लड़खड़ाता हुआ, २. ढीला, जो चुस्त हो, ३. जीर्ण-शीर्ण, टूटा-फूटा, ४. अस्त-व्यस्त, अंड-बंड, ५. अशक्त, बेबस।

लटू–(सं० लडन)–मुग्ध, मोहित, आसक्त। उ० जा सुख की लालसा लटू सिव, सुक सनकादि उदासी। (गी० १।८)

लटूरीं–(सं० लट्वा)–छोटे छोटे बालों की उलझी लटें। उ० लटकन लसत ललाट लटूरीं। (गी० १।२८)

लड़काई–(?)–लड़कपन, बचपन।

लड़ाइ–(सं० लालन, लाड)–लाड़कर, प्यार कर। प्रमुदित महा मुनिबृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै। (मा० १।३२६। छं० १)

लड़ाई–(सं० रणन)–युद्ध, संग्राम, संगर।

लड़ी–(सं० यष्ठि, प्रा० लट्ठि) पंक्ति, माला।

लत–(सं० रति)–आदत, बान, टेव।

लता–(सं०)–१ बेलि, लतर, बल्ली, २. सुंदर स्त्री। उ० १. श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल। (वि० १४) लताभवन–लताओं का भवन, कुंज, लतामंडप। उ०लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ। (मा० १।२३२)

लतिका–(सं०)–छोटी और कोमल लता।

लतिया–(सं० रति)–बुरी चाल का, कुचाली।

लत्ता–(सं० लक्तक)–फटा पुराना कपड़ा, चिथड़ा।

लपक–(अनु० लप)–१. ज्वाला, लपट, लौ, २. प्रकाश, ३. शोभा, आभा।

लपट–(?)–१. आग की लौ, ज्वाला, २. गंध, महक। उ० १. झपट लपट भरे भवन भँडारही। (क० ५।२३) लपटैं–१. ज्वालाएँ, अग्निशिखाएँ, २. गंध, महक। उ० १.चारु चुवा चहुँ ओर चलैं, लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी। (क० ७।१४३)

लपटाइ–१. लिपटकर, २. लपेटे हुए। लपटाई–१. लिपट जाता है, लिपटता है, २. लपटाकर, ३. लपटता, लपटती। उ० १. जनम जनम अभ्यास-निरत चित अधिक अधिक लपटाई। (वि० ८२) लपटानि–लिपटी हुई, सनी हुई। उ० परमारथ-पहिचानि-मति लसति विषय लपटानि। (दो० २५३) लपटाने–१. लपटे हुए, २. लिपट गए। लपटावहिं–१. लिपटाते हैं, २. लपेटे रहते हैं, लपटाए रहते हैं। उ० २. भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं। (पा० ५७)

लपत–(अनु० लप)–लपकते हैं, लेना चाहते हैं। उ० साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत। (वि १३०)

लपेट–(सं०लिप्त)१. लपेटने की क्रिया या भाव, २. बंधन

का चक्कर, ३. घुमाव, फेर, ४. घेरा, ५. उलझन, जाल। लपेटनि-लपेटों में। उ० बानर भालु चपेट चपेटनि मारत तब ह्वैहै पछितायो। (गी० ६।४)
लपेटन-(सं० लिप्त)-१. लपेटनेवाली वस्तु, बेठन, वेष्टन, २. उलझनेवाली वस्तु, ३. एक घास जो लिपट जाती है। ४.झरबेरी, या करील आदि लपटनेवाले पौदे। उ० ३. काँट कुराएँ लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँउँ बझाऊ रे! (वि० १८९)
लपेटि-१. लपेटकर, लिपटाकर, २. लपेट में। उ० १. लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट। (क० ६।४०) २. लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू। (मा० २।२३०।३)लपेटे-१. लपेटा, लपेट लिया, २. लपेटे हुए। उ० २. सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। (बा० २।१००)
लबार-(सं० लपन)-झूठा, मिथ्यावादी, गप्पी। उ० साँचेहु मैं लबार भुज बीहा। (मा० ६।३४।४)
लबारा-दे० 'लबार'।
लबारु-दे० 'लबार'। उ० लोकरीति-लायक न, लंगर लबारु है। (क० ७।६७)
लबेद-(वेद के अनु०)-वेद के विरुद्ध, अवैदिक। उ० साम दान भेद बिधि, बेदहु लबेद सिद्धि। (ह० २८)
लब्ध-(सं०)-प्राप्त, उपार्जित।
लब्धि-(सं०)-प्राप्ति, लाभ हाथ में आना।
लभ्य-(सं०)-प्राप्त, प्राप्ति के योग्य।
लय-(सं०)-१. लगन, प्रेम, २. स्वर-ताल युक्त ध्वनि, ३. चित्त की वृत्तियों को किसी एक चीज़ पर लगाना, एकाग्रता, ४. विनाश, प्रलय, ५. लीन, लवलीन। उ० १. साधक नाम जपहिं लय लाएँ। (मा० १।२२।२) ४. भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। (मा० ३।२८।२)
लयऊ-(सं० लभन)-१. लगा, २. लिया। उ० १. आपन नाम कहत तब लयऊ। (मा० १।१६३।४) लये-लिया। लयो-लिया, ग्रहण किया, काटकर लिया। उ० तेरे राज राय दसरथ के लयो। (वि० १६१) लयौ-१. पाया है, लिया है, २. रखा है।
लयकारी-(सं० लयकारिन्)-लय या प्रलय करनेवाला।
लयलीन-(सं० लय + लीन) निमग्न, पूर्णतः लीन। उ०प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव। (मा० १।३१६)
लरखरनि-(?)-लड़खड़ाना, डगमगाना। उ०बसति तुलसी-हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि। (गी० १।२४) लरखरे-लड़खड़ाए, लड़खड़ाकर गिरे। उ० गंजेउ सो गर्जेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे। (जा० ११७)
लरत-(सं०रणन)-लड़ते हुए। उ०कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह। (मा०६।२३ ख) लरन-लड़ना। उ० तेरी सौं करौं ताकी टेव लरन की। (कृ० ८) लरनि-लड़ाई, लड़ना। उ० देखौ देखौ लषन लरनि हनुमान की। (क० ६।४०) लरहिं-लड़ते हैं, २. लड़ें। उ० २. लरहिं सुखेन कालु किन होऊ। (मा० १।२८४।१) लरही-दे० 'लरहिं'। लरि-लड़कर। उ० देखहिं परसपर रामकरि संग्राम रिपुदल लरि मरयो। (मा० ३।२०।छं० ४) लरिबे-लड़ने, लड़ाई करने। लरौं-लड़ता हूँ, तकरार करता हूँ। उ० जल सीकर सम सुनत लरौं। (वि० १४१)
लराई-(सं० रणन)-युद्ध, लड़ाई। उ० हारे सुर करि बिबिध लराई। (मा० १।८२।४)
लरिकई(?)-लड़कपन। उ० कैधौं कुल को प्रभाव कैधौं लरिकई है? (गी० १।८५)
लरिकनीं-(?)-लड़की। उ० बधू लरिकनीं पर घर आईं। (मा० १।३५५।४) लरिकनी-बच्ची, लड़की।
लरिकन्ह-१. लड़कों पर, २. लड़कों ने। उ० १. करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। (मा० १।३६०।४) २. बात असि लरिन्ह कही। (मा० १।६५।छं० १)
लरिकपन-लड़कपन। उ० खेलत खात लरिकपन गोचलि। (वि० २३४)
लरिकवनि-लड़कों से। उ०कहँ सिवचाप लरिकवनि बूझत। (गी० १।६०)
लरिकहि-१. लड़के को, २. लड़के से।
लरिका-(?)-लड़का। उ० या ब्रज में लरिका घने हौंही अन्याई। (कृ०८) लरिकै-बाल कही, लड़का ही। लरिको-लड़के भी। उ० जाके जिए मुए सोच करिहैं न लरिको। (ह० ४२)
लरिकाइय-लड़कपन ही। उ० जौ बर लागि करहु तपु तौ लरिकाइय। (पा०५१) लरिकाईं-लड़कपन में।
लरिकाई-लड़कपन। उ० लरिकाई बीती अचेत चित। (वि० ८३)
लरिकिनी-दे० 'लरिकनी'।
ललक-(सं० ललन)-प्रबल अभिलाषा, इच्छा। उ० ऐसेहु लाभ न ललक जो तुलसी नित हित हानि। (दो० ६७)
ललकत-(सं० ललता) लालयित होते हैं ललचाते हैं। उ० ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की। (क० ६।३०) ललकि-लालच में पड़कर, लालायित होकर, दौड़कर। उ० सुत ललाम लालहु ललित लेहु ललकि फल चारि। (प्र० ४।४।३)
ललचानी-(सं० लालसा)-लालच की, लोभे। उ० राम प्रसाद-माल जूँठनि लगि त्यों न ललकि ललचानी। (वि० १७०) ललचाने-लालच किए। ललचायो-लालच किया। उ० नाथ हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायो। (वि० २७६)
ललन-(सं०)-१. प्यारा, २.बच्चा, प्यारा पुत्र, ३. कौतुक, तमाशा। उ० २. ललन लोने लेरुआ बलि मैया। (गी० १।१७) ३. बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौन सों करिहौं। (गी० २।४)
ललना-(सं०)-१. स्त्री, सुंदर स्त्री, २. बच्चा। उ० १. छबि ललनागन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय। (मा० १।३२३) २. मातु दुलारहिं कहि प्रिय ललना। (मा० १।१६८।४)
लला-(सं० लालक)-प्यार से बालक आदि के लिए संबोधन, दुलारा, प्यारा। उ० रामलला कर नहछू गाइ सुनाइय हो। (रा० १)
ललाइ-(सं० लालसा)-ललचाकर, तरस-तरस कर। उ० लटि लालची ललाइ कै। (गी०५।२८) ललाई (?)-लल-

चाता था। उ०नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई। (क०७।४७) ललात-१.तरसता, सिहकता, ललकता, ललचाता, २. प्रेमकरता है, ३. ललचानेवाला। उ० १. कृस गात ललात जो रोटिन को। (क० ७।४६)
ललाई (२)-(सं० लाल)-लाली, सुर्खी।
ललाट-(सं०)-भाल, कपाल। उ० ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। (मा० १।६२।२)
ललाम-(सं०)-१. सुंदर, अच्छा, २. भूषण, ३. रत्न। उ० राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को। (क० ७।६८) ललामो-ललाम को भी, रत्न को भी। उ० उलटे पुलटे नाम महातम गुंजनि जितो ललामो। (वि० २२८)
ललामा-दे० 'ललाम'। उ० २. परम सुंदरी नारि ललामा। (मा० १।१७६।१)
ललित-(सं०)-१. सुंदर, अच्छा, मनोहर, २.चंचल, हिलता डोलता, ३. कोमल, ४. विश्वास, ६. रागिनी विशेष, ६. एक नृत्य। उ०१. ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल। (वि० ११)
ललिताई-शोभा, सुंदरता। उ० दच्छभाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई। (वि० ६२)
लली-(सं० लालक)-बालिका, लड़की।
लल्लाट-दे० 'ललाट'। उ०दे० 'ललित'।
लव-(सं०)-१. थोड़ा, रंच, २. समय का अत्यंत थोड़ा भाग, ३. राम का बड़ा पुत्र। उ० २. लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड। (मा० ६।१। दो० १)
लवण-(सं०)-१. नमक, २. लवणासुर नाम का राक्षस जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। उ० जयति लवणांबुनिधि कुंभसंभव। (वि० ४०)
लवन-दे० 'लवण'। उ० अस कहि लवन सिंधु तट जाई। (मा० ४।२६।५)
लवनि-(१)-(सं० लवन)-पके खेत की कटाई की मज़दूरी जो फसल (बोझ) रूप में ही दी जाती है। उ० रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री। (गी० १।१०४)
लवनि (२)-(सं० लवण)-सुंदरता।
लवलीन-(सं० लय+लीन)-लीन, व्यस्त, गर्क़।
लवलेश-(सं०)-लेशमात्र, अत्यल्प।
लवलेसा-दे० 'लवलेश'। उ० नहिं तहँ मोह निसा लव-लेसा। (मा० १।११६।३)
लवा-(सं० लाजा)-बटेर नाम का पक्षी। उ० लवा ज्यौं लुकात तुलसी झपेटे बाज के। (क० ६।६)
लवाइ-(सं० लभन)-लिवाकर, लेकर। उ० चले लवाइ समेत समाजहिं। (मा० २।२७५।४)
लवाई (?)-हाल की ब्याई हुई गाय। उ० निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई। (मा० ७।६।५)
लवै-(सं० लवन)-काटे, लुने। उ० पाप पुन्य द्वै बीज है बवै सो लवै निदान। (वै० ५)
लषन-दे० 'लक्ष्मण'। उ० सिय लघु भगिनि लषन कहँ रूप-उजागरि। (जा० १७३) लषनहिं-लक्ष्मण को।
लषनु-दे० 'लषन'।
लषहीं-(सं०लक्ष्य) देखते हैं। लषिहौं-१.देखूँगा,२.देखकर।
लसंत-(सं० लसन)-बिराजमान है। लस-शोभा देता है। उ० लस मसि बिंदु बदन बिधु नीको। (गी० १।२१) लसई-शोभा देता है। उ० जनु मधु मदन मध्य रति लसई। (मा० २।१२३।२) लसत-शोभा देता है, शोभित है। उ० तड़ित गर्भांग सर्वांग सुंदर लसत। (वि० १५) लसति-सोहती है,फबती है। उ०लसति हृदय नखस्रेनी। (गी०७।१५) लससि-तू शोभायमान होती है। उ०ईससीस ससि त्रिपथ लससि नभ-पताल-धरनि। (वि० २०) लसहिं-शोभा देते हैं। उ० कहत बचत रद लसहिं दमक जनु दामिनि। (जा० ८०) लसी-शोभित हुई, चमकी। उ० मानों लसी तुलसी हनुमान हिये जग जीति जराय की चौकी। (क० ७।१४३) लसै-सुशोभित हैं, शोभा देता है। उ० स्रम-सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारक मै। (क० २।१३) लस्यो-शोभित हुआ। उ० कागर-कीर ज्यौं भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यौं काई। (क० २।२) लस्यौ-दे० 'लस्यो'।
लसत्-दे० 'लसत'। उ० लसद् भाल बालेंदुकंठे भुजंगा। (मा० ७।१०८।३)
लसम-(?)-खोटा, दूषित। उ० लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के। (क०७।२४)
लसित-शोभित। उ०. कनक-चुनिन सों लसित नहरनी लिये कर हो। (रा० १०)
लह-(सं० लब्ध)-१. प्राप्त, लब्ध, २. पाता। उ० २. रामकृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिस्राम। (दो० १३३) लहइ-प्राप्त करता है, पाता है। उ० सादर जासु लहइ नित नासा। (मा० २।१२८।१) लहई-प्राप्त करता है, पाता है। लहऊँ-प्राप्त करता हूँ। उ०सिसु लीला बिलोकि सुख लहऊँ। (मा० ७।११४।७) लहत-पाता है। उ० सकल बड़ाई सब कहाँ तें हलत ? (वि० २५६) लहतो-पाता, प्राप्त करता। उ० चहतो जो जोई जोई लहतो सो सोई सोई। (वि० २४६) लहब-पावेंगे। उ० सो फलु तुरंत लहब सब काहूँ। (मा० १।६४।१) लहहिं-पाते हैं। उ० लहहिं सकल सोभा अधिकाई। (मा० १।११।१) लहहि-१. पाता है, २. पाएगा। लहहीं-१. पाते हैं, २. पावेंगे। लहा-पाया, प्राप्त किया। उ० झूठो है झूठो है झूठो सदा जग संत कहंत जे अंत लहा है। (क० ७।३८) लहि-पाकर। उ० नैन लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं। (जा० २१०) लहिअ-मिलता, पाया जाता। उ० लहिअ न कोटि जोग जप साधें। (मा० १।७०।४) लहिबो-पाना, पाओगी। उ० सानुज सेन समेत स्वामिपद निरखि परम मुद मंगल लहिबो। (गी० ५।१४) लहिय-मिलता, पाया जाता है। उ० सुख कि लहिय हरि भगति बिनु ? (दो० १३७) लहिहैं-पावेंगे। उ० फल लोचन आपन तौ लहिहैं। (मा० २।२३) लहिहौं-पाऊँगा। लहीं-पाई, प्राप्त की। उ० ऋषि नारि उधारि कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही। (क० ७।१०) लहे-प्राप्त किए। उ० कहु कहु लहे फल रसाल बबुर-बीज बयत। (वि० १३०) लहेउँ-मैंने पाई, पाया। उ० तुम्हरी कृपा लहेउँ बिस्रामा। (मा० ७।११५।४) लहेउ-

पाया, प्राप्त किया। उ० नारि बिरह दुख लहेउ अपारा। (मा० १।४६।४) लहेऊ–दे० 'लहेउ'। लहैं–१.पावें, प्राप्त करें, २. प्राप्त करते हैं, पाते हैं। उ० २. जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक लहैं सुर लोग सुठौरहि। (क० ७। २६) लहै–पावे, प्राप्त करे, प्राप्त करता है। उ० जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै। (मा० १।१६२।छं० ३) लहो–पाया, प्राप्त किया। उ० नाहिनै काहू लहो सुख प्रीति करि इक अंग। (कृ० ५४) लहौं–पाऊँ, प्राप्त करूँ। लहौंगो–प्राप्त करूँगा। उ० बारि तिहारो निहारि मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो। (क० ७।१४७) लह्यो–पाया, प्राप्त किया। उ० हौं तो बलि जाउँ राम नाम ही ते लह्यो हौं। (वि० २६०)

लहकौरि–(सं० लाभ + कवल)–विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा और दुलहिन एक दूसरे के मुँह में कौर डालते हैं। उ० लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं। (मा० १।३२७छं० २)

लहर–(सं० लहरी)–तरंग, हिलोरा।

लहरि–दे० 'लहर'। उ० दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता। (मा० ७।६३।३)

लहरी–मनमौजी, मस्त।

लहलहात–(अनु०)–१. लहलहाते हुए, २. लहलहाता है। उ० १. राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल। (मा०६।६१) लहलहे–सरसता से भरे। उ०लहलहे लोयन सनेह सरसई है। (गी० १।६४)

लहालहे–(अनु०)–हरे भरे। उ० देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे। (जा० ११८)

लांगल–(सं०)–खेत जोतने का हल।

लांगूल–(सं०)–पूँछ।

लाँघि–(सं० लंघन)–लाँघकर, कूदकर। उ० जलधि लाँघि दहि लंक प्रबल बल। (वि० ३२) लाँघे–कूदे, पार हुए।

लांछन–(सं०)–१. कलंक, दोष, २. निशान, चिह्न। उ० २. आज श्रीबत्स-लांछन, उदारम्। (वि० ६१)

ला–(सं० लभन ?)–ले आ। लाइ–१. लगा, लगा दे, २. लगाकर, लगा, ३. ले आकर। उ० २. राम कुचरचा करहिं सब सीतहिं लाइ कलंक। (प्र० ६।६।४) लाइए–लगा दीजिये। उ० सकल गिरिन दव लाइए बिनु रबि राति न जाइ। (दो० ३८६) लाइय–१. लाइए, २. लगाइए। लाइयत–लगाते हैं। उ० बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत। (क० ७।६६) लाइयो–लगाया, लगा लिया। उ० सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो। (मा० ६।१२१।छं०२) लाइहउँ–दे० 'लाइहौं'। लाइहौं–१. लगाऊँगा, २.लाऊँगा। उ० १.कृपानिकेत पद मन लाइहौं। (मा० ३।२६।छं० १) लाई (१)–१. ले आई, २. लगा दी, ३. डाल दी, ४. लगाकर। उ० ३. कान्ह ठगौरी लाई। (कृ० ८) ४. राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई। (मा० २।५६।१) लाउब–लावेंगे। उ० तिन निज ओर न लाउब भोरा। (मा० १।५।१) लाएँ–लाकर, लगाकर। उ० चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। (मा० १।११७।२) लाय (१)–१. लाकर, लगाकर। लायउ–लगाया। उ० मुनि मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु। (पा० ३८) लाया–१. ले आया, २. लगाया। लाये–१. लगाए, २. ले आए, ३. पकड़े हुए। उ० १. तरु जे जानकी लाये ज्याये हरि करि कपि। (गी० ३।६) २. कौसल्या कल कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाये। (गी० १।२६) लायो–१. लगाया हुआ, २. लगा रखा है। उ० २. भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेस मन लायो। (वि० २००) लावतीं–लगाती हैं, मिलाती हैं। उ० चंद की किरन पीवें पलकैं न लावतीं। (क० १।१३) लावहिं–लगाते हैं, लाते हैं। उ० रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। (मा० २।२२३८।२) लावहि–१. लाता है, २. ला। उ० २. बाद-बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि। (वि० २३७) लावहु–लाओ, लगाओ। उ० गहरु जनि लावहु। (जा० ३२) लावा (१)–लाया।

लाई (२)–(सं० लग्न)–लिए, वास्ते।

लाक (१)–(सं० लंक)–कमर, कटि।

लाक (२)–(?)–भूसा।

लाकरी–(सं० लगुड)–लकड़ी। उ० पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी। (कृ० ४६)

लाख (१)–(सं० लक्ष)–सौ हज़ार। उ० आकर चारि लाख चौरासी। (मा० १।८।१) लाखन–लाखों, बहुतेरों, बहुत। उ० १. हने भट लाखन लखन जातुधान के। (क०६।४८) लाखनि–लाखों। उ० राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को। (क० ७।६८)

लाख (२)–(सं०)–लाह, लाही।

लाग–(सं० लग्न)–१. प्यार, २. बैर, ३. मेल, ४. लगा,लगे, संयुक्त हो, ५. होड़, चढ़ाउपरी, ६. तक, ७. लिए। उ० ४. सचिव बोलि सठ लाग बचावन। (मा० ५।२६।५) लागइ–१. लगता है, २. लगे। लागई–दे०'लागइ'। लागउँ–लगता हूँ। उ० बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस। (मा० ५।३६ क) लागत–लगता है। उ०असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार। (ब०३६)लागति–लगती है। लागहिं–लगती हैं। लागहि–लगता है। लागहीं–१.लगती हैं, लगते हैं, २.लगते थे। उ० २.संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं। (मा०६।८२।छं०१)लागहु–१.लागो, लगो,२.लगा। लागा–लगा। उ०भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा। (मा०२।१४।१) लागि–दे०'लागी'। उ०४.लघु लागि बिधि की निपुनता।(?) ७.बौरे बरहिं लागि तप कीन्हा। (मा०१।६७।१) लागिअ–लगा जाय, आक्रमण किया जाय। उ०केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा। (मा० ६।३६।१) लागिहि–१. लगा, २. लगेगा। उ० २. नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारें। (मा० २।५०।३) लागी–क. लाग का स्त्रीलिंग, दे० 'लाग', ख. विरोधी। उ० क. ४. जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न। (वि० २१) क. ७. जनमत जगत जननि दुख लागी। (मा० ७।११६।५) लागु–१. लग जा,२. लग गया। उ० १. जो जिय चहसि परम सुख तो यहि मारग लागु। (वि०२०३)२.जेहि अनुरागु लागु चितु सोइ हितु आपन।

(पा० ३७) लागे–१. लगे, २. लगे हुए, ३. लगने पर, ४. लगने से, ५. वास्ते, लिए। उ० १. बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे। (मा० २।८१।३) लागेउँ–१. लगे, २. लगा, ३. लगने से। लागेउ–दे० 'लागे'। लागेसि–१. लगा, २. लगा है, उ० १. लागेसि अधम पचारै मोही। (मा०६।७४।३) २. लागेसि अधम सिखावन मोही। (मा० ५।२४।२) लागेहु–लगने से ही। उ० तुलसिदास बड़े भाग मन लागेहु तें सब सुख पूरति। (कृ० २८) लागै–लगे, लगता है। उ० जौं पाँचहि मत लागै नीका। (मा० २।५।२) लाग्यो–लगा, लगा है। उ० तनु-तड़ाग बल बारि सूखन लाग्यो परी कुरूपता काई। (कृ० २६)

लागू–१. आधार, सहारा, २. शत्रुता, दुश्मनी, ३. पीछे चलनेवाला। उ० १. राम सखा कर दीन्हें लागू। (मा० २।२१६।२)

लाघव-फुरती से। उ० अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा। (मा० १।२६१।३) लाघव–(सं०)–१. लघुता, हलकापन, २. फुर्ती, शीघ्रता, ३. पटुता, सफ़ाई।

लाघौ–दे० 'लाघव'। उ० ३. धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के। (क० ६।४८)

लाज–(सं० लज्जा)–१. शर्म, लज्जा, २. इज़्ज़त, मर्यादा। उ० १. लाज गाज उनवनि कुचाल कलि। (कृ० ६१)

लाजत–लज्जित होता, शर्माता है। उ० अच्छे मुनि बेष धरे लाजत अनंग हैं। (क० २।१५) लाजहिं–लज्जित होते हैं। उ० लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम। (मा० १।१४६) लाजि–लज्जित होकर। उ० तुलसी ज्यों रवि के उदय, तुरत जात तम लाजि। (वै० ६१) लाजे–लज्जित हुए, शर्मिंदा हुए। उ० गनि बिलोकु खगनायक लाजे। (मा० १।३१६।४) लाजवंत–लज्जाशील। उ० लाजवंत तव सहज सुभाऊ। (मा० ६।२६।३)

लाजा (१)–दे० 'लाज'। उ० रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा। (मा० ६।२८।४)

लाजा (२)–(सं०)–धान का लावा, खील। उ० अच्छत अंकुर राजत लाजा। (मा० १।३४६।३)

लाटी–(?)–वह अवस्था जिसमें गर्मी थकावट या बीमारी आदि से मुँह का थूक तथा होंठ आदि सूख जाते हैं। उ० सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी। (मा० २।१४५।२)

लाड़–(सं० लालन)–प्यार, दुलार।

लाड़िले–(सं० लालन)–दुलारा, दुलरुवा। उ० लाल लाड़िले लषन हितु हौ जन के। (वि० ३७)

लाडू–(सं० लड्डुक)–लड्डू, मोदक। उ० सुख के निधान पाए हिय के विधान लाए ठग के से लाडू खाए प्रेम मधु छाके हैं। (गी० १।६२)

लात–(?)–पैर, पद, गोड़। उ० लंकिनी ज्यों लात घात ही मरोरि मारिए। (ह० २३) लातन्ह–लातों, लातों से। लातन्हि–लातों से। उ० लातन्हि हति हति चले पराई। (मा० ६।७६।२)

लाता–दे० 'लात'। उ० ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता। (मा० ६।४३।४)

लाभ–(सं०)–नफ़ा, फ़ायदा, मुनाफ़ा। उ० जो विचारि व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान। (दो० ४७१)

लाभु–दे० 'लाभ'। उ० हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ। (मा० २।१७१)

लामी–(सं० लंब)–लंबी, बड़ी। उ० तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिए। (ह० ३४)

लाय (२)–(सं० अलात)–जलाकर। उ० गोपद पयोधि करि, होलिका ज्यों लाय लंक निपट निसंक पर पुर गलबल भो। (ह० ६)

लायक–(अर० लायक़)–योग्य, समर्थ। उ० सेवक-सुखदायक, सबल सब लायक। (वि० ३७)

लाल (१)–(सं० लालक)–१. दुलारा, प्यारा, २. पुत्र, बेटा, प्यारा बालक। उ० १. लाल लाड़िले लखन हित हौ जन के। (वि० ३७)

लाल (२)–(सं०)–१. एक रत्न, २. रक्तवर्ण, सुर्ख़। उ० २. कल कदलि जंघ पद कमल लाल। (वि० १४)

लालच–(सं० लालसा)–लोभ, तृष्णा। उ० नाथ हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायो। (वि० २७६)

लालचिन–लालच करनेवालों को। उ० रतिन के लालचिन प्रापति मनक की। (क० ७।२०) लालची–(सं० लालसा) लोभी, तृष्णा वाला। उ० तिन्ह की मति रिस राग मोह मद लोभ लालची लीलि लई है। (वि० १३९)

लालत–(सं० लालन)–प्यार करता है, दुलारता है। उ० लाल कमल जनु लालत बाल मनोजनि। (जा० ७१)

लालन–१. बच्चा, प्यारा, २. पालन करना, पोसना। उ० २. लालन जोग लखन लघु लोने। (मा० २।२००।१)

लालहीं–प्यार करते है, रक्षा करते हैं। उ० पितु मातु प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं। (पा०६)। लालि–लालन करके, प्यार करके। उ० कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह। (क० ७।११९) लाली (१)–लाला, प्यार किया, पालन किया, रक्षा की। उ० कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली। (मा०२।५९।२) लाले–लालन किया, पाला, प्यार किया। उ० लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी। (वि० २५३)

लालसा–(सं०)–प्रबल इच्छा, मनोरथ। उ० एक लालसा बढ़ि उर माहीं। (मा० १।१४९।२)

लाला–(सं० लाल)–लाल, अरुण। उ० नील सघन पल्लव फल लाला। (मा० २।२३७।२)

लालित–दुलारा, प्यारा, प्यार किया या पाला हुआ। उ० जनक सुता कर पल्लव लालित बिपुल बिलास। (गी० ७।२१)

लालित्य–(सं०)–सुन्दरता, मनोहरता।

लाली (२)–सुर्खी, अरुणिमा।

लावक–(सं०)–लवा पक्षी। उ० तीतर लावक पदचर जूथा। (मा० ३।३८।४)

लावण्य–(सं०)–सुन्दरता। उ० अखिल लावण्य गृह। (वि० ५०)

लावण्यता–(सं०)–सुन्दरता।

लावनिता–सुन्दरता, लावण्य। उ०तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि नौ, तीनि इकीस सबै। (क० १।७)

लावन्य–दे० 'लावण्य'। उ० नीलकंठ लावन्य निधि सोह बाल बिधु भाल। (मा० १।१०६)
लावा (२)–(सं०)–लवा नाम का पक्षी, बटेर। उ० जनु सचान बन झपटेउ लावा। (मा० २।२९।३)
लावा (३)–(सं० लाजा)-खील, लावा विवाह की एक रीति में भी काम आता है। कहीं-कहीं उस रीति को भी 'लावा' कहते हैं। उ० सिंदुर बंदन होय लावा होन लागीं भाँवरी। (जा० १६२)
लासा–(सं० लस)–एक चिपकनेवाली वस्तु, गोंद। उ० नाम-लगि लाइ, लासा-ललित-बचन कहि। (वि० २०८)
लाह (१)–(सं० लाक्षा)–पेड़ों की लाख, गोंद। उ० जाकी आँच अबहूँ लसत लंक लाह सी। (क० ६।४३)
लाह (२)–(सं० लाभ)–लाभ, प्राप्ति, फ़ायदा।
लाहु–दे० 'लाह (२)'। उ० सुवन लाहु उछाहु दिन-दिन। (गी० ७।३२)
लाहू–दे० 'लाहु'। उ० मुदित भए लहि लोयन लाहू। (मा० २।१०८।४)
लिंग–(सं०)–१. पुरुष का चिह्न, २. शिवलिंग। उ० २. ज्योति रूप लिंग लई, अननित लिंग भई। (क० ७।१८२) २. लिंग थापि करि बिधिवत पूजा। (मा० ६।२।३)
लिए (१)–(सं० लभन)–लिए हुए, साथ लेकर। उ० गे जनवासहि कौसिक राम लषन लिए। (जा० १३६) लिय (१)–१. लिया, ग्रहण किया, २. लगाया। लिया–१. ले लिया, ग्रहण किया, २.कहा। उ० २.खायो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। (वि० ३३) लिये (१)–१. लेने पर, ले लेने पर, २.लिया। उ०१.लिये लाय मन साथ। (मा० २।११८) लियो–लिया, प्राप्त किया। उ० लियो सकल सुख हरि अंग संग को। (कृ० २५) लिहे–लिये, लिये हुए। उ० दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो। (रा० ६) ली–'लिया' की स्त्रीलिंग। उ०कारन कृपालु मैं सबै के जी की थाह ली। (क० ७।२२) लीजत–लेते, लेते हैं। उ० लीजत क्यों न लपेटि लवा से। (ह०१८) लीजिए–अपनाइए, ग्रहण कीजिए। उ० यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए। (मा०४।१०।छं०२)लीजे–लीजिए। लीजै–लीजिए। उ० असमंजस में मगन हौं लीजै गहि बाहीं। (वि० १४७) लीन (१)–लिया। लीन्ह–लिया, ग्रहण किया। लीन्हा–लिया, ग्रहण किया। लीन्हि–ली, ले ली। उ० लीन्हि परीच्छा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात। (मा० १।५५) लीन्हीं–दे० 'लीन्हि'। लीन्हे–१. लिए, २. लेने पर। उ० १. बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। (मा० १।१००।१) लीन्हेउ–१. लिए, २.लेने पर, लेने पर भी। लीन्हेसि–लिया, ले लिया। उ० कौतुक हीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ। (मा० १।१७९) लीन्हों–लिया, ले लिया। उ० लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरति दहत हौं। (वि० ७६) लीबी–लीजिए। उ० याते बिपरीत अनहितन की जानि लीबी। (गी० १।६४) लीबो–लेना है। उ० अब तौ कठिन कान्ह के करतब, तुम्ह हौ हँसति कहा कहि लीबो ? (कृ० ६)
लिए (२)–(लग्न)–वास्ते।
लिखइ–(सं० लिखन)–लिखता है। लिखत–लिखते हुए। उ० लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। (मा० २।५५।१)
लिखा–१.लिखा हुआ, २. लिख दिया। उ० १. जो बिधि लिखा लिलार। (मा० १।६८) २. जो बिधि लिखा लिलार। (मा०१।६८) लिखि–लिख। उ०लिखत सुधाकर गालिखि राहू। (मा०२।५५।१) लिखिय–लिखिए, लिखना चाहिए। लिखी–१. लिखी हुई, २. लिखा। लिखे–१. लिखा, २. लिखने पर, ३. लिखा हुआ। उ० ३. चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। (मा० २।१३५।३)
लिखाइ–(सं० लिखन)–लिखाकर। उ० ललित लगन लिखाइ कै। (पा० ६२)
लिखित–(सं०)–लिखा हुआ। उ० चित्र लिखित कपि देखि डेराती। (मा० २।६०।२)
लिपि–(सं०)–अक्षर, लेख। उ० तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की। (क० ७।२०)
लिय (२)–१. लिए, वास्ते, २.वजह, कारण। उ० १.कहि प्रनामु कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह। (मा० २।१५२)
लिये (२)–१. वास्ते, २. कारण।
लिलाट–(सं० ललाट)–मस्तक, भाल, ललाट।
लिलार–दे० 'लिलाट'। उ० दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाउ जहँ पाउब तहीं। (मा० १।६७। छं० १)
लीक–(सं० लिख्)–१. रेखा, लकीर, २. नियम, परंपरा, ३. सड़क, पगडंडी, ४. गाड़ी के पहिए का निशान, ५. निश्चय, ६. मर्यादा। उ० १. मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी, कपि यों धुकि धायो। (क० ६।५४) ५. आगम निगम पुरान कहत करि लीक। (ब० ६०)
लीका–दे० 'लीक'। उ० ६. अजहुँ गाव श्रुति जिनकी लीका। (मा० १।१४२।१)
लीख–दे० 'लीक'। पक्की बात, लकीर। उ० विश्वंभर श्रीपति त्रिभुवन-पति बेद-बिदित यह लीख। (वि० ६८)
लीचर–(?)–१. सुस्त, काहिल, निकम्मा, २. जल्दी न छोड़नेवाला, ३. लीचरपन, अशक्ति, शिथिलता। उ० ३. बाहुक-सुबाहु नीच, लीचर मरीच मिलि। (ह० ३९)
लीन (२)–(सं०)–तन्मय, विलीन, मग्न। उ० सब बिधि हीन मलीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं। (वि० ११४)
लीलहिं–(सं० लीला)–१. लीला को, तमाशा को, करनी को, कृत्य को २. खेल में। उ० १. जो मन लाइ न सुन हरि लीलहिं। (मा० ७।१२८।२) २. अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ। (मा० ६।१) लीलहि–१. लीला में, तमाशा में, खेल में, २. लीला को। लीला–(सं०)–१. क्रीड़ा, तमाशा, खेल, कौतुक, २. विचित्र काम। उ० १.निज इच्छा लीला वपु धारिनि। (मा० १। ६८।२)
लुक–(सं० उल्का)–गर्म हवा, लू।
लुकाई–(सं० लोप)–१. लुकाकर, छिपकर, २. छिपे, ३. छिपता है। लुकाई–१. लुकता है, छिपता है, २. लुककर, छिपकर। उ० २. तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। (मा० ५। ६।१) लुकात–छिप जाता है। उ० लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के। (क० ६।६) लुकाने–छिप गए, लुके। उ०

कपटी भूप उलूप लुकाने। (मा० २५५।१) लुके-छिप गए। उ० उदित भानुकुल-भानु लखि, लुके उलूक नरेस। (प्र० १।५।५)
लुगाई-(सं० लोक)-स्त्री। उ० थकित होहिं सब लोग लुगाई। (मा० १।२०४।४)
लुटत-(?)-लोट रहा है। उ० जनु महि लुटत सनेह समेटा। (मा० २।२४३।३)
लुटि-(सं० लुट)-लूट में। उ० नयन लाभ लुटि पाई। (गी० १।५३)
लुनाई-(सं० लावण्य)-सौंदर्य। उ० दे० 'लुभाई'।
लुनिअ-(?)-काटो, लूनो। उ० बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा। (मा० २।१६।३) लुनिए-काटिए। उ० हौंहूँ रहौं मौन ही, बयो सो जानि लुनिए। (ह० ४४) लुनिहै-काटेगा। उ० लुनिहै सोई सोई जोई जेहि बई है। (गी० १।८४)
लुप्त-(सं०)-छिपा हुआ, गुप्त।
लुबधक-(सं० लुब्ध)-लालची, लोभी।
लुबुध-(सं० लुब्ध)-लालची, लोभी। उ० लुबुध मधुप इव तजइ न पासू। (मा० १।१७।२)
लुब्ध-(सं०)-लालची, लोभी। उ० जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर। (वि० २०७)
लुभाइ-(सं० लोभ)-लुब्ध होकर, लालच करके। उ० बदन-मनोज सरोज-लोचननि रही है लुभाइ लुनाई। (गी० १।५३) लुभान-लोभ गया, मोह में पड़ा। लुभाने-१. लुब्ध रहते हैं, २. लोभ में पड़कर, मोहित होकर। उ० मुक्ति निरादर भगति लुभाने। (मा० ७।११९।४) लुभाहिं-लुभाते हैं, लोभ करते हैं। उ० जे परम सुगतिहु लुभाहिं न। (वि० २०७)
लूक-(सं० उल्का)-१. टूटा तारा, २. चिनगारी, लपट। उ०१. सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आयो। (गी० ५।१)
लूकट-(सं०उल्का) अधजला।
लूका-(सं० उल्का)-१. जलती आग, लपट, २. चिनगारी।
लूगा-(?)-कपड़ा, वस्त्र। उ० रोटी लूगा नीके राखैं, आगे हू की बेद भाषैं। (वि० ७६)
लूट-(सं० लुट्)-छीनना, अपहृत करना।
लूटक-लूटनेवाले, हरनेवाले। उ० तून कटि मुनिपद लूटक पटनि के। (क० २।१६)
लूटन-(सं० लुट्)-लूटने, लेने, छीनने। उ० चले रंक जनु लूटन सोना। (मा० २।१३५।१) लूटीं-लूट लीं, ले लीं। उ० रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं। (मा०२।११७।२) लूटे-लूट लिए, छीन लिए।
लूनिहै-(?)-काटेगा, पायेगा।
लूम-(सं०)-पूँछ, दुम। उ० जनु लूम लसति सरिता सी। (वि० २२)
लूरति-(सं० लुलन)-लटकती है, झूलती है। उ० उरसि रुचिर बन माल लूरति। (गी० ५।४७)
लूलो-(सं० लून)-कटे पाँव या हाथ का, लंज, असमर्थ, बेकार। उ० रहौं दरवार परो लटि लूलो। (ह० ३६)
लेइ-(सं० लभन)-लेती है। उ० उतरु देइ न लेइ उसासू। (मा० २।१३।३) लेइहउँ-लेऊँगा, लूँगा। लेइहहिं-लेंगे। उ०रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा। (मा२।७०।३) लेइहि-लेगी। उ० जानेहु लेइहि मागि चबेना। (मा०२।३०।३) लेई-१. लेकर, २. लिया, ले लिया। लेउँ-लूँ, ले लूँ। लेउ-ले, लो। उ० जानि लेउ जो जाननि हारा। (मा० २।१२७।१) लेऊँ-लूँ, प्राप्त करूँ। उ० आजु राम सेवक जसु लेऊँ। (मा० २।२३०।२) लेत-लेता है, प्राप्त करता है। उ० लेत कोटि गुन भरि सो। (वि० ३६४।३) लेति-लेती हैं। उ० बारहिं बार लेति उर लाई। (मा० १।७२।४) लेन-लेने। उ० चले लेन सादर अगवाना। (मा० १।६५।१) लेना-ले लेना, ग्रहण करना। उ० झूठइ लेना झूठइ देना। (मा० ७।३९।४) लेब-लेंगे। उ० लेब भली बिधि लोचन लाहू। (मा० १।३१०।३)
लेबा-१. लेता है, २. लूँगा। उ० १. जाइ अवध अब यहु सुखु लेबा। (मा० २।१४६।३) २. सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा। (मा० २।१०२।४) लेहउँ-लूँगा। उ० लेहउँ दिनकर बंस उदारा। (मा० १।१८७।१) लेहिं-लेते हैं। उ० जरहिं बिषमजर लेहिं उसासा। (मा० २।५१।३) लेहि-१. लेवे, ले ले, २. लो, ले लो। उ० १. मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि० ३३) लेहीं-१. लेते हैं, २. लें। लेहु-लो, ग्रहण करो। उ० लेहु अब लेहु तब कोऊ न सिखाओ मानो। (क० ५।१७) लेहू-दे० 'लेहु'। लै-१. लेकर, ग्रहण कर, २. स्वागत करके, अगवानी करके। उ० १. पानि सरासन सायक लै। (क०२।२७) २. दुलहिन लै गे लच्छि निवासा। (मा० १।१३५।२) लैहैं-१. लेंगे, २. लावेंगे। उ०२. सहज कृपालु बिलंब न लैहैं। (गी० ५।५१) लैहौं-लूँगा, लगाऊँगा। उ० रामलखन उर लैहौं। (गी० ६।१६)
लेख-(सं०)-लिखा हुआ, रचना।
लेखई-(सं०लेखन)-१.लिखता है, २.देखता है, समझता है, ३. अनुमान करता है। उ० २. तुलसी नृपति भवितव्यताबस काम कौतुक लेखई। (मा०२।२५।छं०१) लेखऊँ-१. लिखूँ, २. समझूँ, जानूँ। लेखति-जानती है, समझती है। लेखहिं-गिनते हैं, समझते हैं। उ०साधन सकल सफल, करि लेखहिं। (मा०२।१३४।४)लेखहि-जाने, गिने, समझे, माने। लेखहीं-जान रहे हैं, जानते हैं, समझते हैं। उ० अवलोकि रघुकुल कमल रवि छबि सुफल जीवन लेखहीं। (मा० १।३१६।छं०१) लेखहू-देखो। लेखा-(सं० लेख)-१. गणित, हिसाब, २. गणना, गिनती, ३. लकीर, ४. देवता, ५. आदर, ६. देखा, समझा, ७. समझकर। उ० २. करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा। (मा०२।२००।४) ७. आदरु कीन्ह पिता सम लेखा। (मा० २।३६।३)
लेखि-१. देखकर, २. गिनकर, ३. जानकर, समझकर। उ० ३. नीके कै निकाई देखि जनमन सफल लेखि। (गी० २।२२) लेखिय-देखिए, समझिए। लेखी-दे० 'लेखि'। उ० ३. मुदित सफल जग जीवन लेखी। (मा०१।३४६।२) लेखें-१. देखे, २. जाने, ३. गिनती में, गणना में। उ० ३. भयउँ भाग भाजन जन लेखें। (मा०२।८८।३) लेखौं-

देखूँ, जानूँ, समझूँ। उ० तब निज जन्म सफल करि लेखौं। (मा० ७।११०।७)
लेखक-(सं०)-लिखनेवाला, ग्रंथकर्ता।
लेखन-१. लिखना, चित्र आदि बनाना, २. देखना। उ० १. सो समाज चित-चित्रसार लागी लेखन। (गी० १।७३)
लेखनी-(सं०)-कलम। उ० महि पत्री करि सिंधु मसि तरु लेखनी बनाइ। (वै० ३५)
लेरुआ-(सं० लेह)-बछड़ा। उ० ललन लोने लेरुआ बलि मैया। (गी० १।१७)
लेवैया-(सं० लभन)-लेनेवाला। उ० तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया। (क० ७।५२)
लेश-(सं०)-थोड़ा, अल्प। उ० प्रजापाल अति बेद बिधि कतहुँ नहीं अघलेस। (मा० १।१५३)
लेसइ-(सं० लेश्य)-जलावे, बारे। लेसै-जलावे। उ० एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यान मय। (मा०७।११७घ)
लेसु-दे० 'लेश'।
लेसा-दे० 'लेश'। उ० नहिं तहँ मोहनिसा लवलेसा। (मा० १।११६।३)
लोँ-दे० 'लौं'।
लोइ-(सं० लोक)-लोग। उ० तेज होत तन तरनि को अचरज मानत लोइ। (वै० ५५)
लोई-दे० 'लोइ'। उ० हम नीके देखा सब लोई। (वै० ४०)
लोक-(सं०)-१. संसार,२. संसार की रीति, ३.तीन लोक, स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल, ४. लोग। उ० २. लोक कि बेद बड़ेरो। (वि० २७२) ३. लोकगन सोक संताप-हारी। (वि० २५) ४. बिकल बिलोकि लोक काल कूट पियौ है। (क० ७।१७२) लोकउ-लोक भी। उ० पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई। (मा० २।२०७।१) लोकहिं-लोक को। उ० निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ। (मा० १।१८७) लोकहुँ-लोक में भी। उ० लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। (मा० २।२१८।३) लोकहु-दे० 'लोकहुँ'। लोके-लोक में, इस संसार में। उ० भजंतीह लोके परेवा नराणां। (७।१०८।७)
लोकप-(सं०)-१. राजा, २. दिग्पाल। उ० १. लोकप होहिं बिलोकत जासू। (मा० २।१४०।४)
लोकपति-दे० 'लोकप'।
लोकपाल-दे० 'लोकप'।
लोका-दे० 'लोक'। उ० ३. चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। (मा० १।२७।१)
लोकि-(सं० लोकन)-लोककर, झपटकर। उ० जात जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सों बिष लोकि लियो है। (क० ७।१५७)
लोकु-दे० 'लोक'।
लोकू-दे० 'लोक'। उ० हरष बिषाद बिबस सुरलोकू। (मा० २।८१।२)
लोग-(सं० लोक)-मनुष्य, जन। उ० नगर लोग सब अति हरषाने। (मा० १।६६।१) लोगन्ह-लोगों, लोग। लोगन्हि-लोगों से। उ० पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी। (मा० २।११८।३)
लोगा-दे० 'लोग'। उ० देखि हरष बिसमय बस लोगा। (मा० २।२१५।४)
लोगाईं-(सं० लोक)-स्त्रियाँ। उ० बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं। (मा० १।११४।२) लोगाई-स्त्री, औरत। उ० कहहिं परसपर लोग लोगाई। (मा० २।११।२)
लोगु-दे० 'लोग'।
लोगू-दे० 'लोग'। उ० सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू। (मा० २।३१८।१)
लोचनं-दे० 'लोचन'। आँखवाले। उ० प्रफुल्ल कंज लोचनं। (मा०३।४।३) लोचन-(सं०)-आँख। उ० लोचन सिसुन्ह देहु अमिय घूटी। (गी० २।२१)
लोचना-आँखोंवाली। उ० सारंग सावक लोचना। (जा० २०७)
लोचनि-दे० 'लोचना'। उ० बिधु बदनीं मृग सावक लोचनि। (मा० १।२६७।१)
लोचहिं-(सं० लोचन)-देखते हैं, खोजते हैं, इच्छा रखते हैं। उ०गिरजा जोग जुरहि बर अनुदिन लोचहिं। (पा०१०)
लोटन-(?)-झाड़ी, झुरमुट।
लोढ़ा-(सं० लोष्ठ)-सिल पर पीसने के लिए पत्थर, बट्टा। उ० फोरहि सिल लोढ़ा सदन आगे अढ़कु पहार। (दो० ५६०)
लोथिन-(सं० लोष्ठ)-शवों, लाशों। उ० लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ तहाँ। (क० ६।४६)
लोन-(सं० लवण)-१. नमक, २. सुंदरता, ३. सुंदर। उ० ३. करि सिंगार अति लोन तो बिहँसति आई हो। (रा० १०)
लोना-दे०'लोन'। उ० ३. साँवर कुअँर सखी सुठि लोना। (मा० १।२३३।४)
लोनाई-सुन्दरता। उ० देखत लोनाई लघु लागत मदन हैं। (गी० २।२६)
लोनी-(सं० लवण)-सुन्दर।
लोनु-दे० 'लोन'।
लोने-सुन्दर। उ० लालन जोग लखन लघु लोने। (मा० २।२१०।१)
लोप-१. नाश, क्षय, २. गुप्त होना, अदृश्य होना, ३. लुप्त हो गया। उ० ३. कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभाय को। (ह० ३१) लोपत-(सं० लुप्त)-लुप्त कर देता है। लोपति-१. मेटती है, २. मिट जाती है। उ०२. लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की। (क० ७।१८२) लोपिहैं-मिटा देंगे। लोपी-लुप्त कर दी है, लोप दी है। उ० कलि सकोप लोपी सुचाल। (वि० १६५) लोपै-मिट जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं। उ० तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की। (क० ७।२०)
लोपित-लुप्त, अदृश्य, नष्ट। उ० कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु। (वि०२४)
लोभ-(सं०)-लालच, तृष्णा। उ० लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं। (क० ७।१७४)

लोभइ–१. लुभा जाता है, मोहित हो जाता है, २. लोभ ही। उ० २.लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। (मा०७।४०।१) लोभहिं–दे० 'लोभइ'। लोभा–१. दे०'लोभ'। २. मोहित हो गये, ३. लुभा लिया। उ० १. लगे संग लोचन मनु लोभा। (मा० १।२१६।१) २. जनु चकोर पूरन ससि लोभा। (मा० १।२०७।३) लोभाई–१. लोभे, लुब्ध हुए, २.लुब्ध हो जाता है। उ०१.जहाँ जाइ मन तहँइ लोभाई। (मा० १।२१३।१) लोभान–लुभाया, लुब्ध। उ० करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान। (मा० १। २३१) लोभानी–मोहित हुई, लुब्ध हुई। उ० हरि-बिरंचि हरपुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी। (गी० १।४) लोभाने–मोहित हुए। लोभाये–लुभा गये, मोहित हो गये। लोभाहिं–मोहित होते हैं। लोभे–लोभे हुए, लुब्ध। उ० नव सुमन माल सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा। (गी० ७।१६)

लोभारे–लुभावने, मनोहर। उ० बय किसोर घन तड़ित बरन तनु नख सिख अंग लोभारे। (गी०१।८६)

लोभि–दे० 'लोभी'। उ० लोभि लोलुप कल कीरति चहई। (मा० १।२६७।२)

लोभिहि–(सं० लोभिन्)–लोभी को। उ० कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। (मा० ७।१२८।२) लोभी–लोभ करनेवाला, लालची। उ० लोभी लंपट लोलुप चारा। (मा० २।१६८।२)

लोभु–दे० 'लोभ'। उ० लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति। (मा० २।३१)

लोम–(सं०)–केश, रोंवाँ। उ०लसत लोम विद्युल्लता ज्वाल माला। (वि० २८)

लोमश–(सं०)–एक ऋषि जो अमर कहे गये हैं।

लोमस–दे० 'लोमश'। उ० चिरजीवन लोमस ते अधिकाने। (क० ७।४३)

लोयन–(सं० लोचन)–आँख, नेत्र। उ० सुदिन भए लहि लोयन लाहू। (मा० २।१०८।४) लोयननि–नेत्रों को। उ० लोयननि लाहु देत जहाँ-जहाँ जैहैं। (गी० २।३७)

लोयल–दे० 'लोयन'।

लोल–(सं०)–१. चंचल, २. सुन्दर। उ० १. राजत लोयन लोल। (मा० १।२४८)

लोलदिनेस–(सं०लोल + दिनेश)–'लोलार्क' नाम का काशी में एक पवित्र कुंड। उ० लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन करनघंट घंटा सी। (वि० २२)

लोला–(सं० लोल)–१. सुन्दर, २. चंचल। उ० २. कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। (मा० १।२४३।२)

लोलुप–(सं०)–लालची। उ० लोभी लंपट लोलुप चारा। (मा० २।१६८।२)

लोलुपता–(सं०)–लालच, लोभ। उ० इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। (मा० ७।१०२।४)

लोवा–(सं० लोमश)–लोमड़ी। उ० लोवा फिरि-फिरि दरसु देखावा। (मा० १।३०३।३)

लोह (१)–(सं० लोभ)–लोभ, लालच। उ० तब तें बेसाह्यो दाम लोह कोह काम को। (क० ७।७०)

लोह (२)–(सं० लौह)–१. लोहा, २. शस्त्र, हथियार। उ० १. तुलसी कृपा रघुबंस मनि की लोह लै नौका तिरा। (मा० २।२४१। छं०१) मु० लोह लेऊँ–लड़ूँ, लड़ाई करूँ। उ० सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। (मा० २।१९०।१)

लोहारिनि–(सं०लौहकार)–लोहार की स्त्री। उ० बिहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो। (रा० ५)

लोहित–(सं०)–१. लाल. सुर्ख, २. मंगलग्रह। उ० १. लघु लघु लोहित ललित हैं पद। (गी० १।१६)

लोहू–(सं० लोह)–खून, रुधिर।

लौं–(सं० लग्न)–तक। उ० सुत मानहिं मातु-पिता तब लौं।

लौ–(सं० लग्न)–तक, तलक। उ० मेरे पन की लाज इहाँ लौं। (गी० ६।५)

लौकिक–(सं०)–सांसारिक, लोक, सम्बन्धी। उ० तेहि श्रम यह लौकिक व्यवहारू। (मा० २।८७।४)

ल्याइ–(सं० लभन)–लिवाकर ले आकर। ल्याए–ले आए, ले आए हैं। उ० करि बिनती गिरजहि गृह ल्याए। (मा० १।८२।१) ल्यायो–ले आए। उ० अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। (मा० ६।८४।३) ल्यावों–ले आता हूँ।

व

वंक–(सं०वक्र)–टेढ़ा, वक्र।

वंचक–(सं०)–ठग, धूर्त।

वंचकता–(सं०)–ठगई, धूर्तता।

वंचन–(सं०)–धोखा, छल, ठगना।

वंचनता–दे० 'वंचना'।

वंचना–(सं०)–दे० 'वंचन'।

वंचित–(सं०)–१. ठगा हुआ, २. रहित, शून्य।

वंत–(सं०वर्त्ति) वाला। उ० नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। (मा०२।११३६।१)

वंति–दे० 'वंत', वाली।

वंतु–दे० 'वंत'। वाला। उ० जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए। (मा० १।८२।१)

वंदन–(सं०)–सिंदूर।

वंदि–(सं० वंदना)–१. वंदना करके, २. भाट।

वंदितं–दे० 'वंदित'। उ० मनोज वैरि वंदितं। (मा० ३। ४। छं० ५) वंदित–(सं०)–पूज्य, आदरणीय। उ० केशवं क्लेशहं केश-वंदित-पदद्वंद-मंदाकिनी-मूल भूतं। (वि० ४६) वंदिता–'वंदित' का स्त्रीलिंग। पूज्या। वंदिते–हे पूजनीया। उ० मुकुटमनि-वंदिते! लोकत्रयगामिनी। (वि० १८) वंदितौ–वंदना किए गए दोनों। उ० कोसलेन्द्र पद कञ्ज मंजुलौ कोमलावजमहेश वंदितौ। (मा० ७।१। श्लो० २)

वंदिनी–(सं०)–१.पूज्या, २.जो क़ैद में हो। 'वंदी' का स्त्रीलिंग।

वंदे–नमस्कार या वंदना करता हूँ। उ० भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ। (मा० १।१। श्लो० १)

वंद्य–(सं०)–वंदनीय, वंदना करने योग्य।

वंद्यते–(सं०)–वंदित होता है, वंदन किया जाता है। उ० यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते। (मा० १।१। श्लो० ३)

वंश–(सं०)–१. बाँस २. संतान, संतति, ३. कुल, परिवार, ४. बाँसुरी। उ० ३.भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य वंश-निकंदनं। (वि० ४५)

वंशी–(सं०)–१. मुरली, बासुरी, २. खान्दानवाला।

व(१)–(सं०)–१.वायु, २.समुद्र, ३.वरुण, ४.कल्याण, क्षेम।

व (२)–(सं० वा)–१.अथवा, किंवा, वा, २. और।

वक–(सं०)–एक पक्षी, बगला।

वकुल–(सं०)–मौलश्री का पेड़ या पुष्प।

वक्ता–(सं०)–बोलने या व्याख्यान देनेवाला।

वक्त्र–(सं० वक्त्र)–मुख। उ० वक्त्र-आलोक त्रैलोक्य-सोकापहं, माररिपु-हृदय-मानस-मरालं। (वि० ५१)

वक्रः–(सं०)–१. टेढ़ा, कुटिल, २. टेढ़ापन, कुटिलाई। उ० १. यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते। (मा० १। १। श्लो० ३)

वक्रोक्ति–(सं०)–१. टेढ़ी बात, ताना, व्यंग्य, २. एक अलंकार जिसमें काकु या श्लेष से अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।

वक्षस्थल–(सं० वक्षःस्थल)–छाती, सीना।

वचांसि–(सं० वचन)–बहुत से वचन। उ० विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे। (मा० ७।१२२ग)

वचन–(सं०)–१. वाणी, वाक्य, कथन, उक्ति, २. बात, बोल, ३. व्याकरण के अनुसार शब्द के रूप में वह विधान जिससे एकत्व और बहुत्व का बोध हो। उ० २. कंठ दर, चिबुक बर, वचन गंभीरतर, सत्य संकल्प सुर त्रास नासं। (वि० ५१)

वछलता–दे० 'वत्सलता'।

वज्र–(सं०)–१. इंद्र का एक अस्त्र, जो दधीचि की हड्डी का बना था। २. बिजली, ३. हीरा, ४.अनिरुद्ध का पुत्र, ५. माला, ६. फौलाद, ७. सेंहुड़।

वज्रसार–(सं०)–अत्यंत कठोर, हीरे का हीर।

वट–(सं०)–बरगद का पेड़। दे० 'बट'।

वटिका–(सं०)–टिकिया, बटी, गोली।

वटी–दे० 'वटिका'।

वटु–(सं०)–१. ब्रह्मचारी, २. बालक। उ० १. वटु वेष पेषन पेमपन व्रत नेम ससि सेखर गए। (पा० ४५)

वत्–(सं०)–समान, तुल्य।

वत–दे० 'वत्'। उ० युगल पद नूपुरा मुखर कलहंस वत। (वि० ६१)

वत्सलं–वात्सल्य रखनेवाले को। उ० १. नमामि भक्त वत्सलं। (मा० ३।४। छं० १) वत्सल–(सं०)–१. प्यार करनेवाला, प्रेमी, वत्सवत् प्यार करनेवाला, बच्चे के प्यार से भरा हुआ, २. दयालु, कृपालु।

वत्सलता–(सं०)–१. पुत्रप्रेम, स्नेह, छोह, २. दया, कृपा।

वद–(सं० वद्)–१. कहो, कह, बोलो, २. कहते हैं, ३. कहाकर। उ० १. मानि बिस्वास वद वेदसारं। (वि० ४६) वदति–१. कहता है, कहती है, २. कहती हुई। उ० १. वदति इति अमल मति दास तुलसी। (वि० ४७) वदामि–मैं कहता हूँ। उ० निश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे। (मा० ७।१२२) नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलांतरात्मा। (मा० ५। १। श्लो०२) वदि (१) १. कहकर, २.शर्त बदकर।

वदन–(सं०)–१. मुँह, मुख, २. अगला भाग, ३. कथन, बात कहना। उ०१.रवन गिरिजा, भवन भूधराधिप सदा, श्रवण कुंडल, वदन-छबि अनूपं। (वि० ११)

वदनि–(सं० वदन)–मुखवाली।

वदि (२)–(सं० अवदिन)–कृष्ण पक्ष।

वध–(सं०)–हत्या, जान से मार डालना।

वधिक–(सं० वधक)–हिंसक, व्याधा।

वन–(सं०)–१. जंगल, विपिन, २. उपवन, ३. जल, ४. आलय, घर। उ० १. प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा नमम्ले वनवास दुःखतः। (मा० २।१। श्लो० २)

वनचर–(सं०)–१. वन में रहनेवाले, जंगली, २. बंदर, ३. मछली आदि जलचर।

वनज–(सं०)–१. कमल, २. चंद्रमा।

वनदेव–(सं०)–वन का अधिष्ठाता देवता।

वनमाल–(सं०)–दे० 'बनमाल'।

वनमाला–दे० 'बनमाल'।

वनवास–(सं०)–बन या जंगल में रहना, वन में जाना। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः। (मा० २।१। श्लो० २)

वनिज–(सं० वाणिज्य)–व्यापार, रोज़गार।

वनिता–(सं०)–१. स्त्री, महिला, २. स्त्री, पत्नी।

वन्य–(सं०)–बनैला, जंगली, वनचर।

वपत–दे० 'बपत'।

वपन–(सं०)–१. बीज बोना, २. केश-मुंडन।

वपुस–(सं० वपुस्)–दे० 'वपु'।

वपुष–दे० 'वपु'। उ० वपुष ब्रह्मांऽसो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग रचित मन-दनुज-मय रूपधारी। (वि० ५८)

वपु–(सं० वपुस्)–शरीर, देह। उ० कंबु-कर्पूर-वपु-धवल निर्मल मौलि। (वि० ४९)

वमत–दे० 'बमत'।

वमन–(सं०)–१. उल्टी, कै, उगलना, २. उलटनेवाला।

वयं–(सं०)–हम लोग, हम सब। उ० धीर-गंभीर-मन-पीर कारक तत्र के वराका वयं बिगत सारा। (वि० ६०)

वय-(सं० वयस्)-अवस्था, उम्र ।
वयस-दे० 'वय' ।
वरं-श्रेष्ठ को । उ० वंदेऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपाल चूड़ामणिम् । (मा० ५।१। श्लो० १) वरः-श्रेष्ठ । उ० सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा । (मा० २।१। श्लो० १) वर-(सं०)-१. श्रेष्ठ, उत्तम, २. पति, दूल्हा, ३. सुन्दर, ४. वरदान, किसी देवता या बड़े से माँगा हुआ मनोरथ । उ० १. शोभाढ्यौ वर धन्विनौ । (मा० ४।१। श्लो० १) वरौ-दोनों श्रेष्ठ को । उ० माया मानुष-रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्म-वर्मौ हितौ । (मा० ४।१। श्लो० १)
वरजित-दे० 'वर्जित' ।
वरण (१)-(सं०)-१. चुनना, २. निमंत्रण देना, ३. विवाह करना ।
वरण (२)-(सं० वर्ण)-१. जाति, २. रंग ।
वरद-(सं०)-वर देनेवाला, जो वर दे ।
वरदान-(सं०)-वर, किसी देवता या बड़े का प्रसन्न होकर कोई सिद्धि या अभिलषित वस्तु देना ।
वरन (१)-(सं० वर्ण)-१. रङ्ग, २. जाति, ३. अक्षर ।
वरन (२)-(सं० वरण)-दे० 'वरण (१)' ।
वरनसंकर-दे० 'वर्णसंकर' ।
वरनि (१)-१. वर्णन करनेवाली, २. वर्णन करना ।
वरनि (२)-(सं० वर्ण)-रङ्गवाली ।
वरनि (३)-(सं० वरण)-पतिवाली, सधवा ।
वरहि-दे० 'वर्ही' ।
वराइ-दे० 'बराइ' ।
वराई-दे० 'बराई' ।
वराक-(सं०)-१. बेचारा, दीन, २. तुच्छ, नाचीज़ ।
वराट-(सं०)-कौड़ी ।
वराटिका-(सं०)-कौड़ी ।
वरासन-(सं०)-श्रेष्ठ आसन, उच्चासन ।
वरिष्ठ-(सं०)-श्रेष्ठ, पूजनीय ।
वरुण-(सं०)-१. जल के देवता, २. पानी, ३. सूर्य, ४. एक पेड़ । उ०१. ब्रह्मेंद्र-चंद्रार्क-वरुणाग्नि-वसु-मरुत-यम । (वि० १०)
वरुणा-(सं०)-एक नदी जो काशी के पास है ।
वरुणालय-(सं०)-समुद्र ।
वरूथ-(सं०)-१. सेना, २. समूह ।
वरूथिनी-(सं०)-सेना, फौज़ ।
वर्ग-(सं०)-१. एक ही प्रकार के जीव या चीज़ों का समूह, कोटि, श्रेणी, २. परिच्छेद, प्रकरण ।
वर्जित-(सं०)-मना किया हुआ, मना, निषिद्ध ।
वर्ण-(सं०)-१. रङ्ग, २. अक्षर, हर्फ, ३. ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि, ४. वर्ण, जाति । उ० ३. जयति वर्णाश्रमाचार-पर-नारि नर । (वि० ४४)
वर्णसंकर-(सं०)-दोगला, अपने पिता से इतर का पुत्र ।
वर्णन-(सं०)-१. बखानना, कहना, २. चित्रण, रँगना, ३. गुणकथन, तारीफ ।
वर्णानाम्-वर्णों का । उ० वर्णानामर्थ संघानां रसानां छंदसामपि । (मा०१।१।श्लो० १)
वर्णित-(सं०)-१. वर्णन किया हुआ, कथित, २. प्रशंसित ।
वर्त्तमान-(सं०)-उपस्थित समय, जो समय चल रहा है ।
वर्ति-(सं०)-१. बत्ती, दीपक की बत्ती, २. सुरमा लगाने की सलाई, ३. वाला, रहनेवाला । उ० ३. यन्माया-वशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा । (मा० १।१।श्लो०६)
वर्तिका-दे० 'वर्ति' । उ० १. असुभ-सुभकर्म घृत-पूर्ण दस वर्तिका । (वि० ४७)
वर्त्म-(सं०)-पंथ, राह, रास्ता ।
वर्द्धन-(सं०)-१. वृद्धि, उन्नति, २. उन्नति करनेवाला, बढ़ानेवाला । उ०२.सज्जनानंद वर्द्धन खरारी । (वि०५५)
वर्द्धित-(सं०)-बढ़ा हुआ, उन्नत ।
वर्धन-दे० 'वर्द्धन' ।
वर्म-(सं०)-१. कवच, ज़िरहबख्तर, २. घर । उ० १. वर्म-चर्मासि-धनु-बाण-तुणीरधर । (वि० ४०) वर्मौ-वर्म का द्विवचन । दे० 'वर्म' । उ० माया मानुष रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ । (मा० ४।१।श्लो० १) वर्मधारी-कवच धारी, ज़िरहबख्तर पहननेवाला ।
वर्य-(सं०)-श्रेष्ठ ।
वर्ष-(सं०)-१. साल, संवत, २. वर्षा ।
वर्षण-(सं०)-पानी बरसना, पानी पड़ना ।
वर्षा-(सं०)-१. बारिश, वृष्टि, २. वर्षाकाल, बरसात ।
वर्षासन-(सं०वर्ष + अशन)-वर्ष भर पर भोजन करनेवाला ।
वर्हि-दे० 'वर्ही' ।
वर्हिण-दे० 'वर्ही' ।
वर्ही-(सं० वर्हिन्)-मोर, मयूर ।
वलय-(सं०)-१. कंकण, २. चूड़ी, ३. वेष्टन ।
वलाहक-(सं०)-१. बादल, घटा, २. पर्वत ।
वलि-(सं०)-१. वलिदान, २. वलिदान की सामग्री, ३. एक दैत्य जिसे विष्णु ने वामन अवतार धारण कर छला था ।
वल्कल-(सं०)-छाल, बोकला ।
वल्मीकि-(सं०)-१. बाँबी, बिल, २. दीमकों का लगाया मिट्टी का ढेर, ३. वाल्मीकि मुनि ।
वल्लभं-प्रिय को, प्यारे को । उ० भजामि भाव वल्लभं । (मा० २।४। श्लो १०) वल्लभ-(सं०)-प्यारा, प्रियतम । उ० वल्लभ उरमिला के, सुलभ सनेहवस । (वि०३७) वल्लभां-वल्लभा को, प्यारी को, प्रिया को । उ० सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् । (मा० १।१। श्लो० ५) वल्लभा-(सं०)-प्यारी, स्त्री ।
वल्लि-(सं०)-लता, बँवर ।
वश-(सं०)-काबू, अधिकार । उ० यन्माया वशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा । (मा० १।१।श्लो० ६)
वशवर्त्ति-वशवर्ती, वशीभूत । उ० यन्माया वशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा । (मा० १।१।श्लो० ६)
वश्य-(सं०)-१. वश में, काबू में, २. वश में आने या रहनेवाला ।
वसंत-(सं०)-वर्ष की छः ऋतुओं में प्रधान जिसके अंतर्गत चैत और वैसाख के महीने आते हैं ।
वसन-(सं०)-वस्त्र, कपड़ा । उ० वर वसन नील नूतन तमाल । (वि० १४)
वसिष्ठ-दे० 'बसिष्ठ' ।

वसीले-(अर० वसीला)-१. अवलंब, सहारा, २. ज़रीये, द्वारा। उ० २. साहेब कहूँ न राम से, तोसे न वसीले। (वि० ३२)
वसुंधरा-(सं०) दे० 'वसुधा'।
वसु-(सं०)-१. आठ देवताओं का एक गण, २. आठ की संख्या, ३. रत्न, ४. ध्रुव, ५. सोम, ६. किरण, ७. कुबेर, ८. शिव, ९. विष्णु, १० सूर्य।
वसुधा-(सं०)-पृथ्वी, धरा।
वस्तु-(सं०)-पदार्थ, चीज, द्रव्य।
वस्त्रं-वस्त्र को, कपड़े को। उ० शोभाढ्यं पीत वस्त्रं सरसिजनयनं। (मा० ७।१।श्लो० १) वस्त्र-(सं०)-कपड़ा, वसन।
वह-वहन करनेवाला, ढोनेवाला।
वह-(सं० अव,* प्रा० ओ*) एक सर्वनाम जिससे तीसरे व्यक्ति या किसी अन्य की ओर संकेत किया जाता है। उ० वह सोभा समाज सुखकहत न बनइ खगेस। (मा० ७।१२ क) वहि-वही। उ० तुलसी जासों हित लगै वहि अहार वहि देह। (दो०३१३)
वहित्रं-(सं० वहित्थ)-नाव, जहाज़। उ० सर्वदा दास तुलसी-त्रासनिधि वहित्रं। (वि० ५०)
वह्नि-(सं०)-आग।
वांछा-(सं०)-इच्छा, अभिलाषा।
वांछित-(सं०)-चाहा हुआ, इच्छित।
वा (१)-(सं०)-अथवा, या। उ० तिनके सम बैभव वा विपदा। (मा० ७।१४।७)
वा (२)-(सं०अव*)-उस। उ०लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहिं। (क० ७।१७७) वाके-उसके। उ० वाके उए मिटति रजनि-जनित जरनि। (कृ० ३०) वाहि-उसे, उसको। उ०वाहि न गनत बात कहत करेरी सी। (क० ६।१०)
वाक्य-(सं०)-जुमला, बात। उ०वाक्य ज्ञान अत्यंत निपुन भवपार न पावै कोई। (वि० १२३)
वागीश-(सं०)-१. बृहस्पति, २. ब्रह्मा।
वाच-(सं० वाच्)-वाणी, भाषा।
वाचक-(सं०)-शब्द, अर्थबोधक। उ० सिद्धि साधक साध्य वाच्य वाचक रूप। (वि० ५३)
वाच्य-(सं०)-स्पष्ट अर्थ, अर्थ। उ० दे० 'वाचक'।
वाजी-(सं० वाजिन्)-घोड़ा।
वाटिका-(सं०)-बगीचा, उपवन।
वाणप्रस्थ-(सं० वानप्रस्थ)-तीसरा आश्रम।
वाणी-(सं०)-१. सरस्वती, शारदा, २. बोली, वचन। उ० १. मंगलानां चकर्तारौ वंदे वाणी विनायकौ। (मा० १।१।श्लो० १)
वात-(सं०)-वायु, हवा। उ० दे० 'वातजातं'।
वातजातं-(सं०)-वायु के पुत्र हनुमान को। उ० रघुपति प्रियभक्तं वातजातं नमामि। (मा० ५।१।श्लो० ३)
वात्सल्य-(सं०)-बड़ों का छोटों के प्रति प्रेम भाव, माता-पिता का संतति के प्रति प्रेम।
वाद-(सं०)-विवाद, शास्त्रार्थ।
वानर-(सं०)-बंदर। वानराणाम्-बंदरों के। उ० सकल गुण निधानं वानराणामधीशं रघुपति प्रियभक्तं वातजातं नमामि। (मा० ५।१।श्लो० ३)
वानीर-(सं०)-बेंत। उ०हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीर वर। (वि० १८)
वापी-दे० 'वापिका'।
वापिका-(सं०)-बावली, छोटा जलाशय।
वाम-(सं०)-१. बायाँ, २.कुटिल, टेढ़ा। उ०१.सीता समारोपित वामभागम्। (मा० २।१।श्लो० ३)
वामता-(सं०)-टेढ़ाई, कुटिलता।
वामदेवं-दे० 'वामदेव'। उ० १. काम मद मोचनं तामरसलोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं। (वि० १२) वामदेव-(सं०)-१. शंकर, २. एक ऋषि।
वामन-(सं०)-विष्णु का ५वाँ अवतार जो बलि को छलने के लिए हुआ था। उ०वेद विख्यात बर देस वामन बिरज। (वि० ५५)
वायस-(सं०)-कौआ, काक।
वारण-(सं०)-रोकना, निषेध, मनाही।
वारपार-(सं० वार+पार)-आदि अंत, ओर छोर। उ० जहँ धार भयंकर वार न पार न बोहित नाव न नीक खेवैगा। (क० ७।५२)
वाराणसी-(सं०)-काशी, बनारस।
वारापार-(सं० वार+पार)-अंत, ओर-छोर। उ० महिमा अपार काहू बोल को न वारापार। (क० ७।१२६)
वारि-(सं०)-पानी।
वारिचर-(सं०)-मछली आदि पानी के जीव।
वारिज-(सं०)-कमल।
वारिद-(सं०)-बादल, मेघ।
वारिधर-(सं०)-१. बादल, २. समुद्र।
वारियहिं-(?)-न्यौछावर करेंगे, उतारा करेंगे।
वारीश-(सं०)-समुद्र।
वारे-(?)-वाले। उ० बिकट भृकुटि कच घूघर वारे। (मा० १।२३३।२)
वाल्मीकि-(सं०)-आदि कवि, रामायण के प्रथम लेखक। पहले ये किरातों के संग में चोरी, लूट आदि करते थे। एक बार सप्तर्षियों के संदेश से इन्हें ज्ञान हुआ और तब से ये भगवान के भक्त हो गये।
वास-(सं०)-१. स्थान, रहने का स्थान, २. बू, महक, ३. रहना, निवास। उ० ३. दनवास दुःखतः। (मा०२।१।श्लो०२)
वासर-(सं०)-दिन।
वासव-(सं०)-१. इंद्र, २. कृष्ण।
वासवधनु-इंद्रधनुष।
वासा-(सं० वास)-निवास। दे० 'जनवासा'।
वासिनः-निवासी लोग। उ० विविक्त वासिनः सदा। (मा० ३।४।छं० ८) वासिन्ह-वासियों, निवासियों। वासी-(सं० वासिन्)-निवासी।
वासुदेव-(सं०)-वसुदेव के पुत्र कृष्ण।
वास्तव-(सं०)-यथार्थ, ठीक।
वाहिनी-(सं०)-१. नदी, २. सेना।
विंदु-(सं०)-१. बूँद, २. शुन्य, सिफ़र, ३.वीर्य।

विंदुमाधव-(सं०)-१. विष्णु, २. प्रयाग में स्थित एक मूर्ति।
विंध्य-(सं०)-विंध्याचल नाम का पर्वत।
वि-(सं०)-विशेषता या अलगाव का भाव रखनेवाला एक उपसर्ग। जैसे विकराल या वियोग आदि।
विकट-(सं०)-१. भयानक, भयंकर, २. क्रूर, भीषण, ३. दुखद।
विकराल-(सं०)-भयानक, भयंकर।
विकल-(सं०)-व्याकुल, आतुर।
विकलता-(सं०)-आकुलता, घबराहट।
विकल्प-(सं०)-१. संदेह, भ्रांति, २. अनिश्चय।
विकार-(सं०)-बिगड़ना ख़राबी।
विकाश-(सं०)-१. खिलना, २. प्रकाश।
विकास-(सं०)-१. उन्नति, बढ़ती, २. प्रसार, फैलाव।
विकृत-(सं०)-बिगड़ा हुआ, भद्दा।
विकृति-(सं०)-विकार, बिगड़ना।
विक्रमं-दे० 'विक्रम'। उ० प्रलंब बाहु विक्रमं। (मा० ३।४।छं० ३) विक्रम-(सं०)-१. बल, ताक़त, पराक्रम, २. विष्णु।
विक्षेप-(सं०)-१. फेंकना, २. व्याघात, बाधा।
विखंडन-(सं०)-१. बुरी तरह नष्ट करना, २. बुरी तरह नष्ट करनेवाला।
विख्यात-(सं०)-प्रसिद्ध, मशहूर।
विख्याति-(सं०)-कीर्ति, ख्याति।
विगत-(सं०)-१. बीता हुआ, २. रहित, शून्य।
विग्रहं-दे० 'विग्रह'। उ० २. विशुद्ध बोध विग्रहं। (मा० ३।४।छं० ४) विग्रह-(सं०)-१. लड़ाई, झगड़ा, २. शरीर, स्वरूप।
विघटन-(सं०)-तोड़ना, नष्ट करना।
विघटित-(सं०)-तोड़ा हुआ, नष्ट किया हुआ।
विघातक-(सं०)-नष्ट करनेवाला।
विघ्न-(सं०)-बाधा, व्याघात, अंतराय।
विचक्षण-(सं०)-चतुर, पंडित, निपुण।
विचल-(सं०)-चंचल।
विचार-(सं०)-भावना, ख़्याल।
विचित्र-(सं०)-अद्भुत, असाधारण, विलक्षण।
विच्छेद-(सं०)-१. अलगाव, अलग होना, वियोग, भेद, २. नाश।
विजन-(सं०)-निर्जन, जनशून्य।
विजय-(सं०)-१. जीत, फ़तह, २. भगवान के एक द्वारपाल का नाम।
विजयी-(सं० विजयिन्)-जयी, जीतनेवाला।
विज्ञ-(सं०)-पंडित, चतुर, प्रवीण।
विज्ञता-(सं०)-प्रवीणता, कुशलता।
विज्ञान-(सं०)-विशेष ज्ञान। उ० विज्ञान धामावुभौ। (मा० ४।१।श्लो० १) विज्ञानौ-दोनों विज्ञान स्वरूप, दोनों विज्ञान। उ० वंदे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ। (मा० १।१।श्लो० ४)
विज्ञानी-(सं० विज्ञानिन्)-विज्ञान जाननेवाला, विशेष ज्ञानी।

विट्-(सं०)-१. नीच, धूर्त, खल, २. जार, ३. भँड़ुआ।
विटप-(सं०)-पेड़।
विडंब-(सं०)-१. पाखंड, मक्कारी, धूर्तता, २. दुर्दशा।
विडंबना-(सं०)-१. नकल उतारना, हँसी उड़ाना, अपमान करना, २. निंदा, अपमान।
विड-दे० 'विट'।
विडाल-(सं०)-बिल्ली।
वितरण-(सं०)-१. दान, बाँटना, २. त्याग, ३. पार होना, तरण।
वितर्क-(सं०)-तर्क, विशेष रूप से तर्क।
वितान-(सं०)-१. मंडप, २. तंबू।
वित्त-(सं०)-धन।
विद-(सं०विद्) १. जाननेवाला, विज्ञ, २. ज्ञान।
विदग्ध-(सं०)-विद्वान्, पंडित।
विदित-(सं०)-ज्ञात, जाना हुआ।
विदिशा-(सं० विदिश्)-दिशाओं के कोण, आग्नेय, ईशान आदि चार कोण।
विदीर्ण-(सं०)-फाड़ा हुआ, चीरा हुआ।
विदुर-(सं०)-धृतराष्ट्र के छोटे भाई जिनकी उत्पत्ति एक दासी से हुई थी। ये बड़े धर्मात्मा थे। जब कौरवों पांडवों से मेल कराने के लिए कृष्ण हस्तिनापूर आए तो दुर्योधन का निमंत्रण अस्वीकार कर इन्हीं के घर रूखा-सूखा भोजन किया था।
विदुष-(सं०)-प्रवीण, पंडित, जानकार। विदुषी-(सं०)-विद्यावती स्त्री।
विदूषक-(सं०)-१. निंदक, २. मसखरा, भाँड़, नकल करनेवाला।
विदेश-(सं०)-परदेश, अन्य देश।
विदेह-(सं०)-जनक।
विद्-(सं०)-जाननेवाला।
विद्ध-(सं०)-छेदा हुआ।
विद्यमान-(सं०)-उपस्थित, मौजूद।
विद्या-(सं०)-१. ज्ञान, शास्त्रज्ञान, २. शिक्षा।
विद्याधर-(सं०)-एक प्रकार के देवता।
विद्यार्थी-(सं०)-छात्र, पढ़नेवाला।
विद्यालय-(सं०)-स्कूल, पाठशाला।
विद्युत्-(सं०)-बिजली। उ० मौलि संकुल जटामुकुट-विद्युच्छटा। (वि० १०)
विद्रुम-(सं०)-मूँगा, प्रवाल।
विद्वान्-(सं०)-पंडित, विद्यावान।
विधवा-(सं०)-पतिहीना स्त्री, राँड़।
विधाता-(सं०)-ब्रह्मा। विधात्री-ब्रह्मा की स्त्री।
विधान-(सं०)-नियम, परिपाटी, प्रणाली।
विधायक-(सं०)-विधान करनेवाला, नियामक।
विधि-(सं०)-१. वे कर्म जिनके करने की आज्ञा धर्मशास्त्र देते हैं। २. ब्रह्मा, ३. नियम, प्रणाली। विधिवत-नियमानुसार, यथोचित। विधौ-विधि में, रीति में। उ० मोहाम्भोधर पूगपाटन विधौ स्वः संभवं शंकरं। (मा० ३।१। श्लो० १)

विधुः-(सं०)-चंद्रमा, शशि । उ० भाले बालविधुर्गले च गरलं। (मा० २।१।श्लो० १)
विध्वंस-(सं०)-नाश, विनाश।
विनता-(सं०)-दक्ष की कन्या और कश्यप की स्त्री । गरुड़ इनके पुत्र थे।
विनय-(सं०)-विनती, शील, नम्रता।
विनष्ट-(सं०)-नष्ट, खराब।
विनश्वर-(सं०)-नष्ट होनेवाला।
विना-(सं०)-बिला, विहीन, नहीं । उ० याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वांतस्थमीश्वरम् । (मा० १।१।श्लो० २)
विनायक-(सं०)-गणेश । विनायकौ-गणेश की । उ० वंदे वाणी विनायकौ । (मा० १।१।श्लो० १)
विनाश -(सं०)-नाश, ध्वंस।
विनिंदक-(सं०)-विशेष निंदा करनेवाला।
विनिपात-(सं०)-१. पतन, अधःपात, २. दुःख, विषाद।
विनिमय-(सं०)-लेनदेन, अदल-बदल।
विनिश्चितं-(सं०)-निश्चित, तय । उ०विनिश्चितं बदामि ते न अन्यथा वचांसि में। (मा० ७।१२२ ग)
विनीत-(सं०)-नम्र, सुशील।
विनोद-(सं०)-१. हँसी, मज़ाक, २. मनोरंजन, ३. तमाशा, कौतुक।
विपक्ष-(सं०)-विमुख, विपरीत पक्ष।
विपत्ति-(सं०)-दुःख, आफ़त।
विपथ-(सं०)-बुरा रास्ता।
विपद-(सं० विपद्)-दुःख, आपदा।
विपरीत-(सं०)-उलटा, विरुद्ध, प्रतिकूल।
विपर्यय-(सं०) विरोध, उलटा, इधर-उधर।
विपश्चित-विद्वान्, बुद्धिमान्।
विपाक-(सं०)-परिणाम, फल।
विपिन-(सं०)-१. जंगल, वन, २. उपवन, वाटिका।
विपुल-(सं०) १. प्रचुर, अधिक, बहुत, २. गंभीर, अगाध। उ० १. कलिमल विपुल विभंजन नामः । (मा० ३।११।८)
विप्र-(सं०)-१. ब्राह्मण, द्विज, अजामिल, ३. शुक्राचार्य, ४. विश्वामित्र । उ० १. शोभाढ्यौ वर धन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृंद प्रियौ । (मा० ४।१। श्लो० १) विप्रेण-ब्राह्मण द्वारा, ब्राह्मण से । उ० रुद्राष्टकामिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये । (मा० ७।१०८। श्लो० ६)
विफल-(सं०)-निष्फल, व्यर्थ।
विबुध-(सं०)-देवता।
विभंग-(सं०)-१. नाश, नष्ट, २. उपल, पत्थर, ३. चंचल।
विभंजन-(सं०)-१. नाश करना, २. तोड़नेवाला, नष्टकर्ता। उ० २. कलिमल विपुल विभंजन नामः । (मा० ३।११।८)
विभक्त-(सं०)-बँटा हुआ।
विभव-(सं०)-१. संपदा, धन, ऐश्वर्य, २. मोक्ष।
विभा-(सं०)-१. प्रकाश, आभा, २. शोभा, ३. किरण।
विभाग-(सं०)-भाग, हिस्सा, खंड।
विभाति-(सं० विभा)-शोभित है, शोभायमान है। उ० यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके। (मा० २।१ श्लो० १)
विभीषण-(सं०)-रावण का भाई। यह राम का भक्त था और रावण की मृत्यु के बाद लंका का राजा बनाया गया था।
विभुं-विभु को, सर्वव्यापक को । उ० वेदांतवेद्यं विभुम्। (मा० ५।१ श्लो० १) विभु-(सं०)-सर्वव्यापी, प्रभु। विभो-हे विभु, हे भगवान्।
विभूति-(सं)-संपत्ति, ऐश्वर्य।
विभूषणः-विभूषित, शोभायमान । उ० सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा । (मा०२।१।श्लो० १) विभूषण-(सं०)-१. गहना, २. शोभा।
विभेद-(सं०)-दुर्भाव, फूट।
विभ्रम-(सं०)-घबराहट।
विमर्ष-(सं०)-विचार, परामर्श।
विमलं-दे० 'विमल' । उ० माया मोह मलापहं सुविमलं। (मा० ७। अंतिम श्लोक)
विमल-(सं०)-शुद्ध, साफ़, निर्मल।
विमलता-(सं०)-निर्मलता, स्वच्छता।
विमत्त-(सं०)अधिक उन्मत्त।
विमाता-(सं० विमातृ)-दूसरी माँ, मैभा।
विमात्र-(सं० विमातृ)-सौतेला।
विमान-(सं०)-हवाई जहाज़, वायुयान।
विमुख-(सं०) विरोधी, प्रतिकूल।
विमोह-(सं०)-विशेष मोह, अज्ञान।
वियत-(सं०)-आकाश।
वियोग-(सं०)-जुदाई, विरह।
वियोगिनि-विरह से पीड़ित स्त्री । वियोगी-(सं०वियोगिन्) बिरही, अपनी प्रियतमा से छूटा हुआ।
विरंचि-(सं०)-ब्रह्मा।
विरक्त-(सं०)-बैरागी, त्यागी, संसार से उदास।
विरचित-(सं०)-बनाया, निर्मित।
विरज-(सं०)-रजोगुण से रहित, शुद्ध, निर्दोष।
विरत-(सं०)-निवृत्त, विरक्त, वैरागी।
विरति-(सं०)-वैराग्य, त्याग, उदासीनता।
विरद-(सं०)-१. यश, कीर्ति, २. ख्याति, प्रसिद्धि।
विरस-(सं०)-रसहीन, नीरस।
विरह-(सं०)-वियोग, जुदाई।
विराग-(सं०)-वैराग्य, उदासीनता।
विराट (१)-(सं० विराट्)-ब्रह्म का वह रूप जिसका शरीर संपूर्ण विश्व है।
विराट (२)-(सं०)-१. एक देश, २. मत्स्य देश के राजा जिनके यहाँ अज्ञातवास के समय पांडव थे।
विराध-(सं०)-एक राक्षस जिसे लक्ष्मण ने मारा था।
विरुज-(सं०)-स्वस्थ, रोगरहित।
विरुद-(सं०)-यशगान, प्रशस्ति।
विरुद्ध-(सं०)-प्रतिकूल, विपरीत, विरोधी।
विरोध-(सं०)-१. शत्रता, झगड़ा २. बैर, अनैक्य।
विलंब-(सं०)-देर, अतिकाल।
विलंबित-(सं०)-जिसमें देर हुई हो।
विलक्षण-(सं०)-विचित्र, असाधारण।
विलसद्-(सं० वि+लसन) सुशोभित, सुंदर लगता हुआ,

शोभायमान। उ० केकीकंठाभनीलं सुरवर विलसद्विप्र पादाब्ज चिह्नं। (मा० ७।१।श्लो० १)
विलाप-(सं०)-रोना, रुदन।
विलास-(सं०)-१. प्रसन्न करनेवाली क्रिया, २. आनंद, ३. भोगविलास, ४. हिलना-डोलना, ५. हाव-भाव, नाज़-नखरा।
विलासिनी-(सं०)-१. विलास करनेवाली, नारी, २. वेश्या।
विलीन-(सं०)-१. नष्ट, २. लुप्त।
विलोचन-(सं०)-आँख, नेत्र।
विलोम-(सं०)-उलटा, विपरीत।
विलोल-(सं०)-१. विशेष चंचल, २. सुंदर, ३. लालची।
विवर-(सं०)-बिल, छेद।
विवरण-(सं०)-१. बयान, वर्णन, २. गुण कथन।
विवर्ण-(सं०)-रंगहीन, फीका, बदरंग।
विवर्ध-(सं०)-१. बढ़ा हुआ, २. बढ़ जाता है।
विवर्द्धन-(सं०)-१. वृद्धि करनेवाला, २. बढ़ना।
विवश-(सं०)-१. लाचार, मजबूर, २. वशीभूत, परवश।
विवाद-(सं०)-वाक्कलह, शास्त्रार्थ।
विवाह-(सं०)-ब्याह, शादी।
विविक्त-(सं०)-एकांत, निर्जन। उ० विविक्त वासिनः सदा। (मा० ३।४।छं० ८)
विविध-(सं०)-अनेक प्रकार का।
विविचार-(सं०)-विशेष विचार।
विबुध-(सं०)-देवता।
विवेक-(सं०)-ज्ञान, विचार, सत्यासत्य का विचार। उ० मूलं धर्मतरोर्विवेक धलधेः पूर्णेन्दुमानंददं। (मा० ३।१।श्लो० १)
विवेकी-(सं० विवेकिन्)-विचारवान, ज्ञानी।
विशद-(सं०)-१. विस्तीर्ण, विस्तृत, बड़ा, २. साफ़, स्पष्ट, व्यक्त, ३. सुंदर।
विशालं-दे० 'विशाल'। उ० १. चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। (मा० ७।१०८।श्लो० ४) विशाल-(सं०)-१. बड़ा, फैला हुआ, २. सुंदर, अच्छा, ३. प्रसिद्ध।
विशिख-(सं०)-तीर, बाण।
विशिखासन-(सं०)-धनुष।
विशुद्ध-(सं०)-अधिक शुद्ध। उ० विशुद्ध बोध विग्रहं। (मा० ३।४।छं० ५)
विशेष-(सं०)-१. जो सामान्य या साधारण न हो, २. अधिक।
विशोक-(सं०) १. शोक रहित, २. विशेष शोकयुक्त।
विश्राम-(सं०)-आराम, चैन।
विश्वंभर-(सं०)-विष्णु।
विश्वं-(सं०)-संसार, जगत्। उ० यन्माया वशवर्त्ति विश्व मखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा। (मा० १।१।श्लो० ६)
विश्वनाथ-(सं०)-१. संसार के स्वामी, २. महादेव, शंकर।
विश्वस्त-(सं०) विश्वास के योग्य।
विश्वात्मा-(सं०)-विष्णु।
विश्वास-(सं०)-१. यकीन, यतबार, २. भरोसा, सहारा। उ० १. भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ। (मा० १।१।श्लो० २)
विष-(सं०)-ज़हर, गरल।
विषम-(सं०)-१. जो सम न हो, असमान, २. कठिन, ३. तीव्र, ४. भयंकर, विकट। उ० १. निर्गुण सगुण विषम समरूपं। (मा० ३।११।६)
विषमता-(सं०)-१. असमानता, २. कठिनता, दारुणता।
विषय-(सं०)-१. वस्तु, चीज़, २. भोग-विलास, वासना, ३. जो इंद्रियों से जाना जाय।
विषयक-(सं०)-संबंधी, विषय का।
विषया-(सं०) भोग की वस्तुएँ।
विषयी-(सं० विषयिन्)-भोग में रत, विलासी, कामुक।
विषाण-(सं०)-सींग।
विषादः-विषाद का, दुखः का। उ० शमन सुकर्कश तर्क विषादः। (मा० ३।११।छं० ५) विषाद-(सं०)-दुःख, खेद।
विष्टा-(सं०)-मल, पाखाना।
विष्णु-(सं०)-परमात्मा का एक रूप जो सृष्टि का पालन करता है। इनकी स्त्री लक्ष्मी है। विष्णु के २४ अवतार कहे गए हैं। उ० विष्णु-पदकंज मकरंद-इव अंबु बर बहसि। (वि० १८)
विस्तर-दे० 'विस्तार'।
विस्तार-(सं०)-फैलाव, प्रसार।
विस्तृत-(सं०)-लंबा-चौड़ा, फैला हुआ।
विस्मय-(सं०)-आश्चर्य, अचंभा।
विस्मित-(सं) आश्चर्यान्वित।
विस्मृति-(सं०) भूल, बिसरना।
विस्व-(सं० विश्व)-संसार।
विहंग-(सं०)-१. पक्षी, चिड़िया, २. बादल, ३. बाण, ४. सूर्य, ५. चाँद, ६. कागभुशुंडि।
विहंगम-(सं०)-पक्षी, चिड़िया।
विहंगिनि-(सं०)-मादा पक्षी।
विहरण-(सं०)-घूमना, भ्रमण।
विहार-(सं०)-खेल, क्रीड़ा।
विहारी-(सं० विहारिन्)-विहार करनेवाला। विहारिणौ-दोनो विहार करनेवालों को। उ० सीताराम गुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ। (मा० १।१।श्लो० ४)
विहित-(सं०)-उचित, जिसका विधान किया गया हो।
विहीन-(सं०)-रहित, शून्य।
विह्वल-(सं०)-१. व्याकुल, घबराया, २. प्रसन्न।
वीचि-(सं०)-तरंग, लहर। उ० वितर्क वीचि संकुले। (मा० २।४।श्लो० ७)
वीणा-(सं०)-सितार की तरह का एक बाजा।
वीथिका-दे० 'वीथी'।
वीथी-(सं०)-गली, मार्ग, सड़क।
वीर-(सं०)-१. शूर, बहादुर, २. सहेली, सखी, ३. भाई, भ्राता।
वीरता-(सं०)-बहादुरी, शूरता।
वीरभद्र-(सं०)-शंकर का एक अनुचर।
वीर्य-(सं०)-१. बीज, बीया, २. शक्ति, पराक्रम, ३. प्रताप, तेज, ४. शुक्र, रेतस्।
वीर्यवान-(सं०)-शक्तिशाली।

वृंद-(सं०)-समूह, झुंड। उ० सुरारि वृंद भंजनं। (मा० ३।४।छं० ४)
वृंदाकानन-दे० 'वृंदावन'।
वृंदारक-(सं०)-देवता।
वृंदावन-(सं०)-मथुरा के पास का एक प्रसिद्ध तीर्थ।
वृक-(सं०)-१. भेड़िया, २. गीदड़, ३. कौवा, ४. क्षत्रिय, ५. आग।
वृकोदर-(सं०)-जिसके उदर में 'वृक' नाम की आग हो। भीम।
वृत्र-(सं०)-एक असुर जिसे इंद्र ने दधीचि की हड्डियों के वज्र से मारा था।
वृत्तांत-(सं०)-समाचार, हाल।
वृत्त-(सं०)-१. गोल, घेरा, २. पैदा हुआ, ३. श्लोक, ४. बीता, व्यतीत, ५. जीवनी, चरित्र, ६. दृढ़, कठिन।
वृत्ति-(सं०)-१. रोजी, आजीविका, २. मन का संसरण, मनोवृत्ति, ३. सूत्र का अर्थ, टीका।
वृथहि-व्यर्थ ही। उ० बड़ि बय वृथहि अतीति। (वि०२३४)
वृथा-(सं०)-व्यर्थ, बेमतलब। उ० सुख साधन हरि बिमुख वृथा। (वि० ८४)
वृद्ध-(सं०)-१. बूढ़ा, पुराना, जरठ, २. पंडित, ३. शिलाजीत।
वृद्धि-(सं०)-बढ़ती, लाभ, उन्नति।
वृश्चिक-(सं०)-बिच्छू।
वृष-(सं०)-१. बैल, साँड़, २. एक राशि, ३. चूहा, ४. अंडकोश।
वृषकेतु-(सं०)-महादेव।
वृषभ-(सं०)-बैल, साँड़। उ० दहन इव धूमध्वज वृषभयानं। (वि० १०)
वृषभानु-(सं०)-राधिका के पिता।
वृषली-(सं०)-१. दुराचारिणी, कुलटा, २. वह कुमारी जो रजस्वला हो गई हो।
वृषासुर-(सं०)-भस्मासुर नाम का राक्षस।
वृष्टि-(सं०)-वर्षा, बारिश।
वृष्णि-(सं०)-१. यादवंश, कृष्ण के वंश का नाम, २. उस वंश का आदि पुरुष।
वृहत्-(सं०)-बड़ा, भारी, महान्।
वेग-(सं)-१. प्रवाह, बहाव, २. तेजी, शीघ्रता, ३. बल, ताक़त।
वेणी-(सं०)-चोटी।
वेणु-(सं)-१. बाँस, २. बाँसुरी, ३. एक राजा का नाम।
वेतस-(सं०)-बेंत।
वेताल-(सं०)-१. एक प्रकार के भूत, पिशाच, २. शिव के गण, ३. द्वारपाल, संतरी।
वेत्ता-(सं०)-जाननेवाला, जानकार।
वेद-(सं०)-हिंदुओं के आदि धर्म-ग्रंथ जो संख्या में-ऋक्, साम, यजुर्, और अथर्वन्—चार हैं। उ० विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं। (मा० ७।१०८।१)
वेदांत-(सं०)-वेद के अंतिम भाग जिनमें उपनिषद तथा आरण्यक हैं। इनमें आत्मा, परमात्मा तथा जगत का निरूपण है। उ० वेदांत वेद्यं विभुम्। (मा० ५।१। श्लो० १)
वेद्यं-जानने योग्य को। उ० वेदांत वेद्यं विभुम्। (मा० ५।१। श्लो० १)
वेश-(सं०)-पोशाक, कपड़ा-लत्ता।
वेष-दे० 'वेश'।
वै (१) (?)-१. एक अव्यय जो 'निश्चय' या 'भी' या 'ही' अर्थ में लगाया जाता है। उ०१. गज बाजिघटा भले भूरि भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै। (क०७।४१)
वै-(२)-वे। दे० 'वह'।
वैकुंठ-(सं०)-१. स्वर्ग, २. विष्णु, ३. मोक्ष।
वैतरणी-(सं०)-एक पौराणिक नदी जो यम के द्वार पर है।
वैताल-(सं०)-भाट, वंदीजन।
वैदर्भि-(सं०)-विदर्भ नगरवाली, रुक्मिणी।
वैदिक-(सं०)-१. वेद सम्बन्धी, २. वेद विधि के अनुसार।
वैदेही-(सं०)-सीता।
वैद्य-(सं०)-दवा करनेवाला।
वैनतेय-(सं०) विनता की संतान, गरुड़।
वैभवं-दे० 'वैभव'। उ० प्रभोऽप्रमेय वैभवं। (मा० ३।४। छं० ३) वैभव-(सं०)-ऐश्वर्य, धन, संपदा।
वैराग्य-(सं०)-विषय-त्याग, विरक्ति। उ० वैराग्यांबुजभास्करं ह्यघघनध्वांतापहं तापहम्। (मा० ३।१। श्लो० १)
वैरि-दे०'वैरी'। उ० मनोज वैरि वंदितं। (मा०३।४।छं० ५)
वैरी-(सं०)-शत्रु, दुश्मन।
वैरोचन-(सं०)-राजा बलि के पिता का नाम।
वैशेषिक-(सं०)-छः दर्शनों में एक। इसमें पदार्थों का विचार और द्रव्यों का निरूपण है।
वैष्णव-(सं०)-विष्णु का भक्त।
वैसा-(वह + सा)-उसके समान।
व्यंग्य-(सं०)-१. ताना, चुटकी, बोली, २. विकलांग, ३. अंगहीन।
व्यंजन-(सं०)-१. पकवान, खाने की अच्छी अच्छी चीज़ें, २. स्वरहीन वर्ण, जैसे क् ख् आदि, ३. अंग, अवयव, ४. चिह्न, निशान।
व्यक्त-(सं०)-प्रकट, स्पष्ट।
व्यक्ति-(सं०) प्राणी, मनुष्य।
व्यग्र-(सं०)-व्याकुल, परेशान।
व्यतिक्रम-(सं०)-१. उलट-फेर, २. विघ्न, बाधा।
व्यतिरेक-(सं०)-१. अभाव, छोड़कर, बिना, २. भेद, अलगाव, पृथकता, ३. दोष, अपराध।
व्यतीत-(सं०)-बीता, गत, गुज़रा।
व्यथा-(सं०)-पीड़ा, कष्ट।
व्यथित-(सं०)-पीड़ित, दुखी।
व्यभिचार-(सं०)-लंपटता, छिनरई, दूसरे की स्त्री या दूसरे के पति के साथ संभोग।
व्यय-(सं०)-१. खर्च, २. नाश, क्षय।
व्यर्थ-(सं०)-निरर्थक, बेकार।
व्यलीक-(सं०)-१. अपराध, क़सूर, २. दुःख, ३. डाँट-डपट।

व्यवस्था-(सं०)-१. प्रबंध, २. धर्म-निर्णय, धर्मशास्त्र निर्णय, ३. धार्मिक कानून।
व्यवहार-(सं०)-१. बरताव, आपस का बरताव, २. रोजगार, ३. लेन-देन, ४. झगड़ा।
व्यसन-(सं०)-१. विपत्ति, आफत, २. विषयों के प्रति आसक्ति, ३ कुटेव, बुरी आदत, ४. किसी प्रकार का शौक।
व्यसनी-(सं० व्यसनिन्)-जिसे किसी चीज़ का व्यसन या शौक़ हो। नशेबाज़।
व्यस्त-(सं०)-१. व्याकुल, घबराया, २. काम में लीन।
व्याघ्र-(सं०)-बाघ, शेर। व्याघ्रिणी-शेरनी, बाघिन।
व्याध-(सं०)-१. शिकारी, बहेलिया, २. वाल्मीकि मुनि।
व्याधि-(सं०)-रोग, बीमारी।
व्यापकं-व्यापक को। उ० विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं। (मा० ७।१०८।१) व्यापक-(सं०)-जो दूर तक फैला हो, असीमित।
व्याप्त-(सं०)-समाया, फैला, घुसा।
व्याप्य-(सं०)-व्यापने योग्य।
व्याल-(सं०)-१. सर्प, २. हाथी, ३. दुष्ट, शठ, ४. शेषनाग। उ० १. काल व्याल कराल भूषणधरं। (मा० ६।१।श्लो० २)
व्यालफेन-(सं०)-अफ़ीम।
व्यालराट्-(सं०)-शेषनाग। उ० भाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्। (मा० २।१।श्लो० १)
व्यालारि-(सं०)-गरुड़।
व्याली-(सं०)-१. सर्पिणी, २. महादेव, शंकर।
व्यास-(सं०)-१. महाभारत लिखनेवाले ऋषि, २. खेत के बीच की या गोल लकीर।
व्योम-(सं०)-आकाश, गगन।
व्रजंति-(सं०)-जाते हैं। उ० व्रजंति नात्र संशयं। (मा० ३।४।छं०१२)
व्रज-(सं०)-मथुरा के आस पास का प्रदेश।
व्रजन-(सं०)-घूमना, अटन।
व्रण-(सं०)-घाव, फोड़ा।
व्रत-(सं०)-१. उपवास, लंघन, २. प्रण, अनुष्ठान, ३. संयम, परहेज़।
व्रतबंध-(सं०)-जनेऊ, यज्ञोपवीत।
व्रात-(सं०)-समूह, दल, झुंड।
व्रीड़ा-(सं०)-लाज, लज्जा, संकोच।

श

शं-(सं०)-१. कल्याण, मंगल, २. सुख, ३. शांति। उ० १. संतत शं तनोतु मम रामः। (मा० ३।११।८)
शंक-दे० 'शंका'।
शंकरं-दे० 'शंकर'। उ० सदा शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानंददं, शैलकन्यावरं, परमरम्यं। (वि० ११) शंकरः-शंकर, शिव। उ० खलानां दंड कृद्योऽसौ शंकरः शंतनोतु मे। (मा० ६।१। श्लो०३) शंकर-(सं०)-१.कल्याणकारी, २. शिव, महादेव, ३.शंकराचार्य। उ० २.वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्। (मा० १।१। श्लो० ३)
शंका-(सं०)-१. ख़ौफ़, खटका, २ आशंका, संशय, शक।
शंकित-(सं०)-डरा हुआ, भयभीत।
शंख-(सं०)-एक समुद्री जीव जो बड़े घोंघे की तरह का होता है और पूजा आदि के समय बजाया जाता है, कंबु। उ० शंखेन्द्वाभमतीव सुन्दरतनुं शार्दूल चर्माम्बरं। (मा० ६।१। श्लो० २)
शंबर-(सं०)-एक राक्षस जो इंद्र के बाण से मारा गया था।
शंबरारि-(सं०)-शंबर का शत्रु कामदेव, मदन।
शंबल-(सं०)-राहखर्च।
शंभु-(सं०)-१. शंकर, शिव, २. ब्रह्मा। उ० शंभु जायासि जय-जय भवानी। (वि०१५) शंभुना-शिव ने, शंकर ने। उ० यत्पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्री शंभुना दुर्गमं। (मा० ७।१३१। श्लो० १) शंभो-हे शंभु! हे शंकर! उ० प्रभो पाहि आपन्नामामीश शंभो। (मा० ७।१०८।८)
शकुन-(सं०)-१. किसी काम के समय दिखाई देनेवाले लक्षण जो उस कार्य के सम्बन्ध में शुभ या अशुभ माने जाते हैं। २. पक्षी, खग, ३. शुभ लक्षण।
शकुनि-(सं०)-पक्षी, चिड़िया।
शक्ति-(सं०)-१. बल, ज़ोर, सामर्थ्य, २. भगवती, देवी, ३. बरछी।
शक्र-(सं०)-१. इंद्र, मघवा, २. कुरैया का वृक्ष।
शक्रजित-(सं० शक्रजित्)-मेघनाद, इंद्रजीत। दे० 'इंद्र'।
शचि-(सं०) इंद्र की पत्नी, इंद्राणी।
शची-दे० 'शचि'। उ० शची पति प्रियानुजं। (मा० ३। ४।६)
शठ-(सं०)-१. दुष्ट, पाज़ी, २. ठग, कपटी, वंचक, ३. मूर्ख, बेवकूफ।
शत-(सं०)-सौ, एक सैकड़ा। उ० शिरसि संकुलित कलकूट पिंगल जटा-पटल शत कोटि विद्युच्छटाभं। (वि० ११)
शत्रु-(सं०)-१. बैरी, दुश्मन, रिपु।
शत्रुघ्न-(सं०)-राम के भाई। शत्रुघ्न सुमित्रा के पुत्र तथा लक्ष्मण के सगे भाई थे। इनका विशेष प्रेम भरत पर था। इनकी स्त्री का नाम श्रुतकीर्ति था।
शत्रुसूदन-(सं०)-शत्रु को नाश करनेवाला, शत्रुघ्न। उ० जयति दाशरथि समर-समरथ सुमित्रासुवन शत्रुसूदन राम भरत बंधो। (वि० ३८)
शत्रुहन-दे० 'शत्रुसूदन'।

शत्रुसाल–दे० 'शत्रुसूदन'।
शपथ–(सं०)–१. कसम, सौगंद, २.प्रतिज्ञा, प्रण, ३.शाप।
शब्द–(सं०)–१. ध्वनि, नाद, रव, वह जो कान से ग्राह्य हो। तर्कशास्त्र में शब्द गुण के २४ भेदों में एक है। २. बचन, बोल।
शब्दब्रह्म–(सं०)–१. वेद, श्रुति, २. ब्रह्मा। उ० १. शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुन शब्द-ब्रह्मैक परब्रह्म ज्ञानी। (वि० ५७)
शम–(सं०)–१. शांति, चैन, २. मोक्ष, ३. मन को विषयों की ओर से रोकना, ४. क्षमा, ५. उपचार, दवा। उ० १. सत्य-शम-दम-दया-दान-शीला। (वि० ४४)
शमनं–शमन करनेवाले को, नाशक को। उ० वंदे ब्रह्मकुलं कलंक शमनं श्री राम भूप प्रियम्। (मा० ३।१। श्लो० १) शमन–(सं०)–१. दूर करना, शांत करना, २. शमन करनेवाला, दूर करनेवाला। उ० २. जयति ऋषि-मख-पाल, शमन सज्जन शाल, शापवश-मुनि बधू-पापहारी। (वि० ४३) शमनि–संहार करनेवाली, शांत करनेवाली।
शयन–(सं०)–१. निद्रा लेना, सोना, २.शैया, सेज, पलंग, ३. सोनेवाले। उ० २.नील पर्यंक कृत शयन। (वि०१८)
शर–(सं०)–१. वाण, तीर, २. सरकंडा, सरपत। उ० १. चर्म असि शूल धर, डमरु शर चाप कर। (वि० ११) शरेण–(सं०)–बाण से, तीर से।
शरण–(सं०)–१. बचाव, रक्षा, २. घर, मकान, ३. आश्रम, सहारा, ४. शरणागत। उ० ४. दास तुलसी शरण सानुकूलं। (वि० १२)
शरद–(सं०)–एक ऋतु जिसमें क्वार और कार्तिक के महीने होते हैं।
शरम–(फ़ा० शर्म)–लाज, हया।
शरासनं–(सं०)–धनुष, चाप। उ० पाणौ बाण शरासनं कटि लसत्तूणीर भारं वरम्। (मा० ३।१। श्लो० २)
शरीरं–शरीर में। उ० मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं। (मा० ७।१०८।३) शरीर–(सं०)–देह, बदन, गात।
शर्करा–(सं०) -चीनी, शक्कर।
शर्म (१)–(फ़ा०)–लाज, लज्जा।
शर्म (२)–(सं०)–कल्याण, सुख। उ० अंभोजकर-चक्रधर तेज-बल शर्म-राशी। (वि० ६०)
शर्वः–(सं०)–संहारकर्ता। उ० शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्री शंकर पातु माम्। (मा० २।१। श्लो० १) शर्व–(सं०)–संहार करनेवाला, शंकर।
शर्वरी–(सं०)–१. रात, निशा, २. स्त्री, ३. हल्दी। उ० १. सघन-तम-घोर-संसार-भर-शर्वरी। (वि० ५५)
शर्वरीनाथ–दे० 'शर्वरीश'।
शर्वरीश–(सं०)–चंद्रमा। उ० मंगल-मुद-सिद्धि सदनि, पर्व शर्वरीश-बदनि। (वि० १६)
शव–(सं०)–लाश, मुर्दा।
शवर–(सं०)–कोल किरात आदि जंगली जातियाँ।
शवरी–(सं०)–प्रसिद्ध भीलनी स्त्री जिसने जूठे बेरों से राम का स्वागत किया था।
शशांक–(सं०)–चंद्रमा, शशि। उ० गंगा शशांक प्रियम्। (मा० ६।१। श्लो० २)
शशि–(सं० शशिन्)–चंद्रमा। उ० शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः। (मा० २।१। श्लो० १)
शशिन–दे० 'शशि'।
शशी–दे० 'शशि'।
शस्त–(सं०)–प्रशंसित।
शस्त्र–(सं०)–१. हथियार, आयुध, २. उपाय। उ० १. तप्त कांचन-वस्त्र शस्त्र विद्या-निपुन सिद्धसुर-सेव्य पाथोज-नाभं। (वि० ५०)
शांत–(सं०)–१. स्थिर, अचंचल, स्थिरचित्त, २. नम्र, विनीत, ३. नवरसों में से एक। उ० १. शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुण। (वि० ५७)
शांतये–शांति के लिए। उ० मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं स्वान्तस्तमः शांतये। (मा० ७।१३१। श्लो० १) शांति–(सं०)–शांत रहने का भाव, स्थिरचित्तता। उ०न तावत्सुखं शांति संताप नाशं। (मा० ७।६।७)
शांतिपाठ–(सं०)–किसी कार्य के आरम्भ में मंत्र आदि का देवताओं के आशीर्वाद के लिए पढ़ा जाना।
शाक–(सं०)–१.हरी तरकारी, सब्ज़ी, २.एक द्वीप का नाम।
शाकिनि–(सं०)–डाइन, चुड़ैल।
शाखा–(सं०)–डाली, डार।
शाखामृग–(सं०)–बंदर।
शाप–(सं०)–अभिशाप, सराप, श्राप। उ० शापवश-मुनि-बधू-पापहारी। (वि० ४३)
शायक–(सं०)–बाण, तीर।
शारङ्ग–(सं० सारंग)–विष्णु का धनुप। उ० जयति सुभग शारंग-सु-निखंग-सायक-सक्ति चारु-चर्मासि-वर वर्मधारी। (वि० ४४)
शारदी–(सं० शरद)–शरद ऋतु की।
शार्ङ्ग–(सं०)–विष्णु का धनुष।
शार्ङ्गधर–(सं०)–विष्णु।
शार्दूल–(सं०)–१. सिंह, बाघ, २. उत्तम, श्रेष्ठ, ३. राक्षस। उ० १. शंखेन्द्वाभमतीव सुन्दर तनुं शार्दूल चर्माबरं। (मा० ६।१। श्लो० २)
शाल–(सं०)–एक वृक्ष।
शालि–(सं०)–धान।
शाली–(सं० शालिन्)–वाला, भरा।
शालूर–(सं०)–मेढक।
शाल्मली–(सं० शाल्मलि)–सेंमल वृक्ष।
शाश्वतं–शाश्वत को, अमर को। उ० जगद्गुरुं च शाश्वतं। (मा० ३।४। श्लो० ६) शाश्वत–(सं०)–१. लगातार, २. नित्य, अमर।
शासन–(सं०)–१. आज्ञा, आदेश, २. राज्य, अधिकार, ३. दंड।
शास्त्र–(सं०)–धर्मग्रंथ, कुछ लोग न्याय, सांख्य, योग आदि छः दर्शनों को शास्त्र तथा कुछ लोग शिक्षा, कल्प, व्याकरण अर्थशास्त्र आदि १८ को शास्त्र कहते हैं।
शिंशपा–(सं०)–१. शीशम का पेड़, २. अशोक का वृक्ष, ३. शरीफा।
शिक्षा–(सं०)–१. सीख, उपदेश, २. विद्या, पढ़ाई।
शिखर–(सं०)–चोटी, श्रृंग।

शिखा–(सं०)–चोटी ।
शिखी–(सं०)–मोर ।
शिथिल–(सं०)–१. ढीला, २. खुला, ३. सुस्त, थका, ४. निर्बल, ५. विह्वल ।
शिर–(सं०)–सिर, कपाल । शिरसि–सिर पर, कपाल पर । उ० शिरसि संकुलित कलजूट पिंगल जटा । (वि० ११)
शिरा–(सं०)–नाड़ी, नस ।
शिरोमणि–(सं०)–उच्च, श्रेष्ठ ।
शिला–(सं०)–१. पत्थर, पाषाण, २. गौतमी, अहल्या ।
शिलीमुख–(सं०)–१. तीर, २. भौंरा, भ्रमर ।
शिल्प–(सं०)–कला, विद्या, कारीगरी, हुनर ।
शिवः–दे० 'शिव' । उ० २ शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्री शंकरः पातुमाम् । (मा० २।१। श्लो० १) शिव–(सं०)–१. शंकर, महादेव, २. कल्याण करनेवाले, ३. मंगल, कल्याण । शिवकरं–कल्याणकारी । उ० पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्ति-प्रदं । (मा० ७। अंतिम श्लो०)
शिवि–(सं०)–एक पौराणिक धर्मात्मा राजा जो अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं ।
शिविर–(सं०)–छावनी, पड़ाव, रावटी, तंबू ।
शिशुपाल–(सं०)–एक राजा जो कृष्ण की बूआ के पुत्र थे ।
शिष्ट–(सं०)–सदाचारी, शीलवान, सभ्य ।
शिष्य–(सं०)–जो शिक्षा ग्रहण करे, विद्यार्थी, चेला ।
शीघ्र–(सं०)–तुरंत, सत्वर, जल्द ।
शीत–(सं०)–१. ठंडा, सर्द, २. जाड़ा, सर्दी ।
शीतल–(सं०)–१. ठंडा, सर्द, २. शांत, स्थिर ।
शीर्ष–(सं०)–शीश, सर, माथा ।
शील–(सं०)–१.उत्तम स्वभाव, शिष्टता, २. लज्जा, संकोच, ३. वाला, प्रवृत्त । उ० ३. कृपालु शील कोमलं । (मा० ३।४।छं० १)
शीश–(सं०)–सर, कपाल । उ० सहस शीशावली स्रोत सुरस्वामिनी । (वि० १८)
शुंभ–(सं०)–एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था । उ० शुंभ निःशुंभ कुंभीश रणकेशरिणि । (वि० १५)
शुक–(सं०)–१. तोता, २. शुकदेव मुनि ।
शुक्र–(सं०)–१. शुक्रवार, २. शुक्राचार्य जो दैत्यों के गुरु थे । ३. वीर्य, ४. अग्नि ।
शुक्ल–(सं०)–श्वेत, सफेद ।
शुचि–(सं०)–१. पवित्र, शुद्ध, २. सफेद, ३. निष्कपट, छलहीन । उ० १. पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनकसुता-वरं । (वि० ४५)
शुचिता–(सं०)–पवित्रता ।
शुद्ध–(सं०)–१. स्वच्छ, पवित्र, २. निर्दोष, अवगुण रहित, ३. निष्कपट, छलरहित ।
शुद्धता–(सं०)–पवित्रता ।
शुद्धि–(सं०)–शोधन, सफाई ।
शुन्य–(सं०)–रिक्त, खाली ।
शुभं–मंगलमय, शुभ । उ० माया-मोह मलापहं सुविमलं प्रेमांबुपूरं शुभम् । (मा०७।अंतिम श्लो०) शुभ–(सं०)–१. मंगल, कल्याण, भला, २. श्रेष्ठ, उत्तम, ३. छाग, बकरा ।
शुभ्र–(सं०)–१. निर्मल, स्वच्छ, सफेद, २. पवित्र, शुद्ध ।
शुषेण–(सं०)–एक वैद्य जिन्होंने शक्ति लगने के बाद लक्ष्मण का उपचार किया था । वालि की स्त्री तारा इनकी पुत्री थी ।
शुष्क–(सं०)–सूखा, नीरस ।
शूकर–(सं०)–बराह, सूअर । शूकरी–मादा सूअर ।
शूद्र–(सं०)–चौथा वर्ण ।
शूर–(सं०)–वीर, बहादुर ।
शूरता–(सं०)–वीरता, बहादुरी ।
शूर्प–(सं०)–सूप, छाज ।
शूर्पणखा–(सं०)–एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहन थी । लक्ष्मण ने इसके नाक कान काटे थे । इसके नाखून सूप की तरह थे ।
शूल–(सं०)–१. बरछे की तरह का एक अस्त्र, २. दर्द, ३. झंडा, पताका, त्रिशूल । उ० १. चर्म-असि शूलधर । (वि० ११) २. दे० 'शूलिनं' ।
शूलिनं–(सं०)–त्रिशूलधारण करनेवाले । उ० लोकनाथं शोकशूल निर्मूलिनं, शूलिनं मोहतम-भूरि-भानुं । (वि०१२) शूलिन्–(सं०)–त्रिशूलधारी शंकर ।
श्रृंखला–(सं०)–१. जंजीर, २. बेड़ी, ३. क्रम, सिलसिला, ४. कतार, श्रेणी । उ० २. मोह श्रृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे । (वि० ११४)
श्रृंग–(सं०)–१. सींग, २. पहाड़ की चोटी, शिखर ।
श्रृंगवेरपुर–(सं०)–एक प्राचीन स्थान जहाँ राम के समय में निषादराज की राजधानी थी । यह स्थान प्रयाग के पास है ।
श्रृंगार–(सं०)–१. बनाव सजना, साज-बाज । शरीर के श्रृंगार १६ प्रकार के कहे गये हैं २. काव्य का एक रस । उ० २. जयति श्रृंगार-सर-तामरस-दाम-द्युति देह । (वि० ४४)
श्रृंगी–(सं० श्रृंगिन्)–एक प्रसिद्ध ऋषि जो लोमश के शिष्य थे । इन्हीं के शाप से परीक्षित को सर्प ने काटा था ।
श्रृगाल–(सं०)–गीदड़, सियार ।
शेखर–(सं०)–१. सिर, माथा, कपाल, २. मुकुट, किरीट, ३. सिर पर रक्खी जानेवाली माला ।
शेष–(सं०)–१. बची, बाकी, २. सर्पराज जिनके सहस्र फन कहे गये हैं । ३. लक्ष्मण, ४. बलराम । उ० २. शेष सर्वेश आसीन आनंदवन, प्रणत-तुलसीदास-त्रासहारी । (वि० ११)
शैल–(सं०)-पर्वत, पहाड़ । उ० हेमशैलाभदेहं दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् । (मा० ५।१।श्लो० ३)
शैलकुमारी–(सं०)–पार्वती ।
शैव–(सं०)–शिव का भक्त ।
शैवाल–(सं०)–सेवार ।
शैशव–(सं०)–लड़कपन ।
शोक–(सं०)–चिंता, सोच, खेद, दुःख । उ० जरत सुर

असुर नरलोक शोकाकुलं मृदुलचित अजित कृत गरल पानं। (वि० ११)
शोण-(सं०)-१. शोणभद्र नाम का महानद, २. एक फूल, ३. लाल रंग।
शोणभद्र-(सं०)-नदी विशेष।
शोणित-(सं०)-खून, रुधिर।
शोथ-(सं०)-सूजन, फूलना।
शोध-(सं०)-१. खोज, अनुसंधान, तलाश, २. बदला, ३. ऋण चुकाना।
शोभा-(सं०)-सुंदरता, सौंदर्य, कांति, दीप्ति। उ० आज बिबुधापगा-आप पावन परम मौलिमालेव शोभा विचित्रं। (वि० ११)
शोषक-(सं०)-१. शोषण करनेवाला, सोखनेवाला, २. वायु, ३. सूर्य।
शौर्य-(सं०)-१. शूरता, वीरता, २. बल, पराक्रम।
श्मशान-(सं०)-मरघट, मसान।
श्याम-(सं०)-१. काला, साँवला, २. कृष्ण, ३. रात, ४. हल्दी। उ० १. श्याम-नव-तामरस-दाम-द्युति वपुष-छबि। (वि० ६०)
श्यामकर्ण-(सं०)-काले कान का घोड़ा।
श्यामल-(सं०)-श्यामवर्ण, साँवला। उ० नीलांबुज श्यामलकोमलांगं। (मा० २।१।श्लो० ३)
श्यामा-(सं०)-१. सोलह वर्षीया सुंदरी, २. पक्षी-विशेष, ३. यमुना नदी, ४. रात, ५. साँवली।
श्येन-(सं०)-बाज़।
श्रंग-दे० 'श्रृंग'।
श्रद्धा-(सं०)-आदर, विश्वास मिश्रित सम्मान का भाव। उ० भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ। (मा० १।१ श्लो० २)
श्रम-(सं०)-१. परिश्रम, मेहनत, २. थकावट, ३. कष्ट। उ० ३. भवश्रम सोषक तोषक तोषा। (मा० १।४३।२)
श्रमहारी-थकावट दूर करनेवाला। उ० तैं मैनाक होहि श्रमहारी। (मा० ५।१।५)
श्रमकण-दे० 'श्रमबिंदु'।
श्रमबिंदु-(सं० श्रमबिंदु)-पसीना। उ० भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। (मा० १।२३३।२)
श्रमित-(सं०)-थका, श्रांत। उ० श्रमित भूप निद्रा अति आई। (मा० १।१७०।१)
श्रवण-(सं०)-१. कान, २. सुनना, ३. टपकना, गिरना, ४. कान से भगवान के गुण सुनना। इसका नवधा भक्ति में स्थान है। उ० २. जयति रामायण श्रवण-संजात-रोमांच लोचन सजल-सिथिल बानी। (वि० २९)
श्रवन-दे० 'श्रवण'। उ० १. श्रवन-नयन-मन मग लगे। (वि० २७६) ४. श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। (मा० ३। १६।४)
श्रवनपूर-(सं० श्रवण+फुल्ल)-कान का गहना, कर्णफूल। उ० जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ। (मा० ६।१४।३)
श्रांत-(सं०)-थका, श्लथ।
श्राद्ध-(सं०)-पिंडदान, मृत्यु के बाद का शास्त्रोक्त तर्पण आदि।
श्राप-(सं० शाप)-सराप, अभिशाप। उ० सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। (मा० १।१२५।२)
श्री-(सं०)-१. लक्ष्मी, २. संपत्ति, धन, ३. कल्याण, ४. सौंदर्य, ५. वाणी। उ० १. श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी। (मा० १।१३०।२) ४. सकल-सौभाग्य-संयुक्त त्रैलोक्य श्री। (वि० ६१)
श्रीखंड-(सं०)-चंदन। उ० बेनु करील श्रीखंड बसंतहिं दूषन मृषा लगावै। (वि० ११४)
श्रीनिवास-(सं०)-१. विष्णु, २. वैकुंठ। उ० १. जहँ बस श्रीनिवास श्रुति माथा। (मा० १।१२८।२)
श्रीपति-(सं०)-विष्णु। उ० विश्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति बेद-बिदित यह लीख। (वि० ९८)
श्रीफल-(सं०)-१. बेल, सिरफल, २. नारियल। उ० १. श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल। (वि० १४)
श्रीमत्-(सं०)-श्रीमान्, शोभायुक्त। उ० श्रीमच्छम्भुमुखेंदु सुंदरवरे संशोभितं सर्वदा। (मा० ४।१। श्लो० २)
श्रीरंग-दे० 'श्रीरमण'। उ० देहि सतसंग निज अंग श्रीरंग, भवभंग-कारन, सरन-सोकहारी। (वि० ५७)
श्रीरमण-(सं०)-लक्ष्मी के पति, विष्णु।
श्रीरमन-दे० 'श्रीरमण'। उ० तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद। (वि० २०३)
श्रीवत्स-(सं०)-१. विष्णु के वक्षस्थल का चिह्न, २. विष्णु। उ० १. सुभग श्रीवत्स केयूर कंकनहार किंकिनी-रटनि कटितट रसालं। (वि० ५०)
श्रीहत-तेजहीन, निष्प्रभ। उ० श्रीहत भए भूप धनु टूटे। (मा० १।२६३।३)
श्रुत-(सं०)-सुना हुआ। उ० तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। (मा० १।११४।३)
श्रुति-(सं०)-१. वेद, २. कान, ३. सुनना, ४. ध्वनि, शब्द। उ० १. जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा। मा० १।१२८।२) २. कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। (मा० १।२४ ३।२)
श्रेणि-दे० 'श्रेणी'।
श्रेणी-(सं०)-१. पंक्ति, कतार, २. समूह, ३. गली, बीथी।
श्रेनि-दे० 'श्रेणी'।
श्रेनी-दे० 'श्रेणी'। उ० १. जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी। (मा० १।२३२।१) २. देव दनुज किन्नर नर श्रेनी। (मा० १।४४।२)
श्रेयस्-(सं०)-कल्याणकर। श्रेयस्करीं-कल्याण करनेवाली को। उ० सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्। (मा० १।१।श्लो०५)
श्रेष्ठ-(सं०)-१. उच्च, अच्छा, उत्तम, २. जेठ, बड़ा।
श्रोता-(सं० श्रोतृ)-सुननेवाला, सुनवैया। उ० ते श्रोता बकता समसीला। (मा० १।३०।३)
श्रोत्र-(सं०)-कान, कर्ण।
श्लाघा-(सं०)-१. प्रशंसा, तारीफ़, २. इच्छा, चाह।
श्लेष-(सं०)-१. मिलाव, संयोग, २. एक अलङ्कार।

श्वपच–(सं०)–चांडाल, डोम। उ० श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरिलोक-गत नाम बल विपुल मति मलिन परसी। (वि० ४६)

श्वशुर–(सं०)–पति या पत्नी का पिता।

श्वास–(सं०)–१. साँस, दम, २. प्राण, प्राणवायु।

श्वेत–(सं०)–उज्ज्वल, शुक्ल, सफ़ेद।

ष

ष–(सं०)–१. श्रेष्ठ, उत्तम, २. केश, बाल, ३. हृदय, उर।

षट–दे० 'षट्'। उ० मागेसि नींद मास षट केरी। (मा० १।१७७।४) षटविकार–(सं० षट्+विकार)–काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अहंकार, ये छः विकार कहे जाते हैं। उ० षट विकार जित अनघ अकामा। (मा० ३।४५।४) षटरस–(सं० षट+रस)–मीठा, तीता, खट्टा, खारा, कड़ुवा और कसैला ये छः व्यंजन के रस हैं। उ० षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै। (वि० १२३)

षटपद–(सं० षट्पद)–भ्रमर, भौंरा।

षटबदन–(सं० षट्वदन)–महादेव के पुत्र कार्तिकेय। उ० तब जनमेउ षटबदन कुमारा। (मा० १।१०३।४)

षट्–(सं०)–गिनती में ६, छः।

षडंग–(सं० षट्+अंग)–वेद के ६ अंग - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद।

षडंघ्रि–(सं०)–जिसके छः चरण हों। भ्रमर, भौंरा। उ० चिक्कन चिकुरावली मनो षडंघ्रि-मंडली। (गी० १।२२)

षडवर्ग–दे० 'षड्वर्ग'।

षडानन–(सं०)–दे० 'षटबदन'। उ० जय गजबदन षडानन माता। (मा० १।२३५।३)

षड्वर्ग–छः विकार। दे० 'षटविकार'। उ० छठि षड्वर्ग करिय जय जनकसुता पति लागि। (वि० २०३)

षड़ानन–दे० 'षडानन'।

षण्मुख–दे० 'षन्मुख'।

षन्मुख–(सं० षट्+मुख)–कार्तिकेय। दे० 'षटबदन'। उ० षन्मुख जन्मु सकल जगजाना। (मा० १।१०३।४)

षष्ठ–(सं०)–छठाँ, छठवाँ।

षीर–(सं० क्षीर)–१. दूध, २. पानी।

षेम–(सं० क्षेम)–कुशल, कल्याण।

षेमा–दे० 'षेम'।

षोडश–(सं०)–सोलह, १६।

षोड़स–(सं० षोड़श)–सोलह, १६। उ० राकापति षोड़स उवहिं, तारागन समुदाइ। (दो० ३८६)

स

सं–(सं० सम्)–१. सम्यक् प्रकार से, २. कल्याण, भला।

संक–(सं० शंका)–१. संदेह, शंका, २. भय, डर। उ० १. सोच बिकल कपि भालु सब, दुहूँ दिसि संकट संक। (प्र० ५।१।२)

संकट–(प्रा०)–विपत्ति, आफ़त, मुसीबत, क्लेश, दुःख। उ० जयति गतराज-दातार, हरतार-संसार-संकट, दनुज-दर्पहारी। (वि० २८) संकटनि–संकटों का समूह। उ० सोच संकटनि सोच संकट परत, जर। (क० ७।७५) संकटहारी–संकटों को हरनेवाला, दुःखों को दूर करने-वाला। उ० सुमिरे संकटहारी, सकल सुमंगलकारी, पालक कृपालु आपने पत के। (वि० ३७)

संकरं–दे० 'संकर'। संकर (१)–(सं० शंकर)–१. कल्याण-कारी, २. शिव, महादेव। उ० २. संकर सरोष महामारि ही तें जानियत। (क० ७।१८३) संकरहिं–महादेव को, शंकर को। उ० जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा, हरिहि श्री सागर दई। (जा० १६२) संकरहिं–१. शंकर से, २. शिव को। उ० १. तहँहुँ सती संकरहि बिबाहीं। (मा० १।६८।३)

संकर (२)–(सं०)–मिला हुआ, दो के मिश्रण से बना हुआ।

संकलप–दे० 'संकल्प'। उ० २. कन्यादान बिधान संकलप कीन्हेउ। (जा० १६१)

संकलित–(सं०)–१. इकट्ठा किया हुआ, संगृहीत, २. चुना हुआ। उ० १. दीनता प्रीति संकलित मृदुबचन सुनि। (गी० ५।४३)

संकल्प–(सं०)–१. दृढ़ विचार, पक्का इरादा, प्रण, प्रतिज्ञा, इकरार, २. किसी पुण्य कार्य को आरंभ करने के पूर्व एक विशिष्ट मंत्र का उच्चारण करते हुए अपना दृढ़ विचार प्रकट करना।

संकल्पि–संकल्पपूर्वक दान करके। दे० 'संकल्प'। उ० संकल्पि सिय रामहिं समर्पी सील सुख सोभा मई। (जा० १६२)

संकष्ट–(सं० सं+कष्ट)–सब प्रकार का कष्ट, आपदा, क्लेश। उ० भक्त संकष्ट अवलोकि पितुवाक्य-कृत गमन किय गहन वैदेहि-भर्त्ता। (वि० ५८)

संका–(सं० शंका)–१. संशय, संदेह, २. भय, डर। उ० २. देखि प्रताप न कपि मन संका। (मा० ५।२०।४)
संकाश–(सं०)–समान, सदृश। उ० तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। (मा० ७।१०८।३)
संकास–दे० 'संकाश'।
संकि–(सं० शंका)–शंकित होकर, डरकर। उ० साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर ते करनी मुख मोरे। (क० ७।४८)
संकित–(सं० शंकित)–डरा हुआ, शंकित। उ० साहिब महेस सदा, संकित रमेस मोहिं। (क० ५।२१)
संकुचित–(सं०)–सिकुड़ा हुआ, संकोच युक्त। उ० सेष संकुचित संकित पिनाकी। (क० ६।४४)
संकुल–(सं०)–१. संकीर्ण, घना, २. भरा हुआ, आपूर्ण, ३. पूरा, समस्त, बिलकुल, ४. युद्ध, लड़ाई, ५. भीड़, ६. असंगत वाक्य। उ० २. काल कलि-पाप-संताप-संकुल-सदा-प्रनत-तुलसीदास-तात-माता। (वि० २८)
संकुलित–(सं०)–१. भरा हुआ २. घना, ३. बँधा हुआ। उ० ३. शिरसि संकुलित कलकूट पिंगल जटा-पटल शत-कोटि विद्युच्छटाभं। (वि० ११)
संकुला–(सं०)–भरी हुई। संकुले–भरे हुए में, पूर्ण में। उ० वितर्क बीचि संकुले। (मा० ३।४।छं०७)
संकेत–(सं०)–इशारा, इंगित। उ० सुरुष जानकी जानि कपि, कहे सकल संकेत। (प्र० ५।३।१)
सँकेला–(सं० सकल)–एकत्र किया। उ० प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला। (मा० २।३०२।२) सँकेलि–एकत्र करके, बटोर करके। उ०बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी। (मा० २।२३७।३)
सँकोच–(सं०)–१. सिकुड़ने की क्रिया, खिंचाव, २. लज्जा, शर्म, ३. भय, ४. आगा-पीछा, हिचकिचाहट, ५. कमी, न्यूनता। उ०५.नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच। (मा० २।२५२)
सँकोची–१. संकोच करनेवाला, लज्जायुक्त स्वभाववाला, २. संकोच में डाल दिया। उ० १. चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची। (मा० २।२७०।२) २. बार बार गहि चरन सँकोची। (मा० २।१२।३)
सँकोचु–दे० 'सँकोच'।
सँकोचू–दे० 'सँकोच'। उ० २. छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू। (मा० २।४०।४)
संक्षेप–(सं०)–थोड़े में, मुख़्तसर। संक्षेपहिं–थोड़े में, थोड़े में ही।
संख–दे० 'शंख'। उ० झाँझि मृदंग संख सहनाई। (मा० १।२६३।१)
सँग–दे० 'संग (१)'। उ० १. खग मृग मुदित एक सँग बिहरत सहज बिषम बड़ बैर बिहाई। (गी० २।४६)
संग–(१)–(सं०)–१. साथ, २.सोहबत, मेल, ३. विषयों के प्रति होनेवाला अनुराग, ४. वासना, आसक्ति, ५. वह स्थान जहाँ नदियाँ मिलती हैं। उ० १. पुरवासी नृप रानिन संग दिये मन। (जा० ३१) ४. नक्र-रागादि-संकुल मनोरथ सकल संग संकल्प-बीची-विकारम्। (वि० ५८)
संग (२)-(फ़ा०)-पत्थर।
संगत–(सं० संगति)–१. साथ, मित्रता, २. उचित बात।
संगति–(सं०)–१. संग, साथ, २. मैत्री, दोस्ती। उ० १. प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी। (मा० १।१०।छं० १)
संगम–(सं०)–१. दो वस्तुओं के मिलने की क्रिया, मिलाप, संयोग, २. नदियों के मिलने का स्थल। उ० १. संगम करहिं तलाव तलाईं। (मा० १।८५।१)
संगमु–दे० 'संगम'। उ० २. संगमु सिंहासन सुठि सोहा। (मा० २।१०५।४)
संगा–दे० 'संग (१)'। उ० ४. बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा। (मा० ३।८।४)
संगिनि–साथ देनेवाली। उ० मातु बिपति संगिनि तैं मोरी। (मा० ५।१२।१)
संगिनौ–मित्र, संगी, साथी। उ० जानकी कर सरोज लालितौ चिंतकस्य मनभृंग संगिनौ। (मा० ७।१।श्लो०२)
संगी–(सं० संग)–साथी, मेली, मित्र। उ० निज संगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून। (वै० १८)
सँगु–दे० 'संग'। उ० १.सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम। (मा० २।४६)
संग्या–दे० 'संज्ञा'। उ० पेखि रूप संग्या कहब गुन सु-बिबेक बिचार। (स० ४६३)
संग्रह–(सं०)–एकत्रीकरण, बटोरना, ग्रहण। उ० संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने। (मा० १।६।१)
संग्रहिय–जमा करना चाहिए, सुरक्षित रखना चाहिए। उ० का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु बिबेक बिचारि। (दो० ३५१) संग्रहे–संग्रह करने से, ग्रहण करने से। उ० जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत एहि डर डरिए। (वि० २७१) संग्रह्यो–१. अपना लिया, अपने साथ रक्खा, २. संग्रह किया। उ० १. को तुलसी से कुसेवक संग्रह्यो, सठ सब दिन साइँ द्रोहै। (वि० २३०)
संग्रही–(सं० संग्रहिन्)–१. एकत्र करनेवाला, संग्रह करने-वाला, २. भविष्य के लिए रखनेवाला। उ० २. नहिं जाचत नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ। (दो० २६०)
संग्राम–(सं०)–युद्ध, लड़ाई। उ० जिन्हके गुमान सदा सालिम संग्राम को। (क० १।६)
संघ–(सं०)–१. समूह, ढेर, २. दल। संघानाम्–समूहों के। उ० वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि। (मा० १।१।श्लो० १)
संघट–(संघटन)–१. संयोग, मिलन, संघटन, जमघट, जमा-वड़ा, २.संघर्ष, रगड़, झगड़ा, ३.दैवयोग, संयोग, इत्तफ़ाक, ४. व्यूहाकार। उ० १. सकल संघट पोच, सोच बस सर्बदा दास तुलसी बिषय-गहन ग्रस्तम्। (बि० ५६) ४. सुभट-मर्कट-भालु-कटक-संघट सजत। (वि० ४३) संघट-बिधाई–(सं० संघटन + विधान)–एकत्र करनेवाला। उ० रिच्छ-कपि-कटक-संघटबिधाई। (वि० २५)
संघटन–दे० 'संघट्ट'।
संघटित–(सं०संघटन)–टकराते, टकराते हैं। उ०सुर विमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर। (क० १।११)

संघट्ट-(सं०)-१. मिलावट, मिलन, संयोग, २. गढ़न, बनावट, रचना ।
संघट्टन-१. मिलना, संयोग, साथ, २.रचना, गढ़ना ।
संघरषन-दे० 'संघर्षण' । उ० अति संघरषन जौं कर कोई । (मा० ७।१११।८)
संघर्षण-(सं०)-रगड़, घिसाव ।
संघर्षन-दे० 'संघर्षण' ।
संघात-(सं०)-१. समूह, ढेर, २. संबंध, मेल, साथ । उ० १. दुष्ट बिबुधारि-संघात-महिभार-अपहरन अवतार कारन अनूपं । (वि० ५०)
संघाता-दे० 'संघात' । उ० १. सोइ जल अनल अनिल संघाता । (मा० १।७।६)
सँघाती-(संघात)-साथी, साथ देनेवाला, संगी । उ० ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती । (मा० १।२०।२)
सँघार-दे० 'संहार' ।
सँघारा-१. दे० 'संघार', २. मार डाला । उ० २. अनुज निसाचर कटकु सँघारा (मा० १।२०८।३) सँघारि-दे० संघारि' ।
संघारा-सं०संहार १. दे० 'संघार', २. नाश किया । उ० १. तप बल संभु करहिं संघारा । (मा० १।१६३।२) संघारि-मारकर, नाशकर । उ० सकुल संघारि जातुधान धारि, जंबुकादि । (क० ६।२) संघारे-संहार किए, नाश किए । उ० ते सब सुरन्ह समर संघारे । (मा० १।१७६।१)
संचय-(सं०)-समूह, राशि, ढेर ।
संचरत-(सं० संचरण)-१. उत्पन्न करती है, २. प्रकाशित होती है, ३. फैलती है । उ० ३. सरद चाँदनी संचरत चहुँ दिसि आनि । (ब० ४१)
संचहिं-(सं० संचय)-जमा करती हैं । उ० जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं । (मा० ६।८८।४) संचहीं-एकत्र करते हैं । उ० कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं । (मा० ३।२०।छं० १)
संचार-(सं०)-१. गमन, चलना, भ्रमण, पर्यटन, २. प्रचलन । उ० १. पग अंतर मग अगम जल जलनिधि जल संचार । (स० १२६)
संचालन-(सं०)-१. चलाना, परिचालन, २. फैलाना ।
संचित-(सं०)-एकत्र किया हुआ, इकट्ठा किया हुआ ।
सँछेप-दे० 'संक्षेप' ।
संछेप-दे० 'संक्षेप' । उ० ताते मैं संछेप बखानी । (मा० १।६५।२) संछेपहि-दे० 'संक्षेपहिं' । उ० तेहि हेतु मैं बृपकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा । (मा० १।१०३।छं०१)
संजम-(सं० संयम)-नियम, परहेज़, अयथा वस्तुओं से दूर रहना । उ० तुलसी सब संजमहीन सबै इक नाम अधार सदा जन को । (क० ७।८७)
संजात-(सं०)-१. उत्पन्न, पैदा, २. पुत्र, ३. प्राप्त । उ० १. भूमिजा-दुःख-संजात-रोषांतकृत् जातनाजंतु-कुल-जातुधानी । (वि० २६)
संजाता-दे० 'संजात' ।
संजीवनी-(सं०)-एक प्रकार की कल्पित औषधि । कहते हैं कि इसके सेवन से मरा हुआ मनुष्य जी उठता है । उ० जयति संजीवनी-समय-संकट हनूमान धनु बान महिमा बखानी । (वि० ३६)
संजुक्त-(सं० संयुक्त)-सहित, समेत । उ० जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे । (मा० ७।१३।छं० १)
संजुग-(सं० संयुत)-संग्राम, युद्ध । उ० जानत जे रीति सब संजुग समाज की । (क० ६।३०)
संजुत-(सं० संयुक्त)-जुड़ा हुआ, साथ । उ० स्रुति-संमत हरि-भक्ति पथ, संजुत-बिरति विवेक । (दो० ५५५)
सँजोइल-(सं० सज्जा)-सावधान, तैयार, सुसज्जित ।
सँजोऊ-(सं० सज्जा)-सजाओ, ठीक करो । उ० बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ । (मा०२।१९०।१)सँजोया-सजाया, परोसा । सँजोवन-सामान सजाने, तैयारी करने । उ० अस कहि भेंट सँजोवन लागे । (मा० २।१९३।१)
संजोग-(सं० संयोग)-मौका, अवसर, संयोग । उ० अस संजोग ईस जब करई । (मा० ७।११७।४)
सँजोगू-संयोग, अवसर । उ० जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू । (मा० १।२२२।४)
संज्ञा-(सं०)-नाम ।
सँड़स-(सं० संदंश)-सँड़सी, छड़ों की बनी विशेष वस्तु जिससे चूल्हे पर से गरम बर्तन आदि उतारते हैं ।
संत-(सं० सत्)-साधु, संन्यासी, विरक्त, भक्त । उ० संत संतापहर विश्व विश्राम कर राम कामारि-अभिराम कारी । (वि० ५५) संतन-संत का बहुवचन, संतों । उ० पवनतनय संतन-हितकारी । (वि० ३६) संतराज-संतों में श्रेष्ठ । उ० संतराज सो जानिए, तुलसी या सहिदानु । (वै० ३३)
संतत-(सं०)-सर्वदा, लगातार, निरंतर । उ० महामोह सरिता अपार महँ संतत फिरत बह्यो । (वि० ९२)
संतति-(सं०)-१. बालबच्चे, संतान, २. प्रजा, रिआया ।
संतप्त-(सं०)-१. तपा, जला, दग्ध, २. दुखी, पीड़ित, ३. थका । उ० १. रामविरहार्क संतप्त-भरतादि नरनारि-सीतलकरन-कल्प साखी । (वि० २७)
संताप-(सं०)-१. जलन, आँच, २. दुःख, कष्ट, व्यथा, ३. मानसिक कष्ट । उ० २. देहि अवलंब करकमल कमला-रमन दमनदुख समन-संताप-भारी । (वि० ५८) ३. सोवत सदने सहै संसृति-संताप रे । (वि० ७३)
संतुष्ट-(सं०)-जिसको संतोष हो गया हो, तृप्त । उ० सत्य-कृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदा पुष्ट संतुष्ट संकष्टहारी । (वि० ५३)
संतोष-(सं०)-संतुष्टि, सब्र, कनायत, तोष, तुष्टि । उ० विगत दुखदोष, संतोष सुख सर्वदा, सुनत गावत राम-राज लीला । (वि० ४४)
संतोषि-संतोष देकर, तुष्ट करके । उ० जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले । (मा० १।१०२।छं० १)
संतोषु-दे० 'संतोष ।
संतोसु-दे० 'संतोष' । उ० रामनाम-प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम संतोसु । (वि० १५९)
संत्रास-(सं०+त्रास) सब प्रकार का भय, डर । उ०त्यागि सब आस संत्रास भवपास-असि-निसित हरिनाम जपु दास तुलसी । (वि० ४६)

संदग्ध-(सं०)-अच्छी तरह जला हुआ। उ० जयति धर्मांसु संदग्धसंपति-संकुल-सदा-प्रनत तुलसीदास तात-माता। (वि० २८)
संदीपनी-(सं०)-उद्दीप्त करनेवाली। उ० यह बिराग-संदीपनी, सुजन सुचित सुनि लेहु। (वै० ६२)
संदेश-(सं०)-हाल, खबर, संवाद।
सँदेस-(सं० संदेश)-हाल, खबर, संवाद। उ० तुव दरसन, सँदेस सुनि हरि को बहुत भई अवलंब प्रान की। (गी० ५।११)
सँदेसु-दे० 'सँदेस'। उ० पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। (मा० २।९७।१)
सँदेसू-दे० 'सँदेस'। उ० कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। (मा० २।९६।३)
सँदेह-दे० 'संदेह'।
संदेह-(सं०)-संशय, शंका, शक, अनिश्चय। उ० शोक-संदेह-पाथोद-पटलानिलं। (वि० ४६)
सँदेहा-दे० 'संदेह'। उ० जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा। (मा० १।६२।३)
संदेहू-दे० 'संदेह'। उ० मिलन कठिन मन भा संदेहू। (मा० १।६८।३)
संदोह-(सं०)-समूह, ढेर। उ० सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत। (मा० १।१९९)
संध-(?)-१. प्रतिज्ञा, २. मर्यादा, ३. स्थिति, ४. बैठा-हुआ, ५. युक्त, ६. प्रतिज्ञावाले। उ० ६. सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं। (मा० २।३०।२)
सँधान-दे० 'संधाना' उ० भौंह कमान सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे। (क० ७।११८)
संधाना-(सं० संधान)-धनुष पर बाण चढ़ाने की क्रिया। उ० तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। (मा० १।१५७।१)
संधाने-चढ़ाया, जोड़ा। उ० सुमन चाप निजसर संधाने। (मा० १।८७।१)
सँधानो-(सं० संधानिका)-अँचार, चटनी। उ० पान, पकवान बिधि नाना को, सँधानो सीधो। (क० ५।२३)
संधि-(सं०)-१. मेल, मिलाप, जोड़, २. दरार, छेद, ३. छल, प्रपंच। संधिहि-संधि में। उ० ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई। (मा० १।२३८।१)
संध्या-(सं०)-१. शाम, साँझ, सायंकाल, २. एक विशेष प्रकार का मंत्रजाप जो प्रायः प्रातः और सायं किया जाता है। उ० २. संध्या करन चले दोउ भाई। (मा० १।२३७।३)
संन्यासी-(सं०)-विरक्त, साधु। उ० जैसें बिनु बिराग संन्यासी। (मा० १।२५१।२)
संपत-दे० 'संपति'।
संपति-(सं० संपत्ति)-धन, दौलत। उ० क्यों कहौं चित्र-कूट-गिरि संपति महिमा मोह मनोहरताई। (गी० २।४६)
संपत्ति-(सं०)-धन, दौलत। उ० रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ। (मा० १।९४)
संपदा-(सं० संपद्)-१. धन, दौलत, २. ऐश्वर्य, वैभव। उ० १. संपदा सकल मुद मंगल को बरु है। (क० ७।१३६)
संपन्न-(सं०)-१. पूरा किया हुआ, पूर्ण, सिद्ध, २. धनी, मालदार। उ० १. सब लच्छन संपन्न कुमारी। (मा० १।६७।२)
संपाति-(सं०)-एक गीध का नाम जो गरुड़ का ज्येष्ठ पुत्र और जटायु का भाई था। उ० सुनि संपाति बंधु कै करनी। (मा० ४।२७।६)
संपाती-दे० 'संपाति'। उ० जनु जरि पंख परेउ संपाती। (मा० २।१४८।४)
संपादन-(सं०)-१. करना, पूरा करना, २. प्रदान करना, ३. ठीक करना। उ० २. सुख संपादन समन बिषादा। (मा० ७।१३०।१)
संपुट-(सं०)-१. डिब्बा, डिबिया, पात्र, २. अंजुलि। उ० १. संपुट भरत सनेह रतन के। (मा० २।३१६।३) २. सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किएँ। (मा० १।३२६।१)
संपूर्ण-(सं०)-समस्त, पूरा, परिपूर्ण।
संप्रति-(सं०)-इस समय।
संप्रदं-(सं० शं+प्रदं)-कल्याण के दाता।
संबंध-(सं०)-लगाव, संपर्क, वास्ता।
संवत-दे० 'संवत्'।
संबर (१)-(सं० शंबल)-कलेवा, पाथेय, रास्ते का खर्चा। उ० संबर निसंबर को, सखा असहाय को। (वि० ६९)
संवर (२)-दे० 'शंबर'। उ० मनहु संबरारि मारि, ललित मकर-जुग बिचारि। (गी० ७।७)
संबलं-दे० 'संबर'। उ० धर्म-कल्पद्रुमाराम, हरिधाम-पथि संबलं, मूलमिदमेव एकं। (वि० ४६) संबल-दे० 'संबर'। उ० जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ। (मा० १।३८)
संबाद-(सं० संवाद)-बातचीत, वार्तालाप। उ० कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। (मा० १।३०।१)
संबुक-दे० 'शंबुक'। उ० मुकता प्रसव कि संबुक काली। (मा० २।२६१।२)
संभव-(सं०)-१. उत्पत्ति, जन्म, पैदाइश, २. मुमकिन, होने लायक, ३. उचित, ४. उत्पन्न, पैदा। उ० ४. श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा। (मा० ७।४९।१)
सँभार-(सं० संभार)-१. रक्षा, बचाव, हिफ़ाज़त, सहाय, मदद, २. स्मरण, सुधि, याद, ३. गणना, गिनती ४. सँभालते हैं। उ० १. करि सभार, कोसलराय। (वि० २२०) ४. सुमिरत सुलभ, दास दुख सुनि हरि चलत तुरत पट पीत सँभार न। (वि० २०६) सँभारहिं-१. सँभालते हैं देख-रेख करते हैं। उ० १. सुनु सठ-सदा रंक के धन ज्यों छन छन प्रभुहिं सँभारहिं। (वि० ८५) सँभारा-१. दे० 'सँभार', २. सँभाल लिया। उ० १. रघुनायक करहु सँभारा। (वि० १२५) सँभारि-१. सँभालकर, २. यादकर। उ० २. करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि। (मा० १।९६) सँभारिए-१. सँभालिए, २. याद कीजिए। उ० २. केसरीकुमार बल आपनो सँभारिए। (ह० २२) सँभारिय-दे० 'सँभारिए'। उ० १. तासों रारि निवारिए, समय सँभारिय आपु। (दो० ४३२) सभारी-१. सँभालकर, २. सजाकर, सुसज्जित

कर। उ० १. देहु जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी। (गी० १।६) सँभारे–१. सँभालकर, सावधानी से, २. सँभाल दिए। उ० १. जे गावहिं यह चरित सँभारे। (मा० १।३८।१) सँभारेहु–१. सँभाल दिये, २. सँभाल। सँभारो–सँभाला, रक्षा की। उ० जानत निज महिमा मेरे अघ तदपि न नाथ सँभारो। (वि० ९४) सँभार्यो–१. सँभाला, २. स्मरण किया। उ० २. सम दम दया दीन पालन सीतल हिय हरि न सँभार्यो। (वि० २०२)

सँभारन–(सं० संभार)–सँभालना, सँभालने उ० लगे सँभारन निज निज अनी। (मा० ६।५५।२)।

संभावना–(सं०)–१. कल्पना, भावना, २. किसी बात के हो सकने का भाव, मुमकिन होना, ३. दुविधा, संदेह, अनिश्चय।

संभावित–(सं)–विख्यात, प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित। उ० संभावित कहुँ अपजस लाहू। (मा० २।९५।४)

संभाषन–(सं० संभाषण)–बातचीत, कथोपकथन। उ० कियो न संभाषन काहूँ। (वि० २७५)

संभु–(सं० शंभु)–शंकर, महादेव।

संभूत–(सं०)–उत्पन्न, पैदा। उ० जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि संभूत-बिधु। (वि० २५)

संभ्रम–(सं०)–१. जल्दी, आतुरता, २. भ्रम, धोखा, ३. उत्साह, हौसला, ४. घबराहट व्याकुलता, ५. आदर, मान, गौरव। उ० ४. संभ्रम चलि आईं सब रानी। (मा० १।१६३।१) ५. जा दिन बंध्यौ सिंधु त्रिजटा सुनु तू संभ्रम आनि मोहिं सुनैहै। (गी० ५।५०)

संभ्राज–(सं०संभ्राज)–पूर्णतः सुशोभित। उ०राम संभ्राज-सोभा-सहित सर्वदा तुलसि मानस-रामपुर-बिहारी। (वि० २७)

संमत–(सं० सम्मत)–अनुमत, स्वीकृत। उ० स्रुति-गुरु-साधु-सुमृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी। (वि० १२०)

संमति–(सं०सम्मति)–राय, इच्छा, विचार।

संमुख–(सं०सम्मुख)–सामने, आगे।

संमोह–(सं०सम्मोह)–भारी या पूर्ण मोह। उ० पूरनानंद-संदोह अपहरन-संमोह-अज्ञान-गुन सन्निपातं। (वि० ५३)

संयम–(सं०)–१. परहेज़, त्याग, २. इंद्रियनिग्रह, ३. बाँधना, बंधन। दे० 'संजम'।

संयमी–संयम या परहेज़ रखनेवाला।

संयुक्त–(सं०)–मिला हुआ, लगा हुआ, समेत, साथ। उ० सकल-सौभाग्य-संयुक्त-त्रैलोक्य श्री, दक्षदिशि रुचिर बारीश कन्या। (वि० ६१)

संयुग–(सं०)–लड़ाई, युद्ध।

संयुतं–सहित को। उ० सीता लक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे। (मा० ३।१। श्लो० २) संयुत–(सं० संयुक्त)–युक्त, मिला हुआ, मिश्रित। संयुताः–युक्त होकर। उ० त्वदीय भक्ति संयुक्ताः। (मा० ३।४। छं०१२)

संयोग–(सं०)–१. मेल, लगाव, सम्बन्ध, २. दैवयोग, इत्तफ़ाक, ३. होनहार। दे० 'संजोग'

संवत्–(सं०)–वर्ष, साल, संवत्सर।

संवर–(सं० संबल)–राहख़र्च, कलेवा।

सँवराए–(सं० संवर्णन)–सुधरवाए, सजवाए। उ० प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। (मा० १।९४।४)

संवाद–(सं०)–बातचीत, कथोपकथन।

सँवारत–(सं०संवर्णन)–१. रचते समय, सँवारते समय, २. सँवारता है, सुधारता है, बनाता है, ३. सँवारते हुए, सजाते हुए। उ० १. मनहुँ भानु-मंडलहि सँवारत धर्‌यो सूत बिधि-सुत बिचित्र मति। (गी० ७।१७) सँवारब–सँभालूँगा, सिद्ध करूँगा, बनाऊँगा। उ० सब बिधि तोर सँवारब काजा। (मा० १।१६९।३) सँवारहिं–१. सँवारते हैं, ठीक करते हैं, २. सँभालकर, रचकर। उ० बकि जनि उठहि बहोरि, कुजुगुति सँवारहि। (पा० ७३) सँवारा–रचा, बनाया, ठीक किया। सँवारि–सँभालकर, सँवारकर, रचकर। उ० काहे को कहत बचन सँवारि। (कृ० ५३) सँवारित–ठीक बनाया हुआ, जड़ा हुआ, रचा हुआ। उ० सुतिय सुभूपति भूषियत लोह-सँवारित हेम। (दो० ५०६) सँवारी–सुधारी, सजाई, बनाई। उ० रूपरासि बिधि नारि सँवारी। (मा० ३।२२।५) सवारें–१. सजाकर, २. सजाए, रचे। उ० १. इच्छामय नर बेष सँवारें। (मा० १।१५२।१) सँवारे–सँवारा, सुधारा, श्रृंगार किया, चिकनाया। उ० दिए बसन गज बाजि साजि सुभ साज सुभाँति सँवारे। (गी० १।४४) सँवारेउ–१. दे० 'सँवारेहु', २. सँवारा। सँवारेहु–सँवारिएगा, बनाइएगा। उ० काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। (मा० २।२२)

संशय–(सं०)–१. संदेह, शंका, शुबहा, २. भय, डर, ३. चिंता। उ० १. दास तुलसी चरण शरण संशयहरण देहि अवलंब वैदेहि भर्त्ता। (वि० ४४)

संशोभितं–पूर्णरूप से शोभित। उ० श्रीमच्छंभु मुखेन्दु सुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा। (मा० ४।१।श्लो० २)

संसउ–दे० 'संशय'। उ० १. नाथ एक संसउ बड़ मोरे। (मा० १।४५।४)

संसय–दे० 'संशय'। उ० १. प्रेम तांबूल, गतसूल संसय सकल बिपुल-भवबासना-बीज-हारी। (वि० ४७)

संसर्ग–(सं०)–१. संग, साथ, २. संबंध, लगाव, ३. स्त्री-पुरुष का सहवास। उ० १. संत संसर्ग त्रय वर्ग पर परम-पद प्राप, निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने। (वि० ५७)

संसर्गा–दे० 'संसर्ग'। उ० १. प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। (मा० ७।४६।४)

संसार–(सं०)–जगत, दुनिया, जग। उ० संसार कंतार अति घोर गंभीर घन गहन तरु कर्म-संकुल मुरारी। (वि० ५९)

संसारा–दे० 'संसार'।

संसारी–(सं० संसारिन्)–संसार का, संसार में रहनेवाला, जिसे आवागमन तथा सुख-दुःख की यातना सहनी पड़े। उ० तबते जीव भयउ संसारी। (मा० ७।११७।३)

संसारु–दे० 'संसार'।

संसारू–दे०'संसार'। उ०होइहि सब उजारि संसारू। (मा० १।१७७।४)

संसृत–(सं०)–जन्मा हुआ। उ० संसृत मूल सूलप्रद नाना (मा० ७।७४।३)

संसृति–(सं०)–१. आवागमन, जन्ममरण, २. संसार। उ० १. कियो कृपालु अभय कालहु तें गइ संसृति साँसति घनी। (गी० ५।३६)
संस्कृत–(सं०)–१. जिसका संस्कार किया गया हो, शुद्ध किया गया, २. संस्कृत भाषा, देववाणी। उ० २. का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच। (दो० ५७२)
संहरता–दे० 'संहर्ता'।
संहर्ता–(सं० संहर्तृ)–संहार करनेवाला, नाशकर्ता। उ० जो कर्ता पालक संहर्ता। (मा० ६।७।२)
संहार–(सं०)–नाश, प्रलय, ध्वंस। उ० उद्भवस्थिति संहार कारिणीं, क्लेशहारिणीम्। (मा० १।१।श्लो० ५)
संहारा–(सं० संहार)–१. दे० 'संहार', २. नाश किया। संहारि–मार करके। उ० सिंहिका संहारि, बलि, सुरसा सुधारि छल। (ह० २७) संहारे–नष्ट किये, मारे। उ० हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों संहारे। (क० ६।४०)
सः–(सं०)–वह। उ० सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा। (मा० २।१।श्लो० १)
स–(सं०)–१. सहित, समेत, २. शिव, ३. विष्णु, ४. वायु, ५. सर्प, ६. जीवात्मा, ७. चंद्रमा, ८. कांति, प्रभा, ९. पक्षी, १०. तुल्य, बराबर, ११. सम्मुख, सामने। उ० १. साजिकै सनाह गज गाह सउछाह दल। (क०६।३१)
सइल–(सं० शैल)–पर्वत, पहाड़। उ० मत्त भट-मुकुट-दसकंध-साहस-सइल-सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र टाँकी। (क० ६।४४)
सई–(?)–१. वृद्धि, बढ़ती, २. एक नदी जो गोमती से मिलती है, ३. सिफ़ारिश, ४. उद्योग, कोशिश। उ० १. परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सकल नहिं सिद्धि सई है। (वि० १३६) २. सई तीर बसि चले बिहाने। (मा० २।१८६।१)
सक (१)–(अर०शक)–शुबहा, संदेह। उ० राम चाप तोरब सक नाहीं। (मा० १।२४५।१)
सक (२)–(सं० शक्य)–सकेगा, संभव है, सकते हैं। उ० सक सर एक सोषि सत सागर। (मा० ५।२६।१) सकइ–सकता है, समर्थ है। उ० करि न सकइ कछु निज प्रभुताई। (मा० ७।११६।४) सकउँ–सकूँ, सकता हूँ, सकती हूँ। उ० परउँ कूप तुअ बचन पर सकेउँ पूत पति त्यागि। (मा० २।२१) सकत–सकता है, समर्थ है। सकति (१)–१. सकती है। सकसि–समर्थ हो, सके। उ०जौं मम चरन सकसि सठ टारी। (मा०६।३४।५) सकहिं–सकते हैं। उ० सकहिं न खेइ एक नहिं आवा। (मा०२।२७६।२) सकहीं–दे० 'सकहिं'। सकहु–सको। सकिअ–सकें, सकती। उ० बुधि बल सकिअ जीति जाही सों। (मा० ६।६।३) सके–१. सका, २. हो सका। सकेउ–सका। उ० बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। (मा० २।२६१।१) सकै–दे० 'सकेउ'। सकै–सके, सकता है। उ०बिपति सकै को टारी? (वि० १२०) सक्यो–समर्थ हुआ, सका। उ० नाम सक्यो नहिं धोइ। (दो० ५३१)
सकति (२)-(सं० शक्ति)–ताक़त, बल। उ० सकति खारो कियो चाहत मेघहू को बारि। (कृ० ५३)
सकरुण–(सं०)-करुणा के साथ, दीनता के साथ।
सकरुन–दे० 'सकरुण'।
सकलंक–(सं० स+कलंक)-कलंक के साथ, जिसमें कोई दाग़ हो। उ० जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलङ्क। (मा०१।२३७)
सकलंकु–दे० 'सकलंक'।
सकलंकू–दे० 'सकलंक'। उ० जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू। (मा० २।११६।२)
सकल–(सं०) सर्व, समस्त, कुल। उ० चहि कलिकाल सकल साधन तरु है स्रम-फलनि फरो सो। (वि० १७३)
सकाई–(सं० शक्य)–सके, समर्थ हो। उ० जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। (मा० ७।११६।३) सकाहिं (१)–सकते हैं।
सकाना–(सं० शंका)–डरा, डर गया। उ० छत्रिय तनु धरि समर सकाना। (मा० १।२८४।२) सकानी–१. सकुचाई, २. सशंकित हुई, डरी। उ० २. कोलाहलु सुनि सीय सकानी। (मा० १।२६७।३) सकाने–१. सकुचाए, २. डरे। सकाहिं (२)–१. शंकित होते हैं, डरते हैं, २. सकुचते हैं। उ० १. राम सीय सनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं। (गी० ७।२६)
सकाम–(सं० स+काम)–कामना सहित, किसी इच्छा के साथ। उ०जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। (मा०७।१५।२)
सकारे–(सं० सकाल)–प्रातःकाल, सवेरे। उ० अवधेस के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे। (क० १।१)
सकिलि–(?)–सिमटकर, बटुरकर, इकट्ठा होकर, सरककर। उ० सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन। (मा०१।३६।४)
सकुच–(सं० संकोच)–१. लाज, संकोज, २. डर, भय, ३. सकुचकर। उ० १. चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे। (मा० २।२०६।३) सकुचउँ–सकुचता हूँ, संकोच करता हूँ। सकुचत–१. सकुचते हुए, संकोच करते हुए, २. लज्जित होता है, संकोच करता है, ३. सिकुड़ता है, बटुरता है। उ० १. सकुचत बोलत बचन सिखे से। (मा०२।३०३।२) २. मिले मुदित बूझि कुसल परसपर सकुचत करि सनमान हैं। (गी० ५।३५) सकुचति–सकुचती है, संकोच करती है। सकुचनि–१. संकोच करने का भाव, २.संकोचवश, संकोच में, ३. संकोच का बहुवचन। उ० २. कहि न सकति कछु सकुचनि सिय हिय सोचइ। (जा० ११२) सकुचब–सकुचूँगा, सकुचना। सकुचहिं–संकोच करते हैं, सकुचाते हैं। उ० सकुचहिं मुनिहि सभीत बहुरि फिरि आवहिं। (जा० ३८) सकुचाइ–१. सकुचाकर, संकोचकर, २. सकुचाता है, संकोच करता है। उ०१. आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ। (गी० ७।३६) सकुचाई–१.सकुचावे, २. संकोचवश। उ०१. बहु संपति मागत सकुचाई। (मा० १।१४६।३) सकुचाउँ–सकुचाता हूँ, संकोच खाता हूँ। उ० पूँछहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ। (मा० २।१२७) सकुचाउँगो–सकुचाऊँगा, लज्जित होऊँगा। उ० सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं, हौं निपटहिं सकुचाउँगो। (गी० ५।३०) सकु-

चान–१. सकुचाता, २. सकुचाते हैं, संकोच करते हैं। सकुचान–१. सकुचाए, २. संकोच करना। सकुचाना–सकुच गया, संकोच करने लगा। उ० अंगद बचन सुनत सकुचाना। (मा० ६।२१।२) सकुचानि–१. सकुचाए हुए, २. सकुचाई। उ० २. रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि। (मा० ७।६क) सकुचानी–दे० 'सकुचानि'। सकुचाने–दे० 'सकुचानी'। सकुचाहिं–दे० 'सकुचाहीं'। सकुचाहीं–१. सकुचाते, २. संकोच करते हैं। सकुचाहु–सकुचाता हूँ, संकोच करता हूँ। उ० बिलोकि अब तें सकुचाहु सिहाहूँ। (वि० २७५) सकुचि–१. लज्जित होकर, संकोच करके, २. डरकर, ३. सिकुड़कर। उ० १. सुनि सकुचि सोचहिं जनक गुरु पद बंदि रघुनंदन चले। (जा० १०८) सकुचिहि–सकुचाएगा, संकोच करेगा। सकुची–संकुचित हो गया, संकोच में पड़ गया। सकुचे–संकोच में पड़े। सकुचेउ–संकुचित हुए, शर्माए। सकुच्यो–दे० 'सकुचेउ'।

सकुन–दे०'सकुनि'। उ० १. मदन सकुन जनु नीड़ बनाए। (मा० १।३४६।३)

सकुनि–(सं० शकुनि)–१. पक्षी, चिड़िया, २. दुर्योधन का मामा। उ० २. सभा सुजोधन की सकुनि, सुमति सराहन जोग। (दो० ४१८)

सकुल–(सं०)–कुल के सहित, खान्दान के साथ। उ० सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे। (वि० २११)

सकृत–(सं०)–१. एक बार, २. केवल, एक मात्र। उ० १. सकृत प्रनामु किहें अपनाए। (मा० २।२९९।२) २. जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल। (मा० २।२८१)

सकेलि–(सं० संकेल)–खींचकर, बटोरकर। उ० उपजी, सकेलि, कपि, खेलही उखारिए। (ह० २४) सकेली–एकत्र करके, बटोरकर। उ० आयउँ इहाँ समाजु सकेली। (मा० २।२९८।३)

सकोच–(सं० संकोच)–१. संकोच, २. लाज, शर्म, ३. घटती, कमी। उ०२. सदा अभागी लोग जग कहत सकोचु न संक। (प्र० ६।६।४)

सकोचइ–(सं०संकोच)–१. संकोच करती है, २. डरती है। उ० १. गौरि गनेस गिरीसहिं सुमिरि सकोचइ। (जा० ११२) सकोचहीं–१. भय खाते, भय खाते हैं, २. संकोच करते थे। उ० १. नर नारि हरष विषाद बस हिय सकल सिवहिं सकोचहीं। (जा० ९०)

सकोचा–दे० 'सकोच'।

सकोचु–दे० 'सकोच'।

सकोप–कोप के साथ, क्रोध के साथ। उ० अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप। (मा० १।२६७)

सकोपा–दे० 'सकोप'।

सकोरे–(सं० संकुचन)–सिकोड़े, चढ़ाए। उ० तकत सुभौंह सकोरे। (गी० ३।२)

सकोहा–(सं० स + क्रोध)–दे० 'सकोप'। उ० रावन आवत सुनेउ सकोहा। (मा० १।१८२।३)

सक्ति–(सं० शक्ति)–१. शक्ति, बल, २. एक अस्त्र, बरछी। उ० २. सक्ति चारु-चर्मासि-बरबर्म-धारी। (वि० ४४) सक्तिन्ह–१. शक्तियों, २. बरछियों।

सक्र–(सं० शक्र)–इंद्र, मघवा। उ० बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। (मा० १।४।५) सक्रहिं–इंद्र को। सक्रहि–इंद्र को।

सक्रजित्–(सं०)–इन्द्रजीत, मेघनाद।

सक्रारि–(सं०)–इंद्र का शत्रु मेघनाद, इंद्रजित्। उ० कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। (मा० ६।२७)

सखन्ह–(सं० सखिन्)–सखाओं को। उ० प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई। (मा० ७।११।१) सखहिं–मित्र को। उ० सखहिं सनेह बिबस मग भूला। (मा० २।२३८।३) सखहि–सखा को, मित्र को। सखा–मित्र, दोस्त। उ० सखा बचन मम मृषा न होई। (मा० ४।७।१२) सखाउ–सखा भी, मित्र भी। उ० सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ। (दो० ४५६)

सखि–(सं० सखिन्)–संगिनी, सहेली।

सखिन–१.सखियों को, २.सखियाँ। उ०१.तब सुबाहु सूदन जस सखिन सुनायउ। (जा० ८७) सखिन्ह–दे०'सखिन'।

सखी–(सं० सखिन्)–सहेली, संगिनी। उ० सुनि प्रियबचन सखी मुख गौरि निहारे। (मा० ५३)

सगर–(सं०)–एक प्रतापी राजा। इनके ६०हज़ार पुत्र कपिल के शाप से भस्म हो गये थे। उन्हीं की मुक्ति के लिए गंगा पृथ्वी पर लाई गईं। उ० जह्नु कन्या धन्य, पुण्यकृत सगर सुत। (वि० १८)

सगरे–(सं० सकल)–सब, सम्पूर्ण। उ० तनु पोषक नारि नरा सगरे। (मा० ७।१०२।५)

सगर्भ–(सं० स + गर्भ)–तात्पर्य युक्त, जिसमें कुछ भीतर हो। उ० नारद बचन सगर्भ सहेतू। (मा० १।७२।२)

सगा–(सं० स्वक्)–स्वजन, अपना।

सगाई–१. ब्याह, २. संबध, नाता, सगापन। उ०२. निबहै भरि देह सनेह सगाई। (क० ७।५८)

सगुण–(सं०)–परमात्मा का वह रूप जो सत, रज, तम आदि गुणों से युक्त रहता है। अवतार लेने पर या साकार होने पर भगवान सगुण कहे जाते हैं। यह रूप निर्गुण का उलटा है।

सगुन (१)–दे० 'सगुण'। उ० अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नर भूप रूपं। (वि० ५०) सगुनहि–सगुन में, दे 'सगुण'। ३. सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। (मा० १।११६।१)

सगुन (२)–(सं० शकुन)–शकुन, शुभ लक्षण, शुभ। उ० उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पायउ। (जा० ९८) सगुननि–शकुनों, शकुनों ने। उ० सगुननि साथ दयो। (गी० १।४५)

सगुनिअन्ह–शकुन जाननेवालों ने। उ० कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए। (मा० २।१९२।२)

सगे–(सं० स्वक्)–संबंधी लोग, अपने लोग, परिवार के। उ० सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें। (मा० १।२४२।१)

सघन–(सं०)–घना, गझिन। उ० सघन-तम-घोर-संसार-भर। (वि० ५५)

सच–(सं० सत्य)–सत्य, तथ्य, सही।

सचराचर-(सं०) स्थावर और जंगम सहित। उ०जो सहस-सीसु अहीसु महि धरु लखनु सचराचर धनी। (मा० २।१२६छं० १)
सचाई-(सं०सत्य) सत्यता, सच्चाई।
सचान-(सं० संचान)-बाज़ पक्षी। उ० जनु सचान बन झपटेउ लावा। (मा० २।२६।३)
सचि (१)-दे० 'सची'।
सचि (२)-(सं० संचित)-संचित करके। उ० राखी सचि कूबरी पीठ पर। (कृ० ४१)
सचिव-(सं०)-मंत्री, आमात्य। उ० उपल किये जलजान जेहि सचिव सुमति कपि भालु। (मा० १।२८ क) सचिवन्ह-मंत्रियों। सचिवहि-मंत्री को।
सची-(सं० शची)-इंद्राणी। उ० जिमि वासव बस अमर पुर सची जयंत समेत। (मा० २।१४१)
सचु-(?)-आनंद, प्रसन्नता। उ० हँसहिं संभुगन अति सचु पाएँ। (मा० १।१३४।२)
सचेत-चेतयुक्त, सावधान, होशियार। उ० हनुमान पहिचानि भये सानंद सचेत हैं। (क० ५।२६।१)
सचेतन-(सं०स + चेतन) १. चेतनायुक्त, बुद्धिमान्, २.चेतन जीव। उ०२.को कहि सकइ सचेतन करनी। (मा०१।८५।२)
सचेता-दे० 'सचेत'।
सच्चिदानंद-(सं०)-सत्,चित् और आनंद स्वरूप भगवान्। उ० कुंद-इंदु-कर्पूर-गौर, सच्चिदानंद घन। (क० ७।१५०)
सच्चिदानंदा-दे० 'सच्चिदानंद'।
सच्छिदानंदु-दे० 'सच्चिदानंद'।
सज-(सं० सज्जा)-सजा रहे हैं, तैयार कर रहे हैं। उ० मोकहँ तिलक साज सज सोऊ। (मा० २। १८२।१) सजत-सजता है, बनता है, सँवरता है। उ० सुभट मर्कट-भालु-कटक-संघट-सजत। (वि० ४३) सजन-१. सजने, २. सजाने। सजहिं-सजाते हैं। उ० सजहिं सुमंगल साज। (जा० १४६) सजहीं-सजते हैं। सजहि-सजता है। सजहु-सजो, तैयार हो जाओ। सजि-१. सज कर, २. सजाकर, ३. जमाकर। उ० ३. सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़ि छोली। (मा० २।१७।२) सजे-सज गए, तैयार हो गए। सजेउ-१. दे० 'सजे', २. सजाया। उ० २. भूप सजेउ अभिषेक समाजू। (मा० २।८।१)
सजग-(सं० स + जागरण)-होशियार, चैतन्य। उ० होहु सजग सुनि आयसु मोरा। (मा० १।२६०।१)
सजन-(सं० स्वजन)-१. प्रिय, प्रियतम, २. संबंधी, नातेदार। उ० सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे। (मा० १।२४२।१)
सजनी-(सं० सत् + जन)-सहेली, सखी। उ० जहाँ सजनी रजनी रहिहैं। (क० २।२३)
सजल-(सं०स + जल)जलयुक्त, जलपूर्ण। उ०सजल कठौता कर गहि कहत निषाद। (ब० २५)
सजाइ (१)-(सं० सज्जा)-सजाकर। उ० भूप भूषन बसन बाहन राज साज सजाइ। (गी० ७।३६) सजायउ-सजाय, तैयारी की। उ० भूधर भोर बिदा करि साज सजायउ। (पा० १५५)
सजाइ (२)-(फ़ा० सज़ा)-दंड, सज़ा।

सजाई (१)-दे० 'सजाइ (१)'।
सजाई (२)-दे० 'सजाइ (२)'। उ० तौ विधि देइहि हमहि सजाई। (मा० २।१६।३)
सजाति-सजातीय, कुटुंबी।
सजाय-दे० 'सजाइ (२)'। उ० पैहहि सजाय नतु कहत बजाय तोहि। (ह० २६)
सजीव-(सं०) जीता, जीवसहित। उ० जे सजीव जग अचरचर नारि पुरुष अस नाम। (मा० १।८४)
सजीवन-(सं०संजीवन)-संजीवनी जड़ी जो जीवन प्रदान करनेवाली कही गई है। उ० गौरि सजीवन मूरि मोरि जिय जानवि। (पा० १२७)
सजीवनि-दे० 'सजीवन'।
सजोइल-दे० 'सँजोइल'। उ० सूर सजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं। (क० ६।३३)
सज्जन-(सं० सत् + जन)-अच्छा व्यक्ति, अच्छे लोग। उ० सज्जन चख झख निकेत भूषन मनिगन समेत। (गी० ७।४)
सज्या-(सं० शय्या)-बिछौना, सेज। उ० बलकल भूषन फल असन तृन सज्या द्रुम प्रीति। (दो० १६२)
सट्टुकि-दे० 'सुट्टुकि'।
सठ-(सं० शठ)-दुष्ट, पाज़ी। उ० सठ सहि साँसति पति लहत सुजन कलेस न काय। (दो०३६२) सठन्ह-१.शठों, दुष्टों, २. दुष्टों को। सठन्हि-शठों को। उ० कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को। (मा० २।३२६।छं० १) सठहि-शठ को, दुष्ट को। सठहु-१. शठ को भी, दुष्ट को भी, २. अरे मूखों। उ० २. सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई। (मा० ६।८८।२)
सठई-शठता, दुष्टता। उ० नंदनँदन हो निपट करी सठई। (कृ० ३६)
सठु-दे० 'सठ'।
सठता-दे० 'सठई'। उ० सो सुनि गुनि तुलसी कहत, हठ सठता की रीति। (दो० २०३)
सठताई-दुष्टता, शठता।
सड़सिन्ह-(सं० संदेश)-सँड़सियों से। उ० प्रति उत्तर सड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस। (मा० ६।२३ ङ०)
सत (१)-(सं० सप्त)-सात। उ० सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरे। (मा० ७।१३०।छं० ३)
सत (२)-(सं० शत)-१. सौ, सैकड़ा, २. बहुत, अधिक। उ० १. सत कोटि नाम फल पायेउ। (जा० १३०) २. कहिसि कथा सत सवति कै। (मा० २।१८)
सत (३)-(सं० सत्य)-१. सत्य, २. अच्छा, सुंदर। उ० २. उतपति पांडुतनय की करनी सुनि सतपंथ डर्यो। (वि० २३६)
सततं-(सं०)-सर्वदा, हमेशा। उ० धन्यास्ते कृतिनः पिबंति सततं श्रीराम नामामृतम्। (मा० ४।१ श्लो०२) सतत-दे० 'सततं'।
सतपत्र-(सं० शतपत्र)—कमल।
सतरंज-(फ़ा० शतरंज)-एक प्रसिद्ध खेल, शतरंज। उ० सतरंज को सो राज, काठ को सबै समाज। (वि० २४६)
सतर-(सं० सत्वर)-शीघ्र, तुरत।

सतरभौंहैं–(सं० सतर्जन + भ्रू)-कुपित, क्रोधयुक्त। उ० कान्हहू पर सतरभौंहैं, महरि मनहिं विचारु। (कृ० १४)
सतराइ–(सं०सतर्जन) अकड़कर, क्रोधित होकर। उ० सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए। (क० ५।१७)
सतरूपहि–सतरूपा ने, सतरूपा को। सतरूपा–(सं० शत-रूपा)-स्वायंभू मनु की स्त्री का नाम। उ० स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। (मा० १।१४२।१)
सतर्क–(सं०)-सावधान, सचेत।
सतसंगति–(सं०सत + संगति) अच्छी संगति, अच्छों का संग। उ० सत संगति संसृति कर अंता। (मा०७।४५।३)
सतां–(सं०)-सज्जनों का, सज्जनों की। उ० यो ददाति सतां शंभुः कैवल्यमपि दुर्लभम्। (मा० ६।श्लो० ३)
सताइहै–(?)१.सतावेगा, कष्ट देगा। उ०सुरतरु-तर तोहिं दुःख दारिद सताइहै। (वि० ६८) सतावहिं–सताते हैं। सतावै–सताता है, कष्ट देता है। उ० जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव-बिपति सतावै। (वि० ११६)
सतानंद–(सं० शतानंद)–महाराज जनक के गुरु और पुरोहित का नाम। उ० सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ। (मा० १।२३९)
सतावन–(?)-सतानेवाला, कष्टदायक। उ० मानव-दानव देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं। (क० ७।१३२)
सतासी–(सं०सप्त)–सत्तासी, अस्सी और सात। उ० बीतें संबत सहस सतासी। (मा० १।६०।१)
सति–(सं० सत्य)–१. सत्य, सच्चा, २. सीधा, सरल, ३. अच्छा। उ० १. लखि नहिं सकति कपट सतिभाऊ। (कृ० १२) ३. बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। (मा० १।४।१) सतिहि (१)–१. सच्चे को,२.सच्चे ने
सतिहि (२)–१.पार्वती को, २. पार्वती ने। सती–(सं०)–१.साध्वी, पतिव्रता, २. दक्ष प्रजापति की कन्या जिनका विवाह शिव से हुआ था। ३. मरे पति के साथ जलनेवाली स्त्री। उ० १. परम सती असुराधिप नारी। (मा० १।१२३।४) ३. वर ही सती कहावती जरती नाह-बियोग। (दो० २५४)
सतुआ–(सं० सक्तुक)–भुने अन्न का चूर्ण। उ० सोनित सों सानि सानि गूदा खाद सतुआ से। (क० ६।५०)
सतोगुन–सत्व गुण, तीनों गुणों में प्रथम और श्रेष्ठ। उ० त्याग पावक सतोगुन प्रकासं। (वि० ४७)
सत्–(सं०)–१. सत्य, २. अच्छा, सुंदर। उ० सच्चिदानंद धन कर नर चरित उदार। (मा० ७।२५) सत्कर्म–अच्छा काम, पुण्य कार्य।
सत्कार–(सं०)–आदर, ख़ातिरदारी।
सत्तरि–(सं०)–सत्तर, साठ और दस। उ० जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा। (मा० १।१५६।४)
सत्थ–(सं० सत् + थ)–सत्य और शुभ।
सत्य–(सं०)–यथार्थ, सच। उ० सत्य संकल्प सुरत्रास-नासं। (वि० ५१)
सत्यकेतु–(सं०)–केकय का राजा जिसके पुत्रों के नाम प्रतापभानु तथा अरिमर्दन थे। उ० सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू। (मा० १।१५३।१)

सत्यता–(सं०)–सच्चाई, यथार्थता। उ० जासु सत्यता तें जड़ माया। (मा० १। ११७।४)
सत्रु–(सं० शत्रु)–वैरी, दुश्मन। उ० सत्रु न काहू करि गनै। (वै० १३)
सत्रुसमन–(सं० शत्रु + शमन)-शत्रुघ्न। उ० राम भरत लछिमन ललित सत्रुसमन शुभ नाम। (प्र० ४।३।२)
सत्रसालु–शत्रुघ्न। उ० तेसेई सुभग सँग सत्रसालु। (गी० १।४०)
सत्रुसूदनु–शत्रुघ्न। उ० लखनु सत्रुसूदनु एक रूपा। (मा० १।३११।४)
सत्व–(सं०)–१. सत्ता, अस्तित्व, २. सार, तत्व, ३. सत्व गुण, उ०३.सुद्ध सत्व समता बिग्याना। (मा०७।१०४।१)
सत्वर–(सं०)–शीघ्र, जल्द।
सत्वात्–सत्ता से। उ० यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं। (मा० १।१। श्लो० ६)
सद–(सं० सत्)–अच्छा, श्रेष्ठ। उ० सदगुन सुरगन अंब-अदिति सी। (मा० १।३१।७)
सदई–(सं० सदा)–नित्य ही, हमेशा ही। उ० उथपे थपन उजार-बसावन गई-बहोर बिरद सदई है। (वि० १३९)
सदन–(सं०)–१. घर, मकान, धाम, २. पानी, ३. विराम, स्थिरता, ४. एक प्रसिद्ध कसाई भक्त। उ० १. करउ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन। (मा० १।१। सो० १) सदननि–घरों में, मकानों में, स्थानों में। उ० सुर-सदननि तीरथ, दुरिन निपट कुचालि कुसाज। (दो० ५५८) सदनि–'सदन' (= मकान, भवन, स्थान) का स्त्रीलिंग। उ० मंगल-मुद-सिद्धि-सदनि। (वि० १६)
सदनु–दे० 'सदन'।
सदय–(सं०) दयालु, दयायुक्त। उ०सदय-हृदय तप निरत प्रणतानुकूलम्। (वि० ६०)
सदल–(सं०) सेना सहित। उ० सदल सलषन हैं कुसल कृपालु कोसलराउ। (गी० ५।४)
सदसि–सभा में। उ० जनक नृप-सदसि-सिवचापभंजन। (वि० ५०)
सदस्य–(सं०)–सभासद, मेंबर।
सदा–(सं०)–१. नित्य, हमेशा, सर्वदा, २. निरंतर, लगातार। उ० १. स्वन गिरिजा भवन भूधराधिप सदा। (वि० ११) सदाई–सदा ही, सर्वदा ही। उ० बिषय भोग पर प्रीति सदाई। (मा० ७।११८।८)
सदाचार–(सं०)–उत्तम आचरण, अच्छा आचार। उ० सदाचार जप जोग बिरागा। (मा० १।८४।४)
सदासिव–(सं० सदाशिव)–शंकर, महादेव।
सदस–(सं० सदृश)-समान, अनुरूप, तुल्य, बराबर। उ० भानुसत-सहस उद्योतकारी। (वि० ५१)
सदैव–(सं०)–सर्वदा, हमेशा। उ०जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। (मा० १।२९६।३)
सद्म–(सं०)–घर, धाम। उ० युगल पद-पद्म सुखसद्म पद्मालयं। (वि० ५१)
सद्य–(सं०)–तुरत, शीघ्र, आज ही, अभी। उ० मनहुँ बिरह के सद्य धाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति। (गी० ५।१९)

सधवा–(सं० स + धव)-सुहागिन, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।

सन (१)-(सं० शण)–एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी छाल की रस्सियाँ आदि बनती हैं। उ० सन इव खल पर बंधन करई। (मा० ७।१२१।६)

सन (२)–(सं० संग)–१. साथ, २. से। उ० २. मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सुसूकरखेत। (मा० १।३० क)

सनक–(सं०)–ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक। उ० सिद्ध सनकादि योगीन्द्रवृन्दारका। (वि० १२)

सनकार–(सं० संकेत)–इशारा करना, संकेत करना। उ० समय सुकरुना सराहि सनकार दी। (क० ७।१८३)

सनकारे–इशारा किया। उ० सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रूख पाइ। (मा० २।१६६)

सनमान–(सं० सम्मान)–आदर, सत्कार, प्रतिष्ठा। उ० केहि करनी जन जानि कै सनमान किया रे। (वि० ३३)

सनमानत–१. आदर करते हुए, २. आदर करते हैं। उ० १. जनकहि एक सिहाहि देखि सनमानत। (जा० १४) सनमानहिं–आदर करती हैं। उ० बार-बार सनमानहिं रानी। (मा० १।३२१।४) सनमाना–१. आदर किया, २. सनमान, सम्मान, आदर। उ० १. सहित बरात राउ सनमाना। (मा० १।३०६।३) सनमानि–आदर करके। सनमानी–१. आदर किया, २. आदर करके। उ० १. दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी। (मा० १।६३।१) सनमाने–सम्मान किया। उ० ते भरतहि भेंटत सनमाने। (मा० १।२६।४) सनमानेउ–आदर किया। उ० नृप सुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ। (जा० १३१)

सनमानु–सम्मान, आदर। उ० कीन्ह संभु सनमानु जनम-फल पाइन्हि। (पा० ८४)

सनमानू–दे० 'सनमान'।

सनमुख–(सं० सम्मुख)–सामने, सम्मुख। उ० जेहि न होइ रन सनमुख कोई। (मा० १।१८०।४)

सनाए–(सं० संधम्)–सनवा दिए, मिलवा दिए। उ०भरि-भरि सरवर बापिका अरगजा सनाए। (गी० १।६)

सनातन–(सं०)–१. शाश्वत, नित्य, २. ब्रह्मा के पुत्र एक ऋषि।

सनाथ–(सं०)–१. नाथ सहित, सुरक्षित, २. कृतार्थ, कृत-कृत्य। उ० २. भए देव सकल सनाथ। (मा० ६।११३।२)

सनाथा–दे० 'सनाथ'। उ० २. निरखि बदन सब होहिं सनाथा। (मा० ४।२२।१)

सनाह–(सं० सन्नाह)–बख्तर, कवच। उ० साजि कै सनाह गज गाह सउछाह दल। (क० ६।३१)

सनाहु–दे० 'सनाह'। उ० सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु। (मा० २।१९०)

सनाहै–(सं० स + नाथ)–पतियों सहित। उ० जस अमर-नाग-नर-सुमुखि सनाहै। (गी० ७।१३)

सनि–(सं० शनि)–१. शनिश्चर, २. शनिश्चर दिन।

सनीचरी–(सं० शनैश्चर)–शनिवार। मु० मीनकी सनीचरी–मीन राशि पर शनीचर का आना जो अशुभ है। इससे राजा और प्रजा की हानि होती है। उ०कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की। (क० ७।१७७)

सनेह–(सं० स्नेह)–प्रेम, प्यार। उ० सुख सनेह सब दियौ दसरथहिं खरि खलेल थिर थानी। (गी० १।४)

सनेहा–दे० 'सनेह'। उ० भए मगन सिव सुनत सनेहा। (मा० १।८२।२)

सनेही–१. स्नेही, प्रेमी, २. तेल युक्त। उ० १. जे तुलसी के परम सनेही। (वि० ३६) २. पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि। (दो० ४०३)

सनेहु–दे० 'सनेह'।

सनेहू–दे० 'सनेह'।

सन्निपात–(सं०)–१. त्रिदोष, सरसाम, २. समूह, ढेर। उ० २. पूरनानंद-संदोह अपहरन-संमोह-अज्ञान-गुन सन्नि-पात। (वि० ५३)

सन्मान–(सं० सम्मान)–आदर, सम्मान।

सन्मुख–(सं० सम्मुख)–१. सामने, आगे, २. साक्षात्, प्रत्यक्ष, ३. अनुकूल।

सन्यपात–दे० 'सन्निपात'। उ० गुनकृत सन्यपात नहिं केही। (मा० ७।७१।१)

सन्यास–दे० 'संन्यास'।

सपत–दे० 'सप्त'। उ० सपत ऋषिन्ह विधि कहेउ बिलंब न लाइय। (पा० १३६)

सपच्छ–(सं० स + पक्ष)–पंखवाला, पक्षयुक्त। उ० जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा। (मा० ३।१८।२)

सपच्छा–दे० 'सपच्छ'।

सपथ–(सं० शपथ)–सौगंद, कसम। उ० तोहिं स्याम की सपथ जसोदा आइ देखु गृह मेरे। (कृ०३) सपथनि–कसमों से, शपथों से। उ० क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि कौन मानिहै साँची? (गी० २।६२)

सपदि–(सं०)–तुरन्त, उसी समय। उ० सपदि होहि पच्छी चंडाला। (मा० ७।११२।८)

सपन–(सं० स्वप्न)–सपना, स्वप्न। उ० लखन सपन यह नीक न होई। (मा० २।२२६।४) सपनहूँ–सपने में भी। उ० मेरे ही सुख सुखी सुख अपनो सपनहूँ नाँहि। (गी० ७।२६)

सपना–दे० 'सपन'। सपने–स्वप्न, सपना। उ० सपने कै सौतुक सुख-सस सुर सींचत देत निराइ कै। (गी० ५।२८) सपनेहुँ–दे० 'सपनेहूँ'। उ० सपनेहुँ दोस न लेसु न काहू। (मा० २।२६१।३) सपनेहु–सपने में भी। सप-नेहू–स्वप्न में भी। उ० सोवत सपनेहूँ सहै संसृति संता-प रे। (वि० ७३)

सपनो–दे० 'सपन'। उ० सपनो सो अपनो न कछू। (गी० ५।३०)

सपरन–(सं० स + पर्ण)–पत्तों सहित।

सपरब–(सं०स + पर्व)–गाठों सहित। उ०सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे। (मा० १।२८८।१)

सपुर–(सं०स + पुर) पुरवासियों के साथ। उ० देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ। (जा० १००)

सपूत–(सं० सु + पुत्र)–योग्य पुत्र, सुपुत्र। उ० सूर, सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई। (वि० १७५)

सपेला–(सं० सर्प)–साँप का बच्चा। उ० डरपावै गहि स्वल्प सपेला। (मा० ६।५१।४)

सपोल–दे० 'सपेला'।
सप्त–(सं०)-सात। उ० सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी। (मा० ७।१२१।७)
सप्तक–(सं०)–सात वस्तुओं का समूह। उ० प्रथम सर्ग जो सेष रह दूजे सप्तक होइ। (प्र० १)
सप्तदीप–(सं० सप्तद्वीप)-पुराणानुसार—जंबू, कुश, प्लक्ष, शाल्मलि, क्रौंच, शाक और पुष्कर नामक सप्तद्वीप। उ० सप्तदीप भुजबल बस कीन्हे। (मा० ७।१५४।४)
सप्तधातु–(सं०)-रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सप्तधातुएँ हैं जिनसे शरीर बना है। उ० सातें सप्तधातु निर्मित तनु करिय बिचार। (वि० २०३)
सप्तरिषि–दे० 'सप्तर्षि'। उ० तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। (मा० १।७७।४)
सप्तर्षि–(सं०)-कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, यमदग्नि और वसिष्ठ, ये सात ऋषि।
सप्तसागर–(सं०)-लवण, इक्षु, दधि, क्षीर, मधु, मदिरा, और घृत के सात समुद्र। उ० भूमि सप्तसागर मेखला। (मा० ७।२२।१)
सप्तावरन–(सं० सप्त+आवरण)-आत्मा के जल, पवन, अग्नि, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व और प्रकृति नामक सात आवरण। उ० सप्तावरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि। (मा० ७।७९ ख)
सफरी–(सं० शफरी)–मछली। उ० सफरी सनमुख जल-प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी। (वि० १६७)
सफल–(सं०)-१. कृतकार्य, कामयाब, २. फलयुक्त। उ० १. नैन लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं। (जा० २११) २. सफल पूगफल कदलि रसाला। (मा० १। ३४४।४)
सब–(सं० सर्व)-सभी, पूरे, संपूर्ण। उ० सब सोच-बिमोचन चित्रकूट। (वि०२३) सबइ–सभी, सब ही। सबनि–१.सबने, २. सबको, ३. सब पर, ४.सब, सभी। उ० १. मंगल कलस सबनि साजे। (गी० ६।२३) सबन्ह–दे० 'सबन्हि'। सबन्हि–सब, सभी। उ० पत मिस लोचनलाहु सबन्हि कहँ दीन्हेउ। (जा० ७५) सबन्हीं–सबको। सबहिं–१. सबको, २. सबने। उ० १. सबहिं समरथहिं सुखदप्रिय। (दो० ७४) २. आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ। (पा० १०१) सबहि–१. सभी, २. सबको। उ० १. सबहि को पाप बहावों। (गी० ६।८) सबहीं–दे० 'सबही'। सबही–१. सभी, २. सभी को। उ० १. बायस इव सबही सन डरई। (मा० ७।११२।७) २. कपि थाप्यौ सो मालुम है सबही। (क० ७।१०२) सबै (१)–१. सभी, २. सभी को, ३. सबसे। उ० १. दिये जगत जहँ लगि सबै सुख गज रथ घोरे। (वि०८) ३. तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै। (क० १।७)
सबद–(सं० शब्द)–शब्द, आवाज़। उ० डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना। (क० ७।१४८)
सबदीं–(सं० शब्द)-संतों के उपदेश। उ० साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान। (दो० ५५४)
सबरि–(सं० शबरी)–शबरी नामक भीलनी। उ० कीस, केवट, उपल, भालु, निसिचर, सबरि, गीध सम-दम-दया-दान हीने। (वि० १०६)
सबरी–दे० 'सबरि'।
सबल–(सं०)- बलवान, बलयुक्त। उ० सेवक सुखदायक सबल सब लायक। (वि०३७)
सबील–(अर०)-१. प्रबंध, २. रास्ता, मार्ग। उ० १. कहैं 'मैं बिभीषन की कछु न सबील की'। (क० ६।५२)
सबु–दे० 'सब'। सबुइ–सभी, सब। उ० बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु। (मा० २।४)
सबेर–दे० 'सबेरो'।
सबेरा–दे० 'सबेरो'।
सबेरे–दे० 'सबेरो'।
सबेरो–(स+वेला)-प्रातः, सबेरा। उ० सनेह सों राम को होइ सबेरो। (क० ७।३५)
सबै (२)–(सं० सवय)-एक उमर के। उ० सखा अरु बीर सबै। (क० १।७)
सब्द–(सं०शब्द)-१.शब्द, २. आवाज़, ३. वाक्य, बोल।
सभ–(सं० सर्व+ही)-सब, सभी। उ० सभ कै सकति संभु धनु भानी। (मा० १।२९२।३) सभहिं–सभी को।
सभदरसी–(सं०सर्व+दर्शिन्) सर्वदर्शी, सर्वज्ञ।
सभहि–सभा को। उ० सकल सभहि हठि हटकि तब। (मा० १।६३) सभा–(सं०)–मंडली, पंचायत, समाज। उ०संत सभा चहुँदिसि अँबराई। (मा० १।३७।६)
सभासद–(सं०)-सभा में बैठनेवाले, दरबारी। उ० राज समाज सभासद समरथ। (कृ० ६०)
सभीत–(सं०) डरा हुआ, भयभीत। उ० समुझाये उर लाइ जानि सनेहँ सभीत। (मा० २।७२)
सभीता–दे० 'सभीत'।
समं–विषमतारहित को। उ० समं सुसेव्य मन्वहं। (मा० ३।४।छं० १०) सम–(सं०)–१. समान, तुल्य, बराबर, २. सीधा, ३. ठीक, समदर्शी, ५. एकसा, सीधा, ६. मन का विषयों से रोकना, ७ एकरस। उ० २. फरसा सेल बाँस सम करहीं। (मा० २।१९१।३) ४. तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी। (मा० १।२७७।२)
समउ–(सं० समय)–समय, वक्त। उ० देव देखि भल समउ मनोज बुलायउ। (पा० २८)
समक्ष–(सं०)–सामने, सम्मुख।
समग्र–(सं०)–सारा, संपूर्ण।
समचर–(सं०) समान आचरण करनेवाला। उ०नाद निठुर समचर सिखा सलिल सनेह न सूर। (वि० १६१)
समझ–(?)–१. बुद्धि, अक्ल, २. सम्मत, राय।
समझत–१. समझता है, विचारता है, २. जानने में।
समता–(सं०)–१. सम या बराबर होने का भाव, २. सबको बराबर समझना। उ० २. तुलसी यह मत संत को बोले समता माहि। (वै० १३)
समत्थ–समर्थ। उ० समत्थ हाथ पाय को, सहाय असहाय को। (ह० ३१)
समदरसी–(सं०समदर्शिन्) सबको बराबर समझनेवाला। उ० समदरसी जानहिं हरि लीला। (मा० १।३०।३)
समदि–(?)–१. आदर-सत्कार करके, २. पूजा करके।

उ० १. सब बिधि सबहि समदि नर नाहू। (मा० १।३५४।१)
समदृक–समदर्शी। उ० दृग, समदृक स्वदृक विगत-अति स्वपर- मति परमरति तव बिरति चक्रपानी। (वि० ५७)
समधी–(सं० संबंधी)–१. पति और पत्नी के पिता आपस में समधी होते हैं। २. संबंधी। उ० १. सम समधी देखे हम आजू। (मा० १।३२०।३) २. समधी सकल सुआसिनि गुरु तिय पावनि। (जा० २१४)
समनं–दे० 'समन'। उ० १. जय राम रमा रमनं समनं। (मा० ७।१४।छं० १) समन–(सं० शमन)–१. शमन करनेवाला, २. नाश, ध्वंस, ३. यमराज। उ० ३. मातु मृत्यु पितु समन समाना। (मा० ३।२।२) समनि–नाश करनेवाली। उ० सगर सुवन साँसति समनि। (वि० २०)
समनी–दे० 'समनि'। उ० तुलसिदास कल कीरति गावत जो कलिमल समनी। (गी० ७।२०)
समय–(सं०)–१. काल, अवसर, बेला, २. समय पर, ३. मुहूर्त, साइत। उ० १. समय न धोखो लैहौं। (गी० ३।१३) २. समय सब ऋषिराज करत समाज साज समीति। (गी० ७।३५) समयन–समयों पर, समय पर। उ० तिन्ह समयन लंका दई, यह रघुबर की रीति। (दो० १६२) समयहि–समय ने ही। उ० समयहि साधे काज सब। (दो० ४४८)
समर–(सं०)-संग्राम, लड़ाई। उ० ऐसे समय समर संकट हौं तज्यो लखन सो भ्राता। (गी० ६।७)
समरत्थ–(सं० समर्थ)-सामर्थ्यवान, समर्थ। उ० असुर-सुर सर्व सरि समर समरत्थ सूरे। (ह० ३)
समरथ–सामर्थ्यवान। उ० समरथ को करि जतन निवारे। (कृ० ५७)
समरपित–(सं० समर्पित)-दी हुई, समर्पित, अर्पित। उ० सुथल समरपित कीन्हि। (प्र० ४।६।३)
समरपीं–समर्पित किया, दिया। उ० भवहि समरपीं जानि भवानी। (मा० १।१०१।१) समरपेउ–समर्पित कर दिया। उ० मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि, बचन मृदु बोलत भए। (पा० ५५)
समर्त्थ–समर्थ्यवान, समर्थ। उ० स्वामी सुसील समर्त्थ सुजान सो तोसों तुही दसरत्थ दुलारे। (क० ७।१२)
समर्थ–(सं०)–१. सामर्थ्यवान, शक्तिशाली, योग्य, २. शक्ति, बल।
समर्पई–(सं०समर्पण)-सौंपती है, देती है। उ०सेइ सोक सम र्पई, बिमुख भए अभिराम। (दो०२५८) समर्पि–सौंपकर। उ०प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं। (मा०७।१०३।१) समर्पी–समर्पण कर दी। उ० संकल्पि सिय रामहिं समर्पी सील सुख सोभा मई। (जा० १६२) समर्पे–समर्पित किया। समर्पै–१. समर्पित किया, दिया, २. अर्पण करे।
समसीला–समान शीलवाले। उ०ते श्रोता बकता समसीला। (मा० १।३०।३)
समस्त–(सं०)–सब, कुल, संपूर्ण। उ० सुचि सेवक तुम राम के रहित समस्त बिकार। (मा० १।१०४)
समा–(सं० समान)–समान, बराबर। उ० संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।९०। छं० १)
समाइ–(सं० समावेश)-घुसता है, समाता है। उ० सो सहेतु ज्यों बक्रगति ब्याल न बिलै समाइ। (दो० ३३४) समाई–घुसी, घुसती है। उ० उपमा हिय न समाई। (वि० ६२) समाउँ–समाऊँ, समाऊँगा। उ० ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपनो। (क० ७।७८) समाउ–१. घुसता है, घुसे, २. प्रवेश, ३. शक्ति, बल, ४. समता, साम्य। उ० १. इतौ न अनत समाउ। (वि० १००) ४. पै हिये उपमा को समाउ न आयो। (क० ६।५४)
समात–१. समाता, अँटता, २.लय हो जाता। उ०१.बोले मनुकरि दंडवत प्रेम न हृदय समात। (मा०१।१४।५)२.तेहि में समात मातु भूमिधर बालि के। (क०७।१७३) समाता–समा जाता, अँटता। समाति–समाती, समाती थी। उ० मिलनि परसपर बिनय अति,प्रीति न हृदयँ समाति। (मा० १।३४०) समाती–दे० 'समाति'। उ० बाचत प्रीति न हृदयँ समाती। (मा०१।६१।३) समातै-समाता है। उ० कौसल्या के हर्ष न हृदय समातै हो। (रा० २) समातो–१. समाता, अटता, स्थान पाता, २.आदर पाता। उ० २. सीतापति-सनमुख सुखी सब ठाँव समातो। (वि० १५१)
समान (१)–(सं० समावेश)-प्रवेश किया। समाना–(१)–घुसा, पैठा। समानी–घुसी,पैठी। समाने–१ घुसे, पैठे, २. पैठे हुए। उ० २. नीकेई लागत मन रहत समाने। (कृ०३८) समाहिं–समाते हैं, समा जाते हैं, डूब जाते हैं। उ० सुमिरि सोच समाहिं। (गी० ७।२६) समाहिंगे–समा जाएँगे, डूबेगें, अँटेंगे। उ० समाहिंगे कहाँ मही। (क० ६।८) समाहीं–१. प्रवेश पाते, प्रवेश पाते हैं, २. सायुज्य मुक्ति पाते हैं। उ० २. बेद बिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतंग समाहीं। (वि० ४) समैहैं–डूब जाएँगे, समा जायँगे। समैहै–(सं० समावेश)–समा जाएगा, डूब जाएगा। उ० निरखि हृदय आनंद समैहै। (गी० ५।५०)
समागत–(सं०)–१. सभा, २. आए हुए लोग।
समागम–(सं०)–१. आगमन, आना, २. मिलना, ३. समुदाय, समाज। उ० २. सुनि मुनि आजु समागम तोरे। (मा० १।१०५।१) ३. गावत सुरमुनि संत समागम। (मा० ७।५१।३)
समाचार–(सं०)–वृत्तांत, हाल। उ० समाचार सब सखिन जाइ घर घर कहे। (पा० ३३)
समाज–(सं०)–१. लोगों का समूह, २. समूह, ३. सभा, मंडली, परिषद, ४. उत्सव, जलूस या कोई अन्य समारोह, ५. तैयारी, ६. सामान। उ० ३. राजत राज समाज महँ कोसल राज किसोर। (मा० १।२४२) ४. सिव समाज जब देखन लागे। (मा० १।६५।२) समाजहिं–१. समाज को, २. समाज में।
समाजा–दे० 'समाज'।
समाजी–किसी समाज या मंडली के लोग। उ० बरषि सुमन सुरगन गावत जस हरषमगन मुनि सुजन समाजी। (कृ० ६१)
समाजु–दे० 'समाजु'। उ० ६. सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। (मा० २।२१४।४)

समाजू–दे० 'समाज'। उ० ४. बरनव राम विवाह समाजू। (मा० १।४२।२) ५. बेगि करिअ बन गवन समाजू। (मा० २।६८।२)
समाधान–(सं०)–१. ढाढ़स, धीरज, शांति, २. प्रश्न या शंका का यथोचित उत्तर। उ० १. समाधान तब भा यह जाने। (मा० २।२२७।३) समाधानु–दे० 'समाधान'।
समाधि–(सं०)–१. ध्यान में लीन, गहरा ध्यान, आसन लगाकर ध्यानस्त होना, २. नींद, ३. मृत व्यक्ति को ज़मीन में गाड़ना। उ० १. सुनि गुनगान समाधि बिसारी। (मा० ७।४२।४) ३. समाधि कीजै तुलसी को जानि जन फुरकै। (ह० ४३)
समाधी–दे० 'समाधि'। उ० १. सहज बिमल मन लागि समाधी। (मा० १।१२५।२)
समान (२)–(सं०)–१. बराबर, एकसा, २. पाँच प्राणों में एक। उ० १. चलइ जोंक जिमि बक्रगति जद्यपि सलिल समान। (दो०२१७)
समाना (२)–बराबर, समान। उ० पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। (मा० १।४।५)
समाप्त–(सं०)–खतम, पूरा।
समाप्ति–(सं०)–अंत, नाश।
समारोह–(सं०)–१. भीड़, जमावड़ा, २. उत्सव।
समास–(सं०)–संक्षेप में, खुलासा। उ० कपि सब चरित समास बखाने। (मा० ६।६०।१)
समिति–(सं०)–१. मित्रता, २. सभा, बैठक, ३. समाज।
समिती–दे० 'समिति'।
समिध–(सं०)–१. आग, २. होम की लकड़ी जो चार प्रकार की कही गई है––१. आम, २.पीपल, ३.ढाक, ४. छोंकर।
समिधि–दे० 'समिध'। उ० २. समिधि सेन चतुरंग सुहाई। (मा० १।२८३।२)
समीचीन–(सं०)–१. प्राचीन, पुराना, २. सच्चा, ३. उत्तम, अच्छा। उ० ३. गनिहिं गुनिहिं साहिब लहै सेवा समीचीन को। (वि० २७४)
समीचीनता–१. उत्तमता, अच्छाई, २. पुरानापन, प्राचीनता,३. सच्चाई, श्रेष्ठता। उ० १. सनमुख होत सुनि स्वामि समीचीनता। (वि० २६२)
समीति–(सं० समिति)–१. सभा, समाज, समूह, २. मेल, मैत्री। उ० १. रागद्वेष इरषा बिमोह बस रुची न साधु समीति। (वि० २३४)
समीती–दे० 'समीति'।
समीप–(सं०)-नजदीक, पास, सन्निकट। उ० यह भरत खंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली। (वि० १३५)
समीपा–दे० 'समीप'।
समीर–(सं०)–१. हवा, वायु, २. प्राण। उ० १. बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। (मा० १।११८।८)। समीरन–प्राणों, प्राणों को।
समीरा–दे० 'समीर'।
समीहा–(?)–इच्छा, चाहा। उ० उतपति पालन प्रलय समीहा। (मा० ६।१५।३)
समुचित–(सं०)–१. योग्य २. यथार्थ।
समुझ–(?)–१. बुद्धि, अक़्ल, २. समझो, ३. समझे। समुझइ–समझता है। समुझउँ–समझूँ। समुझत–समझते हैं। समुझनि–समझना। समुझब–समझूँगा, समझिएगा। समुझि–(?)–१. बुद्धि, ज्ञान, २. समझ करके, जान करके, ३. समझो, ४. याद करके, ५. बुद्धि में। उ० २. जाको बालबिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को। (वि० ३१) ५. समुझि परत न। (वि० १३४) समुझिबो–समझ लेना, समझलो। समुझिहि–समझ ले। समुझिय–समझिए, समझना चाहिए। समुझिहहिं–समझेंगे। समुझीं–समझा, बूझा। समुझु–बूझो, समझो। समुझें–समझे, जाने। उ० बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। (मा० २।२६१।३) समुझै–समझे।
समुझाइ–(?)–१. समझाकर, २. समझाया। समुझाइबी–समझाइएगा, समझा देना। उ० प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहिं परमिति पराधीन की। (वि० १७८) समुझाइय–समझाता हूँ। (वि० ११६) समुझाई–दे० 'समुझाइ'। समुझाउ–समझाओ। समुझाएसि–समझाया। समुझाय–समझाकर, बुझाकर। समुझायऊ–समझाया। समुझाव–समझाओ, समझाना। समुझावत–समझाता है। समुझावति–समझाती है। समुझावहिं–समझाते हैं। समुझावा–समझाया, बतलाया। उ० एहि बिधि राम सबहि समुझावा। (मा० २।८१।१) समुझैहैं–समझावेंगे। उ० कै समुझिबो कै यें समझैहैं हारेहु मानि सहीजै। (कृ० ४५)
समुदाइ–दे० 'समुदाय'। उ० राकापति षोड़स उवहिं तारागन समुदाइ। (दो० ३८६)
समुदाई–दे० 'समुदाय'। उ० बेद पढ़हिं जिमि बटु समुदाई। (मा० ४।१५।१)
समुदाय–(सं०)-समूह, झुंड।
समुद्भवं–उत्पन्न, पैदा। उ० ब्रह्मांभोधि समुद्भवं। (मा० ४।१।श्लो०) समुद्भव–(सं)–१. उत्पत्ति, जन्म, २. उत्पन्न।
समुद्र–(सं०)-सागर, सिंधु। उ० छबि समुद्र हरि रूप बिलोकी। (मा० १।१४८।३)
समुहाई–(सं० सम्मुख)–१.सामने, आगे, २. चले। उ० अतिभय त्रसित न कोउ समुहाई। (मा० ६।६५।५) समुहान–१. सामने की ओर, आगे,२. चलने को तैयार। उ० १. जनु दुकाल समुहान। (प्र० ५।७।२) समुहानी–सामने की ओर चलीं, सम्मुख हुई। उ० राम सरूप सिंधु समुहानी। (मा० १।४०।२) समुहाहि–दे० 'समुहाहीं'। समुहाहीं–सामने आती है या आते हैं। उ० तिन्हहिं न पापपुंज समुहाहीं। (मा० २।११४।३)
समूल–(सं०)-जड़ से।
समूला–दे० 'समूल'। उ० फरत करिनि जिमि हतेउ समूला। (मा० २।२६।४) समूलें–जड़ से। उ० अपडर डरेउँ न सोच समूलें। (मा० २।२६७।२)
समूह–(सं०)–झुंड, ढेर, समुदाय। उ० धूम समूह निरखि चातक ज्यों। (वि० ६०)
समूहा–दे० 'समूह'।

समृति–स्मृति, स्मरण ।
समृद्ध–(सं०)–धनवान, ऐश्वर्यशाली ।
समृद्धि–(सं०)–बढ़ती, उन्नति । उ०सुरराज सो राज समाज समृद्धि विरंचि धनाधिप सो धन भे । (क० ७।४२)
समेत–(सं०)–सहित, संयुक्त । उ० फिरि आवइ समेत अभिमाना । (मा० १।३६।२)
समेता–दे० 'समेत' ।
समेते–दे० 'समेत' । उ० खगमृग सुर नर असुर समेते । (मा० १।१८।२)
समै–(सं० समय)–समय, वक्त, अवसर । उ० सुनि कै सुचित तेहि समै समैहैं । (गी० २।३७)
समोइ–(?)–मिलाकर । उ० करत कछु न बनत हरि हिय हरष सोक समोइ । (गी० ५।५) समोई–मिला, लगा । उ० तामें तन मन रहे समोई । (वै० ५२)
समौ–(सं० समय)–समय, अवसर, प्रसंग । उ० देहिं गारि लहकौरि समौ सुख पावहिं । (जा० १६७)
सम्यक–(सं० सम्यक्)–१. अच्छी प्रकार, अच्छी तरह से, २. पूरा, सब । उ० २. सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई । (मा० ७।५४।२)
सय–(सं० शत)–सौ । उ० दिन-दिन सयगुन भूपति भाऊ । (मा० १।३६०।२)
सयन (१)–(सं० शयन)–१. सोनेवाला, २. सोना, शयन, ३.शय्या, सेज । उ० १.करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन । (मा० १।१। सो० ३)
सयन (२)–(सं०सज्ञपन)–इशारा, संकेत । सयनहिं–इशारे से, संकेत से । उ० सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे । (मा० १।२५४।२)
सयान–(सं० सज्ञान)–१. चतुर, होशियार, २. उम्र में अधिक । उ० १. जो भजै भगवान सयान सोई । (मा० ७।३३।३) सयाने–दे० 'सयान' १. चतुर लोग, २. बूढ़े लोग ।
सयानप–चतुरता, होशियारी, विवेक । उ० भूप सयानप सकल सिरानी । (मा० १।२५६।३)
सयाना–दे० 'सयान' । सयानी– 'सयाना' का स्त्रीलिंग ।
सयानि–दे० 'सयानी' । उ० २. नृप लखि कुँवरि सयानि बोलि गुरु परिजन । (जा० ८)
सयानो–दे० 'सयान' ।
सयुत–(सं० संयुक्त)–संयुक्त, समेत ।
सयो–(सं० शत)–सौओं की । उ० पाँचहि मारि न सौ सके सयो सँहारे भीम । (दो० ४२८)
सर (१)–(सं० सरस्)–ताल, तालाब । उ० तुलसीदास कब तृषा जाय सर खनतहि जनम सिरान्यो । (वि० ८८) सरनि–तालाबों में । उ० सरनि विकसित कंज । (गी० १।३५)
सर (२)–(सं० शर)–१. वाण, तीर, २. चिता । उ० १. तिलक ललित सर भृकुटी काम कमानै । (जा० ५०) २. एहि विधि सर रचि । (मा० ३।८।४) सरनि–बाणों से । उ० सरनि मारि कीन्हेसि जर्जर तन । (मा० ६।७३।५) सरन्ह–बाणों, तीरों ।
सर (३)–(फ़ा०)–सिर, शीश ।
सरई–(सं० सरण)–पूर्ण होगी, पूर्ण हो जायगी । उ० थोरे धनुष चाँड़ नहिं सरई । (मा०१।२६६२) सरत–पूरा होता, निकलता । उ० आगम बिधि जप जाग करत नर सरत न काज खरो सो । (वि० १७३) सरै–पूरा पड़े, होवे, बने । सरो–हो, हो जाय, पूरा हो । उ० प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो । (वि० २२६)
सरक–(?)–शराब की खुमार । उ० सरक सहेतु है । (क० ७।८२)
सरकस(फ़ा०)–प्रबल, उद्दंड ।
सरखत–(फ़ा०)–१. परवाना, आज्ञापत्र, २. ऋण की लेन-देन संबंधी कागज । उ० १. तुलसी निहाल कै कै दियो सरखतु है । (क० ६।५८)
सरग–(सं० स्वर्ग)–१. नाग, बैकुंठ, देवलोक, २. आकाश । उ० १. पात पात को सींचिबो न करु सरग तरु हेत । (दो०४५२) २.चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहार । (ब० १६)सरगहुँ–स्वर्ग में भी । उ०तहूँ गये मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटति नसावत । (वि० १८५)
सरगु–दे० 'सरग' । उ० १. सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारु । (मा० २।६२।४)
सरजु–सरयू नदी । उ०सरजु तीर सम सुखद भूमि-थल,गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये । (गी० १।४३)
सरजू–(सं० सरयू)–सरयू नदी जिसके किनारे अयोध्या नगरी है । उ०मज्जहिं सज्जन वृंद बहुपावन सरजू नीर । (मा० १।३४)
सरद–(सं० शरद्)–एक ऋतु, क्वार और कार्तिक का महीना । उ० बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई । (मा० १।४२।३)
सरन–(सं० शरण)–१. शरण, पनाह, संरक्षिता, २. शरणागत का रक्षक, शरण देनेवाला, ३. शरणागत, जो शरण में आये । उ० १.असित कलि व्याल राख्यौ सरन सोऊ । (वि० १०६) २. सबही को तुलसी के साहिब सरन भो । (क० ६।५६) ३. सरन सोकहारी । (वि० ५७) सरनहि– १. शरण में, २. शरण को ।
सरना–दे० 'सरन' । उ० १. तब ताकिसि रघुनायक सरना । (मा० ३।२६।१)
सरनाई–(सं०शरण)–शरण, पनाह । उ० जौ सभीत आवा सरनाई । (मा० ५।४४।४)
सरनागत–(सं०शरणागत) शरण में आया हुआ । उ०सरनागत पालक कृपालु । (गी० ५।२२)
सरनाम–(फ़ा०) प्रसिद्ध, मशहूर । उ० तुलसी सरनाम गुलाम है राम को । (क० ७।१०६)
सरपि–(सं०सर्पिस्)–घी, घृत । उ०सुरभी सरपि सुंदर स्वाद पुनीत । (मा० १।३२८)
सरब–(सं० सर्व)–सब, सभी, सर्वस्व । उ० एही दरबार है गरब तें सरब हानि । (वि० २६२)
सरबग्य–(सं०सर्वज्ञ)सब कुछ जाननेवाला, सर्वज्ञ । उ०अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान । (मा० २।२५६)
सरबरु–(सं० सरोवर)–सरवर, तालाब । उ० भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरु दीन्ह देखाइ । (मा० १।१२८)

सरबस–दे० 'सरबसु'।
सरबसु–(सं० सर्वस्व)–सब, सब कुछ, पूरा। उ० प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। (मा० २।२६।३)
सरभंग–(सं० शरभंग)–एक ऋषि जिनका दर्शन वनवास के समय राम ने किया था। उ० सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग। (मा० ३।७)
सरभंगा–दे० 'सरभंग'। उ० पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। (मा० ३।७।४)
सरम–(फ़ा० शर्म)–लाज, शर्म। उ० तेहि प्रभु को होहि जाहि सबही की सरम। (वि० १३१)
सरयू–(सं०)–एक प्रसिद्ध नदी जिसके किनारे अयोध्या है।
सरल–(सं०)–१. सीधा, जो टेढ़ा न हो, २. सच्चा, ईमानदार। उ० १.राउर सरल सुभाउ। (मा० २।१७) सरलै–१. सज्जन को भी, २. सरल ही को, सीधे या सच्चे ही को। उ० १. तुलसी सरलै संत जन। (वै० ८)
सरलता–(सं०)–सिधाई, सज्जनता।
सरव–दे० 'सर्व'। उ० सरव करहिं पाइक फहराहीं। (मा०१।३०२।४)
सरवदा–दे० 'सर्वदा'।
सरवर–(सं० सरोवर)–तालाब। उ० सभा सरवर लोक कोकनद कोकगन। (गी० १।७१)
सरवरी–(सं० शर्वरी)–रात, निशा।
सरवरीनाथ–(सं० शर्वरीनाथ)–चंद्रमा, शशि।
सरवाक–(सं० शरावक)–प्याला, संपुट। उ० उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो। (क० ५।२१)
सरषत–दे० 'सरखत'।
सरस–(सं०)–१. रसीला, रसयुक्त, २. तालाब, ३. प्रेम के साथ, ४. श्रेष्ठ, उत्तम, ५. रसिक, ६. भीगा, सिक्त, ७. अनुरक्त, ८. सुंदर। उ० १. सुरुचि सुबास सरस अनुरागा। (मा० १।१।१) ६. राम सनेह सरस मन जासू। (मा० २।२७७।२) ८. पहिरे पटभूषन सरस रंग। (गी० ७।२२)
सरसइ (१)–सरसता है, हरा भरा होता है।
सरसइ (२)–(सं० सरस्वती)–सरस्वती। उ० सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। (मा० २।१३८।२)
सरसई–(सं० सरस)–१. बढ़ानेवाली, २. सरसता, ३. कृपा। उ० १. सुखन की सुखमा सुखद सरसई है। (गी० १।८४)
सरसाई–१. अधिकता, २. उत्तमता, ३. सरसता, रसीलापन।
सरहना–(सं० श्लघन)–सराहना, प्रशंसा। उ० गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ। (पा० १६)
सरसि–दे० 'सरसी'।
सरसिज–(सं०)–कमल, नीरज। उ० मनहुँ साँझ सरसिज सकुचानो। (मा० १।३३३।१)
सरसी–(सं०)–तालाब। उ० सरसी सीपि कि सिंधु समाई। (मा० २।२५७।२)
सरसीरुह–(सं०)–कमल, पद्म। उ० धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। (मा० ३।४४।३)
सराध–(सं० श्राद्ध)–मृत पुरुष के लिए किया गया श्राद्ध, पिंडदान आदि।
सराधा–दे० 'सराध'। उ० द्विज भोजन मख होम सराधा। (मा० १।१८१।४)
सराप–(सं० शाप)–श्राप, शाप, बद्दुआ। उ० तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा। (मा० १।१३५।४)
सराफ–(अर० सर्राफ़)–सोने चाँदी का व्यापारी। उ० बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते। (मा० ७। २८।छं० १)
सरावग–(सं० श्रावक)–बौद्ध संन्यासी। उ० स्नान सरावग के लहे लघुता लहै न गंग। (दो० ३८३)
सरासन–(सं० शरासन)–धनुष। उ० छुअत सरासन सलभ जरैगो ये दिनकर-बंस दिया रे। (गी० १।६६)
सरासनु–दे० 'सरासन'।
सरासुर–(सं० शरासुर)–वाणासुर। उ० सकइ उठाइ सरासुर मेरू। (मा० १।२६२।४)
सराह–(सं० श्लाघन)–१. सराहते हैं, सराहना करते हैं, २. सराहना की। उ० १.देखि सराह महामुनि राऊ। (मा० १।३६०।२) सराहइ–१. सराहते हैं, २. सराहना करने लगी। उ० १.बकिहि सराहइ मानि मराली। (मा०२।२०।२) सराहत–सराहते हैं, सराहती हैं, सराहते हुए। सराहन–सराहने, सराहना करने। सराहसि–१. सराहना करती रही, २. सराहना करती थी, ३. सराहना करती है। उ० २. तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। (मा० २।३२।४) सराहहिं–सराहते हैं, सराहना करते हैं। उ० देखि प्रेम ब्रत नेमु सराहहिं सज्जन। (पा० ४०) सराहा–सराहना की। सराहि–सराहना करके, सराह कर। उ० सुमन बरषि हरषे सुर मुनि मुदित सराहि सिहात। (गी० ३।१७) सराहिय–१. सराहिए, २. सराहना की जाती है। उ० २. सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीचु। (दो० ३३८) सराहियत–सराहना की जाती है। सराहिबे–सराहने, सराहना करने के लिए। उ० साँकरे के सेइबे सराहिबे सुमिरबे को। (क० ७।२२) सराही–सराहा, सराहना की, २. सराहना करके। उ० २. यान करहिं निज सुकृत सराही। (मा १।३४३।३) सराहु–सराहना करो, प्रशंसा करो। उ० सुकृत निज सियराम रूप बिरंचि मतिहु सराहु। (गी० १।६५) सराहू–दे० 'सराहु'। सराहे–सराहा, सराहना की। उ० स्राद्ध कियो गीध को सराहे फल सबरी के। (क० ७।१५) सराहेहु–सराहा। सराहैं–सराहना करते हैं। उ० सुनि सत्रु सुसाहिब सील सराहैं। (क० ७।१०)
सरि–दे० 'सरिता'। उ० निरखि सैलसरि बिपिन बिभागा। (मा० १।१२५।१) सरिहिं–१. नदी में, २. नदी को। सरिही–दे० 'सरिहिं'।
सरित–दे० 'सरिता'। उ० जासु समीप सरित पय तीरा। (मा० २।२२५।३) सरितन्ह–नदियाँ। सरितहिं–१. नदी को, २. नदी में।
सरिता–(सं० सरित्)–नदी। उ० लूम लसति सरिता सी। (वि० २२)
सरिबरि–(सं० सरि+प्रति)–बराबरी, प्रतियोगिया।

उ० हमहिं तुम्हहिं सरिबरि कसि नाथा। (मा० १।२८२।३)

सरिस-(सं० सदृश)-समान, तरह। उ० कीट जटिल तापस सब सरिस-पालिका। (वि० १७)

सरिसा-दे० 'सरिस'। उ० कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। (मा० ५।१५।२)

सरिसु-दे० 'सरिस'।

सरी-(सं०)-१. तालाब, २. चश्मा, झरना, ३. नदी। उ० ३. बह समीप सुरसरी सुहावनि। (मा० १।१२५।१)

सरीर-(सं० शरीर)-देह, बदन, शरीर। सरीर लस्यौं तजि नीर ज्यों काई। (क० २।२) सरीरन्हि-शरीरों, शरीरों पर, शरीरों से। सरीरहिं-शरीर को। सरीरहीं-दे० 'सरीरहिं'। सरीरै-शरीर को। उ० पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसराय सरीरै। (गी० ६।१५)

सरीरा-दे० 'सरीर'। उ० सजल बिलोचन पुलक सरीरा। (मा० २।११४।२)

सरीरु-दे० 'सरीर'।

सरीरू-दे० 'सरीर'। उ० जनु कठोरपनु धरें सरीरू। (मा० २।४१।२)

सरीसा-दे० 'सरिस'। उ० सुनहु लखन भल भरत सरीसा। (मा० २।२३१।४)

सरु-(सं० सरस)-तालाब, सरोवर। उ० सकल-सुकृत सरसिज को सरु है। (वि० २२५)

सरुख-(सं० स+रोष)-क्रोधयुक्त। उ० दीन्ही मोहि सरुख सजाइ। (गी० ७।३०)

सरीकता-(अर० शरीक)-साझा, साझीपन। उ० रावनी पिनाक में सरीकता कहाँ रही। (क० १।५६)

सरुष-दे० 'सरुख'। उ० बोले भृगुपति सरुष हँसि। (मा० १।२८२)

सरुहाए-(?)-चंगा किया, ठीक किया। उ० समुझि रहनि सुनि कहनि बिरह ब्रन अनप अमिय औषध सरुहाए। (कृ० ५०)

सरूप (१)-(सं०)-रूपयुक्त, आकारवाला।

सरूप (२)-(सं० स्वरूप)-स्वरूप, रूप, देह, आकार। उ० जब मति यहि सरूप अटकै। (वि० ६३)

सरूपा-दे० 'सरूप'।

सरेन-दे० 'शरेण'। उ० मृग लोग कुभोग सरेन हिए। (मा० ७।१४।४)

सरोज-(सं०)-कमल, अरविंद। उ० सेवहु सिवचरन-सरोज रेनु। (वि० १३) सरोजनि-कमलों, कमलों से। उ० काक पच्छ ऋषि परसत पानि सरोजनि। (जा० ७१)

सरोजा-दे० 'सरोज'। उ० चीरि कोरि पचि रचे सरोजा। (मा० १।२८८।२)

सरोरूह-(सं०)-कमल। उ० नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो। (वि० २२८)

सरोवर-(सं०) तालाब, ताल। उ० पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा। (मा० ३।३६।३)

सरोष-(सं० स+रोष)-क्रोध के साथ। उ० सुनि सरोष भृगुनायक आए। (मा० १।२६३।१)

सरोषा-दे० 'सरोष'। उ० बंदौं खल जल सेस सरोषा। (मा० १।४।४)

सरौं-(?)-डंड, कसरत।

सर्करा-(सं० शर्करा)-चीनी, शक्कर। उ० ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ। (वि० १६७)

सर्ग (१)-(सं० स्वर्ग)-बैकुंठ, नाक।

सर्ग (२)-(सं०)-खंड, भाग। उ० प्रथम सर्ग जो सेष रह। (प्र० १)

सर्प-(सं०)-साँप, अहि। उ० रूपादि सब सर्प स्वामी। (वि० ५६)

सर्पराज-(सं०)-शेषनाग। उ० जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी। (मा० ५।३५। छं० १)

सर्पि-घी, घृत।

सर्पी-(सं० सर्पिस्)-दे० 'सर्पि'। उ० ललित सर्पी समान। (क० ५।२०)

सर्ब-(सं० सर्व)-सब, कुल, पूरा। उ० कृपा करहु अब सर्ब। (मा० १।७ घ)

सर्बग्य-(सं० सर्वज्ञ)-सब कुछ जाननेवाला। उ० त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह। (मा० १।६६)

सर्बसु-(सं० सर्वस्व)-सब, कुल। उ० हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी। (मा० ४।६।६)

सर्बा-दे० 'सर्ब'।

सर्बरीनाथ-दे० 'सरवरीनाथ'। उ० सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन। (मा० २।११६)

सर्म-(सं० शर्म)-कल्याण, सुख।

सर्व-दे० 'सर्ब'। सर्व-(सं०)-सब, कुल। उ० सर्व सर्वंस सर्वाभिरामं। (वि० ५३)

सर्वज्ञ-(सं०)-सब कुछ जाननेवाला। उ० शुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी। (वि० ५६)

सर्वतोभद्र-(सं०)-सब प्रकार से कल्याण स्वरूप। उ० सकल सौभाग्यप्रद सर्वतोभद्र-निधि। (वि० ५३)

सर्वत्र-(सं०)-सब कहीं। उ० चंद्रः सर्वत्र वंद्यते। (मा० १।१। श्लो० ३)

सर्वथा-(सं०)-सब प्रकार से।

सर्वदा-(सं०)-हमेशा, सदा। उ० सर्वदा राम भद्रानुगंता। (वि० ३८)

सर्वरि-दे० 'सर्वरी'।

सर्वरी-(सं० शर्वरी)-रात, निशा।

सर्वरीस-(सं० शर्वरीश)-चंद्रमा।

सर्वस-दे० 'सर्वस्व'। उ० जासु नाम सर्वस सदासिव पार्वती के। (गी० १।१२)

सर्वस्व-(सं०)-सब कुछ, पूरा।

सर्वा-दे० 'सर्व'। उ० बधुन समेत चले सुर सर्वा। (मा० १।६१।१)

सलज्ज-(सं०)-लज्जा के साथ। उ० कह अंगद सलज्ज जग माहीं। (मा० ६।२६।३)

सलभ-(सं० शलभ)-भुनगा, उड़नेवाला छोटा कीड़ा। उ० जातहि जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब। (मा० ७।११७ घ)

सलाक-(सं० शलाका)-सलाई, शलाका। उ० कनक सलाक कला ससि दीप सिखाउ। (ब० ३१)
सलिल (सं०)-पानी, जल। उ० चरन सलिल सब भवन सिंचावा। (मा० १।९९।४)
सलिलु-दे० 'सलिल'।
सलीले-(सं० स+लील)-लीला में, खेल में, तमाशा में। उ० झपटे पटके सब सूर सलीले। (क० ६।३२)
सलोक-(सं० श्लोक)-१. छंद, २. यश, कीर्ति।
सलोना-(सं० स+लावण्य)-सुन्दर, अच्छा। सलोनि-दे० 'सलोनी'। उ० रूप सलोनि तँबोलिनि। (रा० ६) सलोनी-अच्छी। सलोने-अच्छे, सुन्दर। उ० सलोने भे सवाई हैं। (गी० १।६६)
सवँदरसी-(सं० समदर्शी)-सबको बराबर समझनेवाला। उ० सवँदरसी जानहिं हरि लीला। (मा०१।३०।३)
सवँराए-(सं० सज्जा)-सँवारा, साजा।
सव-(सं० शव)-मुर्दा, लाश। उ० जीवत सव समान तेइ प्रानी। (मा० १।११३।३)
सवति-(सं० सपत्नी)-सौत, सपत्नी। उ० जरि तुम्हारि चह सवति उपारी। (मा० २।१७।४)
सवतिआ-सवत का, सौत का। उ० दे० 'रेसू'।
सवर-(सं० शबर)-एक जाति।
सवरि-दे० 'सवरी'। उ० कीस, केवट, उपल, भालु निसिचर सवरि गीध सम। (वि० १०६)
सवरिका-दे० 'सवरि'।
सवरी-(सं० शबरी)-एक भीलनी। दे० 'शवरी'। उ० सवरी के आश्रम पगु धारा। (मा० ३।३४।३)
सवाँग-(सं० सु+अंग)-नकल बनाना, नाटक। उ० हिलि मिलि करत सवाँग समारस केलि हो। (रा० १८)
सवाई-(सं० सपाद)-सवाया, सवा गुना। उ० दोना बाम करनि सलोने भे सवाई हैं। (गी० १।६६)
सवार-(फ़ा०)-चढ़ा हुआ, घोड़े पर चढ़ा हुआ।
सवारी-(फ़ा०)-वाहन, यान।
सवारे-(सं० स+वेला)-सवेरे। उ० जगावति कहि प्रिय बचन सवारे। (गी० २।५२)
सविता-(सं०)-१. सूर्य, २. आक, मदार, ३. बारह की संख्या। उ० १. जनु जननी सिंगार सविता है। (गी० ७।१३)
सवेरे-(सं० स+बेला)-१. प्रातः, २. पहले से, जल्दी। उ० २. जो चितवनि सौंधी लगे चितइये सवेरे। (वि० २७३)
सवेरो-दे० 'सवेरे'। उ०२.ताते कहत सवेरो। (वि०१४३)
ससंक-(सं०स+शंका)-शंका के साथ। उ०झूठे अघ सिय परिहरी तुलसी साइँ ससंक। (दो० १६६)
ससंकित-डरा हुआ। उ० सब लंक ससंकित सोर मचा। (क० ६।१५)
ससंका-सशंकित हो गया। ससंकेउ-शंकायुक्त हुआ। उ० सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। (मा० १।८६।१)
सस (१)-(सं० शशि)-चंद्रमा।
सस (२)-(सं० शशक)-खरगोश। उ० जिमि हरि-बधुहि छुद्र सस चाहा। (मा० ३।२८।८)
ससक-(सं० शशक)-खरगोश। उ० सिंह बधुहि जिमि ससक सिआरा। (मा० २।६७।४)
ससांक-(सं० शशांक)-चंद्रमा। उ० बिगत सर्वरी ससांक किरन हीन। (गी० १।३५)
ससि (१)-(सं० शशि)-१. चंद्रमा, २. चंद्रवार, ३. एक। उ०१. ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। (मा० १।९२।२) २. ससि सुरसरि सुर गाइ। (प्र० १।१।२) ३. ससि सर नव दुइ। (दो० ४५६) ससिहिं-चंद्रमा को। ससिहि-दे० 'ससिहिं'।
ससि (२)-(सं० शस्य)-खेती। उ० परसुधर विप्र ससि जलदरूपं। (वि० ५२)
ससिसेखर-(सं० शशिशेखर)-शिव, शंकर। उ० बटु वेष पेखन पेमपन व्रत नेम ससि सेखर गए। (पा०४५)
ससु-दे० 'सस'।
ससुर-(सं० श्वसुर)-पति या पत्नी का पिता। उ० सिव कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो। (मा० १।१०१। छं० १)
ससुरारि-(सं० श्वशुर+आलय)-ससुर का घर। उ० ससुरारि पिआरि लगी जब तें। (मा० ७।१०१।३)
ससुरारी-दे० 'ससुरारि'।
ससुरें-ससुराल में। उ० मइकें ससुरें सकल सुख। (मा० २।६६)
सस्त्र-(सं० शस्त्र)-हथियार। उ० अस्त्र-शस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना। (मा० ६।९२।२)
सस्त्री-(सं० शस्त्रिन्)-शस्त्रधारी। उ० सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। (मा० ३।२६।२)
सहँगे-(सं० सुलभार्घ्य)-सस्ता, जो महँगा न हो। उ० मनि मानिक महँगे किए सहँगे तृन जल नाज। (दो० ५७३)
सह (१)-(सं० सहन)-सह, सह सके। सहइ-सहता है, सहे। सहई-सहता है। सहउँ-सहूँ, सहन करूँ। सहऊँ-सहूँ, सहा करूँ, सहता हूँ। सहत-१. सहते हैं, २. सहते हुए, ३. सहता। उ० ३.सहत हौं। (वि० ७६) सहतेउ-सहता। सहनि-सहना, झेलना। उ० सील गहनि सबकी सहनि। (वै० १७) सहहिं-सहते हैं। सहहु-सहो। सहहू-१. सहो, २. सहते हो। सहि-सहकर। सहिबे-सहना। सहियतु-सहना पड़ता। सहा-सहा, बर्दाश्त किया। उ० अब बनि सब सही है। (कृ० ४२) सहे-सहा, बर्दाश्त किया। सहैंगो-सहन करेगा। उ० तुलसी परमेसुर न सहैंगो। (कृ० ४२) सहै-सह, सहना। उ० बाली रिपु बल सहै न पारा। (मा० ४।६।२)
सह (२)-(सं०)-सहित, समेत। उ० बसहु बन्धु सिय सह रघुनायक। (मा० २।१२८।४)
सहगामिनिहि-सहगामिनी को। दे० 'सहगामिनी'। उ० ३. सहगामिनिहि बिभूषन जैसे। (मा०२।३७।४) सहगामिनी-(सं०)-१. स्त्री, २. पतिव्रता, ३. जो पति के साथ सती हो।
सहचर-(सं०)-साथ रहनेवाला। सहचरी-१. पत्नी, २. सहेली।
सहज-(सं०)-१. सहोदर भाई, सगा भाई, साथ का पैदा, २. आसान, सरल, ३. स्वभाविक, स्वाभाव के। उ० ३.

चेतन अमल सहज सुख रासी। (मा० ७।११७।१)
सहजहिं–स्वभाव से ही, बिना किसी विशेषता के। उ० सहजहिं चले सकल जग स्वामी। (मा० १।२५५)
सहजेहिं–दे० 'सहजहिं'।
सहदानि–(?)–निशान, चिह्न। उ० 'मातु कृपा कीजै सहदानि दीजै' सुनि सीय। (क० ५।२६)
सहन (१)–(सं०)–सहन करना, बर्दाश्त।
सहन (२)–(अर०)–आँगन, स्थान।
सहनभँडार–कोष, खजाना। उ०जिय की परी सँभार सहनभँडार को। (क० ५।१२)
सहनाइन्ह–शहनाइयों से। उ० सुघर सरस सहनाइन्ह गावहिं। (गी० ७।२१) सहनाई–(फा० शहनाई)–एक बाजा, नफ़ीरी। उ० झाँझ मृदंग संख सहनाई। (मा० १।२६३।१)
सहम–(फ़ा०)–१. डर, २. डरकर। उ० १. समुझि सहम मोहिं अपडर अपने। (मा०१।२६।१) २.मुख सूखत सहम ही। (क० ५।८) सहमत–डर जाते हैं। उ० सुनत सहमत सूर। (क० ६।४३) सहमि–डरकर, भयभीत होकर। उ० कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी। (मा० २।२०।१) सहमी–१. डरी, २. सन्नाटा छा गया। उ० सहमी सभा। (गी० १।८३) सहमे–१. डर गए, २. सकुच गए। सहमेउ–दे० 'सहमे'। उ० जनु सहमेउ करि केहरि नादा। (मा० २।१६०।२) सहमैं–१. डर गए, २. डर जाते हैं।
सहर–(सं० शहर)–नगर, शहर। उ० बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की। (क० ७।१७०)
सहरी–(सं० शफरी)–मछली। उ० पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे। (क० २।८)
सहरु–दे० 'सहर'।
सहल–(सं० सरल)–आसान, सुगम।
सहवासी–(सं०सह + वास)–१. साथी, २.पड़ोसी। उ० २. सहवासी काचो गिलहिं। (दो० ४०४)
सहस–(सं० सहस्र)–हज़ार। उ० भूप सहस दस एकहिं बारा। (मा०१।२५१।१) सहसमुख–शेषनाग। सहसबाहु–सहस्रार्जुन जिसे परशुराम ने मारा था। सहसभुज–दे० 'सहसबाहु'। उ० सहसभुज मत्त गजराज रनकेसरी। (क० ६।१७) सहसानन–शेषनाग।
सहसा–(सं०)–एकाएक, अकस्मात्। उ० सहसा जनि पतिआइ। (मा० २।२२)
सहसाखी–हज़ार नेत्रों से, सहस्र आँखों से। उ० जो परदोष लखहिं सहसाखी। (मा० १।४।२)
सहस्र–(सं०)–हज़ार। उ० कथन उरविधर करत जेहि सहस्र जीहा। (गी०१।५।५)
सहाइ–(सं० सहाय)–१. सहायता, २. सहायक, ३. सहायता पाकर। उ० १.पाइ सो सहाइ लाल। (क०७।१४२)
सहाई–दे० 'सहाइ'। उ० १. ईस्वर करिहि सहाई। (मा० १।८३।१)
सहाय–(सं०)–१. सहायता, २. सहायक। उ० १. करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी। (मा० ३।१३७।४) २. राम सहाय सही दिन गाढ़े। (क० ७।२४)
सहाया–दे० 'सहाय'।
सहारा–(सं० सहाय)–योगदान, आश्रय।
सहावहु–(सं० सहन)–सहन करा लीजिए। सहावै–सहन कराता है। उ० तुलसी सहावै बिधि सोई सहियतु है। (क० २।४)
सहि (२)–(फ़ा० सहीह)–सत्य, सचमुच। उ० देखौं सपन कि सौतुख ससि सेखर सहि। (पा० ७७)
सहितं–साथ, समेत। सहित–(सं०)–साथ, समेत। उ० बरसत सुमन सहित सुर सैयाँ। (कृ० १६)
सहिदानी–(?)–निशान, चिह्न। उ० तुलसी यहै सांति सहिदानी। (वै० ५१)
सहिदानु–दे० 'सहिदानी'। उ० तुलसी या सहिदानु। (वै० ३३)
सही–(फ़ा० सहीह)–१. ठीक, २. सच्चा, सत्य। उ० २. तौ जानिहौं सही सुत मोरे। (गी०२।११) मु० सही भरी–गवाही दी। (क० १।१६)
सहेली–(सं० सह + एली)–सखी, साथ में रहनेवाली। उ० गावहिं छबि अवलोकि सहेली। (मा० १।२६४।४)
सहोदर–(सं०)–सगा भाई। उ० मिलै न जगत सहोदर भ्राता। (मा० ६।६१।४)
साँइ–(सं० स्वामी)–१. मालिक, २. पति, ३. भगवान्। उ० १. स्वामी की सेवक हितता सब, कछु निज साँइ दोहाई। (वि० १७१)
साँकरे–(सं० संकीर्ण)–१. संकट में, कष्ट पड़ने पर, २. कठिनाई, संकट। उ० १. साँकरे सबै पै राम राम रावरे कृपा करी। (क० ७।६७) २. साँकरे समय। (वि० ३४)
सांख्य–(सं०)–कपिल रचित एक दर्शन जिसमें प्रकृति को विश्व का मूल कारण माना गया है। उ० सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। (मा० १।१४२।४)
साँग–(?)–बर्छी, सेल। उ० गोली साँग सुमंत्र सर। (दो० ५१६)
साँगि–दे० 'साँग'। उ० लागत साँगि बिभीपन ही। (गी० ६।५)
साँगी–दे० 'साँग'।
साँच–(सं० सत्य)–१. सत्य, ठीक, २. उचित, वाजिब। साँचे–सच्चे।
साँचही–(सं० संचय)–जमा करते है, एकत्र करते हैं।
साँचा–दे० 'साँच'। उ० २.तुम जो करहु कहहु सब साँचा। (मा० २।१२७।४) साँची–सच्ची। उ० साँची कहौं कलिकाल। (क० ७।१०१)
साँचि–सच्ची, सत्य। उ० साँच सनेह साँचि रुचि जो हठि फेरइ। (पा० ६६) साँचिय–सच्ची ही। उ० कहहिं हम साँचिय। (पा० ११६) साँचिये–सचमुच। उ० साँचिये पढ़ैगी सही। (वि० २५४)
साँचु–दे० 'साँच'।
साँचो (१)–सच्चा।
साँचो (२)–(?)–साँचा, मिट्टी या लकड़ी का साँचा जिससे दूसरी चीज़ें बनाई जाती हैं। उ०सोभा को साँचो। (गी० २।२०)
साँझ–(सं०संध्या)–शाम, संध्या। उ० मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना। (मा० १।३५८।१)

साँठे-(?)-१.अड़े रहे, २.सटे रहे। उ० १.नाथ सुनी भृगुनाथ कथा बलि बालि गए चलि बात के साँठे। (क०६।२८)
सांत-दे० 'शांत'। उ० ३. धरे सरीर सांत रस जैसे। (मा० १।१०७।१)
सांति-१. दे० 'शांति', २. दे० 'शांतिपाठ'। उ० २. सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला। (मा० १।३१९।३)
साँती-दे० 'सांति'।
सांद्र-(सं०)-सघन, घन, जलयुक्त। उ० सांद्रानंद पायोद सौभाग तनुं पीतांबरं सुंदरं। (मा० ३।१।श्लो० २)
साँधा-(सं० संधान)-१. साधा, संधान किया; निशान मिलाया, २. मिला दिया। उ०१.ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा। (मा० ५।२०।१९) २. तेहि यहँ विप्र मांस खल साँधा। (मा० १।१७३।२) सांध्यो-दे० 'साँधा'।
साँप-(सं० सर्प)-सर्प, काल। उ० भइ गति साँप छछूँदरि केरी। (मा० २।५५।२) साँप छछूँदरि गति-ऐसी दशा जिसमें किसी ओर भी जाना खतरे से खाली न हो। दे० 'साँप'। साँपनि-साँपों। उ० साँपनि सो खेलैं। (क० ५।११) साँपिनि-सर्पिणी। उ० रसना साँपिनि बदन बिल। (दो० ४०)
साँपसभा-(सं० सर्प+सभा)-दिव्य परीक्षा जिसमें आग आदि द्वारा किसी के निर्दोष होने का निश्चय किया जाता है। उ० साँप-सभा साबर लबार भए। (वि० ७५)
साँवर-(सं० श्यामल)-काले रंग का, श्यामल। उ० साँवर कुँवर सखी सुठि लोना। (मा० १।२३३।४) साँवरे-दे० 'साँवर'। साँवरेहि-साँवर को, कृष्ण को। उ० ढीली करि दाँवरी बावरी साँवरेहि देखि। (कृ० १६)
साँवरि-दे० 'साँवरी'।
साँवरी-श्यामली, काली। उ० विदेहु मूरति साँवरी। (मा० १।३२४।छं० ४)
साँवरो-दे० 'साँवर'।
साँस-(सं० श्वास)-श्वास, प्राण।
साँसति-(सं० शासन)-१.ताड़ना, २.कष्ट, यातना, दुर्दशा। उ० १. साँसति करि पुनि करैं पसाऊ। (मा० १।८६।२) २. साँसति भय भारी। (वि० ३४)
सांसारिक-(सं०)-संसार संबंधी।
सा-(सं०)-वह (स्त्रीलिंग)। उ० सा मंजुल मंगलप्रदा। (मा० २।१।श्लो० २)
साइँ-(सं० स्वामी)-१. भगवान, २. स्वामी, मालिक, ३. पति, भर्ता। उ० २. पापसि रोमनि साइँ दोहाई। (मा० २।१८६।२)
साईं-दे० 'साइँ'। उ० सठ सब दिन साईं द्रोहै। (वि० २३०)
साउज-(?)-जंगली जानवर। उ० सकल कलुष कलि साउज नाना। (मा० २।१३३।२)
साकं-(?)-सहित। उ० नौमि श्रीराम सौमित्र साकं। (वि० ५१)
साक-(सं० शाक)-शाक, तरकारी। उ० करहिं अहार साक फल कंदा। (मा० १।१४४।१) साकबनिक-तरकारी बेंचनेवाला, कुँजड़ा। उ० साकबनिक मनि गुन गन जैसें। (मा० १।३।६)
साका-(सं० शाका)-१. संवत, २. प्रसिद्धि, ३. कीर्ति, ४. वीरता। साके-दे० 'साका'। उ० २. जुग जुग जग साके के। (कृ० ६१) साको करिहै-वीरता का काम करेगा। उ० लरिहै मरिहै करिहै कछु साको। (क० १।२०)
साक्षी-(सं०)-गवाह।
साकार-(सं०)-आकार सहित।
साकिनि-दे० 'शाकिनि'। उ० पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत। (वि० १६)
साख-(सं० शाखा)-१. डाली, शाखा, २. बात, विचार। उ० १. नवहिं तरु साखा। (मा० १।८५।४) २. को करि तर्क बढ़ावइ साखा। (मा० १।५२।४)
साखामृग-(सं० शाखामृग)-बंदर। उ० सठ साखामृग जोरि सहाई। (मा० ६।२८।१)
साखि (१)-(सं० साक्षी)-गवाही। उ० साखि निगमन भने। (वि० १६०)
साखि (२)-(सं० शाखिन्)-पेड़।
साखी (१)-(सं० साक्षी)-१. गवाही, २. संतों के दोहे। उ० २. साखी सबदी दोहरा। (दो० ५५४)
साखी (२)-(सं० शाखिन्)-पेड़।
साखोचारु-दे० 'साखोच्चार'। उ० जोरि साखोचारु दोउ कुल गुर करै। (मा० १।३२४।३)
साखोच्चार-(सं० शाख+उच्चार)-वंशवर्णन।
साग-दे० 'साग'।
सागर-(सं०)-समुद्र, उदधि। उ० सागर ज्यों बल बारि बढ़े। (क० ६।६)
सागरु-दे० 'सागर'।
सागु-(सं० शाक)-साग, भाजी। उ० सागु खाइ सत बरस गँवाए। (मा० १।७४।२)
साच-दे० 'साँच'।
साज-(सं० सज्जा)-१. सामान, २. ठाट-बाट, ३. समान, तरह। उ० १. दुर्लभ साज सुलभ करि पावा। (मा० ७।४४।४) २. बिघटै मृगराज के साज लरै। (क० ६।३६)
साजक-सजानेवाले, सँभालनेवाले। उ० साजक बिगरे साज के। (गी० ५।२६)
साजत-(सं० सज्जा)-साजते हैं, साजते। उ० साजत भए। (जा० १८४) साजहिं-साजते हैं। उ० साजहिं साजू। (मा० २।१८५।३) साजा-१. सजाया, २. साज। उ० २. दे० 'साजन (२)'। साजि-सजाकर। उ० साजि साजि। (जा० ६) साजिय-साजिए, साजना चाहिए। साजी-१. सजाया, सज्जित किया, २. सजाकर। उ० २. बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। (मा० १।११९।४) साजु-साजो। साजू-१. दे० 'साज', २. साजो। साजे-साजे, सजाया। उ० मंगल दिवस दसहुँ दिसि साजे। (मा० १।१९।४)
साजन (१)-(सं० सज्जन)-१. पति, प्रियतम।
साजन (२)-(सं० सज्जा)-तैयारी, बनाना, सजाना। उ० लगे चलन के साजन साजा। (मा० २।३१८।३)
साजुज्य-दे० 'सायुज्य'। उ०सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि। (मा० ६।३।१)

साटक-(?)-भूसी, छिलका, निकम्मी वस्तु। उ०सब फोकट साटक है तुलसी। (क० ७।४१)
साटि-(?)-सटाकर, जोड़कर। उ० बार कोटि सिर काटि साटि लटि रावन संकर पै लई। (गी० ५।३८)
साठ-(सं० षष्ठि)-तीस का दूना, ६०।
साढ़साती-(सं० स+अर्द्ध+सप्त)-साढ़े सात वर्ष की शनि की दशा। यह दशा जिस पर आती है उसकी बड़ी बुरी दशा होती है। उ० समय साढ़साती सरिस नृपहिं प्रजहिं प्रतिकूल। (प्र० ३।२।४)
साढ़ी-(?)-मलाई जो दूध औंटने पर ऊपर जम जाती है। उ० आपु काढ़ि साढ़ी लई। (गी० ५।३७)
सात-(सं० सप्त)-७, छः से एक अधिक। उ० छली न होइ स्वामि सनमुख ज्यों तिमिर सात हय जान सों। (गी० ५।३३)
सातइँ-(सं० साप्तमी)-सप्तमी, सप्तमी तिथि।
सातव-(सं० सप्त)-१. सातवाँ, २. सातो।
साती-सात। दे० 'साढ़साती'।
सातैं-सप्तमी, सातवीं तिथि। उ० सातैं सप्त धातु निर्मित तनु। (वि० २०३)
सात्विक-(सं०)-सत्वगुण से युक्त, सतोगुणी, सीधा, सच्चा। उ० सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। (मा० ७।११७।५)
साथ-(सं० सहित)-संग, सहित, समेत। उ० खल असंगत साथ। (वि० ६०)
साथरी-(?)-बिछौना, कुश आदि का बना बिछौना। उ० साथरी को सोइबो ओढ़िबो। (क० ७।१२५)
साथा-दे० 'साथ'।
साथी-(सं० सहित)-संगी, मित्र, साथ में रहनेवाला। उ० स्वारथ के साथी मेरे हाथ सों न लेवा देई। (वि० ७५)
साथु-दे० 'साथ'।
साथू-दे० साथ'। उ० केहि सुकृती सन होइहि साथू। (मा० २।५८।२)
सादर-(सं०)-आदर के साथ। उ० सदा सुनहिं सादर नर नारी। (मा० १।३८।१)
सादें-(फ़ा० सादः)-सीधे, साधारण। उ० सहित समाज साज सब सादें। (मा० २।३११।२)
साध (१)-(?)-इच्छा, लालसा। उ० व्याध अपराध की साध राखी। (वि० १०६)
साध (२)-(सं० सिद्ध)-सिद्ध करेगा, सिद्ध होगा। उ० सीय स्वयंबर समउ भल सगुन साध सब काज। (प्र० १।४।१) साधत-साधते हैं, सिद्ध करते हैं। साधा-१.सिद्ध किया, २. मिलाया। उ० १. अब लगि तुमहिं न काहूँ साधा। (मा० १।१३७।२) साधि-साधकर, सिद्धकर। साधी-१. सिद्ध की, २. साधने योग्य। उ० २. अकथ अनादि सुसामुझि साधी। (मा० १।२१।१) साधें-सिद्ध करने से, साधना करने से। साधे-१. सिद्ध किये, २. प्राप्त किये। उ० १. बिनु साधे सिधि होइ। (दो० १७१) साध्यो-सिद्ध किया। उ० सुर काज न साध्यो। (गी० २।३)
साधक-(सं०)-साधना करनेवाला, सिद्धि प्राप्त करने के लिए तप करनेवाला। उ० साधक क्लेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम को। (पा० ३६) साधको-साधक भी। उ० सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साधको। (क० ७।६८)
साधन-(सं०)-१. उपाय, यत्न, अभ्यास, २. कारण। उ० १. साधन करिय विचारहीन मन। (वि० ११५) २. तुलसी देखु कलाप गति साधन घन पहिचान। (दो० ५३५)
साधना-(सं०)-१. किसी कार्य को सिद्ध करने की क्रिया, २. भोग आदि का अभ्यास, तपस्या, संयम।
साधु-(सं०)-१. सज्जन, २. भक्त, विरक्त, संत, साधक, ३. सच्चा, ४. सीधा, भोला, ५. धन्य। उ० १. खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। (मा० १।६।१) २ साधु समाज तजि। (वि० २४१) ४. साधु भयो चाहत। (कृ० ३) ५. साधु साधु कहि ब्रह्म बखाना। (मा० १।१८५।४) साधुन्ह-साधुओं। साधु साधु-धन्य धन्य, वाह वाह। उ० साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी।(मा० २।१२६।४)
साधुता-सज्जनता, साधुपना।
साधू-दे० 'साधु'।
साध्य-(सं०)-सिद्ध होने योग्य, सुगम। उ० सिद्ध साधक साध्य वाच्य-वाचक रूप। (वि० ५३)
सानंद-(सं०)-आनंद के साथ। उ० साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकेई गेहँ। (मा० २।२४)
सान-(सं० शाण)-१. वह पत्थर जिस पर अस्त्र तेज़ करते हैं, २. तेज, बाढ़। उ० १. धरी कूबरी सान बनाई। (मा० २।३१।१)
साना-(सं० संधम्)-सना हुआ, मिला हुआ। उ० बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना। (मा० १।६।२) सानि-मिलाकर, सानकर। उ० बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि। (मा० १।११६) सानी-मिली हुई, सनी हुई। उ० सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भए। (मा० २।१७६। छं० १) साने-१. सने हुए, २. सान दिए। उ० १. जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलि-मल-साने। (वि० २३५) सान्यो-१. सन गया, २. सान दिया। उ० १. जनम अनेक किए नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो। (वि० ८८)
सानुकूलं-दे० 'सानुकूल'। सानुकूल-(सं० स+अनुकूल)-१. प्रसन्न, राजी, २. मुवाफिक, ३. कृपालु। उ० २. सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। (मा० १।३०३।२) सदासों सानुकूल रह मोपर। (मा० १।१७।४)
साप-(सं० शाप)-बददुवा, शाप, श्राप। उ० साप अनुग्रह होइ जेहि नाथ थोरेहीं काल। (मा० ७।१०८ घ)
सापत-(सं० शाप)-शाप देता है। सापे-१. शाप देते हैं, २. शाप देने से।
सापा-दे० 'साप'।
साबर-(सं० शावर)-१. शिव, २. एक मृग।
साम-(सं० सामन्)-१. तीसरा वेद, सामवेद, २. राजा के चार उपायों में से एक जिसमें मीठी बातों द्वारा शत्रु को अपने पक्ष में करते हैं। ३. संध्या, ४. क्षमा, ५. मेल, संधि, ६. समर्थ। उ० १. साम गाताग्रनी। (वि० २७)

२. फलि कामतरु साम साली। (वि० ४४) ५. राम सों साम किए नित है हित। (क० ६।२८)

सामग्री-(सं०)-चीज़, वस्तु, सामग्री।

सामझ-दे० 'सामझि'

सामझि-(?)-समझ, बुद्धि, ज्ञान।

सामध-(सं० संबंधी)-समधियों का, समधियों को। उ० सामध देखि देव अनुरागे। (मा० १।३२०।२)

सामरथ-दे० 'सामर्थ्य'।

सामर्थ्य-(सं०)-शक्ति, योग्यता, पराक्रम। उ० यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु नाथ तहाँ कछु चारो ? (वि० ६४)

सामीप्य-(सं०)-समीपता, घनिष्ठता।

सामुझि-दे० 'सामझि'। उ० अकथ अनादि सुसामुझि साधी। (मा० १।२१।१)

सामुहैं-(सं० सम्मुख)-सामने, सम्मुख। उ० ह्वै न सकत सामुहैं सकुच बस। (गी० २।७०)

सामुहो-(सं० सम्मुख)-सामने, सम्मुख। उ० तुलसी स्वारथ सामुहो। (दो० ४८१)

सामै-मेल ही, संधि करना ही। उ० इहाँ किये सुभ सामै। (गी० ५।२५)

सामो-(फ़ा० सामान)-सामान, सामग्री। उ० बालिमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो। (वि० २२८)

साय-(?)-जाय या शांत हो। उ० कृपासिंधु बिलोकिए जन-मन की साँसति साय। (वि० २२०)

सायकं-दे० 'सायक'। सायक-(सं०)-१. बाण, तीर, २. तलवार। उ० १. सुनत नृपहिं जनु लागहिं सायक। (मा० २।३७।३) सायकन्हि-बाणों, शरों।

सायका-दे० 'सायक'।

सायकु-दे० 'सायक'।

सायर-(सं० सागर)-समुद्र, सागर। उ० चलित महि मेरु उच्छलित सायर सकल। (क० ६।४४)

सायुज्य-(सं०)-मुक्ति का एक भेद जिसमें आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।

साराँग-दे० 'साराँग'। साराँगधर-दे० 'सारंगधर'। साराँगपानि-दे० 'सारंगपानि'।

सारंग-(सं०)-१. धनुष, २. विष्णु का धनुष, ३. मृग, ४. बादल, ५. एक राग, ६. साँप, ७. मोर की बोली, ८. शंख। उ० २. चक्र सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति बिशाला। (वि० ४६) ३. सारंग सावक लोचना। (जा० २०७) सारंगधर-(सं०)-विष्णु। उ० चलेउ सुमिरि सारंगधर आनिहि सिद्धि सकेलि। (प्र० ३।७।१) सारंगपानि-उ० सुमिरत श्री सारंगपानि छन में सब सोच गयो। (गी० १।४५)

सार-(सं०)-१. सत्व, हीर, गूदा, सत, २. खबरदारी, ३. पूछ, ४. खबरदारी, ५. पलंग, शय्या, ६. बल, पराक्रम। उ० १. पर उपकार सार श्रुति को। (वि० २०२) २. भरत सौगुनी सार करत हैं। (गी० २।८७) ३. जनकी कहु क्यों करिहै न सँभार जो सार करै सचराचर की। (क० ७।२७)

सारखी-दे० 'सारिखी'। उ० राम से न बर दुलही न सीय सारखी। (क० १।१५)

सारथि-दे० 'सारथी'। उ० सारथि पंगु दिव्यरथ गामी। (वि० २)

सारथिन्ह-सारथिओं। सारथी-(सं०)-रथ हाँकनेवाला। उ० तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ सारथी। (पा० १२१)

सारद (१)-(सं० शारदा)-१. सरस्वती, भारती, २. काव्य, कविता। उ० १. सिद्ध सची सारद पूजहिं। (वि० २२)

सारद (२)-(सं० शरद)-शरद का। उ० सारद ससि समतुंड। (गी० ७।१६)

सारदा (१)-दे० 'सारद (१)'। उ० १. अहि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो। (रा० १)

सारदा (२)-दे० 'सारद (२)'।

सारदी-(सं० शरद)-शरद ऋतु में होनेवाली। उ० कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। (मा० ४।१६।५)

सारदूल-(सं० शार्दूल)-बाघ, व्याघ्र। उ० सारदूल को स्वाँग कर कूकर की करतूति। (दो० ४१२)

सारस-(सं०)-१. एक बड़ा पक्षी, २. चंद्रमा, ३. कमल। उ० १.पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर। (मा० २।८३) ३. जटा मुकुट सिर सारस नयननि। (गी० ३।२)

सारा (१)-(सं० सरण)-किया, पूरा किया। उ० जातहिं राम तिलक तेहि सारा। (मा० ५।५४।१) सारो-पूरा किया। सार्‌यो-बनाया, पूरा किया, सँभारा। उ० काज कहा नरतनु धरि सार्‌यो। (वि० २०२)

सारा (२)-(सं० सार)-सार, तत्व। उ० अति पावन पुरान श्रुति सारा। (मा० १।१०।१)

सारा (३)-सब, समस्त, पूरा।

सारा (४)-सार, संभार। उ० करिहहिं सासु ससुर सम सारा। (मा० २।६६।१)

सारिका-(सं०)-मैना पक्षी। उ० सुक सारिका जानकी ज्याये। (मा० १।३३८।१)

सारिखी-(सं० सदृश)-तरह, सदृश। सारिखे-दे० 'सारिखी'। उ० तुम सारिखे गलित अभिमाना। (मा० १।१६१।१)

सारिखो-दे० 'सारिखी'।

सारी (१)-(सं०) सारिका पक्षी, मैना। उ० साधु असाधु सदन सुक सारी। (मा० १।७।५)

सारी (२)-(सं० शाटिका)-साड़ी, धोती। उ० सोह नवल तनु सुंदर सारी। (मा०१।२४८।१)

सारु-दे० 'सार'।

सारो-(सं० सारी)-मैना पक्षी। उ० सुक सों गहवर हिये कहै सारो। (गी० २।६६)

सार्वभौम-(सं०)-संपूर्ण पृथ्वी का।

साल (१)-(सं० शूल)-कष्ट, दुःख। सालति-छेदती है, चुभती है। उ०सुरभि सुखद असुरनि उर सालति। (गी० ७।१७) साला (१)-कष्ट दिया।

साल (२)-(सं० शाला)-मकान, घर, स्थान। उ० हिंडोल साल बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि। (गी० ७।१८)

साल (३)-(सं०)-शाल वृक्ष जो लंबा होता है। उ० साल ते बिसाल। (क० ५।१३)
साला (२)-दे० 'साल (२)'।
साली (१)-दे० 'शाली'। उ० चले सकोच महाबल साली। (मा० ६।७०।३)
साली (२)-(सं० शालि)-धान। उ० ईति भीति जस पाकत साली। (मा० २।२४३।१)
सालु-(सं० शूल)-दर्द, पीड़ा। दे० 'साल'। उ०भा कुबरी उर सालु। (मा० २।१३)
सालक-(सं० शूल)-कष्ट देनेवाला, दुखदाई।
साँवकरन-(सं० श्यामकर्ण)-वह घोड़ा जिसका सारा शरीर सफ़ेद और एक कान काला होता है। उ० साँवकरन अगनित हय होते। (मा० १।२९९।३)
सावँत-(सं० सामंत)-वीर, सामंत, पराक्रमी। उ० सावँत गो मन भावत भोरे। (क० ६।४७)
सावक-(सं० शावक)-१. बच्चा, शिशु, २. मृग तथा चिड़िया आदि का बच्चा। उ० २. केहरि सावक जन तन बन के। (मा० १।३२।४)
सावज-(?)-बनेला पशु जिसका शिकार किया जाता है। उ० पातक के व्रात घोर सावज सँहारिहैं। (क० ७।१४२)
सावत-(स० सपत्नी)-डाह, ईर्ष्या। उ० लोभ अति सरगहुँ मिटत न सावत। (वि० १८५)
सावधान-(सं०)-सचेत, सतर्क, चौकस। उ० सावधान सुनु सुमति भवानी। (मा० १।१२२।२)
सावधानी-चौकसी, सावधानता।
सावन-(सं० श्रावण)-सावन का महीना। उ० सावन सरित सिंधु रुख सूप सों घेरइ। (पा० ६६) सावनो-१.सावन में भी, २. सावन के महीने को भी। उ० १. जलद ज्यों न सावनों। (क० ५।८)
साषि-(सं० साक्षी)-गवाह, साक्षी।
साष्टांग-(सं०)-हाथ, पैर, जाँघ, हृदय, आँख, सिर, वचन और मन ये आठ अंग। इन आठ अंगों से भूमि पर लेटकर प्रणाम करना साष्टांग प्रणाम कहलाता है।
सासक-दे० 'सासकु'।
सासकु-(सं० शासक)-दंड देनेवाला, शासन करनेवाला। उ० सबको सासकु सब में सब जामें। (गी० ५।२५)
सासति-१. शासन, २.शिक्षा करना, ३.दंड देना। उ० ३. सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। (मा० १।८९।२)
सासनु-(सं० शासन)-आज्ञा। उ० सुरपति सासनु घन मनो मारुत मिलि धाए। (गी० १।६)
सासु-(सं० श्वश्रु)-पति या पत्नी की माँ। सासुन्ह-सासु गण।
सासू-दे० 'सासु'। उ० बोलि न सकहिं प्रेम बस सासू। (मा० १।३३६।४)
सास्त्र-(सं० शास्त्र)-वेदांत योग तथा न्याय आदि छः ग्रंथ। दे० 'सांख्य'।
सास्वत-(सं० शाश्वत)-अमर।
साह-(फा० शाह)-स्वामी, बड़ा, मालिक। उ० साह ही को गोत-गोत होत है गुलाम को। (क० ७।१०७)
साहनी-(सं० सेनानी ?)-१. घुड़साल के अध्यक्ष, २. नौकर, चाकर, ३. पारिषद, ४. दारोगा, ५. सेनापति। उ० १. भरत सकल साहनी बोलाए। (मा० १।२९८।२)
साहब-(अर० साहिब)-स्वामी, मालिक।
साहस-(सं०)-हिम्मत, हौसला। उ० साहस अनृत चपलता माया। (मा० ६।१६।२)
साहसिक-साहसी, हिम्मती। उ० दीनबन्धु कृपा सिंधु साहसिक सील सिंधु। (गी० १।६०)
साहसी-हिम्मती, निर्भीक, निडर। उ० बीर रघुबीर को समीर सूनु साहसी। (क० ७।४३)
साहि-(फ़ा० शाह)-बादशाह, स्वामी। उ० राम बोला नाम हों गुलाम राम साहि को। (क० ७।१००)
साहिब-दे० 'साहब'। उ० साहिब सरोषु दुनी दिन-दिन दारदी। (क० ७।१८३) साहिबहिं-साहब को, स्वामी को। साहिबिनि-साहब की स्त्री। उ० मेरी साहिबिनि सदा सीस पर बिलसति। (क० ७।१३६)
साहिबी-स्वामित्व, मालिकपन। उ० सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीताराम। (दो० ५७०)
साहित-(सं० सहित)-१. मिलना, प्रेम करना, २. सामग्री, ३. साहित्य। उ० १.साहित प्रीति प्रतीति हित। (प्र० ७।१।१)
साहु-दे० 'साह'। उ० तुला पिनाक साहु नृप। (गी० ५।१२)
साहेब-दे० 'साहब'। स्वामी, मालिक। उ० साहेब सुभाय कपि साहेब सँभारिए। (ह० २०)
साहेबी-(अर० साहब)-प्रभुता, ठकुराई, हाकिमी।
साहैं-(सं० सम्मुख)-दरवाज़े के बाजू। उ० द्वार बिसाल सोहाई साहैं। (गी० ७।१३)
सिंगरौर-(सं० शृङ्गवेरपुर)-एक स्थान। उ० सो जामिनि सिंगरौर गवाँई। (मा० २।१५१।१)
सिंगार-(सं० शृङ्गार)-शृङ्गार, सजावट। उ० सिंगार सिसु तरु। (गी० १।२४)
सिंगारा-दे० 'सिंगार'।
सिंगारु-दे० 'सिंगार'।
सिंगारू-दे० 'सिंगार'।
सिंघल-दे० 'सिंहल'। उ० जनु सिंघल बासिन्ह भयउ। (मा० २।२२३)
सिंघिनिहि-(सं०सिंह) १.सिंहिनी को,२.सिंहिनी के लिए। उ० १. सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु। (मा० २।३६)
सिंचाई-(सं० सिंचन)-सिंचवाया। सिंचावा-सिंचवाया, छिड़काया। उ० चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा। (मा० १।६६।४) सिंचि-सिंचित होकर, सींची जाकर।
सिंदूर-(सं०)-एक लाल रङ्ग जिसे सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ माँग में लगाती हैं। सिंदूरबंदन-माँग में सिंदूर डालने की रीति। उ०सिंदूरबन्दन होम लावा होन लागीं भाँवरी। (जा० १६२)
सिंधु-(सं०)-समुद्र, सागर। उ० सिंधु मेखला अवनि पति। (ह० १) सिंधुसुत-१. जलंधर दैत्य, २. चंद्रमा। उ० १. सिंधुसुत गर्व गिरि वज्र गौरी संभव दक्ष मख अखिल विधंस कर्ता। (वि० ४९) सिंधुसुता-लक्ष्मी।

सिंधो–हे सिंधु । उ० काव्य कौतुक कला कोटि सिंधो । (वि० २८)

सिंधुर–(सं०)–हाथी । उ०सिंधुर मनि माल । (गी० १।८८)

सिंसुपा–(सं० शिंशपा)–शीशम का पेड़ । उ० तरु सिंसुपा मनोहर जाना । (मा० २।८९।२)

सिंह–(सं०)–१. श्रेष्ठ, उत्तम, २. शेर, बबर । उ० २. सिंह बधुहि जिमि ससक सियारा । (मा० २।६७।४)

सिंहल–(सं०)–लंका ।

सिंहासन–(सं०)–राजा या देवता के बैठने का आसन । उ० सुभग सिंहासनासीन सीतारामन । (गी० ७।६)

सिंहिका–(सं०)–एक राक्षसी जो राहु की माता थी यह समुद्र में रहती थी और छाया से जीवों को पकड़कर खा जाती थी । उ० सिंहिका सँहारि, बलि, सुरसा सुधारि छल । (ह० २७)

सिअनि–(सं० सीवन)–सिलाई, सीवन । उ० सिअनि सुहावनि टाट पटोरे । (मा० १।१४।६)

सिअरें–(सं० शीतल)–ठंडे, शीतल । उ० सिअरें बचन सूखि गए कैसें । (मा० २।७१।४)

सिकता–(सं०)–बालू, रेत । उ०बारि मथे घृत होइ सिकता ते बरु तेल । (मा० ७।१२२ क)

सिकोरी–(सं० संकुचन)–सिकोड़ी ।

सिखंड–(सं० शिखंड)–मोर पक्षी । उ०सिरनि सिखंड सुमन दल मंडन । (गी० १।५४)

सिख (१)–(सं० शिक्षा)–उपदेश, शिक्षा । उ० सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई । (मा० २।२८७।३)

सिख (२)–(सं० शिखा)–चोटी, शिखा । उ० नख सिख देखि राम कै सोभा । (मा० १।२३४।२)

सिखइ–(सं० शिक्षा)–१. सिखाकर, २. सीख रहा है । उ० २. सिखइ धनुष विद्या बर बीरू । (मा० २।४१।२) सिखइअ–शिक्षा दीजिए । सिखई–सिखाई है, सिखा रहा है । उ० कै ये नई सिखी सिखई हरि निज-अनुराग-बिछोहीं । (कृ० ४१) सिखन–सीखने को । उ० नगर रचना सिखन को बिधि । (गी० ७।२३) सिखब–१. सीखूँगा, सीखिएगा । सिखयो–१. सिखाया, २. सिखाया हुआ । उ० २. देत सिख, सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि । (वि० १५८) सिखवो–सिखाओ, शिक्षा दो । सिखि–सीख । उ० जौ लौं हो सिखि लेउँ बन रिषि रीति बसि दिन चारि । (गी०७।२९) सिखे–१.सीखे, २.सीखेने से ।

सिखर–(सं० शिखर)–१. चोटी, पर्वत की चोटी,२. मकान का ऊपरी भाग । उ० १. बहु मनि जुत गिरि नील-सिखर पर कनक बसन रुचिराई । (वि० ६२) सिखरनि–शिखरों, शिखरों पर ।

सिखा–(सं० शिखा)–चोटी । उ० अरुनसिखा धुनि कान । (मा० १।२२६)

सिखाइ–(सं०शिक्षा)-शिक्षा देकर, सिखलाकर । उ० जनक जानकिहि भेटि सिखाइ सिखावन । (जा०१९१) सिखाई–सिखाया, सिखलाया । सिखाए–सिखलाए, बतलाए । सिखाव–१. सिखलाते हैं, २. सिखाओ । सिखावत–१. सिखाते हुए, २. सिखाते हैं । सिखावहि–सिखाता, सिखलाता है । सिखावहिं–सिखाते हैं, सिखलाती हैं । उ०चतुर नारि वर कुँवरिहि रीति सिखावहिं । (जा० १६७) सिखावहु–सिखलाओ, बतलाओ । सिखावा–१. उपदेश, २. उपदेश दिया । उ० १. मनु हठ परा न सुनउ सिखावा । (मा० १।७८।३)

सिखावन–शिक्षा देना, उपदेश देना । उ० राजकुमारि सिखावन सुनहू । (मा० २।६१।१)

सिखि (१)–(सं० शिखिन्)–मोर, सिखिन–मोर गण । सिखिनि–मोरनी । उ० मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी । (मा० २।२९५।२)

सिखि (२)–(सं० शिक्षा)–उपदेश । उ० जौं लौं हौं सिखि लेउँ । (गी० ७।२९)

सिखी (१)–सिखी हुई ।

सिखी (२)–(सं० शिखिन्)–१. मोर, २. आग ।

सिगरि–(सं समग्र)–सब, संपूर्ण । सिगरियै–संपूर्ण को ही, सबको ही । उ० सिगरियै हौं हीं खैहौं । (कृ० २)

सित–(सं०)–१. श्वेत, सफेद, २. उज्वल, चमकीला, ३. साफ, ४. शुद्ध, ५. चाँदी, ६. शुक्ल । उ० १. सित सुमन हास लीला समीर । (वि० १४) ६. सित पाख बाढ़ति चंद्रिका । (पा० ९)

सितलाई–(सं० शीतल)–शीतलता । उ० गोपद सिंधु अनल सितलाई । (मा० ५।५।१)

सिथिल–दे० 'शिथिल' । उ० ५. रोमांच लोचन सजल सिथिल बानी । (वि० २९)

सिद्ध (१)–(सं०)–१. जिसका साधन हो चुका हो, प्राप्त, २. मुक्त, ३. परिपक्व, पका, ४. ज्ञानी, महात्मा, ५. एक देव जाति । उ० ४. मुनिधीर योगी सिद्ध संतन । (मा० १।५१। छं० १) ५. हहरि-हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै । (क० ६।४२) सिद्धाः–सिद्ध लोग । उ० याभ्यां बिना न पश्यंति सिद्धाः स्वांतस्थमीश्वरम् । (मा० १।१ श्लो०२)

सिद्ध (२)–(?)–सीधा, भोजन बनाने की आटा, दाल आदि सामग्री । (मा० १।३३३।२)

सिद्धांत–(सं०)–मत, उसूल, नियम । उ० बरनहुँ रघुबर बिसद जसु स्रुति सिद्धांत निचोरि । (मा० १।१०९)

सिद्धि–(सं०)–१. आठ सिद्धियाँ–अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और बशित्व, २. काम पूरा होना, सफलता, कामयाबी, ३. मंत्र की सिद्धि । उ० १. जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्या नास । (मा० २।२९)

सिधरिहहिं–(?)–जाएँगें, सिधारेंगे । उ० ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं । (मा० ६।३।१)

सिधाई–(?)–गई, चली गई । उ० पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई । (मा० ६।१००।१) सिधाए–गए, चले गए । उ० सब मुनीस आस्रमनि सिधाए । (मा०१।४५।२) सिधायो–गया । उ० बहुरि विभीषन भवन सिधायो । (मा० ६। ११७।२) सिधावहिं–जाते हैं । सिधावहीं–जाते हैं । सिधावहु–जाओ । सिधावा–गया, चला गया । सिधैहैं–जावेंगे । सिधारेंगे । उ० सहित कुशल निज नगर सिधैहैं । (गी० ५।५१)

सिधारहिं-(?)-जायँगे, सिधारेंगे। सिधारहि-चली जावे, चली गई। उ०भइ बड़ि बार आलि कहुँ काज सिधारहि। (पा०७३) सिधारि-चला जा। सिधारिए-जाइए, चले जाइए। सिधारा-गया। सिधारी-चली गईं, गमन किया। सिधारे-गए, चले गए। उ० गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ के। (क० २।६)

सिधि-दे० 'सिद्धि'। उ० १. रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। (मा० २।२।२)

सिबि-दे० 'सिवि'। उ० सिबि दधीचि हरिचंद कहानी। (मा० २।४८।३)

सिमिटि-(?)-सिकुड़ना, बटुरना। उ० होत सिमिट इक पासा। (वि० ६२)

सिय-(सं० सीता)-सीता, जानकी। उ० सिय आता के समय भौम तहँ आयउ। (जा० १६६) सियरमन-(सं० सीता+रमण)-राम।

सियत-(सं० सीवन)-१. सीता है, २. सीने में। उ० २. सियत मगन। (वि० १३२) सियनि-सिलाई। उ० अपनिहिं मति बिलास अकास महँ चाहत सियनि चलाई। (कृ० ५१) सियो-मिलाया, बनाया, सिला, टाँका। उ० तुलसिदास बिहरयो अकास सो कैसे जात सियो है। (गी० ६।१०)

सियरे-(सं० शीतल)-१. ठंडा, २. छाँह, छाया, ३. कच्चा। उ० २. सुन्दर बदन ठाढ़े सुरतरु सियरे। (गी० १।४१)

सिया-(सं० सीता)-जानकी, सीता। उ० तेरे स्वामी राम से स्वामिनी सिया रे? (वि० ३३)

सियार-(सं० श्रृगाल)-स्यार, गीदड़। उ० खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। (मा० २।१५८।३)

सिर-(सं० शिरस्)-१. शीश, सर, २. श्रेष्ठ, ३. चोटी। उ० १. सिर का काँधे ज्यों बहत। (वि० १३३) सिरउ-सिर भी। सिरनि-सिरों पर। उ० गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं। (मा० १।१६७।४) सिरन्ह-सिरों, सिरों पर। सिरन्हि-दे० 'सिरन्ह'। सिरसि-सिर पर। उ० सिरसि टिपारो लाल। (गी० १।४१)

सिरजहिं-(सं० सृजन)-बनाते हैं, बनावें। उ० जगदीस जुवति जिनि सिरजहि। (पा० २५) सिरजा-बनाया, निर्माण किया। उ० साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरजा। (मा० १।१५।३)

सिरताज-(सं० शिरस्+फ़ा० ताज)-शिरोमणि, श्रेष्ठ। उ० जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज। (मा० १।३२६)

सिरमनि-शिरोमणि, श्रेष्ठ। उ० पुरजन सिरमनि रामलला। (गी० १।१६)

सिरमोर-दे० 'सिरमौर'।

सिरमौर-(सं० शिरस्+मुकुट)-१. सरताज, शिरोमणि, श्रेष्ठ, २ स्वामी, ३. राजा। उ० १. जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमौर हैं। (गी० १।७१)

सिररुह-(सं० शिरोरुह)-बाल। उ० बिथुरित सिररुह-बरूथ कुंचित बिच सुमन जूथ। (गी० ७।३)

सिरस-(सं० शिरीष)-एक पेड़ जिसका फूल अत्यंत कोमल होता है। उ० सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा। (मा० १।२५८।३)

सिरा-(सं० शिरस्)-१. सिर, २. अंत, छोर, ३. नाक। उ० १. भटन्ह के उर भुज सिरा। (मा० ३।२०। छं० १)

सिराइ-(सं० शीतल ?)-१. शांत होगा, २. समाप्त होगा, ३. शांत होता है, शीतल होता है। उ० २. पाप तेहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ। (गी०७।३०) सिराई-१. चुके, खतम हो, २. शांत हो ठंडा, हो। सिराओं-१. समाप्त करूँ, २. शीतल करूँ। सिराति-१. ठंडी होती, शीतल होती, २. बीतती। उ० २. भई जुग सरिस सिराति न राती। (मा० २।१५१।२) सिराती-दे० 'सिराति'। सिरान-१. शीतल हो गया, २. पूरा हो गया। उ० १. सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा। (मा० २।७०।२) सिराना-१. शीतल हो गया, २. बीत गया, ३. पूरा हो गया। सिरानी-बीती, समाप्त हुई। उ० राम कृपा भवनिसा सिरानी। (वि० १०५) सिराने-१. शीतल हुए, २. डूबे, ३. समाप्त हुए। सिरानो-समाप्त हो गहा, तय हो गया। उ० चले कहत चाय सों सिरानो पथ छन में। (क० ५।३१) सिरान्यो-बीत गया। उ० खर खनतहिं जनम सिरान्यो। (वि० ८८) सिरावइ-दे० 'सिरावै'। सिरावै-१. ठंडा करे, शीतल करे, २. शांत करे। उ० १. बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत। (मा० ७।११७) सिरावौं-१.संतोष कर लेता हूँ, २.शांत करता हूँ। सिराहिं-१. बीतते हैं, २. पूरे होते हैं, ३. शांत होते हैं। सिराहि-१.बीते, २.ठंठा हो। सिराहीं-१.बीते, व्यतीत हो, २.शांत हो, ३. नाश हो। उ० १. रघुबर चरित न बरनि सिराहीं। (मा० ७।५२।२) ३. करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। (वि० १२८)

सिरिजा-(सं० सृजन)-रचा, बनाया, उत्पन्न किया। उ० ताकर दूत अनल जेहिं सिरिजा। (मा० ५।२६।४)

सिरिस-दे० 'सिरस'।

सिरु-दे० 'सिर'।

सिरोमनि-दे० 'शिरोमणि'। उ० भगत सिरोमनि मनिहैं। (वि० ६५) सिरोमने-हे शिरोमणि, हे श्रेष्ठ।

सिल-(सं० शिला)-१. पत्थर, २. वह पत्थर का टुकड़ा जिस पर लोढ़े से चीजें पीसते हैं। उ० २. फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढुक पहार। (दो० ४६०) सिलनि-शिलाओं पर, पत्थरों पर। उ० सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग जप तप मन लाई। (गी० २।४६)

सिला-(सं० शिला)-१. पत्थर, २. सिल, सिलौटी, ३. अहिल्या। उ० १. सिला सप्रेम भई है। (गी० २।७८) ३. कौसिक सिला जनक संकट हरि। (गी० ५।३७)

सिलिपि-(सं० शिल्प)-शिल्पकारी, कारीगरी। उ० खेती बनि विद्या वनिज सेवा सिलिप सुकाज। (प्र०७।२।७)

सिलीमुख-(सं० शिलीमुख)-१. वाण, २. बंदर, ३. भौंरा। उ० १. या ३. चलि रघुबीर सिलीमुख धारी। (मा० ६।६२।४)

सिलोक-(सं० श्लोक)-श्लोक। उ० पुन्यसिलोक तात तर तोरें। (मा० २।२६३।३)

सिल्पि–(सं० शिल्पी)–शिल्पी । उ०सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला । (मा० ६।२३।३)
सिव–दे० 'शिव' । उ० सेष सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्त्वदरसी । (वि०४७) सिवहिं–शिव को ।
सिवता–(सं०शिवता)–शिवत्व, कल्याणकरता ।
सिवा–(सं० शिवा)–पार्वती, गौरी । उ० सिवा समेत संभु सुक नारद । (वि० ३६)
सिवि–(सं०शिवि)–एक राजा ।दे०'शिवि' ।
सिविका–(सं० शविका)–पालकी, डोली ।
सिष–(सं० शिक्षा)–१. सीख, शिक्षा, २. शिष्य । उ० २. सुचि सेवक सिष निकट बोलाए । (मा० २।२१३।२)
सिष्य–(सं० शिष्य)–शिष्य, चेला । उ० साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए । (मा० २।१०१।२)
सिसकत–(अनु० सी सी)–रोता है, सिसकता है । उ० सिसकत सुर बिधि हरिहर हैं । (गी० २।४५)
सिसिर–(सं०शिशिर)–शिशिर ऋतु, माघ-फागुन का महीना । उ० सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू । (मा० १।४२।१)
सिसु–(सं० शिशु)–१. लड़का, बालक, बच्चा, २. छोटा । उ० १. सिसु अरनि अरो । (वि० २२६) २. सिसु तरु फरयो है अद्भुत फरनि । (गी० २४) सिसुन्ह–लड़कों, लड़कों को । उ० लोचन सिसुन्ह देहु अमिय घूटी । (गी० २।२१)
सिस्न–(सं० शिश्न)-लिंग, पुरुषेंद्रिय । उ० सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन । (मा० ७।४०।१)
सिहाई–(सं० ईर्ष्या ?)–ईर्ष्या करते थे, ललचते थे । उ० अवधराजु सुरराजु सिहाई । (मा० २।३२४) सिहाउँ–सिहाता हूँ, ललचाता हूँ । सिहाऊ–१. बड़ाई करे, २. ईर्ष्या करे । उ० १. थापिय जन सब लोग सिहाऊ । (मा०२।८८।४) सिहात–१. प्रसन्न होते हैं, २. ईर्ष्या करते हैं, ३. प्रशंसा करते हैं । उ०१. चक्रपानि चंडीपति चंडिका सिहात । (क० ६।४१) ३. बिबुध सिद्ध सिहात । (ह० २) सिहाहिं–१. प्रसन्न होते हैं, २.ईर्ष्या करते हैं, ३. सराहना करते हैं । उ० ३. लोकप सकल सिहाहिं । (गी० १।२) सिहाहि–ईर्ष्या करती है । उ० रति सिहाहि लखि रूप गान सुनि भारति । (पा० १३१) सिहाहीं–१. ईर्ष्या करते हैं, २. सराहना करते हैं । सिहाहूँ–प्रसन्न होता हूँ । उ० बिलोकि अब तें सकुचाहु सिहाहूँ । (वि० २७५)
सिहोरे–(सं० सेहुंड)–एक कँटेदार पेड़ । उ० तुलसी दलि रूँध्यो चहैं सठ साखि सिहोरे । (वि० ८)
सींक–(सं० इषीका)–पतला तृण । उ० सीक धनुष हित सिखन सकुचि प्रभु लीन । (ब० १६)
सींच–(सं० सिंचन)–१. सींचती है, २. सींचनेवाली । उ० १. मंदाकिनि मालिनि सदा सींच । (वि० २३) सींचत–१. सींचता है, २. सींचने से । उ० २. आँच पय उफनात सींचत । (गी० ७।३६) सींचति–छिड़कती है, सींचती है । सींचा–छिड़का, जल से सराबोर किया । सींचि–१. सींचकर, छिड़ककर, २. सींचा । उ० १. बीथीं सींचि, सुगंध सुमंगल गावहिं । (जा० २०४) सींचिये–पानी दीजिए । सींचीं–सींच दिया, सींचा । उ० बीथीं सींचीं चतुर सम । (मा०१।२६६) सींचु–पानी दो,सींचो ।
सींचो–१. सींचा, २. जो सींचा गया हो, पाला-पोसा । उ० १. बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो । (वि० ७२)
सींव–(सं० सीमा)–हद, सीमा, मर्यादा । उ० नेह देह सुधि सींव गई । (गी० ५।३८)
सी (१)–(सं० सीवन)–सीकर, सी । उ० सेवक को परदा फटे तू समरथ सीले । (वि० ३२)
सी (२)–(सं० सम)-समान, तरह । उ० मन जोगवति रहति रमा सी । (वि० २२)
सी (३)–(सं० सीता)–सीता, वैदेही । उ० मूल दुहूँ को दयालु दूलह सी को । (वि० १७६)
सीक–दे० 'सींक' ।
सीकर–(सं)–जल की बूँद,छींटा । उ०जल सीकर महि रजगनि जाहीं । (मा० ७।५२।२) सीकरनि–बूँदों से । उ० कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ । (मा० २।२३।१)
सीख–(सं० शिक्षा)–शिक्षा, पाठ, उपदेश । उ० छमा रोष के दोष गुन सुनि मनु मानहिं सीख । (दो० ४२७)
सीखि–(सं०शिक्षा)–१. दे०'सीख', २. सीखकर, ३. सीखो । उ० १. सीखि लई । (क० ७।६२)
सीची–(स० सिंचन)–सींचा, सींच दिया । सीचेउ–सींचा ।
सीझे–(सं० सिद्ध)–तपे, आँच सहे । उ० लै करसी प्रयाग कब सीझे । (वि० २४०)
सीठ–(सं० शिष्ट)–नीरस, फीका, सिट्ठी । उ० रागिहि सीठ बिसेषि थलु । (प्र० २।६।१) सीठि–दे०'सीठ' । उ० तौलौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि । (दो० ८३) सीठे–दे० 'सीठ' । उ० ह्वै जाते सब सीठे । (वि० १६९)
सीत–(सं० शीत)–१. शीतल, ठंडा, २. पाला, ३. जाड़ा, ४. ओस । उ० ३. सीता सीत निसा सम आई । (मा० ५।३६।५)
सीतल–(सं० शीतल)–१. ठंडा, २.शीतल, शांत । उ० १. सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता । (मा०२।४५।४) २. तुलसी ऐसे सीतल संता । (वै० ४७)
सीतलता–(सं०शीतलता)–शीतलता, ठंडक । उ० सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ । (ब० ३३)
सीतलताई–दे० 'सीतलता' । उ० तन पूजियो होत सीतलताई । (क० ७।५८)
सीतहिं–सीता को । सीतहि–१. सीता को, २. सीता ने । सीतां–सीता को । उ० सर्वश्रेयस्करीं सीतां । (मा० १।१। श्लो० ५) सीता–(सं०)–जनक की पुत्री और राम की स्त्री । एक बार जनक के राज्य में वर्षा नहीं हुई । उन्होंने यज्ञ किया और अपने हाथ से हल चलाया । हल जोतते समय एक घड़ा निकला जिससे एक अपूर्व कन्या प्राप्त हुई । हल की रेखा को सीता कहते हैं । उसमें से निकलने के कारण कन्या का नाम 'सीता' पड़ा । उ० सीतान्वेषण तत्परौ पथि गतौ भक्तिप्रदौ तौहिनः । (मा०४।१।श्लो०१) सीतापति–रामचंद्र । उ० सीतापति सनमुख समुझि । (दो० १७१) सीतापतिहि–राम को । सीतारमण–रामचंद्र । सीते–हे सीता । उ० सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा । (मा० ३।२६।५) सीतेस–(सं० सीतेश)–रामचंद्र । उ० जयति सीतेस सेवा सरस । (वि० ३८)

सीदत-(सं० सीदति)-दुख पाता है। उ० तुलसिदास सीदत निसदिन देखत तुम्हारि निठुराई। (वि० ११२) सीदहिं-दुखी होते हैं, कष्ट पाते हैं। उ० फूलैं फलैं खल सीदहिं साधु पल पल। (क० ७।१७१)

सीद्यमान-दुःखी, संतप्त। उ० साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीन की। (क० ७।१७७)

सीध-(सं० सिद्ध ?)-बेपका अन्न। आटा, चावल, दाल आदि। उ० तहँ तहँ सीध चला बहु भाँती। (मा० १।३३३।२)

सीधा-(?)-सरल, सामने, सादा, भोला। सीधे-दे० 'सीधा'। उ० लिए छरी बेंत सीधे विभाग। (गी० ७।२२)

सीधो-दे० 'सीधा'। उ० पान पकवान विधि नाना को सधानो सीधो। (क० ५।२३)

सीप-(सं० शुक्ति, प्रा० सुत्ति)-सीपी, एक समुद्री जीव। उ० हृदय सिंधु मति सीप समाना। (मा० ३।११।४)

सीपर-(फ़ा० सिपर)-ढाल। उ० लागति साँगि बिभीषन-पर सीपर आपु भये हैं। (गी० ६।५)

सीपि-दे० 'सीप'। उ० सरसीं सीपि कि सिंधु समाई। (मा० २।२५७।२)

सीपी-दे० 'सीप'।

सीम-(सं० सीमा)-हद, अवधि, मर्याद।

सीमा-दे० 'सीम'। उ० रूप सुख शील सीमाऽसि भीमासि। (वि० १५)

सीय-(सं० सीता)-जानकी, सीता। उ० सीय ज्योंही त्योंही रहीं। (गी० ५।७) सीयरवन-(सं० सीता+रमण)-रामचंद्र।

सीया-दे० 'सीय'।

सील-दे० 'शील'। उ० १. सील-समता-भवन विषमता-मति-समन। (वि० ५५) ३. धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ। (मा० १।२६४।२) सीलन्ह-शीलों। सीलहिं-शील को।

सीलता-(सं० शीलता) परायणता, आचरण करना।

सीला (१)-दे० 'शील'। उ० १. हेतु रहित परहित रत सीला। (मा० ३।४६।४)

सीला (२)-(सं० शिला)-अहल्या। उ० कौने कियो समाधान सनमान सीला को। (वि० १८०)

सीलु-दे० 'सील'।

सीवँ-दे० 'सीव (१)'।

सीव (१)-(सं० सीमा)-सीमा, हद, मर्यादा। उ० दर ग्रीव सुख सीव। (वि० ६१)

सीव (२)-(सं० शिव) शिव।

सीस-(सं० शीश)-सिर, शीश। उ० सीस उघारि दिवाई धाहैं। (गी० ७।१३) सीसनि-सिरों पर। सीसन्ह-सिरों पर। उ० देहिं सुलोचन सगुन कलस लिए सीसन्ह। (पा० ६०)

सीसा-दे० 'सीस'। उ० पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। (मा० २।१११।२)

सीसु-दे० 'सीस'।

सीसू-दे० 'सीस'।

सुंड-(सं० शुंड)-सूँड, हाथी का हाथ और नाक। उ० नाग सुंड समभुज चारी। (वि० ६३)

सुंदर-दे० 'सुंदर'। उ० शिवं सुंदरं सच्चिदानंद कंदं। (वि० १२) सुंदर-(सं०)-अच्छा, बढ़िया, उमदा, खूबसूरत, रुचिर, रमणीय। उ० मनिकर्निका बदन ससि सुंदर। (वि० २२)

सुंदरता-(सं०)-खूबसूरती, अच्छाई, सौंदर्य। उ० जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई। (मा० १।६६।छं० १) सुंदरताहु-सुंदरता को। उ० नयन सुखमा अयन हरत सरोज सुंदरताहु। (गी० १।६५)

सुंदरताई-सुंदरता, खूबसूरती। उ० हरि सन मागौं सुंदरताई। (मा० १। १३२।१)

सुंदरि-१. सुंदरी, अच्छी, २. स्त्री, सुंदर स्त्री, ३. सुंदरियाँ। ३. गावीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं। (मा० १।६६।छं० १)

सुंदरी-१. अच्छी, खूबसूरत, २. सुंदर स्त्रियाँ। उ० २. सुर सुंदरी करहिं कल गाना। (मा० १।६१।२)

सु-(सं०)-सुंदर, अच्छा। सुंदरता या अच्छाई बोधक एक उपसर्ग जो अन्य शब्दों के पूर्व लगाया जाता है। जैसे सुगति, सुकाल, सुगान, सुग्रंथ, सुगेह तथा सुगुरु आदि। उ० बाजहिं निसान सुगान नभ चढ़ि बसह बिधु भूषन चले। (पा० १०८)

सुअ-(सं० सुत)-पुत्र, लड़का। उ० कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गतलाज। (मा० २।१७८)

सुअन-(सं० सुत)-पुत्र, लड़का, बेटा।

सुअर-(सं० शूकर)-सूअर, शूकर। उ० खर स्वान सुअर सृकाल मुख। (मा० १।६३।छं० १)

सुआरा-(सं० सूपकार)-रसोइया। उ० लागे परुसन निपुन सुआरा। (मा० १।६६।४)

सुआसिनि-(?)-सौभाग्यशालिनी, सधवा। उ० जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। (मा० १।३४५।३)

सुक-(सं० शुक)-सुग्गा, तोता। उ० चारु भ्रू नासिका सुभग सुक आननी। (गी० ७।५)

सुकंठ-(सं०)-सुग्रीव। उ० फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली। (मा० १।२६।३)

सुकल-(सं० शुक्ल)-१. श्वेत, सफ़ेद, २. उजेला। उ० २. सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता। (मा० १।६१।१)

सुकिय-दे० 'सुकृत'। उ० गये निघटि फल सकल सुकिय के। (गी० ४।१)

सुकुमार-(सं०)-कोमल अंगवाला। उ० सुठि सुकुमार कुमार दोउ। (मा० २।८१) सुकुमारी-(सं०)-कोमल शरीर वाली। उ० तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। (मा० २।५८।४)

सुकुमारि-दे० 'सुकुमारी'। उ० सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनक सुता सुकुमारि। (मा० २।८१)

सुकृत-(सं०) पुण्य कर्म, अच्छा काम। उ० सुकृत सुखेत सुख सालि फूलि फरिगे। (गी० २।३२)

सुकृती-पुण्य कर्म करनेवाला। उ० केहि सुकृती सन होइहिं साथू। (मा० २।५८।२)

सुकृतु-दे० 'सुकृत'।

सुकेत–(सं०)–ताड़का का पिता । उ० रिषि हित राम सुकेत सुता की । (मा० २४।२)
सुकेतु–दे० 'सुकेत' । सुकेतुसुता–ताड़का ।
सुक्र–(सं० शुक्र)–१. वीर्य, बीज, २. शुक्राचार्य । उ० १. दच्छ सुक्रसंभव यह देही। (मा०१।६४।२)
सुख–(सं०) आराम, दुःख का उलटा । उ०तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा। (मा०१।७३।१) सुखकारी–सुख देनेवाला । सुखद–सुख देनेवाला । सुखदाई–सुख देनेवाला। सुखदाता–सुख देनेवाला । सुखदायक–सुख देनेवाला । सुखदायनी–सुख देनेवाली । सुखमय–सुखयुक्त, सुख से भरी । उ० सुखमय ताहि सदा सब आसा । (मा० ७।४६।३) सुखहिं–सुख को । सुखहि–सुख को । सुखेन–सुखपूर्वक । उ० लरहिं सुखेन कालु किन होऊ । (मा० १।२६४।१)
सुखमा–दे० 'सुषमा' । उ० सुखमा सुरभि छीर दुहि मयन अमिय मय कियौ दही री । (गी०१।१०४)
सुखाई–(सं० शुष्क)–सूखे, सूख जाय । सुखानी–सूख गई । उ० कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी । (मा० २।२०।१) सुखाने–सूख गए, सूखे । सुखानेउ–१. सूखे हुए भी, २. सूखे । सुखाहिं–दे० 'सुखाहीं' । सुखाहीं–सूखते हैं, सूख जाते हैं ।
सुखारी–(सं० सुख)–सुखी, प्रसन्न । उ० सब बिधि सब पुर लोग सुखारी । (मा० २।१।३) सुखारे–सुखी ।
सुखी–आनंदित, ख़ुश । उ०होइ सुखी जौं एहिं सर परई । (मा० १।३५।४)
सुगंध–(सं०)–अच्छी महँक । उ० छिरकैं सुगंध भरे मलय-रेनु । (गी० ७।२२)
सुगढ़–अच्छे गढ़े हुए । उ० सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका । (गी० ७।१७)
सुगति–(सं०)–१. मरने के उपरांत होनेवाली अच्छी गति, मोक्ष । उ० सुगति साधन भई उदर भरनि । (वि०१८४) सुगतिहु–मोक्ष से भी । उ० सुगतिहु लुभाहिं न । (वि० २०७)
सुगम–(सं०)–सरल, आसान । उ० मुनि-मन-अगम सुगम माइ बाप सो । (वि० ७१)
सुगमु–दे० 'सुगम' ।
सुगाइ–(?)–संदेह करता है, संदेह करेगा । उ० तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई । (मा० २।१८४।३)
सुग्रीवँ–सुग्रीव ने । सुग्रीव–(सं०)–बालि का भाई जो राम का भक्त था । उ० कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव । (मा० ४।५) सुग्रीवहि–१. सुग्रीव को, २. सुग्रीव ने । सुग्रीवहु–सुग्रीव भी । सुग्रीवपुर–किष्किंधा पुरी ।
सुग्रीवाँ–दे० 'सुग्रीव' । १. सुग्रीव ने, २. सुग्रीव को ।
सुचाली–अच्छी चालवाला, सदाचारी । उ० मैं साधु सुचाली । (मा० २।२६१।२)
सुचि–(सं० शुचि)–पवित्र । उ० सुचि अवनि सुहावनि आलवाल । (वि० २३)
सुचित–(सं०सु + चित्त) १. सावधान, २. निश्चिंत, ३. ध्यान से । उ०१.सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी । (मा० १।३६।१)
सुचितई–निश्चिंतता । उ० सफल मनोरथ भो सुख सुचितई है । (गी० १।६४)
सुचिता–दे० 'शुचिता' । उ० मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई । (मा० १।३२४।छं० २)
सुचिमंत–(सं० शुचि + वत्)–पवित्र ।
सुच्छम–(सं० सूक्ष्म)–छोटी, छोटी सी । उ० अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै । (वि० १६७)
सुछंद–(सं० स्वच्छंद)–स्वतंत्र, स्वाधीन, मौजी । उ० करहिं जोग जप जाग तप आस्रमनि सुछंद । (मा०२।१३४)
सुजनी–(सं० सु + जन)–सखी, सजनी । जो दुख मैं पायो सुजनी । (कृ० २५)
सुजान–(सं० सज्ञान)–चतुर, सयाना । उ० कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान । (वि० १४)
सुजाना–दे० 'सुजानु' ।
सुजानि–दे० 'सुजान' ।
सुजानु–दे० 'सुजान' । उ० आगे को गोसाईं स्वामी सबल सुजानु है । (क० ७।८०)
सुजानू–दे० 'सुजान' ।
सुजोधन–(सं० सुयोधन) दुर्योधन । युधिष्ठिर दुर्योधन को इसी नाम से पुकारते थे ।
सुजोर–(सं० सु + फ़ा० ज़ोर)–मज़बूत, सुदृढ़ । उ० सरल बिसाल बिराजहीं विद्रुम खंभ सुजोर । (गी० ७।१६)
सुझाउ–(?)–१. सुझाओ, लखाओ, २. समझाइए । उ० २. तेरेहि सुझाए सूझै असुझ सुझाउ सो । (वि० १८२) सुझाए–सुझाने से, बतलाने से । उ० दे० 'सुझाउ' ।
सुटुकि–(?)–पतली छड़ी से मारकर । उ० चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु । (मा० १।१५६)
सुठान–(?)–भली प्रकार से । उ० भौंह काम संधान सुठान (क० ७।११८)
सुठारी–(?)–सुंदर । उ० अँगुरियन्ह मृदुल सुठारी हो । (रा० १५)
सुठि–(सं० सुष्ठु)–सुंदर, मनोहर, अच्छा । उ० सफल मनोरथ भयउ गौरि सोहइ सुठि । (पा० ७६)
सुढर–(सं० धार)–अनुकूल । उ० बिधि के सुढर होत सुढर सुदाय के । (गी० १।६५)
सुतंत्र–(सं० स्वतंत्र)–आज़ाद, स्वाधीन । उ० भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । (मा० ७।४५।३)
सुत–(सं०)–लड़का, बेटा । उ० सुत की प्रीति प्रतीति मीत की । (वि० २६८)–सुतन–१. लड़कों, २ लड़कों को । सुतन्ह–पुत्रों । उ० आवत सुतन्ह समेत । (मा० १।३०७) सुतहि–सुत को, पुत्र को ।
सुता–(सं०)–लड़की, पुत्री । उ० कैकयसुता हृदयँ अति दाहू । (मा० २। २४।४)
सुतहार–(सं० सूत्र + हार)–खाट बुननेवाला, बढ़ई । उ० कनक रतन मय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुतहार । (गी० १।१६)
सुतु–दे० 'सुत' ।
सुदरसन–(सं० सुदर्शन)–१. मछली, २. सुदर्शन चक्र जो

विष्णु का हथियार है। उ० १. नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी अरु चाप। (दो० ४६०)
सुदरसनपानि-(सं० सुदर्शनपाणि)-विष्णु। उ० ज्यों धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि। (गी० ६।६)
सुदाम-दे० 'सुदामा'। उ० ध्रुव प्रह्लाद विभीषन कपि-पति जड़ पतंग पांडव सुदाम को। (वि० ६१) सुदामहिं-सुदामा को।
सुदामा-(सं०)-एक दीन ब्राह्मण जो कृष्ण का सहपाठी था। उ० साखि सखा सब सुबल सुदामा। (कृ० १२)
सुदामिनि-दे० 'सुदामिनी'।
सुदामिनी-(सं० सौदामिनी)-बिजली। उ० साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी। (क० २।१४)
सुदि-(सं० शुक्ल+दिवस)-उजाला पाख। उ० जय संवत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु। (पा० ५)
सुदृढ़-(सं० सु+दृढ़)-मज़बूत, अच्छा। उ० सुदृढ़ ज्ञान अवलंबि। (गी० ५।६)
सुद्ध-दे० 'शुद्ध'। उ० १. सर्वदा सुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी। (वि० ५६)
सुद्धता-(सं० शुद्धता)-पवित्रता। उ० सुद्धता लेस कैसो। (वि० १०६)
सुद्धि-(सं० शुद्धि,-शुद्ध होने का भाव, सफ़ाई। उ० सुद्धि हेतु स्तुति गावै। (वि० ८२)
सुध-(?)-सृति, स्मरण, याद, चेत।
सुधरत-(सं० शोधन ?)-सुधरता है, सँभलता है। सुधरहिं-सुधर जाते हैं। उ० सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। (मा० १।३।५) सुधरै-सुधर गया। सुधरैगी-सुधर जायगी।
सुधरिए-सुधारिए। उ० अब मेरियो सुधरिए। (वि० २७१)
सुधा-(सं०)-अमृत। उ०मुए करै का सुधा तड़ागा। (मा० १।२६१।१)
सुधाइहु-(?)-सीधेपन से भी। उ० कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू। (मा० १।२८१।३)
सुधाई-सीधापन, सिधाई। उ० देखि तात तव सहज सुधाई। (मा० १।१६४।२)
सुधाकर-(सं०)-१. चंद्रमा, २. कपूर। उ० १. जय दस-रथ कुल कुमुद सुधाकर। (मा० ७।५१।३)
सुधाकरु-दे० 'सुधाकर'।
सुधार-(सं० शोधन ?)-बनाव, ठीक करना, दुरुस्तगी।
सुधारत-(सं० शोधन ?)-सुधारता है, सँभालता है। उ० मयन सुधारत सायक। (जा० ६४) सुधारा-ठीक किया, सँभाला। सुधारि-१.सुधार कर, २ सुधारते। उ० १.सुधारि आए। (वि० २७१) सुधारिए-सँभालिए। उ० सुधारिए आगिलो काज। (गी० १।८२) सुधारिबी-सुधारिएगा। सुधारिहिं-सुधारेंगे। सुधारे-ठीक किए, सँभाले।
सुधि-(सं०)-स्मरण, याद। उ० हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। (मा० १।५५।३)
सुधी-(सं० सु+धी)-बुद्धिमान, पंडित, विज्ञ। उ०साहिब सुधी सुसील-सुधाकरु है। (वि० २५५)
सुन-(सं० श्रवण)-सुनो। सुनइ-सुनता है। उ० जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। (मा० २।४६।४) सुनउँ-सुनूँ, सुनता हूँ। सुनऊँ-सुनता हूँ। सुनत-१. सुनता है, २. सुनते हुए, ३. सुनने से। उ० ३. सुनत समुझियत थोरे। (कृ० ४४) सुनतहिं-सुनते ही। सुनतहि-दे० 'सुनतहिं'।
सुनति-१. सुनती, २. सुनते हुए। सुनतिउँ-मैं सुनती। सुनतेउँ-मैं सुनता। सुनहि-१. सुना, २. सुनेगा। उ० १. सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। (मा० १।५१।३) सुनहीं-सुनते हैं। सुनहु-सुनो, श्रवण करो। उ० सुनहु तात मायाकृत। (मा० ७।४१) सुना-श्रवण किया। सुनि-१. सुनो, २. सुन कर। उ० २. सुनिकै सुचित तेहि समै। (गी०२।३७) सुनिअ-१. सुनो, २.सुना जाता है। उ०२. सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल। (मा०२।२८१) सुनियत-सुना जाता है। सुनियति-सुनी जाती है। सुनिहहिं-सुनेंगे। सुनिहहुँ-सुनूँगा। सुनी-सुना, श्रवण किया। सुनु-सुनो। सुने-१ सुना, २. सुनने पर, ३. सुनते ही। उ० २.काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए। (क० १।२२) सुनेउँ-सुना, श्रवण किया। सुनेउ-सुना। सुनेऊ-सुना। सुनेहि-सुना। उ०२ सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा। (मा० १।२७२।२)
सुनाइ-(सं० श्रवण)-सुनाकर, श्रवण कराकर। उ० अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई। (मा० ४।३८) सुनाइय-१. सुनाकर, २. सुनाया। सुनाई-१. सुनाकर, २. सुनाया। उ० १. दे० 'सुनाइ'। सुनाउ-सुनाओ। सुनात-सुनाई पड़ता। सुनाऊ-सुनाओ। सुनाएसि-सुनाया। सुनाएहु-सुनाना। सुनायउ-सुनाया। सुनायहु-१. सुनाया, २. सुनाना। सुनाये-१. सुनाया, २. सुनाने पर। सुनायेउ-सुनाया। सुनायेहि-१. सुनाने पर, २. सुनाया। सुनायो-सुनाया। सुनाव-सुनाओ। सुनावत-सुनाते हैं। सुनावहीं-सुनाते हैं। सुनावहु-सुनाओ। सुनावा-सुनाया। उ० का सुनाइ बिधि काह सुनावा। (मा०२।४८।१)
सुनैया-सुननेवाला। उ० जनम फल तोतरे बचन सुनैया। (गी० १।६)
सुपच-(सं० श्वपच)-भंगी, मेहतर।
सुपन-(सं० स्वप्न)-स्वप्न।
सुपनखाँ-(सं० शूर्पणखा)-रावण की बहन ने। उ०जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा। (मा० ३।२१।३)
सुपास-(?)-१. सुख देनेवाला, २. सुख, सुभीता। उ० २. बसै सुत्रास सुबास होहि सब। (कृ० ४८)
सुपासा-दे० 'सुपास'।
सुपासी-दे० 'सुपास'।
सुपासू-दे० 'सुपास'। उ० १. तुम कहँ बन सब भाँति सुपासू। (मा० २।७५।४)
सुपेती-(फ़ा० सफेदी)-१. सफेदी, उज्वलता, २. सफेद चादरें। उ० २. कोमल कलित सुपेतीं नाना। (मा० १। ३५६।१)
सुफल-(सं० सफल)-कामयाब, सफल। उ० चले लोक लोचननि सुफल करन है। (क० २।१७)
सुफलक-(सं० श्वफल्क)-अक्रूर के पिता। सुफलकसुत-अक्रूर। उ०हैं मराल सुफलकसुत लै गयो छीर नीर बिल-गाई। (कृ० २५)
सुबट्ट-(सं० सु+बट्ट)-सुंदर मार्ग। उ० चउहट्ट-हट्ट सुबट्ट बीथीं। (मा० ५।३। छं० १)

सुबरन-(सं० सुवर्ण)-सोना, स्वर्ण। उ० हौं सुबरन कुबरन कियो। (वि० २६६)
सुबस-(१)-(सं०स+वास)-अच्छा निवास,सुंदर स्थान। उ०सुबस बसउ फिरि सहित समाजा।(मा० २।२७३।७)
सुबस (२)-(?)-सुख पूर्वक। उ० समाधानु करि सुबस बसाए। (मा० २।३२३।३)
सुबाहु-(सं०)-१. धृतराष्ट्र का पुत्र और चेदि का राजा, २. सेना, ३. एक राक्षस जो रावण का अनुचर था। उ० २. बन धन धरम सुबाहु। (दो० ५२१) ३. पावक सर सुबाहु पुनि मारा। (मा० १।२१०।३)
सुबेल-(सं०)-एक पर्वत। उ० इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। (मा० ६।११।१)
सुभ-दे० 'शुभ'। उ० १. असुभ-सुभ कर्म घृत-पूर्ण दस वर्तिका। (वि० ४७) सुभदं-कल्याणदाई। सुभदाई-कल्याणदाई।
सुभग-(सं०)-सुंदर, मनोहर। उ० नील नव वारिधर सुभग सुभ कांतिकर। (वि० ५१)
सुभगता-(सं०)-सुंदरता, सौंदर्य। उ० जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही। (मा० १।८६। छं० १)
सुभाइ-(सं० स्वभाव)-१.स्वभाव, २. स्वाभाविक, सहज। उ० २. जुवति जुत्थ महँ सीय सुभाइ बिराजइ। (जा० १५८)
सुभाउ-दे० 'सुभाइ'। उ०१. सुनि सीतापति सील सुभाउ। (वि० १००)
सुभाऊ-दे० 'सुभाइ'।
सुभाए-स्वभाव स, स्वाभाविक रीति से। उ० सुभग सुदेस सुभाए। (गी० १।२६)
सुभागी-सौभाग्यवती, सधवा। उ० सील सनेह सुभाय सुभागी। (मा० २।२२२।४)
सुभायँ-स्वभाव से ही। उ० सुभायँ सुहाए। (मा० २। २६१।४) सुभाय-(सं० स्वभाव)-आदत, प्रकृति, स्वभाव। उ० सुभाय सही करि। (वि० २७७)
सुभाव (१)-(सं० स्वभाव)-स्वभाव, प्रकृति। उ० कहौं सुभाव न कुलहि प्रसंसी। (मा० १।२८४।२) सुभावहिं-स्वभाव से ही।
सुभाव (२)-(सं० सु+भाव)-अच्छा विचार। उ०सुभाव कहै तुलसी। (क० ७।४२)
सुभावु-दे० 'सुभाव (१)'।
सुभ्र-(सं० शुभ्र)-निर्मल, सफेद। उ० फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। (मा० ४।१३।३)
सुमंत-(सं० सुमंत्र)-राजा दशरथ का मंत्री और सारथी।
सुमंत्र-दे० 'सुमंत'। उ० गए सुमंत्र तब राउर माहीं। (मा० २।३८।२)
सुमंत्रु-दे० 'सुमंत'। उ० सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए। (मा० २।४।१)
सुमन-(सं०)-फूल। उ०सुमन बरसि सुर घन करि छाहीं। (मा० २।३११) सुमननि-फूलों से।
सुमरन-(सं० स्मरण)-१. याद, स्मरण, २. भजन।
सुमित्रहि-१. सुमित्रा को, २. सुमित्रा से। सुमित्रा-(सं०)-दशरथ की रानी और लक्ष्मण-शत्रुघ्न की माता। उ० सुमित्रा सुवन शत्रु सूदन राम-भरत बंधो। (वि० ३८)
सुमिर-(सं० स्मरण)-१. यादकर, २. याद करो। सुमिरत-१. स्मरण करते ही, स्मरण करते हुए, २. स्मरण करता है। उ० १. सुमिरत संकट सोच विमोचन। (वि० ३०) सुमिरन-सुमिरना, याद करना। सुमिरहिं-स्मरण करते हैं। सुमिरहीं-स्मरण करते हैं। सुमिरहु-याद करो। उ० हियँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि। (मा० २।२६५।४) सुमिरामि-स्मरण करता हूँ। सुमिरि-याद करके। उ० सुमिरि अवधपति। (मा० ५।१।३) सुमिरिबे-स्मरण करने। उ० साँकरे के सेइबे सराहिबे सुमिरिबे को। (क० ७।२२) सुमिरिये-याद कीजिए। सुमिरु-याद करो। सुमिरे-स्मरण करने से। उ० सुमिरे सहाय। (ह० ३६) सुमिरेसि-याद किया। सुमिरेसु-स्मरण करना। उ०सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही। (मा० ७।८८।१) सुमिरेहु-याद करना। सुमिरौं-याद करता हूँ। उ० पद-सरोज सुमिरौं। (वि० १४१)
सुमुखि-१. सुंदर मुखवाली, सुंदरी, २. हे सुंदरी। उ० २. तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। (मा० १।१२१।३)
सुमृति-(सं०स्मृति) स्मृति ग्रन्थ, धर्मशास्त्र। उ० सोधि सुमृति सब बेद पुराना। (मा० २।१७०।३)
सुमेर-दे० 'सुमेरु'। उ० गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी। (मा० ७।५६।४)
सुमेरु-(सं०)-१. एक पर्वत, २. माले की बड़ी मनियाँ। उ० गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। (मा० ५।५।२)
सुमेरू-दे० 'सुमेरु'।
सुयोधन-(सं०)-दुर्योधन। दे० 'सुजोधन'।
सुर-(सं०)-देव, देवता। उ० सिद्ध सुर मुनि मनुज सेव्यमानं। (वि० १०) सुरआपगा-गंगा नदी। सुरगाय-कामधेनु। सुरगुरु-बृहस्पति। उ० सुर गुरु संग पुरंदर जैसे। (मा० १।३०२।१) सुरतरु-कल्प वृक्ष। उ० जौ मन भयौ चहै हरि सुरतरु। (वि० २०५) सुरदावन-१. रावण, २. असुर। सुरधनु-इंद्र-धनुष। सुरन-देवों, देवोंने। सुरन्ह-देवों ने, सुरगण। उ० सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। (मा०२।२६५।३) सुरनदी-१. गंगा, २.आकाश गंगा। सुरनाथ-इंद्र। सुरनायक-इंद्र। सुरप-इंद्र। सुरपति-इंद्र। उ०तौ सुरपति कुरुराज बालि सों। (वि० ६७) सुरपाल-इंद्र। उ० भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल। (मा० २।२१६) सुरपुर-(सं०)-१.स्वर्ग,२. इंद्र पुरी। उ०१.नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ। (मा० २।४५।१) सुरबीथि-आकाश गंगा। उ० स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी। (मा० २।३२५।३) सुरबेलि-कल्पलता। उ०पुरी सुरबेलि केलि काटत किरात कलि। (क०७।१६६) सुरराज-(सं०)-इंद्र। सुरराजु-दे० 'सुरराज'। उ०रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सरराजु। (मा० २।२२।४) सुररूख-(सं० सुर+वृक्ष)-कल्पवृक्ष। उ० निज संपति रूखलजाए। (मा० १।२२७।३)
सुरति-(सं० स्मृति)-याद, स्मरण। उ० गुरु के बचन सुरति करि रामचरन मन लाग। (मा० ७।११० क)

सुरधुनी–(सं०)–गंगा। उ० भरत सभा सादर सनेह सुरधुनी में। (क० ७।२१)

सुरभि–(सं०)–१.सुगंध, २. चैत का महीना, ३. गाय,४. सुंदर,५. सुगंधित। उ० १.सुरभि पल्लव सो कहु किमि पावै। (वि० ११४) ३. स्याम सुरभि पय बिसद अति। (मा० १।१० ख) ५. सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। (मा० १।१६१।२)

सुरभी–दे० 'सुरभि'।

सुरमनि–(सं० सुर + मणि)–१. चिंतामणि, २. कौस्तुभ मणि। उ०१. परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत। (वि० १२६)

सुरस–(सं० सु + रस)–रसीला और सुस्वादु। उ० कंद-मूल फल सुरस अति। (मा० ३।३४)

सुरसरि–(स०)–गंगा। उ० सुरसरि तरंग निर्मल। (वि० १७०) सुरसरिहीं–गंगा में।

सुरसरी–गंगा। उ० जयति जय सुरसरी जगदाखिल पावनी। (वि० १८)

सुरसा–(सं०)–एक प्रसिद्ध नागमाता, जिसने हनुमान को समुद्र पार करने के समय रोका था। उ० सुरसा नाम अहिन की माता। (मा० ५।२।१)

सुरा–(सं०)–मदिरा, शराब। उ० असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनिचारु। (मा० १।१३६)

सुराई–(सं० शूर)–वीरता, शूरता। उ० हमरे कुल इन पर न सुराई। (मा० १।२७३।३)

सुराती–(सं० सु + रात्रि)–सुंदर रात, पूर्णमासी की रात। उ० ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती। (मा० १।१२५)

सुरुचि–(सं०)–१. अच्छी रुचि, २. राजा उत्तानपाद की छोटी स्त्री जिसके कारण वे ध्रुव का अनादर करते थे। उ० १.सुरुचि सुवास सरस अनुरागा। (मा० १।१।१) २. सुरुचि कह्यो सोइ सत्य तात। (वि० ८६)

सुरेश–(सं०)–१. इंद्र, २. देवों के स्वामी।

सुरेस–दे० 'सुरेश'। उ० १. मुनिगति देखि सुरेस डेराना। (मा० १।१२५।३) सुरेसहिं–इंद्र को। उ० देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। (मा० २।२१७।४)

सुरेसा–दे० 'सुरेश'। उ० हिय हरषे तब सकल सुरेसा। (मा० १।१०१।२)

सुलगइ–(?)–जलती है, सुलगती है। उ० अवाँ अनल इव सुलगइ छाती। (मा० १।१६०।४)

सुलच्छन–१. अच्छे लक्षण का, २. दे० 'सुलच्छनि'। उ० २. सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। (मा० १।६७।४)

सुलच्छनि–(सं० सु + लक्षण)–अच्छे लक्षणों या गुणोंवाली।

सुलभ–(सं०)–सहज में मिलने योग्य। उ० सब बिधि सुलभ जपत जिसु नामू। (मा० १।११२।२)

सुलाखि–(फ़ा० सूराख़)–छेद करके। उ० और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत। (क० ७।२४)

सुलोचनि–सुंदर आँखोंवाली, सुंदरी। उ० बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि। (मा० २।२५)

सुवन–(सं० सुत)–पुत्र, लड़का। उ०सुवन लाहु उछाह दिन दिन देवि अनहित हानि। (गी० ७।३२)

सुवरन–(सुवर्ण)–सोना, कंचन।

सुवार–दे० 'सुआर'।

सुशील–(सं० सु + शील)–अच्छे स्वभाव का, शांत।

सुषमा–(सं०)–सुंदरता। उ० नयन सुषमा निरखि नागरि सफल जीवन लेखु। (गी० ७।६)

सुषुप्ति–(सं०)–जीव की चार अवस्थाओं में से एक।

सुषेण–(सं०)–एक वानर जो वरुण का पुत्र, वालि का ससुर और सुग्रीव का वैद्य था।

सुसील–(सं० सु + शील)–अच्छे स्वभाववाला। उ० सुंदर सहज सुसील सयानी। (मा० १।६७।१)

सुसीलता–अच्छा स्वभाव। उ० मुनि सुसीलता आपनि करनी। (मा० १।१२७।२)

सुसीला–दे० 'सुसील'।

सुसीलु–दे० 'सुसील'। उ० समुझि सुमित्राँ रामसिय रूपु सुसीलु सुभाउ। (मा० २।७३)

सुसुकत–(अनु० सी सी)–सिसकी भरता है। उ० कछु न कहि सकत, सुसुकत सकुचत। (कृ० १७) सुसुकि–सिसकी भरकर। उ० सुसुकि सभीत सकुचि रूखे मुख। (कृ० ६)

सुहव–(?)–सूहा राग। उ० सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव सुवरनि बाजहीं। (गी० ७।१६)

सुहाइ–(सं० शोभा)–शोभित हो, अच्छा लगें। सुहाई–१. अच्छा लगनेवाला, २.अच्छा लगता है। उ० २.रूपरासि गुन सील सुहाई। (मा० २।५६।१) सुहाई–अच्छी लगी। सुहाउँगो–अच्छा लगूँगा। उ० ज्यों साहिबहि सुहाउँगो। (गी० ५।३०) सुहाए–अच्छा लगे, अच्छा लगते हैं। उ० बिनयी बिजयी रघुबीर सुहाए। (क० १।२२) सुहाती–अच्छी लगती। सुहान–अच्छी लगी, अच्छा लगा। सुहाना–अच्छा लगा। सुहाने–१. अच्छे, २. अच्छे लगे। सुहावा–अच्छा लगा, अच्छा लगता है। उ० आश्रम परम पुनीत सुहावा। (मा० १।१२५।१) सुहाहिं–अच्छे लगते हैं। सुहाहीं–अच्छे लगते हैं।

सुहावन–अच्छा, सुंदर। सुहावनि–अच्छी, सुंदर। उ० बह समीप सुरसरी सुहावनि। (मा० १।१२५।१)

सुहृद–(सं० सुहृत्)–१. शुद्ध हृदयवाला, २. मित्र। उ० १. भूप सुहृद सो कपट सयाना। (मा० १।१६०।३) २. तन धन भवन सुहृद परिवारा। (मा० ५।४८)

सूकर–(सं० शूकर)–१. बाराह अवतार, २. सूअर। उ० १. मीन कमठ सूकर नरहरी। (मा० ६।११०।४) २. सूकर स्वान सृगाल सरिस जन। (वि०१४०)

सूकरखेत–(सं० शूकर + क्षेत्र)–एक पवित्र स्थान जो मथुरा जिले में है। सोरों। उ०मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत। (मा० १।३० क)

सूको–(सं० शुष्क)–सूख गया। उ० पिता भय साँसति सागर सूको। (का० ७।६०)

सूक्ष्म–(सं०)–१. थोड़ा, अल्प, २. छोटा, ३. पतला।

सूख–(सं० शुष्क)–१.सूखे, सूख जाय, २. सूख गया। उ० कंठु सूख मुख आव न बानी। (मा० २।३५।१) सूखत–१. सूख जाता है, २. सूखने के समय। उ० २. जनु जलचर गन सूखत पानी। (मा० २।५१।३) सूखाहिं–सूखते हैं, सूख जाते हैं। सूखि–१. सूखकर, २.सूख गई।

उ० २. सहसि सूखि सुनि सीतलि बानी। (मा० २।२४।१)

सूग-(?)-१. शंका, २. चिंता।

सूच-(सं० सूचना)-सूचना दे दी। उ० अन अहिवात सूच जनु भावी। (मा० २।२२।४) सूचत-सूचना होती है, सूचित करते हैं। सूचति-प्रकट करती है। उ०सूचति कटि केहरि गति मराल। (वि० १४)

सूचक-(सं०)-जतलानेवाला। उ० प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी। (मा० १।२३८।४)

सूच्छम-(सं० सूक्ष्म)-दे० 'सूक्ष्म'।

सूझ-(?)-सूझता है। उ० सूझ जुआरिहिं आपुन दाऊ। (मा०२।२२८।१) सूझइ-सूझता है, दिखाई देता है। उ० मोहिं अस सूझइ। (पा० ५०) सूझत-दिखाई देता है। सूझहि-दे० 'सूझइ'। उ० सूझत रंग हरो। (वि०२२६) सूझि-१. सूझकर, २. सूझने का भाव। सूझै-दिखाई पड़े, दिखाई पड़ता है। उ० नहिं सूझै कछू धमधूसर को। (क० ७।१०३)

सूत (१)-(सं०)-१. एक जाति, २. सारथी। उ० १. नट भाट मागध सूत जाचक। (जा० १८०) २. सूत बचन सुनतहि नरनाहू। (मा० २।१५३।३)

सूत (२)-(सं० सूत्र)-डोरा, तागा। उ० धर्यो सूत बिधि सुत बिचित्र मति। (गी० ७।१७)

सूत (३)-(सं० शयन)-सोता है। उ० जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना। (मा० ६।४०।३) सूतत-सोने से, सोकर। उ० सूतत जागू। (मा० ६।५६।४) सूतहिं-सोते हैं। उ० जेहि निसि सकल जीव सूतहिं। (वि० ११६) सूता (१)-सोया। सूतिहौं-सोऊँगा। उ० पसारि पाँय सूतिहौं। (क० ७।६६)

सूता (२)-दे० 'सूत (१)' तथा 'सूत (२)'।

सूत्रधर-दे० 'सूत्रधार'। उ० राम सूत्रधर अंतरजामी। (मा० १।१०५।३)

सूत्रधार-(सं०)-प्रधान नट, नाटक का आरंभ में सामने वाला पात्र।

सूदन-(सं०)-नष्ट करनेवाला। उ० जय कबंध सूदन। (क० ७।११४)

सुदनु-दे० 'सूदन'।

सूद्यो-(सं० सूदन)-मारा, नष्ट किया। उ० ससि समर सूद्यो राहु। (गी० १।६५)

सूद्र-(सं० शूद्र)-अंत्यज, अछूत, हरिजन।

सूद्रु-दे० 'सूद्र'। उ० सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। (मा० २।१७२।३)

सूध-(?)-सीधा, सरल। उ० सूध दूध मुख करिअ न कोहू। (मा० १।२७७।१) सूधियै-सीधे, साफ़ साफ़। उ० सूधियै कहतु हौं। (क०७।१६७) सूधी-सीधी, सरल, स्पष्ट। उ० सूधी करि पाई तू। (कृ० ८) सूधे-१. सीधे, सरल, २.शुद्ध। उ०२. सूधे मन सूधे बचन। (दो० १५२)

सूधौ-दे० 'सूधे'। उ० १.सूधौ सत भाय कहे मिटति मलीनता। (वि० २६२)

सून-(सं० शून्य)-१. खाली, रिक्त, २. निर्जन, एकांत। उ० १. सूने परे सून से मनो मिटाए आँक के। (गी० १।६२)

सूना-(सं० शून्य)-१. खाली, रिक्त, २. शून्य, उजाड़। सूने-दे० 'सूना'। उ० सूने सकल दसानन पारा। (मा० १।८२।४)

सूनु-(सं०)-पुत्र, बेटा। उ० राम की रजाय तें रसायनी समीर सूनु। (क० ५।२५)

सुन्य-(सं० शून्य)-खाली, रिक्त। उ० सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं। (वि० १११)

सूप (१)-(सं० शूर्प)-अनाज फटकने का पात्र। उ० भरि गे रतन पदारथ सूप हजार हो। (रा० १६)

सूप (२)-(सं०)-१. दाल, २ रसोई। उ० १. सूपोदन सुरभी सरपि। (मा० १।३२८) २. सूपसास्त्र जस कछु ब्यवहारा। (मा० १।६६।२)

सूपकार-(सं०)-रसोइया, पाचक।

सूपकारी-दे० 'सूपकार'। उ० बोलि सूपकारी सब लीन्हें। (मा० १।३२८।४)

सूपनखा-(सं० शूर्पणखा)-एक राक्षसी जो रावण की बहन थी। उ० सूपनखा कुरूप कीन्ही। (गी० ७।३८)

सूपसास्त्र-(सं० सूपशास्त्र)-खाना बनाने की विद्या। उ० दे० 'सूप (२)'।

सूर (१)-(सं०)-१. सूर्य, रवि, २. अंधा। उ० १. बिंध्य की दवारि कैधों कोटि सत सूर हैं। (क० ५।३)

सूर (२)-(सं० शूर)-वीर। उ० गरुअ गुनरासि सरबग्य सुकृती सूर। (वि०१०६) सूरनि-वीरों।उ० सूरनि उछाह कूर कादर डरत हैं। (क० ६।४६)

सूरति (१)-(सं० स्मृति)-याद, स्मरण। उ० भई है मगन नहिं तनिको सूरति। (गी० ५।४७)

सूरति (२)-(फ़ा०)-१. शक्ल, रूप, २. सौंदर्य, ३.प्रकार। उ० २. शेष नहिं कहि सकत अंग अंग सूरति। (कृ० २८)

सूरा-दे० 'सूर'।

सूर्य-(सं०)-रवि, भास्कर।

सूल-(सं०)-१. दर्द, कष्ट, पीड़ा, २. त्रिशूल। उ० १.समय गये चित सूल नई। (कृ० २४) २. अनायास अनुकूल सूलधर। (गी० ५।२८)

सूलधर-(सं० शूलधर)-शंकर। उ० दे० 'सूल'।

सूलपानि-(सं० शूलपाणि)-शंकर।

सूला-दे०'सूल'। उ० १. मिटी मलिन मन कलपित सूला। (मा० २।२६७।१)

सूली-(सं० शूलिन्)-शंकर।

सृंखला-दे० 'शृंखला'।

सृंग-(सं० शृंग)-१. सींग, २. पर्वत-शिखर। उ० २. भुजा बिटप सिर सृंग समाना। (मा०६।६६।३) सृंगनि-सींगे, चोटियाँ। सृंगन्ह-दे० 'सृंगनि'।

सृंगबेरपुर-दे० 'शृंगबेरपुर'। उ० सृंगबेरपुर पहुँचे जाई। (मा० २।८७।१)

सृंगार-(सं० शृंगार)-बनाव, शोभा।

सृंगी-(सं० शृंगी)-१. एक बाजा, २. एक ऋषि। उ० २. सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। (मा० १।१८६।३)

सृजइ–(सं० सृजन)–बनाता है, उत्पन्न करता है। उ० तपबल तें जग सृजइ बिधाता। (मा०१।१६३।१) सृजत–बनाता है, रचता है। उ० सुभग सेज कत सृजत बिधाता। (मा०२।११९।४) सृजति–रचती है। सृजि–रचकर। उ० सृजि निज जस सुर तरु तुलसी कह अभिमत फरनि फरत को। (गी० ६।१२) सृजे–रचे, बनाये। सृजेउ–रचा, उत्पन्न किया। सृज्यो–रचा। उ० बीर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं बिधि बाँय। (गी० ७।३१)

सृष्टि–(सं०)-संसार, जगत। उ० मंत्र जापक जाप्य सृष्टि स्रष्टा। (वि० ६३)

सेंत–(सं० संहति)–बिना मूल्य का, मुफ़्त। सेंतिहुँ–मुफ़्त भी। उ० कूर कुसाहिब सेंतिहुँ खारे। (क०७।१२)

सेंदुर–दे० 'सिंदुर'।

से–(सं०सम)–समान, तरह, सा। उ० रघुबर के से चरित। (वि० १९)

सेइ–(सं०सेवा)–सेवा करके, सेकर। उ० जाके चरन बिरंचि-सेइ सिधि। (वि० ८६) सेइअहिं–सेवा करेंगे। सेइबे–सेवा करने। सेइय–सेइए। सेई–सेवा की है। उ० नाहिन साधु सभा जेहि सेई। (मा० २।२३१।४) सेए–१. सेवा की, २. सेवा करने से। उ० १. सेए सीताराम नहिं। सेयो–सेवा की। (दो० ६६)

सेख–(सं० शेष)–सर्पराज।

सेखु–दे० 'सेख'। उ० निगम सेखु सुक संकर भारति। (गी० ७।१६)

सेज–(सं० शय्या)–सेज, पलंग। उ० जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। (मा० १।६९।३)

सेत–(सं० श्वेत)–सफ़ेद, धवल। उ० मन मेचक तनु सेत। (वि० १९०)

सेतु–(सं०)–१. पुल, २. मर्यादा। उ० १. सेतु भवसागर को हेतु सुख सार को। (वि० ६९)

सेतुबंध–(सं०)–१ एक तीर्थ जिसे राम ने बनाया था। २. सेतु का बनाना। उ० २. कृत सेतुबंध बारिधि-दमन। (क० ७।११५)

सेतू–दे० 'सेतु'।

सेन (१)–दे० 'श्येन'। उ० बिबिध चितवृत्ति खग-निकर सेनोलूक काक बक गृध्र आमिष-अहारी। (वि० ५९)

सेन–(सं० सेना)–फ़ौज़। उ० हिय हरषे सुरसेन निहारी। (मा० १।६५।२)

सेनप–(सं०)-सेनापति। उ० सेवक सेनप सचिव सब। (मा० २।२४२)

सेना–(सं०)–फ़ौज़। उ० जातुधान सेना सब मारी। (मा० ५।११।२)

सेनापति–(सं०)-फ़ौज़ का मालिक। उ० जथा जोग सेनापति कीन्हे। (मा० ६।३९।३)

सेनानी–(सं०)–सेनापति।

सेमर–(सं० शाल्मलि)-एक वृक्ष या उसका फूल। इसके फल के सौंदर्य को देखकर तोता उस पर चोंच मारता है पर उसमें रुई देखकर निराश हो जाता है। उ० बक्रत बिनहिं पास सेमर-सुमन-आस। (वि० १६७)

सेर–(सं० सेठ)-एक तौल। १६ छटाँक। उ० कहिय सुमेरु कि सेर सम। (मा० २।२८८)

सेल (१)–(सं० शल्ल)–भाला, बरछा, साँग। उ० फरसा बाँस सेल सम करहीं। (मा० २।१९१।३)

सेल (२)–(?)–साफा।

सेला (१)–दे० 'सेल (१)' उ० १. सनमुख राम सहेउ सो सेला। (मा० ६।९४।१)

सेला (२)–दे० 'सेल (२)'।

सेल्ही–दे० सेल (२)'। उ० आँतनि की सेल्ही बाँधे। (क० ६।५०)

सेव–सेवा करते हैं, सेवा करती है। उ० अधम सो नारि जो सेव न तेही। (मा० ३।५।३) सेवइ–सेवा करती है, सेवा करता है। सेवउँ–सेवा करूँ। सेवत–सेवा करते हैं। उ० सेवत सुरपुर बासी। (वि० २२) सेवतहूँ–सेवा करने पर भी। सेवहिं–१ सेवा करते हैं, २. सेवन करते हैं, ३. खाते हैं। उ० ३. परुसन लगे सुधार बिबुध जन सेवहिं। (पा० १५३) सेवहि–सेवा कर। उ० सेवहि तजे अपनपौ चेते। (वि० १२६) सेवहु–सेवा करो। उ० सेवहु सिव-चरन-सरोज। (वि० १३) सेवि–१. सेवनीय, २. सेवित, ३. सेवा करके।

सेवक–(सं०)–नौकर, दास। उ० सेवक सकुच सोच उर अपने। (मा० २।२९९।३) सेवकनि–सेवकों, सेवकों को, सेवकों ने। सेवकन्ह–दे०'सेवकनि'। सेवकहिं–सेवक को। सेवकहि–सेवक पर। उ० को साहिब सेवकहि नेवाजी। (मा० २।२९९।३) सेवकि–सेविका, नौकरानी। उ० सेवकि जासु रमा घर की। (क० ७।२७)

सेवकाई–१. (सं० सेवक)–नौकरी, चाकरी, २. उपासना, सेवा। उ० २. करि पूजा सब बिधि सेवकाई। (मा० १।२१७।४)

सेवकिनी–दासियाँ। उ० जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। (मा० ७।२४।३)

सेवकी–दासी। उ० हय गय सुसेवक सेवकी। (पा० १४७)

सेवकु–दे० 'सेवक'।

सेवा–(सं०)–१. नौकरी, टहल, चाकरी, २. उपासना। उ० १. ऐसेहू साहब की सेवा सों होत चोर रे। (वि० ७१) २. कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा। (वि० २)

सेवार–(सं० शैवाल)–एक घास। उ० संबुक भेक सेवार समाना। (मा० १।३८।२)

सेवाल–दे० 'सेवार'।

सेवितं–दे० 'सेवित'। सेवित–(सं०)–सेवा किया गया। उ० सिद्ध सुर बृंद योगींद्र सेवित सदा। (वि० २६)

सेवी–(सं०सेविन्) १. दास, २. पुजारी, भक्त। उ०१. तुम गुरु बिप्र धेनु सुर सेवी। (मा० १।२६४।२)

सेव्यं–उपासना या सेवा करने योग्य को। उ० ब्रह्मा-शंभु-फणीन्द्र सेव्यमनिशं। (मा० ५।१।श्लो० १)

सेव्य–(सं०)–सेवा करने योग्य,उपासना करने योग्य। उ० सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि। (मा० ७।११९ क)

सेव्यमानं–सेवित, सेवा किये गये। उ० सिद्ध सुर मुनि मनुज सेव्यमानं। (वि० १०)

सेष–(सं०शेष) १.बाकी, शेष,२. सर्पराज,३. थोड़ा, न्यून। उ० १. सप्त सप्त तजि सेष को। (प्र० १) २. जिनके विमल विवेक सेस महेस न कहि सकत। (वै० ३४) सेषसयन–(सं० शेष + शयन)–विष्णु।

सेषा–दे० 'सेष'।

सेषु–दे० 'सेष'।

सेस–दे०–'सेष'।

सेसू–दे०'सेष'। उ० २. सकल धरम धरनीधर सेसू। (मा० (२।३०६।१)

सैं–(प्रा० संतो)–से। उ० करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा। (मा० ६।८।४)

सैंतति–(सं० संचय)–भर भर कर रख छोड़ती है। उ० लेत भरि भरि अंक सैंतति। (गी० १।२५)

सै–(सं०शत)–सौ। उ०संबत सोरह सै एकतीसा। (मा०१। ३४।२)

सैन (१)–(सं० संज्ञपन)-इशारा, संकेत। उ० बरज्यौ प्रिय बंधु नयन की सैन। (गी०१।८७) सैनहिं–इशारे से। उ० सैनहिं कह्यो चलहु सजि सैन। (गी० ५।२१)

सैन (२)–(सं० शयन)–सोना। उ० सैन किए देखा कपि तेही। (मा० ५।४।४)

सैन्य–(सं०)–सेना, कटक।

सैना–दे० 'सेना'।

सैयाँ–(सं० स्वामी)–पति, मालिक, राजा। उ० बरसत सुमन सहित सुरसैयाँ। (कृ० १६)

सैल–दे० 'शैल'। उ० समर सैल-संकास रिपु त्रासकारी। (वि० ५०)

सैलकुमारी–(सं० शैलकुमारी)–पार्वती। उ०बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। (मा० १।७८।१)

सैलजहि–पार्वती को। उ० जाइ बिबाहहु सैलजहि। (मा० १।७६) सैलजा–(सं० शैलजा)–पार्वती।

सैलनंदिनि–(सं० शैल + नंदिनी)–पार्वती। उ० अनिमादि सारद सैलनंदिनि। (गी० १।५)

सैलराज–(सं० शैलराज) हिमालय पर्वत। उ० सैलराज बड़ आदर कीन्हा। (मा० १।६६।३)

सैला–दे० 'सैल'। उ० भागों तुरत तजौं यह सैला। (मा० ४।१।३)

सैवल–(सं० शैवाल)–पानी की एक घास। उ० रोम राजि सैवल छवि पावति। (गी० ७।१७)

सैसव–(सं० शैशव)–शिशुता, लड़कपन, ५ से १० वर्ष की उम्र। उ०कौमार सैसव अरु किसोर। (वि० १३६)

सौं (१)–(प्रा० सुंतो)–द्वारा, से। उ० सोनित सौं सानि सानि। (क० ६।५०)

सौं (२)–(सं० सम)–समान। उ० समरथ कोउ न राम सौं। (दो० ४४८)

सौंधे–(सं० सुगंध)–अच्छे, सोंधा महँकते हुए। उ० खात खुनसात सौंधे दूध की मलाई है। (क० ७।७४)

सौंहीं (१)–(सं० सम्मुख)–सामने, आगे, प्रत्यक्ष।

सौंहीं (२)–सं: शोभा)–सुंदर लगते हैं।

सो (१)–(सं० सः)–१. वह, वही, २. वेही। उ० १. सो बल गयो किधौं भये अब गर्व गहीले। (वि० ३२)

सो (२) (?)–इस कारण से। उ०सायक हे भृगुनायक सो धनु। (क० १।२२)

सो (३)–(सं० सम)–समान, तरह। उ० मनियत महामुनी सो। (क० ७।७२)

सोआइहौं–(सं० शयन)–सुलाऊँगा, सुलाऊँगी। उ० सब सुमुख सोआइहौं। (गी० १।१८)

सोइ (१)–(सं० सः)–वही। उ० सोइ कछु कहहु मदन मद मोचन। (मा० १।८१।३)

सोइ(२)–(सं० शयन)–सोकर। सोइबो–१. सोना, २. सोओगे। उ० १. सोइबो जो राम के सनेह की। (क० ७।८३) सोइये–सो जाइए। उ० सोइये लाल लाड़िले रघुराई। (गी०१।१६) सोइहै–सोवेगा। सोइहौं–सोऊँगा। सोई (१)–सो गई। सोउ–सो जाओ। सोए–१. सो गए, २. सोते हुए, ३. सोने में। उ० ३. बैठे-उठे जागत-बागत सोए सपने। (क० ७।७८) सोय–सोकर। सोयो–सोया, सोता रहा। उ० मोहमय कुहू-निसा बिसाल काल बिपुल सोयो। (वि० ७४) सोव–सोता। उ० सो किमि सोव सोच अधिकाई। (मा० १।१७०।१) सोवइ–सोता है। सोवत–१. सोया हुआ, सोते, २. सोते समय। उ० २. अब सख सोवत सोचु नहिं भीख मागि अब खाहिं। (मा० १।७९) २. सोवत सपनेहु सहै संसृति संताप रे। (वि० ७३) सोवतहि–सोते ही में। उ० पहुँचै हउँ सोवतहि निकेता। (१।१६९।४)

सोई (२)–(सं० सः)–वही। उ० सोई सेंवर तेइ सुवा। (दो० २५९)

सोउ–(२)–(सं० सः)–वह भी। उ० तुलसी साज राख्यो सोउ। (वि० २१४)

सोऊ–(२)–(सं० सः)–वह भी। उ० राख्यो सरन सोऊ। (वि० १०६)

सोक–(सं० शोक)–रंज, ग़म, क्षोभ। उ० समनि सोक संताप पाप रुज। (वि० २२)

सोकहत–(सं० शोकहत)–शोक का मारा हुआ। उ० सकल लोक अवलोकि सोकहत सरन गए भय टारी। (वि० १६६)

सोका–दे० 'सोक'।

सोकु–दे० 'सोक'।

सोकू–दे० 'सोक'।

सोख–(सं० शोषण)–सोखने या सुखानेवाला। उ० अन-हित सोनित सोख सो। (दो० ४००)

सोखइ–(सं० शोषण)–१. सोखता है, २. सुखाता है। सोखउँ–सोखूँ, सोख लूँ। सोखा–सोख लिया। सोखि–सोखकर। उ० सोखि कै खेत कै बाँधि सेतु करि उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो। (गी० ५।१४) सोखे–सोख लिये। उ० पुरषनि सागर सृजे खने अरु सोखे। (गी० ५।१२) सोखेउ–सोखे, सोख लिए।

सोग–(सं० शोक)–दुःख, चिंता, शोक। उ० जागैं भोगी भोग ही, बियोगी रोगी सोग बस। (क० ७।१०६)

सोच–(सं० शोच)–१. चिंता, फ़िक्र, २. ध्यान, ख़्याल, ३. सोचने का भाव। उ० १. सोच सहित परिवार बिदेह महीपहिं। (जा० १११)

सोचइ-(सं० शोच)-सोचता है। सोचत-१. सोचते हैं, २. सोचते हुए, चिंता करते हुए। उ० सोचत बंधु समेत प्रभु। (दो० २२७) २. सोचत भरतहि रैनि बिहानी। (मा० २।२४३।४) सोचति-१. सोचते हुए, २. सोचती है। सोचतु-सोचते हैं। उ० कुलगुरु सचिव साधु सोचतु बिधि को न बसाइ उजारो? (गी० २।६६) सोचन-१. सोचने की क्रिया, सोचना, २. सोचने। उ० २. तनु धरि सोच लागु जनु सोचन। (मा० २।२६।४) सोचनि-१. 'सोच' का बहुवचन, सोचों को चिंताओं को, २. सोचने का भाव। उ० १. मोचनि-सोचनि बेद बखानी। (गी० ६।२०) सोचहिं-सोचते हैं। सोचहि-१. सोचता है, २. ध्यान रखता है। उ०१ तथा २. जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरेहिं। (पा०६१) सोचहीं-सोचती हैं। उ०छिनु छिनु निरखि रामहिं सोचहीं। (जा० ६०) सोचा-१. दे० 'सोच',२.सोच किया, चिंता की,३.विचारा। सोचि-सोच-कर। सोचिअ-१ सोचिए,समझिए,२.सोच करना चाहिए। उ०१.सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। (मा० २।१७३।२)

सोचनीय-सोचने योग्य, विचारने योग्य। उ० सोचनीय सब ही बिधि सोई। (मा० २।१७३।२)

सोचाई-(सं० शोच)-विचार कराया, ग़ौर कराया। उ० सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। (मा० १।९१।२)

सोचु-दे० 'सोच'।

सोचू-दे० 'सोच'। उ० १. सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। (मा० २।४०।४)

सोदर-(सं०सहोदर) सहोदर, एक माँ-बाप के लड़के।

सोध-(सं० शोध)-१. खोज, तलाश, २ तलाश करना। उ० १. सीय सोध कपि भालु सब। (प्र० ३।६।३) सोधा-खोजा, छान डाला। उ० तात धरम मतु तुम सबु सोधा। (मा० २।६४।१) सोधि-खोजकर, ढूँढ़कर, देखवाकर। उ० सुदिन सोधि सब साज सजाई। (मा०२।३१।४) सोधिय-देखो। उ० आगे करि मधुकर मथुरा कहँ सोधिय सुदिन सयानी। (कृ०४१) सोधेउँ-खोज डाला, खोजा। उ० सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं। (मा० २।२१२।१) सोध्यो-शोध दिया, शुद्ध कर दिया। उ० अंजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हैं। (ह० ४०)

सोधक-(सं० शोधक)-शोध करनेवाला। उ० छोरी अनायास, साधु सोधक अपान को। (गी० १।८६)

सोधाइ-(सं० शोध)-ठीक कराकर, विचार द्वारा निश्चित कराकर। उ०सुख पाइ बात चलाइ सुदिनु सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै। (पा० ६२) सोधाए-देखवाया, शोधवाया। उ०नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाए। (गी०१।६)

सोधु-(सं० शोध)-१. पता, २. पता लगानेवाले। उ० १.अब लगि नहिं सिय सोधु लह्यौ है। (गी० ४।२)

सोधैं (१)-(सं० सुगंध)-अनेक प्रकार की सुगंधित वस्तुएँ।

सोधैं (२)-(सं० शोध)-रास्ता।

सोन (१)-(सं० शोणभद्र)-सोन नदी।

सोन (२)-(सं० शोण)-लाल, रक्तवर्ण। उ० सुभग सोन सरसीरुह लोचन। (मा० १।२१९।२)

सोन (३)-(सं० स्वर्ण)-सोना, सुवर्ण, कंचन। उ० सोन सुगंध सुधा ससि सारू। (मा० २।२८८।१)

सोना-दे०'सोन (२)'। उ० मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना। (मा० १।३२८।१)

सोनित-(सं० शोणित)-खून, रुधिर। उ० बसन सकल सोनित-समल। (प्र० ३।२।२)

सोने-(सं०स्वर्ण) सोना, स्वर्ण। उ० इन्ह तें लही दुति मरकत सोने। (मा० २।११६।४)

सोनो-(सं० स्वर्ण)-सोना, सुवर्ण। उ० गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागै। (क० २।१६)

सोपान-(सं०)-सीढ़ी, नसेनी। उ० विष्णु सिवलोक-सोपान सम सर्वदा बदति तुलसीदास बिसद बानी। (वि० ४६)

सोपाना-दे०'सोपान'। उ० एहिं महँ रुचिर सप्त सोपाना। (मा० ७।१२६।२)

सोपि-वह ही, वह भी। उ० सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि। (मा० ७।७१ ख)

सोभ-(सं० शोभा)-शोभायमान।

सोभत-शोभित होता है। उ० सोभत लखि बिधु बढ़त जिमि। (मा० २।७) सोभति-शोभायमान होती है। सोभिहैं-शोभायमान होंगे। उ० अनुज सहित सोभिहैं कपिन महँ। (गी० ५।५०)

सोभा-(सं० शोभा)-सौंदर्य, शोभा। उ० पुर सोभा अवलोकि सुहाई। (मा० १।६४।४)

सोभित-(सं० शोभित)-शोभित, सुशोभित। उ० पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवल धार। (वि० १७)

सोम-(सं०)-१. चंद्रमा, २. अमृत, ३. एक प्रकार का यज्ञ, ४. एक लता जिसके रस का पहले पान किया जाता था। उ० १. राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम। (मा० ३।४२ क) ३. कौन धौं सोमजाजी अजामिल अधम। (वि० १०६)

सोमदिन-सोमवार, चंद्रवार। उ० राम अनुग्रह सोमदिन, प्रमुदित प्रजा सुराज। (प्र० ७।१।४)

सोय-(सं०सः) वह, वही।

सोर-(फ़ा० शोर)-शोर, हल्ला। उ० आयौ आयौ आयौ सोई बानर बहोरि भयो सोर चहुँ ओर। (क० ६।६)

सोरठ-(सं० सौराष्ट्र)-एक राग। उ० सारंग गुंड मलार सोरठ सुहब सुघरनि बाजहीं। (गी० ७।१६)

सोरठा-(सं० सौराष्ट्र)-४८ मात्राओं का एक छंद जो अपने स्वरूप में दोहे का उलटा होता है। उ० छंद सोरठा सुंदर दोहा। (मा० १।३७।३)

सोरह-(सं० षोडश)-सोलह। उ० सोरह भाँति पूजि सनमाने। (मा० २।६।२)

सोरा-दे० 'सोर'। उ० रिपुदल बधिर भयउ सुनि सोरा। (मा० ६।६८।१)

सोरु-दे० 'सोर'।

सोरू-दे०'सोर'। उ० गे रघुनाथ भयउ अति सोरू। (मा० २।८६।१)

सोवनिहारा-सोनेवाला। उ० मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। (मा० २।६३।१)

सोष-(सं० शोषण)-सोखनेवाला। उ० अनहित सोनित सोष सो, सोहित सोषनहारु। (दो० ४००)

सोषक–(सं०शोषक)–सोखनेवाला। उ०सोषक भानु कृसानु-महि पवन एक घन दानि। (दो० ३४६)
सोषनहारु–सोखनेवाला। उ० दे० 'सोष'।
शोषहिं–(सं० शोषण)–सोखते हैं। सोषिहैं–सोखेंगे। उ० समुद्र सातो सोषिहैं। (क० ६।२)
सोसि–(सं० सः+असि)–सो हो। उ० जोसि सोसि तव चरन नमामी। (मा० १।१६१।३)
सोह–(सं० शोभा)–शोभा पाये, शोभायमान हो। उ० कोउ न हमारें कटक अस तोसन लरत जो सोह। (मा० ६। २३ ख) सोहइ–शोभा पाता है। उ० कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ। (पा० १३) सोहई–शोभित हो, विराजमान हो। उ० सुरधेनु ससि सुरमनि सहित मानहुँ कलपतरु सोहई। (जा० १७१) सोहत–शोभित होते हैं, शोभा दे रहे हैं। उ० सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे शृंगनि। (गी० २।५०) सोहहिं–सोहते हैं, शोभा देते हैं। सोहहीं–शोभित हैं, शोभा दे रही हैं। उ० जनु दमक दामिनि, रूप रति मृदु निदरि सुन्दरि सोहहीं। (जा० ८१) सोहा–सुशोभित हैं, सोहते हैं। उ० सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा। (मा०२।३७।३) सोहिहैं–शोभित होंगे। उ० को सोहिहैं और को लायक रघुनायकहि बिहाय कै। (गी० १।६८) सोहीं–सुशोभित हो रही हैं, शोभित हैं। उ० भरी प्रमोद मातु सब सोहीं। (मा० १। ३५०।३)
सोहर–(सं० शोभन ?)–१. शोभा दिखाने का समय, २. एक राग जो बच्चा पैदा होने पर गाया जाता है। उ०१. लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर। (पा० १२४)
सोहाई–(सं०शोभा)–सुंदर लगता है। सोहाए–अच्छे लगे। सोहाति–अच्छी लगती है। सोहाती–दे०'सोहाति'। सोहाते–दे० 'सोहातो'। उ० दे० 'सोहातो'। सोहातो–अच्छा लगते, सुहाते हैं। उ० राम सोहाते तोहिं जौं तू सबहिं सोहातो। (वि० १५१) सोहान–रुचा, अच्छा लगा। उ० संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान। (मा० १।१२७) सोहाना–अच्छा लगा। उ०माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना। (मा०२।४०।४) सोहानि–अच्छी लगी। उ० सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि। (मा० २।७८) सोहानी–अच्छी लगी। उ० एक बात नहिं मोहि सोहानी। (मा० १।११४।४) सोहावा–अच्छा लगा। सोहाहीं–१. अच्छे लगते हैं, २. शोभा देते हैं। उ० १. रामहिं ते सपनेहुँ न सोहाहीं। (मा० १।१०४।३)
सोहाग–(सं० सौभाग्य)–१. सिंदूर, २. सधवा रहने की अवस्था। उ० १. अनुराग भाग सोहाग सील सरूप बहु भूषन भरीं। (जा० १८)
सोहागिल–(सं०सौभाग्य)–सौभाग्यवती, सधवा। उ०स्वामि सोहागिल, भाग बड़, पुत्र काजु कल्यान। (प्र० ५।४।५)
सोहावन–(सं० शोभा)–सुन्दर, शोभायमान। उ० नगर सोहावन लागत बरनि न जातै हो। (रा० २) सोहावनि–अच्छी लगनेवाली। उ० जेंवत बढ़ेउ अनंद सोहावनि सोनिसि। (जा० १७६)
सोहिलो–(?)–मंगल गीत, बधावा। उ०सहेली सुनु सोहिलो रे! (गी० १।२)
सोहैं–(सं० सम्मुख)–सामने। उ० सरजु तीर निरखहु सखि सोहैं। (गी० ७।४)
सौं–(सं० सौगंध)–शपथ, सौगंद। उ० बलिराम रावरी सौं रही रावरी चहत। (वि० २५६)
सौंघाई–(सं० स्वर्घ)–सस्ती। उ०एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। (मा० ६।८८।२)
सौंघे–(सं० स्वर्घ)–सस्ते। उ० महँगे मनि कञ्चन किये सौंघे जग जल नाज। (दो० ४४६)
सौंज–(सं० सज्जा)–सामान। उ० तुलसी समिध सौंज लंक-जज्ञकुंड लखि। (क० ५।७)
सौंतुख–(सं०सम्मुख)–सामने, सम्मुख, साक्षात। उ० देखौं सपन कि सौंतुख ससि सेखर, सहि। (पा० ७७)
सौंदर्य–(सं०)–सुन्दरता, सुघराई। उ० सकल-सौभाग्य-सौंदर्य-सुषमारूप। (वि० ४४)
सौंधी–(सं० सुगंध)–अच्छी, भली, रुचिकर। उ० जौं चितवनि सौंधी लगै चितइए सबेरे। (वि० २७३)
सौंपि–(सं० समर्पण)–सौंपकर। उ० पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्हीं। (मा० १।३३६।४) सौंपिय–सौंपिए, दे दीजिए। सौंपिये–समर्पण कीजिए, सुपुर्द कीजिए। सौंपी–समर्पण की, दी। सौंपु–समर्पण करो। उ० अजहुँ यहि भाँति सौंपु सीता। (क० ६।१७) सौंपे–दिये, दे दिये, समर्पण किये। सौंपेसि–सौंपा, दिया। उ० सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। (मा०६।६१।८) सौंपेहु–सौंपा, दिया। सौंप्यो–सुपुर्द किया, समर्पण कर दिया।
सौंह (१)–(सं० सौगंध)–शपथ, कसम। उ० हौं किये कहौं सौंह साँची सीय पीय की। (वि० २६३)
सौंह (२)–(सं०सम्मुख)–सामने। उ०राम की सौंह भरोसा है राम को। (क० ७।३६)
सौंहैं–दे० 'सौंह (१)'। उ० तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौंहैं किएँ। (मा० २।२०१। छं० १)
सौगंद–(सं० सौगंध)–कसम, शपथ।
सौच–(सं० शौच)–शुद्धता, शौच। उ० सकल सौच करि जाय नहाये। (मा० १।२२७।१)
सौज–(सं० सज्जा)–घर का सामान, सामग्री। उ० एक काढ़ै सौज एक धौज करै कहा ह्वै है। (क० ६।६)
सौजन्य–(सं०)–सज्जनता, शराफ़त।
सौ–(सं० शत)–एक शत, १००। उ० राम के रोष न राखि सकैं तुलसी बिधि, श्रीपति, संकर सौ रे। (क० ६।१२)
सौति–(सं० सपत्नी)–दूसरी माता, विमाता। उ० मैं न लखी सौति सखी! भगिनी ज्यों सेई है। (क० २।३)
सौतुख–दे० 'सौंतुख'।
सौदा–(अर०)–क्रय-विक्रय की वस्तु। उ० सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत। (वि०२६४) मु०सौदा सूत–लेन-देन का व्यवहार। उ० दे० 'सौदा'।
सौदामिनी–(सं०)–बिजली।
सौध–(सं०)–भवन, प्रासाद। उ० अवध सौध सत सरिस पहारू। (मा० २।६६।५)
सौभग–सुन्दर, अच्छा। उ० सान्द्रानंदपयोद सौभगतनुं पीतांबरं सुंदरं। (मा० ३।१। श्लो० १)

सौभागिनीं–सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ । उ० सौभागिनीं विभूषन हीना । (मा० ७।९९ ३)
सौभाग्य–(सं०)–१. अच्छा भाग्य, २. सोहाग, अहिवात, ३. सुख, ४. कल्याण, कुशल । उ० १. सकल सौभाग्य सुख खानि जिय जानि सठ । (वि० ४६)
सौमित्र–(सं०)–सुमित्रा के पुत्र, लक्ष्मण । उ० भरत अनुज सौमित्र समेता । (मा० ७।१६।१)
सौमित्रि–सौमित्र की, लक्ष्मण की । उ० सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं । (मा० २।१३४।४)
सौर–(सं०)–सूर्य सम्बन्धी ।
सौरज–(सं० शौर्य)–वीरता, शूरता । उ० सौरज धीरज तेहि रथ चाका । (मा० ६।८०।३)
सौरभ–(सं०)–१. सुगंध, २. केशर, ३. आम का पेड़ । उ० १. सुभग सौरभ धूपदीप वर मालिका । (वि० ४८) ३. सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नील मनि कोरि । (मा० १।२८८)
सौहौं–(सं० सम्मुख)–आगे, सामने । उ० तोहि लाजन गाल बजावत सौहौं । (क० ६।१३)
स्कंध–(सं०)–१. कंधा, २. पेड़ का धड़, ३. व्यूह, ४. युद्ध ।
स्तंभ–(सं०)–१. खंभा, थूनी, २. रुकाव, अटकाव ।
स्तंभन–(सं०)–रुकाव, अटकाव ।
स्तन–(सं०)- पयोधर, चूची ।
स्तब्ध–(सं०)–१. चुप, स्तब्ध, हक्का-बक्का, २. रुका, कुंठित, ३. स्थिर, दृढ़ ।
स्तवं–(सं०)–स्तुति को, प्रशंसा को । उ० पठंति स्तवं ये इदं । (मा० ३।४। छं० १२)
स्तुति–(सं०)–प्रार्थना, स्तव ।
स्तुत्य–(सं०)–प्रशंसनीय, बड़ाई के योग्य ।
स्तोत्र–(सं०)–स्तव, प्रार्थना, स्तुति ।
स्त्री–(सं०)–१. नारी, औरत, २. पत्नी ।
स्थल–(सं०)–भूमि, जगह ।
स्थाणु–(सं०)–१. ठूठा वृक्ष, २. शिव, महादेव ।
स्थान–(सं०)–जगह, ठौर, ठिकाना ।
स्थापन–(सं०)–बैठाना, जमाना, थापना ।
स्थापित–(सं०)–जिसकी स्थापना की जा चुकी हो ।
स्थावर–(सं०)–अचल, जड़ ।
स्थित–(सं०)–ठहरा, टिका, बैठा ।
स्थिति–(सं०)–१. ठहराव, होना, स्थित होना, २. स्थित रखना, पालन । उ० २. उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् । (मा० १।१। श्लो० ५)
स्थिर–(सं०)–अचल, अटल ।
स्थूल–(सं०)–मोटा ।
स्नेह–(सं०)–१. प्रेम, प्यार, २. तेल, घी ।
स्नेहता–(सं०)–प्रेम करने का भाव स्नेह ।
स्पर्श–(सं०)–छूना ।
स्पष्ट–(सं०)–खुला, साफ़ ।
स्पृहा–(सं०)–इच्छा, वांछा, अभिलाषा । उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये । (मा० ५।१। श्लो० २)
स्फटिक–(सं०)–बिल्लोर पत्थर ।
स्फुरत्–(सं० स्फुरण)–१. काँपता है, २. सुशोभित है । उ० २. स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा । (मा० ७।१०८।३)
स्मर–(सं०)–१. कामदेव, २. स्मरण, याद ।
स्मरण–(सं०)–याद, सुधि, स्मृति ।
स्मरामहे–(सं०)–हम याद करते हैं ।
स्मृति–(सं०)–१. याद, स्मरण, २. धर्मशास्त्र ।
स्यंदन–(सं०)–रथ, वाहन । उ० स्यंदन, गयंद, बाजिराजि भले भले भट । (क० ७।१६३)
स्य–(सं०)–का, की । उ० मुखांबुज श्री रघुनंदनस्य । (मा० २।१। श्लो० २)
स्यानी–(सं० सज्ञान)–चतुर, होशियार । उ० स्यानी सखी हठि हौं बरजी । (क० ७।१३३)
स्याम–(सं० श्याम)–१. कृष्ण, २. काला, ३. काला बादल । उ० १. क्यों न सुजोधन बोध कै आए स्याम सुजान ? (दो० ४८३) २. स्याम घन गुन बारि छबि मनि मुरलि तान तरङ्ग । (कृ० ५४)
स्यामता–(सं० श्यामता)–कालापन, नीलिमा । उ० तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास । (मा० ६। १२ क)
स्यामल–(सं० श्यामल)–काले रङ्ग का । उ० स्यामल गौर किसोर मनोहरता निधि । (जा० ३५)
स्यामा–दे० 'श्यामा' । उ० २. स्यामा बाम सुतरु पर देखी । (मा० १।३०३।४)
स्यार–(सं० शृगाल)–गीदड़, सियार ।
स्यों–(?)–सहित । उ० तेहि उर क्यों समात बिराट वपु स्यों महि सरित सिंधु गिरि भारे । (कृ० ५७)
स्रक–(सं० स्रक्)–पुष्पमाल, माला । उ० स्रक चंदन बनितादिक भोगा । (मा० २।२१५।४)
स्रग–दे० 'स्रक' । उ० स्रग सुगंध भूपित छबि छाए । (मा० १।३५५।१)
स्रजत–(सं० सृजन)–१. बनाता है, २. बनाता हुआ, ३. बनाते ही ।
स्रद्धा–दे० 'श्रद्धा' ।
स्रम–(सं० श्रम)–१. परिश्रम, २. थकावट, ३. तपस्या, ४. पसीना । उ० १. करम धरम स्रम-फूल रघुबर बिनु । (वि० २६४)
स्रमकन–(सं० श्रमकण)–पसीने की बूँदें । उ० अति सुचत स्रमकन मुखनि । (गी० ७।१८)
स्रमबिंदु–(सं० श्रमबिंदु)–पसीने की बूँद । उ० स्रमबिंदु मुख राजीव लोचन । (मा० ६।७१। छं० १)
स्रमित–(सं० श्रमित)–थका हुआ । उ० स्रमित भूप निद्रा अति आई । (मा० १।१७०।१)
स्रमु–दे० 'स्रम' । उ० १. तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक । (पा० ३५)
स्रव–(सं० स्रवण)–बहता हो, बहे । उ० जनु स्रव सैल गेरु की धारा । (मा० ३।१८।१) स्रवइ–बहता है, गिरता है । श्रवत–गिरता है । उ० रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत । (क० ६।४४) स्रवहिं–१. टपकते हैं, गिरते हैं, २. बहती हैं । उ० १. गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि । (मा० १। २७१) २. स्रवहिं सकल सरिताऽमृत धारा । (मा० १।

१६११२) स्रवै–१. बरसायें, बरसाने लगें, २. गिरे। उ० बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। (मा० २।१६६।१)
स्रवन–(सं० श्रवण)–१. कान, २. सुनना। उ० १. स्रवन कुंडल मनहुँ गुरु कवि करत बाद बिसेषु। (गी० ७।६) स्रवनन्हि–कानों। उ० मुख नासा श्रवनन्हि की बाटा। (मा० ७।६७।२)
स्रष्टा–(सं०)–१. रचनेवाला, २. ब्रह्मा। उ० १. मंत्र-जापक जाप्य सृष्टि स्रष्टा। (वि० ५३)
स्राद्ध–दे० 'श्राद्ध'। उ० स्राद्ध कियो गीध को। (क० ७। १५)
स्राप–(सं० शाप)–शाप, बद्दुआ।
स्री–(सं० श्री)–१. लक्ष्मी, २. धन, ३. ऐश्वर्य।
स्रुति–(सं० श्रुति)–१. कान, २. वेद, ३. श्रवण से आगे तीन नक्षत्र। उ० २. स्रुति संमत हरि-भक्ति पथ। (दो० ५५५) ३. स्रुति-गुन कर-गुन पु-जुग-मृग हय। (दो० ४५६)
स्रुवा–(सं०)–हवन आदि में आहुति देने के लिए बनी लकड़ी की कलछी। उ० चाप स्रुवा सर आहुति जानू। (मा० १।२८३।१)
स्रेनि–(सं० श्रेणी)–पंक्ति, कतार। उ० नील कमल सर स्रेनि मयन जनु डारइ। (जा० ६२)
स्रेनी–दे० 'स्रेनि'। उ०जनु तहँ बरिस कमल सित स्रेनी। (मा० १।२३२।१)
स्रोत–(सं०)–सोता, धारा, प्रवाह। उ० जनु सहस शीशावली स्रोत सुरस्वामिनी। (वि० १८)
स्रोता–(सं० श्रोतृ)–सुननेवाला, कथाप्रेमी।
स्वः–(सं०)–१. आकाश, २. स्वर्ग। उ० १. स्वः संभवं शंकरं। (मा० ३।१। श्लो० १)
स्व–(सं०)–अपना, निज का। उ० जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना। (मा० १।१२१।२)
स्वई–(सं० सः)–सोही, वही।
स्वकं–(सं०)–स्वकीय, अपनी। उ० प्रयांति ते गतिं स्वकं। (मा० ३।४।८)
स्वच्छंद–(सं०)–स्वतंत्र, स्वधीन। उ० सुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंद-चारी। (वि० ५६)
स्वच्छ–(सं०)–निर्मल, साफ़।
स्वच्छता–(सं०)–सफ़ाई, निर्मलता। उ० सोइ स्वच्छता करइ मलहानी। (मा० १।३६।३)
स्वजन–(सं०)–१. बंधु, संबंधी, २. मित्र।
स्वतंत्र–(सं०)–स्वाधीन, स्वच्छंद। उ० परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। (मा० १।१३७।१)
स्वतः–(सं०)–अपने से।
स्वपच–(सं० श्वपच)–चांडाल, डोम। उ० स्वपच सबर खस जमन जड़। (मा० २।१९४)
स्वपर–(सं० स्व+पर)–अपना-पराया, मेरा-तेरा। उ० स्वपर मति परमति तब बिरति चक्रपानी। (वि० ५७)
स्वप्न–(सं०)–सपना, ख़्वाब।
स्वभाव–(सं०)–प्रकृति, आदत। उ० रामनाम सो स्वभाव अनरागिहै। (वि० ७०)
स्वयं–(सं०)–आप, अपने आप। उ० स्वयं सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदर दियउ। (मा० ६।१७ ख)
स्वयंबर–दे० 'स्वयंवर'। उ० सीय स्वयंबर कथा सुहाई। (मा० १।४१।१)
स्वयंभू–(सं०)–अपने से होनेवाला, ब्रह्मा।
स्वयंवर–(सं०)–कन्या को अपने आप वर चुनने के लिए रचा गया उत्सव विशेष। उ० सोकि स्वयंवर आनहि बालक बिनु बल। (जा० ८६)
स्वर–(सं०)–१. ध्वनि, शब्द, रव, २. अकार आदि वे वर्ण जो व्यंजनों से भिन्न हैं।
स्वरग–दे० 'स्वर्ग'।
स्वरूप–(सं०)–१. रूप, आकार, २.सुंदरता, ३.अपना रूप। स्वरूपहि–अपने रूप को, आत्म को। उ० कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें। (मा० ७।११२।२)
स्वर्ग–(सं०)–देवलोक, वह लोक जहाँ मोक्ष प्राप्त करने पर आत्माएँ जाती हैं। उ० स्वर्ग सोपान विज्ञान-ज्ञानप्रदे। (वि० १८) स्वर्गउ–स्वर्ग भी। उ० स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई। (मा० ७।४४।१)
स्वर्ण–(सं०)–सोना, सुवर्ण।
स्वर्णकार–(सं०)–सोनार।
स्वर्न–दे० 'स्वर्ण'। उ० स्वर्न-सैल-संकास कोटि रवि-तरुन-तेज घन। (ह० २)
स्वल्प–(सं०)–१. थोड़ा, ज़रा, तनिक, २. छोटा। उ० १. बहुरज स्वल्प सत्व कछु तामस। (मा० ७।१०४।२) २. डरपावै गहि स्वल्प सपेला। (मा० ६।५१।४) स्वल्पउ–थोड़ा भी। उ० एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई। (मा० ७।१०६।४)
स्वबस–दे० 'स्ववश'। उ० १. राजा रामु स्वबस भगवानू। (मा० २।२५४।१)
स्ववश–(सं०)–१. स्वतंत्र, स्वच्छंद, २. अपने वश में।
स्वस्ति–(सं०)–कल्याण हो, मंगल हो।
स्वाँग–(?)–१. अनुकरण, बनावटी वेश, नकल, २. भँड़ौती, ३. तमाशा। उ० १. स्वाँग सूधो साधु को, कुचालि कलि ते अधिक। (वि० २५२)
स्वांतः–अपना अंतःकरण। उ० स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। (मा० १।श्लो० ७)
स्वाँति–दे० 'स्वाति'। उ० स्वाँति सनेह सलिल सुख चाहत। (वि० १६१)
स्वागत–(सं०)–१. सत्कार, २. कुशल-क्षेम। उ० २. स्वागत पूँछि निकट बैठारे। (मा० ३।४१।६)
स्वाति–(सं०)–एक नक्षत्र। उ० स्वाति सारदा कहहिं सुजाना। (मा० १।११।४)
स्वाती–दे० 'स्वाति'।
स्वाद–(सं०)–ज़ायका, सवाद। उ० स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। (मा० १।२०।४)
स्वादित–स्वाद पाए हुए। उ० बसे जो ससि-उछंग सुधा-स्वादित कुरंग। (वि० १६७)
स्वादु (१)–(सं० स्वाद)–ज़ायका, सवाद।
स्वादु (२)–(सं०)–मधुर, मीठा।

स्वाधीन–(सं०)–स्वतंत्र, मुक्त। उ० पराधीन देव ! दीहौं, स्वाधीन गुसाईं। (वि० १४६)
स्वान–(सं० श्वान)–कुत्ता। उ० स्वान कहे तें कियो पुर बाहिर, जती गयंद चढ़ाई। (वि० १६५)
स्वाना–दे० 'स्वान'। उ० रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना। (मा० ६।१०२।४)
स्वामि–दे० 'स्वामी'। उ० १. भलो निबाहेउ सुनि समुझि स्वामि धर्म सब भाँति। (दो० २०४)
स्वामिनि–दे० 'स्वामिनी'। उ० २. जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। (मा० २।२१।३)
स्वमिनी–(सं०)–१. मालकिन, २. हे मालकिन। उ० १. समस्त लोक स्वामिनी, हिम शैलबालिका। (वि० १६)
स्वामिहि–स्वामी को, मालिक को। स्वामी–(सं०स्वामिन्)–१. मालिक, २. प्रभु, ईश्वर, ३. पति, भर्तार। उ० १. स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ दोहाई। (वि० १७१)
स्वायंभुव–(सं०)–पहले मनु जो ब्रह्मा से उत्पन्न कहे गए हैं।
स्वायंभू–दे० 'स्वायंभुव'। उ०स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। (मा० १।१४२।१)
स्वारथ–दे० 'स्वार्थ'। उ० स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। (मा० ४।१२) स्वारथहि–स्वार्थ ही। उ० स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो काते, कौन वेद बखानई। (वि० १३५)
स्वारथी–स्वार्थी, मतलबी। उ० अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी। (वि० ३४)
स्वारथु–दे० 'स्वारथ'।
स्वार्थ–(सं०)–अपना भला, अपना मतलब।
स्वास–(सं० श्वास)–साँस। उ० छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि। (मा० २।१३।४)
स्वाहा–(सं०)-एक शब्द जिसका प्रयोग देवताओं को हविष्य देने के समय किया जाता है। उ० स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं। (क० ५।७)
स्वीकार–(सं०)-अंगीकार, मंज़ूर।
स्वेच्छा–(सं०)–१. अपनी अभिलाषा, २. स्वाधीनता।
स्वेद–(सं०)–पसीना। उ० सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल। (मा० २।११५)
स्वेदज–(सं०)–पसीने से उत्पन्न होनेवाले जूँ आदि जीव।
स्वै–(सं० सः)–वह, वही। उ० सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ। (क० २।५)
स्वैर–(सं०)-स्वेच्छानुसार बर्तनेवाला, दुराचारी।
स्वैरी–(सं० स्वैरिन्)–स्वेच्छाचारिणी, व्यभिचारिणी।
स्वैहैं–(सं० शयन)–सोवेंगे। उ० बारि बयारि विषम हिम आतप सहि बिनु बसन भूमितल स्वैहैं। (गी० ६।१८)

ह

हँकरावा–(सं० हक्कार)-बुलवाया, बुलाया। उ० मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। (मा० १।१८२।१)
हँकार–(सं० हक्कार)–आवाज़ लगाकर बुलाने की क्रिया या भाव, हाँक, पुकार।
हंकारहीं–बुला रहे हैं। उ० आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं। (मा० ७।२९। छं० १) हँकारा–१ बुलावा, २.बुलाया। उ० १.गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। (मा० १।१६३।४) हँकारि–बुलवाकर। उ० जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि। (मा० १।२९५) हँकारी–१. बुलाकर, २. बुलाई, बुलाया, ३. बुलाई हुई। उ० २. सुचि सेवक सब लिए हँकारी। (मा० १।२४०।४) हँकारे–बुलाए।
हंता–(सं०.हंतृ)–मारनेवाला, बधिक, नाशक। उ० जयति दसकंठ-घटकरन-बारिदनाद-कदन-कारन, कालनेमि-हंता। (वि० २५)
हंस–(सं०)–१.बत्तख़ के आकार का एक जल-पक्षी। मराल। यह नीर-क्षीर विवेक तथा मोती चुगने के लिए प्रसिद्ध है, २. आत्मा, ३. परमात्मा, ४. सूर्य, ५. सफेद, ६. श्रेष्ठ। उ० १. संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार। (मा० १।६) ४. हंस बंसु दसरथु जनक राम लखन से भाइ। (मा० २।१६१) हंसहिं–हंस को। उ० उ० हंसहि बक दादुर चातक ही। (मा० १।६।१) हंसिनि–हंस पक्षी की मादा। उ० जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु। (मा० २।१२८)
हँसत–(सं० हसन)–१. हँसते हैं, २. मज़ाक उड़ाते हैं। उ० २. आप महापातकी हँसत हरि हरहू को। (क० ७।६६)
हँसनि–हँसना, हँसने की क्रिया, या भाव। उ० अरुन अधर द्विज पाँति अनूपम ललित हँसनि जनु मन आकरषति। (गी० ७।१७) हँसब–हँसना। उ० हँसब ठठाइ फुलाउब गाला। (मा० २।३५।३) हँसहिं–१. हँसते हैं, २. हँसेंगे। उ० १. हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही। (मा० १।६।१) हँसहि–हँसता है। हँसा–मुस्कराया, प्रसन्न हुआ, हँसने लगा। उ० कहि अस बचन हँसा दससीसा। (मा० ६।२४।५) हँसि–हँसकर, प्रसन्न होकर। उ० गाधि सूनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ। (मा० १।२७५) हँसिबे–हँसने। उ० हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी। (मा० १।६।२) हँसिहहिं–हँसेंगे, मुस्कराएँगे। उ० हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी। (मा० १।८।५) हँसिहहु–हँसोगे। उ० हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई। (मा० १।७८।२) हँसिहै–हँसेगा, हँसी उड़ायेगा। उ० जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत एहि डर डरिए ? (वि० २७१) हँसे–हँसने लगे, मुस्कराए। उ० ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। (मा०

५।३७।४) हँसेउ-हँसे, हँसने लगे। हँसेहु-१. हँसे, हँसी की, २. हसना। उ० १. या २. हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ। (मा० १। १३५) हँसैहौं-हँसी कराऊँगा। उ० परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं। (वि० १०५) हँस्यो-१. हँसा, २. मेरी हँसी उड़ाई गई। उ० २. परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं। (वि० १०५)

हंसा-दे० 'हंस'। उ० १. जो भुसुंडि मन मानस हंसा। (मा० १।१४६।३)

हंसी-हंसिनी, हंस की स्त्री। उ० खीर नीर विवरन गति हंसी। (मा० २।३१४।४)

हइ (१)-(सं० हत)-मार गया, मारा। उ० कलप बेलि बन बढ़त बिषम हिम जनु हइ। (पा० ३२) हई-(सं० हत)-मारी, नाश कर दी। उ० बेद-मरजाद मानौ हेतु बाद हई है। (गी० १।८४) हए-१. बजाए गए, बजे, २. पीटे, मारे, नाश किए, ३. मारे हुए। उ० १. सदन-सदन सोहिलो सोहावनो नभ अरु नगर निसान हए। (गी० १।२) २. संग्राम अंगन सुभट सोवहिं रामसर निकान्हि हए। (मा० ६।८८। छं० १)

हइ (२)-(सं० भवन, प्रा० होत)-है। उ० बरनि सकै छबि अतुलित अस कबि को हइ? (जा० १२०)

हगि-(?)-मल करके, विष्टा करके। उ० काक अभागे हगि भर्‌यो महिमा भई कि थोरि। (दो० ३८४)

हटक-(?)-रोक, निषेध, डाँट।

हटकहु-(?)-मना करो, रोको, रोक दो। उ० तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। (मा० १।२७४।२) हटकि-१. मना करके, बरजकर, रोककर, २. डाँटकर। उ० १. डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मन जात। (मा० ३।३७ ख) २. सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध। (मा० १।६३) हटके-मना किया, बरजा। उ० बिहँसि हिये हरषि हटके लषन राम। (गी० १।८३) हटकेउ-दे० 'हटके'। हटक्यौ-रोका, बरजा। उ० करत राम-बिरोध सो सपनेहु न हटक्यौ ईस। (वि० २१६)

हटत-(?)-१. हटता है, हटता जाता है, २. मना करता है। उ० २. लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत। (वि० १२६) हटि-रोककर, मनाकर। उ० नयन नीरु हटि मंगल जानी। (मा० ३।१६।१)

हट्ट-(सं०)-१. हाट, बाज़ार, २. दूकान, ३. रास्ता। उ० १. चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहुबिधि बना। (मा० ५।३। छं० १)

हठ-(सं०)-१. अड़, ज़िद, २. ज़बरदस्ती, ज़ोरावरी। उ० १. बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस पर्‌यो कीर की नाईं। (वि० १२०) हठनि-हठ, हठ का बहुवचन। उ० हठनि बजाय करि डीठि पीठि दई है। (क० ७।१७५) मु० हठनि बजाय-हठ करके। उ० दे० 'हठनि'।

हठजोग-(सं० हठयोग)-हठ से चित्त की वृत्ति को रोकना। एक योग जिसमें अत्यंत कठिन आसनों और मुद्राओं का विधान है। उ० द्रवहिं हठजोग दिए भोग बलि प्रान की। (वि० २०६)

हठसील-(सं० हठ + शील)-हठी, हठीला। हठसीलहि-हठी को। दे० 'हठसील'। उ० यह न कहिअ सठ ही हठसीलहि। (मा० ७।१२८।२)

हठहिं-हठ करते हैं, हठते हैं। हठि-१. मना कर दो, बरज दो, २. हठ करके, ज़िद करके, ३. बलपूर्वक। उ० २. देखु जनक हठि बालकु एहू। (मा० १।२८०।३) ३. नाहिं त सम्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि। (मा० ६।६)

हठै-१. हठ करने से, २. हठ करने में। उ० १. हिये हेरि हठ तजहु हठै दुख पैहहु। (पा० ६२)

हठी-(सं० हठिन्)-हठ करनेवाला, ज़िद्दी, टेकी। उ० तुम कहि रहे, हमहुँ पचि हारी, लोचन हठी तजत हठ नाहीं। (कृ० ५८)

हठीले-दे० 'हठी'। उ० भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले। (क० ६।३२)

हठीलो-दे० 'हठी'। उ० तुलसी को साहिब हठीलो हनुमान भो। (ह० ११)

हड़ावरि-(सं० अस्थि + अवलि)-हड्डियों का समूह। उ० राम-सरासन तें चले तीर रहे न सरीर हड़ावरि फूटी। (क० ६।५१)

हत-(सं०)-१. बध किया हुआ, मारा गया, २. शून्य, विहीन। उ० २. भयउ तेजहत श्री सब गई। (मा० ६।३५।२)

हतइ-(सं० हत)-१. मारा, २. मारते, ३. मारता है। उ० १. प्रभु ताते उर हतइ न तेही। (मा० ६।६६।७) हतई-मारता है। हतउँ-हतूँ, मारूँ। उ० तेहिं सर हतउँ मूढ़ कहँ काली। (मा० ४।१८।३) हतहिं-मारते हैं। हतहु-मारो, मारिए। उ० हतहु नाथ खल नर अघरासी। (मा० ५। ६०।३) हति (१)-मारकर, हतकर। उ० प्रथम ताड़का हति सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज-हितकारी। (गी० ७।३८) हते (१)-मारे, नष्ट किये। उ० मुकुत न भये हते भगवाना। (मा० १।१२३।१) हतेउ-मारा, नष्ट किया। उ० फरत करिनि जिमि हतेउ समूला। (मा० २।२६।४) हतेसि-मार डाला। उ० बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। (मा० ४।६।४) हतै-मारे। उ० सन्मुख हतै गिरा-सर पैना। (वै० ४६) हतो (१)-मारा। हत्यो-मारा। उ० अतुलित बल मृगराज-मनुज तनु दनुज हत्यो श्रुति साखी। (वि० ६३)

हतभागी-दे० 'हतभाग्य'। उ० मानहुँ मोहि जानि हतभागी। (मा० ५।१२।५)

हतभाग्य-(सं०)-भाग्यहीन, अभागा। उ० सार-रहित हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहुँ कहँ पावै। (वि० १४४)

हताश-(सं०)-निराश, नाउम्मेद।

हति (२)-(सं० भू)-थी, हुती। उ० महाराज बाजी रची प्रथम न हति। (वि० २४६) हते (२)-थे। हतो (२)-था।

हथवाँसहु-(सं० हस्त + वास)-कब्ज़े में कर लो, हाथ में कर लो। उ० हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु। (मा० २।१८६)

हथा-(सं० हस्त)-हाथ जिससे ऐपन लेकर दीवार पर थापा जाता है। उ० अपनो ऐपन निज हथा, तिय पूजहिं निज भीति। (दो० ४५४)

हथिसार-(सं० हस्तिन् + शाला)-हाथी बाँधने का घर । उ० हाथी हथिसार जरे घोरे घोरसारहीं । (क० ५।२३)

हथेरी-(सं० हस्त + तल)-हथेली, गदोरी । उ० हाथ लंका लाइहैं तो रहैगी हथेरी सी । (क० ६।१०)

हद-(अर०)-सीमा, मर्यादा । उ० कायर कूर कपूतन की हद तेउ गरीब नेवाज नेवाजे । (क० ७।१)

हन-(सं० हनन)-१. ध्वंस, क्षय, नाश, २. मार, चोट, हिंसा, ३. मारना । हनइ-१. मारता है, २. मारे, ३. मार डालेगा । उ० ३. लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते । (मा० ५।४४।४) हनत-१. मारता है, हनता है, २. मारता हुआ । उ० १. हनत गुनत गनि गुनि हनत जगत ज्योतिषी-काल । (दो० २४६) हनहिं-१. मारते हैं, २. पीटते हैं, बजाते हैं । उ० २. सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना । (मा० १।३०६।२) हनि-१. मारकर, २. बजाकर । उ० १. लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय । (वि० २२०) २. हनि देव दुंदुभी हरषि बरषत फूल । (गी० १।६४) हनिय-१.मारिए, २.मारना चाहते । उ० २.निकट बोलि न बरजिए बलि जाउँ हनिय न हाय । (वि० २२०) हनी-नष्ट किया, मारा । उ० कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार । (मा० २।११३) हने-१. मारे, २. बजाए, ३. मारने से, ४. बजाने से । उ० २. हरषि हने गहगहे निसाना । (मा० १।२६६।१) हनेउ-मारा, मारा हो । उ० दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू । (मा०२।२९।३) हनेऊ-मारा, मार डाला । हनेसि-मारी । उ० अस कहि हनेसि माझ उर गाढ़ा । (मा० ६।९४।४) हन्यौ-मारा, हना । उ० सँभारि श्री रघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो । (मा० ६।९५।छं० १)

हनन-(सं०)-मारना, बध करना, हत्या करना ।

हनु (१)-(सं०)-जबड़ा, दाढ़ की हड्डी ।

हनु (२)-(सं० हनन)-मारनेवाला, नाश करनेवाला ।

हनुथल-(सं० हनु + स्थल) ठोड़ी के नीचे का भाग । उ० मंजुल चिबुक मनोरम हनुथल, कल कपोल नासा मन मोहति । (गी० ७।१७)

हनुमंत-दे० 'हनुमान' । उ० हनुमंत-हृदि विमल-कृत परम मंदिर सदा दास तुलसी सरन-सोकहारी । (वि० ५१) हनुमंतहि-हनुमान को । उ० प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई । (मा० ६।१२१।१)

हनुमंता-दे० 'हनुमान' । उ० कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता । (मा० ६।४३।१)

हनुमत-दे०'हनुमान' । उ० हनुमत जन्म सुफल करि माना । (मा० ४।२३।६)

हनुमद्-दे० 'हनुमान' ।

हनुमान-(सं०हनुमत्)-महावीर, जो केसरी नाम के बंदर की स्त्री अंजना के गर्भ से पवन के पुत्र थे । एक मत से शंकर के वीर्य से इनकी उत्पत्ति हुई थी । हनुमान बड़े वीर और बज्रांगी कहे गये हैं । सीता को खोजना, लंका जलाना तथा संजीवनी बूटी के लिए पूरा पर्वत उठा लाना इनके मुख्य कार्य हैं । राम के ये अनन्य भक्त थे । उ० दुसह साँसति सहन को हनुमान ज्यायो जाय । (गी० ७।३१)

हनुमाना-दे० 'हनुमान' । उ० महावीर बिनवऊँ हनुमाना । (मा० १।१७।५)

हनुमानू-दे० 'हनुमान' । उ० जिमि जग जामवंत हनुमानू । (मा० १।७।४)

हनू-१. दे० 'हनु' । २. हनुमान । उ० २. जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत । (मा० ५।४४)

हनूमंत-दे० 'हनुमान' । उ० रघुपति ! देखो आयो हनूमंत । (गी० ५।१६)

हनूमान-दे० 'हनुमान' । उ० हनूमान अंगद रन गाजे । (मा० ६।४७।३)

हबि-(सं० हविस्)-हविष्य, हवन करने की सामग्री । उ० यह हबि बाँटि देहु नृप जाई । (मा० १।१८९।४)

हबूब-(अर० हबाब)-१. पानी का बबूला, बुल्ला, २. निस्सार बात, तत्त्वहीन बात । उ० १. बानी झूँठी साँची कोटि उठत हबूब हैं । (क० ७।१०८)

हम-(सं० अहम्)-१. हम सब, २. अहंकार का भाव । उ० १. हम सन सत्य मरमु किन कहहू । (मा० १।७८।२) हमहिं-हमें । उ० कंत सिख देइ हमहिं कोउ माई । (मा० २।१४।१) हमहीं-हमें, हमको । उ० तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं । (मा० २।२४।३) हमहुँ-हमें भी, हमको भी । उ० हमहुँ निठुर-निरुपाधि-नेह निधि निज भुजबल तरिबे हो । (कृ० ३६) हमहू-मैं भी, हम भी । उ० हमहू उमा रहे तेहिं संगा । (मा० ६।८९।१) हमैं-हमको, हमें । उ० अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन ? (दो० ५६४)

हमरि-(प्रा० अम्ह करको)-१. हमारी, मेरी, २. हम सब की । उ० १. हमरि बेर कस भयो कृपिनतर । (वि० ७) हमरिऔ-हमारी भी । उ० तुलसी सहित बन बासी मुनि हमरिऔ । (गी० २।३४)

हमरें-हमारे । उ० हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं । (मा० १।६२।१) हमरे-हमारे, हम लोगों के । उ० जे हमरे अरि मित्र उदासी । (मा० २।३।१) हमरेउ-हमारा मेरा । उ० जाकरि तैं दासी सो अविनासी हमरेउ तोर सहाई । (मा० १।१८४।छं० १)

हमार-(प्रा०अम्ह करको)-हमारा,मेरा । उ०सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार । (मा० १।१३२)

हमारा-मेरा, हम लोगों का । उ० पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा । (मा० २।११।२) हमारी-दे० 'हमारि' । उ० छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी । (मा० २।१६।४) हमारें-हमारे में, मेरे में । उ०ज्यों तिषु कूठ हमारें भाएँ । (मा० २।११२।३) हमारे-मेरे, हम लोगों के । उ० नहिं भलि बात हमारे भाएँ । (मा० १।६२।४)

हमारि-हमारी, मेरी । उ० हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई । (मा० १।७८।२)

हय-(सं०)-१. घोड़ा, अश्व, २. नक्षत्र । उ० १. राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला । (मा० ६।२४।७) २. स्रुति-गुन कर-गुन, पु-जुग-मृग हय, रेवती, सखाउ । (दो० ४५६)

हये-(सं० हत)-१.मारे, नष्ट किए, २.पीटे, बजाए । उ० १. गए गँवाइ गरूर पति, धनु मिस हये नरेस । (प्र०१।५।५) हयौ-दे० 'हयौ' । उ० किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारें रिपु हयो । (मा० ६।१०६।छं० १) हयौ-हत्या

की, मारा । उ० महा मोह-रावन बिभीषन ज्यों हयो हौं । (वि० १८१)

हर (१)-(सं०)-१. शंकर, महादेव, २. हरनेवाला, दूर करनेवाला, ३. बध करनेवाला, ४. एक राक्षस जो विभीषण का मंत्री था, ५. ले जानेवाला, ६. एकादशी, ग्यारह, ७. ग्यारहवाँ । उ० १. मार-करि-मत्त-मृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरन-संसार ज्वाला । (वि० ४६) २. त्रैलोक-सोकहर, प्रमथराज । (वि० १२) ३. यातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर । (वि० २७) ६. रबि हर दिसि गुन रस नयन । (दो० ४५८) हरनि (१)-महादेव का बहुवचन । उ० महिमा की अवधि करसि बहु बिधि-हरि-हरनि । (वि० २०) हरहि-महादेव में । उ० एकउ हरहि न बर गुन, कोटिक दूषन । (पा० ५६)

हर (२)-(सं० हल)-जोतने का एक प्रसिद्ध औज़ार, हल । उ० तौ जमभट साँसति हर हम से वृषभ खोजि खोजि नहते । (वि० ६७)

हर (३)-(सं० हरण)-हरेगा, काटेगा । उ० जो हमार हर नासा काना । (मा० ५।५२।३) हरइ-हर लेता है । उ० हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा । (मा० ६।३७।४) हरई-हरता, हरण करता है । उ० हरइ सिष्यधन सोक न हरई । (मा० ७।६६।४) हरउ-हरण करे, हरे । उ० हरउ भगत मन कै कुटिलाई । (मा० २।१०।४) हरत-१. हरता है, छीनता है, दूर करता है, २. हरनेवाला । उ० १. हरत सकल कलि कलुष गलानी । (मा० १।४३।२) हरति-१. नाश करती है, छीनती है, चुराती है, २. संहारती हुई, नाश करती हुई । उ० १. हरति सब आरती आरती राम की । (वि० ४८) हरहिं-दूर करते हैं, हर लेते हैं । उ० हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा । (मा० १।१२१।४) हरहीं-हरते हैं, हरते थे । उ० निज छबि रति मनोज मदु हरहीं । (मा० २।६१।१) हरहु-दूर कीजिए । हरहू-हर लीजिए, दूर कीजिए । उ० उग्र साप मुनिबर कर हरहू । (मा० ३।१३।८) हरिबे-हरना, हरना था । उ० तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हियो हरिबे हो । (कृ०३६) हरिय-हरिए, काटिए । उ०करि कृपा हरिय भ्रम फंद काम । (वि० १४) हरिये-१.दूर कीजिए. २.दूर करूँ । उ० २.कहो अब नाथ ! कौन बल तें संसार-सोक हरिए । (वि०१८६) हरिहउँ-हरूँगा, हर लूँगा । उ० हरिहउँ सकल भूमि गरुआई । (मा० १।१८७।४) हरिहि (१)-हरेगा, दूर करेगा । २. सुर, नर, मुनि करि अभय दनुज हति हरिहि धरनि गरुआई । (गी०१।१३) हरिही-चुरावेगा, हर ले जायगा । उ० तासु नारि निसिचर पति हरिही । (मा० ४।२८।४) हरिहैं (१)-(सं० हरण)-१. हरेंगे, दूर करेंगे, २. हर लेंगे, चुरा लेंगे । उ० १. तुलसीदास भरोस परम करुना-कोस प्रभु हरिहैं बिपम भवभीर । (वि० १६७) हरी (१)-(सं० हरण)-१.दूर कर दी, २. चुरा ली, ले ली, हर ली, ३. हरने वाली । उ० १. बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है । (क० ७।१८०) हरु-१. हर लो, दूर कर दो, २. छीन लो, ले लो । उ० १. हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई । (मा० १।२४६।२) हरे-१. चुराये, चुरा लिये, हर लिए, २. हरे गए, चुराए गए, ३. नाश किए, हरे । उ० १. धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे । (मा० १।८५) २. मंडपु बिलोकि बिचित्र रचनाँ रुचिरताँ मुनिमन हरे । (मा०१।३२०।छं०१) ३. दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे । (वि० ११६) हरेऊ-हरा, हर लिया । उ० तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ । (मा० १।१२०।१) हरै-१. हरता है, दूर करता है, २. हरने पर, दूर करने पर, ३. हरण करे, चुरावे, ४. हर लेता है, हरण कर लेता है । उ० ४ नृप नहुष ज्यों सब के बिलोकत बुद्धिबल बरबस हरै । (जा० ६६) हरो-१. हर जाय, चोरी हो जाय, २.हर लिया । उ०१. हरो धरो गाड़ो दियो धन फिर चढ़ै न हाथ । (दो० ४५७) हर्‌यो-दूर किया । उ० सब भूपन को गरब हर्‌यो हरि, भंज्यो संभु-चाप भारी । (गी० ७।३८)

हरकी-(?)-मना किया, हटकी । उ० कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी । (क० ७।१७०)

हरखइ-(सं० हर्ष)-प्रसन्न होता है । उ० सुनि जिय भयउ भरोस रानि हिय हरखइ । (जा० ८८)

हरखानी-प्रसन्न हुई ।

हरगिरि-शंकर का पर्वत, कैलाश । उ० हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू । (मा० २।२५३।३)

हरणं-हरण करनेवाले । उ० चरन-नख-नीर त्रैलोक्य पावन परम, विबुध जननी-दुसह-शोक हरणं । (वि० ५२) **हरण**-(सं०)-१. हरना, लेना, २. दूर करना, ३. हरनेवाला, लेनेवाला , ४. संहार, नाश, ५. ले जाना, वहन करना ।

हरता-(सं० हर्त्ता)-१.हरनेवाला, दूर करनेवाला, २. चोर, लुटेरा । उ० १. जो करता भरता हरता, सुर साहिब,साहब दीन दुखी को । (क० ७।१४६)

हरतार-१. हरनेवाला, २. नाश करनेवाला, महादेव । उ० २. करतार भरतार हरतार कर्म काल । (ह० ३०)

हरद-दे० 'हरदि' । उ० हरद दूब दधि अच्छत माला । (मा० १।२६६।४)

हरदि-(सं० हरिद्रा)-१. हल्दी, २. ब्याह में हल्दी लगाने की रीति । उ० २. प्रथम हरदि बेदन करि मगल गावहि । (जा० १२६)

हरन-दे० 'हरण' । उ० २. विष्णु यश-पुत्र कल्की दिवाकर उदित दास तुलसी हरन बिपति-भारं । (वि० ५२) ५. सिंधु तरन कपि गिरि हरन काज साँइ हित दोउ । (दो० ४४५)

हरनहार-हर्ता, नाश करनेवाला । उ० सुमिरे हरनहार तुलसी की पीर को । (ह० १०)

हरना-(सं० हरण)-हरनेवाला, दूर करनेवाला । उ० गहे पाहि प्रनतारति हरना । (मा० १।१३८।१) **हरनि** (२)-हरनेवाली । उ० भक्ति-भुक्ति-दायिनि, भयहरनि, कालिका । (वि० १६)

हरनिहार-नाश करनेवाला, हर्ता । उ० हर से हरनिहार जपैं जाके नामैं । (गी० ५।२५)

हरनी-हरनेवाली । उ० चितवनि चारु मार मनु हरनी । (मा० १।२४३।३)

हरनू-हरनेवाले । उ० कहत सुनत दुख दूषन हरनू । (मा० २।२२३।१)

हरपुर–शिव का स्थान, १. कैलास, २. काशी। उ० १. हरि·बिरंचि हरपुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी। (गी० १।४)

हरपुरी–काशी, बनारस। उ० तुलसी बसि हरपुरी रामजपु जो भयो चहै सुपासी। (वि० २२)

हरवा–(सं० हार)–माला, हार। उ० चंपक-हरवा अँग मिलि अधिक सोहाइ। (ब० १।५)

हरष–(सं० हर्ष)–प्रसन्नता, खुशी। उ० जयति सिंहासनासीन सीतारमन निरखि निर्भर-हरष नृत्यकारी। (वि०२७)

हरषइ–प्रसन्न होते हैं, प्रसन्न होता है। उ० देखि चरित हरषइ मन राजा। (मा० १।२०५।४) हरषई–१. प्रसन्न होता है, २. प्रसन्न होने लगा। उ० १.किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई। (मा० ६।८७। छं०१) हरषत–१. प्रसन्न होता है, प्रसन्न होते हैं, २. प्रसन्न होते हुए। उ० १. बरषत करषत आपुजल, हरषत अरवनि भानु। (दो० ४५५) हरषतु–प्रसन्न होते, खुश होते। उ० पुलक सरीर हिये हेतु हरषतु हैं। (क० ६।५८) हरषहिं–प्रसन्न होते हैं। उ० नगर कोलाहल भयउ नारि नर हरषहिं। (जा० २०३) हरषि–प्रसन्न होकर। उ० निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो। (वि० ८८) हरषिहै–हर्षित होगा, प्रसन्न होगा। उ०प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै। (वि० २६८) हरषीं–प्रसन्न हुईं। उ० आए देखन चाप मख सुनि हरषीं सब नारि। (मा० १।२२१) हरषी–प्रसन्न हुई। उ० पद-नख देख देवसरि हरषी। (मा० २।१०१।३) हरषे–प्रसन्न हुए। उ० सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। (मा० २। २५६।२) हरषेउ–प्रसन्न हुआ। उ० हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। (मा० १।१६५।४)

हरषवंत–प्रसन्न, आनंदमग्न। उ० हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद। (मा० १।३६४)

हरषाइ–दे० 'हरषाई'। उ० मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ। (मा० १।१५८) हरषाई–प्रसन्न होकर, खुश होकर। उ० चलीं उमा तप हित हरषाई। (मा० १। ७३।४) हरषाऊँ–हर्षित होता हूँ। उ० बाल चरित बिलोकि हरषाऊँ। (मा० ७।७५।२) हरषाती–हर्षित होती, प्रसन्न होती। उ० सुनि हरि चरित न जो हरषाती। (मा० १। ११३।४) हरषान–हर्षित हुआ प्रसन्न हुआ। उ० राका ससि रघुपति पुरी सिंधु देखि हरषान। (मा० ७।३ ग) हरषाना–प्रसन्न हुए, हर्षित हुए। उ० सेन बिलोकि राउ हरषाना। (मा० १।१५४।२) हरषानी–प्रसन्न हुई। उ० दुख दंपतिहि उमा हरषानी। (मा० १।६८।१) हरषाने–प्रसन्न हुए। उ० नगरलोग सब अति हरषाने। (मा० १। ९३।१) हरषानेउ–प्रसन्न हुए। उ० दीन्हि लगन कहि कुसल राउ हरषानेउ। (जा० १३१) हरषाहीं–हर्षित होते हैं, प्रसन्न होते हैं। उ० बाल सखा सुनि हियँ हरषाहीं। (मा० २।२४।१)

हरषित–आनंदित, प्रसन्न। उ० घर घर मंगलचार एक रस हरषित रंक रानी। (गी० ७।२०)

हरषु–दे० 'हरष'। उ० सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू। (मा० २।१४६।४)

हरहाई–(?)–वह गाय जो बड़ी नटखट हो और खेत चरती फिरे। उ० जिमि कपिलहि घालइ हरहाई। (मा० ७। ३९।१)

हराँसू–दे० 'हरास'। उ० २. बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू। (मा० २।५६।२)

हराम–(अर०)–निषिद्ध, विधि-विरुद्ध, अनुचित। उ० गिरो हिये हहरि 'हराम हो हराम हन्यो' हाय हाय करत परीगो काल फँग मैं। (क० ७।७६)

हरावहिं–हराते हैं। उ० करहिं आपु सिर धरहिं आन के बचन बिरंचि हरावहिं। (कृ० ४)

हरास–(फ़ा० हिरास)–१. भय, डर, २. दुःख, शोक, उदासी। उ० ३. धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास। (ब० १५)

हरिं–१. भगवान् को, २. बंदर को, ३. पापों के हरनेवाले को। उ० १.वन्देऽहंतम शेष कारण परं रामाख्यमीशंहरिम्। (मा० १।१।श्लो० ६) हरि–(सं०)–१. भक्तों का दुःख हरनेवाले भगवान। विष्णु या उनके राम-कृष्ण आदि अवतार, अ. विष्णु, आ. राम, इ. कृष्ण, २. इंद्र, ३. साँप, ४. मेढक, ५. सिंह, ६. घोड़ा, ७. सूर्य, ८. चाँद, ९. तोता, १०. बंदर, हनुमान, ११. यमराज, १२. हवा, १३. मोर, १४. कोयल, १५. हंस, १६. धनुष, १७. पर्वत, १८. हाथी, १९. कामदेव, २०.हरा रंग, २१.हरनेवाला। उ०१.अ.नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान हरिज्ञान घन सच्चिदानंद मूलं। (वि० ५३) ५. अज्ञान-राकेस-ग्रासन बिधुंतुद गर्व-काम-करिमत्त-हरि दूषनारी। (वि० ५८) ९. ई. हरि परे उघरि। (कृ० ३६) १०. आइ गये हरि-जूथ देखि उर पूरि प्रमोद रह्यो है। (गी० ४।२) १६. आकरष्यो सिय-मन समेत हरि हरष्यो जनक-हियो। (गी० १।८८) १९. जनु हर डर हरि बिबिध रूप धरि रहे बर भवन बनाई। (वि० ६२) हरिउ–विष्णु भी। उ० हित कै न मानै बिधि हरिउ न हरु। (वि० २५०) हरिहि–१. कृष्ण को। उ० १. द्रोन बिदुर भीषम हरिहि कहैं प्रपंची लोग। (दो० ४१८)

हरिअरइ–(सं० हरित)–हरा ही हरा। उ० गाधि सूनु, कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ। (मा० १।२७५)

हरिचंद–(सं० हरिश्चंद्र)–अयोध्या के एक प्रसिद्ध राजा जिन्होंने अपना सारा राज्य और धन विश्वामित्र को दान दे दिया था। ये अपनी सत्यवादिता के लिए प्रसिद्ध हैं। उ० सिबि·दधीच·हरिचंद नरेसा। (मा० २।९५।२)

हरिजन–(सं०)–भगवान का भक्त, दास। उ० सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। (मा० १।२७३।३)

हरिजान–दे० 'हरियान'। उ० भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान। (मा० ७।१२१ ख)

हरिण–(सं०)–मृग, हिरन।

हरित–(सं०)–१. हरा, २.·हरा।या चुराया·हुआ। उ० १. हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल। (मा० १। २८७) हरितमणि–हरे रंग की मणि, पन्ना।

हरिता–(सं०)–विष्णुत्व, विष्णुता। उ० हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई। (वि० १३५)

हरिधनु–भगवान् का धनुष, इंद्रधनुष। उ० बकराजि

राजति गगन, हरिधनु तड़ित दिसि दिसि सोहहीं। (गी० ७।१६)

हरिधाम-बैकुंठ, स्वर्ग। उ० अविरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम। (मा० ३।३२)

हरिन-(सं० हरिण)-हिरन, मृग। उ० हेम हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि देखाइ। (ब० २६) हरिनबारि-मृग तृष्णा, झूठा पानी जो रेगिस्तान में पशुओं की मृत्यु का कारण बनता है। उ० पायो केहि घृत बिचारु हरिनबारि महत। (वि० १३३)

हरिपद-(सं०)-विष्णु का पद, परमपद, बैकुंठ। उ० मैं जानी हरिपद-रति नाहीं। (वि० १२७)

हरिप्रीता-(सं०)-ज्योतिष में एक मुहूर्त का नाम। उ० सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता। (मा० १।१६१।१)

हरिवाहन-(सं० हरि+वाहन)-विष्णु की सवारी गरुड़।

हरियान-(सं०)-विष्णु की सवारी, गरुड़।

हरिसंकरी-(सं० हरि+शंकर)-विष्णु और शंकर की सम्मिलित स्तुति का पद जो विनयपत्रिका में है। उ० रुचिर हरिसंकरी-नाम मंत्रावली द्वंद्व दुख-हरनि आनंदखानी। (वि० ४६)

हरिहाई-दे० 'हरहाई'।

हरिहित-(सं०)-बीरबहूटी, इंद्रबधूटी। उ० जनु खद्योत-निकर हरिहित-गन भ्राजत मरकत-सैल-सिखर पर। (गी० ६।१६)

हरिहैं-(सं० हारि)-१. थक जायँगे, २. हार जायँगे।

हरी (२)-(सं० हरि)-१. विष्णु, हरि, २. सिंह, ३. बंदर, हनुमान।

हरी (३)-(सं० हरित)-हरे रंग की।

हरीस-(सं० हरीश)-बंदरों के राजा, १. सुग्रीव, २. हनुमान। उ० २. देखि दसा व्याकुल हरीस, ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो। (गी० ५।१५)

हरीसा-दे० 'हरीस'। उ० १. कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। (मा० ४।१२।४)

हरु (२)-(सं० लघुक, हिं० हलका)-जो भारी न हो, हलका।

हरु (३)-(सं० हर)-महादेव, शंकर। उ० लसै जटा जूट जनु रूख बेष हरु है। (क० ७।१३६)

हरुअ-(सं० लघुक)-१. हलका, २. तुच्छ। उ० १. होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी। (मा० १।२५८।४) २. निज गुन गरुअ हरुअ अति मानहिं, मन तजि गर्व। (गी० ७।२१) हरुए-१.हलके, २.धीरे से। उ० २. लखन पुकारि, राम हरुए कहि भरतहु बैर सँभार्‌यो। (गी० ३।६)

हरुआई-हलकापन, हलुकई। उ० देह बिसाल परम हरुआई। (मा० ५।२६।१)

हरैया-हरनेवाला, हरनेवाले। उ० भूमि के हरैया उखरैया भूमि-धरनि के। (गी० १।८३)

हरो-(सं० हरित)-हरा, हरित। उ० मोहिं तो सावन के अंधहिं ज्यों सूझत रंग हरो। (वि० २२६)

हर्ता-(सं०)-हरनेवाला, अपहरण करनेवाला। उ० भीषणाकार, भैरव भयंकर, भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति विपति हर्त्ता। (वि० ११)

हर्ष-(सं०)-प्रसन्नता, खुशी।

हलंत-(सं०)-वह स्वर जिसमें कोई स्वर न मिला हो, शुद्ध व्यंजन। उ० छत्र मुकुट सब बिधि अचल तुलसी जुगल हलंत। (स० १५१)

हल-(सं० हल्)-शुद्ध व्यंजन जिसमें कोई स्वर न मिला हो। पाणिनि में 'हल्' प्रत्याहार में सब स्वर आ जाते हैं। उ० हल जम-मध्य समान जुत यातें अधिक न आन। (स० २७१)

हलक-(अर० हलक)-गला, कंठ। उ० समर समर्थ, नाथ! हेरिए हलक में। (क० ६।२५)

हलधर-(सं०)-हल को धारण करनेवाले, बलराम। उ० जीह जसोमति हरि हलधर से। (मा० १।२०।४)

हलबल-(सं० हल बल)-खलबली! उ० गाज्यो सुनि कुरुराज दल हलबल भो। (ह० ५)

हलराइहौं-(सं० हिल्लोल)-गोद में लेकर झुलाऊँगी। उ० गोद बिनोद मोदमय मूरति हरषि-हरषि हलराइहौं। (गी० १।१८) हलरावति-हाथ पर लेकर हिलाती हैं। उ० बाल-केलि गावति हलरावति पुलकति प्रेम-पियूष पिये। (गी० १।७) हलरावै-हिलाती डुलाती है। उ० लै उछंग कबहुँक हलरावै। (मा० १।२००।४)

हलाकी-(अर० हलाक)-मारनेवाला, क़ातिल, बध करनेवाला। उ० उधो जू! क्यों न कहैं कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी। (क० ७।१३४)

हलावहिं-(सं० हिल्लोल)-हिलाते हैं, हिला रहे हैं। उ० खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। (मा० ६।५।३)

हवि-(सं० हविस्)-हवन की वस्तु, वह वस्तु जो आग में किसी देवता के निमित्त डाली जाय। उ० यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। (मा० १।१८६।४)

हलाहल-(सं०)-वह प्रचंड विष जो समुद्र-मंथन के समय समुद्र से निकला था और जिसका शंकर ने पान किया था।

हलाहलु-दे० 'हलाहल'। उ० मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे, अजर अमर हर अँचइ हलाहलु। (वि० २४)

हलोरि-लहरें उठाकर, हिलोरा मारकर। उ० कपीस कूद्यो बातघात बारिधि हलोरि कै। (क० ५।२७)

हलोरे-(अनु० हलहल)-तरंग, लहर। उ० सोहै सितासित को मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे। (क० ७।१४४)

हवन-(सं०)-किसी देवता के निमित्त आग में दी हुई आहुति, होम।

हवाले-(अर० हवाला)-सुपुर्द, ज़िम्मे। उ० आजु करउँ खलु काल हवाले। (मा० ६।६०।४)

हव्य-(सं०)-हवन की सामग्री।

हसि-(सं० भवन्)-अहसि, है। उ० का अनखनि हसि कह हँसि रानी। (मा० २।१३।३)

हसेउँ-(सं० हसन)-हँसा। उ० हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची। (मा० ६।२६।१)

हस्त-(सं०)-१. हाथ, कर, २. हस्त नक्षत्र। उ० १. अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख। (मा० १।६७)

हस्तामलक-(सं०)-हाथ में आँवले की तरह, स्पष्ट।

हस्तिनी-(सं०)-हथिनी, मादा हाथी। उ० बस्ती हस्ती हस्तिनी देति न पति रति दानि। (स० ६६५)

हस्ती-(सं०)-हाथी, गज। उ० दे० 'हस्तिनी'।

हहर-(?)-हर, भय, त्रास।

हहरत-(?)-डरकर, घबराकर। उ० हहरत हारत रहित बिंद रहत घरे अभिमान। (स० ३६४) हहरि-घबराकर, चौंककर, भौचक्का होकर, डरकर। उ० हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै। (क०६।४२) हहरी-भयभीत हो गई, घबरा गई। उ० नाथ भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये हहरी है। (क० ६।२६) हहरु-घबराओ, डराओ। उ० तुलसी तू मेरो हारि हिये न हहरु। (वि० २५०) हहरे-घबराए, डरे। उ० सब सभीत संपाति लखि हहरे हृदय हरास। (प्र० ३।७।५) हहर्यो-घबड़ा गया, डर गया। उ० तौ मन में अपनाइए तुलसिहि कृपा करि, कलि बिलोकि हहर्यो हौं। (वि० २६७)

हहरात-(?)-१. डरते हैं, भयभीत, होते हैं, २. डरते हुए, हाय हाय करते हुए। उ० १. देखे हहरात भट काल तें कराल भो। (क० ५।४) २. उछरत उतरात हहरात मरि जात। (क० ७।१७६) हहरानी-१. घबरा गईं, २. डरी हुई, घबराई। उ० २. हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की। (क० ६।४०) हहरानु-घबराया, डर गया। उ० पाहरू ल्ई चोर हेरि हिय हहरानु हैं। (क० ७।८०) हहराने-हहराने लगी, ज़ोर से चलने लगी। उ० लपट झपट झहराने हहराने बात। (क० ५।८)

हहा-(अनु०)-१. बिनती, चिरौरी, गिड़गिड़ाहट, २. प्रसन्नता का शब्द, अहा, ३. ठठाकर हँसने का शब्द। उ० १. दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी। (क० ७।६७) २. नाचत बानर भालु सबै तुलसी कहि हारे! हहा भइया, हो रे! (क०६।५७) ३. तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है। (क० २।७)

हहिं-(सं० भवन्, प्रा० होन, हिं० होना)-हैं, अहहिं। उ० हहिं पुरारि तेउ एक-नारि व्रत-पालक (जा० १०४)हहु-हो। उ० जानति हहु बस नाहु हमारें। (मा० २।१४।३)

हा (१)-था। उ० एक जनम कर कारन एहा। (मा० १ १२४।२) ही (१)-थी। उ० बड़ी अवलंब ही सो चले तुम तोरि कै। (क० ५।२६)

हाँई-(?)-१. लिए, २. भाँति। उ० १. ताहि बाँधिबे को धाई, ग्वालिनी गोरस हाँईं। (कृ० १७)

हाँक-(सं० हुंकार)-१. पुकार, चिल्लाहट, २. युद्धनाद, ललकार, ३. गर्जन, ४. हाँककर, साथ लेकर, ५. बुलाकर, पुकार कर। उ० २. हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले। (वि० ३२) ३. हनुमान-हाँक सुनि बरषि फूल। (गी० ५।१६) ५. तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। (मा० १।२७५।१) हाँकहु-१. हाँको, २. पुकारो, ३. ललकारो। हाँकि-१. हाँक लगाकर, बुलाकर, २. ललकार कर, ३. ललकारा, ४. गर्जन करके, ५. साथ लेकर। उ० २. भूमि परे भट घूमि कराहत हाँकि हने हनुमान हठीले। (क० ६।३२) ३. चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु। (मा० १।१५६) हाँकी-हाँक, आगे बढ़ा, चला। उ० सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी। (मा० २।१४३।२) हाँके-१. ललकारने पर, २. हाँक कर आगे बढ़ाया, हाँका। उ० २. कौन की हाँक पर चौंक चंडीस बिधि, चंडकर थकित फिरि तुरँग हाँके। (क० ६।४५) हाँकेउ-हाँका, आगे बढ़ाया। उ० रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं। (मा० २।९९)

हाँड़ी-(सं० भांड)-हँड़िया, मिट्टी की बटलोई। उ० हाँड़ी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज। (दो० १६७)

हाँती-(सं० हात)-दूर, समाप्त, ख़तम। उ० भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती। (मा० २।३१।३)

हाँसा-हँसी, मुस्कान। उ० कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। (मा० १।२४३।३) हाँसी-(सं० हास)-हँसी, ठट्टा।

हा (२)-(सं०)-१. दुःख या शोकसूचक शब्द, २. आश्चर्यसूचक शब्द, ३. हनन करनेवाला, मारनेवाला, नाश करनेवाला। उ० १. हा जग एक बीर रघुराया। (मा० ३।२९।१) ३. रघुबंस बिभूषन दूषन हा। (मा० ६।१११। छं० ४)

हाई-(सं० घात)-१. दशा, अवस्था, २. ढंग, घात, तौर, ३. टूटा, खंडित। उ० ३. परम कृपाल जो नृपाल लोक पालन पै, जब धनु हाई ह्वै है मन अनुमानि कै। (क० ६।२६)

हाट-(सं० हट्ट)-बाज़ार, दूकान। उ० हाट बाट नहिं जाइ निहारी। (मा० २।१५९।१)

हाटक-(सं०)-१. सोना, स्वर्ण, २. धतूरा। उ० १. रत्न-हाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसत-सहस-उद्योत-कारी। (वि० ५१)

हाटकपुर-(सं० हाटक+पुर)-सोने की नगरी, लंका। उ० नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। (मा० ५।३३।४)

हाटकलोचन-(सं० हाटक+लोचन)-हिरण्याक्ष। दे० 'हिरण्याक्ष'। उ० कनककसिपु अरु हाटकलोचन। (मा० १।१२२।३)

हाड़-(सं० हड्ड)-१. हड्डी, अस्थि, २. वंश या जाति की मर्यादा, कुलीनता। उ० निज मुख मानिक सम दसन, भूमि परे ते हाड़। (दो० ३३०)

हाड़ा-दे० 'हाड़'। उ० १. बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। (मा० ६।५२।२)

हाता (१)-(सं० हरण)-हरनेवाले, नष्ट करनेवाले। उ० जयति पाथोधि पाषान-जलजान-कर जातुधान-प्रचुर-हरष-हाता। (वि० २६)

हाता (२)-(अर० इहातः)-अहाता, घेरा।

हाता (३)-(सं० हात)-१ अलग, दूर किया हुआ, हटाया हुआ। हाते-अलग, दूर। उ० नाते सब हाते करि राखत राम-सनेह-सगाई। (वि० १६४)

हाती-(सं० हत)-मारी, नष्ट कर डाली।

हातो-दूर, अलग। उ० हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को। (क० ६।२२)

हाथ-(सं० हस्त)-कर, पाणि, हस्त। पाँच कर्मेंद्रियों में से एक। उ० कृपापाथनाथ लोकनाथ नाथ सीतानाथ, तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िये? (क० ७।२५) मु० देहिं हाथहिं-सहारा देते हैं। उ० फरकि बाम भुज

नयन देहिं जनु हाथहिं। (जा० ११३) मु० हाँथ मींजिबो–हाथ मलना, पछताना। उ० हाथ मींजिबो हाथ रह्यो। (गी० २।८४)
हाथा–दे० 'हाथ'। उ० रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। (मा० २।५२।१)
हाथी–(सं० हस्तिन्)–एक प्रसिद्ध दीर्घकाय जानवर जिसे एक लंबी सूँड़ होती है। करी, कुंजर।
हाथु–दे० 'हाथ'। उ० बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। (मा० १।२७८।१)
हान–दे० 'हानि'।
हानि–(सं०)–१. क्षति, नुकसान, २. नाश, क्षय, अभाव, ३. अनिष्ट, अपकार, बुराई। उ० १. पूजा लेत देत पलटे सुख हानि-लाभ अनुमाने। (वि० २३६) हानिकर–(सं०)–हानि करनेवाला, जिससे नुकसान पहुँचे। उ० मुक्ति जन्म महि जानि ध्यान खानि अघ हानिकर। (मा० ४।१।सो० १)
हानी–दे० 'हानि'। उ० १. जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी। (मा० १।११५।२)
हाय–(सं० हा)–दुःख और शोक सूचित करनेवाला एक शब्द। उ० हाय हाय सब सभा पुकारा। (मा० १। २७६।३)
हायन–(सं०)–वर्ष, संवत्सर।
हार (१)–(सं० हारि)–१. पराजय, शिकस्त, विरोधी की जीत, २. शिथिलता, श्रांति, थकावट, ३. कष्ट, पीड़ा।
हार (२)–(सं०)–माला। उ० संसार-सार, भुजगेंद्रहार। (वि० १३)
हार (३)–(?)–१. बन, जंगल, २. चरागाह, गोचारण भूमि। उ० १. बानर बिचारो बाँधि आन्यो हठि हार सों। (क० ५।११)
हारत–(सं० हारि)–१. हारता है, २. हारते हुए। उ० २. हारत हू न हारि मानत, सखि, सठ सुभाव कंदुक की नाईं। (कृ० ५६) हारति–हार जाती है, थक जाती है। उ० मिटति न दुसह ताप तउ तनु की, यह बिचारि अंतर्गति हारति। (गी० ५।१६) हारहिं–हारते हैं, हार जाते हैं। उ० हारहिं अमित सेष सारद स्रुति गिनत एक एक छन के। (वि० ६६) हारहि–हारे, नष्ट करे, खोवे। उ० हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत। (वि० १३०) हारा–हार गया, हार चुका। उ० अब मैं जन्मु संभु हित हारा। (मा० १।८१।१) हारि (१)–(सं० हारि)–१. हार, पराजय, २. पराजित होकर, हारकर, ३. हारो, पस्त-हिम्मत हो। उ० १. हारत हू न हारि मानत। (कृ० ५६) २. जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ। (दो० ४३३) ३. राम सुमिरि साहसु करिय, मानिय हिये न हारि। (प्र० ५।१।२) हारी (२)–(सं० हारि)–१. हार गया, २. हारकर, पराजित होकर, ३. हार, पराजय, ४. थकावट। उ० १. फिरहिं रामु सीता मैं हारी। (मा० ६।३४।५) २. चले चाप कर बरबस हारी। (मा० १। २५१।२) ४. मोहि मग चलत न होइहि हारी। (मा० २। ६७।१) हारे–१. हार गए, पराजित हो गए, २. हारने पर। उ० १. जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ। (दो० ४३३) २. हारे हरष होत हिय भरतहि। (गी० १।४३) हारेउँ–हार गया। उ० हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। (मा० २।२६१।४) हारेउ–१. हार गया, २. हारने पर भी। उ० १. लखि न परेउ तप कारन बटु हिय हारेउ। (पा० ५३) हारेहु–दे० 'हारेउ'। उ० २. जा रिपु सों हारेहु हँसी, जिते पाप परितापु। (दो० ४३२) हारो–१. हारा, हार गया, २. हारा हुआ, पराजित। उ० २. नाहिं न नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो। (वि० ६४) हार्यो–दे० 'हारो'। उ० १. हौं हार्यो करि जतन बिबिध बिधि अतिसय प्रबल अजै। (वि० ८९)
हारि (२)–(सं० हरण)–हरनेवाला। उ० बिमल बिपुल बहसि बारि सीतल त्रयताप हारि। (वि० १७)
हारिणीम्–हरनेवाली को। उ० उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्। (मा० १।१।श्लो० ५)
हारिनि–हरनेवाली।
हारिनी–(सं० हारिणी)–हरनेवाली, दूर करनेवाली। उ० भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम-हारिनी। (वि० ४८)
हारी (२)–(हारिन्)–हरनेवाला, दूर करनेवाला। उ० मंगल भवन अमंगलहारी। (मा० १।१०।१)
हाल–(अर०)–१. दशा, अवस्था, २. समाचार। उ० १. जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निपट अनेरे। (कृ० ३)
हाला–दे० 'हाल'। उ० १. कनककसिपु कर पुनि अस हाला। (मा० १।७६।१)
हालिहैं–(सं० हल्लन)–हिलेगा, काँपेगा। उ० मसक ह्वै कहैं 'भार मेटे मेरु हालिहैं'। (क० ७।१२०)
हाव–(सं०)–भाव, हाव-भाव, नख़रा।
हासं–दे० 'हास'। उ० ४. तरुण रमणीय राजीव लोचन बदन राकेश, करनिकर हासम्। (वि० ६०) हास–(सं०)–१. हँसना, हँसने की क्रिया, २. विनोद, मज़ाक, ३. हँसी, ४. मुस्कान, ५. उपहास, ६. काव्य का एक रस, हास्य रस। उ० १. अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। (मा० १।४२) ३. सित सुमन हास लीला समीर। (वि० १४) ६. तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू। (मा० १।६।२)
हासा–दे० 'हास'। उ० ४. इंदुकर-कुंदमिव मधुर हासा। (वि० ६१)
हाहा–(अनु०)–हाय हाय, हा। उ० हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार। (वि० २७६)
हाहाकार–(सं०)–कुहराम, भय और घबराहट की चिल्लाहट। उ० हाहाकार भयउ जग भारी। (मा० १।८७।४)
हाहाकारा–दे० 'हाहाकार'। उ० भयउ सकल मख हाहाकारा। (मा० १।६४।४)
हिंकरि–(?)–हिनहिनाकर, हींसकर। उ० हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही। (मा० २।१४३।४)
हिंडोरा–दे० 'हिंडोल'। उ० पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। (मा० २।५६।३)
हिंडोल–(सं० हिंदोल)–झूला, हिंडोला। उ० हिंडोल-साल बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि। (गी० ७।१८)
हिंडोलना–(सं० हिन्दोल)–झूले, हिंडोले। उ० गृह गृह रचे हिंडोलना महि गच काँच सुढार। (गी० ७।१९)

हिंस-(?)-घोड़ों के बोलने का शब्द। उ०थरथर बाजि हिंस चहुँ ओरा। (मा० १।३०१।१)
हिंसक-(सं०)-मारनेवाला, बधिक। उ० कृपारहित हिंसक सब पापी। (मा० १।१७६।४)
हिंसा-(सं०)-१. जीवहत्या, बध, २. पीड़ा देना, सताना, ३. हानि पहुँचाना, अनिष्ट करना। उ० १. हिंसारत निषाद तामस बपु पसु समान बनचारी। (वि० १६६)
हिंस्र-(सं०)-हिंसा करनेवाला, बधिक।
हि (१)-(सं० हृदय)-हृदय, दिल।
हि (२)-१. निश्चय ही, अवश्य, २. को। उ० १. वैराग्यांबुज भास्करं ह्यघघनध्वांतापहं तापहम्। (मा०३।१।श्लो०१) २. हंसहि बक दादुर चातकही। (मा० १।६।१)
हिआउ-(सं० हृदय)-हिम्मत, साहस। उ० कासों कहौं काहू सों न बढ़त हिआउ सो। (वि० १८२)
हितं-दे० 'हित'। हित-(सं०)-१.लिए, निमित्त, २.उपकार, भलाई, नेकी, ३. मित्र, सखा, संबंधी, कल्याणकर्त्ता, ४. प्यारा। उ० १. सींक धनुष, हित सिखन, सकुचि प्रभु लीन। (ब० १६) २. भूत-द्रोह-कृत मोहवस्य हित आपन मैं न बिचारों। (वि० ११७) ३. उपजी प्रीति जानि प्रभु के हित, मनहुँ राम फिरि आए। (गी० २।६३) ४. तिय सो जाय जेहि पति न हित। (क० ७।११६) हितकर-कल्याणकारी, लाभकर। हितनि-१. हितैषियों, भलाई चाहनेवालों, २. भलाइयों, नेकियों। उ० १. हितनि के लाह की, उछाह की बिनोद मोद। (गी० १।६४) हितौ-कल्याण करनेवाले दोनों। उ० माया मानुष रूपिणौ रघुबरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ। (मा० ४।१।श्लो० १)
हितकारि-दे० 'हितकारी'। उ० बहुरि तिहि विधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि। (गी० ७।२६)
हितकारी-(सं० हितकारिन्) उपकारी, हितैषी, भलाई करनेवाला। उ० समय साँकरे सुमिरिए समरथ हितकारी। (वि० ३४)
हितता-(सं०)-भलाई, उपकार। उ० स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ द्रोहाई। (वि० १७१)
हितु-(सं० हित)-भलाई चाहनेवाला, मित्र, संबंधी। उ० तात, मात, गुरु सखा तू सब बिधि हितु मेरो। (वि० ७६)
हितू-दे० 'हितु'। उ० कुदिन हितू सोहित सुदिन, हित अनहित किन होइ। (दो० ३२२)
हितै-दे० 'हितु'। उ० बिनय करौं अपभयहुँ ते तुम्ह परम हितै हौ। (वि० २७०)
हितैहै-(सं० हित)-प्रेमयुक्त करेगी, ललचायेगी, लालायित करेगी। उ० अनुज सहित सोचिहैं कपिन महँ, तनु-छबि कोटि मनोज हितैहैं। (गी० ५।५०) हितैहौं-अच्छा लगूँगा, अनुकूल पड़ूँगा, हितकारी हूँगा। उ० ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्यों ही तिहारे हिये न हितैहौं। (क०७।१०२)
हिम-(सं०)-१.पाला, तुषार, ओस,२.बर्फ, ३. ठंड, जाड़ा, ४. हेमंत ऋतु, ५. शीतल, ठंडा, ६. जाड़े की ऋतु। उ० २. या ४. हिम (४) हिम (२) सैल सुता सिव ब्याहू। (मा० १।४२।१) ५. सुर बिमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर। (क० १।११) ६. मोहमदमदन-पाथोज-हिम जामिनी। (वि० १८) हिमउपल-बर्फ़ का पत्थर, ओला। उ० जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं। (मा० १।४।४)
हिमकर-(सं०)-चंद्रमा। उ० हेतु कृसानु भानु हिमकर को। (मा० १।१६।१)
हिमगिरि-(सं०)-हिमालय पर्वत। उ० हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। (मा० १।१२५।१)
हिमवंतु-दे० 'हिमवान'। उ० कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार। (मा० १।६८)
हिमवंतु-दे०'हिमवान'। उ०१. तब मयना हिमवंत अनंदे। (मा० १।६६।१)
हिमवान-(सं० हिमवत्)-१. हिमाचल, पार्वती के पिता, २. हिमालय पर्वत, ३. कैलाश पर्वत, ४. सुमेरु पर्वत, ५. चंद्रमा। उ० ५. पावक, पवन पानी, भानु, हिमवान, जम, काल लोकपाल मेरे डर डाँवाडोल हैं। (क० ५।३१)
हिमवाना-दे० 'हिमवान'। उ० सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना। (मा० १।१०३।१)
हिमाचल-(सं०)-१.हिमालय पर्वत, २.पार्वती के पिता, हिमवान। उ० २.जनमी जाइ हिमाचल गेहा। (मा०१।८३।१)
हिमु-दे० 'हिम'। उ० १. बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। (मा० २।१६६।१)
हियँ-(सं० हृदय)-हृदय में। उ० हर हियँ रामचरित सब आए। (मा० १।१११।४) हिय-१. हृदय, दिल, २. मन, चित्त। उ० १. निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई। (वि० ६२) हिये-हृदय में। उ० नाग नर किंनर बिरंचि हरि हर हेरि, पुलक सरीर हिये हेतु हरषतु हैं। (क० ६।५८) हियो-दे० 'हियौ'। उ० १. तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हियो हरि बे हो। (कृ० ३६) हियौ-१. हृदय, २. हृदय भी।
हियरे-हृदय पर, हृदय में। उ० जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ। (ब० ५)
हिया-हृदय, दिल। उ० जो तो सों हो तौ फिरौ मेरो हेतु हिया रे। (वि० ३३) हियाउ-दे० 'हिआउ'।
हियाव-दे० 'हिआउ'।
हिरण्य-(सं०)-सोना।
हिरण्यकशिपु-(सं०)-प्रह्लाद का पिता एक दैत्य जिसे विष्णु ने नृसिंह अवतार धारण कर मारा था। दे० 'प्रह्लाद' तथा 'नृसिंह'।
हिरण्यगर्भ-(सं०)-जिसके पेट में सुवर्ण हो, ब्रह्मा।
हिरण्याक्ष-दे० 'हिरन्याच्छ'।
हिरदय-(सं० हृदय)-हृदय, चित्त, मन। उ० जनु हिरदय गुन-ग्राम-थूनि थिर रोपहिं। (जा० ६५)
हिरन्य-दे० 'हिरण्य'।
हिरन्याक्ष-दे० 'हिरन्याच्छ'। उ० हिरन्याक्ष भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान। (दो० ११५)
हिरन्याच्छ-(सं० हिरण्याक्ष)-एक दैत्य जो हिरण्यकशिपु का भाई था। उ० हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान। (मा० १।६।४८ क)
हिराई-(सं० हरण)-खो जाता है, ग़ायब हो जाता है।
हिलि-(सं०हल्लन)-हिलकर, मिलजुल कर। उ० बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाईं। (मा०२।३२०।३)

हिलोर-(सं० हिल्लोल)-लहर, तरंग, वीचि ।
हिलोरे-हिलोरा ले, तरंगित हो । उ० राम-प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग-जल-जलधि हिलोरे । (वि० १६४)
हिसक-दे० 'हिसका' ।
हिसका-(सं० ईर्ष्या)-१. ईर्ष्या, डाह, २.देखादेखी, स्पर्द्धा, चढ़ाउपरी का भाव ।
हिसिषा-दे० 'हिसका' । उ० २. जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान । (मा० १।६६)
हिहिनात-(अनु०)-हिनहिनाते हैं । उ० बार बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे । (गी० २।८६) हिहनाहिं-दे० 'हिहिनाहीं'। उ० रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं । (मा० २।९९) हिहिनाहीं-हिनहिनाते हैं । उ० देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं । (मा० २।१४ २।४)
हीं-१. में, २, ही । उ० १. हाथी हथिसार जरे घोरे घोरसारहीं । (क० ५।२३)
हींचे-(सं० कर्षण, हिं खींचना) खींच लिए, खींचा, बटोरा, सिकोड़ा ।
हींस-(?)-घोड़े के हिनहिनाने का शब्द ।
ही (२)-(?)-१. को, २. निश्चयवाचक शब्द, अवश्य, उ० १. हंसहि बक दादुर चातकही । (मा० १।६।१) २. पुलक सरीर सेना करत फहमही । (क० ६।८)
ही (३)-(सं० हृदय)-हृदय, दिल । उ० दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही तें । (वि० १९८)
हीचे-हिचकती है, दुबकती है । उ० कहत सारदहु कर मति हीचे । (मा० २।२८३।२)
हीन-(सं०)-१. रहित, शून्य, खाली, बिना, २. दरिद्र, कंगाल, ३. त्यक्त, छोड़ा, ४. अधम, निंदित, ५. लघु, छोटा, थोड़ा । उ० १. मनि बिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ । (पा० ६७)
हीनता-(सं०)-१. शून्यता, रहितता, २. कमी, ३. क्षुद्रता, ४. ओछापन, बुराई । उ० २. होइगी न साईं सों सनेह-हित हीनता । (वि० २६२)
हीनमति-मूर्ख, बेवकूफ़ । उ० इक हौं हीन मलीन हीनमति बिपति जाल अति घेरो । (वि० १४३)
हीना-दे० 'हीन' । उ० १. अगुन अमान मातु पितु हीना । (मा० १।६७।४) हीनी-दे० 'हीन' । उ० १. कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी । (मा० २।२२३।३)
हीनू-दे० 'हीन' । उ० १. सकल कला सब बिद्याहीनू । (मा० १।६।४)
हीने-हीन थे, रहित थे । उ० सबरि गीधसम-दम-दया-दान-हीने । (वि० १०६)
हीय-(सं० हृदय)-हृदय, दिल । उ० मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो । (क० ५।१७)
हीर-(सं०)-१. हीरा नाम का रत्न, २. सार, गूदा । उ० २. करत चरत तेइ फल बिनु हीर । (वि० १६७)
हीरक-(सं०)-दे० 'हीरा' । उ० सिरसि हेम-हीरक-मानिक-मय मुकुट-प्रभा सब भुवन प्रकासति । (गी० ७।१७)
हीरा-(सं० हीरक)-एक बहुमूल्य पत्थर जो अपनी चमक और कड़ाई के लिए प्रसिद्ध है, बज्रमणि । उ० गज गो तुरग हेम गो हीरा । (मा० १।१९६।४) हीरै-हीरे को । उ० सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ, केवल कांति मोल हीरै । (गी० ६।१५)
हुँ (१)-(?)-भी । उ० ऐसे हौंहुँ जानति भृंग । (कृ०४४)
हुँ (२)-(सं० भू)-हूँ, स्वीकारसूचक शब्द, हाँ ।
हुँकरि-(सं० हुंकार)-शब्द करके, हुंकार करके । उ० हेरैं न हुँकरि फरैं फल न रसाल । (गी० ३।६)
हुंकार-(सं०)-गर्जन, डरावना शब्द । उ० दिन अंतपुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भई । (मा० ७।६। छं० १)
हुँति-दे० 'हुति' । उ० १. सासु ससुर सन मोरि हुँति, बिनय करबि परि पायँ । (मा० २।९८)
हु-(?)-हू, भी ।
हुआहिं-हू हू शब्द करते हैं । उ० खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं । (मा० ६।८८।५)
हुतं-होम किया आहुति दिया । उ० तेन तप्तं हुतं दत्त-मेवाखिलं, तेनसर्वंकृतं कर्मजालं । (वि० ४६) हुत-(सं०)-१. आहुति किया हुआ, २. आहुति की घृत आदि वस्तुएँ, ३. आग ।
हुतासन-(सं० हुताशन)-अग्नि, आग । उ० राम-प्रताप हुतासन कच्छ बिपच्छ समीर दुलारो । (ह० १६)
हुति-(प्रा० हिंतो)-१. ओर से, तरफ़ से, २. की ।
हुते (१)-(सं० भवन)-थे । उ० संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औधहु ते पहुनाई । (क० २।२) हुतो (१)-था, रहा । उ० जनु हुतो पुरारि पढ़ायो । (गी० २।६१) हे (१)-थे । उ० हे हम समाचार सब पाए । (कृ० ५०) हैं-१. एक आश्चर्यसूचक शब्द, २. सम्मति या निषेधसूचक शब्द, ३. है का बहुवचन । उ० ३. हैं दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम । (वि० २७५) है-'होना' का वर्तमानकालिक एक वचन रूप । उ० मातु काज लागी लखि डाटत, है बायनो दियो घर नीके । (कृ० १०) हो (१)-१. होवे, २. था । उ० २. मन में मंजु मनोरथ हो, री ! (गी० १।१०२) होइ-१. होय, होवे, २. होकर, ३.होती है । ४. होगी । उ० २. होइ प्रसन्न दीन्हेउ सिव पद निज । (वि० ७) होइअ-होइए, हो लीजिए। उ० होइअ नाथ अस्व असवारा । (मा० २।२०३।३) होइहउ-होऊँगा । उ० होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें । (मा० १।१५२।१) होइहहिं-होंगे । उ० भये जे अहहिं जे होइहहिं आगें । (मा० १।१४।३) होइहहु-होगे, हो जाओगे । उ० होइहहु सुकृत न पुनि संसारा । (मा० १।१३६।४) होइहिं-होंगे । होइहि-होगा । उ० होइहि सोइ जो राम रचि राखा । (मा० १।५२।४) होई-दे० 'होइ' । उ० १. काजु हमार तासु हित होई । (मा० ६।१७।४) होउँ-होऊँ, हूँ । उ० कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू । (मा० १।९।४) होउ-दे० 'होइ' । उ० १. ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई । (मा० २।४६।२) होऊ-दे० 'होइ' । उ० १. कह तापस नृप ऐसेइ होऊ । (मा० १।१६५।१) होएहु-हो, होओ । उ० होएहु संतत पियहि पिआरी । (मा० १।३३४।२) होत-

(सं० भवन)–१. शक्ति, सामर्थ्य, २. होते हुए, ३. होता है, बन जाता है, हो जाता है, हो रहा है। उ० २. जिन्ह लगि निज परलोक बिगार्यो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ। (वि० ८३) ३. जलचरवृंद जाल-अंतरगत होत सिमिटि इक पासा। (वि० ९२) होति–होती है। उ० काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन। (वि० २४३) होती–१. होती थी, हो जाती थी, २. रहती। उ० २. होती जो आपने बस रहती एक ही रस। (वि० २४६) होते–१. थे, २. रहते। उ० १. सावँकरन अगनित हय होते। (मा० १। २९९।३) होतेउँ–होता हुआ, होता, बनता। उ० तौ पुनि करि होतेउँ न हँसाई। (मा०१।२४२।३) होतौ–होता, हो जाता। उ०जो तोसों होतौ फिरौ मेरो हेतु हिया रे। (वि० ३३) होन–होना, होने। उ०सिंदूर बंदन होम लावा होन लागीं भाँवरी। (जा० १६२) होनउ–दे० 'होनेउ'। होने–१. होंगे, होनेवाले हैं, २. होनहार, जिनका भविष्य अच्छा हो। उ० १. देखि तियनि के नयन सफल भए, तुलसीदासहू के होने। (गी० १।१०५) २.होत हरे होने बिखानि दल सुमति कहति अनुमानिहैं। (गी० १।७८) होनेउ–होना ही, होने का ही। उ०भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं। (मा० १।२९४।३) होनो–होना, हो जाना। उ० होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ। (दो० ३९१) होब–१. होऊँगा, होऊँगी, २. होगा, हो जायगा, ३. हो जाओगे। उ०१.चेरि छाड़ि अब होब कि रानी। (मा० २। १६।३)होयहु–होगा, हो जाएगा। होसि–होवो, हो जावो, बनो। उ०जनि दिनकर कुल होसि कुठारी। (मा०२।३४।३) होहिं–१. होते हैं, २. हों, ३.होंगे। उ० १.मूढ़ मोह बस होहिं जनाई। (मा० २।२२८।१) होहिंगे–होवेंगे। उ० ह्वै गये, हैं जे होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़ भागी। (वि०६९) होहि–१. हो जा, बन जा, २. हो। उ० १. राम नाम-नव नेह-मेह को मन हठि होहि पपीहा। (वि० ६५) होहीं–१. हैं होती हैं, हो रही हैं, २. हों। उ० १. मधुकर कान्ह कहा ते न होहीं। (कृ० ४१) होही–१. होवे, हो, २. हो जाओ, हो। उ० २. सुनहि सुमुखि जनि बिकल होही। (गी० २।१९) होहु–होओ, हो जाओ। उ० होहु प्रसन्न देहु बरदानू। (मा० १।१४।४) होहू–हो, होओ, बनो। उ० सोक कलंक कोठि जनि होहू। (मा० २।५०।१) हौं (१)–(सं० भवन, प्रा० होन)–१. हूँ, २,हो, होवे।उ०१. जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु। (मा० २।१४६) हौ–१. हो, २. हो, होवो। ह्वै–१. होकर, हो करके, २. रहकर, ३. हो। उ० १. जरि जाउ सो जीवन, जानकीनाथ जियै जग में तुम्हरो बिन ह्वै। (क० ७।४०) २. पर्णकुटी करि हौ कित्तु ह्वै? (क०२।११) ३. तौ नवरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे। (वि० १६९) ह्वैहैं–होंगे, हो जायँगे। उ० ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे। (क० २।२८) ह्वैहै–हो जायगा, होगा। उ० ह्वैहै जब तब तुम्हहिं तें तुलसी को भले रो। (वि० २७२) ह्वैहौं–१. होऊँगा, हो जाऊँगा। उ० १. जोपै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं। (गी० २।६२)

हुते (२)–(सं०हुत)–होमकर दिए, जला दिए। हुतो (२)–आहुति दी, जलाया। हुनिए–हवन कीजिए, जलाइए। उ० बिषम-बियोग-अनल तनु हुनिए। (कृ० ३७)हुने–जलाए, हवन किए। उ० हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस। (मा० ६।२८) हुनै–१. हवन करते हैं, २. हवन करना, होमना। उ० १. स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं। (क० ५।७)

हुनर–(फ़ा०)–१. कारीगरी, कला, २. चातुरी, चतुराई। उ० १. इन्हकर हुनर न कवनिहुँ ओरा। (मा० ७। ३१।३)

हुमकि–(?)–उमंग से, उछलकर, कूदकर।

हुमगि–दे०'हुमकि'। उ० १. हुमगि लात तकि कूबर मारा। (मा० २।१६३।२)

हुलसत–(सं० उल्लास)–उल्लसित होता है, प्रसन्न होता है। उ० सुमिरत हिय हुलसत तुलसी अनुराग उमँगि गुन गाए। (गी० ७।१४) हुलसति–उल्लसित होती है, प्रसन्न होती है। उ० खल बिलसत हुलसत हुलसति खलई है। (वि०१३९) हुलसि–प्रसन्न होकर, हुलास में आकर। उ० हुलसि हुलसि हिये तुलसिहुँ गाये हैं। (गी० १।७२) हुलसी–१. सुखी, २. खुशी, उल्लास, ३. तुलसीदास की माता का नाम, ४. उत्साहित हुई, प्रसन्न हुई खुशी हुई, ५. विकसित हुई, उदित हुई। उ० ३. तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी। (मा० १।३१।६) ५. संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। (मा० १।३६।१) हुलसे–आनंदित हुए, प्रसन्न हुए। उ०राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी हमसे गलगाजे। (क० ७।१) हुलसै–१. क्रीड़ा करता है, २. उमड़ता है, उल्लसित होता है। उ० १. स्याम सरीर पसेऊ लसै, हुलसै तुलसी छवि सो मन मोरे। (क० २। २६) २. राखिहैं राम सो जासु हिये तुलसी हुलसै बल आखर दू को। (क० ७।१०) हुलस्यो–उमँग उठा, उल्लसित हुआ। उ० सुख मूल दूलहु देखि दंपति पुलकतन हुलस्यो हियो। (मा० १।३२४। छं० ३)

हुलसानी–१. आनंदित हो उठीं, २. उमंगित हो गईं, उमड़ आईं। उ० २. भगत बछलता हियँ हुलसानी। (मा० १।२१८।२)

हुलास–१. आनंद, हर्ष, २. उत्साह, उल्लास।

हुलासा–दे० 'हुलास'। उ० चले सकल मन परम हुलासा। (मा० ६।१०८।५)

हुलासु–दे० 'हुलास'। उ० १. मुदित मातु परिछन चलीं उमगत हृदय हुलासु। (प्र० १।७।१)

हुलासू–दे० 'हुलास'। उ० १. देहु लेहु सब सवति हुलासू। (मा० २।२२।३) २. प्रीति कहत कबि हियँ न हुलासू। (मा० २।३२०।१)

हूँ (१)–(सं० अहम्)–मैं।

हूँ (२)–(?)–भी। उ० ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेए बपु बचन हिये हूँ। (वि० १७०)

हूँ (३)–१. स्वीकृतिवाचक शब्द।

हू (?)–भी। उ० कर्म हू के कर्म, निदान हू के निदान हौ। (क० ७।१२६)

हूक–(सं० हिक्का)–पीड़ा, कसक।

हूति–(सं० हूत)–बुलाना, आह्वान।

हूह–दे० 'हूहा'। उ० जय जय जय रघुबंसमनि धाए कपि दै हूह। (मा० ६।६६)
हूहा–प्रसन्नता का शब्द। उ० सुनि कपि भालु चले करि हूहा। (मा० ६।१।५)
हृद–(सं० हृद्)–१. हृदय, दिल, २. कुंड। हृदि–१. हृदय में, मन में, २. कुंड में। उ० १. हर हृदि मानस बाल मरालं। (मा० ३।११।४)
हृदउ–दे० 'हृदय'। उ० हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु। (मा०२।१४६)
हृदयँ–हृदय में, मन में। उ० कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि। (मा० १।१३०) हृदय–(सं०)–दिल, कलेजा। उ० सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। (मा० १।३६।२) हृदये–हृदय में, मन में। उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये। (मा० ५।१।श्लो० २)
हृदयेश–(सं०)–१. हृदय का स्वामी, पति, प्यारा, २. अंतर्यामी, हृदय की बात जाननेवाला।
हृदयेसा–दे० 'हृदयेश'। उ० २. अज अद्वैत अगुन हृदयेसा। (मा० ७।१११।२)
हृषीकेस–(सं० हृषीकेश)–इंद्रियों के स्वामी, विष्णु। उ० हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे। (वि० ११६)
हृष्ट–(सं०)–प्रसन्न, आनंदित। उ० हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। (मा० १।१४५।४)
हे (२)–(सं०)–संबोधन का चिह्न। उ० हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। (मा० ३।३०।५)
हेठ–(?)–१. नीचे, अधः, २. नीच, अधम। उ० १. हेठ दाबि कपि भालु निसाचर। (मा० ६।७१।४)
हेत–दे 'हेतु (१)'। उ० १. है एकै दूजो नहीं द्वैत आन के हेत। (स० १६२)
हेता–दे० 'हेतु (१)'। उ० १. जग माहीं विचरत एहि हेता। (वै० ६)
हेति–(सं० हा+इति)–इस प्रकार, हाय इस प्रकार। उ० गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हेति पुकारि। (मा० ६।७०)
हेतु (१)–(सं)–१. कारण, लिए, २. उत्पादक, पैदा करनेवाले ३. प्रयोजन, मतलब। उ० १. भय उ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि विषाद। (मा० १।४७)
हेतु (२)–(सं० हित)–स्नेह, प्रेम। उ० पुलक सरीर हिये हेतु हरषतु हैं। (क० ६।५८)
हेतुवाद–(सं०–हेतुवाद)–१. तर्क-वितर्क, तर्क विद्या, २. नास्तिकता। उ० २. बेद-मरजाद मानौ हेतुबाद हई है। (गी० १।८४)
हेतू (१)–दे० 'हेतु (१)'। उ० १. सहित सहाय जाहु मम हेतू। (मा० १।१२५।३)
हेतू (२)–दे० 'हेतु (२)'। उ० अस्तुति सुरह्न कीह्नि अति-हेतू। (मा० १।८३।४)
हेमंत–(सं०)–छः ऋतुओं में एक जो अगहन और पूस में पड़ती है। शीतकाल।
हेम–(सं०)–सोना, स्वर्ण। उ० हेम जलज कल कलित मध्य जनु मधुकर मुखर सोहाई। (वि० ६२)
हेय–(सं०)–छोड़ने योग्य, त्याज्य।
हेरंब–(सं०)–गणेश। उ० छमुख-हेरंब-अंबासि जगदंबिके। (वि० १५)
हेरइ–(?)–देखती है। उ० सीय सनेह-सकुच-बस पिय तन हेरइ। (जा० १२१) हेरत–१. देखता है, देखते हैं, २. देखने पर, ३. देखते ही, ४. ढूँढ़ते हुए, खोजते हुए। उ० ३. जिय की जरनि हरत हँसि हेरत। (मा० २।२३३।४) ४. बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत। (पा० ११६) हेरनि–देखना, देखने का भाव या क्रिया। उ० हेरनि हँसनि हिय लिये हैं चोराई। (गी० २।४०) हेरहिं–देखते हैं, खोजते हैं। उ० अटुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। (मा० २।१४३।३) हेरा–१. देखा, २. खोजा, ढूँढ़ा। उ० १.धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। (मा० २।३८।२) हेरि–१. ढूँढ़कर, खोजकर, २. देख, देखकर, ३. विचारकर। उ० १. जो बरी नटनागर हेरि हलाकी। (क० ७।१३४) २. काल चालि हेरि होति हिये घनी घिन। (वि० २५३) हेरिये–१. देखिये, निहारिए, २. खोजिये, ढूँढ़िए। उ० १.अपनी ओर हेरिये। (ह०३४) २. समर समर्थ, नाथ ! हेरिये हलक में। (क० ६।२५) हेरी–देखी, देखा। उ० पल्लव-सालन हेरी, प्रान बल्लभा न टेरी। (गी० ३।१०) हेरे–१. देखे, देखा, २. देखते हैं, ३. खोजा, ढूँढ़ा, ४. देखने पर, दयादृष्टि डालने पर, ५. खोजने पर। उ० ४. तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की। (क० ७।२०) ५. तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरे। (वि० १८७) हेरैं–१. ढूँढ़े, खोजे, २. देखते हैं। उ० २. बार बार हेरैं मुख औध-मृगराज के। (क० १।८) हेरो–१. देखो, २. देखा। उ० २. ओचट उलटि न हेरो। (वि० २७२)
हेराई–दे० 'हिराई'। उ० जेहिं जानें जग जाइ हेराई। (मा० १।११२।१)
हेल–(सं० हेला)–१. अवहेलना, तिरस्कार, २. त्याग।
हेलया–सहज ही में, खेल ही में। उ० हेलया दलित भूभार भारी। (वि० ४४) हेलाँ–खेल में ही। उ० जेहिं बारीस बँधायउ हेलाँ। (मा०६।६।३) हेला–(सं०)–१. तिरस्कार, अनादर, २. क्रीड़ा, खेलवाड़, दिल्लगी, ३. खेल में ही। उ०३. जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला। (मा० ६।३७।१)
हेली–(सं० हेला)–१. हे सखी, २. सहेली, सखी, ३. बुलाकर। उ० २. हेरि, हेरि, हेरि ! हेली हिय के हरन हैं। (गी० २।२६)
हैल–(सं० हल्लन)–पार हो, तैर जा।
हो (२)–संबोधन का एक चिह्न। उ० प्रेमपियूष रूप उडुपति बिनु कैसे हो ! अलि पैयत रबि पाहीं। (कृ० ५८)
होड़–(?)–बाज़ी, शर्त ठहराव। उ० मुख चंद सों चंद सों होड़ परी है। (क० ७।१८०)
होता–(सं० होतृ)–हवन करनेवाला।
होनहार–(सं० भवन)–१. होनेवाला, भविष्य, भावी, २.

अच्छे लक्षणवाला। उ० १. होनहार सहजान सब बिभव बीच नहिं होत। (स० १५६)

होनिहार–दे० 'होनहार'। उ० १. होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा। (मा० १।८४।छं० १)

होनिहारा–दे० 'होनहार'। उ० १. जानत हौं कछु भल होनिहारा। (मा० १।१५९।४)

होनी–(सं० भवन)–१. उत्पत्ति, २. होना, ३. होनेवाली। उ० १.निज निज मुखनि कही निज होनी। (मा०१।३।२) ३. बीती हैं बय किसोरी, जोबन होनी। (गी० २।२२)

होम–(सं०)–हवन, यज्ञ। उ० तरपन होम करहिं बिधि नाना। (मा० २।१२९।४)

होरी–(सं० होलिका)–१. होली का त्यौहार, २. घास-फूस का वह समूह जो होली के पूर्व रात में जलाया जाता है। ३.एक राग। उ० १.कानन दलि होरी रचि बनाइ। (गी० ५।१६)

होलिका–(सं०)–१. होली नाम का त्यौहार, २. घास आदि का वह समूह जो होली में जलाया जाता है। उ० २. गोपद पयोधि करि, होलिका ज्यों लाय लंक। (ह०६)

होलिय–दे० 'होलिका'। उ० २ त्रिबिध सूल होलिय जरै। (वि० २०३)

हौं (२)–(सं० अहम्)–मैं, हम। उ० बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू। (क० २।६)

हौंहूँ–मैं भी।

ह्याँ–(सं० इह)–यहाँ, इस जगह। उ० ऊधो! यह ह्याँ न कछू कहिबे ही। (कृ० ४०)

ह्रद–(सं०)–बड़ा ताल, कुंड, सरोवर। उ० जनम कोटि को कँदेलो ह्रद-हृदय थिरातो। (वि० १५१)

ह्रस्व–(सं०)–१. लघु मात्रा, २. छोटा।

ह्रास–(सं०)–१. घाटा, टोटा, नुकसान, हानि, २. अवनति, ३. थकावट, ४. क्षय, नाश।

ह्लाद–(सं०)–आनंद, खुशी, प्रसन्नता।

ह्लन–(सं०)–१. चलना, २. महादेव, ३. ब्रह्मा, ४. विष्णु, ५. सरस्वती, ६. गणेश, ७. लक्ष्मी, ८. दुर्गा।